

## गुरुकुल में आर्यसमाज- स्थापना दिवस

[ १२ अप्रैल ( १ वैशाख ) के दिन आर्यवैदिक समाज की स्ति के अनुसार पुरुषकुल में भी आर्यसमाज-स्थापना-दिवस था गया । इसके विषे विशेष बात यह थी कि १२ वन्दे देन भर यज्ञ का और यज्ञवेद के अक्षरच पाठ का आयोजन था गया । प्रातः ६।। सवे उदकपानी पकलना में इच्छ के रे दक्षिण हुए और सायं ६।। बजे फिर सूर्यास्त में भी सवे बारी सम्मिलित हुए । बीच बीच में बारी बारी से आकर चारिगण इवन और वेद पाठ का क्रम लगातार चलाते रहे । प्रातः, स्वस्ति वाचन तथा प्रारम्भिक इवन के द्वारा प्रातःकाल यज्ञ विधा के बाद इस दिन के सम्बन्ध में भी आचार्यजी से आर्य दिया वह मिला किञ्चित है । उस से यह स्पष्ट हो ा है कि यह दिन पुरुकुल में किस प्रकार मनाया गया और उस में आषमा रही ]

आज नये वर्ष का प्रथम दिन है । संवत् १९६६ कल विदा दे कर आज इस सुरभ्य पुण्य प्रभात में । संवत् १९६७ में पक्षारंभ कर रहे हैं । यह कुछ स्वयं और आनन्द की बात है कि इस बार आज ही दिन आर्यसमाज का स्थापना-दिवस पड़ गया है से हम 'दयानन्द-महा यज्ञ' नाम से पुकारते हैं, कि आज वैत्र शुक्ल पंचमी भी है । सार्वदेशिक आर्य निधि समाजों का आशा है कि यह दिन विशेष उत्साह साथ मनाया जाय । आज से ६४ वर्ष पूर्व ( सन् १८७५ ) आज के दिन स्वयं श्रुति दयानन्द ने बम्बई में संसमाज की स्थापना की थी । उस दिन आर्यसमाज 'यज्ञ' का श्रुति दयानन्द द्वारा प्रवर्तन हुआ था । जब इ व्यक्ति एक भाव से एकत्रित और संगठित होते हैं तो राज बन जाता है । समाज बना कर रहना मनुष्य का भाव है । जैसे एक व्यक्ति में व्यक्तिच और पुरुषता ती है, आत्मा रहस्य है वैसे ही ठीक प्रकार के बने मात्र का भी व्यक्तिच होता है, उसका आत्मा होता है,

और यह समाज भी एक पुरुष की तरह काम करता है । वेद के प्रसिद्ध पुरुष सूक्त में समाज पुरुष का सुन्दर वर्णन है । जब व्यक्तियों का यह संगठन किसी पवित्र दिव्य उद्देश्य से परस्पर प्रेम भाव से जुड़ कर काम करता है तो यह दिव्य यज्ञ कहलाता है । यज्ञ-पुरुष यह भी वैदिक साहित्य का एक प्रचलित शब्द है । अतः यदि दयानन्द प्रवर्तित, दिव्य उद्देश्य से संगठित, इस आर्यसमाज स्थापना को हम दयानन्द महायज्ञ कहते हैं। तो यह उचित ही है । वैसे तो जगत् में आज बहुत से समाज स्थापित हैं नानाप्रकार के संघ, संस्था, सम्मेलन, संस्थान, जाति, धर्म, आदि स्थापित हैं, और सब ही पवित्र यज्ञ हैं या हो सकते हैं यदि वे दिव्य, परोपकारमय हैं किसी ईश्वरामिमुख प्रयोजन से काम करते या कर सकते हैं । परन्तु आर्यसमाज को अन्य समाजों से जो विशेषता है वह है वेद की विशेषता । इस लिये यदि समाज के दिन को मनाने के लिये ब्रह्मचारियों के मन में वेद के अक्षरच पाठ करने का संकल्प आया है तो यह बड़ा उत्सव है । आर्यसमाज के इस नियमों में से 'वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है —' इत्यादि जो वेद संबन्धी नियम हैं वह आर्यसमाज को अन्य सब समाजों से प्रथक करने वाला है । आर्यसमाज के श्रेष्ठ नियम तो ऐसे हैं जो अन्य बहुत से समाजों को मान्य ही हैं या आसानी से हो सकते हैं । आर्यसमाज वेद प्रचार के लिये ही जन्मा है । पर वेद क्या है ? उसका प्रचार कैसे हो ? वेद चार पुस्तकों में परिमित नहीं है—वह वेद जो सत्य ज्ञान रूप है, जो नित्य और शाश्वत है । ब्राह्मण में कहा है 'अनन्ता वे वेदाः' और साथ में कहा है कि असली वेद तो विशाल पहाड़ के समान है और ये चार पुस्तकें तो उस में से ली गई चार मुट्ठी के बराबर हैं । अभी हम ने शिव संकल्प के मन्त्रों में पढ़ा है 'यस्मिन् श्रुतः सामयजूषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रचना भा विबाराः । अर्वाच्युद्दामरे अन्दर-दामारे मन में ही श्रुत्युज्जुसाम प्रतिष्ठित है । स्वयं वेद में कहा है 'यस्तन्न वेदं किमु वा करिष्यति' जो वेदों के एक प्रति-पाठ उस सत्य स्वरूप को नहीं जानता वह वेद से क्या करेगा ? वेद पढ़ने से भी उस के पल्ले कुछ नहीं पड़ेगा ।

उसके निम्न श्रोत, भगवान् के साथ सम्बन्ध न जोड़कर हम पहुँगे तो निःसंदेह वेद आज के काम के नहीं हैं। वेद इसी लिये निम्न हैं क्योंकि भगवान् निम्न हैं। हमने परमेस्वर की आराधना कर के वेदों को अभी तक जगाया नहीं है। जागे हुए वेद तो हरेक व्यक्ति को, उस की हर एक परिस्थिति और आवश्यकतानुसार ज्ञान देने का सामर्थ्य रखते हैं जैसे कि कोई भी पदार्थ विद्या (सार्थस) या अन्य मनुष्यी तत्त्व विद्या (किनात्मकी) नहीं गव्य सकती। तब वेद सनातन होता हुआ भी निम्न नया हो जाता है, जीर्ण शीर्ण वस्तु नहीं रह जाती। पर ऐसा कर सकने के लिये हमें वेद देने वाले प्रभु से छपना सबन्ध जोड़ सकना जरूरी है। हमें वेद की उस सत्य सनातन ऊँचाई से उसे अन्दर उतारलाना चाहिये। यह कैसे हो? इसके लिये हमें और कुछ नहीं करना, अपने आप को आर्य बना लेना चाहिये। 'आर्य' यह बड़ा सुन्दर शब्द है। वेद में यह बड़े ऊँचे भावपूर्ण अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। जो वेदों के आराध्य परमात्मा देव की तरफ निरन्तर गति करता रहता है वह आर्य है। यदि हम लोग ऐसे हों, वेदों का सत्य ज्ञान हम में सहज नया प्रटक होने लगेगा। तब वेद प्रचार होगा। जो कुछ काय करेंगे वह दयानन्द के इस मन्त्रयज्ञ को बढ़ाने वाला होगा। नहीं तो, अन्य सब बोलना और करना उस दृष्टि से निरर्थक जा रहा है।

मैंने कहा है कि यह कुछ आनन्द देने वाली बात है कि इस बार वर्ष का प्रथम दिन ही आर्य समाज स्थापना दिन है। क्या इस का यह मतलब है कि यह वर्ष, यह १९६७ का मन्वन्त, आर्यसमाज को बढ़ाने का विशेष अवसर देने के लिये ही आया है। साधारणतया पिछले वर्षों में यह बैशाखी का दिन १३ अप्रैल को पड़ता रहा है और इस का सबन्ध देरा में मनाये जाने वाले राष्ट्रीय सप्ताह के साथ जुड़ जाता रहा है। पर इस बार यह दयानन्द महायज्ञ के साथ एक हो गया है। आइए, इस से यदि आप के मन में यह कल्पना उठती हो, यह नया वर्ष देरा में और जगत में आर्यसमाज का संदेश फैलाने वाला क्यों न हो, तो आप बैराह इस कल्पना को उठाने कीजिये। बल्कि यह कल्पना सचकी हो इसके लिये हार्दिक प्रार्थना कीजिये। जैसे यह वेदी में जलती हुई अग्नि ऊपर की तरफ उठती है और इसके उठने में यह समार्थ्य है कि यह ऊपर से दृष्टि उतार ला सकती है, वैसे ही आप की अर्वाभिसुवा का गई प्रार्थना भी अग्नि बन कर उस

हम में दे।

इस प्रकार के सामर्थ्य का संवय करने के लिये ही आर्यसमाज ने गुरुकुल की नींव डाली है। कोई भी समाज तब तक जीता जागता और उन्नति पथ पर अग्रसर होता हुआ नहीं रह सकता जब तक कि वह अपने बालकों को बिलकुल ठीक प्रकार की शिक्षा से शिक्षित होने की परम्परा को स्थिर रूप से जारी नहीं कर देता। इसलिये हम तो आज यही प्रार्थना करते हैं, और शायद आर्यसमाज की (आर्यसमाज रूपी यज्ञ पुस्तक को भी) यही प्रार्थना है कि ऐसा सामर्थ्य परमेश्वर हम गुरुकुल को दे। शुभमस्तु। (इस के बाद यजुर्वेद के प्रथमाध्याय का पाठ हुआ उसके उपरान्त)

जैसा कि कुछ मन्त्री जी ने हमें सूचित किया है कि इस समय प्रारम्भिक यज्ञ तथा प्रातः किर्त्या का कार्य पूरा हो चुका है अतः अन्य सब लोग यज्ञ रोप को प्रारंभिक रूप में प्रहण करने के लिये तथा आगे के अपने अन्य सब कार्यों को करने लिये जा सकते हैं और अपने कर्त्तव्य कर्मों में लग सकते हैं, केवल अश्लेष पाठ और यज्ञ करने वाले प्रह्वचारी ठहर कर या आ आ कर बायीं बायीं से यह हवन जारी रखेंगे। पर पूर्णाहुति तो शाम को ६। बजे ही होगी और तभी साय का हवन कृत्य भी होगा। पर अच्छा ही यदि यहाँ से जानें वाले हम सब इसी बीच में जो कुछ अपना अन्य कर्त्तव्य कर्म करें वह सब यज्ञिय भावना में ही करें। खाना पीना, पठन पाठन, कातना या कृषि करना, सफाई करना या खेलना यह सब यज्ञ भावना से करें। निष्काम हो कर फलाकांक्षा रहित, परमेस्वरार्पण बुद्धि से और अतएव स्वाभाविक उल्लास के साथ करें तो आज के दिन हम यज्ञिय जीवन का विशेष अभ्यास करने का जो हम अश्लेष यज्ञ के द्वारा हुआ है उस सुखबसर से लाभ उठा सकेंगे। और तब केवल यह नहीं समझ जायगा कि जिन्होंने यहाँ यज्ञशाला में बैठ कर आहुति डाली है उन्होंने आज १२ घण्टे का अश्लेष यज्ञ किया, किन्तु हम सब ने ही पूरे १० घण्टे का अश्लेष यज्ञ किया है। और एवं यह आज का अभ्यास इस वर्ष भर हमें अधिक से अधिक यज्ञिय जीवन वाला बनाने में सहायक हो सके।

## मैंने अपने बालक को गुरुकुल में क्यों प्रविष्ट कराया ?

आपका लेख गुरुकुल पत्र में पढ़ा जिसमें लिखा था कि संस्कारों को लिखना चाहिए कि उन्होंने अपना बालक गुरुकुल में क्यों प्रवेश कराया। इसके बारे में कुछ विचार लिखता हूँ। जिस वजह से मैंने बालक को गुरुकुल में प्रविष्ट कराया।

अनुमान से संवत् १९५४ की बात है। पूज्य पिता जी गुरुकुल के उत्सव पर गये थे इससे पहले उन्होंने गुरुकुल को सुना जरूर था लेकिन आँखों से नहीं देखा था। इस उत्सव पर पूज्य गांधी जी भी उपस्थित थे जिससे उत्सव की रोभा और भी बढ़ी हुई थी। गुरुकुल भी पहले गांगापार की भूमि में था। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के खेल तथा स्वास्थ्य को देखकर पूज्य पिता जी गुरुकुल की शिक्षा पर मुग्ध हो गये। इसके बाद सन् १९५४ में मैं भी गुरुकुल के उत्सव पर गया। उस वक्त गुरुकुल नई भूमि में आया था। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य तथा पाठविधि देखकर मेरे मन में खयाल हुआ क्या अच्छा होता जो मैं भी गुरुकुल की शिक्षा हासिल करता। इसके बाद मन में संकल्प किया कि कभी घर में पुत्र पैदा होगा तो उसको गुरुकुल में प्रविष्ट कराया जावेगा। इस संकल्प के एक साल बाद घर में पुत्र पैदा हुआ फिर तो मन में दृढ़ संकल्प किया मगर बीच में कई बार संकल्प विकल्प हुए कुछ पिता जी का देहान्त होना, कुछ स्वामी अभयदेव जी का गुरुकुल छोड़ देना—इससे कुछ विचार कच्चे पड़े। लेकिन भगवान को मेरा यह शुभ संकल्प पूरा करना था। आचार्य अभयदेव जी की बाबत सुना गया कि वह पुनः गुरुकुल की बागडोर संभाल लेंगे। इससे मन में फिर दृढ़ संकल्प हो गया। पहले तो पूज्य माता जी बहुत मना करती रहीं फिर पीछे मान गईं। तथा वैशाख संवत् १९६६ में ब्र० रामकुमार को गुरुकुल में प्रवेश करा दिया और सबसे बड़ा विचार जो बालक को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने का था वह यह था कि बालक को जन्मगी जन्मगी बन जाएगी और वह दुनिया में स्वतन्त्रता से रोजी कमा कर स्वतन्त्रता से रहेगा और उसके विचार भी स्वतन्त्र रहेंगे क्योंकि ब्रह्मचर्य ब्रत स्वतन्त्रता की जड़ है। और दूसरा विचार बालक के संबन्ध में यह था कि हम वैसे तो पराधीन हैं ही मगर एक गांव में रहते हुए हम और भी पराधीन हैं क्योंकि हमारी तरफ गांव में रहने वाली कुछक जाति लुप्त भूमि की मालिक है वह गांव में रहने वाली दूसरी जाति को अपना मातहत समझती है। जमींदार लोग ज्यादा जाट राजपूत हैं। वैश्य बगैरह जातियों के लड़के जब स्कूल में पढ़ने जाते हैं तो इन जातियों के लड़के हमारे लड़कों को बहुत ही कम करते हैं जिससे बालक के मेल में बचपन से ही डर बैठ जाता है। और गुलामी का सिक्का बैठ जाता है। गुरुकुल के बच्चे में यह बात नहीं है। वहाँ बालक भाई भाई की तरह रहते हैं। बालक जब बचपन से ही कमजोर होता है और बचपन से ही उसके मन में डर बैठ जाता है तो उसके बड़े

होने पर उसका दिल कमजोर हो जाता है। गुरुकुल में पढ़ने से बालक में यह संस्कार नहीं जमेंगे। यह सोटे विचार आपकी सेवा में लिख दिये जिनसे बालक को गुरुकुल में प्रवेश कराया गया। और मैं ज्यादा विद्वान नहीं हूँ जिससे कि मैं आपकी सेवा में अच्छा निबन्ध बनाकर लिख सकूँ जो कुछ दिल में बात थी वह लिख दी गई है और इस ब्रह्मचारी से छोटे दो बालक और भी हैं। अगर हालत ठीक रही तो उनको भी गुरुकुल में ही प्रवेश कराने का विचार है। बाकी ईश्वर करेगा जो होगा।

आपका  
बनारसीदास आर्य  
विगडाना जि० हिसार

## अफ्रीका में कार्यकर्त्ताओं की

### आवश्यकता

अफ्रीका में जो गुरुकुल के छात्रकाम करते हैं उनके अक्सर पत्र गुरुकुल में आया करते हैं। अभी आर्ये दो तीन पत्रों में जहाँ आचार्य रामदेव जी के निधन पर उन्होंने अपने उद्गार प्रकट किये हैं और गुरुकुलोत्सव की सफलता की कामना करने हुए नवजातकों को बधाई दी है वहाँ अपनी यह इच्छा भी प्रकट की है कि यदि अफ्रीका में कुछ और भी उरसाही छात्रकाम आ सकें तो उत्तम हो।

अभी तक अफ्रीका में श्री पं० सत्यपाल जी, श्री पं० सत्यदेव जी, श्री पं० धर्मेश्वरनाथ जी और श्री पं० रणधीर जी ये चार छात्रकाम आर्यसमाज का कार्य कर रहे हैं। इनमें से श्री पं० सत्यदेव जी यद्यपि रोजगार के तौर पर व्यापार में लग हुए हैं पर वे भी समय के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता हैं। बाकी तीन तो प्रचार या शिक्षा के कार्य में ही पूरे तौर से लगे हुए हैं। पर वहाँ अन्य छात्रकाम कार्यकर्त्ताओं की भी आवश्यकता अनुभव की जा रही है। ऐसे छात्रकों की आवश्यकता है जो प्रचार का कार्य तथा अध्यापन का कार्य भी कर सकने हों या इन दोनों में से किसी कार्य में विशेष प्रवृत्तता रखते हों। अंग्रेजी में निपुण हों तथा परिश्रमी हों। वहाँ पर गुजरात के लोग अधिक बसे हुए हैं अतः गुजराती अध्यापक गुजराती भाषा जानने वाले छात्रकों की सफल होने का अधिक अवसर मिलेगा। विदेश में दूर जाना सबको रुचना नहीं है। इसलिये जो भाई विदेश जाने की और वहाँ काम करने की उमंग रखने हों उनको इस निवेदन पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। यदि कोई इच्छे के लिये मैथिल हों तो कृपया गुरुकुल कांगड़ी में भी मुक्याधिष्ठाला जी को या मुझे शीघ्र सूचित करें।

—अमर

# गुरुकुल

८ वैशाख शुक्रवार १९६७

## आर्यसमाज राजनीति में ?

[ गत सप्ताह के वर्षों के समाचार से ज्ञात होता है कि आर्य-सांख्यिक समाज के प्रधान तथा एक प्रमुख सदस्य वर्षों, महात्मा जी ने मुस्लिम लीग की विभाजन-योजना के विषय में बातचीत करने लगे थे। समाचार पत्रोंय अनुमान यह भी था कि शायद यह चीज आर्यसमाज के राजनीति में प्रवेष्ट करने का किन्हीं है। इस सम्बन्ध में वह ऐसा नहीं है। और इसी विषय को सामयिक समकक्ष इसी पर 'गुरुकुल' के पाठकों के सामने अपने विचार रखेंगे। ]

जब से मनुष्यता ने अपने आप को पशुता से भिन्न, उन्नतर और अधिक विवेक पूर्ण पहचान कर, विशिष्ट सामाजिक संगठन बनाकर अन्त्याय से समाज की रक्षा के निमित्त राज्यदि की व्यवस्था को स्वीकार किया है, तब ही से राष्ट्रनीति या राजनीति को समाज में प्रमुख और प्रशस्त स्थान प्राप्त होना रहा है। सामाजिक जीवन की आधारभूत वस्तु धर्म के साथ भी इसीलिए राजनीति का घनिष्ठ सम्बन्ध अनिवार्य है क्योंकि दोनों—धर्म और राजनीति—उसी सामाजिक जीवन के साथ निकटतया सह-सम्बद्ध हैं। लेकिन धर्म का मुख्यतर अङ्ग राजनीति से सर्वथा प्रथक् है यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा।

वैदिक धर्म में भी उन्नत राजनीति का उल्लेख है, निःसन्देह, और शायद इसीलिए उस तत्कालीन राजनीति को धर्म के अन्त्य अङ्गों के साथ उचित सम्बन्ध में करने और देखने की सूरु और इच्छा बहुत से आर्यभ्रात्यों में उत्पन्न हुई है। यह सूरु और इच्छा हमारी संस्था के जगत्, क्रियारोल और उन्नत्यभिमुख होने का सर्वप्रकारा चिन्ह है, ऐसा बिना किसी संशय या प्रतिवाद की आशंका के कहा जा सकता है।

लेकिन कूदने ने पहले सोच लेना ही बुद्धिमानी है। यद्यपि आर्यसमाज का जीवन एक धार्मिक संस्था की दृष्टि से अति दूरगामी नहीं है फिर भी उनसे से समय में इसकी जो सर्वतोमुखी उन्नति हुई है वह हमारे लिए क्या, किसी भी भारतीय संस्कृति के प्रेमी के लिए मस्तक गौरवोन्नत करने का बाग हा सकती है। जहाँ तक आधुनिक वैज्ञानिक युग का संबन्ध है, आर्यसमाज ने मैकडों और हजरोतों वर्षों से रुद्विप्रस्त और अश्वथिथ्यासमाज-अवशिष्ट पवित्र वैदिक धर्म को तर्कसङ्गत और अतएव वैज्ञानिक आधार देकर संसार के उच्चतम बुद्धिशिल्लों पर प्राचीन ऋषियों की पावन पताका फहराई है। हिन्दू संगठन में आर्यसमाज का काम अद्वितीय है। श्रीरक्षा को आर्यसमाज ने पुनरुद्धारित करके अपने को गौरवमय बनाया है। स्थान २ पर

विषयाश्रम, वनिताश्रम और अनाथाश्रम आदि खोलकर आर्यसमाज ने सामाजिक सुराईयों के प्रति अपनी तीव्र दृष्टि को प्रकाशित कर दिया है। राजशक्ति द्वारा तीव्र गति से किये जाते हुए हिन्दुधर्मों के विधर्मिकरण की गाड़ी में आर्यसमाज ने ही शुद्धि का रोड़ा अटक कर अपना कर्तव्य पूरा किया है। निरन्तर हास को प्राप्त होते हुई भारतवर्ष की अर्धेय सम्पत्ति—गोजाति—की रक्षा में सबसे पहले अपनी सफल आवाज आर्यसमाज ने ही उठाई है। लेकिन इन सबसे बढ़कर अधिक शानदार, उपयोगी और आदर्श कार्य आर्यसमाज ने किया है भारतीय युवकों की भारतीय रक्षा का प्रबन्ध, उनके दिल और दिमाग को भारतीय रखने का उच्चल कार्य, जिसकी पूर्ति के लिए पहले डॉ. पी. वी. कालिङ खोले गये और जिनके असफल हो जाने पर स्थान २ पर गुरुकुलों की स्थापना हुई।

इन सब कार्यों के लिए अतिमात्र धर्मप्रेम और अत्यन्त वीरता की आवश्यकता थी। आर्यसमाज ने उस सब में सफलता पाई। लेकिन यह सफलता एकमात्र दुःखपीत सफलता न थी—यह सफलता मोक्षमात्र ही न थी—इस के साथ एक अभाग्य लेकिन सच्चा तथ्य संयुक्त था और वह यह था कि आर्यसमाज उन सफलताओं को अधिक करने में अपने टुकड़े कर बैठा—निष्क्रिय टुकड़े ही नहीं लेकिन ऐसे कि वे टुकड़े परस्पर बद्धमूल वैर वाले होकर एक दूसरे पर घातक आघात करने लगे।

परिणामतः, इस समय आर्यसमाज की शक्ति विवरी हुई है, इसका सारा बल द्विज भिन्न होकर पड़ा है। आज्ञाताओं की पूर्ति के लिए ही की जानी हुई प्रयत्नशीलता आज दृष्टिगोचर हो रही है, ऋषि के नाम के पूर्ण के पीछे अनेक प्रकार के अवाञ्छनीय व्यक्ति समाज के नैतिक नियमों को ठोकर मार मार कर समाज को अन्दर की तरफ से खोखला कर रहे हैं। आज समाज की मान रक्षा करने वालों का दल सीधे से सीधेतर होना जा रहा है, समाज के प्रमुख नियमों को व्याख्यान्तर द्वारा अनावश्यक सिद्ध किया जा रहा है, समाज के प्रशस्त पुरुषों के पगड़ी की कीमत ठोकरों से लगाई जा रही है।

ऐसी अवस्था में राजनीति में प्रवेश करना आर्यसमाज के अपने लिए कहाँ तक हितकर है? आर्यसमाज में हम तो आज एक भी ऐसा व्यक्तिव नहीं देखते जा आर्यसमाज के बिलर बल को, तितर बितर साम्यम् को एक सूत्रत करके जाति और समाज व देश और धर्म का कल्याण कर सके।

भारतवर्ष में इस समय लोक सत्तागमक शासन-प्रणाली का ही आश्रय लिया गया है। इस प्रणाली में जैसा कि प्रत्येक राजनीति का विशिष्टा जानता है—सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान सुसंगठित दल-बन्धन का है। जहाँ भी संसार में लोकसत्तात्मक प्रणाली आज चल रही है वहाँ ही हम देखेंगे कि दल-बन्धन कितना संगठित और सुपरि-व्याप्त है। लेकिन यह संगठित दलबन्धन कभी भी बिना किसी अत्युच्च व्यक्तिवपूर्ण नेतृत्व के सन्तोषजनक नहीं हो सकता। आज जब हमारे पास एक भी प्रभावशाली नेता नहीं, थोड़े भी अशुद्ध अनुगामी नहीं हम किस मृते

पर यह कोशिश करना चाहते हैं कि राजनीति जैसे छल-प्रपञ्चमय क्षेत्र में अपना प्रवेश प्रारम्भ करें।

वैसे ही हमारा देश अनेक साम्प्रदायिक (या धार्मिक) आधारों वाले राजनीतिक दलों के होने के कारण उसके कड़े फल भोग रहा है। यह निःसन्देह सत्य है कि वर्तमान साम्प्रदायिक राजनीतिक दलों में से किसी एक के भी हट जाने से भारतवर्ष की स्वतन्त्रता बहुत शीघ्र प्रत्यक्ष ही आयगी। ऐसी विषम अवस्था में आर्यसमाज का एक दल रूप में राजनीति में प्रवेश करना हमारे देश के लिए कितना नाशक होगा यह सहज ही कल्पनीय है।

माथ ही धार्मिक आधार पर खड़ी की गई राजनीति का अस्पष्ट स्वरूप हमारे अन्दर भीतरी और अनावश्यक मतभेदों और दुर्भावनाओं का कारण होगा। वेदों के अन्दर किस राजनीति का उल्लेख है इसका निश्चयपूर्वक प्रतिपादन करने का साहस कौन कर सकता है। ऐसे विषयों पर मतभेद होजाना संव्यासात्मक है और यही मतभेद बढ़ते बढ़ते उम रूप धारण कर सकते हैं। एक सर्वश्रेष्ठ नेता के न होने से किसी एक ही निश्चय को मान लेने की प्रवृत्ति अभी तक बहुत कम है। इसलिए इस प्रकार के छोटे-२ लगने वाले मतभेदों का जो अकल्पनीय परिणाम होगा क्या वह वर्तमान दशा से अधिक भयंकर न होगा ?

हमें विश्वास है कि आर्यसमाज आज की दशा में प्रो० इन्द्र जी जैसे राजनीति के परिष्ठित और आर्यसमाज के मान्य नेता को सलाह का निरस्कार नहीं करेगा। अभी आर्यसमाज का कार्यक्षेत्र विस्तीर्ण है, अभी हमने कार्य शुरु ही किया है, सभी कुछ करने को बचा है। फिर क्यों हम अपनी शक्ति की चादर के बाहर अपने पांव पसारने लगे ?

लेकिन इस सबका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि आर्यसमाज अपने धार्मिक और सामाजिक अधिकारों को कुचला जाता हुआ वेस्तता रहेगा। आर्यसमाज किसी को अपने मन्तव्यों का अपमान नहीं करने देगा—हा, उन्हें मानने न मानने के लिये प्रत्येक व्यक्ति अपने में स्वतन्त्र है। आर्यसमाज जामत है वह अपने स्वयंप्रकार के अधिकारों के प्रति जगरूक रहेगा। अपनी आवाज का अधिक और अधिकतर प्रभावशाली बनाना जायगा। कोई आर्यसमाजी तो आर्यसमाज के नियमों के अनुसार भी और ऋषि दयानन्द की व्यवस्था के अनुसार भी राजनीति से बिलकुल अज्ञात रह ही नहीं सकता। वैसे तो कोई भी शिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति अपने को राजनीति प्रेक्षक नहीं बना सकता और फिर आर्यसमाज जैसी धार्मिक संस्था का सदस्य जिसके धर्म और राजनीति में एक घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यह पूछा जा सकता है कि फिर किस प्रकार आर्यसमाज को अपनी आवाज अधिक प्रभावशाली बनानी चाहिए ? हम समझते हैं कि इसका सही तरीका यह नहीं कि आर्यसमाज राजनीति में प्रवेश करे अपितु आर्यसमाज में राजनीति प्रविष्ट हो, प्रत्येक आर्यसमाजी किसी राज-

नीतिक संस्था में अपना स्थान ग्रहण करे और वहां से अपनी 'वैदिक धर्म की जय' की आवाज गंजाए ! आर्यसमाज के व्यक्ति राजनीति के प्रति अपनी उन्मत्तता छोड़ दें और किन्हीं न किसी मांग से कार्य क्षेत्र में प्रविष्ट हों। यही कल्याण का मार्ग है, इसी में देश और जाति का, धर्म और समाज, सत्य और न्याय का भला है।

इसलिए राजनीति में आर्यसमाज को प्रथम दल के रूप में उतारने वाले महातुभाव विना विचारे क्षणिक जोरा बरा इस आत्महत्या के समुद्र पर अपनी बेड़ा न खोलें। अन्यथा जो परिणाम होगा वह एक भयंकर परिणाम होगा, अकल्पनीय और अबाधित परिणाम होगा।

—देवेन्द्रकुमार

## महत्वकांक्षा

( अनुवाद श्री विद्याकांक्षार )

गेटे ने बड़ी सुन्दरता के साथ कहा है कि "मनुष्य का अस्तित्व संस्कृति के लिये है; इस का महत्व नहीं कि वह क्या कमा सकता है ? महत्व तो इसका है कि वह अपनी आन्तरिक पूर्णता को किस सीमा तक पटु करता है।

कीर्ति के सम्बन्ध में, हमें नाम और असलियत में गड़बड़ नहीं डाल देनी चाहिये। केवल याद किया जाना ही कीर्ति नहीं है। दुनिया में कीर्ति और अपयश दोनों हैं; और दुर्भाग्य से कीर्ति के लिये जिनने याद किये जाते हैं, उतने ही अपयश के लिये याद किये जाते हैं; और जिन्हें दोनों के लिये याद किया जाना है, उनकी संख्या भी योद्धी नहीं है।

"उत्तम काम करने हुए असिद्ध रहना, बुरे कामों के कारण इतिहास में प्रसिद्ध होने की अपेक्षा बहुत अच्छी चीज़ है। प्रसिद्ध हिराडियस ली की अपेक्षा, एक फेनाम (ऐसा देश जिसके निवासी अपनी प्रतिष्ठा को सदा पूरा करने हैं) ली, जा बिल्कुल अज्ञात है, बड़े मुक्त से रहनी है।

अपनी असफलता और मृत्यु के कारण भी उतने ही राजा और मनापात स्मरण किये जाते हैं, जिनने अपनी सफलताओं और विजयों के लिये याद किये जाते हैं। रामायण का नायक राम था, लेकिन रावण भी उतना ही प्रसिद्ध है। सिकन्दर का साम्राज्य उसका मृत्यु के बाद क्षिप्र भिन्न होगया नेपालियन एक प्रतिभाशाली मनुष्य था, यद्यपि वह नायक नहीं बन सका। उसकी सब विजयों का क्या परिणाम हुआ ? उसकी सब विजय, उसके धन्दूकों के घुप की तरह से, जल्दी ही अट्ट होंगे; और वह फ्रांस का, जैसा उसके प्रादुर्भाव से पहिले था, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक गरीब, कमतर और छोटा छोड़ कर मरा था। उसकी प्रतिमा का साथी परिणाम, कोई ऐनिक विजय नहीं, नैपोलियन का कानून है।

किसी न्याय या आम बलिदान के कारण याद किये जाना, कीर्ति की अधिक निश्चित और बरा पूर्ण उपाधि

है। लिथोनिडस का आत्म बलिदान और रेगुलस का पवित्र विश्वास ही इतिहास के गौरवमय पृष्ठ हैं।

कुछ उदाहरणों में जब किसी स्थान के नाम पर मनुष्य का नाम पड़ता है—मनुष्य तो याद किये जाते हैं, लेकिन उस मूल स्थान को लोग भूल जाते हैं। जब हम प्लेस्ट्रिना या पेरु जिनो, नंलसन या वेल्लिडून और न्यूटन या ड्राविन का जिक्र करते हैं, तो इन शहरों का किसे स्मरण होता है? हम केवल मनुष्य के सम्बन्ध में सोच रहे होते हैं।

हमारे पास शेषसपिपर या प्लेटो की बहुत ही अपर्याप्त जीवनिया हैं, लेकिन फिर भी हम उनके सम्बन्ध में बहुत जानते हैं।

गंदे को अपनी शतावृत्ती की आत्मा कहा जाता था। राजनीतियों तथा सेनापतियों का अपने जीवन में बहुत आदर सत्कार होता है। उनकी एक २ प्रगति और शब्द समाचार पत्रों में प्रकाशित होते हैं। लेकिन एक दार्शनिक या कवि की स्थिति अशुभक स्थायी होती है।

बड़े सर्वश्रेष्ठ ने इसी दृष्टि से कुछ अपवादों को छोड़ कर कवियों के स्मारक बनाने का विरोध किया है। राज-निर्णयों की बात यह कहता है, दूसरी है, उनके स्मारक बनना या स्मृति मनाना ठीक है, क्योंकि अशुभता जनता उनका याद रखेगी, यह कुछ कठिन प्रतीत होता है, लेकिन दार्शनिक और कवि अपनी कृतियों के द्वारा सदा जीवित रहते हैं।

इस संसार के सच्चे विजेता तो विचारक हैं, सेनापति नहीं। लिक्नडर और अकबर नहीं बरिदक कन्फ्यू-शस, और बुद्ध या अरस्तू और अकलातून या ईसा और राम। वे शासक या राजे महाराज, जिन्होंने हमारा पूज्य पर राज्य किया था, अज्ञानता या विद्वृत्ति के अभाव ससुद्र में डूब चुके हैं, उनको लोग भूल गये क्योंकि उन्होंने ऐसा पवित्र संदेश नहीं दिया था जो उनको नया जीवन दे सकता। अथवा केवल उनको याद किया जाता है जिन्होंने—जैसे सुबोधन और पाहलेंट—अपना सम्बन्ध उच्च आत्माओं में जोड़ लिया था।

ऐसे मनुष्यों का जीवन छोटी २ जीवितियों में बांध कर नहीं रक्खा जा सकता। वे अपनी पीढ़ी में ही नहीं, अपितु सदा जीवित रहते हैं। जब हम दक्षिण अफ्रीका के युग के विषय में जान करते हैं, तब हम शेषसपिपर, बंजन और स्पेन्सर के सम्बन्ध में सोचते हैं। हम राज्य के मन्त्रियों को—एक दो अपवाद छोड़कर—शास्य हों कभी याद करने होंगे, और स्वयं बंजन को दार्शनिक के रूप में अधिक याद किया जाता है, जब कि वह एक सफल न्यायाधीश भी था।

सेनापतियों और राजनीतिकों की कीर्ति का वास्तविक कारण क्या है? उनका सम्मान उनके कामों के कारण था, लेकिन उन्हें भी कवियों और ऐतिहासिकों का कुण्ड होना चाहिये, क्योंकि उन्होंने ही उनकी गौरवमयी स्मृति और सदाचरण के उदाहरण हमारे सामने पेश किये हैं।

मीन्टोरोज़ ने दोनों का बड़ा सुखद सम्मिश्रण किया है, जब वह "मेरी प्यारी और एक मात्र प्रेमिका" में प्रतिष्ठा करता है—

"मैं तुम्हें अपनी लेखिनी से विस्थापित करूँगा और अपनी तलवार से गरिमामय बनाऊँगा।"

यह एक ध्यान देने योग्य और उरताहृदय बात है कि बहुत सी बड़ी २ हस्तियाँ बहुत नीचे उर्से से उठी हैं, और उन्होंने उन आवासियों और बाधाओं पर जो आगम्य और अजेय मालूम होती थीं—बड़ी युगमत्ता से विजय पाई है। इतना ही नहीं, कभी २ अज्ञातता निश्चित ज्ञान न होने के कारण ही—आज सात शहरों पर उसकी जय भूमि होने का दावा किया जाता है।

केवल वैज्ञानिकों की ही हो। वे एक लुहार का लड़का था। याद वा पिता बर्कडे था। मैकलिन का पिता चर्बी से मोम बसियाँ बनाया करता था। डैरटन का पिता झुलाहे का काम करता था। फ्रानहाफर, लिडुकियो में शीशा लगाने वाले का लड़का था। जार्ज स्टिफनसन, कायले के जहाज में काम करता था। लैपलेस का पिता एक मामूली किसान और कैरेडो का पिता लुहार था। डेवी, एक अस्त्र का सहायक था। और कीस्टोन गाने बजाने के क्रीडार बनाया करता था। विरमिडून का पिता बोल्डन, बदन बनाने वाले का बंदा था। मैलेसिओ, केपलर, स्पेन्जर, न्यूविस्कर और सर डब्ल्यू हर्शल—सब के माता पिता बड़े गरीब थे।

इसके अतिरिक्त, कितनी दुःखदायक बात है कि हम अपने बड़े २ उपकार करने वालों का तो नाम तक नहीं जानते हैं। आग को सुरक्षित रखने का, कौन आविष्कारक था? अक्षरों का आविष्कार किसने किया? और कैडमस ने केवल नाम है।

आधुनिक उन्नति भी इतनी धीरे २ और मित्र २ तरीकों से हा रही है, कि बहुत थोड़े आविष्कारों के सम्बन्ध में ही आंशिक या पूर्ण तौर से कहा जा सकता है कि इस का आविष्कारक अमुक मनुष्य है।

कॉलम्बस को अमेरिका का खोजने वाला कहा जाता है, और यह है भी ठाक, लेकिन उत्तरीय मनुष्य, वहाँ उससे पहले पहुँचा था।

हम, अंग्रेज, अपने वैश्ववासियों पर अस्तिमान करने का अधिकार रखते हैं। मानवीय विचार को उन्नति का इतिहास हम और हैमिन्टन, बंजन और होल्स, लाक और बर्कले के नामों के बिना अधूरा रहूँगा। न्यूटन गुलताकबंध के साथ जुड़ा हुआ है। पंडम स्मिथ का राजनीतिक अर्थशास्त्र प्रसिद्ध है।

हर्श और हुस्सेर इन जैलो ने हमारे इतिहास का निर्माण किया है, और हमारा सम्प्रतियों को परिचयित किया है। यद्यपि अपने जीवन काल में इनका महत्त्व, अपने वैश्ववासियों की दृष्टि में, अपेक्षया कम था। लेकिन अन्त में वे अजेय शक्ति बन गये, और अब उनकी गरिमामय स्मृति मनाई जाती है।

## 'गुरुकुल' का नव वर्ष

पाठकों को यह जानकर अत्यन्त हर्ष होगा कि उनका प्रिय पत्र 'गुरुकुल' अब अपनी आयु के चतुर्थ वर्ष को समाप्त कर पांचवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। अपने नव वर्ष के प्रारम्भ के साथ २ गुरुकुल अपने समस्त पाठकों का अभिनन्दन करता है।

'गुरुकुल' ने यथारुचि पाठकों की रुचि को तथा अपने उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए सदा उनको सेवा करने का प्रयत्न किया है। 'गुरुकुल' ने आर्यसमाज की कितनी सेवा की है यह किसी से छिपा नहीं है। गुरुकुल पत्र ने इन ४ वर्षों में निरन्तर उन्नति की है, इसकी लोक-प्रियता का प्रमाण यही है कि इसकी माहक संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है।

हम मानते हैं कि इसमें बहुत सी त्रुटियाँ हैं, हम इस बात का विशेष प्रयत्न भा कर रहे हैं कि ये त्रुटियाँ आगे से न रहें। हमें आशा है कि हम नव वर्ष के साथ साथ हम इसको पाठकों के सामने और अधिक अच्छे रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे।

हम पाठकों से आशा करेंगे कि वे भी समय २ पर अपने इस पत्र की त्रुटियों का ध्यान दिलाते रहेंगे जिससे यह और अधिक उन्नत हो सके।

पाठकों को यह बतलाने हुए हमको हर्ष होता है कि उनकी इच्छा के अनुसार अब से प्रत्येक अंक में भी आचार्य अभयदेव जी का एक लेख अवश्य रहा करेगा।

अन्त में फिर अपने पाठकों के कल्याण की कामना करता हुआ—

सम्पादक

## गुरुकुल समाचार

३० विष्णुमित्र १५ श्रेणी टौनिसल, वारेन्ड्र १५ मलेरियावर, जितेन्द्र १५ मलेरिया वर, देवेन्द्र (अम्बाला) १५ मलेरिया वर, जगदीश १५ श्लेष वर, दीनबन्धु २५ श्लेष वर, वेदवत ३५ श्लेष वर, सहदेव १५ खसरा, रामप्रकाश १५ खसरा, भगवदत्त १५ खसरा, धर्मपाल १५ खसरा, रघुनाथ २५ मलेरिया, श्यामशिवाव १५ श्रेणी मलेरिया।

गत सप्ताह ऊपरलिखित ब्रह्मचारी रोगी हुए थे। अब प्रायः सब स्वस्थ हैं। ३० धर्मपाल, भगवदत्त तथा रघुनाथ को अभी वर है। आशा है कि २,३ दिन में वे भी स्वस्थ हो जावेंगे।

इन दिनों गुरुकुल में श्रुतु की विषमता अपना प्रभाव दिखा रही है। दिन में व्यक्तुल कर देने वाली भीषण गमा पड़ती है और रात्रि के अन्तिम प्रहर में शरीर को सिङ्कुड़ा देने वाली दो कम्बलों की अच्छा सर्वा।

श्रुतु की इस विषमता का प्रभाव ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य पर भी पड़ा है, फिर भी आसपास के इलाकों की अपेक्षा यहाँ का स्वास्थ्य-बृत्त समीपजनक है।

रामनवमी:—हम सप्ताह की विशेष बात रामनवमी का त्योहार था। श्री आचार्य अभयदेव जी के महापतित्व में सभी की गई जिसमें मान्य उपाध्यायशुक्ल तथा ब्रह्म-चारियों ने मयादा पुरुषोत्तम राम के प्रति करने भाव भरी श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पण की। श्री आचार्य जी ने बताया कि राम के तीन त्योहार आते हैं जिनमें रामनवमी के त्योहार का हमें आध्यात्मिक दृष्टि से मानना चाहिए, आज के दिन हमें अपने हृदयों में राम का भावना को जन्म देना चाहिये, तभी हमारा सच्चे अर्थों में रामनवमी का त्योहार मनाया होगा।

इस सप्ताह की यह भी विशेषता है कि—आचार्य श्री जुगल किशोर जी का—देश की वक्त मान दशा— इस विषय पर व्याख्यान हुआ। आप ने बताया कि हम को किस प्रकार इन गम्भीर परिस्थितियों का मुकाबला करने हुए भारत की स्वतंत्रता और उसकी अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहिए।

साहित्य परिषत् की कार्यकारिणी के लिए ब्र० रामदेव तथा ब्र० धर्मेश्वर का सर्वसन्मति से निर्वाचन हुआ है। हम दोनों बन्धुओं को उनकी इस सफलता पर हार्दिक बधाई देने हैं।

## गुरुकुल कांगड़ी की हौकी टीम की विजय

बाइटेन कप हौकी टूर्नामेंट में

१३ अप्रैल को गुरुकुल का हौकी का 'अ' दल कलकत्ते में होने वाले बाइटेन कप टूर्नामेंट में भाग लेने गया था। वहाँ से निम्न समाचार प्राप्त हुआ है—

कलकत्ते में १६ अप्रैल की शाम को गुरुकुल दल का दलकत्ता कूटवाल क्लब से मैच हुआ। मैच शुरू होने से पहले ही दर्शक गैलरी भर गई थी। गुरुकुल दल को नंगे पैर तथा सादे व श्वेत खदर के वस्त्रों में देखकर जनता हैरान थी। एक घण्टे तक तो किसी भा और गोल नहीं हो सका क्योंकि दोनों पार्टियाँ अन्त तक डटकर खेलती रहीं। गुरुकुल दल का खेल आक्रमणात्मक थी तो कलकत्ता वाले अन्त तक अपना बचाव ही करते रहे। खेल समाप्त होने पर अतिरिक्त समय दिया गया। इस समय के पूर्वार्द्ध में ही गुरुकुल के दल ने एक गोल कलकत्ता वालों पर कर दिया। इसके बाद खेल के उत्तरार्द्ध में कलकत्ता वालों के अनेक प्रयत्नों के होने पर भी गोल न उतर सका। इस प्रकार खेल के परिणाम स्वल्प गुरुकुल का हौकी दल एक गोल से विजयी रहा।

गुरुकुल दल के खिलाड़ियों के नाम निम्न हैं— विद्यारत्न, योगेश्वर, श्री गणपति जी, शंकर, अकान्त, विद्यानन्द, श्री हरिवंश जी, श्री हरिप्रकाश जी, श्री बलबीर जी, दिलीप, केदल, बलराम, महेश्वर।

इनका अगला मैच २२ अप्रैल को होगा।

स्वतिवर्धक

ब्राह्मी बूटी

॥॥ सेर

सुगन्धित

इचन सामग्री

॥॥ सेर

गर्मियों में

एक बार जरूर आजमाइए

# गुरुकुल कांगड़ी फार्मैसी का प्रसिद्ध

भीम  
सेनी  
सुरमा

आंखों से पानी बहना, बुजली झुकरे सुर्ती,  
जाला व बुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार  
से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुल आंखों में लगाने से  
निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ मारा ॥२॥ १ तो० ३॥

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन ज्ञान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग  
तरोताजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, आंखों  
में जलन आदि रोगों में तुरन्त आराम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीरी

## गुरुकुल फार्मैसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहायनपुर )

आंच {  
छाहौर—इस्पताल रोड  
लखनऊ—भीरामरोड  
देहली—चांदनी चौक  
पटना—मछुआ टोली, बांकीपुर

### भीमसेनी इतमंजन

आंखों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है  
मूल्य ॥॥ शीरी, ३ शी० १॥

### सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

### सुपारी पाक

बच्चों के जस्टियन रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।  
मूल्य १॥ पाक



# गुरुकुल

एक प्रति रु. मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]  
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वार्षिक मूल्य २॥)

पृष्ठ ५ ।

गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १२ वैशाख १९६७, २६ अप्रैल १९४०

[ संख्या २ ]

## नपुंसक ज्ञान और निर्वीर्य भावावेश

[ श्री आचार्य अमर देव जी का एक भाषण ]

हम अभी राष्ट्रीय समाज मना कर चुके हैं। देश की वर्तमान स्थिति पर कई चर्चाएँ और उपदेश सुन चुके हैं। इस संबन्ध में तुम ब्रह्मचारियों को और विशेषतः शिक्षा की दृष्टि से तुम को जो कुछ कहने की इच्छा होती है उस का संकेत आज के मेरे कथन के शीर्षक से तुम को शायद मिल जायगा। हम बहुत काल से पराधीन हैं। और लगभग २०, ३० बरस से हम अपनी पराधीनता को काफी मात्रा में अनुभव भी करने लगे हैं। फिर भी हम पराधीनता से मुक्ति नहीं पा सके हैं। इसका क्या कारण है ? इस के जिस कारण की तरफ मैं तुम्हारा ध्यान खींचना चाहता हूँ वह यह है कि हमारे ज्ञान में तेज नहीं है और हमारे भावावेशों में ( Emotions ) में वीर्य नहीं है। और यह त्रुटि विशेषतया हम पढ़े लिखे लोगों में है। आम जनता का अन्तःकरण इतना विकृत हुआ हुआ नहीं है। उनके अन्दर जो कमी है वह और प्रकार की कमी है। उन्हें यदि ठीक ज्ञान मिल जाय, उन के भाव यदि जागृत किये जाय तो वे कुछ न कुछ फल अवश्य लाते हैं। पर हम लोग बहुत ज्ञान की चर्चा करते हैं, देश भक्ति के गीत गा कर अपने भावों को उन्मत्त करते हैं पर फिर भी हम जहाँ के तहाँ ही रहते हैं, बल्कि अर्थियों के बदन में रोड़ा बनते हैं। इसका कारण यह है कि हमारे विदेशी शासकों ने जो हमारा मनःस्मोहन कर रखा है उसके सब से बड़े शिकार हम पढ़े लिखे लोग ही हुए हैं। 'जादू वह है जो सिर पर चढ़ कर सोते।' वह जादू ही बोल रहा होता है जब कि हम खड़े होकर अपने सेवापरायण सच्चे राष्ट्र सेवकों की निरर्थक टीका टिप्पणी कर रहे होते हैं पर स्वयं कुछ भी करना नहीं चाहते होते, जब हम देश विघातक विचारों को बढ़ा रहे हैं और साथ ही अपने आप को

पूर्ण देशभक्त समझ रहे होते हैं, जब हम अपने स्वराज्य की आधारभूत भारतीय संस्कृति पर घातक प्रहार कर रहे होते हैं पर साथ ही अपने को बुद्धिमान और विद्वान समझ रहे होते हैं।

## विचार की क्रिया में परिणति कैसे होती है

हम क्या हैं ? पतिले तो अन्नमय स्थूल शरीर हम हैं जिस से कि हम सब स्थूल कार्य करते हैं। पर यदि इस में से प्राण निकल जाय तो यह शरीर केवल जला देने के लायक ही रह जाता है, तो शरीर के बाद हम प्राण हैं जो कि हमारा जीवन रूप है। उस प्राण का ही सूक्ष्म भाग है जिसमें कि भाव उत्पन्न होते हैं। और हम इन अच्छे बुरे भावों से प्रेरित हो कर ही नाना विध कर्म करते हैं। पर उस के भी मूल में हमारा मन है जिस के कारण हम मनुष्य हैं। इन मन और प्राण के निःसंख्य हो जाने की ही आज मैं बात कर रहा हूँ। असल में हमारा मन और कुछ नहीं है, वह जगद्-व्यापक मन का एक वैयक्तिक रूप है। हमारा प्राण भी और कुछ नहीं है वह जगद्-व्यापक प्राण ( सूत्रात्मा ) में पड़ो एक प्रस्थि के समान है। उस दृष्टि से देखें तो हम बहुत कुछ जगद्-व्यापी शक्तियों से चलाये हुए ही चब रहे होते हैं, अज्ञानवशा ही हम यह समझते हैं कि हम यह कर रहे हैं, वह कर रहे हैं। उस अज्ञान से परे हो कर देखें तो हमें मासूम होगा कि हम सत्य को क्रिया में परिणत करने के लिये एक उत्तम यन्त्र रूप हैं। हमें परदेशरत्न ने इसलिये बताया है। सत्य आत्मा में रहता है। जब कोई सत्य स्थूल रूप में व्यक्त होना चाहता है तो हमारा मन उसको आकार प्रदान करता है, उसे कल्पित करता है और हमारे प्राण-गत भाव उस में जीवन डाल देते हैं और फिर स्थूल प्रकृति ( अन्न ) उसे स्थूल रूप में ले आती है। इस तरह यन्त्र काम करता है। उदाहरण के लिये, स्वस्थ पक सत्य है। क्योंकि अन्न स्वस्थान्य में ही रहना चाहता है और स्वस्थ स्थापित करने के लिये सतत प्रयत्नशील रहता है। यदि हमारा मन विकृत नहीं है और अपनी शक्ति को

नहीं सो बैठता है तो वह इस सत्य को व्यक्त करने के लिये स्वराज्य की सभी कल्पना करेगा। हमारा स्वराज्य क्या होना चाहिये यह उस के सम्मुख स्पष्ट रूप से आया हुआ होगा। उस के साथ २ प्राण यदि शान्त हैं तो उस के अन्दर स्वराज्य पाने के लिये सब भाव उत्पन्न होंगे, ऊँचे और बलवान् भाववैरा आर्येंगे। और इस अवस्था में आत्मा का स्वराज्य का संकल्प बिना पूरे हुए नहीं रह सकता। पर अभी यह हो नहीं रहा है, क्योंकि मन और प्राण ठीक तरह काम नहीं कर रहे हैं। इसी तरह देश को आत्मा से अपने आपको एक करने वाले यह भी अनुभव कर सकते हैं कि भारत की अन्तरात्मा भारतीय स्वराज्य को शूल रूप में व्यक्त हुआ देखना चाहती है पर फिर भी वह अभी तक व्यक्त नहीं हो सका तो यह भारतीय मन और प्राण के कलुषित और असमर्थ होने के कारण है।

कुछ दिन हुए हमारे यहाँ 'सत्यं साध्यं साधनं वा' इस विषय पर संस्कृत में वाद विवाद हुआ था। असल में सत्य साध्य भी है और साधन भी। सदा सत्य को ही हम ने सिद्ध करना है इस रूप में सत्य साध्य है। पर साध्य तो दूर की चीज है। जो हमारे नजदीक की चीज है और हमारे बस की है वह तो साधन ही है। वह साधन यदि सत्य होगा तो उस से सत्य साध्य ही सिद्ध होगा। इसलिये हमें आदर्श स्वरूप, आमुक्त सत्य साध्य को सामने तो, अवश्य रखना चाहिये और उसी पर अद्धा पूर्वक लक्ष्य बांधे रखना चाहिये, पर बैसा करते हुए सच्चे साधनों को निरन्तर पकड़े रखना चाहिये, उनका झालम्बन नहीं छोड़ना चाहिये। तब सत्य अवश्य ही और जल्दी से जल्दी क्रिया रूप में सिद्ध होगा।

### गांधी जी का अग्नीषोमीय मार्ग

गांधी जी अपने जीवन मार्ग को सत्याग्रह नाम से पुकारते हैं। यह ठीक ही है। क्योंकि उनको मुख्य बात मान्य ही है। जिस पर कि वे सतत आग्रह रखना चाहते हैं। पर इस सत्य का आग्रह करने से ही उन्हें जो दूसरी चीज मिली है उसे वे अहिंसा नाम से पुकारते हैं। वह अहिंसा सत्य के बाढ़ की वस्तु है। उन्होंने देखा कि सत्य का आग्रह अहिंसा के बिना नहीं चल सकता। अतः जो लोग हिंसा अहिंसा के शक्ति भण्डों में पकृते हैं उन के लिये उनको उलफन को हटाने के लिये मैं यह कहना चाहता हूँ कि गांधी जी का मार्ग अग्नीषोमीय साधना का मार्ग है। बहुत दिन हुए मैं ने अलंकार में 'अग्नीषोमीय साधना' इस शीर्षक से एक लेख लिखा था। मुझे इस तरह विचार करना प्रिय लगता है कि जैसे पुराने समय में किसी असुर का संहार करने के लिये तप या यज्ञ द्वारा देवताओं को या देवताओं की तरफ से किन्हीं दिव्य पुरुषों को कोई दिव्य हथियार मिलते थे वैसे ही याने आज साम्राज्यवाद, पूंजीवाद आदि (जो पश्चिमी मध्यता की माया से जन्मे हैं) असुरों का संहार करने के लिये गांधी जी को तपस्या से हमारे देश को एक

अग्नीषोमीय वज्र मिला है जिस के द्वारा उपर्युक्त सब असुरों का संहार कर हमें सच्चे भारतीय स्वराज्य की स्थापना करनी है।

इसका उपाय अग्नि और सोम की उपासना है। हम में अग्नि की तेजस्विता भी चाहिये और सोम का शान्ति भी। गांधी जी से पढ़िते के लोग सभारण्यता राजनिति के सम्बन्ध में शान्ति या अहिंसा को चरितार्थ करने का अर्थ यही समझते थे कि "हमें कुछ नहीं करना है। जो कुछ है वह ठीक है। स्वराज्य नहीं है तो न सही।" पर गांधी जी के अर्थों में यह अहिंसा नहीं है। यह तो मृत्यु की शान्ति है। उन की अहिंसा तो एक जीवित जलपुत वस्तु है—एक शक्ति है। उन का अहिंसा वह शान्ति है जो अग्नि के साथ जन्मी है। यदि हम में संकल्प की अग्नि है और यह स्वराज्य स्थापित करने के हृदय संकल्प की अग्नि शान्त क विस्तृत प्रेममय आधार पर जल रही है तो यह अजेय वस्तु है। इस वज्र के सामने कोई शक्ति टिक नहीं सकती। इस के द्वारा सफलता अनिवार्य है।

आचार्य जुगल किशोर जी ने कल कहा था कि गांधी जी की क्रान्ति विकासात्मिक है (evolutionary revolution है)। वह ठीक है। पर मैं दूसरे शब्दों में यह कहूँगा कि गांधी जी का मार्ग स्वभाविक परिपाक होने का मार्ग है; और यह परिपाक अग्नि और सोम की प्रक्रिया द्वारा होता है। हमें स्वराज्य हमारे आत्म के संकल्प रूपी बाज से परिपाक हुए फल के तौर पर ही प्राप्त होगा, और कहीं से नहीं आ टपकेगा। जब तक कि फल पक कर तैयार नहीं हो जाता तब तक उसके पाने की जल्दी करना निरर्थक है। जल्दी करने से कुछ और पोत्र मिलेगी, परिपाक फल नहीं मिलेगा। अतः हमें धैर्य से अपने अन्दर पूर्ण स्वराज्य के फल को परिपाक करने का प्रयत्न सतत करना चाहिये। इधर उधर नहीं देखना चाहिये और बीच में ही पत्तों, फूलों कोपलों या कच्चे फलों को तोड़ने की नादानो भी नहीं करना चाहिये। बिना पके स्वराज्य नहीं स्थापित होगा। और वह परिपाक हमने ही करना है। अंग्रेजों का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। वह अंग्रेजों के देने और हमारे लेने की चीज नहीं है। हमने ही अपने देश अतिक के बीज को विकसित करके उसे प्राप्त करना है। यह हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और इस विकास में की प्रक्रिया अग्निषोमीय प्रक्रिया है यह भी समझ लेना चाहिये।

### परिपाक

भोजन का परिपाक अग्नि और सोम के द्वारा होता है। मैं कई वर्षों तक अपना भोजन अपने आप पकाता रहा हूँ। उन दिनों मैं अग्नि और सोम का लाला देखा करता था। भोजन पकाने में आग अग्नि होती है और पानी सोमरस होता है। रोटी के लिये भाँ, आटे में पानी डाल कर गूँबा जाता है और फिर आग के द्वारा पकाया जाता है। यदि पानी न हो तो अग्नि का ताप से रोटी जल जाती है। दाल, राफ, चावल—ये सब चीजें पानी और अग्नि का समतलपुत्र

क्रिया के द्वारा पकाई जाती हैं। अन्न केवल अग्नि में रख दिया जाय तो वह जल जायगा, यदि केवल पानी में रख दिया जाय तो वह सब जायगा, दोनों अवस्थाओं में वह पकेगा नहीं, गांधी जी भी अग्नि और सोम के द्वारा भारत को स्वराज्य के रूप में पकाना चाहते हैं। एक तरफ देशभक्ति की आग हम लोगों में जलाते हैं और दूसरी तरफ अहिंसा की शान्ति को भी कायम रखना चाहते हैं न हम हिंसा के बशोभूत होकर जल भरें और न गुलामी में पड़े सड़ते रहें; दोनों को ममता द्वारा स्वराज्य-अवस्था में परिपक्वया विकसित हो जाय। हमारी स्थायीन होने की इच्छा का जब इस प्रकार ठीक रूप से परिपाक हो जायगा तब हमें कोई गुलाम नहीं रख सकेगा, न अग्नि और न जर्मनी, न कोई और। सन् १९२०, २१ में, और फिर १९३० ३१ में देश भक्ति की अग्नि को विशेष रूप से जलाकर उद्दिष्टि भारत वर्ष को गर्म किया है और अहिंसा का सोम रस हमारे अन्दर डाला और दोनों वाग् देखा है कि हम कुछ कुछ तो पके हैं परन्तु पूर्ण स्वराज्य की अवस्था से अभी दूर है। अब फिर सन् १९४०—४१ में विशेष रूप से गर्म होने का समय आया दोखता है। क्या हमारा भी पूरा परिपाक नहीं हो पायेगा? अभी तो यदा दोखता है कि हममें न तो काफी अग्नि है और न काफी सोम। हमारा मनः सकल्प जावबल्यमान नहीं है। हमारे भावधारों में चौर्य नहीं आया है (बाहर का जल (आप) देवता हमारे अन्दर दीर्घ (रेतः) बनकर आया है, यह उप-नेपथ्य बचन यहाँ स्मरण करना चाहिये)। गांधी-जी ठीक कहते हैं कि जब तक शान्ति का व्यापक आधार तैयार नहीं हो जाता है तब तक जलाई हुई अग्नि अपने आपको या अपनी वस्तुओं को ही जलाने लगती है। एक बार मैंने पालक का शाक बनाया था। पालक के पत्तों में वैसे ही पानी बहुत मात्रा में होना है इसलिये उसमें बहुत थोड़ा पानी डाला। कुछ देर बाद कुछ और काम करते हुए मुझे पालक के जलने की गन्ध आई और मैं दौड़ कर आया, बटलोहा में और पाना डाला और आग म ओ पाना डालकर उस कम किया। ता मुझे चौरा चोरी काण्ड पर मविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द करने की घटना याद आ गयी भारत वार्सा वैसे ही ठण्डे, पानी वाले या शान्ति प्रिय समझे जाते हैं पर वे भी जरा सी अमावश्यानी से मेरी पालक को तरह जलने लगते हैं यह भ्रमर्र में आया इसलिये देश को स्वराज्य फल के लिये अन्न धार्मिक प्रक्रिया द्वारा धीमे धीमे ही पकते थे। व्यर्थ में जल्दा मत बचाओ। यहाँ मार्ग सच्चा होने से सब से छोटा है इसमें विश्वास रखो।

यह ठीक है कि यदि जल मरने और गुलामी में सड़ने में से ही किसी एक चीज का चुनाव करना हो तो जल मरना अच्छा है। इसो लिये गांधी जी कहा करते हैं कि कायरता की अपेक्षा तो अहिंसा भी अच्छी है। जब गांधी जी पहली बार छः साल के ब्रिजे जेल भेजे गये थे उस समय उन्होंने अपना दोष स्वीकार करते हुए यह कहा था कि मैं जानता था कि मैं आग से खेल रहा हूँ। आम जनता में देश भक्ति की, स्वराज्य की आकांक्षा की आग

जलाना स्वतरे से वाली नहीं है मैं कोशिश कर रहा था कि अहिंसा के द्वारा यह अग्नि जीवनदायक ठीक रूप में ही जले, विकृत हो कर नाशकारी न हो जाय। पर गुलामी में रतने का अपेक्षा इस स्वतरे को उठाना भी ठीक ही था।

## हम अग्निरूप हैं

हयन में जो हम पवित्र अग्नि लगाते हैं उसे भी हम अग्निने अनुमत्य स्व इत्यादि मंत्रों द्वारा चाँगी तरफ जल में परिवर्तित कर देते हैं। इससे भी हम अपनी राष्ट्रीय उदधान की प्रक्रिया को प्रति दिन स्मरण कर सकते हैं। हमें जल से परिवर्तित अग्नि बनना चाहिये शान्ति का वातावरण रक्षते हुए हम देश भक्ति की अग्नि से जल रहे हों। हँसो तो किसी भी चीज की उड़ा जा सकता है पर जब हम हँसी उड़ाने हुए यह कहते हैं कि "जब शत्रु हमारे देश पर तोप बन्दूकों से आक्रमण करेंगे तो ये अहिंसा वाले अपने हाथ बांध कर उन के माने खड़े हो जायेंगे।" तब वे यह भूल जाते हैं कि इस तरह खड़े होने वाले लोग अन्नरूप होंगे। जल में परिवर्तित होने के कारण हम किसी को अपने ऊपर आक्रमण करने के लिये ललचायेंगे नहीं, पर फिर भी यदि कोई हमारे अन्दर आ लुप्तना तो उसका बहो हाज होगा जैसा कि न समझने के कारण अग्नि में अपना हाथ दे देने वाले किसी बालक का होना है। यह हयन कुराड में जलने वाली अग्नि किसी पर तोप बन्दूक से आक्रमण नहीं करती उस पर आक्रमण करने वाले को भी वह तब तक कुछ नहीं कहती जब तक वह आक्रान्ता बस्तुनः उसके अन्दर आकर उसके काम में—अग्नि के काम में—हस्तक्षेप नहीं करता। इसी तरह यदि हम देशभक्ति में प्रदीप्त हुए हुए हैं तो एक तो हमारे तेज को जानने वाले को हमारे पर अक्रमण करने का साहस ही नहीं होगा और यदि होगा तो वह हमारे काम में दखल करने पर यहाँ से चले जाने का वाचित होगा। यदि हम सबभुव एक जीवित जाग्रत गुरु हैं, हमारे सहयोग के बिना हम पर कौन शासन कर सकता है, हमारे काम में दखल ही कैसे कर सकता है? असला बात यह है कि हम अग्नि रूप नहीं हुए हैं, पके नहीं हैं। इसलिये हमारा निहत्य लड़ने होना हास्यास्पद बात बननी है। जरा कल्पना कीजिय जो अपने स्वतन्त्र्य रक्षा के लिये प्राणपण से तैयार हैं उस प्रकार के गांधी जी जैसे बहुत से भारत वासियों का आक्रमण के मुकामिल में निहत्य लड़ने का अपने देशवासियों पर, परदेशियों पर क्या असर होगा? पर यह तो मुख्यतया जल में परिवर्तित होने का असर है। अग्निरूप होने का असर तब होगा जब हमारे तेज के कारण प्रीर असहयोग के कारण आक्रमणकारी को हमारे अन्दर आकर भी आगना पड़ना।

और सत्याग्रह तो आत्मशक्ति का नाम है। वह बहुत से रूपों में प्रकट होनी है। असहयोग, भद्रअवज्ञा, फग्न देना, पशु बल को अस्वीकार करना आदि उसके कुछ रूप हैं। सत्याग्रह के अन्तही तरह को बिना जाने उमके [ शीघ्र प्रुठ ६ पर ]

# गुरुकुल

१५ वैशाख शुक्रवार १९९७

## तप की आवश्यकता—

[डॉ. अशोक वैशाखर]

गुरुकुल एक संस्कृत पाठशाला नहीं है, सरकारी विश्व-विद्यालय नहीं है और ना ही कोई अधिकांशतः शिक्षा संस्था है। उसका मार्ग और उद्देश्य निश्चित है। आज हम गुरुकुल कांगड़ी के विषय में निश्चित रूप से कह सकते हैं कि वह एक निज उद्देश्य में सफल संस्था है। और संसार में शिक्षा के महान आदर्श की ओर पथ प्रदर्शन कर रहा है। गुरुकुल में सजीवता है। और इस प्रकार की संस्था के लिये उस सजीवता का होना आवश्यक है। गुरुकुल को पाठ पर आश्रय समाज है। आर्य समाज का सगठन धार्मिक संस्थाओं तथा बहुत सांस्कृतिक संस्थाओं के लिये अनुकरणीय है। इसा लिये आर्य समाज भी एक प्रगत शीघ्र एवं सजाव संस्था है जिसका उद्देश्य आर्य ध्यानन्द प्रतिपादित मार्ग से वैदिक संस्कृति का प्रसार करना है। आर्य समाज के लिये गुरुकुल गौरव का वस्तु है। गुरुकुल के बिना आर्य समाज पंगु है।

संसार त्रस्त है। सभी दुःखी हैं। इस समय धन को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। यह समझ जाना है कि धन से अक्षय सुख प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु धनिकों की लज्जा जनक आत्म कथाओं ने पुकार कर कह दिया है कि हम सुखी नहीं हैं। इस पुकार को सुनते हुए भी संसार धन के पीछे अन्धा हो भाग रहा है। सब एक वस्तु को 'यथायोग्य' स्थान नहीं दिया गया है। यही दुःख का मूल है। हर उपभोग्य पदार्थ को यथा स्थान यथा योग्य महत्त्व दिया जावे इसा लिये आर्य समाज की आवश्यकता है। अर्थात् इस त्रस्त संसार के लिये एक शान्ति दायक सन्देश की जरूरत है। और वह सन्देश अमेरिका आदि किसी तटस्थ देश में कोई शान्ति दूत लायेगा यह मिथ्या है। क्योंकि अमेरिका स्वयं एक धन की अनुचित स्थान देने वाला राष्ट्र है। हां, कुछ भर के लिये शायद वह संसार की यह शक्तों को लड़ाई बन्द करा सके। परन्तु निरन्तर होने वाले आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सभी प्रकार के कलहों को बन्द बन्द नहीं करा सकता। इसके लिये तो पौरस्य शान्तिदायिनी संस्कृति को आवश्यकता है। जो संस्कृति मनुष्य को अधिकार तालसा से निवृत्त करा के कर्तव्य मार्ग पर तत्पर करा सकती है। पौरस्य संस्कृति बताता है मादगी से कठोर पालन में सुख है। इसके विपरीत संसार चाहे कि मैं तबक-भकक से, व्ययं के आढम्बर से, सुख प्राप्त करूँ, व्ययं है।

पौरस्य संस्कृति का बीज—सादगी से कठोर पालन यह-आश्रम और वर्य व्यवस्था में निहित है। आश्रम और वर्य व्यवस्था का आधार ब्रह्मचर्य है जिसके आधार

से सादगी से कठोर पालन का पाठ सीखा जाता है। इस ब्रह्मचर्य के लिये आर्य समाज को गुरुकुल की आवश्यकता है। ताकि आर्य समाज गुरुकुल से प्राप्त 'सोम' को संसार के सामने रख सके।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि गुरुकुल से उभ प्रकार की आवश्यकता है जो प्रकारा संसार के पथ-भ्रष्ट लोगों को मार्ग दिशा सके। अतः गुरुकुल के ऊपर एक महान उत्तर-दायित्व है।

वैश्वमान पूर्वक एक स्नातक के नाते कह सकता हूँ कि गुरुकुल ने अपने उत्तरदायित्व को योग्यता पूर्वक निभाया है। संसार के सामने शिक्षा को समस्या अभी भी समस्या रूप में विद्यमान है। सारा योद्ध और उसका अनुकरण करने वाला एशिया और अफ्रिका, सम्मिलित-शिक्षा के अभिशापों को भोग रहे हैं। और इस विषय में अमेरिका की कहानी भी काली है। इसके अतिरिक्त वर्तमान शिक्षा के कारण समाज में उपज विषमता का विष समाज के पल्लवों को बराबर नहीं होने देता। इस अवस्था में गुरुकुल ही सच्ची शिक्षा की ज्योति को दिला रहा है।

ब्रह्मचर्य गुरुकुल का प्राण है। गुरुकुल के पास विशाल भूखण्ड नहीं, गगनचुम्बी प्रसाद नहीं, विद्यार्थियों का घनीभूत रेवड़ नहीं लम्बी लम्बी पक्वो धारी उपाध्याय नहीं, सरकार का बरद पाँख पल्लव ऊपर नहीं और कुल भी नहीं। अगर कुल है तो एक ब्रह्मचर्य का ही महान आदर्श है। जिसके कारण गुरुकुल भारत के लिये ही नहीं संसार के लिये गौरव का वस्तु है। और इसी कारण कहना पड़ता है कि गुरुकुल महान है। उसकी रक्षा हमें प्राण पन से करनी पड़ेगी। गुरुकुल ने बुद्धदेव, ब्रह्मनिन्द, अभयदेव, चन्द्रगुप्त आर अजि जी को ध्यानन्द गांधी, सावरकर और अरविन्द के रूप में पैदा किया है। सच उच कुलमाता का मुल उज्वल करने के लिये इन कुल पुत्रों ने महान व्रत का पालन किया है।

वे पत्कियं गुरुकुलोत्सव के प्रेपोण्डा को दृष्टि में रख कर नहीं लिखी जा रही हैं। गुरुकुल तो प्रेपोण्डा जैसी वस्तुओं से दूर रहता है। यह तो एक निश्चित सच्चाई है। गुरुकुल को उसके कार्य का श्रेय देना पड़ेगा। चाहे साम्प्रदायिकता के लालचन से भयभीत कुछ स्वराज्य विद्वांस गुरुकुल के महत्त्व को स्पष्ट रूप से स्थाकार न कर सकें, परन्तु दुर्भी जवान उन्हें भी कहना पड़ता है। और आगे आने वाले समाज में भारत के शिक्षा विश्व नहीं, अपितु संसार के शिक्षा वैज्ञानिक गुरुकुल को शिक्षा क्षेत्र में का गई स्थापनाओं को स्वीकार करेंगे।

दुर्भाग्य वरा गुरुकुल अपने महान उद्देश्य के अनुसार कुछ परिस्थितियों अभी भी प्राप्त नहीं कर सका है। यह गुरुकुल का दोष न हो, शायद उस शातावरण को बुरा कहा जाय जो आज दिन हमें चारों ओर दीखता है। परन्तु गुरुकुल को भी सावधानी से पैर रखना चाहिये। आज की सभ्यता आढम्बर पूर्ण है। वे विरथविद्यालयों के ऊँचे प्रसाद बाहर से खेत पर अन्दर से काले हैं। उन में भारतीय आत्मायें घुट ड कर मरती हैं। उन के अनुकरण में गुरुकुल को कोई कार्य नहीं कर बैठना चाहिये। एक विद्वान के कथन का भाव है।

—'भोकरले का विरोध ऊँचे २ संवों से बहुत से भारतीयों ने निरवय असफलता पूर्वक किया होगा। परन्तु सबा जबाब तो आर्य समाज ने गुरुकुल खोल कर दिया है।

गुरुकुल को इस गौरव को स्थापित रखना ही पड़ेगा। और महाचर्य के लिये हर आवश्यक त्याग और तपस्या को करना पड़ेगा।

## प्रेम

[ अनुवाचक—श्री विद्यालंकार ]

प्रेम जीवन का प्रकाश और आनंद है। हम अपना अथवा किसी दूसरी चीज का पूर्णतया आनन्दोपभोग तब तक नहीं कर सकते, जब तक हमारा कोई प्रेमी भी उस आनन्द में शामिल न हो। यदि हम भाव्यवशा अकेले हों, तो भी हम अपने आनन्द को इस आशा से अव्यक्त रखते हैं, कि इसका पूर्ण उपभोग अपने किसी प्रेमी के साथ करेंगे। यही कारण है कि हम अपनी विजय या उत्कर्ष की प्रसन्नता को जब तक किसी साथी पर व्यक्त न कर दें, तब तक पूरी सन्तुष्टि नहीं होती।

प्रेम सारे जीवन में व्याप्त है। यह हरेक आयु और परिस्थिति के अनुकूल बन जाता है, शीशव में माता और पिता के लिये, जीवन में पत्नी के प्रति, प्रौढ़ावस्था में बच्चों के लिये और सारी उमर भर भाई बहनों व मित्रों के प्रति, प्रेम किमी न किमी रूप में बना ही रहता है।

"प्रातः काल की मन्द पवन के एक २ भोंके में प्रेम प्रवाहित हो रहा है" मैकडानल्ल्ड

मित्रता की शक्ति से हरेक ही परिचित है। कुछ अबस्थाओं में, उदाहरणार्थ (डैविड और जॉन्थन) की मित्रता को तो स्त्री के प्रेम से भी उच्छेद कहा गया है। मैं यहाँ इस के सम्बन्ध में कुछ कहना नहीं चाहता; क्योंकि मित्रता के सम्बन्ध में मैं ने बहुत कुछ लिखा है।

विश्व नियन्ता और मनुष्य के सम्बन्ध को दिखाने हुए, परमेश्वर की माता पिता और मनुष्यों की बच्चों से तुलना की गई है।

"जिस प्रकार माता अपने स्थान पर बैठी हुई, अपने छोटे २ बच्चों का तरफ पवित्र मयुर चैहरे से देखती है। और एक का सिर चूमती है, दूसरे को गले लगाती है, किसी का अपने पुटने पर बैठाना है और किसी को अपनी गोद में स्थान देती है। और साथ २ अपनी चैष्ट, आकृति, शिक्षावत से उनके नाना मनोभावों और इच्छाओं को जानने का प्रयत्न करता है; और फिर चाहे वह मुश्करा रही हो और चाहे झिड़क रही हो, किसी को देख कर किसी से कुछ कह कर—सब से प्रेम करती है। उसी प्रकार अनन्त और महान् विश्व नियन्ता, हमारी आवश्यकताओं को देखता है; हमारी प्रार्थनाओं को सुनता है, और हमारी सहायता करता है। और अगर वह हमारी किसी कामना को, जिसे हम उचित समझते हैं, पूरा नहीं करता माण्डस होता, तो भी वह उस इन्कार में ही हमारी आवश्यकता को पूरा कर देता है।" Pilonja

सर बाल्टर स्कॉट ने कहा था "अगर कामना रहित शुद्ध और पवित्र मानवीय आत्मा है, तो वे वे हैं, जिन्हें किसी पवित्र पिता ने अपनी कर्तव्यपरायणा पुत्री पर बहाया है।"

एपामिनीन्दस ने ल्यूकूटा से पराजित होने पर भी प्रसन्न होने के लिये यह युक्ति दी थी कि इस विजय से मेरे माना पिता बहुत प्रसन्न होंगे।

प्राणियों के प्रेम की बिलकुल उपेक्षा न कर देने की चाहिये। किसी जंगली के साथ सहानुभुति न रखना असम्भव है, जब कि वह उनकी अमरता में विश्वास रखता है; और समझता है कि मृत्यु के बाद "स्वर्ग में पहुँचने पर उसका कृतज्ञ कुत्ता उसके साथ रहेगा।" पोप

भारतीय महाकाल्य महाभारत को कथा है। जब वीर पाण्डव, अन्त में स्वर्ग के द्वार पर पहुँचे तब उनका स्वागत किया गया, लेकिन उन से कहा गया कि वे अपने साथ कुत्ते को नहीं ला सकेंगे। बहुत समय तक उन्होंने युक्तियाँ दी, लेकिन जब उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा, तो वहाँ से विदा होने का तैयार हुए और उन्होंने कहा कि वे अपने कृतज्ञ साथी को छोड़ने में असमर्थ हैं। तब अन्त में द्वार के रक्षक देवता ने पक्षुत्वा किया और कुत्ते को भी उनके साथ अन्दर जाने का स्वीकृति दे द।

मुझे विश्वास है कि समय आयेगा, जब हम बड़बुध के शब्दों में तुच्छ से तुच्छ प्राणी के दुःख में अपने आनन्द व आभिमान को अनुभव करना छोड़ देंगे।

इस समय में उस प्रेम के सम्बन्ध में कह रहा है, जिसका परिणाम विवाह है। इस प्रकार का प्रेम जीवन का संगीत है, नहीं नहीं 'इस सौन्दर्य में संगीत है, और है प्रेम के शापत लेकिन स्वप्न से सूक्ष्म बन्ध के शब्दों से भी मयुर निःशब्द स्वर" Browe प्रेते के संवाद में प्रेम के सम्बन्ध में बहुत ही मार्क की और मनोरञ्जक स्थापनाएं दी गई हैं।

Phaedrus से कहलवाया गया है कि "प्रेम और कंबलप्रेम में ही यह शक्ति है कि वह पुरुष और स्त्री दोनों को अपने प्रेमी के लिये माण्ड न्योक्कर करने का माण्ड प्रदान करता है। पिलोयास की लड़की Alceatis इस सन्ध में श्रीक निवासियों के लिये स्मारक बनी हुई है। क्योंकि वह अपने पति के बगले अपने प्राण देने के लिये तैयार थी, जब और कोई; यहाँ तक कि उसके मां बाप भी ऐसा करने को उद्यत नहीं होते। उसका अपने पति के प्रति सच्चा प्रेम था, जा माता पिता के प्रेम की अपेक्षा कहीं अधिक था। यही कारण था कि उसको अपने माता पिता अजनबी मालूस होने लगे थे, यद्यपि उनके सम्बन्ध से इन्कार नहीं किया जा सकता। उसका यह पवित्र कार्य देवताओं और मनुष्यों को इतना पसन्द आया, कि उसको भी उन गिनता क धर्मिणाओं में शामिल कर लिया गया, जिनको अपने धर्माचरण के कारण पृथ्वी पर अवतरित होने का सौमन्य दिया गया है। प्रेम-धर्म और प्रेम-भक्ति को इतना महान् भाँदर दिया गया है।"

Az thou कुछ और आगे बढ़ गया है—

प्रेम मनुष्यों में सहृदयता उत्पन्न करता है, उनके

वैमनस्य को दूर कर के, उनको दावतों में सम्मिलित करता है। उपचारों में सधर्मों में और नृत्योत्सवों में वह हमारा नायक है। यह दया और मित्रता को निर्व्यथा और ड्रैप को दूर करता है। प्रेम की महान शक्तियों को देख कर भले आदमी मुग़ा होते हैं, बुद्धिमान आश्चर्य करते हैं, और देवता चकित रह जाते हैं। जिनको यह प्राप्त नहीं है, वे मदा इसकी चाहना करते हैं। जिनको यह प्राप्त है, वे इसे बहुमूल्य समझते हैं। कोमलता, बहुलता, व कामना, विलासिता, और भव्यता का यह उत्पादक है। यह मदा भलाई चाहता है नुरार्द्रि ने इसे कोई सरोकार नहीं। प्रेम प्रत्येक शब्द में पथ प्रदर्शक, काय में साधी, इच्छा में सहायक और भय में रक्षक बन कर रहता है। देवताओं और मनुष्यों को कानि है। प्रेम सबसे उत्तम और सुन्दर नेता है। हरेक को इस के कदमों पर चलते हुए, इस के स्वागत में बह मधुर गान करना चाहिये, जिसके द्वारा इस ने देवताओं और मनुष्यों को आत्मा को मोह रक्खा है।

इन में से किसी एक रूप की हँसो बेशक उड़ायी जा सकती है। पर यह तभी तक है जबतक कि आशीर्वादीय साधन द्वारा हम प्रेम नहीं हैं, जबतक कि आशीर्वादीय यज्ञ हमको प्राप्त नहीं हो गया है, जब तक आशीर्वादीय यज्ञ को चलाने को कला हमको हस्तगत नहीं हो गई है। गंसा हो जाने पर तो हम भारतीय अन्तरात्मा की प्रेरणा से मिश्र रूप से इसका स्वाभाविकतया अनायास प्रयोग करेंगे।

## रुखी शिक्षा

तो असल में तोप बन्दूको का हमारे स्वराज्य पाने और स्वराज्य की रक्षा से कोई अविनाभावो सम्बन्ध नहीं है ये हाथियार भी वैसा तो अग्नि के ही रूप है पर ये विकृत अग्नि के रूप हैं। जो अग्नि हमारे स्वयं को भी भस्म करने लगती है उस अग्नि के रूप हैं। यह चिकर इतना ज्यादा बढ़ गया है कि इसक कारण आज सर सर संसार ही सनिपात रोग से प्रस्त हो उपमत्त और विदुष्य हुआ हुआ है असल में स्वराज्य पाने के लिये जिस चीज की जरूरत है वह तो स्वराज्य के साथ को प्रहण कर नकले वाले मन और प्राण की है। इन्हें हम ठीक करेगे ना यदि किसी बाह्य हाथियार की आवश्यकता होगी तो उने पाने और चलाने की शक्ति भी हम म स्वतः आ जावेगी। गांधी जी ना कहते हैं कि सत्याग्रह या अन्न अन्नका का बल प्रयोग करने का भी हमें जरूरत नहीं है यदि हम रचनात्मक कार्य को ठीक तरह म करने रचनात्मक कार्य करना सहज परिपाक करना है। हमें जेल जाने की इस लिये आवश्यकता होती है जिसने कि हमारे दूसरे देश बन्दुओं के मन, प्राण साथ के लिये जागृत हो चके और हमें गुलाम रखने वाले बिदेशी भाइयों पर भी ठीक प्रकार का प्रयाग पड़ सके। विदेशियों पर असर की बान भी पीछे की है उन पर तो हमारे परिपक होने का भी असर पड़ेगा, बल्कि वही सिद्धि दायक असर होगा। अप-

ने को ही पूर्ण रूप से नियार करना मुख्य बात है। इसके लिये हमें ठीक प्रकार से शिक्षित होना है।

हमारे प्राचीन ऋषियों के कथानुसार असली शिक्षा अपने आप को जानने में है। "आत्मानं विद्धि" ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता है। सुखनायें एकदूरी करने से, लखरें मुनने से किनाशे पढ़ने से ज्ञान नहीं पैदा होता। ये चीजें यदि ठीक प्रकार बनीं जाय तो ज्ञान के उत्पन्न करने में देवल सहायक हा सकती हैं। असल में तो शिक्षा का उद्देश्य मन को स्वयं ज्ञान वा लंभे के योग्य बनाना और उसम भावों को यिकालित करने योग्य बनाना ही है पर आज जो ज्ञान हम पर कदा आ रहा है। जिन तरह हमारे भाव उच्छ्वित किये जा रहे हैं उससे दिनों दिन हमारे और भावा वेशों की शक्ति क्षीण ही हो रही है। इनका कोई नष्ट हो रहा है। हमारे मनो में स्वयं रचना करने की शक्ति नहीं रही है। हमारे सामने जो विचार ज़ोर से रख दिया जाता है हमें वही ठीक लगता है। हम तर्क वितर्क करते हैं, बाल की काल उतारते हैं, देश-विदेश की नाना विषय चर्चाएं करते हैं पर उनसे कुछ निकलना नहीं, कोई वस्तु बनती नहीं। क्योंकि हम आम चिन्तन नहीं करने और सब कुछ करते हैं। भावों में देश भक्ति का भाव बहुत ऊंचा भाव है पर उस भाव से प्रेरित होकर हम क्या करते हैं? एक मामूली गांव का आदमी इन भाव से प्रेरित होता है तब वह कुछ न कुछ कर मुड़रता है। पर हम न कुछ करते हैं न करने देते हैं। वस्तुतः गांधी जी का देशोत्थान कराने वाला सोचा सखा दृशभाविक मार्ग जिस के ही कारण आम जनना में गन बीस वर्षों में अठान लार्गुति हुई है अब तक बहुत अधिक अज्ञान प्रगति कर चुका होना यदि हम मध्यम श्रेणी के लोग अपने नपुंसक मन और निर्वीर्य भावों के साथ बाधक न होने। एक सखा आदमी यदि हिंसा करना है तो वह अपनी सच्चाई के कारण शीघ्र अहिंसा की भी समझ जायगा। पर हम न तो हिंसा करते हैं न अहिंसा, नेवल बातें करते हैं। आचार्य कृपलानी जी ने पिछुला लड़ाई के विषय में कहा था कि लायब्रजार्ज जैसे धूर्त, कपटी खालक नेता को पाकर इंग्लैण्ड ने जर्मनी पर विजय पाली, परन्तु हम गांधी जी जैसे दुःख नेता और विध्य हाथियार का पाकर भी अग्नी तक विजय नहीं प्राप्त कर सके इस का कारण यह है कि हम में अनुशासन नहीं है, हम सेना पति की आज्ञा पालन करना नहीं जानते। उन्होंने बहुत ठीक कहा है। पर मैं इसके आगे और यह कहना चाहता हूँ कि हम अभी इस नेता के योग्य ही न हैं बने हैं क्योंकि हम ठीक तरह से शिक्षित नहीं हुए हैं। आत्मिक शांति का हाथियार उठाने के लिये जिस प्रकार का शिक्षा की आवश्यकता है वह शिक्षा हमें नहीं मिली है। इसी लिये मैं शिक्षा की दृष्टि से तुम गुरुकुल के प्रबन्धकारियों को कहता हूँ कि तुम अपने आप को जानो अपने मन और भावों को अग्रनिरीक्षण द्वारा जानो। यही सच्ची शिक्षा है।

## भावों की निर्वीर्यता

विचारों की अपेक्षा भाव अधिक ऊपरी वस्तु है।

इस लिये पहले मैं भावों को लेता हूँ। भावों को निर्वीर्यता का झुके एक अन्धः। उदाहरण याद आता है। कमी पढ़ा था कि कन में एक आदमी नाटक या सिनेमा देख रहा था वहाँ दृश्य बहुत कल्याणजनक था उसे देखते हुए करुणा के मारे उसकी आँसों से अश्रु की धारा निकल रही थी। परन्तु उसी समय बस रात में-कस के जाड़े की रात में उस का मोटर गाड़ी का चालक (driver) डब्ब के मारे टिड्डर कर मर रहा था वस्तुतः मर भी गया तुम जानते हो कि कस तो मजदूरों का एक पात करने वाला देश है। परन्तु उस कसती धनी आदमी के अन्दर भाषा वेश के कारण अश्रु तो निकल सकते थे पर वही भाषावेश सच्ची किया में परिधन नहीं हो सकता था। यही है नाटक-सिनेमा, खेल-नम्रासे आदि आज तक के प्रचलित मनोरंजनों का सबसे बड़ा पाप। तुम जो उभयले विचारों का साहित्य कविताएँ, संगीत देखते हो वह इस के सिवाय और कुछ नहीं कर रहा कि भावोत्प्रेजन द्वारा हमारी भाव शक्ति को नष्ट कर रहा है। हमारा प्राण तरल जल का तरह है। उस में बड़ी आसानी से भीय उछाल के रूप में प्रगट होने हैं अपनी सखा के इस सुखोष्ण भाग के साथ हमें कैसे बरतना चाहिए। भावों का विवेक, सद्-भावों की रक्षा और दुर्भावों का विनारा कैसे हो. भाव शक्ति कैसे विद्यालय और बलवान् हो यही एक बहुत बड़ी शिक्षा की बात है। पुराने गुरु लोग प्राण विद्या और भाव शुद्धि द्वारा इसे ही करने का यत्न किया करते थे। अन्य सब दाते इसी अन्त विकास के लिये होती थीं। तुम भी इधर ध्यान दो। [असमाप्त] कामशः

### गुरुकुल समाचार

धर्मवीर १४ अंशो आम्न ज्वर कृष्णचन्द्र ५ अंशो लखरा, लाजपत राय ४ अंशो लखरा, हानदेव २ अंशो लखरा, श्याम शिवदास १ अंशो लखरा, अरुण ४ अंशो त्रय, बलराज ४ अंशो वृष्ण, मदन ३ अंशो भतिसार, रामकृष्ण ३ अंशो ज्वर कास।

गत सप्ताह ऊपर लिखे ३० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ३० रामकृष्ण को अभी ज्वर और लाली है। आशा है कि शीघ्र आराम आ जावेगा।

श.नवार ६ वैशाख को गोष्ठी समासभा का इस सत्र का प्रथम अधि. सत्र ३० सतीश जी के समा पतित्व में प्रारम्भ हुआ। ३० आनन्द, ३० सायदेव तथा ३० विश्वमूर्ति की रचन.पं. बहुत पसन्द की गई। इस सभा द्वारा ब्रह्म-चार्य कविता, गदय, प्रहसन इत्यादि लिख कर उत्तम साहाय्य का निर्माण करते हैं।

इसी प्रकार वाष्पविनी, संस्कृतोत्साहिनी तथा College union इत्यादि समाजों के अधिवेशन भी बड़ी सकलता पूर्वक हो रहे हैं। ये समाज ब्रह्मचारियों की वक्तृ-त्व शक्ति के विकास के लिये हैं।

भीषण केजय देव जो बामनी ने जो अभी हाल ही में बर्मा से लौटे हैं अपनी बर्मा यात्रा के अनुभव सुनाए। आपने बड़े मनोरंजक ढंग से बर्मा की धार्मिक सामाजिक एवं राजनैतिक अवस्थाओं का वर्णन किया। वास्तव्यदर्शन

के उपाध्याय श्री नन्दलाल जी लखा जो १ मास के लिये अवकाश पर थे आ गये हैं। अद्य तक आपके स्थान पर श्री सरयू प्रामद जी बड़ी उत्तमता से आभ्यासन का कार्य करते रहे।

### समालोचना

Food-Die-Medicine

(आहार ही औषधी है)

श्री डा० लक्ष्मी नारायण रात्रा कुन। The pure-Bio-Diuretic डेरा गाजी खान से १) में मिलते हैं। पृष्ठ संख्या २४

इस पुस्तक में मनुष्यों के इस अज्ञान और अन्याय को दूर किया गया है कि संसार में जिज्ञा का मिश्रण कल्पित स्वाद ही सब कुछ है और खाना पीना और मीज मनाना ही जीवन का उद्देश्य है। आज फल मनुष्य जिज्ञा की शक्ति के लिये भरपेट, बिना भूक स्वा कर रोग मोल लेते हैं। और रोगी बन कर औषधियों के पीछे भागते हैं। वे समझते हैं कि किसी न किसी औषधी से ही उनका रोग दूर हो सकता है, इस पुस्तक में यह सिद्ध किया गया है कि यदि मनुष्य का भोजन प्राकृतिक हो तो उसको रोग नहीं हो सकता यदि रोग हो भी जाय तो वह प्राकृतिक आहार से ही दूर किया जा सकता है। पुस्तक में सब प्राकृतिक आहारों की तालिका देकर उनके गुण दिखलाने गये हैं।

प्राकृतिक भोजन के अतिरिक्त इस पुस्तक में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रायः सब उपचारों का भी वर्णन है। मद्य प्रकार के वाष्प स्नान और आभ्यन्तर स्नान (बर्मिन कम) का पूरी विधि दी गई है। इस ग्रन्थ को ग्रन्थकर्ता ने परिचयाय सभ्य देशों की यात्रा कर के अपने जीवन भर के अनुभवों के आधार पर लिखा है। इस एक पुस्तक से ही पाठक प्राकृतिक स्वास्थ्य-शास्त्र का पगाम ज्ञान प्राप्त कर सकता है। किन्तु यह पुस्तक अंग्रेजी में है इसलिये सब साधारण इस से लाभ नहीं उठा सकेंगे, यह खेद की बात है कि प्राकृतिक-स्वास्थ्य शास्त्र का प्रायः सब ग्रन्थ अंग्रेजी में ही हैं और सबसराएण जनता उन से लाभ उठाने से वञ्चित रहती है। क्या ही अच्छा हो यदि इस बहुमूल्य ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जाय जिससे साधारण जनता पूरा लाभ उठा सके।

यह ग्रन्थ काँगड़ी विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महा-व्या-लय को द्वितीय अंश के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है।

भवानी प्रसाद  
प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र उपाध्याय  
गुरुकुल विश्वविद्यालय कागड़ी

### गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

अतु अच्छी है। सब का परिग्राम निकल चुका है। पाढ़ई शुक होगई है। साहित्यसंजीविनी समा का वा.पंक अधिवेशन भीष्मावकाश से पूर्व बड़े समारोह से मनाया जायगा। इस में कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया है। भीष्मावकाश में ब्रह्मचारी धर्मशाला (कांगड़ा) पवन पर ठहरेंगे।

स्मृतिवर्धक

ब्राह्मी बूटी

॥१॥ सेर

सुगन्धित

हवन सामग्री

॥१॥ सेर

एक वार जरूर आज़माइए

# गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी का प्रसिद्ध

**भीम  
सेनी  
सुरमा**

आंखों से पानी बहना, खुजली, कुरकुरे सुर्खी, जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त आंखों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ माशा ॥२॥ १ तो० ३)

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन स्नान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग तरौनाजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, आंखों में जलन आदि रोगों में तुरन्त आगम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीरी

## गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहायपुर )

प्रांच

साहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहली—बांदनी चौक  
पटना—सकुआ टोली, बांकीपुर

### भीमसेनी दंतमंजन

दांतों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है

मूल्य ॥१॥ शीरी, ३ शी० १॥

### सूचीपत्र सुप्त मंगवाइए

### सुपारी पाक

स्त्रियों के अरियान रोग की

प्रसिद्ध औषधि।

मूल्य १॥१॥ ६०



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य २)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मूल-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंशा वेदालङ्कार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल काङ्गडा, शुक्रवार २२ वैशाख १९६७, ३ मई १९६७

[ संख्या ३ ]

## नपुंसक ज्ञान और निर्वाय भावावेश

गतांक से आगे

[ खेल्क—भी आचार्य अमरप्रेम ]

### भावों और विचारों का दुरुपयोग

भावों का असली उपयोग मन बुद्धि द्वारा कल्पित, रचित वस्तुओं में जीवन बालना है। पर हम भावों से यह काम न लेकर उन से खेलते हैं, मजा लेते हैं और हम प्रकार भावशाक्ति को नष्ट करते हैं। लकड़ी चोरने के लिए बनाई गई आरी से यदि हम खेलने लगे तो उसके दुन्दाने टूट जायेंगे और वह चोरने के काम की न रहेगी। उपन्यास नाटकों के उत्तेजक साहित्य द्वारा तथा आजकल के खेल तमाराओं द्वारा हमारे प्राणयन्त्र का ऐसा ही दुरुपयोग हो रहा है। उनसे खेलने का काम लिया जा रहा है। कुत्रिम तौर से उन्हें उत्तेजित करके हमारे भावों की शक्ति नष्ट की जा रही है। यह ऐसा गी है जैसे कि लोग अपने शारीरिक बर्ष, जो कि वस्तुनः सन्मान उत्पन्न करने के लिए, नया जीवन पैदा करने के लिए बनाया गया है उसे मजा लेने में और आत्मनाश करने में अप्रकथय करते हैं। हमारे भाव इसी कारण निर्वाय हो रहे हैं।

इसी प्रकार हम बुद्धि से भी खेलते हैं। बौद्धिक चिन्तासिद्धात करते हैं। मजे के लिए या खेल या व्यसन के तौर पर तर्क-वितर्क करने और पढ़ते पढ़ाते हैं। इसी लिए हमारी मन-बुद्धि की रचना-शक्ति नष्ट हो गई है।

### भावों और विचारों की साधना

यदि हम अपने अन्तः करण रूपी यन्त्र को फिर से ठीक और सशक्त करना चाहते हैं तो हमें अपने अन्दर प्रविष्ट होकर अपने अन्तःकरण का जानना और समझना चाहिए। हमारे मन में क्या है यह बात हम स्वयं नहीं जानते होते। हम किस भाव से प्रेरित होकर अशुभ कार्य कर रहे हैं इसका हमें पता नहीं होता। नीचे की तह में कोई भाव काम कर रहा होता है और उसके ऊपर

बिल्कुल विपरीत हमारा मन जागृत-अवस्था की वृत्ति को और उसके भी बिल्कुल उपरी भाग को जान रहा होता है। हमारी जो अवचेतना (Sub conscious) है और जो अतिचेतना (Super conscious) है उसे हम बिल्कुल नहीं जानते। आजकल के पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों ने अवचेतना के विषय में तो बहुत कुछ जानने का यत्न किया है पर अतिचेतना तो प्राचीन आस्तिक योग मार्ग द्वारा ही अनुभव गम्य हो सकती है। आजकल मनोविरलेषण (Psycho analysis) की बहुत चर्चा है। यह बहुत अच्छी चीज है। यह आत्म-निरीक्षण ही है। पर यह अवचेतना और 'काम वासना' नामक एक विकृत भाव को ही मुख्य मानकर चलती है। इसलिए यह अपूर्वी और भ्रमात्मक है। जैसा कि अभी कर्णा का प-वृत्ति तो मनुष्य की कोई मुख्य वृत्ति नहीं है। यह तो प्रीति के भाव का एक संकुचित और निम्न कौटिक का विकार है। पर इतना ठीक है कि हमें अपने अन्दर प्रविष्ट होना चाहिए और अपने आन्तरिक रूप को अच्छी तरह और पूरी तरह सचाई के साथ जानना चाहिए। अपने भावों और विचारों को अच्छी तरह विरलेषण करके देखना चाहिए।

वै ता भाव सैकड़ों प्रकार के हैं। पर हमारे शास्त्रों में सनातन भाव और असनातन भावों के रूप में इनका भेद किया गया है। प्रेम, दया, धैर्य, संरक्षा, शान्त, प.यत्रता आदि २ की सनातन भावों में गिनती है। और इनके विरोधी भाव असनातन है। या इन्हें भाव और भावविकार नाम से भी कहा गया है। काम, क्रोध, लोभ, मांह, मद, मत्सर ये प्रसिद्ध भाव-विकार हैं। ये पड़ गिु भी कहलाते हैं। इन्हें हटाकर इनके स्थान पर इनके शुद्ध रूप दिव्यभावों को अपने अन्दर लाना 'भाव-साधना' कहलाती है। पातञ्जल दर्शन में सुख, दुःख, पुरुष, अपुण्य में क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदित और उपेक्षा के भावों को स्थिर करने द्वारा जो चित्त-प्रसादन की विधि बनाई गई है वह बड़ी उत्तम है। बौद्धकाल में इस साधना का बहुत महत्व दिया गया है और इसका बहुत विस्तार किया गया है। पर मैं भावों के जिस वर्गीकरण की तरफ तुम्हारा ध्यान कीर्षना चाहता हूँ उसके अनुसार

एक तो परस्पर मिलने, एकता स्थापित करने वाले, मेल का सनातन भाव है जिस हम एक शब्द में 'मेलि' इस नाम से पुकार सकते हैं। दूसरा एक दूसरे से जुड़ा करने भेद पैदा करने वाले, हटाव का भाव है। यह 'अमीति' या द्वेष ( द्विप = अमीती ) का भाव कहलाता है। बाकी सब भाव इन्हीं दो केन्द्रीय भावों के खेल हैं। सब सनातन भावों का केन्द्र 'प्रीति' का भाव है और सब असनातन भावों का का केन्द्र 'अप्रीति' का भाव है। ये ही दो भाव हमारी आन्तरिक या बाह्य स्थिति के कारण विभिन्न सम्बन्धों के अनुसार भिन्न रूप धारण करते हैं। जैसे कि जब हम अपने से बड़े के साथ प्रीति करते हैं तो वह प्रीति 'भक्ति' का रूप धारण कर लेती है। अपने बराबर वाले के साथ 'भैत्री' हो जाती है और अपने से छोटे के साथ की गई प्रीति कर्णारूप हो जाती है। इसी तरह अपने से बड़े के साथ की गई 'अप्रीति' भय या ईर्ष्या के भाव में प्रकट होती है, अपने बराबर वाले के साथ हिंसा या बर्बाद लेने के भाव में और अपने से छोटे के साथ की गई अप्रीति 'वृणा' के भाव में। अपने से दूसरों के साथ जो संबन्ध पड़ता है उसे मोटे तौर पर इस तरह 'बड़े', 'बराबर' और छोटे इन तीन रूपों में कह दिया है। बाकी सूक्ष्म सम्बन्ध और बहुत से हो सकते हैं। मोटे तौर से यह कहा जा सकता है कि तुम्हें बड़े में भक्ति, साथियों में मैत्री और छोटों में कर्णारूप या दया के भाव की साधना करने चाहिए और ऐसा करते जाने से तुम्हारे सभी भाव धीरे धीरे शुद्ध, व्यवस्थित और बलवान् होते जायेंगे। पहिले समय में जो भाव शुद्ध और चित्त प्रसादन पर जोर दिया जाता था उसे हमें फिर से अपनाना चाहिए।

इसी प्रकार विचार-साधना के लिए भी हमें विवेक का अभ्यास करना होगा। इस संबन्ध में हमें पातञ्जल दर्शन का वह सूत्र स्मरण करना चाहिये जिसमें नित्य अनित्य, शुचि-अशुचि, बाह्यिक सुख और बाह्यिक दुःख, आत्मा और अनात्म का विवेक करने का बात कहा गई है। इसी विवेक द्वारा विद्या या मत्त ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली के अनुसंधान विद्या इसी चीज का नाम था और अधिद्या से हटकर विद्या को पाना, अन्यकार से हटकर प्रकाश को पाना मृत्यु से हटकर अमृत को पाना इनका प्रयत्न विचार-साधना द्वारा किया जाता था।

### इसके उपाय

तो फिर तुम यह जानना चाहोगे कि इस भाव साधना और विचार साधना के उपाय क्या हैं? मैंने जहाँ तक विचारा है मुझे इसके तीन जबरदस्त उपाय समझ में आये हैं। उन्हीं की विशेष तौर से मैं बर्चा करना चाहता हूँ। मैं आशा करना हूँ कि तुम इन्हें पूरे ध्यान से सुनेगो। ये तीन उपाय हैं—सच्चाई, विचार और भाव के अनुसार अवश्य आचरण करना और शान्ति। इनमें से एक एक को लेता हूँ।

### सच्चाई ( क )

यदि हम अपने विगड़े हुए और बेकार हुए हुए अन्तःकरण को फिर से ठीक करना चाहें तो उसके लिए सबसे अधिक और प्रथम आवश्यक वस्तु है 'सच्चाई', सत्यता, ( Sincerity ) सत्यहृदयता, सत्य आन्तरिक भाव। हम अपने प्रति पूरे २ सच्चे हों। अन्तः से अन्त लाल में पूरी तरह सच्चे और खरे हों— यह न हो कि अन्तर की तह में कुछ और छिपा हो और ऊपर कुछ और हो। किसी चीज को छिपाये रखना, अपने ही आप से छिपाये रखना छोड़ दें। हमारे अन्तर विभेद न हो। एक भाग कुछ कहता हो— दूसरा भाग कुछ कहता हो यह न हो। 'अन्तर की इच्छा कुछ हो पर उसे ठकने के लिए विरकुल दूसरी प्रकार की इच्छा प्रकट की जाय यह न हो। जब हम अपने अन्तर प्रवेश करते हैं तो बहुत सी विरोधी इच्छाओं, विरोधी भावों को परस्पर सघर्ष करते हुए, किसा को दबाने किसी को उभारने हुए हम अपने अन्तर पाते हैं। यह हमारा आन्तरिक विभक्त, परस्पर विरोधी अर्थसा हो है जिसके कारण हमारे विचार और भाव शक्ति-रूप नहीं हो पाते। हमें सच्चाई के आग्रह द्वारा अपने अन्तर एकता और अविरोधिता उत्पन्न करनी चाहिए। जगत् में जिन भी लोगों ने बड़ा भारी काम किया है वे सब कम से कम अपने प्रति सच्चे थे। प० जवाहर लाल जी का सबसे बड़ा गुण 'सत्य हृदयता' है सच्ची सेवा की लगन है। सच्चाई ही आत्मविश्वास का रूप धारण करती है। इस लिए सब महापुरुष आत्मविश्वासी होते हैं। अद्भुत सत्य की धारणा का ही नाम है ( अन् ( सत्य ) धा )। और सत्य स्वयं क्रियाशील है। सत्य स्वयमेव अभिव्यक्त होने की शक्ति रखता है। सत्य को किधा में परिणत करने के लिए या अभिव्यक्त करने के लिए किसी अन्य बाह्य साधनों की अपेक्षा है यह समझना अज्ञान है। सत्य को छिपाने या जो असल में नहीं है उसे विश्वास के लिए तो बाहर के कृत्रिम साधनों की आवश्यकता होती है, पर सत्य तो स्वयं-प्रकाश है। सूर्य की तरह स्वयं प्रकाश वस्तु है। जो सचमूख स्वयं सत्य है वह तो होकर ही रहेगा— उसको कोई रोक नहीं सकता। सत्य के इस गुण का बयान करता हुआ मैं दूसरे उपाय पर आधुनिकता हूँ।

### धर्मल करना ( ख )

जैसे तो जो सत्य है वह हमें अमल करने के लिए बाधित ही करेगा परन्तु क्योंकि हमारे अन्तर पूरी सच्चाई नहीं है इसलिए हमें इस बात का भी अभ्यास करने की आवश्यकता है कि हमें जो कुछ भी जितना भी सत्य मासूम हुआ हो हम उस पर अमल करें— उसे अवश्य आचरण में लायें—उन्ने क्रिया-रूप में परिणत करें। हम लोग यह जानते हुए भी कि सच्चाई के अनुसार हमें यह करना चाहिए फिर भी हम ऐसा नहीं करते। अच्छे और ऊँचे भाव हमारे अन्तर आते हैं पर वे किशा में अपरिणत हुए ही रह जाते हैं। यह हमारी बहुत बुरी हालत है। इसी कारण हम लोग 'उपदेश-मूक' बन

जाते हैं। चाहे कितने ही उपदेश सुनते रहे उनका हम पर कुछ असर नहीं होगा। हमको यह भावत हो जाती है कि हम अच्छे सत्य उपदेश सुनें— सत्य ज्ञान की पुस्तकें पढ़ें, सत्य-सनातन भावों को जागृत करने वाले वचनों का आस्वादण करें— पर उनपर असल कभी न करे। भावत एक बहुत जबरदस्त शक्ति है? इसलिए जब हमें ऐसी विनाशकारी-भावत पड़ गई तो समझना चाहिए कि हमारा पतन पूरा हो चुका और हमारा उठना असम्भव है। जब तक कि बड़े भारी यत्न से हम उस भावत को न बदल डालें तब तक असम्भव है। इसीलिए मैं कहना हूँ कि हमें सत्य पर तुरन्त अभ्रम करने की भावत डालनी चाहिए। जिन पुरुषों को इस तरह सत्य को ग्रहण करने की भावत रही है उन्होंने एक क्षण में, एक दिन में या एक रात में अपने जीवन को बदल डाला था। इसके उद्-हरण तुम बहुत से जानते हो। पर हम रोज़ ईश्वर-भक्ति के मन्त्र पढ़ते हुए भी परमेश्वर से दूर के दूर ही रहते हैं और स्वगुण की ज्ञानचर्चा करते हुए तथा देशभक्ति के भावों की तरंगों में नहाने हुए भी देश के लिए कुछ नहीं करते हैं। इसका कारण यही है कि हम पूरी तरह सच्चे नहीं होते और अपने भान और भाव के अनुसर आचरण करने के लिए उद्यत नहीं होते। भारी 'बुद्ध' जन्म-काल से लगातार राजकी डठ में लिपे रहने गये परन्तु पहिला बार ही जब उनको एक रोगी एक बुढ़ा और एक सूतक दृष्टिगोचर हुआ तो तत्क्षण उनके अन्दर वैराग्य का भाव उत्पन्न हुआ और उन्होंने 'बुद्ध' बनने के लिये तुरन्त राजलक्ष्मी का त्याग कर दिया और घर से निकल पड़े। वैराग्य का भाव पैदा करने के लिए उन्हें किसी वैराग्य शतक या चरित्र-कृतियों के पढ़ने की आवश्यकता नहीं हुई और राज्य-क्रूरियों के लिए किसी सन्ध्यास्ती के उपदेश की आवश्यकता नहीं हुई क्योंकि वे अन्नसाल से सच्चे धर्म और सच्चाई ने अपने-तत्त्व-क्रियाशीलता दिखायी।

### शान्ति ( ग )

असल में सत्य और क्रियाशीलता को एक ही बात माना जा सकता है। तो अन्दर की अव्यवस्था को ठीक करने के लिए सत्य के साथ जिस दृष्टि वस्तु की आवश्यकता है वह है 'शान्ति'। शान्ति के बिना सत्य का पना लगना ही कठिन होता है, उस पर असल करना तो दूर की बात है। 'शान्ति' सत्य के प्रकाश के लिए आधार भूमि होती है। यह भी असल में सत्य से अभिन्न ही है। पर हमें अपने प्रयोजन के लिये सत्य के इस शान्ति रूप को पृथक अच्छी तरह समझना चाहिये, क्योंकि इसके बिना सत्य की क्रिया— रूप में परिचित असम्भव है इसी लिये हमारी शिक्षा में सत्य को पाने के लिये मन को शान्ति को बहुत महत्व दिया गया है। योग की बहुत कुछ साधना मन को शांत, अर्थात् करने और चित्त-वृत्तियों को शांत रखने के लिए है। वेदों के शान्ति-मन्त्रों से हम सब परिचित

हैं। यह सब शान्ति साधना सत्य। वचा के पाने के लिए आवश्यक समझी जाती थी। जैसे कि कोलाहल-पूर्ण स्थान में काम की बात सुन सकना भी कठिन होता है उसी तरह सच्चाई की आवाज़ को सुनने के लिए मन की अविच्छल शान्ति आवश्यक है। जैसे जहाँ उदरपात्र अर्थात् रचनाएँ हुई हुई हैं वहाँ उनको बिना ताड़ने नहीं और भाव रचना करना असम्भव है जैसे ही सत्य का ठीक प्रकार ग्रहण करने के लिए मनः पट का विच्छेद रचना। हत और शांत होना आवश्यक है। और जैसे हम उल्लसते हुए और मैंने पानी के अन्दर यह नहीं देख सकते कि इनके नीचे के तल में क्या २ पड़ा हुआ है जैसे ही गहरें से गहरें छिपे भावों को स्पष्टतया जान सकने के लिए भावों की शांति और शुद्धि की आवश्यकता है। भावों का ठीक प्रकार से उपयोग किया जा सके इसके लिए तो प्राणमय शान्ति की विशेषतः भारी आवश्यकता है। भावों में विशालता व्यापकता और अतपत्र महान् शक्तिमत्ता सभी आवश्यकता जब कि उनमें महान् शान्ति हो। उत्तेजनाओं और आवेशों में कोई शान्ति नहीं होती वहाँ तो क्षणिक जोश या उबाव होता है जो कुछ देर ही नहीं टहरता। आंध्रों के वश हम रोने हंसने या किसी प्रकार का भाव प्रकशन करने लगते हैं पर उससे बनता कुछ नहीं। इसके विपरीत शान्ति का व्यापक आधार रखने वाले पुरुषों में जो भाव उत्पन्न होते हैं वे बड़े विरह्यायी और बहुत भारी प्रभाव उत्पन्न करने वाले होते हैं। गांधी जी के अन्दर उड़कियाँ में भूल-नंगे, अस्थि चर्म विशेष मानव देहों को देख कर जो करुणा का भाव उत्पन्न हुआ था वहाँ भाव आज चर्खे के आन्दोलन के रूप में अपने आपको सार्थक कर रहा है। उस करुणा-भावसे उठी गांधी जी की चर्खे के प्रति अद्भुत कितनी अदल है। उनकी यह अद्भुत इतने विपरीत ज्ञान में लगातार बढ़ती और अपना रास्ता बनाती चली गई है। इस लिये बहुत से अविश्वासी धोमे चोसि चर्खे के सत्य के कायल होते गये हैं। कल भी ज्ञातक रामेश्वर जी कहते थे कि मैंने ७५ साल के इन्कार के बाद अब जो चर्खे को स्वीकार कर लिया वह ऐसा दृढ़ है कि "अब गांधीवाद चाहे नष्ट हो जाय तो भी चर्खा मरक से नहीं झूट सकता।" गांधी जी का बह करुणा भाव और उनकी अभिव्यक्ति रूप चर्खा आन्दोलन इनका प्रबल इमां लिए हे क्योंकि उनमें यह भाव शान्ति के विशाल आधार में उत्पन्न हुआ है और अतपत्र सत्य की क्रिया में परिचित होने की शक्ति से युक्त है। जिनमें शान्ति नहीं होती उनकी भावशक्ति इतनी कमजोर होती है कि वह जरासी उत्तेजनाओं से उत्तेजित हो जाती है और उतनी ही जल्दी ठंडी पड़ जाती है। जिन्हें आन्तरिक शान्ति मिली होती है वे बाहरी उत्तेजनाओं से आराम से उत्तेजित नहीं होते—वे किसी सच्चाई को या सच्चे भाव को बिल्कुल अपने-मन में चाहे देर लगाते हैं पर जब अपना मते हैं तो वह उनका अंग बन जाता है और बहुत प्रभाव शाली होता है। कमजोर मोहा बहुत जल्दी चुम्बकित हो जाता है और ( देखिए पृष्ठ ६ पर )

# गुरुकुल

२२ वैशाख शुक्रवार १९६७

## प्रवेश संस्कार

आर्य समाज की स्थापना का एक गौरव पूर्ण इतिहास है, इस इतिहास के पीछे केवल आर्यावर्त का ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण जगत का एक सांस्कृतिक तत्व खिपा हुआ है, इस निर्याद सत्य को प्रकट करके एक सार्वभौमिक शाश्वत सत्य को जनता के सामने पुनः स्थापित करने के लिये ही आर्य समाज की स्थापना की गई थी। आर्य समाज किसी नए पन्थ के रूप में प्रकट नहीं हुआ है इसके संस्थापक ऋषि की भी ऐसी इच्छा न थी कि यह कोई पन्थ बने, प्राचीन संस्कृति का पुनरुद्धार ही आर्य समाज का एक मान उद्देश्य है। जिस दिन यह कार्य पूरा हो जायगा जनता को बहु संख्या पुरातन वैदिक संस्कृति के सिद्धान्तों के प्रति अभ्यासान हो जायेगी तब आर्य समाज की आवश्यकता नहीं है, इस अवस्था में आर्य समाज का होना न होना समान है—हानि की सम्भावना अवश्य है, उद्देश्य की प्राप्ति होने पर स्थिति की अवस्था अधिक स्थायना की अवस्था है, मनुष्य स्वभाव के अनुसार फिर भी चलने का प्रयत्न करता है और उसी आर चल पड़ता है जहाँ से प्रयत्न करे वह इतना ऊपर चढ़ा था।

आर्य समाज ने भारतीय संस्कृति या वैदिक संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने के लिये जो तप और त्याग किया है वह किसी से खिपा नहीं है, आर्य समाज ने जनता का जागरूक के लिये जो कुछ किया है उसकी तालिका देने की आवश्यकता नहीं; आज ये स्वयं चाने नहीं नहीं रह गए हैं। जनता अब आर्य समाज के धार्मिक तत्व को पहले से अधिक समझने लग गई है।

धर्म और राजनीति में बड़ा खिन्ना सम्बन्ध है, हम इतना कह कर ही रुकना नहीं चाहते, हमारे विचार में धर्म और राजनीति इन दोनों का अटूट सम्बन्ध है। हम भारतीयों ने धर्म और राजनीति को कभी भी अलग नहीं सोचा है, हमने राजनीति को भी सदा राज धर्म नाम से ही स्मरण किया है, हमारे यहाँ धर्म और राजनीति समाज शकट के दो समान चक्र हैं, इन को मिलाते वाली पुरा से इन्हें घुसक नहीं किया जा सकता। एक के बिना हम दूसरे के विषय में विचार ही नहीं कर सकते। जहाँ भी कहीं समाज के नेताओं ने इन में से किसी एक को प्रधानता देने का प्रयत्न किया है वहाँ समतुलन रखने के लिए बड़ी २ कान्तियां हुई हैं जिन्हें समाजों को हानियां ही उठानी पड़ी हैं, जिस समाज में दोनों का समान ध्यान

रक्का गया है वह समाज बिना विषम बाधाओं के उन्नति ही करता खला गया है।

धर्म और राजनीति सामान्य जनता की वस्तु नहीं; समाज और राष्ट्र की शासन प्रणालियों को चलाने वाले कुछ विशेष व्यक्ति ही इन व्यवस्थाओं को बनाया बिना नहीं करते हैं। जन साधारण इनके गभोर तत्वों को समझने में नितास्त असमर्थ हैं; यही कारण है कि धर्म परलोक में या सन्नों की बुनियां में ही प्रधानता रखता है परन्तु सामान्य संसार में जहाँ पर मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्तियां अपने पूर्ण रूप में विकसित हैं वहाँ पर धर्म राज धर्म के द्वारा ही अधिक प्रबल है, राज्य का धर्म ही उनका धर्म होगा, इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं कि सामान्य संसार में धर्म का प्रचार नहीं करना चाहिए किन्तु यह कहने का हम अवश्य साहस कर सकते हैं कि वस्तु स्थिति ऐसी ही है। इतिहास हमारी इस बात का साक्ष्य है कि धर्म सदा राज्याध्यय में फला फूला है राजनीति में धर्म ही सामान्य जनता का धर्म होता रहा है। राज्य के प्रभाव में आकर ही जन साधारण ने किसी धर्म को स्वीकार किया है। धर्म के स्वीकार करने में एक मुख्य कारण भय का भी है, हमें नरक का भय है, दुःखों का भय है, शासन-स्था का भय है अतः हम धर्म को स्वीकार करते हैं। यह ठोक है कि धर्म हमारी आत्मिक पिपासा का शांकर है परन्तु इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि धर्म की स्थिति हमारे भय के कारण है। यह भय राज्य के कारण अधिक प्रभाव रखता है। जहाँ भी अपने धर्म को फैलाया है या फैलाने का प्रयत्न किया है उन्होंने उसको राज्य तक पहुंचाया है और वे तभी सफल हुए हैं। बौद्ध धर्म के विस्तार का कारण राज्य द्वारा परिपालना ही थी, शंकर की धार्मिक विजय यात्रा राजाओं की राज सभाओं से ही प्रारम्भ होती है, इस्लाम को फैलाने में मुसलमानों की एक दखिल तलवारें अधिक सफल रही हैं, बौद्ध धर्म के पतन का कारण भी राज्य है। अरबों का दीने-हलाही भी आभय न होने से अपने आप नष्ट हो गया। कोन्स्टेंटिनोपल के बाद से ईसाइयत का अधिक विस्तार हो सका था। इस प्रकार के ऐतिहासिक सत्य, ऋषि दयानन्द की दिव्य दृष्टि से छिपे न रह सके, यही कारण था कि उन्होंने अपने कार्य के लिये कोई उपयुक्त स्थान चुना तो वह राजस्थान था। वे जानते थे कि राजाओं के और राज पुरुषों के किन्हीं धर्म को स्वीकार करने पर प्रजापण' भी उस को सुगमता से प्रहस करने लेंगे। 'यया राजा तथा प्रजा'। हम तो समझते हैं कि धार्मिक संस्थाएँ बिना राज्याध्यय या राजनीति में प्रवेश किये अपनी एक टांग पर अधिक देर तक खड़ी नहीं रह सकती। यह ठोक है कि इन दोनों के मार्ग अपने २ हैं परन्तु ये है समानांतर. एक के बिना दूसरे की वशा शोचनीय है।

आज हम आर्य समाजियों को इस ऐतिहासिक सत्य को जानने का अवसर प्राप्त हुआ है; आर्य समाज को राजनीति से अलग किया ही नहीं जा सकता, आर्य समाज की स्थापना एक माह्व-राजैतिक परिवर्तन ही है, आर्य

समाज ने इस सत्य को भुलकर केवल एक धर्म मार्ग पर हा चलना प्रारम्भ कर दिया, यही कारण है कि हमको उसनी सफलता नहीं मिली। जितनी कि ६५ वर्ष में एक सजीव संस्था से आशा की जा सकती है। सामान्य तथा आय समाज के सारे कार्य कम राष्ट्र पर एक व्यापक प्रभाव रखते रहे हैं। आय समाज के कार्य कम की जिन को कि उसने अपने बहुत प्रारम्भिक काल में बनाया था उसे ही आज देश की प्रगतिशील राष्ट्रिय संस्थायें कायम और हिन्दु महासभा अपना भी कार्य कम बना कर कार्य कर रही हैं और इन संस्थाओं ने अपने इस कार्य में कुछ ही वर्षों में वह अद्भुत सफलता प्राप्त कर ली है जो हमने अपने ५० वर्षों में भी नहीं की। यहाँ पर आकर स्पष्ट हो दो जाता है कि राजनैतिक रूप होने से किसी वस्तु का क्या प्रभाव पड़ता है। यदि आय समाज ने सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लिया होगा जैसा कि वह अब लेने की सोच रहा है तब यह आज की स्थिति से भ्रान्त होता। अब संसार की विचार धारा बदल गई है, आज का युग राजनैतिक युग है, कोई युग था जब की मनुष्य धर्म और वेद के ऊपर लुन की नदियाँ बहा सकने थे, परन्तु इस युग में नवयुवकों को संस्था-समाज-और राष्ट्र की भावना पर धर्म का अपेक्षा अधिक प्रभावित करता है। हम को इस भेद को ध्यान में रख कर कार्य करना होगा।

कई विचार शोल व्याक ऐसा समझने है कि आय समाज की शक्ति क्षिप्त भिन्न हो चली है परन्तु वस्तुतः यह बात नहीं है हमको अपनी शक्ति पर विश्वास रखना चाहिये। हमारे में ऐसा कोई सैद्धांतिक मत भेद नहीं है जिसे यह अनुभव करे कि हम अशक्त या अक्रान्त हैं। जीवन, संस्था, समाज और राष्ट्र के संबंध से ही विकसित होते हैं। केवल किन्हीं वैयक्तिक उदाहरणों को देख कर उनका सम्पूर्ण समाज पर आरोप करना कि समाज की शक्ति बिखर गई है हमको व्याप्य प्रतीत नहीं होता। हमको इस बात से घबराने की भी आवश्यकता नहीं, हमें भय तब होगा चाहिये जबकि हमारे उद्देश्यों और आदर्शों में मत भेद हो। यदि किसी का प्राथमिक आघात भूत सिद्धांतों से ही मत भेद है तो वह आर्य समाजी ही नहीं रहेगा यदि फिर भी वह समाज न रहता है तो उसका समुचित प्रबंध करना चाहिए। यह बात ध्यान देने योग्य है जिसको कि अनुभव किया जा सकता है।

आय समाज का जन्म संघर्षों और संकटों में हुआ है समाज और राष्ट्र के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आय समाज एक विद्रोही संस्था है, इसका काम ही अन्याय और अत्यन्त के सामने लड़ना है, परन्तु कुछ दुष्का विषय है कि आय समाज को यह शक्ति, भूति स्थिति प्रयोगों की प्रामाणिकता सिद्ध करने में ही लगी रही है दूसरे पक्ष ही बिस्मय उपेक्षा कर दी गई है। आय समाज ने अन्याय अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई है परन्तु कुछ धार्मिक बने रहने का प्रयत्न करने के कारण वह इतना सक्रिया काम नहीं कर सकी जितना कर सकता चाहिए था। हैदराबाद सत्याग्रह के दिनों में आय समाज ने बड़ी गम्भीरता पूर्वक इस बात को

अनुभव किया कि उसको राजनीति में भाग लेना चाहिए। केवल कुछ धार्मिक रहने से उसको अपने इस आन्दोलन में बहुत देर और अनुबिधाओं का सामना करना पड़ा। इस सत्याग्रह के और सत्याग्रह के परिणामों ने इस बात को सिद्ध कर दिया कि आय समाज राजनीति में बहुत पिछड़ा हुआ है। यदि हमारा इच्छा हो तो हम कह सकते हैं कि हैदराबाद सत्याग्रह में हमारी विजय हुई हमें कोई राक्रेगा नहीं, परन्तु सुधार चोपला में कहीं पर भी आय समाज का, उसको माँगों का या उसकी पुति का आश्वासन नहीं, सत्याग्रही लोग निजाम के जन्म दिवस को प्रसन्नता में झाड़े गये। हैदराबाद का दश। अब भी यथापूर्व है, यदि १९-२० के अन्तर को विजय कहा जाय तो इस आन्दोलन में हमारी विजय हुई है परन्तु मनकों ऐसा कहते हुए कुछ सन्तोष नहीं हाता है। आय समाज आज बड़े दुःख और शोभ के साथ अनुभव करता है कि वह राजनीति में अनुत्तीर्ण हो चुका है।

हमारे कई दूरदर्शी भाइयों का ऐसा विचार है कि देश में पहले ही इतने दल हैं आर्य समाज का एक नया दल आकर देश की विषम परिस्थिति को विषमतर बना देगा, यह विचार धारा किसी अंश तक मान्य कहा जा सकता है परन्तु आय समाज आर्य मूढ़ कर चलने वाली संस्था नहीं है, हमें आर्य समाज से विश्वास है तथा हम देश की अन्य शुद्ध अंशों में अपने को राष्ट्रिय ममकने वाली संस्थाओं को विश्वास दिलाते हैं कि आय समाज से यह समझना कि उससे देश को हानि होगी बिल्कुल निर्मूल है, हमारी सम्मति में यदि कोई वास्तविक भारतीय संस्कृति को समझते हुए राष्ट्रिय संस्था हो सकती है तो वह आर्य समाज ही है, राष्ट्रिय महामत्स्य कई बार इस संस्कृति के महत्व को मुला चुकी है। इतना अथर्व है कि आर्य समाज ने किसीको उसके दुर्गुणों को छिगने हुए प्रसन्न नहीं करना है और न वह किसी भी व्यय पर भारतीय मर्यादा को छोड़ने को तैयार है। आर्य समाज का पिछला इतिहास उच्च इतिहास है, मकाल को भविष्यवाणा को मिथ्या करने का अर्थ आर्य समाज में ही है। आर्यावत की संस्कृति का विशुद्ध नाम रत आर्य समाज में ही है। हमारे लिये अब समय है कि अगे बढ़कर आर्यावत की स्थापना और अर्थ उना को अर्चुण्य बनाये स्वे।

आर्य समाज के लिए यह अबसर आर्यें खोलने का है, प्रादभा ठोकर स्वाकर ही कुछ सीखना है। हमें आशा है कि आर्य समाज के नेतागण इस अवसर को खोयेगे नहीं किन्तु पूरी तैयारी के साथ अपने सिद्धांतों में पूरा आया रखते हुए दुर्गम राजनीति में प्रवेश करेंगे।

श्री सनीश

## प्रेम

[ अनुवाचक-श्री विद्याधर ]

दार्शनिकों को प्रेम के स्रोत ने भी इतना ही परेशान किया है जितना बुराई के स्रोत ने। सम्वाद में आगे चलकर एक बहत्ता है, जो जेठो ने पेरिस्टोफेनो से

दिलवाये है; लेकिन जिसके बारे में Jowett ने टिप्पणी की था कि 'एरेस्टोफेन का एक भा शब्द अपना नहीं है।'

वह कहता है प्रारम्भिक काल में मनुष्य आधुनिक मनुष्य की तरह नहीं था। प्रारम्भिक मनुष्य "गोल था।" उसकी पीठ और पार्श्व मिलकर एक वृत्त बिनता था। उसके चार हाथ और चार पाँव थे। एक सिर था जिसके दोनों तरफ चेहरे थे। इनसे वह दोनों तरफ देख सकता था। वह आजकल के मनुष्य की तरह सीधा होकर अपनी इच्छा के अनुसार आगे पाछे, दायें बायें जिधर चाहे चल सकता था इसके अनिश्चित वह बड़ा तेज गति से अपने चार हाथों और चार पैरों के सहारे हवा में टम्बलर का तरह, लुढ़क सकता था। लेकिन ऐसा वह नहीं करता था, जब वह बहुत तेज दौड़ना चाहता था। उनका बल और सामर्थ्य भयङ्कर था। उनके हृदय के विचार महान् थे।

उन्होंने एक बार स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया। इन आक्रमणाओं में से Otyx और Ephiante की कहानी विचित्र है। होमर कहता है कि वे दोनों स्वर्ग पर सीढ़ी लगाकर चढ़ गए, और देवताओं पर भी हाथ मार कर बिना होता 'स्वर्ग की राज सभा में खलबली पड़ गई वे सोचने लगे कि इनकी मार देना चाहिये और इनका जानि को, राक्षसों की तरह से विजली गिराकर नष्ट कर देना चाहिये। लेकिन ऐसा करने से उनको भेंट और पूजा मिलनी बन्द हो जाने का डर था, इसके विपरीत वे बिना प्रतिशोध किये अपना अपमान भी बर्दाश्त नहीं कर सकते।

अन्त में बड़े विचार विनिमय के बाद Zeus को एक उपाय सूझा। उसने कहा "मेरा क्याल है कि मेरी तजवीज उनके अभीमान को मिटा देगी, उनके व्यवहार को दुरुस्त कर देगी। और वे जिन्दा भी रहेंगे, लेकिन मैं उनके दो दुकड़ें कर दूँगा। इससे ठहरे दुगना लाभ होगा। इससे उनकी शक्ति ना आधा हो जायेगा, और हम भेंट दुगनी चढ़ेगा। वे सीधे खड़े होकर दो तांगों पर चल सकेंगे; और अगर वे फिर भी गुस्ताख रहे और शान्त न हूँ, तो मैं उनके फिर दो दुकड़ें कर दूँगा। और तब व एक टांग से हूदका करूँ। यह कहकर उभने मनुष्य को दो भागों में फाड़ दिया 'जैसे तुम बाल लेकर एक अण्ड को दो दुकड़ों में विभक्त कर दो।'

इस विभाग के बाद मनुष्य के दोनों हिस्से, एक दूसरे को चाहते हुए इकट्ठे हुए।

हम में एक दूसरे के लिये निहित कामना इतनी पुरानें हैं। जिसके द्वारा हम अपनी पुरानी अवस्था में पहुँच कर, दोनों मिलकर एक होना चाहते हैं और मनुष्य की अवस्था को सुधारना चाहते हैं। हम में से प्रत्येक अकेला होने की अवस्था में छुट्टिका की तरह अशुभ है, और सदा अपने दूसरे आधे की तलाश में है।

"और जब उन में से एक अपने दूसरे आधे को ढूँढ लेता है। तब युगल आश्चर्य, प्रेम, मित्रता और गाढ़ता में स्वा जाता है, और एक मिनट के लिये भी दूसरे की दृष्टि में आभिलषणी होना चाहता। वे दोनों अपना सारा जीवन इकट्ठे व्यतीत करेंगे, लेकिन फिर भी वे यह नहीं बना सकते कि वे एक दूसरे से क्या चाहते हैं।

उनकी एक दूसरे के प्रति अकट चाह से प्रेरितियों के सम्मिलन को इच्छा प्रकट नहीं होता। यह तो कोई अन्य ही इच्छा है, जिससे दोनों की आत्माएं अनुभव करती हैं, लेकिन वर्णन करने में अशक्त हैं; फिर भा वह इसका धुंधला और सन्निवृध आभास रखता है।"

चाहे कैसे भी हो, लेकिन मानवीय हृदय में एक सहज स्वाभाविक बुद्धि है, जिससे हम कभी २ तत्काल अपनी सम्मते कायम कर लेते हैं, जो बहुत कम बढ़ती है और प्रायः कभी भा गलत नहीं होता। प्रथम दृष्टि का प्रेम, यद्यपि आविचेक मालूम होता है, लेकिन फिर भी यह स्फुरणा है। ऐसा मालूम होता है: माना हम अपने पुरानें सम्बन्ध को फिर ताजा कर रहे हैं।

### छठ ३ का शेष

थोड़ी देर के लिये थोड़ी सी बुद्धिक शक्ति से भी युक्त हो जाता है। परन्तु हृदय (जिसको अवयव परस्पर संसृष्ट है एकना युक्त है) तोहा देर में बुद्धिक हाता है पर जब होना है तो स्वयं एक बड़ा भारी बुद्धिक बन जाता है। यह सब शान्ति की प्रथिमा है।

इस प्रकार जिनके मन में शान्ति स्थापित नहीं हुई होती उनका मन किसी बड़े सत्य को ग्रहण नहीं कर सकता। उनके अपने कुछ भी विचार नहीं होते-वे जब उस के विचारों को सुनन, पढ़ने या जानने हैं उस समय के लिये उनक वे हा विचार बन जाते हैं। वे बाहरी विचारों से निरन्तर प्रभावित होने रहते हैं। उनके अन्दर का सत्य का खोज सुख जाता है। उनके अन्दर सत्य अपनी महान् अहुत रचना शक्ति करने का अवसर ही नहीं प्राप्त कर पाता। अस्तु—

मैंने सच्चाई, अमल करना, और शान्ति इन तीन उपायों का निर्देश किया है। उषों २ तुम इन तीन उपायों को बरतोगे त्यों २ तुम्हारे अन्तः करण शुद्ध और बलवान होता जायगा तुम आत्म निरासण करने लगोगे ता तुम्हें कभी सच्चाई की तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता प्रतीत होगी, तो कभी अमल करने का तरफ, और कभी शान्ति की तरफ। यह तीनों ही एक दूसरे के सहायक और पूरक हैं। इन तीनों की ही आवश्यकता है, इस तरह इन उपायों द्वारा तुम अन्तः प्रवेश करोगे, अपने अप को अधिकाधिक जानने वाले बनते जाओगे तब तुम अनुभव करोगे कि सत्य हान स्वभावतः रचना शक्ति में युक्त हैं और साथ उस में जीवन को डालने वाले हैं। और इस प्रकार हरेक सत्य अवश्यम् भावी रूप से तुम्हारे द्वारा सुदृढ-रूप धारण करेगा—

शिक्षा का मूललय बहुत सी कितारें पड़ा देना या हान को बाहर से अन्दर हूँस देना : ही है और भाषों को उत्तेजित करना सिखाना तो कभी नहीं है। शिक्षा का उद्देश्य तो मनबुद्धि को अन्दर से आने वाले सत्य को ठीक २ ग्रहण करने के योग्य-समर्थ बना देना है, मन को रचना करने के समर्थ बना देना तथा भाषों को जीवन डालने का शक्ति से युक्त बना देना है।

## गुरुकुल समाचार

३० रामदेव १४ श्रेणी आमातिसार, ३० वेदराज १४ श्रेणी उन्माद, ३० हरिबंश १२ श्रेणी उदरशूल, ३० रमेशचन्द्र ४ श्रेणी मलेरिया, ३० वेवेन्द्र अम्बाला ४ श्रेणी मलेरिया, ३० महावीर ४ श्रेणी मलेरिया, ३० मनमोहन २ श्रेणी मलेरिया, ३० विद्याधर २ श्रेणी मलेरिया, ३० विद्याभूषण २ श्रेणी मलेरिया, ३० प्रयुक्तकुमार ४ श्रेणी मलेरिया, ३० अविनाराचन्द्र १ श्रेणी मलेरिया।

गत समाह उपरोक्त ३० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।  
अबु सुहावनी है, आकारा में बावल। परे रहते हैं।  
गर्मी अभी विशेष रूप से प्रारम्भ नहीं हुई है।

श्री आचार्य जी गुरुकुल इन्टरप्रस से लौट आये हैं।  
श्री पण्डित के. ज्ञानी जी का College union की ओर से "संसार की वर्तमान समस्याएँ" और उनका हल" इस विषय पर बड़ा मार्मिक और सुन्दर भाषण हुआ। पण्डित जी अब यहाँ से क्वेटा के लिये चल पड़े हैं।

ब्रह्मचारियों के श्रेणी सान्मुख्य प्रारम्भ हो गये हैं।  
हाकी तथा हस्तकन्दुक के अन्तिम संघर्ष शेष हैं। हाकी के अन्तिम संघर्ष में चतुर्वेदा और द्वादशा श्रेणियाँ हैं, तथा हस्तकन्दुक में चतुर्वेदा और एकदश।

धारा सभा के चुनाव की पूरी तैयारियाँ हो चुकी हैं। कांग्रेस की ओर से श्री रामदेव जी चतुर्वेदा खड़े हुए हैं तथा हिन्दु महासभा की ओर से श्री सत्यजित जी चतुर्वेदा। अभी जय पराजय का नान्य देना कठिन है। संघर्ष अच्छा है।

## गुरुकुल-सूपा

गुरुकुल सूपा का १६ वां वार्षिक महोत्सव, पूर्णा नदी के किनारे छठहठ गुरुजरात के इजारों नर नारियों के बीच स्वधूमधाम से मनाया गया।

उत्सव बड़ी सफलता के साथ समाप्त हुआ। इस वर्ष २० ब्रह्मचारी नवीन प्रविष्ट हुए तथा २ हजार रुपये दान मिला।

इस बार के मान्य अतिथि श्री मोरार जी भाई देसाई भूतपूज माल मन्त्री बम्बई, पधारे थे।

## गुरुकुल कुरुक्षेत्र

कुरुक्षेत्र २५ मार्च

१-अबु उत्तम है। पिछले दिनों कुछ वर्षा होने से अभी गरमी शुरू नहीं हुई है ब्रह्मचारियों का स्वस्थ उत्तम है।

२-कलकत्ते के सेठ मूलचन्द्र जी माथुर के दान से एक सुन्दर धमशाला बनकर तैयार हो गई है।

३-गुरुकुल के योग्य स्नातक पं० विक्रमादित्य जी जो पहले गुरुकुल इन्टरप्रस में १५-१६ साल से अध्यापक थे पिछले ६ मास से यहाँ अतिथितिक रूप से पढ़ा रहे थे। प्रसन्नता की भाव है कि अब आपने स्थिर तौर पर कार्य करना स्वीकार कर लिया है।

४-इस वर्ष अष्टम श्रेणी के पांच ब्रह्मचारी परीक्षा केलिये इन्टरप्रस गये थे सबका परीणाम अन्य गुरुकुलों से उत्तम रहा। सभी ब्रह्मचारी सब विषयों में बड़े अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुए हैं।

## दो गीत

श्री आनन्द

### रुदन

मैं भी रो लूंगा, गा दो ना ?

तब से बंसी के छिद्रों पर,  
नचा रहे हो अंगुली नटवर !

परे पटक कर उसे, रागिणी अपनी अरे, सुना दो ना ?

मैं भी रो लूंगा, गा दो ना ?

जिसने इस बंसी के अन्दर,  
भर डाला है जीवन का खर,

उस अपनी मधु मंजुल ध्वनि से प्रिय, यह विश्व गुंजादो ना ?

मैं भी रो लूंगा, गा दो ना ?

मुसकाते ही जाते हो तुम,  
गीत न अब भी गाते हो तुम,

मत गाओ ! पर इन आँखों में प्रिय, रोना तो, ला दो ना ?

मैं भी रो लूंगा, गा दो ना ?

### गायन

गीत ही गाता रहूँ मैं !

विश्व सारा खिल खिलाने,

हर्ष रव में रव मिलाये,

किन्तु हे प्रभु निज सदन के कोण में बैठे अकेला—

गीत ही गाता रहूँ मैं !

सामने कठिनाइयाँ हों,

गिरि शिखर हों, खाइयाँ हों,

मैं चढ़ूँ, उतरूँ, गिरूँ, बाहे कलूँ कुछ क्यों न, फिर भी—

गीत ही गाता रहूँ मैं !

चोट पर खा चोट निभुए,

नाथ यदि फट जाय यह उर,

हे विनय मुक्त दीन जन की, उस समय भी मूढ़ सा हो—

गीत ही गाता रहूँ मैं !

### आवश्यकता

आर्य समाज जमशेदपुर (टाटागर) के लिये एक सुयोग्य गुरुकुल के स्नातक की आवश्यकता है, जो वहा पुरोहित का कार्य कर सकें वहाँ की शिक्षित जनता में वैदिक धर्म का प्रचार कर सकें तथा उनका धर्म सम्बन्धी शङ्काओं का समाधान कर सकें। उसके अन्दर वैदिक धर्म के प्रति लगन होनी चाहिये। जमशेदपुर के आसपास के स्थानों पर भी उसे वैदिक धर्म का प्रचार करना होगा। अर्धेजी भाषा का भी अभ्यास होना आवश्यक है। (वेतन ४०) से ५०) तक तथा निवासस्थान का प्रबन्ध आर्य समाज की ओर से होगा। इच्छिणाँ का पुरोहित अपने उपयोग में ला सकता है। आर्य समाज की आर्थिकस्थिति की उन्नत के साथ २ वेतन वृद्धि की आशा करनी चाहिये। प्रार्थना पत्र निम्न पते से भेजना चाहिए।

आचार्य गुरुकुल विद्याधरदास्य कांक्षी  
जि० सहारनपुर

स्मृतिवर्धक

ब्राह्मी बूटी

॥१॥ सेर

सुगन्धित

इबन सामग्री

॥१॥ सेर

गर्मियों में  
एक बार जरूर आजमाइए

## गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी

का प्रसिद्ध

भीम  
सेनी  
सुरमा

आंखों से पानी बहना, खुगली कृकरे सुर्खी, जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त आंखों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ माशा ॥२॥ १ तं० ३॥

ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन कान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग तरोजा रहा है। दिमागी कमचोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, आंखों में जलन आदि रोगों में तुरन्त आराम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहायनपुर )

प्रांच { लाहीर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहली—चांदनी चौक  
पटना— मछुआ टोली, बांकीपुर

भीमसेनी दंतमंजन

दांतों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है  
मूल्य ॥१॥ शीशी, ३ शी० १॥

सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

सुपौरी पाक

खियों के जरियायन रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।  
मूल्य १॥१॥ पाव



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मूल्य-पत्र ]  
 सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदाढ्यार

वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ५ ]

गुरुकुल काङ्गडा, गुकनाम २६ वैशाख १९६७; १० मई १९५०

[ संख्या ५ ]

## नपुंसक ज्ञान और निर्वीर्य भावावेश

गतांक से आगे

[ लेखक—श्री आचार्य प्रमथदेव जी ]

### रचनात्मक कार्य

अब एक बात रह गई कि "तो फिर गुरुकुल के प्रवचनारियों को स्वराज्य स्थापना के लिये क्या करना चाहिये"। इसका असली उत्तर तो यह है कि जब तुम्हारा मन मन्थ को प्रदूष करने और उसको ठीक कल्पना में लाने में समर्थ हो जायेगा और तुम्हारे भाव उभ सत्य कल्पना में जावन डालने के योग्य हो जायेंगे तब तुम जो भी कुछ करोगे वह ठीक ही करोगे। हरेक मन्थ और समर्थ व्यक्त अपने प्रकृति और शक्ति के अनुसार जो कुछ सेवा करेगा उससे देश का लाभ ही होगा। परन्तु फिर भी मैं इस विषय में धाड़ा सा रखूँ, यत्रण इसलिये करना हूँ जिससे कि तुम कार्य करते हुये यह परीचा कर सको कि तुम ठीक गाने में ही देशसेवा कर रहे हो या नहीं।

पहली बात यह है कि तब तुम कुछ रचनात्मक और दोस कार्य करने के लिये प्रवृत्त होंगे। क्यों कि तुमने स्वराज्य के सत्य को जहाँ तक देखा होगा उसके अनुसार भारतीय स्वराज्य को एक कल्पना तुम बना चुके होंगे। स्वराज्य मन्थ की यह कल्पना तुम्हारे द्वारा क्रियाशिवत होकर मृत रूप में आना चाहती होगी। उसके लिये तुम कुछ न कुछ करना चाहोगे। प्रत्येक देश वासी के मन में स्वराज्य को कुछ कल्पना है; नेताओं के सामने तो अधिक विस्पष्ट कल्पना बनी होती है, परन्तु जिसने स्वराज्य के सत्य को अधिक से अधिक देखा है जिसने भारत को अन्तरात्मा से अपने को एक करके भारत का आन्तरिक अभीप्सा के सत्य रूप को जाना है उसकी स्वराज्य कल्पना सभी से सभी होने के कारण अधिक से अधिक रचना शक्ति रखने वाली और बहुत बलवती होगी। आजकल वह रचना शक्ति शायद गांधी जी द्वारा प्रकट हो रही है। अस्तु।

मन्थ मदा कुछ रचना करना चाहता है, यदि सत्य किसी चीज का ध्वंस करना चाहता है तो भी उम के मूल में रचना का ही भाव होता है। हिंसामक युद्ध और ठीक प्रकार के युद्ध में (जिसे मैंने स्वाभाविक परिपाक कहा है और जिसे आजकल के अस्वाभाविक युद्ध के विरोध में अहिंसात्मक युद्ध कहना चाहिये) भेद यही है कि पहला ध्वंसामक और अप्रीति (ड्रेप) मूलक होता है तथा दूसरा रचनात्मक और प्रीतिमूलक होता है। इसलिये हम अपनी स्वराज्य प्राप्ति के लिये स्वराज्य की कल्पना को मूल रचना के रूप में लाने की तरफ ही ध्यान देंगे और इस लिये जो कुछ भी कर सकते होंगे वह सब कुछ करेंगे। यदि हम ठीक प्रकार से रचना का कार्य करेंगे तो जो कुछ विरोधी वस्तु हैं वे हमारे रचना बल के सामने अपने आप दूर होती जायेंगी।

### चर्चा

कल्पना करो कि तुम में से किसी के अन्दर देशभक्ति की अग्नि जल चुकी है (और वह अग्नि मोम को उपासना द्वारा तुम्हारे वश में भी है) तो तुम स्वाभावतः यह चाँदोगे कि हमारे देश के और लोगों में भी यह पवित्र अग्नि जल उठे। सब देशवासियों को पर्याप्त अंश में सभी स्वराज्य कल्पना से युक्त प्रकाशमान देशभक्त बना देना स्वराज्य के भवन को आधे से अधिक लड़ा कर देना है। पर अपने बंधे सारी देशवासियों में व्याख्यान देते से या उपदेश सुनाने मात्रसे देशभक्ति नहीं आ जायगी। यदि देश की अवस्था को तब तक कुछ भी समझा है तो तुम्हें अपने देश की असौम्य सारीकी दुःखी किये बिना नहीं रहेगा और सेवाद्वारा, और उम में भी गरीबी दूर करने की किसी सेवा द्वारा ही तुम अपना संदेश उमक हृदयों तक पहुँचा सकोगे। इसी कारण चर्चा तथा अन्य प्रामोयोग हमारे स्वातन्त्र्य युद्ध के हथियार बने हैं। यदि तुम्हारा स्वराज्य-कल्पना कुछ भी गम्भीर सत्य पर आश्रित है तो तुम देखोगे कि भारतीय सभ्यता मासप्रधान सभ्यता है, भारतीय संस्कृति चर्चा और प्रामोयोगों को पुण्य संस्कृति है।

अतः हिंसात्मक युद्ध में जैसी ध्वंस करने वाले तोप बन्दूक आदि हथियार होते हैं वैसे हमारा सत्य और अहिंसा के (सत्य कल्पना और प्रेमभाव से उठे) युद्ध में रचना करने वाले कपड़ा तथा अन्य अन्यन्त जीवनोपयोगी वस्तुओं को बनाने वाले औजार ही हमारे हथियार हैं। इन औजारों द्वारा न केवल कपड़ा आदि वस्तुएँ बनेंगी किन्तु भारत की नई हाता संस्कृति का ही पुनर्निर्माण होगा और हम लोगों की सच्चा देशभक्ति के कारण हमारा सारी आदि का बनाना हा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने का शक्ति भी रखने वाला होगा। अतः यह सार्वी का काम स्वराज्य की सच्ची कल्पना सामने रखने के भाव से हो प्रेरित हाकर होना चाहिये, देखा देखी या किसी को खूश करने के लिये या किसी अन्य विषयों या केवल जड़ भाव से अतएव झपूरे मन से नहीं होना चाहिये। क्योंक यदि हम ऐसा करके तो उस से हम अपने अन्दर के सत्य विचार को और अपने गरीब देशवासियों के प्रति करुणा के भाव को नहीं प्रकट कर रहे होंगे। हम यँही दंभ से या जड़भाव से चर्चा चला रहे होंगे। हमारा चर्चा कालना यदि हमारे अन्दर के उस सत्य भाव को ही क्रिया में परिणत रूप होया तभी वह स्वराज्य स्थापना की शक्ति में युक्त होगा। असतु

### एकता

इसी तरह राष्ट्रीय शिक्षा, मध्यनियंत्रण, अद्वैतपन-निवारण आदि अन्य कई रचनात्मक कार्य हैं जिनकी कि तरह मुझे तुम्हारा ध्यान खींचने की आवश्यकता नहीं। आर्यसमाज इन की तरह पहले से ध्यान देना रहा है। परन्तु साम्प्रदायिक एकता—जिनकी कि आज कल आवश्यकता और भी ज्यादा बढ़ी हुई है—की ओर अवश्य विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, और। सम्प्रदायों में भी हम आर्यसमाजियों का हिन्दू और मुसलमानों इन दो सम्प्रदायों की परस्पर एकता की ओर हमारी देशभक्ति और से ओर साम्प्रदायिक मुसलमानों को भारतमाता का अपना सा ही पुत्र और अतएव अपना भार अनुभव करायें। परस्पर विद्वेष की आसुरी शक्तियाँ आज स्वराज्य की आधार भूमि इस साम्प्रदायिक एकता की नष्ट घट कर देने के लिये उभरना के साथ तय हो रही हैं। हमें आत्म बलिदान से अनुप्राणित प्रेम की शक्ति द्वारा इन्हें परास्त कर अस्त माना की सच्ची विजय स्थापित करनी है। यदि तुम में कभी दूसरे सम्प्रदाय वालों के प्रति कमजोरी के कारण डोब (अप्रीति) का असमानन आसुरी भाव उत्पन्न होवे या नभ भी कम से कम तुम्हें अपनी सावधानी बरतनी चाहिये कि तुम साम्राज्यवाद की निपुण विमर्द-नीति के कभी भी शिकार न बनो मंगा मतलब यह है कि यदि हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ना ही चाहें तो वे विदेशी सरकार की पुलिस और कौज की अधीनता में परबशना में, कायरेना की लड़ाई कभी न लड़ें। स्वराज्य की भावना को स्पष्ट सामने रखने हुए, अमेजी शासन को ( जो कि एक असत्य है) बिलकुल

धुंसाकर हम यदि आपस में खुलकर लड़ेंगे भी तो वह हमारी सच्ची लड़ाई होगी और अतएव हम में जड़ती ही एकता को भी ले आने वाली होगी। बहुत संभव तो यह है कि तब हम लड़ ही नहीं सकेंगे। पर यदि लड़ना अनिवार्य ही हो तो वह सच्चाई के साथ और स्वराज्य के सत्य को आँकों से ओझल न करने हुए ही होना चाहिये। वह भाई भई की लड़ाई होगी चाहिये। इस लिये स्वार्थ, मनो Voted की प्राप्ति, ओहदों की गालसा आदि कारणों से जो कुछ लड़ाई होगी या देखी जानी है, साम्प्रदायिकता को उमाड़ कर लोगों को गुमराह किया जाता है वह तो खत्म होना चाहिये। देशभक्ति का पवित्र अग्नि में ये सब मिल द्रव्य हो जाने चाहिये। देशभक्ति के जीवनदायी तेज के कारण इस तरह लड़ने से—किनना भी उकसाये जाने पर—इन्कार करने की शक्ति हम में आजानी चाहिये।

### यज्ञ और संग्राम

चर्चों और एकता के अतिरिक्त यदि और कुछ करने को रहता है तो वह श्वय यह करने में आजाता है कि हमें अपनी राष्ट्रीय महासभा का आका का या अपने मना-नायक की आका का पूरी तौर से न केवल बाह्य क्रिया के रूप में किन्तु पूर्ण मन और हृदय में ( पूर्ण विचार और भाव से ) पालन करना चाहिये।

यह जो कुछ मैंने कहा है उसे दूसरे शब्दों में कहूँ तो यह यह है कि हमें आरंभ किये इस स्वराज्य प्राप्ति के यज्ञ का पूरा करना चाहिये। वैदिक साहित्य में स्वयं संग्राम वाचक शब्द यह वाचक भी होा है। इसका अर्थ यह है कि वैदिक दृष्टि से एक सच्चा संग्राम यज्ञ रूप ही होना चाहिये। जा संग्राम युद्ध से युद्ध आत्म बलिदान चाहता है वह संग्राम उनना ही ऊँचा यज्ञ हो जाता है। तो यज्ञ की भाषा में हमारा यह स्वराज्य प्राप्ति का संग्राम केन चले इस की तरह ज़रूरी ध्यान आकृष्ट करके में आना कथन समाप्त करता है।

मैंने भावों के प्रकरण में कहा था कि सब समानता भावों का केन्द्रिय भाव प्रीति है और वह प्रतिभक्ति, मैत्री और करुणा इन तीन रूपों में प्रगट होती है। इन तीन भावों को ही हमें अपने अन्दर विशेष रूप से विकसित करना चाहिये। अर्थात् बड़ों के प्रति भक्ति ( न कि उद्धतता ) बर बर वालों के साथ मैत्री ( न कि डोब ) और छोड़ों के साथ करुणा ( न कि क्रुता या अत्याचार ) पर अश्व मैं यह कहना चाहना शूँ कि जब यहा तीनों भाव क्रिया रूप में परिणत होने हैं तब ये यज्ञ बन जाते हैं। कर्मकरुण्ड ही तो यज्ञ है, और यज्ञ का अर्थ है, 'देव पूजा संगति करण-दानेयु'। बड़ों के प्रति की गर्वी प्रीति भक्ति का रूप धारण करती है, और भक्ति जब क्रिया रूप में आती है तब वह देवपूजा नामक यज्ञीय कर्म में परिणत होती है। बर, बर वालों के साथ प्रीति मैत्री, भाव का रूप धारण करती है और मैत्री भाव जय क्रिया में आता है तब वह संगतिकर्ण नामक यज्ञीय कर्म में परिणत होता है एवं छोड़ों के प्रति की गई प्रीति करुणा भाव का रूप

पारख करती है और कठका भाव जय क्रिया रूप में आता है तब यह दान नामक यक्षीय कर्म में परिणत होता है। तो यदि हमने स्वरूप प्राप्ति के यत्न को पूरा करना है तो हमें इन्हीं भावों को जगाकर ठीक प्रकार से इन्हीं क्रियाओं में परिणत करना होगा। हमारी भक्ति देवपूजा में परिणत हो, देश के नेताओं की हम पूजा करें, उनकी आज्ञाओं का पालन करें, एक सैनिक के तौर पर सेनापति के आदेशों को पूरे विश्वास और भाव के साथ पालन करने हुए हम सब्दा अनुशासन में रहें। भारत माता की पूजा, राष्ट्रपिता का की सन्धना का अर्थ यही है कि हम गार्हपत्य महात्मना और अपने देश के नेताओं के आज्ञापालक और अनुशासित सेवक और सैनिक बनें। यह यत्न का ऊपर का भाग है। उच्चमांग है।

हमारा मैत्रीभावसङ्कति करण में परखत हो, देश के सब भाई परस्पर एकता से जुड़े हुए हों, किसी प्रकार की वसङ्कति न हो, परस्पर सहयोग, मेल, एक सुखता, यह सब सङ्कतिकरण की ही व्याख्या है। सम्प्रदायों की एकता के बारे में मैं ऊपर कह चुका हूँ, यह एकता, हम यत्न के पवित्र भाव से करें तभी यह स्थिर और सखी एकता होगी। हम सबने मिलकर अपना सङ्कतिकरण करना है और इस सङ्कतिकरण के बल से हो अपने राष्ट्र यत्न को पूरा करना है यह पवित्र भावना हममें लगातार रहे।

कल्याणभाव दान में परिणत हो। जो हम से छोटे हैं, कमजोर हैं, किसी भी बात में कम हैं, उनके प्रति कठका हो और वह कठका उन छोटे, दुर्बलों और गरीबों को देने में चरितार्थ हो। अर्थों का आन्दोलन आर्थिक दृष्टि से छोटे, गरीब लोगों को दे सकने के यक्षीय कर्म का ही आम्बोलन है। और हमारे देश के आर्थिक दृष्टि से ही विशेष कमजोर होने के कारण इस कठका का और इस दान का ही इस समय विशेष महत्त्व होगा है। इसी प्रकार जिनमें ज्ञान की कमी है उनको ज्ञान दान देना चाहिए। 'अक्षुत' भाइयों की सेवा करना भी यत्न के इसी अङ्ग में आता है। जो वस्तुतः अल्पमत में हैं, जो वस्तुतः कमजोर हैं जो किसी प्रकार भी कम है उनको देने द्वारा पूरा करने की प्रवृत्ति हममें सहज भाव से होनी चाहिए। तभी यह हमारा यत्न फलीयुत हो सकेगा।

मानसिक जगम में कल्पना या मानसिक रचना के रूप में तो भारतीय स्वरूप बहुत कुछ बन चुका है, स्थापित हो चुका है। बहुत कुछ इसलिये कि अब भी एक प्रकार का संघर्ष चल रहा है। पर जहाँ तक विदेशी शासन से मुक्ति का संघर्ष है वहाँ तक मानसिक चित्र पक्का बन चुका है। यदि हम भक्ति, मैत्री और कठका के भावों द्वारा हम इसमें लगातार प्राण सञ्चार कर सकें और वह प्राण सञ्चार देव पूजा, संगति करण और दान की क्रियाओं में अभिव्यक्त होता रहते तो हमारे पवित्र सङ्गय यत्न की पूर्ति दूर नहीं है।

## प्रेम

[ अनुवादक—श्री विद्यादेवकार ]

"उमको देख मैं उसकी तरफ आकर्षित हो गया और उसमें सदा के लिये प्रेम करने लगा।" (धम्म) यद्यपि अनुभव ने इस अनुभूति को बहुत कम गलत मान्यता दिया है, लेकिन श्रुतिस्मृति से इसका उलट ठीक नहीं है। गाढ़ प्रेम बहुत धीरे-धीरे प्रगति करता है। गाढ़ प्रेम सच्ची भक्ति से प्राप्त होता है।

Montaigne ने वास्तव में कहा था कि "थोड़े से अपवाद मिलेंगे, जो प्रेम के लिये विवाह करने न पड़तायें हों"। डा० जोन्सन का ग्याल था कि अगर विवाहों को भी परमात्मा ही निश्चित करना तो वे अधिक मुन्की हो सकते। पर मैं यह नहीं समझता कि इन में से कोई भी उचित निर्णय है। जैसा कि Jamesot Antoinet की आमागी कुमारी को कहा था "मैं बाधित होकर प्रेम करने की पसन्द नहीं करता, क्योंकि प्रेम हृदय में वस्तु है; इसे ठोक पीट कर नहीं बनाया जा सकता"।

प्रेम ने कभी समय और दूरी की परवाह नहीं की। Sestas और Abydon को समुद्र ने विचुक कर रखा था, लेकिन उमके धनुष से निकले हुए एक तीर ने उमको फिर मिला दिया।" Symonds।

"प्रेम सर्वत्र आनन्दमय है"। वायरन।

"क्या ही अच्छा हो, अगर मैं भर प्रदेश में भी सारी मनुष्य जाति को मुलाकर किंसा से भी द्वेष न रखते हुए लेकिन केवल अपने प्रिया को प्यार करते हुए; अपना जीवन व्यतीत कर सक ? और बहुतायें ने निरसन्देह यह अनुभव किया होगा— "कितने सुन्दर थे वे दिन, तब हम खजूर, आइ, सन्तरे और अङ्कुर वगैरह के कुञ्जों में प्रेम-विहार किया करते थे"।

जो बात दूरी के लिये ठीक है, वह समय के लिये भी उन्नी तरह लागू है। "शांति में प्रेम ग्वालों की बांसुरी में बजता है। वहाँ प्रेम युद्धकाल में मनुष्य को बांग बनाकर चाँड़ पर चढ़ा देता है। इमा प्रेम को बदौलत बड़े-बड़े भवन पोशाकी चमक से चीथियाँ जाते हैं; और यहाँ प्रेम गाँवों में प्राकृतिक ढरे सखमलों फरा पर नाचता रिग्याई देता है। प्रेम अदालत, लड़ाई और कुञ्ज में मंचय इह लोक के मनुष्यों और परलोक के देवों पर एक रूप से शासन करता है, क्योंकि प्रेम ही स्वर्ग है, और स्वर्ग ही प्रेम है।" Seal.

यद्यपि पृथिवी जानियों में धर्म और दर्शन दोनों ने मिलकर प्रेम को निन्दा की है, लेकिन सत्य ने कईबार अपने को कहावतों और किन्व दंतियों के रूप में प्रकट किया है। उदाहरण के तौर पर एक तुक कहावत के अनुसार "तुम्हारी प्रेमिका के सिवाय, स्त्रीमात्र तुम्हारे लिये पृथी है"।

एक कैब्र मलिला ने अष्टुल काष्ठ के सामने पोलिशा कहावत पेश की "एक स्त्री अपने सिर के एक बाल से

[ शेष पृष्ठ ७ पर ]

# गुरुकुल

२६ वैशाख शुक्रवार १९६७

## रवीन्द्र जयन्ती

परम पिता की असीम कृपा से विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का ८० वां जन्म दिवस ८ मई को मनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। प्रायः भारतीयों की आयु बहुत अल्प है, भारत में महापुरुषों की जयन्तियां भी बहुत शीघ्र समाई जाने लगती हैं। वस्तुतः यह बड़े हृष का विषय है कि कविबर रवीन्द्र ८० वें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं, और पर्याप्त दीर्घायु को प्राप्त कर सकें हैं। यद्यपि वेद का त्रैलोक्यिक प्रार्थना में "भूयश्च शरदः शतान्" का सन्देश है। हम भी विश्व कवीन्द्र के सभी भक्तों और प्रशंसकों के साथ इस महापुरुष के दीर्घायु के लिये परम पिता से प्रार्थना करते हैं और कविबर के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

विश्व में, वर्तमान युग में परतन्त्र भारत का मिर ऊँचा करने वालों में, विश्व की भारतीय सन्देश सुनाने वालों में रवीन्द्र का नाम महारमा गांधी के साथ याद आता है। गीताश्रुति लिखकर 'लोकल प्राज्ञ' जीतने वाले परतन्त्र भारतीय पर देश गर्व कर सकता है। अमेरिका हम चीन आदि देशों में जाकर 'बहुलमात्र' का भारत का सन्देश सुनाने का काम कविबर ने ही प्रथम सश्र किया। दार्शनिक जगत में, Hibbert Lectures की व्याख्यान माला में 'Religion of man' मुनाया। आज विश्वार्थी काल में अध्यापक नियन्त्रण से बच कर भागने वाले, यूनिवर्सिटी के दरवाजों को न देख सकने वाले इस व्यक्ति को संसार विश्व का सर्वोत्तम मल्लिक कहते हुए गर्व अनुभव करना है।

आज कवीन्द्र का शान्ति निकेतन विश्व की विरुद्ध संस्कृतियों के समन्वय की संस्था बनी हुई है। संसार का मभी मृत या वर्तमान संस्कृतियों के प्रातिनिधि उसे अपना तीर्थ स्थान समझते हैं। रवीन्द्र के प्रयोगों का विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हो चुका है, संसार में भारत का मिर ऊँचा करने का श्रव आ रवीन्द्र की स्वभावतः प्राप्त होता है।

रवीन्द्र विश्व विदित कवि है। साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी सर्वोत्तम प्रतिभा ने अपना विकास किया है। गीताश्रुति, साधना आदि में इनकी गाम्भीर्यमय आध्यात्मिक कविता उपलब्ध होती है। कहानियाँ, निबन्ध नाटक गीति सब क्षेत्रों में इनका पूर्ण आधिपत्य है। विचारों का गाम्भीर्य, जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूति, संसार के सब पदार्थों से जीवन के मव दृष्टि कोशों से—साक्षात्

सम्बन्ध की ही कृतियों में स्थान स्थान पर परिलक्षित होता है।

रवीन्द्र न केवल साहित्यकार है अपितु उन्होंने शिक्षा के विषय में भी एक महान् कान्ति की है। मैकाले की मन को शास बनाने वाली शिक्षा के विरुद्ध प्रकृति की गोप में रव कर बालकों का आत्मा का मान करने हुए सम्पूर्ण विश्व के माथ तादात्म्य अनुभव करने हुए सब संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय करने वाली प्राचीन गुरुकुल प्रणाली को ध्यान में रव कर शान्ति निकेतन की स्थापना की। रवीन्द्र के विचार में शक्ति है, उनके सत्य में रचनात्मक प्रकृति हे वे क्रिया में आना चाहते हैं।

रवीन्द्र ने भारत को जगत् में महत्त्व पूर्ण बना लिया है। बग भंग के दिनोंमें—लेखों से, नाटकों से, गीतों से सब बंगाल को जगाने वाले यहाँ थे। आपके लेख आज भी देशभक्ति की भावना जगाने हैं। 'श्रयि भुवन मन मोहनी' आज भी मन में सम्पूर्ण भारत का चित्र खींच देता है। पा इव मानवता का, देश और जाति को वेदना रवीन्द्र को व्यथित कर देती है। वह राजनीतिज्ञ नहीं है पर उमका हृदय राजनीतिक दुःखों से व्याकुल रहा है। वह भारतीय संस्कृति का उपामक है, उपनिषदों में उसने प्रेरणा पाई है, कालीदास और बाण का संदेश मुना है। लोक गीतों में रम पाया है। रवीन्द्र के गीत आज मानव का दुर्गम यात्रा में सहस्र-बचाने वाले हैं भग्न हृदय में आशा का मंचर करने वाले हैं। पारमार्थिक व्यास, कालदास-भक्तृनि इन सब बड़े कवियों के बाद इस युग में एक बार फिर रवीन्द्र ने उसा प्राचान भारता का अध्यापन किया है।

रवीन्द्र जैसी विभूति कई युगों के मुकुट पुञ्ज के परिणाम स्वरूप किसा देश को उपलब्ध हुआ करती है। हम भारतीयों का अपने इस महान् कलाकार के लिये गर्व है। हमारा इस विश्व गुरु को श्रार वाग प्रणाम है। हम परम पिता से पुनः उनके दाघायुष के लिये प्रार्थना करते हैं।

## —प्राजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस

अभी देहली में देश के प्रगतिशील कहजने वाले मुसलमानों की एक कान्फ्रेंस हुई जिनमें मुसलमानों के कुछ सचबे नेता जिन्होंने देशके लिये अपना बर्बाद नैयाप दी है, खलत्रना सत्राम के दिनों में जा कई बार जेल जा चुके हैं इकठ्ठे हुए। इस में उन्होंने बड़ी उदारता पूर्वक देश की वर्तमान गाम्भीर परिस्थितियों को हल करने का प्रयत्न किया। मुसलमानों के श्रार कुछ वर्षों के राष्ट्रिय इतिहास में यह कान्फ्रेंस अपना एक विशेष स्थान रवनी है। इस प्रकार के उदार विचारों वाले मुसलमानों का इतनी बड़ी संख्या में इकठ्ठा होना उनके लिये एक गौरव की वस्तु है। इस कान्फ्रेंस के प्रधान भी खां बहादुर अदालतबशा भी इस पद के योग्य ही थे। इस कान्फ्रेंस में सर्व प्रथम लाहौर में मुस्लिम लीग द्वारा स्वीकृत पाकिस्तान योजना का बड़े जोरदार शब्दों में अस्वीकार किया गया और सबसे एक मन से स्वीकार किया कि भारत एक है उसकी

असह्यता बनाए रखना हमारा कर्तव्य है। उसके लखड़ २ करने की योजना हिन्दु मुसलमान दोनों के लिये घातक है, हमारे लिये यह कदापि मान्य नहीं। इस कार्फेस से यह भी सिद्ध हो गया कि मुस्लिम लोग मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था नहीं है।

कार्फेस में अन्य कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्व किये गये जिनकी देखभाल हमें प्रसन्नता हुआ कि देश को लड़ ई में अब मुसलमान अधिक देर तक पीड़ रहना नहीं चाहते। हमको मुसलमानों में इस जागृति की देखभाल कुछ स ताप हुआ। परन्तु इसके बाद मुस्लिम हितों के संरक्षण के लिये जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ उसने पड़ने की गई सब कार्यवाही पर पानी फेर दिया—इस प्रस्ताव के सामने आने ही राष्ट्रवादी मुसलमान भी अपने को सच्चा भारतीय दिखाने में असमर्थ रहे। यहाँ आकर 'मुस्लिम लीग' और 'आजाद मुस्लिम कार्फेस' में अंद नहीं रहा। स्वयं राष्ट्रपति मौलाना आजाद मुस्लिम हितों के संरक्षण के लिये इन्हीं विभागों के पक्ष में हैं। इन बातों को देखते हुए हमको अपने इन भाइयों से कभी २ बड़ी गहरी निराशा होती है। यह ठीक है कि मुस्लिम लीग जैसी धर्मन्यता और कटरता इन नेताओं में नहीं है। ये लोग देश की स्वतंत्रता को पूरे दिल से चाहते हैं परन्तु यह करने हुए हमको दुःख होता है कि—हमारा यह विश्वास कुछ समय के लिये स्थिर हो गया है कि एक स्तर ऐसा है जहाँ पर राष्ट्रवादी मुसलमान और मुस्लिम लीगो मुसलमान कन्फेस में कच्चा मिड़कर अपनी मुस्लिम नाति के नातों को सुनष्ट कर सकें ह और इस अवस्था में उनको देश को स्वतंत्रता को विन्ता नही।

मुस्लिम हितों के संरक्षण के विषय में बन्दूक के श्री आदिद अली के विचार हने पसन्द आये। आपन देहली कार्फेस में इस संरक्षण के प्रस्ताव का विरोध किया, आपने कहा कि स्वतंत्र भारत में हमारे क्या अधिकार होने चाहिये इसका निर्णय करने का अधिकार हमको नहीं किन्तु उन प्रतिनिधियों को होगा जो कि उस समय हींग जबकि भारत स्वतंत्र होगा। उस समय की देश का परिस्थितियों का ध्यान में रखते हुए तत्कालीन नीति के अनुसार इस विषय में उन्हीं लोगों का विचार करने का अधिकार है। हमारे लिये ऐसी स्थिति नहीं है कि हम उसके लिये यथ म मायापक्षी करें। उस समस्या पर जो बहुत दूर—और जिससे पहले की समस्याएँ हल करनी आवश्यक अवश्य है विचार करना समय की गति के पीछे रहना है। यद्यपि हम इन विचारों से पूर्णतया सहमत नहीं हैं परन्तु फिर भी मुसलमानों की जागृति के लिये ये विचार आशा जनक हैं। हमारी सम्मति में जानीय—या सांघदायिक अधिकारों के लिये पृथक रूप से राज्य को विचार करने की आवश्यकता नहीं है। राज्य को तभी भारतीय की बुद्धि से भारतीय हितों की रक्षा करनी है।

यह कार्फेस राष्ट्रीय दृष्टि से इतनी सफल नहीं हुई जितनी प्रारम्भ में प्रतीत होती थी, परन्तु फिर भी हमको आशा है कि अब मुसलमान और अधिक रूप से भारत के साथ आत्मीयता स्थापित करके उन लुप्त बानों की

बिहकल उपेक्षा कर देंगे जो कि देश के लिये और उनके अपने लिये घातक है।

### बीदर का दंगा-

हैदराबाद सत्याग्रह के बाद हमको कुछ आशा बंधी थी कि हैदराबाद में अब कुछ शान्ति से और निष्पलना की नीति से काम लिया जायगा, बीच २ में कुछ घटनाएँ ऐसी हुई जिनके लिये यह कहा जा सकता था कि अचिकारी इन बातों को दूर करने में स्तर्क है—परन्तु बीदर के अमानुषिक नृशंस घटना की देखकर हमें फिर कहना पड़ेगा कि हैदराबाद की दशा पहले की ही तरह है। अब भी वहाँ के अधिकारी अपने कर्तव्य पालन में उचित ध्यान नहीं दे रहे हैं। वहाँ तक की दो मन्त्रों को कि दंगे के स्थान से कुछ ही दूर थे स्थिति को देखने तक के लिये समय के अभाव में नहीं आ सके। और स्थानीय पुलिस ने भी इस विषय में उपेक्षा दिखाई हा घड़ी नहीं किन्तु उसने भी उन मुस्लिम गुरदों को इस कार्यवाही में महायना दी। ऐसी अवस्था हैदराबाद रियासत के लिये आश्चर्य जनक तो नहीं किन्तु शोचनीय अवश्य है।

हम रियासत के संचालकों से यह आशा करते कि वह इस कांड की निष्पल जाँच कराए और जा अपराधी हैं उनको कठोर दण्ड दिया जाय तथा जिनको हानि हुई है उनको सहायता की जाय। रियासत की यह मालूम हो कि उसकी अधिक प्रजा हिन्दू प्रजा है उसकी सतृप्ति में ही उसकी सतृप्ति है, हिन्दुओं को सहयोग के करण ही उसकी नीय दृढ़ रह सकती है। इतनी बड़ी प्रजा को उपेक्षा करना किसी भी रियासत के लिये अदुरदशिता का काम है, इसका परिणाम स्थायी सन्तोष जनक नहीं हो सकता, यह भूलना नहीं चाहिये। हमें आशा है कि हैदराबाद रियासत अब भी संभल कर कदम उठायेगी, जिससे वह अपनी स्थिति को स्थिर बना कर सके।

'श्री सनीश'

### प्रभात की रश्मियों में—

ने० श्री सत्यभूषण 'बोग'

( श्री सत्यभूषण बोग गुरुकुल के सुयोग्य ज्ञानक है—हिन्दी के उदीयमान कवि है—। मेरठ शहर से १२ मील दूर चाँच सट्टहिक के किराणिक केंद्र के तौर पर प्रभात आश्रम की स्थापना हुई है—उसमें चाप बलिष्ठ कला विभागके आरम्भ है।)

—संपादक

प्रभात आश्रम के घाट की संविधियों पर बैठे मैं कपड़े धा रहा था—तीन चार प्रामीण बालक मेरे चारों तरफ खड़े हो गए—एकने कहा—'क्यों जी तुम कहाँ रहते हो ?—'

“पंजाब” मैंने कहा—

“पंजाब में इस लड़के का भाई एक वकील के यहाँ काम करता है, आप उसे जानते होंगे मैंने कहा—’ नहीं, पंजाब बहुत बड़ा है, उसमें इसके भाई का क्या पता ?”

“कितना बड़ा है ?”

जवाब देने को ही था कि दूसरा बोल उठा—“क्यों जी—यह बिल्लीत किस तरफ है ?”

छोटपन में भूगोल पढ़ा था। भूल गया कि किस तरफ है बिलायत। सोचने लगा कि क्या जवाब दूँ—इतने में वह लड़का ही बोल उठा—“सुना है कि दूस तरफ है ! ( उसने डँगली से एक तरफ को इशारा किया )”

मैंने कहा—“शायद” और मैं कुछ मोचने लभ गया—क्या ? एक गुलाम क्या मोचिगा !

—२—

गुरुकुल कांगड़ी के जलसे पर शामिल होने के लिये मैं आश्रम से चला—रास्ते में एक प्रामीण महिला मिली—सिर पर घास का गट्टु लाये चली जा रही थी टोकरी गाँव की ओर—मुझे सफर का सामान साथ लिये जाते देख बोली—“क्यों बाबू जी, फिचर को चले”

“हरिद्वार”—मैंने जल्दी में सँचेप में ही कहा—

“हरिद्वार जा रहे हो—? वहाँ मेरा लड़का सिगरेट बेचने का काम करता है, नाम उसका रघुवर दयाल है, उससे कह देना कि तुम्हारी माँ मिली थी, घास का गट्टु सिर पर ले जा रही थी, कहना था कि साँस का फिचर न करना—सब आराम से है—” मैंने कहा—“बहुत अच्छा—” हाँ, और कहता भी क्या ?

—३—

प्रभात आश्रम से १ मील के लगभग एक भाल है—बोहला गाँव निकट होने से बाँहला का भाल कहलाती है—हरिद्वार से निकली हुई नहर, जो गुरुकुल-माता के चरणों का चुम्बन कर, उसके चंचल बालकों का उच्छ्वसित चंचलता अपने में भर, मुसकाली इठलाता गाना चलती है—उसा नहर को भाल यहाँ है—बड़ा भारी विजली का संघट-गृह यहाँ पर है।

प्राकृतिक दृष्टि से यह स्थान बड़ा सुन्दर है—कई बाग हैं—लाची, आड़ू, तरह तरह के आम, सबकी बहुतायत है—इनमें से एक बाग में मैं बैठा था—मालियों के पास—मैंने पूछा—“क्यों जी—हमें कुछ आड़ू के बीज चाहिए। मिलेंगे ?”—“क्यों नहीं जरूर, आप जब चाँदे ले सकते हैं—पर आपका क्या काम ?”—“अपने आश्रम में बाँगे”—मैंने कहा—

“इसके लिये तो आपको आड़ू के पीढ़े पर कलम लगवाना होगी—यदि कलम नहीं लगवाएँगे तो आड़ू ही रह जायगा—कड़वा—”

“बहुत अच्छा कलम भी लगवायेंगे !”

“पर आप तो कपिलों हैं, आप को तो देसी आड़ू, ०) लगाना चाहिए” एक दूसरे माली ने कहा—

“क्यों, कलमी आड़ू बिलायती होता है क्या ?—मैंने मुसकाने हुए कहा “ इमका बीज देसी, जमीन देसी, कलम देसी, कलम लगाने वाला देसी और खाने वाला देसी ! इममें बिलायती पना क्या है।

“ठीक है जी—है तो देसी—”माली ने मममन्ते हुए कहा—

मैंने कहा “भाई, यह सब गुलामी का नतीजा है—जो चीज खराब हो वह देखी, जो अच्छी हो वह बिलायती—ऐसा हम समझते हैं। गुलामी हमारे दिल पर भी असर कर चुकी है—नस नस में समा गई है। सुनो, हाथ में हथकड़ियाँ पहनने से कोई गुलाम नहीं होता—पर दिल का गुलामी गुलामी है—इन अजीबों ने हमें जो शिक्षा दी है, उसका यह स्वाभाविक परिणाम है—”

तुम्हें कोई बेवकूफ कहे—तो कोई बान नहो—पर जब तुम दाल निकाल कर बिलबिलाने कहने लगो—कि मैं बेवकूफ हूँ—मैं बेवकूफ हूँ—तो यही मममन्ता जायगा कि तुम्हारा दिमाग खरब हो गया है—माली ने निश्चयपूर्वक कहा—  
‘बहुत ठीक—तो यह आड़ू देसी है न !’

“हाँजी—” माली ने इतना ही कहा—वह गौर से मेरे चेहरे की तरफ देख रहा था—

मैंने कहा—“अंग्रेजों के मुल्क में— इनने फल, मट्ठी, फूल, नदी होते, जिनने हमारे यहाँ—

हमें अपने चरणों से इन्होंने निकाल दिया—और कहते हैं—सुम कौन ?

राजब तो ये है मकान वाले मकों से बाहर पड़े हुए हैं !

पर बक आने वाला है—आज नहीं तो कल इन्हें अपना बोरिया बिमला बांध कर यहाँ से मात समद्र पार ही जाना होगा—

“ठाक है जी—” माली ने अपने स्वाभाविक स्वर में कहा—

मैंने कहा—अच्छा, अब चले, नसमें, फिर मिलेंगे—और ०) लौट गया—कुछ मोचना हुआ—क्या ? गुलाम क्या मोचिगा ?

## आवश्यकता

नेटाल (अफ्रीका) में एक हिन्दी पढ़ा सकने वाले सुयोग्य अश्वत्थक का आवश्यकता है। उन्हें लगभग ३ घंटे हिन्दी पढ़ाने तथा कभी कभी धार्मिक उपदेश देने (हिन्दी तथा अंग्रेजी में) और संस्कार करने का काम करना होगा। वेतन लगभग ५००० (सौर) होगा। आने जाने का किराया स्थथा (Lower Tegula Hindi pathshala) की तरफ से दिया जायगा। परन्तु वे यह चाहते हैं कि वह व्यक्ति अविवाहित नौजवान हो। अनाथ हो तो और अच्छा है।

—३—

[ पृष्ठ ३ का शेष ]

बैल के जुए की अपेक्षा कहीं अधिक खींच सकती है, जिस के जवाब में उसने कहा "बात अनावश्यक परिच्छेद है; क्योंकि श्री नियति को तरहशक्तिशालिनी है"।

लेकिन हम प्रेम को शासक शक्ति का अपेक्षा आनन्द के देवता के रूप में देखना अधिक पसन्द करते हैं— गृहस्थ का वह आनन्द 'जिसमें दोनों के हृदय परस्पर निश्चिन्त और विच्छेद होते हैं'।

'प्रेम में एक ऐसी रहस्यमय सहानुभूति है, जो चादों की श्रृंखला और रेशम की बोर के समान आत्मा और शरीरों के मन को मन से और हृदय को हृदय से बांध सकती है, Ibid।

जो बात बेकन ने मित्र के लिये कही है, सहधर्मिणी वह स्त्री के लिये भी बिल्कुल ठीक है। वहाँ लिखा है "जो मनुष्य मित्र को अपने आनन्द में शामिल करता है वस्तुतः वह स्वयं और अधिक आनन्दित हो रहा होता है; और जो मनुष्य मित्र को अपने दुःख में शामिल करता है, वह अपने दुःख को बहुत सोमा तक दूर कर देता है"

हमारे पास कोई ऐसा व्यक्ति, जिससे हम प्यार करते हैं, ज्यों ही आता है "हम अनुभव करने लगते हैं, कि फूलों में धूलों में और पृथ्वी पर हा नहीं बलिक हरकें ब्यांज में कुछ विचित्र परिवर्तन हो गया है। हरकें चीज नई मालूम पड़ने लगती है।" French।

मेरा विचार है, होमर ने जो कुछ भाग्य के सम्बन्ध में कहा था, उसे हम प्रेम के सम्बन्ध में लागू कर सकते हैं। "उसके चरण बहुत ही कोमल होंगे, क्योंकि वह इन्हें पृथ्वी पृष्ठ पर न रख कर मनुष्यों के मस्तकों पर रखता है" [ अग्रिम अंक में समाप्त ]

**गुरुकुल समाचार**

विद्यार्त्न १५ अंशुली चोद, पुरुषोत्तम १५ अंशुली सिरवत्, नारायणदेव ५ अंशुली मलेरिया उजर, महावीर ४ अंशुली मलेरिया, जगदीश ३ अंशुली मलेरिया उजर, रामकुमार ३ अंशुली मलेरिया उजर, विद्याधर २ अंशुली मलेरिया उजर, धर्म दत्त २ अंशुली मस्त, श्रीप्रकाश २ अंशुली मस्त, प्रेमनिधि २ अंशुली मस्त. योगेश्वर १ अंशुली स्वस्तर।

गान सप्ताह ऊपर लिखे ४० गेनी हुए थे अब सब अच्छे हैं। ३० योगेश्वर के अभी उजर तथा खसरा है। आज उजर कम होगया है। आशा है कि शीघ्र आराम हो जावेगा। आज कल गमीं पर्याप्त हो गई है। अधिकतम ताप मान १०० फा० होता है। पिछली रात ठण्ड भी पर्याप्त हो जाती है।

अनु परिवर्तन के साथ २ गरमी भी बढ़ती जा रही है, ब्रह्मचारियों ने नहर में नहाना प्रारम्भ कर दिया है। पंचपुरी वैरी सान्मुख्य ६ अंशुली का होगा इसको सफल बनाने के लिए श्रीकृष्णमंत्रो श्री विद्यार्त्न जी तथा उपमंत्री श्री वासुदेव जी बड़े उत्साह से कार्य कर रहे हैं।

राष्ट्रप्रतिनिधि सभा के प्रधानमंत्री का चुनाव हो चुका है उसका परिणाम इस प्रकार है। कांवेस दल के उम्मीदवार

श्री रामदेव जी को ४६ मत मिले, तथा हिन्दू महासभा के उम्मीदवार श्री सत्यवत जी को ४० मत मिले, इस प्रकार श्री रामदेव जी प्रधान मंत्री घोषित किए गये।। राष्ट्रप्रतिनिधि सभा की बैठक ६, ७, ८, जुलाई को होगी।

हॉकी तथा हस्तकन्दुक के अन्तिम साम्मुख्य का परिणाम निम्न है। हॉकी में द्वादश श्रेणी विजयी रही, तथा हस्तकन्दुक में चतुर्वंश। क्लानक तथा ब्रह्मचारी हॉकी में समान रहे। हस्तकन्दुक में क्लानक बन्धु विजयी रहे।

श्री आचार्य स्वामी अभय देव जी, श्री मुख्याधिष्ठाता पं० सत्यवत जी, सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री दीन दयालु जी शास्त्री तथा प्रस्तोता उपाध्याय श्री बागीश्वर जी लांगर विशासभा की बैठक में गये थे अब सब लौट आए हैं।

२७ वैशाख बुधवार को रवीन्द्र जयन्ती मनाई गई जिसमें ब्रह्मचारियों ने कवीन्द्र के प्रति अपनी अद्भुतकृतियाँ समर्पित करने हुए योग्यतापूर्ण निबन्ध पढ़े।

**गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथ धाम का २१ वां महोत्सव**

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम का २१ वां वार्षिकोत्सव आगामी ता० १७, १८, १९ मई १९४०, तदनुसार वैशाख शुक्ल १० ११, १२, १६६७ शुक्ल, शनि, रविवार को बड़े धूमधाम से मनाया जायगा। इस अवसर पर राष्ट्रभाषा सम्मेलन, कवि सम्मेलन, सरस्वती सम्मेलन, आर्यसम्मेलन आदि होंगे। इस महोत्सव को सफल बनाने के लिए लक्ष्यस्थायी श्री मन्त्रमा नारायणस्वामि, श्री पं० अयोध्याप्रसादजी वैदिक-रिसर्च-स्कॉलर, श्री पं० वेदव्रत जी ज्ञानप्रथ आदि महानुभाव पधारेंगे। पूर्ण आशा है कि देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद जी भी इस शुभ अवसर पर दर्शन देंगे।

अतः आपको सातुरोप निमंत्रण है कि आप भी अपने परिवार, बन्धु-जान्धव तथा इष्ट मित्रों सहित पधारकर हमारी सफलता में सहायक बन अनुग्रहीत करें।

आपके दर्शनाभिलाषी—

श्रीपचन्द्र पादारः मुन्डनाथ विशालंकार वीरेन्द्रविद्या-  
वाचस्पति एम० ए०  
प्रधान मंत्री मुख्याधिष्ठाता

**कविता सम्मेलन**

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथ धाम के वार्षिकोत्सव के समय ता० १९ मई के ८ बजे रात्रि से कविता सम्मेलन होगा। इसको सफल बनाने के लिए कवियों से सानुगोध निवेदन है कि वे अपनी कविताएं १७ मई तक संयोजक के पास भेज दें। कवितायें सामयिक होने चाहें।

समभार्या—

- |             |            |
|-------------|------------|
| १ पाकिस्तान | १ दलनम     |
| २ मची है    | ० वनेस्मिन |
| ६ चढ़ाईगा   |            |

संयोजक कविता सम्मेलन  
डा० गुरुकुल वैद्यनाथधाम  
मन्थालपरगना

स्वस्तिवर्धक

ब्राह्मी बूटी

॥॥ सेर

सुगन्धित

हवन सामग्री

॥॥ सेर

गर्मियों में  
एक धार जरूर आजमाइए

## गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी

का प्रसिद्ध

भीम  
सेनी  
सुरमा

आंखों से पानी बहना, खुगली झुकरे सुर्खी, जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त आंखों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहनी है।

मूल्य ३ माशा ॥८॥ १ तं० ३)

ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन स्नान के बाद ब्राह्मी तैल मिर पर लगाने से दिमाग नरोनाजा रहता है। दिमागी कमजोरी, मिरदर्द, धालों का गिरना, आंखों में जलन आदि रोगों में तुरन्त आगम करता है।

मूल्य ॥८॥ शीशी

गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहारनपुर )

भाँच { लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहली—चाणनी चौक  
पटना—मछुआ टोली, बाँकीपुर

भीमसेनी दंतमंजन

दांतों को

सुन्दर और चमकीला बनाता है

मूल्य ॥॥ शीशी, ३ शी० १॥)

सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

सुपारी पाक

बिचों के जर्जियान रोग की

प्रसिद्ध औषधि।

मूल्य १॥॥ पाव



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मूल-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंशरा वेदालङ्कार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ५ ज्येष्ठ १९३७, १७ मई १९४०

[ संख्या ४ ]

## हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन- और कांग्रेस

राष्ट्र की नवीन जागृति के साथ २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी निरन्तर उन्नति करता जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों के अधिवेशनों ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि सम्मेलन हिन्दी के लिए पहले से कहीं अधिक सतक और प्रयत्नशील है। हम इस बात को स्वीकार करने हैं कि इन अधिवेशनों में ऐसी कुछ नूतियां या ऐसी अप्रिय घटनाएँ हो जाती हैं जिनसे हमारा पराधीन मनो-वृत्तियां अपना बाह्य रूप प्रकट कर देती हैं परन्तु समय की गति को ध्यान में रखते हुए ये बातें सैन्य और उपेक्षणीय हैं।

यह आवश्यक नहीं कि जो राजनीति में पड़ू है, देश की विन्दाओं का भार जिस पर है वह अवश्य ही साहित्य के क्षेत्र में उसी वेंग के साथ बंचुपात कर सकता है। पहले सम्मेलन ने ऐसा ही समझा और इसके अनुसार कार्य भी किया परन्तु इसका जो कुछ फल प्राप्त हुआ उसे वह आज तक नहीं मुला सका है। उर्दू का राष्ट्र लिपि पोषक करने के बाद और हिन्दी की व्यापक व्याख्या में गुप्त रूप से उर्दू का ही प्रचार तथा अन्याय कई इसा प्रकार की बातों ने सम्मेलन के वास्तविक कार्यकार्यों को बाँकना बना दिया। उन्हीं अनुभव किया कि वे अपने उद्देश्य के लिए गन्तव्य मार्ग को छोड़ बैठे हैं—यही से फिर सम्मेलन में अतिरिक्त साहित्य सेवा तथा काग्रेसी साहित्य सेकियों में विरोध प्रारम्भ हुआ, इस विरोध ने 'हिन्दुस्तान' के प्रचार को देखकर और अधिक आग पकड़ी—इसका स्पष्टीकरण शिमला के अधिवेशन में स्पष्ट मूल कर हुआ। लोगों के मन में काग्रेसी साहित्य सेवियों के प्रति कुछ अज्ञा शेष थी अन्यथा यह घटनाएँ होजाती जिनके लिए लज्जत होना स्वाभाविक था।

शिमला के अधिवेशन ने और 'राजनैतिक परिस्थितियों' ने तथा वर्तमान हिन्दुस्तानी में अधिष्ण के लिए स्पष्ट कर दिया है कि काग्रेस साहित्य सेवियों और साहित्य सम्मेलन

के उद्देश्यों में एकी करण असंभव है। इनमें अन्तर कहने या लिखने में सामान्य साही हो परन्तु वर्यो संकरता के साथ इसके कार्यधार कहलाने वाले नेताओं द्वारा एक पक्ष को ऐसी हत्या है जिसे देखने से पहले चुक्तुभर पानी में डूब सरना श्रयस्कर है। यह बात हम कोई भावना के आवेश में आकर नहीं किन्तु परे ठण्डे विचार से सोचकर ही लिख रहे हैं। हमारे राष्ट्रीय कहलाने वाले दिमागों ने हिन्दी का विरोध कर 'हिन्दुस्तान' का आधिष्णकार कर मुसलमानों के शासन का हमारे मनो पर जो प्रभाव पड़ा था उमका परिणाम है। इस हिन्दी हिन्दुस्तानी के विषय में बहुत वाद विबाध पत्रों में चला है अतः हम यहां अधिक नहीं लिखते फिर भी इतना लिखें कि आँखे खोल कर चलने वाले लोग अक हिन्दुस्तानी के पीछे नहीं चल सकते। हिन्दी के विषय में 'गुरुकुलकांगड़ी' गर्व कर सकता है, इन्हीं के नाते हम यह कह सकते हैं कि शुद्ध और आदर्श हिन्दी यदि कहीं की है तो वह गुरुकुल कांगड़ी की ही है। अपने ही पत्र में अपनी प्रशंसा शिष्टाचार और सम्भवतः नैतिकता के भी विरुद्ध है परन्तु फिर भी हम कह सकते हैं कि हमको अपना हिन्दी पर गर्व है। अभी निकट भविष्य में पंजाब का व्यवस्थापिका सभा में जब हिन्दा में शिष्टा देने के लिए प्रभ किया गया तब यही उत्तर दिया गया कि हिन्दी में हमको पारिभाषिक शब्द नहीं मिलते हैं—यह अप्रूप है। मान्य सवश्य भा इसका कुछ उत्तर नहीं दे सके परन्तु हम यह कहने का साहस कर सकते हैं कि यदि किसी को पारिभाषिक शब्द ज्ञात न हों तो वह हमसे पुछें हम उनका बतायेंगे—अस्तु यह एक अवास्तविक बात प्रसंग वरा कहेदी।

इस बार का सम्मेलन पूरा में होता निश्चिन्त हुआ था हिन्दी के पुराने कार्य कर्ता श्री काका कालेलकर ने इसके लिए निमन्त्रण दिया था जिसका कि सभने सदर्ष स्वीकार किया, परन्तु स्वगत कारियों सभा के चुनाव में जैसा कि सुना जाता है काग्रेसी और हिन्दू महासभा वारियों में संघर्ष हुआ जिसमें हिन्दू महासभा वारियों को बहुमत प्राप्त हुआ और इससे रूठ होकर श्री काका कालेलकर जी ने अपना निमन्त्रण लौटा लिया। यदि बहुत: यही बात

है तो सबमुच बढ़ा दयनीर दशा है। इस बात से क्रोध और साहित्य सम्मेलन में और अधिक कटुता उत्पन्न हो जायगा। कामेसा। हनुस्तान। साहित्य—साधनों को यह ध्यान रहे कि वे अपनी इन कृतियों द्वारा एक बड़े भारी शिल्पित वग को व्यापक रूप से विरोधी बना रहे है। 'श्री मनीश'

## सामयिक साहित्य

योग के आधार—श्रीअरविन्दकी 'बेनेज्ज आफ योग' (Bases of Yoga) नामक अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद। अनुवादक श्रीमदन गोपाल गाडोदिया। प्रकाशक श्रीअरविन्द ग्रंथमाला पांडोबेरी, सोलंगजेन्द्रस दक्षिण भारत हिन्दी प्रकाश समा,। व्यासराय नगर, मद्रास। मूल्य २) रु०।

योग व्यावाहारिक मनोविज्ञान है जो मनुष्य को पूर्ण बना देता है। सभी सच्चे धर्मों की आन्तरिक साधना स्वरूप से योग ही है। श्रीअरविन्द ने अपने पांडोबेरी आश्रम में योगकी जिस कला का विकास किया है वह अभूतपूर्व है। इस योग में प्राचीन आध्यात्मिक साधनाओं की आश्चर्यक शक्ति ने ही है। बल्कि यह उनके भी परे जाना है और उनको पूर्ण बनाना है। साधारणतया, योग ने लोग यही समझते हैं कि यह मनुष्य को जीवन से उदासीन कर देता है और उसको एकानिवासी या वैरागी बना देता है। परन्तु श्रीअरविन्द के योग का उद्देश्य यह नहीं है, यद्यपि मानव जाति के वर्तमान जीवन की अपूर्णताओं पर उनकी दृष्टि प्राचीन योगियों जितनी ही है, तथापि पूर्णता की कोश में वे जीवन से भागने नहीं, बल्कि वे चाहते हैं कि मानवजाति की युवायुवों और अपूर्णताओं को दूर कर दें, जिससे कि मानव जीवन एक दिव्य जीवन में परिचलन हो जाय। वे कहते हैं—'इस योगकी सबसे पहली शिक्षा यह है कि जीवन और उसकी कठिनताओं का शांति मन, दृढ़ साहस और भाग्यवत शक्ति पर पूर्ण भरोसा रख कर मुकाबला किया जाय।'

प्राचीन योगों के अनुसार साधक को अपनी ही चेष्टा और नश्यता के द्वारा, हठयोग, राजयोग, तांत्रिक विधियों आदिका अनुसरण करने हुए आगे बढ़ना होता है। परन्तु श्रीअरविन्द योग में जिस एक मात्र प्रयास को आश्चर्यकता है यह यह है कि साधक संपूर्ण रूप से अपने आपकी अगवर्ती मानने के बन्ध हस्तों में लीपदे। वे कहते हैं—'योगी! संन्यासी या तपस्वी बनना यहाँ का श्रेय नहीं है। यहाँ का श्रेय है कर्पांतर और यह कर्पांतर उसी शक्ति के द्वारा हो सकता है जो तुम्हारी अपनी शक्ति में अनन्तगुण महान् है, यह तभी सम्भव है जब तुम भागवती मानने के हाथों में सबमुच एक बालक की भाँति बन कर रहो।' भागवत उपस्थिति, तिथरता शक्ति, मुक्ति, शक्ति, प्रकाश, आनन्द और विस्तीर्णता आदि ऊपर से तुम में अवतरण करनेकी कृपा कर रहे हैं। ऊपर

तकने पीड़े रहने वाली इस अर्धचलता को तुम प्राप्त कर लो तो तुम्हारा मन भी अधिक अर्धचल हो जायगा, फिर इस अर्धचल मन के द्वारा तुम पहले बुद्धि और शक्ति के और बाद में भागवत शक्ति का अपने में आवाहन कर सकोगे..... तुम तब यह भी अनुभव करोगे कि वह शक्ति तुम में इन प्रवृत्तियों का पत्यितन करने के लिये और तुम्हारी बेतना का कर्पांतर करने के लिये कार्य कर रही है। उसने इस कार्य में तुम्हें मत्ता की उपस्थिति और शक्ति का ज्ञान होगा। एक बार जहाँ यह हो गया तब बाकी का सब कुछ केवल समय का और तुम्हारे अन्दर तुम्हारी सत्य एवं दिव्य प्रकृति के उत्सोत्तर विकाम होने का ही प्रश्न रह जायगा।'

साधन-मार्ग में जो व्यावहारिक समस्याएँ और कठिनताएँ उपस्थित होती हैं उन्हें गुरु साधक-विशेष को उपनिगन आश्चर्यकताओं के अनुसारा हल करने हैं। प्रस्तुत पुस्तक श्रीअरविन्द न अपने शिष्यों को उनके प्रश्नों के उत्तर में जो पत्र लिखे उन में से कुछ का संग्रह है और ये पत्र अनेक व्यावहारिक शिष्यों पर प्रकाश डालने हैं, जैसे कि भ्रष्टा, समर्पण, कठिनता, आहार, काम-वासना, अश्वेतना, निद्रा, नन्दन और राग। यह पुस्तक इस तरह से नैपथ्य की गयी है कि योग-साधन के जिज्ञासुओं को इससे पर्याप्त लाभ हो सके।

आज कल एक ऐसी प्रवृत्ति दिखायी पड़ रही है कि मानव जीवन और मानव समाज को आधुनिक मनो-विज्ञान द्वारा प्रतिपदित मानव प्रकृति के आधार पर पुनः संगठित किया जाय, और अत्यन्त ही यह प्रवृत्ति उच्च मार्ग की ओर है, किन्तु अभी तक यह मनोविज्ञान बहुत गहराई में नहीं उतर सका है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि 'यह नयाँ मनोविज्ञान मुझे तो ऐसा दिखायी देता है जैसा कि बालक यथोचित रूप से वर्षमाला भी नहीं, किन्तु उसके किसी संक्षिप्त रूप को याद कर रहे हैं और अर्धचलता तथा रहस्यमय, गुप्त अनिश्चयकार रूपी अपने क...—ग...—को मिला भिन्ना कर रखने में मग्न हो रहे हैं और यह समझ रहे हैं कि उनकी पहली किताब जो एक प्रकृत्यात्मक आरम्भ है यही ज्ञान का बालकिक प्राण है।' मनोविज्ञानके यह बताना है कि मनुष्य के जो निम्नतर आदेश हैं, उसकी इच्छा, कामना, लालसा, क्रोध, ईर्ष्या, डाह, काम-वासना आदि वे उसकी प्रकृति में निहित हैं। यदि तुम उनका निग्रह करो तो वे नष्ट नहीं होंगे, बल्कि अश्वेतना में छिपे हुए पड़े रहेंगे और आत्मकष करने के लिये उपयुक्त काल की प्रतीक्षा करने रहेंगे, अर्थात् यदि निग्रह बहुत अधिक मात्रा में होगा तो हमसे स्वयं जीवन-शक्ति ही नष्ट हो जायगी। अतः उसका यह सिद्धान्त है कि यदि मानव की जो जीवित रहना और उन्नति करना है तो उसे अपने निम्नतर आवेशों को स्वप्न रूप से क्रीड़ा करने देना होगा। जिस सैन्यवाद का आज संसार में दौर दौरा है उस के तह में यही सिद्धान्त अर्थात् पड़ा है, जर्मनी

ने तो इस बात को खुले तौर पर कहा है कि युद्ध और उसकी सैनायो के द्वारा ही कोई जाति बलवान और नेजलों रहस्यकारी है और इसकारण के अन्वय सभी राष्ट्र इसी सिद्धान्त का अनुसरण करने हुए विजायी बने हैं, फिर चाहे वे इस बात को स्वीकार करें या नहीं। और इस बात से इनकार भी नहीं किया जा सकता कि इस में कुछ साथ अवश्य है। प्राचीन यूनान के इतिहास को देखिये, उसकी सम्पत्ता बहुत अधिक बढ़ी और आठ ध्वस्त हुआ, भारतवर्ष के भाग्य को देखिये जहाँ उच्चतर नैतिक और आध्यात्मिक जीवनकी खोज में अहिंसा और जीवन-आयें-गौता कठोर निग्रह करने की शिक्षा दी जाती है। अस्तु, मनोविश्लेषण इस भावकी पुष्टि करना है कि मानव सभ्यता की एक सीमा है और यह इस सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकती। जीवन के बाह्य संगठन में, शासन विधान में और उत्पादन और वितरण की पद्धति में जो कुछ भी क्रम-कारण कर्मों में किया जाय किन्तु जब तक कामना, लालसा आदि के आवेश मानव प्रकृति में मौजूद हैं तब तक अत्याचार, शोषण और युद्ध जारी रहेंगे, और यदि मानव जाति इन आवेशों को नष्ट करदे तो वह सफलता पूर्वक आत्महत्या ही करेगा। परन्तु योग मानव जाति के सम्बन्ध में इस प्रकार के निराशापूर्ण विचार नहीं रखता। शान्तिवादियों और नान्तिवादियों को दोष है वह उन्होंने मनुष्यके सामने जो आदेश रखा है उस में नहीं, बल्कि वह है, केवल अहिंसा के भाव का प्रचार करने और मनुष्य के मनको शिक्षित बना कर शान्ति और सामंजस्य के साम्राज्य की स्थापना करने की उम्मीद जो पद्धति है उस में। क्यों कि आवेश, जिन के कारण ही युद्ध होता है और मनुष्य जीवन में पाप घुस आते हैं, अव्यक्तता में जड़ जन्म लेते हुए हैं और सत्ताके इस भाग पर मन और तकला जाग भी निश्चय नहीं है। यही कारण है कि मनुष्य बहुधा अपनी इच्छा के विपरीत भी पाप करत है और राष्ट्र इच्छा नहीं रहत हुए भी युद्ध में प्रवेश होत है। परन्तु योग अव्यक्तता को शुद्ध करने और मानव प्रकृति में सँ इन जहराले पौधों को उखाड़ फेंकने और वहा शान्ति, सामंजस्य, प्रकाश, शक्ति और आनन्द से पूर्ण आध्यात्मिक विषय जीवन के नाविकी स्थापना करने के लिए सदा पद्धतिका दिशान्तरण करता है। इस काम का जब कुछ व्यक्तित्व सफलतापूर्वक कर सकेंगे तब वे दूसरों पर अपना आध्यात्मिक प्रभाव डालेंगे और यह प्रभाव क्रमशः समस्त मानव जाति पर पड़ेगा तब मानव जीवन, समाज अपना स्थिर आधार आत्मा में बनायेगा और दुर्ध्वी पर सत्ता के उदर आने का स्वतः चरितार्थ होगा।

यह सन्तोष की बात है कि फ्रांस में आज योग और आध्यात्म सम्बन्धी साहित्य का ही सब से अधिक प्रचार है और इन में श्री श्री अरविन्दकी 'योगके आधार' और 'योग प्रदीप' पुस्तकों का क्रेष्य अनुवाद विशेषतः प्रसूज है। इस से इस बात का पता चलता है कि बाह्य रूप चाहे जो कुछ भी हो पर मनुष्य का हृदय उचित स्थान पर ही है। श्री अरविन्द जिस भावा में योग

सम्बन्धी विषय पर लिखने हैं वह एक बहुत ऊँची भूमिका से आती है और उसकी आध्यात्मिक शक्ति का अनुवाद में रखा करना संभव नहीं, फिर भी प्रस्तुत पुस्तक का अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है और इस से श्रीअरविन्द ने जिस योग-मार्ग को संसार को बताया है, उसके समझने में हिन्दी-भाषा-भाषियों को बहुत बड़ा सहायन मिलेगा।

- अतिरुचिर राय।

### आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सव

आर्यसमाजों के उत्सव जिस पद्धति से मनाये जाते हैं उससे आर्य जनता मुगर्धगिन्त है। आर्यसमाज का स्थापना के प्रारम्भ २० दिसम्बर १८५६ वर्षों में, लगताया यदा पद्धति चली आ रही है। नगर कान्तन से प्रारम्भ होकर दो दिनों तक निरन्तर व्याख्यानो वा उपदेशों का ताता बंध जाता है।

यह पद्धति आर्य समाज के प्रारम्भिक काल में आर्य मित्राणों का सन्देश आम जनता तक पहुँचाने के लिये भले ही आवश्यक एवं लाभकारी रही हो किन्तु आज इस पद्धति की जीवन शून्यता तथा अनाकपकना स्पष्ट अनुभव होने लगी है। यहा कारण है कि अनेक आर्यसमाजों के अधिकारियों ने भी उन्मत्त पद्धति में परिवर्तन करने की आवश्यकता को अनुभव किया है और उचित परिवर्तनों का आ गणेश भा कर दिया है।

आर्यसमाज लुधियाना ने इस वर्ष निम्न परिवर्तनों के अनुसार अपना उत्सव मनाया है—

(१) नगर कान्तन केवल सूचना के लिये हो। उस दिन रात्र को एक स्थान पर विशेष रूप से भजन करवाये जायें और एक व्याख्यान हो।

(२) उत्सव के उपलक्ष्य में जिन भर में २ दिन तक प्रचार करवाया जाय।

(३) दो दिनों तक निरन्तर व्याख्यानो के स्थान पर जिला-प्रचार-कार्य के लिये १० दिन तक नगर के भिन्न २ और मुख्य-मुख्य केन्द्रों में रात्र को विशेष व्याख्यान करवाये जायें।

(४) उन्मत्त-समाधि से पहिले दिन एक विशेष सम्मेलन रक्खा जाय। जैसे, लुधियाना समाज ने इस वर्ष हिन्दु संगठन विषयक सम्मेलन रखा है।

(५) आर्य समाज में उच्च शिक्षा प्राप्त सज्जनों की रुचि पैदा करने के लिये आर्य समाज के उच्च कोटि के विद्वानों के विशेष व्याख्यान कराये जायें।

तथापि वर्तमान कर्म प्रधान युग की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए श्रीमती कर्ह परिवर्तनों की गज्राइरा प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को बढ़ाने, मद्यमांसादि का सेवन त्यागने, अशुद्धपन को मनसा वाचा, कर्मणा मिटाने, जान-पान के विचार के बिना विवाह करने, बालविवाह-निषेध, धर्म-सेवा आदि के बारे में आर्यों द्वारा वर्षभर में तथा वार्षिकोत्सवों पर क्रियात्मक नार्थजनिक उदाहरण प्रस्तुत किये जायें तथा इन अमली कामों का (शेष पृष्ठ ७ पर)

# गुरुकुल

५ ज्येष्ठ शुक्रवार १९६७

## गुरुकुलीय सत्याग्रही दलकी आलोचना

(ने. समय)

एक स्नातक भाई लिखने हैं—

“गुरुकुल पत्र में ‘आर्ये सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति’ वाले लेखों को मैं बड़े ध्यान पूर्वक पढ़ना रहा हूँ। इस बारे में मेरे मन में जो भाव उठ रहे हैं उन्हें आपकी सेवा में प्रस्तुत करना हूँ और साथ ही विनम्र प्रार्थना करना हूँ कि आप इस पत्र पर गुरुकुल पत्र के द्वारा कुछ प्रकाश डालें।

गुरुकुल के साथ सम्बंध होने के कारण मैंने इस आहुति की कथा को बड़ी रुचि और एक प्रकार के उत्साह के साथ पढ़ना शुरू किया था परन्तु आप मुझे क्षमा करें यदि मैं कहूँ कि अब मेरी स्पष्ट सम्झति है कि इन लेखों में आहुति शब्द को पवित्रता का जुरा भी स्थान नहीं रखना गया। मुझे स्थान भ्रमा है कि पांच श्लोक पहले आपने एक लेख में लिखा था कि यदि हमारी हवि पावित्र हो नती यह हृष्ट देव तक पहुँच सकती है और यह के देवता को आहुति देने में पहले हवि की पवित्रता की ओर ध्यान देना आवश्यक है। इन लेखों को पढ़ कर मुझे यह बात स्पष्ट दीखती है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने धार्मिक आश्रम स्थापित करने की ओर ध्यान नहीं दिया। यहाँ मैं यह कह दूँ कि ब्रह्मचारियों के अन्दर जो उन्साह था सेवा भाव या बलि चढ़ जाने का भाव था वह तो सच-मुच आदर्शपूर्ण है परन्तु इस में उन्होंने बहुत उताविल पन में तथा सत्याग्रह के नियमों का समझ भिन्न कर दिया है।

“मेरी सम्झ में नहीं आता कि एक सत्याग्रही किन प्रकार धान्य दे सकता है और यहाँ ब्रह्मचारियों ने आ गलेश ही धोखे देकर किया है। बहुसूत्री शब्द बनाना, अपने नाम बदलना, अपने ठीक स्थान न बनाना और तरह २ में सी० आर० डी० वालों को ठगने के प्रयत्न करना क्या उचित था? सत्याग्रह का आदर्श गांधी जी ने देश के सामने रखना है अतः इस बारे में उम्हरी की ओर दृष्टि डालनी चाहिए। उम्हरी कुछ शुरु होती है तो महानो पहले अटॉमीटम देकर, धरलाना का नमक चुगाना है तो वायस्वराय महोदय को सूचित करके डंके की चोट पर। मुझे तो खगना है कि विद्यार्थियों ने येन केन प्रकारेण हैदराबाद पहुँच कर वहाँ का नियम तोड़ने की ठानी। यह सत्याग्रह नहीं कहला सकता। देश में जो कार्निवकारी हुए हैं उन्होंने ने तो इस मार्ग को अपनाया था पर कांफ्रेंस ने तो राजनीति में भी सत्य लाने का

प्रयत्न किया। वहाँ से भी धोखे बाजों को देश निकाला देने की कोशिश कर रही है। फिर भला धार्मिक काम का भी गवैश भूड के साथ हो, यह कैसे सहा जा सकता है? केवल इतना ही नहीं मुझे तो यह लगता है कि इस अस्वय व्यवहार में सफल हो जाने पर लेखक महोदय को बहुत गये भी हैं। यदि उद्देश्य निजाम सरकार को तंग करना होना या किसी प्रकार जेलें भर विजय प्राप्त करनी हावी तो ये बातें सम्भव में आतीं पर इस में धार्मिकता या न्याय का कुछ मात्र भी है क्या? क्या यह धर्म-युद्ध और सत्याग्रह शब्दों का अपमान नहीं है? गुरुकुल के विद्यार्थी भारत के अरबों में अरबों मोमायदी के प्रतिनिधि माने जायें तो यहाँ हमें स्पष्ट दीखना कि जब हमारे अरबों में अरबों लोग भी यहाँ तक जा सकते हैं तो सत्याग्रह समाज का क्या होगा।

“क्या ही अरबों हो यदि हम सब इस अवसर से लाभ उठा कर अपने अन्दर दृष्टि डालें और अपनी कमजोरियों को दूर करें ताकि हमारा जीवन ही एक सत्याग्रह बन जाय।

यदि कोई कठोर शब्द लिखा गया हो तो उसके लिये क्षमा करें।”

स्नातक भाई के ये शब्द कुछ कठोर तो लगने हैं। इसका कारण शायद यह है कि स्नातक भाई ने गुरुकुल पत्र के अन्वय पाठकों का तरह-इस लेखमाला, केवल प्रारंभिक लेख ही पढ़े हैं जिनमें गुरुकुल पत्र में छपे हैं। परन्तु इस लेख माला के साथ पूरा सत्य काल के लिये यह आवश्यक है कि ११ अध्यायों की इस सवरूप लेख माला को पढ़ा जाय। इस के लिये मैं पाठकों को यह सूचना देना चाहता हूँ कि सवरूप लेख माला एक छोटी सी पुस्तक के रूप में इस गुरुकुली-सच पर प्रकाशित हो चुकी है और उसका मूल्य केवल 17 है। जो कोई सज्जन इसे सवरूप रूप में पढ़ना चाहे व गुरुकुल के पुस्तक भंडार में संग्रहित करे। पुस्तक रूप में छप जाने के बाद उन लेखों का आगम गुरुकुल पत्र में छापाना शक्य नहीं सम्भव गया।

मैं यह ठीक है कि इस लेख माला के कम से कम तीन अध्यायों (अध्याय २, ३, ४ और ५ अध्यायों) का पढ़ने हुए मुझे भी काफी बुरा लगा था, शर्म भी आती थी कि हमारे ब्रह्मचारी क्या देकर रहे थे। जेल पहुँचने से पहले तब गुरुकुल के इस दल में जो कुछ किया उसे सत्याग्रह कहना उचित नहीं होगा। लेख माला के लेखक ने स्वयं लिखा है कि विना ‘सत्याग्रह’ किये पकड़े जायें यह वे नहीं चाहते थे। इसने स्पष्ट है कि उन्होंने सत्याग्रह के मतलब को ठीक तरह नहीं समझा था हैदराबाद पहुँच कर अलोक प्रकार पकड़े जाने को ही सत्याग्रह करना सम्झते थे। वेश बदलना अपने नाम और पने गलत बताना, सी. भाई. डी. को नाना तरह खोला देना यह सब उन्होंने इस लिये किया कि वे कहीं हैदराबाद पहुँचने से पहले न पकड़े जायें। इस सब काम को सत्याग्रह की उगह विधिक्य प्रतिरोध शब्द से भले ही कहा जा सकता था जैसा कि आर्य सत्याग्रह के

साथ में लड़ने वाले। हन्दु समाज के काय कर्ता खुल्लमखुल्ला अपनी लड़ाई को सत्याग्रह के बजाय निष्कण्य प्रतिरोध कहना हा पसन्द करते थे। इसी लिये मैंने उस समय अपने कार्य सत्याग्रह में अपना कर्तव्य भाग यही समझा कि मैं इस सत्याग्रह को शुद्ध सत्याग्रह बनाने का अपनी शक्ति भर यत्न करूँ और नेताओं के परिश्रम तथा परमेश्वर की कृपा में पाँड़ से धीम २ यह हमारा आर्य सत्याग्रह बहुत उत्तम ही भी गया था। गांधी जी के द्वारा चलाए गए सावजनिक सत्याग्रहों के सैनिकों को अग्रस्ता आर्य सत्याग्रह के हमारे सैनिक अपनी भावना और कार्यों में किसी तरह कम दर्जे के थ यह कोई नहीं कह सकता था।

इसी तरह जब ये गुरुकुल के सत्याग्रही वीर लीड कर आर्य और इन्होंने बड़े प्रेम से सब अपनी आप बीती सुनाई तो जहाँ इनके घोर कष्ट-सहन वीरता और तपस्या की बातें सुन कर दृष हाता था, वहाँ इनकी इस प्रारम्भिक कार्यवाहियों को देख कर कुछ घुरा भी लगता था और इन में भी उनके सरल भाव को देख कर केवल हँसी भी आती थी। यह ठीक है हमारे ब्रह्मचारियों में बड़े में बड़ा कष्ट सहने की उमंग थी पर प्रेमपूर्ण होकर कष्ट सहने में कठोर में कठोर हृदय का भी पिघलाया जा सकता है इसकी तरफ ध्यान नहीं था। अतः शायद इन स्नानक भाई की तरह और मेरा तरह अन्य भाइयों को भी हमारे इन सत्याग्रहियों के प्रारम्भिक काम लुटे लगें होंगे। पर यह भी अच्छा ही है कि उनके विरुद्ध आयाज्ञ उठाने का काम भी हमारा एक स्नानक ने ही किया है। मुझे इस पर कुछ लिखने की म्मय आवश्यकता इस लिये नहीं प्रतीत हुई क्योंकि ऐसी बातें मैं सत्याग्रह के दिनों में गुरुकुल पत्र में पहले भी लिखता रहा।

पर यह साफ है कि मेसा करने में उन पोड़ी उमर के गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का कोई दोष नहीं था—उनकी कोई जिम्मेवारी नहीं थी। जिम्मेवारी तो हमारी थी। इसी लिये मैंने ऊपर कहा है कि यह देख कर मुझे लज्जा आती थी और उम्ब भी होता था। पर उनके प्रति जग भी रोष नहीं आता था बल्कि हंसी आती थी। कारण यह कि इस प्रथम सत्याग्रही जयों को तो आदेश ही यह था कि उन्हें हैदराबाद पहुँच कर सत्याग्रह (अर्थात् एक निर्दिष्ट प्रकार से कानून भंग) आरम्भ करना है। आक्राकारी सिपायियों की तरह उनकी समझ के अनुसार उन्हें जो कुछ करना चाहिए था वही उन्होंने किया बल्कि उन्हें बहुत अच्छी तरह किया, आशा से अधिक अच्छी तरह किया। उस दृष्टि से देखें तो उनके इस सब कार्यों के लिये प्रशंसा का भाव पैदा होता है। इसी लिये लेखक की भाषा में अपने इन कृत्यों के लिये शर्म नहीं किन्तु गर्व का भाव पाया जाता है। और लेखक ने अपने पकड़ जाने के पहले जो हैदराबाद की स्टेट कांग्रेस के सत्याग्रह को स्थगित करने के बारे में गांधी जी को एक पत्र लिखनेकी हिम्मत की वह क्यों की यह बात भी समझ में आजाती है।

पर आगे जब मैं यह सोचना हूँ कि हमारे ब्रह्मचारियों के अन्दर सत्याग्रही के तौर पर इस प्रकार के काम करने की प्रेरणा, उत्साह और कीशल कहाँ से आया तो स्वभावता मेरा ध्यान सन् ३३, ३४ की कांग्रेस की लड़ाई की तरफ चला जाता है। उस समय सरकार के कठोर दमन द्वारा कांग्रेस सत्याग्रह आन्दोलन के दबा दिये जाने के कारण कांग्रेस की जो लड़ाई जारी रही वह लक्ष्मि कर का गई लड़ाई ही थी। कांग्रेस कमेटियों के नाम सब आहार्ये गुन रूप से तैयार का जाती थीं, छिपकर ही कारियाँ बाँटी जाती थीं। और कुछ समय बाद कुछ लोगों को पकड़वा कर सत्याग्रह जीवन में इसका प्रमाण दिया जाता था। दो साल तक तो कांग्रेस का वृहदधिवेशन भी छिपकर कर डालने का सफलता पूर्वक आयोजन किया गया था। और छिपकर किये गये इन सब कार्यों में सफलता पाने के लिए जो कुछ कीशल किये जाते थे वे सब प्रशंसनाय माने जाते थे। इस लिए कांग्रेस का इस अन्तिम लड़ाई के संस्कार ही गुरुकुल के इन ब्रह्मचारियों के लिए—अन्य किसी तरह का पथप्रदर्शन न होने के कारण—पथ प्रदर्शक हुए तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह कहना चना किमा को दाय दिये एक सचार्ड को प्रकट करना है कि हमारा कार्य सत्याग्रह प्रारम्भ काल में बिना किसी शिक्षानुसंध के हा चल रहा था। इस सच को ध्यान में रखन हुये तो यह कहना उचित ही है कि गुरुकुल में भेजे गये इस प्रथम जयधन जो कुछ किया यह अच्छे ही किया। उस पर इस तरह के दोष दर्शन का इन को अधिकार नहीं रह जाता।

जसा कि मैंने प्रारम्भ में कहा है कि चित्त को विश्र करने वाली ऐसी घटनायें तो इनके जेल में पहुँच जान में पहले २ की ही है, इस लेखमाला (पुस्तक) के ११ अध्यायों में से तीन अध्यायों में ही है। आगे की सब कहानों चित्त को बहुत हार्बन करने वाली है। लेखक प्रो. जिनारा ने अदालत में जो बयान दिया है, यह स्वीकार्यता से विनकुल अस्पृष्ट और किमती उदत्त और य शूलनय भावों में प्रेरित है यह देखकर आनन्द होता है। और जेल में इनमें से प्रत्येक ने केंसी असह्य व्यथायें बरगना पुरक और शान्त भाव में सहा है उन सचार्ड मुनकर गुरुकुल के एक आधिकारों के रूप में मैं अपने मस्तक को ऊंचा हुआ अनुभव करने लगता हूँ। फिर भी इस विषय पर लिखने हुये में यह कहें बिना नहीं रह सकता कि इन तीन अध्यायों के अतिरिक्त भी एक दो जगह मुस्लिम विरोधा भाव प्रगट किये गये हैं वे भी शोभा देने वाले नहीं हैं। अस्तु।

इस लेख माला में इस सत्याग्रही जयों की ६ महानों की यात्रा का बिना किसी बनावट के सच्चा २ हार्दिक वर्णन है। इसमें से कुछ भा छिपाया अमीष्ट नहीं था। इसलिए खुले तौर पर इस उत्तरे के अप्रणी द्वारा लिखने दिया गया है और प्रकाशित होने दिया गया है। क्यों कि इसी प्रकार हम अपने पिछले कार्यों से आगे के लिए लाभ

उठा सकते हैं। हमारी इन्म वृद्धि की नग्न ध्यान आकृष्ट करने वाले उपयुक्त ज्ञानक महोदय के इन शब्दों को श्रम में दुहराना चाहना है कि— "क्या ही अच्छा हो यदि हम सब इस अक्षर से लाभ उठाकर अपने अन्दर दृष्टि डालें और अपनी कमजोरियों को दूर करें ताकि हमारा जीवन ही एक सत्याग्रह बन जाये।" यह सत्य है कि सत्याग्रह एक जीवन का मिश्रण है। केवल जेल चले जाने का नाम सत्याग्रह नहीं है। जिसने सत्याग्रह बना है उसे अपने अन्दर गहराई से गहराई में खुसकर अपने आपको अपनी आत्मा की सत्यमयी प्रेरणा के अनुसर आसूल चूल परिवर्तन करना होता है। उषा २ मनुष्य ऐसा बनता जाता है ज्यों ज्यों उसके जीवन का पत्येक कार्य उसका चलता, उठना, बैठना बोलना सब कुछ सत्याग्रह होता जाता है, सत्याग्रह की महान शक्ति से युक्त हो जाता है।

## प्रेम

[ अनुवादक-वी विशालकर ]

प्रेम और युक्ति में मनुष्य के जीवन को विभक्त कर सकता है। हमें दोनों के साथ स्याय करना चाहिये। यदि हम बुद्धि को सहायता के बिना केवल प्रेम से धर्म को प्राप्त नहीं कर सकते, तो प्रेम रहित अकेली बुद्धि के लिये भी उसे प्राप्त करना असम्भव है।

Alchamptodes ने कहा था 'प्रेम, कामना की मयुर फूल दोनों के साथ २ मनुष्य के हृदय में सबसे अधिक सुन्दर और मयुर वस्तुओं को मिता देता है।"

'प्रेम दयालु है और हममें बहुत महनशीलता है। प्रेम से नस्रता है, यह किसा का बुरा नहीं साचता; लेकिन अपने आप में यह मृत्यु से भी आर्थिक कठोर है। इसलिये हम प्रभु हमें प्रेम दो।"

रूटा के सवाद के Phaedrus को तरह अब किंग, को यह शिक्षाप्रद करने का अधिकार नहीं है, कि कविना में कोई प्रेम का प्रशंसक नहीं हुआ। इसके विपरीत प्रेम ने उनसे से बहुतों को मयुरनम अनुभूतियां दी है। शायद मिल्टनके "स्वर्ग" के तुल्य सुन्दर और श्रेष्ठ अनुभूति मिलना कठिन है।

'तुम्हारे साथ प्रेमालाप करने हुए, मुझे सभय श्रुतुध्यां और उनके परिवर्तन का जरा भी ल्याल नहीं रहता। मुझे वे सब समान रूप से आनन्दित करने हैं। प्रातःकाल का मयुर पवन, चिड़ियों का चहचहाना, और उगता हुआ सूर्य-बड़े मयुर मालूम होते हैं। इस आनन्दमयीभूमि पर वृक्षवनरपति और हिमकणों से चमकते हुए पत्र पुष्प पर, गिर कर सूर्य की किरणें अपूर्व मौन्द्य धारण कर लेती हैं। उसके बाद पवित्र सम्प्रदाय, और फिर मित्र-मिलन करते हुए नागों और मोहक चन्द्रमा के साथ शान्त रजनी मिनकर स्वर्ग बना देती हैं।

लेकिन तुम्हारी अनुपस्थिति में वे ही मयुर पवन, पक्षियों का कलरव, सूर्य की प्रथम किरण, वृक्षवनरपति

पर चमकते हुए श्रोम के मोती, मन्त्राकालीन पवित्रता और पक्षियों सहित सान्धरजनी, और चांदनी में विहार पूर्ववत् होने हुए भी मन में कोई भाव उपलब्ध नहीं करते। सब सुना सा मालूम होता है।"

कभी भी किसी को इससे निराशा होने की जरूरत नहीं कि उसका विवाह आदर्श-नहीं हुआ। बुराकामती से हम सब की रुचियां भिन्न हैं। प्रेम में प्रेम को उपलब्ध करने का इनका सामर्थ्य है कि गरीब से गरीब, अगमर वह हम योग्य है, तो सुखी से सुखी विवाह की आशा कर सकता है। और शोकमयिपर ने हजारों के हृदयों को म्याल कर रख दिया है, जब वह कहता है:—

"वह मंगल है। और मैं इस रज को पाकर इतना अधिक धना हूँ; जितना बीमां समुद्रों का अपिपति होने पर भी तब होता, जब उनको कुल बालू का एक-एक कण मोती बन जाता, सारा पानी अमृत होजाता और शिलाएं मोने का हो जाती।"

सब प्रेम कर्मा बुद्धि के विपरीत अथवा थकाने वाला नहीं होता

"मझे मयुर मन कहां, मैं बहुत ही निर्दय हूँ, जो तुम्हारे पवित्र घर और शान्त मन को झोड़ कर समर स्यली की तरफ भागता हूँ। और इस क्षेत्र को प्रथम राज्य तुम्हारे प्रतिद्वन्द्वी के पोछे भागना लगा हूँ और उनके मन-वार, ढाल और धोड़े का आलिंगन करने लगा हूँ। लेकिन मुझे विश्वास है कि हम परस्पर विरुद्धता को तुम भी पसन्द करोगी। यह ठीक है कि मैं तुम से प्रेम नहीं कर सकता, लेकिन उससे कहीं अधिक मैं तुम्हारा पूजा करता हूँ।"

तो भी—

"कितना तुच्छ बान कभी २ प्रेमी हृदयों को अलग कर देता है। "कमा २ उन अभिन्न प्रेमी हृदयों को जिन्हें लोग अलग करने का कोशिश करके थक गये; बड़े से बड़े कष्ट ने जिन्हें और समीप कर दिया; जो भयङ्कर से भयङ्कर नृकानों का भी मकाबला करने रहे— शान्त और स्वच्छ आकाश के ममय अचानक जहाज के टूटने की तरह, वहाँ तुच्छ सौ बाँने फोड़ देती है।"

प्रेम क्षणभंगुर है। इसलिये कभी उसमें जरा भी भ्रंसा नहीं लगने देना चाहिये।

प्रेम नाजुक है; 'प्रेम को मटकों और उत्तेजना से नुकसान पहुँचता है। और बराबर टपटा पत्थने के बाद इसके जीवित रहने का आशा करना ठीक ऐसी बात होगा जैसे कोई वायलिन को निन्द्यता से प्रयाग करने के बाद भी मयुर और समस्वरी की आशा करे। लेकिन कितना आनन्द आये अगमर इसे "कोई व्यक्ति प्यार और सहृदयता के अमंगिनत लेकिन स्थिति से आनन्द छोटे-द व्यवहारों से इसे जीवित रखे।" -बर्हसवर्ध

बोन्को कहता है 'जिसे से तुम प्यार करते थे, और जिसे तुमने पसन्द किया था, अब तुम्हारी जूजू बन चुकी है। यह तुम्हारे विश्वास का फल मिला है, स्वर्ग की देन है; इसका सदा आदर करना, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं अन्धकामुकता के आयोजन बन जाओ। उसके सतीत्व

की देखभाल रखना, लेकिन कभी आस्थास मत करना, उसके जीवन में सदा एह सहायक, संरक्षक और ऐसे परिप्रवर्तक बन कर रहना कि वह तुम्हारे आशय में अपने को सदा सुरक्षित अनुभव करे। सुख ही दुःख, उमर को सदा अपने साथ रखना, सुख में उसे कभी भूलना नहीं, और दुःख में कभी उसका साथ मत छोड़ना। उसके सामने बुद्धि के प्रतिष्ठान न तो कभी चढ़त मुकना और नहीं कभी जबदस्ती करना। तुम्हारी जीवन संगिनी न तो तुम्हारा शिक्षार बने और नारी तुम पर अत्याचार करने पाए। अगर तुम इस तरह से रहे, तो गृहस्थ का यह भाग जो आनन्द को मांग देता है, कभी अनुभव नहीं होगा, और तुम्हारी पत्नी तुम्हें सदा अपना प्रेमी ही पाएगी।<sup>1)</sup>

सभा प्रेम हरेक का उत्तरण हो देता है:—  
शायद लेडी पत्नीजायेथ हेस्टिंग्स के मन्थन्य में स्टील के कहे हुए शब्द स्वी जानि की एक वाक्य में सुन्दर से सुन्दर प्रशंसा है। वे शब्द यह हैं “उमरको जानना एक बहुत ही व्यापक और उदार शिक्ता है।” लेकिन शायद प्रत्येक स्त्री अपनी उमरि के साथ यह अनुभव करती है, कि इस प्रकार वह न केवल अपने लिए सुख एकत्रित करती है, बल्कि जिन्हें वह दुनियाँ में सबसे अधिक सुखी देखना चाहती है—उन्हें भी सुख और आनन्द पहुँचा रही है।

मरुचा प्रेम संस्था कालीन छाया की तरह समय के साथ ब बढ़ता ही जाता है। पति और पत्नी, जिनका वास्तविक विवाह हुआ है, “इस तरह से रहते हैं कि वे आपस में प्रेम करते २ एक ही जाते हैं। उनके शरीर तो दो दिखते हैं, लेकिन उनमें आत्मा एकही होती है।”

प्रेम जीवन के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता। और माना के प्रेम की तो कोई सीमा ही नहीं है।<sup>2)</sup>

‘जो यह कहते हैं, कि प्रेम भी नष्ट हो सकता है, जीवन में और भी बहुत से उद्वेग हैं, लेकिन वे सब थोड़े हैं। स्वर्ग में मद्रत्वाकाक्षा और नरक में लालच डेर तक नहीं टिक सकते। ये सब उद्वेग पार्थिव हैं, और पृथ्वी पर ही समाप्त हो जाते हैं। लेकिन प्रेम अनश्वर है। इस की पवित्र उपांति अमर है। यह स्वर्ग से आया है और स्वर्ग की ही वापस चला जाता है। यह उम पृथ्वी पर आकर कभी कभी बड़े कष्ट सहन करना है कभी ठगा जाता है, और कभी अत्याचार सहन करता है। लेकिन इस तरह इसकी परीक्षा ही होता है और यह तपाप सोने की तरह और पवित्र हो जाता है। और फिर स्वर्ग में जाकर पुरी विश्राम करता है। यहाँ तो यह बड़े पश्चिम और मायधानी से अपना बीज बो जाता है। उमकी फल काटने का समय तो स्वर्ग में जाकर ही आता है।

‘माना स्वर्ग में पहुँच कर जब अपने बचपन के खोप हुए बच्चे को पा लेती है, तो उसे अपने दिनभर की मेहनत, रातभर के जागने और तरद तरद की आशाकांक्षा और भयों के कारण हुआ सब दुःख भूल जाता है, और वह अपने परिश्रम का पूरा मूल्य पा लेती है।<sup>3)</sup>

‘स्यों स्यों बौबब गुजरवा जाता है, स्यों स्यों पति बचवा पत्नी, और मित्रों व सन्तान का प्रेम ही बूढ़ावस्था में शान्ति और आनन्द प्रदान करने वाली एक मात्र बस्त,

बचती है। एक पत्र भूत की स्थितियों को ताजा बनाता है; और दूसरा भविष्य के लिये कुछ दिलचस्पी पैदा करना है, और इस तरह हम अपनी सन्तान डागा फिर नया जन्म ग्रहण करते हुए अमर बन जाते हैं।

समाप्त

## गुरुकुल समाचार

ब्र० वेदराज १५ प्रलाप, ब्र० कृष्णकुमार ११ उदरगूल ब्र० कृष्णकुमार ( कर्मालया ) ११ रत्नेष उवर, ब्र० जगन्नाथ Mump, ब्र० रामकृष्ण मलेरिया उवर, राजकेशोर मलेरिया उवर, धियाभूषण मलेरिया उवर, अमरसिंह मलेरिया उवर स्वास्थ गत ममदा ये ब्र० गंगा हुय अत्र मवन्वस्थ हैं इस सप्ताह अधिक तापमान १०४ फा० रहा। लूह दुपहर पर्याप्त चलती है।

इस बार के प्रथम मान्य अतिथि श्री जम्भूतान्दन मद्रास निवासी पचार, आपका वाग्धर्षिनी सभा की ओर से दक्षिण भारत का पर्यवेक्षण विषय पर व्याख्यान हुआ। आपने अद्वैतों का समस्याओं को हल करने के लिए आतकों का मांग की।

द्वितीय मान्य अतिथि श्री शेषाद्वि आचार्य अजमेर कालिज पचार, श्री मुख्याधिष्ठाता जी के साथ आपने सारं गुरुकुल का पर्यवेक्षण किया और बहुत प्रसन्न होकर गये। अब आप मसूरों गये हैं, लौटने समय फिर गुरुकुल प्रायेण परमां आशा है।

३ ज्येष्ठ को महामना श्री मालवीय जी हरिद्वार पधारते सहायस्था के कारण आप गुरुकुल नहीं आसके, प्रशयाचारियों ने हरिद्वार जाकर आपके दर्शन किए।

### [ पृष्ठ ३ शेष ]

दिसाव आर्य समाज का मद्रयता—प्रांजका में दर्ज किया जाय।

पर जो भी परिवर्तन किये गये हैं वे आर्य समाज-संस्था के जीवित जागृत होने के प्रबल साक्ष्य हैं तथा भविष्य में अन्य सुधारों का मंत्रपात करने वाले हैं। आर्य समाज श्रद्धिवादी न होकर, सुधारवादा संस्था है। इस बात का एक ताजा उदाहरण वर्षों से प्रचलित उत्सव पद्धति के परिवर्तन का श्री गणेश कर आर्यसमाज ने प्रस्तुत किया है।

हमें आशा है कि सभी आर्य समाजों लुधियाना के दृष्टान्त को अपने सम्मुख रखकर उत्सव पद्धति को सुधारने की तरफ पूरा ध्यान देंगे। और जहाँ तक हो सके उत्सव को जीवनरूप में मनाने का प्रयत्न करेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि नव आर्यसमाजों के उत्सव आज को अपेक्षा क्रियतमक दृष्टि से अधिक उपयोगी एवं आकर्षक सिद्ध होंगे।

—‘आर्य’

स्मृतिवधेक

ब्राह्मी बूटी

॥॥ सेर

सुगन्धित

हचन सामग्री

॥॥ सेर

गर्मियों में

एक बार जरूर आजमाइए

# गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी का प्रसिद्ध

**भीम  
सेनी  
सुरमा**

आंखों से पानी बहना, खुगली ककुरे सुखी,  
जाला व घुन्घ आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार  
से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त आंखों में लगाने से  
निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ मारा ॥२॥ १ तं० ३॥

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन खान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग  
तरोताजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, आंखों  
में जलन आदि रोगों में तुरन्त आराम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

## गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

(सहारनपुर)

प्रांच

लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहली—चांदनी चौक  
पटना—मछुआ टोली, चांकीपुर

**भीमसेनी दंतमंजन**

दांतों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है  
मूल्य ॥॥ शीशी, ३ शी० १॥

**सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए**

**सुपारी पाक**

बिचों के जरियान रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।  
मूल्य १॥॥ पाव



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल काङ्गडा, शुक्रवार १२ ज्येष्ठ १९५७, २४ मई १९४०

[ सन्का ६ ]

## बीस मई का अनुभव

आर्यसमाजियों की एक बस्ती है। उसमें तीन चार दिन हुए श्री अरविन्द के एक शिष्य जा पड़े थे। श्रीयुत् अरविन्द के इन भक्त महोदय ने अपने गुरु महाराज से तय कर लिया था कि २० मई को सांझ में ७:३० में २ बजे तक भक्तों का जमपट बगंगा। गुरु महाराज अपनी दिव्य शक्ति का ठीक इसी समय ऐसा संचार करें जिससे एक-एक व्यक्ति को महसूस हो कि उसमें कोई शक्ति बाहर से ऐसे डाल दी गई है जैसे खाली घड़े में पानी। बस्ती के एक एक व्यक्ति को उसके घर पर जाकर निम्न्त्रण दिया गया—कुछ को छाड़ दिया गया, शायद इन्सलिये कि वे इनने काफ़ूर समझें गये कि उनका श्रीयुत् अरविन्द जैसे शक्ति शाली महात्मा भी कुछ नहीं बना सकते थे। यह भी सुना गया कि इस सत्संग को जमाने पहले भक्त महोदय का कहना था कि जो श्री अरविन्द के चरणों में नहीं आयेगे वे स्वयं ही नष्ट हो जायेंगे। शायद इसीलिये ‘काफ़िरों’ को श्री अरविन्द के आशीर्वाद से जलबुझ कर वञ्चित करने का प्रयत्न किया गया। लेकिन सुनते हैं ‘काफ़िर’ खुद-ब-खुद दिना हुलायें सत्संग में जा पड़े। जिस प्रकार मैं इस सत्संग का भूम संचायी गई थी उसका यह परिणाम तो होना ही था। भला ऐसी चीज़ को देखने की किसकी उत्सुकता नहीं होगी।

भक्त मण्डली को बैठाने के लिये बहुत उलम प्रबन्ध किया गया था। मकान के बाहर बोर्ड लगें हुए थे। मकान की सीढ़ियों के पास पढ़ने ही एक बोर्ड दिखाई देता था—‘जुने एक पंक्ति में उतर दो’। ऊपर वरामदे में जाने ही एक बड़ा बोर्ड था जिस पर सम्पूर्ण कार्य-क्रम लिखा हुआ था। कार्य-क्रम तो एक ही था—श्री अरविन्द की मूर्ति के सम्मुख बैठकर आध घंटे भर मौन बैठें रहो। वरामदे से अन्दर मकान में प्रवेश होता था। दो-चार मंजों पर अर्ध-युत् अरविन्द की पुस्तकें रखी हुई थीं। इस कमरे से निकल कर मकान के आंगन में दरियां बिछी थीं उन पर

वृत्ती हुई गणदे चादरें थीं। ऊपर थड़े पर एक मेज़ रखी थी; इस मेज़ पर बीच में श्रीयुत् अरविन्द का फोटो था; फोटो के दोनों ओर सुन्दर फूलों के गुल दूबने थे, गुलदमनों के पान अलार्म लगाकर दो घड़ियां रखी हुई थीं; श्री अरविन्द के चरणों में गुलाब के फूलों की भरी एक थाली थी; कोने-कोने में धूप बनियों की महक उठ रही थी। इस थड़े के नीचे श्रीयुत् अरविन्द की तरफ मुझ कर के एक-एक भक्त आकर बैठना गया। देखने ही देखने आंगन पुरुषों तथा स्त्रियों में संचालक भर गया। सब लोग आंखें बन्द कर के बैठ गये। पूर्ण मनाटा था, बड़ की टिक-टिक के सिवा कुछ सुनार नहीं देता था। कुछ की आंखें खुली थीं, कुछ की बन्द थीं—परन्तु सब के मन में एक ही बात थी। वे किसी चीज़ को प्रतीक्षा में थे, किन्ता अलौकिक अनुभव की इन्तजार में थे, क्योंकि ठीक साढ़े सात से आठ बजे के भीतर श्रीयुत् अरविन्द पांडुचंद्री में आध्यात्मिक धारा का इस भक्त मण्डली में प्रवाह करने वाले थे।

साढ़े सात का समय हुआ, घड़ी टनटना उठी, उस में अलार्म दिया गया था। भक्त मण्डली का ध्यान अधिकारिक रुन्धित होने लगा। प्रतीक्षा बढ़ने लगी, वह उतुकता का रूप धारण कर गई। अरु कुछ हुआ—अब कुछ हुआ! अरे, दस मिनट बीत गये, अभी तक कुछ नहीं हुआ! भक्त मण्डली ने सोचा कि ध्यान की कमी है। चारों तरफ से ज़ोर लगने लगा— बीस मिनट बीत गये, पचीस मिनट बीत गये, छत्तीस सताहस, अठ्ठाहस, उनतीस— एक मिनट बाद फिर घड़ी टनटना उठी। अब आठ बज गये थे, अलार्म दिया गया था, सो बज उठा। आध घंटे तक मौन बैठें रहने के बाद भी कोई चमत्कार नहीं हुआ, श्रीयुत् अरविन्द के दर्शन नहीं हुए, कोई नवीन आध्यात्मिक या अलौकिक अनुभव नहीं हुआ। प्राठ बजे सब लोग आंखें खोल कर एक दूसरे को मुक-भाव से पूछ रहे थे कि क्या तुम भी मेरी ही तरह कोरे के कोरे रह गये ?

श्रीयुग् अरविन्द की मूर्ति के चरणों में थाली भर कर फूल रखे गये थे। भक्त महोदय ने कहा कि मनुष्य के मन को अनेकता फूल पर प्रभाव डालना अधिक सरल है। गुरु महाराज ने आध्यात्मिकता की जो धारा पांडुकेरी से छोड़ी है उसका प्रभाव मनुष्य के मन पर नहीं हुआ, फूलों पर हुआ है। इन फूलों को सूखने से यही प्रभाव मस्तिष्क में प्रविष्ट हो जाता है। वे मूर्ति के चरणों में पड़ी फूलों की थाली लेकर खड़े हो गये, और भक्त-मण्डली उठती गई, और वे एक-एक फूल भक्तों का बाँटने लगे। इस प्रकार यह सत्संग समाप्त हुआ। जो लोग कुछ धारा लेकर आये थे वे निराश लौटे; जन्मे कोई आशा थी ही नहीं वे मानव प्रकृति के अन्तर्निहित मनुष्य-पूजा की प्रवृत्ति का उपहास करने हुए घर लौट आये।

एक बात रह गई। भक्तों को फूल तो बाँटे ही गये थे, इन फूलों के साथ एक और चीज़ भी बाँटी गई। यह थी 'राधा की प्रार्थना'। इस प्रार्थना में जो कुछ लिखा था उसे पढ़ कर मन पुख्ता था, श्रीयुग् अरविन्द की शिष्य मंडली किचर जा रही है। 'राधा की प्रार्थना' निम्न था:—

### राधा की प्रार्थना

"ओ, तुम तो पहिले ही रहिषान में मैंने अपनी सत्ता के आत्मा और अपने भगवान् के रूप में पहिचान लिया। तू मेरी मेट लीकार कर।

मेरा सड़ दिवार तेरे हैं, मेरी सब भावनायें, मेरे हृदय के सब आविष तेरे हैं, मेरे सब इन्द्रियबान, मेरे जीवन को सम्पूर्ण गतिविधि तेरी ही, मेरे शरीर को एक-एक बूंद तेरी है। मैं सर्वप्रकार से और समग्र रूप में तेरी हूँ। बिना कुछ भी बचायें, निःशेष भाव से तेरी हूँ। मेरे लिये तू जीवन चुने था मरण, हर्ष लाए था शोक, सुख दे था दुःख, जो कुछ भी तेरी ओर से तुम मिलेगा, वह सब मुझे शिरोधार्य होगा। तेरी प्रत्येक देन मेरे लिये सदा ही एक दिव्य देन होगी, अपने साथ परम आनन्द लाने वाली दिव्य देन होगी।"

अगले दिन यस्ती एक सनातनी भारी पधा। उ। से पता चल: कि वे भी कल वाले सत्संग में उपस्थित थे। वे कहने लगे, 'देखिये, अलबत यह है कि मूर्ति पूजा इतनी जीवित वस्तु है कि वह मर-मर कर में जा उठता है। देखिये, श्रीयुग् अरविन्द जैसे महात्मा के शिष्य जब तक राधात्मक नहीं होते तब तक उनके अन्तर्गतमा की शक्ति नहीं मिलती, इसी लिये तो 'राधा की प्रार्थना' बाँटी गई थी। इसके आतिरिक्त देखा न आपने, श्रीयुग् अरविन्द को मूर्ति के सम्मुख बड़े-बड़े आर्य समाज। कल प्रकार अपने बन्द कर के बैठे थे।' यह बात सुन कर कुछ जोशीले आर्यसमाजी बोल उठे—'नहीं महाराज हम तो यही बतलाने वहाँ गये थे ताकि आप लोगों को भी पता चल जाय कि यह सब ढोंग है। अगर हम न जानें तो आप दून की हाँकने फिरने कि यह

हुआ, वह हुआ—अब तो आप को भी पता चल गया कि कुछ नहीं हुआ, और हमें भी पता चल गया कि कुछ नहीं हुआ।'

परन्तु क्या सचमुच कुछ नहीं हुआ? बीस मई के सत्संग से दो बातें स्पष्ट होगीं। पहली बात तो यह स्पष्ट हो गई कि जो लोग श्रीयुग् अरविन्द का नाम लेकर जमीन-आस्मान की हाँकते हैं वे अपने परिमित क्षेत्र में मले ही कुछ कह लें, सर्व साधारण में वे इस पन्थ को एक पाल्ड का रूप देकर हो चला सकते हैं। दूसरी तरह से नहीं। पाल्ड ता सब तरह के चलने हो है, इन्हीं पर झट्ट फेरने के लिये तो अंधा ध्यान न जन्म लिया था। दूसरा बात यह स्पष्ट हो गई कि आर्युग् अरविन्द इतनी दूर तक अपने शक्ति का, कम से कम उस दिन, संचार नहीं कर सके। अगर कर सके होते तो किसी पर तो कुछ असर दिखता—सर्वा कोरे के कोरे—और वह भी आध घंटा भर पसीना-पसना हा जाने के बाद। शायद सारी मंडली में एकआध ऐसे ही जो कहें कि उन्हें कुछ नवीन अनुभव हुआ, परन्तु उन्हें तो येसे भी होता। चाहे भी अरविन्द अपनी आध्यात्मिक धारा फेंकने या न फेंकने, उन पर तो कुछ-न-कुछ असर होता ही होता, परन्तु संकड़ों आदिमियों को बुलाने और इकट्ठा करने का तो यही मनसब होना चाहिये था कि ऐसा कुछ होता जिससे नास्तिक भी आस्तिक हो जाने, लोगों के संशय मिट जाते, वे इस मार्ग की तरफ दौड़ने लगते। ऐसा कुछ नहीं हुआ—और सच पूछो तो—कुछ भी नहीं हुआ। हाँ, एक बात हुई, वह यह कि जो लोग समझते थे कि कुछ होगा, उनको अचलें खुल गईं और उन्हें मासूम होगया कि पाल्ड और ढोंग से भरे हुए इस देश में दूसरे पाल्डवाँ और ढोंगों की तरह-यह भी मनुष्य पूजा का एक ढोंग है जो धीरे-२ मूर्तिपूजा का रूप धारण कर रहा है।

इस सत्संग के बाद भक्तों के हृदय में भी एक शक्ति उठ खड़ा हुई है। अगर ५० आदमा धूप-बत्ता जलाकर, मकान की सफाई करके, सकेद चादों पर यू ही आध घण्टा ध्यान करना बैठ जाय, सर्वथा मौन रहे, परमात्मा का ध्यान करें तो क्या उन्हें कुछ कम आध्यात्मिक प्रसाद प्राप्त होगा? क्या इस समय आ अरविन्द का मूर्ति सम्मुख रखकर, उनके चरणों में फूलों का थाली चढ़ाकर—ये सब आहम्बर रचकर किसी को कुछ आधिक आध्यात्मिक प्रसाद प्राप्त हुआ? सोचने वाले साँचे, और समझने वाले समझें। पाल्डवाँ को ता जितना बढ़ाया जाय वे बढ़ते जायेंगे, मनुष्य की प्रकृति इसके लिये बहुत उपजाऊ भूमि है, परन्तु देश का भला पाल्डवाँ बढ़ाने में नहीं, पाल्डवाँ हटाने में है।

## श्री रामरणाश्रम के कुछ संस्मरण

[ जन्म-पत्र २० भाग ० 'धर्मदत्त विद्याभारत' विद्यावाचस्पति  
'आनन्द कुटीर' जगन्नाथपुर ]

[ १ ]

मद्रास संस्थान के निरुपग्रामसे नामक नगर में ४५ मील की दूरी पर अरुणाचल की उपत्यका में एक आश्रम है जहाँ एक श्री रामण नामक व्यक्ति रहते हैं। उन्हें लोग 'महापि' अथवा 'मगवार' के नाम से पुकारते हैं। गत कुछ वर्षों से 'मि.' पाल ब्रन्डन नामक एक योग्य अंग्रेज पत्र सप्ताहक द्वारा 'The Mahatma and his Message, The Secret Path, Wanderings in Secret India' इत्यादि पुस्तकें लिखी जाने के कारण श्री रामण और उनके आश्रम का देश-देशान्तर्गो में पवात प्रसिद्ध हो चुकी है। शुभं दक्षिण भारत में रहने हुए दो बार श्री रामणश्रम को 'लेखन और श्री रामण 'महापि' जो मंत्र कर्म का सीमाप्य प्राप्त हो चुका है। कई मित्रों के आशुरोप से मैं उस मंत्र विषयक कुछ संस्मरण 'गुरुकुल' के पाठकों के सम्मुख रखना चाहता हूँ।

पत्रास के साप्ताहिक अंग्रेजी पत्र 'Sunday Times' आदि में श्री रामण महापि के आशुसुत योग बल और चमत्कारों का बखत पढ़ कर तथा उनके कुछ दृश्यों को देख कर मैं मन में उनका सन्तुष्ट करने की इच्छा प्रबल हो उठी। मैंने पूज्य धर्म-पिता जी का स्वास्थ्य जो उन दिनों हमारा साथ बंगलौर में रहने थे तब अच्छा न था। 'सन्डे टाइम्स' आदि के लेखों में यह प्रकट किया गया था कि श्री रामण महापि के दर्शन तथा आशीर्वाद मात्र से सब बीमारियाँ दूर हो जाती हैं और व्याथ्य ठाक हो जाता है। इस लिये मैंने पूज्य धर्म पिता जी ने 'महापि' के दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त करने का निश्चय किया। उचित अवसर जान कर हम लोगों ने २ फरवरी सन् १९३६ का तिरुवनन्तमपुर के लिये बंगलौर में प्रस्थान किया। सायंकाल हम लोग श्री रामणाश्रम पहुँचे तो यहाँ सन्ध्या के उपरान्त यजुर्वेद के १८वें अध्याय का पठन ध्वनि से पाठ हो रहा था जिसे सुन कर हम सब को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। प्रातःकाल आश्रम में प्रतिदिन वेदों और उपनिषदों के कुछ अश्रों का मन्त्र पाठ श्री रामण जी का उपस्थिति में किया जाता। जित न ओगामो-विशेषतः सस्कृतक सजनों को बड़ा आनन्द लाभ होता है। मुझे स्वयं उस वेद उपनयद पाठ के समय एक अलौकिक दिव्यानन्द का अनुभव हुआ ऐसा मैं बिना लकोच के कह सकता हूँ। श्री रामण 'महापि' सा वेद पाठ के समय ध्यानस्थ शान्त अवस्था में बैठे थे और ऐसा प्रतीत होता था कि उन से शान्ति का प्रवाह चारों ओर प्रवाहित हो कर अशान्त तप्त हृदयों में भी शान्ति का संचार कर रहा था। संस्कृत न जानने वाले ध्यकि भी उस आध्यात्मिकता के वायु मण्डल में प्रभावित हुए बिना रह सकते थे। उन दिनों पाश्चात्य सज्जन तथा वैश्याय श्री महापि के दर्शनार्थ आश्रम में आये हुए थे। उन में से कईयों को मैंने घण्टों तक सीमावस्था में महापि के सम्मुख बैठे देखा। पृष्ठ पर उन्नी ने

बनाया कि उन्हीं बिना कुछ प्रश्न किये ध्यानस्थ महापि के सम्मुख बैठने मात्र से भी आशुसुत शान्ति और आनन्द का अनुभव होता था। मैंने अपने वैयक्तिक अनुभव के आधार पर भी उनके इस अनुभव का समर्थन किया; यद्यपि उन में से कईयों के इस कथन में कि महापि के सम्मुख जाने ही सब प्रश्नों का उत्तर स्वयं मिल जाता है मुझे आशुकि प्रतीत हुई जिस का आशुमोदन नहीं किया जा सकता था। मैंने श्री रामण महापि से वेदान्त, प्राणायाम, चित्त की एक प्रत्या-कर्मयोग, समाज सुधारदि विषयक कई प्रश्न किये जिन के उन्होंने अपने विचारानुसार यथोचित उत्तर दिये। मैंने उनको उस समय अधिकतर जाग्रो स्थिति और समाधिस्थ अवस्था में पाया जिस से मैं विशेष प्रभावित हुआ। उन्होंने पूर्ण मीनक अवलम्बन न किया हुआ था-पर बहुत कम-साधकों की आवश्यक जिज्ञासा का शान्त करने के लिये ही बोलते थे। पहले ही दिन यह देल कर कि एकाग्रता आदि विषयक मंत्र प्रश्न का उनके शिष्यों ने अपनी इच्छानुसार कुछ का कुछ उत्तर देना शुरु कर दिया कि मैंन की तो सत्ता ही नहीं है इत्यादि। मैं प्रायः एकान्त समय में (६ बजे रात के बाद वा प्रातः ३ बजे क पश्चात्) श्री रामणजी के पास जाता रहा और उन्हींमें मंत्र प्रति बड़ा प्रेम दिलाया आशुकि विस्तार में न जाने हुए इतना ही लिखना पर्याप्त है कि उस समय में मैं मन पर श्री रामण जी की उच्च आश्वासन-अवस्था और शान्तता का आशुसुत प्रभाव पड़ा और अपने पूज्य धर्म पिता जी का निराश होकर लौट जाने पर भी (क्योंकि ये चमत्कार अशुकितर प्रक शिष्यों के मनबद्धन होते हैं) में कुछ दिन और उस आश्रम में ठहर कर श्री रामण महापि का सन्तुष्ट कराने रहा।

[ २ ]

इसके बाद अर्द्ध रात्रि बंगलौर गये, २४ अगस्त १९३८ को मद्रास में हरिजन सबक सम्मेलन से लौटने हुए मैं दूसरी रात एक मित्र के साथ 'महापि' के दर्शनाथ तिरुवनन्तमपुर गये। इस रात भी मेरा विचार आश्चर्य-कृतानुसार कुछ दिन आश्रम में ठहरने का था किन्तु मुझे तब हुआ और आश्चर्य हुआ कि तब श्री महापि श्री रामण और उनके आश्रम के वायुमण्डल में मुझे आश्चर्यजनक अन्तर दिखाई दिया। मैं इस बार भी घण्टों तक श्री रामण जी के सम्मुख बैठा किन्तु अब उन्हें अधिकतर निरुपग्राम नामिल अग्रजों के समाचार पढ़ने, तामासू मिश्रित पात्र चबाने तथा (मठार) बाने व बाँटने आदि में ही व्यस्त पाया। मैं पहले का उन का समाधिस्थ अवस्था और ब्राह्मी स्थिति के दर्शन करने के लिये तरसता ही रहा जिस में मुझे निराशा उठानी पड़ी। आश्रमके न युवमण्डल से भी आध्यात्मिकता का सुगन्ध उड़ चुकी प्रतीत हुई। रामण जी के संगे मैं और रामणाश्रमके वर्तमान सहायिकारो श्रीनिरुपग्रामानन्द से भी श्री रामण के एक प्रसिद्ध योगी श्री रामैया को एक विद्वत्त तुच्छ-सा बात पर घण्टों भगडने हुए देख कर सन्तुष्ट आश्चर्य हुआ। भोजन के समय जब महापि के शिष्यों को आशुसुत आशुसुत का ज्ञान पढ़ने और

[ शिष्य युष्ट ३ पर ]

# गुरुकुल

१२ ज्येष्ठ शुक्रवार १९६७

## लाटरों से रुपया कमाना

[ श्री आचार्य अभय देव जी के उपदेश का एक अंश—श्री महाविद्यालय के प्रकाशकारियों के बीच दिया गया ]

रेल के टिकटों के पुनः उपयोग से, भेलती जुलता एक और बात है, वह है लाटरा का वान। लाटरा से रुपया कमाने में क्या दर्ज है? "हम किसी का चोरा नहीं करते, जवरदस्तो नहीं करते, यदि भाग्य में होता है तो मिल जाता है।" तुम में से बहुत से पम्मा सोचते होंगे। बौद्धिक तीर पर इममें बुराई और पाप समझने वाले तो तुम में से बहुत कम होंगे। अपने संस्कारों के कारण लाटरा डालने में हिचकने वाले देशक बहुत होंगे परन्तु जरूरन इस बात का है लाटरा में जो बुराई है उसे तुम ठाक प्रकार से जानो और समझो।

एक अच्छे जलवागं ने (जा अचकत आतक हो चुका है) इस बारे में एक बार मुझसे पूछा था, उसके पास लाटरा के फाम निकले थे और आग्रामावृक्ष जी ने उसे फाम भरकर भेजने से रोका था, तब उसने मुझसे जिज्ञासाभाव से ही पूछा कि मुझे यह तो बताना है कि इममें बुराई क्या है? मैंने उसे समझाया और उसे अच्छी तरह मालूम पड़ा कि वह समझ गया है। इसी तरह एक आतक भाई ने लाटरा के टिकट रुपये भेजकर सराद भा लिये थे, उन्हें समझाने का अवसर हुआ, उन्हें तो इमकी बुराई इतनी अच्छी तरह समझने आ गई कि उन्होंने स्वयं प्रेरित होकर उनसे रुपये दान करके उसका स्वयं प्रायश्चित भी किया। पर इमसे भी अधिक बात एक ऐसे सदानुभाव की है, जिन्हें मैं पूजा की दृष्टि से देखता हूँ, जो बड़े धार्मिक, भजन-साधन करने वाले, परोपकारी और ईश्वरनिष्ठ पुरुष हैं। वे परोपकार के लिये, जैसे गुरुकुल के लिये लाटरा द्वारा धन कमाने में कोई दर्ज नहीं समझते थे बल्कि उनकी शक्तवशा एक योजना थी कि इस तरह गुरुकुल का तरफ से एक लाटरा जाग का जाय जिससे कि गुरुकुल जैम, धार्मिक संस्थाओं को इनका-इतना आय हो और इनकी बहुत कुछ आर्थिक समस्या हल हो जाय। उनका जड़ मैन यह बतलाया कि ऐसा करना इसलिये अनुचित है तो वे इसे तुरन्त समझ गये।

य तीन दृष्टान्त भेद इमलिये दिये हैं कि तुम एक तो यह जान सको कि यह बात आजकल इतनी आम है कि यह सबच प्रचलित है और बड़े अच्छे अच्छे पुरुष भी लाटरा द्वारा धन प्राप्त करने में स्वार्थ के लिये नहीं तो 'परोपकार' के लिये—कोई भी बुराई नहीं समझने, अतः

तुम्हें भी यदि इसमें कोई दोष नहीं होखता तो यह आश्चर्य की बात नहीं। दूसरे यह कि जो निर्मल हृदय और धर्मभावना वाले पुरुष हैं वे खरा सा संकेत पाकर इसकी मरावी कार्रन समझ जाते हैं, अतः सम्भव है कि तुम भी समझ जाओ।

वात तो खरा सी है, इतनी ही कि यह तराका मनुष्य की लोभभृति को उकसावा है और उससे लाभ उठाना है। वैसे यदि लोगों से— गुरुकुल के लिये या किसी आर्थिक सहायता के पात्र अन्य कार्य के लिये— एक एक रुपया मंगा जाय तो गांठ से नहीं निकलेगा—एक रुपया क्या? शुद्ध स्वार्थ का कीमत यदि ७ अपसत्या अधिक है तो वह दुःखसा अधिक देना आतक लगता है— तो फिर जब लाखों लोग लाटरा में एक एक रुपया खटाखट दे देते हैं तो वह मधुख शूल-लोभभृति—हमें यह सुझाती है कि शायद दम हज़ार का इनाम समे ही मिल जाय। दम हज़ार रुपया मिलना एक को ही है या एक को भी नहीं, पर उसकी आशा सबको लग जाती है और करोड़ों लोग बिना किसी लाभ के रुपया दे देते हैं, इस प्रकार अपार धन एक जगह भिच आता है।

यह है आमुगे माया। इमं माया के बरा जुआ खेला जाता है। पहले जमाने में तो लोग बड़े-बड़े के पत्नों से सीया माया जुआ खेल लेते थे। आज कल उमके कई चक्करदार और सुठाने तथा फेशन वाले तराके निकल आए हैं जिन्हें बड़े से बड़े प्रतिष्ठित और धर्मात्मा लोग भी निराश होकर करते हैं। इन सभ्य तरकों पर वह दुःख भी लागू नहीं होती जो जुआरिओं को दोषो ठहराती है। इस लिये लोगों की लोभभृति को पालने पोसने और उससे लाभ उठाने की हमारी मनुष्यता को गिराने वाला बुराई आजकल जगल में लगा आग को तरह निराश फैज रही है। जुप में धननाश, निराशा का दुःख, अन्य पापों में प्रवृत्ति, चर उड़ड़ जाना आदि जिन बुराईयों का वर्णन किया जाता है में उनका यहाँ बणन करना आवश्यक नहीं समझता। वे तो स्वाभाविक परिणाम हैं अतः होने ही हैं। मैं जो मूल वस्तु का तरफ ध्यान खालना चाहता हूँ वह है लोभ, जिसे नरक के तन द्वारों में से एक द्वार आ कृष्ण जान गता में बताया है। चाहे नरक के अन्य द्वारों से न जाकर—इस द्वार से अन्दर घुस जना या नरक क सब दुःख दद तथा यातना। मर्गा ही। भद इतना ही है कि अब जुआ बड़े पैमाने पर कन्तु लाटरा सट्टा रस आद सुहावन फेशन-बल तराका खला जाता है, इस लिये आजकल का नरक भा यथाप बहुत व्यापक रूप में है, कुछ व्यक्तियों तक नहीं बल्कि कुछ वर्गों और जातियोंक फेला हुआ है पर वह सुन्दर चमकते हुए परदे से ढका हुआ है। आजकल के उरच वग, उनका बनाई व्यवस्था तथा सरकारें इतना चमकाली हैं कि पीछे छिपे हुए सांजान नरकपर दृष्टि पड़ना बहुत मुश्किल हो गया है। अस्तु।

इस लोभ भृति के भी मूल में जाय गो इस जुप में जो असली बुराई है, पाप है, जिस के कारण धृत् की

महापातकों में गिनती, वह है बिना श्रम किये कमाने की इच्छा, बिना दाम चुकाए (और श्रम ही वस्तुओं का असली दाम है) वस्तु पाने की इच्छा। इस बात को मध्यवर्ग के प्रसिद्ध धृतसूक्त में बड़ी उच्चमता से कहा गया है—

अर्थात् दीव्याः कृषिर्भित्कृषव्य  
विचते रमस्य बहु मन्यमानः ॥

यह एक ऐसा वेद वचन है जिसको शिवा को आश्रकल दुनिया का जिनना जरूरत है उसना और किसी शिवा की नहीं। परमेश्वर का मनुष्य का उपदेश है कि 'नू पासों से मत खेल, मेहनत करके खेती ही कर, फिर जो कुछ तुम्हें मिलता है उसी धन को बहुत मानता हुआ उसमें आनन्द लूट ।'

यहां खेती आश्रयक उत्पादक-श्रम का उपलक्षण है। मनुष्य परिश्रम करके अपनी सम्पत्ति अर्थात् जीवनपयोगी वस्तुएं उत्पन्न करे। श्रम उत्पन्न करे। वस्त्र उत्पन्न करे गोला बारूद उत्पन्न करने का श्रम करने से भी काम न चलेगा, वह श्रम व्यर्थ जायगा और नाशकारी होगा। भोग (बिलास का चीजें उत्पन्न करना भी हमारी पार्श्वी श्रुतियों को बढ़ाने में सहायक होगा और नाशकारी होगा। इस लिये कहा है 'श्रमपूर्वक कृषि ही कर अर्थात् बिना श्रम किये धन कमाने की इच्छा मत कर, जुआ मत खेल'— 'जुआ खेलने से तू समझता है कि बहुमुसा रूपया आ जायगा पर वह झूठा बचया होगा, इस लिये परिश्रम से कमाये इस थोड़े दाखने वाले धन को ही बहुत समझ और उस सभी सम्पत्ति में आनन्द-मग्न रह, रमण कर ।'

पर हमें सच्चा ईमानदारी की परिश्रमपूर्वक की गई कमाई में आनन्द नहीं आता तथा हम जुआ खेलना चाहते हैं। आज का दुनिया का तबाही का कारण क्या है? यही न, कि कुछ व्यक्तिक और मनुष्य बर्ग ही नहीं, राष्ट्र भी दूसरे व्यक्तियों बर्गों और राष्ट्रों से नाजायज, फायदा उठाना चाहता है। उनके श्रम पर अपने आप को आराम से पालना चाहता है। अपने आप बिना उचित परिश्रम किये दूसरे का धन (दूसरों के श्रम का लाभ) लेना चाहता है। यह माना प्रकार अर्थात् से खेलना—श्रुतकीड़ा ही है। इस सब में असली पापभावना यही है कि बिना श्रम किए धन प्राप्त हो जाय। यहा पापभावना उसी तरह लाटरी में भी है। जो धन हमने परिश्रम से नहीं कमाया, जो हमारे अपने पसने की सच्ची कमाई नहीं है, वैसे एक पैसे का भी हम न छुए। इसका पालन करने से जगत् को सुख मिल सकता है। जो हमारे अपने श्रम की थोड़ी कमाई है उसे हम बहुत मानें और उसमें बादशाहों के बादशाह की तरह पूरा गारव और गर्व के साथ निश्चिन्तरूप से आनन्द मग्न रहें। यदि ऐसा किया जाय तो प्रृथ्वी पर फिर स्वर्ग आ जाय। इससे स्वांग क्रम हा पजट जाय। नव मनुष्य का लोभ श्रुति कामना का श्रुति इन अधम श्रुतियों के स्थान पर उसका श्रमशक्ति और रचनाशक्ति को मोत्साहन मिले और मनुष्य को सच्चा गौरव तथा आनन्द प्राप्त हो। जो धन हमारी कमाई का नहीं उसे हमें बिल्कुल न छूना चाहिये। फिर उस अनुपाजित धनको दूसरों की काम और लोभ की

श्रुतियों को बढ़ाने का कुकर्म करते हुए खीच लेना कितना भारी पाप है, यह हमें अनुभव करना चाहिये।

मैं जानता हूँ कि हमारे देश में भी कई लाटरियां अनाधालय आदि को सहायता पहुंचाने के लिये जारी की जाती हैं और कई संस्थाएं ऐसे चल रही होंगी। पर जैसे द्रव हांवा हुआ भी बिपैला पानी पिया जाकर हमें रुग्ण या नष्ट कर देता है, वैसे ही रूपये वैसे के आकार वाला धन भी बुरे उपायों से प्राप्त होने के कारण दूषित हो कर हमारे काम को बिगाड़ने वाला या हमारा नारा करने वाला ही हो सकता है। लाटरी द्वारा या अन्य किसी प्रकार के श्रुत द्वारा जो प्रलोभन उपस्थित किया जाता है उसे तुच्छ वस्तु मत समझो। हिन्दुस्तान में हजारों शराब की दुकान खोलने वाली ब्रिटिश सरकार भी कहती है कि हम लोगों को शराब पाने के लिये तो नहीं कहते, जो स्वेच्छा से पीना चाहते हैं, उनके लिये सिर्फ यह वस्तु प्रस्तुत कर देते हैं। पर हम जानते हैं कि जहां एक दुकान खुल गई तहां हजारों पीने वाले बन गये। अतएव हम दुकानों के बन्द करने पर जोर देते हैं, दुकानें खोले जाने को पाप समझते हैं, इसे स्वेच्छता देना नहीं समझते। इसी तरह अन्य पाप के प्रलाभनों के समान ही लाटरी द्वारा लोभश्रुति को उकसाया जाता है, उसके पाप को हमें समझना चाहिये। यह नहीं समझना चाहिये कि लोभ है तो वह है ही, वह अपना काम करेगा ही। नहीं, हमें तो शुद्ध कमाई की तरफ प्रेरित करके मनुष्य को उच्च श्रुतियों की जगने का यत्न करना चाहिये और इस प्रकार लोभ आदि अधम श्रुतिर्भा का शमन करना चाहिये। यह अच्छी तरह जान लेना चाहिये कि अपने लिये या गुरुकुल जैसी पवित्र संस्था के लिये शुद्ध धन ही प्राप्त करना उचित है, उसी से हमें पोषण मिल सकता है। और हमें तो उदाहरण उपस्थित करना चाहिये जिससे कि सब लोग वेद की शिक्षा के अनुसरण चलते हुए श्रमोपाजित धन के मूल्य, शक्ति और आनन्द को अनुभव करने लवें। यदि हम ऐसा करेंगे तो समस्त जगत् को ठीक प्रकार का पोषण मिलने लगे और हम सब व्यवस्था के लाने में सहायक होंगे और अपने ध्येय को पूरा करने में समर्थ होंगे।

## गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बाल-शिक्षा का स्थान

( श्री बीरेक विचारकार )

बाल-शिक्षा का विषय अपने आप में इतना रोचक और मनोरञ्जक है कि हम विषय पर जितना भी लिखा व कहा जाय वह विषय की मौलिकता को मद्धे नजर रखने हुए फिर भी अध्यायों में ही समाया जायेगा; इसलिये हम विषय के शाब्दाय, वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बहस करने की कल्पना हम लेख में न करते हुए हम केवल इस विषय के घरेलू व शाला सम्बन्धी कुछ एक प्रयोगों में

लाई जा सकने वाली मुफ्तों, भिन्देशों तथा अनुकरणीय मन्त्रियों का ही दिग्दर्शन कराकर अपने लेख की पूर्ति करेंगे।

लेख के आरम्भ करने के साथ ही लेखक यह विश्वास करना है कि विशा शाला व गुरुकुल में शिक्षण का आरम्भ करवाने से पहिले बालक का किसी न किसी रूप में कुछ अवसर या पुग सा शिक्षण माता-पिता के घर घर में हो चुका है। ऐसा कहने का यह अर्थ है कि बालक ने अपने घर में या अज्ञेय पढ़ाई के माधियों के संग रत्न-मिलकर कुछ एक अपन-स्वाभाविक आदतों (प्रवृत्ति तथा भुक्ता) का ज्ञान या अनजाने में प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। उदाहरणार्थ-घर में जब वह आधा पांच साल का था या तब उमर अपने पिता को बाहर आने समय तिर पर पगड़-टोपा या पाव में जूता-चपल आदि पहिनते देखा है। घर के बच्चों का उत्तर दूसरे नये बच्चा पहिनते देखा है। इस प्रकार उमर नियम पुषक माता को सुबह आर शाम रमोऽ वनते-बच्चा पोत और घर का साज सवार करते देखा है। इन सब क्रियाओं का दूला से उसके मन में क्या आता है? परा समकर्म इसका उत्तर बालक का निजु क्रियाएँ ही दे सकता है कि इन सब क्रियाओं के बारे में वह क्या देहरक करता है। देखा गया है कि बालक पिता का उपास्य ने व अनुपस्थिति में पगड़ा-झड़ा व जूता धारण करने को हरकतों को तथा माता के बस्त्रों व धूरा से सज्जा काटने को किया का अनुकरण करने में न केवल अपना अनन्दना शौक ही पूरा करता है परन्तु ऐसा करने हुए एक तरह का आनन्द और रुचिकाय हो जाते का शङ्कपन भी अनुभव करता है। इस प्रवृत्ति का नाम 'अनुकरण' की प्रवृत्ति है। दुनियाँ में न कोई ऐसा वाक्क है और न हागा जिनके अन्दर कि यह प्रवृत्ति न्यूनाधिक रूप में विद्यमान है या ना होगी। इस प्रवृत्ति की समुचित प्रेरणा तथा इसका सथा हुआ विकास बाल-शिक्षण का केन्द्रीयतत्त्व है।

एक और अमूर्त सा उदाहरण लेकर हम इस प्रवृत्ति का सांख्यमिकता पर प्रकाश डालना चाहते हैं। हम जानते हैं कि बालक जब योजना नहीं जानता था तब वे फल गेना-या ऊँ ऊँ गीं ही करना जानता था। उसने योजना कहाँ न-किसमें और कैसे जाना? इस प्रश्न के उत्तर में हम जानते हैं कि बालक में अनुकरण तत्त्व वृत्त न्यूनाधिक था, उसका सहोदर-सा का प्रयोग करत व वह था अच्युत व बाल्यों में मा-बाप-आर साधियों से बालचीत भोकरन लग गया है। घर में बाला का बोल सुनाया था सुनते सुनते वह भी उसी बोल में पहले गुनगुनाया करता था - उसके पीछे तुलाना लगा। और अब कह बहुत कुछ स्पष्ट और माटा बालने का आदि होगा। यह जान का शिक्षा क्या अप समझते हैं कि बिना बालक या माता आदि के प्रयत्न से प्राप्त हुई। बिलकुल नहीं-इस शिक्षा में उसने अपने जीवन के कुछ एक समुभय सास हो नहीं आपितु वप भी खोये और आज वह अपने दूसरे भाइयों की तरह शब्दों में बड़ी खूबी से अपने हावभावों को व्यक्त करके अपने को कुतकृत्य तथा ऐसा होने

पर अपना व्यक्तित्व अनुभव करने लगा है। यदि एक वाक्य में बालक का बाल्य-जीवन उसकी अनुकरणात्मक प्रवृत्तिका खेल कह दिया जाय तो कुछ असंगत नहीं। बालक क्या है अनुकरणात्मी का पुतला है। जब हम किसी बालक को मंत्र-शलाक व कविता-मतिक को कण्ठाय करने को कहते हैं तो हमें जान लेना चाहिये कि हम उसके हाथ पाँव में नहीं बलिक अबतो उसको मति-बुद्धि में जो स्वाभाविक तौर पर शब्दों और स्वर संगीत को अनुकरण करने का ब्रान है उसे जगा रहे हैं उसका नुपयोग कर रहे हैं। (असमाप्त)

## मधु-मक्खी-पालन

[ इस लेख के लेखक श्री रामेश्वरी प्रामुर्षेश्वरकर गुरुकुल के योग्य स्नातक हैं। बनस्पति विज्ञान और मधु मक्खी पालन के सम्बन्ध में आपका अध्ययन प्रसस्त है। इस लेख में सहायक गुहोयोग के तौर पर गुरुकुल में परोक्ष करने के घर मधुमक्खियों के पालन पर प्रकाश डाला गया है। आशा है पाठक इस न उचित लाभ उठावेंगे। सहायक ]

लगभग अज्ञात तः न भवतः पृथिवीके व प्रत्येक भाग में मधु मक्खियों के अध्ययन का और ध्यान दिया गया है। समस्त देशों के प्राचीन साहित्य में मधु, मधुमक्खी और उसके छत्तों का बखान मिलता है।

सृष्टि के आदि प्राणी मनुष्य में धारे धारे जब कला कौशल का विकास हुआ तो उस न इस अध्ययन उपराग पदार्थ मधु का और ध्यान दिया और मधु माक्खियों का पालना आरम्भ किया। उनके साथ अध्ययन सरल और परिमित होते थे। उन्हां दावारां म सुरंगे बना कर या लकड़ा के खाखले लट्टों में अथवा तनक का टोकरियों में मक्खियों पाला।

मनुष्य ने जब लकड़ा काट कर तकते बनाना सीखा तब उन्होंने मक्खियों को रखने के लिए लकड़ा के बक्स बनाए। पहले ये बक्स बहुत भदे और मक्खियों के लिए बहुत सुविधा जनक भी नहीं होते थे। धारे धारे ज्ञान का उन्नति के साथ साथ अनुभवों से लाभ उठाते हुए मनुष्य ने आधुनिक सय आगामदह, पूण उन्नत और पंचादा साधनों का आविष्कार किया। युरोप में फई स्थानों पर अब भा गरीब किसान, जो आधुनिक मद्दगे उपकरण जुटाते में अक्षमर्थ है, टोकरियों आदि म ही मक्खिय पालते हैं।

भारत में सब से पूर्व मधु मक्खियों का पालन पंजाब में आरम्भ हुआ प्रतीत होता है। पंजाब और हिमालय के क्षिण में यह व्यवसाय लम्बवतः अज्ञान काल से चल रहा है। रावलपिण्डो, मरी, हजारा, शिमला पहाड़ और कुल्लू में अब भी मक्खियां बहुत अधिक पाली जाती हैं और इन स्थानों पर इस घरेलू धन्ये का पारम्भिक इतिहास दृढ निकालना कठिन है।

अब, पिछले ४०-४५ साल से लोगों का ध्यान इस ओर खिचा है और सरकार ने भी तभी से इस में दिल चरपी लेनी आरम्भ की। संयुक्तप्रान्त, पंजाब तथा अन्यान्य

प्रान्तीय सरकारें इस धन्धे को इन दिनों विशेष रूप से उन्नत करने के लिए प्रयत्न शील हैं। संयुक्त प्रान्त में नैनीताल और पंजाब में कांगड़ा मधु मक्खी पालन की शिक्षा देने के लिए केन्द्र बना दिया गया है।

वर्तमान समय में यह व्यवसाय भारत में कई स्थानों पर सफलता पूर्वक चलाया जा रहा है। मधु मक्खी पालने के लिए हमारे देश में अभी बहुत अधिक क्षेत्र है। विशेष कर पर्वतीय प्रदेशों में यह कार्य अच्छी सफलता के साथ चलाया जा सकता है। उत्तर भारत में हिमालय, कारमीर, कुल्लू, होशियारपुर, मण्डौ स्टेट, मसुरी, गढ़वाल, नैनीताल आदि इस के लिए उपयुक्त स्थान हैं। पहाड़ों पर मक्खियां अधिक अच्छा और परिमाण में भी अधिक शहद उत्पन्न करती हैं। दक्षिण भारत में त्रावणकोर, नीलगिरि, मलेय, कुर्ग आदि पश्चिम घाट के नीं भी मील लम्बे क्षेत्र में और पूर्व और पश्चिम घाट में तथा आर, विन्ध्याचल आदि पहाड़ों में भी यह उद्योग चलाया जा सकता है। पहाड़ के पास के स्थानों में—जैसे हरेद्वार, वेदशानुन और बैंगाल में फलकता आदि में—भी मक्खियां पाली जा रही हैं। उपर्युक्त स्थानों में कई जगह अच्छी सफलता मिली है। गृह उद्योग के अतिरिक्त व्यापारिक परिमाण में भी उन स्थानों से शहद बाजार में आने लगा है।

यह एक पंचा उद्योग है जिसमे अमीर शरीर मख लाभ उठा सकते हैं। इस के लिए बड़ी पंजी और लम्बे चौड़े ध्यान की आवश्यकता नहीं होती। थोड़े से परिश्रम और ध्यान से कोई भी व्यक्ति अपने कमाने के दूसरे धन्धे को करता हुआ भी सहायक उद्योग के रूप में इसे सुगमता से चला सकता है। मालां, किमान, बड़ई, घड़ी साज, बकील, व्यापारी, मिशनरी, मरकारी तथा गैर मरकारी उच्च आधिकार, कलेज के प्रोफेसर, स्कूल के मास्टर और विद्यार्थी आदि सभी प्रकार के वर्गों के व्यक्तियों को हमने मधु मक्खियां पालने देखा है। इन में से अनेक यूरोपियन मधु मक्खी पालक भी हैं।

अबकारा के समय इस गृह-उद्योग का अभ्यास मनोरंजन के साथ हमें दुनियादारि चिन्ताओं से भी कुछ दूर के लिए मुक्त कर देता है। खेती और वागवानी का काम करते वालों के लिए यह धन्धा बहुत लाभप्रद है। परिश्रमी मक्खियां फूलों के परागों को एक दूसरे फूल में पहुँचा कर उन्हें अधिक उपजाऊ बना देती हैं। पारसामनः फल का पैदावार बहुत अधिक बढ़ जाता है। परीक्षकों ने देखा गया है कि जिन बागों में मक्खियां ने पराग का बाहान किया है उन में फल पहले की अपेक्षा आकार में बड़े गुने बढ़े और फल का बहुत अधिक प्राप्ति हुई है। संसार में कोई ऐसी चीज नहीं है जो मधु मक्खियों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह फूलों में पराग का आदान प्रदान कर सके।

खेती और वागवानी में मधु मक्खियों की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए दक्षिण भारत के कई स्थानों पर शरीर किसानों और फूलों की खेती करने वालों ने इसी उद्देश्य से मक्खियों को पालना आरम्भ किया है। ग्राम

वासियों को इस उद्योग के कारण एक मूल्यवान पदार्थ मधु तो मिलता ही है साथ ही उन की आय भी उस उद्योग से काफी बढ़ जाती है। विशेष कर हमारे देश में जब कि और देशों के मुकाबले में मधु मक्खियां अधिक होती हैं।

(असमान)

### स्वास्थ्य समाचार

धर्मचन्द १२ श्रेणी बिपमस्वर, रमेशचन्द्र १५ श्रेणी वृग, प्रद्युम्न ५ श्रेणी मलेरियास्वर, बलराज ४ श्रेणी मलेरियास्वर, राधनन्दन ३ श्रेणी मलेरियास्वर, मूसप्रकाश ३ श्रेणी मलेरियास्वर, सुरेन्द्र २ श्रेणी मलेरियास्वर, सहदेव २ श्रेणी मलेरियास्वर, राजेन्द्र २ श्रेणी मलेरियास्वर, अमरमिह १ श्रेणी टान्सल, रमेशचन्द्र ४ श्रेणी मम्म, आबनारा १ श्रेणी स्वरा,

गत सप्ताह उपरोक्त ३० गेगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ३० आबनारा १ श्रेणी तथा रमेशचन्द्र ४ श्रेणी को अभी उबर है। आशा है कि शीघ्र आराम आजावेगा। आजकल आधिकतम तापमान १०४ फा० है।

(पृष्ठ ३ का सौध)

ब्राह्मणों—ब्रह्महर्षों को अलग २ बैठने जब मैंने देखा। ता मेरे आश्चर्य का ठिकाना रहा, किन्तु मैंने यह कह कर अपने को सन्तोष दिया कि इस प्रकार की बातें 'महर्षि' जी की सहमानि और ज्ञान की भी बिना सम्भवतः शिष्यों द्वारा ही जाती हो,अनः इस विषय में श्री रमण जी के अतिशय को जानने की प्रबल इच्छा हुई। भोजनानन्तर जब मैं उनके पास गया तो इस जालि-भेद के विषय में अपना विचार प्रकट करने का 'महर्षि' जी से प्रार्थना की। प्रारम्भ में यह कह कर कि आध्यात्मिक दृष्टि से इन सब विषयों पर विचार करना चाहिये उन्होंने जब जाति भेद का समर्थन प्रारम्भ किया तो सबसुख आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे कि यह भेदभाव तो यूरोप अमेरिका आदि में सर्वत्र पाया जाता है। क्या तुम्हारा यह मतलब है कि एक बड़ा पाल रख दिया जाय जिसके चारों ओर पोड़ा गया गाय कुत्ता मनुष्य आदि सब प्राणी घेठ कर भाजन करने जाएँ अथवा लोग आकर महर्षियों को (अपने को उन्होंने इसी नाम से कहा) तलब से उठा कर स्वयं वहाँ बैठने जाएँ कि हम सब समान हैं इत्यादि वाहिदायत सी लच्छर युक्तियां जाति भेद के समर्थन में देने लगे। जब उस निस्सार तर्क का मैंने निराकरण किया तो श्री रमणजी बड़ी उरांजित अवस्था (Excited mood) में प्रतीत हुए। न जाने उनकी शान्तिता या सौम्यता उस समय कहाँ चली गई थी। जब महात्मा गांधी जी का नाम मेरे मुख से निकला तो उन के मुख से कुछ ईर्ष्या पूर्ण निन्दात्मक वाक्य सुन कर मेरे आश्चर्य का पारवात न रहा। मुझे यह देख कर और सुन कर आश्चर्य हुआ कि हमारे उन्हें 'महर्षि' कहें तो कहें वे स्वयं अपने को 'महर्षि' कहने लगे। यह सब देख कर मैं इस परिणाम पर पहुँच कि भक्तिका मार्ग बढ़ा सावधानी से चलने का मार्ग है क्योंकि अगर इस मार्ग पर सतर्कता से न चला जाय तो इस पर चलने वाले कुछ दूर बाद मनुष्य पूजा की तरफ चलने लगते हैं।

स्मृतिवर्षक

ब्राह्मी बूटी

॥॥ सेर

सुगन्धित

हवन सामग्री

॥॥ सेर

एक वार ज़रूर आजमाइए

# गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी का प्रसिद्ध

**भीम  
सेनी  
सुरमा**

आंखों से पानी बहना, खुगली कृकरे सुर्खी, जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त आँखों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ माशा ॥२॥ १ तं० ३)

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन ज्ञान के बाद ब्राह्मी तैल मिर पर लगाने से दिमाग तरौनाजा रहता है। दिमागी कमजोरी, मिरदद, बालों का गिरना, आंखों में जलन आदि रोगों में तुरन्त आगम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

## गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

( महागनपुर )

प्रांच

लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहली—चात्रनी चौक  
पटना—सद्युआ टोली, बाँकीपुर

### भीमसेनी दंतमंजन

दांतों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है  
मूल्य ॥॥ शीशी, ३ शी० १॥)

### सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

### सुपारी पाक

बिखों के जरियान रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।  
मूल्य १॥॥ पाव



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मूल-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

संपादक—साहित्यज्ञ हरिवंश वेदाङ्गार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल काङ्गड़ी, गुरुकुल १६ ज्येष्ठ १९६७, ११ मई १९४०

[ संख्या ७ ]

## गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बाल-शिक्षा का स्थान

( श्री वीरेन्द्र विद्यालंकार )

[ गताव्य से आगे ]

मुझे खूब याद है कि जब हम बालोद्यान (Kindergarten) की श्रेणियों में थे तो पहिले पहल हमसे सम्बन्ध के मन्त्र, आद्यायायां के सूत्र तथा कुछ श्लोकों को कण्ठपत्र कराने का काम लिखा गया था इस सिलसिले में यह बात हमें समझनी चाहिये कि हम उस समय-मति-युक्ति की (स्टन विषयक) मैरीशरी का प्रयोग कर रहे थे और वह घोखना हमारा शब्दानुकरण मात्र था-उसमें अर्थों की विद्यमानता नहीं थी। वह कण्ठपत्र करना कण्ठपत्र की खातिर तो था ही परन्तु फलतः उसके समुपस्थित हो जाने पर उस शब्द माला व कोश के अर्थ समझने में हमें बड़ी सहूलियत हुई। इस प्रकार-स्थिति के क्षेत्र में हमारा शब्दानुकरणान्मक धृति ने हमारे पास मन्त्र-श्लोक-सूक्तों का एक मधुर संग्रह बना दिया था जिसको जब चाहते जुगली द्वारा-व आयुति द्वारा उसके अर्थ-निष्कर्षों का विवेचन कर हमें आनन्द प्राप्त होता रहता था। यह तो हुई मूल्य तथा अमूर्त-सक्रिय और निःकर्म (शाब्दिक) अनुकरण का प्रवृत्ति।

इसके साथ ही दूसरी इतनी ही मुख्य प्रवृत्ति को यदि हम मुलाहें तो बाल शिक्षण का प्रयोग अपूर्ण हो रह जायगा। वह प्रवृत्ति क्या है-एक शब्द में वह प्रवृत्ति पहचानने-बोझने की है। अर्थात् फलों वस्तु जिसका फलों नाम है, वह यह है और वह वस्तु जिसका फलों नाम है वह नहीं है। इस प्रवृत्ति को घरेलू शब्दों में पहचाना या ज्ञानोन्मत्ता कहकर भी हमें इसके दार्शनिक नाम से परिचित होना चाहिये। इसका दार्शनिक नाम- 'वर्शन' है-देखना अर्थात् पदार्थ को देखना भालना जानना। यह बिना उस पदार्थ के गुण-धर्मों को जाने नहीं हो सकता। बालोद्यान में इस विषयक शिक्षण का प्रारम्भ बहुत छोटे-२ और साधारण रोज के उद्योग में आते बाले पदार्थों से प्रारम्भ

होता है। उदाहरणार्थ, उन वस्तुओं से जो हमारे दैनिक उपयोग में आने वाली हैं। खाने-पीने पहनने तथा आवास की वस्तुएं! बहुतेरा देखा जाता है कि प्राथमिक कक्षाओं के बालकों को खाय सामग्री में-शाक और दालों-पहनने के वस्त्रों तथा वासगृह में विद्यमान वस्तुओं और कुद्रेक पालतू तथा जंगली पशुओं के नाम संज्ञा का अर्थ ज्ञान पूर्वक उन्हें पहचाना नहीं आता है। इसी कमी को पूरा करने के लिये आधुनिक बाल शिक्षण में मूर्त और सक्रिय पाठों (Object Lessons Mock Plays) पर प्रारम्भ में बहुत बल दिया जाता है। निस्सन्देह इस पद्धति की नींव में एक गहरी सचाई भी है कि आप जिस वस्तु का नाम-संज्ञा निदर्शन-तथा गुण-धर्म प्रकाशन करना कराना चाहते हैं उनका आपकी आँसों व हाथों से, आप के समूचे व्यक्ति के साथ क्या सम्बन्ध है। ममे याद है कि मुझे स्वयं 'चने की दाल' (मा छोलयां वी दाल) का मध्यम श्रेणियों में पहुँच कर ही पता चला था। उससे पहले मैं इसे अपने दिल में 'पंजाबी अरहर' ही समझता रहा था। इसका कारण भूमे पीछे से ज्ञात करने पर पता चला था कि जिन दिनों दान दालों का मूर्तपाठ भेजी में चल रहा था मैं अस्पताल की छांह से भी दूर कहीं खसरा कैम्प में बहिष्कृत था। यह कारण था कि मुझे काफ़ी अरसे तक चने की दाल का नाम संज्ञायक वर्णन व प्रत्यक्ष होने का अवसर न मिला। यह ठीक है कि इसी प्रकार के अनेक पदार्थों के बारे में प्रायः बालकों और कभी प्रौढ़ वयस्कों की नाजानकारी देखकर आश्चर्य होता है।

'वर्शन' जिसे देखना भालना व जानने के रूप में पहिले कहा गया है उस की शुद्ध प्रक्रिया अवगत करने के लिये कुछ एक नियम अपेक्षित हैं। इसमें यहाँ आप वर्णनों के चार व आठ प्रमाणों की विवेचना नहीं करनी प्रयुक्त उन सामान्य नियमों को याद करलेना है जो बाल शिक्षण में कामदेह साबित हों। उदाहरण के लिये-आप बालक के सम्मुख कुछ खिलौने ला रखते हैं-वह पहिले उन्हें देखता है, फिर चीन्हा कर चुन लेता है। बालक की चुनने की इस इस प्रक्रिया में क्या नियम है? पहिले तो वह खिलौने का रूप-आकार-प्रकार, फिर रंग लाल पीला, फिर

कोमलता कठिनता आदि स्पर्श, और जो चाहा तो सपकर और चक्कर भी देख लेता है। इस प्रकार हमने देखा कि एक ओर जहाँ वह पंचेन्द्रियात्मक परोक्ष कर रहा होता है वहाँ साथ ही वह दूसरे खलौनों से उसकी तुलना भी करता है। यहाँ साक्षर तथा विसदृशता का ज्ञान है जिस में वह प्रभावित होकर किसी खिलौने से प्यार करता है और किसी का नाइ मरोड़कर दूर फेंकता है। बालक का इस तुलनात्मक वृत्त का उपयोग हमें उसके पास अभिरूप आकार वाली वस्तुओं सुन्दर-दृश्यों तथा स्वादिष्ट और सुगन्धित खाद्य और पेय गुण सामग्री पहुँचाकर अथवा उसे उसके समीप पहुँचाकर करना चाहिये। इस प्रकार उसकी सामान्य दशानुभवावृत्त व पें-ड्रयक वृत्तियों का जागरण और पूर्ण विकास होने का मार्ग खुल जायेगा।

बातों के पार्थक्य शिष्टाचार का आधार उसको इन्द्रियात्मक वृत्तियों को न केवल चादतया जगा कर प्रेरित करना है परन्तु उनकी सन्तुष्टि के लिये उन सरल और सात्त्विक विषयों को उनके सम्पर्क में लाना है जिससे उनका कलात्मक (जीवन-कला को जागृत करने वाला) उद्बोधन और विकास हो सके। इस लेख के लेखक को यह देख कर बड़ा दुःख होता है जब वह जायन कला की रमणीक सजीव कलाओं का मैरांन की तरह विद्या शालाओं में और शिक्षा के क्षेत्र में दुष्प्रयोग देखा है। उसके आश्रय का तब कुछ ठिकाना नहीं रहता जबकि एक जीवन कला मैरीशनल की तरह काम करने में अशक्त होती है तो उसको उस रुढ़ि प्रसिद्धि साधने में डालित शाला व शिक्षा के क्षेत्र के लिये अनुपयुक्त दूरार दिया जाता है। मैं निश्चय से कह सकता हूँ कि किसी भी शिक्षा शास्त्र का यह ध्येय तथा कक्षा शिक्षा प्रणाली का यह दृष्टिबिन्दु अपने आप में शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तों का विरोध है। सचन् शिक्षा ता यह है जो बालक का प्रवृत्तियों व गुणधर्मों को पहचानकर सदा अर्थों में उसको अपने तथा अपने द्वारा दूसरों के विकास का पथ प्रदर्शन करे। उसकी पाठक प्रवृत्तियों को मिटा दे और जायन प्रवृत्तियों का परिष्कार करे। सफल है वह विद्यालय जहाँ का गुरु अपने छात्र छात्रों ब्रह्मचारियों को बाल सुलभ काल कीड़ा म (का नामासि) यस्व ते नामामन्माद यत्वा सामे-नात्वात्पाम ! का प्यार दुलार दे दे कर उन्हें प्रसन्न (चत्-शान्त-तपस्या कर्त्तव्य तप्य प्रजा और वेदों निष्पत्ता बनाने के लिये प्रतिदिन प्रातः सायं परमेश्वर के सम्मुख यह शुभ कामना किया करता है:—“आ मेधा ते देवः स.वेत्ता, मेधां देवा सरस्वता। मेधा ते आश्विनो देवावाचसं पुष्करवर्जाः” निससन्देह ऐसी परिस्थिति में बालक का शिक्षण सावधानों से हुआ तो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का आधार अधिक दृढ़तर हो जायगा। आज-वकना है इस समय, कि सोम के समान कोमल बालकों को शिक्षित करने के लिये उन से भी कोमलतर और ‘वि.सै वृक्षस्य’ गुण वाले ‘सविता-सरस्वती’ और ‘अश्वती’ तय्यार किये जाय जो गुरुकुल बाल-शिक्षण के क्षेत्र में प्रवेश कर अपने प्रीमों और प्रेरणाओं द्वारा इस अत्यावश्यक कार्य को संभाल कर इस विषय में पथ प्रदर्शन करें।

लेखक को अन्त में गुरुकुलीय-विद्या सभा से प्रार्थना है कि ब्रह्म इस विषय की ओर अधिक और सक्रिय ध्यान दे ताकि यह उपेक्षित सा विषय शिक्षा का आधार (बालीम का बुनियाद) होने के नाते हमारे शिक्षण विज्ञान में प्रथम स्थान प्राप्त करे।

## ‘२० मई का अनुभव’

‘गुरुकुल’ के गत अंक में ‘२० मई का अनुभव’ शीर्षक का लेख छपा है उस से क्योंकि कुछ एक को कुछ गुलाल फूँझी पैदा हो गई है इसलिये उस के लिये हः खेद है।

हम इतना कह देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि उस द्वारा आ अग्रविन्द जैसे महापुरुष के विषय में किसी प्रकार के तिरस्कार के भाव प्रकट हो यह जरा भी अमीद न था, किन्तु उस घटना में जिन बातों का वर्णन है शैली बातों द्वारा क्योंकि जनना में पालवृद्ध फैल जाता है इसलिये ऐसे पालवृद्ध का सण्डन करना ही अमीद था।

## धन

(अनुवादक—भी विद्यालंकार)

साधारणतया महात्माकांदा विशेषण का रूप धारण कर लेता है। बहुत से मनुष्य ऐसे मिलेंगे, जिन्हें सज्जित, कविता, अथवा विद्या के लिये कमी रुचि नहीं हुई, लेकिन अपनी आजीविका के लिये, सब प्रयत्न करने हैं, और इसके परिणाम स्वरूप अपनी आय में वृद्धि न केवल वाञ्छित होता है, बल्कि सफलता सूचक आनन्द प्रदान करती है।

धन की अनुकूल परिस्थिति मानने में धार सन्देह प्रकट किया जाता है। मैं स्वयं भी इस बात में विश्वास नहीं रखता कि एक अमीर के घर में पैदा होने वाले व्यक्ति का जीवन आरक्षक तौर से अधिक सुखी होता है। निससन्देह धन के कारण मनुष्य को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। और साथ ही साथ विस्था उत्पन्न होती है। फिर भी यह तो स्विकार करना पड़ेगा कि आर्थिक बुद्धि, चाहे कितनी म्यून हो, समय के साथ ज्यों-२ बढ़ती है, अपने साथ ज्ञान में आराम और सुविधा को भी बढ़ाती है। लेकिन इस बात को अपनी दृष्टि से कमी मोक्ष नहीं होने देना चाहिए कि हम धन के स्वामी हैं, धन हमारा स्वामी नहीं।

धन का प्राप्ति निससन्देह बहुत सां जुराहियों को जड़ है। प्रायः धन और धन प्रेम साथ-२ रहते हैं। एक निर्धन व्यक्ति, ऐसा अमर्शन में कहा है, अपनी बनना चाहता है, लेकिन ज्यों-२ उस के पास धन जुड़ता है, त्यों त्यों उस ही तुच्छता और अधिक हो जाती है। जैसे शरयत प्यास बुझाने के बरत, दड़ता है, आमतौर पर पैसे ही धन के साथ-२ लाहला भी बढ़ती जाती है।

धन को वास्तव में, विशेष रूप से धन के लिये ही कमाया जाता है। वैसे भी धन को सुरक्षित रखने व भोगने की अपेक्षा कमाना बहुत सुगम है। इसको सुरक्षित रखना बहुत ही नीरस और चिन्ता जनक होता है। धन को अंग्रे की चिन्ता जीवन, रुपी आकाश में काले बादल की तरह मंडराती रहती है। 'लेनिन' ने एक स्थान पर लिखा है कि रेपिब्लियस ने अपनी पैतृक सम्पत्ति को बहुत किन्तु लज्जित किया। लेकिन वह धन इतना अपार था कि २। लाख फाउंड अथवा बड़े हुए थे। इसी सम्पत्ति का मालिक होते हुये भी, इस चिन्ता से कि कहीं मुझे पैसों का मुहताज होकर झूले न मरना पड़े, उसने आत्म-हत्या करती थी।

धन कोई राम बाण शीघ्र नहीं है। धन क मूल्य तो कुछ हद तक उसके कमाने के तरीके और कुछ हद तक उसको उपयोग में लाने की जानकारी पर निर्भर है।

"तुम्हारे मित्र कहते हैं कि खूब धन कमाओ, ताकि हमें भी उस में से कुछ हिस्सा मिल सके। उन से कहो कि ऐसा तरीका बनाओ, जिससे मैं खूब धन कमाऊँ पर साथ ही साथ उदार, मज्ज व कृतज्ञ रह सकूँ। यदि कोई ऐसा तरीका है, तो मुझे धन कमाने में जरा भी आपत्ति नहीं। लेकिन अगर तुम यह चाहते हो कि मैं अपनी अच्छाईयाँ केवल इस लिये छोड़ दूँ कि तुम्हें कुछ पैसे की चीज़ प्राप्त हो सके, जो अपने आप में हुरी है, तो तुम्हें बनाओ कि तुम कितने अशुद्धाचार और अज्ञान हो। क्योंकि तुम कितने अधिक पसंद करोगे ? धन को अथवा एक विनीत और अशुद्धाचार मित्र को।"

"जिसने इन सब बातों को मान लिया है, वह सदा पवित्र हृदय से जीवनयापन करता है। वह हुरी से हुरी अशुद्धाचार के लिये, तैयार रहना है; और जो कुछ हो रहा है, उसको लुपती से सहन करता है। उसके जीवन यापन में बड़ी से बड़ी बाधा भी बाधक नहीं हो पाती। क्या तुम मुझे निर्धन अवस्था में देखना चाहते हो ? तुम लुपती से देखो, और तब तुम्हें पता लगेगा, एक ऐसे मनुष्य के साथ, जो निर्धन का पाठ भी अच्छी तरह से अदा कर सकता है, निर्धनता का क्या अर्थ है ?"

हमें नीलस नो दिया हुआ सोलन का उत्तर, सदा स्मरण रखना चाहिये, 'हे महाशुभाव ! यदि कोई तुम से अधिक शक्ति शाली आजाये, तो वह इस सारे धन और स्वर्ण का स्वामी बन जायेगा।"

साधारणतया धन में आत्मा को निर्धन कर देने की प्रवृत्ति है। लेकिन दूसरी ओर ऐसा कौन सा शुभ या अशुभ का दान है, जो भय और आशङ्कना से रहित हो ?

युरीपीडीस ने कहा था, धन मनुष्यों को मित्र बना देता है, मानव जाति में इसकी शक्ति महती है, और फिर कुछ घुषा के भाँव से कहा "धनी मनुष्य और विशेषकर जब उसमें उपाधिकारी का पता न हो, बड़ा शक्ति शाली होता है।"

बौले ने बहुत ही सुन्दर बात कही है "मुझे धन के लिये कोई खगाव नहीं है, लेकिन फिर भी अगर मुझे अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये

जितना जरूरी है, उतना धन मित्र जाये; तो मैं समझता हूँ कि मैं कुछ अनुदार हो जाऊँगा और मेरी आधी से अधिक प्रतिभा लुप्त हो जायगी।"

शैले को सोभी कहना मूल है लेकिन उसने एक जगह कहा है "मैं धन चाहता हूँ, क्योंकि मेरा विचार है कि मैं इसका प्रयोग जानता हूँ, इसका परिश्रम पर प्रयुक्त है। यह अवकाश प्रदान करता है, और ऐसे मनुष्य को अवकाश प्रदान करना—जो इस अवकाश का सत्य के प्रकाश करने में उपयोग करते हैं,—मनुष्य का समाज के प्रति गत्युक्त दान है।"

निस्सन्देह कुछ हद तक यह सत्य सत्योच्य था। तो भी किसी व्यवसायी को अपने धन को छोड़ने या उस से शर्मिन्दा होने का जरा भी आशङ्कता नहीं; यदि वह वेनिस के गिरजे पर लुटेरे हुए निम्न वाक्य को सदा स्मरण रखे "इस मन्दिर के ईर्ष्यादं प्रत्येक व्यापारी के नियम न्याय्य हैं, बड़े पूरे हैं, और लोहे व ठेके ईमानदारी के साथ हैं।" रस्किन।

यद्यपि, यदि कोई मनुष्य धन को जोड़ने में ही अपने जीवन की बलि चढ़ा देता है, तो वे साधन हो, जिनके द्वारा यह प्राप्त होना है—इसका उपयोग करने में बाधक हो जायेंगे। निर्धनता को ईड उसकी हथियों में घुस चुकी है। कजूस व्यक्ति, इस डर से कि कहीं वह किसी लुब्ध ने वञ्चित न रह जाये; किसी भी लुब्ध का उपयोग नहीं कर सकता। सोभाव्य से ऐसे ही व्यक्तियों के लिये कजूस ( Miser ) शब्द चुना गया है, कौं कि वे दया के पात्र ( Miserable ) हैं।

समहरील मनुष्य बड़ी बड़ी तुकानों में आकर सुन्दर सुन्दर सूर्योदय, सूर्यास्त आदिके दृश्य व अन्य छतियाँ बूँदता फिरता है, लेकिन प्रकृति की कृतियाँ प्रतिदिन हरेक गली में नये २ रूप में प्रकट होती रहनी हैं। रोज सूर्योदय और सूर्यास्त होते हैं, और मानवीय शक्ति की पैवीदा छति सर्वदा विद्यमान रहती है। अभी हाल में, एक और संग्रह प्रिय व्यक्ति लन्दनकी एक नीतामी में शेक्सपियर के हस्ताक्षर १५० पैपड में खरीदे थे, लेकिन एक विद्यार्थी एक पार्श्व में लब्ध किये बिना 'हेमलेट' को पढ़ सकता है, और उस में से अनेक ऐसे रहस्य का उद्घाटन कर सकता है जो इस में छप भी नहीं सकते। और तो माँ इस हस्ताक्षर का मालिक उनको देखने के सिवाय और क्या कर सकता है ? सोचोमन—

हम अपने को जितना समझते हैं, उससे वास्तव में कहीं अधिक धनी हैं। हम प्रायः भू-भुषा की बात सुना करते हैं। मनुष्य एक आगीरदार से इंचाँ करते हैं, और ख्याल करने हैं कि एक बड़ी आगीर का अधिपति बनने में बड़ा अनन्द आता है। लेकिन आमतौर पर जैसा कि एमर्सन ने कहा है। "जब मनुष्य किसी आगीर का स्वामी होता है, तो वह आगीर उस पर शासन करती है।" तथापि क्या हम में से हरेक—एक उच्च दृष्टि विन्दु से हममें से हरेक—क्या हजारों एकड़ भूमि का अधिपति नहीं हैं ? बड़े २ पार्क, सड़कें, पदचिह्न, समुद्रीय किनारे, और (विशेष पृष्ठ ७ पर)

# गुरुकुल

१६ ज्येष्ठ शुक्रवार १९६७

## मनोरंजन

[ श्री आचार्य रामदेव जी का एक उपदेश जो महाविद्यालय के प्रबन्धकारियों के बीच में दिया गया था ]

प्रबन्धकारियों को ताश खेलना, चोपड़, शतरंज, कैरम खेलना या अष्टाध्यायी नवमिथिक नामक गिट्टियों के खेल खेलना क्यों दुरा है यह कई विद्यार्थी समझना चाहते हैं। उन्हें मैंने कुछ समझाया भी है। तुम सबको ही मैं आज इसी विषय पर कहता हूँ।

तक तो आज कल हरक अमीद बात के पक्ष में दिया जा सकता है, तैयार रहता है। अतः जब मैंने पूछा कि तुम ही क्याओ कि 'इन खेलों से क्या लाभ, इनमें क्यों समय बर्बाद किया जाय?' तो मुझे कई लाभ बता दिय गये। और दुःख की बात यह है कि कई कमजोर दिमाग वाले भाई लचमुच, दिख से, इन सुक्तियों को लसी समझते हैं या समझने लगते हैं। पर उन आत्म बचना की दलीलों को यदि छोड़ दिया जाय (गुरुकुल के प्रबन्धकारियों को तो ऐसी मोटी आत्म बचना से स्पष्ट ऊपर होना ही चाहिये) तो भी एक बात है जो कुछ समझ म आने लायक है और यह है मनोरंजन की बात। "क्या इन मनोरंजन भी नहीं करना चाहिये। क्या हमें मनोरंजन की आवश्यकता नहीं होती चाहिये?"

### १. फुरसत कहाँ है ?

मनोरंजनका कहाँ आवश्यकता है, मनोरंजन का लक्ष्य क्या है इस तत्त्व-विश्लेषण को भी अभी छोड़ दें तो हमना नो साफ़ है कि मनोरंजन वही कर सकता है जिसके पास इसके लिये फुरसत हो। तो क्या तुम्हें इसके लिये फुरसत है ? या हो सकती है या होनी चाहिये। एक विद्यार्थी, एक प्रबन्धकारी एक गुरुकुल के प्रबन्धकारी के तौर पर नो तुम्हें इसके लिये फुरसत ही नहीं हो सकती। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि याद तुम्हें बसतुनः फुरसत है तो तुम विद्यार्थी नहीं हो, गुरुकुल के प्रबन्धकारी तो हो ही नहीं सकते।

'सुस्वाधिना कुतो विद्या विद्यार्थिनां कुतः सुखम्'

व्यामन्द जी को पुस्तक में पहली श्रेणी में ही हमने यह पढ़ा था। इस श्लोक में मुख से मतलब मनोरंजन का मुख ही समझो। विद्यार्थी और सिपाही एक ही कोटि के होते हैं। घन अर्जन करने वाले को निरर्थक समय खोने की गुंजाइश नहीं हो सकती, तो जो विद्या और ज्ञान की

अर्जन करने के कठिन काम के लिये आया है वह कैसे समय को सकता है ? उसके लिये तो पल पल बचा कीमती होता है। यदि तुम में से किसी को कैरम, खेदने को समय मिल सकता है तो वह इस बात का विचार है कि उस के सामने कोई लक्ष्य नहीं है, उनका कोई अन्य नहीं, उसने अपनी मनुष्यता को ही नहीं स्वीकारा है, वह महा-विद्य लय विभाग की उच्च शिक्षा पाने का अधिकारी नहीं है। और फिर प्रबन्धकारों को फुरसत कहाँ, यह तो भ्रम और तप का जीवन बिताने ही गुरुकुल में आता है। निश्चय जानो जो तप और भ्रम का जीवन नहीं बिगाना वह प्रबन्धकार्य का पालन नहीं कर सकता। प्रबन्धकारों को सिपाही की तरह कटिबद्ध रहना जरूरी होता है, मेखला घाटण का विधान इसी बान का धोतक है। गांधी जी राष्ट्रीय कार्य-कलाओं (सैनिकों) के लिये कहा करते हैं कि उन्हें न तो खुद दम लेना चाहिये और न दूसरों को दम देने देना चाहिये। यह बान आत्मिक सैनिकों-जो कि गुरुकुल के प्रबन्धकारी माने जाते हैं-के लिये तो और भी अधिक लघु होती है। क्योंकि आत्मिक लड़ाई इस से बहुत अधिक गहन है और उसकी तैयारी इस से बहुत अधिक कठिन है। इस लिये यह तो समझ में आ सकता है कि तुम्हें समय की तर्की की शिक्षाएँ हो पर यह नहीं समझ में आ सकता कि तर्की समय काटने की तरकीब खोजनी पड़े। क्या तुम नहीं देखते कि आज दुनियाँ में अमीर और दरिब की विषमता के साथ साथ एक बड़ी भारी विषमता यह भी है कि एक तरफ तो (चैने ब्रज़ूर और कमान) वे लोग हैं जो दिन भर १०१० घण्टे काम कर के भी भर पेट रोजी भी नहीं कमा पाते, उन्हें अपने अल्प बौद्धिक व आत्मिक विकास के लिये कुछ करने की फुरसत नहीं मिल पानी, दुमरी तरफ (जैसे एंजीनियर व अन्य शनिक) वे लोग हैं जिन्हें अपना समय काटने के लिये गुगल दूँड़ने पड़ते हैं और वे निरर्थक, अनुप्यादक तथा हाजिनाक बानों में समय बिताने हैं। यदि गुरुकुल से मिला ज्ञान तम में से किसी को इस दुसरी श्रेणी की तरफ खींचता है, उय अवस्था के प्रति विरोध नहीं पैदा करता तो समझो कि कहाँ गलती है। तुम्हें तो इस विषमता का भी किंवापन्नक हल करना है-आवश्यक कर्मिय कर्मों से ही सार्वजन्यपूर्वक भरे जीवन बिताने का आदर्श पेश करके हल करना है। तम जो देश मति के गीन गाने हो, देश सेवा ही नहीं धर्म सेवा का दम भरने हो, तुम्हें नो जरा भी समय खोग भारी गुनाह अनुभव होना चाहिये। लोग जो तुम्हारा-गुरुकुल का-आइर करते हैं-वे किसी आशा से ही करते हैं-उनकी आशा है कि तुम किसी बड़े काम की तैयारी में लगे हुए हो। तो तुम्हें फरखन कैसी ? बान यह है कि तुम अपने आपको खूब आते हो, बहुत भीचे उतर आते हो, तमी तुम अनुभव करते लगते हो कि तम्हें फुरसत है या तुम्हें मनोरंजन की जरूरत है और तुम्हें बच्चों के लायक मनोरंक्षण में पड़ना भी मिय लगने लगता है।

## २. मनोरंजनप्रियता शूद्र का लक्षण है ।

बच्चे के लिये तो बेशक मनोरंजन की आवश्यकता है पर उ्यों उ्यों हम आधु के साथ ज्ञान में भी बढ़ते हैं त्यों त्यों इस मनोरंजन की वैसी ज़रूरत नहीं रहना। यह तो साफ है कि बच्चों के लिलोनों से या मुकुमुना बचाने से अब हमारा मनोरंजन नहीं हो सकता। बान यह है कि ज्ञान के बढ़ने के साथ मनोरंजा का तरीका भी बदलना जाता है। और आगे चल कर जुदा किसी मनोरंजन की ज़रूरत नहीं रहती, करार्य कर्म करभा ही मनोरंजः रूप हो जाता है। यह सत्र बिलकुल ठीक उतरगा कि जो जिनका अज्ञानी है उसे उलभा ही अधिक मनोरंजन, मनोविनोद व जी-बनसाव की ज़रूरत होगी। कारी के डा० भगवान दास की बर्णाभम धर्म के जगत्प्रसिद्ध विद्वान हैं। उन्होंने अपने वर्ष सम्बन्धी लेखों में सत्र यह दिखाया है कि ज्ञान, शौर्य, अर्थ, मनोरंजन-प्रियता क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का लक्षण है और अपनी कल्पना के बादरी राष्ट्र में उन्हींमे यह माना है कि वह राष्ट्र जहाँ ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के लिये ज्ञान, बल और अर्थ के अधिकारिक विकास व उत्पादन का यथोचित प्रबन्ध होगा वहाँ उमे अपने शूद्रों के लिये मनोरंजन का पूरा प्रबन्ध भी आवश्यक करना होगा। यह सत्य ही है, क्योंकि शूद्र ज्ञान में बालक ही नो होना है और बालकों के लिये ही मनोरंजन को ज़रूरत रहनी है।

शूद्र के लिये यज्ञोपवीत का विधान क्यों नहीं ? इस का मतलब यह तो नहीं है कि शूद्र को अज्ञान ज्ञान भी न होना चाहिये या बढ़ना नहीं चाहिये। जिसे 'प्रारम्भिक शिक्षा' कहने हैं वह तो उमे भी मिननी ही चाहिये। पर ऊँचा ज्ञान, विशिष्ट विद्या वह नहीं पा सकता, पा नकने के यह सत्य नहीं होना, अतएव शूद्र होता है। उसका कोई विशिष्ट ध्येय नहीं होता अतएव वह दीक्षित नहीं हो सकता। यज्ञोपवीत दीक्षा का, यह-दीक्षा का चिह्न है। प्रारम्भिक सामान्य ज्ञान तो सबको मिलना चाहिये जैसे देश की वर्तमान सुनिवादी राष्ट्रीय शिक्षा-आ बर्णा शिक्षा कहलानी है-आने बाने स्वतन्त्र भारत में प्रत्येक भारतीय बालक बालिका को ७ वर्ष तक दी जायगी, दी ही जानी चाहिये। उस के बाद जो विशेष शिक्षा होगी वह शूद्रों को जिनके अन्दर विशेष प्रकार के ज्ञान की मांग है (अर्थात् वैश्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों) व जायगी। इन ७ वर्षों में यह बहुत कुछ पना लग जाना चाहिये कि कौन वैश्यत्व, क्षत्रिय या ब्राह्मणत्व में दीक्षित होने लयक है। यदि तुमने-आर्य-वर्णव्यवस्था को ध्यान से पढ़ा है तो तुम देखोगे वहाँ ब्राह्मण वह बालक है जिस में ज्ञान की इच्छा जल्दी पैदा होनी है, जो जल्दी ही अपने ध्येय को बनाने और दीक्षित होने योग्य हो जाता है, क्षत्रिय उसके बाद में, वैश्य उसके भी बाद में और जो उस प्रारम्भिक नारे (मानों सात वर्षों) समय में अपना ध्येय बनने या दीक्षित होने योग्य नहीं होता दीक्षता वह शूद्र रह जाना है। इस जिये यज्ञोपवीत (उपनयन) संस्कार के लिये विधान यह है—

'अद्यमेवर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्, एकादशे क्षत्रिय, द्वादशे वैश्यम् ।

इसका मतलब यह हुआ कि विशेष विद्या में दीक्षित होने की इच्छा ब्राह्मण होने वाले बालक में आठवें वर्ष, क्षत्रिय में ११ वें वर्ष और वैश्य में बारहवें वर्ष में साधारणतया उत्पन्न होती है। असाधारण तौर पर तो कहा है— ब्राह्मणवत्सकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे रात्रौ बलात्थिनः षष्ठे, वैश्यस्येहात्थिनोऽष्टमे ।

ब्राह्मणवंस चाहने वाले ब्राह्मण बालक को पांचवें वर्ष से, बलशाली होना चाहने वाले क्षत्रिय को छठे वर्ष से तथा ऐसे विशेष वैश्य को आठवें वर्ष से ही दीक्षित किया जा सकता है। परन्तु साधारणतया मर्यादा यह है कि = से १६ वर्ष तक ब्राह्मण और ११ से २२ तक क्षत्रिय तथा १२ से २४ तक वैश्य में विशेष ज्ञान की विद्यासा उत्पन्न हो जानी चाहिये, अपने जीवन-ध्येय का मार्ग दास जाना चाहिये, नहीं तो वे पतित-सावित्रीक, दीक्षित होने के अयोग्य अर्थात् शूद्र हो जाते हैं। तो यह हमारा वर्षों का बर्णाकरण जन्मजन्मतः से चले आते मनुष्य के अन्तर्गत विकास टी. प्रकार से आगे चला सकने में सहायक होने के लिये ही था। जब आगे भावी स्वतंत्र भारत में हम मनुष्य की प्रकृति के अनुसार उस का शिक्षा का प्रबन्ध कर सकेंगे तो प्रारम्भिक सामान्य शिक्षा के बाद दीक्षित हुए हुए वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण आ आगे नि शूद्र ज्ञान पायेंगे और उन में भी वैश्य पहले, फिर क्षत्रिय अपनी शिक्षा समाप्त करेंगे और ब्राह्मण ही विशेष ज्ञान-उच्च शिक्षा तक पहुँचेंगे। तभी शिक्षा वस्तुतः लाभ तथा कल्याण करने वाली साबित होगी, अतः यहाँ तो यह मतलब है कि इस वैदिक तत्त्व ज्ञान के अनुसार इस उमर में भी तुम में से जिन में मनोरंजन प्रियता ज़रूर कर रही है यह इस बात का ही स्पष्ट लक्षण होना चाहिये कि वे असल में अभी तक दीक्षित नहीं हुए हैं, किसी ध्येय वाले नहीं बने हैं, अतः शूद्रत्व के अधिकारी हैं (क्यों कि वैश्य तो चौबीस वर्ष तक भी यदि दीक्षित न हो सके तो ब्रह्म शूद्रत्वमास गिना जा सकता है)। नहीं तो ब्राह्मण या क्षत्रियों का क्या कहना है वे तो जिस गम्भीर ज्ञान साधना और तपस्या में लगे होते हैं, उन्हें कोई मनोरंजन मनोरंजन के लिये करने की कर्मा शूद्रत्व हो ही नहीं सकती, दीक्षित हुवे वैश्य को भी अपने दीक्षा व्रत का पाठन करते हुए मनोरंजन की फुर्सत नहीं हो सकती। मनोरंजन का अवकाश तो केवल उमर अति साधारण मनुष्य भाग्यों के लिये है जो बड़े होकर भी बालकों की तरह मसिक्त रहते हैं जिनका ज्ञान-विकास अभी शुरु ही हुआ है। आजकल के नाटक, थियेटर, सिनेमा आदि मनोरंजनों ने शिक्षा मिलती है यह बंशक कहा जाता हो, पर सत्य यह है कि इनको यदि ठीक प्रकार से सुख सुख शिक्षा दृष्टि से ही किया जाय तब भी ये केवल शूद्र भाग्यों को शिक्षा देने के साधन ही सकते हैं। नहीं तो आज सभी को (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को भी) गिराने के कारुण्य ही हो रहे हैं, मनुष्य का उब वृत्तियों को दबा कर उसकी शूद्र प्रकृति को उकसाने

वालं होकर सभी को भिन्नतम सीढ़ी पर उतार लाने का, बहुत अश्रम में तो शूद्र वृत्ति ही नहीं किशु पशु वृत्ति को उकसा कर मनुष्य-पशु बनाने का बड़ा भारी काम वहाँ दिनरात हो रहा है। ऊँ से गम्भीर ज्ञान, सत्यज्ञान को पाने का तो आजकल वायुमण्डल ही बुनिया में नहीं रहा दीबता, क्योंकि असली ज्ञान तो दीक्षित होने, अर्द्ध शूद्रओं द्वारा उपनीत होकर शिक्षित होने, ब्रह्मचर्य और तप की साधना करने के बिना मिलना असंभव है। इन खेल तमाशों में तो, यदि ये शूद्र रूप में किये जायें, शूद्र शूद्रता ही कायम रह सकती है और कुछ नहीं हो सकता। क्या तुम्हें भी पशु नहीं तो शूद्र रहना पसन्द है या सब मनुष्य जाति को शूद्र तल पर उतार आकर रसना पिथ लगता है? यदि नहीं, तो याद रखो मनोरञ्जनप्रियता शूद्रत्व का ही अंश है, और तुम्हारे अन्दर अर्ध प्रियता, बल प्रियता और ज्ञान प्रियता कभी ठीक रह जायेगी तो तुम्हारा यह मनोरञ्जन पाने का श्राव्यन्त सुख अथाप तो असली वीक्षा के प्रथम पग उठने ही न जाने कहाँ जाना रहेगा।

(असमाप्त)

## रमते राम

[श्री श्यामी]

बहुत दिनों से ब्रह्म-देश देखने की इच्छा थी। परन्तु अनेक प्रतिकूल अवस्थाओं के कारण इच्छा जल्दी पूरी न हो पाई। आखिर हम ७ मार्च को मद्रास से चल ही पड़े।

जीवन-यात्रा के समान देश-भ्रमण के कार्य में भी एक साथी की निहायत जरूरत होती है। ऐसा साथी, जिसका स्वभाव अपने अनुकूल हो और जो अपना भार खुद उठा सके। बड़ी मुश्किल से हमने एक साथी बँटा था। पर चलने के दो दिन पहिले ही उसके बड़े-बूढ़ों ने यह कह कर उसे मना कर दिया कि "आज कल लड़ाई हो रही है। कहीं दुरमन की सुरंगें समुद्र में बिछी हुई हैं तो नाहक जान जोखिम में पड़ जाय।"

हमारे सिर पर तो सैर का भूत सवार था। सुरंगों का भय कहां? फिर, हमारी सम्मति में दुरमन की इतनी दूर बंगाल की खाड़ी में आने का न तो अभी कुरसत है और न जरूरत।

मद्रास से रंगून लगभग १२०० मील दूर है। जहाज ३ दिन में जाता है। क्योंकि तीसरे दर्जे (Deck) में भाड़ उग्रा था इस लिये दूसरे दर्जे (Cabin) का टिकट लेना पड़ा। किराया ६२।। रु० लगा। भोजन के २०। रु० इलहादा।

समुद्र शांत था। रात चाँदनी। प्रकाश में इन्के २ बादल। यात्रा का बड़ा आनन्द था।

ठीक तीसरे दिन शाम को रंगून के बन्दरगाह पहुँचे। कुछ मित्र लेने आए हुए थे। सिवाब करम के और कोई तकलीफ नहीं हुई।

ब्रह्मदेश की पहिली विशेषता यहाँ के मन्दिर है जिनमें बर्मा भाषा में "फया" कहते हैं। अग्नि में इसे ही

पगोडा (Pagoda) कहते हैं। बर्मा की अग्नि, जेलकों ने प्रायः Land of Pagodan या मन्दिरों की भूमि कहा है। बर्मा लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं। इनके मन्दिरों में भी बुद्ध-भगवान की विशाल काय मूर्तियाँ पाई जाती हैं। सोने चाँदी, काँसे, पीतल और संगमरमर की उत्तमोत्तम मूर्तियाँ जहाँ तहाँ रखी हैं। इनके कई मन्दिर बड़े विशाल हैं। उदाहरणार्थ, रंगून का आ-डेगान फया और माण्डले का अरफान फया। ये मन्दिर हैं जो बड़े समृद्ध। जालों की सज्जाना आयदना होगी।

मन्दिरों के वाद बौद्ध भिक्षुओं या फुजियों का नम्बर आता है। समृद्ध जन संख्या का लगभग चौथाई हिस्सा ये साधु होंगे। नये हल जातते हैं और नये कपड़ा बुनते हैं। फिर भी इन्हें भोजन बल के लिये पयात मिलता है। नगर से तनिक दूर, सुली घास में, नदी, पहाड़ या किसी वन के समीप इनके आश्रम होते हैं। ये अति प्रातः काल पंक्तियों में अपना भिक्षा-पात्र लेकर निकलते हैं। गुरुद्वयो लोग इन्हें भिक्षा देने में अपना गौरव समझते हैं। फुजों लोग १२ बजे मध्याह्न से पूर्व ही भोजन करते हैं। इनके वस्त्र भी किन्तु साधुओं के समान गेरु से रंगे रहते हैं।

बर्मा की तीसरी विशेषता यहाँ की स्त्रियों में है। वे स्वच्छ, सुन्दर और सुरोभित होती हैं। वे फुलों से बहुत प्यार करती हैं। स्वभाव से स्वच्छन्द हैं। और शैली-बाड़ी अथवा व्यापार-कार्यों में पुरुषों से अधिक परिश्रमी हैं।

हम ब्रह्मा में लगभग डेढ़ महीना घूमे। रंगून से माण्डले गये। माण्डले से लायों। यह ब्रह्मा का सीमा है। आगे चीन की हृद् सुख होती है। मारांल वँग-के-येक का Now Dominium (नया उपनिवेश) यहीं से प्रारम्भ होता है। युवांग को रास्ता इधर से ही जाता है।

ब्रह्मा की बड़ी नदी इरावती की यात्रा भी सुन्दर है। हम माण्डले से जहाज में बैठकर "मोम" तक आए। यह नगर भी किसी जमाने में बड़ा मशहूर था। हमें नदी की यात्रा रेल की यात्रा से अच्छी लगी। पानी का नडावा, दोनों किनारे के गाँव, जंगल में रहने वाले सिये लोग और पुराने मन्दिर व स्थान शरानीय हैं।

बर्मा के पहाड़ी स्थान यथा कलों, टांजी, मेन्चो, भायो आदि भी सुन्दर हैं। हरी-भरी पहाड़ियाँ, उपजाऊ भूमि, ठण्डो स्वास्थ्यकर हवा, और सादा-सस्ता जीवन अपना आकर्षण रखता है। अनेक देतियों, विदेशियों ने इन पहाड़ी-स्थानों पर अपने बंगले बनवाये हैं। व्यापार भी अच्छा है। गुरुकुल के दो सुयोग्य छात्रक भी चैतन देव-जी आधुनिकीकार और श्री परम जी वेदार्थकार क्रमशः "टांजी" और "कलो" में बसे हुए हैं। दोनों की फोटो फाकी की दुकानें हैं और न्यून कमते हैं।

ब्रह्मा बड़ा उपजाऊ देश है। यहाँ जवाहिरान चाँदी, ताँबा, रंग और पीतल आदि की कानें हैं। लकड़ी (Teak wood) के बड़े जंगल हैं। ज्ञान की करोड़ों की

उपज प्रति बर्फ़ होली है। मिट्टी के तेल और पैदोल के कुप हज़ारों हैं। इन सब चीजों की उपज और व्यापार प्रायः अंग्रेजी कम्पनियों के हाथों में है। और इसी खातिर बर्मा को ३-४ वर्ष पूर्व भारत से जुटा प्रान्त बनाया गया है।

× × ×  
ब्रह्मदेश के निम्न हरय हमें बड़े सुन्दर प्रतीत हुए। रंगल के आ-डेगाल पगोड़ा का सुवर्ण-शेखर प्रातःकालीन सूर्य की रश्मियों से भिल्लमिल करता हुआ। इसे दो रडयार्ड किपिंग ने Winking Wouder के नाम से कहा है।

मेन्पो की भोल में कमलों के साथ बैठते हुए सफेद हंस। ये भी अवश्य देखने चाहियें।

फिर नामदू की चांदी की खान और वो अंग्रेजी कारखाना जिसकी मट्टियों में एक ओर मिट्टी के बले खाले जा रहे हैं और दूसरी ओर चांदी की दूध सी सफेद धार बड़े २ बाँचों में पक कर भारी थैत इंटों (Ingots) की राकू अक्यार कर रही है।

“धनांजांग” के समीप B. O. C. के तेल के कुप जो बिजली की मशीनों के जूरिये १०-१५ हज़ार फीट की गहराई से तेल की धारा को खुद ब खुद पम्प कर रहे हैं।

मौन्मीन के समीप लकड़ी के कारखानों में जहाँ हाथी बड़े २ लकड़ियों के राहतौर उठाकर उन्हें मैशीनों द्वारा टुकड़े कर रहे हैं। ये हरय भी दर्शनीय हैं। कैसे दुर्बल मनुष्य ने हाथी जैसे भीमकाय पशु को अपने कार्य के लिये इतना साध लिया है।

× × ×  
गत दो-चार वर्षों से बर्मा में भी सांघदायिक विद्रोह बढ़ रहा है। बर्मा हिन्दू-मुस्लिम फ़साद। बर्मा मिर फुटीवल। बर्मा लोग अब भारतीयों की घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं। इसके कई राजनैतिक कारण भी हैं।

अस्तु, हमारी यात्रा समाप्त हुई। हमने अपने मेज़बान का शुक्रिया अदाकिया। हाथ मिलाए। चिट्ठी लिखने का वायदा। और नमस्ते।

जहाज़ ने आवाज़ दी। सोदियां उठ गईं। जहाज़ हिलने लगा। साथी किनारे खड़े रुमाल हिला रहे थे। और हम दूर, दूर, अथाह जलराशि की ओर बढ़ते गये।

“अच्छा! अगली यात्रा कहाँ होगी?” मन ने पूछा।  
“जापान जाना चाहिये।” वहाँ का “बैरी-क्लासम-सीजन” अच्छा है।” उत्तर मिला। परन्तु लड़ाई ख़तम हो जाय। फिर अगला प्रोग्राम बनाएँगे।

(पृष्ठ ३ का रोप)

हमारे बड़े बड़े तट—सब हमारी ही सम्पत्ति हैं। समुद्रीय तट के दो बहुत बड़े खास हैं। एक तो प्रायः करके, इस पर किसी मनुष्य का दखल नहीं होता, और दूसरे यह प्राकृतिक शक्तियों को निर्देश के साथ प्रवर्धित करता है।

वास्तव में हम सब बड़े राजागौरव हैं, केवल न जानने की वजह से हम अपने को निर्धन समझते हैं। हमारे पास भूमि की कमी नहीं है, केवल इसका उपभोग करने वाली शक्ति की कमी है। बल्कि इस विरासत में एक और

बहुत बड़ा खास है, और यह यह कि हमारी बड़ी ज़रूरत होते हुए भी हमें किसी तरह का परिश्रम व प्रबन्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं। एक जमींदार को प्रबन्ध का कष्ट है लेकिन हरेक आँकों यात्रा व्यक्त जमीन (प्राकृतिक दाय) को देख सकता है। और उसका उपभोग कर सकता है। इस प्रकार किंगस्ले एवरस्ले बरों तरफ़ के ढेर की अपना “शरन्कालोन उद्यान” कहा करता था। इस लिये नहीं कि कानून को दृष्टि में वह उसका था। बल्कि उस उच्च दृष्टि बिन्दु से, जिस के अनुसार लाखों आबामी उसी एक बीज के मासिक बनने का दवा कर सकते हैं।

### गुरुकुल समाचार

धर्मवीर १४ अ्रेणी विष्णुद्वारा, प्रभाकर १३ अ्रेणी टान्सिल, धर्मवीर ११ अ्रेणी विषमज्वर, धर्मवीर १२ अ्रेणी विषम ज्वर, अजयकुमार ११ अ्रेणी विषमज्वर, धर्मेन्द्र नाथ ४ अ्रेणी विषमज्वर, कीरेन्द्र ४ अ्रेणी विषम ज्वर, मनमोहन २ अ्रेणी विषम ज्वर, योगेश्वर २ अ्रेणी विषम-ज्वर, देवदत्त २ अ्रेणी विषम ज्वर, मनमोहन १ अ्रेणी विषमज्वर, दयानन्द २ अ्रेणी मन्स, रामकुमार ३ अ्रेणी मन्स।

गत-सप्ताह उपरोक्त ३० रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं। गतसप्ताह अधिकतम तापमान १०६ फा० रहा। एक दिन थोड़ी वर्षा भी हुई परन्तु उसदिन अग्नी का जोर अधिक रहा बाद में गर्मी फिर से पर्योत हो गई।

### शोक-सभा

कुलवासियों को यह सभा वैदिकमुनि श्री स्वामी हरिप्रसाद जी के देहावसान पर दुःख प्रकट करती है, श्री स्वामी जी वेद, दर्शन आदि प्राचीन शास्त्रों के प्रखर विद्वान् थे, आर्य संस्कृति के उपासक थे, गुरुकुल को अपना मानते थे, तनम धन का जाति-सेवा में समर्पित करने वाले सच्चे संस्थासी थे। परम पिता दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे और हम सबों को शक्ति दे कि उनके देहावसान से हुई त्रुति पूरी कर सकें। मृत्यु से पूर्व आपने ११।१ हज़ार २० का दान विविध संस्थाओं को किया।

### स्वा० विचारानन्द जी का देहावसान

२० मई को प्रातः बहुत चिकित्सा किये जाते हुए भी गुरुकुल कांगड़ी में श्री मान्य स्वामी विचारानन्द जी का शरीर छूट गया। उक्त स्वामीजी (पूर्व नाम भिलोक चन्द्रजी) एक बड़े निस्वार्थ सेवक थे। सदा हीन दुखियों के पक्ष में लड़ते रहते थे। जहाँ जहाँ काम किया वहाँ के लोग उन्हें बड़े प्रेम और सम्मान से याद करते थे। अन्तिम कुछ महीनों से वे गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में बाटिका-गोशाला का कार्य बढ़ी उत्तमता और सकलता पूर्ण कर रहे थे। परमेश्वर उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

स्मृतिवर्षक

ब्राह्मी बूटी

॥॥ सेर

गर्मियों में

एक वार ज़रूर भ्राजमाइए

सुगन्धित

इचन सामग्री

॥॥ सेर

## गुरुकुल कांगड़ी फार्मैसी का प्रसिद्ध

**भीम  
सेनी  
सुरमा**

आंखों से पानी बहना, खुगली कुकरे सुर्खी, जाला व बुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त आंखों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ मारा ॥॥२॥ १ सं० ३)

### ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन स्नान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग तरोताजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, आंखों में जलन आदि रोगों में तुरन्त आराम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

### गुरुकुल फार्मैसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहायनपुर )

ब्रांच { लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहरा—बांडनी चौक  
पटना—मछुआ टोली, बांकीपुर

**भीमसेनी इतमंजन**

दांतों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है  
मूल्य ॥॥ शीशी, ३ शी० १॥)

**सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए**

**सुपारी पाक**

स्त्रियों के जरियान रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।  
मूल्य १॥॥ पाव



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मूल्य-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल कानूनी, शुक्रवार २६ अगस्त १९६७, ७ जून १९६७

[ संख्या ८ ]

## मैंने अपने बालक को गुरुकुल में वर्षों प्रवेश किया

आज से लगभग दो वर्ष पूर्व की बात है कि मेरा पुत्र गुरुकुल की भर्माशाला में मुझ से मिलने आया। थोड़ी ही देर के बाद अपनी बाल-सुलभ चपलता के साथ वह मुझ से अनगण्य बातें करने लगा, गुरुकुल जीवन तथा उस पर जमाई गई गंभीर महत्वाकांक्षाओं वाली बातों की ओर उसका मुकाब धा पर उनमें सद्गुणों ने अधिक हास्य तथा शैक्षिकीकरण भरा था। यकायक उसने आर्यस्त गम्भीर भाव धारण किया और मुझ से पूछा, “पिता जी गुरुकुल में पढ़ लेने से ही ऐसी कौनसी विशेषता मुझ में आ जायगी कि मैं इच्छा करने से अपने को युनिया का एक महान व्यक्तित्व बना सकूँगा, आप ऐसा क्यों विश्वास करते हैं ?”

इसके इस प्रश्न ने मेरे हास्य व शोकादिहो मनोवृत्ति को क्षम्य कर दिया और मुझे अपने दायित्व का भार कुछ झरने लगा। मैंने कहा, प्यारे पुत्र ! आशो में तुम्हें एक पुरानी कहानी सुनाता हूँ ! कहानी का नाम सुन वह पुनः वपस्य व हल्का होगया, मुझसे कहानियाँ सुनने की उसकी एक बंधी आदत थी।

मैंने कहा कि तुम जानते हो कि जब भगवान् रामचन्द्र जी ने रावण को मार कर लंका का राज्य विभीषण को दे दिया तब वे अपने कुल बुने साधियों के साथ पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौट आये और अन्त में अयोध्या का राज्य उन्हें सौंप दिया। उनके सिंहासन पर बैठ जाने पर आस पास के राजे महाराज, सगे सम्बन्धी, ऋषि मुनि लोग उन्हें बधाई व आशीर्वाद देने के लिये अयोध्या आने लगे। एक दिन महर्षि अगस्त्य भी राज दरबार में पधारे। उन्हें देख भगवान् रामचन्द्र सहित सब दरबारी गण अपने अपने आसनों से उठ खड़े हुए। श्री रामचन्द्र जी ने आगे बढ़कर ऋषि का स्वागत किया तथा उन्हें राक्षसिहासन पर बैठा कर उनका उचित सत्कार किया।

ऋषि कहने लगे हे राम ! तुमने रावण को मार कर संसार का भारी उपकार किया है। अगणित वीरों से भरी हुई लंका को जीत कर तुमने अतुल वीरता का परिचय दिया है, हम तुम्हारे वनवास तथा युद्ध का कुछ विचार ज़बानी सुनना चाहते हैं। रामचन्द्र जी बोले, भगवन् ! यह हम जानते हैं कि इच्छा होने से ही आप वर्तमान, भूत व भविष्य का हाल जान सकते हैं पर जब आप की आज्ञा हुई है तो हम सुनते हैं।

“वनवास के हमारे प्रथम १२ वर्ष बिना किसी विशेष बदला के ऋषि मुंशियों के संसर्ग में अपेक्षाकृत शांति पूर्वक व्यतीत हो गये परन्तु उसके अन्तिम दो वर्ष मेरे लिये एक अर्थकर दुःख स्वप्न की दृष्टि हैं। रावण द्वारा सीता के हरे जाने पर हम बहुत ही मोह को प्राप्त हो गये थे, उस समय लक्ष्मण ही हमारा विवेक, हमारा धैर्य व हमारी शक्ति थे। सुग्रीव की मित्रता उस समय हमें देव के आशीर्वाद की नाई प्राप्त हुई, और हनुमान ने तो बिना उचित साधनों के ही सतुद्र को पार कर सीता का पता लगा कर एक चमत्कार कर दिखाया। रावण के विकृत, यूपास, दुष्पंच आदि अनेक महादण्डियों तथा राजपुत्र असकृ-मार को मार उसने हमारी भारी सहायता की। सुग्रीव ने समस्त युद्ध का संचालन जितल योग्यता से किया वह हमारे आश्चर्य का विषय है, उन्हीं की सौम्य रचना के अनुसार राजकुमार अंगद ने महाबली वज्रदंष्ट्र व नरनाटक, हनुमान् ने धूम्राक्ष व अकम्प्य, लक्ष्मणने इन्द्रजीत व मेघनाद तथा हमने कुम्भकर्ण व राक्षसाधीश रावण का वध किया। सीता के अपमान को याद कर हम अब भी अपने धैर्य व विवेक को की बैठते हैं, पर सीता की हमारा प्राण निष्ठा की जो कठोर परीक्षा हुई है उससे हम गौरवान्वित हुए हैं और अपने आप को लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् से भी अधिक भाग्यशाली समझते हैं।”

महर्षि अगस्त्य बोले, राम ! तुम्हारी यह वीर गाथा संसार के मनुष्यों को अभिहित काल तक त्याग सेवा व धर्म के मार्ग पर अनुप्राणित करनी रहेगी, पर हम स्वयं लक्ष्मण के तथा उनके शीर्ष से बहुत ही प्रभावित हुए हैं। हमारी यह निरिन्दित धारणा है कि बिना

लक्ष्मण के लंका विजय कठिन ही नहीं प्रम्युन असम्भव थी।

राम यह पुन अवाक रह गये जब वह बोले तो उनके मन में आनंद तथा उनको बाणों में गंध साक झलक रहा था। उन्होंने कहा भगवन् हम तो पहिले ही कह चुके हैं कि सीता के पतन जल लक्ष्मण हा हमारा धिवेक हमारा भय तथा हमारा शोक रहे हैं, तिस पर भी हम यह समझने में असमर्थ हैं कि उन्हे बिना लंका विजय क्यों असम्भव था।

महाश्व अगम्य मुसकरने हुए बोले, राम, इन्द्रजित-मुसनाद ने क्यों की तपस्या के पूरे नू रह कर प्राण क्षमा चाहा था, कि ससागर का कोई भी मनुष्य युद्ध में उन्हे मारने में सक्षम न हो सके परन्तु एक परिमिन तप से ऐसी अपरिमिन शक्ति उन्हे प्राप्त नहीं हो सकनी थी, तिस पर भी उन्से कहा गया था कि उन्हाने इनत, बल अत्यय प्राप्त कर लिया है कि कोई भी मनुष्य जो लगानार कल से कम जोवद वर्ष तक श्री का मुख न देखने में सक्षम न हो सके तथा हमने ही समय तक निद्रा व आहार का त्याग न कर मके वह उन्के मारने में समर्थ न हो सकेगा। अब जब तुम कहने हो कि लक्ष्मण ने इन्द्रजित को मारा है तो उसने शाय्य ही इन सब शक्तो का परा किया है और यदि वह इस रहस्य में अनभिज्ञ था उसने ऐसा आमातृमिक कार्य अपने साधारण कर्तव्य पालन की दृष्टि से ही किया होगा। इस बात से हम साफ अन्दाजा लगा सकते हैं कि उसकी आत्म निराह की शक्ति कितनी अपरिमित है।

राम मोह विवृष्ट हो श्रुषि की ओर ताक रहे थे, आश्चर्यकार बोले भगवन्, आप का कहना प्रमाणित सत्य होता है इसमें तो हमें तनिक भी संशय नहीं, पर सीता १२ वर्ष तक हमारे साथ गयी, भोजन व विश्राम की व्यवस्था भी हमारे आदेश से हुआ करनी थी अतः इन विषय में अपनी अनभिज्ञता से आत्म-ग्लानि हमें चिवेक मान्य बना गयी है, हम इस बात की मफाई स्वयं लक्ष्मण से चाहते हैं।

राम का संकेत पर हनुमान मुग्ध लक्ष्मण को लजाने लगे गये। उस समय लक्ष्मण महल में माता सुमित्रा के पास गये थे, राम का आदेश पर तुरन्त राज सभा में आ पहुँचे।

राम ने कहा, लक्ष्मण, महर्षि अगस्त कहने हैं कि तुमने बनवास में चौदह वर्ष तक न रही क, मुख देखा है, न भोजन किया है और न सोये ही हो, तुम्हें इस पर क्या बहाना है? लक्ष्मण ने मरल भाव से कहा भगवन्, महर्षि जो भी कहने हैं वह केवल सत्य ही हो सकता है। रामने कृपे आदेश के साथ कहा, लक्ष्मण हम इससे सर्वथा अनभिज्ञ हैं, तुमने ऐसा क्यों किया और हमने क्यों नहीं कहा। लक्ष्मण ने कहा नाथ, अपने प्रतिदिन का जिम्मे-वारी चुकाने के लिये ही हमें ऐसा करना पड़ा था और आप से इसकी चर्चा करने का कभी कार कारण ही उपस्थित नहीं हुआ।

राम का मन सशोक था, लक्ष्मण के सरल उत्तरों में उन्हे कुछ व्यय प्रतीत हुआ, वे कुछ कोष पूरे शब्दों में बोले। लक्ष्मण सीता १२ वर्ष तक बन में हमारे साथ ही रही जब वह कितने संशय हो सकता है कि हर समय हम तीनों के साथ साथ रहने पर भी तुमने कभी सीता को मुख न देखा हो। लक्ष्मण बोले भगवन्, सीता के साथ रहते भी कभी हुआ ही नहीं उनक मुख पर नहीं पड़ी, यह हम साथ ही कहते हैं। जब सीता को राक्षस हर ले गया था और श्रुष्युक्त पर्वत पर तुरास से मेंद होते पर उन्होंने सीता के आकाश से छोड़े हुए आभूषण आप को बसाये थे तब उन्हे पहिचानने क लिये, आप ने हमें भी बनाया था। आपको याद होगा कि हमने उनके तुरपुर तो पहिचान लिये थे क्यों कि उन्हे प्रति-दिन भोग्य करते हुए देखा करते थे, पर उनके हमने कोई भी आभूषण हम पहिचान न सके क्योंकि हमने कभी भी उनके मुख का आंग दृष्ट उदा कर देखा न था।

राम ने पुनः पूछा-लक्ष्मण, बन में हम तुम दो की बना कर रहते थे। प्रति दिन रश्मि की साधारण कथा वाना के पक्षी जब हम वन्याम को जते थे तब तुम्हें भी जाने की आशा दत्त थे, किने अपनी कुटी में जाकर भी तुम नहीं सो। ये तो मुमन ऐसा क्यों किया। लक्ष्मण ने कहा भगवन् जब आप सो जाते थे। तब इस आशंका से कि उन्से निवृद्ध बन में को। जगलो जलकर तथा कोई कुछ राक्षस आपका तथा माता सीता को कुछ अशुभ न करदे हम धनुर् बाण ले चौकसी करते थे, आप जानने न कि वे बन तुम्हें से निर पद सीने कि निने दुरहित स्थान नहीं करे जा सकते। एक राति को निद्रा में हम बहुत सतथा। हमन कू र्द हो उल दृष्ट देने के संकल्प से अपना धुप उठाया। वह भयभान हो हमसे विनीत शब्दों में कहने लगी लक्ष्मण, जब तमामे दिन के पारक्रम से मनुष्य व शक्त हा जाता है तब हम उमें विब्राम देकर अपनी कर्तव्य पालन करती है, अब तुम बताओ कि हम कब तुम्हें पास आ अपना भंग अदा करे हम। कुहा तद्द, तुम बनवास काल तक तो हमारा पास न फुकता, अब राम वीरस अयोध्या का लोड ज्ञाय और र सीता सहित सिंहासनाकृष्ट हो और हम पाँछ लक्ष्, चूचुर, तुम्हें दो नव तुम आकर हमारा आन्वी कर आश्चर्य कर सकनी हो। आपको स्मरण होगा कि ठीक उसी श्रवणरे पर हमारा हाथ से खबर गिर गया था और हम गैहरी निद्रा के वशीभूत हा गये थे।

राम ने द्रवित हृदय व काँपत लव, से पूछ लक्ष्मण, जब तुम प्रति दिन हम ले कोई सुल व फल लाते थे तो हम उन के तीन भाग्य कर देने थे और तुम्हारा क्या प्रति दिन ही तुम्हें दे देने थे फिर यह क्यों सम्भव है कि तुमने वे फल कभी नहीं लाये। लक्ष्मण ने कहा भगवन्, साथ तुम्हें प्रति दिन ही कहते थे कि लक्ष्मण ये फल ले जाओ। आपने कभी भी मुझे नहीं जाने के लिये नहीं कहा अतः मैं वे फल ले जाकर अपनी कुटी में रख लीहा करणा था। मैंने उन्हे कभी खाया नहीं। राम ने कहा तब कल्पन क्या

हुआ। लक्ष्मण ने उल्टर दिया कि वे सब मेरी बन वाली कुटी में मेरे तरकस में भंगे रखने हैं, उन्हें आप रेश सकते हैं। राम ने हनुमान को तरकस लाने को कहा।

हनुमान चलते गये पर वे अपने में लिख थं। वे मन ही मन कह रहे थं कि एक तरकस लाने का तृष्ण कार्य भी राम ने उन्हें ही सौंपा। कुटी में पहुंच कर हनुमान ने लक्ष्मण का विशाल तरकस देखा, वे उसे उठाने लगे पर वह अपनी अगह में नहीं हिला। जब हनुमान अपनी पूरा बल लगा कर भी उसे न उठा सके तो वे अत्यन्त लज्जित हो लौट गये और स्वभा में जाकर चुपचाप आंखें नीची कर के लड्डे हो गये। राम ने पूछा हनुमान तुम ऐसे विचित्र क्यों दीखते हो, तरकस कहाँ है। उन्होंने कहा: भगवन्, लक्ष्मण का तरकस उठाना कोई त्वेल नहीं उमने तो वे ही उठा सकते हैं। राम ने लक्ष्मण को तरकस लाने का आदेश दिया। लक्ष्मण कुछ देर बाद तरकस उठा लाये उन्होंने उसे राज सभा में उठेल दिया और राम के आदेश ने फलों की गिनतः होने लगी। हिसाब लग कर राम ने कहा लक्ष्मण इस तरकस में छः दिन के फल नहीं हैं उनका क्या हुआ। लक्ष्मण ने कहा—'भयानुभूत पर व्यर्थ सम्येह न कीजिये उन छः दिनों का हिसाब इस प्रकार है। पहले जब हम पंचवटी में पशु कुटी बना कर निवास कर रहे थे, एक दिन अयोध्या से पिता के देहवाचना की सूचना मिली शोक के मा' खाने पीने की सुध ही न रही और न उस दिन हम खाने के लिये फल लाये। दूसरे जिन दिन सीता हरी गयी उस दिन शोक से आप प्रायः खेतनाहीन ही हो गये थं और हमारे क्षोभ का भी ठिकाना नहीं था। अतः उस दिन भी हमने खाने की कोई व्यवस्था नहीं की थी। तिसरे जब इन्द्रजीन द्वारा हम शक बाध में शूर्कित कर दिये गये थे नव भी हम आपके लिये फल नहीं ला सके थं। चौथे एक दिन रावणने माया की लीला बना हमारे सामने ही उसका सिर काट दिया था उस दिन भी हम ब तमाम मना शोक से विह्वल हो गयी थी अतः उस दिन भी हम फल नहीं लाये। पांचवें, जिस दिन अह्न रावण हम दोनों का पतान लोक चुरा ले गया था उस दिन भी हम फल नहीं ला सके। छठे जिन दिन आपने रावण का बध किया था उस दिन समस्त जानर मेना हष में मलयाली हो नाचती कुवती रही, उस दिन तो किसी ने भी भोजन की कोई व्यवस्था नहीं की। इस प्रकार छः दिन के फल हम तरकस में नहीं हैं।

लक्ष्मण जब इस प्रकार अपनी लुफाई दे रहे थे, सारी राज सभा निमित्तमेव नेनी ने उनके मुख की ओर ताक रही थी और राम की आंखों से अश्रु प्रवाह प्रबल वेग से बह रहा था।

मेरे पुत्र ने जो बिना हुंकार दिये ही कहानी सुन रहा था एक लम्बी सांस ली और फिर लुग हुआ। मैंने कहा तुम शीघ्र ही बड़े हो जाओगे और इस कहानी को किसी कवि की कल्पना कह कर रद्द कर दोगे। मैं भी स्वीकार करता हूँ कि यह अतिशयोक्तिसे से भरी हुई किस कवि की कल्पना हो पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि यहां कवि ने किस ऐतिहासिक घटना को फेवल अलित बनाने के लिये ही अपनी कल्पना शक्ति खर्च नहीं की बल्कि उसने एक संस्कृति द्वारा सिखलाई जाने वाली त्याग, मेधा, अनुशासन तथा कठोर आग्रह निमग्न ही उस पराकाष्ठा को जो हमारे लिये आज कल्पनातीत है अपनी कल्पना द्वारा करने की कोशिश की है। मैंने तुम्हें गुरुकुल इसी संस्कृति का अध्ययन करने के लिये भेजा है। गुरुकुल इस संस्कृति के जायित स्वरूप को प्रकट करने में किस कुशलता में अग्रसर हो रहा है यह तो मैं नहीं कह सकता पर यह उसने अपनी लक्ष्य बनाया है और जब तक वह सजीवता में इस और अग्रसर होने की आकांक्षा रखता है तब तक उसके साथ पूरा सहयोग करना हमारा कर्तव्य है, कौं कि यदि वह अपने इस परीक्षण में सफल हुआ तो इससे संसार के दृष्टि कोण में कान्ति कारि परिवर्तन हो सकता है। "अधिकार" की तृष्णा से तड़पता हुआ यह आधुनिक जगत फेवल "मेधा" की सरिना पर पहुंच कर ही अपनी प्राण रक्षा कर सकेगा। रही तुम्हारी बात, यदि तुमने मन बचन व काम से गुरुकुल में रह कर इस संस्कृति को अपने जीवन में व्यक्त करने की कोशिश की तो तुम लक्ष्मण जैसे अद्वित, य पुरुष तो शायद न बने पर अपने समकालीन संसारमें अद्वितीय बनजाना कोई अनहोना बात न होगी। मेरा पुत्र मेरी सब बातें समझ रहा था इस में तो मुझ-पूरा सम्येह था पर वह यह अवश्य समझ गया कि गुरुकुल द्वारा न उमने कोई विचित्र जीव बनना चाहता हूँ।

रामनारायण कुठारी

## पाठकों से—

गुरुकुल के विगत अंक ( १२ जेष्ठ वा २४ मई के अङ्क) में जो श्री रमणभ्रम के कुछ संस्मरण छपे हैं उस में जो विचार प्रकट किये गये हैं वे लेखक महोदय के अपने हैं, वे 'गुरुकुल' के विचार नहीं हैं। यह प्रकट करना हम अपनी कर्तव्य समझते हैं—

संपादक।

# गुरुकुल

२६ ज्येष्ठ शुक्रवार १९६७

## मनोरंजन

(आचार्य अमरदेव जी का एक उपदेश जो महाविद्यालय के महाचार्यों के बीच में दिया गया था)

[ गताङ्क से आगे ]

### ३. क्या विश्राम न किया जाय ?

पर हमका यह मतलब नहीं होता है कि विश्राम न लिया जाय या आनन्द प्रसन्न न रहा जाय। विश्राम तो पूरा पूरा करना चाहिये, पर आलस्य नहीं। और अग्रप्रसन्न, दुःखी या उदास होना तो परमेश्वर के प्रति अपराध करना है।

धकने पर आराम की इच्छा स्वाभाविक है। पर प्रायः काम को बदल लेना ही थकावट दूर करने के लिये पर्याप्त होता है। जब हम एक काम करते हुए थक जायें या उकता जायें तो दूसरा उपयोगी काम जिससे उन्हीं शक्तियों पर जोर न पड़े शुरू कर देना चाहिये। पर विश्राम करने के बहाने ऐसे खेलों में पड़ जाना अपना ऊँची स्थिति छोड़कर नीचे उतर आना ठीक नहीं। इसमें अकल्याण के सिवाय और कुछ नहीं। शारीरिक और मानसिक कामों को ना परंपर बदला जा सकता है। दोनों प्रकार के कामों के भा इतन भद्दे होते हैं कि एक प्रकार का शारीरिक काम छोड़ कर दूसरे प्रकार का शारीरिक काम करने से शरीर को विश्राम भा मिल जाता है और किसी दूसरे अंग का काम भा होता रहता है। इसी प्रकार मानसिक कामों को भी बदल बदल कर किया जा सकता है और उन से मानसिक ताज़्जा बनी रह सकता है। ऐसा तो कभी होता ही नहीं कि हमारे पास करने का कोई (शारीरिक या मानसिक) काम ही न हो।

पर यदि कुछ भा काम न करे पूरा तरह विश्राम हा लेना हा तो यह भा याद ठीक ढंग से लिया जाय तो बड़ा उत्तम है। अपने शरीर को-एक एक अवयव को-डाला छोड़ कर शान्त मन के साथ चुप चाप बैठ या लेट लेने से थोड़े ही समय में अधिक से अधिक विश्राम मिल जाता है। इसा प्रकार का असली विश्राम तूना ताशा खेलने जैसे मनोरंजनों द्वारा मिलने वाला विश्राम से हजारों दूजे अच्छा है। तुनबा के महापुरुषों के जिन्होंने आरचय जनक मात्रा में काम किये हैं, जीवनों में रहस्य वही पाया गया है कि उन्हें किसी न किसी प्रकार का ऐसा आनन्द या कि वे बीच बीच में ५, १० मिनट के लिये विरक्तुल चुप होकर मन को बरा में किये हुए पूरा विश्राम ले सकते थे। एक महा पुरुष कहा करते थे कि मैं अपने दिमाग में चरा

माने समझता हूँ। उनमें से कोई एक या अधिक बन्द करके रोप से काम ले सकता हूँ और बराबर लेता रहता हूँ और जब सोना हो तो चारों का बन्द कर लेता हूँ। उस नैपोलियन के बारे में प्रसिद्ध है कि वह घोड़े की पाठ पर भी आराम कर लेता था। पं० जवाहरलाल जा को कुछ मिनटों के लिये शार्पासन कर लेते देखा गया है। गांधी-जा मीन द्वारा इतना विश्राम ले लेते हैं कि उस दिन वे अधिक काम मनास कर लेते हैं। हमारे आचार्यों द्वारा आविष्कृत शवासन याद ठीक तरह किया जाय ता इससे थोड़ी देर में बड़ा विश्राम मिल जाता है। यही नहीं किन्तु इससे नवप्राण ओग जावन का भी शरीर और मन में संचार हो जाता है। इसी तरह मासिक थकावट को दूर करने के लिये बशोवतया मानसिक आनन्द भी है जा कि तुम में से जो कोई जानना चाहे जान सकता है। यह असली विश्राम पाने का ऐसा अनुभव तुम्हें होगा तो तुम्हें यह भा पना लग जायगा कि कैरम या ताशा खेलने स वास्तव में कोई विश्राम भा नहीं मिलता, यह केवल भ्रम ही है; क्योंकि इनस शरीर और मन पर अवस्थानुसार कम या ज्यादा जोर ता पड़ता हा है।

### ४. ऐसे मनोरंजनों का इच्छा का

#### असली कारण

पर मैं तो चाहता हूँ कि तुम चरा गहवाई में चुस कर सोओ, सोच कर देखा कि ऐसे खेलों द्वारा मनोरंजन करने की इच्छा तुम में क्यों पैदा होती है, उसका असली कारण क्या होता है ? यह केवल थकावट के कारण नहीं होती है। थकावट को दूर करने का सांथा इलाज तो विश्राम है। मन की प्रक्रिया बड़ी जटिल होती है, अन्तर्मूल होने पर, पूरी गहवाई में जाने पर और बचा भी प्रकारा मिल जाने पर ही ठीक तरह पता चलता है कि हमारी अनुक प्रवृत्ति का वास्तविक प्रेरक भाव क्या है। टाल्टाय का एक प्रसिद्ध लेख है "Why-men stupefy them selves" जिस में उन्होंने इस बात का गम्भीर विवेचन किया है कि लोग जो अपने को पागल बनाते हैं अर्थात् शराब, तम्बाकू आदि नशीली चीजों का सेवन करते हैं उनका असली कारण क्या है। उन्होंने अच्छी तरह विदित किया है कि इसका मुख्य कारण यह होता है कि वे 'अन्तरात्मा की आवाज' का दबा देना चाहते हैं। उनका अन्तरात्मा उन्हें कहता है। उसे वे नहीं चाहते, वह बड़ा कष्टकर लगता है, अतः वे नशीली चीजें सेवन कर उसे दबा देना चाहते हैं। इस तरह दबाते दबाते उनका अन्तरात्मा को आवाज हा मर जाती है। इसी तरह ऐसे मनोरंजन करने की इच्छा का गूढतम कारण हमें बहुत बर यह मिलेगा कि हम अपनी मनोवृत्ति का किसी प्रभिय धारा को बदलना चाहते या मुना देना चाहते होते हैं। मन हमारे कानू में नहीं है, वह तो हमारे सामने विचारों को प्रस्तुत करता है, पर हम उन विचारों का सामना नहीं कर सकते, उनसे बचना चाहते हैं तो मन को दूसरी तरफ लगाने के लिये कच्चे के साथ मिल कर

कैरम खेलने में बग जाना पसन्द करते हैं और उसमें शान्ति पाने हैं। तो बीड़ा सिगरेट पीने को तरह तारा खेलने का मतलब न केवल समय काटना नहीं होता किन्तु मन की आन्तरिक हलचल से छुटकारा पाना भी होता है। चाहिये तो यह कि हम उस आन्तरिक हलचल का सामना करें, असली प्रश्न को हल करें, उससे हमारे शारीरिक सुख में तो ज़रा बाधा पड़ेगी और आन्तरिक उलझन का दुःख कुछ समय के लिये हमें व्याकुल करे रखेगा। पर हम यदि लगे रहे आन्तरिक हमारी यह आन्तरिक पीड़ा एक नये ज्ञान को पैदा कर बड़े भागे आनन्द के रूप में परिणत हो जायगी। यह स्वाभाविक नियम ही है। पर हम आ-दर से आना चाहने वाले अपने असली आनन्द की उत्पत्ति के प्रारम्भिक रूपभूत उस मानसिक उलझन रूपी प्रसव पीड़ा को अग्रिम समझ उसे बाहर के बनावटी मनोरंजन के सुख द्वारा दबा देने की मूर्खता करते हैं; और इस तरह इन झूठे मनोरंजनों द्वारा अपने असली आनन्द को जड़ ही काट देते हैं, भ्रष्टाहत्या कर देते हैं। यह है ऐसे मनोरंजनों की इच्छा होने का असली, गूढ़, सच्चा रूप और रहस्य।

इसलिये अम्बर गुसने से मत घबराओ। तारा खेलने की अपेक्षा यह लाख दर्जे अच्छा है कि तुम चुपचाप होकर अकेले में सोचने के लिये बैठ जाओ। जब तुम मन की दृष्टि से थक जाते हो अर्थात् उकता जाते हो और किसी हाथ में लिये काम को आगे नहीं करना चाहते तो इस का यह मतलब है कि तुम ग़राम खतन्न होकर कुछ सोचना चाहता है, तो तुम उसे सोचने का अवसर दो। वह सोचना यदि अभिय है, मन यदि तुम्हें काटता है तो भी घबराओ नहीं और घबराकर अन्तमंश प्रवृत्ति को झाड़ू बहिसख करने वाले किसी खेल में अपने आप को लगा देने द्वारा उसे दबा मत दो! इससे काम नहीं चलेगा। अपने मानसक भावों, विचारों का यदि तुम इस तरह दबाते जाओगे तो जब भी तुम्हें अपना उन्मान करना होगा तो संस्कार रूप में पड़ी इन वृत्तियों को तहों को तुम्हें एक के बाद एक भेदन करना होगा और बड़ी झुर्रिकल होगी। बड़ी लम्बी लड़ाई होगी। "अतः दबाने से झुर्रिकल बढ़ेगी लाभ कुछ नहीं होगा। इस लिये अन्तमंश होन का आदत डालना, अम्बर हों सब सुख है। इसीलिये शाकाधिये में आरमानंदीच्छा, आत्मविरलेषण, मनन, ध्यान आदि को इतना महत्त्व दिया गया है। यहाँ तो यह कःना है कि इन मनोरंजनों को सबसे बड़ी बुराई यह है कि ये अन्तमंश होने की स्वाभाविक और कल्याणकारी प्रवृत्ति से हट जाने के लिये मनुष्य को ललचाते हैं और अन्तःकरण को दबाने में सहायक होकर हमारे लिये विनाश का रास्ता खोल देते हैं। [अममम]

## हिन्दू-महासभा के कर्णधारों से

[ ६०- वीं खण्ड ]

भारत की राष्ट्रिय जाति के साथ देश में जो महान परिवर्तन हुए हैं उनमें हिन्दू महासभा की उत्पत्ति अतः एक विशेष महत्त्व रखती है। प्रारम्भ में हिन्दू

महासभा का बही स्वरूप था जो सब संस्थाओं का हुषा करता है। परन्तु पीछे २ इसने अपने संगठन को अधिक व्यापक रूप देना प्रारम्भ किया। सम्भवतः हिन्दू महासभा को इतना विराल रूप देने की आवश्यकता न पड़ती यदि तात्कालिक परिस्थितियाँ इस बात के लिये बाधित न करती। परिस्थितियाँ समाजों की रचनाओं और संगठन में आमूल मूल परिवर्तन करने का शक्ति रखती हैं। मोपलाओं के क्रूरियों ने काहाट कानपुर तथा इसी प्रकार अन्य कई स्थानों की घटनाओं ने हिन्दुओं को अग्रित कर दिया। मानव का मानवके प्रति ऐसा क्रूर और धार्मिक व्यवहार हो सकता है इस धारणा ने हिन्दू इदय में भीषण आन्दोलन मचा दिया। यदि इतना ही होता तब भी संभव था कि हिन्दू महासभा इस रूप को धारण न करती। विरोध के होने पर मनुष्य अपनी अधिक शक्ति का प्रयोग करता है हिन्दुओं को आबाज का क्रिमेस की आबाज ने-चुप रही देश की वशा अत्यन्त नाजुक है ऐसे समय में मुसलमानों को नाराज करना ठीक नहीं कह कर दखना चाहा जिसका उत्तर देने के लिए हिन्दू और अधिक संगठित हो गये।

हम मानते हैं कि क्रिमेस देश की खतन्नता चाहती है, उसकी धारणा उत्तम है। परन्तु वह ध्यान रहे कि क्रिमेस हिन्दुओं की संस्था नहीं है। क्रिमेस मुसलमानों को भी संस्था नहीं है। क्रिमेस आज भी विज्ञान २ कर कह रही है कि वह देश की संस्था है, राष्ट्र का प्रतिनिधि संस्था है। परन्तु दुःख है कि उसके इस प्रकार विज्ञान का दूसरा ही आश्रय लिया गया जो कि लिया भी जाना चाहिए था। क्रिमेस कहती है कि मुसलमान जो कुछ चाहे वह ले लें, परन्तु प्रश्न यह है कि क्या लिया जाय और किस से लिया जाय? मुसलमान अपने अधिकारों से अधिक अधिकार मांगते हैं। क्रिमेस उन्हें लेने को कहती है किस अधिकार से? हिन्दुओं के अधिकारों का क्रिमेस किस मह से लेने को कहता है, जब कि वह केवल हिन्दुओं का कोई प्रतिनिधित्व नहीं करती है। यदि उस में हिन्दू सदस्य बहु संख्या में हैं अतः वह ऐसा कह सकती है तब फिर मुस्लिम लोग का यह आक्षेप कि क्रिमेस हिन्दुओं की संस्था है ठीक है। क्रिमेस को वर्तमान नीति ने उसे स्वयं पंगु बना दिया है। उसे प्रतिच्छेद यह निम्न करना पड़ रहा है कि वह संस्था देश की है। परन्तु उसके कार्य देश की विषम साम्राज्यिकता के जाल से ऊपर नहीं उठ सके हैं। हम समझते हैं कि क्रिमेस की इस दृष्टी नीति के कारण ही हिन्दू महासभा और मुस्लिम लोग को मोल्साहन मिला है। देश में इस प्रकार विषम समस्या उत्पन्न करने का दायित्व क्रिमेस पर है। क्रिमेस की दशा देख कर हमको दया आती है। हम उसका उद्धार चाहते हैं। परन्तु किसी ने अपने मति ही ऐसी बना ली हो तब हमारा क्या बर। हमारा उद्देश्य किसी संस्था विरोध की आलोचना करना नहीं है। देश की वर्तमान विषम परिस्थितियों में न यह उचित ही है कि परस्पर के बैमनस्य का बढ़ा दिया जाय। अब तो समय है जब कि हमें भेद भाव भुलाकर देश के लिए एक

हो जाना चाहिए। अस्तु। यह तो एक पालिक सत्य है, कांभ्रस की अपनी महानता है जिस को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। देश की अग्रणी संस्था कांभ्रस है। देश के बहु संस्यकों की आवाज को लेकर बढ़ने वाली संस्था कांभ्रस ही है। परन्तु फिर भी एक बात हम अवरय कहेंगे कि परिस्थितियों के आधारे रह कर कांभ्रस की अपनी नीति ने एक बहु संस्था को अपने से अलग कर दिया है, यह इस वार के सदस्यों का सन्ध्या से स्पष्ट है।

## कालिदास के काव्य

[ ले० - हरिवंश वेशाङ्कवार ]

आज कालिदास का यश न सफर भारन में अपितु सम्पूर्ण विश्व में फैला हुआ है। संसार का प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति कालिदास से अवरय परिचित होगा। भारतीय राष्ट्र-मय को ससारके कोने २ में पहुंचाने का अर्थ उपनिषदों को और विशेषतया महाकवि कालिदास के काव्यों को हा है। इस कवि-पंगव ने अपने छोटे से जीवन के कुछ अंशमें ही अपने काव्यों के रूप में जो स्थिर प्रकाश जगत् को दिया है उसके लिये मानव समाज हमेशा के लिये कवि का छहोरी रहेगा। आज दुनियां में 'प्रोपेगण्डा' का बोलबाला है। फाई लेखक या कवि नाना प्रकार से अपना शिक्षापन करता है। वह अपनी बड़ाई स्वयं करना या अपने अनुयायियों से करवाना है। कालिदास के समय के काव्यों की निरी-हता की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ा है। स्वयंकालिदास ने अपने काव्यों में अपने विषय में कुछ नहीं लिखा। कालिदास ने अपने वैयक्तिक जीवन चरित्र को जितना ही छिपाया है उनके काव्यों में उनका वह ऊँचा चरित्र उनना ही अधिक प्रकट हुआ है।

यद्यपि हमें यह नहीं मालूम कि कालिदास के मां-बाप का क्या नाम था, जन्मस्थान कहाँ था किन्तु उनके काव्योंको देखने से हम अस्वीकार यह बात ज्ञात होजागी हैकि कालिदास को कवि कैसा थी, वह चाहता क्या था? रघुवंश और शकुन्तला को देखने केपश्चात् हमें बिदिन होता हैकि कालिदास वर्गा-श्रम धर्म का अत्यन्त पक्षपाती है। रघुवंश के प्रारम्भ में ही वह लिखता है:—“यै मसे स्यवंशाय राजर्षियो का वरुण कर्मांजा जिनका वंश परम पवित्र है, जो अपने पुरुषार्थ और उद्योग से समस्त पृथ्वी पर राध करने हुए स्वयं तक अपना पथ ले जाने की सामर्थ्य रखते हैं। वे प्रजाओं से ेकम इस लिये लेते हैं कि उन धन को बढ़ाकर पत्रा की मलाई में हा लगायें। विवाह इस लिये करते हैं कि वंशो-च्छेद न हो जाय। शौर्यावस्था में नाना प्रकार की विद्याओं का अध्याय करते हैं यौवन में गृहस्थ आश्रम का पालन करते हैं, उमर ढलने पर ईश्वर का चिन्तन करने हुए वनों में प्राणत्याग करने हैं।”

अपने इन्हीं भावों की व्याख्या कवि ने बिबिध प्रकार से शकुन्तला आदि अन्य काव्यों में भी की है।

आजकल कालिदास के विषय में प्रचलित किंवदन्तियों और आख्यायिकाओं के पढ़ने से ऐसा बिदिन होता है कि कालिदास में बढ़कर चरित्र हीन शायद ही कोई व्यक्ति

संसार में हो। लेकिन कालिदास का व्यक्तित्व जो कि उनके काव्यों में झलकता है वह बहुत ऊंचा है। किसी पाश्चात्य कवि के सारगमिष्ठ इन शब्दों द्वारा 'Style in the man himself' अर्थात् लेखन शैली कवि का अपना स्वरूप है—इस इत्थी निर्णय पर पहुंचते हैं। कालिदास ने अपने काव्यों और नाटकों के कई स्थलों पर इतने आत्मसंयम का परिचय दिया है जो कि थोड़ा ध्यान से पढ़ने पर हमें आश्चर्य चकित कर देता है। और ऐसा संयमी (जिनेन्द्रिय) पुरुष कभी लम्पट हो ऐसा हमारी बुद्धि कल्पना करने को तैयार नहीं।

## कालिदास की शकुन्तला

कालिदास सांन्ययोगसकामिक कवि समके जाते हैं। इस कवि ने 'शकुन्तला' नाटक में अपनी कला का पराकाष्ठा कर दा है। कालिदास की कविता स्वाभाविक, सरल, मधुर और हृदय मार्दा होने के अनिरिक ऊँचे भावों को प्राप्त कराने वाला है। कालिदास शृङ्गारी कवि हैं। प्रेम का वर्णन करना इन्हें बहुत पलन्द है; पर साथहा यह कवि बचल प्रेम का पसन्द नहीं करता। वह प्रेम जतमें कोई मर्यादा न हो—जो प्रेम सिर्फ सांन्ययाकर्षण के कारण किया गया हो—यै मा प्रेम कभी सफल नहीं होता। कालिदास जैसे मिलन का आदर को शक्ति से देखता है जिसमें प्रेमी और प्रशयिनी दोनोंने अपने का, दोषकाल तक संयत रखकर मन के बामना रूपी मलको विकृत जला दिया हो। दूसरे प्रकार के प्रेम पर अवरयमेव वैव का रोष प्रकट होता है और उस का विध्वंस होजाता है। यहाँ बात कालिदास ने अपनी रचना 'शकुन्तला' और कुमार-संभव में दिखलाई है।

राजा दुष्यन्त, राज्य के बिबिध कार्य भार से परिभ्रान्त होकर शिकार के लिये वन में जाता है और एक हरिण के पीछे अपना रथ छोड़ देता है। उस हरिण का पीछा करते २ वह कश्य मुनि के आश्रम में जा पहुंचता है जहाँ ऋषि कन्याएँ अपने लगाये हुए वृक्षों के आलवशलों को जलमे सींच रही हैं। दुष्यन्त लताओं के पीछे से उन्हें सहृद-नेत्रों से देखता है। इसके बाद तीसरे अङ्क के अन्त में शकुन्तला से उसका विवाह गान्धर्व-त्रिभि से हो जाता है। सिद्धहस्त कवि, इस व्यपलता से किये गए विवाह को देखकर भी मौन है, आश्रम वासियों को पीछे मालूम होता है कि शकुन्तला अपना म्याह कर चुकी। तपस्वियों ने अपने अनन्य शकुन्तला को बुरा भला तो अवरय कहा होगा किन्तु आश्रम के वातावरणमें इसके कारण कोई विशेष व्यलज्जो नहीं मची। मय ने यह सोचकर कि 'शकुन्तला का विवाह एक चक्रवर्ती राजा से हुआ है' समनोष किया।

इसके बाद इस 'असंयत' प्रेम पर वैव को बिजली गिरती है और दुर्वासा के शाप से दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाता है। कई दिनों के बाद भी जब शकुन्तला को लेने वा। पत्निहृ से कोई नहीं भ्रमया तक कश्य मुनि उसे पौ ऋषि कुमरों के साथ दुष्यन्त के पास भेज देते हैं। वहाँ भरे द्वार में ऋषि कुमरों के मुख से मानों कवि ही शकुन्तला को ढाँटता हुआ कहता है:—

“अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषान् संगतं रहः। अज्ञात हृदयेधेवं वैरी अयति नोहृदयम्”। शकुन्तला० अङ्क ५-४४।

“इस कारण प्रति बहुत पुत्रों को देने के बाद जोड़ीनी चाहिये। क्योंकि बिना स्वभाव पहचाने को गौ प्रति कालान्तर में ब्रह्म के रूप में परिणत हो जाया है।”

शकुन्तला का यह चपल प्रेम उसे पुरा २ प्रतिफल देता है और जबतक तपस्या करने २ वह अपने वास्तव्य रूप मर्ग को धा नहीं देती तबतक उसका पुनर्मौलन दुष्यन्त से नहीं होता। सप्तम अंक में दुष्यन्त जब उठे कुछ दूर से देवता है तब सुरिकल से पहचानता है—

“वसनं परिपुसरवसाना नियमचामभुवा धृतकवेणः ।  
अतिनेकरूपस्य गृहशाला मीमंशिव (वेदहृतं विमौक्तं) ॥”

“क्या विवागिनी का वेपथारण किसे यहा शकुन्तला चली आ रही है, जिस का सुव विरह के नियमों ने पीला कर दिया है और मलिन वस्त्र पहिने—जडा कपे पर डाले मुझ निन्द्यो का वियोग-सहती है।”

दुष्यन्त भी पश्चात्तापों के कारण पर्याप्त तपस्या कर चुका है और इतना साक्ष्य चुका है कि शकुन्तला जब हम देवती है तब पहचानती ही नहीं कि यह कौन है—

“न खल्वयं पुत्र इव । ततः क षण् इदानीं कृत रत्न ।  
भङ्गलकं दारकं मे गात्रभ्रमर्गेण नृपयताम् ॥”

“यह क्या मेरा ही प्राणपति है जा वियोग की आंच से ऐसा कंभला गया है। यदि यह मेरा पति नहीं है तो कौन है जिमने बालक को गोद में उठा रखा है और संपन्नोडा उसे जाने से बचा हुआ है।”

इतनी लम्बी तपस्या के बाद जब दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम से वामना का मूलोन्मूलन होगया तब जाकर यह प्रेम चरितार्थ हुआ है। प्रेम को पूर्णता यही आकर हुई है। कालिदास के अनुसर सच्चा प्रेम मनुष्य को मानव रूप में देवता बना देता है पर अन्धा प्रेम मनुष्य को दुःख-शांका के गहरे गर्त में गिरा देता है।

अपने ‘कुमार-सम्भव’ में श्री कालिदास ने यही दिलीबोने का प्रयत्न किया है। पुष्पा के अर्धकारों से सज हुई लज्जामया उमा गिरीश के चरणवन्दन को जाती है और बिनयावर्नग होकर नमस्कार करती है। उनके कानों से पलव गिर पड़े और कंठों से कणिकार कुमुम स्थलित हाकर शिव का स्पर्श करते हुए भूमि पर गिरे। उस स्पर्श का अनुभव करके महाभय और जहाणव के ममान शान्त-गम्भीर देवादिदेव-महादेव ने अपनी आँवें खोला और देखने लगे कि यह उत्पन्न कहाँ से हुआ है। सच सिद्ध को विचार कर और अपनी इन्द्रियों पर काय करके वे पुनः समाधिस्थ हो गए। पार्वती का प्रत्याख्यान हो गया और जिस अल्प रूपावस्था पर भरोसा रख कर वह शिव के पास गई था—उस रूप को निन्दा करता हुई शय्य हयथाहाकर अपने पिता के घर लौट आई। उनसे देखा कि शिव को मैं अनन रूप के कारण केस। प्रकार भी न अपना संक्या इसलिये उसने साचाः—

“अनेप स कृष्णमन्त्र-पुत्रवत्सं कथमन्वेष्यस्य तपोविरस्यतः ।  
अवाप्यते वा कथमन्यथा इत्यं तवात्रियं प्रेम तत्र तादृशः ॥”

“पार्वती ने तपस्या और समाधि द्वारा अपने रूप का सफल बनाने को इच्छा की। क्योंकि इतना उत्कृष्ट पति और उम पति का प्रेम पाना तपस्या के अतिरिक्त अन्य किसी साधन द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता।”

पार्वती ने धारवाण और शान में शिव के लिये भाषण तपस्या की। एक दिन ब्रह्मचारा के लक्ष्य वेशा में शिव, उमा को परीक्षा करने भाये और तपस्या का कारण पूछा। पार्वती को सुझो ने उत्तर दियाः—  
“इयं भेदेन्द्र प्रसूनोन्निश्रयः चतुर्विंशोशानवस्य मानिनी ।  
अरूप हायं मदनस्य निप्रताप पिनाक पाणि पतिप्राप्त सिद्धति ॥”

“यह पार्वती इन्द्र-वरण कुबेर आदि की तरफ दृष्टि न दकर उम शिव से विवाह करना चाहता है जो अरूप हाय है। जिसका प्रेम, कर का प्यासा नहीं है।”  
सबत्र हा कालिदास ने विवाह को बहुत पवित्र ग्रन्थन, और प्रेम को बहुत ऊँची वस्तु कहा है। कालिदास वणाश्रम प्रेम के बड़े पुरुषानी थे और उनके हम सम्बन्ध में विचार ‘रजुवंश’ आदि महाकाव्यों में स्थान २ पर मिलते हैं। कालिदास चरित्र के बहुत पक्के ध्याक थे तथा उनके काव्यों को देखने से पुरा तद्विदित होता है। मालूम साहित्यस्य उनह निवन चरित्र का कौन कल्पना कर लेते हैं।

**गुरुकुल समाचार**

ब्र० वेद भूषण ४ अंशणी शीत पित्त, ब्र० देवदत्त ३ अंशणी मलेरिया उबर, ब्र० हरिप्रकाश ३ अंशणी मलेरिया उबर, ब्र० इन्द्रसेन ३ अंशणी मलेरिया उबर, ब्र० मदनमोहन २ अंशणी मलेरिया उबर, ब्र० विद्याभूषण ३ अंशणी मलेरिया उबर, ब्र० सूर्यमित्र ३ अंशणी मलेरिया उबर, ब्र० सन्त कुमार १ अंशणी Mumps, ब्र० रणजीत ४ अंशणी कशरूल ।  
उपरोक्त ब्र० गत समाह रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं। इस सप्ताह अधिकतम तापमान १०६ फा० रहा। अब एक दो दिन में मौसम अच्छा है। बारल है और थोड़ी धवाँ भी हुई है।

गुरुकुल इन्द्रप्रथ की ६, ७, ८ अंशणी के ७० ब्र० प्रीतिप्रकाशों ने देहली में अयुनसर, पठानकोट तथा कांगड़ा होन हुए धर्मशाला १६ मई को सङ्गुशर पहुच गये थे। पठानकोट तथा कांगड़े म हाईस्कूल में हाका का मैथं हुआ दोनो जगह गुरुकुल का पार्टी न विगत पा। धर्मशाला म लगभग २००० रुके का ऊँचार् पर फर्निट गेज में ऊपर गुरुकुल को फोटी है जहा ३० ठहर हुए ह। प्रायः सप्त ब्र० वहा स्वस्थ है। ब्र० जयदेव १० म, ब्र० विद्या-रत्न ६ म, ब्र० सुलभ २ (यङ्ग) ६६, ब्र० धर्मेश्वर ८ म व का फाइन ८ म, अंशणी तथा ब० रामचन्द्र १० म को खास है। शिव सब कमचरी मा स्वस्थ हैं। वहा प्रलवारियों के लय दूध, सखी व फलका अच्छा तरह प्रथर होगया । मद्यो और फल पठानकोट व अयुनसर में मंगवाने है। अंश खाद्य सामग्री को नवल्लो वा गार में छापी है। वहाँ २-३ गार वर्षा हो चुकी है। किंसा २ दिन वहाँ भी गमी हो जाती है। ब्र० प्रतिदिन प्रातः भाग ३ जाते है । लौटने के लय ब्र० उदालमुर्खी अदि भी जायेंगे। धर्मशाला से ऊपर १३०० फीट की ऊँचार् पर उगौद में पा ३ मील पर वर्ष श्रुंभला है। वहाँ भी ब्र० युव आये है।

स्वतिबर्धक

ब्राह्मी धूटी

॥॥ सेर

सुगन्धित

इबन सामग्री

॥॥ सेर

गर्मियों में

एक बार जरूर आजमाइए

# गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी का प्रसिद्ध

**भीम  
सेनी  
सुरमा**

आंखों से पानी बहना, खुगली कूकुरे सुर्खी, जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त आंखों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ मारा ॥२॥ १ से० ३॥

**ब्राह्मी तैल**

प्रतिदिन ज्ञान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग तरोजा रहता है। दिमागी कमचोरी, मिरदर्द, बालों का गिरना, आंखों में जलन आदि रोगों में तुरन्त आराम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी**

( सहारनपुर )

प्रांच

लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहली—चांदनी चौक  
पटना—मछुआ टोली, बांकीपुर

**भीमसेनी दंतमंजन**

दांतों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है  
मूल्य ॥॥ शीशी, ३ शी० १॥

**सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए**

**सुपारी पाक**

बिजों के जरियान रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।  
मूल्य १॥॥ पाक



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य २)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का गुरु-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

पृष्ठ ५ ]

गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १ आषाढ़ १९६७, १४ जून १९४०

[ संख्या ६ ]

## कर्मों का आनन्द

[ लेखक—योगिराज भी शरणिम् ]

तेरे कर्मों में सदा ये तीन तत्व विद्यमान हैं—स्वामी, कार्यकर्ता और यन्त्र। इन्हें अपने अन्दर ठीक प्रकार से लक्षित कर लेना और ठीक प्रकार से अपने में या लेना ही कर्मों का तथा कर्मों के आनन्द का रहस्य है।

### (१) यन्त्र भाव

पहले तू परमेश्वर का यन्त्र होना और उन्ने स्वामी स्वीकार करना सीख। यन्त्र वह वाद्य बस्तु है जिसे तू 'अपना आप' समझता है। यह है एक मनोमय ढांचा, एक प्राणमय सञ्जालक-शक्ति, एक स्थूल आकार का यन्त्र, एक बस्तु जो नानाविध कमानियों, चक्रदण्डों, शिफ्टों तथा अन्य कल पुर्जों से भरपूर है। क्या इस वाद्य स्वरूप को तू कार्यकर्ता या स्वामी समझता है? यह कदापि कार्यकर्ता या स्वामी नहीं हो सकता। तू तो पहले इस अपने आप को यन्त्र स्वीकार कर—नमूता के साथ, फिर भी अभिमान के साथ, भक्तिरत भाव से, श्रद्धागत भाव से और आनन्द पूष होकर अपने को उसका एक धन स्वीकार कर।

इस से बढ़ कर अभिमान और गौरव की बात और दूसरी क्या हो सकती है कि कोई अपने स्वामी का एक परिपुष्प यन्त्र हो।

यन्त्र बनने के बाद फिर तू सब से पहले सर्वथा, बिचल पुरी तरह से आधा पालन करना सीख। उसन कहा बार करना है यह तलवार तो कभी निरक्षय नहीं करती, तीर यह नहीं कहाता कि उसे किस लक्ष्य पर छोड़ा जाए, यन्त्र की कमानियां यह आग्रह नहीं करती कि उन के कार्य द्वारा अनुक बस्तु निर्मा की जाए। ये बातें तो प्रकृति देवी (जो कार्य कर्ता है) के अभिप्राय और उस

[ यह भी शरणिम् का वह डेक है जिसका कि भावायं अभिव्येष भी ने अपने 'नमोऽर्जुन' शीर्षक ब डे डेक में रलो भड में उक्तेक किया है—सम्पादक । ]

की कार्य प्रणाली के द्वारा निश्चित होती हैं। सचेतन यन्त्र रूप हुआ हुआ मनुष्य अपनी प्रकृति के शूद्र और सखे स्वयं को जितना जितना जान लेगा और उस का ही पालन करना सीख लेगा उसनी ही जल्दी उस से निर्मित होने वाला कार्य पूष और निर्दोष होकर तैयार होगा। प्राणमय यंत्र कल यदि अपनी पसन्दगी मे काम करना, भौतिक और मानसिक उपकरण यदि विद्रोह करेंगे तो इससे केवल काम बिगाड़गा ही।

तू अपने आपको परमेश्वर के निश्चलित में बहने दे और अन्धेरी में उड़ने वाले सुने पसे की तरह हो जा। अपने आपको उसके हाथों में रखे और खेड़ा के हाथ की लड़कती हुई तलवार और बलुष से निकल विशाने की तरह उड़ते हुए तीर की तरह होजा। तेरा मन यन्त्र की कमानी की तरह और तेरी प्राणशक्ति ऐंजिन के डट्टे की तरह हरकत करे। तेरा कार्य ऐसा सखे जेने कूटता पीसता हुआ और जो अभीष्ट है वह आकार बनाता हुआ फीलादी यन्त्र ऊपर से पड़ता है। और तेरी बाड़ी? माने परख के ऊपर बजने हथौड़े की घड़ाघड़, माने कारखाने में काम करने एं.जन का आर्तेक-वन, माने परमेश्वर की शक्ति को दिग्दगस्तो में घोषित करते हुए नरसिंह का निनाद। जिस किसी प्रकार का भी कार्य कर, पर एक यन्त्र के तौर पर कर और यह कार्य कर जो तेरे प्रकृति धम के अनुसार स्वाभाविक हो और तेरे लिये नियत हो।

समरांगण की लीला में तलवार आनन्द पानी है, तीर अपनी उड़ान और सनसनाहट में मज़ा लेता है, पृथ्वी इस आकाश में अपनी अंधाधुंध सफ़र लगाते जाते में आनन्द विभोर है, सूर्य नारायण अपने जगमगाने पैमथ मे तथा अपनी सनातन गति में सदा समाह सदा आनन्द का भोग कर रहा है। नो फिर, ओ परमेश्वर के आाम सचेतन यन्त्र! तू भी अपने नियत कर्म करते जाने में मज़ा लूट।

तलवार अपने बनाए जाने की मांग नहीं करती, बन जाने पर वह उपयोगकर्ता का अपने किसी तरह उपयुक्त किये जाने में रुकावट नहीं पैदा करती, और जब वह टूट

जाती है तो कोई बिलप नहीं करती। बनाए जाने में एक प्रकार का आनन्द है और उपयुक्त किये जाने में भी एक अन्य प्रकार का आनन्द है तथा यहाँ में बन्द कर रख दिये जाने में और अन्त में तोड़ कर फेंक दिये जाने में भी एक आनन्द है। उस सबमें सब आनन्द को नूँई निकाल।

क्योंकि नूँई यंत्र को कार्यकर्ता और स्वामी समझने की भूल की है और क्योंकि नूँई अपनी इच्छा के अज्ञान के कारण अपना निजी अस्वस्था की, अपने निजी लाभ की और अपनी निजी उपयोगिता की पसन्दी करना चाहता है, इसी लिये तुम दुःख और यातनाएँ भेसलनी होती हैं, तुम बार बार लाल बहकती हुई अट्टों के मरक में तपना पड़ना है और बार बार ही नया जन्म लेना, नया आकार और स्वभाव धारण करना पड़ता है और यह तब तक चलता रहेगा जब तक कि नूँई अपना मनुष्योचित पाठ पूरा न कर लेगा।

और ये सब अप्रकृतताएँ हैं, क्योंकि ये तेरी अद्वैती अटक प्रकृति में विद्यमान हैं। जब नूँई यंत्र हो जायगा तो देवता कि प्रकृतिदेवी कार्यकर्ता है, कार्य करने वाली है। और नूँई जानता है कि वह क्या कार्य कर रही है? यह अपने इस अटक कर्मके मन, प्राण और स्थूल द्रव्य (अन्न) में से एक पूर्णतया सहेतन सत्ता को विकसित कर रही है।

## (२) कार्यकर्तृ-भाव

इसके बाद अगर दूसरा कदम उठा, अपने आपको कार्यकर्ता रूप से जान। तेरी प्रकृति कार्य करने वाला है यह समझ और तेरा निजी प्रकृति तथा विभ्र प्रकृति ये नूँई हैं, तेरा ही स्वरूप है यह समझ।

तेरा यह प्रकृति स्वरूप न तो विशेषतया तेरा स्वरूप है और न तेरा निजी प्रकृति से पारमित है। तेरी प्रकृति न ही यह सूर्य और सब सौर मण्डल, यह पृथ्वी और उसके सब प्राण, नूँई तेरा और जो कुछ भी नूँई के अस्तित्व से इस सब को रचा है। यह तेरी मित्र है और यही तेरा शत्रु है, तेरी माता है और तेरा भक्षण करने वाला है तुम से प्रेम करने वाली और तुम पीड़ा पहुँचाने वाली है, तेरी आत्मा की बहन है और बिलकुल अद्वैत पर-जन है, तेरा आनन्द है और यही तेरा शोक है, तेरा पाप है और यही तेरा पुण्य है, यह तेरा बल है और यह तेरी निर्बलता है, यह तेरा ज्ञान है और यही तेरा अज्ञान भी है। और फिर वह इन में से कुछ भी नहीं है किन्तु कुछ ऐसी चीज है जिसे सर्वान करने का प्रयत्न मात्र या अपूर्वी ज्ञाया मात्र उपयुक्त बनते हैं। क्योंकि वह इन सब से परे अपने दिव्य स्वरूप में मूलभूत आत्मज्ञान रूप, अनन्त शक्ति रूप और अक्षय्य गुण रूप है।

परन्तु तुम में प्रकृति की एक विशेष क्रिया, तेरी स्वकीय प्रकृति, तेरी एक वैयक्तिक शक्ति काम कर रही है। नूँई उस का अनुसरण कर और जैसे एक नदी बहनी जाती हुई समुद्र को जा पहुँचती है वैसे नूँई इसका अनुसरण करना हुआ इसके असीम आदि अंत और मूल ज्ञान की पहुँच जा।

इसलिये नूँई अपने शरीर को स्थूल द्रव्य-अन्न तत्व-की एक गाँठ समझ, अपने मन को विष्य व्यापी मन में उठा एक बहूला तथा अपने जीवन को शाश्वत प्राण सागर में पड़ो एक बंदर समझ। अपनी शक्ति को नूँई प्रत्येक अन्य प्राणी की शक्ति समझ, अपने बा। को उस महा प्रकाश में आई हुई एक चमक समझ जो कि किसी मनुष्य का अन्त नहीं है, अपने कर्मों को अपने लिये किये गए समझ। इस तरह नूँई अपने को पृथक् व्यक्ति मर्मज्ञान की शक्ति में डुबकारा पा जा।

जब यह हो जायगा तो नूँई अपनी व्यक्तित्व सत्ता के साथ में, अपने वास्तविक व्यक्ति-स्वरूप में अपना मुक्त आनन्द प्राप्त करेगा; तब तुम अपनी शक्ति में, अपने यश में, अपने सौन्दर्य में और अपने ज्ञान में आनन्द मिलेगा और इन सब के निचे में भी तुम आनन्द मिलेगा। क्योंकि कि यह सब कुछ उस पुरुष का नाटकीय घेष धारण ही ता है; उस आत्म-शिल्पी की आत्ममूर्ति ही तो है।

तुम अपने आप को परिमित क्यों रचना चाहिये? नूँई धारण करत दाली तलवार में भी और आलङ्कन करत वाष्पे टाय में भी, अपने आप को अनुभव कर, सूर्य की जलव्यवमान दीप्ति में और पृथ्वी क सतत नृत्य में, गरुड़ की क्षमधी उड़ान में और कोयल के कोमल कूजित में, और उस सब में जो कुछ ही चुका है, उस सब में जो भी कुछ विद्यमान है और उन सब में जो कुछ आगे होना चाह रहा है नूँई अपने आप को अनुभव कर। क्योंकि नूँई अनन्त है और तेरे लिये यह सभी आनन्द सम्भव है।

कार्यकर्तृ-प्रकृति देवी जहा अपने कर्मों का आनन्द पाती है वहाँ यह अपने प्रियतम जिस के लिये यह काम करता है, का भी आनन्द पाता है। वह अपने आप को उसका नैत। और उस का शक्ति कर के जानता है, उस का ज्ञान और उसका ज्ञाननिरीय, उसका एकता और उस का आत्म विन्द, उस का अनन्तता और उसकी सत्ता का सान्न रूप कर के जानता है। नूँई अपने आपको यह सब कुछ कर के जान और नूँई अपने प्रियतम का आनन्द पा।

ऐसे लोग हैं जो अपने का एक कारखाना या एक यंत्र या एक तैयार की हुई वस्तु कर के जानते हैं। पर वे कार्यकर्ता को ही स्वामी समझ लेते हैं, यह भी भारी भूल है। जो लोग इस भूल में पड़ते हैं उनका प्रकृति की ऊँची, पावत्र और पूर्ण कार्य प्रणालियों तक पहुँचना असम्भव सा होता है।

यंत्र एक पुरुषवधि अज्ञान में होती हुई संश्लिप्त वस्तु है, कार्यकर्ता एक पुरुष जैसा प्रकृति में कुछ व्यापक वस्तु है। पर इन दोनों में से कोई भी स्वामी नहीं है क्योंकि कि इन दोनों में से कोई भी वास्तविक पुरुष नहीं है।

## (३) स्वामी-भाव

अन्त में नूँई स्वामी को अपना आप कर के जान। किन्तु अपने उस विष्य आत्मा को नूँई कोई आकार प्रदान मत कर, इसे किन्हीं गुणों द्वारा लक्षित करने का यत्न मत कर। अपनी सत्ता में उसके साथ एक हो जा, अपनी केतना में उसके साथ मध्यक युक्त हो अपनी शक्ति में

उसका आत्मा पालक रहे, अपने आनन्द में उसका विषयी-मूत बन और उस से आदिष्ट हो, अपने प्राण, शरीर और मन में उसे साध्य कर। तब तेरे अन्दर की उद्बोधित हुई एक चक्षु के सामने वह वास्तविक और एक मात्र पुरुष प्रकट हो जायगा जो तेरा अपना आप है तथा इस का निषेध रूप है, जो और सब है तथा और सब से आतिरिक्त है, तेरे कर्मा का प्रेरयिता और मोक्षक है यन्त्र का और कार्यकर्ता का स्वामी है, इस विश्व नूतन धूम धाम के साथ रगड़ियाँ करने वाला विलासी तथा अपने मात्मे बुधे पैरो से सब जगत् को दौड़ डालने वाला कवि है। पर साथ ही तेरे आत्मा की शान्त और भीतरी कोठरी में चुप, मोन होकर बनेला तेरे साथ बैठने वाला भावही है।

स्वामी का आनन्द प्राप्त हो गया तो फिर तेरे लिये कोई और वस्तु विषय करने की नहीं रही क्योंकि यह तुम्हें अपने आपको ही दे देगा तथा सब वस्तुएं देगा और सब भाग्य तो तुम्हारी प्राप्त करने हैं, रजने हैं, करने हैं भोगने हैं उस सब के तेरे निजी उचित हिस्से को देगा, और वह तुम्हें वह वस्तु भी देगा जिसके कि हिस्से नहीं किये जा सकने।

तू अपने लक्ष्य में अपने आप का तथा अन्य सब को समा लेगा और तू वह हो जायगा जो न तो तू है और न अन्य सब। कर्मों का यह है पुरुषार्थ-प्रतिन और पराकाष्ठा।

## आदर्श ब्रह्मचारी

[ ले०-सुमन-विद्याधर ]

कराबन ६० साल पहिले का बाल है। उन दिनों अभी सम्पूर्ण भारतवर्ष में रेलवे का जाल न बिछ पाया था। जो स्थान तब रेलगाड़ी के गन्दे घूएँ और शोरगुल से बचे हुए थे वहाँ डाक, यात्रा आदि का कार्य पुराने ढर्रे पर चलता था यानी दस २ माल क अन्तर पर एक एक धर्मशाला या सराय होती थी जहाँ सरकार की ओर से कुछ आदिमियों के रहने का प्रबन्ध होता था। दो घोड़ों बालों गाड़ियों का प्रचलन उन दिनों काफ़ी था। डाक गाड़ियों के घोड़े हरेक दस माल पर बदलते थे और वहाँ से नये घोड़े जात दिये जाते थे।

हम लोग जबानी के उम्मीदवार थे। माता-पिता के संस्कारों के कारण हम भा वैश्यव ही थे। प्रायः समाज हम लोगों की ही बचस्वा में था, इस कारण हम जैसे नटसट, राराता तथा हुड़बंग मचाने वालों के लिये यह एक मजाक का साधन सा बन रहा था, किन्तु इसका अन्त बड़ा दृष्टा-कृष्टा मोटा ताजा नवयुवक याने हम जैसे पतले सफ़ुके कई बालकों का आप होने के लायक था। वह बाल ब्रह्मचारी खीराधर के एक निर्वन ब्राह्मण कुल की संतान था। अस्य।

मुझे अच्छी तरह स्मरण है जब कि पहिली बार स्वामी जी राबलपिंजी आये थे। एक स्थान पर चौकड़ी लगाये—दोनों हाथों पर डंडा नचाते हुए, हंसते २ वैदिक धर्म की महत्ता पर उपदेश दे रहे थे। उस उद्यास्थान में उन्होंने क्या २ कहा—वह तो मुझे आज स्मरण नहीं किन्तु हाँ एक बात अवश्य याद आती है वह यह कि इसी प्रकार

में उन्होंने कहा था कि नन ३ हज़ार स कुछ अधिक पुस्तक वैदिक धर्म विषयक अच्छी तरह पढ़ी हैं जिन्से मेरा इस धर्म पर इतना दृढ़ आबिचल और अगाध विश्वास जम गया है। व्याख्यान के समय हम जैसे बालकों को वे प्रायः आगे २ बिठा लिया करते थे। उनका वह रोवदप्य बाला चेहरा याद करके आज इतनी मुद्राबन्धा में पहुँच कर भी उस महापुरुष का जन्मभूमि को देखने के लिये दिल लालायित है—आलू तरसता ह किन्तु क्या करूँ आँसों में वह ज्योति नहीं—राराँ में वह शाक नदी चेहरे पर वह आभा नहीं और पास में वह धन नहीं।

व्याख्यान के बाद आजकल की तरह प्रश्न करने का रिवाज उन दिनों आम बात था। कोई प्रभाव शाली बका-व्याख्यान के बाद शंका करने का अबसर देता है तो अधिकतर यहा देखने में आता है कि शंका हाते हुए भा प्रश्न करने से भय प्रतात हाता है और आसकर भरी सभा में। चिरकाल के अनन्तर एक नवयुवक बरते २ खड़ा हुआ और खड़े होकर भा उस बड़े संकोच और किम्बकते हुए कहा कि शंका निवारण करना भा चाहता हूँ और...

...। स्वामी जान बड़े हंसते २ कहा—अध्या संकोच क्यों करते हो। प्रश्न ता हांते इसलिये हैं कि उनको हल किया जाय। शंका ता पैदा इसलिये होता है कि उनका समाधान दुर्दा जाय। और जा-बड़े संकोच-विचित्र के बाद उसने कहा कि आप यह बतलाइये कि क्या आपको काम विचार आते ही नहीं? क्या आपके शरीर से कमा बाँध का एक कतरा भा नहीं निकला? पहिले प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—मुझे साधन विचारने को इतना आससर ही नहीं कि विचार आदि को रिक स्थान मिले और मैं उनके विषय में कुछ सोचूँ। वो कहा करते थे कि वेद भाध्य तथा अन्ध प्रन्धों से ही मुझे इतना कुसंत नहीं मिलता कि मैं अन्य किसी विषय में कुछ सोच सकूँ। भारत का अच-स्था इतना बवतर है कि मुझे भय है कि कहीं प्रायः जाति अनराकन तथा आस्ट्रलियना का आवि सम्मूल नष्ट न हो जाय। इत्यादि। त्रिवाय प्रश्न का उत्तर देन स पहलें दो एक मिनट तक नत्रां का अंगुलियों स दबाकर अन्त-ध्यान द्वारा सिद्धाबलोकन कर क बोले कि जहा तक मुझे स्मरण आता है—मर बाय का एक कतरा भी कमी बाहर नहीं निकला। तमा ता उन्होंने बौद्धिक-शारीरिक और आत्मिक ताना प्रकार की शक्तियों में इतना पुण्य और कमल हासल कर रखा था। जाग उन्हें महर्षि कहते हैं—वस्तुतः वह एक बड़ा भारी श्रेष्ठ था। योगी था और धर्म सुधारक था। आत्मिक शक्ति या ब्रह्मचय के विषय में व्याख्यान के बाद सभा विसजन के अनन्तर एक "सरदार" न कहा स्वामी जा आप ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचय करते रहते हैं मुझे यह तो बतलाइये क्या संसार में कोई सबा ब्रह्मचारी भी है? स्वामी जो मौन प्रत धारण किये हुए मुस्कराते रहे। काई जबाब न दिया। चुपचाप वहा से उठकर अलग दो एक स्थान पर टटलते रहे। थोड़ी देर बाद वह सरदार अपनी बगधा में बैठ कर जाने लगा। उससे पहलें उसने स्वामी जा के चरण छू कर प्रणाम किया

[ रोष पृ० ६६ पर ]

# गुरुकुल

१ आषाढ शुक्रवार १९६७

## मनोरंजन

[गतांश से आगे]

### कर्मी का आनन्द

अब रही प्रमत्तता या आनन्द के लिये ऐसे मनोरंजनों को करने की बात। तो क्या तुम्हें भी यह बताने की जरूरत है कि आनन्द तो अपने प्रत्येक कर्म में, प्रत्येक कर्तव्य कर्म में आता आहिये। कर्तव्य पालन में जिसे आनन्द आता है उसे हमेशा ही कर्तव्य कर्म करते हुए आनन्द ही आनन्द रहेगा। उसे आनन्द के लिये कोई जुदा कर्म करने की, मनोरंजन करने की जरूरत नहीं होगी। ऐसे तथा कथित मनोरंजनों से तो उसे पीड़ा होगी। मेरा कीमती समय नष्ट हो रहा है, यह मेरा पनन है, यह गीच्छावृत्त का भंग है, यह मुझे मेरे हृदयव्य अन्तरात्मा से दूर हटा कर न जाने कहाँ गढ़े में गिरा देगा इत्यादि प्रकार के किसी भाव के कारण वह तो मनोरंजन के विचार से ही घबड़ा जायगा, बढ़ा दुःखी होगा। पर यह अवस्था तब होती है जब कर्तव्य की दृष्टि से सब कर्म एक बराबर हो जायँ, एक बराबर आनन्ददायी हो जायँ। दुःखदायी तो केवल अकर्तव्य रह जायँ जिन्हें कभी किया न जाय। यदि तुम्हें भोजन खाने में तो आनन्द आता है, पर भ्रम करने में नहीं, गर्मी म खान करने में आनन्द आता है जायँ में नहीं, अमुक विषय के पढ़ने में आनन्द आता है पर अमुक (कल्पितया पढ़ने लायक होने पर भी) में नहीं तो तुम उस अवस्था से दूर हो, तुम में कर्तव्यभावना पूरी तरह विकसित नहीं हुई है। अर्थात्, आनन्द तो किसी न किसी बात में पामर तक को आता है, प्रत्येक आत्मा को आता है। किन्तु किस को आनन्द किम बात में मिलता है यही भेद है जोकि कीट-पतंग से गुरु करके ब्रह्मानन्द भांगने वाले मुक्त जीव तक की ऊँचाई तक पहुँचने वाली प्राणिय-श्रृंखला को जुदा जुदा अंशों में विभक्त करता है। कौन किस लोक का है, कौन कहाँ तक पहुँचा है, कौन किम तल पर रहता है इसको बता देने वाली बात, इस की पक्की पहचान यह है कि यह देख लो कि उसे किस बात में आनन्द आता है, वह किस में रस लेता है, उसक आनन्द का विषय क्या बस्तु है। दुःख सुख में थोड़ा बहुत सभी पड़े हैं। वैशाक नीचे की श्रेणियों में दुःख ज्यादा है और उपर सुख ज्यादा है, पर निरन्तर सुख और अपार सुख तो उसे ही मित्रता है जोकि प्रत्येक कर्म में आनन्द पाता है और जो अपने कर्तव्य कर्म को अनायास ही प्रतिष्ठा जानता है।

यहाँ श्री आरधन्व के एक लेख का स्मरण आता है जिसका शीर्षक है "Delight of the Works" अर्थात्

कर्मों का आनन्द। वह इतना सुन्दर लेख है कि मेरे एक मित्र ने वह संपूर्ण कण्ठ कर रखा था। उस लेख की मैं क्या बर्चा करूँ! वह तो उनकी बाणी में ही पढ़ने लायक है। कभी मौका लगा तो वह लेख सुनाइंगा या उसका अनुवाद कर दूँगा। उस में यह बताया गया है कि कर्म का आनन्द पा सकने के लिये मनुष्य को यह जान लेना चाहिये कि "मैं क्या हूँ"। तान बस्तुओं के समझ लेने की जरूरत है। पहले तो यह कि मैं एक यन्त्र हूँ जिसके शरीर, मन, प्राण आदि मुख्य पुण्ड्र हैं। प्रकृति माता इस यन्त्र को भरतने वाली है; कार्यकर्त्री है। स्वयं मगवान् इस यन्त्र के स्वामी हैं जो प्रकृति के द्वारा इस यंत्र से जो चाहे काम ले सकते हैं। यंत्र, कर्ता और स्वामी इन तीनों का मनुष्य जब स्पष्ट अनुभव करता है तो उस यंत्र से होने वाले प्रत्येक कर्म में वह निरन्तर अद्भुत अपार आनन्द पाता है। जैसे तलवार अपने चलाने वाले से या स्वामा से यह नहीं कहता कि तुम मुझे वहाँ चलाओ, यहाँ न चलाओ, चलाने वाला जब चाहे उसे कहीं चलाये या बन्द करके ग्यान में रखदे या तोड़ कर फेंक दे। तलवार अपनी कुछ इच्छा नहीं रखती। हर स्थिति में वश है। यहाँ चलाये जाने में, वहाँ चलाये जाने में, रख दिये जाने में या तोड़ दिये जाने में भी एक समान आनन्द पाती है। इसी तरह भगवती माता के हाथों में स्वामी की आज्ञा से यंत्रवृत्त हम से जो भी, जैसा भी, जब कभी काम लिया जाय उस सब कर्म में हमें सदा आनन्द ही आवे। यह है कर्मों का आनन्द। हम अनुभव करें कि माता के हाथों में प्रभु के आदेशानुसार, निरन्तर नाचते रहने में ही महाज आनन्द है।

### जगत् व्यापी आनन्द

और तुम देखो कि यह सूर्य, यह चाँद, ध्रुवी, वायु आदि कैसे अनन्त काल से अपने आयोजित चक्र में घूम रहे हैं। नियम से बने हुए निरन्तर चल रहे हैं, कभी उदास नहीं होते, कभी दम नहीं लेते, कभी थक बैठ नहीं जाते। उस प्रकृति माता के हाथों में ये सबकुच यन्त्र हैं। इन देवों का हमें अपने जीवन में अनुकरण करना चाहिये। ऐसा देवों में जगह जगह कहा है। हम इन शाश्वत देवों का आदर्श सामने रखें तो हम भी सुशास्य या एकरस कर्तव्यों को करते हुए भा इतना जल्दा उकता न जायँ, इतना जल्दा बेचैन न हो जायँ। हम क्या कुछ घण्टे ही काम करने से थक जाते हैं, उकता जाते हैं और देव अनादिकाल से काम करते भा नहीं थकते? इसका एक ही कारण है। इन्हें अपना यह कर्तव्य करते हुए आनन्द आता है। स्वामी के आदेश-पात्रन में लगे रहने हुए परमानन्द मिलता है। इन्हें आनन्द के लिये किसी अर्थ मनोरंजन की जरूरत नहीं। सचमुच इन्हें आनन्द आता है और बड़ा भारी आनन्द। उपनिषदों में कहा है—सूर्य के उदय होते हुए उसको आनन्द भरी ध्वनियों निकलती हैं, प्रकृति के ये देव एक दूसरे के लिये भी

+ यह लेख हमारा अद्भुत में प्रथम प्रष्ट पर छपा है—सं०।

आनन्द रूप (मयुर) हैं और यह सब जगत् आनन्द से उत्पन्न होता है, आनन्द में स्थित है और आनन्द में लीन होता है। अतः इस जगत् स्थापक आनन्द की भाँकी लेने का यत्न करो !

### निरन्तर मनोरंजन

इन देवताओं को जाने दो, श्री अर्चान्वित्यम में साधक लोग इसी वर्ष तक बिलकुल एक ही प्रकार का भोजन पाते रहते हैं, एक ही प्रकार का काम लगातार करते चले जाते हैं। इसमें उन्हें आनन्द अनुभव होता है। देश के लिये पागल हुए लोगों को देखा, उनका भी ऐसा ही हाल है। उन्हें स्वराज्य प्राप्ति तक चैन लेने की सूचना तक नहीं। एक दफा किंसा आलोचक ने महर्षिमा गांधी का लिखा था कि 'आप जा स्वराज्य के लिये लोगों को इतना कष्ट दे रहे हैं, लोग मर रहे हैं, जेल जा रहे हैं, जेल का पार्शाविक यन्त्रणाएँ भागने को बाध्य हो रहे हैं इस सबका पाप आप को लगेगा' तो गाँधी जी ने उत्तर दिया था 'मैं तो किंसा को जेल जाने को या मरने का नहीं कहता; असल में लोगों का इतने मज्जा आता है इतना लिये वे यह सब कुछ करते हैं'। सचमुच 'यह भारतमाता के लिये है' 'ऐसी जगत् माना का इच्छा है' 'यह गुरु का बचन है' 'स्वामी का आदेश है' 'मनु का सकलपद' ऐसी कोई भी भावना हमें उस सतह पर उठा देती है जहाँ कोई दुःख दुःख नहीं रहता, निरन्तर मनोरंजन ही रहता है। प्राचीन काल के एकलव्य की या अन्य अज्ञत शिष्यों का कथाओं का स्मरण करो। पुराण आदि में जो बयान आते हैं कि अमुक ऋषि ने लैंककों या सहस्रो वर्ष तप किया उन्हें गणपति मत्त समझो। एक ही काम में आर इतने लम्बे समय तक लगे रहना बेशक तुम्हें असम्भव लगे, पर मुझे तो जब आज भा पैसा भावना वाले पुरुष दिखाई देते हैं जा कहते हैं 'हमारे जावने का तो लक्ष्य ही एक है—'भगवत् प्रसाद को पा लेने के लिये साधना करते जाना। बार बार जन्म लेकर भा हमें यही करना है और दूसरा कुछ नहीं करना' तो वे कथानक आलङ्कारिक नहीं किन्तु शब्दशः सत्य लगते हैं और यह कुछ आश्चर्य का बात नहीं लगती कि एक ही निद्रा, भाव या लक्ष्य का लेक मरुपुरुष सहस्रो वर्ष तक काम करते जायें। इसलिये तुम भी अपने ज्ञान से या इष्टय से किसी ऐसा वस्तु को यहाँ गुरुकुल में रहते हो पा लेने का यत्न करो जिससे वर्षों तक बलिहारी जीवनभर एक ही प्रकार का कार्य करते जाते हुए भी तुम्हारे लिये निरन्तर और नित्य मनोरंजन रहे।

यह मत क्याल करो ये जो बातें मैंने कही हैं ये बहुत ऊची हैं। ये तुम्हारे लिये ऊँची हैं तो ये और किसे कही जायें। और यह ऊँचाई तभी तक है जब तक वहाँ चढ़ नहीं लिया जाता, चढ़ा जा नहीं सकता या चढ़ने की इच्छा ही नहीं होती।

परमेश्वर तुम्हें गुरुकुल के ऊँचे आदर्श के योग्य बनावे।

## मधु-मक्खी-पालन

[ लेखक—श्रीगुप्त रामेश वेदी आर्यवेदाचार्य ]

( गवाँक से आने )

एहले मनु नित्योपयोगी वस्तुओं में था परन्तु अनेक कारणाँ ने इस समय भारत में इसका उतना प्रभाव नहीं है। आयुर्वेद में इसका प्रयोग बहुत विस्तृत रूप में मिलता है। अथर्ववेद आदि अथर्ववेद, मकरध्वज आदि रस तथा अनेकानेक चूर्ण, वटी, कषाय आदि सिद्ध औषधियों के साथ इसका उपयोग होता है। इस के बिना भारतीय चिकित्सा शास्त्र पंगु है। हिन्दु चिकित्सा के सर्वोत्तम प्राचीन ग्रन्थ सुश्रुत के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि उस काल के लोगों ने इस विषय का बहुत विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया था। मनु उत्पन्न करने वाला मक्खियों के भेद और विभिन्न प्रकार के शहदों पर विद्वान् लेखक ने बहुत उच्चता से विचार किया है। यह ग्रन्थ लगभग तीन हजार साल पहिले का लिखा हुआ है जिस से मालूम होता है कि संसार की किसी भा जाति की अनेका सभ से पूर्व भारतीयों ने इस विषय की ओर ध्यान दिया था।

हमारी प्रांग प्रती करने वाला बाजरी का शहद भया-वह तरीकों से इकट्ठा किया जाता है। भारत के बड़े हिस्से में शहद बहुतपाय में जङ्गलों उत्पन्न होता है। भारतीय जङ्गल विभाग भोजन और औषधि के इस महत्वपूर्ण पदार्थ की ओर समुचित ध्यान नहीं देता। जंगल से शहद निकालने के ठेकेदार वहाँ के बाशिन्दों को सारंग मक्खी ('रीक बी') के छतों से शहद इकट्ठा करने का आदेश देता है। ये जंगली साहसिक आरम्भ अपने को बड़ी जोशिम में डाल कर ऊँची छतों चढ़ाने और वृत्तों पर आग और 'धुप' से मक्खियों को नष्ट करने और भगाने के लिए लड़ जाते हैं और छसे को काट लेते हैं। तब एक प्राण्य तरीके से शहद निचोड़ लिया जाता है और ठेकेदार को बेचने के लिए सौंप दिया जाता है।

जरा सोचिए, निचोड़ने वाले के मूल हाथ किस बेरहमी से मक्खियों के अण्डों की हत्या कर रहे हैं। फिर वह मक्खियों के अण्डों के रस से युक्त मनु को तमागु या किसी दूसरी अश्रिय नाक सिंकाड़ने वाले गन्ध छौड़ने हुए कपड़े में छान रहा है। कोई आश्चर्य नहीं कि इसके बीच में उसकी लाव या पसंता भी धोड़ा हिस्सा ले ले। तो क्या आप शहदका भोर देखाता तक पसंद करेंगे, खाना तो बुर किनार। और आगें चलिए। इस शहद म पायः साएड का चाखनी भा मिला दी जाती है। सब से अधिक दुर्भाग्य तो यह है कि इस में से सब मलिनताओं को निकाल देने के इरादे से यह उबाला डाला जाता है। संभव कदा जंगली को क्या मालूम कि लीची गरमी इसके उपयोगी शुण्णों से खाँ देती है।

वर्तमान समय में भारत के पर्वतीय प्रायों में किसी १ स्थान पर मक्खी पालने का उद्योग देखने में आता है। बड़े बड़े मटकों, दीवारों के छिद्रों और लकड़ी के बोलकों

म मक्की पाली जाती है। इकट्ठा हो जाने पर साल में दो या तीन बार छुटे काट कर शहद निचोड़ लिया जाता है और छुटे फेंक दिये जाते हैं। इस विधि में निम्न दोष हैं—

(१) छुटे के निचोड़ने में मक्खियों के अंडों बच्चों के पिच जाने से शहद शुद्ध नहीं प्राप्त हो सकता है।

(२) यह शहद जवरी ही बिगड़ जाता है। कभीर उठ कर युरान्ध आने लगती है और खाद बग़दा हो जाता है।

(३) अग्ने बच्चों मर जाने के मक्खियों के बंश का नाश हो जाता है और हिसा का पाप लगना है।

(४) परिमार्ध में शहद कम प्राप्त होता है। नये तरीकों में इस की अपेक्षा कई गुणा अधिक शहद प्राप्त होता है।

मक्खियों को पाल कर प्रायः तरीके से शहद प्राप्त करने वाले को हम मक्खी पालक की अपेक्षा मक्खी मारक कहना अधिक पसन्द करेंगे। मक्खी मारक मक्खियों के घरों को नष्ट करके जो शहद प्राप्त करता है उस में बहुत सा 'मलिनताप' होती है और यह तथा कथित शहद थोक में दो आने से डारि आने तक प्रति पौण्ड विक जाता है। शहद की मक्खियों के अनेक शत्रु होते हैं परन्तु उनका सब से बुरा दुश्मन मनुष्य है और यह भी मक्खी मारक की शकल में जो पृथ्वी पर सब से अधिक खतुर लूते बाला प्राणी है। उसका कार्य शहद की मक्खी को मारने से लोप करना होता है जहाँ उसने अन्न पाया है। आनुजिक वैज्ञानिक विधियों का पालना मक्खी मारकों को मक्खी पालक बनाता है। मक्खियों को मार कर शहद प्राप्त करना ठीक वैसा ही है जैसे खाने का अंडा देने वाला सुर्ग का मारना। मक्खियों को पालनेसे हप उन अंडार कहीं अधिक लाभ निकाल सकते हैं। आनुजिक भारतीय मक्खी पालक अपना शहद डेढ़ रुपया प्रति पौण्ड बेच लेता है। इससे स्पष्ट है कि मक्खियों को मारकर पुराने तरीकों से शहद प्राप्त करने वाले मक्खी मारक की अपेक्षा मक्खी पालक का लाभ एक हजार प्रति शतक अधिक है।

(असमाप्त)

### पृष्ठ ३ का शेष

और फिर जाने के लिये बच्चों में बैठ गया। बच्चों में चार काले रंग के बड़े सुन्दर घोड़े जुते हुए थे। सरदार ने चालुक लगाई—घोड़ों ने बढ़ने का यत्न किया—न बढ़ सके—फिर लगाई—न चले। अब की बार एक ज़ोर से लगाई घोड़ों ने दानों अगली दानों से अपनी पराजय के लिये गुमा याचना की। सरदार ने सोचा क्या बात है—कोई गदा नहीं—खाई—खन्नक नहीं। पीछे देखा तो स्वामी जो मुँहकरा रहे हैं। सरदार उतरा और फिर चरण स्वर्ग कर बोला—महाराज, ठीक बात है हिन्दुस्तान में एक सच्चा मन्त्रकारी है।

## वाग्धर्षिनी सभा का जन्मोत्सव

### वाद विवाद सम्मेलन

गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ा (हरद्वार) की प्रमुख सभा वाग्धर्षिनी ने ३० जून १९५० रविवार को एक अन्तर्विषय विद्यालय वाद विवाद सम्मेलन का आयोजन किया है। इसके प्रधान-पद को माननीय श्री प्रो. इन्द्र जी विद्या वाचस्पति अलंकृत करेंगे। वादविवाद का विषय—“डेमोक्रेसी और डिक्टेटोरशिप” होगा।

वादविवाद सम्मेलन के अतिरिक्त दूसरी बैठक उसी ही दिन साहित्यसम्मेलन के रूप में होगी। इसमें सभा पति पद के लिए कविचर श्री भगवती चरण वर्मा को निर्मंत्रित किया गया है।

### गुरुकुलीय अन्तर्विषय विद्यालय वाद-विवाद सम्मेलन के नियम—

- (१) इस अन्तर्विषयविद्यालय वादविवाद में प्रत्येक महा-विद्यालय २ प्रतिनिधियों को भेज सकेगा जिनमें एक पक्ष में तथा एक विपक्ष में होना चाहिए।
- (२) बक्ताओं की सूचना २० जून तक मंत्री वा. व. सभा के पास पहुँच जानी चाहिए।
- (३) प्रत्येक बक्ता को १५ से २० मिनट तथा अधिक से अधिक २० मिनट दिए जावेंगे।
- (४) भाषण की श्रेष्ठता का निर्णय भाषा, भाषारीत्व और प्रति पाठ विषय के आधार पर किया जावेगा।
- (५) विजयी संस्था को ब्रह्मचर्य चक्र विजयोपहार दिया जावेगा जिसे नियत समय तक सुरक्षित रूप में लौटाने की जिम्मेवारी उस संस्था को होगी।
- (६) प्रथम दो बक्तारों का पारितोषिक भा दिए जावेंगे।
- (७) सभा में निर्णायकों (जिनकी संख्या ३ होगा) का निर्णय प्रामाणिक माना जावेगा। अन्य विषयों में वाग्धर्षिनी की कार्यकारिणी का निर्णय अन्तिम माना जावेगा।

हमें आप सब साहित्यप्रेमी बक्ता महाजुभावों से इस के लिए क्रियात्मक सहयोग की पूर्ण आशा है।

निवेदक

गुरुकुल

मंत्री वाग्धर्षिनी सभा:

### आवश्यकता

गुरुकुल वैधानुष्ठान के लिये दो सुयोग्य ज्ञातक अध्यापकों की आवश्यकता है जो अंग्रेज़ी, गणित, आध्यात्म और भूगोल में से कम से कम दो विषयों का उच्च विद्यालय में अध्यापक ६ स, १० म. अंग्रेज़ी में अध्यापन कर सकें। वेतन ४०० या ४५० योग्यतासुराज होगा। साथ में वे बद्धता, संगीत, आलेख्य कलाई उद्योग, वागधानी, खेलों में निपुणता में से भी कम से कम किसी एक की योग्यता रखते ही वे प्रस्ताव समझे जावेंगे।

अभय

### गुरुकुल समाचार

ब्र० गिरधर १३ श्रेणी विसर्प, ब्र० शंकरदेव ४ अ० मन्स, ब्र० दमनेश २ अ० मन्स, ब्र० तिलक ५ अ० मखेरि-  
बाणधर, राजेश्वर २ अ० मनेरियाधर, रामेश्वर  
३ अ० श्लेषमन्धर, प्रेमस्वरूप ३ अ० श्लेषमन्धर, महदेव  
२ श्रेणी ब्रह्म, रामेश्वर २ अ० ब्रह्म, विशाखर २ अ० ब्रह्म,  
उपरोक्त ब्र० गत समाह रोगी हुए थे ! अथ सब स्वथ  
हैं। गत समाह गर्मी अधिक रही, अधिकतम तापमान  
१०० डिग्री रहा।

तैरी सान्मूह्य — बहूत दिनों की लम्बी प्रतीक्षा के  
बाद पंचपुरी तैरी सान्मूह्य ई श्येष्ठ शनिवार को  
बड़े उत्साह के साथ प्रारम्भ हुआ जिसमें लगभग महा-  
विद्यालय के २५ ब्रह्मचारियां तथा अत्रतमण्डज, शुगर-  
फैक्टरी ज्वालानपुर, जैनधर कुटीर आदि स्थानों के १५ अन्य  
तैरान्ना ने भा इस ढाई मील को तैरा में बड़े उत्साह पूर्वक  
भाग लिया। मायापुर के पुल से कूद कर तैराकों को  
गुरुकुल के घाट तक पहुंचना था। तैरा प्रारम्भ होने के  
समय अपार जन समूह की भारी उपस्थिति ने सान्मूह्य  
में भाग लेने वाले तैराकों के उत्साह को द्विगुणित कर  
दिया। निश्चित समय पर सान्मूह्य प्रारम्भ हुआ।  
गुरुकुल महाविद्यालय के ही दो विद्यार्थी ब्र० विद्यानन्द  
तथा चन्द्रगुप्त १३ श्रेणी प्रथम तथा द्वितीय नम्बर पर रहे  
जो क्रमशः २५, तथा २६ मिनट में निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचे।  
द्वितीय नम्बर पर रहने वाले व्यक्ति श्री सुनीलकुमार जी  
जो आजकल काफी असे से गुरुकुल में ही निवास कर रहे  
हैं और जिन्हें गुरुकुल के तैरने में प्रकीर्ण विद्यार्थियों से काफी  
प्रेरणा मिली है।

लम्बी तैरी के बाद सिंहतैरी, ऊंची कूद, डुबकी लगा  
कर तैरना, तथा डुबकी में भी सान्मूह्य हुआ। इसका  
परिणाम निम्न है—

सिंहतैरी—प्रथम—श्री वजनन्दन ११ श्रेणी।

द्वितीय—डॉ. पी. सिद्धू जी।

टूके से लम्बी कूद—ब्र० बलदेव १३ श्रेणी।

डुबकी तैरी—ब्र० शान्ति १२ श्रेणी।

डुबकी मारना—आ वैद्य वासुदेव जी आर्यवेदालंकार।

इस सबके बाद पारितोषिक वितरण का समय आया।  
गुरुकुल के सब मान्य उपाध्याय अध्यापक तथा ब्रह्मचारियों  
के बीच में तुमुल करनल ध्यान के साथ गुरुकुल सूया के  
आचार्य श्री प्रियवृत्त जी ने विज्ञेताओं का पारितोषिक  
प्रदान किया। श्री दीन दयालु जा शास्त्री ने अपनी ओर से  
ब्र० रघुनाथ १४ श्रेणी को सब खेलों में भाग लेने के कारण  
विशेष पारितोषिक देकर उम्माह को बढ़ाया।  
अन्य में श्री क्रीड़ा मन्मो ब्र० विमारत्न ने सबको धन्य-  
वाद देने हुये कार्य क्रम को समाप्त किया।

गत समाह के मान्य अतिथि श्री डा० रघुवीरशरण  
सिंह को अप्रत्यात चम्बू विशेषज्ञ के चार व्याख्यान 'विना  
चरमे के नेत्रों का पूर्ण स्वास्थ्य और उोगिन' विषय  
पर हुए।

इस समाह वर्षा हो जाने से ऋतु सुहावनी रही, गर्मी  
पहले से कम गयी गई है। नहर का पानी दिन प्रतिदिन

मलिन होता जा रहा है अतः नहर में नहाने वाले तैराकों  
की संख्या कम होती जा रही है।

राष्ट्र प्रतिनिधि समा—

गुरुकुलीय राष्ट्रप्रतिनिधि समा के निर्वाचन संश्री ओ  
ब्र० धर्मेन्द्र सूचिन करने हैं कि प्रधान मंत्री ब्र० रामदेव  
१४ होंगे और उपरोधी दल के नेता श्री सत्यव्रत १५  
होंगे। हिन्दू महासभा की ओर से चुनाव सम्बन्धी  
विप्रतिपत्तियों के लिए एक ३ सदस्यों की निष्पत्त समा  
बनाई गई था समा ने यद्यपि अपना निर्णय पूर्णरूप से  
नहीं दिया है फिर भी उसने भी इस बात की घोषणा कर  
दी है कि प्रधान मंत्री ब्र० रामदेव ही रहेंगे। राष्ट्रप्रतिनिधि  
सभा को बैठक १२, १३, १४ जुलाई को हांगा। इस सब  
कार्य वादी के लिए हम ब्र० धर्मेन्द्र को हार्दिक श्राद्ध देते हैं  
जिन्होंने बड़ी योग्यता और उत्तमता के साथ अपने कार्य  
का विना विघ्नवाधाओं के सफल किया, अभी समा को  
बैठक का कार्य भार भी आप के ही कंधों पर है आशा है  
उसे भी आप इस प्रकार योग्यता पूर्वक निभायेंगे।

मन्त्री, साहित्यपरिषद्  
पाश्चात्य व्यायाम शिक्षक श्री विभूति चरणबनर्जी,  
अपने एक बंगाली माथी को लेकर कैलाश यात्रा पर  
चल पड़े हैं। हम उनकी यात्रा का निर्विघ्न समाप्ति  
के लिए शुभ कामना करते हैं।

### गुरुकुल कमालिया

१—गुरुकुल के वापिकोत्सव पर ६ नये ब्र० प्रविष्ट किये गये  
थे जो ब्र० समय पर न पहुँच सके थे उनके प्रवेश के लिये  
पत्र व्यवहार किया जा रहा है।

२—आडीटर साहब ने १६६६ सम्बन्ध का हिसाब आडिट  
करके अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि हिसाब किताब बिल्कुल  
ठीक साफ व सुधरा पाया गया है।

३—इस वर्ष गुरुकुल कमालिया के ३ ब्रह्मचारियों ने ६वीं १०  
वीं श्रेणी की एक वर्ष में और एक ब्र० ने केवल ६ मास में तैरा  
कर के पंजाब युनिवर्सिटी की मैट्रीकुलेशन की परीक्षा दी थी  
एक ब्र० ६२४ नम्बर हासिल करके I डिवीजन में वा शेष ३  
ब्र० अच्छे नम्बर हासिल करके II डिवीजन में पाम हुये है।  
एक ब्र० गुरुकुल इन्टरप्रथम में भेजा गया था जिसने अच्छे  
नम्बर हासिल करके नवीं श्रेणी में प्रवेश कर लिया है।

४ ब्रह्मचारियों को गणका, लाठी, लेजम आदि खेलों  
लाजमी तौर पर करवाई जाती है और सब ब्र० हर प्रकार  
से मज्जी हैं।

सुखदयाल, मुख्यविद्यार्थी।

गुरुकुल कमालिया [ लायलपुर ]

स्मृतिवर्धक

बाझी डूटी

॥॥ सेर

सुगन्धित

हवन लामन्नी

॥॥ सेर

गर्मियों में

एक वार जरूर आजमाइए

# गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी का प्रसिद्ध

भीम  
सेनी  
सुरमा

बालों से पानी बहना, खुण्की कुकुरे सुर्खी, जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त बालों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ माशा ॥२५॥ १ ते० ३॥

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन ज्ञान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग तरोताजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, बालों में जलन आदि रोगों में तुरन्त आराम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

## गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहागनपुर )

शांघ

लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहली—बांदनी चौक  
पटना—मल्लुआ टोली, बांकीपुर

भीमसेनी इतमंजन

दांतों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है

मूल्य ॥॥ शीशी, ३ शी० १॥

सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

सुपारी पाक

बिर्षों के जरियान रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।

मूल्य १॥॥ पाब



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल काङ्गड़ो, गुरुवार ८ आश्वी १९६७, २१ जून १९४०

[ सन्ख्या १०

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

( निदान और चिकित्सा )

[ लेखक दिनेश त्रिवेदी, Sanitary Inspector सूरत;  
अनुवादक, श्री धर्मराज वेदालङ्कार ]

### गुरुकुल प्रणाली: एक त्रिकालाबाधित सत्य

आर्य संस्कृति पर प्रचलित अज्ञान पटुता कर भारतीय अन्तःकरण को गुलाम बनाने के लिये मैकान की शिक्षा पद्धति एक विचित्रा इन्जेक्श थी, इस इन्जेक्शन के असर को उतारने के लिये Antibody के रूप में अग्रर किसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली ने जन लिया तो वह एकमात्र गुरुकुल शिक्षा प्रणाली थी। किसी प्रजा की संस्कृति का रक्षा करने के लिये जिन बातों की आवश्यकता होता है वे सत्य ही हैं और आज भी हैं। इस प्रणाली को मूर्खरूप महर्षि श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने दिया और अब भी अन्तर्ग्राह्य शिक्षणशास्त्रियों को गुरुकुल में अग्रर कुछ न कुछ जानने योग्य बातें मिलनी ही रहनी हैं। मन अब स प्रथम पूर्व 'आर्यप्रकाश' ( गुरुकुल प्राप्त का एक आर्यसमाज पत्र ) के अग्रलेखों में अनेक बार अपना यह विचार प्रकट किया था कि आर्यसमाज के आर्यसंस्कृत के रक्षण के लिये तथा भावी आर्यराष्ट्र को स्थापना के लिये गुरुकुलों की अत्यन्त जरूरत है, परन्तु कुछ परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हो गई हैं कि अनेक लोग ऐसा अशुभार कर रहे हैं कि गुरुकुल का दीपक अब डमडमिमाने लगे हैं आर कालान्तर में इनका ज्योति सर्वथा लुप्त हो जायगी। सत्य त्रिकालाबाधित होता है, वैदिक धर्म के सिद्धांत शाश्वत हैं, इनमें कभी भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता यही वैदिक धर्म की विशेषता है। हज़ारों वर्ष के निरन्तर चिन्तन के बशात् निःसंशय तथा तपस्वी ऋषियों ने बासक को "द्विज" बनाने के लिए जिस शिक्षा प्रणाली की मौलिक कांज की है वह जितनी उपयोगी भूतकाल में थी उतनी ही उपयोगी आज भी है और आगे भी रहेगी। जिस शिक्षा प्रणाली की बेदी पर हज़ारों अद्वानु माता-

पिता अथ तक अपने बच्चों को अर्पित करने रहे हैं इस शिक्षा प्रणाली की निरन्तरता की अशुभता से हृदय विलुब्ध हो जाता है। जिन प्रणाली ने भारत के ब्राह्मण को 'ऋषि' बनाया, जिस प्रणाली ने सुदामा और कृष्ण के समान मित्र पैदा किए, जिन प्रणाली ने अद्वितीय धनुर्धर अर्जुन को उत्पन्न किया और जिस प्रणाली में दीक्षित होकर वेदों का ऋचाओं के ऋषि आदिमून हुए वह प्रणाली भारतवर्ष के लिए आज भी उतनी ही उपयोगी है, इतना ही नहीं परन्तु इस समय तो यह अकेली ही प्रणाली उपयोगी साबित हो सकता है।

तथापि प्रश्न होता है कि आज गुरुकुलों में पहले के समान जनसधारण की भ्रष्टा और रुचि क्यों नहीं रही? गुरुकुल प्रणाली के परिणाम रूप स्नातक और स्नातिकाओं के समाज के प्रति जो कर्तव्य धर्म उम्होंने पूरी तरह से नहीं निभाए और गुरुकुलों को संख्या विपरीत कारणों से बढ़ने के स्थान पर क्षातवार घटने जा रही है। इसका क्या कारण है? गुरुकुल की स्थापना जिस उद्देश्य के लिये थी वह उद्देश्य क्या युग धर्म के अनुकूल था? गुरुकुल को जो आवाज़ वर्यां ने निर्धारी तथा (वदशियों के दिल में बेचनी पैदा कर रही थी वह अब धामा क्यों पड़नी जा रही है। और सत्य आर्य समाज ही गुरुकुलों के प्रति लापरवाह ब्रह्मज्ञान तथा निरुत्साह क्यों दिखा रहा है? दीर्घ में जलने का इच्छा है, वर्यां भी मौजूद है, नैल के लिए पात्र भी विद्यमान है तो फिर नैल भरने का काम क्यों रुका हुआ है? पात्र अग्रर टोक न हो तो बदलना चाहिए, यदि बसी क्षतम हो गई हो तो नई बस्ता डालनी चाहिए। परन्तु दीर्घ में भरने का 'नैल' तो अत्यंत पात्र में भरा पड़ा है फिर भी सदा जलता रहने वाला यह दीपक धोड़ी दर प्रकाश करके हमेशा के लिये क्यों बुझ जाए? ये बातें सोचने हुए आर्य-हृदय सदस्या कांप उठना है। जिस शम्भुशामल मन्दन-वन की आशा और प्रतीक्षा बिरकाल से थी उसे उजड़ने हुए वनके का अग्रर मिले इसकी अपेक्षा भीत उपादा: अरुन्धी मालूम देता है।

वर्तमान प्रचरि व शिक्षा प्रणाली तथा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली दोनों का हलकाल को निजी अनुभव है। दोनों

पढ़ानियों के गुण, दोषों को एक तटस्थ विचारक की दृष्टि से देखने हूँ यदि इस लेख में कुछ कटु-सन्धों का वर्णन करना पड़े तो इस के आधार में शुभ हेतु ही समझना चाहिए।

यह बात तो मित्र समझनी चाहिए कि भारत के उद्धार के लिए एक ही शिक्षा प्रणाली है और वही रहनी चाहिए। यह है—गुरुकुल शिक्षा प्रणाली। परन्तु क्रियामय रूप देने के लिए इन प्रणालियों के विभिन्न रूप हो सकते हैं इस में जरा भी सन्देह नहीं। उजासा करने वाला दीपक है—यह सच है। दीपक को जलता रखने के लिए तैल बिजली आदि किसी प्रकार का शक्ति आवश्यक है। यह सच है। उजाले का आवश्यकता भी सिद्ध ही है। इन तीनों बातों में दो मन नहीं हो सकते। परन्तु इस उजासे को कहाँ, किस प्रकार और किस साधनों से प्रगट करना चाहिए? यह निर्धारित करने का काम तात्कालिक शिक्षण शास्त्रियों का है। और यदि सचबे शिक्षण शास्त्रियों का हाथ गुरुकुलों का नियमन तथा सञ्चालन नहीं होगा तो उचित परिवर्तनों के अभाव में विशाल तथा उपयोगी संस्थाओं के अस्तित्वान टोने में टूट नहीं लगेंगी। समाज के द्वारा दिया गया दान तथा मा बाप के द्वारा सहे गए विद्योग के कष्ट इन सबका उचित बदला देने में यदि संस्था के सञ्चालक दिव्य-कियायें तो भावी प्रजा इसके लिये उन्हें आशीर्वाद देगी या शपथ? इस बात का निर्णय भविष्य करेगा। आराम शरीर बदलना है—इस प्रकार शिक्षा प्रणाली के लिये संस्था को रूपरेखा में परिवर्तन हो तो क्या बड़ा बात है? लेकिन इस प्रश्न पर विचार करने के लिये क्या कभी गुरुकुल-प्रयोगों ने गम्भीरता से ठेक कट मन्त्रणा का है? मैंने जब गुरुकुल के संगठन की सच्चां खासकर गुजरात के विषय में शुरु की ही तब जिस भविष्य की ओर इशारा किया था वह आज सच निकल रहा है। गुजरात की पुण्यभूमि में महर्षि दयानन्द, कृष्ण-गांधी के महागुरुजन में तीन तीन गुरुकुल-स्थलों का उदय हुआ कन्तु आज क्या हालत है? सौराष्ट्र (काठियावाड़) में महर्षि दयानन्द के स्मारक रूप सोनगाढ़ गुरुकुल की उत्तरोत्तर प्रगति को देखकर तटस्थ आर्य विद्वान् गर्व का अनुभव कर रहे थे। वहाँ के आदर्श शिक्षण तथा उत्तम जलवायु के परिणाम स्वरूप तेजस्वी कानकों की एक पौत्र प्रगट हुई और दूसरी के प्रगट होने की नैयारी थी इतने में ही गुरुकुल हार्दिकूल बन रहा है इस तरह के समाचार कानों में टकराने लगे। जिस गुरुकुल के विषय में स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी, कश्चिन्त नानालाल तथा अन्य विद्वान् विचारक उज्वल भविष्य के स्वप्न ले रहे थे, जिस गुरुकुल के उपनातकों के गम्भीर लेखों और भाषणों से गुजरात को यह आशा थी कि उत्तम प्रकारक निकलेंगे, जिस गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने हरिपुरा कॉलेज में स्वयं सेवक बनकर नियन्त्रण (Discipline) तथा कुशलता की परीक्षा पास की थी यह गुरुकुल आज गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को निराशाहित दे—यह समझ में नहीं आता। अफ्रीका तथा अन्य दूरदेशों में गए हुए भारतीयों के बालक जब शिक्षण तथा पालन पोषण के अभाव में इधर

उधर रुक रहे थे उस समय सोनगाढ़ गुरुकुल के प्राण-स्वरूप श्री चतुर्भारी जी तथा उनका सहकारी वर्ग और गुरुकुल रूपी राष्ट्रिय संस्था प्रगट न होती तो उन्हें कौन आश्रय देता? यदि उस समय सोनगाढ़ गुरुकुल हार्दिकूल होता तो क्या देश के बालक इसका आसरा ले सकते थे? सञ्चालकों का कितनी ही गुण इच्छार्ण क्यों न होतों परन्तु सरकारी संस्था होने के कारण बालकों का आश्रय देने का पुण्य काय इस संस्था के द्वारा न हो पाता। इसके अतिरिक्त आज हार्दिकूल का कार्य विशेषता नहीं है। विशेषता और बलवत्तता तो गुरुकुलों का है और गुरुकुलों की ही रंगी। परन्तु यह सच कैसे हुआ? कौन ने ऐसे कारण हैं जिनमें गुरुकुल के आधारस्वभूत ढिल गए और अब किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिए? सब बातों पर मैं अपना मुक्ति तथा शक्ति के अनुसार अगल अंक में आलोचना करूँगा।

(असमाप्त)

## हैदराबाद और आर्यसमाज

(खे०—श्री पं० विद्यानन्द जी देशाक्षर का)

हैदराबाद में सत्याग्रह आन्दोलन से वर्धा भारी जागृति आ चुकी है। इस गियामन में राजनैतिक बातों पर बोलना मना है। यहाँ मुसलमानों का बहुत अधिक आबूदा है। वे हिंदुओं के बर्खलाफ कुछ भा लिये या बोलें, कोई रोक्ता नहीं है। श्री युव बहादुर यारजंग एक सरकारी कर्मचारी हैं। आपने एक भाषण दिया था—जो हैदराबाद के अस्वबारी में प्रकाशित भा हुआ था। उसमें आपने सत्याग्रह आन्दोलन का बहुत बुरा भला कहा है। आप को राय में इस सत्याग्रह से ररवास्तत की २०० वर्ष का यश मिश्रों में मिल गया है। आप सरकारी कर्मचारी होने पर भी मिनिस्ट्री को धमकाते हैं। क्योंकि आरका भ्याल है कि सत्याग्रह संयाम मिनिस्ट्री के कारण ही सफल हो सका था। आप फिर सत्याग्रह होने पर गदर मच जाने को बात कहते हैं। साथ ही कहते हैं कि 'मन्त्री मण्डल' भी सम्भल जाय। इस प्रकार का खुली धमका दो जाता है। परन्तु मुसलमान होने से कोई कायवाही नहीं को जा सकती।

इस भाषण के खिलाफ पं० बुद्धदेव जो विधालंकार ने सरकार का ध्यान लींचा। इस विषय पर आर्य समाज शालोबण्डा ( हैदराबाद शहर) के उत्सव पर हाजिर जनता करार १० हजार पर्व आर्यसमाज सिकन्दराबाद के उत्सव पर हाजिर १२ हजार जनता के सामने पब्लिक जी ने प्रकाश डाला। पण्डित जी ने अपने भाषण का आधार इस नारे से जाहिर किया—“उत्तमान अला जिन्दाबाद, गुण्डा-शाही मुर्दाबाद”।

पण्डित जी ने बताया कि जब कोई आदमो-दान-सहायता-न्याय आदि अक्के काम करता है तब कोई न कोई वहकाने वाला मिल ही जाता है। भोग्यु बहादुर यारजंग इसी प्रकार के व्यक्ति हैं। वे राजा को बर्काकर प्रजा से दूर कर देना चाहते हैं। परन्तु वे ऐसा कर न

सकेंगे। परन्तु नादानदोल से राजालोग नुस्खान उठा लिया करते हैं। परन्तु हमारे राजा ने अपने हाथ न्याय के रंग से रंगे हैं। इसी उदाहरण पर उन का बंरा २०० वर्षों से शासन करता रहा है। इस बंरा ने बतल दिया है, कि राजा हिन्दू तथा मुसलमान कुञ नहीं होता। वह न्याय (इन्साफ) का प्रतिनिधि होता है। इसी अपने बंरा को शान को सत्याग्रह में बतमान राजा ने निभाया है। केवल 'देर' ही सत्याग्रह का कारण साबत हुआ, 'अन्वेर' नहीं। इस भाषण का हिन्दु तथा मुसलमान दोनों पर बहुत गरा असर पड़ा। आपने बहादुर चारजंग जैसे लोगों का पैदाइश-वर्तमान यूरोपीययुद्ध-तथा हिन्दू-मुस्लिम दंगों का कारण 'लेबलपरस्ती' बताया।

हिन्दू सम्प्रदाय है-कि 'हिन्दू' लेबल वाले सब अन्धे हैं-मुसलमान सब गन्धे। इसी प्रकार मुसलमान-सब मुसलमान अन्धे और हिन्दू सब बुरे। इस प्रकार सम्प्रदाय लेता है। यही बात जर्मन तथा अंग्रेज 'लेबल' के साथ है। इसके कारण दोनों दल अपने सर्वोत्तम व्यक्तियों को (जिनको Comm of the Nation चाहिये) लड़ा कर नष्ट कर डालते हैं। इस अवसर पर बरमारा गुण्डे-आलसी दरपों सब मौज करते हैं। आज हालत यह है कि-शराब-कोकीन-आदि के विद्वेता सब देशों के संगठित हैं-चाहे वे जर्मन हों-चाहे अंग्रेज।

इस प्रकार अन्धे, आरामी लड़ते हैं-बुरे आरामी मौज करते हैं। इस गलती का इलाज करना चाहिये। अर्थात् दोनों दलों के भेद पहर तथा देवता इन बदमाशों का नारा करें। नहीं, तो, देवता नष्ट होते और असुर बढ़ते जावेंगे। इस प्रकार देव नष्ट होते रहते, तो, असुर ही बच जावेंगे। परन्तु इस 'गुण' की बजाय 'लेबल' का कथान अपेक्ष करते हैं। अतः मर्ज बढ़ना जाता है। इसी लेबल परस्ती, के कारण हिन्दू मुसलमान भी ऋगड़ जाते हैं। यदि दोनों प्रेम से एक दूसरे का इद्दय जीत कर धर प्रवार करें-तो-चाहे-दोनों 'इन्सान' अवस्था बच जावेंगे। कई अंग्रेज भोता भा मौजूद थे। सब पर भाषण का समाप्त प्रभाव पड़ा।

इस भाषण की सफलता से वेद और-आर्यसमाज की आवश्यकता स्वतः जाहिर है। आर्यसमाज ने तो अपने जन्म काल से ही-वेद के वैज्ञानिक धर्मिक अस्तुतों द्वारा साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का खण्डन जारी रखा है। जो स्वाभाविक और आवश्यक है। आर्य समाज का सम्बन्ध धर्म से है। देश की नीति से धर्म की नीति सदा व्यापक होती है। क्योंकि देश तथा धर्म, राजा और ईश्वर, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय सदा व्यापकता को दृष्टि से पहलू पर दूसरे को होने का मौका देते हैं। इस भाषण ने इस लिए राष्ट्रीय एवं साम्प्रदायिक दोनों मनोवृत्तियों को तुच्छता का दिखा कर धर्म की आवश्यकता अनुभव करने का बाधित किया। हिन्दू-मुसलमान तथा अंग्रेज तीनों प्रकार के भोता मौजूद थे त.नों को व्याख्यान की इस शिरोरता ने मग्न कर लिया था। इस प्रकार वैदिकशास्त्र साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का इलाज आर्यसमाज कितना - वैज्ञानिक और आवश्यक है यह स्वतः दिल में विश्वास हो जाता है। ईश्वर ने

आर्यसमाज को जिस स याद का आभार दिया वह साम्प्रदायिक लोगों के इद्दय को जतकर थाया और इस प्रभाव पैदा करने में लगा है। तब श्रुतुत मैयव्दमन का आर्य समाज को न्यायमान में बन्द कर देने का विचार कैमे पनप-पकता है। विज्ञान सत्य तथा धर्म में जब भेद ही न रहा-तो-पित्रय में देर-कितना लग सकती है? यह विश्राम रख कर आर्यसमाज सदा निरभर रहा है।

### पुस्तक समालोचना

आग्नि क विचार-लेखक पं० देव प्रकाश जी, मूल्य १।) प्रकाश-भक्त मुकुन्द लाल; धर्मार्थ ट्रस्ट, चौक पामिया अमृतसर।

आजकल चांगे और ईश्वर के विरुद्ध जिहाद बोला जा रहा है और तब तथा विज्ञान के आधार पर अधिकांश लोग परमेश्वर का सत्ता में सन्देह करने लगे हैं। ऐसे समय : इस प्रकार के प्रश्नों की बहुत आवश्यकता है जो ता.कके प्रमाणा तथा वैज्ञानिक युक्तियों से ईश्वर का सत्ता सिद्ध करने वाले हों।

यों तो ईश्वर अर्था का विषय है तब का नहीं। प्राचान ऋषि मुनियों ने तो कहा था 'नर्कउत्पत्तिः'। पर जब दूसरा पक्ष तब द्वारा ईश्वर का खण्डन करना है तो तब द्वारा उसका मण्डन करना भा आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक का यही मुख्य प्रतिपाद्यविषय है।

वेद, ब्राह्मण और उपनिषदों तो ईश्वर का स्वतः प्रमाण लकर चला है। किसी चीज को सिद्ध करने का आवश्यकता नाना पड़ता है जब उसमें सन्देह प्रकट किया जा रहा हो। उन ऋषियों के लिए तो ईश्वर वैसा हा स्वय-सिद्ध वस्तु थी जैसे एक गणित के लिये यह बात कि अश अंशों से छोटा होता है। चार्वाकों और बौद्धों ने सब से पहले ईश्वर का सत्ता से इन्कार किया। चार्वाकों की युक्तियां मनारंजक हैं तथा बौद्धों की विचारपूण। पंडितों ने बौद्धों की युक्तियों का बड़े विश्वास से खण्डन किया। इन पंडितों में उद्यननाचय का नाम अमर है। उद्यन ने 'कुमुदाखिल' में ईश्वर सिद्धि का साधक वाक्य प्रमाणां से पुष्ट किया है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महाशय ने उद्यन का युक्ति परम्परा के अनुसार ईश्वर को प्रत्यक्ष, अनुमान प्रमाणां से सिद्ध किया है। साथ में अन्य आर्यनीय द्शनों ने जो दूसरे प्रमाण दिये उनको भी साथ में दिया गया है। अन्त में ईश्वर के सम्बन्ध में जो नाना शंकायें निपत में उठती रहती हैं-उनका समाधान किया गया है।

शब्द प्रमाण की बड़ा महिमा है। प्राचीन लोग वेद को प्रमाण मानकर-चलने थे पर समय के फेर से आर्य-कल हमारे वेद पश्चिमी विद्वानों के ग्रन्थ हो गये हैं। इस पुस्तक के अन्त में लेखक ने पाश्चात्य लेखकों के ईश्वरसिद्धि-विषयक वाक्य तथा प्रमाण देकर पुस्तक का उपयोगिता बहुत बढ़ा दी है।

हिन्दों के धार्मिक साहित्य में इस ग्रन्थरत्न को शुद्ध करने वाले लेखक महाशय हिन्दो प्रेमियों के साधुवाद के पात्र हैं।

-पं० हरिदत्त वेदालंकार

# गुरुकुल

८ आषाढ़ शुक्रवार १९६७

## वेदों में इतिहास

( आचार्य प्रमयदेव जी )

आर्य समाज लुधियाना के मन्त्री महाशय वासुदेव जी गुप्त लिखते हैं कि लाहौर के प्रसिद्ध वैदिक पत्र 'प्रनाप' में 'भावीन हिन्दुओं का इतिहास' शीर्षक में जो एक लेख माला निकल रही है उस में वेदों पर आक्षेप किये गये हैं। प्रताप के (२६७) के साप्ताहिक संस्करण में लेखक ने लिखा है, "मैं (पुत्रले मजबूत में बसा चुका हूँ कि वैदिक जमाने का आगाज़ (प्रारम्भ) तद्वर्षान ७ या ८ हजार वर्ष भूरीह से पहले हुआ।" फिर लिखा है, "पजाब और सिन्ध में पहले पहल औशीनर ने अपनी राजधानी कायम की। औशीनर का वर्णन ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ५६ और ७६ में आता है। इस प्रकार राजा सिंधि का वर्णन भी ऋग्वेद के दशम मण्डल सूक्त १८६ में किया गया है। इसी लेख में मद्र राजाओं का वर्णन भी ऋग्वेद में बहुत जगहों पर आना बतलाया गया है। इसके लिये लेखक ने मंडल १ सूक्त ६०, १४४, १८७, मंडल २ सूक्त ३७, मंडल ३ सूक्त १ और ३६, मंडल ४ सूक्त ३४, ३८, ४२ में आना बताया है। इसी प्रकार ६ जून के साप्ताहिक संस्करण में राजा मान्यता का इतिहास ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ११२ और मंडल ८ सूक्त १३६ में वर्णन किया गया है। यह लेख माला लाहौर के प्रोफेसर गुलशनराय जी की ओर से निकल रही है।"

यह सब बताने के बाद मन्त्री जी लिखते हैं, "वेदों पर इस प्रकार के आक्षेप उचित नहीं प्रतीत होते। सभी प्रार्थना है कि आप इस विषय में गुरुकुल पत्र के कालमें अपनी सम्मति प्रकट करने का कृपा करें।"

इस विषय पर अपनी सम्मति प्रकट करना कुछ कठिन नहीं है क्योंकि वेद का जो कुछ मरा साध्याय है उसके अनुसार मुझे इस में कोई संदेह नहीं है कि वेद में ऐसा कोई इतिहास नहीं है जिससे कि हम आज कल इतिहास कहते हैं। वेदों में जो मनुष्यों के स्थान आर्यों के व्यक्ति वाचक नाम आते दीक्षते हैं उनसे जो इतिहास प्रगट होता दीक्षता है यह वह इतिहास है जिसे कि निरक में नित्य इतिहास कर के कहा गया है। बहुत से अन्य वेद का साध्याय करने वाले व्यक्तियों की तरह मरा यह विश्वास है कि वेदों में आये गये सब नाम यौगिक अर्थों में हैं, कुछ अर्थों में नहीं। मेरी सम्मति में ऐसा बिना मने वेदों की सच्ची और सुस्पष्ट व्याख्या की ही नहीं जा सकती। पर वेद के सब ऐसे जगहों का स्पष्टीकरण करना आसान नहीं है। वेद में इतिहास मानने वाले लोग

ऐसे जिन जगहों का वर्णन करने हैं उन जगहों के अनुसार उनका सुक्रियों का स्पष्टन करने हुए उनका ठाक व्याख्या या स्पष्टीकरण करने के लिये काफी विचार और अध्ययन की आवश्यकता है।

मेरा क्याल है कि श्री मान्य प्रो० गुलशनराय जी ने वेद में इतिहाससम्बन्धी जो ये बातें लिखी हैं वे सम्भवतः किसी पश्चिमी विद्वानों की पुस्तकों के आधार पर लिखी हैं। क्योंकि पश्चिमी विद्वानों ने और उनका अनुकरण करने वाले भारतीय लोगों ने अपने विकासवाद तथा ग्रन्थ कर ऐसे वादों से प्रभावित बरिक्त विरुद्ध हुए दृष्टि कोश और मन के कारण ऐसी बातें बहुत कुछ लिखी हैं। और प्रायः सब ग्रंथों जो पढ़े लिखे जांग उन्हीं विचारों में ही अपने आपको वेद के संस्था में सा-वाग् बताने और मानने हैं। मैं पठकों को यह भी सूचित करूँ कि पश्चिमी विद्वानों के इन वादों के पूर्ण विज्ञान पूरा डङ्ग से जवाब देने जैसा श्री अरविन्द की Secret of veda नामक लेखमाला में पढ़ा है सा-ग्रन्थ नहीं पढ़ें। मैं श्री अरविन्द की उक्त लेख माला का हिस्सा में अनुवाद भी कर रहा हूँ। मैं आशा करना हूँ कि उसका अनुवाद हो जाने पर हिन्दीभाषावासी विद्वानों को वेद के सम्बन्ध में बहुत अधिक प्रकाश मिलेगा और विकासवाद तथा आर्यों और द्राविड़ों की लड़ाई आदि ग्रन्थ पूर्ण वादों को उखाड़ डालने में बड़ी सहायता मिलेगी। पर मैं अभी पढ़े लिखे और वेद का रस्य जानना चाहने वाले सायजिज्ञानु विद्वानु पुत्रों को कहना चाहता हूँ कि वे यदि संभव हो तो श्री अरविन्द की Secret of veda लेख माला का अध्ययन करें।

मैं तो फारसी लिपि नहीं के बराबर जानता हूँ, इस लिये प्रताप अलदर को स्वयं नहीं पढ़ सकता। पर यह कहने की जरूरत नहीं कि मैं यत्न करूँगा कि गुरुकुल के मेरे अन्य मित्रों और विद्वानों की सहायता से प्रोफेसर गुलशनराय जी के ऐसे अर्थों पर आर्य समाज की दृष्टि से ठीक प्रकाश डाला जा सके। यथा संभव गुरुकुल पत्र में इस सम्बन्ध में कुछ संक्षिप्त लेख निकलने पर ऐसी पाठक आशा कर सकते हैं। पर लुधियाना समाज के मन्त्री जी का पत्र प्रारम्भ में कुछ विस्तार से दे देने का प्रयोजन यह है कि अन्य वेद के स्वाध्याय शील भाव्यों का भी उन स्थलों का तत्पर ध्यान आकृष्ट हो जाय और वे भी अपने लिये तथा अन्य जिज्ञानुओं के लिये भी इस विषय में अपने विचार स्थिर कर सकें। सत्य को जोड़ने, जानने और मानने के लिये हम सब को सदा उद्यत रहना चाहिये।

## महर्षि कवच के आश्रम में

महाकवि कालिदास का जगत् प्रसिद्ध 'शकुन्तला' नाटक आज से सात वर्ष पूर्व साहित्याचार्य के कोर्स में पढ़ा था; तभी से इस पुनीत आश्रम को देखने की इच्छा लालसा हृदय में थी। यद्यपि यह आश्रम हरिद्वार से पुरी-सर दिशा में, सिर्फ १२ मील के फासले पर है तथापि मुझे हुए सचन बनने की अधिकता, हिन्दू पशुओं की बहुलता

और अच्छे रास्ते के अभाव के कारण आमालोग उधर जाने का उल्साह नहीं करने । हमारा निश्चय, क्योंकि कई दिन पूर्व से ही पक्का हो चुका था और बतन-अनुष्ठा के दिनों से भी हम कुछर परिष्कित हांगर थे इस लिये एक दिन लुख सबेरे बठकर प्रस्थान किया । प्र.५म अक्तु में दिन भर के पैदल सफर के लिये साधियों का मिलना मुश्किल होता है इस कारण अकेले ही गन्तव्य अर्थात् श्री और पग बढ़ाया । गुरुकुल कांगड़ी से ३ मां. चले के बाद गंगा को पार करके हिमालय के बनों में प्रविष्ट हुए । बनों का लिंगप्रता, गम्भीरता और नीरवना का यदि पूरा अनुभव प्राप्त करना हो तो वन-बीघियों पर एकाका ही जाना चाहिये । गंगा की घाटियों के बनों, पर्वतों, नारों को ताँघते हुए सिद्धात्म के आगे निकल चले । जगत् अंधकारि घनता होना आ रहा था । आँड़ियों, फुगनुदों, वृद्धों के पीछे में अकस्मात् आ पड़ने वात, अग्रयाशिन भय हमारी और घूर कर नाक रहा था । कुछ देर बाद उनहीं पड़ने वातात्म-जीवों का प्रबुद्ध नाद पावन् वृष्टाओं का कम्पित कला था । ओगुनों के 'बो-बो' शब्द क.स.थ.भोने-भाले हरियों की आत्मायें कम्पित हो रही थीं । रास्ते के बाईं ओर के नाले में बारहमिगे की अंध बायी लाश; अपने लुले हुए मुँह से विगत रक्ति को दूर और के अग्यान्वर की कष्ट-कथा कह रही थी । शायद जंगल का न्याय नर्तन व लियों को सता कर ही चरितायें होता है । चारों ओर के ऊँचे-ऊँचे पर्वत इस भय-राज्य को सुरक्षित रखने वाले स्वमियों के समान सनक खड़े पहरे दे रहे थे । इवापदों द्वारा आगे जाने वाले सुशोका आर्तनाद इसी घाटी के घेरे में गुंज-गुंज कर शान्त हो जाता था ।

इस विनीचिका में चौकड़ों कोकर हम आगे बढ़े । जंगल इनना घना हो गया कि कई जगह भुकर २ कर और लेटर कर आगे बढ़ना पड़ा । चलते हुए न सिके आगे-पाँछे और दाँदे-बायें देखना पड़ना था । बड़े-बड़े बूटों के ऊपर भी ध्यान देना पड़ता था-कहीं वृक्षका डाल से अजगर लिपटा न बैठे हो और हमें देखते ही शरीर पर आ करे और लिपट जाय । चीतों की सा आन्द इस प्रकार वृक्ष परले दूधकर अण्डा मारने की होनी है और कुछदिन पूर्व १५ फीट ऊँची डाल पर बैठे हुए एक चीते से मैं बाल २ बच गया था, इसी लिये बहुत सभल कर चलना पड़ रहा था ।

### हाथी का आक्रमण

इस दुर्गम घाटी को पार करने में एक घंटा से अधिक समय व्यतीत हुआ । जिस रास्ते पर हम जा रहे थे अत्यन्त संकीर्ण था और वह राखों, सेगों, बघेरों के पग-बिन्हीं से भरा हुआ था । रास्ते पर मोटा वृक्ष लघा; पतित देखकर हमें आश्चर्य हुआ । बिना किसी आँधी के ही वह वृक्ष क्यों गिर पड़ा वह बात साचने हुए जब हम आगे बढ़ रहे थे कि इतने में पंखलकार हाथी जताओं को लोहना, आँड़ियों को रौंदना हुआ हम पर आ दूटा । दहियों और दूदते सरकड़ों के शब्द से हमने पहिचान लिया कि विशाल 'गेटर' के समान यह कौनसा जीव है । हाथियों

के कुँडों से जग गों में अनेक बार पाना पड़ चुका था इस लिये मनमें कुछ विरोध घराहट नहीं आई । उसे एक छोटा सा चकमा देकर हमने पहाड़ीकी शरखली और अपने मार्गपर अग्रसर हुए । तीन मील जंगलों में भटकते हुए 'कारा' पहुँचे । कारा जंगलान का चौकी है । इतने आस पास का वन हिम जीवों के लिये प्रासन्न है । एक रेस्ट-हाऊस भी है जिस में प्रायः शिकार क. घात में आये हुए फीजी अफसर आकर ठहरा करते हैं । यहाँ तक हम १३ मील आ चुके थे ।

### जाल दांग

आर में १ घंटा विश्राम करके हम जाल दांग की ओर रवाना हुए । यह स्थान यहाँ से ५ मील की दूरी पर है । ऊँचे २ वृक्षों वाले जंगलों का कारण रास्ता मुहायरा है । हरियों को मनु मिश्रित ध्वनियों को सुनते हुए आगे बढ़े । दूर धानकी-पुण के गुरुओं से पर्वत जाल दिखाई पड़ रहा था । अनेक वृक्षों के पग भी लानी लिए हुए थे । शायद-इसी जाल पर्वत का किनारा होने के कारण स्थान का नाम जाल दांग पड़ा है । यह एक छोटी सी बस्ती है । जंगल का रेजर भी यहा रहता है । एक छोटा हस्पताल भी है ।

### चौकी घाटा

शाम ३.४ बजे जाल दांग में कुछ हटका खाना का कर आगे १३ मील दूर चौकी घाटा जाने की इच्छा से प्रधान किन्तु रेजर के सौजन्य से ११ मील के लिये मोटर की सवारी मिल गई । घन्यवाद करते हुए हम नेजी से आगे बढ़े । दो मीन तक मोटर कमी पधरीने नालों को पार करती, और कमी विषम रास्तों पर हमें उखाती रही । इनके बाद का जगत् लुख सननन था । आठ मीन तक और ६ मील चौड़ा । मोटर ४० मीन को स्पीड से चली । साय काज का समय होने के कारण बनों को ठरडों हवा बढ़ा आनन्द दायक प्रतीत हुई । मोटर की आवाज सुन कर दाहिनी ओर के जंगलों से बारह-सिधों और हरियों का एक फुटव निकन कर साधा सड़क पर आगे का ओर भय चला । हरिया आगे आगे और मोटर पाँछे पीछे । दौड़ की अश्च्यः प्रतियोगिता थी । उस समय मुझे हटाव हरिण का पीछा करने वाले दुष्यन्त की याद आई । कुछ देर न ही अपना खेल समाप्त कर चुग मरुदनी मुझी और छलांगे अगनी हुई बाँद ओर के जंगल में अटपट हो गई । ११ मीन समाप्त होने पर हम 'रहूसाता' स्थान पर उतर पडे । यह १० चौकी घाटा दो मील दूर जाना है । मातिन नदी से निकना हुआ एक छोटा सा जाल इस जगह के ४-५ मील तक सिंचाई करता है । उसा स्नान क सदात हम ऊपर का ओर चले । गुरुकुल-कांगड़ा से चल कर हमने वड़े २ बार जंगलों को पार किया था और हम इस हम मातिन नदी के ऊँचे किनारे पर खड़े थे । सारेत.क. शानल-नदी को छू कर बहने वाली हवाओं ने स्वगत किया । दूर दूर तक हर-भरे कुञ्जी का वन था जिन में पक्षी सायंकालीन गीत गा रहे थे । नदी के जल में पक्षी किलोल कर रहे थे ।

### महर्षि कश्यप का आश्रम

मलिन नदी के बायें किनारे के सचन-कुञ्ज बनों में कश्यप ऋषि का आश्रम बनाया जाता है, यद्यपि अब आश्रम का कोई चिन्ह नहीं मिलता। सृष्टि के आदि में हिमालय की उपत्यकाआ के इन्हीं अश्रमों में विद्युत् में विशुद्ध ज्ञान गंगा बहती थी जिसके प्रतीक रूप आज हमारे यहां ब्राह्मण, उपनिषद् आरक्ष्यक आदि ग्रन्थ विद्यमान हैं। तब से बहुत महत्त्व वर्ष बीत गए। इस बीच अनेकों परिवर्तन आये और गए। अनेक राजा शिकार के लिये इन बनों में आये और इन आश्रमों में आर्य सभ्यताका विषय स्वदेश मूल कर लौट गए। कहते हैं महाकवि कालिदास भी एक बार अपने आश्रयस्थान 'प्रचेत विश्व' के साथ शिकार प्रसंग में इन बनों में आये थे। बड़े २ दो जंगलों को पार करने के बाद तोमर जंगल में राजा की सेना विश्वरूप होकर भटक गई। भूच और व्यास के कारुण्य सेना में आदि मंच गई। यद्यपि पेशाना उठा कर सेना मालिन नदी के किनारे आई और इन आश्रमों का आतिथ्य प्राप्त कर कुछ कृप्य होकर लौटी। शिकार यात्रा की समाप्ति पर यद्यपि कालिदास भी सेना के साथ लौट गए किन्तु यहां की ह्राप जो कश्यप के हृदय पर पड़ी, यहां का मूक सप्रश जो कवि के हृदय में गुंजा, वह हमना चिरस्थायी हुआ। क वह कालिदास के काव्यों में। कलसा न किसी रूप में प्रकट हुए बिना न रह सका। यहां का प्राकृतिक दृश्य भी कवि के 'शकुन्तला' नाटक में उभरी का यो शायदक 'प्रादोमाक' है।

रात्रि को हमने चौकी बाड़े के प्रतिष्ठित सज्जन श्री प्रयागदास जी और उनके बन्धु लामदास जी का आतिथ्य ग्रहण किया। भाप दोनों आर्य संस्कृति से सुसंस्कृत और उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवक हैं। बड़े प्रेम से हमारे उ रने का प्रश्न किया और दिल्ली प्रकार की कोई तकलीफ नहीं होने दी। इनका आतिथ्यभाव वृत् २ तक मशहूर है।

सबेरे लुच प्रातःकाल ही उठ कर हम कश्यप ऋषि का आश्रम देखने को निकले। वही मालिन का सुन्दर घेरेदार रास्ता था, हरे भरे कुञ्ज थे, सहकार से माघवीलता लिपटा हुई थी। परभूलिका की कूक में शकुन्तला क बिरह विषस की वही मर्यान्तक वेदना भरी थी। वनज्याःका प्राप्य का लपटों से भुलस गई थी, चमेली कुंआ गई थी, कदली का हालन शोचनीय थी। आश्रम से सदा हिमालय पर्वत श्रव भी पीर गर्भोर् भाव से पास का भूमि पर छाया किए हुए खड़ा था। इस आशा से कि शायद पुनः कश्यप ऋषि आकर इसे आनन्द करें। वहा के वृक्ष, लता, मृग, यशुपत्नी सब उस जन्म के अने का उरतुकता पूषक प्रतीक्षा करने प्रतीत हुए। हमने उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिये यशु से प्रार्थना की और प्रक आह के साथ उनसे विदाई ली।

लौटते हुए रास्ते में आर्यों का हज़ारों-लाकों वर्ष पुराना इतिहास याद आने लगा। हृदय में विचारों का दूफान उठ खड़ा हुआ। क्या वह पुराना जमाना लौटा कर नहीं लाया जा सकता ! हृदय से आवाज़ आई अशक्य। किन्तु इसके लिये बड़े त्याग और नपत्या

का आवश्यकता है। सारे शत्रु को बड़ी भारी कुर्बानी करनी होगी। अपने अन्धके मलों को जलाकर शुद्ध होना होगा। स्वार्थ और संकुचित भावना को बुर करना होगा। उसके बाद संसार में जो बलाबलक पैदा होगा उसमें शेर और हरिक एक साथ लगेतै मानवता की वृद्धि होगी और तब पृथ्वीनेक पर स्वर्ण आबाद होगा। अपने आतिथ्यकर्ता प्रेमी सज्जनों से विदाई लेकर हम उसी गल्ले में लौट पडे। फिर वे ही जन्म पार करने पडे उनी गजगज ने उसा स्थान पर पुनः आक्रमण किया। और हमने भी शान्त भाव से पहाड का आश्रय लिया और सोचा कि जय पुराना जमाना लौट आयगा और मनुष्य का ऊंचो भावनाओं के समुद्र में आकर ये जीव हिसा-वृत्ति छोड़ कर मित्र बन जायेंगे तब संसार में जो सुन-सोहाद बड़ेगा उसकी क्या कल्पना की जा सकती है ? एक प्रश्नक कर्ता।

### यथार्थ ज्ञान कैसे प्राप्त हो ?

[ ले०-भी पं० प्रयागदास ]

हम जितना अधिक अन्तर्मुख होगे उतना ही हमारे ज्ञान और शक्ति में परिवर्धन होगा। मीन ध्यान करने के लिये अपनी आध्यात्मिक शक्तियों पर पूर्णतया विश्राम करना पड़ता है। उसमें यह समझना आवश्यक होता है कि हम बिना किसी बाह्य शक्ति के सहायता के सिर्फ आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा ही पूर्णता का प्रप्त कर सकते हैं। और इससे आध्यात्मिक शक्ति पर विश्राम होने पर हमारी प्रकृत आधिकारिक अन्तर्मन्त्रो हो जाती है और अन्तः हम अहममत्रनिष्ठ हो जाते हैं। अपने पर पूर्णतया विश्राम ही पूर्णता है, वही साधन भी है और साध्य भी है। अतः मीन के द्वारा जो प्राप्त वस्तु है, वही मीन का प्रयोजक भी है। मीन के द्वारा प्राय वस्तु है अपने को पूर्ण समझना, और बिना अपने को पूर्ण समझे हुए मीन हा ही नहीं सकता। किन्तु प्रारम्भ में स्थूल रूप से समझना प्रयास है, ध्यान करते २ वह ज्ञान राशैः २ अधिक परिष्कृत होता जाता है। और अन्तर्भोगात्वा जब वह ज्ञान पूर्ण निःसंशय हो जाता है तब हमें पूर्णता की प्राप्ति होती है। हम किस प्रयोजन से कार्य कर रहे हैं, इसा की समझना समस्त कार्यों का प्रयोजन है। जिस मनोभूति से प्रेरित होकर हम कार्य करते हैं उसी को जानना उस कार्य का उद्देश्य है। यह क्यों है ? यह इस लिये है कि साधन और साध्य भिन्न नहीं हो सकते। हम क्या चाहते हैं ? इसको जान लेने मात्र से हमारी इच्छा पूर्ण हो जावेगी। हम किस प्रयोजन से कार्य कर रहे हैं इसको जान लेने मात्र से हमारा वह प्रयोजन सिद्ध हो जावेगा। हम किस स्थिति में रहते हुए कार्य कर रहे हैं सिर्फ उसे जान लेने भर से हमें वह स्थिति प्राप्त हो जावेगी, जिस स्थिति की प्राप्ति के लिये हम वह कार्य कर रहे हैं। ये सब बातें क्यों हैं ? इस लिये हैं कि प्रारम्भ में ही अन्त क्षिपा हुआ है। सो कैसे ? सो इस लिये कि जहां से हम प्रारम्भ कर रहे हैं वहां भी तो एक क्षोर है। और सारी समाप्ति में व्यर्थियों का परस्पर कण्ठ सम्बन्ध है। यह तो ब्यावहारिक दृष्टि से, वस्तुतः तो

समष्टि अस्वच्छ है। अतः सब से पहले हम अपने कार्य के प्रयोजन को ही पूर्णतया समझने का प्रयत्न करना चाहिये। वस्, उस मूल को ही ग्रहण कर हम इस सारी समष्टि को महसूस करने में समर्थ हो जावेंगे। जिसको हम आदि समझ कर उससे आगे बढ़ना चाहते हैं, वही अन्तर्निहित है, अतः उसी को पूर्णतया समझने का यत्न करना चाहिये। हमें कुछ भी करने को आवश्यकता नहीं, जो हृद्ग्रह हम स्वभावतः कर रहे हैं वह क्यों कर रहे हैं? इस इसको भयंकर तेना है। हमारा कर्तव्य है प्रारम्भ को छोड़कर आगे बढ़ना मुव्य। है, क्योंकि जब प्रारम्भ का ही ज्ञान नहीं हुआ, तब उस पर आश्रित अन्य कार्य कैसे हो सकेंगे? और जब प्रारम्भ का ज्ञान हो जायेगा तब उससे सम्बद्ध मध्य और अन्त का स्वयम् ज्ञान हो जावेगा। प्रारम्भ अन्त से भिन्न नहीं है, अर्थात् प्रारम्भिक ज्ञान की स्थिति में प्रतीत हो वाला अन्त का ही स्वरूप है। अतः जब हम उस प्रारम्भ का पूर्णतया जान लेंगे तब वही अन्त के रूप में परेग्त हो जावेगा। यह कैसे? यह हमलिये कि हमारा सारा कार्य उसके प्रारम्भिक रूप का स्पष्टीकरण मात्र नेता है। और विश्व चूंकि एक ही है, (चाहे समष्टि मानें या अस्वच्छ मानें, दोनों तीर से) अतः इस विश्व में आदि, मध्य, अन्त कुछ नहीं। हमतो अपना कल्पनाओं के आदि, मध्य और अन्त का विश्व में आरोपित करते हैं। अतः हमारा प्रारम्भिक ज्ञान ही अभिव्यक्ति के क्रम से मध्य और अन्त के रूप को धारण करना है। क्योंकि प्रारम्भ में भी हमने आदि के रूप में समष्टि को ही पकड़ा था, व्यष्टि का तो केवल पकड़ा ही नहीं जा सकता, क्योंकि किसी भी व्यष्टि को उठाने पर सारी समष्टि उठनी है, जैसे कपड़े के एक छोर को पकड़ने पर सारा कपड़ा उठता है। ऐसी स्थिति में ज्ञान के मध्य और अन्त को सियाय उम प्रारम्भिक ज्ञान की क्रमिक अभिव्यक्ति के और क्या सम्भवा जा सकता है? और यदि वह सत्य है तो ज्ञान के प्रारम्भिक रूप के क्रमशः स्पष्टीकरण के द्वारा उसकी अन्तित स्थिति या पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न बुद्धिमत्ता पूर्ण एवम् उपादेयतम हो सकता है। संसार में हम जा कुछ प्राप्त करने हैं वह सब एवं प्राप्त का अभिव्यक्ति-करणमात्र है। अतः हमें प्राप्त का ही अभिव्यक्तिकरण करना चाहिये, इसी से हमें पूर्णता की प्राप्ति हो जावेगी। साध्य दर्शन का सत्कार्यवाद और अभिव्यक्तिवाद सत्य सिद्धांत है।

(अपूर्ण)

### सूचना

जो संरक्ष महानुभाव अपने ब्रह्म-चारियों की फोटो मंगवाना चाहने हों वे अलंकार चित्रशाला गुरुकुल काँगड़ी के पते से २) में तीन फोटो मंगवा सकते हैं।

### गुरुकुल समाचार

अजयकुमार ११ श्रेणी अतिसार, बलराज ४ श्रेणी मलेरिया, इन्द्रमेत ३ श्रेणी मस्स, सर्वाभिर ३ श्रेणी मस्स, लोकनाथ ३ श्रेणी मस्स, मोहन चन्द्र ३ श्रेणी मस्स, गरीशचन्द्र ३ श्रेणी मस्स, देवप्रकाश १ श्रेणी मस्स। उपरोक्त ३० गांठ सप्ताह रोगा थे। अब सब स्वस्थ हैं। इस सप्ताह आंगामी पर्याप्त रहा। अतिक्रम १०० फा० रहा। अब ०५ दिनों से बाढ़ल हैं। रात्रि का वर्षा भी हुई। वर्षा के हो जाने से पशु में परिवर्तन आ गया है, गमी कम हो गई है, सबत्र हरियाली ही दृष्टिगोचर होती है।

इम सप्ताह के मान्य अतिथि डाक्टर इन्द्रमेत जी P. H. D., उपाध्याय हिन्दू कालिंद देवला का व्याख्यान हुए, पहले व्याख्यान का विषय 'यूरोप का युद्ध' था। दूसरे व्याख्यान का विषय 'मानविक रागा का चिकित्सा' था। दोनों व्याख्यान ब्रह्मचारियों के लिए उपादेय एवं ज्ञान वधक थे। इस सप्ताह एक और व्याख्यान श्री दीनदयालु-जो शास्त्री का हुआ। शास्त्री जी ने यूरोप का स्थिति पर प्रकाश डालने हुए युद्ध के कारण एवं विचारगम्य परिणामों का बतलाया। श्री शास्त्री जो के राजनैतिक वषयों पर असी और भा व्याख्यान होंगे।

आ आवाय स्वामि अमय देव जा योगी सेवा संघ का बैठक में भाग लेने के लिए वर्षा का चल पड़े हैं। आशा है २६ तारीख तक लौट आयेगे।

ब्रह्मचारियों ने एक अजयक साप पकड़ा है, जो पिछले सब सापों से अधिक भयंकर है। इसका लम्बाई १३ फाट ४ इंच है, तथा भार ३० सेर है। और घेरा १ फुट ३ इंच है।

### गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

श्रीधमावकाश के पश्चात् गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ विद्यालय ६ जुलाई १९४०, को प्रातः ७ बजे खुलगा। धर्मशाला (कांगड़ा) पवन पर गये हुये ब्रह्मचारी ५ जुलाई सायंकाल तक गुरुकुल पहुँच जायेंगे। वे सब वहाँ सफुल्ल हैं। सबका स्वास्थ्य समाचार तथा तोल १६ जुलाई तक सब संरक्षकों के पास पहुँच जावेगा।

श्रीधमावकाश में अवकाश पर घर गये हुये ब्रह्मचारियों को २१ जून को धर्मशाला (कांगड़ा) पहुँच जाना चाहिये ताकि वे पिछले १५ दिन का मूत्र विषयों का पढ़ाई में सम्मिलित हो सकें। यदि वे मार्गव्यय के कारण धर्मशाला न पहुँच सकते हों तो १५ दिन का अवकाश स्वोक्त करवा लेवें और विद्यालय मुक्तने से एक दो दिन पूव आश्रम में पहुँच जावें।

अवकाश पर गये हुए ब्रह्मचारियों के साथ गुरुकुल नियम पालन अंकित करा अर्थ दैनिक नियम कर्म फाम भेज गये थे। आशा है सब सत्सक्त वताभ्यास के नियम भली प्रकार भरकर लौटाने की कृपा करेंगे। फाम न लौटाने की दशा में ब्रह्मचारी वताभ्यास में फेल समझ जावेगा।

स्मृतिवर्धक

ब्राह्मी बूटी

॥॥ सेर

सुगन्धित

हवन सामग्री

॥॥ सेर

गर्मियों में  
एक वार जरूर आजमाइए

## गुरुकुल कांगड़ी फार्मैसी का प्रसिद्ध

भीम  
सेनी  
सुरमा

आंखों से पानी बहना, सुन्नी कुकुरे सुर्खी, जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त आंखों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ माशा ॥२॥ १ तं० ३॥

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन स्नान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग खरोवाजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, आंखों में जलन आदि रोगों में तुरन्त आराम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

## गुरुकुल फार्मैसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहागनपुर )

प्रांच

लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—भोरामरोड  
देहली—चांदनी चौक  
पटना—महुआ टोली, बांकीपुर

## भीमसेनी इतमंजन

दाँवों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है  
मूल्य ॥॥ शीशी, ३ शी० १॥

## सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

## सुपारी पाक

बच्चों के जरियान रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।  
मूल्य १॥॥ पाक



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य २)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मूल-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिचंद्रा देवालङ्कार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल काङ्गड़ी, गुरुवार १५ आशुढ़ १९६७, २८ जून १९५०

[ संख्या ११ ]

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

( निदान और चिकित्सा )

[ ० ]

### गुरुकुल संघरूप संस्था

प्राचीन ग्रन्थों में गुरुकुल के संबन्ध में जो शोभा बहून निर्देश उपलब्ध होता है उसमें यह प्रतीत होता है कि ब्रह्मचारी किसा स्वाम विषय में विशेषतः बनने के लिये निष्णात ऋषियों को उपासना करते थे। ऋषियों के यहाँ पढ़ शिष्य परम्परा द्वारा शिक्षण का नरोका विद्यमान था। ऋषि का परिवार ही गुरुकुल था। इस प्रकार के गुरुकुल में कौटुम्बिक भावना से रहने हुए विभिन्न प्रन्तों के बालक विद्या तथा संस्कृति के पीयूष का पान करते थे। ऋषि तथा ऋषि पत्नी के साक्षर्य में समस्त शिष्या को प्राप्त करने के पश्चात् शिष्यगण आचार्य की प्रेरणा में तथा राज्य के आश्रय में देश सेवा के विविध कार्यों को करने हुए अपनी जीवनवास्था बिताने थे। उन्ममय ऐसी प्रथा थी कि ज्ञानक किसी एक विषय का पारङ्गत विद्वान् हो। Jack of all and master of none जैसी हालत तब नहीं थी। उपनिषदों में जो आख्यायिकाएँ मिलती हैं उनसे उन्ममक की शिक्षण शैली पर सामान्य प्रकाश पड़ता है। प्रसोत्तर से, छोटी छोटी कहानियों और दृष्टान्तों से तथा लकड़ी काटना, दूध दुहना, भिला मांगना, गाय चराना आदि शारीरिक श्रम के कार्यों द्वारा शिक्षा दी जाती थी। राज्य का आश्रय भी गुरुकुलों को था। समाज पूरा सहयोग देता था। उस समय के गुरुकुलों का स्पष्ट तथा विस्तृत इतिहास मिलना तो कठिन है परन्तु बौद्ध काल में राष्ट्रिय शिक्षा के लिये जो बड़े २ विद्यापीठ थे उनका इतिहास सुलभ है। नालन्दा और तक्षशिला जैसे विशाल विश्वविद्यालयों से लेकर गांध की छोटी २ शालाओं तक एक प्रकार की समरूपता थी और ये सब छोटी बड़ी संस्थाएँ प्रजा के पैसे से चलती थीं। वाराणसी के बोधिसत्व नामक प्रख्यात गुरु से ५०० युवा ब्राह्मण विद्या ग्रहण करते थे। बोधिसत्व के मन में एक बार यह विचार आया कि जब

तक मैं वाराणसी में हूँ तब तक मेरे शिष्य विद्या में दक्ष नहीं हो सकते इसलिये मैं हिमालय की तहलडी में जंगल के बीच घर बनाकर रहूँगा और वहाँ अध्ययन करूँगा। इस विषय के सम्बन्ध में 'तित्तिर जातक' नामक ग्रन्थ में जो वर्णन है वह ध्यान देने योग्य है। यहाँ हम केवल सारमात्र लिख रहे हैं। गुरु ने शिष्यों के सामने अपना विचार प्रगट किया और वन में कुटीर बना कर रहने लगा। विद्यार्थियों ने भी अपनी भोजयियाँ बनालीं और गांध के लोगों ने अनाज गीए तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ भेंट कर दीं। इस प्रकार शिष्यगुण्ड गुरुकी अभ्यसता में एक जगह रहने हुए, भोजन करते हुए तथा पढ़ने हुए जीवन बिताने थे। इस प्रकार की संस्थाओं में धर्म, कला तथा विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी।

वृहदारण्यक उपनिषद् में पांचल समिति के उल्लेख में शिक्षणसंस्था का अस्तित्व प्रामाणिक होता है। उपनिषदों के समय से लेकर नालन्दा तथा विक्रमशिला के विनाश पर्यन्त अनेक विद्यापीठों का उदय और अस्त हुआ परन्तु उनके बारे में पूरा परिचय प्राप्त नहीं होता। वेदाभ्यास के लिये विद्यार्थीगृह और पाठशालाओं के संचालन के लिये उस समय का समाज किस प्रकार से दृष्ट कर्ता था इसकी साक्षी ६० स० १०२५ के राजेन्द्र चोल के जमाने के एक शिला लेख में मिलती है। इस में लिखा है कि राजराजार्षवर्णनर के मान्दर म ऋग्वेद के पढ़न वाले ७५, यजुर्वेद के ७५, छान्दोगसामके २०, बाजसन्ध के २०, अथर्व के १०, वेदाध्ययनीय गृह्यसूक्त और गण के १० तथा अन्य विद्याओं को पढ़न वाले कुल मिलाकर २०० विद्यार्थियों में से प्रत्येक को ६ 'नाली' चावल मिलता था। इस प्रकार व्याकरण, मीमांसा तथा वेदान्त के विद्यार्थियों को भी प्रतिदिन अन्न मिलता था। वेद के अध्ययन के लिये स्टाफ निम्न प्रकार से था:—

ऋग्वेद के	उपाध्याय	३
यजुर्वेद	"	३
छान्दोग्य	"	१

तत्त्वकारसाम	"	१
बाजसनेय	"	१
गुहासुव	"	१

इन उपाध्यायों के जीवन निर्वाह के लिये म'भद्र को ४५ 'वैलि' भूमि दी गई थी। सारी संस्था का प्रबंध वहाँ की 'ग्रामसभा' करती थी। इस भूमि पर टैक्स नहीं था, इनके अनिर्गन्त आचार्य तथा विद्यार्थियों को अनेक राजकीय मामलों में पुकृत कर दिया था।

इस विषयवा से इनका तात्पर्य है कि गुरुकुल का अग्निव्य वैदिक काल में था इतना ही नहीं, प्रत्युत वीर युग में गुरुकुल की सघनशक्ति किसी भी तरह से कम नहीं थी, गुरुकुल एक जीवी जगती संस्था थी।

प्राचीन काल पर दृष्टिपान करने के बाद अब हम वर्तमान काल पर आते हैं, महर्षि दयानन्द ने वेदों के साथ साथ यज्ञरत्न शिवा, प्रह्लाद) का भी पुनरुद्धार किया। महर्षि का: आदेश है- विज्ञान बालक को ५ वर्षकी आयु तक माना, ५ से ८ वर्ष की आयु तक गिनता तथा ८ से १५ वर्ष की आयु तक (कन्या को ८ से १५ वर्ष तक) आचार्य शिक्षा दे रहा पुरुष अध्यात्म विज्ञान या विदुषी होने में। इस प्रकार गुरुकुल के लिये विज्ञानगण करने के उपरान्त महर्षि ने स्वार्थव्यक्तों में माना पिता का शिक्षा सम्बन्ध में क्या कार्यव्य है यह बतलवा है- 'मां २५ बालक को ऐसी शिक्षा दे कि उनकी सम्मान सम्पत्ति तथा अपने अर्द्धों में कुत्रेण न कर सके। बालकों को शुद्ध उच्चारण करना तथा बच्चों के साथ आदर में योग्यता सिखाना चाहिये। सन्तान स्वर्गी विद्यापिय और स्वर्गी बने गेसो कोशिश करनी चाहिये। उपरस्थेन्द्रिय के व्यर्थ भर्श में नपुंसकता उत्पन्न होनी है, इन लिंग बालक ऐसा न कर इस बातका ध्यान रखना चाहिये। उनसे सत्य भाषण कगना चाहिये। देव नगरी तथा वृसनी लिपियों का और उच्च विद्याओं का उन्हें ज्ञान कराना चाहिये। श्लोक सत्र आदि कण्टस्थ कराने चाहिये।' इत्यादि उपदेश देने के बाद महर्षि ने आचार्य और उपाध्याय के लिए व्यवहार भातु में और पठनपाठनविधि के विषय में सत्याभ्रंषकाश तथा अध्येतविधि भाष्य भूमिका में सारांश दिया है। उन्ने लेकर महर्षि के एक महान् शिष्य महात्मा दुर्शीराम जी ने 'गुरुकुल' का एक किताबक रूप दिया। गुरुकुल किस लिये बनाया गया यह स्पष्ट है। महात्मा दुर्शीराम जी ने समय जीवन वेद तथा महर्षि के सिद्धान्तों के प्रचार में उत्तीन किया। स्वर्गीय लेखकग जी के पदचिह्नों पर चलते हुए उन्होंने 'प्रचारक' का कार्य स्वर्गीय किया था। ऐसी परिस्थितियों आईं जब कि उन्हें गुरुकुल बनाने की सामग्री मिल गई और गुरुकुल का जन्म हुआ। उनकी आत्मनिक इच्छा तथा गुरुकुल का उद्देश्य तो वेद के प्रचार और उपदेशक रूढ़ करण था। जब तक गुरुकुल रूपी परीक्षा जारी था, आर्य जगत् में एक आवाज सुनाई देती थी कि गुरुकुल यज्ञ के अन्त में इस में से जो देव निकलेंगे वे समस्त विश्वको आर्य बनाएंगे अर्थात् गुरुकुल की स्थापना प्रचारक तैयार करने के लिये हुई थी। यहाँ

स्थान है जहाँ विचार करने के लिये खड़े होने की जरूरत है। गुरुकुल का उद्देश्य एक सांस्कृतिक शिक्षण संस्था (Cultural Institution) के रूप में हुआ है या प्रचारकों की फौज तैयार करने वाला किसी (Propagandist संस्था के रूप में? यह विषय विचारणीय है। अनुवादक-श्री धर्मराज वेदान्तकार (असमान)

## याचना !

देव ! याचना है अनन्त की नहीं, केवल अग्रभर की। अनन्त युक्त में समायेगा नहीं, मैं तो अग्र्य से भी हीन हूँ लघु से भी दीन हूँ, तू से भी तुच्छ हूँ। मेरे तनु का तनिमा पर तूम हस्योगे, मेरे हृदय की लघिमा पर तूम, नरम खाओगे; पर तो भी तुम्हारे अग्र्य अग्र से मैं सुभ्र हूँ, कण कण पै बलिहारी हूँ !

मैं पुकारूँ कर कहता हूँ कि तुम्हारे अनन्त को देखने की युक्त में शक्ति नहीं? उन अन्न का उन महानामाओ में भी कपूर साधनाओं के बाद देखा। देखा क्या, केवल भाँकी ही तो ली और फिर तूम आँकल ? मैं तो लघु होने के नाते तूम में के लघु का दास हूँ, लुद्ध का लेषक हूँ, जाह भक्त कहलो। उस छोटे से दीन हीन के दिग बैड, कर मैंने जाना कि जगत् नया हमने छोटे छोटे में ? यह तुम्हारे हुए कंकाल के सामने लड़के हीकर मैंने देखा कि नाथ ! तूम इतने नन्न क्यों हो ? इतना बेबसी का भर उठाकर जब उन आँकों में दो बूँद आँसू भर कर आईं में अपने लुद्धपन का वात कहूँ हो तो नाथ ! जान पड़ा कि तुम्हारा बबसा का क्या अर्थ है, तुम्हीं बताओ इम बबसा का भार उठाये। कल को सोच म इतने आतुर और व्याकुल रहन हो।

वह जिसकी व्याकुलता को देखकर तूम ऊँच से नीच उतर आत हो उसका; मित्रगिज्ञाना भां तो सुनो; यह कहना है मुझे अनन्त नहीं दाखता, मुक्त म असीम नहीं समाता; और तूम बराबर उसम अनन्त को उतारो हो, असीम को निहावर करते हो। देखना यह दान तो तनु: मात्र है, अनन्त का भार वहन करने का उसमें सामर्थ्य कहाँ, असीम की बीज करने का उसमें बल कहाँ,

बस देव ! तूम प्रकृत के लिये अनन्त को मन बिबेरो, संवक के लिये असीम को मत ओलो; इस तुच्छ के लिये तनिक सा दो, लघु के लिये अपने अग्र्य को उतारो, उस महान् को लघु रूप में बिबेरो, उस विराट् को तनु रूप में दर्शाओ, उस असीम को संता के द्वार से भाँकने दो। भिक्षापान लघु हो तो मधुकरा भी तनिक सी दो जैसे पात्र में अर्जल भर अन्न, सीप में स्वाति का अमृत विन्दु; बस यही तो पात्रक का सर्वस्व है, तुम्हारे तनिक से उसकी अन्त तुद्धि, तुम्हारे अग्र्य से उसका असीम आनन्द !!

"द्विरेक"

## प्राच्य और प्रतीच्य

[ ले० श्री व० भीम देव ]

[ यह लेख रवीन्द्र जयन्ती के दिन गुरुकुली साहित्य परिषद् में पढ़ा गया था।—सं० ]

ईसा की सातवीं शताब्दि में हिमालय के उच्च भू-सृष्टियों की उस और एक मानवी अपनी सरस्वती यात्रा के लिये सज्ज हो रहा था। हिमालय की बर्फाली ऊँची चोटियाँ भाँक भाँक कर उसे इस यात्रा से रोकना चाहती थीं। उसकी राह में भयावहने जनों की भर माग थी। असंख्य हिंस्र पशुओं का वास था, ऊँची पहाडियाँ यात्री को भूलभूलेल्या में डालने के लिये रुकी थी। यात्रा में जो २ भयंकरता हो सकती थी, सब थी।

यात्री चल पड़ता है। सभी प्रकार की आपत्तियों का मुकाबला करता है। दिन के बाद दिन बीतते जाते हैं। मास के बाद मास गुजर जाते हैं। एक वर्ष, फिर दो वर्ष और आखिर तीन वर्ष इयतीत हो जाते हैं। यात्री उद्विग्न स्थान पर पहुँच जाता है। नालन्दा विश्वविद्यालय के कुल पति शीलचन्द्र के पास जाकर वड कहता है—  
“योगराज के मित्रान्तों को सोखने की इच्छा से मैं यहाँ देश से चल कर यहाँ आया हूँ।”

यह यात्री अद्भुत विद्वान् ज्ञानमग्न था। उसने चीनी भाषा में ७४ भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद किया। उसके बाद अनेकों भारतीयों ने ऐसी भयंकर यात्रा की और चीन में भारतीय संस्कृति का सन्देश पहुँचाया। वह संस्कृति चीनतक ही सीमित न रही, वह समुद्र को लाँचकर कोरिया और जापान में भी पहुँची।

किसी समय भारत में हिन्दू-संस्कृति का जोर था। अश्वमेध के व्यवहारी भारत में आते थे और इस विठ्ठ संस्कृति से देशों पार कर विठ्ठ बन जाते थे। अश्वमेध ने ही इस संस्कृति को मिश्र, यूनान और फिर सारे यूरोप में फैलाया। उसने स्पेन में आकर युनिवर्सिटियाँ खोली। वह प्राच्य भारतीयज्ञान धुरा का वाहक रहा है।

राम और रावण की कठानी बिना रूप में परिवर्तित होकर भिन्न २ देशों में फैल गई। आज भी मेक्सिको में राम और रावण के युद्ध का खेल किया जाता है।

भारतीय संस्कृति का टंका तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान, यामा, इण्डोचीन आवास्तुयात्रा, फारस, अरब, मिश्र, ग्रीस, स्पेन सभी देशों में बज चुका था।

भारतीय संस्कृति का फलबारा फूट पड़ा था उसके शीतल जल कण भूमण्डल की मानव जाति का शान्ति दे रहे थे।

पर, आज विश्व का व्यतिक्रम हुआ है। प्रलोच्य देशों के मानव प्रबल हुए हैं। अयेकों ने भारत को पराल किया और अब उसकी संस्कृति का भी नाश करने में लगे हैं, जापान ने तो पाश्चात्य सभ्यता का पूरा अनुकरण शुरू कर दिया है। उसने कोरिया के स्वभाग नियंत्रण को छीन लिया और आज भी चीन और जापान प्रतीच्य सभ्यता की भङ्गकीली छाया में रहकर परस्पर संघर्षनाश करने को तुले हुए हैं।

इधर भारत वर्ष में कोई भी ऐसा शिक्षित मिलना कठिन है जो पाश्चात्य सभ्यता से अज्ञात हो। प्राच्य और प्रतीच्य संस्कृति का आज घोर संघर्ष उपस्थित हो चुका है। आज पश्चिम ने भौतिक यत्न इतना बढ़ा दिया है कि उसके सामने काव और स्थान ने भी लोड़ा मान लिया है। जर्मनी में जो बोला जा रहा है वह उन्नीसवीं सभ्यता में भी सुना जा सकता है। दूर २ के मनुष्यों का परस्पर सम्मिश्रण हुआ है। सारा संसार एक होना हुआ दिखाई देता है।

परन्तु आज भी वसुधैरा में “वसुधैव कुटुम्बकम्” की भावना नहीं फैल पाई। सभ्यता और संस्कृति के नाम पर गोरे कालों का, धनी निधियों का, बनी निधियों का गला बजाते हैं। जिन भौतिक आविष्कारों के प्रभाव से दुनिया एक होती हुई दिख ई देती है उन्नीसवीं सभ्यता के, हिंसा की भावना को जगृत किया जा रहा है। प्रतीच्य धन धान्य ने समूह होकर भी, आकाश और समुद्र पर विजय पाकर भी अपने आप पर विजय न पा सका। वह आनन्द की प्राप्ति के लिये लालायित हो रहा है।

किसी समय भारतीय संस्कृति का जो फलबारा सारे संसार के प्रदेशों पर शीतल जल कण छिड़क रहा था उस फलबारे के छिद्रों में पाश्चात्य के कल फलबानों की मिट्टी पड़ी है। पानी निकलना बन्द हो गया है। पूर्व की संस्कृति पराजित होने लगी। भारत में ईसाईयों ने कहा— हम ३० वर्ष में भारत को ईसाइयत की पाषाण पहना देंगे। पर, इसी बीच में ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव होता है। ऋषि ने बन्द छिद्रों को खोल दिया। आक्रमणकारी पाश्चात्य सभ्यता के सामने आस रक्षा की कठार दीवार खड़ी कर दी। ईसाइयत वहाँ टकरा टकरा कर स्वयं नष्ट प्रष्ट हो रही है।

फिर, इस अन्त रक्षा की दीवार पर खड़े होकर, सर्वप्रथम समभाव के मूल स्वरूप स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिक्षक बिबेका भन्द ने समस्त संसार को भारतीय संस्कृति का सन्देश सुनाया। राममोहनराय आदि नता प्रां न मानवता के सम्बन्ध से भारत का सारे संसार से जोड़ने का यत्न किया।

आज भारत में गुरुकुल जैसा सभ्यता प्राच्य और प्रतीच्य का सम्बन्ध करने में संलग्न है। १९१५ के महायुद्ध के बाद आनन्द का गवेषण करने वाले लोगों को भारत ही आवास भूमि बन रहा है। उन्होंने हम संसार कारी युद्ध से समझ लिया है कि पाश्चात्य सभ्यता असन्तोष जनक है।

ऐसी अवस्था में राजनैतिक जगत् की आँख आज महात्मा गांधी की ओर लगी हुई है। प्रतीच्य के मानव उन्नीसवीं के चरणों में आकर शान्ति प्राप्ति की आशा रखते हैं। दार्शनिक दुनिया में सर राधा कृष्णन् ने हिन्दू धर्म के तत्व को दिखला कर आध्यात्म पिपासुओं को आश्चर्य किया है।

साहित्य संसार में विश्व कवि रवीन्द्र ने भारतीय संस्कृति का आकर्षक नाटक खेले कर दिखाया है। (शेष पृष्ठ ५ पर)

# गुरुकुल

१५ आषाढ शुक्रवार १९६७

## प्रोफेसर सैयद

( आचार्य अभयदेव जी )

एक दिन प्रातःकाल मैं अपने आचार्य कार्यालय में बैठा था कि हमारे लेखक महाशय ने मुझे सूचना दी कि हलाहवाबाद के प्रोफेसर सैयद आप से मिलना चाहते हैं। एक प्रोफेसर आये हैं यह देखकर मैंने कहा कि अवश्य आ जायं, अभी आ जायं। बैठ और छड़ी हाथ में लिये हुए एक सज्जन मेरे कमरे में आ पड़े। उनके कपड़े बाहर के नहीं थे फिर भी उनकी पोशाक सादी थी। उनके चेहरे और शय्याबनी से सादगी, सरलता और वैदिकी प्रकट होनी थी।

उन्होंने पूछा, "गुरुकुल के प्रिंसिपल आप ही हैं?"

मैंने कहा, "जी हाँ।" मैंने भी उनका परिचय प्राप्त किया। हम दोनों का गीर्ण ही एक वस्त्र के प्रति नयापन जाता रहा। मैं निराश होकर अपनी आँवों द्वारा उन्हें स्वयं नरक से भापने लगा। अन्त्याक एक मात्र गैरा इच्छा कि कहीं ये मखान वे ही तो नहीं हैं जिनमें कि मित्रों के लिये कई वर्षों हुए कानपुर या हलाहवाबाद नगरों का विचार बन गया था। अतः मैंने उनसे पूछा, "क्या आप वैदिक योग-ज्ञान में भी लेख लिखने करते हैं?"

"हां, रामदेव जी का शरीर कूट गया है यह लखर मैंने बड़े तत्त्व से आचरणों में पढ़ी है। वे मेरे बड़े मित्र थे। मैं वैदिक योगज्ञान में अक्षय लेख लिखा करता था और उन सब लेखों की कاپियाँ मेरे पास मौजूद हैं। अभी मैंने स्वामी दयानन्द पर 'प्रबुद्ध भाग्य' ? में एक article ( लेख ) लिखा है। Apostle of reasoning) लक्ष्मिकान का मत) उसका शीर्षक है। क्या वह आचरण गुरुकुल में आता है?"

अब मैं समझ गया कि ये वे ही महम्मद इफ्तीज़ सैयद हैं जिनका कि जिक्र हिन्दू-मसलमानों की बर्बाद किये पर आचार्य रामदेव जी ने कई बार उम्मेद किया था। बल्कि एक बार कहा था कि कभी कानपुर-अलाहाबाद की तरफ जाओ तो उनसे मिलना, वे मिलने लायक आदमी हैं, कानपुर में नंगा के किनारे एक कूटी में रहना इनको बहुत पसन्द है। पर मैंने देखा कि आज अचानक घर बैठे ही उनसे मुलाकात हो गई।

"गुरुकुल के डेग की शिक्षा मुझे बहुत पसंद है। यहां के वायुमण्डल में आने ही मुझे बर्फीताजुगी मिलती है। यहां के विद्यार्थी कितने सरल और पवित्र लगते हैं। उनके चेहरे देख कर ही खुशी होती है। कालेजों-स्कूलों की पढ़ाई तो नौजवानों को बर्बाद कर रही है।

हिन्दुस्तान का असली जड़ से सुधांग तो गुरुकुल जैसी शिक्षा से ही हो सकता है। मुझे कोरिसे' के इतिहास में भी कुछ तथ्य नहीं दिखाई देता। क्योंकि ठीक तरह के इस्साय ही हमारे देश में कहीं हैं?" इत्यादि बातें वे करते आते थे।

मैंने कहा "तो आप गुरुकुल में आज, आये।" है

"मैं मुसलमन हूँ। मुझे गुरुकुल में कौन रखेगा।

मैं तो गुरुकुल से विचार का सम्बन्ध ४० वर्षों से हूँ। मैं जब ८-९ बरस का था तभी मैंने महात्मा सुप्रियास जी को गुरुकुल में दाखिल होने के लिये एक चिट्ठी लिखी थी। शायद वह चिट्ठी अभी तक मेरे पास पड़ी है जिस में मुझे यह उत्तर दिया गया था कि आपको गुरुकुल में दाखिल करना सम्भव नहीं है। पर यह ठीक है कि मुझे अब अपने बारे में साफ अनुभव हो रहा है कि सरकारी कालिज में मेरा जीवन बेकार जा रहा है। यहां कुछ पैसे मिलते हैं परन्तु आत्मा संतुष्ट नहीं होता। अब कहीं और अपना डेरा लगाना होगा यह साफ दीखता है।"

सत्यद साहब ने फ्रांस ( पेरिस ) की यूनिवर्सिटी' से प्राध्यर्शन विषय पर डॉ. लिट. की उपाधि प्राप्त की है। इन्हें अपने जिस निबन्ध पर वह उपाधि मिली है उस निबन्ध में इन्होंने यह सिद्ध किया था कि भारतीय दर्शन निराशावादी नहीं है। आज कल आप हलाहवाबाद यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं।

वे हिन्दी और संस्कृत के शब्द बहुत आसानी से और मुझ मुझ बोलते थे। कइ अधिक लुप्त जाने पर वे मुझ से पूछ बैठे

"क्या आप योग करते हैं?, आप कूकर योग करते हैं।"

"अबकू, यदि मैं योग करता हूँ तो क्या हुआ।"

"आप का चेहरा और आप की आँवें बनवाती हैं कि आप योग साधन करते हैं।"

इस पर योग साधन की परतियों के विषय में बात बोल होती रही। प्रोफेसर सहित योग के ज्ञातु हैं। योग साधन के लिये ह. वे अपना जीवन बदलना चाहते हैं। योग के लिये कई अग्रह दूर जा चुके हैं। रमज महि की आश्रम में भी जा चुके हैं। हमारे बातें करते हुए बीच में आचार्य कार्यालय का पुराना लेखक महाशय भरदुसिद आ पहुँचा। उसके मैले से कपड़े थे और अपने पीले दाँत निकाले हुए अपनी विशिष्ट हंसी हलसे हुए जो बाल चीन की उसे देख कर मेरे नये मेहमान कहने लगे, "यह आप का आदमी बड़ा आच्छा है, यह श्रीधा है और बेलगा लपेट है।"

मैं अपने कार्यालय के काम में बग गया था और कमें कि प्रोफेसर सत्यद धके हुए थे और उन्हें नींद आ रही थी इस लिये मैंने उन्हें पास पड़ें हुए एक तख्त पर विभ्राम लेने को कह दिया था। और वे उस तख्त पर बिना कुछ विचारों ही मजे से लेट गये थे और लिट्टा ने उनकी आँवें बन्द कर दी थीं। इस बीच में मेरे कमरे में अरु सिद्ध जी एक कोपाविद व्यक्त को साध लेक सुले। वह एक ही हलाहवाबाद सत्याग्रह में जेल जा चुका था और यह कहता हुआ अक्षर आया कि "मैंने सब देख लिया

है कि यह सुकड़ल क्या है। यह सब ठीक है। मैं भी लिखना जानता हूँ। मैं अक्षरपारी में लिखना कि यहाँ कैसा अक्षर इन्तज़ाम है और लोगों से कैसा दुष्प्रवृत्त किया जाता है।<sup>१०</sup> उता लगाते पर मालूम हुआ कि उनको धर्मशास्त्र में भोजन पकाने के लिये बर्तन आसानी से नहीं मिले थे। इसी शिकायत को करने के लिये वह मेरे पास—उस दिन मुक्याबिहाता का काम मैं ही कर रहा था—आये थे। बान बात में उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि इस से तो मुसलमान हो जाना ज्यादा अच्छा है। मुझे ऐसा लगा है कि यह बटना इस लिये घड़ी कि यह साक्षात् तुलना हो सके कि एक तो वह मुसलमान कहने वाला व्यक्ति है जो तब पर लेटा हुआ है और एक वह हिन्दू कहलाने वाला है जो ऐसी बातें कर रहा है।

जब मैं इनमें भोजन के लिये अपने घर के जाने लगा तो रातने में इन्हें महाविद्यालय आश्रम के कुछ कमरे दिखाये। एक ब्रह्मचारी को देख कर वे कहने लगे, "He looks very intelligent" "यह बड़ा बख्शिमाव विद्यार्थी दीक्षित है।" वस्तुतः वह अपनी भेरी में पहला वा दूसरा रहने वाला था। एक दूसरे विद्यार्थी को देख कर कहने लगे कि नम्बारी नन्दरुपी ठीक नहीं है। क्या तुम्हें Bemia है। क्या इनाज करने तो? विद्यार्थी ने कहा, "नहीं अच्छा है। पर मेरा पेट भरता है।" उन्होंने कहा, "भाऊ, मैं तुम्हें योग के कुछ आसन मिलाऊंगा, जिन्हें तुम करोगे तो तुम्हारा पेट ठीक हो जायगा। तब तुम स्वस्थ हो, आभोगे।" वे उस विद्यार्थी को कहने लगे, तुम अभी मेरे साथ चलोगे। मैं अभी तुम्हें आसन बताऊंगा।" उस ब्रह्मचारी का पीछा तो मैंने यह कह कर छोड़ दिया कि आप यह कह न कीजिये। ब्रह्मचारी आगेवा तो इसे आसन में मिला हुआ। पर यह ठीक है कि उन्होंने मेरे घर पहुँच कर अपना भोजन करने से पहले अपने मिला नियम के कुछ आसन किये।

मैंने उनके लिये भ्रष्टान से भोजन मंगाया यद्यपि वे तो यह चाहते थे कि वे मेरा ही भोजन करें अर्थात् सस्त्र, शाक और बेल ही खाये। हाँ मैं यह भूल गया कि उन्होंने सुबह ही मुझ से पूछा था कि आप लोग तो यहाँ गंगा जल पीने होगे। इस पर मैंने उन्हें कहा कि हमारे कुब्बों में गंगाजल ही है तो इस से उन्हें संतोष नहीं हुआ और उनका यह आग्रह रहा कि यहाँ आकर तो मैं गंगाजल ही पीऊँगा। इस लिये मैंने एक सुरामी भर नहर का गंगाजल उन के लिये मंगा रखा था। जाने समय जल पीने हुए वे कहने लगे कि गंगाजल किनना मीठा है। मैं तो इसे लोहापाट्ट कहा करता हूँ। यह हासिम होता है। फिर गमीर होकर कहने लगे कि "नहीं इस जल में ज़रूर कुछ बड़ी किरत है। यह बहुत दिनों तक अक्षर नहीं होता है।"

उन्होंने भोजन बहुत थोड़ा सा किया यह देख कर मैंने कहा, "आपको यहाँ का भोजन अच्छा नहीं

लगा दीखता।" वे बोले, "नहीं, मेरी खुराक ही थोड़ी है। मैंसे ही मैं निराश्रित भोजी हूँ। मैं तो आपको यह कहने वाला था कि मैं अभी तैनीनाल में एक बहुत बड़े सरकारी अफसर का मेहमान था वहाँ माना तब के भोजन मुझे मित्ते थे। पर मैं खूब कहता हूँ कि वहाँ मैं तंग था। आज ही मैंने जी भर कर भोजन किया है।"

भोजन के बाद मैं अपने काम में लग गया और वे मसुरी चले गये। पर उनका एक वाक्य अभी तक मेरे कानों में गूँज रहा है, "मेरी राय में वैदिक धर्म कोई भ्रष्टवच नहीं है। यह तो एक Science (साइन्स) है इसी लिये मैं इसे सर्व अष्ट मानता हूँ।

उनका यह कहना भी मुझे याद है, जब उन्होंने कामा मांगते हुए और बड़े संकोच ने कहा था, "आप मुझे माफ कर, मुझे दीक्षता है कि अब आर्यसमाज भ्रष्टवच होता जा रहा है। यह हम मुसलमानों को अच्छा बनाये, इसको जगह मुसलमानों ही नकल करने लगा है। स्वामी दयानंद आर्यसमाज को जैसा चाहते थे वह बात अब इसमें नहीं रही दीखती।" क्या उनके इस कहने में सच्चाई नहीं है!

प्रोफेसर सेव्यद को मैंने ब्रह्मण माना। बेशक उन पर मुसलमान का लंघन लगा हो पर बर्लव्यवस्था के अनुसार वे ब्रह्मण विभाग में ही आयेगे। बर्लव्यवस्था यदि एक जोषित शाक (साइन्स) है, केवल एक साम्प्रदायिक रूढ़ि नहीं है तो यही कहा जाना चाहिये।

(पृष्ठ ३ का रोष)

नहीं, इस विरव कवि ने विश्व भारती संस्था के द्वारा प्राच्य और पाश्चात्य के मिलन की अनुभूति का प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया है। संसार को शान्ति का मौलिक अवस्थाओं को सुदृढ़ बनान में लगे हैं।

आज के चरित्र नायक का जीवन प्राच्य और प्राच्य के सुमयुर संगम का आधारभूत शिलाभा को रखने में व्यतीत हो रहा है। यह कवि हृदय-उपनिषद् की आध्यात्मिकता से प्रभावित है। उसकी दार्शनिकता का श्रोत ईशापनिषद् है। वह प्रकृते के प्रत्येक पदार्थ में परमात्मा की लीला को देखता है। उसे हर जगह 'सर्व शिबसुन्दर' का भाँकी मिलती है।

[असमाप्त]

## यथार्थ ज्ञान कैसे प्राप्त हो ?

[वे०-भा०० महानन्द जी]

गताक से आगे

यथार्थ ज्ञान में जब सारा शक्ति निहित है तो उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। वह कैसे प्राप्त हो? शायद उसकी आवश्यकता का तीव्र अनुभव ही उसकी प्राप्ति का उपाय है; क्योंकि पत्रले कह चुके हैं कि प्रारम्भ में ही अन्त निहित है। यथार्थ ज्ञान के बिना सब कुछ बेकार है, अतः सब कुछ छोड़कर यथार्थ ज्ञान को प्राप्ति में

लग जाना चाहिये। मुझ में शक्ति नहीं है, इसका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि मुझे यथार्थ ज्ञान नहीं है। यथार्थ ज्ञान के बिना सब कुछ सन होते हुए भी भी हमारे लिये असन सा है पर मरेकल तो यह है कि हमकी प्राप्ति कैसे हो? मैं इसका अधिकारी अपने को किम थिचि में समझता हूँ? जब कुछ छाड़ कर डमी की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करूँ। अर्थात्, मुझे इतना ज्ञान तो इस समय है कि यथार्थ ज्ञान के बिना सब कुछ बेकार है; और मुझे इस समय यथार्थ ज्ञान लेना मात्र भी नहीं है? यदि लेना मात्र भी ज्ञान नहीं है तब तो इस बात का भी ज्ञान नहीं है; और यदि इस बात का ज्ञान है तब तो सब कुछ ज्ञान ही है, क्योंकि बिना सब कुछ जाने हुए मुझे लेना मात्र का भी ज्ञान नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि समष्टि व्यष्टि से अविभाज्य है। इस प्रकार हम जो कुछ भी जानते हैं उसकी दृष्टि से सर्वज्ञ, और जो नहीं जानते हैं उसकी दृष्टि से नितान्त अज्ञ हैं। यदि हम इस बात को जानते हैं कि हम नितान्त अज्ञ हैं, तब तो सबज्ञ ही हैं, क्योंकि बिना सम्पूर्ण के ज्ञान के अंश का भी ज्ञान नहीं हो सकता; इसी हेतु से हम अज्ञ भी ठहरते हैं और सबज्ञ भी ठहरते हैं। क्योंकि बिना सर्वज्ञता के अपना अज्ञता का भी ज्ञान नहीं हो सकता। इस तीरे से यदि हम किमा भी निर्णय पर पहुँचें, यह हमारा वह निर्णय वास्तविक है, तो वह हमारा सर्वज्ञता का प्रमाण है। हम यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, इसका तात्पर्य यह है कि हम इस बात को यथार्थ समझते हैं कि हमें यथार्थ ज्ञान नडा है, अर्थात् हम समझते हैं कि अपनी अज्ञानता का यथार्थ ज्ञान मुझे प्राप्त है। किन्तु यदि वस्तुतः इतना यथार्थ ज्ञान मुझे प्राप्त है, तो अर्थात्गति से सारी समष्टि के ज्ञान की सत्ता मुझ में विद्य हो जाती है। क्योंकि बिना समष्टि ज्ञान के व्यष्टि-ज्ञान सम्भव नहीं है, जैसे बिना समुद्र के तरङ्ग असम्भव है। यदि कहें कि हम यह भी नहीं जानते, तो यह तो जानते हैं कि हम यह भी नहीं जानते। यह भी ज्ञान हमें बिना समष्टि के ज्ञान के प्राप्त नहीं हो सकता। अतः अन्ततोगत्वा हम किमा भी प्रकार से अपना सर्वज्ञता से छुटकारा नहीं पा सकते। और इसी प्रकार की युक्ति से हम नितान्त अज्ञानी ठहरते हैं, क्योंकि व्यष्टिगत अज्ञान समाष्टगत अज्ञान के बिना नहीं हो सकता। और दोनों बातें परस्पर विरोध हैं कि हम नितान्त अज्ञ भी हैं और नितान्त सबज्ञ भी हैं; तो फिर कौन सा बात माना जावे? अनुभव विरोध तो शान ही है। अतः यदि कुछ भी दोनो ही हैं; और दोनों परस्पर विरोधी भूमों का एकत्र मेल सम्भव नहीं, बल्कि विरोध समझा है। क्या हम अभीष्ट सबज्ञता हैं; अतः उसा को चुन लें? यहाँ चुनने का तो बात नहीं, यहाँ तो यथायानुसन्धान का बात है।

जिस वस्तु को हम नहीं जानते, उसके विषय में यह भी कैसे जानते हैं कि उसे हम नहीं जानते? वह ज्ञान-विषयता के अभावज्ञान का भी विषय कैसे हुआ? अतः (हम नहीं जानते) वह कथन परस्पर विरोध है। यदि हम नहीं जानते तो यह कह भी नहीं सकते कि उसे हम नहीं जानते। अतः अज्ञानता का वह लघिष्ठत ने ज्ञाना है।

तो क्या यही पक्ष हीक है कि हम सब कुछ जानते हैं? तो इस तथ्य की अनुभववत्ताक स्थित कैसे प्राप्त हो? यह कभी विकट समस्या है। परस्पर हृत्-दूरी और अपनी अनुभूति के सम्बन्ध को पुनः २ विचार के द्वारा दूर करने का प्रयत्न करने से यह अस्मत्सन्ध दूर हो सकता है, ऐसी आशा होती है। 'ज्ञान से ध्यान होता है' और 'ध्यान से ज्ञान होना है'। हममें ध्यानोन्मात्र तोप जो रामानुज ने दिया है, सो ठीक नहीं है, क्योंकि दोनो ज्ञान में ईषद्वयक और पूर्णव्यक्त के रूप में अन्तर है।

आपातनः सत्य में किमनी भी अशक्ति मान्य पक्षी हो परन्तु शक्ति उसी में है। पूर्ण सत्य की प्राप्ति बहुत दुष्कर है। किन्तु हम एक क्षण भी पूर्ण सत्य की अनुभूति, चाहे वह यथार्थ है। या अयथार्थ, के बिना नहीं रह सकते। किमी न किमी बात को हम पूर्ण सत्य अवर्य समझते हैं। किन्तु जब हम उस बात की पूर्ण सत्यता का परोक्षण करने लगते हैं, तब ऐसा लगता है कि पूर्ण सत्य तो अभी बहुत दूर है। इस प्रकार पूर्ण सत्य सबज्ञ अज्ञता रूप में रहता है। हम से कुछ पूर्ण सत्य का ऐसा स्वभाव प्रतीत होता है कि वह ज्ञान या विषय नहीं है, वह विषयीरूप है। जबतक सत्य विषयीरूप में रहता है तबतक उसकी पूर्णता की प्रतीति होती है, जब हम उसको विषय रूप में देखते हैं तब उसकी अपूर्णता प्रतीत होती है। अतः ऐसा लगता है कि पूर्ण सत्य विषयी के रूप में है। अर्थात् आत्मा पूर्ण सत्य है, क्योंकि आत्मा विषयी है। फलतः आत्मा के तन से ही पूर्ण सत्य की प्राप्ति होगी, और उसकी प्राप्ति नितान्त आश्चर्यक है, क्योंकि उसके बिना कुछ भी प्राप्य नहीं है। तब यह समस्या है कि आत्मा, जोकि पूर्ण सत्य है, कैसे प्राप्त हो? शायद उसकी इसी रूप में प्राप्ति हो सकती है कि जो कुछ भी विषय है उससे वह भिन्न है, क्योंकि वह विषयी के रूप में ही प्रतीत होता है। हम उसे इसी रूप में समझ सकते हैं कि वह ज्ञाता है, ज्ञेय नहीं है।

और उसकी प्राप्ति का उपाय है सर्वरुष्णा विनिर्मिक, क्योंकि वह जो कुछ भी हमें ज्ञात है उन सबों से भिन्न है। पूर्ण सत्य की प्राप्ति के बाद कुछ भी प्राप्य नहीं रह जाता, क्योंकि जो कुछ भी प्राप्य है वह पूर्ण सत्य में अपनर्भूत है। और उसके बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि जो पूर्ण सत्य है वह ही एक मात्र सत्य है। और वह सर्वरुष्णा परिस्थाप से प्राप्त होता है। जैसा कि उपनिषद् में कहा है—“न कर्मणा, न प्रजया धनेन, स्वर्गो नैक अमृतत्व-मानयुः”। हम लोग रुष्णा से अपनी पूर्ण वाहते हैं, किन्तु पृथि सर्वरुष्णा विनिर्मिक से होती है, किन्तु विचित्रता है! जबतक सभी वस्तुओं का अनात्मत्व समझ में नहीं आता, तब तक सर्वरुष्णा विनिर्मिक नहीं हो सकती। और इस प्रकार विश्लेषण से हमें सभी वस्तुओं का अनात्मत्व समझ में आता है। इस तर्क सभी वस्तुओं का अनात्मत्व कर्मरः विशेष समझने से सर्वरुष्णा विनिर्मिक प्राप्त हो सकती है।

**गुरुकुल समाचार**

४० जगन्नाथ ३ श्रेणी मलेरिया उपर, ३० र.अकिशोर ३ श्रेणी मलेरिया उपर. ६० योगेन्द्र २ श्रेणी मलेरिया उपर, ६० श्यामबिहारी २ श्रेणी मलेरिया उपर. अनमोहन १ श्रेणी मलेरिया उपर. ६० कन्हय २ श्रेणी मलेरिया उपर, ३० हरिप्रकाश ३ श्रेणी Malaria

गन सप्ताह उपरोक्त ६० रोगी हुए थे। का सब स्वस्थ है। गन सप्ताह भी गभी प्रयास रही। अधिकतम तापमान १०६° फा. रहा। मङ्गलवार वर्षा होने से मौसम अच्छा हो गया है।

इस सप्ताह धार्मिकी सभा की श्रोत्र से राज-निक विषयों पर व्याख्यान कराये गये। पहला व्याख्यान इतिहास के उपाध्याय श्री वेदव्रत जी का 'युद्ध की वर्तमान अवस्था' नियय पर सडा सम्मर्ग हुआ। १० जी ने बड़े सुन्दर ढंग से वर्तमान परिस्थिति को स्पष्ट करने हुए युद्ध के कारणों पर प्रकाश डाला। आप ने मनपाया कि इस युद्ध का कारण गन महायुद्ध के बाद की गई वास्तुई की सन्धि है।

दुसरा व्याख्यान श्री: स्वामी सचदेव जी परिभाजक का हुआ। स्वामी जी कई बार यूरोप हो आए हैं। अन्तर्राष्ट्रिय परिस्थितियों का आपकी विशेष ज्ञान है। अन्न में आपने शक औ का समाधान किया। सभा बड़े मनोरंजक ढंग से समाप्त हुई।

श्री आचार्य जी गांधी सेवासंघ की बैठक में भाग लेने गये थे। लौट आए हैं। उनसे कुलवासिओं ने वहां के अनुभव सुने।

**गुरुकुल कुसुचेंत्र**

१:-शुक्रु उत्तम है। गरमी अच्छी पड रही है परन्तु कमी २ बादल बिर जाने से ठंड हो जाती है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य ठिक रहे।

२:-ब्रह्मचारियों के देर से यह इच्छा थी कि गुरुकुल में उनके के तैरने के लिये एक तालाब होना चाहिये। अब ह्यानसूह के पास एक ३० फीट लम्बा ३० फीट चौडा पक्का तलाब बनना प्रारंभ होया है जो कि जुलाई के प्रारंभ में बनकर तैयार हो जायगा। यह जमीन से ऊंचा होगा और 'कूप' के ताजे पानी से भरा जाया कोना।

३:-बाएमालिक परीक्षा २३ जुल:ई से प्रारम्भ होगी और १ अगस्तसे दीक्षाप्रकाश प्रारम्भ होना और प्रथम ५ श्रेणियों के ब्रह्मचारी गन वर्षों की तरह पहाड़ ( गहन ) पहाड़ पर तथा ६ ए से टम तक बड़े ब्रह्मचारी डलहौरी पहाड़ पर यात्रायें जायेंगे।

४:-आश्रम में धूल न उड़ने पाये इस लिये 'कूप' से पानी झाकर बगाना लगाई जा रही है। सुन्दर सड़कें बना दी गई है। वर्षाशुक्रु के बाद आश्रम का आंगन एक सुन्दर बगीचा बन जायगा।

**गुरुकुल मुलतान**

मह चारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। शुकुनु सहायनी है। अभी तक गर्मी का सर्वथा शभाव है। उसव के बाद धार्मिक परीक्षा हुई जिस में स्वामी ब्रह्मचारी उत्तीर्ण हुए। गन वर्ष पढ़ाई के अनिरिक समय में ब्रह्मचारियों को शीशे पर वेद मंत्र तथा विभादि रचना। सातुन तथा स्वाही बनाना सिखाया जाता रहा है। इन वर्ष से कठियां लगा कर इपड़ा हानने का काम भी सिखाया जायगा। यदि कोई दाम्नी महाशय कठियां देवे' था दिलावे तो यह काम जल्दी प्रारम्भ हो सकेगा। इसके अनिरिक शोध हो एक योग्य व्याधाम मास्टर का प्रवन्ध किया जा रहा है जो ब्रह्मचारियों के सब श्यायामा के अनिरिक लाठी, गतका, तलवार छुरा आदि चलाना सिखायेंगे। ब्रह्मचारियों की सख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही है। पढ़े ई का अभी प्रारम्भ हुआ है। श्रव भी जो सज्जन अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहे पत्र व्यवहार करके करा सकते हैं।

विष्णुमित्र मुख्याध्याता।

**गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ**

**रजत जयन्ती**

आर्य जनता का यह हात हो चुका है कि इस वर्ष फाल्गुन में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थकी रजत-जयन्ती मनाने का निश्चय हो चुका है। श्री मुख्याध्याता जी गुरुकुल-कांगडा ने २५०००) की अर्पण की है। इस धन के एकत्रित करने के लिये अभी से उद्योग शुरु हो गया है। अवकाश पर घर गये हुए ब्रह्मचारी पुरुषार्थ निधि की रसीद बुकें अपने साथ ले गये है वे अपने सरसक और स्थानीय आर्य नेताओं की सहायता से पुस्तक राशि एकत्रित करके लायेंगे। अवकाश पर गये हुए आध्यापक भी दान इकट्ठा करने का उद्योग करेंगे। श्री प्रो० भोपाल जे ने शिमला में अपने आराम का प्रोग्राम स्थगित कर उत्तर पश्चिमीय पंज ब में रजत-जयन्ती धन सहाय प्रचागप प्रमत्त शुरु कर दिया है।

आशा है आर्य जनता के सेवक पूरा सहयोग और सहायता देंगे। गुरुकुल शिक्षा और प्राचीन संस्कृति प्रेमी भाइयों को अभी से गुरुकुल की सहायता न लग जाना चाहिये।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थके 'धर्मशाला' गण हुए ब्रह्मचारियों का वहां के गवर्नमेंट का तैज के विद्यार्थियों ने हाकी में मैच हुआ। ब्रह्मचारियों ने आयु व कद म बहुत कम होने हुए भी कालेज के विद्यार्थियों को एक गोल से पराजित किया। दशकों की आश्चर्य हुआ, जो इस परिणाम के लिये तैयार न थे।

२० जून को मध्याह्न के समय मीरावेन (मिस्सलेंड) कोठी पर पचारी। उधोंने ब्रह्मचारियों का ऊन बुनना व कातना सिखाया तथा 'देश की सेवा के विद्यार्थियों को किस प्रकार तैयारी करनी चाहिये' इस विषय पर उच्छेक दिया।

२२ जून से विशालय नियम-पूर्वक प्रारम्भ हो गया है। १५ दिन बाद सब ब्रह्मचारी इन्द्रप्रस्थ पहुंच जायेंगे। सब ब्रह्मचारी स्वस्थ हैं।

स्मृतिवर्धक

ब्राह्मी बूटी

॥१॥ सेर

सुगन्धित

हृदय साभग्री

॥१॥ सेर

गर्भियों में  
एक बार जरूर आजमाइए

## का प्रसिद्ध

भीम  
सेनी  
सुरमा

आंखों से पानी बहना, सुग्गी कुकुरे सुर्खी, जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुकुल आंखों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ मारा ॥२॥ १ तं० ३)

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन खान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग तरोताजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, आंखों में जलन आदि रोगों में तुरन्त आराम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

## गुरुकुल फार्मेसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहारनपुर )

प्रांच { लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहली—चांदनी चौक  
पटना—मछुआ टोली, बांकीपुर

## भीमसेनी दूतमंजन

दांतों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है

मूल्य ॥१॥ शीशी, ३ शी० १॥)

## सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

## सुपारी पाक

बच्चों के जरियाम रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।

मूल्य १॥१॥ पाच



# गुरुकुल

एक पत्रिका मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

पृष्ठ ५ ]

गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २२ अप्रैल १९६५; ४ जौलाई १९६०

[ संख्या १२ ]

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

### निदान और चिकित्सा

[ मूल गुजगती लेखक, श्री दिनेशत्रिवेदी, अनुवादक: श्री धर्मराज वेदालङ्कार ] (३)

### गुरुकुलसांस्कृतिक शिक्षणालय की विशेषताएं

गुरुकुल एक शिक्षणालय है राष्ट्रिय शिक्षा का तीर्थस्थान है। गुरुकुल अपने जन्म से लेकर परिपक्व अवस्था तक किन भावनाओं के आधार पर चल रहा था और प्रान्त जाति आदि के भेद का भुलाकर किन ऊँचे ध्येयों से प्रेरित होकर देश के कोने कोने से माता पिता अपने लाड़ले बच्चों को शिक्षा के उदरय से गुरुकुल की बन भूमि में भेजते थे, इन सब बातों को स्मरण कर लेना आवश्यक है। शिक्षा का उदरय वास्तविक शारीरिक, मानसिक, तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करना है। वैदिक शिक्षा में ब्रह्म तर्कश्रमका स्थान इसी लिये है कि इस आत्म द्वारा ज्ञान और कर्म दोनों की समुचित उन्नति हो सकती है। जिस शिक्षापद्धति से बालक के शरीर का हान्य होता है, मन निर्बल बनता है तथा आचार में भ्रष्टता आती है, वह शिक्षापद्धति सर्वथा त्याज्य है। जो शिक्षा जीवन समग्र में सहायक नहीं सिद्ध होती और जिस शिक्षा को मुला देने से ही रोटी का सवाल हल होता हो, ऐसी शिक्षा से इस देश का निर्वाह अधिक देर तक नहीं हो सकता। वर्तमान सरकारी शिक्षा का क्रियात्मक जीवन में कोई उपयोग नहीं। धार्मिक शिक्षा के अभाव को पाकर तथा झूठे इतिहास से भारतीयों के भाव को कुलपित होता देखकर आर्यसमाज को गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता अनुभव हुई। इस प्रणाली की विशेषताएं निम्न हैं—

१. ब्रह्मचर्य,
२. शरीर स्वास्थ्य,
३. शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा,
४. धार्मिक शिक्षा,
५. ईश्वर स्तुति; अध्यात्म-वृद्धि के रूप में,
६. ईश्वरस्तुति तथा आर्यभाषा (राष्ट्रभाषा हिन्दी) की मुख्य भाषा के रूप में शिक्षा।

७. अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं की गौण रूप में शिक्षा,  
८. वेद, वेदाङ्ग, आयुर्वेद तथा इतिहास, अर्थ शास्त्र, पशुचिकित्सा आदि वर्तमान विद्याओं का पठन।

९. २५ घण्टे गुरुओं तथा शिष्यों की श्रुद्धा रहना,  
१०. समान आयु वाले विद्यार्थियों का एक साथ मित्रभाव से रहना तथा मद्य के साथ स्नानपान आदि में समान व्यवहार होना।

११. दुनिया के विपैले वातावरण से दूर रहना,

१२. खली हवा, रोशनी, उत्तम और माला भोजन तथा व्यायाम आदि स्वास्थ्य के लिये उपयोगी बातों की व्यवस्था।

१३. देशकी संस्कृति के अनुकूल पाठ्यक्रम (Course of study) का प्रचार करना।

१४. स्वतन्त्र मानस के विकास के लिए उचित वातावरण तय्यार करना।

१५. देश की आर्थिक स्थिति का ध्यान रखते हुए कम से कम शुल्क वर रखना।

१६. प्रत्येक वर्तमान शिक्षापद्धति को खूबियों से फायदा उठाना।

### उज्ज्वल भविष्य की कल्पना

उक्त शिक्षापद्धति में ये गुजर कर जो कमशील ब्रह्मचारी जगत् के सम्मुख अविभूत होंगे उनके विषय में जो मुनदरी कल्पना को गई थीं वे निम्न प्रकार से थी—

(१) सम्भूत को हजारों हस्त लिखित पुस्तकें अमुद्रित होने से दुर्लभ हैं। तंजावर तथा देश के अन्य भागों में अनेक साहित्यिक ग्रन्थ पड़े हुए हैं जिनके उद्धार के लिए संशोधन की आवश्यकता है। इस प्रकार के कार्य को करने के लिए लौकिक तथा वैदिक संस्कृत के प्रबन्ध पदम धुरन्धर विद्वानों की जो अग्नि भी जानते हैं जरूरत है। अनुसन्धान का यह कार्य गुरुकुल शिक्षा के परिश्रम स्वरूप सफलता से सम्पन्न हो सकेगा।

(२) राष्ट्रिय संस्थाओं में गुरुकुल के छात्रक अध्यापन कार्य कर सकेंगे।

(३) देश की जनता को धर्मोपदेश देने वाले मन्त्र प्रचारक होंगे।

(४) जो बड़ी बड़ी फासे नहीं भर सकने, ऐसे सारी ब लोगों के लिये हमदर्द बंध बनने।

(५) सचाई से कृपित तथा व्यापार करने हुए देसकों मच्छुद्ध का कारण बनने।

(६) क्रियात्मक विज्ञान तथा कलाकौशल द्वारा आर्थिक उन्नति करने।

(७) सरकारी नौकरियों में देश के अच्छे दिमाग रूप ज्ञान हैं, यह न होकर राष्ट्र सेवा में जातकों का उपयोग होगा।

(८) पश्चात्त्य संस्कृति के बंध में जाते हुई प्रजा को वैदिक संस्कृति का मार्ग दिखाने।

(९) आत्म धर्मों का पालन करके समाज रचना में जीवन संचार करने वाले होंगे।

(१०) गणकर्मनिगार बर्ण व्यवस्था को क्रियान्वित करके महर्षि नवानन्द का अष्टा अदा करेंगे।

(११) समस्त विश्व में आर्य धर्म की ध्वजा फैलाएंगे। नास्तिकता के अन्धकार को दूर करके आस्तिकता के प्रकाश का विस्तार करेंगे।

(१२) धर्म समाज और राजनीति में विश्वमान पारम्पर्य का नाश करेंगे और सच्चे मनु-कानन बनाने वाले-Legislator बनेंगे।

(१३) सामाजिक कृतियों के बन्धनों को तोड़कर क्रांतिकारक बनेंगे।

(१४) वेद का पुनरुद्धार करेंगे।

(१५) प्रजा में सामाजिक तथा धार्मिक उन्नति हो ऐसे उपायों का अवलम्बन करेंगे।

(१६) गुरुकुल के ज्ञानकों का वैयक्तिक जीवन उच्च और सदा होगा। वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन में विभेद नहीं हो, इस सचाई को वे अपने व्यवहार से प्रमाणित करेंगे।

(१७) ऐसे आदर्श विद्याभ्रत ज्ञानक होंगे जो वेद तथा अन्य ग्रन्थों में बखित ब्रह्मचर्य को प्रत्यक्ष करने बतलाएंगे।

इन उद्देश्यों तथा भावी आशाओं के साथ आज से चार दशहदी पूर्व महात्मा मशीराम जो ने गुरुकुल की स्थापना की थी। गुरुकुल रूप में पर्याप्त चल रहा था। इस बीच में इस संस्था के लिये तदर्थ विद्वानों तथा विचारकों ने जो विचार प्रकट किये थे तथा जिन आशाओं का सेवन किया था वे अनन्य योग्य हैं। बरतानवी (Barth) साम्राज्य के भूतपूर्व प्रधान सत्री श्रीयुक्त मैकडाल्ड ने गुरुकुल पर अपने समस्त देने हुए कहा था कि "गुरुकुल आर्य संस्कृति की भाषना को फैलाने वाली एक धार्मिक संस्था है। इस संस्था में शिक्षणालय तथा सठ इन दोनों के नस्त्रों का संगम है। इस संस्था में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी नहीं, विद्यार्थियों को सरकारी पाठ्य पुस्तकें नहीं पढ़ाई जाती और न ही उन्हें सरकारी उपाधि मिलती है, भारतीय शिक्षण में यह एक असाधारण क्रान्ति है।" अमेरिकन प्रोफेसर तथा शिक्षाशास्त्र में माहिर श्रीयुक्त माथरन नेब. फेल्सने गुरुकुल में रहकर सूक्ष्म अवलोकन करने के बाद जो लेख लिखे थे उनका मार्गो यह है- "पृथ्वी के एक

विद्यार्थी के रूप में शिक्षण और कला की प्रोजे में मैं अपने घर से निकला था। मेने सारे हिन्दुस्तान का शिक्षण संस्थाओं का निरीक्षण किया परन्तु गुरु शिष्य का जो गाड़ सम्बन्ध मुझे गुरुकुल में दिखाई दिया वैसा अन्यत्र नहीं मिला। हिन्दुस्तान के सरकारी शिक्षणालय हिन्दुस्तानियों को अंग्रेज बनाने के काबजते हैं। वतमान युग के लिये हरिद्वार का गुरुकुल एक नवीन तथा आच्छाद कारक संस्था है। इसमें बौद्धिक तथा नैतिक शिक्षण का सुन्दर सम्बन्ध है। यहां विद्यार्थी अपने अन्तर सादगी ब्रह्मचर्य स्वाभिमान तथा आज्ञा पालन आदि गुणों का विकास करते हैं। ब्रह्मचारी आर्य में एक दमरे के मूय दमर में हिस्सा अंगेने हैं। ब्रह्मचारी मूल मजदगी का काम भी कर सकते हैं। ब्रह्मचारियों के दिमाग में किसी काम मजदब के सिद्धांत ठसे ज्ञाने हों, वेको शक्त नहीं। उनके मांसने वैदिक धर्म का आदर्श रखा जाता है। नियंत्रण कायम करने के लिये धर्ममार्ग द्वारा ब्रह्मचारियों के अग्रत करण को प्रेरित किया जाता है।

(असमाप्त)

## गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बाल शिक्षा का स्थान

(ने. ०—श्री कौशल विद्यानंदर)

(१)

यों तो शिक्षा स्वयमेव एक महान शक्ति है परन्तु बाल शिक्षा की समस्या तो इस शक्ति की 'अधातो शिक्षा जिज्ञासा' होने से आदिम, प्राथमिक आरंभक आध्यात्मिक प्रतिक्रमणी है। यहाँ पर हम उच्च रचना की गीब डालने का उपक्रम करने हैं जो बालक को मनुष्य तथा मनुष्य से देवपन प्राप्त करने में सहायक होता है। बालक क्या है? यही न कि लघु रूप में मनुष्य कविवर। यई सुर्ध है जो (The child is father of the man) कहा है वह इसी स्थापना को पुष्ट करता है कि बालक में मनुष्य बनने की प्रवृत्ति अन्तर्निहित है। परन्तु जब हम गृह या शाळा में या अन्य संस्थों में बालक के साथ परिचय में आते हैं तब हमें यह मालूम होता है कि हम एक अप्रतिष्ठित, सुकोमल, चञ्चल तथा क्षय में सहायता की इच्छा रखने वाले जीव के संपर्क में हैं। यह जीवन भी ऐसा हैना नहीं है, विचित्र मार्ग है, नाना आविष्कारों हैं, अद्भुत कौतुक है, बकरा देने वाली शंकाएँ और पड़े २ जिज्ञासा की अग्रतरणिका उसके नख शिख से उतर कर कभी माता-पिता को, कभी अध्यापक-उपदेशक को, और कभी गुरु और आचार्य को परेशान करने लगती है। ध्यान से देखा जाय तो यहाँ से बाल शिक्षा का प्रयोग प्रारम्भ होता है। अथ बालक को उसके माता-पिता ने अपने घर-गाँव और शहर की चार दिवारी से बल्लग कर एक बिलकुल ही सई तथा घर से एक दम मिष्ट परिस्थिति में लाकर बरकी उरहा उरहा बाधम, आंगन ब खेल कूब के लीपाक के स्थान में विद्याशाला, गाँव या शहर के बन्दे गुरुकुल को परिवार तथा माता-

पिता की जगह गुरु और अध्यापक के रूप में उसकी पब्लिक परिस्थिति को बदल दिया है। इस परिस्थिति के परिवर्तन से यह बच्चा लाभ प्राप्त करना चाहते हैं तथा बालक के मन पर इसका नैसर्गिक प्रभाव पड़ना संभव है इस पर भी विचार करते हैं। पहले हम यह देखते कि मानव जीवन में परिवर्तन की आवश्यकता क्यों और कब होती है। परिवर्तन की आवश्यकता से तो इन्कार नहीं किया जा सकता। हाँ, उसका समुचित रूप में है। इस पर मन भेद हो सकता है। परिवर्तन की जरूरत—हमें समझ लेना चाहिए—मानवीय जीवन की मांग है, यह मनुष्य की स्वाभाविक अभिलाषा है। परन्तु इसकी समझी हमारे लिये लाभ कारी होनी चाहिए—इसका प्रयोजन हमारा विकास और रंजन होना चाहिए और इसकी विद्या और शोध एक शब्द में कहें तो परिस्थिति, अनुकूल-सहायक और बान-कर्म की अभिवृद्धि के लिए उपयोगी होनी चाहिए। हमारे देश के दूसरे शिक्षणालयों में भी प्राइमरी—मिडिल हाईस्कूल तथा कालेज (यूनिवर्सिटी के) शिक्षा के केन्द्रों के छात्रों की शिक्षा हमारी इस स्थापना को कुछ ही करनी है कि जीवन की तरह शिक्षा में भी परिवर्तन तथा परिस्थिति का स्थान है और वह भी मनुष्य विकास में अपना प्रभाव रखता है। परिस्थिति में परिवर्तन आ जाने से कठिन से कठिन लोगों के शिक्षार-वाहे वह मानसिक अथवा शारीरिक रोग रहे हो—आमानी से चंगे होने देवे गये हैं। यही परिस्थिति में परिवर्तन ला देने का गुरु, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में लागू होता है। घर की चहार दीवारों में—घरेलू काम काज, घर गिरसी के तरह-० के गार्ड-फ्लग-बच्चों का रोना धाना और घर वालों के रोग-रोग बर्दा करने वालों को परेशान किये देते हैं। इस लिये यह सजुधिन समझा गया है कि नवीन दृष्टि के कार्यालय के लिए जो कि बाल शिक्षा की शोध द्वारा प्राप्त होना है—गुरुकुलों में भूमि तैयार की जाय। यह कुल की भूमियां उन सब इच्छित तथा वृधिन वातावरणों से पूरक होकर अपने तबै स्वतन्त्र रूप से शिक्षा का प्रयोग प्रारम्भ करें।

शिक्षा के सिद्ध २ प्रयोगों की सफलता में जहाँ उपयुक्त वातावरण का स्थान है वहाँ साथ ही शिक्षकों की दक्षता तथा शिक्षा क्रम की व्यवहार-परमार्थ-सिद्धता का स्थान भी उतना ही आवश्यक है। यह ठीक है कि आधुनिक तौर पर बसे हुए नगरों में जहाँ उचित शिक्षा के लिये उचित वातावरण की कमी है वहाँ साथ ही अधिकांश शिक्षकों का स्वार्थ परता तथा शिक्षा क्रम की दृष्टिगत शिथिलता और विवेकानुसरे उससे भी अधिक शोचनीय है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में इन सब कमियों का स्थान नहीं चूँकि यहाँ की शिक्षा शाला कोई शिक्षा की दाह नहीं—कोई रोजगारों का कर्मनी नहीं, और नहीं वह ज्ञान ढर्रे के तालम की उत्कलस है कि जिस महायन्त्र के सब पुर्ण एक ही तरह बन्दने हो, एक ही तरह के टके को बनाने के लिये एक ही ढाँचे में ढाल दिये गए हों। जरा गौर तो कीजिये कि छह साल के बच्चों को शिक्षा का प्रारम्भ निरी परदेसी भाषा में

हो उसकी लिये के लिये अक्षर रखना। बिलकुल अज्ञानी ढंग से हो, गिनती के लिये मुक का बोल-बनाना एक दम सात समुद्र पर बाँधों का सा हो और अक्षर लेखन की कला भी उनकी देसी लिये से मिलनी मुकली न हो। क्या इस प्रकार की मोहन एडुकेशन की नींव हमें हमारे निजी शिक्षा के क्षेत्र को पूरा करने में सहायक होगी? यदि हो भी गयी तो कल्पना कीजिये कि किन्तने अचकचरे रूप में यह हमारे जतीय शिक्षा क्रम मे रच सकेगी, फिट हो सकेगी। (अनन्त)

## गीता

(ले० श्री धर्मपाल)

यह लेख गुरुकुलीय साहित्य परिषद् में पढ़ा गया था। स० मनुष्य शान्ति चाहता है। वह चाहता है। सब विन्नाशों से मुक्त होना। संसार का हाहाकार सुनते २ वह घबरा जाता है, और किसी ऐसी अवस्था को प्राप्त करना चाहता है, जहाँ वह अकेला हो दूसरा कोई न हो, भगवान को छोड़ कर। पर मीठा मुँह करने के लिये सिर्फ गुड़ गुड़ चिन्ताने से वह मीठा नहीं होता। यदि उसे शान्ति प्राप्त करनी हो तो उसे गीता का सहारा लेना चाहिए।

गीता एक व्यक्ति के उस समय के वाक्य हैं, जब वह अपनी उत्कृष्ट अवस्था में था। हिन्दू जाति के आधार भूत जो गीत महाप्रथ हैं, उनमें गीता का सब से ऊँचा स्थान है। गीता का जितना हिन्दू जाति में प्रभाव है, और जितना इसका स्वाध्याय लोगों मनुष्य करते हैं, उतना और किसी ग्रंथ का नहीं। यहाँ तक कि इसका सब भाषाओं में अनुबाध हो चुका है। कां योनिपियन विद्वानों ने कहा है, कि हमारे जीवन में तभी पठता लाघा, जब हम सत्य की भोज में गीता रूपी अमृत को प्राप्त कर सके।

किसी प्रथ की उत्कृष्टता का पना लगाने समय निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है, उसका आरम्भ और समाप्ति कैसी है? उस में क्या २ विषय आते हैं। उस पुस्तक में नवीनता क्या है, और उदाहरणों की सार्थकता किननी है।

गीता का आरम्भ अर्जुन के युद्ध करने से मना करने से होता है जब वह अपने बन्धु बान्धवों तथा गुरुजनों को सामने लड़ने के लिये लड़ा देखा है, वह कहता है—

कथं भीष्ममहं सख्ये द्रोण च मनुजन्दन इषुभि प्रतियोत्सामि पूजाहांवरिखुदन इस प्रकार उने युद्ध से उपरत देखा कर भगवान कृष्ण बार २ कर्म करने का उपदेश देते हैं, और युद्ध करने को प्रेरित करते हैं। वह कहते हैं कि कर्म न करने से संसार का नाश हो जायगा। क्यों कि लोग 'महाजनों येनगना: सन्ध्या' को चरितार्थ करते हैं। इस लिये वे अर्जुन को कहते हैं—'योगस्था: कुरुकर्माणि' 'तस्माद् अहं भारत' 'तस्मात्पुच्छि कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः' और इसका

# गुरुकुल

२२ आषाढ़ शुक्रवार १९६७

## गुरुकुल में सैनिक कवायद

[ श्री मध्याह्निकाना जो के सभापतित्व में १ जौलाई को सब गुरुकुल वास्तव्यों की एक मभा दृष्टि जिम में सब मम्मति से यह निश्चय किया गया कि गुरुकुल के सब ब्रह्मचारी जो नदी किन्तु सचके सब कसारी भी एक घंटा सैनिक कवायद किया करें। इस प्रकरण में कहते हवे गौ शनिवार (२६ जून) को आ-वाय जो ने जो कुछ ब्रह्मचारियों को कहा वह नाचे दिया जाता है—सम्पादक ]

कई श्लोकामयों ने मुझे गुरुकुल में सैनिक शिक्षा के विषय में कहा है। एक दो सैनिक वन्द्युआ के पत्र भी इस सम्बन्ध में मुझ (मंते) हैं। एक व्यायाम प्रसा और सैनिक कवायद रखने वाले सैनिक भाई ने एक विस्तृत पत्र लिखा है, और क्योंकि वे इस विषय में गंभीर कर्तव्य जानते हैं। इस लिये उन्होंने अपने पत्र के प्रारम्भ में लिखा है, "मुझे विश्वास तो यह है कि आग इस तरह पहले से ही जागरूक होंगे फिर भी मैं अपने सन्तोष के लिये आप की सेवा में कुछ कहूंगा" और अन्त में लिखा है, "यह तो मुझे विश्वास है कि आप की दृष्टि में ऊपर की पर्यायों वाले देर से हैं और उनको पुराने करने के लिये आप निरन्तर प्रयत्न शाल हैं।" सो यह ठीक है कि मुझे सैनिक नियन्त्रण में विश्वास है और कवायद, सच व्यायाम गुरुकुल में अच्छी तरह चलें इसके लिये मैं सदा प्रयत्नशील रहा हूँ। कुछ वर्ष पहले दिने सामूहिक कवायद छोटे बड़े सब ब्रह्मचारियों के लिये बाधित कर दा था। मैं स्वयं उसमें सम्मिलित होता था। अन्य उपाध्यायों को भी इसमें सम्मिलित होने का प्रेरणा की थी और कई उपाध्याय इस में सम्मिलित होते आये थे। पर पाठ से यह छूट गई। इसी तरह एक बार कुछ चुने हुए विद्यार्थियों को श्री नारायण राव जी को आभारतत्वा से स्वरूप निर्माण आदि व्यवस्था व नियन्त्रण पूर्ण एवं दूरानीय व्यायामों का अभ्यास बनाना जाय इसका बड़े बड़े यत्न के साथ आयोजन किया था। इन सब का उद्देश्य यही था कि गुरुकुल के ब्रह्मचारियों में उत्तम सैनिक भाव उत्पन्न कि जाय।

पर सैनिक शिक्षा का तात्पर्य क्या है यह समझ लेने की आवश्यकता है। असल में सैनिक शिक्षण द्वारा हम लोग न केवल सीखते हैं यह है मिलकर व्यवस्था पूर्वक सचशक्ति का उपयोग करना। यही सैनिक शिक्षाका तत्व है। इसी में सैनिक शिक्षा का बल है। अनुशासन

आपापानन, नियमित जीवन और अपमान शोक कायं तरगत सैनिक शक्ति की जान है। इस शक्ति द्वारा आपने हम दिना करें या अहिंसा, इस शक्ति का हसरो को भलाई के लिये सदुपयोग करें या अपने स्वार्थ के लिये दुरुपयोग करें यह दूसरी बात है। यह तो एक शक्ति है जो अपने आपमें न तो अच्छी है न बुरी। पर अन्य शक्तियों की तरह इसका सदुपयोग भी किया जा सकता है दुरुपयोग भी।

एवं सैनिक कवायद में हथ वृद्ध और जुगल पहनते हैं या नहीं, कपों पर बन्दूक रखते हैं या नहीं या कुछ नहीं यह हमारे लिये कुछ भी महत्त्व का नहीं है। ये सब हम पर आश्रय रखते हैं कि हम अपनी संघशक्ति का कैसा उपयोग करना चाहते हैं। परस्व लोगों का एक ही वेप हो यह जरूर एक काम की बात है। इस एक रूप में हमने का अपने ऊपर और दूसरों पर एक-संघ होने का प्रभाव पड़ता है—अपने अन्दर संघभाव बढ़ता है और दूसरों पर हमारी संघर्षात्मक और एकता का आत्मक जमता है। यद्यपि कभी भी प्रकार को बाहरी एकता को मैं विशेष महत्त्व नहीं देता हूँ और यह बात मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि यदि हमारे मनों की एकता हो, हम एक भाव से प्रेरित हों, हमारा एक ही अभ्येय हो फिर चाहे हमारी पोशाक आदि की बाह्य एकता विरक्तुल न हो तो भी यह आन्तरिक एकता बाह्य एकता की अपेक्षा हज़रों लाखों गुना बलवती होगी। फिर भी मैं सैनिक कवायद में एक जैसी पोशाक आदि बातों के महत्त्व को समझता हूँ। बाहरी चीजों का भी अन्दर अन्तर होता है। हठ योग में बाह्य क्रियाओं द्वारा अन्दर प्राना या मन पर प्रभाव डाला जाता है। इसलिये बाहरी एकता का भा एक महत्त्व है। वह एक पोशाक, एक बर्तन यथा संभव सब सुलभ और सारी दोनो बाह्येय।

पर सब ये उपाय महत्त्व की बात यह है कि हमारी यह सैनिक कवायद केवल उस एकाग्र घण्टे तक ही साभित न हो जितनी देर यह मैदान में की जानी है किन्तु हमारे दिन रात के सम्पूर्ण जीवन में व्यापने वाली हो। यदि यह सैनिक कवायद उस एकाग्र घण्टे के बाद मुलादी जाय तो वह किसी भी काम की नहीं है। असल में तो अब भी तुम्हारा जीवन सैनिकों जैसा हो इसी आशय से गुरुकुल की दिनचर्या तथा अभ्यनियम बने हुए हैं। पर उनका पालन सैनिक के तौर पर नहीं होता है। तुम्हारे कवायद के समय में 'दक्ष' और 'बाम' करने पर शायं और बायां पैर आगे बढ़े, वैसे हा तुम्हारे दिनभर के नियमबद्ध कार्यों में आत्मा पालन, समय पालन और कार्य तत्परता क्यों नहीं होना चाहिये। प्रातः जब चार-साढ़े चार बजे को घण्टी बजे तब सब ब्रह्मचारी इतनी आत्मीयता से जाग जाय जैसे कि दिन के १० बजे जागे हुए होते हैं, और प्रातः कुर्तियों में लग जाय और रात्रि को साढ़े नौ बजे सब इतनी अच्छी तरह सो जाय कि बादर से देखने वाले को मालूम पड़े कि आत्मन में कोई आदमी रहता ही नहीं है। जब विद्यालय की घण्टी बजे तो सब

ब्रह्मचारी प्रार्थना-स्थान के लिये चल पड़े और जब टकोर बजे तब सबके सब पहुंचे हुए हों। संघ और अग्निद्वार में सब ब्रह्मचारी व्यवस्थित रूप से चेतन होकर बैठे हुए हों और एक स्वर से मन्त्रोच्चारण कर रहे हों। प्रत्येक सार्वजनिक स्थान पर सब नियत समय पर पहुंच जाने हों; भोजन के अनन्तर अपने वर्तन धोने के लिये हाथ धोने के व्यवस्था पूर्वक एक दूसरे को इस तरह स्थापित करने के लिये कि दिना क्रिमी कोलाहल के चूपचाप सब काम कम से कम समय में अच्छी तरह से समाप्त हो जायें। यह सब सैनिक कवयत्न ही तो है। तुम लोग ऊंचे दर्जे के सैनिक अर्थात् धार्मिक सैनिक बनने के लिये यहां आये हो और उसके लिये जिनकी बाध कवयत्न मोक्षों की उत्पत्ति है उसका अग्रसर तुम्हें सदा मिला हुआ है। प्रातः जागरण की जो घण्टी बजती है उसे हम सेना नायक की उठ खड़े होने की सीटी या बिगल समझो, रात को जो सोने की घण्टी बोजी है उसकी आवाज से तुम सुनो और ही तुम में से प्रत्येक को आशा है कि 'मो जा पो-त्रव किमो यी कार्य की टकोर बजे तो समझो सेना नायक का आ उपस्थित होने का' हकम हो गया है।

एक बार शायद मधुर्न-शतादित के समय मेरा आग्रह था कि महाविद्यालय के ब्रह्मचारी एक स्थान से दूसरे स्थान पर पकिबद्ध होकर ही जायें तो एक ब्रह्मचारी मुझे कहने लगा कि "यह क्या, हम भेड़ों की तरह एक के पीछे एक चलते हैं।" मैंने कहा "भेड़ों की तरह क्यों कहते हो, मियादी (सैनिक) की तरह कहो"। तुम भेड़ और सैनिक का भेद समझे? देखो, दो अंग्रेज यदि टहलने निकलते हैं तो अग्रसर उनके कदम इकट्ठे उठते हैं, वे कदम मिलाकर चलते हैं। यह इस बातका शौक है कि मिलकर व्यवस्थित नौर से काम करने का गुण उनके नस नस में समा गया है, उनका स्वभाव हो गया है। यदि हमारे चलते हुवे अनात्मक कदम मिल जायें तो भी हम उन्हें भिगाड़ देंगे-हमें ऐसा लगोगा कि मानों कदम मिलाने से हमारी स्वाधीनता में फर्क पड़ता है। असली बात यह है कि हम स्वाधीनता को जानते नहीं, हम तामसिक हैं। कोई नयी बात करना हमारे लिये दुःख है। जो ऊँच चलता है वैसा ही चलते रहने में हम जड़ आनन्द पाते हैं। यही भेड़ों की मनोवृत्ति है। भेड़े एक दूसरे के पीछे ता चलता है, पर अन्धों होकर जल्सा बरा और पराधीनताग्रह। इस लिये उनकी यदि दिशा बदलती हो तो वे एक दूसरे पर सिपाहियों का तरह एकदम दिशा नहीं बदल सकती। मियादी स्वाधीन होकर जब जिधर चाहे उधर ही मिलकर चल सकते हैं। मियाहियों को कदम मिलाकर चलने में मज्जा आता है, पराधीनता नहीं लगती। सब बात मनोवृत्ति की है। यदि तुम्हारी मनोवृत्ति भेड़ोंकी सां है अर्थात् तामसिक रूप में एक दूसरे का अनुगमन करके चलते चले जाने की है तो तुम्हें उधरदस्ता कवयत्न कराने से भी तुम्हारा कुछ लाभ नहीं होगा। यदि सैनिक को मनोवृत्ति है तो गुरुकुल के वर्तमान व्यवस्था में से ही तुम सच्चे सैनिक बन निकलोगे। अपने अन्तर सैनिक मनोवृत्ति लाओ अर्थात् कठोर अनुशासन, श्रद्धा आशा पालन, नियंत्रित

संयत जीवन, बिना प्रमाद के अपने नियत कार्य को ठीक-ठीक पूरा करने की तत्परता लाओ। तो देखो तुम में ऐसी महान शक्ति प्रकट होगी जो अजकल के घोर से घोर हथियारों से मज्जा सेना को भी परास्त कर सकेगी। सबी बात ता यह है कि (आज्ञा काल का) सैनिक बनना आसान है, (प्राचीन काल का) शिष्य बनना बहुत कठिन है। जिस ब्रह्मचारी के तप की, पित गान्तिक (मन और हृदय संयन्त्री) एकता और अनुशासन की, जिस सर्वात्मना समपल की शिष्य वे-वैदिक ब्रह्मचारी से-आशा की जाती है उसका करोड़ों भाग भी काँच के सैनिक में नहीं की जाता, नहीं की जासकती। इसी लिये मैं तुम्हें ऊंचे दर्जे का सैनिक कहता हूँ। आजकल सैनिक शिक्षा की हवा चल गयी है तो तुम्हें आ मोजा है-यह जोश कब तक रहेगा यह पता नहीं-इस ज़ेरा का लाभ उठाकर तुम कुछ अधिक नियंत्रित, संयत, समय-तालक शिष्य हो जाओ ता अच्छा है। नहीं ता अमल में यह सैनिक कवयत्न की व्यवस्था तो तुम्हारे सच्चे ब्रह्मचारी बनने का एक बाधा और धोटा सा साधन ही है।

### ‘गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा’

उपर्युक्त शीर्षक से जो एक लेखमाला 'गुरुकुल' में गन दो अंकों में छप रही है उसके विषय में इतना परिचय दे देना आवश्यक है कि उस लेखमाला के लेखक श्रीतुम दिनेश जी चिचेदी हैं जो गुरुकुल कांगड़ी में बाल्यायुष्या में पढ़ने गये हैं, जिनके भई ५० चन्द्रकालत आ गुरुकुल के बालक हुए हैं और जिनका पुत्र इस समय गुरुकुल कांगड़ी में विद्या प्राप्त कर रहा है। इनके पिता जी उन पुराने गिने चुने श्रायपुरुवों में से हैं जो कि गुरुगान में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रेम के लिये प्रसिद्ध थे। आशा है गुरुकुल के पाठक इस लेख माना को उचित ध्यान से पढ़ें और एक गुरुकुल दितैय के विचारों में लाभ उठावेंगे।

**प्रम शोधन-**'गुरुकुल' के विगत अंक सं १० में इसी 'गुरुकुलों पर उमड़ती कालीघटा' लेखमाला के एक लेख की पिछली पंक्तियों में "हिजरतियों के बालक" का श्रुतवाच "अधिका तथा अन्य दूर देशों में गये हुए भारतीयों के बालक" इस रूप में हुआ है। इस कारण मनिम्रम की सम्भावना है। लेखक का कथन है कि हमका अधिवाय पाठशाली के उन किसानों से है जो सन् ३० के मन्त्याग्रह के समय टैक्स न श्राद करने के कारण जमीनें जप्त होने पर हिजरत करके वेसी रिवास्तों में चले गये थे। उन माता पिताओं के बालकों के अध्ययनके लिये किसी स्थान पर सहूलियत न थी। वह मुगलता गुरुकुल सांनगढ़ में ही गई थी।

अन्न इसी प्रकार से होता है, अन्न न कहता है नये मोहः मूर्तिर्नन्वात्वन प्रसादानमया अन्नयुत ।

निधनोऽस्मिन्नान्त्वेदः करिये वचनतय गीता का महत्व इस श्लोक से स्पष्ट है ।

सर्वोपनिषदयोगो दोष्ठा गोपालमन्वनः ।

पार्थो वस्यः सुधीर्भोक्ता कृषो गीतासूत्रं महत् ॥

गीता में कर्मयोग का मुख्य रूप से प्रतिपादन है । गीता में कर्म शब्द प्रत्येक कर्म के लिये आया है, जो मनुष्य प्रति दिन करना है । और योग, मोक्ष उपाय आदि अर्थों में आया है ।

योग का अर्थ करने के भगवान कहते हैं—

'योगः कर्मणो कौशलम्' 'मन्मथं योग उच्यते'

कर्मों में कृपानता और दुःख सुख में समानता ही योग है । कर्मयोग का इकट्ठा अर्थ हुआ कि कर्मों को किस कलात्मता से किया जाय कि हम उसका यथार्थ उपयोग उठा सकें ।

शास्त्रों में हमारे कर्तव्य कर्म नियम और यम बनाये हैं । इनको ठीक से करना हुआ ही मनुष्य अपनी तथा समाज की उन्नति कर सकता है । गीता में इन कर्मों का ठीक से उपयोग बताया है । अहिंसा का तात्पर्य यह नहीं कि डाकू घर लूट में और नृत्य उन्मे हाथ न लगाओ । यह आनतापी है—भगवान कहते हैं 'यन आनतायिषो को मार दो' इसी प्रकार अन्य कर्तव्य कर्मों के विषय में हैं । कर्तव्य कर्म करने हुये आत्मा की आभाज का ल्याल रखना चाहिये ।

कर्मयोग के तत्त्व धनलाने हुये रूप कहते हैं—

कर्मण्यकर्म यः पश्येत् शकर्मणि च कर्मणः

सबुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मण्म् ।

कर्म में अकर्म, अकर्म में कर्मदेखने वालाही बुद्धिमान और सब काम करना हुआ भी योगी है । कर्तव्य काम क्या है, और छोड़ने योग्य कर्म क्या है, इस समस्या का हल विद्वान भी नहीं कर सके । वास्तव में कर्म को जानना चाहिये अकर्म को भी जानना चाहिये, तथा विकर्म भी जानना आवश्यक है, तभी मनुष्य सच्चा कर्मयोगी बन सकता है ।

कर्मयोग का यदि संक्षेप में अर्थ कहा जाय तो फल की इच्छा को न रखते हुये कर्म करना है । सन्यासी का लक्ष्य करने हुये भगवान कहते हैं—'अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ससत्यासी च योगी च न निरक्षिर्नशाकियः ॥'

निष्फल कर्म करने वाला ही सन्यासी, अशिष्टोच छोड़ देने वाला तथा अक्रिय मनुष्य सन्यासी नहीं । मानिक त्याग यही है कि कर्तव्य कर्म को अनासक्त होकर किया जाय ।

श्रीकृष्ण के मत में तो मनुष्य कर्म छोड़ ही नहीं सकता, अतः मनुष्य ने जब बाधित होकर कर्म करने ही हैं, तो वह क्यों न अनासक्त होकर तथा फलवांछा न करना हुआ, कर्म करे ।

दूसरा विषय ज्ञानयोग या सांख्य योग है । कर्मयोः।

और सांख्ययोग मार्ग विश्व हैं, पर उहें यह एक है "घास्तास्यैः गम्यते स्थानं तदुद्योगैरपि गम्यते" ।

जब अन्न न आधिभौतिक विवेचन से न माना तो भगवान ने उसे ज्ञानयोग द्वारा समझाना प्रारम्भ किया । ज्ञानयोग का सोधा साधा तात्पर्य यह है, कि अपने विषय में ठीक से ज्ञान होना । इस के लिये कृष्ण कहते हैं कि आत्मा तो नष्ट नहीं होता, यह शरीर ही माद्य को प्राप्त होता है, और दोबारा जन्मना है । जब नू जानता है, कि हमने फिर पैदा होना है, तो अपने कर्तव्य कर्म का पालन कर ।

अन्न न की युद्ध न करनेकी यही मुक्ति थी कि इन्स्पन्द वाक्चर तथा पञ्च गुरुओं को मार कर अपने को सली नहीं नेवना चाहता । इसी का तत्त्वज्ञान कराने हुये भगवान ने उसे सांख्य योग का उपदेश दिया है । उस में उसे स्पष्ट बना दिया है, कि आत्मा तो अन्न अमर अविनाशी है, फिर नू किन्से मारने चला है, यह शरीर तो आत्मा का बोला है, पर हे । आउ नहीं तो कम मह आपना धर बदनेना ही ।

नीसरा योग राजयोग है, जिसे पानत्रज्ज योग भी कहते हैं । र उद्योग का कार्यक्षेत्र आत्मान्त महान है । राजयोग द्वारा पहले हम जानते हैं कि दमक क्या है ? फिर इस दुःख का कारण क्या है ? नीसरा इस दुःखसे छूटना । बीया छूटने का उपाय "अर्थात् हेय, हेतु, हान, हागोवाय यह चर बीजे ही मनुष्य को मोक्ष दिला सकती है ।

दुःखों का कारण उदा और दृश्य का संयोग ही है । जब द्रष्टा मनुष्य दृश्य प्रकृति में फंस जाता है, अर्थात् प्रकृति के मन लुब्ध विश्व अर्थात्कारि से यह पराभूत हो जाता है, और उनको किया को अज्ञान परा अपनी किया समझता है । यह अज्ञान ही दुःख का कारण है । लेकिन जब वह परमात्मा के साथ एक हो जाता है, तब उसके लिये सुखों की सृष्टि का सज्जम होता है । यही भाव श्रीःभू द्वारा स्पष्ट है, ओहम् में अउम परमेश्वर जीव, प्रकृति के लिये कामः है । जब उ जीव प्रकृति में फंस जाता है, तब प्रकृति उन्मे नीचे दबा देगी है, और वह मू का हय बन जाता है, पर जब वह ईश्वर से लगन लगाना है तो ईश्वर उसे सिर माथे पर चढ़ाता है । यही राजयोग का आशय है ।

मन को जीतने का उपाय बनाने हुये श्रीकृष्ण कहते हैं—

'अध्यामेन नू कौन्तेय वैराग्येक्ष च गृह्णते'

अध्यास से तथा वैराग्य से ही यह मन अपने हाथ की कठपुतली बन जाता है, जिस प्रकार कठपुतली जिधर चाहे तच्चा सकता है, उसी प्रकार यह हमारे कानू में होता है ।

यह मन काम कोष सोमादि शब्दों पर विजय पाने से ही विमल होता है । वह कामादि शब्द रजाद्युष से पैदा हुये र मनुष्य को प्रति दुःख पहुंचाने हैं, व अस्थिर विश्व, चिन्ताकुल होकर अपने चैर्य को भी बैठता है, इनसे मुक्ति पाकर ही मनुष्य राजयोग का अधिकाारी है ।

सक्य स्थान पर आसन जमा कर मन को अपने वर में करना हुआ आत्मा की सुखि के लिये योग में जुट जाये और परमात्मा का साक्षात्कार करे।

चौथा भक्त्योग है—परमात्मा के प्रति अतिशय प्रेम को ही भक्ति कहते हैं। भक्ति के लिये सब से पहले यह प्रश्न उठता है, कि परमात्मा ता अत्यन्त है, उस में प्रेम होना अत्यन्त कठिन है। व्यक्त की प्रार्थना तथा उस में प्रेम सरलता से होता है। जब हम परमात्मा का माना, पिना धादि सम्बन्धरूप प्रार्थना करते हैं, तब हम उन्हा रूप से ईश्वर को प्रार्थना कर रहे होते हैं, लेकिन जब महा के गुणों में तन्मय होने की कोशिश करते हैं, कुछ धारणा नहीं करते, सिर्फ उसमें तल्लीन होना चाहते हैं यह अत्यन्त की प्रार्थना है।

इस के लिये भगवान् कहते हैं—अध्यक्त की उपासना में क्रुश होता है, क्योंकि यह कष्ट साध्य है। बार बार के भजन करने वाले ब्राह्मों, जिज्ञातु, स्वार्थी और हानी में हानीयेष्ट हैं। बली अत्यन्तकी उपासनाकर सकते हैं। दूसरी बात यह ही सकनी है कि हम परमात्मा की बनाई हुई सृष्टि को भक्ति करे। सृष्टि में सर्वात्मन वस्तु मनुष्य है। मनुष्य मात्र को निष्काम सेवा ही भगवानकी भक्ति है। 'ते प्राणु-यश्चिन् मानेव' वे भी भगवान को प्राप्त करते हैं।

भगवान ने भक्ति की चार श्रेणियां बताई हैं

१. मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय—मेरे में ही मन और बुद्धि लगा दे।

२. 'अध्यासयोगेन नतोमामिष्कान्तु' धनंजय—अध्यास योग से मुझे प्राप्त करने को इच्छा कर। अध्यास राजयोग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, जप्याहार, धारणा, ध्यान समाधि) को करता हुआ मुझे प्राप्त कर  
३. 'मत्कर्म परमो भव' राजयोग में असमर्थ है, तो मेरी प्राप्ति के लिये शास्त्रों में बनाये, ज्ञान, ध्यान, भजन, पूजापाठ अदि रू का आचरण कर।

४. यह भी न कर सके तो 'सर्वं कर्म फलत्या-तनः कुतः यतात्मयान्' कर्म फल की इच्छा न करता हुआ लोकोपकार में जीवन बिता दे। परन्तु इन सब को करने हुये अज्ञा का हीना आवश्यक है।

दूसरा साधन मर्यादा है। पालकद रहित होकर हम परमात्मा का शुभ दर्शन हो सकना है।

तीसरा साधन आत्म समर्पण है। भगवान् कहते हैं—'सर्वं यमोर् परित्यज्य मानक शरत्त भज'। यह आत्म समर्पण है। भक्ति तब तक उपलब्ध नहीं हो सकती जब तक अज्ञा, साधना, आत्म समर्पण तीनों गुण हृदयंगन नहीं हो जाते। यद्यो भक्ति मार्ग है।

अब गीता और वैदिक धर्म की तुलना कर अपने निबन्ध को समाप्त करूंगा—

१. वैदिकधर्म में ईश्वर जीव प्रकृति को अनादि कहा है, तथा इन सब को अलग र सत्ता मानना हुआ यह वैतनवादी धर्म है। गीता में भी—

'प्रकृति पुरुष चैव विषयवादी उभावपि'

प्रकृति और पुरुष को अनादि कहा है। तथा 'उनमः पुरुषसन्ध्यः परमात्मैवब्रह्मतः' ने परमात्मा को कह कर वैतनवाद् की स्थापना का है।

२. दूसरे सिद्धान्त वेद ईश्वरीय ज्ञान है, इस विषय में भगवान् कहते हैं—'कर्म त्रहोर्जयं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भव' वेद को ईश्वर ने पैदा हुआ ज्ञान। 'विद्वानां नामवेदोऽस्मि' कह कर भी वेदज्ञान लीकार किया है। 'ब्रह्मणानेनवेदाथ यथाश्च चिदिताः पुरः' आदि वाक्यों से स्पष्ट होना है, कि जगत्तः कृत्तव वेद का वैदिक धर्मियों के स्रज हो मानते थे।

३. तीसरा सिद्धान्त जीवन कर्ममय है—जब तक जीवन है तब तक क्षान्त्युक्त कर्म करना जरूरा है। गीता का तन्व इसी सिद्धान्त में लिखा है। सब ब्रह्मज्ञान देकर भी भगवान् अर्जुन को युद्ध के लिये प्रेरित करते हैं अर्थात् भगवान् कर्म को विशेष महत्त्व देते हैं।

४. चौथा जीवन शरीर बुद्धि मन और आत्मा के समुदाय का नाम है निश्चिन्त है। इस लिये इन सब का एक साथ उज्वल होना आवश्यक है। वैदिकधर्म का उद्देश्य यही है कि शारीरिक सामाजिक आर्थिक उन्नति साथ र होनी चाहिये। इसका दूसरा अर्थज्ञान और कर्म का समुच्चय हा मनुष्य का ध्येय है—कृष्ण कहते हैं—'एकं सांख्यं च योगं च य परथिन स पश्यति' दिल दिमाग का इच्छा काम करना ही मनुष्य जीवन को साध्यक बनाता है। सुखा ज्ञान या विचार रहित कर्म दोनों व्यर्थ है।

५. पांचवां सिद्धान्त है—प्राणीमात्र को सेवा तथा उसके साथ प्रेम हो ईश्वर की सेवा तथा उसके साथ प्रेम करना है—गीता में—'ब्रह्मेः सर्वभूतानां मैत्राकरण एव च' इन्हीं सिद्धान्त का शातक है।

६. छठा वक्ष्यव्यवस्था गुण कर्मानुसार है। भगवान् कहते हैं—

'चातुर्यैर्यं मया सृष्टं गुणकर्म विनाशः'

वर्णों वर्णों को गुण कर्मानुसार मैंने बनाया है।

इस प्रकार गीता वैदिकधर्म के मुख्य र सिद्धान्तों को स्पष्ट करने में विशेष रूप से सहायक है।

गीता का अधिकतर क्षेत्र मातृवी प्रकृति के अनुकूल है और इस लिये इस ग्रंथ का पचार सारे समाज में है। जिनकी बार दमे पद्विये गद ग्रंथ नये विचार और नई भावनायें पैदा करता है।

### गुरुकुल समाचार

ब्र० द्यानन्द १२ अंशो श्री ७६म उबर, ब० जगदीश ११ अंशो ब्रह्म, ब्र० मन्यानन्द ५ अंशो मतेरिया उबर, ब० धर्मेश्वर ४ अंशो मतेरिया उबर, ब० विद्याभूषण २ अंशो मतेरिया उबर, ब० मोमदत्त २ अंशो मतेरिया उबर, ब० मनमोहन १ अंशो चोट, ब० रूपनारायण २ अंशो चोट, > रामचन्द्र १ अंशो चोट, ब० सूर्यप्रकाश ३ अंशो चोट, ब० महेन्द्र ५ अंशो ब्रह्म, ब० रामप्रकाश ३ अंशो Mump ब० जीवन प्रकाश ४ अंशो गीता

उपरोक्त ब्र० मत समाहू रोपी हूँ। अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० द्यानन्द तथा धर्मेश्वर को अभी उबर है। आशा है कि शीघ्र आराम हो जावेगा। आजकल वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो जाने से मौसम अच्छा होगा है। अधिकतम नामान १०३ फा० गृहता है।—

स्मृतिवर्षक

ब्राह्मी वृष्टी

॥१॥ सेर

सुगन्धित

हवन साभन्नी

॥१॥ सेर

एक वाग जरूर आजमाइए

## गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी का प्रसिद्ध

**भीम  
सेनी  
सुरमा**

आंखों से पानी बहना, सुग्ली कुकरे सुर्मा,  
जाला व पुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार  
से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त आंखों में लगाने से  
निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ माशा ॥२॥ १ तं० ३॥

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन ज्ञान के बाद ब्राह्मी तैल सिग पर लगाने से दिमाग  
तरोनाजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, आंखों  
में जलन आदि रोगों में तुल्य आगम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

## गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहागनपुर )

ग्राम

लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहली—चांदनी चौक  
पटना—मछुआ टोली, थाकीपुर

## भीमसेनी वृंतमंजन

दांतों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है

मूल्य ॥१॥ शीशी, ३ शी० १॥

## सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

## सुपारी पाक

खियों के जरियान रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।

मूल्य १॥१॥ पाव



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मूल्य-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—माहित्यरत्न हरिवंश बेदालझार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल काङ्गड़ो, शुक्रवार २६ आषाढ़ १९६७; १२ जनवरी १९६०

[ संख्या १३ ]

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

( निदान और चिकित्सा )

[ ले० श्री दिनेश नमंश शर्मा त्रिवेदी, अनुवादक—  
श्री धर्मराज वेदाशंकर ]

( ४ )

### गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मूर्त स्वरूप

#### क. आदर्श स्थान

लग्न होती हुई गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की भावना को महर्षि दयानन्द ने फिर से उद्बुद्ध किया और हमें मूर्त स्वरूप देने का महान् कार्य महात्मा मुन्शीराम जी के द्वारा हुआ। भावना को मूर्त स्वरूप देना यह किमी सामान्य व्यक्ति का काम नहीं। जिस समय राष्ट्रीय शिक्षा की चारों तरफ कोई भी संभावना दिखाई नहीं देती थी उस समय वकील मुन्शीराम जी ने महर्षि दयानन्द की प्रेरणा को जीवन में श्रोत प्रीत करके तथा पण्डित गुरुदत्त जी द्वारा विपणन, आदर्श शिक्षक बनने के सन्देश को दृश्य में धारण करके एक हम प्रकार को रचना की जिसे वज्र से ढंटे शिक्षाविद्ग भी नहीं कर सकते थे। जमींदार मुन्शी अमनसिंह जी द्वारा दान ही हुई कांगरी गाँव के पाम की अरुण्यभूमि में कुटियाएँ बना कर फाल्गुण वर्षी १४, १६५८ की शाम को ४ घंटे महात्मा मुन्शीराम जी ने भारत की अमृत बूटी का वपन किया। ब्रह्मचर्य, जाति रक्षा और धर्मोद्धार थे इस पनीलाय के मुख्य उद्देश्य थे। महात्मा जी ने अपनी स्वाभाविक प्रतिभा के द्वारा गुरुकुल के जिस कलेवर को घड़ा था उसी के नमूने पर आज भी समस्त भारत में गुरुकुलों की स्थापना हुई है। इसलिए हम इसी कांगड़ी गुरुकुल पर मुख्य रूप से विचार करेंगे। महात्मा जी ने गङ्गा नदी के किनारे को पसन्द किया। शहर के बातावरण से बहुत दूर, इतनी दूर जहाँ कि संस्कृति को अष्ट करने वाली कार्बोमिक एसिड गैस बिलकुल न लग सके जङ्गल में गुरुकुल की स्थापना की। भारतीय संस्कृति में भागीदारी, हिमालय और अरण्य इन तीन का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न इस प्रकार के

स्थल को पसन्द करने वाले विमारा के आगे आज भी महत्मा मन्मक भूक जाता है। अरण्य को नन्दनवन बना कर वायु परिवर्तन के लिए वहाँ बड़े बड़े बङ्गले बनवा देना सरल काम है परन्तु हिन्दुस्तान के विविध भागों से मां बापों की गोद में से उनके छोटे छोटे बच्चों को आकृष्ट करके जङ्गल की भोपड़ियों में बसा देने का काम जिसने किया है वही इसकी कठिनाई को समक सकता है। महात्मा जी ने गुरुकुल के लिए जिस स्थल को पसन्द किया वह ठीक ही था। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का परिचय अगर प्रारम्भ में सफल हुआ तो इसी स्थान के कारण। जैसी साधना करनी हा उसके अनुसारा साधन, साधना का स्थान तथा साधक की मनोवृत्ति ये सब बातें जरूरी हैं। महर्षि दयानन्द जी की प्रेरणा ब्रह्मचारी पैदा करने के लिये थी। उन्होंने कभी भी प्रचारक पैदा करने के कारखाने के रूप में गुरुकुल के अस्तित्व का आवश्यकता अनुभव को हो—पंसा किसी भी आचार पर नहीं कहा जा सकता। अपने आदर्श जावन से धर्मप्रचार का कार्य हो जाए तो भले हो जाए परन्तु गुरुकुल को मूर्त स्वरूप देने में संस्कृति रक्षा ही मुख्य उद्देश्य था। आर्यसमाज के आगे दो दृष्टि बिन्दु थे। १. संस्कृति रक्षा और २. धर्मप्रचार; अर्थात् आर्यसमाज उस समय दो रूपों में प्रगट हुआ था संस्कृति रक्षक के रूप में और प्रचारक संस्था के रूप में। अर्धश्री शिक्षा में दीक्षित होकर जो महाद्वयी धर्मप्रचार के लिए निकले थे उन्हें अपने अन्दर एक कमी अनुभव होती थी। वे यह सोचते थे कि अगर हम गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में से गुजरते होते तो आज हम ज्यादा समर्थ होकर धर्म प्रचार कर सकते। पण्डित गुरुदत्त जी, पण्डित लखाराम जी तथा मुन्शीराम जी आदि महाद्वयी वैदिक धर्म के सन्देश का प्रहण करके जब उसके प्रचार करने में लग गए तो उन्हें यह मालूम हुआ कि एक ऐसी साधना और साधनालय की आवश्यकता है जिस में से ऐसे व्यक्ति जन्म ले सकें जिनमें हमारी कमजोरियाँ न हों। इन महाद्वयीयों के मन में जो विचार आए होंगे उनका अनुमान करके शब्द चित्र के रूप में हम निम्न रूप में रच सकते हैं—“आज भारतवर्ष के बालकों पर पश्चात्य शिक्षा का

अन्यथा असर पड़ रहा है। हिन्दू धर्म के विद्वान् संस्कारों को तह मां बाप पर जमी हुई है और उसका प्रभाव बालकों पर भी पड़ता है। इसलिए ऐसे बालक को पैदा करना चाहिए जिसके मन पर वैदिक धर्म की गहरी छाप हो और जो प्रगति विरोधी विचारों के विरुद्ध क्रान्ति करता हुआ सर्वप्रथम ब्रह्मचारी के रूप में प्रगट हो सके। हमारा तो ब्रह्मचर्य आश्रम काल विवाह की भरी में भरस हो गया। हमारा गृहस्थ-आश्रम भी अन्तमेक विवाह की रङ्गभूमि पर आकर अपना चरित्रक रूप लो चुका है। किन्तु महर्षि ने वैधी आदेश को ध्यान में रखते हुए जो कुछ विगड़ा है उस पर आसू बहाना छोड़ कर जो कुछ बचा है उसी का हम सदुपयोग करेंगे। हम वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का आश्रय लेंगे, परन्तु एक ऐसा आश्रम भी होना चाहिए जिसमें से ऐसे बालक पैदा हों जो आश्रम धर्म तथा गुरु कर्म के अनुसार श्रुति द्वारा प्रतिपादित वर्णव्यवस्था की रचना कर सकें। ये बालक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके और वैदिक धर्म की उच्च शिक्षा लेकर जब संसार में आगमो सन्धे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र के रूप में आगम और आदेश गृहस्थ, आश्रम वानप्रस्थ और आश्रम सन्यासो बनें। इस प्रकार वैदिक धर्म का ममप्र विश्व में प्रचार हो सकता है। महर्षि के सम्प्रदाय की सामूली सी चिनगारी ने जो आग हमारे जैसे अशुभे पात्रों में सुलगाई है वही आग अगर 'हिरण्यग' पात्रों में जलाई जावे तो उसकी गरमी सारे संसार में फैलेगी और नहीं रह सकती।"

इस प्रकार के विचारों को नेपथ्य में रख कर गुरुकुल का सूर्य स्वरूप रचा गया और सांस्कृतिक परीक्षण की माधना के अनुकूल उचित पुण्यभूमि को चुना गया। लेकिन बाद में वैयक्तिक अभिमान तथा मतभेदों के कारण और गङ्गा की शक्ति वगैरह के सबसे से स्थान परिवर्तित करके गुरुकुल को ज्वालामुख और कनखल के पास लाया गया। यहाँ से इस परीक्षण का दूसरा प्रकरण शुरु होना है। वर्तमान गुरुकुल वार्मियों के लिए गुरुकुल की पुरानी भूमि एक पुण्य तीर्थ के रूप में तथा आचार्य अद्वानन्द जी के प्रतीक के रूप में अब भी जीवित प्राणों भूमि है। मेरी यह मन्त्र सम्मति है कि किसी भी परीक्षण के लिए स्थलों का परिवर्तन घातक सिद्ध होता है। इस गुरुकुल के विषय में 'वहो यह बात ठीक न हो किन्तु इतना तो अक्षय्य कहना पड़ेगा कि गङ्गा के इस पार आने से कई बातें बदल गई हैं। पुरानी भूमि में रह कर जो ब्रह्मचारी ज्ञानक बने हैं उनमें अधिकांश हिंस्रमती, अच्छे तैराक तथा शूहर के भंषक से दूर रहने की आदत वाले थे। अब इन बातों में कुछ न कुछ तबदली अवश्य हुई है। इन्द्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्र और गुरुकुलों के स्थान पर्याप्त उत्तम हैं। इन्द्रप्रस्थ में पहाड़ी प्रदेश होने से तथा पानी की कमी के कारण जो शोड़ी बहुत नृतियाँ थी वे अब दूर हो गई हैं।

बम्बई प्रदेश के गुरुकुलों के विषय में भी विचार करना अप्रामाणिक न होगा। बम्बई आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने लगभग ३० वर्ष हुए एक स्वतन्त्र रूप से एक गुरुकुल इस प्रदेश में खोला था। सन् १९१० में देवनाली स्थान पर स्वर्गीय श्री नित्यानन्द जी के हाथों से इस गुरुकुल की

स्थापना हुई थी। बाद में यह गुरुकुल अन्पेरी (बम्बई) होकर छुट्टीघर में थोड़ी देर के लिए स्थिर हुआ। वहाँ आठ वर्ष तक नर्मदा नदी के किनारे पर गुरुकुल प्राचीन और आर्वाचीन विभागों में विभक्त होकर चलता रहा। यह पद्धति अनेक आर्य भाषियों को ठीक प्रतीत नहीं हुई इस लिए बम्बई का आर्य विद्या सभा ने सन् १९३५ में यह निश्चय किया कि प्राचीन विभाग का नवलो में और आर्वाचीन विभाग तो घाटकोपर (बम्बई) में स्थानान्तरित कर दिया जाय। नवलो में जब तक मकान तय्यार नहीं होते तब तक बम्बई का यह पुराना गुरुकुल चरातर प्रदेश का आर्य समाज का देख रख में आपण्ड के वेदाश्रम में चलाया जा रहा है। इस प्रकार बम्बई प्रदेश का यह पुराना गुरुकुल अबतक भी अपनी निश्चित जगह पर स्थिर मकानों में स्थितप्रज्ञ नहीं बन सका। देवनाली से अबतक इस गुरुकुल ने इतने स्थान बदले हैं इसीलिए यह गुरुकुल 'प्रधानी' गुरुकुल बन गया है। स्थल का निर्वाचन एक जरूरी चीज होते हुए भी बम्बई के आर्यों ने उनमें परिस्थितियों के अनुसार जो बार बार परिवर्तन किया उसका परिणाम आज हम देख रहे हैं। गुजरात के कवि मन्नाट्ट नानालाल जी ने बातचीत के सिलसिले में मुझे कहा था कि जुद्ध के पास इस गुरुकुल के लिए जगह लेने का विचार स्थगित कर दिया गया—यह आर्यसमाज को बड़ी से बड़ी भूल थी। अब यह जगह गुरुकुल के लिए अनेक प्रकार से अनुकूल सिद्ध होती। बम्बई प्रदेश में गुरुकुल की स्थापना से पहले गुरुकुल विशालय की योजना को पैदा करते हुए स्वर्गीय प्राणजीवनविद्वल दाम-गुप्त न जी लिखा था वह अब भी मनन योग्य है; इसलिए उसे यहाँ उद्धृत करता हूँ:—

"हमारे प्रांत के आर्य भाई बम्बई प्रदेश में बहुत देर से पञ्जान आदि अन्य प्रांतों के पद चिह्नों पर चलते हुए एक ऐसा गुरुकुल खोलने का विचार कर रहे हैं जो गुजरातियों के अनुकूल पड़ सके। उस्ताद के आश्रय में यदि किसी महान् कार्य को करने की हमारी इच्छा है तो इसके लिए दूर दृष्टता से काय लेना चाहिए। गुरुकुल खोलना कोई सरल बात नहीं। बम्बई जैसे प्रांत में शाब्द धन का कमी न हो परन्तु गुरुकुल के लिए हमेशा गुरुकुल में रह कर काम करने वाले आदमी तथा योग्य आचार्य शिक्षक मिलने लुत्तम हैं।"

इन उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि गुरुकुल यह कोई प्राकृतिक सांघ्य से विभूयित स्थानमात्र ही नहीं; केवल विद्वान्, सदाचारी और निलोभा अध्यापकों से भा गुरुकुल नहीं बनता। ब्रह्मचारियों का दोलार्य भा गुरुकुल नहीं है। गुरुकुल का संचालन करने वाला व्यवस्थापक सभा भा गुरुकुल नहीं। सिर्फ बालकों के मां बाप से भी गुरुकुल नहीं होता, वन और प्रशंसा के डेर से भी नहीं; प्रकृत इन सब शंशों के समुचित मेल के बिना किसी भी गुरुकुल का स्थिर अस्तित्व नहीं हो सकता। कोई गुरुकुल सद्दान स्थान के कारण या स्थान की अतिश्रुता के कारण अस्त होता विस्वादी देगा, कोई गुरुकुल ब्रह्मचारियों का संघया घटने से बन्द होता मात्रस होगा। कोई गुरुकुल उत्तम

शिखा तथा शिखकों के अभाव में लुप्त होता प्रतीत होगा परन्तु पुराना तो ठीक है कि सिर्फ वन के अभाव के कारण कोई संस्था खतम नहीं हुई जाती; किन्तु सच्चे उसाही व्यक्तियों के अभाव में ही संस्था की पूर्णाति होती है।

बम्बई प्रदेश के एकमात्र गुरुकुल को 'प्रवासी' के रूप में देखकर माघ सुदी १३, सम्बन् १६०० के दिन गुजरात गुरुकुल सभा की तरफ से स्वामी अन्नानन्द जी के हाथों पूर्णा नदी के पुण्य तीर पर सूया गांव के पास 'सूया गुरुकुल' की स्थापना हुई। यह विद्यामन्दित्र गुरुकुल विश्व विद्यालय का ऋषि की शाखा के रूप में प्रकट हुआ और अब भी इसी अगह इसी रूप में इसका अस्तित्व उज्वल रूप में चमक रहा है। सूया गुरुकुल का स्थान उत्तम है। बम्बई प्रदेश में नीमरा गुरुकुल मीराष्ट्र (काठियावाड़) में माघसुदी १५ सम्बन् १६०५ (महाशिवरात्रि) के दिन चौड़वा आर्यकुमार महामाभा के द्वारा भावनगर से १८ मील दूर सोनगढ़ में स्थापित किया गया। प्राकृतिमूर्धन्य, जलवायु आदि की दृष्टि से यह स्थान उत्तम है और सोनगढ़ का केन्द्र भी है। इसके अतिरिक्त भुज से १६ मील दूर ईश्वरसागर के तीर पर ईश्वरराज गुरुकुल की स्थापना माघ सुदी ५ सम्बन् १६५३ (वसन्तपञ्चमी) के दिन हुई थी। सूया, आनन्द, सोनगढ़ इन तीनों गुरुकुलों के परिणाम स्वरूप स्वानक प्रजा के आगे उपस्थित हुए हैं। सोनगढ़ गुरुकुल अपने भिन्न स्थान में एक दशाष्टि विनाकर गुरुकुल के रूप में अपने कार्यक्रम को पूरा करने की तय्यारी में है। इस पूर्णाहुति का कारण यह नहीं है कि सोनगढ़ का स्थान स्वर्ण है। सूया गुरुकुल का स्थान भी पर्याप्त अच्छा है। इस समस्त विवेचन के आधार पर साररूप में निम्न परिणाम निकल सकता है:-

[ १ ] गुरुकुल के लिए स्थान शाहर से दूर होना जरूरी है परन्तु बहुत दूर भी नहीं होना चाहिए।

[ २ ] यह स्थान नदी के किनारे होना चाहिए:-

[ ३ ] यह स्थान प्रकृति मूर्धन्य से सम्पन्न होना चाहिए।

[ ४ ] ऐसा स्थान होना चाहिये जहां मलेरिया आदि बीमारियां न फैलती हों।

[ ५ ] पास में अगर सड़क हो तो गाड़ियों और आरामियों के आने जाने से शीघ्र होता है और भूल उड़ती है इसलिए यह स्थान सड़क से दूर होना चाहिए।

[ ६ ] एक बार स्थान निश्चित करके बाद उसे बदलना नहीं चाहिए।

## प्राच्य और प्रतीच्य

[ ७० की वृं ० अक्षर देव ]

सर राधाकृष्ण ने देगौर के कार्यों के मूलतत्त्व को गिनाते हुए कहा था:-

( २ )

( १ ) "अध्यात्म अन्वित सत्य है और उसकी प्राप्ति के लिये सत्यनिष्ठा एवं अन्तः जीवन का निर्माण होना चाहिए।"

( २ ) "केवल नेतिवाद या सन्यास से सार्थकता नहीं है, परन्तु पवित्र और परिपूर्ण जीवन के विकास की जरूरत है।"

( ३ ) "भद्र और अभद्र— दोनों के प्रति समभाव की प्रत्यक्ष भावना होनी चाहिए।"

"आज प्राच्य का अनेक पुरातन बस्तुएं नष्ट होती जा रही हैं और हजारों नई पैदा हो रही हैं। ऐसे सन्धिकाल में इस सभा जोवन दृष्टि की जरूरत है।" प्राच्य और प्रतीच्य के सम्मेलन में भी कवि इत्य सत्यं, शिवं सुन्दरं को ही देखता है। वह लिखता है—

"हम ममम्भने हैं कि संसार में स्वत्व की लड़ाई हो रही है—पर यह हमारा अर्धकार है, वालव में सत्य की लड़ाई हो रही है।"

"जो सबसे अल्प है, सबसे पूर्ण है, चरमसत्य है वह सार्व जनिक है और वही बहुत से आपात संघर्षों के बीच से ऊपर की ओर उठ रहा है। हम अपने सारी इच्छासे सत्य को जितना आगे की ओर बढ़ा सकेंगे उतनी ही हमारी चेष्टा सार्थक होगी। उसके विपरीत चाहे व्यक्ति के ख्याल से हो, या जाति के ख्याल से हो अपने को ही जयी बनाने की चेष्टा का संसार के विधान में कुछ भी महत्व नहीं है।"

"भारत वर्ष का जो इतिहास संघटित हो रहा है उसका अन्तिम लक्ष्य यह नहीं है कि हिन्दू ही बड़े हों या कोई दूसरा बड़ा हो। भारत वर्ष में मनुष्य का इतिहास एक विशेष सार्थकता की मूर्ति धारण करेगा और परिपूर्णता का एक अपूर्ण आकार उसको सारी मनव जाति की सामग्री बना डालेगा। इसकी अपेक्षा कोई भी छोटा अभिप्राय भारत वर्ष के इतिहास का नहीं हो सकता है। इस परिपूर्णता की प्रकृष्ट प्रतिमा गढ़ने में यदि हिन्दू ससलमान या अंग्रेज अपने बर्तमान आकार प्रकार को एक दम लुप्त कर दें; तो उससे उनके जाति-अभिमान का अकाल सत्यु हो सकता है पर स्वल्प या मङ्गल का जरा भी हास नहीं हो सकता।"

विश्व कवि का इत्य, पूर्व और पश्चिम के मिलन का अन्तिम परिणाम मङ्गलमय हो यही चाहता है; पर, यह मङ्गल कामना कैसे सार्थक हो सकती है! आज तो प्राच्य और प्रतीच्य का परस्पर विरोध खड़ा हो रहा है। दोनों अपनी मंस्कृति को उन्नत समझते हैं फिर इनका समागम और तज्जन्य परिपूर्ण सभ्यता कैसे प्राप्त हो सकती है—चरम सत्य की उपलब्धि कैसे हो सकती है।

सत्य सत्य विरोध में भी मङ्गल देवता है। क्योंकि सत्य का विरोध करने के बाद उसके समोप हारने से ही गम्भीर रूप से सत्य की प्राप्ति होती है। वाद, प्रतिवाद सशय आदि सत्य विरोधी चीजों के आश्रय से ही सत्य की उपलब्धि होता है।

कवि इतना कहकर बस नहीं करता। वह इस विरोध के मूल में जाता है। पूर्व, पश्चिम की जातियों का मनो-वैज्ञानिक विरलेपण करता है। दोनों के न मिल सकने का कारण बताता है।

( चममाम )

'विजयोस्त्वब—रामगढ़ कामेस में चर्चा-प्रतियोगिता के लिए कुल के प्रतिनिधि रूप से ब्र० शान्ति स्वरूप को भेजा गया था। आप उत्तम मूल की प्रतियोगिता में सर्व प्रथम आए हैं। चर्चा संघ की ओर से आपको चांदी का चर्चा दिया गया है। हमारे मान्य भाई पहले भी इस प्रकार की प्रतियोगिता में भाग लेकर विजयी होते रहे हैं। इस विजय के उपलक्ष में एक सभा की गई और करतल अग्नि के बीच में पारितोषिक दिया गया।

# गुरुकुल

२६ आषाढ़ शुक्रवार १९६७

## स्नातकों की कठिनाइयाँ

(आचार्य अग्रवाल जी)

गुरुकुल के स्नातकों के जप कठिनाइयों और मुगीयनों के समाचार आने हैं तो उनमें हमेशा दुःख नहीं होता। कई बार तो उन समाचारों को नून कर प्रसन्नता होती है, यद्यपि साथ में सहायभूति का भाव भी पैदा होता है और उग का कठिनाई को दूर करने के लिये जा कुछ बन सके पर कुछ कर डालने का इच्छा भी पैदा होती है। ऐसी प्रसन्न नभ होती है जब कि किसी स्नातक के कष्ट में पढ़ने का आग्रह उनको सन्निहित। कर्तव्यपरायणता आदि बातें हानी हैं जिनकी कि उन्होंने गुरुकुल में शिक्षा पाई है। स्नातकों ने सामूहिक दुनियादार लोगों जैसा रहने या बन जाने के लिये तो गुरुकुल में शिक्षा पाई नहीं होती इस लिये बहरी दुनिया में जाकर उनका मुगीयनों में पढ़ना स्वाभाविक सा है, पर वे उन्हें वे मुगीयन समझे या नहीं यह दूसरी बात है। नीचे मैं दो स्नातक बन्धुओं के पत्रों के कुछ अंश उद्धृत करता हूँ जो अपनी कहानी अपने आप कह देंगे। यह भी अच्छी बात है कि ये पत्र स्वभावतः लिखे गये हैं, पत्र लेखकों को यह तो कभी ख्याल ही नहीं होगा कि उनके इन पत्रों को प्रकाशित किये जाने का कोई संभावना हो सकती है—

एक स्नातक, २३ लिखते हैं:—

“मेरे तथा घर के अन्य सदस्यों के बीच मैं उद्देश्य-आदर्श, समाज तथा विचारों का भेद तो प्रारम्भ से ही था परन्तु काश्चित्काल में यह भेद घटने के स्थान पर और भी बढ़ता ही गया और परिणाम यह हुआ कि ६ मई को ईश्वर की बलीयसी इच्छा से प्रेरित होकर मैंने घर छोड़ने का विचार कर लिया, और २० मई को स्पष्ट तौर पर मुझे घर छोड़ने के लिये वाचन होजाना पड़ा और आज मैं वे घर द्वार के निराश्रय पड़ा हुआ हूँ। मेरे माता पिता को मुझ से प्रेम अवश्य है पर उनकी लाचारी बहुत ही दुःख जनक है। परिवार से सम्बन्धित सम्पूर्ण स्थिति के एकमात्र स्वामी श्री... हैं जो रुपये को ही भगवान मानते हैं तथा कांग्रेस वालों को निकम्मा, मूर्ख व भ्रूत मानते हैं। तथा मेरा एक भाई आर्यो मैथिलक स्कूल में पढ़ता है तथा ३ बदिने अविवाहित है इनके लर्च के लिये उन्हों का मुझ ताकना पड़ता है। ऐसी अवस्था में उनकी सहायभूति के अतिरिक्त मुझे उनसे कुछ भी नहीं मिल सकता है।

“मैं यह आपको स्वाभाविक तौर पर विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि मैं सत्य मार्ग पर हूँ। और जिने में सत्य समझता हूँ उस पर दृढ़ रहने हुए जीवन तक देने में

संकोच नहीं करता हूँ। भारत आज पददलित, गरीब व अत्याचार पीडित है और कांग्रेस ही एक मात्र संस्था है जो इस समय भारत की गरीबी आदि को हटा कर उसे स्वतन्त्रता का श्रोत ले जा रही है। प्रायः सच्ये भारतीय का कर्तव्य है कि वह कांग्रेस के प्रति सहायभूति, प्रेम रखे और उनमें सम्मिलित होकर अत्याचार व पाप का मुकाबला करे। कांग्रेस का सदस्य होकर, सचार्, ईमानदारी के साथ काम करना मैं पवित्र कार्य समझता हूँ। यदि तन, मन अथवा धन से या एक साथ तीनों से ही कांग्रेस का सेवा का ना कोई पाप समझता है तो उसके साथ मेरा समझौता हाना असंभव है। ऐसा ही मैं आर्य-समाज का भी समझता हूँ। यहाँ का प्रायः आर्यसमाजी निःसन्देह यह समझता है कि ये स्नातक जो प्रथम आर्य समाजी पश्चात् कांग्रेसी हैं। इस स्नातक की आत्मा वैदिक धर्म से ओत प्रोत है और शरीर मन सत्य मार्ग पर अविचल और दृढ़ रहने हुए अत्याचार के मुकाबले में दृढ़ और हमेशा तयार है।

“यह उपरोक्त दोनों भावनायें गुरुकुल से ही मेरे अन्दर जितित हैं और यही गुरुकुल की विशेषता है ऐसा मेरा विश्वास है जो शायद गलत भी हो सकता है। असतु।

“अपने विभिन्न स्वभाव के कारण आज मैं घर से पृथक हूँ या यों कहना ठीक होगा कि पृथक कर दिया गया हूँ। शहर में कई सज्जनों ने अपने २ घर पर मुझे ले चलने के लिये जोर दिया है एक सज्जन तो सहायतायुक्त कुछ रुपये भी दे गये हैं। पर मैं इन सहायताओं को लेने हुए हिचकता हूँ। दुनियादार आदिमियों का कुछ ठिकाना नहीं।

“आपक ऊपर आसीम व सबी भद्रा ने मुझे इदय की पवित्र आवाज के साथ प्रेरित किया कि मैं आपको अपनी अवस्था अवश्य लिखूँ और भविष्य के लिये समुदाय सम्मति प्राप्त करूँ। मैं इस नगर से ही हट जाना चाहता हूँ। यहां रहने हुए घर वालों के साथ स्पष्ट व अस्पष्ट सम्बन्ध बना ही रहेगा और मेरी आत्मिक शान्ति में बाधा पड़ती रहेगी जो मुझे अत्यन्त दुःखदायक होगी। दो दिन के बाद मैं आज अपने मामा के यहां भोजन कर आया हूँ इस समय मेरे पास कुल ६) हैं। दूकान में अभी तक इतने पणों जो कुछ जाता रहा सचार् के साथ पैसा २ में घर वालों को ही देता रहा। परिणामतः आज मेरे पास ६) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। घर से निकाने जाने की रात कहानी ता पण्यत लकी तथा कूट नीति से भरो बुधी है उस का सम्पूर्ण उल्लेख इस पत्र में करना बहुत कठिन तथा आपके लिये अनावश्यक भी होगा। संक्षेप एवं सार यह है कि कांग्रेस के प्रति आद्यन्त प्रेम होने के कारण तथा अपनी आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता समझने के कारण हो आज मैं घर से बाहिर कर दिया गया हूँ। तथा कुछ अपनी मूर्खता या भोलेपन के कारण घर की कूट नीति का शिकार हो गया है जिस का मुझे रती भर भी दुःख नहीं है। और अपने मार्ग पर दृढ़ रहने का सकार्य कर लिया है।”

अपने दूसरे पत्र में वे लिखते हैं:—

“आपको पत्र लिखने के बाद और पत्रोत्तर मिलने से समय तक के बीच के दिन मेरे लिये अग्नि परक्षा के दिन थे। पर आपके प्रेममय आशीर्वाद एवं प्रभु की महान कृपा से सांसारिक आपत्तियाँ मुझे विपत्तित न कर सकीं। मेरा विश्वास है कि मैं सत्य मार्ग पर था अतः प्रभु ने मेरी रक्षा की। आज मेरे पास १६ हैं जिन्हें सर्वेश्वरान-सांसारिक भाषा में-अपमः कहते का मैं अधिकारी हूँ। पर मानसिक शक्ति अतीत तक प्राप्त नहीं कर पाया हूँ। विपत्तियों में दृढ़-अविचल, एवं स्वीकृत आदर्शों पर सर्वस्व होम देने को भावना गुरुकुल माना की महान गोद में ही मैंने प्रहृष्ट की थी। और गुरुकुल माता के-मेरे से पहिले निकले हुए-अनेक पुत्रों ने (स्नानकों ने) आदर्श-सत्य-सेवा मार्ग पर अविचल रहते हुए सांसारिक आपदाओं को कुछ समझते हुए अपना दृढ़ एवं स्तुत्य कदम आगे बढ़ा कर कुलमाता की अनुपम शान में कमी न आने दी। उसी तरह मुझे भी गर्व है कि सय कुछ विपदायें लेकर इस जगह मैंने कुलमाता का शीघ्र बढ़ाया है। धन को ही सय कुछ समझने वाले स्वार्थी की दल दल में फली मेरे कुटुम्ब की दुनियाँ चाहे मुझे कुछ भी कद पर शेष दुनियाँ के साथ रह भी मेरी ईशानवारी व सत्य की कायल है। अन्य दृष्टियों से घर के मंगल विशेष कर मेरे बाबा मेरे से नागज हैं। क्यों कि उनकी दृष्टि में अपना ही चाहे कैसे ही आये-सब कुछ है तथा कांग्रेस वाले बद-माश व धूर्त एवं भ्रष्टाचारी हैं। अस्तु।

“मैंने यहाँ पर एक जगह इन्तजाम कर लिया है। द्वापें कुछ मेरे पास हैं। रागियों को देखने लग गया हूँ। दुकान का ढाँचा बदल गया है। पहिल मैं मज़ कुरसी लगा कर डाकुर का तरा बैठा था तथा डाकुर का तरह हा प्रकटित करता था पर अब द्वापें बेही हैं नीचे फर्श पर ही दरी बिछा कर बैठता हूँ। पर इस अशान्त बाला-वर्ण में कब तक उदर सहंगा कुछ कह नहीं सकता। मुझे परमात्मा और आपका ही केवल मान भरोसा है। मेरे जीवन के सब से अधिक शक्ति सम्पन्न तथा क्रियाशील युवावस्था में दिन इसी भांति गुजरेंगे यह सोच कर बढ़ा बढ़ना जाता है। मैंने गुरुकुल में परिश्रम पूर्वक विद्याध्ययन किया योग्यता प्राप्त की पर सब बंकार जाता प्रतीत होगी है। इस अवस्था में तो पशुओं की तरह पैर भरने के आतिरिक्त कुछ भी कर सकने में असमर्थता सी अनुभव होती है। पर आपका आशीर्वाद गुरे दिनों का बीरता पूर्वक मुकाबला करने के लिये आदेश देता है और सत्य भी है विपदाओं से बचाने वाला गुरुकुल का स्नातक ही कैसा। गुरुकुल के स्नानक को पाप, कपट एवं अपकीर्ति से ही बचाना चाहिये।”

एक दूसरे स्नातक “आज तक तुनिया में कौनसा पेशा है जो उचित तौर से किया जा सकता है” इसका विचार करने हुए लिखते हैं:—

“फिर भी काम के लिये सोचना है, क्या काम किया जाये। मैं देख रहा हूँ, मनुष्य शरीर। सब कर-काम करके शरीर को केवल अन्नभर दे रहा है और फिर रोगा कल्पता है

कि मुझे मृत्यु बाँच रही है। ये-प्रज्ञादूर किसान काम करते हैं। दैविक आश्चर्य होता है। मैं जब पुछता हूँ इतना काम कैसे कर लेंगे हो तो कहते हैं और उपाय क्या है, आखिर पेट भी भरना है ! तो क्या मनुष्य का काम तन तोड़, परिश्रम करके भी भोजन जुटाना ही है-तो पशु ने बढ़ कर वे क्या हैं ? काम के कारण हाथ उनके इतने बढ़गये हैं कि सिर की तरफ ध्यान देनेको उनके पास कुछ है ही नहीं। तो फिर मूल और सुख का वे विचार क्यों करें ? और उनकी जिन्दगी ऐसे ही बीत जायेगी। इस पर भी ये लोग भगवान् की सृष्टि में शामिल हैं, इनका यह व्यर्थ दीखने वाला काम भी कोई अर्थ रखता है यह मुझे पूर्ण विश्वास है। क्या ? मैं नहीं जानता।

“शारीरिक श्रमके विनाय और भी बहुत से काम हैं। व्यापार-मैं तो इशापरिक देश में ही रहता हूँ। बम्बई और और अहमदाबाद भी हो भाया इ-किलोको भी कहाँ चैन है ? उठने बैठने यहाँ तक कि शाम का जी बहाने के लिये याग में बैठे हुए भी इमार दो हजार रुपयों की बाँटे रुकनी ही नहीं। जैसे-अनवरत बहती रहेंगी। व्यापार में ही चैन हो तो फिर यहाँ अशांति क्यों ? मैं तो देवना इ-व्यापारी भंडिये कानरह शिकारकी टोह में रहना है। प्राइक को फंसाकर उस मे अधिक से अधिक लाभ उठाकर एक तोलुप मज़ा लेता है। अच्छा, यह मज़ा है तो फिर उसके चेहरे की ज्योति टुकी क्यों रहती है ? यथावधिगत लाभ लेना शायद नुरा नहीं।..... शायद पहलें पहलें व्यापारिक क्षेत्र में आये नौसिलिये ( Novice ) को इस क्षेत्र में रहने वाला स्वार्थ, असत्य-जुब लुंघने होंगे पर बार बार इबाकर अपने को इस बारे में शंका-रुजा-हित कर लेने के बाद वह भी इस संप्रदाय ( Sect ) में का एक हो जाता है। मैं इस सारे संप्रदाय के लिये कहता हूँ क्यों कि मैं सोचना हूँ यदि इस क्षेत्र में मेरा प्रवेश हो तो मैं इस क्षेत्र से अतीत साधु व्यापारियों जैसा नहीं ही होजाऊँगा-ऐसा समझता हूँ।

“कहते हैं कि दुनिया मुल के पोखे दीह रही हैं। व्यापारों भी क्या मुल की खोज में धन कमाता है ? शायद कमाना हा पर अन्न में तो व्यापारी का उद्देश्य यह नहीं रह जाता लगता। यही उद्देश्य हो तो फिर अमृद धन सम्पत्ति होने पर भी सिर सपाटा और सिनेमा को छोड़ कर अपने मारी शरीर को लिये गाड़ी पर क्यों बैठा रहता है ? मैं हीऊँ तो आनन्दको खोज में येनी का मुह एकदम खोल दूँ। एक बार देखूँ तो यह आनन्द क्या है ? हाँको रुपये हैं पर इन्हें उपयोग करना भी नहीं आता। शाम के समय जब दूर दूर से बाग उठें- बुनाने हैं, सिनेमा के Records खीक चीक कर पुकारते हैं, सब भी मैं ब्राह्मण से उलभे रहते हैं यह कैसी जड़ता है जो Vital An का जुरा भी प्रयुसर नहीं देता। मेरे आनन्द का ‘युवक’ तो फट्टक उठे। पर तो भी जानता हूँ अन्दर, बहुत अन्दर जो एक व्याकुल पुकार है वह मुझे चैन नहीं लेंने देगी। ‘रही नौकरी सो वह भी नदीव तो नहीं-पर उसके दोष मैं गिनने नहीं बैठूँगा। नौकरी कर्-पर क्या-कौनसी ?

नौकरी मिल नी जाय तो क्या वह मेरे लिए और हाथ की समतुलित रखने में सहायक हो सकेगी—मेरे मनके अनुकूल होगी? मन की—इस अर्थक को साथ ले चलना इतना मुश्किल होता है कि मुझे हार मान कर बैठ जाना पड़ता है फिर भी आदेश दें।

फिर दूसरे पत्र में इन्होंने लिखा:—“मुश्किल में मैं का हाथ है यही मेरा (अन्तराल में) सबसे बड़ा आश्वासन है। अन्तराल गुजर जाने के बाद मैं अपने में इतनी हल्कापन, कष्ट सहने का सामर्थ्य, बड़ा हुआ देख रहा हूँ। अब होना है कि यदि फिर ऐसी ही अन्तराल आये तो मैं किसी तरह की शिकायत नहीं करूँगा चुपचाप सहूँगा और पुश्ताना। यह एक तरह की प्राणगत (Vital) अनुकूलता प्रतीत होती है। पर Now She has some thing new in her store for me. पुराना जेल वह शायद ही खोले। उस नये जेल में मैं अपने को उस तं लिये खोल दूँ और आरीपना करना शुरू। आपने नौकरी की जगह मेधा करने के लिये कहा है। नौकरी करना मुझे वैसा ही अच्छा नहीं लगता। मन लेने लगे जबदस्ती किसी तरह काम करके स्वामी की रिश्ताने में ही काम की इतिमी समझना लग कैसे कर लेते हैं? मेधा करनी चाहिये मैं स्वीकार करता हूँ पर हो सकता है पूर्वग्रहों के कारण मैं उसमें थोड़ी rigidity देखता हूँ। काम करते समय भी सेवक की स्थिति रहता है कि यह सेवा हो रही है शायद पूरी तन्मयता नहीं आने पाती। मैं अपने लिये कई जब मैं किसी काम में मग्न हो जाता हूँ तो मुझे सेवा या नौकरी कितना का भी स्थिति नहीं रहता, परिश्राम का भी नहीं। परिश्राम के समय सेवक शायद उतने रस का अनुभव न कर सके। पर मैं तो बच्चों की सी प्रसन्नता अनुभव करता हूँ। होक की दिखाना चाहता हूँ-वो, यह किनासा सुन्दर है। अह—का इसमें किनासा भाग है मैं नहीं जानता। मेधा की जगह समर्थण मुझे अधिक पसंद है पर उसके लिये एक तो उपयुक्त स्थान कम है और हमेशा मन प्रसन्नता मुश्किल होता है।

“संकल्प बल की कामी का मैं अनुभव करता हूँ। जिस को मैं स्पष्ट देखता हूँ फिर भले ही कठिन हो संकल्प के जोर से मैं पाक करता हूँ पर जहाँ सफलता बहुत से अन्तरालों के पीछे छिपी हुई होती है और मुझे दीखती नहीं बहाँ सफलता नहीं करनी, शायद कोई सहारा नहीं रहता इसलिये। एक के बाद एक काम करूँगा अनुभव बढ़ना जायेगा। दृष्टि आकर्षणों की भेद सकेगी और और सकल्य सारा काम कर देगा। केवल संकल्प को लेकर अंधे में दूढ़ पड़ना अब तो मुश्किल दीखता है। जो चीज सामने दीखती है अवश्यम्भावी है उसके लिये संकल्प शक्ति से काम लूँगा।”

इन दोनों बातों ने अपने पत्रों में जो विचार प्रकट किये हैं वे इसके उपलक्षण हैं कि उन्हें बाहर जाकर किसी किसी कठिनाईयाँ भेलनी पड़नी हैं, यह बतलाने हैं कि बाहर दुनिया में बहने वाली हवा उससे कितनी विपरीत है जिस

में खाल लेने के वे गुरुकुल में अग्यसी रहे हैं। पर इससे खबराने की प्रकृत नहीं है। यदि गुरुकुल के प्रत्यक्षभय जोषन से उन्होंने कुछ भी तेज और शक्ति प्राप्त की है तो वे खबराने नहीं। इन दोनों बन्धुओं ने जो विचार स्वाभाविकतया प्रकट किये हैं वे ऐसे भी काम के हैं। उनसे खाल उठाना जा सकता है। इसी लिये उन्हें प्रकाशित करने की इच्छा हुई। ये इस बात के भी चोख हैं कि गुरुकुल की शिक्षा निरर्थक नहीं जा रही। पर गुरुकुल की शिक्षा पूरी तरह सार्थक तो अब समझी जायगी जब दुनिया में यह माना जाने लगेगा कि हमारे गुरुकुलों का ज्ञातक दुनिया की विपरीत से विपरीत अवस्था में भी अपना उस ऊँची स्थिति पर कायम रहने हैं उससे नीचे नहीं गिरते, जिसमें रहने की उन्होंने गुरुकुल से शिक्षा पाई होती है, वर्षों तक, दीर्घकाल तक उस स्थिति में स्थिर रहते हुये और आने वाले पैसे सब कष्टों, और अपासियों को भेलेने हुये भी अपने इस तप द्वारा वे दूसरों को ही ऊपर उठने को मजबूर करते हैं पर स्वयं कभी उनसे कम मत होने की नीचे नहीं आ गिरने।

## गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बाल शिक्षा का स्थान

( वे. — श्री श्रीश (विद्यानन्दार )

( ४ )

पहिले कहा गया है कि बालकके अन्दर कुंसेक प्रवृत्तियाँ हैं जिन्हें समुचित गति-विधि देना बाल-शिक्षा का कर्तव्य होना चाहिये। बालक यदि अनुकरणा का पुत्रवा है तो उसे अनुकरण करने के लिये किस प्रकार की सामग्री प्रस्तुत की जाय यह शिक्षक की विदित होना चाहिये। उदाहरणार्थ यदि बालक सभेष्ट और प्रयत्नशील है तो आवश्यक है कि उसकी इस प्रवृत्ति को खोदे २ उपकरणों व प्रयोगों द्वारा किसी आच्छिन्न रचनात्मक दिशा में प्रेरित किया जाय। कितना शुभ हो कि यह रचना की दिशा ( केवल बना देना ) न होकर अपने अन्दर आश्रित कला को धारण करने वाला बन कर सफल रचना की ओर पग उठाये। क्या विकनी मिट्टी से बनाये गये बिलोने, क्या कागज गतने से बनाये किन्हे और क्या बाल से बनाये घर—गाँव और किले सभी में बालक की रचनात्मक प्रवृत्ति को न केवल ठीक दिशा बनाना हो भये हो अपितु उन्से सफल रचना बनाकर कला की बस्तु कहाने का भी प्रयोजन सिद्ध किया जाय। यह सम्भावना करना कि २-७ साल का बालक कलात्मक वस्तुएं रच सकता है शायद हमारी मीज्जा हालत में गलत हो, परन्तु वस्तु देना के बालकों की कृतियों को जब हम अपनी आँखों से देखते हैं तो निम्नलेह हमें विचर होकर कहना पड़ता है कि कलात्मक कृतियों के बारे में उन बालकों की सफल रचनायें हमें भी इस दिशा में प्रयत्न करने के लिये प्रोत्साहित करती हैं। “वर्षा की लुगियादी तालीमी की योजना में जो शिक्षा के व्यावहारिक पहलू को पुनरुद्धारित करने का

प्रत्यक्ष किया गया है वह इस दृष्टि से बहुत ही उपादेय है कि इस से बालक की रचना शक्ति को काबू में कर गौरविकासात्मक तरीके से प्रोत्साहित कर उसे कृतिशील बनाने में सुन्दरतम आयोजन हुआ है। "वाचीन काल में, शायद कभी वैदिक औपनिषदिक काल में गौपान। ब्रह्मि-मं-सोता कर्म द्वारा " शिष्य को गुरु, जीवन की व्यावहारिक शिक्षा के साथ ही आध्यात्मिक विद्या का ज्ञान करा देता था। परन्तु यह बात मौजूदा जमाने में तो मन-मुक्कल सिद्ध हो सकता है यदि विद्यार्थी लोग वषः शिक्षा के उद्योग चर्चों द्वारा सामीप्य देने की झूल स्थापना को अपने परीक्षण और प्रयोगों द्वारा पुष्ट करके इसे उच्च शिक्षा के मंजिल तक पहुंचा सकें। यही बात हमें बाल शिक्षा के बारे में भी उतनी ही सत्य अतएव उपयोगी दीखती है। कुंकि शिक्षा का उद्योगी करण हमारी मौजूदा हालत में हमें उपादेय दीखता है इसका यह मतलब नहीं कि बौद्धिक तथा मानसिक शिक्षा शैली की बिल्कुल उपेक्षा कर दी जाय, नहीं, कदापि नहीं, प्रत्युत् इस शैली को अधिकाधिक व्यावहारिक बनाने की ओर शिक्षकों तथा शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान आकषिप्त किया जाय।

यह नियम कितना सत्य है कि हमारा जीवन न केवल मनन-विचार-और स्मृति से परिपुष्ट तथा नियन्त्रित हो रहा है अपितु ज्ञान-प्रयत्न तथा कर्म द्वारा भी प्रगति शील बन रहा है। इसी नियम को मान्यता को समझ कर क्यों न हमारा प्रारम्भिक व आदिम पाठ या सबक स्मृति के साथ ही साथ कर्मों में भी उतारे जायें ? 'सदा सच बोधना चाहिये' इस नियम का कुछ भी अर्थ नहीं यदि यह हमारे लिये व्यावहारिक नहीं अथवा व्यावहारिक होने पर हम इसे जीवन में नहीं डालते। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य साधन का नियम तथा सेवा-भक्त आदि का हमें स्या मनन विचार का लेना ही पर्याप्त नहीं जब तक कि यह नियम हमारे आत्मा और मन प्राण के सुख विचारों से लंकर प्रत्येक बाह्य-व्यवहार तथा कार्य में ठीक से नहीं उतरता। संक्षेप में हम इसे यों कह सकते हैं कि विचार और किया ( Ideation ) के परस्परिक संबंध को उपयोग का कमोटा पर कसा जाय जिससे कि व्यावहारिकता कपी फल ( कर्मयोग ) हमें सदा प्राप्त हो जाय। जिस प्रकार साहचर्य की सरलता उस 6 प्रकार में है इसी प्रकार सद्विद्यु की सरलता भी उस 6 उद्योग मूलक होने में समझी जानी चाहिये। यदि आप यह मान लें कि शिष्टयुक्तान का हरेक बच्चा किलासफर (दर्शनिक) है तो इसके साथ ही यदि उसका दर्शनिक। किस्सः सनुद्योग' व फलवती किया में नहीं उतर सकती तो बेवजह यह समझ हीजिये कि ऐसे दार्शनिक, अधकचरे फिलासफर होने या काल्पनिक जगत् में विचरण करने वाले कवि। शिक्षा की कसौटी और झालस नैर पर बाल शिक्षा की कसौटी तो यह ही होनी चाहिये कि न केवल बालक को पाठ बाद् करया जाय, अक्षरी बानों का अनु-कृत्य करना सिखाया जाय परन्तु उसका बाबो-हाथों और मन को इस प्रकार सथाया जाय कि वह अपने तई नकल करने व कुछ रचना करने में सार्थ हो जाय। रचना से

हमारा अभिप्राय यूनं तथा समूर्त दोनों रचना है क्योंकि दोनों ही तरह की वस्तुओं का हमारे जगत् में विद्यमानता है और इनके बिना हमारा काम तनिक भी चल नहीं सकता। बच्चों को भावोद्भोजन के लिये अक्षर्य कदाही किस्से जीवन चरित तथा इतिहास-कथानक सुनाना कितना लाभ प्रद होता यह बालरूपन में शिवाओं की माता जीजे बाई द्वारा सुनाये गये वीर रस अरे व्याख्याओं से साबित होना है। कथा कहानियों का ही प्रभाव विशेषतः बालक के मन पर अपने-पेसा क्षाप बिडाना है कि वह आजीवन अस्मिद हो कर ही रहता है। रामायण तथा महाभारत को आदर्श नायकों का चरित्र भ्रमण बालकों की शोचनवाय, धीर, यशस्वी सेवा और सौजन्य से युक्त बनाने में कितना काम कर सकता है यह शिक्षा शास्त्रियों में केवल प्रयाग का ही विषय नहीं रहा अपितु स्वयमेव आमानुभव की चीज बन चुका है।

### गुरुकुल समाचार

वार्षिकी सभा का जन्मोत्सव—

विश्रन्ताथ १२ अंणी मस्स, वीरेन्द्र १३ अंणी श्लेषम-उवर, सुभासचन्द्र १ अंणी मस्स, धर्मवीर १ अंणी मस्स, योगेन्द्र २ अंणी मस्स, विश्वदेव ३ अंणी मस्स, वेदप्रकाश ३ अंणी मस्स, परशु राम ५ अंणी चोट, राजेन्द्र २ अंणी चोट, वेदप्रकाश ३ अंणी वग, बलराज ४ अंणी मलेरिया-उवर, बालकृष्ण ३ मलेरिया उवर, राजेन्द्र (बेहारी) २ मलेरिया उवर, दमनेश २ अंणी मलेरिया, सुरेशचन्द्र २ अंणी अजीर्ण।

गत समाह उपरोक्त ३० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। वर्षों श्रुत के कारण मीमम बहुत अच्छा हो गया है।

गत समाह की विशेषता वार्षिकी सभा का जन्मोत्सव है। सभापति पद का श्री पं० इन्द्र जो विद्यावाचस्पति ने अलंकृत किया। सर्व प्रथम पूर्व सूचना के अनुसार 'प्रजा तन्त्र और अधिनायक तन्त्र' पर वाद् विवाह हुआ। ब्रह्मचारियों ने इसमें बड़े उत्साह से भाग लिया। इसके बाद सरस कविताएं गल्प, तथा प्रहसन पदकर सुनाए गये। अन्त में सभापति जी ने समर्पित तथा ब्रह्मचारियों के साहित्यिक विकास के लिए कुछ विशेष बातों की ओर ध्यान आकषिप्त किया। आपने कवियों के लिए विशेष रूप से कहा कि उन्हें अपनी कविता की धारा को कितनी वाद् के अन्तर् में न बालक संस्कृत रूप से बतने देना चाहिये। इसके बाद वाद् विवाद में प्रथम तथा द्वितीय आने वाले वक्ताओं को पदक दिये गये। प्रथम ब्रह्मचारी वारेन्द्र तथा द्वितीय ब्रह्मचारी उदयवीर और वेदराज रहे। सभा बड़ी उत्तमता के साथ समाप्त हुई। इस का सज्जता क लिए सभा क मंत्री गुरुद्वज जो हम सब के धन्यवाद के पात्र हैं।

इसके बाद, शाम को मान्य पंडित जी का अन्तरराष्ट्रीय-परिस्थिति पर वक्ता गम्भोर भाषण हुआ। गुरुकुलीय रक्षा समिति—

इन सबसे अधिक सुख्य बात यह है कि गत समाह गुरुकुल में रक्षा समिति का बैठक हुई और इस में कुल वारिणों के लिए मैत्रिक शिक्षा ( फिल तथा लाडा आदि का अध्ययन ) अनिवार्य कराया गई है। ब्रह्मचारी जहां इन बातों का पहले ही से कहने थे वहां अब उपलब्ध अध्यापक तथा सब कर्मचारी भी करने लगे हैं। अब यह कार्य नियम पूर्वक सुचारु रूप से चल रहा है।

सृष्टिवर्धक  
ब्राह्मी बूटी  
॥१॥ सेर

गर्मियों में  
एक वार जरूर आजमाइए

सुगन्धित  
हवन सामग्री  
॥१॥ सेर

## गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी का प्रसिद्ध

भीम  
सेनी  
सुरमा

घांत्वों से पानी बहना, खुली कूकरे सुर्खी,  
जाला व पुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार  
से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त घांत्वों में लगाने से  
निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ मारा ॥२॥ १ तोः ३)

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन स्नान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग  
तरोताजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, घांत्वों  
में जलन आदि रोगों में सुख्त आराम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीरी

## गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहानपुर )

घांत्व { लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोट  
देहली—बांदनी पार्क  
पटना—सद्युष्मा टोली, बांकीपुर

## भीमसेनी इतमंजन

घांत्वों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाया है  
मूल्य ॥१॥ शीरी, ३ शी० १॥)

## सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

## सुपारी पाक

स्त्रियों के जरियान रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।  
मूल्य १॥१॥ पाव



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य —)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मूल्य-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश देवालङ्कार

पृष्ठ ४ ]

गुरुकुल काङ्गड़ी, गुरुकुल ५ आयण १९३७, १९ जूलाई १९४०

[ संख्या १४

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

( निदान और चिकित्सा )

[ डॉ० श्री दिनेश वर्मा शांकर त्रिवेदी, अनुपापक—  
श्री धर्मराज वैशाखकार ]

( ५ )

### ( अ ) गुरुकुलों के स्थायी मकान

किसी भी संस्था के स्थिर अस्तित्व के लिए संस्था के अपने स्थायी मकान आवश्यक हैं। प्राचीनकाल में ब्रह्मचारियों के आगे राजाओं के मुकुट मूका करने थे। इस लिए गुरुकुलों की भोपड़ियां महलों की अपेक्षा अधिक निर्भय तथा सुरक्षित होती थीं। परन्तु आज राजा और प्रजा दोनों के हित एक दूसरे से टकराने हैं। अगर राजा प्रजा के लिए हो तो जहां प्रजा की मन्तानों का शिक्षण होता हो वहां उनके रहने के लिए उचित प्रकार के मकान संस्था के संचालन का स्वर्च तथा अन्य सब प्रकार की सामग्री राज्य की और से मिलने के कारण संस्था के प्रबन्धकों को किसी प्रकार की फिकर करने की आवश्यकता नहीं। अथर्ववेद में कहा है—“ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति” अर्थात् ब्रह्मचर्य के तप के द्वारा राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। जिस युग में समस्त राज्य की रक्षा का आधार ब्रह्मचर्य होता था उस युग में ब्रह्मचारियों के लिए स्थायी मकान आदि की समस्या का अभाव ही नहीं था। परन्तु अब तो यह कहना पड़ेगा कि संस्था के लिए स्थिर मकान अनिवार्य हैं। गुरुकुलों के लिए किस प्रकार के मकान होने चाहिए? यह विषय विचारणीय अथर्व है। कई विचारकों का कहना है कि गुरुकुलों में मकानों के पीछे जो खर्च हुआ है वह ठीक नहीं। जिनके सामने प्राचीन काल के गुरुकुलों की कल्पना है उनकी आज भी गुरुकुलों में भोपड़ियां देखने को इच्छा ही यह स्वाभाविक है। लेकिन देश काल में जो परिवर्तन हुआ है उनकी तरफ भी ध्यान देना चाहिए। इतना तो ठीक है कि मकानों पर उपादा खर्च करने की अपेक्षा बालकों के जीवित जागृत मकानों पर और यह खर्च किया जाए तो उपादा अर्थात् स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हों, सील वाले न हों, हवा और

रोशनी आती हो, रहने का आराम हो और प्राचीन काल के लोगकों ही इस प्रकार के मकान ही होने ही चाहिए। कर्मों की देवने के लिए देश देशके स्थापत्य कलाविशारद हिन्दुस्तान में आते हैं, इसका क्या कारण है? यहाँ की स्थापत्य कला ने अब कोटि तक विकास किया था। गुरुकुलों के मकान चाहे मादे ही लेकिन उनकी हीदारीयों में से पचीनता टपकती चाहिए। ये मकान भव्य बेशक हों लेकिन इनकी रचना को देखकर पाठ्याओं की आँखें तो जरूर खुलनी चाहिए। इन मकानों में बहुत सूक्ष्म चित्रकारी और नक़्शा का काम करने की जरूरत है ऐसा मेरा अभिप्राय नहीं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल के मध्यभाग में जो यज्ञ-शालाको रखा था इससे गुरुकुल की शोभा द्विगुणित हो गई थी। गुरुकुल में यज्ञशाला, गोशाला, यमशाला आदि मकानों का होना जरूरी है, परन्तु कर्जा लेकर ये सब मकान बनाने से कोई संस्था स्थायी नहीं बन सकती। संस्था को क्रियक प्रगति से यदि प्रजा को मंगेय होने तो उद्धार वली गृहस्थों के हृदय में उद्योति प्रगट होती है और परिणामतः दान का प्रवाह बूट सकता है। आचार्य का निवास स्थान प्राचीन संस्कृति के सदागी के आदर्शों का प्रगट करने वाला होना चाहिए। गङ्गा के परले पार गुरुकुल काङ्गड़ा में तो आश्रम, यज्ञालय, आनागार, तथा आचार्य कुटी आदि इमारतें थी। इन सब में एक भावना ओतप्रोत थी। इस भावना में उपेक्षा करके हम अधिक देर तक संस्कृति की रक्षा का दावा नहीं कर सकते। इन्द्रप्रस्थ के मकान पहाड़ी मकान हैं। मुम्बई प्रदेश के गुरुकुलों में विद्या सभा का जो गुरुकुल है उसके पास तो अभी तक अपने मकान ही ही नहीं। सृष्टा गुरुकुल के मकान गुरुकुल कांगड़ा की शैली पर सामूहिक परिवर्तन के साथ बनाए गए हैं। सोनगढ़ गुरुकुल भव्य महल बनाने में भाग्यशाली हुआ है परन्तु उसके अन्दर अब ‘गुरुकुल’ की आस्था नहीं रही है और यह किसा प्रकार बस सा सकेगा यह बात श्रद्धानन्द है। शरीर बन गया लेकिन आत्मा उड़ गई।

गुरुकुल के मकानों की दीवारों को किसी रंग से रंगना चाहिए-उदाहरण के लिए पीले रंग से। प्राचीन स्थापत्य के विशेषज्ञ भारत में मौजूद हैं। उनसे हम विषय में सलाह अवश्य लेनी चाहिए। अगर इस प्रकार किया जायगा तो मकानों की कृत्रमता दूर हो सकती है, मकानों में प्राचीनता का दर्शन हो सकता है और अलग व्यय से बड़े बड़े मकान बनाकर हम परिष्कृत पूर्णक कमाण हूए जनता के पैसे को बर्बाद नहीं करेंगे।

## गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बाल शिक्षा का स्थान

( ले०—भी शंकर विद्याभट्टर )

( 4 )

बालक स्वभावतः चञ्चल है अतएव परिवर्तन प्रिय तथा अस्थिर मन है। उसकी इस चञ्चलता में भी एक प्रकार का विनाश है जो इस चञ्चलता में अदृष्ट को नहीं जाने देता। चञ्चलता बच्चे जैसे पशुओं में भी विद्यमान है-परन्तु यह औचित्य को अनतिक्रमण कर जाने के कारण बच्चा प्रथम रूप में हमारे सम्मुख आता है। बच्चा बच्चे की चञ्चलता को प्रतिक्रिया प्रमुख्य में उभरे देखने मात्र, प्रसन्नता करने तथा उभरे विद्यमान में होना है। परन्तु इसके प्रतिकूल बालक की चञ्चलता प्रमुख्य के विनोद का सामान बन जाती है और वह उभरे इतनी प्रिय लगती है कि वह सहसा उससे प्यार करने लगता है। इस प्यार करने की इच्छा को यदि समझ से काम में लाया जाय तो बाल-शिक्षा के अनेक सुन्दर पाठ बन सकते हैं। बालक को लिखने देने के साथ नाम बना कर उभरे लक्ष्योन्मुख से बालक का अन्वेषण होना स्वाभाविक है। बालक का हाथ धाम कर उभरे वर्षामाला के अक्षर अथवा गिनती के अक्षर लिखवाने से उसकी अंगुष्ठियों और हाथों में के गोल गोल चंचालता में लिपि कला का प्रथम अध्याय अपनी आँकी दिखाने लगता है। फूलों की बहुरङ्गी कपारी में लं जाकर समूह करने से नाना रङ्ग रूप वाले सुन्दर फूलों से उसकी जानकारी होती है। हरे अरे मणिमनु धाम व धौरे के खेतों में लड्डू हो कर आगे दिशा-इसकी उप दिशा और कोषों में लक्ष्य कर के दिखाने से उसकी दिशा ज्ञान की सोमा बढ़ने के साथ ही समीक्षा-दूरी, ऊपर नीचे आदि व्यावहारिक दिशा बोधक परिभाषाओं में उसका प्रवेश होता है। प्रातःकाल का सूर्योदय और संध्या का सूर्यास्त, नमील आकाश की अनन्त नीलमा का विस्तार-एक ह रूपकी में अनभिन्नता तारों का आँसो दीखना तथा प्रातः ओम्भल होना, अन्वेषणा का आदिम उदय और उसका निरन्तर बढ़ना-घटना पूर्वोक्त का ध्व ब स्थिरता में ऊपर मिर किये लड्डू रहना, नदी सरिताओं का निम्नोन्मुख प्रवाह और बनों का ऐकानिक मौन, किस बाल हृदय को अपने सहस्रों प्यार दुःख से पालना पोसना न होगा। यह है बालक का प्राथमिक वातावरण जिसको अपने शत शत हस्तों से सुजना

करने में प्रकृत माता ने न केवल अपने अमूल्य स्वभावपर एरन्तु अमर की समस्त भाव प्रतिमाओं को नमर्पित करके उक्त उष्णक उदारता का परिचय दिया है जिसे कि गुण विद्या-कोशों को शिक्षा के समुल्लेख को न बाले ब्रह्मदायी गुण ही दिया करते हैं।

ऊपर कहा गया है कि बालक में चञ्चलता होती है और इसी कारण प्रारम्भ में उसके पदे २ विक्षिप्त चित्त होने की संभावना है। इस चञ्चलता में उपर विक्षिप्तता का इलाज शिक्षक किन् प्रकार से करे ? एक इलाज जो ऊपर बन्दर के संबन्ध में कहा गया था वह है प्रतिक्रिया यानी डार-धनका, मार पीट कर सोधा कर देना। परन्तु यह इलाज मानवीय होने का अपेक्षा हमें तो प्राथमिक प्रथमक दीखता है। इस कारण इस में मानवीय सुधार की सम्भावना कम प्रतीत होता है। मानवीय इलाज तो चञ्चल-विक्षिप्तता-पठनमीरता आदि दोषों के मूत्र को खोज कर उसका इलाज करना है। मेरी समझ में बालको की सहज चञ्चलता को दबाने की बजाय उभरे हमें गौचक परिवर्तनों के दायरे में लं जाकर विनोद बनाना चाहिये। यह ठीक है कि चञ्चल प्रकृति प्रमुख्य कुछ भी स्थिरता में नहीं कर सकता। अर्थात् कोई काम पूरा नहीं कर पाता, सब अधूरा ही करता है। निरन्वेष ऐसी चञ्चलता दुर्लभ है। यदि बालक में भी इसका बांझ है तो उसका इलाज अभी से आरम्भ होना चाहिये। चञ्चलता में विक्षिप्त चिन्ता आती है और इससे कोई काम पूरा नहीं हो पाता। यदि कोई बालक पाठ को पूरा याद नहीं करता-अधूरा या करता है-द्विष्ये या विस्मयिते कभी पूरा नहीं कर पाता-अपेक्षा अधकचर, बना कर छोड़ आता है-तकली से कताई करता हुआ तार भट भट कर उठे ठीक से नहीं जोड़ता, योग या श्रुणु का सवाल करते हुए अन्तिम अक्षरों पर पढ़ने की जल्दी में हमेशा गलती करना रहता है तो यह सब कमियाँ उसकी चञ्चलता में उत्पन्न विक्षिप्त चिन्ता का उदाहरण समझना चाहिये। इन अधूरी आदतों को मार-ताड़ कर दबा देने की बजाय शिक्षक को चाहिए कि बालक के अन्दर अति चञ्चल बन रहे चञ्चल स्वभाव को साथ समझ कर अर्थात् जानबूझ कर स्थिर तथा शान्त बनाने का प्रयत्न करे। इस लिये उसको-चञ्चल स्वभाव को उत्पन्न करने वाली जल्दी को-स्थिर तथा शान्त प्रकृति प्राप्त कराने वाली शैली में तथा पुनः पुनः पर्यवेक्षण और प्रतीक्षा करने की शिक्षाओं से इस प्रकार समझना बुझना चाहिये कि वह स्वयंसेवक अपनी गलतियों को-कर्मों को जानले और उन्हें जान कर दुरुस्त करने का आदी हो जाय।

यह बालक कितना भला प्रतीत होगा जो कि अन्यन्त चञ्चल होने की बजाय, शान्त-चञ्चल विनोदों का सुजन करता हो। पठन मीठ होने की बजाय एक बार लेखने में खूब दिल लगा कर फिर पठन प्रारंभ करने में भी लेख कूद की उमंग को अपने साथ बनाये रखता हो। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि बालकों को सम्बन्ध कीक्षा-विद्या की बजाय पाठशाला, शिक्षक का कर्म, तथा स्कूल की बहाना दीवारी क्यों काटती सी है, क्यों भय विभाती है।

क्या वह वहाँ पर जहाँ दूसरे भी सैकड़ों बालक जमा होने हैं अपने घर का सा आराम और आरम्भ अनुभव नहीं कर पाते या अपने माँ बाप और भाई बहिनों का सा प्यार नहीं अनुभव करते। होना तो यह चाहिये कि उन्हें इन बात का विचारना ही ज़रूरी कि अब जहाँ पर घर को छोड़ का वह पहुँचाये गये हैं वह घर की ग्यारी या बृहन्नर घर की भाँति ही एक शाला है जहाँ कि यह घर से उन जेबों और विनोदों से भी बहुत कर हटित करने वाले जेबों को अपने पाठों में प्रति दिन पढ़ कर उनका क्रियात्मक अभ्यास करेंगे जिनके लिये यह विस्तृत शाला बनाई गई है। परन्तु देखा जाता है कि शाला का यह अभिप्राय मित्र न होकर बालकों के कोमल मनों पर जो कि ऐसे परिश्रम क लिये तैयार नहीं होने उलटा ही प्रभाव पड़ना है और वह पाठशालाओं और स्कूलों से ऐसे नर मानने हैं जैसे मेंड्री बकरियाँ उन हृदय होन व ही से जहाँ उन्हें लाठी के सिवाय और कुछ नहीं मिलता।

घर और परिवार आरम्भ और सुख का धाम होना ही तो शाला का संसार भी बोल-फूट पठन-पाठन और रचन सृजन का मुख्य आगार होना चाहिये। इसके लिये हमें विद्यालय का बालावस्था बनाना होगा, सोभी बालक के आराम-आयुष्मत्ताओं को धरने के लिये, नाच और रङ्गनी-वृत्ति का परिष्कार करने के लिये और इसके साथ ही अन-जाने में उसके प्रान्त के सृष्टि-रसतल पर उन गुणों की अमिट छाप छाप बिठाने के लिये जिनके प्रचार के लिये विद्यालय की स्थापना हुई है। आज हमारे देश में बालकों की संख्या में विद्यालय मुझे हुए हैं पर उनके बारे में यह कहा जा सकता है कि यह बालकों की शिक्षा तथा उन्हें संस्कृत बनाने के लिये नहीं है अपितु कुछ पहिले से निर्धारित पाठन क्रम को बालकों के कोमल दिमागों में ठूसने के लिये ही है। मन्त्र-पुत्रादि का मन्त्रण कला तथा पठित पाठों का बोलना अपने आप में कोई बुरी चीज नहीं है परन्तु जब शिक्षा के एक गीष् ने अंग को समुची शिक्षा समझ लिया जाय-तो यह अक्षरों की बाण है। शिक्षा का ध्येय और विशेषतः बालशिक्षा का ध्येय तो बड़ा होना चाहिये कि जिससे शिक्षार्थी के अन्दर निहित गुण धर्मों और सुप्रवृत्तियों को समुचित प्रेरणा मिले कि जिससे उनकी गति विकसितोन्मुख हो। बालकों की शिक्षा के बारे में जिस बात का ध्यान अकरो है वह यह है कि उनकी नामा प्रवृत्तियों का अध्ययन करते उनकी पूर्ति और प्रेरणा के लिये किसी मूर्त उपादान का अध्ययन किया जाय। जैसे कि हमने प्रारम्भ में कहा था कि बोधना एक स्वयम्भू में निबद्ध ऐतिहासिक किया है ( Mechanical repetition of tongue ) यह कथन बाँकों के प्रसंग में निरान्त संगन होना है। बालकों का शालना मानसिक किया के साथ स्वार्थ करने हुए भी बस्तुतः स्वर-यन्त्र-वादी एक मूर्त किया ही है। इसी नियम का अनुशीलन करते हमने बाल शिक्षा के समूचे पाठ्यक्रम को सम्मुखीन ( Direct ) तथा मूर्त रूप ( subjective ) देने का प्रस्ताव किया है। क्मों कि ऐसा करने से न केवल पाठ्य विषय बृद्ध होने की बजाय सुगम हो जायगा परन्तु बाल-वृद्धि

में समक न आने वाले विषय भी सुगम होकर साथ ही बालकों के लिये मनोरञ्जक भी हो सकेगा। यह आवश्यक नहीं कि मूर्त पाठ ( object lessons ) पढ़ाने के लिये अत्यन्त नामग्री विदेशी व कौमी ही बरीद कर लार्ड जय परन्तु उन्हे प्रत्येक शाला के कर्मकार आवश्यकता-नुसार स्वयं भी अपने यहाँ उचित हाथ की सफाई ( हस्त कौशल ) के साथ निर्माण करने में सफल हो सकने हैं यदि उस ओर भी प्रयत्न किया जाय।

अन्त में हम बालशिक्षा का विषय समाप्त करने हुए एक निवेदन करना चाहते हैं। बालकों की शिक्षा छोटे बच्चों को पढ़ाने की कला है। इसे हर कोई नहीं कर सकता इसके लिये उपयुक्त शिक्षक की अवेज्ञा है जो कि बाल स्वभाव और बाल प्रवृत्तियों से परिचित हो। उनकी अवस्था के अनुसार लिखा-पढ़ा सके। सबक सिखा सके। बालकों के दिल और दिमाग और प्रायः शरीर भी मोम से कोमल होने हैं। इस अवस्था में उनकी शिना के लिये कठोर और कटु उपायों को अवेज्ञा कोमल और छुपाम् उपायों को बरतना ही अवेष्टक है। हम ताड़ना और लालना जो कि कठोर और मृदु उपाय हैं दोनों को शिक्षा के क्षेत्र में मानने है परन्तु साथ ही कहने है कि बालक के दिल और दिमाग की समता को समझने के लिये कोमल व्यवहार तथा सहायुभूति पूर्ण शिक्षण का विलसिल, ज़रूरी रहना निरान्त आवश्यक है। यह बात किननी तथ्य है कि गुरु की छुपा और दया से शिक्षा प्राप्त होनी सहज है परन्तु क्रोध और अक्षमशीलता से नहीं।

### ग्रीष्म कालोऽयमागतः

यह आगत है आया।

संस्तुति के उच्छ्वास वात में  
विकल प्राण कुम्हलाया ॥  
दिनकर के उन तृपित हृद्यों ने  
झीर सिन्धु मुलाया।  
गाया पुर्लिन-वन-शीत रात्रि में  
धर्म ज्ञान बिल्लाया ॥  
गीत एक आकुल गाँवों ने  
तल आह्वान आय। ॥  
दूधा तुवा का करुण कथा में  
मूक हृद धी माया ॥  
भरलोम्बुक हो चुक शाकक ने  
अभू आर्त गिरघया।  
विद्वल ध्यान पथिक है चिन्तित  
यह आगत क्या लाया ॥  
जगा ग्रीष्म है विशा वेध में  
समय शुद्ध लक्ष लाया ॥  
मानव पर निद्वेष से दारुण्य  
अग्नि ज्वाल मुलसाया ॥

“त्रिरेफ”

# गुरुकुल

५ श्रावण शुक्रवार १९६७

## आत्मरक्षा

(शाकायं चमयन्ते जी)

### १ आत्मरक्षा या आत्मघान

पंजाब के कुछ भागों से लोग अपने घर छोड़ छोड़ कर इधर आ रहे हैं। हरखार में ऐसे बहुत से परिवार आ चुके हैं। गुरुकुल में ऐसे पत्र भी पर्याप्त मात्रा में आये हैं जिनमें इधर आजाने की अपनी इच्छा प्रकट की गई है और रहने का प्रबन्ध कर देने को कहा गया है। यह सब देख कर बड़ा दुःख होता है। पहिला क्याल तो मन में यह आता है "जनाब जिन्ना साहिब तो ज़बानी ही पाकिस्तान की बात कह रहे हैं पर यहाँ तो यह सचमुच किया जाने लगा है, समझा जाता है और बर्बरों ने तो स्पष्ट कहा कि असल में मुस्लिम लोग भी पाकिस्तान चाहती नहीं हैं; यह तो केवल धमकी है या धमकी के लिये एक प्रति-योजना मात्र है, पर यहाँ तो हिन्दुओं की तरफ से इस पर अमल भी शुरू हो गया है।" यह कितने दुःख और दुर्मौख्य की बात है। मेरा जी करना है कि मैं इस सभ्य पंजाब में जा बूँ और इन शस्त्र के सेतों में घूँ। मुझे यदि गुरुकुलिये कर्मियों से जुड़ी हो जा सकें तो मेरी बहुत प्रबल इच्छा पंजाब जाने की है। ऐसे लोगों को मैंने तो सदा यह सलाह ही है कि यथा शक्त वहीं रहो, अन्य सब के साथ ही जीओ या मरो। पर यह स्पष्ट है कि उन का यह आगना आदि सब कुछ आत्मरक्षा के लिये है, उधर पाकिस्तान को योजना भी मुसलमान अपनी स्थिर सुरक्षा के लिये ही करना चाह रहे हैं। और मैं कहता हूँ कि मैं जो उम्हें वहीं जीने या मरने की सलाह देता हूँ वह भी उनकी हिन्दुओं की और देश का सच्ची सुरक्षा के लिये दे रहा हूँ।

कहाँ हम आत्मरक्षा करने हुए असल में आत्मघात तो नहीं कर रहे?

### निर्भयता

आक्रमण से आत्मरक्षा करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। प्रकृति ने हमें प्राणधारी व जीवित संगठन के अन्दर यह प्रवृत्ति रखी है और हममेंवर्तमानमें अन्दर नानाविध क्षतियों व आक्रमणों के समय पर नानाविध क्रियाओंका रूप धारण करती है। पर यह आत्मरक्षा हम किन्हीं भी क्रियाओं द्वारा कर या किन्हीं साधनों द्वारा करे इसके लिये जो सबसे अधिक प्रतिकूल बन-रहे, और आक्रमण के लिये जो सबसे अधिक अनुकूल हैं वह हैं अय। अथवा आक्रमण की निमित्त करना है, कठिनाई व मुसीबत को अपनी ओर कीबता है। जैसे कहीं गरमी आदि के कारण से हलके होने से घायु-मरडल में। कबली स्थान पर शन्यता पैदा होती है तो वारी

तरफ की वायु उधर खिच कर आती है और आंधी खा चल पड़ती है, उसी तरह हमारे अन्दर भय के कारण जिससे हम डरते हैं उसके प्रति शन्यता उत्पन्न हो जाती है जिस से सब तरफ से वह बस्तु हम पर बहक कर आने लगती है। अयमीत या बलात्कोने का मतलब ही यह है कि जिससे हम डरते हैं उसके आने के लिये अपने अन्दर स्थान खाली कर देना। कहते हैं एक बार महामारी एक शहर से लौट रही थी जहाँ वृक्ष हज़ार आदमी इस बीमारी से मरे थे। उस से किसी ने पूछा कि तुमने बहुत आदमी मारे। उसने जवाब दिया, 'नहीं' मैंने तो मुश्किल से की आदमी मारे हैं, शेष ह हज़ार ह की भी भय से मारे हैं।' जंगलों का अनुभव रखने वाले लोग बताते हैं कि जंगली जानवर, विशेषतः शेर, तभी आक्रमण करता है जब कि मनुष्य की आत्म में भय के किन्हीं प्रकट होने हैं। यदि मनुष्य निर्भय होकर उससे आत्म मिलाने तो शेर हट जाता है। आक्रमण तभी होता है जब आक्रान्ता और उसके शिकार का घन और शून्य का अन्तर हो जाता है, भाव और अभाव का मेल मिल जाता है। भय है जो प्राणी को अनुत्पन्न बना देता है, उस में अभाव उत्पन्न कर देता है। कुत्ते से डरो तो वह और जोर से भीकता है, डर कर मागो तो वह जोर से भीकता हुआ पीछा भी करने लगता है, नहीं तो दो बार बार भीक कर सुपहां जाता है। निर्बल जब भय के लक्षण प्रकट करना है तो, दुष्ट बलवान् को आक्रमण व अत्याचार के लिये प्रलोभित करता है, ललवाता है। न में आक्रमण करना हो तो उस के भय को देख कर आक्रमण करने में तैयार हो जाता है। आज यही हो रहा है। लोगों ने भय के बारे आगना तक शुरु किया तो दूसरे मनुष्यों की वचां हूँ हिंसा वृत्तियां जाग गईं, कर्षों को यह हालत देख लूटना याद आ गया, कर्षों को इसका मोका मिल गया और कर्षों को ऐसा करने का सव्ध हो गया। नहीं तो इन मनुष्यों को ये नीची वृत्तियां सुप्त पड़ी रहती।

### भय को छिपाने के लिये सबलता का प्रदर्शन

अयमीत होना हिंसा को बढ़ाता है और मूल रूप में कहे तो निर्बल होना ही हिंसा को बढ़ाता है। इन लिये अयमीत न होना और अपने की सबलता को अनुभव करना आत्म रक्षा का मौलिक इलाज है। शब्द में अयमीत सबलता का मान है, अत एव हम निर्भय हैं तो हम वृद्ध में आक्रमण करने के साथ पैदा होने की ही खेड देंगे। इस लिये कभी कभी अपने बल का प्रदर्शन कर देना ही गुंठे को सकने वाले अपने दुस्ताहवां आधियों का टोकने के लिये पर्याप्त हो सकता है। यदि ये हमारा सैनिक कुशाघरें तथा तथा एवं यह प्रकट करने के लिये हैं कि हम जागरूक हैं, हम में संगठन और व्यवस्था की शक्ति है, सबलक है तब तो डीक है। पर यदि यह भय को कारण है तो घुटा है, रग्य अय। कौनों कि कर्ष बार अपने मरने को छिपाने के लिये ही ल का प्रदर्शन—विज्ञान—किया जाता है। पर असल में उनका अय छिपता भी नहीं है। कृषकों के लिये किये बल (?) के प्रदर्शन में से अलक अलक कर यह बाहर दृश्यता है। और अपने अन्दर का-भय का-

भय तो अन्दर अन्दर अपना (अत्ममय) को जीव लाने का काम करता ही है। मुलानान में लोगों ने अपने घरों में लाठे के दवाँजे लगावने शुरू किये। वहाँ की सरकार उन्हें तुड़वा रही है। क्योंकि ये लाठे के दवाँजे लगाना बल का प्रदर्शन नहीं था किन्तु किये हुए भय का प्रदर्शन था। मुलानान शहर में हिन्दूओं और मुसलमानों ने तलवारें भी बड़ बड़ कर झरोकीं। पहिले इसकी इजाज़न दे दी गई थी-अब ये चीन ली गई हैं। यह सब भय और पराधीनता का लेश है। ये दोनों चीजें साथ ही रहती हैं।

( क्रमशः )

### द्वानवृत्ति की आवश्यकता

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के एक होनहार प्रह्लाचारो के लिये एक छात्रवृत्ति (१६) मासिक की आवश्यकता है! बालक सदाचारी, चर्मात्मा अपनी भोगी में उन्मत्त तथा अष्टाङ्ग व्याख्याता है। इस श्रेणी में पढ़ना है उसके पिता धानामाव के कारण मुमुक्षु नहीं दे सकते परन्तु उन्ने पढ़ाना गुरुकुल में ही चाहते हैं। यदि कोई दानो विद्या-प्रेमी इस प्रह्लाचारी की पढ़ाई का भार अपनी छात्रवृत्ति देकर उठाना चाहें तो बड़ा उपकार होगा! कम से कम सहायता भी धन्यवाद पूर्वक स्वीकार की जायगी।

पतः-—१० सोमवत्स जी आचार्य  
गुरुकुल कुरुक्षेत्र,  
करनाल।

### हंस, सुना, तुम चुगते मोतो

सच मुच मुम्हको अपनाओगे ?  
मेरे मानस में आओगे ?  
तुम क्या जानो, तुम्हें बुलाने मुझे किम्क किननी है होमी !  
हंस, सुना, तुम चुगते मोती ?

( २ )

मेरा माबस जलना रहता ?  
गोलें झाल उगलना रहता ?  
कहाँ रहोगे ? क्या आओगे ? पटी लोच चेतनता गेनी !  
हंस, सुना, तुम चुगते मोती ?

( ३ )

तुम मुम्हको कहे पयहर दिख ?  
किन्तु क्या भी क्या मेरा दिल !  
पिघला हसे, तुम्हारे हित आँकों में सतत बनाता मोतो !  
हंस, सुना, तुम चुगते मोती !

—सत्ययुवक 'योगी'

### प्रान्च और प्रतोच्य

( ३ )

[ ले० भी व० भीम देव ]

प्राकृत्य सभ्यता को लेकर जो अग्रज हमारे भारत वर्ष में भाये और आज राज्य करते हैं वे अपने आभितों के अन्तर्गत बनकर नहीं रह सकते। प्रजा के मनो के जानने का उपेक्षा करते हैं। अग्रज उपकार करने से पीछे न हटेंगे किन्तु प्रकाश भी मनुष्य के पास जाना नहीं चाहेंगे। अग्रजों ने अपने आपको हम लोगों के लिये आवश्यक तो कर डाला पर प्रिय बनाने का आवश्यकता नहीं समझा।

पर अग्रजों का ही कमा देखने से यह विवेचनः पूर्ण नहीं हो पाता। इन दोनों संस्कृतियों का समागम अभी तक मङ्गल परिणाम क्यों नहीं ला रहा- इस में भारत वामि भा कारण है। हम अग्रजों में जो सत्य है श्रेष्ठ है उसके साथ सम्पर्क नहीं करते। उन में हम वयिष्क भाव ही पाते हैं। हमारा और उनका आफिस का सम्बन्ध है आत्मा-यना का नहीं।

मेल समान बल वालों में हो सकता है। हमें मानना पड़ेगा कि भारत वासा दुर्बल है। भारतीय स्वयं ही दुर्बलता के यशोभूत हो गये हैं। व अग्रजों के सामने दीन हो जाते हैं। यह दानना भारतीयों ने अपने आप पैदा का है। आज भी भारत में उच्च वर्ण के लोग नाच वर्ण के लोगों से दीनता करवाते हैं। यहीं से उच्च वर्णों में भी दीनता आ गई है। यही दीनता अग्रजों के सामने जाकर प्रकट हो जाती है।

अवतक हमने अपने आप का मनुष्य नहीं बनाया। अनः वचोन्त्र कहते हैं- "जबतक हम व्यक्तिगत या सामाजिक मूर्खता के कारण अपने देश के लोगों के प्रति मनुष्योचित व्यवहार न कर सकेंगे, जबतक हमारे देश के जमींदार अपनी प्रजा को अपनी सम्पत्ति का अङ्गमात्र न समझेंगे, हमारे देश का प्रकृत पञ्च दुर्बल को पैरो नीचे दबा रखने को ही सवातन रीति समझेंगे, ऊँचे वर्ण के लोग, नीचे वर्ण के लोगों के प्रति पशु से भी अधिक घृणा करेंगे तब तक हम अग्रजों से सद् व्यवहार पाने का दावा नहीं कर सकेंगे, और हम अग्रजों की प्रकृति को सन्धे भाव से नहीं जगा सकेंगे, और भारत वर्ष वजित और अभमानित हो होता रहेगा।"

"हम अपने मनुष्यत्व के द्वारा उनके मनुष्यत्व को जगवेंगे। इन छोड़ सत्य प्रहय करने का और कोई सद्ग रास्ता नहीं है।"

इस लिये हमें मनुष्यत्व को प्राप्ति के लिये साधना करना होगा। हमें एकान्त में जाकर अपने आत्मा को शिक्षित करना होगा। हम सच होकर ही सबल क साथ मैत्री कर सकते हैं। तब ही हमारा सभ्यता पूण हो सकती है। और हम मानव जाति को शान्ति प्रदान करने वाला संस्कृति का निर्माण कर सकते हैं।

पूर्व को अपने आध्यात्मज्ञान का अधिमान है। वह आध्यात्म के प्रति बहुत अधिक मुक्त गया है। पर, यह ध्यान रखना चाहिए कि

पार्थिव परिस्थिति को सिद्ध किये बिना आध्यात्मिक अर्थ सिद्ध नहीं हो सकता। केवल मात्र आध्यात्मिकता कुछ नहीं कर सकती। यदि पाश्चात्य संस्कृति वैयक्तिकता से पूर्ण है तो पूर्व को आध्यात्मिकता की इसके साथ संगति होनी चाहिए। पूर्व और पश्चिम का, आध्यात्मिकता और वैयक्तिकता का पूर्ण समन्वय आवश्यक ही करना पड़ेगा क्योंकि आत्मा मन के द्वारा ही देह में रहकर कार्य करता है। यदि पाश्चात्य संस्कृति भौतिकवादी है तो आध्यात्मवादी पौराण्य संस्कृति को उसका सहारा लेना पड़ेगा। आत्मा भौतिक देह पर ही आश्रित रहकर कार्य करता है।

भौतिक आविष्कारों के मद से सदाशय प्रतीच्य आध्यात्म में रमण करने वाले भारत पर आज शासन कर रहा है। सन्धियों से भारत कुचला जा रहा है—पर उसका अस्त्व आज भी है; क्योंकि उसमें आध्यात्मिकता का सूक्ष्म बल है जहाँ पश्चिम का पशुत्व पहुँच नहीं सकता। पशु बल को लेकर प्रतीच्य भारत पर आक्रमण कर चुका है। अब भारत को उसका प्रतिकार आत्मबल से ही करना होगा। प्रतीच्य पशुता ही करेगा, वह अपनी पशुता नहीं छोड़ेगा तो भारत भी अपनी आध्यात्मिकता नहीं छोड़ेगा। आश्रय दोनों में सन्धि हो जायगी और एक विश्व संस्कृति का आविर्भाव होगा।

कह्यों का विचार है कि भारतीय मध्यता अपने आर में पूर्ण है, उसे किसी अन्य मध्यता की आवश्यकता नहीं। पर, यह संकीर्णता है। यदि यह बात सच हो कि हम जो कर सकते हैं वह पहले ही किया जा चुका है तो फिर हमारा-संसार में आना-जन्म होगा। कई सोचने हैं कि प्राच्य और प्रतीच्य का कभी संगम ही ही नहीं सकता। पर उनको ध्यान रखना चाहिए कि प्राच्य में ही वृद्ध, ईसा, मुहम्मद ने जन्म लेकर प्रतीच्य में भी अपना धर्म फैलाया है प्राच्य ने ही प्रतीच्य को धर्म की शिक्षा दी है।

ईसाई धर्म ने उनकी यथोचित आध्यात्म का उपदेश दिया है। ईसा ने यूरोप को उपदेश दिया था—

“किसी से वैर मत करो। यदि कोई तुम्हारे बाये गाल पर चपत मारे तो उसके सामने दहिना गाल भी धरना। मारे काम कात्र छोड़कर परलोक में जाने के लिये तैयार हो जाओ, कारण दुनिया दोहां का रोख में नष्ट हो जायगी।”

दूसरी ओर कृष्ण भगवान का उपदेश है—“स्व लम्हा से काम करो शत्रुका मारा करो और दुनियां का भोग करो।” यह प्राच्य को उपदेश दिया गया था पर प्रतीच्य इसका अनुकरण कर रहा है विचार उलट फेर हो गया है। प्रतीच्य आज कृष्ण का उपदेश पहलू किये हुए है और प्राच्य ईसा का अनुकरण कर रहा है। पर, सत्य तो वैदिक धर्म में विहित है जो कहता है स्वधर्म का पालन करो। सब अपने हितसे का काम करें। वैदिक धर्म कहता है—“अविद्या सृयंतीर्षां विदुष्यात्सुमरुते।” कम और जान दोनों का संगम होना चाहिए। इन दोनों के संगम से ही अमृतत्व की उत्पत्ति होती है। विश्व कवि के श्रौंन का ज्ञान यही ईशोपनिषद् का वाक्य है। कबीन्द्र का चतु, देसना है कि प्राच्य निरे ज्ञान में ही लगा है और प्रतीच्य कर्म में ही मलमल है। एक विश्वा का ही पोषक है, दूसरा अविद्या का।

ये दोनों अकेले अकेले नारा की ओर जा रहे हैं। इस विश्वा और अविद्या को मिलाने दो जिससे अमृत प्राप्त होगा—चरम शांति की स्थापना होगी।

इन दोनों संस्कृतियों का समन्वय ही संतुतियों में शांति की प्रत्येक वेरगा।

आप प्रतीच्य की संस्कृति के केन्द्र पेरिस में जाहण छोटे से बड़े सब स्वरूढ़ और सुन्दर पाराक में सजे हुए दिखाई देंगे। पर, स्नान के लिए पानी मांगोगे तो बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ेगा।

प्राच्य संस्कृति के केन्द्र कारा में जाहण-यम्रों की किसी प्रकार भी परवाह वहाँ नहीं है—केवल एक अभोवसन में ही काम चल जाता है। कड़े का मैला होना-उनके मन पर बुरा प्रभाव नहीं करता। रोज रोज स्नान करते हैं पर कपड़ा नहीं बदलते।

अब दोनों संस्कृतियों का संमिश्रण कीजिए-स्नान भी करना चाहिए और शरीर की शुद्धि के बाद स्वरूढ़ वस्त्र भी पहनने चाहिए। यह है दोनों संस्कृतियों का सामञ्जस्य। पश्चिम में स्वाकर मयने सामने मंह भोना ग कुल्ला करना भी बड़ी लजा का बाण है। लोक लजा के भय से हाटलों में या फो कर चुपचाप मंद पोंड कर बैठ जाना पडता है।

पूर्व में जाहण-सबेरे सबेरे रात्ने में बैठ कर मंह में हाथ डाल डाल कर मंह धोते हैं दान माफ करने हैं, कुल्ला करते हैं। यह असम्भार है।

अब दोनों को मिलाइये—अवश ही ये सब कार आइ में करने चाहिए और सर्वथा न करना भी अनुचित है। यहाँ पर यह भी देख लीजिए—हिन्दुओं की अमृतदृष्टि होनी है वे फटी गुड़की में कोहनूर रखते हैं। विलायत वाले मोने के बक्स में मिठी का देला रखते हैं। हिन्दु भीतर साफ रखते हैं। विलायतों बाहर साफ रखते हैं।

समन्वय यह है कि भीतर और बाहर दोनों की सफाई होनी चाहिए।

समन्वय का यह अर्थ नहीं है कि भारत अपने संस्कृति को छोड़ दे। और नये निरे से पाश्चात्य संस्कृति की स्वीकृति करे। अगर ऐसा हो जाय तो भारत का संवना हो जायगा। उमे पश्चिम के गुणों को अपने सांचे में ढाल कर लेना होगा। भारत को अपनापन रखते हुए दूसरे को संस्कृति की अपनाता होगा।

भारतीय मध्यता इनका अधिक अपूर्ण नहीं है कि उमे सब कुछ दूसरों से ही लेना पड़े। परन्तु भारतीय संस्कृति रूपी नरों के विकास स्थान में सपूर्ण आध्यात्मिकता तथा उपयुक्त भौतिकता थी। पर, वह नरों केवल आध्यात्मिकता को ही लेकर बर निकली। भौतिकता तमिक भी न रखने पाई। अतः उम नरों का पाश्चात्य संस्कृति की नदी से संगम करना होगा। उसके बाद एक ही नदी मानव मात्र का हित करना हुई बहेगी।

भारत का स्वधर्म आध्यात्मिकता का रहा है। वह मानता है कि राजनैतिक एवं सामाजिक स्थापना बहन अरुद्धी चीज है। पर, इनका नश्वर आध्यात्मिकता

के बाद ही है। भारत के इतिहास में देख लीजिए। विदेशी राज्यों ने जब तक राजनैतिक और सामाजिक स्थायीता का कुचला भारत को कोई चोट न पहुँची परन्तु जब औरंगजेब ने हिन्दूधर्म को नष्ट करना चाहा—मुगलों का राज्य नष्ट होगया। आज भी यदि अंग्रेज हमारे धर्म कर्म के मामलों में हस्तक्षेप करें तो वे भी अपने नाश का निकट चुलावेंगे। हजारों वर्ष से पराधीन होने पर भी हिन्दू संस्कृतिका विनाश आज तक क्यों नहीं हुआ ? इसका कारण यही हो सकता है कि उसकी आध्यात्मिकता जैसी सूक्ष्म चीज पर भीतिकता-वादियों का तनिक भी प्रभाव न पड़ा। अतः हमें अपनी उच्च आध्यात्मिकता को कायम रखते हुए उनको संस्कृति से आज शिक्षा लेनी होगी।

भारत यदि पश्चिम के प्रजातंत्र को स्वीकार करेगा तो वह अपने तरीके से। प्रजातंत्र राज्य स्थापित करने के लिये उसे पूरी तरह से प्रतीत्य को नकल नहीं करना होगा। भारत में भी प्रजातंत्र का जोर रह चुका है। यहाँ भी पञ्जायतों द्वारा धर्मों में निर्णय हुआ करता था। भारत में प्रजा तंत्र रहा है यह बात प्राचीन ग्रन्थ बताते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र, इस बात को बताता है। 'राजा' शब्द का अर्थ हीय ह है कि जो प्रकृत अर्थानु-प्रजा का रक्षण करे। महाभारत के शब्द २ में प्रजानन्त्र राज्य को गन्ध आती है। हाँ, चुनाव जैसा पश्चिमी राजनेतक जीवन की चीज यहाँ किये नहीं देनी पर प्रजा मना वैदिक मन्त्रों में भी प्रतीत होती है। ऐसे ही प्रकारों से इन दोनों संस्कृतियों का सम्मेलन होगा और विश्व कवि का यह स्वप्न पूरा होगा कि— "भारत में जो लोग आए हैं अथवा आने हैं वे सभी हमारा पणना के अंश होंगे, सभी का लेकर हम पूर्ण बनेंगे। भारत में विश्व मानवका एक अति महान स्वप्नका कामांसा होगी वह सम्बन्ध यह है कि मानव समाज में वृष् की, भूषा की, स्वभाव की, आचरण की, और धर्म की विचित्रता है—नर देवता इस विचित्रता के बदील ही विराट हुए हैं—भारत के मन्दिर में हम इसी विचित्रता को एककार में परिणत करके उसके दर्शन करेंगे—पृथक्ता को निर्वाहित वा लुप्त करके नहीं किन्तु सर्वत्र ब्रह्म की व्यापक उपलब्धि के द्वारा, मनुष्य के प्रति सर्व महिष्यु परम प्रेम के द्वारा, उच्च और न-च, अपने और पराये, सब की सेवा को भगवान की सेवा मानने के द्वारा।"

(समाप्त)

### गुरुकुल समाचार

बन्धुगुप्त १३ अंशो श्लेष उच्च, स्वयंवीर अंशो १३ श्लेष उच्च, प्रकाशबन्धु १२ अंशो श्लेष उच्च, अमरसिंह ११ अंशो श्लेष उच्च, शकुन्त देव १४ अंशो श्लेष उच्च, सहदेव ११ अंशो श्लेष उच्च, विम्बनाथ १२ अंशो Mump बन्धुकान्त २ अंशो Mump, इन्द्रसेन ३ अंशो विषम उच्च, श्याम बिहारी २ अंशो विषम उच्च, रामचन्द्र अंशो ३ विषम उच्च, श्री कृष्ण १ म श्लेष उच्च, वैवेन्द्र ( हैदराबाद ) अंशो ४ विषम उच्च, रामनन्दन ३ अंशो लोड।

गत सप्ताह उपरोक्त १० रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं।

## मान्य अतिथि श्री पन्नालाल जी

संयुक्त प्रान्त के हिज एकसलेममी गवर्नर के सलाहकार श्री डा० पन्ना लाल गत १५ जुलाई को प्रातः काल ८ बजे गुरुकुल भूमि में पधारे। आपके साथ संयुक्त-प्रान्तीय सरकार के शिक्षा व्यवसाय आदि विभागों के सेक्रेटरी श्रीयुत मेहता भी थे। मुख्याधिपता जी के साथ आप दोनों ने गुरुकुल के सब विभागों का निरीक्षण किया। गुरुकुल के अर्द्धानन्द से वाश्म, व्यवसाय विभाग, आयुर्वेदिक फर्सेसी, स्मृतिग्रन्थ आदि विभागों में आने के काफी दिलचस्पी प्रकट की और सराहना की। सरकार द्वारा यथोचित प्रोत्साहन का आश्वासन भी दिया।

इसके बाद एक कुछ समामें आपने कुछ देर तक अपने विचार भी प्रकट किये। आपने कहा कि मैं गुरुकुल में किसी सरकारी भाव को लेकर नहीं आया हूँ मैं तो एक हिन्दुत्वानी को हैमियत से यहाँ आया हूँ और आप के बीच में भाकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। गुरुकुल को देख कर मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। आप लोग यहाँ पर ब्रह्मचर्याश्रम के कठोर जीवन को व्यतीत करते हुए 'सरल जीवन और उच्च विचार'के आदर्श को चरितार्थ कर रहे हैं। आप अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति और वैदिक धर्म का पुनरुद्धार कर रहे हैं, और साथ में पाश्चात्य विज्ञान को उषेता नहीं कर रहे हैं यह आप की विशेषता है। आपके मकानों को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। आने इनमें सब आनन्दशकतापूर्ण की हैं। माफ सुधरे बनाए हैं किन्तु कहीं पर एक पाई भी फिजूल व्यय नहीं की है यह आपके जीवन आदर्श का चित्र प्रतीत होता है।

अन्त में आपने गुरुकुल की सफलता-कामना करने हुए आश्वासन दिया कि मैं आप की सब प्रकार से मदद करने को तैयार हूँ।

स्मृतिवर्षक

ब्राह्मी बूटी

॥॥ सेर

सुगन्धित

इबन सामग्री

॥॥ सेर

गर्मियों में  
एक बार जरूर आजमाइए

## गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी का प्रसिद्ध

भीम  
सेनी  
सुरमा

आंखों से पानी बहना, खुंकी कुरे सुर्खी, जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त आंखों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ मारा ॥२०॥ १ तें० ३॥

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन ज्ञान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग तरोताजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, आंखों में जलन आदि रोगों में तुरन्त आराम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीरी

## गुरुकुल फार्मेसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहारनपुर )

श्रांघ

लादीर—हस्पताल राड  
लखनऊ—भारामरोड  
देहली—चांदनी चौक  
पटना—मछुआ टोली, बांकीपुर

## भीमसेनी दंतमंजन

दांतों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है

मूल्य ॥॥ शीरी, ३ शी० १॥

## सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

## सुपारी पाक

बिधों के जरियान रोग की

प्रसिद्ध औषधि।

मूल्य १॥॥ पाच



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विद्याविद्यालय का मुद्रण-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश देवालङ्कार

पृष्ठ ५ ]

गुरुकुल काङ्गड़ा, शुक्रवार १२ आश्विन १९३७, २६ जूलाई १९४०

[ संख्या १५ ]

## “चतुरङ्ग साधन”

आचार्य कम्प्यूटर्स श्री वेदाचार्यपति वेदभूषणी रिसर्च कॉलेज सूरज  
संसार के रमणीक उपवन हैं। अहाँ सुख के सुन्दर  
मुगन्धित फूल और मधुर मधुर फल हैं। यहाँ बुद्ध की  
कंठीली भाङ्गियाँ भी। जहाँ तहाँ पढ़ी हुई हैं। इन्हें साफ  
करके दीन्यर्चनानिधान, प्रेमभवन, रत्ननिधान प्रभु का ध्यान  
करना ही मानव जीवन की सारथिका है। अतएव जगत् के  
स्वरूप का विचार करके कथित वस्तु के शाश्वतनि-  
सिद्धार्थ ने “सर्वं बुद्धं” का चर्चाराव किया। अतः,  
व्याधि और मृत्यु को देख इन्होंने वैराग्य, बुद्धा और मित्र  
पुत्र और मित्र पत्नी को निद्रा की मधुर गोद में छोड़ कर,  
लक्ष्मी की उपेक्षा करके श्यामनिशा में राजपाठ छोड़ कर  
चल दिये। बुद्धदेव को यह वैराग्य भावना कायर की नहीं  
अपितु दूरियों के दुष्को को देख कर दृष्टित हुए कोमल  
हृदय में से निकली हुई पवित्र भावना है। पुरुषोत्तम राम-  
चन्द्र जी ने बनवास के कठिन प्रसङ्ग में सीता देवी के  
सामोप्य की मनुष्यता को विस्मृत नहीं किया और जब  
दैवतुविधाक से यह मानुष्य लूट गया तब भी पूर्ण यीरता  
से विपदाओं का मुकाबला किया और विजयी हुए। जब  
इन दोनों मह पुष्पों के जीवन में भी भिन्न भिन्न रूप में  
वैराग्य की भावनायें काम करती रहीं। तब हम पामर जीवों  
का तो कहना ही क्या? “संसार सरोवर” का “प्राह” हमें  
कोटि कोटि जन्मों से प्रल रहा है क्या हमें इससे सुदृकार  
न मिलेगा? इस “प्राह” से बच कर अराधन के सरण  
हरण में जाने के कौनसे साधन हैं? कानियों ने इसके लिये  
“चतुरङ्ग अर्थिकार” पाने की आवश्यकता बताई है वे  
इस प्रकार हैं।

( १ ) नित्याभिव्यक्तुविवेक ( २ ) इहानुप्रार्थफल-  
भोगविराग ( ३ ) शम दम, उपरति, तितिक्षा भ्रष्ट,  
समाधानादि बह वैश्वी सम्पत्ति ( ४ ) मुमुक्षुत्व।

मनुष्य नित्याभिव्यक्तुविवेक का विवेक कर सकता है  
पशु नहीं। पशु वर्तमान सुख से संतुष्ट रहता है परन्तु  
मनुष्य भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों के सुख की प्राप्ति  
के लिये यत्नशील होता है। प्रभु से मनुष्य में यत्न

विवेकराशि रक्की हुई है कि वह अपना हितार्थन विचार  
कर काम करना है—मनुष्य काज की रोटी के विचार से  
शांत नहीं होता है अपितु भविष्य के लिये भी विचार  
करता है। कुल्लेक तो इस जन्मके विचारसे शांत न रहकर  
परजीवनके विचार भी करते हैं। संसारके सुख अनित्य हैं।  
पेसा कोई भी सुख नहीं है जो युव से रहत हो परन्तु  
मनुष्य उस सुख को चाहता है जो सचचा सुख रहित हो।  
एक तरफ यह स्वाभिवाचा और दूसरी तरफ सम्प-  
त्तिवासा दोनों ही नित्य सत्य की कोज में मनुष्य को  
प्रतिष्ठ करती हैं। मनुष्यति के ध्येय में यही नित्याभिव्यक्तु  
वस्तु-विवेक प्रथम साधन है। द्वितीय पत्र से आरंभ  
संसार में निमग्न होकर परममन्त्र प्रभुको कोनेवाला मनुष्य  
महामूर्ख है। अतः सारदर्शिक के लिये “विवेक” जरूरी है।  
इसके बाद द्वितीय अंग “वैराग्य” है। जगत् जगत् की  
दृष्टि से हेय है यही द्वितीय वैराग्य की जन्मी है। जगत्  
परमसत् का आधार होने से सत् है यह ज्ञान वास्तविक  
ज्ञान है। आत्मा देह से भिन्न है, मां बाप हमारे नहीं हैं  
अनाद्यन्त काल मधोवधि न हमारे जीवन लक्ष-विशु-  
मात्र है। “परमात्मा ही आत्मा का सचचा आधार है”  
“पनदासम्बन्ध भेद” पनदासम्बन्ध परम्” यह  
प्रभु ही आत्मा का परम प्रभोजन रसस्थान है।  
जैसे पक्षी घोंसले का तरफ लौटने हैं इसी  
प्रकार हमारी बुद्धियाँ प्रभु की तरफ आवर्तित होती हैं।  
इसी लिये भक्तमीरा ने कहा है—“अब तो मेरा राम नाम  
दूसरा न कोई, संसार के महान आत्मा जगत् में विचरने  
हुए भी अरथ्य तुल्य पकात का अनुभव किया करते हैं।

मीरा का उम्कट भक्त हृदय इस विश्व को प्रभु की  
मुँह बोलती तन्वीर बताता है। वस्तुतः धर्म भावना  
में वैराग्य एक आवश्यक साधन है। वैराग्य के बिना क्या  
बुद्ध महावीर, शंकर ईसा आदि महारामा प्रबल धार्मिक  
बन सकते थे? योग्य आचकार का पाये बिना संसार से  
बचरा कर जो वैराग्य पैदा होता है वह अनिष्ट कारक है।  
मीरा का वैराग्य प्रभु प्रेम-रत्न से लिक होने से मधुर  
था, सुन्दर था। उसका हृदय विश्व के पारमार्थिक तूष्णी  
को देख दया से भर जाता और प्रथिन हो “जगत देखि  
बहु रोई” रो उठता था। जिस वैराग्य से यह अनुकल्प

पैदा हो यही सच्चा वैराग्य है। संसार का वैराग्य प्रभु के राग में जब तक परित्यक्त नहीं हुआ तब तक अधूरा है। प्रभु के साथ प्रेम होने पर प्रेमी अर्थात् ममता से मुक्त हो जाता है। यही जीवन का सच्चा साध्य है। यह दशा ज्ञान से भी भिन्न सक्तता है। आत्मा अर्धमय के बन्धन से अतीत है यह समझना भी आत्मस्थिति पाने के तुल्य है। इस दशा में साधक प्रभु में अखिल कर्मों का अर्पण करना है और प्रभु के रूपमात्र विस्मरण में भी अकूल व्याकूल दशा करना है। यही "भक्ति" का सत्य स्वरूप है "तद्विधिना भिन्ना चरना तद्विस्मरणे परम व्याकुलनेति।" संश्लेष में कहें तो दोनों ही लोकों के मुञ्चोपयोग को तिलाञ्जलि देना भावना के पथ का दूसरा मञ्चिक है। इस वैराग्य से ही देशभक्त सच्ची देशसेवा और प्रभुभक्त सच्ची प्रभु भक्ति कर सकते हैं। परलोक के मुञ्चों को पाने की इच्छा से बहलोक के मुञ्चों का परित्याग बाधितमुक्त है। अत एव कुछ वैराग्य की आवश्यकता है। एतदर्थं बहूक सम्पत्ति को साधना परमावश्यक है। प्रथम "शम" है। इसमें अन्नःकरण से विषय वासना को छोड़ने का प्रयास करना होता है। द्वितीय "दम" है अर्थात् वाह वृत्तियों से आत्मा को मलिन न होने देने का प्रयास। रूपरसदि विकारों से वृत्तियों को हटा कर आत्मामिमुक्त करना "उपवम" है। यह तृतीय वैधी सम्पत् है। हजारों विपदाओं को आत्मशक्ति से सहन करना "नितिक्षा" है। इसे पाने पर "विपदो नैव विपदाः, सम्पदो नैव सम्पदाः" विपद्विस्मरण विपदाः संपत्कारणकस्त्विति। विपत्ति की फांसी के झूले पर साधक हँसते हँसते झूल जाता है। इसके बाद "भद्रा" माता की गोद में विश्राम लेने की आवश्यकता है। "भद्रा माता मनुःकवि ईशावाक्य-मिदं सर्वम्, ऐतद्वाक्यमिदं सर्वम्" आदि वाक्यों में बखित उक्त भावना सच्ची है। इस भावना को फैलाने को गुरु-जन अपने अनुभवों से जो उपदेश देने हैं वह सर्वथा सत्य हैं। यह आशा सच्ची भद्रा है। वृत्तियों के परम-सह्य भगवान की आराधना-साधना में विश्व को लगाना "समाधान" है। यह पदक सम्पत्ति का सामान्य स्वरूप है। इससे मनुष्य के आचार विचार शुद्ध निर्मल बन जाते हैं।

नित्याभ्यास वस्तु-विवेक करने करते अनित्य पदार्थ से वैराग्य हुआ करता है। इस वैराग्य में से बहूक सम्पत्ति का अनुष्ठान शुक होता है। इन सब के आधार में "मुमुक्षुः" की उक्त भावना अर्पित है। संसार से मुक्त होने की तीव्रतम वृत्ति "मुमुक्षुत्व" है। यही धर्मों का अंतस्सार है। दश केश दुष्की मनुष्य जिस मीत्र वेग से जल शय में डुबकी लगाना है उनसे ही वेग से निम्न की नश्यना का ध्यान करके साधक के हृदय में प्रभु के दर्शन की तड़प होनी चाहिये। यह वृत्ति साधना की सहचरी है। जगत् के हिरण्य पात्र में संलग्न मुल की हटा कर मुमुक्षु जब अष्टन कलश का वृम्भन करना है तब उसके सब दुःख काफूर हो जाते हैं, भावना पिल उठनी है और भाव्य भावों के सामने नाश उठना है। प्रभु-प्रेम माना के स्तन्य के समान मत्तु है स्तन्य को चूसना हुआ बालक जैसे समोपस्थ जनों की देवता है, और उनसे

बोलता है इसी प्रकार साधक संसार को मेम्बने, अनुभव करते हुए भी बुद्धि के लिये प्रभु की ओर सकल निमित्त नयनों से देखा करते हैं। यह प्रेम शरणागत संसार कृपी माह से बचना का परम साधन है। यही मानव जीवन का परम धर्म ध्येय है। हमें इस ध्येय के लिये प्रतिक्षण साधना करनी चाहिये।

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और शिक्षा)

[ डॉ. श्री दिनेश चन्द्रा शंकर त्रिवेदी; प्रमुपाधक—

श्री चमराज देशबंधकार ]

(६)

### गुरुकुलों के लिए दान

"हिन्दुस्तान के प्रत्येक कोने में गुरुकुल के लिए धन की धनियों जुझा मह करके पुकार रही हैं। परन्तु जाकर ले आने वाले पवित्र आत्मा नहीं हैं। मुझे सच्ची आत्माओं की आवश्यकता है। अपने एक से गुरुकुल वृक्ष को लॉन्चने वालों की जड़रत है।"

—महात्मा मुन्शीराम।

जब समाज वर्ष आश्रम धर्म के अनुसार चलता था और बालकों की शिक्षा के लिये राज्य का कोष हस्तगत खूला रहना था तब धन की समस्या नहीं थी। किन्तु वर्तमान समय में प्रत्येक संस्था को किसी न किसी अंश में जनता से प्राप्त धन पर निर्भर रहना पड़ना है। शिक्षा संस्थाओं का संचालक रूप से सञ्चालन विचारधियों से मिलने वाले शुल्क तथा दानियों द्वारा दिये गये धन के द्वारा ही हो सकता है। अर्थात् समाज का संचालन धार्मिक है और सांस्कृतिक भावनाओं में काम कर रही हैं, अतएव सरकारी संस्थाओं के समान इन्हें प्रथम तब नहीं चलाया जा सका और चलाया भी नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त शुल्क की दर भी देश की आर्थिक स्थिति के सामान्य पैमाने को दृष्टि में रखते हुए ही नियत करनी पड़ती है। इस समय गुरुकुल जैसी संस्थाओं में कितने ही बालक सर्वथा निःशुल्क, कितने ही आधी फीस पर और बाकी नियत शुल्क देने वाले होते हैं। अनेक मां-बापों के शुल्क के खाने में देय धन बढ़ना ही रहता है। यदि ठीक समय पर शुल्क न देने वाले माता पिता की सन्तानों को घर बापिस भेज दिया जावे तो न सिर्फ गुरुकुल की भावना ही क्षति होती है परन्तु कितने ही प्रतिभाशाली विद्यार्थियों का शुल्क न देने के कारण मन्विष्य बिगड़ सकता है। इस बात को संस्था के सञ्चालक नहीं देख सकते, इस लिये कई विद्यार्थी बिना शुल्क गुरुकुल में अध्ययन करने रहते हैं। अनेक संस्कृत आर्थिक स्थिति के ठीक होते हुए भी गुरुकुल से नाजायज फायदा उठाते हैं। इस तरह की खराब आदत से सरकारी संस्थाओं में तो घड़ी भर भी काम नहीं चलाया जा सकता। इससे दीपक के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि गुरुकुल के प्रबन्धकों को जगता तथा दानी भद्रालु गुरुकुलों से मिलने वाले दान के आधार पर ही गुरुकुल चलाने के लिये आश्रित रहना पड़ना है। जय

जनता के सम्मुख धन के लिये झोली पसारी जानी है। तब सब भूल जाते हैं कि किस कठिन आर्थिक अर्थशास्त्र में सम्झाओं को गुरुकुल चलाना पड़ता है। जो बाप भी इन चीजों को भुला देते हैं कि एक विद्यार्थी पर भी आज बल औषधि शिक्षा आदि का खिलना ब्यर्थ होगा है शक की दर उससे कहीं कम होती है। इसके अलावा गुरुकुल में खेल कूद और कसरत के साधन, हुस्ने मालकों तथा अध्यापकों का सम्पर्क, लुकी हवा तथा दोशमी वाली विशाल भूमि इत्यादि का जो लाभ मिलता है, इसके लिये मां बापों को कुछ खर्च नहीं करना पड़ता।

यह सब होने हुए भी अब उस बात को तीव्रता से अनभर किया जा रहा है कि सामान्य जनता तथा लक्ष्मी के रूप में धीमे धीमे अन्धे की तरफ उल्लास की वृद्धि बढ़नी आ रही है। दूसरा एक नम सत्य यह है कि अन्धे का अचिकित्सा चन्दा मांगने वाले की व्यक्तिगत वाकफिअत या प्रपन प्रतिष्ठा के कारण बढ़ता होता है। लोग इसका ख्याल नहीं करते कि सत्य का महत्त्व क्या है और संस्था की ऊँचरियाँ क्या हैं। संस्था के काम की देख बहन देने वाले बिरले पुरुष होते हैं। लोगों ने परिश्रम बढ़ाना, बार बार जलाने आदि में उनके सामने आते रहना इत्यादि युक्तियों से ही गुरुकुल के लिये धन संग्रह होना सम्भव है। गुरुकुल की आर्थिक अवस्थाओं में तो अज्ञेय जनता ने कुछ वर्षों तक पूरे उत्साह से धन की धारा बहाई। आगरीधी के तीर पर गुरुकुल बल चल रहा था, उस में मानवीयता के दृष्टि कोष को तिलाञ्जलि देकर गुरुकुल ने भी अपनी शक्ति के अनुसार आहुति दी थी। बाद में गुरुकुल में ही गुरुकुलों के खुल जाने से इस आहुति में कमी उत्पन्न हुई लेकिन यह आहुति रुकी नहीं। एक ऐसा समय आया जब कि पैसा कमाने के लिए अफिका में गए हुए भारतीयों ने चन्दा जमा करने के लिए अपने संस्थाओं के प्रतिनिधि-मण्डलों ने यहाँ से प्रस्थान किया। दान लेने वाली संस्थाओं में अंगर संगठन होना तो दाल दाताओं में बुद्धि भेद होने की सम्भवना नहीं थी। लेकिन सब संस्थाओं का एक उद्देश्य होने हुए भी सब का ढङ्ग अलग अलग होने से दानी लोगों को संदेह हुआ और वे जिधर २ विभागों में विभक्त हो गए। परिणामतः हर एक संस्था को अपेक्षाकृत कम चन्दा मिलने लगा।

गुरुकुल कांगड़ी पहिले जिन भूमि में था उस भूमि को देने वाले दुर्गरी अमनसिंह जी थे और यह दान प्रायः हमरखीय स्वर्गीय महाराम मुन्शीराम जी (स्वामी अदानन्द जी) और परिव्रज गङ्गावत जी (स्वामी शुद्ध बोध तीर्थ जी) के द्वारा मिला था। इन तीनों के जीवन काल में ही गुरुकुल के भूमि परिवर्तन का प्रस्ताव पाम हो जाने से इनके दिल को कितना आघात पहुँचा होगा, इस का अन्वयात्मकाना मुश्किल है।

पुराने दानी उदासीन हो गए, नए दावियों में दान के अर्क उगते उगते ही कुम्बला जाने हैं। बिना जनता सब से बढ़ा औडीटर है हम विशा में सञ्चालक वर्ग को अधिकारियों को और जनता का धारणा पूर्वक विचार करना बहिष्कार।

सारांश में मेरी नम्र सम्मति के अनुसार:—

( १ ) प्राणों के गुरुकुलों को परस्पर संतुलित होकर एक बन जाना चाहिए। और फिर जनता से दान के लिए अपील करनी चाहिए।

( २ ) उत्तम उपदेशकों के द्वारा साल भर जनता में प्रचार करने के पश्चात् अन्धे के लिए निकलना चाहिए।

( ३ ) प्राणियों प्रतिनिधि समा की आधीनता में चन्दा होना चाहिए और यह समा प्राणत के भिन्न भिन्न गुरुकुलों को गंत शकल में दान का धन दे सके ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए।

( ४ ) नियुक्त तथा अर्द्ध-शुद्ध वाले विद्यार्थियों के माना पिता को अपने बालकों की शिक्षा के लिए वया-शक्ति शुद्ध देना अपना कर्तव्य सम्मनना चाहिए।

( ५ ) सब प्रकार के अपठक का बुर करके प्रतिव्यक्ति जितना खर्च होता हो उसको अनुसार शुद्ध को दर रखनी चाहिए।

( ६ ) प्रतिभाशाली विद्यार्थी यदि गरीब मां हों फिर भी उनका शुद्ध भाग न करके स्कालरशिप के रूप में उनकी मदद करनी चाहिए।

( ७ ) खर्च का सारा हिसाब जनता के सामने आना चाहिए। और संस्था ने जो अच्छे कार्य किए हों उनसे जनता को परिचित करना चाहिए।

## डा० पन्नालाल जी की सम्मति:—

गुरुकुल का भली प्रकार निरीक्षण करने के पश्चात् अपने आवास स्थान पर जाकर डाक्टर पन्नालाल जी ने यहाँ के सम्बन्ध में अपनी जो सम्मति लिखकर भेजी है वह पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दी जाती है:—

गुरुकुल के विषय में कई वर्षों से मैं सुनता आ रहा था परन्तु यह अभी तक मेरे लिए केवल नाम मात्र था। आज प्रातः इस संस्था के योग्य और उत्साही मुख्याधिपता सत्यवत जी ने मुझे निमंत्रण दिया और गुरुकुल का दर्शन कराया। मैंने इसके विभिन्न कार्य देखे। विद्यार्थियों को सर्वथा प्राचीन प्रथा के अनुसार कठोर एवं गम्भीर शिक्षा दी जा रही है, साथ ही अन्य प्रथाओं के उत्तम एवं उपयोगी अंशों का भी अपनाना जाता है। कुलवासी असाधारण रूप में साधन एवं न्यत्व प्रतीत हुए; उनके चहरे सूक्ष्मदर्शी, प्रसन्न एवं सन्तुष्ट लगते थे। मुख्याधिपता और उनके साथियों में अत्यन्त सम्मान और प्रतिष्ठा की भावना थी जिसका विद्यार्थियों पर अवश्य अच्छा असर पड़ता होगा। मुझे आशा है कि यहाँ से दुनियाँ में प्रविष्ट होने वाले नवयुवक सफल होंगे और मातृभूमि के सुपुत्र सिद्ध होंगे।

### पन्नालाल

हिज्जलसलेन्को दि गवर्नर यू० पी० के सलाहकार।

( शिक्षा एवं स्वास्थ्य विभाग )

१५-५-४०

# गुरुकुल

१२ श्रावण शुक्रवार १९६७

## आत्मरक्षा

(आचार्य भगवदेष सं)

( २ )

### शस्त्रों की व्यर्थता

जो भयभीत होगा वह शस्त्रों की अपेक्षा रस्तेगा, शस्त्रों के तथा अन्य बाह्य वस्तुओं के पराधीन होगा, हिंसा करेगा। यह बान इतनी साफ और सीधी है—पर पुराने संस्कारों के कारण हमारे बान में टिकनी नहीं है कि भय, शस्त्रों की अपेक्षा, पराधीनता, हिंसा और कायरता एक ही बात हैं और निर्भयता, शस्त्रों की अपेक्षा न तोना स्वाधीनता, अहिंसा और वीरता बिल्कुल दूसरी बात है। यदि हम में भय है ( हिंसा, कायरता आदि हैं ) तो हम बेशक हथियार चाहेंगे। पर वे हथियार हमें काम नहीं देंगे, सम्भव है कि ये हमें ही मारने के काम में आवें। और यदि भयम ( अहिंसा और वीरता आदि ) है तो हम हथियारों की हमें अपेक्षा नहीं होगी। अतः शस्त्र दोनों हालतों में बेकार हैं, एक जगह निरूपयोगी होने से, दूसरी जगह अनावश्यक होने से। फिर भी कल्पना में शस्त्रों की जो कहीं कहीं सार्थकता है वह इसलिये क्यों कि हम हिंसा से अहिंसा की ओर, भय से निर्भयता की ओर और कायरता से वीरता की ओर जा रहे हैं। अभी पहुंचे नहीं हैं। पहुंच जाय तो शस्त्र अनावश्यक होंगे। असल में तो किन्ही भी बाह्य साधनों का वास्तविक अपना कुछ महत्त्व नहीं है, क्योंकि शक्ति तो अन्दर है। बाह्य साधन अन्दर की शक्ति से ही शक्तियुक्त होते हैं। शस्त्रों में थोड़ा सा बल तभी प्रकट होता है जब कि शस्त्रधारी के अन्दर बल होता है। हथियारों का कुछ उपयोग तभी उठाय जा सकता है जब कि हम में निर्भयता और वीरता हो और अपेक्षाकृत अहिंसा हो। और शस्त्रों की उपयोगिता का यह थोड़ा सा सचचा दोष भी तब था, जब कि शस्त्र हमें निःशस्त्रता की ओर ले जाने के साधन होते थे, आत्मरक्षार्थता को बढ़ाने ( शस्त्रों की अपेक्षा को घटाने ) के साधन होते थे। सांख्यिक द्वांशपाय की पद्धतता था। जब कि दूरन के निःशस्त्र हो जाने पर उस पर प्रहार करना कथम होता था, उसे नये शस्त्र ले आने की कष्ट जाता था। तब शस्त्र धारण अने आदमियों के लिये होता था। अर्थात् तब जिन लुटे से बुरे आदमियों के लिये शस्त्रों की जरूरत होती थी वे भी आखिर इतने भले होने थे, आज कल की अपेक्षा कहीं भले होने थे। आज कल हम कहते हैं कि ताले तो भले आदमियों के लिये

होते हैं—कभी इस देश में खोरी इतनी कम होती थी कि लोग घर में ताले बांधि नहीं लगाते थे, पर अब ताले को देखकर जो चोरों नहीं करते वे भले हो आदमी होते हैं, बुरों के लिये ताले बेकार हैं। तो यदि किसी समाज में ऐसे बुरे लोग हो जाय जो ताले तोड़ना बेल समकते हों तो वहां ताले लगाकर सुरक्षा करना पूर्णना होगी। इसी तरह आज कल की दुनियां में 'शस्त्रों द्वारा सुरक्षा बेकार है' यह बुरी तयह मानित कर दिया है। मनुष्य समाज इस बात में इतना बुरा हो गया है कि "भलों के लिये शस्त्र धारण" की बात आज यहां लागू नहीं हो सकती। ताले और शस्त्र अब मनुष्य जाति को खोरी और हिंसा से रोक नहीं सकते। अब तो इससे ऊंचे दर्जे की शक्ति चाहिये—अद्वैत और अहिंसा की शक्ति—जो वर्तमान मनुष्य जगत् की कायापलट करे, बुरों को भला बना सके।

### शस्त्र और वीरता

आज कल की शस्त्र विद्या में पराबल हुवे योरुप में ही जय शस्त्र धारण आत्मरक्षा के लिये व्यर्थ साबित हो चुका है तब भी यदि हम भारतवर्षी आज शस्त्रों की मांग कर रहे हैं तो यह मांग असल में हमारी भीरुता का ही प्रकाशन है (अपनी भीरुता छिपाने की एक तरकीब है) हमारे सहपाठियों में एक विद्यार्थी बर जाने के लिये प्रसिद्ध था। भय के अवसर पर हम लोग इसी में उमका नाम लेकर कहा करते थे कि अमुक कहता है कि जिन को डर लगना हो वह उसके चारों तरफ इकट्ठे हो जायें। उसके चारों तरफ इकट्ठा होने से रक्षा तो उसकी होगी, पर वीरता यह कि मानों उसने अन्नों की रक्षा के लिये उन्हें इकट्ठा किया है। सो आज संसार में यह बहुत हो रहा है। नाम और की रक्षा का लिया जाता है पर रक्षा अपनी होती है। इसी तरह शस्त्र हथियारों को अपने चारों तरफ इकट्ठा तो किया जाता है अपने भीरुपन के कारण, पर सम्भव यह जाना है कि ये हथियार वीरता के चिह्न हैं। गुरुकुल के क्लाक रेशा बन्वू जी का उदाहरण स्विय के तयने के तीर पर मैं सूना चुका हूं। एक दंगे के समय जब वे बिना कुछ भी हाथ में लिये निकल पड़े तो दूरमे ने कहा, 'पंडित जी! खंडा-बंडा तो हाथ में ले जाइये'। उनका उत्तर था कि मुझे डंडे या हथियार की क्या जरूरत है, जो मुझ पर हमला करने आवेगा वह कुछ हथियार तो हाथ में लेकर आवेगा, वह हथियार मेरे ही काम आवेगा, उसके नहीं। जो जितना वीर होगा, वह ततना ही निर्भय होगा, उतनी ही आहेंसा करेगा, उतनी ही कम शस्त्रों को जरूरत होगी। जो वीर शस्त्रों के बिना नहीं लड़ सकता वह तो शस्त्रों का गुलाम है, शस्त्रों का स्वामी नहीं। इसलिये मैंने कहा है जो शस्त्रों का गुलाम है उसे तो वे शस्त्र मारेंगे, रक्षा नहीं देंगे। जो शस्त्रों का स्वामी है वह उन के वेधे हो अरोसे नहीं है। अतः शस्त्र का वीरता से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। यदि कुछ सम्बन्ध है तो यह कि जितना कोई वस्तुः वीर होगा उसे शस्त्र की उतनी ही कम जरूरत होगी। असली बात यह है कि हम शस्त्रों को महत्त्व इसलिये देते हैं कि हम मरने से डरते हैं, कायर

हरोक है। जरा सत्यु भव मे परे हो कर देखें तो शकों का कुछ भी गिनने लायक स्थान नहीं रहता।

### मनुष्य के असली हथियार

और ये शक्त तो मनुष्य के हाथ हो भी नहीं सकते, मनुष्य के शक्त तो मानसिक होने चाहियें। पशुओं को आक्रमण और आत्म रक्षा करने के लिये प्रकृति ने नख, दन्त, दाढ़ें, बंक आदि दिये हैं। वही उनके हथियार हैं। मनुष्य को ये चीजें प्रकृति ने नहीं दी हैं। पशु से मनुष्य बनने समय उससे छीन ली हैं। मनुष्य को तो मन दिया है, आत्म-शक्ति दी है। यह और बात है कि उसमें जो पशुपन का अंश है उसे ठाक करने की जगह उसे बिगाड़ और बढ़ा कर उसने अपने मनोबल के दुरुपयोग से नख-दन्त आदि की जगह तोप-बन्दूक, यंत्र, गैस, टैंक आदि—उन्से भी अधिक भयंकर पार्श्विक हथियार बना लिये, पर ये तो उस के अमली नहीं हैं। उसके हथियार तो मानसिक, आत्मिक हैं; बाह्य नहीं, आन्तरिक हैं। वे हैं निर्भयता, कीरना, अहिंसा, प्रेम, आत्म विश्वास, परमेश्वर निष्ठा आदि। गीता में दैवी सम्पत्ति 'अभय' आदि गुणों का ही बतायी गई है। वेद, उपनिषद्, रामायण आदि सब धर्म ग्रन्थों में आन्तरिक गुणों को सर्वत्र हथियारों के रूप में बर्णन किया गया है। मैं कह चुका हूँ कि इन गुणों के बिना बाहिरी हथियार भी काम के नहीं होते। तो क्यों न मनुष्य अपने असली इन्हीं हथियारों की फिक्र करें? इन्हीं को प्राप्त करने की दिन रात चेष्टा और परिश्रम करें। बाहर की निरर्थक वैयक्तिक और सामूहिक जगद्व्यापि हथियार को बखड़े को छोड़, उस परेशानी से मुक्त हो, अन्तर की अमली अपनी शक्ति को बढ़ाने में लगे जो अपनी शक्ति बढ़ी महान है, जिस अद्भुत शक्ति के सामने धारंग हथियार खिलाने हैं, जो भयंकर से भयंकर भौतिक हथियार से अनसोंगना चलवती है। मनुष्य जाति शायद अपना रास्ता भटक गयी है।

गत वर्ष था अर्धवन्द्याश्रम में एक चीनी महानुभाव कुछ महीने ठहरे थे। एक दिन एक साधक ने बहुत कुछ हंसी में ही उनसे कहा कि 'चीन को तो जापान ने जीत लिया' इस पर वे गम्भीर होकर कहने लगे "नहीं चीन तो अजेय है" आगे और गम्भीरता से कहा "चीन को जापान नहीं जीत सकता, चीन का तो बहुत वर्ष पड़िते जाता था बुद्ध ने, और अब जितेंगे श्री अरविन्द"। यह है धार्मिक युद्ध, अजेय आत्मिक शक्तों का युद्ध जिसके सिपाही बनने के लिये हम यहाँ गुरुकुल में तैयारी (साधना) करना चाहते हैं। तुम बुद्ध के या श्री अरविन्द के नहीं तो, दशानन के सैनिक बनो। वह शत्रु एक ही बात है। पर हमें भौतिक शक्तों का डर और मोह छोड़ आत्मिक हथियारों की विद्या में दीक्षित होना होगा और मनुष्य जाति को लड़ाई का यह नया तरीका सिखा देना, इसका अर्थस्त बनाना होगा।

### नया इलाज

पर लोगों को अभी लड़ाई का यह तरीका समझ में नहीं आता। अतिक शक्ति या अहिंसा से लड़ना उन्हें क्षमता

एव लगता है। जब कोई आक्रमण करने आये तो उसे बिलकुल न मारा जाय केवल अपने आप ही मरने के लिये तैयार होकर उसका मुकाबला किया जाय—यह तो कई इलाज न हुआ, वे कहते हैं कि यह तो जानबूझ कर मरना हुआ। पर इससे हम पर्ये नही, बल्कि जोतेका श्री युद्धों की वीमारी से मुक्ति पाने का यही सर्वश्रेष्ठ इलाज है और स्वाभाविक इलाज है, प्राकृतिक चिकित्सा है। यह कोई नया उलाज भी नहीं है, किन्तु अति प्राचीन और स्वाभाविक इलाज है। पर आजकल की नई रोशनी में हम इसे भूल गये हैं—मेसा भूल गये हैं कि यह भी कोई इलाज है हम पर हमें विश्वास नहीं होता। यह तो हमारी प्रसिद्ध उपवास चिकित्सा है। आजकल के डॉक्टर वैद्यों के रोव में आये हुए लोगों को यह वीमारा में केवल उपवास करने को कहा जाय या अमृक प्रकार से कोई प्राण संवन्धी कमरम करने को कहा जाय तो यह आश्चर्य मे कहेगा कि बिना कोई गाली म्याये, कोई चूण फांके, काड़ा पिये या इन्जेक्शन लिये रोग कैसे भाग जायगा। रोग के नाश के लिये जैसे मनुष्य का दवाई की गोली में विश्वास जम गया है, वैसे ही आक्रमणकारों के नाश के लिये बन्दूक की गोली में विश्वास रूढ़ हो गया है। कोई किसकी भी दवा मन स्वाधी, बल्कि रोज का भोजन भी छोड़ दो, तो तुम बढ़ी जल्दी अच्छे हो जाओगे मेसा इलाज बनाने वाले वैद्य पर यदि आश्चर्य करना चाहिये; ता गांधी जी जैसे नेता पर भी अस्वरय करना चाहिये जो कहता है कि रात को मारने के लिये कोई किसी किसम का भी शस्त्र मत पकड़ो, बल्कि उसके प्रति मन में उठने वाले प्रतिहिंसा के भाव को भी मत उठने दो तो तुम्हारी विजय बढ़ी जल्दी हो जायगी। प्राकृतिक चिकित्सक बेशक कहता है कि भोजन छोड़ने से तुम भूखे नहीं मरोगे किन्तु रोग भूखा मर जायगा—तुम्हें जीवन रखने वाली जो शक्ति है वह ता भव और अधिक स्वतन्त्र होकर—भोजन-पाचन के भार से मुक्त हो-अधिक प्रबलता से रोग को मूल से नष्ट कर देगी; गोली, सूयबंध (इन्जेक्शन) आदि दवाओं से तो क्षणिक लाभ बेशक दोंख पर ये तो बहुधा विप पीता करती हैं; और न भी करें तो रोग को केवल दवा देती हैं, नाश नहीं करती, इससे रोग का रूपान्तर-अधिक भयानक रूपान्तर-हो जाता है; पर रोग जाता नहीं—किन्तु इन बातों पर आम रोगी विश्वास नहीं करते। इसी तरह गांधी जी जैसा सेनापति बेशक कहता है कि शस्त्रों को छोड़ देने से तुम मरोगे नहीं बल्कि हिंसा—युद्ध का विषय—मर जायगी, सचमुच अहिंसक होने से सब जगत् को जीवन देने वाली दैवी शक्ति तुम्हारे साथ हो जायगी, हिंसा का जबाब हिंसा से न देने के कारण वह परम बलवान् की शक्ति अपनी, अजेय प्रबलता के साथ काम करेगी और शत्रुता का मूल से नाश कर देगी तुम्हारे शत्रु को असली अर्थों में मार देगी, हथियारों की लड़ाई से क्षणिक लाभ बेशक दीखे, भौतिक रूपमें शत्रु मरना दोंख पर इससे शत्रु असल में मरना नहीं, प्रतिहिंसा और द्वेष का विषय इससे की गुना बढ़ता है, इससे शत्रु केवल थाहों देर के लिये दूब जाता है, पर उससे भी अर्थकर रूप में उभरने के लिए, कभी कभी शकल बदल लेना है पर फिर

दुगने वेग से आक्रमण करने के लिए, इस लिये अहिंसा (हिंसा त्याग) ही ठीक उपाय है—किन्तु इस पर आम लोग विश्वास नहीं करते। जब कि 'मर्ज' बढ़ता गया उ्यों उ्यों दबा की' तब दबा न करना ही क्या सबसे अच्छी दबा नहीं है। अब जबकि इतनी दबाईयां पेट में डाली जा चुकी कि दबाईयों का अमर होना बन्द होगया, तो अब तो उपवास चिकित्सा ही एकमात्र इलाज रह गया है। हिंसा और प्रतिहिंसा की परम्परा देखकर अबभी यह इतनी साफ बात है, पर फिर भी हम इसे नहीं देखते। असली बात यह है कि हम किसी तरह मरना नहीं चाहते। यह देह, भौतिक देह में इतनी ममता मोह है तो फिर हिंसा अहिंसा की फिजूल बान करना छोड़िये।

## ऋषिकेश की गंगा

( से०—'श्रीकृष्ण' )

आसमान से मूसलाधार बारिश होकर चुकी है। जमीन, पेड़, मकान, सभी चीजों ने नहा-धोकर मानों नया ही जीवन प्राप्त कर लिया है। कुछ बरस चुकने के बाद निरुपाय, खाली, सफेद बादल आसमान में इधर उधर लुढ़क रहे हैं मानों अलमल पियकड़ों के चले जाने के बाद मधुराला के प्यल्ले हों।

रम से भीगी वायु के स्पर्श ने हमें निमन्त्रण दिया—चलो, निकलो कम्परे से बाहर। और हम घूमने के लिये गंगा की ओर चल पड़े।

पहुँचे। पक्के पथरों से चिने हुवे पाट के एक किनारे जा बैठे। गंगा का पानी मैला, बाला, मानों किसी ने जहर पिला दिया हो। मूर्च्छित व्यक्ति की तरह तरङ्ग अपने डरावने लम्बे लम्बे हाथ पागलपन में बड़े वेग से ऊपर नीचे फँक रही हैं। बदला लेने के तांब्र रोप में तरंगों ने आज सारे संसार में क्रहर मचा देने का ठेका सा लिया हुआ है। सारा का सारा प्रवाह भागा चला जा रहा है ने-तडारा, निर्बाध, पता नहीं किस ओर? शहर में आग लग जाने पर 'फायर ब्रिगेड' के दमकलों की तरह शायद इन्हें समुद्र के बहवानल की बुझाने की फिर है।

थोड़े ही आगे गंगा का मोड़ है। धारा किनारे की पहाड़ी से लड़ कर आ टकरा कर लोटती है गुस्से की एक भयंकर आवाज के साथ। पर फिर एक दूसरी धारा भीपण हुक्कर और ललकार के साथ पहाड़ी के किनारों से माथा धिड़्वाती है और बहुत सा किनारा तोड़ कर अपने मंह में विंगल जाती है। विजय का तुमुल धोष देर तक विगनों में गुँजना रहता है।

गंगा के बीचों-बीच उठती हुई लहरें। आवसी की ऊँचाई तक आसमान में अपना मण्डल लहराती हैं। कहीं कहीं तो तरंगों की कवार की कवार फौजी कबायद करती हुई चली गई है। काली स्लेटीपहाड़ी की ऊँची चट्टानों की तरह बर्षा उनका भीपण आकार हो गया है। ओह, उन अज्ञगर जैसी तरंगों के कभी कभी आपस में टकराने पर कान बहरे हो जाते हैं, हाथ-पैर सुन्न, होरा फाटना।

मेरे साथी ने बताया—देहो, दह मलीपर उस ओर से बहता आ रहा है। मैंने जब देखा तब तक काफी पास आ चुका था और उन अज्ञगरों तरंगों की चिकनी झुलेदार पीठ पर झूल रहा था। नाच रहा था। शायद यह गाता होगा—

न तथा करिया यानं तुरगेण रयेन न।

नरयानेन वा यानं यथा 'तरङ्गमालया' ॥

(पंचतन्त्र)

मन में विचार उठा—यदि मैं भी ऐसा झूला झूल सकूँ! मैंने अपने साथी से प्रश्न किया—यदि एक सलोपर लेकर लहरों का आनन्द उठाया जाये तो कैसा हो?

उसने धीरे से कहा—“हाँ, मृत्यु को गोद में झुपते हुवे सुकरात ने ऐसे स्वर्गातीत आनन्द का अनुभव अपने प्रिय शिष्य को पूरा-पूरा लिखावाया था। शायद इन लहरों में उससे कम आनन्द न होगा। पर” —बह रुक गया—कुछ सोचने लगा। 'मनुष्य के लिये मृत्यु की गोद का अनुभव नहीं है। वह उस समय तक डरके मारे सब कुछ भूल चुका होता है। मानवीय स्वात्म की सीमा है जो इन मृत्यु की बाढ़ों में लड़ने से मनुष्य को जरूर रोक लेगी। 'अच्छा' मेरे मंह से पराधीनता की एक वही आवाज निकल गई।

मैंने देखा यह जड़ लकड़ी का तन्मग मृज में गंगा मां के झूले वाले पलने में, लहरों की लोरी में शिष्य सा स्वर्गय आनन्द उठा रहा था। कारा! मैं भी.....

× × ×

ऋषिकेश में आकर गंगा कुछ कुछ मैदान-प्रदेश में उतर सी चली है। गंगाकी दिव्य शक्ति जो अचल पहाड़ी के तटों में, तंग घाटियों में बंधी पड़ी थी, यहां आकर खल कर खेलने लगती है। कभी उछल पड़ती है, कभी हँस पड़ती है और स्वहमा ही कभी नाच उठती है।

शैशव-काल की अगणित इच्छाओं को अब तक अपने में ही दबी पड़ी थी—इस किशोरावस्था में जाग उठी हैं। गंगा अपने बाहु बल से अपने अदृश्य इच्छाओं की पूर्ति करने उछल उछल कर अपनी मां-आममान-को घूम रही है। गा-गा कर विजय का सन्देश सुना रही है। अलङ्कार, मन्-माती, बल्लवानी, इटलानी हुई इमकी मस्तान चाल न जाने मन में क्या भाव भर रही है। 'यह तथवीवन का शृंगार यह न। यौवन का विद्रोह'—मैं गुन गुनाया पर मेरे साथी ने एक प्रभ उठा दिया—

“यदि कोई व्यक्तिक इन लहरों के कब्जे में पड़ जाये तो.....”

मैंने उसकी बात पूरी होने से पहिले जबाब दिया—“मैं भट्टसे उमे आकर विपट जाऊँगा, बाहुओं में लपेट लूँगा। मेरा उत्तर बिना समय-सूके, बिना अपनी शक्ति और साहस का ख्याल किये, बिना उस उद्योग के परिणाम पर विचार किये, दिया गया था। पर थी तो मेरे दिल हो की बात न।

उसने पुछा—“इससे क्या तुम उमे बचा लोगे?”

“नहीं नहीं” मैंने कहा—“जीवन-रक्षा न तो मेरे आर्थान है न और किसी के। मगर हम हम व्यक्तियों में

एकात्मकता अनुभव करने वाली एक शक्ति है—प्रेम, और हम प्रेम के होते, मैं तो समझता हूँ, जीवन-रक्षा की कुछ आवश्यकता ही नहीं। प्रेम में मृत्यु का आलिंगन प्रियत्वम के आलिंगन से अधिक सुखदायी है। जीवन से कहीं अधिक हर्षदायक होनी है मृत्यु की गोम। यदि मृत्यु की गोम में भी अनुभव-शक्ति का स्थान जागृत रहे। उस संवेदन-शक्ति को प्रेम ही जगल्ये रक्ष्य सकता है। मैं अपने मृत्यु को बाहरी का महारा केन्द्र जीवन रत्नगा और उसके शरीर की गर्मी मुझ में साहस का संचार करेगी। हम दोनों एक होकर मानवीय प्रेम-पारा में बंधकर उस आनन्द का अनुभव करेंगे जो स्वर्ग की तरह काला-चन्द्रिण नहीं, जो संसार की तरह दुःख से मिश्रित नहीं। जो नित्य है, शाश्वत है, असीमित है। मैं गुरुगुना उठा—

यम की गोदी का आनन्द !

कितना मीठा, कितना सुन्दर, यम की गोदी का आनन्द !

( १ )

यां के प्रेशम के पलने में

मैं झुला-झुला मपने में,

तब मैं था अशेष अज्ञानी दोनों हो आँखें थी बन्द

कश्चिन सा था वह आनन्द ।

( २ )

तब था सीमित, मैं गति-विरहित,

लोरी-न्दर मे पग्न अपविचिन,

अब मैं भी तान लगाऊँगा, नाव उड़गा हो स्वच्छन्द !

यम की गोदी का आनन्द !

( ३ )

अब हग खोले मुख लूटंगा,

नहीं छुटाने भी छुटंगा,

इस शाश्वत यम की गोदी में सत्य मन्त्र गाऊँगा छन्द ।

यम की गोदी का आनन्द ।

कितना मीठा, कितना सुन्दर, यम की गोदी का आनन्द !

साथी ने मझे हिला कर चौका दिया—उमने कहा  
"तुम भावनेश में पता नहीं क्या करने चल पड़े थे।"

मेरे हृदय में नफान मच रहा था। जीवन जागृत होकर, प्रेम के प्रभाव में मृत्यु का आनन्द लूट । पर.....

बाबल फिर आसमान में घिर आए। गडगडाहट और बिजली की चमक-पानी प्याजों की खड़खड़ और मधु—  
बालाओं की मुसकान। पर सब क्षणिक और भयंकर—।

हर के मारे धकों की रवेन पंक्तियां वृहों के आश्रय में लौट चली। और हमने भी अपना रास्ता पकड़ ।

## गुरुकुल समाचार

कुलवासियों के लिए यह सप्ताह विशेष हल-वल का रहा। श्री पं० जयचन्द्र जो विद्यार्थकार उपाध्याय काशी-विद्यापीठ का अन्तर राष्ट्रीय परिस्थिति पर २१ घण्टे तक बड़-योम्यता पूर्ण व्याख्यान हुआ। परिदृष्ट जी का ऐतिहासिक गम्भीर अध्ययन स्वयं के आश्चर्य का विषय था। इसी सप्ताह परिदृष्ट बुद्धदेव जी का ज्योतिष पढ़ने के विषय में व्याख्यान हुआ। आने बतलाया कि वेदों के बीच अर्थ करने के लिए ज्योतिष का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

इस सप्ताह की विशेषता विद्या सभा, तथा शिक्षा पदल की बैठक है। तीन दिन तक इनकी बैठक होती रही, और गुरुकुल के प्रबन्ध तथा शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार किया गया। हम बार विद्या सभा ने कई अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया। इस बार विद्या सभा ने कई अत्यन्त जटिल प्रश्नों को भी सुलझा दिया है जिनका निर्णय करना अत्यन्त आवश्यक था।

वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए ऐसा सप्रभा जा रहा है कि इस बार छुट्टियों में यात्राओं पर कोई दल नहीं जायगा। सम्भवतः ब्रह्मचारी गुरुकुल में ही रहेंगे या अपने घरों को जा सकेंगे। परन्तु अभी ठीक प्रकार नहीं कहा जा सकता। छः मासिक-परीक्षाएं ८ अगस्त से हैं सब ब्रह्मचारी जोग्योर से तैयारी में लगे हुए हैं।

## स्वास्थ्य समाचार

१ श्याविलास १ श्रेणी Mump मदनमोहन १  
श्रेणी Mump श्री कृष्ण २ श्रेणी Mump यशवन्त  
२ श्रेणी Mump. प्रेमनिधि २ श्रेणी विषम उग्र,  
मनमोहन २ श्रेणी विषम उग्र,

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी गेगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

## संरक्षक बन्धुओं से नम्र निवेदन

गत वर्ष संरक्षक सभा ने अपने एक विशेषाधिवेशन में सर्व सम्मति से यह पाम किया था कि संरक्षक सभा का वार्षिक चन्दा १) मुकरंर किया जावे। तदनुसार बहुत से संरक्षक वन्दुओं ने यह धन अपने गुरुक के लेखे में जमा करने का स्वीकृति गुरुकुल कार्यालय को भेज दा थी। जिन संरक्षकों ने अपनी स्वीकृति नहीं भेजी है उनमें प्रार्थना है कि वे शीघ्र गत वर्ष और इस वर्ष के चन्दे को गुरुक में डाल देने की स्वीकृति गुरुकुल कार्यालय को दें ।

निवेदक—

रामकुमार

प्रधान, संरक्षक सभा

दौलतराम

सन्धी, संरक्षक सभा

स्मृतिवचक

ब्राह्मी बूटी

॥१॥ सेर

सुगन्धित

हवन सामग्री

॥१॥ सेर

गर्मियों में  
एक बार ज़रूर आजमाइए

## गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी का प्रसिद्ध

**भीम  
सेनी  
सुरमा**

बालों से पानी बहना, खुन्की कुकुरे सुर्खी, जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त बालों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ मारा ॥२॥ १ तं० ३)

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन खान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग तरोताजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, बालों में जलन आदि रोगों में तुरन्त धाराम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीरी

## गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

( सहारनपुर )

प्रांच

लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—शंभारामरोड  
देहली—चांदनी चौक  
पटना—मञ्जुशा टोली, बांकीपुर

## भीमसेनी इतमंजन

बालों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है

मूल्य ॥१॥ शीरी, ३ शी० १॥

सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

## सुपारी पाक

बच्चों के जरियान रोग की

प्रसिद्ध औषधि।

मूल्य १॥१॥ पाव



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मूल्य-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २४)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिचंद्रा वेदालङ्कार

वर्ष ४ ]

गुरुकुल काङ्ग्रेसी, गुरुकुल १६ आशु १९६७; २ अगस्त १९६७

[ संख्या १६ ]

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

( निदान और चिकित्सा )

[ ले० श्री दिनेश नर्मदा शंकर निवेरी, अनुवादक -  
श्री भनराज वेदालङ्कार ]

( ७ )

### गुरुकुल प्रणाली का वास्तविक स्वरूप

"गुरुकुल का भी आत्मा है। आध्यात्मिक भावमय या मनोमय रूप ही गुरुकुल का आत्मा है, बाह्य या मूर्त-रूप नहीं; इस लिये उसे तो मन से जानना होगा। जो गुरुकुल को त्याग की ओर प्रवृत्त करता है, भोग की ओर नहीं; जो उसे भ्रष्ट चरित्र की ओर प्रेरित करता है, भ्रष्ट चरित्र की ओर नहीं; जो मनुष्य को समग्र विश्व के उपकार के लिये प्रेरित करता है, सत्य का मार्ग दिखाता है और उस सत्य के द्वारा जीवन के प्रासंगिक पाठ्यों को प्राप्त करनेमें सहायक होता है वही गुरुकुल का आत्मा है।"

परिव्रत विश्वेश्वर महाचार्य

( आचार्य विश्वभारती, शान्ति निकेतन )

गुरुकुल प्रणालीके बाह्य स्वरूप का अध्ययन करने के बाद अब इसके आन्तरिक स्वरूप के लक्षण अङ्गों पर भी विचार करना आवश्यक है। मनुष्य के लिये शरीर और आत्मा ये दोनों आवश्यक हैं। इसी प्रकार गुरुकुल के आध्यात्मिक अङ्गों के बिना कोई संस्था सच्चे अर्थों में गुरुकुल नहीं हो सकती। मेरी विमर्श समर्पित में ये अङ्ग निम्न प्रकार हो सकते हैं:

- (१) सञ्ज्ञात्मक सभा। (२) आचार्य। (३) मुख्याधिपति। (४) अध्यापक वर्ग। (५) ब्रह्मचारी। (६) संरक्षक। (७) जनता। (८) राज्यधिकारी।

१ सञ्ज्ञात्मक सभा—गुरुकुल के प्रबन्ध के लिये एक उत्तरदायी सभा होनी है। इस सभा के सदस्य दानी, विद्वान् तथा सम्प्रतिष्ठित व्यक्ति होने हैं। गुरुकुल को बाहर की दुनिया के साथ जोड़ने का काम यह सभा करती है। सभा की एक प्रांश म गुरुकुल के सञ्ज्ञात्मक उत्तरदायिण और दूसरी प्रांश में जनता का विश्वास

होना जरूरी है। गुरुकुलके आचार्य पर इस प्रकारकी सभा का अङ्कुर होना चाहिये या नहीं यह एक विचारणीय प्रश्न है। एक विचार धारा ऐसी है कि आचार्य कर्मों का मद्भाग है इस लिए उसके ऊपर कोई अधिकारी नहीं होना चाहिये। गुरुकुल की भावना में आचार्य का स्थान इसी प्रकार महत्त्वपूर्ण है जिस प्रकार शरीर में मस्तिष्क का। सभा में मित्र मित्र विचार वाले व्यक्त होने हैं। इस लिए सभा के अङ्कुर के नीचे आचार्य खुले मन से काम नहीं कर सकता। विभाग पर अन्तर वैश्य कपो पेट भयवा क्षत्रिय रूपी हाथ अङ्कुरा चलाना मुठ करे तो जो हालत शरीर की होगी वही हालत गुरुकुल कपी शरीर की सभा के अङ्कुर के नीचे होगी। गुरुकुल के प्रशासकियों को तथा अध्यापक वर्ग को जब इस बात का मान होता है कि आचार्य को सभा तथा सभा के मन्त्री और प्रधान के नीचे रह कर गुरुकुल चलाना होता है तो उनकी दृष्टि में आचार्य का पद हीन प्रतीत होता है। अधिक कारणों से आचार्य के ऊपर भी सभा का हाथ होने से गुरुकुल की भावना में धन को उच्च स्थान मिलने की संभावना बन जाती है। अतएव जनता को चाहिये कि यह किसी योग्य आचार्य को चुन कर उस पर विश्वास रखे और उन्मील मनान तथा दैनिक लघ्य के लिये आवश्यक धन उसके हाथों में सौंप कर निश्चिन्त हो जाए। ये विचार तो सर्वान्ध से सत्य नहीं हो सकते। जब मद्भाग पीतराग होकर त्याग के आदर्श को अपने जीवन में मूर्त-रूप करता था तब आचार्य के शरकों में राजाओं के मुकुट गिरते थे। फिर भी आचार्य का मन सर्वथा निर्दिमान और लोभ शून्य रहता था। इस प्रकार का त्यागी आचार्य मिलना आज कम मुश्किल है। और यदि ऐसा आचार्य किसी गुरुकुल को प्राप्त हो जाए तो वह गुरुकुल सत्यमुच धन्य है। ऐसे मिलनें ही संघर्षी त्यागी और भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप आचार्य पर अङ्कुर रखने के लिये किसी सभा की उदरत नहीं। सभा ही नहीं बल्कि ऐसे आचार्य के तेज के सामने सभा को लयम हो अनर्थात होजाना चाहिये। परन्तु जब तक ऐसा आचार्य नहीं

मिलता तब तक समा के अङ्गुश का होना जरूरी है। क्योंकि समा में विभ्रम विचारकों के सामने जो समस्याएँ आती हैं उन पर वे अपने अपने ढङ्ग से विचार करेंगे और इस प्रकार अगर कुछ मनसे विचार किया जाए तो किसी प्रकार का भूल रहने का बहुत कम सम्भावना है।

यह सब होने हुए भी इतना स्पष्ट है कि मौजूदा समाओं में सब सदस्य सकल नहीं होते और विचारणीय प्रश्नों पर वे अपने अनुभव तथा अध्ययन के आधार पर विचारों को रख सकें इस प्रकार के नहीं होते। इस लिये मुठ्ठी भर और कई बार तो एक ही प्रमुख व्यक्ति की मर्मांत के अनुसार पेश किए जाने वाले प्रस्तावों पर सारी समा अपनी स्वीकृति का भिष्कक बैठता देती है। इस पर अधिपति न किन्तु ही वास्तविक और व्यवस्था में बहुत सरलता होती है, लेकिन अनेक बार गड़बड़ भी बहुत होती है। इस हालत में समा का प्रमुख व्यक्ति यदि आचार्य के साथ परामर्श करके काम करे तो संस्था का काम सुचारु रूप से चल सकता है। लेकिन मनमंदा होने पर आचार्य के काम में बाधा पड़ती है। दोनों पक्षों को चाहिये कि एक दूसरे को समझें और विचार-विनिमय के लिये अवकाश बनाए रखें। स्वामी भद्रानन्द जी जैसे अद्वितीय व्यक्तियों के साथ मनमंदा होने पर जो कठु अनुभव हुआ था उस पर गुरुकुल के सञ्चालकों को विचार करना चाहिये। जिस व्यक्ति में गुरुकुल का आरम्भ किया, जिसने इसकी जड़ को अपने खुल से सींचा जिसने इसके लिये अपने सारे जीवन को सौंप दिया, ऐसे व्यक्तियों के कार्यों को समा में आलोचना का धो। स्वामी भद्रानन्द जी के आचार्य पद को छोड़ने के तुल्य बाद ही आर्य जनता में देखा था कि गुरुकुल का समस्त शरीर बहुत कुछ बदल गया है।

गुरुकुल कांगड़ी की सञ्चालक समा में गुरुकुल के सञ्चालन का उत्तरदायित्व स्वामी भयभयदेव जी को सौंपना आरम्भ किया है। यह कार्य प्रशंसनीय है। और इस प्रकार के त्यागी तथा गुरुकुल की भावना को अच्छी प्रकार समझ कर आचर्य करने वाले आचार्य को प्राप्त करने में पञ्जाब आर्यप्रतिनिधि समा सीमाग्यशाली है। इस गुरुकुल का भविष्य उज्ज्वल हो पैसे में ही अभिलषा है। परन्तु जिस संस्था के पास योग्य आचार्य न हो उसके लिये एक प्रबन्धक समा आवश्यक होती चाहिये। इस समा की रचना में निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये।

(१) सञ्चालक समा में स्वतन्त्रों को आवाज ऊँची होनी चाहिये।

(२) ऐसे माता पिता (जनके बालक संस्था में शिक्षा पाने हों वे ही समाएँ निर्वाचित किये जान चाहिये। क्योंकि अपने लड़कों को सरकारी शिक्षालय में पढ़ाने वाले पिता को गुरुकुल के लिये जितनी होनी चाहिये उतनी सहाय्य नहीं हो सकती।

(३) शिक्षा शास्त्र में सुन्दर व्यक्तियों को तथा विभिन्न विद्याओं के प्रबल विद्वानों को समा का प्रतिष्ठित सदस्य बनाना चाहिये।

(४) बड़ी धनगति देने वाले को स्वस्थ बनाने का

अर्थ है धन को प्रधानता देना। लेकिन जो दानी महाशय गुरुकुल प्रणाली में ब्रह्म विचारसम्बन्धित हो और जो समय समय पर गुरुकुल के कामों में सक्रिय भाग लेने हों, इस प्रकार के दानवीरों को समा में निम्नलिखित करना चाहिये।

(५) उत्साही संरक्षकों को विशेष रूप में आमन्त्रित करना चाहिये। इस प्रकार संरक्षकों के साथ गुरुकुल का गाढ़ सम्बन्ध स्थापित हो सकता है।

(६) समा का प्रधान यदि कोई बानप्रस्थी हो तो अधिक उत्साह है। प्रधान के चुनाव करने में समा की वास्तविक सफलता है। संरक्षक, आचार्य, प्रशासक, जनता इन सब में सुन्दर पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना प्रधान का काम है।

(७) समा के नियम उदार भावना के पोषक होने चाहिये। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जिससे कि उद्देश्य की ओर जालानुसार सतत प्रगति की जा सके।

(८) समा के अनुकूल व्यक्तियों में बना। उपदेशान या प्रतिनिधि मण्डल का काम होना चाहिये कि वह जनता के पास में चन्द, झट्टा करे।

२ आचार्य और मुख्याधिष्ठाता — सामान्यतः

गुरुकुल में दो मुख्य अधिकारी होते हैं, एक आचार्य और दूसरा मुख्याधिष्ठाता। ब्रह्मचारियों के पास पोषण की व्यवस्था करना, चण्डे आदि का प्रबन्ध करना तथा अन्य बहक काम मुख्याधिष्ठाता को करने होते हैं। गुरुकुल में गिरफ्तार में रह कर भ्रष्टाचारियों के शिक्षण तथा आत्मिक विकास को देख रख आचार्य के सुपुर्दे होना है। ऊपर दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है कि ये दो अधिकारी अलग अलग होना चाहिये किन्तु दीर्घ काल का अनुभव इस बात की साक्षी देता है कि गुरुकुल की यंत्र में इस द्विभुव पद्धति में काम नहीं चल सकता। गुरुकुल के वातावरण में आचार्य का प्रधानता होनी चाहिये। आचार्य पर समा के प्रधान के अतिरिक्त यदि मुख्याधिष्ठाता का भी अङ्गुश चलता हो तो आचार्य आचार्य न रह कर हड़मास्टर जैसी स्थिति वाला बनना जाना है। बालकों के हृदयों का अपनी ओर आकर्षण कर उनको अन्तःकरण अपनी अन्तः उपाति से प्रदात करना आचार्य का कर्तव्य होता है। हृदय के द्वारों में आचार्य बालकों का सम्पर्क करता है। इस लिये दोनों की दृष्टि का मुख्य लक्ष्य आचार्य होना चाहिये। जिस लक्ष्य अध्यापक लोग ऐसा समझ लेंगे हैं कि हम यहाँ न बनना तथा अन्तःकरण का स्वीकृति देना जाना तथा अन्य सब प्रकार से हमारे ऊपर अन्याय करन वाला मुख्याधिष्ठाता है उसी लक्ष्य आचार्य की तरफ में उनका लक्ष्य है। जब अध्याचार्यो का यह मालूम हो जाता है कि हम अन्तःकरण सुन्दर आदि को सुविधा देने का अन्तःकरण मुख्याधिष्ठाता के हाथ में है तब आचार्य का लिये उनका पूज्य साथ शिथिल हो जाता है। आचार्य के पद का महत्त्व भिन्निस्वयल या हड़मास्टर के पद से कहीं अधिक है। सरकारी शिक्षालयों में भी भिन्निस्वयल या हड़मास्टर के ऊपर और कोई अधिकारों में होकर साक्षी का समा ही

होती है। बोद्धिग सुप रम्येष्टे इतक नीचे ही होना है। इस अवस्था में कभी हृद तक प्रसिप्तल अथवा हैड-मास्टर के हाथ खुले होते हैं। लेकिन गुरुकुल की मशान कभी खौब है। हरे पर चलती है, उस लिये निम्न बातें इस विषय में ध्यान देने योग्य हैं—

(ग) आचार्य देखा चुना जाना चाहिये जो मुख्याधिष्ठाना का भी काम कर सके।

(घ) इस प्रकार के आचार्य की सहायता के लिये उसी की सम्मति से एक व्यक्ति नियुक्त होना चाहिये जो मुख्य अध्यापन के कार्यों में आचार्य की मदद कर सके।

(ङ) समिति का प्रधान ही यदि मुख्याधिष्ठाना के पद को संभाल सके तो इसमें किसी प्रकार के आपत्ति नहीं होती चाहिये। समिति के प्रधान में मेधा भाव तो होगा ही, अगर वह मुख्याधिष्ठाना का काम अत्यन्तिक रूप से करे तो व्यवस्था बमक उठेगी। जिस गुरुकुल में आचार्य और मुख्याधिष्ठाना अलग रहे हैं वहाँ मतभेदों का साम्राज्य रहा है और दोनों पदों के एक होने पर काम सरल होता हुआ भी देखा गया है। अलग-अलग व्यक्ति को हद निकल कर आचार्य बनाने में ही सभा की परख है।

(च) वर्ष भर के समय पर अथवा वीर्यकाण्ड के दिनों में गुरुकुल के आन्तर में विभिन्न स्थलों में घूम कर गुरुकुल की जो प्रगति की है उसमें लोगों को परिचित कराना चाहिये। इसमें अलगाव जन्मता की धान-पिपासा को नष्ट करने के लिये अत्युत्कृष्ट उपदेश भी देने चाहिये। इस मौके पर चन्द्रा गुरुकुल करने का काम नहीं होना चाहिये। आचार्य को तो स्वयं चन्द्रा मांगी भी उचित नहीं है। स्थान स्थान पर आचार्य के उपदेशों के हो जाने के पश्चात् योग्य समय में सभा के ईपुदेशन को चन्दे के लिये निकलना चाहिये।

(छ) गुरुकुलों में आचार्य का निरन्तर उपस्थित होना आवश्यक है। विशेष परिस्थितियों में ही आचार्य को गुरुकुल से बाहर जाना चाहिये।

(ज) समाजों के उत्सवों पर यात्रा करने के अवसर का लाभ आचार्य को अवश्य लेना चाहिये। इससे लोकमन जगृण होता है। इसी प्रकार यज्ञोपवीत विवाह आदि संस्कारों में भी कहीं कहीं आचार्य की उपस्थिति लगाकर हो सका है। सामान्य अध्यापक को अपेक्षा यदि इन अवसरों पर आचार्य इन संस्कारों का महत्त्व समझावे तो अधिक प्रभाव पड़ सकता है। 'संस्कारों' के द्वारा आम जनता के साथ सन्तर्क भी बढ़ सकता है। जब इस प्रकार आचार्य बाहर जाए तो उपाचार्य अथवा सहायक मुख्याधिष्ठाना को व्यवस्था का कार्य संभालना चाहिये।

(झ) गुरुकुलों में दाखिल होने से आगत होने पर्यन्त प्रहसारी के आचरण शिक्षण आदि का समस्त दायित्व आचार्य पर है। प्रहसारियों की ऐसी बुद्धियाँ जो दूर हो सकती हो, दूर का जामी चाहिये। जो अपरिहार्य बुद्धियाँ हों उनसे प्रहसारियों के संस्कारों को परिचित कराना चाहिये।

## आदर्शों में श्रद्धा

### विद्यार्थियों की कर्वाण्ड्रेटगोर का उपदेश

गत २५ जुलाई को शान्ति निकेतन के प्रार्थना-मन्दिर में विश्व कवि श्री रवीश्वर नाथ टैगोर ने विद्यार्थिमात्र के हित के लिये निम्न शब्दों में प्रवचन किया:—

“प्रेम व शान्ति के महान सत्त्यों का मजाक उड़ाने की आधुनिक भावना में ही विनाश के बीज विद्यमान हैं”।

“आज दुनिया में युद्ध का जो अभिशाप जोर पकड़ रहा है, यह इन्हीं बातों का नतीजा है कि लोगों ने उपनिषदों द्वारा उच्चारित प्रेम व शान्ति के संदेश को घृणा की दृष्टि से देखा न गुरू कर दिया है।”

“विद्यार्थियों को चाहिये कि वे पवित्र वस्तुओं का मजाक उड़ाने वाले मौजूदा फैशन का अनुसरण न करें और पवित्र आदर्शों में श्रद्धा बनाए रखें।”

### गुरुकुल चित्तौड़गढ़ का सफल उत्सव

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ का द्वादश वार्षिकोत्सव १५ १६ १७ जून १९४० को बड़े समारोह के साथ गुरुकुल भूमे में मनाया गया। प्रतिदिन प्रातःकाल ७ से ८ बजे तक बृहद्दयत्र होता रहा। १५ जून को ब्र० ब्रह्मदेव जी कुनी ने 'मध्यसुख की प्राप्ति के अधिकारी बनो' इम विषय पर, श्री प० विशा सागर जी वेदालकार ने 'ईश्वर की सत्ता पर, श्री प० शङ्करदेव जी उपाचार्य गुरुकुल चित्तौड़गढ़ ने 'दुःख निवृत्ति का यथार्थ साधन यथायं ज्ञान है' इम विषय पर तथा नवम कक्षा के ब्र० भीमसेन ने 'वेद का स्वरूप पर व्याख्यान किया। चित्तौड़ नगर में नगर-कोतन बड़ी सफलता पूर्वक हुआ जिसमें श्री प० गोकुलवस्त जी एवं श्री राधाकृष्ण जी के भजनों का विशेष प्रभाव पड़ा।

१६ जून को श्री स्वामी केवलानन्द जी महाराज ने 'यज्ञमय जीवन' पर, श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने 'सत्यम् महत्त्वं' पर, श्री प० जयदेव जी विशालकार चतुर्वेद-भाष्यकार ने 'सांख्यिक दान के महत्त्व' पर व्याख्यान दिये तथा अपने फरकमलों से वेदाङ्ग विद्यालय भवन का उद्घाटन किया। प्रहसारियों ने कुत्तो, लाठी, लेजिम का प्रदर्शन किया। आठम कक्षा के ब्र० सत्यदेव ने गुरुकुल के महत्त्व पर भाषण दिया मुख्याधिष्ठाना जी के द्वारा 'सदाचार के सार' पर व्याख्यान एवं श्रीपील कीर्णई जिसमें ६३५॥ चित्तौड़ प्राप्त हुए। इनमें ३००॥ भी बाबू सुगुण चन्द्र जी ने एक वर्ष के यज्ञ के व्यय के तथा उत्सव के भोजन व्यय के प्रदान किये। मन १६३३ में ५४३६६=) कलवार प्राप्त हुए।

# गुरुकुल

१६ भावस्थ शुक्रवार १९६७

## आत्मरत्ना

(आचार्य अमरेश्वर जी)

(३)

### वैयक्तिक अहिंसा के उदाहरण

उपवास करना या हिंसा से अपने आपको रोकना इतना कठिन नहीं है जितना कि स्थान में मालूम पड़ता है। एकबार कुछ दिन उपवास करके देखें, कुछ समय हिंसा और द्वेष का प्रत्युत्तर अहिंसा और प्रेम से देकर देखें तो मालूम पड़ेगा कि यह ऐसा मुश्किल नहीं है, बल्कि यह भी मालूम पड़ेगा कि यह उस समय बिलकुल स्वाभाविक है। तुम अपने स्वयं के या अपने साथियों के कष्टों परसे दृष्टान्त याद करो कि कोई भगड़ा एक तरफ से शक्ति ग्रहण करने द्वारा या द्वेष का प्रत्युत्तर प्रेम से दिये जाने द्वारा सफलता से निपट गया हो। तुम्हें बहुत से दृष्टान्त मिलेंगे। इन्हें बढ़ाने का उत्तरत है। अहिंसा भाव को जितना बढ़ाओ उतना थोड़ा है। यह अनुभव करो कि अहिंसा के विस्तार के लिये क्षेत्र अन्नत पड़ा हुआ है। जितना परमेश्वर का क्षेत्र है उतना अहिंसा का क्षेत्र है।

मेरे योग के गुरु पठाराज एक साधु की स्वयं देवी घटना सुनाया करते थे। उन साधु का नाम तो याद नहीं रहा। वे जब दुनियावादी आनंदी थे तब दुबले पतले थे, दुनियावादी लोगों की तरह व्यवहार करते थे। पर जब उन्हें परमेश्वर की लौ लगी गई तो सब कुछ छोड़ एक लंगोटा लगाकर साधु हो गये और दिन रात भगवद्भक्ति में मस्त रहने लगे। जो कुछ मिलना स्वा लेंते। इस वैफली और आनन्द और मस्ती के कारण उनका शरीर भी बड़ा दृष्टपुष्ट-दृष्टकृष्ट हो गया। एक बार वे तैजों में एक गांव के बाहर निकल रहे थे कि एक गांववासी ने उन्हें चोर उचकका समझ लिया-शरीर तो डाकूओं जैसा था ही, लंगोटा के सिवाय नग्न भी थे—और उनके कन्धे पर कुल्हाड़ी मारी। अब तुम सोचो कि यदि कोई तुम्हें कुल्हाड़ी मारे ता तुम क्या करोगे? शायद बदले में मारोगे, मुकदमा चलाने का निश्चय करोगे। कम से कम उसी समय कुछ गालियाँ देना या और कुछ शब्द बोलना तो सामान्य बात मनुष्यी जायगी। पर इस कहानी को जिस बात पर मैं नुहाया ध्यान स्वीचना चाहता हूँ वह यह है कि उस साधु ने कुल्हाड़ी लगाने पर एक बार संद फेर कर यह भी नहीं देखा कि किसने कुल्हाड़ी मारी है। हम अपने मारने वाले को चाहे कुछ भी न कहें, बदला भी न लें पर यह जरूर जान लेना चाहेंगे कि किसने मारा है इसके बिना हमें मनोप नही होगा। आगे कहा तो यह

जाना है कि उनके कन्धे के उस घाव में कीड़े पड़ गये थे, धीमे २ वर घाव अपने आप बिलकुल भरूँगा होगा। यहाँ तक कहते हैं कि जब उत्सव में कीड़े पड़े हुए थे तब कोई कीड़ा घाव से बाहर निकल जाता था तो उसे वे उठाकर फिर घाव में रख देते थे। शायद यह असुक्ति हो, पर उस साधु को जानने वाले बहुत से लोग बिलगमन हैं। उस साधु की यह वैफली और आनंदमय हमारे लिये ईर्ष्या का विषय होनी चाहिये जिस के कारण उसक मन में और स्थूल शरीर में भी यह इच्छा नहीं पैदा हुई कि वह अपने मारने वाले को कम से कम जान लेता लिये एक बार नुक् कर तो देखें। माना यह प्रमाण भी उस दयारे का एक प्रकार का प्यार था। इसने अधिक उन्हें कुछ और जानने की जरूरत नहीं थी। उनका कोई शत्रु है या पराया है यह ता उनको कल्पना में आने की भी बात नहीं थी।

उसा तरह एक बार बुद्ध भगवान का पुराने जन्मों की साधना के विषय में एक जगह एक ऐसी बात पढ़ी था जो कि तब से हमेशा याद रहती है। हृदय पट से भिन्न नहीं सकते। उनमें यह कहा गया था कि किमा पुराने जन्म में वे हरिण थे (या कोई पैप हो) सुद्ध जन्मु थ)। उधर से एक भूखा शेर आया जो अन्न, लूधा निवृत्ति के लिये उन को खाना चाहता था। इन्हें उस भूले शेर पर बहुत करुणा आई और इन्होंने सोचा कि मेरा हरिण का शरीर तो बहुत छोटा सा है, इस के स्वा से इसका पेट नहीं भरेगा। इस लिये उन्होंने अन्न खोजने के लिये हाथी का शरीर धारण कर लिया और उसे उत शेर के सामने रख दिया। यह बात हमें अजब लगेगी। शायद दिमाग को चक्राने वाल लगे। परन्तु क्या इस बात में एक ऐसा अद्भुत सौन्दर्य नहीं है कि इसे पकड़ लेने के लिये हम इसक पांछ दौड़ना चाहें। हम सौन्दर्य से अकृष्ट होकर उनको पकड़ लेने के लिये, पा लेने के लिये ही तो बहुत कुछ दौड़प करने हैं? नुम्हें तो इसमें एक ऐसा जवत्स सौन्दर्य लगत है कि इसे पाने के लिये और इसके स्वाव तद्रूप हो जाने के लिये यदि मुझे कई जन्मों तक दौड़ लगाना पड़े और चाहे किनती मुसीबतें उठाना पड़ें ता भी इसे पाये बिना चैन न पड़ेगी। असुत।

पर आत्मीयता यह भी वैयक्तिक अहिंसा के दो उदाहरण हैं। सामूहिकरूप से करने का, संव का, अपना जुदा ही पर और बड़ा भारी बल होता है।

### संघर्ष

अतः इन अहिंसा, (अभयता औरता, ईश्वर निवृत्ता) आदि मनुष्य के अमली इथियारों को यदि हम मिलकर सक्ष शक्ति द्वारा चलायें तो इनको शक्ति और भी चापशरिरक रूप से प्रकट हो। अभयता आदि देवी शक्तों का उपयोग तो संसार में महात्मा पुत्र मत्ता से करते आये हैं और अद्भुत विजय प्राप्त करते आये हैं। पर शायद वैयक्तिक रूप से (कम से कम स्थूल जगत् में वैयक्तिक रूप से), सामूहिक रूप से नहीं। पर अब समय आ गया है कि मिलकर संगठित रूप से भी इनका उपयोग हो। गांधी जी की नयी वैन शायद वह है कि संगठित सामूहिक

हिंसा, अमीशरता, असुरता का मुकबिला संगठित सामूहिक अहिंसा, ईश्वर-निष्ठा और शिष्टता से किया जाय।

संगठन का बल कितना है यह हम सब जानते हैं। जब बचपन में हम गुरुकुल में पढ़ते थे तभी सुना करते थे कि हिमालय के जंगलों में गीणों संगठित होकर शेरों का मुकबिला करती हैं। शेर के आने पर वे अपने बच्चों को बीच में करके चारों तरफ सह करके गोलाकार में बैठती जाती हैं और शेर को एक भी गीण आक्रमण करने से रोक देती हैं। तो मान लो हम हिन्दुस्तानी गीण हैं और आक्रमणकारी शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होने से शेर के समान हैं। हम यदि उन जंगली गीणों का अनुकरण करें तो संगठित शक्ति द्वारा अपना पूरा सकल रक्षा कर लें क्या हम भारत वाली मनुष्य गीण (अपना पुण्यपशु) जैसा संगठन नहीं कर सकते। पर असली बात यह है कि हम अब जंगली गीण नहीं रहे हैं, हम शहरी गीण हो गये हैं। अंग्रेजों को पालतू शहरी गीण हो गये हैं। हम लिये अपनी सब पुरानी शक्ति भूल गये हैं। उन से बिलकुल अनजान हो गये हैं। शहरी पालतू गीणों को बूढ़े से बाघे रखने वाली जो सुन्दर सुन्दर जंजीरें हातों हैं उनके रूप में विदेशी चमकीले चमकीले हथियारों में (जिन के द्वारा हमारा रक्षा की जा रही कही जाती है) इतना प्रेम हो गया है कि हम उन्हें ही याद करते हैं, अपनी अमली निजी शक्ति से बिलकुल बेसुध हो गये हैं।

और अभी डेढ़ दो सौ साल पहले, अंग्रेजी आक्रमण के जमाने से पहले जब ये मुगल पठान, मराठे, सिक्ख आदि राज्य करते थे तब भी हमारी क्या शक्ति थी? विदेशी लोग ही अपना तर्क से लिखते हैं कि तब इस देश में एक एक गांव एक एक राष्ट्र (रिपब्लिक) के समान संगठित था। आन्तरिक शासन, आर्थिक व्यवस्था आदि में ही प्राम् स्वभाव और आत्मनिर्भर नहीं था किन्तु तब कभी लड़नी आती हुई फौजें गांव के पास गुजरती थीं तो ये संगठित होकर इन फौजों से अपनी रक्षा करते थे। तब जो फौजों से हम अपनी रक्षा करते थे तो आज भी क्यों आत्म-रक्षा नहीं कर सकते। असली बात तो संगठनका बल था, वह आज नहीं रहा है। इस लिये संगठित, सामूहिक बल की तरफ ध्यान न दे हथियार क आभाव को या किमी और बात को कोसना केवल मोह जाल है।

### सच्ची स्वराज्य स्थापना

तो असली आत्परक्षा के लिये न तो भय के मारे भागने की जरूरत है, न हथियारों की। किन्तु निर्भयता की, सच्ची वीरता की आवश्यकता है, जो कि जो जितना ही अधिक अहिंसक होगा उतनी ही उम में अधिक होगी। और फिर ऐसे निर्भय, अहिंसक वीरों के संगठित होने की आवश्यकता है। ऐसे वीरों को जो मरने से नहीं डरते हैं, जिनमें देश भक्ति की अग्नि जलरही हो और हम उबलतन देश प्रेम और मनुष्य प्रेम के कारण जो दुःखितों और अशक्तों की रक्षा के लिये मदा कटिबद्ध और तत्पर हों और अपने देश की स्वाधीनता के प्रायपन से रहस्य हों।

पर इन बातों की आवश्यकता आक्रमणों का मुकबिला करने के लिये तो क्रियात्मक रूप से तब होगी जब कि सचमुच हम पर कोई अचानक ही आक्रमण हो जाय; जिसका कि कोई विशेष संभावना नहीं है। पर इस तैयारी से भा पहिले हमें जिस बात की बहुत भारी आवश्यकता है वह यह है कि चारों तरफ जो कुछ हो रहा है उसे हम अच्छा तरह से जानें। हिमक युद्ध में भी इसका आवश्यकता हातो है। हमारे चारों तरफ जो कुछ हो रहा हो वह हम में खिंधा न हो। जो लोग गुप्ता होने का तैयारी कर रहे हैं, मौका आने पर लूट पाट करने का इरादा रखते हैं हमें उनका पता लगाना चाहिये और उनसे संबन्ध स्थापित करना चाहिये। ये सब काम किये जा सकें हैं यदि इच्छा हो, यदि उनको आवश्यक समझा जाय। और इसका इतना अधिक आवश्यकता है कि हमके बिना आगे के काम किसी महत्त्व के नहीं रहते। लड़ाई दगे कड़ा से केमे हां सकते हैं यह ठंके ठंके जाना जाय। जगत्क रहा जाय। और इनको मूल से ही, प्रारंभ से ही बढ़ने न दिया जाय। मैं तो यह सोचना हूँ कि जब ऐसे लोग गड़बड़ का मौका देख अपनी का अराजकता की वृत्तियों का पूरा करण का आयोजन करते हैं तो हमें भी अपनी स्वराज्य [ व्यवस्थित स्वायत्त शासन का ] भावना को चरिताय करने का प्रयत्न करने का क्या आयोजन नहीं करना चाहिये? हुल्लू-बाजा, अराजकता, दगा, गड़बड़ की जो शक्तियां इस समय अंधेजा हकूमन के रोष से दबी हुई हैं उन्हें हम अपने रोष से अपनी स्वदेशीय शक्ति द्वारा काधू रखें, रख मके यही तो स्वराज्य है। तो इसे हम सच्ची स्वराज्य स्थापना करण का मौका क्यों न समझें? अंधेजा हकूमन भा ना-जैसा वह कहता है-यहां चाहता है कि हम अपना शासन स्वयं करण के लायक हो जायं। इसके लिये प्रत्येक जगह किसी विश्वसनीय व्यक्ति को-जो वहां सब का सब वहाँ की सभ्यताओं का-स्वभावतः नेतृत्व कर सकता हो उसे नेता बनाकर सब अराजक शक्तियों को बिगड़ने से बचाय। यदि हम यह याद रखें कि हम सब देशवासियों का स्वर्थ एक ही है, मित्र भिन्न नहीं तो गड़बड़ों के दूर हाने रहने में कठिनाई न हागो। एक विश्वसनीय नेतृत्व में संगठित हा धान्यों को अपने रूपों का अनुकर अराजकता हटाने में उद्यम करना चाहिये; बलवानों को अपनी शक्ति निर्भय हाकर खियों बच्चों और अन्य सब प्रकार के निर्बलों की रक्षा में लगाना चाहिये तथा विद्वानों को सभी बातें, नेक सलाह, उत्तम उपदेश देते हुए न्यायभावना का प्रसार करना चाहिये। इस प्रकार का एक स्वयंजामित सच्ची स्वभाविक व्यवस्था बनाने का यत्न करना हा अराजकता को हटान का सही उपाय है।

ऐसा करने का हम यत्न ही करेंगे—चाहे पूरा तरह सकल न हों—तो इतने से ही हम असली स्वराज्य का तरफ निरवत रूप से बहुत अधिक अपसर होंगे। इस तरह व्यवस्थाका फायदा रखने के लिये बुराई का मुकबिला करते हुए यदि कुछ अहिंसक आतुरों की जातें भी चली जायंगी तो ये ऐसे कीमती बलिदान होंगे कि उन से गुप्तापन और बुराई की जड़ ही हिल जायंगी और समाज

में एक भारी पत्रचना का वायु मण्डल पैदा हो जायगा। वैसे तो यदि प्रारम्भ से चुराई का पना लगा कर उसे ठीक किया जायगा तो गड़ बड़ी होने का अवसर ही न आवेगा, फिर यदि कुछ गड़बड़ी हो ही गई तो भी यदि निर्भय और शांत तथा विश्वास पूर्ण रहा जायगा तो कम से कम जर्म जर्म जायगी, क्योंकि ऐसे अहिसक उलम पुरुषों पर हथियार उठाना कठिन होगा, पर यदि ऐसा हुआ भी तो वह जितना हम समझते हैं उतना अधिक नहीं होगा। और यह तो है ही कि ऐसे पवित्र बलिदान राष्ट्रगुणिके लिये बड़ा चमत्कारिक प्रभाव पैदा करने वाले होंगे।

### मद्य की आर्य्यवना

'प्रारम्भ मे हा वुराई को पना लगा कर उमे ठीक किया जाय' यह जो मैंने कहा है उमे और अधिक समझने की आवश्यकता है। हम सोचें कि गड़बड़ी क्यों पैदा होगी? हम पर क्यों कोई आक्रमण होगा? यदि कुछ गरीब लोग-खिन में कुछ साहस भी है—अब मौका पाकर गरीबों के सनाये हुए हम पर इसलिये आक्रमण करने हैं कि हमने बहुत सा सत्या जमा कर रक्खा है तो इसका इलाज यह तो नहीं है कि हम उन पर बन्दूकें चलायें और उसके लिए अभी से अंग्रेज सरकार की गुशाबंद कर बन्दूकों का लायसेंस लेकर बहुत सी बन्दूकें जमा रक्खें या उन की लाठियों में स्वर्ण लें और उसके लिये अभी से लाठी चलाना सॉलें और लाठियों ज-1 करने रक्खें। इस का कारण तो यह है कि हम उनकी गरीबी बुर करे। यदि यहां गुरुकुल में कोई लूटने वाले आर्य्य तो मैं तो अनुकुल अवकाश पैदा कर उन से पूछूंगा कि 'भाई! तुम क्यों आर्य्य हो?' उन पर कोई हाथ उठाये यह मैं कदापि सहन नहीं करूंगा। अपनी जान बचाने में डाल कर भी अपने सामने पेना नहीं होंगे दूंगा। वे पहले ही गुरीब, फिर उन्हें मारना। मैं उन्हें चोर उचक्का भी कहने का नैयार नहीं। वे चोरी करने या डाका डालने आर्य्य हैं तो इसलिये क्योंकि वे सनाये हुए हैं और कुछ अज्ञानी हैं। हम उनसे कोई अच्छे नहीं हैं। हम यदि उन्हें मारना चाहें हैं तो हम भी उनसे ही अज्ञानी हैं। और हम यदि उनकी तरह सारी व डाका नहीं डालने तो साधारणतया उसका कारण यह नहीं कि हममें दूसरों का भाग ले लेने की इच्छा नहीं रहती, हम अल्पेय का पालन करते हैं, किन्तु समझने का रण यह है कि हम में इतना साहस नहीं है कि ऐस काम कर सकें। जैसे मौका मिलने पर दूसरों का भाग हम भी हड़पने ही रहते हैं, केवल जरा सभ्य तरीके से। ओ हम लूटन आर्य्य हैं उनके गरीब रहने में हमारी जिम्मेवारी है हमें तो यह सोचना चाहिये। और अपनी इस दुर्गई का प्रतीकार करना चाहिये। यदि हमने अपने आगे तरफ के लोगों की गरीबी बुर करने का कमी पूरी तरह दृष्ट नही किया, फिर यदि वे गलती से भी यह समझ लेते हैं कि हम भी उनका शोषण करने वालों में हैं और अनपछ हमें उन्हें समझना का पक्ष करने हुए उनके पापों से जान पड़ता है तो इसमें मैं कुछ बुराई नहीं समझूंगा। हमें अपने उनके प्रल कर्तव्यों को पूरी तरह

न करने का प्रायश्चित ही समझूंगा। पर हम उन्हें मारे' यह तो अन्धाय पर और अन्धाय करना है।

किन्तु यदि हम गुरुकुल वालों में आर्य्य पास के लोगों को सदा सेवा को हैं, उनके शोषण में हिस्सा नहीं लिया है तो वे गुरुकुल को लूटने का कमी सोच ही नहीं सकते। उन्हें कोई इसके लिये उकसाये या बाधित कर तो भी वे ऐस करने का कमी नैयार नहीं होंगे। बल्कि यदि कोई परगया गुरुकुल को तुकसान पहुँचाने भावे तो उमे भी ज्ञाता मे वैसा करने से वे रोकोगे। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि वसिष्ठ तुलनाना या अन्ध डाकुओं ने चारों तरफ डाके डाले पर गुरुकुल पर-दूसके अरक्षित होने पर भी-डाका डाला पाप समझा। यह हमारी स्वाभाविक शर्मना हुई।

मत्तलब यह कि बिना कारण कोई चोर डाकु नहीं बनता। उस कारण का हटाओ तो कोई आक्रमण कारी नहीं रहेगा। तुम शायद कहोगे कि बहुत से ऐसे भी होने हैं जो गरीबों आदि कारण से नहीं किन्तु जैसे ही ऐसे कामों में मज्जा लेते हैं। वे उपद्रव प्रिय या साहसिक होने हैं। उनका क्या किया जाय? उनका भी कुछ कारण होता है। प्रायः उनको वीरता व साहसिकता कुपथ-गामिनी होनी है, उसे ठीक गलने पर ले आना चाहिये। आज कल जो डाकु करके बदनाम हैं उनमें से बहुतों के विषय में आसानी से कहा जा सकता है कि यदि हमारा देश स्वाधीन होता, भारतीय सभ्यता पर आधिभ अपने स्वराज्य म हम रहने होते तो ये लोग यहाँ हमारे स्वराज्य में एक ऊँचे दर्जे के क्षत्रिय होते, नरना या पुलिस के एक अधिकारी के रूप में देश की सेवा करने या वे होने। यदि चोर और डाकुओं को उसम नागरिक बना देना, आर्य्य बना देना हमारा काम नहीं तो हम घमं प्रचारक लोग और किस मज्जा का दया है?

यहाँ मुझे एक बहुत ही पवित्र नाम स्मरण आता है। श्री रवि शंकर जी महाराज। कई वर्ष हुए 'गुरुकुल' पत्र में मैंने इन पर दो लेख लिखे थे। 'एक गुजराती आर्य्य' यह शीर्षक था। उनका पुत्र मेघनाथ गुरुकुल में १४ वर्ष पढ़ कर निकला है और अब गुजरात में सेवा कार्य कर रहा है। ये रवि शंकर जी महाराज वे पुरुष हैं जिन्होंने सैकड़ों हजारों चोरों पेशा लोगों की चोरियाँ छुड़वा दी हैं—उनके 'गुरु' माने जाते हैं। अभी गांधी जी ने अपने लेख में उरक उल्लेख किया है और कहा है, इन के जाने जाने दृष्टान्त मे हमें प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। उच्च भारत के आर्य्य समाजों यह ज्ञान कर शायद अपने को गौ/वाग्नि अद्रुम्य करोगे कि श्री रवि शंकर जी एक आर्य्य समाजो हैं। और एक ऐसे दृढ़ आर्य्य समाजो हैं कि उन्होंने कमी सत्यार्थ प्रकाश करदख याद कर रखा था। मुझे कबना चाहिये कि वे सचके आर्य्य समाजो हैं। 'कुरवन्तो विरधमाःस्यम्' का मतलब उन्होंने ठीक समझा है और उस पर अमल किया है।

इसी तरह ज्ञान साहिक अद्रुल गणहार जी को देखा। वे बूँजार समझे जाने वाले पठानों का काया पलट कर रहे हैं। जो विरध को आर्य्य बनाने का काम कर रहे हैं। चारों तरफ के लोगों को द्रष्टि, निर्बल और अज्ञानी

रक्षणा और अनामीय सरकार के सहयोग से उनकी दरिद्रता, निर्धनता और अज्ञान से फायदा उठा कर अपने स्वार्थ पूरे करने में व्यय रहना, और वे सवाये हुए कभी आक्रमण कर बैठें तो उन्हें 'आत्म रक्षा' के नाम से बन्दूकी या लाठीकों से आरना यह सब शुरु से आहिर तक अनार्यत्व है। आर्यत्व तो वह है जो श्री अविशर्कर जो कर रहे हैं या स्वानसाहयि कर रहे हैं। हम जिनमें गुंडे, बदमाश, जंगली या पशु समझते हैं और हमने के कारण उनमें डरने या उनको हिंसा करना चाहते हैं, उन में यदि हम निर्भय हो कर प्रेमपूर्वक जरासा स्पर्क स्थापित करके देखें तो हमें पता लगेगा कि वे भी हम जैसे ही अच्छी और बुरी भावनाओं के बीच में लड़कने वाले मनुष्य हैं, और ऊँची भावनाओं के लिये उनके हृदय में भी स्थान रहता है। बल्कि उन में तो बहुत से तो पेजे होने हैं कि उन्हें केवल संकेत मिलाने की वेर होनी है वे हममें भी ऊँचे दर्जे के बन जाते हैं, क्यों कि उ. में स्वार्थ का गुण होता है। और यदि इन धन, ज्ञान नीति आदि में पिछड़े हुए अपने भ हयों क धार्मिक व प्राणिक सेवा में हम कभी अपनी जान भी देनी पड़े तो क्या हर्ज है? ये तो ज्ञान और धन और किस काम के लिये हैं? ये आम देव की सेवा में यत्न चढ़ा देनेके लिये ही तो हैं। आत्मा की ही रक्षा सदा करनी चाहिये। आत्म रक्षा में मेरा यही मतलब है। इस गढ़ों के देह और इन धातुओं के टुकड़ों को और किस के लिये बचाना है? मैं तो कहता हूँ कि कोई हमरा राष्ट्र हम पर हमला करे—मेरे तो जब हम किसी का कुछ बिगाड़ने नहीं हैं, किसी तरह का शोषण नहीं करते हैं, अन्य किसी प्रकार भी दूसरों को अपने पर आक्रमण करने के लिये झलवाने नहीं तो हम पर कोई आक्रमण करेगा ही नहीं—तो भी हम क्यों अरबों रुपये गैजु लब्ध कराने वाले हथियारों को अपने ऊपर बाँधने को अनेका अपने ईश्वर-मदक्ष निर्भयता, अहिंसा, परलेश्वरनिष्ठ देश भक्ति के दिव्य हथियारों से ही उनका मुकाबिला न करे? ऐसा करने में यदि हमारा बहुत से बीवी को सही भी छोड़ना पड़े तो क्या हुआ? मरना जीना तो दुनियाँ में लगा हा रहता है। पर इस तरह विविध बलिदान देने में हमारा इस पुरातन महान् देश को लक्ष्मि अर्पण न रखा होगी—इससे भारतीय सभ्यता की रक्षा होगी, ऐसी ज़बर्दस्त रक्षा होगी कि यह दुनियाँ भर की रक्षा के लिये अपना सिर ऊपर उठा सकेगी। यह भारतीय सभ्यता जिस पर कि आज एक के बाद एक चाणक महार हो रहे हैं—अध्यात्म इस में मारन की आत्मा का रक्षा होगी। क्यों कि यक्षवंदि में जलने वाली अग्नि का तरह वैयक्तिक आत्मा को अग्नि और राष्ट्र-आत्मा की अग्नि भी मतलब शुद्ध आहुतियों और बलिदानों से ही जीवित और रक्षित रहनी है। आत्म रक्षा का पूरा और सही अर्थ यहाँ है।

( ममान )

### प्रभात आश्रम

मेरठ शहर से १२ मील दूर, गङ्गा की नहर के किनारे प्रभात किरणों में झिलमिलाना और संध्या किरणों में मूमकराना प्रभात आश्रम दीव्य पड़ता है। मालों लम्बे हरे भरे खेतों के बीच में दो तीन छोटी छोटी कुटियाँ हैं। हमके सन्धापक हैं प्रसिद्ध विद्वान आदर्श स्वामी श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार। प्राचीन आर्य सस्कृति को ईश्यात्म रूप में दिव्यां के लिए, वृणुष्यवस्था का मन्था रूप—प्रचारित करने के लिए, वेद और वैदिक सभ्यता को दुन्दुभि बजाने के लिए इस आश्रम की स्थापना हुई है।

दिनरात विद्या विद्यालय में लोन रहने वाले ब्र. प्रा. देश भर्म जाने के लिए प्राण हथेली पर लिए हुए कत्रिये, ईमान धर्म से धन कमा कर शुभ कृत्यों में लुटा देने वाले वैश्य न्ययन करना इस आश्रम का उद्देश्य है। यहाँ एक बड़ा भारी पुस्तकालय होगा। विभिन्न आठ विद्याशां के विद्वान यहाँ अपनी विद्याओं का अध्ययन करेंगे। दुनियाँ जिसे स्वप्न समझती है वह यहाँ सत्य है।

लोग कहते हैं कि आर्यसमाज के सामने कोई प्रोग्राम नहीं—ने कहना है कि यह आर्यसमाज के लिए बड़ा भारी और एक मात्र प्रोग्राम है। जो आत्म के कामों और उद्देश्यों को अच्छी तरह विस्तार से जानना चाहें वे प्रा. पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार लिखित 'हाया कल्प' नामक पुस्तक पढ़ें।

### हमारी आवश्यकताएँ—

१. यज्ञशाला—७ माघ से एक लाख आहुत का यज्ञ शुरु है। थोड़े दिन हुए हमारी कृम का यज्ञशाला को आर्यी ने दाह दिया। हमारा यज्ञ अब भा जारी है। यज्ञ-शाला निर्माण के लिए ५००) की आवश्यकता है।

२. गोशाला—गोशाला के लिए १०००) की आवश्यकता है—५००) गाँव स्वरोदने के लिए और ५००) गोशाला निर्मायाप।

३. अश्वमेध के प्रथम काण्ड का भाग्य जिसे श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार कर रहे थे, समाप्त हो गया है। उसे छपवाने के लिए ५००) की आवश्यकता है।

जो भाई अपनी सामर्थ्यनुसार थोड़ी बहुत जिननी भी रकम दे सकें सव्ययवाद स्वीकृत होगी।

### निवेदन

प्रबन्धक

प्रभात आश्रम (मेरठ)

### स्वास्थ्य समाचार

विश्वामित्र ११ अंशों विषमञ्जर, राजेन्द्र २ अंशों विषमञ्जर, सुयमकाश ३ अंशों विषमञ्जर, बलराज ४ अंशों विषमञ्जर, रघुजीन ५ अंशों चोट, कर्मैन्द्र २ अंशों व्रण, विजेन्द्र १ अंशों मर्म।

गन ममाल उपरोक्त ३० रोगी हुये थे अब सब स्व. है।

स्मृतिवर्षक

ब्राह्मी बूटी

॥॥) खेर

सुगन्धित

हवन सामग्री

॥॥) खेर

एक बार जरूर आजमाइए

## गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी का प्रसिद्ध

**भीम  
सेनी  
सुरमा**

आंखों से पानी बहना, झुग्की कूदरे सुखी, जाला व झुग्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार से दूर हो जाते हैं। तन्दुरुस्त आंखों में लगाने से निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ माशा ॥२-॥ १ ते० ३)

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन ज्ञान के बाद ब्राह्मी तैल मिर पर लगाने से दिमाग तरोताजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, आंखों में जलन आदि रोगों में तुरन्त आराम करता है।

मूल्य ॥२-॥ शीशी

## गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

( हारनपुर )

प्रांच

{ लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—भारामरोड  
देहली—बांदनी चौक  
पटना—मछुआ टोली, बांकीपुर

## भीमसेनी वृंतमंजन

दांतों को सुन्दर और चमकीला बनाता है

मूल्य ॥॥) शीशी, ३ रमि० १॥)

## सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइए

## सुपारी पाक

बच्चों के जरियान रोग की प्रसिद्ध औषधि।

मूल्य १॥॥) पाव



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—सा. हृष्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कांशी, शक्रवार २६ आश्विन १९३३; ६ अगस्त १९०

[ संख्या १७ ]

## देवों की विजय

( ले० श्री रामनाथ वेदानंकर )

हस्त्याय देवा अनुसुतान् यथायन् देवा देवत्वमभिरक्षमासाः ।  
प्रत्यक्षमकमनयच्छवीमिरासिन् स्वधामिषिणः पर्यपश्यन् ॥

श्रुत १०।१७७।४, ५

। यदा देवा अनुसुतान हस्त्याय ) जब देव असुरों का  
संहार करके ( देवत्वम् अभिरक्षमासाः आयन् ) अपने  
देवत्व की रक्षा करने हुए आये ( देवाः ) तब उन देवों ने  
( शवीमिः अकम् ) प्रत्यक्षम् अनयन् ) अपनी शक्ति रूपी  
किरणों से [ फिर हुए ] आत्म-सूर्य को प्रकट कर दिया  
( आन् इत् ) फिर इसके बाद ही उन्होंने ( इषिर्वां स्वधां  
पर्यपश्यन् ) रसीले अर्धों [ भागों ] की ओर दृष्टि की ।

यह देखो, प्रकृति में देवों और असुरों के बीच संघर्ष  
हो रहा है। अर्धों गगनमण्डल में सूर्य अपने अद्वितीय  
नेत्र के साथ चमकता हुआ अपनी किरणों से भूलोक को  
प्रकाशित कर रहा था। किन्तु अगले ही क्षण आकाश  
में घाबराहट हो गयी, सूर्य मेंधों से रुक गया, भूलोक पर  
अन्धकार छा गया। बस, माने सूर्यरश्मि रूपी देवों का  
इन असुरों-मेंधों की टुकड़ियों से संघर्ष खिड़ गया। यह लां,  
देवोंने ही देखते थे मेघ रूपी असुर पर लस होकर झिलझिल  
हो चले। देवों की विजय हुई। वह सूर्य उसी अर्धने पुराने  
नेत्र के साथ फिर चमकने लगा। सूर्य-रश्मियाँ फिर इस  
भूलोक पर आकर यहाँ के रत्नों को आस्वादन करने लगीं।

यह तो हुई बाह्य की घात, हमारे शरीरों के अन्दर भी  
यहा खेल हो रहा है। शरीर म जीवात्मा रूपी सूर्य अपनी  
दिव्य किरणों के साथ चमक रहा है। इस आत्म-सूर्य की  
अर्धात से हमारा मानस रूप चन्द्रलोक और बसु आदि  
अणु लोक प्रकाशित हो रहे हैं। लेकिन जब बांध म  
आसुरी अर्धों का उर्मैय आचरण आजाता है तब यह  
प्रकाश रुक जाता है। और तब हमारे मन्ध मानस सङ्कुच्य  
और हमारे सब इन्द्रिय-व्यापार उरडे पड़ जाते हैं, अन्धकार  
से बिर कर तामसिक हो जाते हैं। ठीक वैसे ही जैसे कि  
इस प्रकाशमान सूर्य के लुप्त होने ही सब लोकों में अन्ध-

कार का राज्य हो जाता है। इस लपथ हमारी आत्मा की  
दिव्य किरणों इन्ध आसुरी आचरण का भेदन करने के लिये  
निरन्तर प्रकाशशील रहनी हैं और इन दोनों विरोधी  
शक्तियों में-प्रकाश और अन्धकार में, देव और असुरों में  
युद्ध खिड़ा रहना है। कभी आत्मा की अर्धातों विचार देनी  
हैं कि अब यह आचरण हटा और अब सूर्य का उदय हुआ,  
पर एक के बाद दूसरा आचरण आजाता है। और फिर वही  
काली निशा छा जाती है। आत्मिक यह संघर्ष कब तक  
चलता है? मन्ध में कहा है कि देव आर्धों ने आसुरी अर्धों  
पर विजय प्राप्त की और इसका परिणाम यह हुआ कि आत्म-  
सूर्य जो आसुरी भाव की बत्ती के बीच में आजाते से  
छिप गया था फिर प्रकट हो गया। और शरीर के सारे  
लोक मन बुद्धि, बसु आदि आत्मा की दिव्य अर्धात से  
अगमगा उठे।

मन्ध के अन्तिम भाग में कहा है कि इस छिपी हुई  
आत्मअर्धात को जगा लेने के बाद ही देवों ने रसीले भागों  
की ओर दृष्टि की। लखसुच जब तक आत्म-शक्ति को  
भूल कर हम भागों में प्रकृत होते हैं तब तक कवि की उक्ति  
के अनुसार हम भागों को नहीं भागते प्रकृत भाग ही हमें  
भाग रहे होते हैं। जैसे बादल से रुक कर आती हुई निस्तेज  
सूर्य की किरणों में वह सामर्थ्य नहीं होता कि वे रत्नों को  
हरण करके घुलोक तक पहुँचा सकें जैसे ही आत्मनेत्र  
से बुद्धि, दिव्य नेत्रण से हीन हमारी भोग-साधन  
इन्द्रियों में वह शक्ति नहीं होती कि वे रस-हरण के द्वारा  
हमें अपने उच्छ्व उर्ध्व के घुलोक तक ऊँचा उठा सकें।

माधवो! हमारे शरीर की इस देव-सुरी के अन्दर  
देवराज आत्मा का शासन चल रहा है। देवों, इस इन्द्र  
का निहासन डोलने न पावे। अपनी पराजय के बाद भी  
कामक्रोध आदि असुर फिर वृद्ध बांध कर आत्ममण के  
लिये पैदा हैं। साधन! चारों ओर से चलता है ।  
अपनी देवसेना को जागक रबों और अपने दिव्य संकल्पों  
के बल से असुरों को पराजित करते हुए इस हर्षनाद के  
साथ आगे बढ़ते चलो-देवों की विजय । देवों की विजय !

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

( निवृत्त और चिकित्सा )

[ ने० भी दिनेश वर्मा एवं विवेकी, ऋजुवापक—

भी धर्मराज वेदान्तकार ]

( = )

"हमारा जीवन दिन प्रतिदिन मीरस बनना आ रहा है। हम में से सौन्दर्य की दृष्टि खली गई है। अन्धकार में सारी रात प्रह और नक्षत्रों की क्रीड़ा जारी है। यह क्रीड़ा और कहां देखने की सिनेगी ?

शेक्सपियर की अंग्रेजी कविना अथवा कालिदास की कृतियाँ पढ़ लेने मात्र में ही हृदय में सौन्दर्य और कला की अनुभूति नहीं हो जाती। जिस देश के मन्दिरो में भी सज्जित को भ्रष्ट करने वाला हारमोनियम संगीतक समाज की शोभा बन बैठता है उस देश में सर्वगीन शास्त्र का सर्वथा हास हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य है ? अब दिन बचकने जा रहे हैं। हमें फिर से 'संस्कृत आर्य' बनना है। इस लिये पाठ्य क्रम में कला का स्थान अचर्य होना चाहिये। यदि यह परिष्कार जारी रहा तो मुझे विश्वास है कि हमारे घर महल तथा गाँव के भीपड़े पुनः चिन्हों से विभूषित हो सकेंगे। अन्धकार, भ्रम, सरिता, पर्यतमाला, हरे जेत और रंग बिरंगे बाइबल लोगों के सजीव मित्र बन जाएंगे। उस समय कवियों के काव्यों में और प्राण्य संगीतों में एक अद्भुत स्फूर्ति और वनसात का दर्शन होगा।"

—परिचित सद्गुणामन्द ।

### ( ४ ) अध्यापक वर्ग

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को किया में परिचित करने वाले अध्यापकोंको इन उद्गारों पर विचार करना चाहिये। आधुनिक अंग्रेजी शिक्षाशास्त्रों और कौशिल्यों में अध्यापकों का काम कुछ घबरे विचारियों को पढ़ाना होता है। पढ़ाने के अतिरिक्त विद्यार्थियों के सदाचार को उन्नत करने के सुखे कार्य के लिये उनके पास अवकाश नहीं होगा। इसका परिष्कार यह हुआ है कि आधुनिक शिक्षा में विद्या तथा सदाचार के बीच में एक बड़ी खाई दिखाई देती देती है। गुरुकुल शिक्षाप्रणाली की विशेषता 'गुरुका कुल' होने में है। ब्रह्मचारी अविद्या और विद्या दोनों का गान प्राप्त करे और ज्ञान में आत्मविद्या को भी जाने नमी यह लक्षा ब्रह्मचारी हो सकता है। और इस प्रकार भी आत्मविद्या सिखाने वाले को ही लक्ष्मा गुरु कह सकते हैं। इससे यह बात सिद्ध है कि गुरुकुल के अध्यापकों का बङ्ग आधुनिक शिक्षाशास्त्रों के अध्यापकों से भिन्न प्रकार का होना चाहिये। आदर्श के अनुसार सब चीजें नहीं मिल सकती, तथापि यदि आदर्श दृष्टि के सम्मुख हो तो आदर्श विरोधी बातें नहीं होती। मुझ में गुरुकुल को बलाने के लिये ऐसे आदर्श रखने पड़े थे जिन्होंने आधुनिक शिक्षाशा-

स्त्रों से शिक्षा पार्थी अथवा जो पुराने विचार रखने वाले परिचित लोग थे। यह सब होते हुए भी स्वार्थ के लिये यह अध्यापकों से ब्रह्मचारियों में जो कुछ सीखा था उतना ही पढ़के वर्गों में भी सीखा ही इक्षेम सम्येह है। आर्यन से गुरुकुल में बी० ए०, एम० ए० अर्थात् वाले जो अध्यापक थे वे स्वाध्याय शीघ्र थे। गुरुकुल शिक्षाप्रणाली को सफल बनने के लिये उनमें उत्साह था। पुराने परिचितों का यद्यपि किसी सिद्धांत में अंतर्भेद होता था लेकिन वे अपने अपने विषय के प्रकाश पंडित थे इसी लिये ज्यादातर उच्चम ज्ञातक निकल सके। इसके बाद ज्यों ज्यों आर्य विचार वाले अध्यापक तथा गुरुकुल के ज्ञानक गुरुकुल के कार्य को संभालने लगे त्यों त्यों गुरुकुल के अध्यापन कार्य में अन्धी अन्धी चिकित्सा होता गया। जिस प्रकार प्रकाशक में आरम्भ थे जिन लोगों का काम किया वे महात्मा मुन्शीराम जी आदि आधुनिक शिक्षाशास्त्रों की ही पदाचार्य थे उसी प्रकार गुरुकुल के अध्यापकों में आरम्भ के अध्यापक आधुनिक शिक्षाशास्त्रों से निकले हुए होने पर भी सेवा भावसे कार्य करने वाले व्यक्ति थे। जब गुरुकुलोंसे ज्ञानक निकलने लगे तब से स्वभावतः गुरुकुलों में उन्मत् स्थान मिलने लगा। गुरुकुल ज्ञानको का है और ज्ञातक गुरुकुलों के ही यह बड़ सत्य है तथापि जितनी स्फूर्ति, स्वाध्याय-शीलता, सदाचार शिक्षा के लिये तत्परता ज्ञातक अध्यापकों में होगी चाहिये उतनी उपलब्ध नहीं होती। स्नातक अध्यापकों के भी दो वर्ग हो सकते हैं पुराने और नए। आर्य जनता को स्नातक अध्यापक से अधिक आशा रखने का पूरा अधिकार है क्योंकि ब्रह्मचारियों की कठिनाइयों और वृद्धियों का जितना अनुभव स्नातकों को हो सकता है उतना दूसरों को नहीं। बाहर के शिक्षक वैदिक सिद्धान्तों में पले नहीं होने इस लिये उनके द्वारा शिक्षण में सति हो सकता है। बाहर के शिक्षक कार्बोनिक एरिड गैस वाले गहरों के दूषित वातावरण में विद्यमान शिक्षाशास्त्र तथा समाज के उपज हाने से अनुकूल प्रकार के वैदिक वातावरण को अनुजाने में साराय भी कर सकते हैं। परन्तु जिन स्नातकों ने वर्गों तक सदाचार, नीति, संस्कृति, वैदिक धर्म, विद्या, आचारा, आर्त्तिक वाद आदि की शिक्षा प्राप्त की है, जिन्होंने कठोर संयमी जीवन बिताया हो, जिन्होंने अपने प्यारे माता पिता का विधायन सहन करके भी गुरु का साधिष्य सेवन किया हो ऐसे स्नातक यदि अध्यापन कार्यको अपने हाथमें लें तो फिर गुरुकुल के ब्रह्मचारियों में सामकारिक परिवर्तन को आशा रखना अनुचित नहीं। गुरुकुल के कई पुराने अध्यापकों को महात्मा मुन्शीराम जी ने कई कारणों के आचार पर गुरुकुल से अलग किया था। महात्मा मुन्शीराम जी ने एक बार मेरे पुत्र पिता जी के साथ बात चीत करते हुए कहा था कि ब्रह्मचारियों से एक बात भी अलग होना मुझे असह्य मान्य होता है। महात्मा जो ब्रह्मचारियों की सारी रात चौकौदारी करते थे। पंजब आदि प्रांतों की भौतिक बराबियों के वातावरण में पले हुए कई अध्यापक नृमान्ध से गुरुकुल में आ पढ़ने हैं तो उनमें भीमारी

जकर फैलती है, लेकिन सतक आचार्य की उपस्थिति में बीमारी के संक्रमण से पहले ही बीमारी का निव रण हो जाता था। वर्षों तक गुरुकुल के सामने यह डर था। महत्त्वा म्नीराम जी ने इसी 'खेय संयमी, लगी और सदाचारों आतनों की एक सेना तयार की थी। जानक अध्यापकों के अध्यापन काल में तो इस भय की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इतना तो स्पष्ट है कि आचार्य और अध्यापकों के सनक न रहने पर गुरुकुल के नैतिक कलेवर में अवश्य बिचार आना सम्भव है। इसके लिये निम्न बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है:—

(१) पहली पांच श्रेणियों में अध्यापक और अधि-  
ष्टाता एक ही होने चाहिये, अर्थात् जो अध्यापक हों वे ही अधिष्टाता भी हों। इसके लिये यदि आवश्यक हो तो न्युना स्टाफ रखना चाहिये ताकि प्रत्येक कार्यकर्ता पर अधिक बोझ न पड़े। इन छोटी श्रेणियों में यानत्रयी या गुरुश्री कार्यकर्ता होने चाहिये।

(२) छठी से दसवीं श्रेणी तक अध्यापन का काम आतकों को तथा अधिष्टान्त्र का काम यानत्रयियों अथवा किसी उत्तम गुरुशिष्यों को देना चाहिये।

(३) ग्यारहवीं से चौदहवीं श्रेणी तक पढ़ाने वाले जो अध्यापक हों उन्हें बहुत सोच समझ कर नियुक्त करना चाहिये। आचार्य की आंख सामान्यतः प्रायिक महाचारी के अन्तर्द्वेष तक पहुँचनी चाहिये। थोड़े में कहें तो आचार्य की एक आंख छोटे प्रचारागियों पर और दूसरी आंख महाविद्यालय के बड़े उमर के सम्भ्रदार अध्यापारियों पर होनी चाहिये।

(४) जिन अध्यापकों के यालक गुरुकुल में न पढ़ने हों उनसे इसके खुलानेकी अपेक्षा करनी चाहिये, खुलाना सन्तोष तक हो तभी उन्हें अध्यापक के रूप में रखना चाहिये।

(५) जब तक अनुभवही तथा धान्दल्य 'पन्न शक्ति छोटी श्रेणियों को नहीं संभालने तब तक प्रेम की उन कमी को पूरा नहीं किया जा सकता जो कि माना पिता की अनुपस्थिति में छोटे महाचारियों को दुःखनी पड़नी है। सदाचार के शिक्षण को आधार शिक्षा माना जाना है और जो शिक्षक माना बन सकते हैं उन्हें ही पत्रिका से पांचवीं श्रेणी तक रखना चाहिये। उसके बाद जो शिक्षक प्रथम किरणों के द्वारा तपने हुए सूर्य के समान पिता के रूप में अवतरण कर सकते हों उन्हें प्रथम विभाग में रखना चाहिये। जो शिक्षक सन्तोष मित भाग में विद्यार्थियों का उपकार कर सकते हों उन्हें महाविद्यालय विभाग में उपा-  
ध्याय के रूप में नियुक्त करना चाहिये।

(६) प्रत्येक श्रेणी के अध्यापक या अधिष्टाता को हर एक महाचारी के सदाचार तथा शिक्षण आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करके उसे लिपिबद्ध करते रहना चाहिये। और यह जानकारी प्रतिमास आचार्य के सामने तथा प्रतिवर्ष भी बाप के सामने आनी चाहिये।

(७) प्रत्येक अध्यापक व अधिष्टाता के आचार

व्यवहार आदि के विषय में आचार्य को नोट करने रहना चाहिये।

(८) प्रत्येक अध्यापक के वेतन का प्रश्न उसके आभ्रम धर्म के अनुकूल बनना चाहिये। इसके अनतिरिक्त वर्तमान युग में अनिश्चित भविष्य का जो सामना करना पड़ता है इसके भी ग्याल करना चाहिये। कई बार यह प्रश्न उठना है कि अध्यापकों को इनका वेतन नहीं लेना चाहिये कि उन्हें वेंकों में जमा करवाना पड़े, लेकिन जब तक संग्था अध्यापक वर्ग के लिये कोई ऐसी व्यवस्था नहीं कर देनी जिसमें उन्हें वृद्धावस्था में अधिक सहायता मिलने रहे तब तक वेतन का प्रश्न ऊँचा होना ही चाहिये।

(९) अध्यापकों को अपनी स्थिरता का अनुभव हो इसके लिये पेशान या प्रोसीडेंट फरद की व्यवस्था होनी चाहिये। अध्यापकों के पक्षों की शिक्षा की जिम्मेवारी मज्जु लन समा कराने तक ले सकती है इस पर भी विचार होना चाहिये।

(१०) अब अध्यापक श्रेणीवार होने हैं इसके बदले निययनार होने चाहिये। उदाहरण के लिए भूगोल में निष्ठात अध्यापक को पहली से पांचवीं श्रेणी तक भूगोल के शिक्षण, पाठ्यक्रम बनाने तथा पाठ्य पुस्तक चुनने आदि का सर्ग उत्तरद विन्य सौंपना चाहिये। इस प्रकार होने से अध्यापक किसी एक विषय का विशेषज्ञ हो सकेंगा और संस्था को भी इसमें लाभ होगा।

## समालोचना

### कल्याण—

'कल्याण' गोरखपुर का प्रसिद्ध धार्मिक मासिक पत्र है। प्रति वर्ष इस पत्र का बृहद् विशेषाङ्क प्रकाशित होता है। निस्संदेह इनका उपयोगी, विधिवि विषय विपुर्षित तथा बृहद्काय वार्षिक विशेषाङ्क किसी दूसरी पत्र-पत्रिका का नहीं निकलता।

इस वर्ष का 'साधनांक' भी विद्युत्ते विशेषाङ्क की भांति सुन्दर, विश्वाकर्षक तथा साधक महानुभावों के लिए उपयोगी सामग्री से विपुर्षित प्रकाशित हुआ है। इस सारी सामग्री को संग्रह कर, सुव्यवस्थित ढंग से छापने के लिए जिल आसीम कार्य लता की अपेक्षा होनी है उसका अनुमान किया जा सकता है। पेने सुन्दर विशेषाङ्क को प्रकाशित करने के लिए गीता प्रेस तथा 'कल्याण' के यारस्वो संपादक भी युग् हनुमान-प्रसाद जी पोहार बचार्द के पात्र हैं।

# गुरुकुल

२६ भाषण शुक्रवार १९६७

## चांदी का चर्खा

(ले०— श्री ए० जगन्नाथ जी वेदाशंकर)

अखिल भारतीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में पिछले तीन वर्षों से प्रदर्शनों के साथ कलाई-स्पर्धा का भी आयोजन होने लगा है। सबसे प्रथम कैम्पेन कांग्रेस में प्रदर्शनी के साथ इसे जोड़ कर चर्खे व खादी के महत्त्व को तथा प्रदर्शनी की उपयोगिता को जनता के सम्मेलन मौलिक ढंग से स्थापित किया गया था। इस स्पर्धा के संक्षिप्त नियम नीचे दिये जाते हैं—

१- कुल ६ प्रकार की स्पर्धाएँ होंगी और सभी स्पर्धाओं में एक से नियम होंगे।

२- परीक्षाफल मजदूरी के हिसाब से घोषित किया जायेगा और अधिक से अधिक आमदनी करने वाले को कलाई के कम से इनाम दिया जायेगा, जो मफल उम्मीदवार को दो आने कपया रकब घटा कर दिया जायेगा।

३- स्पर्धा में वही लोग शामिल हो सकेंगे जिनकी गति कम से कम नीचे बताई गई स्पर्धाओं में उनके सामने दिये गये गज्ज युताधिक प्रति घंटा की होगी:—

मोटे सूत की स्पर्धा सूत नं० ११ से १०१ तक ५५० गज्ज या ४१५ तार चार फीट के, मध्यम सूत की स्पर्धा सूत नं० १२ से २० तक ४३० गज्ज या ३३० तार चार फीट के, बारीक सूत की स्पर्धा सूत नं० २१ से ४० तक ३३० गज्ज या २५० तार चार फीट के, बारीक सूत की स्पर्धा सूत नं० ४० से ऊपर २०० गज्ज या १५० तार चार फीट के, मगन चर्खा स्पर्धा मध्यम सूत वाली २०० गज्ज या ६०० तार चार फीट के, तकली स्पर्धा मध्यम सूत वाली ३३३ गज्ज या २५० तार चार फीट के।

प्रत्येक स्पर्धा चार घंटे चलेगी तथा प्रत्येक दिन एक ही स्पर्धा चलेगी।

४- स्पर्धा प्रदर्शनी से ६ दिन पहिले शुरू होगी; प्रदर्शनी १० मार्च १९६७ को खुलने की आशा है, अतएव स्पर्धा ४ मार्च के लगभग शुरू होगी।

५- इनाम का बंटवारा निम्न प्रकार होगा:—

मोटे सूत की स्पर्धा १,२,३ (व्यक्तिगत) रेशमी ति० २०० मुद्रा मध्यम " " " सुवर्ण भारत " बारीक " " " चांदी चरखा " खास बारीक " " " सुवर्ण कनरा " तकली स्पर्धा " " " चमन बट वृक्ष " मगन चर्खा स्पर्धा " " गांधी जी के हाथ के कते रहे मृत की खादी पर प्रनका आशीर्वाच !

सब सूत के लिये आवश्यक मजदूरी कम से कम ६० प्रतिशत होनी चाहिये, इससे कम मजदूर सूत को खारिज किया जायेगा। ७० से ऊपर प्रति ५ फी सदी मजदूरी बढ़ने पर प्रति रूपया दो पैसा मजदूरी अधिक ही जायेगी।

सब लोग अपना २ चदखा व अटेरन लायेंगे-अटेरन चार या ३ फीट घेरे का होगा। कलाई स्पर्धा के प्रवेशार्थी के प्रवेश नियम निम्न प्रकार के होंगे।

(१) प्रदर्शनी उद्घाटन के एक महीना पहिले आर्यी गता, उन्न तथा योग्यता के साथ प्रदर्शनी मंत्रा के पाम पहुंचनी चाहिये।

(२) स्पर्धाओं में से कौनसी स्पर्धा में उम्मीदवार प्रविष्ट होगा यह लिख भेजना चाहिये और वह किस सूचे या संस्था की ओर से आवेगा यह भी लिखना चाहिये।

(३) जिस २ स्पर्धा में प्रवेश का इच्छा हो उसको गंत उल्लिखित सूचों के मुताबिक होनी चाहिये।

(४) प्रवेशार्थी क जीवन का कतई अभ्यास का कतई पत्र का सक्षिप्त परिचय।

(५) प्रवेशार्थी ने कहां २ और कौनसे दगल पिछले तीन वर्षों में जाते हैं तथा प्रति घण्टा कितनी मजदूरी दिलाई है और इनाम कितना पाया है इसकी सूचना भी मिलनी चाहिये।

(६) जो कोई चुनावी परीक्षा में सम्मिलित होना चाहे वह अपनी पूना एक तोला नमूना भेजें— और पिंजाई की गति और पीजन का बघेन चित्र सफिन तथा पिंजाई की विशेषता आदि के बारे में लिखें।

(७) प्रदर्शनी में पहुंचने ही प्रवेशार्थी प्रदर्शनी मन्त्री से कतई स्पर्धा-प्रवेश-पत्र प्राप्त करलें।

इस वर्ष मार्च मास में रामगढ़ कांग्रेस के अवसर पर गुरुकुल के एक कलाकोविद ब्रह्मचारी दल बांध कर समस्त भारत के सूत्रकलाकुशल महारथियों से टकर लेने चर्खा प्रतियोगिता में सम्मिलित हुए; वे यद्यपि चित्रकला, बवईंगरी, कलाई-कला आदि अनेक कलाओं में मिसगं निष्णात हैं फिर भी एक अखिल भारतीय प्रतियोगिता में भाग लेते हुए उनके हृदय में चुकचुकी सी उत्पन्न हो जाती थी। ऐसी मनोदशा में उन्होंने गुरुकुल-संस्था के प्रतिनिधि के रूप में प्रथमवार प्रतियोगिता में भाग लेने का प्रयास किया। उन्होंने उपर्युक्त स्पर्धाओं में से दो अर्थात् २१-४० कंक का सूत और ४० से ऊपर का महीन सूत कातने की प्रतियोगिताओं में भाग लिया। इन में से पहली म तो वे सर्व प्रथम रहे और दूसरी में, सब से बारीक और अधिक सूत कातने पर भी, नियमों का ठीक ज्ञान न होने से और नियम समझ में सूत अटेर कर न दे देने से अक्षममित माने गये। उन का सूत जांच के लिये लिया ही नहीं गया, अभ्यथा वे इस में भी प्रथम ही आने वाले थे।

अखिल भारतीय कांग्रेस के महान् एवं पवित्र अवसर पर इस शानदार विजय के फलस्वरूप गुरुकुल संस्था को चांदी का एक चर्खा चलचित्रोपहार के रूप में प्राप्त हुआ और ब्रह्मचारी शान्ति स्वरूप जी को २०) जो चर्खे का वास्तविक मूल्य है पात्रितो वैक रूप में पुरस्कृत किये गये।

गुरुकुल के विद्यार्थी इससे पूर्व भी अन्तर्विश्वविद्यालय वादविवाद, वाङ्मय-साहित्य और नैतिकान्मूल्य आदि अनेक विषय व्यापक प्रतियोगिताओं में भाग लेते रहे हैं और सफलता पाने पहुँचे किन्तु इस अखिल भारतीय चर्चा-प्रतियोगिता का क्षेत्र अत्यन्त सश्रम प्रतियोगिताओं में व्यापक षष्ठ विशिष्ट था। पर इस में भी कुछ शक्तियों और विशेषतया गुरुकुल के मान्य आचार्यों जो के आशीर्वाद में ब्रह्मचारी ने विजय भी का सेहरा गुरुकुल के मूल्य पर बाँधा। इस अवसर पर हमें वाङ्मय-साहित्य की वचन सभ्य प्रथम विजय का स्मरण आता है जो स्वामी अज्ञानन् जी के आशीर्वाद से मेरठ के एक प्रसिद्ध ट्यूनिंग में नंगी सिर पैर वाले और स्वामी की साठो बर्षी पहने विद्यार्थियों ने पायी थी।

उस विजय के उपलक्ष्य में लोकमान्य तिलक की पुण्य तिथि १ अगस्त के दिन इलाहाबादियों की एक सभा जुला कर ३० शान्ति स्वरूप जी को उनका शिवन स्वागत एवं अभिनन्दन कर के चाँदी का चर्चा समर्पित किया गया। और जिस प्रकार एक लकड़ी-लोहे के बने चर्मों पर मूल कातने के बदले उन्हें चाँदी का चर्चा मिला या उसी प्रकार श्री आचार्य जी ने २० के पुरस्कार को भी १०) दाम की सुवर्ण मुद्रा (आशरफ़ी) में परिणत कर स्नेह-सम्मान पूर्वक ब्रह्मचारी को भेंट किया।

विजयोत्सव की इस सभा में श्री आचार्य जी ने अपने अग्रिम भाषण में बताया कि ३० शान्तिस्वरूप सिर्फ कला की दृष्टि से ही इस विशेष विजय का प्राधिकारी नहीं बना किन्तु गांधी जी के और स्वामी के मित्रान्ति में उसकी हार्दिक अदा भी उस विजय के अनुरूप विन्द है। उन्होंने यह भी बताया कि ब्रह्मचारी कहना है, "इस इनाम मे क्या-मेरी अमली इच्छा तो यह है कि गांधी जी के सुतकी स्वामी पर गांधी जी मे हाथ का लिखा आशीर्वाद जो मुझे सर्व श्रेष्ठ पारितोषिक लगना है उसे प्राप्त करूँ।" श्री आचार्य जी ने ब्रह्मचारी की इच्छा को समझना भी और आशीर्वाद दिया कि परमेश्वर की कृपा से उसका यह शुभ संकल्प भी पूर्ण होगा और वह इस चान्दी के चर्मों को तथा अग्र्य परस्कारों को एवं गांधी जी के वरद आशीर्वाद को भी प्राप्त कर गुरुकुल माना के मध्य को उज्ज्वल करेगा और अपनी प्रतिष्ठा को भी बचावेगा।

इस चर्मों के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण प्रमाणपत्र भी ब्रह्मचारी शान्ति स्वरूप जी को मिलना है और वह है 'विहार की कोकटी स्वामी पर गांधी जी के हस्ताक्षरों द्वारा विश्व-मूक प्रमाणपत्र।' खैर है कि यज्ञ करने पर भी यह प्रमाणपत्र विजय-मभा के नियत दिन नहीं पहुँच सका और चर्चा प्रतियोगिता के अन्त्यम संयोजक श्री प्रमुहास जी गांधी की अनुमति मे १ अगस्त की पुण्यतिथि को बिना प्रमाणपत्र पहुँचे ही विजयोत्सव और पारितोषिक वितरण का कार्यक्रम समारोह के साथ सर्रास कर दिया गया। सभा के बाद विजयी बन्धु के यथार्थ स्वागत के लिये १ चण्टे तक तकली तथा चर्मों का रंगल भी किया गया जिस में कताई-कला के माहिर महारथियों ने असाह पूर्वक भाग लिया। कुछ समय पश्चात् १२३० क प्रमाणपत्र

भी आजाने पर ब्रह्मचारी जी को सम्मान पूर्वक दे दिया जाये।

ब्रह्मचारी शान्ति स्वरूप जी ने गुरुकुल के इतिहास में एक पुनीत प्रथा का प्रारम्भ किया है। अपने प्रथम प्रयास में ही अपूर्व सफलता पाकर उन्होंने भविष्य के लिये विजयारा के स्वरूप में प्रबल बल डाल दिया है और कुलवामियों के सामने एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है। आशा है कि ईश्वर की कृपा से और कुलमाता के वरद हस्त के स्पर्श से आगामी वर्षों में भी हमारे कुलबन्धु इसी प्रकार विजय भी को प्राप्त करेंगे, तथा महात्मा गांधी जी के हस्त-लिखित आशीर्वाद द्वारा—भारतमाता के हार्दिक आशीर्वाद के द्वारा—गुरुकुल को भारतभूमि का वरद पुत्र उद्घोषित करेंगे।

## गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में तिलक-दिवस

पहली अगस्त को गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में लोकमान्य तिलक दिवस बड़े समावाह में मनाया गया। श्री स्वामी रामानन्द जी महागात्रकी अध्यक्षता में ब्रह्मचारियों तथा कमचारियों के श्रोजसली भाषण हुए। तदनन्तर विद्यालय बन्द रहा। ब्रह्मचारियों ने उनकी जीवनी पर विशेष रूप से प्रकारा डाला। श्री स्वर्गाय गोस्वामे, लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी जी के राजनैतिक मन पर स्व बिबेचन हुआ। सभा में स्वामि तिलक बड़ा उत्साह था। सारा हाल स्वचाम्यच भरा हुआ था।

## ज्ञात्रवृत्ति की आवश्यकता

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के एक होनहार ब्रह्मचारी के लिये एक ज्ञात्रवृत्ति (१६) मासिक की आवश्यकता है। बालक महाचारी, भवर्ता अपनी श्रेणी में उत्तम तथा अज्ञात उगाव्याता है। ८ म श्रेणी में पढ़ता है उसके पिता धान-भाव के कारण शुल्क नहीं दे सकते परन्तु उसे पढ़ाना गुरुकुल में ही चाहते हैं। यदि कोई दानी विद्याप्रेमी इस ब्रह्मचारी की पढ़ाई का भार अपनी ज्ञात्रवृत्ति देकर उठाना चाहें तो बड़ा उपकार होगा! कम से कम सहायता भी धन्यवाद पूर्वक स्वीकार की जायगी।

पता:—१० सोमवत्स जी आचार्य  
गुरुकुल कुरुक्षेत्र,  
हरनाल।

## गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

श्री दानवीर सेठ जुगल किशोर जी बिड़ला अचानक गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ पधारे। आपने उन सब भवनों का सम्बन्ध तथा अवलोकन किया, जो गत वर्ष आपकी आजा से निर्माग्न किये गये थे। उन भवनों के निर्माण से गुरुकुल का सागर रूप बदल गया है। उनके सबन्ध में जो कार्य शेष रह गया था, उनके निर्माण के लिये भा आप आजा दे गये हैं। रजत-जयन्ती महोत्सव पर सागर विद्यालय एक नये रूप में सुन्दर सुवर्णाब्धत दिव्यलाई देगा।

आपने यह भी आजा दी है कि यहाँ पर वृत्तगोपग-यज्ञ किया जावे, जिसमें यहाँ के सब कर्मचारी तथा ब्रह्मनांगी उस दिन आपने हाथ से वृत्त लगायें। श्रावणों के दिन उम यज्ञ को करने का विचार है। आप उन वृत्तों के मीचने का व्यय अपना श्रोग से देने के लिये आदेश दे गये हैं।

उत्तरीय पार्य (wing) में जो शेष मकान रहते हैं, उनकी श्रोग भी आपका ध्यान आकर्षित करायी गयी है। आशा है आपका उममें भी सहयोग प्राप्त होगा।

## गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का रजत

### जयन्ती-महोत्सव

आर्य जनता को यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि सं० १९७२ में स्व० दानवीर सेठ रघुवल जी के एक लाल्य रूपय के दान में जिसको आशारा शिला अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने कर कमलों में रबी थी, इस समय वह अपने शैशवकाल को समाप्त कर २५ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। आर्यजनता के पूर्ण सहयोग, प्रेम व उत्साह के कारण यह संस्था शनैः २ उन्नति करती हुई इस अवस्था तक पहुँची है। आर्य भाइयों ने इसे विशेष रूप से अपनाया है। अपने कठोर परिश्रम व पसां ने सींचा है तथा इसके विकास में अनेक तरह से सहयोग प्रदान किया है। यह सब कुछ उम्मी को कुंठा का फल है। मुझे आर्य जनता को इस बात का सूचना देने हुए प्रसन्नता है कि इस वर्ष फाल्गुन तृनुसागर फरवरी १९४१ के अन्तिम मसाल में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का रजत जयन्ती-महोत्सव मनाया जायगा। इस अवसर पर हमें विशेष रूप से इस बात पर विचार करना होगा कि गुरुकुल ने क्या उन्नति व अधनति की। किस तरह यह अपने भावी जीवन को अधिक उन्नतियम व गतेर्गाल बना सकता है। परन्तु इस समय में आर्य जनता का ध्यान विशेष रूप से उस कमी की तरफ आकृष्ट करना चाहता है, जो हम सब अनुभव कर सकते हैं। गत वर्षों में विद्यालयों के रहन-सहन व पठन-पाठन के मकानात की कमी का पर्याप्त मात्रा में आर्य जनता ने पूरा कर दिया है। अब में ऊपर या मैदान समलन करके उसमें वृत्त लगा दिये गये हैं तथा जुगल किशोर जी बिड़ला ने बुजिरीयों के

के आन्तरिक आशम एवं विद्यालय के भवन हिन्दू स्थापक-कला के अनुसार परिभाजित कर दिये गए हैं, तब से यह स्थान भव्य तथा निवास योग्य हो गया है। परन्तु विद्यालय तथा आशम के बीच का पार्य (wing) जो अभी आधा अधूरा पड़ा है इस सौन्दर्य में रुकावट है। इस हिस्से के पूरा हो जाने से गुरुकुल का बच्चों हुई आवश्यकताएँ भा पूरा हो सकती है। एक विराल व्यायाम-मकान (Lecture Room) तथा दो और मकानों के बन जाने से यह पार्य (wing) पूरा हो सकता है। इन सब मकानों के लिये केवल दस हजार रूपयों की आवश्यकता है। इनके बन जाने पर गुरुकुल सदा के लिये मकानानात के कष्ट से मुक्त हो जायगा। इसके अतिरिक्त एक और आवश्यकता है, जिसके पूरा हो जाने पर गुरुकुल बहुत कुछ अपना आय का साधन उपलब्ध कर सकता है। इस समय गुरुकुल में केवल एक कूआ है, जिससे कुलवासियों के खान पान तथा स्नानादि की हा आवश्यकता काठजना से पूर्ण होता है। गुरुकुल के पास जा जर्मन है, उससे काई लाम उठायी नही जा सकता। गैनीन कूआ के नुद जान ल हा यह कमा पृण हो सकता है। उस अध-स्था में कूआ व गाशला क द्वारा गुरुकुल अपना आय का एक स्थिर साधन प्राप्त कर सकता है। देहला निवात एक दाना महादय न इसक लिये एक हजार रूपय दान देने का वचन दिया है। यदि इस प्रकार १०-१५ व्याक गुरुकुल की न्यूनताओं को पूर्ण करने में अपना सहयोग दें, तो उनका कृा ल गुरुकुल का विरसंगिना आयोचया दूर हो जायें। व सज्जन अत्यन्त पुण्यभागा होंगे, जा इस दिक्षालय क कष्ट निवारण में हाथ बढायेंगे। इस अवसर पर सम्पूर्ण आर्य जनता से तथा विद्यपतया देहला निवास भाइया ल प्रेम तथा आमाह पूवक अपील करती है कि मरे इस नक्ष निवदन पर सत्तु-आ ध्यान देग आर पुण्य क भागा हाग। आपन ही इस गुरुकुल क पाधां का लगाया है, साचा है, बड़ा किया आर आशा है कि आप हा इन आन हाथा ल पूरा भी करेगे। रजत-जयन्ती महासव के अतिरिक्त आर कानसा शुभ आशम हो सकता है जब कि इस पुण्य काय की हावधा की जावे। इस समय उसव के छ. मास शेष है। इस बीच में यह काय बड़ा आसामा से पूरा किया जा सकता है। मेरा यह प्रवल इच्छा है कि उसव में पूव सब मकानान वन कर तैयार हो जायें, तब यहाँ का समस्था सब्या हल हो जावे, जिसमें उसव पर आपने वाला आय जनता इस गुरुकुल को मन्थ तत्सव रूप में देख कर अत्यन्त प्रसन्न हो तथा हृदय से हाजी महो-द्यों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करें। आशा है कि आर्य जनता मेरे इस नक्ष निवेदन पर अवश्य ध्यान देगी और इन आवश्यकताओं को पूर्ण करके अपने कर्तव्य का पालन करेगी।

## दो गद्य गीत

(१)

(लेखक की गद्य गीताञ्जलि "मां" से)

जो ह और दया की अमृत्यु में अपने भरपूर झोली में लेकर न आने कब से मां के सान बरख मेरे आंगन के कोने कोने की पवित्र कर रहे हैं। प्रीत्य के उद्यान का सुभाषन अब मुझ गिराशाओं के दुर्दिन की बिभ्रावलि लेकर आँसों के सामने आता है नो बकुल के सुवासित, पुष्पहारों से वह मीना मीना सान्धन कितना सुन्दर लगता है। वह भुलसतां हुई अग्रेष्ठ की रातें पर्यंतों की उपयोगता में शिबरी हुई बालूरा श द्वारा युग-त्रल की तुष्ठा उपवन करके चित्त को अनि व्याकुल करनी हैं। ऊपर हिममरिडन शिखरी पर निग्ध चन्द्रमा का रस-वर्षण तुष्ठा की उस देला में दृग जल की थकान को अपनी शीतलता से शान किया करना है। वह कैसा है मां का मोहन जिसमें स्नेह और दया के अविश्व आत् अस्तव्य वेदनाओं का भार वहन करते हुए मां के कपोला से दुलक कर जगत् को मलक को स्वर्ग करने हैं।

(२)

बालक खिलौनों से खेलता है, उनसे प्यार करता है।

यह वह खिलौने हैं जो मां ने बनाये हैं।

खिलौने बालक की जोड़ के हैं चूँकि मां ने बनाये हैं।

मां चाहती थी कि खिलौने बालक जैसे हों ताकि उसे पसन्द हो।

मां ने इसलिये खिलौनों में अपना प्यार रख दिया।

नभी बालक मां के खिलौने के लिये इतना उमावला है।

घर के कोने २ में स्विकता जाता है और मां के बनाये खिलौने ढूँढता है।

किलकारी भरता है; कहीं गम-गवण, कहीं कान्ह-कंस को पाता है।

कहीं सिंह-सियार और हिरण्य-कशेरुका देखता है। फिर कहीं सुगा,भैरव, मोर और कौशा उसकी नजर में आता है।

उसे अचरज है और सुरती है।

सब से प्यार भी आँसों से सान करता है।

भद्रे से रूस्तता है फिर भी सब से खेलाता है।

सब उसे अपने से लगते हैं।

मां का सर्वोत्तम खिलौना सब खिलौनों से एकमां प्यार करता है।

सबसे खेलता है और सुस होता है।

खिलौने मां ने बनाये हैं।

"द्विरेक"

## गुरुकुल--समाचार

अनु बहुत सुहावनी है, सब ओर हरियाली ही हरियाली विकार देती है। वहाँ अपने पूरे यौवन पर है।

१ अगस्त को श्री आचार्य अमरदेव जी के समा-पतित्व में तिलक जयन्ती मनाई गई। इस सप्ताह श्री महारामा देवचन्द जी 'प्रभु-आधित' का सुन्दर धर्मोपदेश हुआ।

श्री अमरदेव जी पांडिबेरी चले गये हैं। जिन भाइयों न साथ से वैयक्तिक पत्र व्यवहार करना हो वे पांडिबेरी, अरविन्द आश्रम के पते से ही पत्र व्यवहार करें।

ब्रह्मचरियों की वार्षिक परीक्षा प्रारम्भ हो गई है।

## स्वास्थ्य समाचार

धर्मपाल ५ अंकी चोट, सुमलकुमार ४ अंकी वेदभूषण ४ अंकी, देवेन्द्र (अम्बाला) ४ अंकी, महेश्वर ३ अंकी, ब्रह्मनश २ अंकी, राजेन्द्र २ अंकी, सुधकुमार २ अंकी, मलेरियाज्वर। राजबहादुर २ अंकी, रघुनाथ २ अंकी श्लेष्मज्वर, ओम्पकाश १ अंकी, जग, वीरेन्द्र ३ अंकी चोट, भ्रामनेन ४ अंकी प्रतिशार, गतसन्नाह उपरोक्त ३० गंगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

## गुरुकुल चित्तौड़गढ़ समाचार

अनु उत्तम है। पिछले बापकोस पर— १७ जून को नवीन प्रतिष्ठ हुये ६ ब्रह्मचारियों का उपनयन तथा वेदारम्भ संस्कार हुआ। नवम कक्षा के ३० वेदानन्द ने प्राचीन भारत विषय पर व्याख्यान दिया। तदनन्तर श्री मूलचन्द्र जी अग्रवाल के सभापतित्व में 'वीर कुमार सम्मेलन' हुआ जिस में चित्तौड़गढ़ तथा इन्दौर आदि के हिन्दू मुसलमान वीर कुमारों ने भाग लिया। अन्त में श्री पमालाल जी 'पीयूष' के सनेहर भजन तथा मुक्याधिपता जी के द्वारा धर्मवाचन एवं शाश्वत पाठ के पश्चात् निर्विघ्न कार्यवाही समाप्त हुई।

प्रधानन्द—

मक्याधिपता गुरुकुल चित्तौड़गढ़ (मेराइ)

स्वस्थिचर्क

ब्राह्मी बूटी

॥१॥ सेर

गर्मियों में

एक वार जरूर आजमाइए

सुराग्निषव

दहन सामग्री

॥१॥ सेर

## गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी का प्रसिद्ध

**भीम  
सेनी  
सुरमा**

झांलों से पानी बहना, सुग्गी कुकरे सुलीं,  
जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार  
से दूर हो जाते हैं। तन्दुकुल झांलों में लगाने से  
निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ मारा ॥८॥ १ ने० ३)

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन खान के बाद ब्राह्मी तैल मिर पर लगाने से दिमाग  
तरोताजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, झांलों  
में जलन आदि रोगों में तुरन्त आगम करता है।

मूल्य ॥८॥ शीरी

## गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

सहारनपुर )

श्रांच

लाहौर—हस्पताल रोड  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहली—बादली चौक  
पटना—मछुआ टोली, बांकीपुर

## भीमसेनी दूत मंजन

दांतों को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है

मूल्य ॥१॥ शीरी, ३ शी० १॥)

## मूर्च्छापत्र मुफ्त मंगवाइए

## सपारी पाक

बच्चों के जरियान रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।

मूल्य १॥१॥ पाव



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य २)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहाय्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुलार ? भाद्रपद १९६७; १६ अगस्त १९६०

[ संख्या १८

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

( निदान और चिकित्सा )

[ वे० श्री विवेकानंदरा संकाय विवेकी, अनुवादक—

श्री धर्मराज वैशाखडार ]

( ६ )

### ब्रह्मचारीगण

‘गुरुकुल संस्था की स्थापना एक ऐसे अक्षय कीर्ति स्वर्गीय स्वामी अज्ञानन्ध के हाथों से हुई है जिसने अपने बलिदान, परिश्रम और श्रद्धा से हमारे बीच में आर्य-शास्त्र की उस प्राचीन प्रणाली को पुनर्जीवित करने में सफलता प्राप्त की है— जिसका उद्देश्य ब्रह्मचर्य के कठोरतम शासन में रहकर सच्चे मनुष्यत्व की उन्नति करना है और मानवीय आत्मा की वैयक्तिक और राष्ट्रीय जीवन को शक्तियों को विकासित करना है। हमारे वर्तमान पीढ़ी तथा भविष्य में आने वाली पीढ़ियों का पथप्रदर्शक होने का सौभाग्य गुरुकुल को प्राप्त है।’

‘युक्त बड़ा श्रेय है कि मौलिक विचार शीलता और अन्वेषण के क्षेत्र में भी भारतीय मस्तिष्कों ने सन्तोषजनक परिणाम उत्पन्न नहीं किए हैं। यदि हम अपने प्राचीन यश को प्राप्त करना चाहते हैं और अपने आपको एक जीवित, जगृत और उन्नतिशील राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो आर्यों को प्राचीनतम साहित्य वेदों के पठन पाठन का गम्भीर और संप्रति प्रयत्न करना चाहिए और पाश्चात्य सभ्यता की अन्वेषणियों को प्रहण करने के साथ साथ वैदिक संस्कृति को विशेषताओं को अपने जीवन का अङ्ग बना लेना चाहिए। इसके लिए हमें गुरुकुलों के चरणों में ब्रह्मचारी बनकर उपस्थित होना चाहिए और धैर्य तथा परिश्रम से पवित्र शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। वेद-मंत्रों का ज्ञान अस्थिर अभ्ययन से कभी नहीं हो सकता। वेदों का जानना स्वयं ब्रह्म का साक्षात्कार करना है।’

—डा. अचिनाराचन्द्र, एम. ए.

‘मैं यह नहीं मानता कि प्राचीन भाषा संस्कृत की

पढ़ाई से समय और शक्ति बर्बाद होती है। इससे आधुनिक भाषाओं की पढ़ाई में मद्द मिलती है। हर राष्ट्रवादी को संस्कृत पढ़ना चाहिए। हिन्दू भाइयों को यदि अपने धर्म की भावना हृदयंगम करनी है तो प्रत्येक लड़के या लड़की को संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान आवश्यक प्राप्त कराना चाहिए।’

—महात्मा गांधी

इन उद्गारों से स्पष्ट है कि समस्त गुरुकुल प्रणाली के आत्मा रूप ब्रह्मचारी हैं, इन्हीं पर सारी इमारत चिनी जाती है। आधुनिक शिक्षणालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी तथा गुरुकुल के ब्रह्मचारियों में महान् भेद है। विद्यार्थी का उद्देश्य अर्थ-कारी विद्या प्राप्त करना है लेकिन ब्रह्मचारी का आदर्श ब्रह्म विद्या है। इस बातको स्पष्टता में रखते हुए गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर गौर करना चाहिए। जिस बच्चे गुरुकुल से ब्रह्मचारी क्षातक बनकर बाहर नहीं निकले थे उस बच्चे को सुन्दर कल्पनाएँ और भावनाएँ लोगों ने बनाई थीं वे कितने बंधा तक मूर्त-रूप में परिणत हुई हैं, यह हम आसानी से देख सकते हैं। बालक-सृजन मां-बाप द्वारा होता है। इस सृजन में माँ बाप ने कौन सी भूलें की हैं इन्हें हम बालक के विकास को देख करके मात्स्य कर सकते हैं, इसी प्रकार ब्रह्मचारी के विकास में समाज, प्रणाली, अध्यापक, आचार्य अथवा राष्ट्र द्वारा जो भूलें हुईं हों उन्हें जानने के लिए ब्रह्मचारी में विद्यमान भूलों की ओर दृष्टिपात करना चाहिए। माता पिता बालक की वृत्तियों को देखते हैं इसमें यह हेतु होता है कि वे चाहते हैं कि उनकी अपनी वृत्तियाँ बालक में से निकल जाएँ और वे बंधा परम्परा में संकल्प न होने पाएँ। इसमें बालक को नीचा दिखाने का कोई हेतु बिल्कुल नहीं होता। इस प्रकार में परिपक्व ब्रह्मचारी के गुण दोषों का विवेचन में तटस्थभाव से तथा शुद्ध बुद्धि से अपनी समझ के अनुसार करूँगा।

### ( १ ) आराम तलबों

आधुनिक शिक्षणालयों से जो प्रेरणित निकलते हैं उनमें आराम तलबी का होना स्वाभाविक है परन्तु ब्रह्मचारी

और ज्ञातिकाओं में आराम तलबी नहीं होनी चाहिए। जिन्होंने विश्वार्थी अवस्था में शारीरिक कठोर वर्तों का पालन किया हो उसमें ऐसी ज्ञात नहीं होनी चाहिए। जिस संस्था की स्थापना का उद्देश्य ब्रह्मचर्य के उपसारा में रहकर मनुष्यत्व का विकास करना है ऐसे गुरुकुल के ज्ञातकों में आराम की ओर प्रीति होनी अस्वाभाविक है। इस अवस्था में अगर ऐसी प्रवृत्ति ज्ञातकों में नजर आती हो तो उसके कारणों की खोज करना आवश्यक है। १-या तो चौदह वर्ष तक जिम् नियम पालन के शासन में से वे गुजरे हैं वह शासन अस्वाभाविक और अनुचित होना चाहिए। २-आशात प्रत्याशात के सिद्धान्त के अनुसार अस्वाभाविक संयम की यह प्रतिक्रिया होनी चाहिए। ३-शायद यह आचार्य और कल्याणकों की आराम पसन्द जिन्सों का परिणाम है। ४-या बाहरी समाज का असर हो। ५-मां बापों की कमी का नतीजा हो। ६-अथवा गुरुकुल प्रणाली में ही सम्भवतः कोई गम्भीर त्रुटि हो।

इस प्रकार के कारणों की कल्पना की जा सकती है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ज्ञातकों में कौलियवर्तों जितनी आराम और मौज बहार की ओर प्रवृत्ति नहीं होती, यह ठीक है। लेकिन प्रमाद वश कभी कभी उनमें भी यह वृत्ति जागृत हो जाती है। अगर ऐसे अवसर पर समाज तथा माता पिता ज्ञातक को ठीक दिशा में प्रेरित कर सकें तो यह प्रमाद दूर होकर ज्ञातक लोग जगत् में बहुत आगे बढ़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त क्योंकि ब्रह्मचारी को गुरुकुल में विश्वाभ्यास के अतिरिक्त और किसी प्रकार का परिश्रम विशेष रूप से नहीं करना पड़ना इसलिए भी आराम तलबी की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक है। पढ़ने के वक्ष्य तथा मिलें, भोजन के समय घण्टी बजने पर धालियों में तय्यार भोजन मिले इसी प्रकार अन्य साधन भी यथावसर बढ़ी आमानी से मिल जाते हैं। इस हालत में स्वाली मानसिक भ्रम करने वाले विश्वार्थी तो इस बात की खबर ही नहीं पड़ती कि ये अस्वाभाव्य वस्तुएं उसे किस रीति से और किस किस के प्रयत्न से मिली हैं। जिस ब्रह्मचारी के सामने पढ़ने में दत्तचित्त रहने के सिवाय और कोई श्रम का काय नहीं है अगर उसे शायद के जीवन में अध्ययनों में आराम की अभिलाषा हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि ज्ञातकों में जो आराम-तलबी मौजूद है वह चौदह चौदह वर्ष तक अखण्ड रूप से निश्चित होकर विश्वाभ्यास करते हुए दुनिया को करामत-काशे से दूर रह कर एकान्त सेवन के कारण होती है। इसके उपाय के लिए मैं निम्न बर्णों विचारार्थ प्रस्तुत करता हूँ। -

(१) पहली से पांचवीं श्रेणी तक के ब्रह्मचरियों को कठोर थाली आदि भोजन के बरतन स्वयं मोजने चाहिए। और कमरे स्वयं माफ करने चाहें, फर्श फट गए हों तो उनकी मरम्मत करनी आनी चाहिए। कुरता धोनी मायुन से धोकर और नील लगा कर व्यवस्था में रखना चाहिए। ये काम यदि दौड़-दौड़ न करवाए जा सकें तो कम से कम मजदूर को सलाह में जरूर करवाए जाने चाहिए।

जिससे कि इन कामों को करने की आवश्यकता हो सके।

(२) छठी से दसवीं श्रेणी तक के ब्रह्मचारियों को शाक काटना और बनाना, दूध दुहना, कपड़ा काटकर धुलते आदि बनाना, फर्शों पर दूधो करना, छोटो आयु के ब्रह्मचारियों को शारीरिक श्रम में सहायता देना-ये सब काम सिसाने को जरूरत है।

(३) महाविद्यालय विभाग में शारीरिक श्रम का स्थान इससे भी ऊंचा होना चाहिए।

(४) सूत कातना-(गुरुकुल कागड़ों में यह आरम्भ कर दिया गया है) मौन होकर यदि मिलकर ब्रह्मचारी सूत काते तो उसमें एकाग्रता, मन का समतोलन और चित्त की शांति आदि गुण विकसित हो सकते हैं, और आध्यात्मिक साधना भी सुज यज्ञ के द्वारा हो सकती है।

(५) इसके अतिरिक्त और जो उद्योग तथा वृत्तकारियों गुरुकुल के पाठ्यक्रम के अनुकूल हो उन्हें स्थान देना चाहिए। उदाहरणार्थ-जिन्दसाजी, बांस को टोकरीयों आदि बनाना, बड़ई, राज, कुम्हार, लुहार आदि के धन्नों का प्राथमिकज्ञान, वृद्धि बना कर मखन निकालना प्रेस का कम्पोजिंग आदि। ये सब बातें लिखते हुए गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को पढ़ाई के लिए जो समय देना पड़ता है वह मेरे ध्यान में है। गुरुकुल के पाठ्यक्रम में बाहर के शिक्षणलयों का अपेक्षा संस्कृत, आर्यसिद्धान्त आदि कई विषय ज्यादा हैं और इनके अध्ययन के महत्व को भी दृष्टि से ध्यान नहीं किया जा सकता, किन्तु परीक्षा पद्धति में उचित परिवर्तन करने से तथा उत्साहा शिक्षकों के सहयोग से शारीरिक श्रम का कार्य भी पाठ्यक्रम का एक आवश्यक अङ्ग बन सकता है। उक्त उद्योगों का इतना ही हद तक करना पर्याप्त है जिससे कि उसका आरम्भिक ज्ञान हो सके। उन कार्यों का करने का अभिरुचि उत्पन्न हो और दैनिक जीवन का आवश्यक वस्तुएं इतने अधिक श्रम से प्राप्त होती हैं इस बात का भान ब्रह्मचारियों को हो सके। अगर ब्रह्मचारी अपने फटे झरने का मरम्मत के लिए धरती को प्रवीणा करे तो उसकी ऊंची शिखा किस काम की? वास्तविक शिक्षा कितनी में नहीं है। शिक्षण की परिस्थिति शारीरिक श्रम में होती है। महात्मा गांधी जो ने एक प्रेरणदायी को सलाह देते हुए कहा था कि अगर तुम्हें मेरे पास रहना है तो ज्ञां कुञ्च सीला है वह सब भूल जाओ और सारा दिन कातने का कार शुरू करो। यह सलाह कई लोगों को उपहासास्पद लगेगी, परन्तु जैसे प्राचीन काल में गुरु ब्रह्म विद्या के जिज्ञासुओं को गाय चराना, भित्ता मांगना, ईश्वर जाना तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य सौं कर इस बात को परीक्षा करते थे कि जिज्ञासु की शारीरिक श्रम की ओर किस प्रकार की प्रवृत्ति है? इसी प्रकार गांधी जी के भी इस सलाह में गम्भीर सत्य विद्यमान है। वर्तमान आरामतलबी को दूर करने के लिये गुरुकुल की शिक्षा में कातने के अतिरिक्त अन्य उद्योगों को तरफ भी रुचि जागृत हो सके ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए।

## सतपुड़ा-शैल-शिखर पर

[ ले० श्री 'बक्र-चरण' ]

'बक्र-चरण' को मला बैन कहाँ ! बपल-बपल चित्त, झरत बाल और चारों ओर के चक्कर का चक्का !

तो, चल-चल करते-करते एक दिन बल ही दिये-दिये की ओर, क्योंकि लुब्ध में एक एक करके उत्तर-भारत के सब पर्वत-प्रदेशों ( हिल-स्टेशन ) के नाम के आगे 'राइट' का निशान लग चुका था ।

× क्योँ भारी ! सामने असमान में यह काले काले बत्तलों की सेना दीखती है न ! उसके पास ही, ठीक मुकाबले में, यह बूझा और कौनसा कृष्णकाय भयङ्कर दैत्य उपेक्षा-भाव से लम्बा ताने मस्त पड़ा है ? देखो तो—  
किताना विद्याल ..... !

“हाँ, यह सतपुड़ा शैल की श्रृंखला है ।”

बरा—जिनको विद्वर्म कहना चाहिये—न एक छोटा सा कृपा है । नाम है एलवपुर । मैंने कहा—छोटा सा, किन्तु झंझा सा तो वह अब ह । उसे देखना तो तब था, उस मुगलों के जमाने में—अब यह सारे बरार की राजधानी था, जिन तलवारों की चमक से बिजली बल था हर शरमानी छिपती थी, उनकी उस चमक को म्यानमें छिपाये निद्रांश घूमने वाले असंख्य सिपाहियों की सेना की यह छावनी थी, और अपने राजसी डाठ की बदीलत एक दूसरी अमरपती थी । अब क्या है ! अब तो कबडहर बड़े हैं—बुधचप, उस सर्वप्राप्ती काल की कहानी की ओर निर्देश करते हुए, जिसको कोई सुनें या न सुने किन्तु जो आदि काल में एक रस और एक रूप में कही जाती रही है । इस लिये अब तो एक यह छोटा-सा कल्पा ही है ।

उसी एलवपुरमें आकर जब देखा किहम सतपुड़ाशैल के इतने पास बड़े है किहम और उसके बीच म मील नाम के पाँचमाइ की तीस बार से अधिक आबुत्ति नहीं होती, और मोटर केवल तीन घण्टे के अन्दर शिखर के ऊपर पहुँचा देती है, तो प्रसन्न मन टोकना मुश्किल हो गया । उसे अनग, गा ही समझना चाहिये जो इतना निकट आकर भी अपने आपको इस दृश्य से बञ्चित रखे !

लोगों न समझाया—“आजकल 'सौजन' (शुजु) नहीं है—जुलूसका मध्य वर्षाका मौसम नहीं है 'सौजन' तो जून समाप्त होने से पहले ही समाप्त हो जाता है । उस समय तो बरारके सब अर्ध अफसर, बड़े बड़े अमीर भीमन्त और शीकीन संझानी लंग शैल के शिखर पर जाकर मैदान की गर्मी से गम हुए अपने दिल और दिमाग को शीतल करत हैं—लूब रौनक रहती है । पर आज कल तो वहाँ कुछ भा नहीं होगा—बड़े बड़े भालोशान बङ्गले और टेमिस के ब्राइरड बालों पड़े होंगे । लूब वर्षा, और सर्दी, चारों ओर घुनसान न तो रङ्ग बरङ्ग फूल और न मधुसोमी झरर । न कोई बहल पहल । आजकल जाने का कोई फायदा नहीं ।”

पर जिनका उद्देश्य केवल प्राकृतिक दृश्यों को छवि निहारना है, उनके लिये तो आश्चर्यों की रौनक और

बहल पहल अथवा सिद्ध है । 'सौजन' वर्षा और सर्दी की दलील भी उनके लिये अधिकृतकार है ।

इस लिये अगले दिन सवेरे १० बजे की डाक ब.ली मोटर से एक सीट रिजर्व करा ही लो गई, आखिर !

× × ×  
चार मील मैदान की सीधी और सम सड़क पर दौड़ने के बाद, सड़क के एक ओर किनारे पर थोड़ा टंगा ह—‘अब चढ़ाई शुरू होती है’ और फिर लगातार चढ़ाई ही चढ़ाई ।

१० मील के बाद आता है नाका-बेहाली—दो तीन भोपड़े पड़े हैं—वन-विभाग का अफसर रहता है । २० मील पर आता है घटांग—छोटा-सा गांव, मज़दूर सड़क की मरम्मत कर रहे हैं । फिर २५ मील पर आता है सिलोना—पहाड़ की चोटी पर हरा-भरा खुला मैदान, झाड़ी बस्ती—स्कूल में छोटे छोटे बच्चे गिनतों और पहाड़े याद कर रहे हैं । और फिर तीसवाँ मील पार करने न बरने आ गया विखन्दा—सतपुड़ा-शैल का सर्वोच्च शिखर, बरार का गर्मियों का विहार-पर्वत ।

नाम का वर्णन ? उसके लिये तो चाहिये कविता, चाहिये कला और 'सौन्दर्य' पारखी मन, और चाहिये प्रकृति के अस्तस्थल में प्रवेश करने गूढ़ तत्त्व की अंदक दृष्टि । सी में कहाँ से लाऊँ ? हाँ, मैंने तो यह देखा कि उस दिन प्रकृति-परा नभ-शिल्प रूप-रूप से भरी हरित परिधान पहने बड़ी थी । नीचे हरी-हरी घास का मन-मली कालीन, हरित-पल्लवा लताएं परिचारिकाएं, हरित-पाद्यों की हरित-शाबाएँ आन्दोलित होते हुए बंदर, हरित ही रङ्गमञ्च, हरित ही नेत्रपथ्य-और बीच में हरिद-समा प्रकृति-परी का नृत्य ! हरीतिमा के अतिरिक्त अन्य सब अवाग्मनाय ! क्योँ, पल्लवात क्योँ ? हरिदालोक नयन-गुच्छकारी—यह तो विज्ञान-सम्मत ! ..... और फिर कल-कल झल-झल करके बहती हुई झोतखिनी, अर-अर करके भरता हुआ निर्मल, कठोर चहामो से टकरा कर उन्मत्त पवन में उनके इतलते हुए रजतोम्बक सलिल-सीकर—हैं ! सलिल-सीकर कहाँ—यं तो उस प्रकृति-परी के कर्ण-कूल ! और फिर ह्यान-स्थान पर विशाल सरोवर, उनमें नील-गगन की प्रतिच्छाया-सा अनन्त नील—युद्ध लच्छ जल—है ! युद्ध लच्छ जल कहाँ—यं तो उस प्रकृति परी के अवलोकनायं लच्छ मुकुट ! ..... अरे ! यह तो प्रकृति-परी का पकान प्रसाधन-प्रासाद है । इस निमृत् शृङ्गार—सर्व के दिव्या-लोक में कोई पाप-तापमय वस्तुषा का वासी पापिथ प्राणी कहाँ से ? कैसे ?

और यही सोच कर उधर से दृष्टि हटा ली । उसे अपने में ही सीमित क लिया । तब रह गई केवल सड़क और मोटर..... मोटर और सड़क—लगातार बल जाती हुई सड़क और लगातार ऊपर बढ़ती हुई मोटर.....

अरे ! यह सड़क-सर्पिणी तो लगातार बल जाती हुई तुड़ती-मुड़ती अपनी कमर लकवाती ही बली

( शेष पृ० ६ पर )

# गुरुकुल

१ मार्च १९६७

## जिज्ञासुओं की कुछ सेवा पूर्ण अहिंसक बनने का प्रयत्न ( ले०—भी आचार्य कमलेश्वर जी )

अपने जीवन को उन्नत करना चाहने वाले, गेहली की एक आर्यसमाज के एक प्राध्यापक श्री "वैदिक उपदेश-माला" के बारह उपदेशों के लिये मेरा धन्यवाद करने और ऊनकता प्रकट करने के पश्चात् अपने एक पत्र में 'अहिंसा' के विषय में निम्न प्रकार से जिज्ञासा करने हैं—  
"आपने लिखा है कि जो हम से द्वेष करना है, हम उसको कभी कष्ट न दें, वह सर्वशक्तिमान् प्रभु हिंसा आदि पाप करने वाले को स्वयं ठीक कर रहा है। हमें उस पर विश्वास रखना चाहिये। यह सब बात मुझे ठीक लगती है। परन्तु कई विद्वान् कहते हैं कि आत्म-रक्षा, समाज रक्षा, तथा राष्ट्र की रक्षा के लिये शत्रु को, हिंसा करने वाले को दृष्ट देने में हिंसा नहीं होती, क्योंकि भगवान् भी उस की सहायता करते हैं, जो अपनी रक्षा स्वयमेव करना है। और दुश्चारी तथा अपराधी लोगों को उन के सुधार के लिये—यह तो आवश्यक है ही कि उस समय भी संधार की भावना होनी चाहिये और दिल में द्वेष नहीं होना चाहिये—दृष्ट देना ही उचित है। 'गमायण' और 'गण-भारत' का सारांश एक तरह से यही है कि वहाँ दृष्टों को दृष्ट दिया गया है। यही उपदेश भगवान् 'श्रीकृष्ण' ने 'अर्जुन' को दिया और 'अर्जुन' ने अपने गुरु, आचार्य, पिता तथा वस्तुओं को जो कि अधर्ष पर थे, मारना स्वीकार किया।"

"वेद में भी हम बहुत से ऐसे मन्त्र देखते हैं, जिन द्वारा दृष्ट, हिंसक लोगों को दृष्ट देना कहा गया है। जैसे:—

"यदि नो गां हन्मि यथाव" यदि पुरुषम् ।  
नं या सीमेन विधामां यथा नोऽसौ अक्षरहा ।  
अ० १ । १६ । ४ ।

( यदि हमारी गौ की हिंसा करेगा और यदि हमारे धन्व और हमारे मनुष्य को हिंसा करेगा तो तुझ को सीमे में हम केष देने हैं । जिस से हमारे में अशीरी ( दुर्बल ) का नाश करने वाला कोई नहाना )

"ऐसी अवस्था में इस तरह मारना क्या हिंसा है ? पाप है ? इस सम्बन्ध में आपके विद्या जानना चाहता है। मुझ आशा है कि आप मेरे भाव को मन्त्री प्रकार समझ कर मुझे उत्तर उपदेश देने की कृपा करेंगे।"

यह ठीक है कि सब अधर्मों में अहिंसक वही हो सकता है जो परमेश्वर में जीवन अदा रखता है, जो आस्तिक है। 'उदगम्यमदित्यः' इस वेद मन्त्र का यही

मुख्य आशय है। गांधी जी आज कल जिले बखान् की अहिंसा कहते हैं ( यही वास्तविक अहिंसा है अर्थात् भौतिक बल के होने हुए भी या उसे हीन समझ कर उस का उपयोग न करना। आत्म बल या परमेश्वर के अंपार बल से अपने को बली अनुभव करते हुये दूसरों पर सहज दया करना ) उसे वही मनुष्य धारण कर सकता है जिस-से इस वेद मन्त्र में वक्षित अनुभूति को कुछ न कुछ प्राप्त किया है। जो यह देखता है कि सर्वशक्तिमान् भगवान् इस सब जगत् में सर्वत्र और सब काल में सूर्य के समान प्रकट रूप में उदय हुए हुए अतएव उसे कहीं किसी में भय नहीं होता। यह सब मनुष्यों में, वस्तुओं में अपने भगवान् को देखता है। 'प्रतीत्याई' अर्थ भवति' उपनि-पदु में यह ठीक ही कहा है। इस तरह एकत्व अनुभव करने वाला पुरुष स्वयं तो किसी से द्वेष करता ही नहीं, कर ही नहीं सकता। पर यह ठीक है कि यदि कोई दूसरा अज्ञान वश उस से द्वेष करता है ता वह उस आहंसक पुरुष से द्वेष करता है इतना नहीं किन्तु असल में यह कहना चाहिये कि वह भगवान् से भी द्वेष करता है। आज कल के शब्दों में कहें तो वह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता है और प्रतिक्रिया के रूप में दुःख, कष्ट और विनाश को निमित्त बनना है। ऐसे व्यक्ति पर ऐसे परमात्म परायण अहिंसावादी को तो कठ्ठा ही आती है, द्वेष और क्रोध ( जो हिंसा के उत्पादक हैं ) की तो वहाँ कोई बाध ही नहीं। वह तो यह चाहेगा कि मुझे कष्ट पहुँच कर या मेरा शरीर पात होकर भी ( क्योंकि शरीर तो मेरे आत्मा का वाह्य रूप ही है ) यदि उस बेचारे का अज्ञान दूर किया जा सके तो यह सबव्या उचिन ही है। कष्ट और सृष्ट्यु ऐसे उच्च वीर पुरुष के लिये आनन्द देने वाली वस्तु होती है, दुःख देने वाली नहीं। हिंसक, अनपव कायर पुरुष अपने लिये कष्ट और सृष्ट्यु के आने से चरगने हैं। क्यों कि वे अज्ञानी होते हैं, शरीर के नियाम और किसी आत्मा को नहीं पहचानते बतः वे दूसरों को कष्ट और सृष्ट्यु पहुँचाने में संकोच नहीं करते। जो हिंसक होते हुये भी वीर होते हैं वे जहाँ दूसरे को कष्ट और सृष्ट्यु पहुँचाने हैं वहाँ अपने को भी इसके बतने में डालते हैं। अपने आपको बतने में डालने में ही उनकी वीरता है। पर जो असली वीर अर्थात् अहिंसक होने के कारण वीर होते हैं वे दूसरे के बल के लिये केवल अपने आपको ही कष्ट पहुँचाने हैं, अपने बल के कारण को कष्ट होने देने हैं जो कि उन के अन्दर की आत्मा के लिये आनन्ददायक होता है। इस लिये जो अपने आपको जानने के कारण बतने में नहीं डरते, भौतिक, न.व.र वस्तुओं में आस्था नहीं रखते, अपने आत्मा की अमरता को अनुभव करते हैं, वही सब अहिंसक हो सकते हैं। और ऐसे लोग हिंसा कभी करेंगे ही नहीं। उन्हें हिंसा करने की आवश्यकता ही नहीं है। सकनी। पर जिन्होंने ऐसा अनुभव नहीं पाया है फिर भी जो उस तरफ जाना चाहते हैं और जा रहे हैं वे आशिक वीरता के कारण उनकी अहिंसा करेंगे और वीर अशक्तिक के कारण हिंसा भी। पर जो

कायर हैं, जिन में आत्मा का प्रकाश कुछ भी नहीं है वे विचारते हिंसा का ही आशय लेंगे, जो देवने में अहिंसा करने से वह भी मय आदि के कारण करेंगे, वह झूठी अहिंसा होगी।

तो आत्मा का गुण नो अहिंसा ही है। और धर्म यह है जो कि हमें आत्मा की तरफ ले जाये। इस लिये हिंसा धर्म तो किसी अवस्था में और कभी भी नहीं है, धर्म बल्कि परम धर्म तो अहिंसा ही है। पर हमने हम हिंसामय जगत् से अहिंसामय परमेश्वर की तरफ जाना है, इस लिये बीच में अपने अशक्ति के कारण हम बहुत सी अहिंसाओं को अपरिहार्य बुराई के तौर पर स्वीकार कर लेते हैं। पर यह बुराई है, इसे छोड़ना है, यह मानने और जानने हुए किसी हिंसा को सट लेना और बान है और किसी समय 'महिंसा' करनी हा चाहिये, हिंसा धर्म है यह मानना दूसरी बात है। परमेश्वर की तरफ जाने वाला आदमी हिंसा को कभी धर्म नहीं मानेगा, यद्यपि बहुत सा अपरिहार्य हिंसाओं का करना वह दुःख के साथ स्वीकार करेगा। इस लिये शत्रुओं को मारने में हिंसा तो है ही, चाहे यह कायरता से अस्वीकार ही और किसी को अवस्था में अपरिहार्य कही जा सकती हो।

"मगवान् उसी की सहायता करते हैं जो अपनी रक्षा आप करता है।" जहाँ यह ठीक है वहाँ यद भी ठीक है कि 'निर्बल के बल राम'। अर्थात् मनुष्य जब अपनी तरफ से बिलकुल हार मान लेता है, अपने आप को पूरी तरह परमेश्वर के अर्पित कर देना है, निःशेष भाव से उस के आगे झुक जाना है तभी ईश्वरीय सहायता मिलनी है। पहला बचन तामसिक अवस्था में पड़े लोगों के लिये है जो यह चाहते हैं कि उन्हें कुछ भी करना न पड़े, पर उन्हें यों ही ईश्वरीय सहायता मिल जाय। दूसरा बचन उन राजसिक लोगों के लिये है जो अपने अहकार में अपने शत्रु मानुषी या भौतिक बल को ही सब कुछ समझते हैं।

हिंसा और अहिंसा के विषय में दो बातों की तरफ ध्यान रखना जरूरी है। पहिली यह कि हिंसा से अहिंसा की तरफ जते हुए जब न कि हम पूर्ण पुरुष नहीं हो गये हैं जब तक हमें बहुत सी हिंसायें विवश होकर स्वीकार करनी पड़ेंगी। वह अहिंसा के लिये हिंसा होती है। आपने जो गोधालक को मारने का आदेश करने वाला वेदमन्त्र उद्धृत किया है वह यही ही हिंसा है। गौ का, निर्बल का घात नहीं होना चाहिये यह अहिंसा का मांग है। इस लिये उस अहिंसा के लिये विवश होकर ऐसा करने वाले की हिंसा करने का विधान किया है, पर यह विवश होकर के हा है। यदि 'अवोदहा' दुर्बलों को सताने वाले आदमी का तुषार बिना उसे मारे हो सके तो उसे मारना उत्तरी ही हिंसा या पाप होगा जितना कि गौ के मारने में। सो ऐसे सब बचन अपरिहार्य हिंसा के क्षेत्र में आते हैं। पर उठी उठी मनुष्य जाति उन्नत होगी, परमेश्वर की तरफ पहुँचनी हुई अप्रसर होगी त्यों त्यों वह क्षेत्र कम होना जायगा। मनुष्य आन्तरिक शक्ति से इतना

बलवान होता जायगा कि उस के लिये अहिंसा आसान होती जायगी।

इसी तरह आपने जो रामायण, महाभारत और गीता की बान कही है वह भी उस समय की अपरिहार्य हिंसा की अवस्था का सूचन करती है। पर वह सब अहिंसा के लिये थी यह सदा याद रखीये। रामायण में आप यह तो देखाते हैं कि राम ने तीर कमान से या उस समय के अन्य हथियारों से रावण का मारा, पर आपकी इस बान का तरफ भीटाई जानी चाहिये कि जब रामचन्द्र ने रावण के धनुष, बाण, रथ, घोड़े आदि का नष्ट कर उसें नारख कर दिया उस समय राम ने उस पर धार नहीं किया और कहा कि अपने नये हथियार और रथ लाओ तब लड़ेंगे। यह इसी लिये कही हिंसा धर्म नहीं है। एवं लड़ना को जीत कर उठाने उनसे अपने साम्राज्य में नहीं मिला लिया किन्तु वहीं के एक उच्चम पुरुष को वहाँ का राज्य दे दिया। रामायण का तथ्य ता यह भा बताया गया है कि युद्ध में जितन राक्षस मारे गये वे सब सद्गुणों का प्राप्त हुए। पर इसका चर्चा करना अधिक गहराई में उतरना हागा। इसी तरह महाभारत में हम यह तो देखते हैं कि कौरवों और पांडवों की लड़ाई हुई और श्री कृष्ण ने लड़ाई से विमुख हुए अर्जुन को भी लड़ना और शत्रुओं को मारने के लिये नकार कर दिया, पर वह नहीं देखते कि श्री कृष्ण ने स्वयं हथियारों को न उठाने की प्रतिज्ञा ली, हुआ था। इतना ही नहीं, किन्तु जब उनके पास सहायता मागन क लिये कौरव और पांडव दोनों पहुँचे तो श्री कृष्ण ने उनके सामने एक तरफ अर्जुन बिना हथियार के अपने आपका तथा दूसरी तरफ अपनी म्यारह अस्त्री-हिणी सशस्त्र यादवों को सेना, इन दोनों में से एक का चुनाव कर लेना को कहा तो धार्मिक पक्ष अर्थात् पांडवों ने सशस्त्र सेना को छोड़ कर निःशस्त्र अकेले श्रीकृष्ण को चुना था। इस लिये केवल 'हिंसा ही रही है' इतने से हमें प्रेम में नहीं पहुँचना चाहिये। जब तक हम तुनिया में हैं और तुनिया के है तब तक हिंसा से बिलकुल बचे नहीं रह सकते हैं। परन्तु सब बात इसमें है कि हमारा मुँह किस ओर है। जो आदमी शहर से ऊब कर बाहर निकलना चाहता है और निकल रहा है वह भा तब तक शहर में ही रहे ऐसा कहा जायगा, जब तक कि वह बिलकुल बाहर नहीं पहुँच जाता। और जो बाहर से शहर की तरफ आकृष्ट होकर शहर में आया है वह भी शहर में ही रहे। भेड़ रहना है कि पहले का मूँह शहर से बाहर जाने की ओर है और दूसरे का मुँह शहर के भीतर जाने की ओर है। इसी तरह एक समान दीखने वाली हिंसा करने हुए भी इन दोनों में आकाश-पाताल का फर्क है कि जो अहिंसा को परम धर्म मानता हुआ हिंसा से अहिंसा की ओर जा रहा है और जो हिंसा को धर्म मानना हुआ अहिंसा को छोड़ हिंसा की तरफ आकृष्ट हो रहा है।

दूसरी बात जिस पर ध्यान रखने की जरूरत है वह यह है कि हिंसा या अहिंसा बाहरे कम से नही जानी जा सकती। ये कर्ता के अविभाय, उसके आंतर भाव पर आश्रित हैं। जो कार्य हम प्रेम से दूसरे का लाभ करने

के इरादे से करते हैं उससे यदि दूसरे को कुछ कष्ट भी पहुंचता है तो भी वह हिंसा नहीं है। इस के विपरीत यदि दूसरे को कष्ट पहुंचाने के इरादे से जो काम किया जाता है उससे यदि दूसरे को कष्ट पहुंचाने का जगह, ल.भ पहुंचाता है, तो भी वह 'हिंसा' ही है। इस लिये विल में जरा भी ढ़ेब न रखने हुए हितकामना से जो मात.-पता, गुरु, स्वामी, मेनापति आदि, अपने पुत्रों, शिष्यों, सेवकों और सैनिकों को कठोर नियन्त्रण में रखते हैं; तपस्या कराने हैं तो वह हिंसा नहीं। बालक, शिष्य, सचक और सैनिक भी यह जानते होते हैं कि यह सब कष्ट-सहन उनके हित के लिये है, इसी लिये वे उनका अत्यन्त या निगरानी में रहना पसन्द करते हैं। इसके विपरीत दूसरे का नाश करने के लिये यदि उसे ऊपर से मुझ पहुंचाया जाता है, अथवा दूसरे को ढ़ेब-बरा पीड़ा पहुंचाने का यत्न किया जाता है, पर किसी कारण वह यत्न उसके सुख का कारण हो जाता है, तो भी ऐसा यत्न करने वालों को 'हिंसा' का पाप लगता है।

इन दो बातों का हम यदि अच्छी तरह स्पष्टतया समझ लें तो हिंसा अहिंसा संबंधी बहुत सी निरर्थक उलझनों में पड़ने से हम बच रहें।

( पृ. ३ का शेष )

जायेगी ! किन्तु बिचारी मोटर :- यह-उदरी 'लड्डू', इसमें लचक कहाँ ल आये ! कहीं उसका साथ बस जान आन बिचारी मोटर की कमर टूट ही न जाये !!

× × ×

लगातार मूसलाधार वर्षों—यदि न कत ता ? यहाँ आना क्या व्यय होगा ? तब तो फिर लामा का 'साजन' वालों युक्त साथ होगी !

आखर दो घण्ट बाद वह भाराखार-सम्पात कम हुआ तो रूपना क्षाता उठा कर चले—बादलों के बीच में होने हुए एक और को निकल गये । यह जो सामने तालाब नजर आता है इसका नाम है—कालापाना । इसके चारों ओर क, टकरिया पर गाफ (Golf) खेलने के लिये मारण्ड बन हुए हैं । इसके दाईं ओर जो यह सड़क ऊंची ऊंची चढ़ती चली गई है । इसा ओर सब अमेज अफूसरा क भार बड़े २ अमारों के बगले बन हुए हैं । गवनेर की कोठी भी इधर ही है । कचहरी भा इधर ही आर डाकघर भी इधर ही । खिकित्तालयभी इधर ही है । ठाक चांटा पर पहुंचकर एक बतुइपथ है—एक पथ 'रिस्ट हाउस' का तरफ जाता है, एक साहबा के बगल का तरफ, एक कचहरी आर डाकघर की तरफ और चौथा 'भार ताला' का तरफ—जो यह से वा माल दूर है ।

जिस तरह नैनीताल का तरफ भिल २ सात तालाब 'स्तत ताला' के नाम से प्रसिद्ध है वैसे ही इधर भी सप्तताल है—कोई कालापाना, कोई वीर ताला, कोई दूब ताला, आर अमृत कुण्ड—इत्यादि । इन तालों के हा कारण इस प्रदेश का शोभा है ।

उपरोक्त शिखर ही असल चिलन्दा है । वही दरानाय

है—सपन आश्र, पीपल और कहीं २ बाद के कुञ्जों के बीच में छोटे छोटे रंग बिरंगे बंगले अस्यम्परवा-राज-धाराओं की तरह लगे हैं, क्योंकि सूर्य की प्रखर किरणें उन पादप-कुञ्जों की सघनता को अतिक्रान्त करके मंके नहीं सकती । इसा का सौन्दर्य देखने लोग आते हैं । यों नाचे घाटों में चिलन्दा नाम से दस-बारह भोंपड़ियों का एक छोटी सी बस्ती भी है । पर उसकी ओर कौन निहारता है ? ये बंगले, कुञ्जों का क्षाया में लड़ा अस्य-म्परवा राजधाराओं और वे भोंपड़िया चिलचिलाता धूपमें नंगी लड़ी भिखारनें ! कोई क्या देखे ?

१४ मील दूर है विराट नगर—जो आजकल बिगड़कर विराट नगर बन गया है । उस पर्वत के ठीक नाचे ही बहता है काचक नदी । कहते हैं कि भाम न कौचक का मारकर इसा नदी में डाला था इसीलिये इसका नाम काचक-नदी पड़ गया । पहले कथा बड़ा भारा किला था, पर अब ता उसके ध्वंसावशेष भा काल के द्वारा सख नहीं हुए । एक देवा का मन्दिर अब भी अवमान है । किन्तु इस सबके निरुण्य के लिये इस समय वदा जाया तो नही जा सकता—क्योंकि सायंकाल तक लोट कर आना कठिन है ।

तो चलो, उस अकल पर चलें जो यहां से केवल २ माल दूर है—जिसका ऊंचा ऊंचा दवारों अब भा उस स्थान बरा का थार खलाना है जिसन निकटवर्ती अन्य सब राज्यों का पराल कर इस तुंगम शैब-राखर पर अपना अभेद्य प्रालाद बनाया था । इस विज्ञान क युग म भा लोग आश्रय करते हैं कि वे उतना बड़ी बड़ा चट्टानें कैस उठा उठा कर पहाड़ को चोटी पर लाई गई हागा ।

हाटल बाले ने कहा था कि उधर अकल मत जाना । खतरनाक रास्ता है । पर अब तो चल दिया है । अकेला है ना क्या हुआ । कोई कतरा खास मरा हो प्रतीक्षा में बैठा हागा, यह कैस मान हूँ !... निजन-सुनसान-अथानक जंगल.....पर करके किसी तरह अब कल क सुख्य द्वार से अन्दर घुसा । द्वार क सामने ही एक आर एक वालाब, दूसरी आर एकदम वलवा—कदिवार काढ़िया ऊपर से नाच तक-सपन । आपस म इतनी गुंथा कि आगे नहीं दिखता । एक स्थान पर भद्र दवार के ऊपर चढ़कर देखा तो तासरा और एक भयानक खड्ड गहरा इतना कि नाच दसते हुए भा भय । आर ठाक तलछटा में बहती हुई नदी का तत्र ह्र-पर नाद, कैसा भयानक हरय !.....दावार पर स उतर कर आगे बढ़ता हूँ । सात बन लुके है—अंधरा लगातार बढ़ता चला आता है । मैं भी लगातार बढ़ा चला जाता हूँ । आगे और भयानक जंगल—कहीं ऊंचा कहीं नाच्चा, एकदम सुनसान, एकाका ।.....अब पगडण्डा नाखन भी बन्द होगई । क्या करूँ !.....धारे धारे गुरांने का-सा आवाज ! यह क्या ! आरे उन स्थलों ने इधर आने क लिये मना किया था न !—कहते थ कि इधर बघेरी का बहुत डर है—कल इसको गाय खाई गई था—परसों उसको—ओर फिर अगले दिन एक स्थाला भी रायब होगया !... पर यह तो मन का भ्रम ही है । कहीं कुछ भी नहीं । जहाँ

बन्द, गति बन्द, सांस बन्द; हृदय को धड़कन बन्द—कान लगाकर सुनूँ—एक बार फिर वही हल्के हल्के गुरीने की—  
सी आवाज.....

बस, अब नहीं। हिम्मत जवाब दे गई। उलटे पांव—  
चुपचाप।

न जाने किस तरह गिरते-पड़ते रात को १० बजे होटल में पहुँचा तो होटल वाला हैरान रह गया—“अरे! इस वक़्त में क़िस्सा देखने! अकेले? हरे राम!!!

अगले दिन ठीक समय पर भी जब मोटर नहीं आई तब यह अनुमान करके कि कहीं रास्ते में किसी नाले में बर्षा के कारण पानी बहुत बढ़ जाने से वह नहीं आसकी और अब प्रतीक्षा करना व्यर्थ है, समय काटने के बहाने मैंने पूछा—“क्यों, हीराचन्द (होटल का एक कर्मचारी) ! यहाँ बिस्तरों में सड़ियों में सर्दी कैसा पड़ता है?”

“बाबू जी, सर्दी का क्या पूछना। बस बिस्तरों और शिमला तो ही तो स्थान है जहाँ सबसे अधिक सर्दी पड़ती है।”

मैंने आश्चर्य से पूछा—“तो क्या शिमला तुमने देखा है?”  
नहीं, बाबू जी! मैंने तो नहीं देखा। हाँ, मेरे बापने शिमला ज़रूर देखा था। और शिमले की तथा सारे जमान की बातें सुनाया करते थे—उसने मन में कुछ अभिमान सा अनुभव करते हुए कहा।

मैंने फिर पूछा—“अच्छा, तुमने क्या क्या देखा है?”  
उसने कहा—“बाबू जी! मैं वैसे इलाहाबाद का रहने वाला हूँ। किन्तु बचपन में ही इधर आ गया था। और तब से लगभग २० साल तक मैं यहीं का यहीं हूँ—न कहीं आना, न जाना। सगे सम्बन्धी भी मिलने-मिलान यहीं आजगया करते हैं, किन्तु मैं तो यहाँ से कभी बाहर गया नहीं।”

मैंने बात चलाने के लिये पूछा—“अच्छा तो फिर, तुम्हारे बाप ने और क्या क्या देखा था?”

“अजी, उनका क्या पूछना। वे तो ठेंठ बिलायत तक देखकर आये थ। इधर दिन्दुस्तान में श्रापकेश-टिहरी तक.....”

“बस, श्रापकेश टिहरी तक ही, आगे नहीं?”  
“बाबू जी, आगे कहाँ से? आगे तो जमान है ही नहीं। आगे तो समन्वर हा समन्वर है।”

मुझे मन में हंसी आई। किन्तु हँसना उचित न समझ मैंने—“अच्छा!!”—कहकर चुप हो गया।

तो फिर थोड़ा देर बाद हीराचन्द ने अपने आप ही पूछा—“क्यों बाबू जी, आजकल लड़ाई का क्या हाल-चाल है?”

मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया—“अभी लड़ाई चल ही रही है, भाई!”

उसने फिर पूछा—“बाबू जी! ये गांधी महाराज आजकल क्या कर रहे हैं? .....सुना है कि इनके लाखों रुपये बैंकों में जमा हैं। इनका बालियों मिलें चलता है और दिन-रात मोटर में घूमते, पंखा करते हैं। .....पता नहीं, जब से यह सत्याग्रह चला है, तभी से गरीब भूखों मर रहे हैं—

कहीं अकाल, कहीं भूकम्प, कहीं बाढ़ और कहीं कुछ, कहीं कुछ.....”

मैंने बीच में ही बात काटकर पूछा—“क्यों, क्या गांधी महाराज से पहले अकाल, बाढ़ और और भूकम्प नहीं होते थे?”

तब बीच में एक परिचित जी जो रात को तुलसी रामा-यश को चौपाइयों का पाठ कर रहे थे, बोल उठे—“अजी, पहले का क्या बात कहते हो। उस समय तो सचार्इस सचार्इस गज के आदमी हुषा करते थे— और फिर मली में आलें बन्द करके वे थोड़ी देर तक रामराज्य का वर्णन करते रहे। जब जूरा गांजे का नशा उतरा तो फिर प्रकृतिस्य होकर कहने लगे—“हमारे बाप दादा ने तो कभी नहीं बताया कि सरकार से दुश्मनी करना चाहिये, या सत्याग्रह या कोई चीज़ होती है। यह तो जब से कामिस आई है तभी से शराबों के गले पर छुरी चली है।”

दो-तीन मुसल्मान चाय पी रहे थे। उन्होंने भी अब हाँ में हाँ मिलाई, और कामिस को गाँधियाँ देते हुए गिनना शुरू किया कि अमूक २ बैंक में गांधी के इतने २ लाख रुपये जमा हैं; तब मैंने भी अत्यन्त शान्त भाव से सरलता के साथ उनके आलेशों का उत्तर देते हुए बलुस्थिति को स्पष्ट करना शुरू किया और अनजाने में ही एक व्याख्यान दे डाला—व्याख्यान न जाने कब तक जारी रहता कि इतने में ही मोटर का हार्न सुनाई दिया। मैं खुरी से एकदम उछला और अपना सामान ठीक करने लगा।

जब मोटर पर रखने के लिये एक लड़का होटल से मेरा सामान ले जा रहा था और मैं हाथ में छाता घुमाता हुआ उसके पीछे २ आ रहा था तो, उन भलेमानसों में से एक ने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा—“अरे, यह लुफिया पुलिस का आदमी लगता है?”

दूसरे ने कहा—“भार, ये लुफिया पुलिस वेप भी खूब बनते हैं। देखो न, कैसे जण्टलमैनों की तरह सफेद चकाचक कपड़े.....”

## गुरुकुल-समाचार

ब्रह्मचारियों की बाष्पासिक परीक्षाएं समाप्त हो गई हैं। पर्वतीय स्थानों पर यात्रा जाने की मुक्याधिष्ठा जी द्वारा अग्रिमिल गई है अतः ब्रह्मचारियों में गंगोत्री, शिमला, चक-रीता इत्यादि स्थानों पर जाने के लिये दलों का संगठन प्रारम्भ कर दिया है

### स्वास्थ्य समाचार

ब्र० शान्तिस्तूप १२ अंश्री प्रभाव, ब्र० रामदेव १४ अंश्री मलेरिया ज्वर, ब्र० राजेन्द्र देहरादून ४ अंश्री मलेरिया ज्वर, ब्र० ब्रामचन्द ३ अंश्री मलेरिया ज्वर, ब्र० राजेन्द्र २ अंश्री मलेरिया ज्वर, ब्र० कल्याण २ अंश्री मलेरिया ज्वर, ब्र० शिवदश २ अंश्री मलेरिया ज्वर, ब्र० ओडेमप्रकाश १ अंश्री मलेरिया ज्वर, ब्र० देशबन्धु २ अंश्री आन्ध्र ज्वर, ब्र० रामकृष्ण ३ अंश्री स्त्रीवमज्वर, ब्र० गुरुदेव ३ अंश्री Mumps.

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० देगी हुप थे। अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० ओडेमप्रकाश को अभी ज्वर है। आशा है कि शीघ्र स्वस्थ हो जावेगा।

स्वतिवर्धक

ब्राह्मी बूटी

॥१॥ सेर

सुगन्धित

हवन सामग्री

॥१॥ सेर

गर्मियों में

एक बार जरूर आजमाइए

## गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी का प्रसिद्ध

**भीम  
सेनी  
सुरमा**

झालों से पानी बहना, सुग्ली कुकरे सुर्ली,  
जाला व धुन्ध आदि रोग कुछ ही दिन के व्यवहार  
से दूर हो जाते हैं। तन्दुहल झालों में लगाने से  
निगाह आजन्म स्थिर रहती है।

मूल्य ३ मारा ॥२॥ १ से० ३)

## ब्राह्मी तैल

प्रतिदिन स्नान के बाद ब्राह्मी तैल सिर पर लगाने से दिमाग  
तरोताजा रहता है। दिमागी कमजोरी, सिरदर्द, बालों का गिरना, झालों  
में जलन आदि रोगों में तुल्य आगम करता है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

## गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी

सहारनपुर )

घांच

लाहौर—हस्पताल राठ  
लखनऊ—श्रीरामरोड  
देहली—चाँदनी चौक  
पटना—ससुआ टोली, बाँकीपुर

## भीमसेनी दूत मंजन

शरीर को  
सुन्दर और चमकीला  
बनाता है  
मूल्य ॥१॥ शीशी, ३ शी० १॥)

## सूचीपत्र मुफन मंगवाइए

## सुपारी पाक

बिचों के जरियान रोग की  
प्रसिद्ध औषधि।  
मूल्य १॥१॥ पाक



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—माहेश्वरदास हरिवंश बंशलंकार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कागड़ी, शुक्रवार ८ भाद्रपद १९६९: २३ अगस्त १९७०

[ संख्या १६ ]

## श्रावणी का सन्देश

(श्रावण चन्द्रकान्त जी वेदवाचस्पति, रिसर्च स्कॉलर, मृत)

गर्मी के बाद वर्षा होती है और वर्षा में चराचर जगत् आनन्दित एवं उल्लसित हुआ करता है। वही समय है जब कि भावणी का उसख आ-आ कर अज्ञानी एवं निर्बल जनो को कुछ सन्देश सुनाया करता है। बहिनें भाइयों को राखड़ी बान्ध उनसे आनन्दपत्र एवं अमय की श्लुशा रखती है, जनसाधारण यक्षोपवीन पहन कर श्रुति, पितृ तथा देव श्रुतियों से उन्मुख होकर आत्मकल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ा करता है, तात्पर्य यह कि यह कर्म हर एक को कुछ सन्देश सुनाने को आता है। क्या यह सन्देश प्रकृतिकर्मी नदी के अभिनय का है ? क्या यह सन्देश सुन्दर, मधुर, जयघोषों के साथ, विश्व के रूप, राग एवं रास को बताने का है या मीठी मीठी धीमी धीमी सुर में आनन्दमय आनन्ददेव के मोहक रूप को प्रकट करने का ?

शुद्धादरभ्यक उपनिषद् में जगमाया की क्षया से अभि-  
मृत होकर “किमहं तेन कुर्याम्, येनाहं नामृता स्याम्”  
“अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति विचिन” के तर्की नाद को सुनने में लीन हुई मैत्रेयी को ब्रह्मविद्याहवत्क ने जो उप-  
देश दिया था वही भावणी का सन्देश है—आत्मा वाने  
ब्रह्मः श्रोतव्यो मन्त्रव्यो निदिध्यासितव्यः” आत्मा का  
दर्शन करना चाहिये कैने ? भवष, मनन एवं साक्षात्कार  
( निदिध्यासन ) के द्वारा। तद्वत् विद्यानमिषु ने कहा  
है—“श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यः, मन्त्रव्यस्योपपत्तिभिः  
मन्त्राद्य सततं ध्येय इतीमे श्रौतदेवताः” श्रुतियोंसे आत्माका  
अवष करना चाहिये, तर्कने मनन और ध्यान एवं योगा-  
भ्यास से साक्षात्कार करना चाहिये। भवष के बिना  
मनन एवं निदिध्यासन निस्तार है। अर्थ को समझे  
बिना वेद की श्रुतियों को सुनना अवष नहीं भावभास  
है। “उतत्वः श्रुत्वात् श्रुतौत्येनात्” अशोध जन वेद की  
श्रुतियों को सुनने हूवे भी अर्थ को समझ न सकने से  
बिपर हुआ करते हैं। उन्हें संसार की निरर्थक आवाजें,  
ऊँचे ऊँचे पुण्डुभिनाद, मोहर तथा गाड़ियों के शोर मिष  
होते हैं अतः वे “उच्चैःश्रवा” हैं। इस प्रकार का जीवकोटि

को अनुभवी भक्तों का उद्बोधन है “पृष्ठं धावन्तं ह्यौती-  
न्वैः श्रवसाम वत् स्वम्यश्व औत्रायेंद्रभाषह सुष्यजम्”  
( अथर्व ) कि ठे ऊँचा सुनने वाले ! कल्याण मार्ग में  
विजयी होने के लिये इन्द्र को माला पहिना, आत्मा की  
स्तुति कर। आत्मा ( Inner Monitor ) की धीमी श्रावाज  
( Small Voice With ) को कीहै “नीचैःश्रवा” हानी पुरुष  
ही सुन सकता है। इसी दैवी श्रावाज को सुनाने के लिये  
ही हर सरल श्रावणी आ आ कर कर्णकुटी के आसपास  
होल बजा बजा कर कहती है—“एतं पृच्छ कुदं पृच्छ,  
कुहाकं पक्वकं पृच्छ” ( अथर्व ) रे तान्ना ! आत्मा के बारे  
में किसी परिपक्व विचार हानी मक से पूछ।

( क ) गुरुमुख सेः—आत्मा के अवष का एक मार्ग  
अज्ञान को दूर करने वाले गुरुमुख से उपदेश सुनना है।  
मुंडकोपनिषद् में लिखा है—तद्विद्यानाथं गुह्यमेवाभिग-  
च्छेत् समित्पारिण भोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्” हृदय के काम  
क्रोधादि विकारों की समिधाओं को गुह्य की अग्नि में डाल  
कर, ब्रह्मज्ञान के महानाल में राख बना कर ही “समित्-  
पारिण” शिष्य सचची गुरुसेवा और अग्निहोत्र के तन्व को  
समझ सकता है। तब समग्र आत्मा हृदय तथा बुद्धि  
द्वारा आज्ञा, विचार तथा उच्चार में, परात्पर, स्व के  
सुख, उद्गीथ प्रभु की गूज को रोम रोम से सुनने वाला  
“श्रोत्रिय” हुआ करता है जो कि “आत्मीयदे सर्वे” की  
ध्वनि में दृढ़ आस्था रखने के कारण “ब्रह्मनिष्ठ” हुआ  
करता है। साधक का सत्त्वा मयदर्शक अन्तर्ध्यामी “स पूर्व-  
ध्यामिपि गुरुः कालेनामवच्छेदात्” भगवान तथा अन्त-  
रत्मा ही होता है। सांसारिक सिद्ध पुरुष वेदी होने से  
अपूर्ण है—यहर्ण मार्गश्रुति तथा दिक्भ्रम की संभावना है,  
प्रभु के द्वार पर नहीं। इस लिये हृदय का समग्र समर्पण  
भगवान के चरणों में करना है परन्तु गुरु के सामने हाथ  
की जोड़ कर निरभिमानता से नतमस्तक होना साधक  
का धर्म है। संत तुलसीदास ने क्या ही सुन्दर कहा है—  
“संत सदा सिर ऊपर, राम हृदय होतै।”

इस संसार में सबके गुह्य की प्राप्ति कुर्लम है। नीर  
धीर न्याय से सबके साधकों को जुदा कर लेना किसी  
परमहंस का ही काम है। ठीक ही कहा गया है श्रुतु

न चले जमात" करोड़ों में कोई एक प्रच्छन्न वेध में पुरुषका साधु हुआ करता है—तब सचबंद गुरु न मिलने से आत्मा की आवाज़ दबा देनी चाहिये। नहीं, हरगिज़ नहीं। सचबंद मनोनीत गुरु की तलाश में बलबल मग्न होते हुये भी प्राचीन गुरुओं के रूप में ब्राह्म्यात्म प्रणवीं का सहारा लेना चाहिये।

(क) प्रथम गुरु से—प्रथमी की सहायता से बहुत दूर तक आत्मा के पथ पर चला जा सकता है। वेदोपनिषत्, दर्शनशास्त्र, रथतयां नानामुख से उसी सखिदानम्ब का बन्धान कर रही हैं। प्रथम वे गुरु हैं जो विदेह और धीनराग हानिं हुए भी निष्कल रूप से ज्ञान का झरर उपदेश दिया करने हैं। मानस शास्त्र, आचारशास्त्र तथा सोप्यर्थ—शास्त्र का हृदयंजुम कर के परब्रह्म के स्वरूप को समझने के लिये तावज्ञान के अपूर्वप्रथमी का साध्याय करना साधक का परम धर्म है। "साध्यायाऽध्येतव्या" तवज्ञान से सतत्व को समझने के बाद कविप्रतिभा से हृदय को ब्राह्मजित करने वाले भक्तिरस से आनृत काव्यता के प्रथमी में दुबकी लगानी चाहिये। ज्ञान पर प्राविद्या के प्रथमी से ब्रह्मज्ञानियों के आचार विचारों को अध्ययन करके जीवन के परम सत्य को आचरगत किया जासकता है। जीव, प्रकृति तथा प्रभु के स्वरूप का ज्ञान बिना ज्ञात्म-दर्शन साधक के लिये असम्भव है। साध्याय्य प्रथमीके पुनः पुनः परिशीलन से विषय से रजोमल दूर होता है। सत्य का उद्ग्रेक होता है। निर्बीज समाधि से पूर्ण प्रथ गुरु आत्मा के भव्य में सहायक हुआ करते हैं। परन्तु अपार संसार पारावार को नैरन्ते के लिये गुरु एवं प्रथ पतवार का काम अवश्य करते हैं, नाविक का नहीं। नाविक तो मनुष्य की हृदय गुहा में और प्रकृत के दामन में छुपा हुआ है।

[ग] यही विश्वगुरु से आत्मा का अवगण करना है। प्रकृति की गुहा में आस मिचोमी खेलते हुए आत्मदेव की मांकी लेने के लिये प्रकृति का निरीक्षण करना चाहिये। वेद तथा उपनिषद् के अधिधर्मों ने प्रकृति से बातचीत की और प्रकृति को गुहा से मूक मंत्र सुने और सुनाये हैं। विद्युत की अनुकरण ध्वनि "द" कार से दान, दमन, दया का उपदेश दिया गया है। ब्रह्मचारी को पशु, पक्षी, सूर्यादि प्रकृति विहारी देवों से ब्रह्मचर्य का महान् पाठ सिखाया गया है। प्रकृति के अग्रु अग्रु के मन्त्र से चैतन्य की भद्रकन सुनी जा सकती है। वर्षा की सुनहरी हरियाली, लाल लाल वीर कण्टियां, नदी नालों की कलकल ध्वनि, उड़ती मुमड़नी मेघ की धमधोर चटपटे, ज्वलती की चकाचौंध इन सब रूपों में—"रूप रूपं प्रतिरूपो बभूव—" सत्य, शिव, सुन्दर भगवान् देखे जा सकते हैं। पक्षियों के मधुर कलरव में, नदी नालों के गाल में अनहत नाद सुना जा सकता है। प्रकृति मिय वडैस्वर्भ में पत्थर, नदी नाले तथा वृक्ष लताओं में आत्मा की गंभीर ध्वनि सुनी थी। हृदय की गुफा से भी आत्मा की आवाज़ सुनाई देती है। प्राचीन ऋषि, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद तथा महर्षि दयानन्द ने इसी आवाज़ को सुनकर (Inspiration)

पेरणा प्राप्त की थी। हृदय के अधिवासी आत्मदेव हमें कर्णस्व कर्म बताते हैं—हमारा मिय धर्म इसी हृदय की ही तो पुकार है—"हृदयेनाभ्यनुज्ञातः यो धर्मः॥"

रग विरंगी प्रकृति के सुन्दर मोहक चित्रों को देखकर मानव हृदय कागुच्छिमार में मग्न होता है और हृदयगुहा की अव्यक्त मन्द मधुरध्वनि सुनते हुये कर्तव्य विचार करने लगता है। दोनों से ही प्रभु का अवगण होता है। यह अलौकिक अवगण है। प्राचीन में प्राचीन और अर्वाचीन में अर्वाचीन अवगणों में यही सबंतो भद्र अवगण है— इसी से अन्तर्यामी भगवान् देखे जा सकते हैं। आवणो पर्व के इस पवित्र दिन क्या हम आवणो को यह आभ-पुकार न सुनेंगे ?

## गुरुकुल कांगड़ी में वर्षा शिक्षा की प्रगति

( से०—श्री पं० हितक जी वेदाचार्य )

वर्षा शिक्षा या जीवनोपयोगी हस्तोयोग द्वारा शिक्षा अब केवल विवाद और विचार का विषय ही नहीं रही किन्तु देश में विभिन्न स्थानों पर उसे क्रियात्मक रूप देने के प्रयत्न भी हो रहे हैं। अमर शाहीद अद्वैत स्वामि अठानन्द जी द्वारा संस्थापित गुरुकुल कांगड़ी की प्राथमिक कक्षाओं में इस वर्ष के प्रारम्भ से यह परिष्कृत किया जा रहा है। गुरुकुल कांगड़ी में सब गुरुकुलों के आध्यापकोंका वर्षाशिक्षा-केन्द्र चलाने के लिये पहलें श्री पं० जगन्नाथ जी वेदाचार्य को तथा लेखक को वर्षा में इस शिक्षक पद्धति का अभ्ययन करने के लिये भेजा गया था। गत वर्ष के अन्त में वे यहाँ आये। उस समय मामूली तौर से इस पद्धति को प्रारम्भिक श्रेणियों में लागू किया गया। इसी बीच में मालवाड़ी आभ्रमवासी श्री सत्यन जी-जिन्होंने कई वर्षे कर्ताई शास्त्र का साधना की है तथा इस कला के विशेषज्ञ हैं—यहाँ मुलाये गये। इस साल के शुरू से बुनियादी तालीम का प्रयोग शुरू हुआ।

२ महीने के प्रयोग से हमें जो सफलता मिली है—वह आश्चर्य जनक है। शैक्षणिक तथा आर्थिक दोनों पहलुओं से विद्यार्थियों को, अध्यापकों को तथा संस्था को पर्याप्त लाभ हुआ है।

वद्यपि 'उद्योग द्वारा शिक्षा' पद्धति में शिक्षा और उद्योग का अविनाभाव संबन्ध है। शिक्षण शास्त्रियों की शिक्षा अर्द्धतवादिशों के ब्रह्म की तरह एक अलखण्ड सत्ता है किन्तु फिर भी माया और ब्रह्मको अलग २ समझ कर जिस प्रकार उस अलखण्ड ब्रह्म को समझने में सुविधा होती है, उसी प्रकार इस अलखण्ड शिक्षा की प्रगति समझने के लिये व्यवहार में थोड़ी देर के लिये शिक्षा तथा उद्योग की प्रयत्न २ प्रगति को देखा जाय तो सम्पूर्ण शिक्षा को प्रगति सुगमता से समझ जा सकेगा। पहले शैक्षणिक पहलू को धीजिये। इस पद्धति में शिक्षा का रंग समन्वयमयक या अनुसन्धात्मक है। शिक्षा जीवन के लिये, जीवन का बसुभां को

होनी चाहिये। प्रारम्भ की सारी शिक्षा जीवन से संबद्ध होना चाहिये। यह ठीक है कि उद्योग जीवन का बहुत बड़ा भाग है पर फिर भी जीवन में उससे व्यतिरिक्त भाग भी बहुत सा है। अतः शिक्षा को जीवन से संबद्ध करने के लिये हमें उद्योग के साथ २ प्राकृतिक परिस्थिति और सामाजिक परिस्थिति भी अनुभव के केंद्र बनाने पड़ते हैं। पू० विनोबा जा के शब्दों में वर्षा शिक्षा एक त्रिचक्रिका (ट्राइ-सिकल) का भाव है जिसका अंगला बड़ा पाठ्या उद्योग है तथा दो छोटे पहिये प्राकृतिक तथा सामाजिक परिस्थिति हैं।

समन्वयात्मक शिक्षा यहां पहली और दूसरी श्रेणी में दी जाती है। गणित, भूगोल, भाषाभाषा, सामाजिक विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान आदि के सभी पाठ उपरोक्त ताना बातों में से किसा एक केंद्र को बनाकर हा दिये जाते हैं। इस प्रकार का शिक्षा से यह फायदा हुआ है कि विद्यार्थियों में उत्सुकता, अभिधान, जिज्ञासाशुक्ति की वृद्धि हुई है। वे इस

में ज्यादा रस लेते हैं। साथ ही शिक्षकों को भी सुविधा हुई है। प्रत्येक चीज समझते या पढ़ते समय उनके आगे निश्चित लक्ष्य रहता है। सम्बद्ध पाठों को पहली पुस्तक भी तैयार का गई है जिसमें कलाई के उद्योग को मूल बनाकर हिन्दी का अक्षरमशाल बताया गया है।

यहां पर मूलोद्योग कलाई है। प्रतिदिन इसके लिए १॥ घण्टा दिया जाता है। आधा घण्टा पढ़ाई के शुरू में और एक घण्टा बीच में। आधा घण्टा इस लिये रखा गया है कि विद्यार्थी उद्योग को महत्ता को अनुभव करें तथा अभ्यास को बाद में औद्योगिक प्रक्रियाओं से अपने पाठ्य विषय को अनुबद्ध करने में सुविधा हो। पिछले दो महीने में इस उद्योगको प्रगति इस विद्यालय में किसप्रकार हुई यह सारिखी सं० १ से प्रकट है। इस में पहली पांच श्रेणियों का प्रतिदिन १॥ घण्टा के हिसाब से तकला पर काते गये सूत का वर्या है। साथ में नम्बर और मजदूरी भी दी गया है--

सारिखी सं० १

तांथ	कातन वाला की संख्या	कलाई दिवस १॥ घण्टा	नून तोना में	नम्बर	कुल मजदूरी	कपास	शेष मजदूरी
१ ज्येष्ठ से १३ ज्येष्ठ तक	१४५	६	३३४	११	४॥१॥	१॥३॥	३॥॥
१४ ज्येष्ठ से २६ ज्येष्ठ तक	१६६	१०	४६६	११	६॥३॥	१॥३॥	७॥॥
२७ ज्येष्ठ से ६ आषाढ तक	१६८	११॥	१००३	११	६॥३॥	१॥३॥	७॥३॥
१० आषाढ से २३ आषाढ तक	१६३	१०॥	६६६	१२	१३॥॥	२॥३॥	११॥॥
२४ आषाढ से २ आषाढ तक	१४४	१०॥	५४०	१२	५॥॥	१॥३॥	६॥॥
३ आषाढ से १६ आषाढ तक	१७०	११॥	१०६४	१२	२६॥	२॥३॥	१३॥३॥
	कातने वालों की औसत में १६४	६२॥	४७४४		६२॥	१२॥३॥	४६॥३॥

इस सारिखी से स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की उत्पादन क्षमता निरन्तर बढ़ती जा रही है। विद्यार्थियों की परीक्षा के लिये बीच २ में आधा २ घण्टे की प्रतियोगितायें की

जाती रहीं। २ महीने के अन्त में हुई प्रतियोगिता का परिणाम सारिखी सं० २ में दिया गया है।

सारिखी सं० २

कक्षा	विद्यार्थी संख्या	कुलतार	अधिकतम तार	न्यूनतम तार	औसत तार
द्वितीय (क)	१८	६८७	७२	१२	३८
द्वितीय (ख)	२२	६०८	५६	१२	४१
तृतीय (क)	२२	६३६	४६	६	२६
तृतीय (ख)	२२	१०६३	५६	१३	४८
चतुर्थ (क)	२२	११०४	७३	३१	४०
चतुर्थ (ख)	२२	११७०	१०३	३१	५३
पंचम	४२	२६६५	१०३	३७	६३

जाकिर हुसैन समिति द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रम में पहली कक्षा के पहले सत्र के अन्त में अर्थात् ६ महीने बाद विद्यार्थियों के औसत तारों की संख्या ४० और दूसरे सत्र के अन्त में ५३ होनी चाहिये। इस दृष्टि से दो मास का उपयुक्त परिणाम संतोषप्रद है।

पहले यह शंका की जाती थी कि बाबकों द्वारा काता गया सूत इनका निकम्मा, रही और कबा होगा कि आर्थिक

दृष्टि से यह योजना घाटे पर ही चलेगी। परन्तु अनुभव ने यह शंका निर्मूल सिद्ध कर दी है। शुरु से मात्रा या परिमाण की बजाय गुण पर बल देने का सुपरिणाम यह हुआ है कि जुलाहे अब सूत के कच्चे-पन की बजाय उसके पकड़ेपन की शिक्षायेत करते हैं। क्षीजन (वेस्टेज) की मात्रा धीरे २ कम हो रही है। यह सारिखी सं० ३ से स्पष्ट है—

सारिखी संख्या ३

क्षीजन की प्रतिशतक मात्रा

१ ज्येष्ठ से १३ ज्येष्ठ तक	११.७०/०
१४ ज्येष्ठ से २६ ज्येष्ठ तक	६.७०/०
२७ ज्येष्ठ से ६ आषाढ तक	८.७०/०
१० आषाढ से २३ आषाढ तक	३.२०/०
३ आषाढ से १६ आषाढ तक	१.२०/० [द्वितीय वृद्ध पत्र]

# गुरुकुल

८ भाद्रपद शुक्रवार १९६७

## गुरुकुल में वैदिक वायुमण्डल

( श्री आचार्य अभयवेश जी का एक उपदेश )

हमारे यह वैदिक वायुमण्डल हो-ऐसा प्रयत्न वैदिक वायुमण्डल हो जिससे कि गुरुकुल में आने ही किसी भी मनुष्य को इसका अनुभव हुए बिना न रहे। यह हम सब चाहते हैं, चाहना चाहिये। पर यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि वैदिक कर्म-काण्ड और वैदिक ज्ञान-चर्चा, ये दोनों ही सत्यता द्वारा, वास्तविकता द्वारा अनुप्राणित न हों। हम सुर्दा कर्मकाण्ड करते जाय और योधी कर्मकाण्ड विषयक बातें करते रहें इसमें क्या होना है। इन दोनों के विषय में तुम ब्रह्मचारियों को अब जो अगला कदम उठाना चाहिये उसकी आज चर्चा करना चाहना है।

कर्मकाण्ड में जीवन फंक्ने की दृष्टि से मैं तुम्हें याद दिलाता हूँ कि मैं हाथ से काम करने के विषय में जो तीन उपदेश तीन दृष्टियों से दे चुका हूँ उनका स्मरण करो तो यज्ञोपवीत बनाने का तो गुरुकुल में एक महकमा सुल जाना चाहिये। जैसे कई कार्यों को तुम ब्रह्मचारी स्वेच्छा से आयोजन करते हो वैसे जिन ब्रह्मचारियों को इस में ब्रह्मा हो वे एक को मुखिया मान कर हमें प्रारम्भ करें या चाहें एक ही ब्रह्मचारी इसे प्रारम्भ करे। सब के लिये तुम अपने हाथ से बना कर यज्ञोपवीत तैयार कर दो, यह सम्भव होना चाहिये। गुरुकुल में बाहर से यज्ञोपवीत मंगाना जयश्रावण मसम्भ जाना चाहिये। कपाम चुनने से लेकर अन्तिम प्रन्थि लगाने तक की सब क्रिया मन्त्रपाठ पूर्वक पवित्रता की भावना के साथ की जाय। क्रिया में किस किस मंत्र का विधान है यह मैं बता दूँगा। मैं इसके लिये बहुत बर्षों से कोशिश कर रहा हूँ। जबसे पहले मैंने गुरुकुल जल जयन्ती वाले वर्ष-प्राय से लगभग १५ वर्ष पूर्व-अपने एकान्त बास से नवीन ज्ञातकों के लिये अपने हाथ से यज्ञोपवीत बनाकर भेजे थे। इसी तरह महत्सया टेकचन्द जो के यज्ञ में सम्मिलित होने वाले वृत्तियों के लिये ऐसे यज्ञोपवीत बना कर भेजे हैं। कई ज्ञातकों, प्रेमी मित्रों को मुझ से यज्ञोपवीत मांगने की आदत हो गई है। अभी ज्ञातक अर्वािन मोहन जी ने अपने गुप्त-विवाह के अवसर के लिये मुझ से यज्ञोपवीत मांगा था। मैंने यहाँ एक ब्रह्मचारी द्वारा शुद्ध-भाव से गाथवी मंत्र जपते हुए शरीर सम सूल कतवाया और इसी तरह त्रिष्टुत करवाया और अन्त में अपने हाथ से मंत्र पढ़ते हुए प्रथि लगाई और ऐसा यज्ञोपवीत उन्हीं दिया। ऐसा यज्ञोपवीत पहनते हुए उन्हीं कितना आनन्द आता होगा इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। उससे पहिले तो वे यज्ञोपवीत पहिनने

में-अन्य बहुत से ज्ञातकों की तरह-विधिबद्धता कर देते थे, पर वे कहते थे कि अब यह नहीं हो सकता। अब वैसा समय आ गया है जबकि गुरुकुल का तैयार किया हुआ-विधिपूर्वक तैयार किया हुआ ही यज्ञोपवीत पहिना जाय। मैं तो अब यहाँ तक कहूँगा कि दूसरी तरह के बजाय यज्ञोपवीत पहनने की अपेक्षा तो यज्ञोपवीत न पहनना अच्छा है। मैं जानता हूँ तुम में से कई ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत पहनने में लापरवाही करते हैं। गुरुकुल के ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत न पहिनने हुए देखे जाते हैं ऐसी शिकायत चायें भाइयों को तरफ से कई बार सुनाई गई है-मझे कई आर्य महात्माओं ने इस बारे में कहा है। पर मेरी नमक में इस शिकायत का इलाज यज्ञोपवीत में फिर से उसको अपने जान डाल देना है, यज्ञोपवीत को यज्ञोपवीत बनाना है, न कि ज्वरवंसी यज्ञोपवीत पहिनाना और न पहिनने पर नाराज होना। गुरु (आचार्य) का संस्कार पूर्वक दिया हुआ, राम द्वारा गुरु मन्त्र (पवित्र सावित्री) के पाठ पूर्वक प्रथित किया हुआ, गुरुकुल माता के पुत्रों (सहाध्यायियों) द्वारा कपास चुनने से लेकर सिद्ध करने तक सब प्रक्रियायें विधिवत् पवित्र भाव से मंत्र पाठ पूर्वक करते हुए निर्मित किया हुआ, इम प्रकार गुरुकुल माता द्वारा दिया हुआ, दीप्त, के चिह्न-यज्ञके चिह्न रूप इस यज्ञोपवीत को जब पहिना जाय तो यह एक ऐसा प्रेम की और पवित्रता की बीज होगा कि इसके साथ हलकेपन के साथ व्यवहार नहीं किया जा सकेगा। तभी यज्ञोपवीत पहिनना सार्थक होगा। यज्ञोपवीत भ्रम हो जाने पर जबतक दूसरा अपने आचार्य जी से, आभामाध्यक्ष जी से न लेंगे तबतक चैन न मिलेगा। मैं आशा करता हूँ कि अब छोटे बड़े सब ब्रह्मचारियों के यज्ञोपवीत बनाये जाने की व्यवस्था तुम बड़े ब्रह्मचारियों में से कुछ ब्रह्मचारी ले लेंगे, बलि बहार के जो भक लोग गुरुकुल से यज्ञोपवीत मंगवाना चाहें उन्हीं भी दिया जा सकेगा। इससे न केवल हम अपने कुल में यज्ञोपवीत के सरय को पुनरुज्जीवित कर देंगे किन्तु आर्य (वैदिक) धर्म में (अतएव दिन्दू धर्म में) यज्ञोपवीत का जो पवित्र और उचित स्थान है वह उसे पुनः प्राप्त कर देने में अमसर होंगे।

इसी प्रकार दैनिक अग्नि होत्र में हमारी पूरी तमयता प्रकट होनी चाहिये। हवनकुण्ड, हवन के सब यज्ञपात्र साफ सुधरे और ठीक ठीक होने चाहियें; यज्ञपात्रों को हम स्वयं मांजें और शुद्ध पवित्र रत्नों, समिधाहरय हम स्वयं करें या कम से कम यज्ञ के लिये समिधाओं को काट कर शुद्धता से तैयार कर जा कर रखें। हवन सामग्री की सब औषधियां शुद्धता से इकट्ठी करके स्वयं धार्मिक भाव से सूट कर तैयार की जायें। तब हमारा दैनिक अग्निहोत्र कुछ और ही बस्तु हो जायगी। और यज्ञ के लिये घृत! ब्रह्मचारियों को पन्नपूत के लिये ही गोपावन करना चाहिये। यज्ञाग्नि में घृत डालने का यही मतलब है कि हम स्वयं घृत लाने से पहले सूक्ष्म रूप में वायुमण्डल में घृत फैलाकर अन्य सबको घृत खिलायें। पर आजकल पी कदा है? आजकल दूध देने वाली गीए कदा है?

स्वामी रवानन्द जी की 'गोकुलया विधि' पढ़ी। गोर्खा की रक्षा और गालन के बिना हमारा बच्चा नहीं हो सकता। गोपालन के बिना सच्चे अग्निहोत्र का ही प्रारम्भ नहीं हो सकता। गुरुकुल में अच्छी-अच्छी गीएँ हों, ब्रह्मचारियों को सेवा के लिये बांटी गई हों, ब्रह्मचारी कर्तव्य और धर्म समझ कर गोसेवा-सम्बन्धी सब श्रम करें, यज्ञ के लिये शुद्ध पवित्र गो घृत तैयार करें। गीधों का चराना, उनके लिये चाप सानो तैयार करना, उनको दोहन; दही-दूध, मक्खन पी बनाना, यह सब श्रेय पूर्ण परिश्रम के रूप में धार्मिक भाव से किया जाय तो यह वैदिक वायुमण्डल होगा। और यही वायुमण्डल है जिसमें तुम ब्रह्मचारी पालित पोषित हो कर वह बन सकते हो जैसा बनने का आशा, न जानते हुए भी तुम्हारे माता पिता करते हैं। आधो यह वायुमण्डल पैदा करने का हम यज्ञ करें।

(शेष दूसरे लेख में)

### टिप्पणी

पाठकों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि इस उपदेश के उपरान्त यज्ञोपवीत विधि पूर्वक स्वयं बनाने की प्रथा कुछ न कुछ गुरुकुल में चल पड़ी है। गत दीक्षान्त संस्कार तथा नव बालकों को वेदारम्भ तथा यज्ञोपवीत संस्कार में जो यज्ञोपवीत दिये गये थे वे इसी तरह बनाये गये थे। अब आर्याणी पर भी बड़े ब्रह्मचारियों ने स्वयं यज्ञोपवीत बनाये हैं।

यज्ञोपवीत बनाने की जो विधि श्री आचार्य जी ने प्रकाशित की है वह 'गुरुकुल' क इसी अंक में नीचे प्रकाशित है।

—सम्पादक

## “यज्ञोपवीत बनाने” की विधि

[ यह विधि कार्यागन, बोधावन, देवल ऋषियों के; उनको स्तृणियों के विधान के अनुसार है। इसे बँदने के लिये भी मुझे कुछ श्रम नहीं करना पड़ा है। यह मुझे महात्मा टेकचन्द जी “प्रभु आश्रित” की कृपा से आसानी से मिल गई। मैं केवल इसे ज़रा सा क्रमिक और सर्वसामान्य के लिये सुलभ रूप देकर नीचे लिख रहा हूँ—अग्रभय ]

कपास की घुट्टी उतारते समय प्रणव-जाप करता रहे। कपास से बिनौला धुएँ करने समय अम-व्याहृति का जाप करता रहे।

(धुनने कः कोई विधान नहीं दीखा। सम्भवतः देव कपास जैसी किसी ऐसी कपास से यज्ञोपवीत बनाने का रिवाज होगा, जिसे कि धुनने की आचरयकना नहीं होती होगी। आनकल हम धुनने के लिये भी आँकार की ध्वनि वा ऐसे ही किसी अन्य जप का विधान कर सकते हैं। इस विषय में अनुभवही विद्वान् लोग अपनी सम्मति प्रदान करने की कृपा करें )

कातते समय गुरुव-सूक्त का पाठ करना चाहिये। जब दाहिने हाथ की अँगुलियों पर लपेटे तो (भूः) व्याहृति का जाप करता रहे, दूसरी बार लपेटे गिनने में (सुवः) का, तीसरी बार (स्वः) का जाप करे। पलाश-पत्र (दाक के पत्ते) पर उतारे। पुनः इन तीन चर्चों को “ओ३म आपोहीष्ठाः” आदि तीन मन्त्रों से, वा “शभो देवी” और ‘गायत्री मन्त्र’ से पानी के छीटे दे, भिगो दे। और पुनः उसे हाथ से फटफटाये, जिस से पानी सारे सूत्र में पहुँच जाये।

फिर शुद्ध स्थान में जाकर यज्ञोपवीत बनाये। अन्ध्याय के दिन को छाहरकर स्थायाय के दिन (अथान् यज्ञोपवीत बनाने को फलान् काम न समने; आचरयक, गम्भीरतापूर्वक किवा जले बाला कठक्य ममके) प्रातःकाल मध्यह्न और भोजन से पूर्व स्थान, सन्ध्या करके १०८ वा १००० बार गायत्री-जाप करे, तत्पश्चात् यज्ञोपवीत बनाये। यज्ञोपवीत बनाते हुए आरम्भ से अन्त तक गायत्री-जाप करता रहे।

अग्रिम लगाने समय “अयम्बकं यजामहे.....” आदि मन्त्र पढ़कर मन्थ लगाये।

(यज्ञोपवीत के सूत्र के लिये कटा गया है कि वह ब्रह्मचारिणी कन्या वा कर्मकाण्ठी ब्राह्मण वा सुहागिन पतिव्रता की का काता हुआ हो। एवम विधवा की के काते हुए अथवा अन्ध्याय-दिन में बनाये हुए, टूटे हुए, नीचे पड़े हुए और भोजन के पश्चात् निर्माण किये हुए सूत्र का यज्ञोपवीत के लिये प्रहस्य न करे, ऐसा कहा गया है। इस के भाव का प्रहस्य भी हमें पूरी तरह करना चाहिये)

(पृ० ३ का शेष)

२४ आषाढ से २ आश्वय तक की क्षोजन का हिसाब इस लिये नहीं दिया गया कि इस समय कई विद्यार्थियों ने सूत्र के साथ अपनी पूरी २ क्षीजन वापिस नहीं की थी।

धुनाई की दृष्टि से अब विद्यालय स्वावलम्बी हो गया है। प्रारम्भ में एक धुनिया रखा गया था किन्तु उसकी धुनी हुई गई उत्तम नहीं होती थी। जब कुछ विद्यार्थी तकली में सम्तोय जनक प्राति कर चुके तो उन्हें धुनना भी सिखाया गया। १ महीने के अभ्यास से अब दो विद्यार्थी १॥ घण्टे में १० तोला कई धुनकर पूनियाँ बना लेते हैं। जाकिर हुमैन समिति के पाठ्य क्रम में यह गति ६ महीने के अभ्यास के अन्त में ३ तोला प्रति विद्यार्थी प्रति घण्टा बनतायी है। यह स्पष्ट है कि यहाँ की गति उससे अधिक है। इन से विद्यालय की दैनिक आचरयकता पूरी हो जाती है और ये पूनियाँ इतनी उत्तम होती हैं कि कातने वालों को दूर २ के मराहुर स्थानों से आधी जाने वाली पूणियों से ज्यादा बढ़िया मालूम होती है।

## गुरुकुल शिक्षाप्रणाली में बालशिक्षा

### का स्थान

( ले०—श्री गीता विद्यालङ्कार )

( ६ )

यह ठीक है कि आज से ३६ साल पहले जब गुरुकुल की स्थापना हुई थी तभी से इसके जन्म दाता और संस्थापकों के दिग्गज गुरुकुल के प्रवक्ताओं की प्रारंभिक शिक्षा व दूसरे शब्दों में बाल शिक्षा किस प्रकार की हो यह प्रश्न शिक्षा सम्बन्धी अन्य प्रश्नों के समान ही आया था। उन्होंने तब स्वामी दयानन्द जी सरस्वती द्वारा प्रतिपादित वैदिक शिक्षा के पाठ्य क्रम की रूप रेखा को ही अपने ही आधारभूत शिक्षा पद्धति के तौर पर न केवल कबूल किया था प्रत्युत उसी आधार पर ही प्रारंभिक शिक्षा का पाठ्य क्रम निर्धारित किया था। जहाँ तक लेखक को मालूम है चन्द एक वर्षों में ही पुराने प्रणाली के वृष्ट पोषकों तथा नवीन (मिथिन) पद्धति के अभिभावकों में मन भेद प्रकट होना प्रारम्भ हो गया था। जिसका परिणाम यह हुआ कि प्राचीन प्रणाली के वृष्ट पोषकों का अभ्यंगेय यहाँ तक बढ़ गया कि उन्होंने इस नवीन मिथिन पद्धति से असहयोग कर के ही स्वनीत लाम किया। निस्सन्देह यह एक तथ्य है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का जन्म उस प्राचीन वैदिक व आर्यव्यक्त शिक्षण पद्धति को ही पुनरुज्जीविन करने के लिये हुआ था। आर्य समाज की उस समय की सुसंस्कृत अन्तरात्मा की यह पुकार थी जो कि नकालीन स्कूल और कॉलेज की शिक्षा पद्धति के विरोध में एक दम बुलन्द होकर गुरुकुलों के रूप में सुन पड़ी थी। हम यहाँ गुरुकुलों का इतिहास नहीं लिख रहे—तोभी इतना निर्देश कर देना आवश्यक समझते हैं कि गुरुकुल प्रणाली के वृष्ट पोषकों में भी कुछेक दल प्रारंभ से लेकर आज तक विद्यमान रहे हैं। पहला दल तो वह था जो कि धार्मिक मामलों की तरह शिक्षा जैसे समाज सुधारक कामों में भी सरकार का हस्तक्षेप व सरकारी पद्धति व कार्य प्रणाली का किसी भी तरह गुरुकुलों में अनुकरण नहीं होने देना चाहता था। यह दल था पूर्ण असहयोगियों का। दूसरा दल कहना था कि आज वैदिक ज्ञाना नर्ही, परकीयों का राज है, उनकी भाषा-वेश भूषा तथा संस्कृति सम्पत्ता का ही, इस देश में बोल बाला है। गाँव के घाने से लेकर शायमगय की बड़ी कौंसिल तक के बीच के सभी हल्कों में अंग्रेज जाति की बड़ी हुई मशीनरी-उत्स के कल पुर्जे-उत्सकी गति-विधि उत्सकी करामात और गेब नभ कहीं नज़र आता है तो ऐसी अवस्था में हम एक अपना नया राग अलापने लगे हैं—एक पुराने ढाँचे की नई मशीनरी (सो भी किसी बिद्याभान जङ्गल में) प्रतिष्ठापित करने लगे हैं, इसकी कौन पूत्रेगा इस लिये इस नये ज्ञानने और पश्चिम की नई तकनी से अगव हमारे काम की चीजें हमें मिल सकनी हैं तो उन से इनकार कर अपने को अन्धकार में रखना सरसर सुनता नहीं तो क्या है? इस प्रकार पहिले पहल

गुरुकुलीय आदर्श वादियों तथा मिथिन पद्धति के (व्यवहार वादी) वृष्ट पोषकों के बीच जो गहरा अन्तर हो चला था उसे अपने २ विचार धाराओं के अनुसार कुछ कुछ भिन्न रूप दिया गया। परन्तु यह इतन्त सतोष का विषय रहा कि मूलभूत मन्तव्यों में जैसे कि गाँव और नगर से कुछ दूर गुरुकुलों का स्थान होना, विद्योपार्जन के समय आरम्भ में वास तथा प्रवचन और सदाचार के नियम नियमों का अनुष्ठान, वैदिक तथा संस्कृत साहित्य की उच्च विद्या (अध्यात्म विद्या का) का पठन पाठन, गुरु व आचार्य का सहवास प्राप्त होना, माता पिता तथा अन्य, संबंधियों से अलग रहना, आर्यभाषा (राष्ट्रभाषा) द्वारा संपूर्ण शिक्षा का दिया जाना तथा विद्योपार्जन के साथ ही देश, समाज तथा राष्ट्रीय परिस्थिति से पूर्णतया परिचित होने के लिये आर्यभाषा या आंग्ल भाषा में पाश्चात्य साहित्य-दर्शन-विज्ञानादि विद्याओं का अभ्यास भी यथा रुचि आवश्यक होना इत्यादि मन्तव्यों में गुरुकुलीय आदर्श वादियों तथा व्यवहार वादियों में कमी भी क्या मन भेद प्रकट न हुआ।

परिणामतः दोनों ही विचार धाराओं के गुरुकुल अपने २ दृष्टि बिन्दु को लक्ष्य रख अपना पाठ्य क्रम निर्धारित कर कार्य कर संचालन करने रहे। इस सिलसिले में यह भी कहना प्रासंगिक होगा कि प्रायः सभी गुरुकुलों का प्रारंभिक पाठ्य क्रम एक सा रहा। इससे यही निष्कर्ष निकलना है कि वस्तुतः गुरुकुल का शिक्षा विषयक मूलभूत सिद्धान्त एक ही है। अर्थात् गुरुकुल शिक्षा की नींव या आधारशिला तो वही है जो छवि द्वारा प्रतिपादित है परन्तु ऊपरी और बाहरी ढाँचे में फर्क आ गया है। जो कि इस बात का सबूत है कि सिद्धान्त और ध्येय एक होने हुए कार्य प्रणाली में भेद हो जाना संभव है। और कार्य प्रणाली में भेद होना तभी संभव है जब कि आप किसी उपस्थित समस्या को हल करने के लिए समस्या के किसी पहलू को अधिक आवश्यक समझते हैं, किसी पर उपायवह जोर देने हैं और किसी को गौण समझ कर उसे आँकों में झोझल किया चाहते हैं। यह भी कदाचित्त सत्य है कि जो समस्या हमारे लिये गौण हो वही दूसरों के लिये ज़रूरी हो और हमारा उनसे सामान्य समझना दूसरों के दृष्टि में भारी भूल या ज्ञम हो। जो भी हो—परन्तु यह सब भेद आदर्शों का बर्णन पढ़िन कर अपनी २ दृष्टि से ज्ञानने को देखने के कारण होता है। यही कारण है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का आदर्श एक होने हुए भी जब वह कार्य रूप में (मूर्त रूप में) आया तो अपने २ दृष्टि बिन्दु की शाल के कारण भिन्न रास्तों को अक्षितयार कर गया। इसका नतीजा जो कि वस्तुतः शोचनीय है यह हुआ कि सब की समान रूप में बाँचने वाली दुनियावादी पकता न रही और सब संस्थाएँ अंधी बड़ और अक्षतित होने के स्थान में (कमी २) विपट्टकल होने का परिचय देती रहीं। इस बमजोरी को जो कि गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति की नींव को

दीक्षा कर सकती है हमें जल्द से जल्द दूर करना चाहिये। उसका जो सब से सरल और सभ्यतम व्यावहारिक उपाय है वह है प्रारम्भिक पाठ्य क्रम या बाल-शिक्षा की विधि में साम्य लाना।

जिन महाशुभार्थों में श्रद्धि कृत सत्याग्रहप्रकाश, भूमिका तथा संस्कारविधि के यह स्थल ध्यान से देखे हैं जिनमें ब्रह्मचारियों की प्रारम्भिक शिक्षा की पाठविधि प्रदर्शित की गई है उनका पता चलेंगा कि श्रद्धि का दृष्टिकोण कुछ मात्र हुई संस्कृत-विद्या को ही पुनरुज्जीवित करने का था। वह चाहते थे कि प्रत्येक भार्ययुव की शिक्षा का प्रारम्भ वेद माता गायत्री मन्त्र से हो और उसकी दीक्षा का भवसान भी किसी अज्ञातमर वेदों के लिखित को परंपुष्ट करने बालें वेदांत सूक्तों से ही हो। यह पाठविधि अपने आप में आदर्श है और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आत्मा है। परन्तु इस आदर्श को देश काल तथा अपनी शक्ति के अनुसार कार्य रूप में लाने के लिये जिस साधना, तपो-निष्ठा तथा लगन की अपेक्षा है क्या वह हमारे पास पर्याप्त मात्रा में है। यदि नहीं है तो क्यों न हम उस प्रणाली में यथायोग्य परिवर्तन न करके देश कालानुसार उसे इस प्रकार का जामा दें जिससे हम आदर्शवाद को सुरक्षित रखते हुए और प्राचीनता की मर्यादा में विश्वास रखते हुए उस प्रणाली का विश्वास करें जिनसे हम गुरुकुल शिक्षा के नाम से पुकारते हैं।

पहिले यह कहा गया है कि हमारी मौजूदा शिक्षा और बाल तौर पर सरकारी व अर्ध सरकारी शिक्षा प्रायः कर बौद्धिक है। बालोद्यान की कक्षा से लेकर मेट्रिक ( सातक ) बनने तक सूत्र-संक्षेप-गुरु-सिद्धांत-अपवादविधान के (नियमों को जोखने में फिर खर्चा और आलोचना करने में ही सारा) का सारा समय निकल जाता है। इस बांध यदि कुछ हमने क्रियात्मक व व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया होता ह वह भी प्रयोगशाळा तक ही परिमित रहता है। बाहर उसका कुछ भा उपयोग होता हो ऐसा कम देखा गया है। ऐसा हालत न कुटुंब मोर्फेशनल ( पेशेवर ) शिक्षार्थियों के सिवाय जिन्हें अपने पेशे का क्रियात्मक शिक्षा मिला जाने से काम कर जन्द्गी बसर करना आसान हो जाता है—इससे शिक्षार्थियों का प्राजीविका विषयक प्रश्न सभ्यतम जटिल हो जाता है। यहाँ तक कि उन्हें अपना भविष्य एक दम अन्धकारमय दीखता है और वह विद्यार्थी जीवन के उन पड़ाई के वर्षों को खोया हुआ समय समझने लगते हैं। मौजूदा शिक्षा की इस कमजोरी को और अपूरण को दूर करने के लिये ही देश के शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान विद्यार्थियों की शिक्षा को प्रारम्भ से ही उद्योग मूलक बनाने की ओर गया है। शिक्षा विद्वानों को यह तथ्य खूब अच्छी तरह दीखने लग गया है कि किसी भी शिक्षा की उपादेयता उसके व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक होने में है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा का उपादेयता हमारी मौजूदा परिस्थिति में उसके उत्पादक होने पर निर्भर करती है। जिस प्रकार यन्त्र कलाओं की सार्थकता उनके वस्तु सृजन

में होती है उसी प्रकार शिक्षा कपी कला की उपादेयता उसके बाह्यतर सृजन में होती चाहिये। और यह सृजन का क्षेत्र न केवल बौद्धिक और मानसिक स्तर तक सीमित होना चाहिये अपितु इसका विस्तार कला-कौशल अर्थात् शिल्प की मूर्त वस्तुओं को भी अपने अपने अन्तःसमाने वाला होना चाहिये। जब हम 'कला-कौशल व शिल्प' इस प्रकार के शब्दों का एक साथ विधान करते हैं तो हमारा अभिप्राय इन सबके सुप्रयोग द्वारा उत्पादित उन वस्तुओं से होता है जिनमें इन तीनों में से किसी का कम या अधिक अंश विद्यमान हो। आप जानते हैं कि इस प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में न केवल एक प्रकार का भ्रम और धैर्य अपेक्षित है अपितु कर्ता की दक्षता व ऊर्जाशला भी अनिवार्य होती है। और यह सम्पूर्ण क्रिया कला पर यान्त्रिक क्रिया तब उद्योग नाम से कही जाती है। शिक्षा और विशेषतया प्राथमिक शिक्षा के उद्योगी करव का तात्पर्य यही है कि उत्पादन तथा कलात्मय सृजन के लिये ऐसे प्रयोगों नसूनों व परीक्षणों का सहारा लिया जाय जिससे बालकों के अन्तर में निहित हस्त-आवय(उनकी मन और बुद्धि का सहारा लेकर) स्वाभाविकतया ऐसे क्रिया कलाप में फले फूलें जिसके मूल तो ही उद्योग एवं फल और फूल हों वह वस्तुएं जिनकी उपयोगिता का माप मानवीय आवश्यकताओं की तृप्ति प्रद पति हो। (असमाप्त)

## गुरुकुल समाचार

सब कुलवासियों ने आषष्ठी के पवित्र त्योहार को बड़े उत्साह से मनाया। बच्चोंपरीत परिवर्तन के समय भी आचार्य जी ने इसके तीन सूत्रों में निहित तीन शब्दों की याद दिलाते हुए कहा कि हमें इनसे मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिये। इनसे उच्छेद हाना हमारा धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक कर्तव्य है।

छुट्टियां प्रारम्भ हो जाने के कारण महाविद्यालय विभाग के अधिकारियों ब्रह्मचारी अपने २ घरा को चले गये हैं। अर्धराष्ट्र बन्धु भा घोरे २ जा रहे हैं। छोटे ब्रह्मचारी यहाँ पर स्वस्थ लाभ करेंगे। श्री सुक्याविद्याता जी सुद्धी लेकर मस्ती चले गये हैं आज कल उनके स्थान पर भी डाक्टर सत्यपाल जी कार्य कर रहे हैं।

## स्वास्थ्य समाचार

२० योगेश्वर १५ अंश मलेरिया ज्वर, २० रामप्रकाश ५ अंश शोथ, २० रामप्रकाश (बरेली) २ अंश उदरमूल। गत छहसाह उपरोक्त २० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

## गुरुकुल कांगड़ी की प्रसिद्ध औषधियां

### भीमसेनी सुरमा

आंखों को युद्धापे तक सुरक्षित रखने के लिए "भीमसेनी सुरमा" नियमपूर्वक इस्तेमाल कीजिए। आंखों से पाना, बहना, खुजली, कुकर आदि रोग कुछ ही दिन में दूर हो जाते हैं। मूल्य ॥८॥ शोशो

### भीमसेनी दन्त-मंजन

इसका प्रतिदिन व्यवहार करने से दांत मोती के समान सफेद और चमकदार हो जाते हैं। दांतों से खून पोप का आना यन्द हो जाता है। मूल्य ॥१॥ शांशी

### ब्राह्मी बूटी

दिमागी रोगों के लिए बहुत प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होती है और आंखों की ज्योति बढ़ती है। बर्काल, अच्युपक, तथा क्लर्क आदि दिमाग का काम करने वालों को अवश्य ही इसका सेवन करना चाहिए। मूल्य ॥३॥ सेर

### ब्राह्मी तैल

स्नान के बाद सिर पर लगाने के लिए ब्राह्मी का यह तैल बहुत उत्तम है। इससे दिमाग को ठंडक तथा तरावट पहुंचती है और आंखों की ज्योति बढ़ती है। मूल्य ॥१॥ शांशी

### च्यवनप्राश

स्वादिष्ट ! बहिया !! रसायन !!!  
मूल्य १ पाव (१८), आष सेर २८, १ सेर ४)  
एजेन्टों के लिए विशेष सुविधा

पता:-गुरुकुल फार्मसी, गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

प्राच { देहली—चांदनी चौक।  
मेरठ—सिपर रोड।  
एजेन्सियां { लखनऊ—एजेंसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।  
लाहौर— " " " हस्पताल रोड।  
पटना— " " " सतुषादोखी बाँकीपुर।



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य २)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—सामन्वयसूत्र हरिवंश वदालंकार

५५ ]

गुरुकुल कागड़ी, शुक्रवार ५ भाद्रपद १९६६: ३ अगस्त १९५०

[ संख्या २०

## गुरुकुल शिक्षाप्रणाली में बालशिक्षा का स्थान

( ले०—श्री वंश विद्यालङ्कार )

( ३ )

सम्भयतः बाल शिक्षण का यह दार्ढ्या पुरानत बौद्धिक शिक्षा के पुत्र पोषकों को न उर्जे। क्योंकि इस्ने डारा स्मति और मेधा वर्षक वृत्तियां तिनके स्वहागे मे बालक पक्षे बौद्धिक क्षेत्र में स्वप पनपना था अथ वृद्धि होकर व्यर्थ पडी रहेंगी और उनका स्थान बालक की क्रियात्मक वृत्तियां—तस लाघव आदि मे लेंगी। परन्त यह आशाका उल अंग तक नही मे सकती है जिम अंश तक कि बालक की क्रियात्मक वृत्तियां अन्धावृन्ध नकल करने की ओर मे प्रेरित की जायं, तैमे कि बालक की बौद्धिक वृत्तियां भी निरर्थक होवने में । ज्ञानी यात्रिक अनुकरण करने में ) व्यर्थ खेर जा सकनी है। इन दोनों प्रकार के दोषों मे ही बचने के लिये पाठ्यक्रम में यह कहा गया था कि बालक की हानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियात्मक वृत्तियों में स्वहयोग उग्रक करने गहने मे हमें नह मनो-वांछित सामग्रस्य प्राप्त होगा जो कि बाल-शिक्षा का आधारभूत नस्व कहा जा सकता है।

बाल मनोविज्ञान और बाल शिक्षा के बारे में जो भी खोजे अथ तक हुई हैं उन मे एक परिणाम तो वैखटके निकाला जा सकता है—यह कि बालक स्वभावतः कुछ सीखना चाहता है चाहे यह माता पिता या अध्यापक के निबाने से सीखे या अनुकरण करने से सीखे और इस सीखने में भी एक प्रकट रहस्य यह निखता है कि वह सीख जाने पर सीखी चीज का जैसे जैसे उपयोग करना चाहता है। हमने पहिले कहा था कि मनुष्य विचारों और कर्मों का पुनला है और यह बात बालक के बारे में भी उननी ही सचार्थ मे कही जा सकनी है। यही भाव उठता है कि “बाल शिक्षण तो वैसा ही होना चाहिये जिसमे बालक को प्राप्तामी मे अगले और अच्छे विचार प्राप्त हो और साथ ही अच्छार्थ मे कुछ काम करना भी

आज य। अथ रहा बात यह कि वह अच्छे विचार कौने हां कब और किस २ अवस्था में दिये जायं और साथ ही अच्छार्थ और सुन्दरता मे सिखाये जाने वाले कार्य कौने हां, कौन २ से हां और उन्ह किम २ समय में करना सिखाया जाय । यह विषय शिक्षाशास्त्राओं के पाठ्यक्रम के साथ सम्बन्ध रखना है और प्रायः अनुभवी अध्यापकों के अनुभव के आधार पर अथवा उन २ विषयों पर उपलब्ध होने वाली पुस्तकों की सूची के अनुसार संवक्ष किया जाता है। हमारे लिये फिर भी कमेंट की बात तो यह ही रह जाती है कि हम किम आवार भूत ( Basic ) उद्योग व कला कौशल का आश्रय लेकर यह पाठ्यक्रम जारी करें। और क्या इन्हे जारी करने के लिये हमारे पास उपयुक्त सामग्री है? उचित जमाना है, जिमकी बुनियाद पर हम कह सकें कि हम जिस पद्धति को अपना रहे हैं वह पहिले की पद्धतियों मे (बौद्धिक और मानसिक तौर पर) अधिक व्यावहारिक है। और निश्चय ही इस पद्धति में पने हुए विद्यार्थी जीवन की यात्रा और संभ्राम में पहिले से अधिक सफल और विजयी निख होंगे। यह उपरोक्त सन्देश व्यापारिक है और इस प्रकार के सन्देश का उचार भी इस नवीन कदी जाने वाला प्राचीन पद्धति के अनुसार ही प्रयोग जरी होने पर मिल सकेगा। मेरी समझ मे तो गुरुकुल कांड किंसा एक ही रूढ़ प्रणाली की निदर्शक संस्था नहीं है। गुरुकुल का अपनापन गुरुकुल की ठोस स्थाप याद पाश्चात्य विज्ञानों और अर्थजी पढ़ाने मे नहीं मिट सकी तो इसका अपनापन बुनियादी तालीम के हांके की दस्तकारी भी पढ़ाई के साथ हा साथ सिखाने से मिट न जायेगा। प्रभुन तुलनात्मक और व्यावहारिक दृष्टि से देखने वालों को तो इसमे अधिक क्या प्रसन्नता होगी कि प्राचीन जमाने के गुरुकुलों की तरह आज भी फिर से गुरुकुलों में उद्योग धन्धों के सहयोग से तालीम की व्यवस्था हो सकी। कहा जाता है कि प्राचीन जमाने के आरक्षक (गुरुकुलों) मे गुरु अपने शिष्यों को (प्रयः पुस्तकों के बिना ) उनके दर्शन, अनुभव और गवेषणाओं के आधार पर उन्हें आदरमाला ग्राम स्थापदों

के ज्ञान से लेकर उच्चतम महाविद्या की कोटि तक का ज्ञान करा दिया करते थे। यदि उस समय ज्ञान का संपादन उदात्त कला तक पहुँच चुका था तो क्या आधुनिक समय में हमसे इतना भ हो सकेगा कि हम उन मनु० २ बच्चों को जो कोई तो बर्दा और सिन्ध से, कोई मद्रास और गुजरात से, कोई बङ्गाल और पञ्जाब से और कोई बिहार राजपूताना और महाराष्ट्र से, एक एक करके गुरुकुलों में भ्राजुदे हो, सरजू—सुबोध तरीके से, व्यापक—व्यावहारिक दृष्टान्त से अपने पाठों का और आकाशित करें। और उनमें शिक्षा के लिये ऐसी दिलचस्पी पैदा कर दें जिससे उनका वस्तु वस्तु का देखना और अंगुलियों के सहारे ताने बाने म लगे रहना स्वयं ऐसा पाठ सिखा हो जिसका पुनः पुनः दोहराना उनके लिये न केवल मनोरंजन का विषय हो अपितु अभिम पाठों की नई स्तुति और अगली कलाकी सजीव भाँका हो।

यह सब केन सम्पादित हो सकेगा यदि इस दिशा में अपने आपकी लोकर खोज करने वाले कुल्लेक शिक्षाशास्त्री इस आवश्यकीय कार्य में सहयोग न दें। उनका इस कार्य के लिये अपने आपको अर्पित करना इस लिये भी आवश्यक है क्यों कि यही 'वास्तुशिक्षा' का सवाल कुछ ही सालों में (सम्भवतः) इस देश के बाधित प्राथमिक शिक्षा (compulsory primary education) के परीक्षण के रूप में हमारा सामने आये। देश की सहज साक्षरता तथा नियुक्त शिक्षा के अंग्रेजों को जब ह अपने सामने देखते हैं और दूसरी ओर देशवासियों का निरक्षर अज्ञान और दर्दनाक गरीबी तथा बढ़ती हुई गरी आबादी आँसों से सामने आती है तो यह हमसव्या विकट रूप धारण कर लेती है। परन्तु हमें निराशा न होना चाहिये क्योंकि यह समस्याएँ इसी लिये गनी हैं कि इनका ठीक २ हल सोचा जाय और तदनुसार आवश्यक किया जाय। समस्याएँ समस्या बन कर हमारे सामने आती हैं और हमें इनका हल पेश करने को न ही हैं। ठीक यही बात आज हमारी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सम्मुख है। हमारी समस्या यह नहीं है कि गुरुकुल के ज्ञानकों को सरकारी नोकरीयाँ नहीं मिलती? हमारी समस्या यह भी नहीं है कि इस शिक्षाशास्त्र की डिग्री को कौन स्वीकार करता है और कौन ही; यह भी हमारा समस्या नहीं कि हमारा यहाँ के ज्ञानक सरकारी स्कूलों के प्रोपर्टी की तरह क्यों नहीं आँचें? मैं लिज—सोल सकेनाया बकासत कर सकने, परन्तु हमारी असली समस्या तो यह है कि गुरुकुल प्रणाली से जो देश में प्रचलित सरकारी शिक्षा प्रणाली के मुकाबले में अपना शोध और दांचा पेश किया है क्या वह देश और काल, राज्य और प्रजा की मौजूदा हालाँती में अपने पन की छाँह अमिट कर सकेगा। बहुतेरे लोग गुरुकुल का एक परीक्षण करने का वाद रखते हैं—वह ऐसा कह कर परीक्षणों के सन्देहमय परिणाम की तरफ लोगों का ध्यान खींच कर कुछ सशंका आनन्द में अनुभव कर लेते हैं—परन्तु सच का ज्ञान तो मेरे लिये गुरुकुल भी परीक्षण के रूप में न था, न रहेगा; यह तो एक आजमाई हुई विचार, प्रणाली है, शिक्षा की शक्ति

पद्धति है जिसके अनुसार, परा २ बढ़ते से, कमी अस-फलता हो ही नहीं सकती। क्या किसी शिक्षापद्धति को राज्यस्य प्राप्त न होना, उसकी असफलता में कारण सकेगा है? अथवा उसके ज्ञानकों को मोटी तकवाहों की गौरवको न मिलना शिक्षाशास्त्र की नीच को हिला सकेगा है? यह सब बातें शिक्षाशास्त्रों के गौरवको न तो घटा सकती हैं न बढ़ा सकती हैं और मौजूदा हालाँती में उनका मिलना था न मिलना राष्ट्रीय संस्थाओं के लिये कुछ विशेष अर्थ में नहीं रखता। नभ फिर यह बात क्या है जिसको लेकर हम शिक्षा के क्षेत्र में आये हैं और जिसे जनता को दिखाने पर हम इस क्षेत्र में टिकने का वायदा करते हैं। एक शब्द में कहा जाय तो वह है 'गुरुकुल' जो कि भारतीय शिक्षा की आत्मा है, आर्यावर्त देश की मानी हुई शिक्षा प्रणाली है। और है मौजूदा अमाने में शिक्षा का वह आदर्श जिसके अन्दर धार्मिक, आर्थिक और और राष्ट्रीय शिक्षा तानों इस लुभों से समा जाने हैं कि 'गुरुकुल' का अयनायन ठीक २ अलक पड़ता है।

इन शब्दों के लिखने के उपरान्त यह आवश्यक जान पड़ता है कि बालशिक्षा विषयक लेखों को समाप्त करने हुए हम उन सचार्थियों, स्कूलों और व्यवहारों प्रयोगों को खोजें में एक बार फिर दोहरा दें जिसमें इस विषय में उपयोगी सामग्री एकत्रित करने के लिये हमें सहूलियत हो। कार्य प्रारम्भ करने से पहिले जैसे सामग्री जुटाना आवश्यक होता है वैसे ही कार्य की पद्धति—विद्या तथा रूप देना को भी कार्यकर्ता को जानकारी होनी चाहिये। शायद केवल जानकारी होने से भी काम न चलेगा जब तक कि जानकारी के साथ उसका व्यावहारिक प्रयोग भी न सोचा जा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि सब से पहिले बाल मनोविज्ञान तथा बाल शिक्षण कला को सीखे सम्बन्ध हुए शिक्षक तय्यार किये जायँ। बिना शिक्षित और परीक्षित अध्यापकों के बालकों की शिक्षा जैसी (अनि सुगम अनप्यव अनि कठिन) शिक्षा शाल का प्रथम कला का संपन्न होना संभवनीय नहीं। जिस प्रकार व्याम विद्यार्थी विधाना समुद्रकला को प्रथम बाप को सीखने में अपना समस्त कला की सत्यता और संपूर्णता घोषित करन है वैसे ही प्रकार बालोद्यान के अध्यापक के लिये आवश्यकता है कि वह भी बालक के मानस-पटल पर शुभ विचारों की सुन्दर-सुन्दर बाप आँसे, उन्हें समना और सर्वय का और नजाने वाला तुलका तन विन विचरान कराना रहे, तथा स्वयं प्रत्येक बात में उनका उदाहरण बन उन्हें सुविचारण होने और नकली बनने की शिक्षा साथ ही साथ दे।

रह रह कर एक प्रश्न दिल में उठना है कि क्या बालकों को प्रथम कला से हो किसी दस्तकारी का सिखाना लाजमी होना चाहिये? क्या वह पद्धति जिसमें स्मरण शक्ति और मन शक्ति को पुष्ट किया जाना था इतनी तेज है कि उसका समझना योग्य कर दिया जाय। इस का यथाकारण उत्तर तो यही है कि ऐसा करने का अवि-प्राय किसी का भी न होना चाहिये। परन्तु इसे अधिक स्पष्ट करने के लिये यह बताना उचित जान पड़ता है कि

केदरी कृष्ण को मुमसुद्ध में गुरुकुल में प्रविष्ट कराया। इस प्रकार मेरा संकल्प पूरा हुआ। मैं अपने विरक्तमित्र श्री पं० बागीश्वर विद्यालंकार जी से कहा कि मेरे बन्धु के प्रवेश से समाप्तन अगत में गुरुकुल का बड़ी भारी विजय हुई ऐसा आप समझे। क्योंकि यह काशी में रहकर यहाँ के सनातन धर्मी विद्वानों के पास अध्ययन करके उनके भावों से पूरे परिचित हैं।

अस्तु यह तो एक ओर की बातें हुईं। मेरे साहस को उतेजित करने वालों तथा उसके सहायक महापुरुषों का विस्मयान् विदेश कर देना चाहता हूँ। सन् १९३२ ई० में राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण फैजाबाद में स्थायी हुए भाई पृथ्वीचन्द्र जी विद्यालंकार, श्री काशीलिखापीठ के तत्कालीन आचार्य श्री रामगणेश लाल जी, हरिजन गुरुकुल परिषदाध्यक्ष श्री रामगणेश के आचार्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी सरस्वती एवं गुरुकुल के प्रधानाचार्य पं० अमर्यदेव जी महाराज प्रभृति महापुरुषों की कृपा से ही मेरे में इतना साहस आगया कि मैं समाप्तनधर्मी सगुणाय के बीच में रहता हुआ भी अपने अंग्रेज पुत्र को गुरुकुल में भर्ती करा सका। सब के अन्त में दानवीर श्रीमान् भाई देवकान्ध जी सेठ को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिनकी आर्यायक सहायता से श्री केदरी कृष्ण ऐसे ब्रह्मचारियों का प्रवेश गुरुकुल में हो पाया है। और व ब्रह्मचारी गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली से लाभ उठ पाते हैं। इस प्रकार यह संक्षिप्त ब्रह्मचारीके प्रवेश की कथा यहाँ ही समाप्त होती है।

## श्री गोपाल शास्त्री जी का बालक

इसी अंक में ऊपर छपे श्री केदरी कृष्ण का गुरुकुल प्रवेश शीघ्र लेख की तरफ पाठकों का ध्यान खींचना उचित ही है, विशेषतः जब कि सहृदय लेखक महानुभाव ने अपने इस लेख में गुरुकुलसेवक पर मुझ द्वारा सुनाये गये अपने एक पत्र का उल्लेख कर दिया है। यह बात ठीक है कि गुरुकुल के गत वार्षिकोत्सव पर गुरुकुल सम्मेलन के अवसर पर जब मुझे कुछ बोलने के लिये कहा गया तो अनायास ही इन श्री गोपाल शास्त्री जी के उसी समय मुझे मिले एक पत्र का कुछ भाग सुना देना भी, अन्य एक दो दूसरी चर्चाओं के अतिरिक्त, अपने उस समय के कर्तव्य का पूरा करने के लिये अनुकूल हुआ था। गुरुकुलोत्सव पर वेदार्थसंस्कार के समय से पहिले पाँहले इनक बालक के आजाने की प्रतीक्षा थी। पर इनके बालक की जगह इनका एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि ये अपने बालक को जाने के लिये सब तैयारी कर चुके थे कि ठीक बचक पर बालक को उठा लिया गया है। एक पड़यन्त्रों के द्वारा बालक के दृढ़ संबन्धियों ने उसे रातों रात दूसरा जगह पहुँचा दिया था। श्री गोपाल शास्त्री जो डडकर फिर अपने बालक को कई मास बाद अपने गुरुकुल ले आये हैं। उन्होंने शास्त्रार्थ द्वारा भी विजय प्राप्त की, जैसा कि उन्होंने अपने लेख में लिखा है। इस प्रकार जो बालक गुरुकुल में आये,

निःसन्देह उसकी बहुत कीमत है। श्रीमान्य पंडित जी सनातन धर्मी हैं, काशी के एक प्रसिद्ध संस्कृत के विद्वान हैं, वहाँ की पंडित सभा के मंत्री हैं। निःसन्देह किसी समय यह अस्मिन्वक्त बात थी कि काशी के ऐसे सनातन पंडित आर्यसमाज के गुरुकुल में अपने बालक को प्रविष्ट करने का विचार भी करें। पर गुरुकुल के आदर्श का सचाई की ओर श्री गोपाल शास्त्री जी जैसे उदार और सत्य प्रेमी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट न होना भा कब तक बका रह सकता था। गुरुकुल के आदर्श के अनुसार जो धाड़ा सा भी क्रियात्मक अनुसरण धर्मात्क किया गया है उसा का यह फल है। यदि हम गुरुकुल को सचमुच उसके आदर्श की तरफ कुछ भा अधिक अभसर कर सकें तो गुरुकुल में बहुत से उच्छ्रित उच्छ्रित आत्माओं को आकृष्ट करने की शक्ति प्रकट हो सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं। यह तो कहने की जरूरत नहीं कि श्री गोपाल शास्त्री जी ने गुरुकुल की ओ बर्बाई की है उसे मैं अभी स्वीकार नहीं करता हूँ। यह तो श्री शास्त्री जी की सज्जनता और गुणग्राहता की ही परिचायक है। पर यदि इन जैसे सज्जनों का सहयोग मिलता रहा तो हम उस तरफ पहुँच सकते हैं ऐसा आशा अवश्य है। इसलिये इस लेख का भेजते हुये पंडित जी ने जो पत्र लिखा है उसके इन शब्दों को उद्धृत करते हुये "हमारा यह धारणा है कि भारत ही ज्ञान का गुठ है। वही:—

एतद्देशं प्रस्तुत्यसकाराद्यं जन्मनः।

नवं स्वं चरित्रं शिरोनेत्रं प्रथिव्यां सर्वमानवाः।

यह कहने का अधिकारी है। सो आपको गुरुकुल की शिक्षा पद्धति के द्वारा हा ही सकता है।"

आशा करता हूँ इन जैसे विद्वान् पुरुष हमें सदा इसी तरह हमारे कठोर कर्तव्य के प्रति सदा चेताते रहेंगे और परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वे हमें ऐसे भावों से भेजे गये बालकों को संभालने की ओर उनके माता पिताओं का ऊँची आशाओं को पूरी करने की शक्ति हमें प्रदान करें।

—अमर्य

## गीत

जग कैसा हमरा।

दूर चित्तितज तक बिछो मही है, सागर क्षीर भरा ॥

गंग नीर निर्मल है बहना, निर्भर शैल गिरा।

नद नदियां गलबहियां डालें चल वैती लहरा ॥

सीमाओं का निरि अवगुंठन हो जाता गहरा।

प्रात पताका दिग्बधुएं भी बह देतां फहरा ॥

दूध घास उगती है बन में, ग्वाल बाल बर-गौधों को, गाता रहता है चूकल तले परा।

घनो लोक पै घण्टो बजती, घर घर दीप जला।

सोते किसान हैं भाई-प्रिय देते पहरा ॥

"द्विरेफ"

## [ वैश्विण शुद्ध ३ का शेष ]

मेरा और आगे पुस्तक का पढ़ना न हो सका। मेरा दिमाग अनेक वृद्ध पैदा कर देने वाले ख्यालों से भर उठा। मैंने सोचा— 'ओह, अपने मां बाप, भाई बहन, सगे सम्बन्धी और अपने गांव के परिचित लोगों एवं अपने साथ खेलने वाले हम उम्र दोस्तों को जबर्न छोड़ कर, उनके साथ गुंथे हुए अपने सेंद्र के तारों को १४ बरस के लम्बे अर्से के लिये तोड़कर गुरुकुल में प्रविष्ट हुए २ ये बच्चे अपने ही गांव के निवासी के साथ बात चीत करके अपने वियोग के दुःख से दग्ध होते हुए हृदय को झुंझ तमल्लो देने के वास्ते यहां आये थे, मगर बेचारों को वह भी नसीब न हो सका !'

आप जरा उम हृदय की कलना तो कीजिये, जब नन्हें २ बच्चे अपने घरबार को छोड़ कर, दूर इस आचार्य के कुल में रोने हुए प्रविष्ट होने हैं, और अपने को एक दम अपरिचित लोगों के बीच में घिरा देस कर पबरा उठते हैं, तथा झूटयटाने हैं किमी परिचित व्यक्ति को प्राप्त करने के लिये ! किमनी कनशा को उत्पन्न करने वाला चित्र हमारा आंखों के आग्ने उपस्थित हो उठता है ! मने वाद आता है हम भी इसी तरह रोने हुए अपने मां बाप का घर छोड़कर गुरुकुल के दायरे से चिने हुए हम आसमान के नीचे आये थे। उस वक्त हम किना तबूफते थे, मां बाप को और अपने गांव को याद करके ! जब मैं दूसरी श्रेणी में था, तब विद्यालय की दीवार पर टँगे एक चित्र पर जोकि 'चित्रशाला प्रेम पुर्णों का क्षया था, और जिममें भारत वर्ष की प्रचलित मद्राओं की आकृतियां दिव्या रक्सी थी, मराठी के वाष्पों को पढ़कर, अपने घर को याद करके बुरी तरह रो पड़ा था।

पाठक, अपने गुरुकुलीय जीवन के उपकाल में हम लोगों के कोमल हृदयों पर अपने घर वारों से झिड़कने के जो घाव लगे थे, वे इनने बड़े अर्से के गुजर जाने के बाद भी उमी तरह हरे हैं। योही देर के लिये उनपर सूरंड आ जाता है, और हम ममकने लगते हैं कि हमारे वे घाव अब मृत्यु चले हैं, मगर मान के वाद जब फिर दीक्षासभ संस्कार का हृदय उपस्थित हो जाता है, तब न जाने कौन उन घावों को सुख हालता है और हमारे दिल एक नितान्त अमल्ल पीड़ा और निपान से भर उठते हैं।

एक यह विद्वान है, जिमके बड़े भारी पत्थर को अपने कलेजे के साथ चिपटाये हुए हम उस गुरुकुलीय जीवन के नपोमय मार्ग पर आगे और आगे बढ़ते चले जा रहे हैं।

x x x

अब उन बच्चों ने बहुत ही आकुल स्वर में मुझ से पूछा कि '...गये ?' तब मेरे हृदय में भी यह प्रश्न मी २ स्वरों में प्रुट पड़ा 'गये ?'

उस दिन अभी हमारा उत्सव हो रहा था। अकस्मात् किमी ने मेरे कन्धे को हिलाकर कहा, बाहर आओ; नरेन्द्र जी

बुला रहे हैं। मैं बाहर आया। इसी वर्ष के नव ज्ञातक पं० नरेन्द्र जी वेदार्थकार स्वडे हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने कहा, फरमाइये। पं० जी ने अपनी जेब से चमड़े का बटुआ निकाला, उसमें एक छोटी सी ताली थी उसे मेरे हाथ में देते हुए उन्होंने कहा, यह लीजिये, माहित्य परिचय की अलमारी की ताली पकड़िये। मैं जा रहा हूँ।

मैंने ताली लेकर अपनी जेब में रख ली। अगले दिन जब कि उत्सव समाप्त हो चुका था, मैं महाविद्यालय के 'आ' नामक कमरे में घुसा। मैंने माहित्य परिचय की ताकी खोलकर अन्दर पड़े हुए कागजात को देखा। पं० नरेन्द्र जी गत वर्ष माहित्यपरिचय के मन्त्री थे, मैं उनका सहकारी था। उन कागजों में पं० जी का कर्तृत्व बोल रहा था। पं० जी की हस्तलिपि, पं० जी की स्वतंत्रता, पं० जी की विचार शीलता, पं० जी की योग्यता, नीति निपुणता और विद्वत्ता एक २ वस्तु उन कागजों पर अक्षरों के रूप में अंकित हो रही थी। सहसा ध्यान में आया पं० नरेन्द्र जी तो चले गये हैं। उनकी ताकी में धरी हुई वे कागज की पुर्जायें पुकार कर पढ़ने लगीं— 'गये ?'

मैंने अपने हृदय में उत्पन्न होने वाली एक विचित्र प्रकार की बेवैनी से बचने के लिये उस कागज के पुलिन्दे को बांध करके ताकी में ताला लगा दिया।

उसी दिन सांभ को मैं नहर पर घूमने निकला। अकेला तो था ही, नहर के पुल पर बैठे हुए एक साधु ने मुझे बात चीन करने के लिये बुला लिया। मैं उस बहरे साधू से बात चीन कर ही रहा था कि, 'सन्ने कुड गुरुकुल के ब्रह्मचारियों और नव ज्ञातकों का एक छोटा सा समूह आना हुआ दिव्याई दिशा। उनके नजदीक आने पर मालूम पडा, कि, पं० ब्रह्मदत्त जी अपने चौदह बरस के गुरुकुल के अध्ययन काल से हमेशा के वास्ते बिदा ले रहे हैं। ये लोग उन्ही को स्टेशन पर छोड़ने के लिये जा रहे हैं। मैंने कहा, कल एक तो जा पी चुका है, लो मां; यह दूसरा भी चल दिया।

आभम में आकर मैं १ नं० के कमरे में घुसा। पं० ब्रह्मदत्त जी की ताकी तुला हुई थी। मैंने जाकर देखा ताकी का हर एक पन्ना एक सुन्दर रंग से पीले २ बिचकने कागजों से मदा हुआ है। ताकी के किवाड़ों पर पं० जी कुछ लिखा हुआ खंड गये हैं, एक कागज पर उनके हस्ताक्षर है, दूसरे पर समय विभाग सा कुछ लिखा हुआ है। जब मैंने ब्रह्मदत्त जी की ताकी खोली तो अन्दर से फिर बही प्रश्न उठा— '...गये ?' मेरा हृदय बचैत हो रहा था, मैंने तत्काल ताकी बन्द कर ली। योर्षा देर बाद देस देखा, उनका सांड को कैच करके के इरादे में हमारा भेड़ा के किसो साथी ने उस ताकी पर आगना ताला लगा दिया है।

जब बाबल आसमान में मैंडराने २ जल कणों के बोझ से लव जाते हैं, तब पहले पहल एक सूत मांघे की और टपकती है, फिर दो चार सूते टपकती हैं और फिर एकदम बद्दद्द करके भरभर बर्षाशुक्त हो जाती है। इना तरह दो दिन तक एक दो करके गुरुकुल मे बिदा लेने वाले

हम तो शिक्षा के क्षेत्र में परस्परोपकारिता अर्थात् सह-योग के निष्पन्न हो अपना मनन्य स्वामने हैं। जिस प्रकार मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ जिस २ क्षेत्रों में काम करती हुई भी परस्पर एक दूसरे की सहायिका बन कर एक दूसरे के हातद्वय और कर्तव्य को पूरा करती हैं इसी तरह शिक्षा के प्रारम्भ से ही हम ही प्रति-बुद्धि तर्क और स्मृति को हमारे स्वभावगत उद्योगों में सहायक होना चाहिये। साथी भाषा में इसे यों कहा जायगा कि "हमारे विज्ञान और हाथ को एक दूसरे के लिये काम करना चाहिये।" वस्तुतः यही उद्योग मूलक शिक्षा है अथवा शिक्षा का उद्योगी करव है।

प्रथम गुरु 'यज्ञ' अथवा 'वेदि' के प्रतीक द्वारा प्रकृति तथा अस्तुत्यों के मानस्य और परिवर्तन का तथा कृषि, गोपालन, मनुष्यव्यय के धर्म्ये द्वारा और अन्वय, नावादि यज्ञ कल को का परिचय करा कर शिष्य का कक्षाय र शिक्षण करने थे। यद्यपि यह पद्धति अब लुप्त हो खली परन्तु खोज-लगान और परीक्षणों से इसे फिर प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि वर्षों का बुनियादी नाली की योजना में प्रागैतिक कक्षाओं के लिये इसकी रूप रेखा निश्चिन भी करनी गई है।

शिक्षा के प्राथमिक दृष्टिकोण के साथ हमें उद्योग मूलक दृष्टिकोण का कबूल करने में संकोच नहीं करना चाहिये। क्योंकि हमारी गुरुकुल प्रणाली की तरह में यह दोनों ही दृष्टिकोण पहले विद्यमान थे और आज भी जगत् में अध्येतस्यय से इसकी योजना बन सकती है, बशर्ते कि हम इस उद्योग मूलक परिवर्तन का स्वागत करने को तैयार हों।

लेख के बीच में एक संकेत किया गया था कि सब गुरुकुलों की प्रारम्भिक शिक्षा का समीकरण होना चाहिये। उससे हमारा मतलब यह था कि क्योंकि बालकों की शिक्षा विषयक आर्यिक ऋषियान प्रायः एक-सी होगी हैं हम लिये कम से कम वृत्त के मूल या निखले तने की तरह प्रागैतिक पाठ्यक्रम को ठोस (सूयं) रूप में एकाकार करके धोली बद्ध करना चाहिये। इसका फल यह होगा कि हम बालकों की आवश्यकताओं, और कृपाव के अनुसार उन्हें उसमें से उसमें सबक सरल और सुबोध्य तरीके से दे सकेंगे। (यानी किसी सूयं प्रकिया द्वारा दे सकेंगे)।

देश की औद्योगिक उत्पादन शक्ति का जो ह्रास हो चुका है उसे पुनर्जीवित करने के लिये न केवल हमारा ध्यान ही ज वेना परन्तु अपने देश से पुनर्निर्माण में हम सक्रिय हथ बंधा सकेंगे।

शिक्षा शास्त्र की नींव में इस्तेफारती (कना कारीगरी) को बहिन स्थान देकर इससे निरिहय और अनुपातक रक को नवना अस्मान होगा और अपने देश के लुप्तों की लोकोक (लोपांवेयल) बना जिहीनना को दूर करने का यह निम्नाय जा सकता।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का सुदृढ़ और गुरुकुलों को प्रबलता बढ़ाने के लिये यह इस प्रकार का पुनर्गम होगा जिसमें आर्य भाषा की तरह किसी व्यापक उद्योग

धर्म्ये का भी शिक्षा का माध्यम बनाने सहज्यी काँजे और शोध होकर शिक्षा शास्त्र की उस उदात्त कला को प्राप्त किया जा सकेगा जो हम और सृजन के द्वारा सावलम्बी होना सिन्वानी है।

..... गये ?

(लेख- भी चालम्ब)

अभी कल या परमों ही जलमा समाप्त हुआ था। गुरुकुल महाविद्यालय भवन १ नं० कमरे में एक बिलर का नकिया बनाकर लेते लेते मैं एक पुस्तक बांच रहा था। उस पुस्तक के पन्ने में मेरा दिल लगा भी रहा था या नहीं, यह तो मैं ही जानता हूँ; लेकिन इस में कोई शक नहीं कि वह पुस्तक बहुत उपयुक्त थी और विशेष करके जिन्होंने आगे चल कर आर्य समाज का प्रथा क बनना हो, उनके लिये।

इतने में दो श्रोते ब्रह्मगरी उस कमरे के किनाश के नजदीक आकर खड़े हो गये। वे अभी इसी वर्ष गुरुकुल में प्रविष्ट हुए थे, उनका अभी तक संडित सिर इन बात का मंत्रत पेशा कर रहा था। मैंने उनकी ओर देखा; उन्होंने भी मेरी तरफ अपनी नजर की। मैं शायद अपने मंत्र से दो बार शब्द निकालना चाहता था कि उन्होंने ही पूछ लिया, पं० धम प्रकाश जी कहाँ हैं ?

मैंने उम्के सवाल का जवाब न देते हुए खुद उन से पूछा—'तुम चरथावल के रहने वाले हो ?'

'हां' उन्होंने जवाब दिया।

'तो क्या पं० धर्मप्रकाश जी से मिलने आये हो ?'

उन्होंने कहा—'हां'।

गत वर्ष दीर्घावकाश के दिनों में मैंने अपने मित्र पं० सुरीलकुमार जी वेदालंकार के साथ गांवों की पैदल यात्रा की थी, उसी प्रसंग में मुझे अपने आचार्य स्वामी-अभय देव जी को जन्म भूमि चरथावल में भी जानें का सौभाग्य लाभ हुआ था। चरथावल के इन दो बच्चों को देखकर मुझे सहसा चरथावल की मारी मचुर स्मृतियाँ याद आ गईं। हम तब तो दो थे। जब आर्य समाज के प्रधान जी ने हम दोनों से नाम पूछे, और मैंने बतलाया कि मेरा नाम 'आनन्द' है और मेरे साथी का नाम 'सुरील' तो मुझे याद है, उन्होंने हम दोनों के नामों को लेकर एक बहुत ही मीठी मजाक करते हुए कहा था, 'बाह, बड़ी अक्की जोड़ी है, उहाँ सुरील होगा, वहाँ आनन्द का तो होना ही चाहिये।' अपने सामने खड़ी इन दो बच्चों की न रदीक्षित जोड़ी को देखकर मुझे अपनी वह पुरानी बात मरराया तो आई।

और मैंने उन वर्षों से कहा— पं० धम प्रकाश जी तो कल ही सांक का चरथावल चले गये।

..... गये ? मैंने देखा, उन दोनों बच्चों की आँखें पानी से भर आईं और वे अत्यन्त उदात्त एवं स्तान्त मल बनाकर वहाँ से चल दिये।

X X X

[ लेख पूर ६ पर देखिये ]

# गुरुकुल

१५ माद्रपद गुरुवार १९६७

## श्री केशरी कृष्ण का गुरुकुल प्रवेश

[ले.— श्री गोपाल शारदा जी, भुंजी की थकी पंक्ति बना, ककी]

मैं भी काशी विद्यापीठ की प्रबन्ध समिति की बैठकों में प्रसंगानुसार श्री गिब प्रसाद जी गुप्त द्वारा प्रायः गुरुकुल की प्रस्ताव सुना करता था। और बाहर भी अपने विशिष्ट मित्रों से गुरुकुल की प्रस्ताव सुनने में आती थी। जिससे अपने अग्रज पुत्र श्री केशरी कृष्ण को गुरुकुल में प्रवेश कराने का मेरा सङ्कल्प हुआ। उस संकल्प की दृढ़ता उस समय हुई जब मेरे प्राचीन मित्र पं० बागीश्वर जी विद्यालंकार यू०पी गवर्नमेंट द्वारा निर्वाचित होकर संस्कृत कासिञ्ज बनारस की शिक्षा मन्त्रालय समिति का बैठक में मिले, और उससे गुरुकुल की पाठ्य पद्धति के विषय में विशेष बातें हुईं। अब मुझे अपने संकल्प को पूरा करने की विव्स्ता हुई। क्योंकि मेरा परिवार प्राचीन पद्धति के अनुसर सनातन धर्म का आचार्य पुरोहित कुलगुरु हैं। इस अवस्था में अपने अग्रज पुत्र को आर्य समाज के गुरुकुल मरलना में ले जाने एक बड़ी भारी समस्या थी। तो भी मैंने सब प्रकार के त्याग करने पर आकट होकर इस संकल्प को पूरा करने की इच्छा से अपने माध्य मित्र पं० रामनारायण जी मिश्र मिस्त्रिल ड। ए बी कालेज बनारस तथा डा० मङ्गलचंद्र जी शास्त्री प्रिन्सिपल संस्कृत कालेज बनारस द्वारा बचपन के प्रवेशार्थ आवेदन पत्र को प्रमावित करारक नियमानुसार गुरुकुल के आवार्थ जी के पास भेज दिया। साथ ही अपने कट्टर सनातनधर्मी परिवार तथा श्री काशी पढ़त सभा के सर्वस्य विद्वानों से सनातन धर्म एवं आर्य धर्म के साधनगीरव के शास्त्रार्थ में भी प्रविष्ट हुआ। अन्त में सबके सनातन धर्म और आर्य धर्म में कुछ भी अन्तर न देख पड़ने के कारण मेरे मित्रों ने तथा परिवार के विशिष्ट व्यक्तियों ने बचपन को गुरुकुल काँगड़ी में प्रवेश कराने की आज्ञा देदी। एक बड़े कट्टर सनातन धर्मी काशी के विशिष्ट दार्शनिक विद्वान् ने अपना अनुभव बताते हुए कहा कि 'गुरुकुल काँगड़ी हरद्वार के एक अतिनय जातक कुछ दिन हुए मेरे यहाँ यात्रा क्रम से आकर ठहरे थे। उनकी शिक्षा, विद्वान् व्यवहार पढ़ता तथा देश प्रेम सदाचार-परायणता अत्युत्त सङ्गुषों को देखकर मैं मुग्ध हो गया हूँ। और मैं गुरुकुल काँगड़ी हरद्वार का शिक्षा पद्धति का दृश्य से सम्बंध हो गया हूँ।' आप अवश्य जिस प्रकार भी हो सकें अपने बच्चों को गुरुकुल काँगड़ी में प्रवेश कराईं। हमारा वार्ते कहकर उन्होंने मेरे उत्साह को विवृणित कर दिया।

अस्तु अब मेरे सामने मुख्य प्रश्नचर्चा रह गयी बचपे के पितामह ( मेरे पिताजी ) को तथा उसकी माता के समाव वासलय के मोहले सामना करने की। इनके द्वारा ऐसी अडचनें आयीं जिनका समाव सुकर है। मेरे पिताजी द्वारा जिस प्रकार की अडचन लगायी गयी थी, उसको तो गुरुकुल के वार्षिकोत्सव संस्कार के समय उपस्थित सज्जनों ने सुना ही होगा। मैंने उसी समय उस बदमा को निक भेजा था और बयानाचार्य जी ने उत्सव पर उस पत्र को ही पढ़ सुनाया था। बचपे की माता का पुत्रमोह तो गुरुकुल काँगड़ी में आकर विलकुल ऊपर हो गया। उसकी भी बड़ी लम्बी कहानी है। पर उसका प्रति संक्षिप्त स्वरूप यह है कि मैं बचपे की माता को लेकर गुरुकुल पहुँचा। वहाँ कनकल में रह कर गुरुकुल देखने के वास्ते बराबर जाने जाने लगा। बचपेकी माता तो गल्ले में डाले पर या डेरे में भरे समूह तथा परोक्ष में जो कोई भी विशिष्ट व्यक्ति मिले उससे गुरुकुल के विषय में जांच पड़ताल करने लगी। परोक्ष का तो मुझे मालूम नहीं। पर मेरे सामने बितने लोगों से उन्होंने गुरुकुल के विषय में पूछा वहीं एक स्तर से उसकी बड़ी प्रशंसा की। एक ठाँव वाले ने तो गुरुकुल के विषय में अपने अनुभव का वर्णन कर बचपे को भर्ती करने के लिये बचपे की माँ को खूब प्रभावित किया। उसने तो उनका सारा मोहाव्यकार दूर भरा दिया। वह गुरुकुल में पहले नीकर या किसी कारण से उसका सङ्गठन विच्छेद हो गया था। उसी समय मैंने अपने मन में सोचा कि ऐसी संस्थाएँ बहुत ही कम होती हैं जिनकी प्रशंसा बाह्य के निवासी हृदय कोलकर करतेहैं और आसकर वह आनन्द रख करमन्वारी जितक। उस संस्था से सम्बंध नूटगया हो। ऐसी बातें इस गुरुकुल के ही विषय में सुनने तथा देखने में आ रहा है। तभी से बचपे की माता का हृदय विलकुल बदल गया। वह भर्ती करने के वास्ते तैयार होगयीं।

फिर तो—  
 "मनिरूपचने तादृग् व्यवसायोऽप तादृग्।  
 सहायास्तादृग् इया यादृग् भवितव्यता ॥"  
 अर्थात् जो होने को होता है वैसी ही बुद्धि होगी है। मनुष्य उद्योग भी वैसा ही करता है। सहायक भी वैसा ही मिलते हैं। इसी अटल नियम के अनुसार मेरे इस उद्योग में आकारण्य बन्नु साधो नर्मदान्द्वय जी मिल गये। जिनकी छपा से गुरुकुल के विद्यालय विभाग के प्रधान-ध्यायक पं० विद्वान्ध जी से हम लोगों का परिचय हुआ। आपके सपरिवार-साहायिक प्रेम तथा कर्तित्व साकारने बचपे की माँ के मोहाव्यकार को हटाने में सर्व रक्षित का काम किया। साथ ही गुरुकुल के दरद्वि-अजीञ्ज पहलवान जी के सतत प्रयोग तथा उनके परिवार की प्रेरणा से इस कार्य में बड़ी सहायता मिली।  
 अन्त में काशी के प्रसिद्ध विद्वान् डा० काशी प्रविण्ड-समा के सहायक पं० परमान्त शास्त्री जी उस समय कनकल में पहुँच गये थे। वह कट्टर सनातनधर्मी विद्वान् हैं। उन्होंने ओर देखकर बचपे की माँ को प्रेरित कर भी

नवजातकों के बाद, तीसरे दिन एक दम कई नवजातकों की बिदा लेने की बारी आई।

इसी दिन सांक को मेरे मित्र प० सुरशील कुमार जी ने भी मुझे बिदाई का अन्तिम नमस्कार किया। मैं नमस्कार का प्रत्युत्तर नहीं देसका। मेरी आँसूँ भरी हुई थी, डर लग रहा था कहीं ज़रा सा भी इनस्लन: हुआ तो आँसूँ का बांध टूट न जाय और स्वर्ध में सयानों के बीच मुझे शर्मिन्दा होना पड़े। मैं देख रहा था, मेरे मित्र अपने स्वाभाविक चाल में अपने घर कां और सह किये आगे कां तरफ़ डग पर डग बढ़ाते चले जा रहे थे। जबतक वे मेरी आँसूँ से ओकन्न न हो गये मैं उन्हें एक टक देखता रहा। अकस्मान् मेरे मंथ से निकल पड़ा—

हंस न पाया, रो न पाया !

ओह, क्या कुछ रक्सा था, मगर कुछ हो न पाया !

मेरे भगवान, हम अन्तिम क्षण में भी मेरे दिल रूपी बरफ की पेशाब सिलजी पर एक जोर की हथौड़े की चोट करके चला दिये। मैं अपने कलेजे के इधर उधर उड़े हुए टूटे टुकड़ों को हाथ से संभाल ही रहा था कि मेरे एक वर्गबंधु ने मेरा हाथ पकड़ कर खींचते हुए कहा—'चल कबि! चल ज़रा घूमघाम आयेँ।' मैं बेबस उसके साथ चल दिया। मेरा वर्गबंधु भी चुप था। मैं भी नुप था।

रात को भाई महेराचन्द्र जी वेदार्थकार को छोड़ने गया। स्टेशन पर गाँवियों पर गाँवियाँ आ रही थीं और हमारे कुलबन्धु एक २ करके सवार होते चले जा रहे थे। मैं साच रहा था, बाँवूद बरस तक एक साथ रहने उठन बैठन, खाने पाने, हँसने मुस्कराने, खेलन कूदन, लड़ने भगड़ने और राने रकाने वाले आज एक दूसरे से बिछुड़ रहे हैं। भगवान जाने कौन कुछ पुत्र भारत के किस कोने में अपने घरमार्नों के साथ चमक रहा होगा। न जाने इस जाँघन में फिर मिलें या न मिलें। मुझे हठान् थाद आया, दिल्ली के पाबड़ी बाज़ार आर्यसमाज की अथ शताब्दी के बक कोई प्रामोद्य भजनक अत्यन्त मर्म स्पर्शां स्वर में गा रहा था—

ना जान फेर कब मिलेंगे जी !

X X X

यह हमारा दूसरा बिछोह है। हमारे गुरुकुलीय जीवन के आदि म बिछोह, मध्य में बिछोह, और अन्तसाम में भी बिछोह ही है ! मैं आश्रम में लौटकर आया। लगता था संकूर्ण आश्रम मक से पूछ रहा है—'...गयेँ ?'

## मानव !

### मानव यह तू क्या करता है ?

मनुज मनुज का प्यार छीनकर क्यों तू नित्य लुटा करता है ?  
हिंसा—प्रतिहिंसा की उवाला दावानल सी धधकाकर भू-जल-व्योम-विशा संकुल में क्यों रख ताण्डव करता है ?  
लोभ-स्वार्थ-साक्षात्प चिकीर्षा तेरे मन की इच्छा बन।  
देश देश के कोने में फिर छल बल क्योंकर करता है ?  
बिकट भयंकर शस्त्राक्षों से सज कर तेरी सेना।  
दोन प्रजा के आर्तनाद में नगर बिनारा विजय करता है !  
जब से मानव तेरे हाथों प्रभु ने अपने विश्व नियम की-  
बागडोर रखदी है तब से क्या कुछ तू न किया करता है !

“द्विरेक”

### \*\*\* गुरुकुल समाचार \*\*\*

वर्षा ऋतु अपने पूर्ण यौवन पर है। कुलभूमि में चारों ओर हरियाली नज़र आती है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य आसुप्तम है। मनेरिया की मौसम होने पर भी चिकि-  
त्साहाय रोगियों ने विश्वकुल आलो है।

### विश्वहारी रजेशियर की प्रस्थान

महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की एक पार्टी विश्वहारी रजेशियर की यात्रा के लिये नैनीताल पहुंच गयी है। यह रजेशियर पिन्डर-गंगा का उद्गमस्थल है। मन्दा देवी के दक्षिण पार्श्ववर्ती हिम-शृङ्खलाओं में विशिष्ट पर्वतपय फूलों की अनुपम शोभा के लिये यह पिन्डरहारी की उपलब्धा मशहूर है। आशा है यह पार्टी अपने उद्देश्य में सफल होकर लौटेगी।





# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य २)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥]

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २२ भाद्रपद १९६७; ६ सितम्बर १९५०

[ संख्या २१ ]

## ईश्वर और वेद

( श्री स्वामी ब्रह्मचर्य जी के आभारपूर्वक चर्चापरिचय )

शुद्धी अक्षरे परमे व्योमन् यरिमन्देवा अचिन्त्ये निषिद्धः ।  
यस्य ब्रह्मवेद किं श्रुत्वा करिष्यति य इच्छतिदुस्तमे समासते ॥

नदी के किनारे पर देखो कैसे मोटे स्वर से ध्वनि निकल रही है। आगे बढ़कर देखो एक विषय धोती धारण किये, टीका लगाये, वेदपाठी ब्राह्मण सामवेद का गायन कर रहा है। दूसरी ओर यजुर्वेद के मंत्रों के उच्चारण से एक दूसरा तैलंग ब्राह्मण आकाश की गंजा रहा है। तीसरी ओर मधुर स्वर वाला महागुरु ऋग्वेद की ऋचाओं का उच्चारण कर रहा है। हजारों किन्तु इकट्ठे हैं और धम्म! धम्म! के शब्दों से आममान सिर पर उठा रहे हैं। “मन्वयुग आ गया! कैसा धर्म का प्रभाव है? अब संसार में शान्ति क्यों न फैलेगी?” इस तरह के शब्द चारों ओर से उठ रहे हैं। मैं भी इस जोरा के दर्या में नहक रहने! धम्म!! करता हुआ घर को चल दिया। उन में से कई वेद मंत्रों के अर्थ सुने हुए थे। कैसी पवित्र शिक्षा उनसे मिल रही थी! मन ने कहा। तेरा सब प्रयत्न व्यर्थ है। जिन वेदों की घोड़ी सी शिक्षा सुनकर तू आर्ग्य-वर्त को सुधारना चाहता है उसके सम्पूर्ण जानने वाले ये उपस्थित हैं। अब क्या चिन्ता है? तेरे सब प्रयत्न निर्मूल हैं। मैं शान्त हो गया परन्तु जब सार्वकाल को बाजार गया तो एक शराब की दुकान के पास मे गुजरा। तो क्या देखता हूँ तीनों वेद पाठी एक दूसरे की सेहत के जाम पी रहे हैं। आह! क्या घोर कष्ट मन को पहुँचा। वेदपाठी और यह करतूल! आश्चर्य के साथ उनसे पूछा। “महाशय आज प्रातः तुमने क्या उत्तम उपदेश दिये थे, अब तुम्हें क्या हो गया।” सम्भवेशी बोले, “क्या उपदेश? हम तो उजरत (वेतन) लेकर वेद पाठ कर रहे हैं। हमें उपदेश से क्या अभिप्राय?” मन में तरह तरह के विचार उठने लगे। कभी उस पर अविश्वास-कभी उससे निराशा। अर्थात् मनुष्य मात्र पर से विश्वास उठाकर मैं घर पहुँच कर-चिन्ता समुद्र में निमग्न हो गया। मन की अवस्था शिथिल पड़ गई। काम धन्ये से विल उचाट होगा। इसलिये

दूसरे दिन फिर समय व्यतीत करने के लिये बाहिर निकला। क्या देवता हूँ कि जंगल में एक बड़ी मनोहर वाटिका है। उसके मध्य में एक विस्तृत थड़ा है जिस के चारों ओर फुलनाड़ी को बहार आंखों को तरावट दे रही है। थड़े पर एक चौकी पर क्या सुन्दर आसन बिछा हुआ है? और उस आसन पर कैसे विच्य मूर्ति महात्मा बैठे हुये हैं। चेहरे से शान्ति तथा प्रसन्नता की वर्षा हो रही है। होठों पर कैसी सुन्दर मोहना मुस्कान नजर आ रही है! चारों तरफ चुपचाप सैकड़ों आदमी बैठे हुए हैं और महात्मा वेद मंत्रों का उच्चारण, उसका पश्चोद, अन्वय आदि करते हुये कैसी मोठी और प्रभावशालक वाणी में उनका श्रवण समझा रहे हैं। ऐसी प्रचलित भाषा का दृष्टान्त ऐसा उत्तम देने हैं कि मूल त मूल्य भी अपने मार्ग प्रदर्शन के लिये शिक्षा उस स्थान से लेकर जाता है। मोहित होकर मैं उभी स्थान पर बैठ जाना हूँ। कैसे उच्च आचरण का शिक्षा मिल रही है। हिंसा, चोरी, निन्दा, छल, कपट, ईर्ष्या और क्रांथ आदि त्याग के कैसे कैसे उत्तम उपाय बताये जाते हैं। आज तो मेरे आनन्द का सीमा नहीं रहनी। जिस प्रकार फल निराशा हुआ था उस से चार गुणी आशाएँ बन्ध रही हैं। वेदाध्ययन वाले महात्मा के जब दर्शन हो गये तो अब बेड़ा पार है। अभ्यास तथा वैराग्य के कैसे कैसे उत्तम उपदेश सुन चुका हूँ। स्वभाव मानता नहीं कि योग के नियमों से एक क्षण भी अब वञ्चित रहूँ। प्रातः ही महात्मा के दर्शनों के लिये पहुँचना हूँ। आशा थी महात्मा अभ्यास में लगे होंगे। समाधि से आंखें खोलेंगे तो दर्शन करूँगा। परन्तु वहाँ जाकर देखता हूँ कि अब तक महात्मा शौच ही नहीं गये। महात्मा का एक मुकदमा है और उसके लिये चन्दा करने के अभिप्राय से आये हैं। उस समय अक जनो से चन्दा एकत्र हो रहा है। विल पर ऐसी शोच लगती है कि पागलों की तरह बहो से भागता हूँ। संसार से निराशा होकर ऐसे समाज से दूषक होने की सूझती है-जिस में ऐसे आहन्तर भरे जाते हैं। उस समय आगे से श्रुति चले आते दिखाई देते हैं। मेरी अबस्था देखकर उन्हें दया आती है और हाथ पकड़ कर कहते हैं, “कुल वेद उस आर्चनाशी परम रत्नक परमात्मा में निवास करने हैं, जिसके अन्दर

विषय गुण वास कर रहे हैं। इस लिये जो कोई उस परमात्मा को नहीं जानता, वह वेद से क्या कर लेगा और भी मनुष्य उस परमात्मा को जानते हैं वही संसार के दुःखों से बूट कर मुक्त होते हैं।" ऋषि की भाषाम् ने जादू का काम किया। मेरी आँखें खुली और मैंने जाना कि जबतक वेद के स्वामी परमात्मा को नहीं जानता तब तक वेद तुम्हें क्या लाभ पहुंचा सकते हैं? जबतक गुणों को नहीं जानता गुणों को कैसे समझ सकता है। प्रभु मुझे अपनी सेवा में लो।

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ ले० श्री विवेक नर्मदा शंकर त्रिवेदी, अनुवादक—

श्री चर्मराम वैरागहारा ]

### कार्यसाधन दृष्टि

( ६ )

अमेज़ी में जिसे Efficiency कहते हैं, वही यहां अभिप्रेत है। परिश्रमी तथा दुःखिमान होने हुए भी मनुष्य अपने कार्य में Efficiency के बिना सफल नहीं हो सकता। थोड़े समय में अल्प परिश्रम द्वारा व्यवस्था पुरक कार्य करने की दृष्टि को Efficiency कहते हैं। इसे 'कार्य दक्षता' भी कह सकते हैं। गुलामी प्रजा में यह विशेषता नहीं होती। जो लोग आलसी और पराधीन होते हैं वे काम करने में चुस्त कैसे हो सकते हैं? कार्य-दक्षता न रहने से गुलामी आ घेरती है। स्वामन्व्य प्राप्ति के लिये कार्य दक्षता की साधना अनिवार्य है। व्यवस्था और कार्य दक्षता ये दोनों राष्ट्रीय गुण हैं। आज देश भर में डिस्टिन्डि या नियन्त्रण कायम करने की चर्चा है। परन्तु हिरचमय पात्र में विद्यमान विद्यादुग्ध में अभा तक इन दो तत्त्वों का समावेश नहीं हुआ है, इस लिये जब तक ऐसा नहीं हो जाना तब तक योग्य से योग्य भारतीय बालक परदेशों, सत्ता के सामने व्यवहियत रूप से अपना माथा ऊंचा नहीं कर सकता। आजकल विद्यार्थियों में efficiency प्राप्त करने के लिये किसी प्रकार की भावना जागृत होती हुई नहीं दिखाई देती। गुरुकुल के प्रश्नकारियों में भी अभी तक यह भावना विकसित नहीं हुई, लेकिन इस भावना के जनपद के लिये वहाँ अबकाश अवश्य है। ऐसा देखा गया है कि कई बार अन्तिम समय में अचानक कितना काम को करने के लिये ज्ञातक तय्यार हो जाते हैं, दौड़ धूप शुरू हो जाती है और आखिर में अत्यन्त परिश्रम के परिश्रम स्वरूप यह कार्य सम्पन्न होने वाला होता है कि इतने में समय शक्ति धन तथा मित्रों और परिचितों का आवश्यकता से अधिक उपयोग हो जाता है। किसी काम को करने से पूर्व इसकी एक ध्यन-स्थित योजना मस्तिक में बननी चाहिये। बाद में इसका निश्चित कार्यक्रम बनना चाहिये। इसके लिये उचित साधन कहाँ से मिल सकेंगे, यह जानने का प्रयत्न करना

चाहिये और साधन मिलकर अथवा पत्र व्यवहार द्वारा सख्त व्यक्तियों से परामर्श लेना चाहिये। लोगों का सामान्य विचार ऐसा बन गया है कि ज्ञातकों में 'प्रोप्राम' बनाने के लिये आवश्यकता से अधिक उस्ताह होता है। उनकी बात बात में 'प्रोप्राम' शब्द की गुंज सुनाई देती है किन्तु अन्तिम सखतक निश्चय नहीं हो पाता और इसलिये कहीं बनाव्यवहार भावि भी नहीं हो सकता। प्रोप्राम नहीं बनना इसलिये अर्थ में जो अधिक प्रेरणा होती है उसके अनुसार काम हो जाता है। इस कमी की वजह से अगत् के रथ संप्राम में हार की सम्भावना रहती है। मेरे एक प्रोफेसर मित्र ने मुझे एक महीना पहिले अपना प्रोप्राम तय करके मुझे पत्र लिखा था, मुझे वे कितने बजे किस दिन मिला सकेंगे यह भी उन्होंने लिखा था। ठंकर नियम दिन और नियम समय पर उन्होंने मेरे यहाँ आकर अपना कार्य काम पूरा किया। जिले संसार में महान् कार्य करना है जिसका उद्देश्य जनता में अमुक मिशन का प्रचार करना है उसमें इस प्रकार के गुणों का होना विशेष जरूरी है। अनियमितता के कारण और मामूली लगने वाली भूलों की वजह से आवृत्ती लोगों के विश्वास को नष्ट होता है। इससे आतिरिक्त आर्यसमाज के नवनीत रूप जिन ज्ञातकों को व्यवस्था प्रिय तथा कार्यक्षम पाश्चात्य देशों की प्रजा के आगे उपस्थित करना है उनमें भी अगार इन गुणों का अभाव होगा तो बुनिया में यही समझा जायगा कि गुरुकुल शिक्षापद्धति निष्फल है। अमेरी और इंग्लैण्ड की राजनीतिक हालत को देखते हुए आसानी से कल्पना की जा सकती है कि वहाँ के लोगों की efficiency कितने ऊँचे दर्जे की होगी। गुरुकुलों में इस गुण का किस प्रकार से विकसित किया जा सकता है इस विषय में निम्न बातें उपयोगी हो सकती हैं।

( १ ) ब्रह्मचारी की आशु तथा योग्यता के अनुसार कितना कार्य का निश्चय ब्रह्मचारी से कुछ दिन पूर्व करना चाहिये। उदाहरण के लिये अष्ट्यापक ब्रह्मचारियों को आदेश दे कि इस आने वाले रविवार के दिन तुम्हें अमुक अमुक कार्य करना है। इस कार्य को करने के अनुकूल साधनों की बीज का अवसर ब्रह्मचारियों को मिले और नियत समय पर यह कार्य किस प्रकार हो रहा है शिष्टक इस बात का निरीक्षण करे।

( २ ) व्यवहियत पत्र व्यवहार करना ब्रह्मचारियों को सिखलाना चाहिये।

( ३ ) निश्चय करने की शक्ति उच्च हो इस प्रकार के उपायों का अवलम्बन करना चाहिये। ब्रह्मचारियों के सख्तक वलम्बन भरी समस्याओं को रसकर शिष्टक उनसे पूछे कि तुम ऐसे प्रश्नक में क्या निश्चय करोगे। साधनों की शीघ्र प्राप्ति के लिये कितने उपायों का सहारा लेना चाहिये इस की शिक्षा भी अनुभवी बातों द्वारा दी जा सकती है।

( ४ ) आकारिभक कार्यों को छोड़ कर प्रत्येक काम व्यवहियत कार्य काम के साथ हो, ऐसी भावत ब्रह्मचारियों में डलनी चाहिये।

(५) इस गुरु के विकास के लिये किसी विशेष अभ्यास कम की अपेक्षा नहीं है, प्रत्युत दैनिक व्यवहार-शिक्षण में ही ऐसे अवसर उपस्थित करने चाहिये जिन में efficiency की जांच हो सके। उदाहरण के लिये यदि अन्वयय के दिन ब्रह्मचारियों को गुमान ले जाना है और वहाँ उनसे कुछ काम करवाना है तो शिक्षक को सात दिन पूर्व इस विषय की सूचना ब्रह्मचारियों को देने की चाहिये ताकि वे तैयारी आरम्भ कर सकें। जाने से एक दिन पहले ब्रह्मचारियों ने क्या तय्यारी की है उन्हें किन साधनों की आवश्यकता प्रतीत हुई है, इत्यादि बातों की पड़ना करना चाहिये। एक विद्यार्थी शिक्षक को कहता कि वहाँ हमें खाकू ले जाना है क्योंकि फल आदि काटकर बाड़े में इसकी जरूरत पड़ेगी, इसी प्रकार दूसरा कहता कि वहाँ पहाड़ पर चढ़ने उतरने चोट लगने की सम्भावना है अतः दवा भी साथ ले जानी चाहिये। इन बातों से प्रत्येक विद्यार्थी के लक्षण ज्ञात होंगे। नियत म्याग पर पहुँचने के पश्चात् जो कठिनाइयाँ भेजनी पड़ी हो उनके बारे में शिक्षक विद्यार्थियों को समझाए कि अक्षर तुम इस प्रकार बरने तो इन मुश्किलों का सामना न करना पड़ना।

(६) विचारविनिमय आवश्यक है परन्तु यह गपशाप के रूप में नहीं होना चाहिये। आनन्द तथा हंसो मजाक के विशेष प्रसंगों को छोड़कर आत्मों को गम्भीर बनने की आवश्यकता है। जिसे व्यवस्थित रूप में विचार करना आना है, व्यवस्थित कार्य कम बनाने की विधि जिसे मालूम है, व्यवस्थित रूप से साधन का मार्ग जिसे ज्ञान है, जिसे व्यवस्थित रूप से सहायता लेना, आभार मानना आना है उसी व्यक्ति का कार्य व्यवस्थित होना है और उसे 'कार्यदक्ष' Efficient कहा जा सकता है। महान् नेता थोड़े समय में जो महान् कार्य कर सकते हैं उसका कारण उनकी कार्य दक्षता और निर्धारक ब्रह्मि है। कार्य दक्षता के लिये व्यवस्था, कार्य कृत्तला और निर्णायक बुद्धि की आवश्यकता है। इन तीनों बातों के होने पर कार्य सिद्धि हो सकती है।

(७) समय का सच्चा मूल्य समझ सकें ऐसी ऐसी शिक्षा देनी चाहिये।

(८) शक्ति का सन्तुल्ययोग करना सिखाना चाहिये। अधिक शक्ति हो तो उसका व्यर्थ उपयोग नहीं होना चाहिये।

(९) साधनों तथा धन का भी व्यवस्थित उपयोग करना सिखाना चाहिये। जहाँ रथथा लचं करने की जरूरत हो वहाँ कम और ज्यादा लचं न हो ऐसी आदत डलवानी चाहिये। साधनों के उपयोग के प्रकार का ज्ञान कराना चाहिये।

(१०) ब्रह्मचारी क्षिप्रनिश्चय कागि बनें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। अर्थात् वे किसी बात की सोचने २ ही क्षण न करवें।

(११) प्रमाद के स्थान पर परिश्रम, गपशाप और रिक्तवादा के स्थान पर विचार विनिमय की आदत डालनी चाहिये।

(१२) छोटे २ काम प्रत्येक परिस्थिति में निश्चित समय पर किए जा सकें ऐसी आदत ब्रह्मचारियों में डालनी चाहिये। उनमें कार्यक्रम निश्चित करने के स्वभाव को विकसित करना चाहिये।

(१३) स्वोन्मत्त न बनकर अर्थात् न केवल अपने आप में ही मस्त रह कर पास बातों के लिये भी बाधों तथा कार्य से काम करना सिखाना चाहिये। दूसरे लोगों से सहायता की आशा भी इसी रीति से हो सकती है।

उक्त गुरुओं का ब्रह्मचारियों में समावेश होने पर उन की कयं शक्ति विद्युत्सूत्र के समान प्रकट हो सकती है।

## गीत

अपना मस्तक सहजाता हूँ—

—ये चीज कल्पने कर मेरे—

मलना मस्तक सहजाता हूँ।

धीरे धीरे चलती अगुली,

बुझ जाये शायद आग जली,

कितना असफल-भ्रम ज्वाला को पँसुरियों से दुहराता हूँ।

अपना मस्तक सहजाता हूँ।

उड़ उड़ आती रुखी बलकें,

पीड़ा से डँक जाती पलकें,

जल जल उठते लोचन मेरे-दृग्जल से और जलाता हूँ।

अपना मस्तक सहजाता हूँ।

अन्तर में घोर बंबदर है,

अकुलाये प्राणों का स्वर है,

बैठा-एकाकी बिलर पर-गाता हूँ, मन बहलाता हूँ।

अपना मस्तक सहजाता हूँ।

—श्री सुरेन्द्रमारा

## एकाकी

सारे उपवन में एक फूल !

इसके साथी सब दूर कहीं—

हैं गुरु मूल हो मूर कहीं,

वह हाय अभंगा ही ऐसा भरने की विधि भी रहा भूल !

यह देख रहा सब और विकल,

अपना संगी, पर हाय विकल,

वे यहाँ कहां, वे बकी देर से चाट रहे हैं पके धूल !

हैं वही अभी भ्रमराबलियां,

पर नहीं और खिलनी कलियां,

सब रस इस से ही लेते हैं सामोव इसी पर भूल भूल !

यह करता है अभिसार वहां

है खड़ी मुरझाकर आंध

इसके पीछे से पढ़ने को रह जायें- दो चार शूल !

—श्री विराज !

# गुरुकुल

२२ भाद्रपद शुक्रवार १९६७

## गुरुकुल में वैदिक वायुमंडल

[लेखक—श्री चावर्षी रामचंद्रजी]

(२)

वैदिक वायुमण्डल के एक पारख का कुछ विश्वनासक वयान मैंने (पहले लेख में) किया। यह हुआ वैदिक वायुमण्डल का उसके कर्मकाण्ड को दृष्टि से, उसके बाह्य रूप व वेह का दृष्टि से वर्णन। पर वैदिक वायुमण्डल का जो ज्ञान की दृष्टि से, उसके आन्तरिक रूप व आत्मा की दृष्टि से दूसरे पारख का वर्णन है उसका भी आवश्यकता है, उसका भी कुछ दिग्दर्शन कराने का यत्न किया जाय इसकी आवश्यकता है। नहीं तो गुरुकुल के वैदिक वायुमण्डल का वर्णन अधूरा रहेगा, बल्कि निर्जीव रहेगा। जैसे आत्मा के बिना देह निर्जीव (मृत) होता है वैसे वैदिक सत्यज्ञान, आत्मिक प्रकाश के बिना, (एक शब्द में वैदिक आध्यात्मिकता के बिना) वैदिक कर्मकाण्ड निर्जीव होगा। पर आध्यात्मिकता का वर्णन करना कठिन है। कर्मकाण्ड का तो कुछ वर्णन कर दिया, आध्यात्मिकता का कैसे वर्णन करूँ? यह तो अनुभव का विषय है। इस विषय में बोलने से बहुत काम नहीं बनता।

एक महातुभाव प्रेम के साथ और सच्चे हृदय से मुझ से कहते थे 'आप पौंड्रिचरी रहकर आते हैं उसका कुछ लाभ हमें भी पहुंचना चाहिये'। मैंने उन्हें कहा कि 'वह तो पहुंचना ही है'। विश्वासभा के सदस्य महातुभावों को तथा दूसरे गुरुकुल के प्रेमियों को जो मैं यह कहता हूँ कि श्री अरविन्दाभयम में जाकर मेरा रह आना गुरुकुल के ही लाभ के लिये होता है मो यह बात सर्वथा ठीक है। पर यह मैं कैसे समझाऊँ? बहुत मे लोग मुझ से योग के बारे में पूछते हैं। वे समझते हैं कि मैं कुछ जानता हूँ पर बताता नहीं हूँ। पर 'गैसी कुछ बात नहीं। योग तो मेरी समझ में आत्म विकास का नाम है, अन्तर में आत्मा के विकसित होने का नाम है। जैसे प्रवृत्ति में बोया हुआ बीज उगना है, स्वयं विकसित होता है, विकसित होना उसका स्वाभावगत धर्म है, इसी तरह प्रत्येक मनुष्य के अन्दर अन्तरात्मा रूपी बीज विद्यमान है, जो भगवत्प्रेम (भगवान के लिये प्रेम) के रूप में कुछ न कुछ अंश में सबको अनुभव भी होता है—क्योंकि असल में किसी का भी प्रेम शिष्या हुआ अन्त में भगवन्त्वेम ही है— उसका स्वाभावतः विकसित होना ही योग है। इसे ही आध्यात्मिक उन्नति भी कहते हैं। यह बीज धरेक में किसी न किसी रूप में उग ही रहा है, उगने का यत्न कर ही रहा है। तो इसमें लेने, देने, बतलाने, सिखाने की कुछ ऐसी बात ही

नहीं। यह (विकास) तो होता है; योग तो स्वयं होता है। और वह हो रहा है।

और मेरी आध्यात्मिक उन्नति हो और दूसरे को न हो ऐसी कुछ बात की संज्ञाशरा भी नहीं है। मेरी अपनी उन्नति तो कुछ चीख ही नहीं। मैं धीरे से उगता हुआ नहीं हूँ। अर्हभाव में मुझ से, वेर तक नहीं रहा जाता, जब अर्हभाव में आता हूँ तो दम पुटने सा लगता है और उसने निकलने के लिये व्याकुल हो जाता हूँ। अतः मेरी उन्नति तुमसे कुछ भिन्न नहीं है। विशेषतः जब कि मेरा अर्हकार इस (मेरे) व्यक्ति से हटकर संपूर्ण गुरुकुल को स्वयं करने वाले एक रूप में प्रायः रूपान्तरित हुआ रहता है, तो कम से कम तुम्हारी उन्नति के साथ—यदि सारे जगत् की उन्नति के साथ नहीं—मेरी उन्नति तुम्हें हुई है। अतः प्रकाश और ताप आदि की क्रियाओं स्वभावतः निकलती ही हैं और पाल के लोगों को प्रभावित करती हैं, उसी तरह इस आध्यात्म में ('मुझ में') प्रेमान कहीं तो ठीक है) जो आत्मज्ञान जलनी है उससे आध्यात्मिक समीपना रचने वाले सब व्यक्तियों को उसका ताप, आंच और प्रकाश पहुंचना ही है। उसमें 'मेरा' कुछ नहीं, मेरा परोपकार या सेवा कुछ नहीं। वह तो होता है। और तुम सभी में वह अति अल्प अल्प रूप में प्रकट हो रहा है, प्रकाशित हो रहा है और इस तरह हम सब में—विशेषतः जो हम सब परस्पर निकटता बन्धक अभेद का संबन्ध रखना चाहते हैं उन हम सब में—इन अतिन्यो के परस्पर नाना तरह से संबन्ध होने का एक खेल चल रहा है। तो इनमें हमने करना धरना क्या है। हाँ, तुम शिष्य रूप में सुनने बैठो—और गुरुकुल तुम शिष्य संबन्ध द्वारा परस्पर ज्ञान-विज्ञान करने का ही मो माध्यम है—ना यह कहूँगा कि यदि तुम दो तीन बातों का क्याल रखा तो शिष्य के रूप में गुरु के संबन्ध द्वारा जो आध्यात्मिकता तुम पा सकते हो उसे अधिक मे अधिक पा सकोगे। वैसे विकास तो तुम्हारा अपना ही होना है और स्वयं होना है, यहाँ उसमें केवल सहायता देने वाला ही।

(१) ऊपर उठने की सच्ची अभिकांक्षा, आन्तरिक आभाप्सा हीनी चाहिये। ऊपर जानकी जितनी ही प्रवृत्त होगी उतनी ही अधिक लाभ होगा। ऊपर का जीवनशैली प्रकाश मिलेगा। तुम्हारे भगवत्प्रेम के बीज के पूरे रूप में उग सकने के लिये ही जहाँ स्वाभाविक ऊर्ध्वगति चाहिये, वह ऊर्ध्वकारमय प्रवृत्ति को फाड़ कर ऊपर स्वयं प्रकाश में आ निकले—अच्छाकार के पूर्व का फाड़ कर उपायक प्रकाश में आजाय—यह चाहिये, वहाँ उसे और ऊपर बढ़ने के लिये भी सुख प्रकाश निन्दर रूपसे मिलते रहना चाहिये। इसके लिये और सब अथर उधर के आचारण हटा कर उसे भगवान के विषय प्रकाश में खुला हुआ—बिनाकुल सुखा हुआ—रहना चाहिये। पोषे को असला जवन स्वयं से ही मिलता है—स्वयं से उस बीज का ही कोई अक्षय हुआ पानिष्ठ संबन्ध है जिस से वह प्रवृत्ति के ऊपर बढ़ा पड़ा हुआ भी फूट कर ऊपर मुझे की तरफ ही उगने लगता है। तो ऊर्ध्वगति और प्रकाश के गति अल्प-अल्पको सर्वथा खुला रखना यह पहली बात हुई।

(२) फिर इस भगवत्प्रेम के बीज को पौधे के रूप में सफलता पूर्वक उगाने के लिये यह भी आवश्यक है कि जो अन्य पास फूस उग रहा हो उसे लगातार उखाड़ कर फेंकने का काम-निर्लाह-जारा रहे। भगवत्प्रेम के प्रतिकूल और विरोधी जो भाव हैं—जैसे स्वाध्यायियों से प्रेम आदि—उनका दृढ़ता पूर्वक त्याग आवश्यक है।

(३) और फिर तुम्हारे बाज का मजदूर होना सब से पहले जरूरी है। तुम्हारा आधार (मन प्राण और शरीर) इनना मजदूर होना चाहिये कि वह आध्यात्मिक शक्ति को धारण कर सके, सहन कर सके। सूय का किरणों भी जब सहन नहीं होती तो पौधे को जला देती हैं, सुखा देती हैं। पानी की सिचाई भी जो सहन न हो वह पौधे का पुष्ट करने की जगह गला देती है। आध्यात्मिक शक्ति, योग का शक्ति बहुत भारी शक्ति है। उसे बरतना आसान नहीं है। वह कमजोरों के बस का नहीं। उसे सहन न कर सकने के कारण ही गड़बड़ी, उन्माद या अन्य योग बाधाएं होने लगती हैं। अतः अल्पी बहुत सी शक्ति पाने के लोभ में पड़ कर अति नहीं करना चाहिये। जैसे कमजोर कोल को दूध पीना में सुसाने के लालच में उसे अधिक ठोका जाता है तो वह अन्दर नहीं सुसता किन्तु मुष्ट जाती है, शरीर सर्दी नहीं सह पाना तो सिकुड़ जाता, मूड़ जाता है, उसी तरह सब देहापन, कुटिलता, झूठ, असत्य कम-जारी के चिन्ह हैं। जिसके अन्दर इनना बल नहीं है कि सचाई का मुकाबिला कर सक, कुटिल न हो जाय, सच्चा रह सक उस बाग का नाम नहीं लेना चाहिये। वह यदि आध्यात्मिक शक्ति पाने का यत्न करेगा तो अत्यय विपत्ति में पड़ेगा। तुम में से बहुत से झूठ तथा बोलते हैं जब वे यहां के नियम का पालन नहीं कर सकते और फिर उसे छिपाना चाहते हैं। सत्यनिष्ठा पौधे के लिये पर्याप्त बलवान होने का सब से पहला योगचान है।

तुम कहोगे कि फिर निर्बलता कैसे हटाये। इसके लिये स्वाभाविक सहज उपाय है समपण। समपण के विषय में न पहले काफी कह चुका हूँ। समपण करने से शिष्य न जिस शाक्तशाला मंदिर (गुरु)—अन में वे परमेश्वर ही हैं—के प्रति जितना समपण किया है उतना ही उससे उसमें शा.क, बल प्राप्त होने लगता है। स्वभावतः उसका बल बढ़ने लगता है और वह परिपुष्ट होता जाता है। तुम तो अभी गुरुकुल के सामान्य नियमों को ही सच्चे भाव से पूरे हृदय से पालन करके देखा कि तुम्हारी शा.क कतना बढ़ती है। अस्तु;

अभिप्राय यह कि तुम में आध्यात्मिक उन्नति पाने की चाह होना चाहिये। गुरुकुल इसी काम के लिये है। यहां जो तुम वेद पढ़ने हो और वेदांग के रूप में अभ्यस्य बहुत कुछ पढ़ने हो वह सब तुम्हारा आध्यात्मिक विकास करने के उद्देश्य से ही है। वेद आध्यात्मिक ज्ञान के पुस्तक हैं। वेदों का अंतिम अर्थ आध्यात्मिक है। ता गुरुकुल में वै.क-वायुमण्डल होने का मतलब केवल कुछ वेदपाठ होना, अग्निहोत्र होना और वेदों के नाम से सब काम किये जाना नहीं है। किन्तु उस सबके मूलमें सच्ची आध्यात्मिकता की

भावना होना जरूरी है। यत्न न वेद किम्बवा किरम्यति तो गुरुकुल में सच्चा वैदिक वायुमण्डल तब कहा जायगा जब कि यहां क सब गुरु आध्यात्मिकता को महत्व देते हों, आध्यात्मिक सम्पत्ति से सम्पन्न हों और इसे दिनों दिन और बढ़ाने के यत्न में हों; यहां क सब ब्रह्मचारी आध्यात्मिकता के पिपासु हों और यहां के सब कमचारी भी भगवत्पण्य युद्ध से आध्यात्मिक कल्याण के लिये ही यहां सेवा कार्य करते हों।

## हैदराबाद में आर्यसमाज प्रचार

(लेखक—श्री ०० विद्यालंकार जी वेदालंकार)

हैदराबाद रियासत में सबसे पुरानी समाज धारण में है। इस समय वास्तविक इस समाजकीदृश वा.हें/यह तो में जानता नहीं। किन्तु अद्युत पं० आर्यभानु जी से पवित्र हुआ था। आप धारण के ही रहन वाले हैं। रियासत में प्रचार कार्य में बराबर हाथ बटान रहते हैं। आप के कारण समाज की हालत अच्छी होगी यह स्वतः विश्वास होता है।

धारण के बाद दूसरा नम्बर आर्यसमाज तुलान बाजार का है। इस समाज की हालत इस समय रियासत में सभी समाजों से अच्छी है। आर्य नेताओं में अग्रणी पं० विद्यालंकार जी विद्यालंकार इस समाजके प्रधान हैं। रियासत का राजधाना तथा सभ्य बड़ शहर में यह कायम है।

सत्याग्रह के बाद सबसे पहला जलसा आर्यसमाज की ओर से तुलान बाजार समाज का किया गया था। पहला जलसा होने के कारण आर्य तथा मुसलमान दोनोंही उत्सुक थे। उनकी इच्छा के अनुसार जलसा बहुत ही शानदार हुआ। २०, २५ हजार की उपस्थिति प्रतिदिन होती थी। परन्तु इनमें बड़ा संकट होने पर भी जलसे में शानदार शान्ति विराजती थी। जिसके कारण सभ्य एवं सुशिक्षित आर्य भाइयों की प्रबन्ध कुशलता एवं शान्ति प्रियता का गौरव बहुत बढ़ जाता है। पं० बुधदेव जी विद्यालंकार के व्याख्यानों ने जलसे में जान फूंक दी थी। इस उत्सव का प्रभाव शहर पर बहुत पड़ा।

इस समाज के बाद कानामगज, शांति बरडा, पय सिकन्दराबाद उत्सव बहुत शानदार हुए। अर्य समाजों के उत्सवों की भी अपनी २ विशेषता थी। सिकन्दराबाद में दो उत्सव हुए। आर्यसमाज राधन बाजार के नव-युवकों ने अपने प्रथम साल का उत्सव मनाकर बहुत ही सहास का काम किया था। इस उत्सव ने बड़े आर्य समाज तुलान बाजार को भी फीका कर दिया था। प्रथम साल होने के साथ साथ कार्य कर्ता नौजवान थे। फिर शांतिबरडा के प्रसिद्ध उत्सव के साथ साथ ही मना रहे थे। परन्तु तो भी हार्जिरो के २५ हजार से कम न थी। इस उत्सव का जान प्रसिद्ध बुधदेव जी विद्यालंकार ही थे। आपके व्याख्यानों से आर्यसमाज के

प्रति फैलाने वाले गलत कहानी का बहुत ही प्रभावशाली उत्तर दिया गया।

इन जलसों की धूम से रियासत के शहरों में आर्य समाज का प्रचार और प्रभाव बहुत बढ़ गया। कार्यकर्ता श्री म श्रीजुद्ध धुन के साथ देहात जा जागृत हो जायें इस दृष्टि से श्रीयुक्त पं० बंसीलाल जी मन्नी झा० प्र० स० निजाम राज्य ने देहातों की ओर भी स्थल करना आवश्यक समझा। देहातों में आपके परिश्रम से लुली हुई समाज अर्थात् दशम में है। उनका स्थान इसलिये भी आपको होना स्वाभाविक था। अतः देहात प्रचार का प्रोग्राम बना।

यह इस समय जनगणना के सम्बन्ध में होने वाली मॉडिंग में शामिल होने के लिये शोलापुर चला आया था अतः शोलापुर उपदेशक विद्यालय में प्रहर गया। राजगुरु पं० पुण्ड्र जी शास्त्री इस विद्यालय के आचार्य हैं। पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय प्रचार एवं विद्यालय की देखभाल का कार्य वृत्तियं करते हैं। आपके परिश्रम के कारण विद्यालय बहुत तरक्की कर रहा है। पं० त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री तथा पं० महेंद्र प्रताप जी शास्त्री बड़े परिश्रम पूर्वक अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। उपदेशकों में अर्थात् रवि और प्रतिभा का विकास हो चुका है। एक साल की दृष्टि से हालत बहुत ही शानदार है। पं० गणेशीलाल जी ने संस्कृत भाषण की प्रोत्साहन केरु विद्यालय की तरफ़ी के लिये बहुत उत्साह पैदा कर दिया है। पं० अयध बिहारी लाल जी एम. ए. पी. एल. की सहायता से विद्यार्थियों ने कई व्याख्यान नोट लिखे थे। आप स. सं. देशिक सभा देहली की ओर से निजाम राज्य में नियुक्त हैं। आप मौजूदगी हालत की दृष्टि से उपदेशक बहुत हा योग्य साबित होंगे। इस विद्यालय का सारा खर्च सार्वदेशिक सभा देहली उठाती है। इस विद्यालय में पढ़ने वाले नवयुवकों का उत्साहयुक्त भावना से रियासत में आर्य समाज के प्रचार की दशा का स्थल करने हुए मैंने कई दिन बिना दिये।

इसी समय 'सना' के मन्नी श्रीयुक्त बंसीलाल जी ने मुझे देहात प्रचार का प्रोग्राम दिया। जिसका वृत्तान्त अगले लेख में लिखूंगा। देहात प्रचार की दृष्टि से यह रियासत काफी सफल है। आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रजा तथा उपदेशक इस प्रान्त की दशा तथा कठिनाइयों से मुकामला करने देखेंगे, कि उनके प्रान्त की क्या हालत है?

## इंडियन प्रेस की योजना

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद शरीर ही एक योजना को कार्यान्वित करने जा रहा है। इस योजना के अनुसार विविध मनोरंजन विषयों पर ३००० पुस्तकें छापी जायेंगी। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य ८ आने होगा। इस योजना का सारा हिन्दी-भाषी भारत वर्ष उत्साह के साथ स्वागत करेगा। हमारे देश की जनता अधिक मूल्य की पुस्तकें खरीदने में

असमर्थ है, इसलिये इंडियन प्रेस, लिमिटेड की इस योजना को अवरय ही मारी सफलता मिलेगी। भारत के सभी विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि भारतीय राष्ट्रीयता की प्रगति का यही मार्ग है कि भारतीय जनता के ज्ञान के भण्डार में वृद्धि हो। यद्यपि भारत में सिर्फ ५ की सदी जनता साक्षर है; परन्तु इस ५ की सदी जनता के भी अल्पसंख्यकों में ही राष्ट्रीयता की प्रगति में योग देने के लायक योग्यता है। जबतक इस जनता को जीवन की विविध समस्याओं का परिचय उचित शिक्षा अथवा पुस्तकों-द्वारा नहीं दिया जाता, तबतक हम इतनी उन्नति नहीं कर सकते, जिनी करना चाहते हैं।

इस प्रकार प्रकाशक का यह उद्देश्य कि भारत की अर्द्ध-शिक्षित जनता को शिक्षा दी जाय, परोक्षरूप से राष्ट्रीय प्रगति में भी योग देगा।

प्रकाशक ने पुस्तकों की जो सूची प्रकाशित की है, उससे यह प्रकट होता है कि यह ग्रन्थमाला बहुत ही उपयोगी होगी। आशा की जाती है कि प्रत्येक घर में, प्रत्येक लाइब्रेरी में, प्रत्येक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में और प्रत्येक सहयोग-समिति में इस ग्रन्थ माला को पुस्तकें खरीद कर रखनी जायेंगी, जिससे जनता इन पुस्तकों को पढ़े और अपने ज्ञान की वृद्धि करे।

प्रकाशक का विश्वास है कि पुस्तकों के अग्र्यन्त सन्ने प्रकाशन की ओर बहुत-से माहक आकर्षित होंगे, क्योंकि उन्हें अब तक अधिक मूल्य के कारण विविध विषय का पुस्तकों का परिचय प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला है अतः अब वे इस सन्ने प्रकाशन का स्वागत करेंगे। हमें आशा है जिस प्रकार भूत-काल में 'इंडियन प्रेस लिमिटेड' ने अपनी योजनाओं में सफलता प्राप्त की है, उसी प्रकार वह इस योजना में भी सफलता प्राप्त करेगा और इस तरह वह हिन्दी-साहित्य की उन्नति में और अप्रत्यक्ष रूप से देश की राष्ट्रीय प्रगति में सहायक होगा।

## सारस्वत सत्र

किसी भी शिक्षण संस्था के विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनीयों को नीचे के किसी भी एक या अधिक विषय पर 'मौलिक' शुद्ध तथा कम से कम १५ फुलस्टेप कागजों पर हिन्दी व गुजराती भाषा में निबन्ध लिख कर अधिक से अधिक १६९ कालिक सुशी ५ तक (१ नवम्बर १६४०) "प्रम चन्द्र जी मगन लाल पटेल, मोरी सखीवा बाड, सरस्वपुर अमदावाद" के पते पर भेजने का सर्वप्रथम निमन्त्रण दिया जाता है। उत्तम निबन्ध लेखकों को क्रमशः ३०, २० तथा १५ के प्रथम मन्थम तथा साधारणरूप के पारितोषिक दिये जायेंगे। विजेता लेखक को इच्छानुसार सुवर्ण पदक (मोहन लाल सुवर्णपदक, मगन लाल सुवर्णपदक, तथा जमना बाई रजत पदक), मनोनीत पुस्तकें या निरीक्षण-समिति द्वारा निष्पन्न की गई धार्मिक तथा तात्विक पुस्तकें दी जायेंगी। निबन्ध के विषय निम्न हैं।

(१) वेदाङ्गसंस्कार (२) वेद ईश्वरीय ज्ञान है (३) आर्यो शिक्षा (४) गीता का महत्त्व (५) विवाह-

संस्कार (६) वास्तविक धर्म (७) भक्ति का स्वरूप (८) योगेश्वरकृष्ण (९) बर्षधर्म (१०) आश्रम धर्म (११) हिन्दु धर्म की महत्ता।

निरीक्षक समिति के सदस्य निम्न हैं:—

- (१) आचार्य चन्द्रकान्त जी वेद-वाचस्पति, रिसर्च-स्कॉलर।
- (२) प्रोफेसर जेठालाल चीमनलाल स्वामीनारायण पत्र. ए. आहमदाबाद।
- (३) प्रोफेसर केशवदेव जी, गुरुकुल कांगड़ी।
- (४) श्रीपुत्र दिनेश नर्मदाशंकर त्रिवेदी सूरत।

निबन्ध लेखक महानुभाव निबन्ध के ऊपर अपना नाम स्थान वगैरह साफ लिखें। प्रथम तीन पारितोषिक विजेताओं की सूचना समाचार पत्रों से दी जावेगी, अन्य लेखकों को भी एक दो पुस्तकें भ्रम के उपलक्ष्य में दी जावेंगी।

### निबेदक

प्रेमचन्द मगन लाल पटेल  
सरसपुर मोठी सालबीवाड;  
आहमदाबाद।

### गुरुकुल स्वास्थ्य समाचार

प्र० राजकिशोर ४ अंशों में २६मज्जर, प्र० चन्द्रकेतु ४ अंशों की विचमज्जर, प्र० प्रेमस्वरूप ३ अंशों की विचमज्जर, प्र० वेद-भूषण ४ अंशों की विचमज्जर, प्र० महेंद्रपाल ५ अंशों मोक्ष। गत सप्ताह उपरोक्त प्र० रोमी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

### गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

जन्माष्टमी का उत्सव ५३६ समारोह से मनाया गया। प्रातःकाल बृहहृयक हुआ और गीता का पाठ हुआ। तत्पश्चात् श्री १०० धर्मवेद जी वेदवाचस्पति का उपदेश हुआ। रात्रि के समय कवि सज्जेलन हुआ, जिसमें बाहर से साहित्य रत्न श्री सुचीन्द्र जी ए० एम पचारे थे। इनकी कवितार्थ ब्रह्मचारियों ने बहुत पसन्द कीं।

श्री.सेठ सुगल किशोर जी विद्वत्ता के आदेशानुसार बृहत् जगवाये जा रहे हैं। वृत्तों के गमले पक्के करवाये जा रहे हैं। श्री सेठ जी ने गमलों के लिये २००० प्रदान किये हैं। इसके अतिरिक्त गुरुकुल के भवन आर्य स्थापत्य कला को अनुसार परिवर्तित करने के लिये जो कार्य गत वर्ष शेष रह गया था, उनकी तरफ से अब पूरा करवाया जा रहा है। इस कार्य के लिये यह संस्था उन को धन्यवाद देती है। अब रजतजयन्ती के अवसर पर आर्य-जनता यहाँ पधारिगी, तो उसे बह गुरुकुल बिलकुल नये रूप में दिखाई देगा।

श्रुतु आज कल बहुत सुहावनी है। अमी तक मने-रिशा का कोई प्रकोप नहीं हुआ है। बाब्रमासिक परीक्षा १० सितम्बर से प्रारम्भ होगी और विजया दशमी से पूर्व समाप्त हो जायगी।

### श्री कृष्ण जन्माष्टमी

ब्रह्मचर्याश्रम वैद्यनाथधाम

ता० २६-८-४० को योगीराज श्री कृष्ण जी के जन्म-पलक में एक सभा का आयोजन श्री स्वामी नाथ जी "साहित्याचार्य" के समापतित्व में हुआ। सर्व प्रथम वेदमन्त्रों द्वारा प्रार्थना की गई। श्री १० विश्वनाथ जी शास्त्री, श्री १० प्रयागव्रतजी डाक्टर एवं अन्य गण्य मान्य व्यक्तियों के विद्वत्ता पूर्ण भाषण हुए। आश्रमस्थ ब्रह्मचारियों ने उनके प्रति ब्रह्माञ्जलियां अर्पित कीं। समापति जी के भाषणोपरांत शांति पाठ द्वारा सभा विलजित की गई।

प्र० आशुतोष पाल  
मन्त्री "विद्यापरिषद्"

### भूल संशोधन—

गत १६ अगस्त के अंक में प्रक की निम्न अशुक्तियां रह गई हैं पाठक उन्हें सुख करने पड़ें:—

पृष्ठ ५, कालम १ पंक्ति ११ में 'दिसाओं' की जगह 'अहिसाओं' क्या है। इसी तरह पृष्ठ ५ का. २, नीचे से तीसरी पंक्ति में 'कर्म' की जगह 'कम' और पृष्ठ ६ का. १, पंक्ति ५ में 'पहुंच जाता है' की जगह, 'पहुंचता है' क्या है।

## गुरुकुल कांगड़ी

की

# प्रसिद्ध औषधियां

### भीमसेनी सुरमा

आंखों को बुढ़ापे तक सुरक्षित रखने के लिए "भीमसेनी सुरमा" नियमपूर्वक इस्तेमाल कीजिए। आंखों से पानी बहना, खुजली, कृकर आदि रोग कुछ ही दिन में दूर हो जाते हैं। मूल्य ॥८॥ शीशी

### भीमसेनी दन्त-मंजन

इसका प्रतिदिन व्यवहार करने से दांत मोती के समान सफेद और चमकदार हो जाते हैं। दांतों से खून पीप का आना यन्द हो जाता है। मूल्य ॥१॥ शीशी

### ब्राह्मी बूटी

दिमागी रोगों के लिए बहुत प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होती है और आंखों का ज्योति बढ़ती है। वकील, अध्यापक, तथा क्लर्क आदि दिमाग का काम करने वालों को अवश्य ही इसका सेवन करना चाहिए। मूल्य ॥३॥ सेर

### ब्राह्मी तैल

स्नान के बाद सिंग पर लगाने के लिए ब्राह्मी का यह तैल बहुत उत्तम है। इससे दिमाग को ठंडक तथा तरावट पहुंचती है और आंखों की ज्योति बढ़ती है।

मूल्य ॥८॥ शीशी

### च्यवनप्राश

स्वादित्वात्

बद्धिया ॥

रसायन ॥३॥

मूल्य १ पाब १८), आष सेर २८), १ सेर ४)

एजेन्टों के लिए विशेष सुविधा

पता:-गुरुकुल फार्मसी, गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

प्रांच { वेदखी—चांदनी चौक।  
मेरठ—सिपर रोड।

एजेन्सियां { लखनऊ—एजेन्सी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।  
लाहौर— " " " " हस्पताल रोड।  
फटना— " " " " मछुआटोली बाँकीपुर।



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य - )

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मूल-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहस्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार २६ भाद्रपद १९३७; १३ सितम्बर १९३०

[ संख्या २२

## परमात्मा की प्राप्ति

( ए० ० भी एवा० कृष्णानन्द जी के प्रकाशित चर्चापत्रक से )

तदेजानि तन्मीजानि तद्गुरुरे तद्वन्दितके ।  
तदन्तरदय सर्वस्य तद्गु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

आपके पांव तले एक भारी कोय गड़ा है पर यदि आपको उसका ज्ञान नहीं तो आपके निकट होते हुये भी यह आपके बहुत दूर है। आप चाहे मारा संसार खोज डालें, जब तक कि उस विरोध स्थान को नहीं खोजेंगे वह कोय आपको प्राप्त नहीं हो सकेगा। आपको गिरह में कुछ धन पड़ा है परन्तु आपको उसकी याद भूल गई है। इधर उधर बहूनेरा खोजते फिरते हैं पर जब तक आप अपनी गिरह में हाथ नहीं डालते आपको वह धन झुप नहीं लगता। इसी प्रकार परमात्मा यद्यपि सारे ब्रह्माण्ड में अन्दर बाहर एक सम व्यापक है; सुरज, चन्द्र, तारे, ग्रह, नक्षत्र कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहां कि हर समय विद्यमान न हो। यहां तक कि आकाश भी उनके अन्तर्गत है इस लिये वह निकट से निकट हैं परन्तु यदि आपको उनके स्वरूप का ज्ञान नहीं तो आप चाहे मारा ब्रह्म ण्ड खोज डालें आपको उनका चिन्ह न मिलेगा। इसी अवस्था में वह आप से दूर से दूर होंगे। किन्तु जब आपको उनके स्वरूप का ज्ञान हो गया तो आपको उनके दर्शन अन्दर ही अन्दर हो जावेंगे। कारण कि वह किसी स्थान विरोध में स्थित नहीं है अपितु चट बट में व्यापक है। यदि आपके हृदय-नेत्रों का अन्वेषण दूर हो गया और ज्ञान चक्षु सुल गये हैं तो आपको उन्हें दू डूने के लिये इधर उधर जाने की आवश्यकता नहीं है आप उन्हें हर समय अपने आत्मा के अन्दर प्रायः नेत्रों से देख सकते हैं। जैसा कि एक कवि ने कहा है :-

सिंह के शीशे में है तस्वीरे धरं,

जब जरा गर्वन सुझाई देखकी।

यद्यपि वह षण् षण् रूप से असली भाव को प्रगट नहीं करता परन्तु तात्पर्य यह है कि वह सर्वमित्र हमसे

दूर नहीं है किन्तु हमारे हृदय के अन्दर विद्यमान है। जिसमें हम फनके दर्शन ज्ञान नेत्रों द्वारा जैसे ही पा सकते हैं जैसे कि एक वर्षा में किसी मित्र का विष देव्य मकने हैं। इसी भाव को दर्शनों के लिये ऊपर कही श्रुति में बताया गया है कि वह परमात्मा भूखों से जिनके आत्मिक चक्षु अन्धे हैं दूर से दूर है। वह युगों पर्यन्त भी यदि उसे ढूँढने फिर और सारा ब्रह्माण्ड खोज डालें तो भी उनको प्राप्त नहीं हो सकता। परन्तु जिनके ज्ञान नेत्र खुले होते हैं उनके लिये वह निकट से निकट है। वह कहीं भी जायें परम पिता को अपने अन्धर विद्यमान पाते हैं। इस लिये एक विद्वान ने कहा है कि परमात्मा एक बृहत् है जिसका केन्द्र सब जगह है परन्तु दायरा कहीं भी नहीं। अहा! ज्ञान और अज्ञान में कैसा भारी भेद है। एक सत्वयोगी से भटकना है और दूसरा लक्ष्य तक पहुँचना है। एक नास्तिक बना देता है, दूसरा परमात्मा के साक्षात् दर्शन करा देता है। इसी लिये कहा गया है कि “शुद्धे ज्ञानात् मुक्तिः” कि ज्ञान से ही मुक्ति होती है।

अतएव भक्तजनो! यदि सचमुच परमात्मा के दर्शन करना चाहते हो, यदि उन सुन्दर स्वरूप की अद्भुत क्षति के दर्शन पाने की अभिलाषा है तो बेरोक कर्मों द्वारा अपने अन्तःकरण के अन्वेषण को दूर करके ज्ञान अवस्था को प्राप्त हो कि विद्यमान तुम्हारे आत्मिक चक्षु सुल कर उस सर्वान्तरात्मा के जो तुम्हारे ममीप से ममीप है दर्शन पा सको। कल्याण का मार्ग एक मात्र यही है। नहीं तो युगों पर्यन्त भी तुम्हारा उधार नहीं होगा। जन्म जन्मान्तर के चक्र में भूलते भटकते और ठीकरे खाते फिरते! परमदेव!! हमारे हृदय अन्वेषण से आकाशवित है, अविद्या ने हमारे आत्मिक चक्षु अन्धे कर रखे हैं। विषय विकारों ने हमारे अन्तःकरण की उच्छलता को हर लिया है। हम हर प्रकार से अशुद्ध मशीन और चलहीन हैं। तुम हमारे हृदयों को अपनी व्योति से प्रकाशित करो कि हमारे ज्ञान नेत्र सुल जायें जिससे हम आपको जो कि मया हमारे सङ्ग रहें हैं जान सकें।

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ से० भी निमेष वर्मा संकर विवेकी, अनुवादक—

भी धर्मराज वैद्याचार्य ]

व्यवहार कुशलता

(१०)

आज जनता में सामान्यतया ऐसी राय पड़ी हुई है कि गुरुकुल वाले अव्यवहारी होते हैं। दृष्टि बिन्दु में मेरे होने के परिणाम स्वरूप ऐसे अभिप्राय प्रकट होते हैं। बुनिया का बड़े से बड़ा राजनीतिक भी व्यवहार कुशलता का दावा नहीं कर सकता। उससे भी गम्भीर भूत होती हैं। व्यवहार शाब्द बहुत विशाल और भिन्न प्रकार का है। यह तो समय के गुजरने के साथ अनुभव प्राप्त करने मनुष्य व्यवहार कुशल बन सकता है। जीवन में जिस व्यक्ति के लिये 'धर्म' मुख्य ध्येय होगा वह धर्म के लिए प्राण देता है धन का त्याग करता है और वैभवं को त्याग देता है तो वैभवं शालियों के अभिप्राय से वह धर्ममत्ता अव्यवहारी सिद्ध होता है। कारण यह है कि सुखभंगुर वैभवं का इच्छुक अन्त में फायदे में है या शाश्वत सिखातों को प्राप्त करने वाला धर्मत्ता फायदे में है। इन दोनों दृष्टिबिन्दुओं को समझने की आवश्यकता है। मुझे तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि परिश्रमी प्रामाणिक, सत्यवादी और सुशील आत्मक की आर्थिक जीवनशैली कैसी भी हो परन्तु वह सच्चा व्यवहार कुशल गिना जाता चाहिए। बालक, भूत, दूसरों को ठगने वाला आत्मो समाज्य दृष्टि से चाहे व्यवहार कुशल हो परन्तु वह तो सच्चा अव्यवहारी है। शास्त्रों का पढ़ा हुआ जब अव्यवहारी बनता है तब उसकी "बदीया दारो" इस उपनाम से टीका होती है परन्तु मैं कहता हूँ कि अर्थजी पढ़ कर जो अव्यवहारपना हमारे नवजवान दशात है उनका क्या कहा जाय। मेरे व्यक्तिगत अनुभव म अ-श्रे मोरुसल और शिशुओं में भी मैंने अव्यवहार पना देखा है, परन्तु हम अपनी प्रिय चीज में सदा उत्समता देलना चाहते हैं इस कारण गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के फल स्वरूप आत्मकों में व्यवहार कुशलता होती चाहिए ऐसी इच्छा करें इसमें कोई गलती नहीं है। यह बात ठीक है कि जिस समाज में काय करना है उस समाज के प्रचलित शिक्षाचार के नियमों का जल लेना चाहिए। कतनी ही सामान्य बातें होती हैं कि जिनका अज्ञान अज्ञान गिना जाता है। उदाहरण के लिए किसी ने किसी कार्य को करने के लिए हमें कहा हो तो उस कार्य की समाप्ति होने पर वस का उपकार न मलना अज्ञान गिना जाता है। किसी का पन आया हो उसका उत्तर न देना, किसी में प्रेम, से कुछ खूबनायें दी हो उनका अनुग्रह से स्वीकार न करना, कुछ अर्थकार विधाना आदि व्यवहार में असम्यता है और उससे उसमें अव्यवहार पना है ऐसा कहना चाहिए। व्यवहार कुशल बनने

वाले को चाहिए कि वह सामने वाले का अनुभव, कामने मुझे को परिचित करे। सामने वाले का समाप परचना सीधे लेवे। हमारे लिए दूसरे नहीं है परन्तु हम दूसरों के लिए हैं इस महान् गुण के कारण मनुष्य सच्चा व्यवहार कुशल बन सकता है। बचने समय बोलते समय, जमाई लेने समय, ज्ञान करने समय और और देखे ही जीवन की मंगुल के समय देश और काल को समझ कर शिक्षाचार के अनुसार बर्ताव करना चाहिए। ऐसा कुछ एक मुद्रियां गुरुकुल के शिष्यों म स कुछ एक में देखने में आता है इसका मुख्य कारण मेरी समझ में यह है कि वर्षों तक ब्रह्मचारियों को समाज से अलित रखा जाता है।

**बाह्य सम्पर्क:**— गुरुकुल में पढ़ने वालों को एक मिश्रित समय तक समाज में बिल्कुल अलित रखने की जो प्रथा गुरुकुलों में पड़ी हुई है वह हानिकारक है। इस में ब्रह्मचारियों का Four Feelings मन्त्र हां जानी है। उसमें से पारिवारिक भावनाओं में अलित कोमलता नष्ट हो जाती है। वह हिमालय के एकान्त में अलित शिष्य के समान उच्च बनता है, रम्य बनता है परन्तु जैसे शिष्य पर धनपति पैदा नहीं हो सकता या प्राची विहार नहीं कर सकते वैसी प्रकृति वाला व्यक्ति नीरस बन जाता है। हिमाच्छादित शिखर को तक कर सिर झुक जाता है परन्तु उसपर चढ़ने हुए मनुष्य को थकावत लगता है। बाह्य सम्पर्क न अलग रह करके ब्रह्मचारी समाज में एकांतो सा बन जाता है।

सम्बन्धियों के सुख और दुःख में सतिव हमदर्दी लेने का भावनायें लुप्त हो जाती हैं। यह मचुर बाणों या सुन्दर लेखनी से सदाशय्यों को या समाज को सेवा करने का उदाहार इशाना है परन्तु जब यह कार्य लेने का मौका आता है तब वह अव्यवहारी बन जाता है। इस प्रकार के अव्यवहारीपने का सच्चा कारण बाह्य सम्पर्क का अभाव है। ब्रह्मचारियों को समाज के दूषित वायुमण्डल स पूर्वक रखने को 'गवना गवत नहीं है परन्तु जो ब्रह्मचारी समाज का भाग है, समाज म हा जिसक भविष्य का निर्माक होना है उस समाज में अलित अशुद्ध या भुटे त-वां को, मगर, इस और कोयलों को पहचान लेने का अवसर उसका देना ही चाहिए। भरा इस विषय में गुरुकुल शिक्षाप्रणाली के अज्ञान और अव्यवहारकन बालों के साथ बहुत ब-द-व्यवहार हुआ है। एक पद एसा कहता है कि ब्रह्मचारियों को गुरुकुल वाले के समय समाज के दूषित वायुमण्डल स अलित रख कर एकदिक की तरह ब्रह्मचारी पैदा करने चाहिए, परन्तु यह बात सिद्ध नहीं हो सकी है; यह परिणाम बिल्कुल निश्चल गया है। बचपन में बालक की ज तोय माधना (Sexual Impulse) उन्नय म नीति विरोधी नहीं होती। उसके आगे प्रता: या बहन का प्रेम बारी २ से सम्मुख आते रहना चाहिए। प्रारंभिक बाह्य सम्पर्क या सदाशय्यों के सम्पर्क के परिणाम स्वरूप यदि कोई विधैसा प्रभाव ब्रह्मचारियों में प्रतीत होगा तो गुरुकुल के आन्तरिक सम्पर्क

के परिणाम स्वरूप वह विष उतर जायगा। इस प्रकार बारी २ से प्रयोग होने से वह ब्रह्मचारी अभ्यासी हो जाता है और उसको अच्छा मुरा पहचानने की क्षमता पड़ जायगी। बुनिया में किनासा बनाने है और किनासा अच्छा होना चाहिए यह ब्रह्मचर्य ही समझ सकेगा। हम भ्रातृ प्रथास की क्रिया से जीने हैं भ्रातृ में श्रीफिलजल लेने हैं परन्तु इस श्रीफिलजल का उपयोग समुद्र रक्त को शुद्ध करने में करते हैं और फिर प्रथम के रूप में कार्बो-निक एसिड गैस निकालते हैं। यदि हम अकेले श्रीफिलजल को ही लेते रहें तो हम भी नहीं सकते और यह प्रत्यवहार-पना कहा जाता है। इसी तरह से समाज या समष्टियों से अलग रहने की जो प्रथा गुरुकुल में जारी है वह प्रथा भी बालक के जीवन को हानि प्रदान करने की है। गुरुकुल के संस्थापकों को क्यों ऐसा मान लेना चाहिए कि समाज में मगर प्रच्छ ही हैं और गुरुकुल का वातावरण केवल "मन्दनवन समाज" है। एक बालक को प्रथम प्रायः के दिनों में समष्टियों के पास भेजने से ब्रह्मचारियों के जीवन म्योन में भय पानी की वृद्धि होगी। माना पिता इस विद्यार्थी के सम्पर्क में आने से ब्रह्मचारियों किमती उन्नतिवा अभ्यास की उसे प्रवृत्त करने हैं। यह तो गुरुकुल के अभ्यस का 'परीक्षा काल' बन सकेगा। वहाँ तक बालक की प्रवृत्ति न समझने वाले माता पिता उन्हें ज्ञातक होने के बाद किस तरह से आगे प्रेरण दे सकते हैं यह समझ में नहीं आता। इस तरह से तो बड़ा खराब है। कि प्रारम्भ के २-३ वर्ष की भरी बाद ब्रह्मचारियों को दीर्घावकाश के दिनों में उनके माता पिता के पास भेज देना चाहिए। इससे संस्थापकों के साथ गुरुकुल का और ब्रह्मचारी का सम्पर्क बढ़ेगा। गुरुकुल की वृद्धि संरक्षक लोग बना सकेंगे और संरक्षकों की वृद्धि गुरुकुल के संस्थापक सुचिन्त कर सकेंगे। इस तरह से ब्रह्मचारी का तुलना लाभ होगा। उसमें कोमलत आयेगी, लचीली सुभवा करने का स्वभाव बनेगा, सहिष्णुता भाग्यी और वह Social being बन सकेगा। सुधा गुरुकुल के ब्रह्मचारी दीर्घावकाश के दिनों घर जाते हैं फिर भी इनमें विशेष दोष आ जाते ही ऐसा देखा नहीं गया इसके विपरीत विवेकी और लम्बे नदीकों में आगे बढ़ने हुए गिने जाते हैं।

जीवन संघर्ष में विजयी होने के लिए जीवन की चट्टानों से दूर रहने में बहादुरी नहीं है परन्तु उसके अग्रगण्य होने में है। आज जो निष्कलता देखने में आती है उसका मूल कारण यह है। संघर्षियों के परिश्रम में आने से परस्पर के विरोधों स्वभाव होने हुए भी उसमें एक रस होकर किस तरह रहा जाता है वह सहिष्णुता का स्वभाव सीका जाता है। और माता पिता को उसके सिद्धांतों के विकास का परीक्षण करने की गुरुकुल के अध्यापकों से मानक में क्या वृद्धि की है यह देखने का अवसर वहाँ तक नहीं मिलता। इससे माता पिता और गुरुकुल ये दोनों बिना उत्तरदायित्व वाले होकर बालक का विकास इन प्रकार का करते हैं कि वह न तो गुरुकुल का धनता है और न गुरुकुल का धनता है। उसमें विरोधा-

भासी गुणों और-गुणों का अविभाज्य होता है वह सहनशील होते हुए भी असहिष्णु, प्रेमो होने हुए भी कठोर, व्यवहारों होने हुए भी अग्रव्यवहारी, सेवा भाव होते आलसी, क्षामी होते हुए ब्रह्मानी मर्जीर होते हुए भी उपला, सरल होने हुए भी अभिमानी, व्ययंमो हाने हुए भी असयनी, कार्य करने की लगन होने पर भी कम न करना पड़े ऐसी इच्छा बाला, बन जाता है। ऐसे ज्ञातक अग्रव्यवहारी गिने जायें इसमें क्या नमीनता है। चौदह वर्ष तक गुरुकुल-सुधारक वष मानने वाले ज्ञातक भी जाति बन्धन में पड़ गये इसका दूर का कारण भी यही है। गुरुकुल और कुल इन दोनों के बीच में खाड़ा (gulf) रहने से ऐसा प्रभावित होता है। एक लक्ष विद्यार्थी फिदमन लाल बन जाता है। अमुक ब्रह्मचारी किस जाति का मैं इसमें निश्चित समय तक इतिहास रहने वाले ज्ञातक को दूसरे ही लक्ष में जात पात के पद पढ़ने पढ़ने हैं। इसमें जो वायुमंडल पैदा होता है उसके परिणाम में स्नातक अग्रव्यवहारा मने जाते हैं इस लिए गुरुकुल और गुरुकुल के बीच की गूँथला जोड़ो जय यह जरूरी है। इनका ही नहीं परन्तु यह अग्रव्यवहारी है। एक छोटा सा पिता की प्रारंभिक और काम चलाऊ माया और थोड़े समय के विवेक वायुमंडल का प्रभाव और दूसरी और सारे जीवन में ये कामल भावनाओं का अभाव और जीवन के विरोधी तथ्यों के बीच में लटकना इन दो में से क्या पसन्द करना यह गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रत्येक विचारकों पर छोड़ना है।

### श्री पं० दीनदयालु जी शास्त्री कैद में

जनता को यह भली भाँति विदित है कि गत २८ अगस्त को पं० दीनदयालु जी शास्त्री को देवबन्द में न्यायमान देने के कारण वृक ३८ के आश्रित पुलिस ने गिरफ्तार किया था किन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ना है कि हमके बाद से अभी तक श्री शास्त्री जी के साथ स्याधारण कैदियों का-सा व्यवहार किया जा रहा है। डा० फूल-सिंह जी चकील ने हाकम परगना का ध्यान इस और दिलया, परन्तु उसने जिन्ना मजिस्ट्रेट के यहाँ दरखास्त देने को कहा। शास्त्री जी के भाई परिवार महित सहा-रनपुर पहुँचे। उन्होंने भी हाकम परगना के इजलास में शास्त्री जी के साथ उच्च श्रेणी का व्यवहार करने का दर-खास्त दी, जिस पर तहसिलदार से रिपोर्ट मंगाई गई है। ३ सितम्बर को शास्त्री जी के मुकदमे की अफवाह थी। बहुत से कार्यकर्ता कचहरी पहुँचे थे। परन्तु उनका मुकदमा पैरा नहीं हुआ।

सुना जाता है कि अभी पुलिस ने कागजात और चालान अदालत में नहीं भेजा है। हमें अधिकारियों के इस रवैये से गहरा असन्तोष है।

# गुरुकुल

२६ मार्च १९६७

## तरणोपाय\* कौनसा ?

[ ले. श्री किशोर्बा ]

**वैधानिक** आन्दोलन करना, जनता की शिकायतें सरकार के सामने पेश करना और बड़े मीठे ढंग से उन शिकायतों का हलका करा लेना; और इतना करने से सन्तोष मानना—यही शुरु शुरु में कांग्रेस का कार्यक्रम था। लेकिन न तो शिकायतें दूर होती थीं, और न सन्तोष ही मिलता था। एक पुस्तक अनुभव के बाद कांग्रेस रूप निरक्षर पर पहुँची कि स्वराज्य के बिना चारा नहीं है। और स्वावलंबन के सिवा दूसरा रास्ता नहीं है। यह अनुभव का सन्देश तरणों को सुना कर पितामह वादा भाई निकल हो गये।

धुन के पक्के तरण काम में जुट गये। गुप्त पद्धति करने, सरकारी अदालतों के खून करके और सरकार को डरा कर स्वराज्य प्राप्त करने का, अपनी दृष्टि से स्वावलम्बी प्रयोग, उन्होंने शुरु कर दिया। आन्दोलन के लिए पैसे की जरूरत होती है। वह कहाँ से लाया जाय ? पुराने नेता विद्या मांगकर निधि जमा करने में लेकिन यह मार्ग परावर्त्तकी था। इसके अलावा, अराजक तरणों के लिए वह जुला भी नहीं था। तरणों ने डाके हालकर पैसे कमाने के स्वावलंबी मार्ग का स्वावलंबन किया। शुरु में इन हाथुओं को—अगर जिन के घरों में डकैनी हुई, उन लोगों ने नहीं—तो दूसरे सुरक्षित लोगों ने, थोड़ी बहुत प्रशंसा भी की। इसलिए स्वामी बाबू भी, उनके लिए इस अधिक मुसाफिर, साधन का प्रयोग करने लगे। जो भजन जैसे उच्चाल संस्था पर भा. कब्जा कर सके, उन के लिए डकैनी हलगत करना दुर्दुर्लभ तो था ही नहीं। फलतः दोनों प्रकार की डकैतियों से जनता पीड़ित हुई। उधर सरकार ने भी दमन-नीति अस्वस्थार की। तरणों के लिए जो सहानुभूति थी, उसका झोड़ मूलने लगा।

इतने में समझदार अहिंसावादी सामने आये। वे कहने लगे कि पुराना वैधानिक आन्दोलन का मार्ग जिस प्रकार बेकार था, उसी प्रकार यह गुप्त साजिशों का मार्ग भी बेकार है। इतस्तनः दो-बार खून करने से क्या फायदा ? हिंसा भी कार्यकारी होने के लिए संगठित होनी चाहिए। असंगठित, अस्थवस्थित, लुब्ध-क्षिप्र कर की हुई अहिंसा, किसी काम की नहीं है। और संगठित अहिंसा तो हमारे घरा की बाल नहीं है। इसलिए हमें अहिंसा से ही प्रतिकार करना चाहिए। गांधी जी हमें रास्ते दिखाने के लिये समर्थ हैं। उनके मार्गदर्शन से लाभ उठाकर हमें जनता की प्रतिकार-शक्ति संगठित करनी चाहिए। जनता की शक्ति संगठित होने

पर उसकी बढ़ौलत, यदि सम्पूर्ण नहीं तो थोड़ी-बहुत, सत्ता हमारे हाथों में अक्षय्य आयेगी। वह सत्ता यदि पर आगे का विचार कर लेंगे।

अज्ञज्ञता वह अहिंसा नीति के रूप में थी, जो हमारे तरणों की भी गुप्त पद्धतियों की असफलता के और दक्षिण आफ्रिका में गांधी की सफलता के अनुभव के कारण कुछ कुछ जँझी। जो लोग अपनी परछाई से भी डरते थे, उनके सिवा साग-का-सारा राष्ट्र एक विल होकर अहिंसा प्रतिकार के इस नये आन्दोलन में शामिल हुआ। गांधी जी की नैतिक अहिंसा और उनके अनुयायियों की राजनैतिक अहिंसा के जोड़-बटाने से जिनकी शक्ति प्रकट हो सकी, उस परिणाम में उसका परिणाम भी निकला और असंठित हिंसा की अस्थवस्थित अस्थव्यतिरेक से सर्वोपम्य हुई।

इतने में यूरोप में महायुद्ध सुलग। शौर्य, साधन-संपत्ति, संगठन, साहस, आदि गुणों के लिए प्रसिद्ध शक्तिशाली राष्ट्र पांच-पांच दम-नस दिन में अपने स्वयन्वता गवां बैठे। बीस साल पठने वैभव के शिखर पर पहुँचा हुआ फ्रान्स जैसा राष्ट्र भी तीस लाख को फौज लखी कर, इंग्लैंड जैसे राष्ट्र का सहयोग प्राप्तकर, और शूरता की पराकाष्ठा कर, गुब्बानों से भी गुब्बाम हो गया। जिन हाथों ने पिछले महायुद्ध में फ्रान्स को विजय प्राप्त करा दी, शरण-चिट्ठी लिख देने के लिए भी उसे उनके सिवा दूसरे हाथ उपलब्ध नहीं हुए।

हमारे आर्सेल खून गयीं। असंगठित हिंसा तो बेकार स्थापित हो ही चुकी थी। लेकिन वर्किंग कमेटी कहती है कि अब यह रगड़ हो गया है कि चाहे जिनने बड़े पैमाने पर की गई संगठित हिंसा भी स्वयन्वता की रक्षा के लिए बेकार है।

असंगठित हिंसा और सुसंगठित हिंसा—नहीं नहीं, अति सुसंगठित हिंसा—दोनों, या नौनों, बेकार सिद्ध हो चुकी हैं। तब क्या किया जाय ?

गांधी जी कहते हैं—“अहिंसा के प्रति अपनी निष्ठा दृढ़ करो।”

हम कहते हैं—“हम अभी तैयार नहीं हैं।”

“तो तैयारी करो।”

“अबसर क्या बिकट है; ऐन वकन आगया है। हम मनुष्य दुर्बल हैं। इस लिए उस प्रकार का तैयारी के लिए आज तुम्हें अबकारा नहीं है।”

“तो फिर पड़ोसर के लिए स्वयं (शान्त) रहो। मिश्टन कहना है न; कि जो स्वयं (शान्त) रह कर प्रतिका करते हैं वे भी सेवा करते हैं ?”

“हां कहना तो है; लेकिन हम पर जिम्मेदारी है। हमें कुछ-न-कुछ हाथ-पैर दिखाना ही चाहिए।”

पानों में तैरने वाला तर जाता है। पानों पर स्वयं (शान्त) लेटने वाला भी पान्यो की सतह पर रहता है। केवल हाथ-पैर दिखाने वाला तब ही पहुँच जाता है। केवल ‘हम कुछ-न-कुछ कर आयेगे’ ही से क्या होने वाला है ?

( सराठी 'समय-सेवा-वृत्त' से )

श्रुतरणोपाय—दरख-उपाय, अर्थात् तरने का या बनने का उपाय।

## स्त्री समाज और शिक्षा

(लेखिका—श्रीमती विद्यावती जी बनारस)

नारी जाति की समस्या पर आज कल बहुत कुछ आशय लाने हो रहा है, आज की नारी घर की चार दीवारी को लांघ कर पुरुषों के कक्षों से कब्जा मिट्टा आगे बढ़ रही है, उनका चेहरा विशाल हो गया है और वह अपने पड़लिनसमाज को उन्नति की दृष्टि से सीमा तक पहुँचाना चाहती है, परन्तु एक ओर उनका लीव व और दूसरी ओर संघर्ष कीनसा मार्ग उसके लिये उपलब्ध है, ताकि वह अपने पति और बच्चों के बीचमें रहने हुए भी अपने ध्येय की पूर्ति कर सके। वह संस्कृत साहित्य, कला और इतिहास का अध्ययन करे, या आधुनिक आन्दोलनों का ?

आज मैं आपसे स्वामने स्त्री समाज की उन्नति किस प्रकार हो इस पर अपने कुछ भावों को प्रगट करना चाहती हूँ। वर्तमान शिक्षा का आदर्श हमारे भारतवर्ष में किस कतिपय तक पहुँच चुका है यह आप लोगों ने टिपा नहीं है। प्राचीन शिक्षा के आदर्श को देख और आज की दशा को देख कर हमारा हृदय विदीर्ण हो जाता है, स्त्री शिक्षा का स्थान हमारे देश में कितना प्राचीन है सब से पहिले वेदों के नृत्य उपनिषदों को लेंजिये, मानजान की विद्वाना ने उपनिषद् साहित्य सारा भरा पड़ा है। जो कि एक से एक अमूल्य शिक्षा, अपने मनुष्य संतस्थान को फैला कर दिखा रहा है। जैसे—

“पतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी सूर्यस्य मसौ विभूती, निवृत्त पतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी धावा-वृषिष्यो विभूते निवृत्त, पतस्य वा अक्षरक प्रशासने गार्गी मिमेधा मूहर्षा। अमोराका रायभ्य” मत्सा ऋतवः संवासर विभूतासिः प्रथमेत्यस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी प्राच्यो नद्यः स्वधने भवेत्यः प्रथमेत्यः प्रतीचयम्याः यं वाञ्छ दिशाम्नेति पतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी दन्तो मनुष्याप्रसशानि पञ्चमानं देवादर्शो पितरो-अश्वा यथा।”

येने २ अनेकों वाक्य हैं जिनमें गार्गी शब्द गुञ्ज रहा है, बल्कि सारा उपनिषद् यैने ही वाक्यों में भरा पड़ा है। इससे पता चलता है कि गार्गी दशम शतक की कितनी विभूती थी जिन्योंकी प्राचीन शिक्षा का प्रमाण उपनिषदों में आज तक मौजूद है।

अस्तु, अथस्त पुरानी बातों को छोड़ कर ५ वीं वर्ष पूर्व स्वामी शंकराचार्य के समय को ही ले लीजिए, जिस समय स्वामी शंकर और मंडन मिश्र का शास्त्रार्थ होना प्रारम्भ हुआ तो उसकी मध्यस्था मंडन मिश्रकी धर्मपत्नी भारतो विपुल हुई और जब मंडन मिश्र की हार हुई तो भारतीयों ने उनको हराने का दावा किया और उनसे शास्त्रार्थ करने के लिये प्रस्तुत हुई जिसके लिये शंकर स्वामी को उनके प्रश्नों के उत्तर देने में एक साल की अवधि मंगनी पड़ी। स्त्री जाति की शिक्षाका प्रमाण और देखिए? जिन शंकराचार्य के भाग्य पड़ने में बड़े २ विद्वानों के दंत कटरे हो जाने हैं उन्हीं को एक स्त्री शास्त्रार्थ के लिये खोजे देती है और शास्त्रार्थ में हराने

का दावा रखती है। यह हमारी प्राचीन दीक्षा का जीता जागता नमूना है।

परन्तु आजकल के नवयुवक और नवयुवतियां पाश्चात्य असभ्यता में फँस कर अपनी तथा अपनी भाषी संतति का जीवन सदा के लिये बर्बाद कर रहे हैं और अपने जीवन से सदा के लिये हाथ धो बैठने को तैयार हैं। अतु यह भी देश का दुर्भाग्य के सिवाय और क्या कहा जा सकता है।

भारतवर्ष दनियाँ की तपोभूमि है यहां उपवास होने वाले स्त्री पुरुष समाज साधन में लोग होकर भ्रष्ट सम्प्रदाय करने हैं, वे कर्तव्य के पक्ष में अपने आपको होम देने हैं। और जिन्यां भी उनमें कमी पीछे नहीं रहती। उदाहरणार्थ बंकर, और आधुनिक अस्सी बाली रानी ल.सी बार्ड ने यह सिद्ध कर दिखाया—

“क्या कर नहीं सकती” भला यदि शिक्षिता हो नारियां  
रक्ष रंग राज्य सधर्म रक्षा कर चुकीं मुकुमारियां ॥”

अब आप इस पद्य में समझिए कि यदि माताएं तथा बहिनें शिक्षित हों तो क्या नहीं कर सकतीं। शिक्षा शब्द से आप या क्या कुशिक्षा को न समझ कर अपनी देववाली संस्कृत शिक्षा पर ही दृष्टि नालें। तब देखेंगे कि उक्त देवियों सगीक्षा माताएं होती हैं या नहीं।

इतना सब लिखने का सार यही है कि आप लोग देववाली संस्कृत विद्या का प्रचार हमारी माताओं बहिनों में करें और उनको दिस-वस्त्रों में पड़ार्थे नहीं स्त्री जाति की उन्नति हो सकती है वरना पाश्चात्य ढंग से उन्नति होना असम्भव है। कहा भी है:—

साहित्य नहीं जिस देश में यह देश ही बर्बाद है।  
फिर भी यही कहते गिरिजा प्राचीन गौरव पाद है ॥

यह प्रसक्तगोत्री बात है कि हमारे देशकी महिलाओंमें शिक्षा के महत्व को भली भाँति हृदयङ्गम कर लिया है। गरीब कारख है कि प्रति वर्ष स्कूलों व कालेजों में शिक्षा लान करने वाली स्त्रुकिणों की संख्या बढ़नी आ रही है। परन्तु शिक्षा प्रचार के साथ ही हमारे समने कई विकट समस्याएं भी आग दिन उपस्थित होनी रहती हैं। उनमें एक है बालिकाओं की शिक्षा-पठति सम्बन्धी समस्या। हमारे देश में बालक बालिकाओं के लिये एक ही प्रकार की शिक्षा पद्धति निर्धारित की गई है। आधुनिक पद्धति द्वारा बालक बालिकाओं को जो शिक्षा दी जानी है, वह न तो बालकों के लिये उपयोगी है और न बालिकाओं के लिये। कालेजों की बड़ी २ डिग्रियां प्राप्त करने के बाद अधिकांश युवकों का एक मात्र लक्ष्य नौकरी करना होता है, यदि भाग्यवश कोशिश पैरवी करने से कोई नौकरी मिल गई तो वे अपनी शिक्षा को सार्थक और जीवन को धन्य समझते हैं। और अगर कहीं नौकरी का कोई सिल-सिला न बैठता तो उनका सारा जीवन बेकार हो जाता है। और यदि कुछ रोजगार-बनान करने का कोई उद्योग करते हैं तो पग पग पर उन्हें अस्वच्छताओं का शिकार होना पड़ता है। इसका एक मात्र कारण है शिक्षा-पद्धति,

जो हमें केवल नौकरी के विषय जिन्दगी में और कोई काम करने योग्य नहीं बनानी है।

अब उच्च शिक्षा-प्राप्त युवकों का यह ह.ल है. तो उच्च उपाधिधारिणी युवलिं अपने जीवन में किस प्रकार सफल हो सकती हैं, यह मन्त्र ही अनुमान किया जा सकता है। बी० ए०, बी० डी० पास करने वाले पुरुषों को तो नौकरी मिल भी जाती है; परन्तु हमारी सामाजिक व्यवस्था कुछ ऐसी है कि शिक्षित महिलाओं को सरकारी महकमों या गैर-सरकारी आकिसों में मिल भी नहीं सकती। इस लिये यह बहुत आवश्यक है कि महिलाओं की शिक्षा के लिए पुरुषों से भिन्न और कोई शिक्षा-पद्धति जारी की जाय, जसमें वे पुरुषों की भांति नौकरियों के चक्कर में न पड़ी रहें, बल्कि पढ़ लिख कर योग्य गृह-लियां और माताएं बनें।

जो महिला आई. एल. धारक प्रतिभावाल् हैं. वे भी पुरुषों के साथ बर्तमान पद्धति द्वारा शिक्षा प्राप्त करने में समर्थ हो सकती हैं। पर जिनमें शिक्षा प्राप्त कर विवाहित जीवन में प्रवेश करना है, जिन्हें गृहणी बन कर घर गृहस्थी को सम्भालना है. उनके लिये वर्तमान शिक्षा बहुत कुछ व्यर्थ ही अनुपयोगी है। इसके बदलें यदि वे यह लीक कि गृहस्थ जीवन में किस प्रकार थोड़े खर्च में सुख से घर का काम काज चलाया जा सकता है, घर के आमद खर्च का किस प्रकार हिसाब रक्क: जाय, बाल बच्चों की देखभाल किस प्रकार की जाय, घर में कोई बीमार पड़ जाय, तो कैसे उसकी सेवा-सुभथा की जाय, तो इस से उनको बहुत कुछ लाभ हो सकता है।

इसी विषय को लक्ष्य में रख कर स्त्री-शिक्षा की वर्तमान पद्धति में सुधार करने की आवश्यकता है। आधुनिक शिक्षा पद्धति से हमारा समय और स्वास्थ्य दोनों नष्ट हो रहे हैं, लाभ हीना तो दूर रहा। इस सम्बन्ध में मेरी विशेष कर अपनी शिक्षिता बहनों से ही प्रार्थना है इस आवश्यक विषय की ओर उनके ही ध्यान देने से वर्तमान शिक्षा-पद्धति में परिबर्तन कर उसे लियोगयोगी बनाया जा सकता है।

वास्तव में वहां मध्य मनुष्य है, जिसका संसार में जन्म लेना सब दृष्टि में लाभक हो।

सच्चा नेता, सच्चा समाज सुधारक यही है, जो समाज में फैली हुई दुरीतियों और व्याधियों को दूर कर हान, शिक्षा और सभ्यता का प्रकाश कोने कोने में फैला दे। यही सन्तान सन्तान है, जो अपनी प्रतिभा से पतन की ओर लेजाने वाली विचारधारा की गति दूसरे रूप में बदल कर संसार को अपने विचारों के प्रवाह में बहा कर उन्नति और अनुसुधान की ओर ले जाए। ऐमें महापुरुषों के अविर्भाव के लिए नाना अत्याचारों और क्रूरों से पीड़ित पृथ्वी निरन्तर रोया करती है, जिन माताओं के गर्भ से युग प्रवर्तक महात्माओं का जन्म होता है, वास्तव में उनका नारी जीवन धन्य है, उनका मानुत्व गौरव-मय है।

यह बात विभविदित है कि जो आज कथ्या है वह कालान्तर में जाकर माता अर्थात् कर्मिणी, और बन भी

रही है; पर सुमाता होने का लीमाय बहुत कम की प्राप्त होता है। क्षामी, विद्वान, तेजस्वी, वीर और साहसी पुत्रों को प्रसव करने वाली माताओं की गणना सुमाताओं में होती है; ऐसों सुमात एवमान युग में महामा गांधी, देशभक्त जवाहरलाल नेहरू आदि महापुरुषों की जन्म-दात्री माताएं हैं।

पुत्र को सुसुधान, विद्वान और महपुरुष बनाने के लिये माता को सुसुधती और सुशिक्षिता होना आवश्यक है। परन्तु मुशिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से नहीं है, जो आज कल स्कूलों और कालेजों में दी जाती है। माता की मशिक्षा में मेरा मतलब है उन सद्गुणों और सद्भावनाओं से विभूषित होना, जिनमें वह अपनी सन्तान को संसार-श्रेष्ठ में उतरने के लिये 'मनुष्य' के रूप में गढ़ सके। आधुनिक शिक्षा की कस्ती में कस कर देखने से तो शिवा जी, राधा प्रत प ऋषि दयानन्द, स्व भी शंकरा-चार्य, स्वामी अन्वद्वानन्द जी जिनका वर्तमान में शरीर विद्यमान है जो चित्रकूट के निवासी हैं तथा तुलसीदास, कबीरदास, गुरु गोविन्दसिंह आदि महा पुरुषों की माताएं अशिक्षिता ही उत्तरीं।

वर्तमान समय में हमारे देश में महिलाओं की समस्याओं को समझने और उनका उचित समाधान करने की काफी दिलचस्पी दिखाई जा रही है। आप किसी भी मासक या साप्ताहिक पत्र को उठा कर देखिए, आपको प्रायः हर एक अङ्क में एक या दो लेख अर्थात् मिलेंगे। कितने ही पत्रों में तो 'अप्यमानुसुक्त महिलाओं' के लिये स्वतन्त्र स्वाम नियत कर दिये हैं, जिनमें ब चार महिला समस्याओं की बर्षा हुआ करती है। पर साथ ही कुछ ऐसे अनुदार व्यक्त भी हैं, जो महिलाओं को पूर्व की भांति आज भी कुरियों और कुल्लकारों के जाल में कसे रक्कना चाहते हैं। एक बंधी के कुछ ऐसे भी लाग हैं जो बीच के मार्ग से चलना चाहते हैं। जिनको स्वतन्त्रता देने के पक्ष में तो उच्च हैं, पर वे नहीं चाहते कि जिनका विच्छेदन स्वतन्त्र करदी जाय। मेरे विचार में भी उनका कथन बहुत अर्थों में ठीक है। स्वतन्त्रता की ही चीज नहीं है, पर स्वतन्त्रता से यही ली लाभ उठा सकती है, जो उसका ठीक उ उपयोग कर सके और जिस में इतनी शक्ति हो कि दूसरे उसकी स्वतन्त्रता हड़प जाने का साहस न दिखायें। जैसा कि इसी वर्ष बनारस में स्वामी सत्यदेव जी ने विश्वविद्यालय में लड़कियों के बीच में भाषण देने हुए कहा था, कि तुम अपनी रक्षा अपने आप करना सीखो। तुम गुरुदे और धूर्तों से बचने के लिये अपने हाथ में बैल रकबो या धुरी रको, मैंने स्वयं ही जब 'आयं सम.ज मन्दि' में जाकर यह प्रश्न किया कि लड़कियां अपने धर्म को रक्षा गुएडों से किस प्रकार कर सकती हैं तब उन्होंने वहाँ उमर दिया जो कि मैंने लिखा है। ऐसी ही जिनका राहु निधि और चिरक्यायी सम्पत्ति को प्राप्त कर सकती हैं।

## गुरुकुल समाचार

आज कल गुरुकुल का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुहावना है। सारी कुलधर्मि हरी घास से आच्छादित है। इस हरियाली के बाव भद्रविद्यालय, विद्यालय, आभय, चिकित्सालय की गुलाबी-रंज की इमारतें बहुत भली भाँति दिखती हैं। नहर के साथ-साथ जाने वाली गुरुकुल की पक्की सड़क बड़े-बड़े पत्तों वाले वृक्षों की सघन छाया से बिन में भी अत्यन्त प्यारी बनी रहती है। वहाँ की छटा अत्यन्त ही सुन्दर है।

शरत काल के आगमन के लक्षण प्रकट होने लगे हैं। आकाश में रवेन-रंग के बादल जहाँ तहाँ मण्डराते दृष्टिगोचर होते हैं। गुरुकुल से दूर जाने वाली विमानपथ की सुविस्मय हिम शृङ्खला लोचनों को पुनः शीतल करने लगी है। खेतों में चारों ओर फूले हुए कास्य-पुष्प आकाश में ललते हुए शारदाय मेघोंसे हास-परहास करते प्रतीत होते हैं। गुरुकुल की नारंगी की बगानों में फूलों के साथ छोटे-छोटे फल अधिक संख्या में लग रहे हैं।

गंगा का जल दिनों-दिन स्वच्छता एवं मयोंदा धारण करने लगा है। ब्रह्मचारी भ्रमणार्थ गंगापार के जंगलों जाने लगे हैं।

पिशाची का दल—पण्डारी का दल अपने लक्ष्य तक पहुँच कर अब सकुशल लौट रहा है। मार्ग में वर्षा आदि के कारण इन्हें पथ प्र विकल उठाना पड़ी। किन्तु ब्रह्मचारियों ने बड़े धैर्य और साहस के साथ परिस्थिति का मुकाबला किया और सफल हुए।

गुरुकुल का ऋकाक्षेत्र—पिकले कई वर्षों से गुरुकुल के अधिकारियों का ध्यान ऋका क्षेत्र की सुधरवाई का आरंभ रहा था। इसबाब भी मुख्य अध्यापक जी ने अपना विशेष आकांक्षा द्वारा क्षेत्र का सुधरवाना शुरू कर दिया है। वर्तमान स० मुख्याधिष्ठाता श्री डा० सरवपाल जी बड़ी तन्मयता से इस कार्य का देख-रेख कर रहे हैं। आशा है छुट्टियों के अन्त तक सुन्दर मदान तैयार हो जायगा।

## स्वास्थ्य समाचार

गुरुकुल २ अथवा नेत्ररोग, धर्मवीर १ अथवा विषमञ्जर रोगाचन्द्र ५ अथवा टांगिल।

गव सप्ताह उपरोक्त ३० रोगा हुये य अब सब स्वस्थ हैं।

## गुरुकुल में शोक-सभा

गुरुकुल वासियों की यह शोक सभा कबिराज श्री शालिग्राम जी शारदा साहेबाचार्य विद्याभूषण, वैद्यभूषण ब्रह्मनन्द के असा (यिक देहावसान पर गहरा दुःख प्रकट करती है। उनके उठ जाने से न केवल साहित्य जगत को किन्तु वैद्य जगत को भी अपरिमेय क्षति पहुँची है। यह सभा शोक सन्तप्त परिवार के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित करती है तथा प्रार्थना से आचना करती है कि विभंगत आत्मा का सद्गति प्राप्त हो।

मुख्याधिष्ठाता

## गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

श्री प० जगन्नाथ प्रसाद जी M. A. L. L. B.L. T जो गुरुकुल में सातवर्ष से ब्रह्मजी तथा इतिहास पढ़ाया करते थे, अचानक बड़े अचानक के कारण एक वर्ष का अग्रै निक प्रकृता लंकर यहाँ ने चले गये हैं। उनके स्थान पर श्री प० कृपानारायण जी बी. ए. एल. एल. बी. नियुक्त हुये हैं। श्री प० जगन्नाथ प्रसाद जी की विद्वान्ता में उन्हें कुल की ओर से अतिमहान् पत्र दिया गया और सहमोज हुआ। अध्यापक तथा कर्मचारियों की तरफ से फल भोज दिया गया। जो अध्यापक उनके स्थान पर काम करने के लिये प्राये हैं वे गुरुकुल कांगड़ी में उपाध्यक्ष थे। आग्र भी बड़े योग्य और लीम्य हैं।

वाल्मासिक परीक्षा की तय्यारियाँ बड़े जोर शोर से हो रही हैं सब अध्यापक वर्ग कमजोर विद्यार्थियों को सहायता देने के लिये आभय में विशेष समय में पढ़ाते हैं।

व्याख्य सामान्यतया सब का अच्छा है। केवल एक दो ब्रह्मचारियों की बुझा है।

उन्नत जयन्ती की तय्यारियाँ प्रारम्भ हैं। जन एकत्र करने के लिये घोड़े दिनों में यहाँ से बाहर डेपूटेशन जाने वाले हैं।

## आवश्यकता

आर्य समाज उदयपुर के लिये एक विद्वान् कर्म निष्ठ उपदेशक की आवश्यकता है। जो इसके लिये अच्छी लग्न व विशेष योग्यता रखने हों। वेतन ५० तथा मकान मिलेगा।

मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल कांगड़ी स्वधरानुर

## गुरुकुल कांगड़ी

की

# प्रसिद्ध औषधियां

### भीमसेनी सुरमा

आंखों को युद्धपे तक सुरक्षित रखने के लिए "भीमसेनी सुरमा" नियमपूर्वक इस्तेमाल कीजिए। आंखों से पाना बहना, खुजला, कृकर आदि रोग कुछ ही दिन में दूर हो जाते हैं। मूल्य ॥८॥ शःशः।

### भीमसेनी दन्त-मंजन

इसका प्रतिदिन व्यवहार करने से दांत मोती के समान सफेद और चमकदार हो जाते हैं। दांतों से खून पोप का आना बन्द हो जाता है। मूल्य ॥१॥ शीशी

### ब्राह्मी बूटी

दिमाग़ी रोगों के लिए बहुत प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होती है और आंखों की ज्योति बढ़ती है। बर्काल, अच्यमपक, तथा कर्क आदि दिमाग़ का काम करने वालों को अवश्य ही इसका सेवन करना चाहिए। मूल्य ॥३॥ सेर

### ब्राह्मी तैल

खान के बाद सिंग पर लगाने के लिए ब्राह्मी का यह तैल बहुत उत्तम है। इससे दिमाग़ को ठंडक तथा तरावट पहुंचती है और आंखों की ज्योति बढ़ती है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

### च्यवनप्राश

स्वादिष्ट !

बद्धिया ॥

रसायन ॥

मूल्य १ पाब (२०), आष सेर (२०), १ सेर (४)

पजेन्टों के लिए विशेष सुविधा

पता:-गुरुकुल फार्मसी, गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

प्राच { देहली-चावनी चौक।  
मेरठ-सिपर रोड।

पंजैमियां { लखनऊ-पंजैसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।  
लाहौर- " " " हस्पताल रोड।  
पटना- " " " मधुआटोली बाँकीपुर।

बीधरी हुजासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मद्रित तथा प्रकाशित।



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुद्रण-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—सा हत्यरज हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ५ अश्विन १९६७; २० सितम्बर १९५०

[ संख्या २३ ]

## वेद में गो-पालन का सन्देश

( वे०— श्री १० शतपथ ब्राह्मणकार )

[ नीचे गो-पालन विषयक कुछ मन्त्र दिये जाते हैं । पाठक देखें कि वेद में गो-पालन की कितनी स्तुति की गई है । इन मन्त्रों से प्रकट होता कि गौण घर की शांति है, गौणों से घर स्वर्ग बन जाता है । इमंलये प्रत्येक गृहस्थी की गौणों को काभन करना चाहिये । और ऐसी शक्य-व्यवस्था होनी चाहिये । तमसे ममाज में गो-पालन किलकुल न हो सके । ]

( १ )

आ गावो अममन्तु भद्रमकन्सोऽन्वु गोपे रण्यमवसमे ।  
प्रजावतीः पुररूपा इहं स्तु वेभ्राय पूर्वीरवमो दुहानाः ॥

( गावः आ अमम ) गौण इमारे यदा आये ( उन भद्रम अमम ) और इ- सुख देवें ( गोपे सोऽन्वु ) गो-पालना में आकार बैठे ( असे रण्यम् ) हमें आनन्दित करें ( प्रजावतीः पुररूपाः इहं स्तु ) प्रजाओं अर्थात् बहकें बहियों से युक्त, अनेक रंग-रूपों वाली गौण यदा हमारे पास हों ( पूर्वीः उषसः इभ्राय दुहानाः ) और वे पूर्व उप-कालों में गो-व्यामी के लिये दूध देती रहें ।

( २ )

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अक्कान गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्त  
३मा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामाद्दुष्टा मनसा चिदिन्द्रम

( गावः भगः ) गौण बड़ी अक्कामि मन्पति है ( इन्द्रः मे गावः अक्कान इन्द्र मुझे गौण देवे ( गावः प्रथमस्य सोमस्य भक्तः ) गो-दुग्ध व गो-दुग्ध से बने दही की आदि पदार्थ में असात्विक मनुष्य का भोजन है ( जनासः, इमाः या गावः स इन्द्रः ) है मनुष्यों । ये जो गौण है वह बड़ा भारी परिश्रम है ( इन्द्रा मनसा चित् इन्द्रम् इत् इच्छामि ) मैं इन्द्र और मन से इस गो-पन की टी कामना करता हूँ ।

( ३ )

पूर्वं गावो मेवथवा कुरां चित्तमीरं चित्तं कुरुया सुप्रतीकम ।  
भद्रं गृहं कुरुया भद्रवाको गृहं वु बो वय उच्यते सभासु ॥

( गावः पूर्वं कुरां चित्तं मेवथव ) हे गौणों ! तुम कुरा-काय मनुष्य को भी इन्द्र-पुत्र कर देती हो ( अथर चित्तं

सुप्रतीकं कुरुया ) कामिनी-पति मनुष्य को भी सुन्दर बना देती हो ( भद्रवाचः, गृहं भद्रं कुरुया ) हे सुख प्रदेक रमाने वाली गौणों ! तुम घर को सभसुख स्वर्ग बना देती हो ( वः वयः मभासु इन्द्र उच्यते ) तुम्हारे दूध रूपी अन्न की मभासो में बड़ी प्रशंसा की जाती है ।

( ४ )

संजमाना अविभुपूर्वाभन गोपे करीविगी ।  
विभ्रनीः सोम्यं च्चनमीषा उपेतन ॥  
हे गौणो तुम ( अविभुपूर्वाः मजमानाः ) निभय होकर एक माघ विचरती हुई ( अविभन गोपे करीविगी ) इस गो-पालना में रह कर गोधन मूत्र आदि करती हुई ( सोम्यं मधु विभ्रनीः ) मधुर मात्विक दूध को भारग करती हुई ( अनमीषा उपेतन ) रोग-रहित होकर हमारे पास आकर रहे ।

( ५ )

मया गावो गोपतिना मचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोपविष्णुः ।  
रायभोपेष्ण बहुला भवन्ती जीषा जीवन्तीरप वः सदेम ॥

( गावः मया गोपतिना मचध्वम ) हे गौणों ! तुम मुक्त गो-पालक के साथ प्रेम से रहे ( अयं वः गोष्ठः ) यह तुम्हारे लिये गोपालना बनी हुई है ( इह पोपविष्णुः ) वहां मय पोषक माममी उपविशत है ( रायभोपेष्ण बहुला भवन्तीः ) पोषक धान्य आदि के द्वारा बहुत संख्या में होती हुई ( जीवन्तीः वः ) और गोष काल तक सुख से जीवी हुईं तुम गौणों को ( जीषाः उपसदेम ) हम जीव प्राप्त करने रहें ।

( ६ )

प्रजावतीः सूयवसं रिराप्तीः शुद्धा अपः सुप्रपणे पिबन्तीः ।  
मा वः स्तेन ईशत माधरांसः परि वो हेती नरस्य वृथाः ॥

हे गौणो तुम ( प्रजावतीः ) बहकें-बहकियों से युक्त हो वो ( सूयवसं रिराप्तीः ) तम चाग व्यावा करो ( सुप्रपणे शुद्धाः अपः पिबन्तीः ) लच्छ चौरों में शुद्ध पानी पिया करो ( मा वः स्तेनः ईशत मा अधरांसः ) चोर, पापी, क्रूर मनुष्य तुम्हारा स्वामी न बने ( नरस्य हेतिः वः परिदृग्वाः ) कर कसाई आदि का शक्य तुमसे दूर रहे ।

( ७ )

विषं गवां यानुधाना भरन्त्याम्भारुचन्त्यामदिवदे इरेषाम् ।  
परंखान देवः सविताददन्तु परां भ्रातृभ्योपमीने जन्मन्त्याम् ॥

( यानुधाना भरन्त्याम् ) यदि यज्ञम् पूर्ण करने वाले क्रूर लोग गीर्षी को विष देवें ( दुरिष्कः अदितये आधुरचन्त्याम् ) अथवा वे कुचाली लोग बेचारी बेकमूर न मानने योग्य मांस को कटें तो ( सविता देव गन्तुं पराददन्तु ) सविता देव इन्हें सब्जियों से बाहर करदे, [ और उनको गे भी दुर्गम बनावे कि वे ] ( भ्रातृभ्योनां भ्रातृ पराजयन्त्याम् ) शोधयियों के भाग से भी पराजित हो जायें अर्थात् शाक-वनस्पति और अन्न तक के लिये दूर-दूर भटकते किन्तु [ उन्हें दूध नमीश होने की तो बात ही दूर है ] ।

( ८ )

संवत्सरीणं पय रश्मियायास्तस्य मारोदु यानुधानो नृचक्षः ।  
पीयूषमने यनमस्तितृप्तस्त तं प्रत्यञ्चमविधा किष्य ममसि ॥  
( नृचक्षः अने ) हे सब मनुष्यों पर अपनी आंख रखने वाले राजन ! ( रश्मियाया संवत्सरीणं पयः ) गाय का जितना भी वर्ष भर में दूध होता है ( यानुधानः तस्य मारोदु ) ( नित्यं गो-दूधयारा मनुष्य उसमें से बूढ़ भर भी न पाने पावे ( यतमः पीयूषं तितृप्तस्त ) और जो कोई गो-दूधयारा उसके अमृत रूप दूध से श्रुत होना चाहे तो ( तं प्रत्यञ्चं ममाय आचया किष्य ) उसे तू सबके सामने भस्म-ध्वाना मे तपना हुई गलाकाशों से छेद डाल ।

( ९ )

न ता अर्षारे शुक्रकटो अस्तुने न सस्तुन्नमुपयन्ति ताभ्रिभ उरगायमभयं तस्य ता अन्तु गाभां मतेस्य विचरन्ति यश्वनः ।  
वैदिक राज्य-उपबन्धा गेमां होती है कि ( ताः रेणुक कटः अर्षां न अस्तुने ) काट-काट कर टुकड़े कर देने वाला हिंसक मनुष्य उन गीर्षी को नहीं पा सकता है । ( न ताः संस्तुतम अभि उपयन्ति ) और न वे गीर्षी कसाईखाने का और जाते पानी हैं, किन्तु ( तस्य यश्वनः मतेस्य ताः गाभाः ) उस यज्ञशील मनुष्य को वे गीर्षी ( उरगायम अभयम अन्तु विचरन्ति ) विस्तृत जगले चरागाहों में निभय होकर विचरती हैं ।

( १० )

माता रुद्राणां दुहित्वा वसन्तः म्बलाऽऽदेत्यानाममृतस्य नाभिः प्र नु बोचं चिकितुषे अनाय मागमनामाप्रितितं वधिष्ट ॥  
यह गाय ( रुद्राणां, माता, वसुनां दुहित्वा आदित्यानां म्बला ) रुद्र रूप बड़ों की माता है, वसु रूप साँभों की कन्या है और आदित्य रूप बैलों की बहिन है ( अमृतस्य नाभिः ) यह अमृत रूप दूध का कंठ है, खोल है । इन लिये मैं ( चिकितुषे जनाय प्रबोचं ) ममभयार मनुष्य का कहे देना हूँ कि ( अनागाम अदिति गां मा वधिष्ट ) इस बेकमूर-भोली-भोली, न मानने योग्य गाय का वच कभी मत करन ।

यह हे गोपासन का वैदिक सन्देश ! उन मन्त्रों से यह भी प्रकट होता है कि वैदिक राज्य-उपबन्धा में गौ-तथा का कभी कोई भयप्र भा नहीं ले सकता है । महर्षि दयानन्द ने

वेद के इस सन्देश को सुना और उन्होंने भारत में गायों की दुर्दशा को देख कर, उनकी दुःखा के लिये जी-जान से कोशिश की, अर्थात् वेदशास्त्र के प्रकाशित पत्र-पत्रबहार को पढ़ने से विचित्र होता है कि वे गो-पशु को रोकने के लिये भारतीय जनकों से आर्यों और करोड़ों हस्ताक्षर कराके मिट्टी-सरकार की सेवा में प्रेरणा चाहते थे और उन्होंने इस कर्म में दिशा-दर्शी राजा-सम्राज्याओं को भी समिलित करने का भाव था । उन्होंने जगह-जगह गोकुल-वादि-पक्षिणी समाज कायम की थी जिनके नियम उपनियम आदि महर्षि-कृत 'गोकुलशास्त्रि' में विस्तार से दिये हैं । देखिये, महर्षि के निरालसित वाक्यों से गो-रक्षा के विषय में उनकी कैसी आनुरता प्रकट होती है—

"गो आदि पशुओं के नश होने से राजा और प्रजा का भी नश हो जाता है । क्योंकि जब पशु मृत होतें हैं तब दूध आदि पदार्थ और खेत आदि कार्यों को भी प्रदती होती है । देखा, इसा मे जितने मूल्य से जितना दूध और घी आदि पदार्थ तथा बैल आदि पशु ५०० वर्ष के पूर मिलते थे उतना दूध, घा और बैल आदि पशु इस समय दूरा गुणें मूल्य से भी नहीं मिल सकते । क्योंकि ५०० वर्ष के पीछे इस देश में गवाड़े पशुओं को मारने वाले विदेशी मनुष्य बहुत आ बम् हैं, वे उन सर्वोपकारी पशुओं के हाइ-मॉस तक भी नहीं छोड़ते ।.....हे मांसप्राप्तियों ! तुम लाग जब कुछ काल के परचाण पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं ? हे परमेश्वर ! नृ क्यो इन पशुओं पर ( जो कि बिना अपराध मारे जाते हैं ) दया नहीं करता ? क्या उन पर तेरी प्रीति नहीं है ? क्या इनके लिये तेरी न्याय सभा बन्द हो गई है ?"

### गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

( निदान और चिकित्सा )

[ खे—श्री विवेक वन्दत शंभु त्रिपठी, कन्यारथ—  
श्री अर्षारिच वेदकथार ]

शंका शील स्वभाव

( ११ )

आज कल के युवक मरुवल में संशयात्मिका बुद्धि बढ़ती जा रही है । जिनमें शक्ति होती है वे हमेशा निभय होते हैं । यह एक अवयुध है । इस अवयुध के कारण आज पास का वायुमरुवल निर्जल सा बन जाता है । गुरुकुलों के वायुमरुवल में भी इस प्रकार की कुछ गन्ध यकें भासूम ही । किसी अध्यापक के साथ बात करने वाले ब्रह्मचारी के प्रति दूसरे ब्रह्मचारियों को एक होता है, किसी ब्रह्मचारी की प्रगति को देख कर दूसरों को सम्प्रेक्ष होता है, सम्प्रेक्ष से ईर्ष्या, ईर्ष्या में बहुरूप की बुद्धि, निद्रा तथा ज्वालो हव्यादि अनेक बातें पैदा होती हैं । अन्य ज्ञानों में जिस शंकाशील वायुमरुवल को हम हदमा चाहते हैं वैसा वायुमरुवल गुरुकुलों में तो बिल्कुल न होना चाहिए । किन्तु गुरुकुला में अत्यन्त गन्ध का पाठ प्रतिदिन संस्था समय होता है वहाँ एक एक के लिये भी संशयात्मिका बुद्धि उत्पन्न होती नहीं बल्कि "संशयान्मा-

विनियमित" इस नीति स्व को समझ कर दीवार पर चिपकाने के बाद निर्मय और निःशंख बन जाना चाहिए।

मुझे इसमें गुरुकुलों के कार्यकर्ताओं का दायं मातुल पड़ता है। वे अपनी निरक्षरता के कारण विद्यार्थियों को हथियार बनाने है। अपनी कार्य सिद्धि के लिए कार्यकर्ताओं में फूट पड़ जाने की सम्भावना रहती है और इसकी क्षाप-क्षमा-रथों पर पड़ने पर जैसे जैसे अक्षयारी-रुद्ध होने जाने हैं जैसे जैसे इस अवगुण की बाँझ ही होती रहती है। उसको दूर करने के लिए सदाचारी आचार्य की आवश्यकता होती है, उसकी अनुपस्थिति में निम्न नियमों की ओर प्रह्लाचार्यो का ध्यान आकृष्ट करना ही काफी है परन्तु उस मग को हम अपनावे तथा यह अवगुण दूर हो सकता है पता म मानता है।

कोट अक्षयारथों में दो पक्ष हो जाने हैं उनमें किसी एक को तार वृषप्रह के भाव पदा होन है। अधिष्ठाता या अध्यापक की इस उच्छता को जान लेना चाहिए, उस उच्चर का जा नहीं पकड़ सकता वह अध्यापक अपने कर्तव्य से च्युत हो गया है पता समझना चाहिए। इस उच्चर का पता लगने ही इसका ताकालिक चिकित्सा करनी चाहिए, जिन कारणों से दल रग्दी और या पूर्वप्रह पदा हुए हो उनको नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए। अध्यापक को समान व्यवहार रखने के आदर्श को कार्य रूप में लाना चाहिए।

प्रत्येक प्रह्लाचारी में उसके मतभेदों को साहस पूर्वक कह देने की आदत डालनी चाहिए। इनमें चिन्तक, स्वभाव दूर हो जाता है।

प्रत्येक प्रह्लाचारी के सममें यह हूँस हूँस कर भर देना चाहिए कि यदि किसी की तरफ से निम्दा की दृष्टि से कोई बात कहने में आवे कि अमूक प्रह्लाचारी तुम्हारे लिए यह अविश्रय रखना है तो उसका हिसाब उभी समय अपने सामने कर लेने की नैतिक हिम्मत आनी चाहिए। इन तरफ से थोड़े समय में लिए विरोधमय व युग्मरुल उपलब्ध होगा लेकिन फिर इन बाद्दलों के विरुद्ध जाने पर स्वार्थ का सुर्ष अपने धीबन पर होगा जिसमें न्याय वातावरण दूर हो जावेगा।

किसी की निम्दा न करने की आदत डालनी चाहिए, जिन बाद्दलों को हम अपने सामने खड़ी ठोक कर कह सकते हैं वही बाद्दलों को उसको अनुपस्थिति में भी कहने की आदत डालनी चाहिए। ध्यकि को अनुपस्थिति में उसके बारे में मोन रहना बहुत ही अच्छा है इसमें विरोध कम होगा की मैत्री भाव जागृत होगा।

प्रत्येक प्रह्लाचारी को यह पता लाना जाना चाहिए कि यदि हम किसी का भला करने हैं और उनसे धवने में हमें बुराई मिलती है तो उस से हमारे कीमत घटती नहीं है। इसलिए निम्दा को नृनकर मानसिक व्यथा के प्रभाव में नहीं आना चाहिए।

मनुष्य के स्वभाव की आन्तरी वृत्ति निम्दा की बातों

में रस पैदा करनी है इसलिए ऐसी-गप्यों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।

यदि हमारा उद्देश्य अच्छा होगा और हेतु अच्छा होगा तो संकड़ों वेगमम और निम्दा से भरी बातों के प्रचलित होने पर भी खय का भ्रम म विज्ञ है। यह खय जब से समझ में आजायेगा तब से आन्तरी निर्मय बन जायेगा। हम गुरुकुल के कार्यकर्ताओं में ऐसा वायु-मण्डल बनाने की आशा क्यों न रखें? जो आन्तरी अकर्मण्य होना में जो भी गप्ये लप्या करना है, यही निम्दा की बातें करना; तथा मुनना है और यही संशय-शील बनना है! ऐसा आन्तरी अपनी शक्ति हाँकना है और दूसरे का नाँव दिवाने के लिए शंकाशील वायु-मण्डल बनाना है।

**अशुक्ल शिक्षा प्रणाली का अद्विग्न**

माता पिता तथा समाज— इस प्रणाली के साथ अशुक्ल को बनाने में मुख्य हाथ मता पिता का है, अपने प्रह्लाचारी को आचार्य की गोद में रखने के बाद माता पिता का कर्तव्य पूरा नहीं होता। इसलिए प्रत्येक माता पिता का कर्तव्य है कि वे कर्तव्य च्युत कमी न होने हुए अपनी जिम्मेदारी को दूसरे के सिर डाल देने की आनसी प्रवृत्ति को छाड़ कर अपने बच्चों को विकल्प का विवरण बराबर गुरुओं में मंगाने रहना चाहिए और कार्यकर्ताओं को इस कार्य का सहर्ष स्वीकार करना चाहिए, इस कार्य की सरलता के लिये प्रह्लाचारियों को अपने अपने मता पिताओं के पास सुविधों में भेजने की प्रथा होनी चाहिए। इसलिए निम्न बातें ध्यान में लेनी चाहिए:

यदि सोचा हो तो गुरुकुल के उन्मय पर या किसी दूसरे मीके पर सपरिवार आकर सागे गुरुकुल का और नव सकर अशुक्ल संज्ञान के विकास का निरीक्षण माता पिता को करना चाहिये।

यदि आर्थिक स्थिति अच्छी न हो तो बालक को घर टूलाकर उसके शारारिक मानसिक और अभ्यास विषयक उन्नत का निरीक्षण कर लेना चाहिए। उसकी अच्छा और बुरी आदत को नोट करके आचार्य को लिखना चाहिए और आचार्य का पवित्र कर्तव्य है कि उनके इस कार्य के लिये सुविवित प्रबंध करें।

बालक जानक बन गया है इसलिए उसको सर्वत्र मानना और उसको साथ या खुशना देना माता पिता का कर्तव्य नहीं है य' मानना बड़ी भरी भूल है। केवल विश्रस से मनुष्य पूर्ण नहीं होता। संसार का शास्त्र भिन्न माना है, संसार के भेदक वा न और आ' धयां कुछ और ही प्रथा की हैं। जनक लय विज्ञान होने के कारण जो कुछ बने हैं वह ठोक हा होगा हल न हने टांग अङ्गान की कोई जरूरत नहीं है ऐसा माननाले और इसी धीन से उनको चलने देने में हानिकों के साथ माता पिताओं में अभ्यास किया है, उनको कुछ निम्नों से बाधा जगन् का ज्ञान करना भी माता पिता का परम कर्तव्य है।

[ गेध पृष्ठ 3 पर ]

# गुरुकुल

५ आरिवन शुक्रवार १९६७

## सिर्फ शिक्षण

[ आचार्य बिनोबा ]

एक देशसेवाभिलाषी युवक से किसी ने पूछा—  
“कहिए! आपनी समझ में आप क्या काम अच्छा कर सकते हैं ?”

उसने उत्तर दिया “मेरा लयाल है मैं सिर्फ शिक्षण का काम कर सकता हूँ और उसी का शौक है।”

“ठीक है, अबसर आयीमी को जो आता है, मजबूरन उसका उन शौक होना है, पर यह कहिए कि आप दूसरा कोई काम कर सकते या नहीं ?”

“जी, नहीं। दूसरा कोई काम नहीं करना आवेगा। सिर्फ सिखा सकता हूँ। वह अच्छा सिखा सकता हूँ, यह विश्वास है।”

“हां, हां, अच्छा सिखाने में क्या शक है; पर अच्छा क्या सिखा सकते हैं ? कानना, नुनना, नुनना अच्छा सिखा सकते हैं ?”

“नहीं, वह नहीं सिखा सकता।”

“तब सिलसई ? रंगार ? बड़गिरि ?”

“ना, यह सब भी कुछ नहीं।”

“हस्तों बनाना, पासना धोरा धेजू काम सिखा सकते हैं ?”

“नहीं काम नाम से तो मैंने कुछ किया ही नहीं, मैं सिर्फ शिक्षण का.....”

“भाई, जो पूछा जाता है, उसी में ‘नहीं’ कह देने हो; और कहने हो सिर्फ शिक्षण का काम कर सकता है। इसके मानी क्या है ? बागवानी का काम सिखा सकते हैं ?”

देशसेवाभिलाषी ने जरा गरम होकर कहा “यह क्या पूछने हैं ? मैंने शुरू में कह दिया न, मुझे दूसरा कोई काम करना नहीं आता। मैं हिन्दी-साहित्य सिखा सकता हूँ।”

प्रश्नकर्ता ने जरा मज़ाक से कहा—“अबकी ठीक बात कुछ आपके समझ में आई ! आप ‘रामचरितमानस’ जैसी पुस्तक लिखना सिखा सकते हैं क्या ?”

अब तो देशसेवाभिलाषी महाराज का पारा गरम हो गया और कुछ ऊटपटांग बोलने वाले ही थे कि प्रश्नकर्ता बीच में ही बोल उठा—शान्ति, श्रम, नितिक्षा रखना सिखा सकते हैं ?”

सोचिए, हद हो गई ! आग में जैले मिट्टी का नेल उड़ेल दिया हो। यह संवाद खूब जोर से समकता, लेकिन प्रश्नकर्ता ने तुरन्त पानी डाल कर बुझा दिया।

“मैं आपकी बात समझ गया। आप लिखना-पढ़ना सिखा सकते हैं और इसका भी जीवन में थोड़ा सा उपयोग

है, बिल्कुल नहीं हो-पेसा नहीं है। लेकिन आप यह बतलाएँ कि आप बुनाई सीखने को तैयार हैं ?”

“अब कोई नई चीज़ सीखने का हीसला नहीं है और उसमें भी बुनाई का काम तो मुझे आने ही का नहीं। क्योंकि आज तक हाथ को पेसी किसी चीज़ की भावत ही नहीं।”

“माना, सीखने में कुछ ज्यादा तक लग जायगा, लेकिन आवेगा ही नहीं यह कैसे ?”

“मैं समझता हूँ आवेगा ही नहीं। पर मानिए कड़ी मेहनत से आया भी तो मुझे इसने बड़ा अंजद लगना है; इस लिए मुझ से नहीं होगा; यही मानिए।”

“ठीक है, मैंने लिखना सिखा सकते हैं, मैंने खुद लिखने का काम भी कर सकते हैं ?”

“हां, उकर कर सकता हूँ। लेकिन सिर्फ बैठे लिखने रहने का काम है अंजद; फिर भी उसके करने में कोई आपत्ति नहीं है।” यह बातचीत यहीं पूरी हो गई। नतीजा इसका क्या हुआ, यह जानने की हमें उकलत नहीं।

शिक्षकों की मनोवृत्ति समझने के लिए यह बातचीत काफी है। शिक्षक याने किसी तरह का भी जीवनोपयोगी किया शीलता से गुण्यः

कुछ नई कामनायक चीज़ सीखने में असमर्थः

कि शीलता से बराबर परेशानः

सिर्फ शिक्षण का प्रमथ रहने वाला;

सिर्फ शिक्षण का मतलब है जीव से तोड़ कर विलय किया हुआ मूर्ख। शिक्षण और शिक्षक के माने ‘सूतजीवी’ मनुष्य।

‘सूतजीवी’ को ही कोई-कोई बुद्धिवादी कहते हैं। पर यह सराबर वाणी का व्यभिचार है, तब बुद्धिवादी किले कहना चाहिए ? कोई शीतमनुष्य, सुकरान, कर्कराचार्य अथवा शानेश्वर आदि बुद्धिजीवन की उद्योति जगा कर दिखाते हैं। ‘गीता’ में बुद्धि-प्राप्त जीवन का अर्थ अती मृग्य जीवन बतलाया है। जो इन्द्रियों का गुलाम है, जो वैहासिक से मारा हुआ है, वह बुद्धिजीवी नहीं हो सकता। बुद्धि का पान आभा है। उन्ने छोड़ कर मूह-परतय हो जाने वाला बुद्धि व्यभिचारियों बुद्धि है। ऐसी व्यभिचारियों बुद्धि के जीवन के माने हैं अरथ; और ऐसा जीवनधारी सूतजीवी कहा जायगा। सिर्फ शिक्षण पर जानेवाले शोध इस विशेष अर्थ में सूतजीवी होते हैं। इन सिर्फ शिक्षण पर जो बालों का मनु ने ‘सूतकाध्यायक’ उर्फ ‘वेनम-मोर्गी शिक्षक’ नाम देकर आज के काम में उनका नियंत्रण किया है। ठीक हो है। आज में तो सूत पूबतों की दृष्टि को जीवित करने दखना है और जिनोंने प्रत्यक्ष जीवन को सूत कर दिखाया है, उनसे इस काम में क्या उपयोग है ?

शिक्षकों को पाले आचार्य’ कहा जाता था। आचार्य अथवा आचार्यवाद। सर्व अर्थों जीवन का आचरण करने हुए राष्ट्र से उनका आचरण कराने वाला आचार्य है। ऐसे आचार्यों का करनी से ही राष्ट्र बने है। आज हिन्दुस्तान का नया टांचा बनना है। राष्ट्र-निर्मण

का काम आज हमारे सामने है। आचारवादात् शिक्षकों बिना वह सम्भव नहीं है। यही तो राष्ट्रीय-शिक्षण का मूल सच से महत्वपूर्ण है। उसकी व्याख्या और व्याप्ति हमें अपनी तरह समझ लेनी चाहिए।

युवा कुमुदिशित वर्ग निर्धर और निर्भ्रिय हो जा रहा है। इसका उपाय राष्ट्रीय शिक्षण की अंग खेताना ही है।

पर वह अति चाहिए। अति की दो शक्तियां मानी गई हैं। एक 'स्वाहा' और दूसरी 'स्वधा'। ये दोनों शक्तियां जहां हैं वहां अति है। 'स्वाहा' के माने हैं आत्मावृत्ति देने की, आत्मायाग की शक्ति और 'स्वधा' के माने हैं आत्म-धारण की शक्ति। ये दोनों शक्तियां राष्ट्र-शिक्षण में अत्यंत होनी चाहिए। इन शक्तियों के होने पर ही वह राष्ट्रीय शिक्षण कहलावेगा। बाकी सब 'डन-डन गोपाल' है। सिर्फ शिक्षण ऊपर से दिखाई देता है।

अब तक हमारे राष्ट्रीय शिक्षकों ने बड़ा आत्मत्याग किया है। पर यह उतना सही नहीं। छुटपुट कार्य-याग अथवा मतलबी त्याग के माने आत्मत्याग नहीं हैं। उसकी कसौटी है। आत्मत्याग की शक्ति के साथ-साथ आत्म-धारण की शक्ति न हुई तो त्याग कोई काटे का काया? जो आत्मा अपने को खड़ा ही नहीं रख सकता। वह कुतंग कीने है। मतलब, आत्मत्याग की शक्ति में आत्मधारण पहले से शामिल है। यह आत्मधारण की शक्ति—'स्वधा'—राष्ट्रीय शिक्षकों ने अभी तक भी सिद्ध नहीं की है। इसलिए आत्मत्याग का जो आभास-सा है, वह आभास भर ही है।

पहले स्वधा होती, उसके बाद स्वाहा। राष्ट्रीय शिक्षण को, अर्थात् राष्ट्रीय शिक्षकों को अर्थ स्वधा-सम्पादन की शक्ति करनी चाहिए।

शिक्षकों को 'सिर्फ शिक्षण' की आत्मक कल्पना छोड़ कर जन-ज जीवन की जिम्मेदारी—पैसी किलानों पर होनी है वैसी—अपने पर लेनी चाहिए। और विद्य-पियों को भी उसी में दायित्व पूर्व भाग देकर उनके चारों ओर शिक्षण की रचना करनी चाहिए, अथवा अपने-आप होने देनी चाहिए। 'गुरोः कर्मणि शोषे' इस वाक्य का अर्थ 'गुरु के काम पूरे करके बेवाम्यास करना' यह लेना ठीक है। नहीं तो गुरु की व्यक्तिगत सेवा इनका ही अंगर 'गुरोः कर्म' का अर्थ में तो गुरु की सेवा वह इनकी कितनी ज्यादा होगी? और उसके लिए कितने लड़कों को कितना काम करने को वह जायगा? इस लिए 'गुरोः कर्म' करने के माने हैं गुरु के जीवन में जिम्मेदारी से हिस्सा लेना। वैसा दायित्वपूर्ण-भाग लेकर उसने जो शंका वगैरा पैदा हों उन्हें गुरु ने पूड़े और गुरु को भी चाहिए कि अपने जीवन की जिम्मेदारी निभाते हुए और उसी का एक अंग समझ कर उसका यथाशक्ति उत्तर देता जाय। यह शिक्षण का स्वरूप है। इसी में योद्धा स्वल्प समय प्रार्थना स्वरूप, वेदाभ्यास के लिए रचना चाहिए। प्रत्येक कर्म ईश्वर की उपस्थाना के लिए ही होने पर भी शीघ्र सुबह-शुभ योद्धा स्वल्प उपस्थाना के लिए देना पड़ता है, वही अथवा वेदाभ्यास अथवा शिक्षण के लिए लागू करना

चाहिए। मतलब जीवन की अवावधारी के काम ही दिन के मुख्य भाग में करते और उन क्षणों को शिक्षण का ही काम समझना चाहिए। साथ ही अलग एक दो बक शिक्षण के निमित्त मानकर देने चाहिए।

राष्ट्रीय जीवन कैसा होना चाहिए, इसका आदर्श अपने जीवन में उतारना राष्ट्रीय शिक्षण का कर्तव्य है। यह कर्तव्य करते रहने से उसके जीवन में से अपने आप उसके आसपास शिक्षा की किरणें फैलेंगी और उन किरणों के प्रकाश से आसपास के यानावरण का अपने आप काम हो जायगा। इस प्रकार का शिक्षण यह अर्थ: शिक्षण-केंद्र है और उसके समीप रहना ही शिक्षण पना है।

मनुष्य को पवित्र जीवन बिताने की फिक्र करनी चाहिए। शिक्षण की फिक्र करने को वह जीवन ही समर्थ है; उसके लिए 'सिर्फ शिक्षण' की हनस रखने की जरूरत नहीं है।

[ 'जीवन साहित्य' मे ]

## भगवान की खोज

( म्ब ० श्री स्वा० प्रधानम् जी का एक उपदेश )

नेनपूर्वर्ध न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजप्रमत् ।  
न तमय प्रतिमा अस्ति यद्यन्याम मद्राहाः ॥  
नास्तिक्यपन की उच मे उच युक्तियों के होने दूरे होने जड जगत् के उच मे उच श्रोनों के आकर्षक रूप के होने दूरे पेसा कौनसा मनुष्य है जो संकट के समय प्रान्त में उस प्रभु की ओर नहीं दौड़ता? वह कौन है? कहां है? कैसा है? यह सब जानने दूरे भी मनुष्य बसकी और इस प्रकार दौड़ने हैं जिस प्रकार कि उस माता की तरह बापक दौड़ता है जिसकी गोद में बैठकर उसने एक बार कुछ पीया है। हम लिये उमको न जानने हुए उसका महाशय होरता है। अतिपूजक हो या मनुष्यपूजक, वहां तक कि नालिक भी रूप शब्दों में उसकी महामना, अछुतना को स्वीकार कर रहे हैं। उस अग्रम् का अर्थ कौन प सकता है? इसलिए पूरे तौर पर उसको मनुष्य की दृष्टि में न समाने वाला जानने दूरे भी, हरेक मनुष्य की विकल्पिक उसी ओर बंध जाती है। क्योंकि अपनी निर्भ्रता ने परिचित होकर प्रत्येक मनुष्य अपने समानों में स्वाहायता की आशा में निराश होकर नीचे से ऊपर को उठना चाहता है। यही कारण है कि आज अपने कठिन समय में अपनी का मूर्ख और मत्प्यहादारी हबरी आकाश की ओर दृष्टि उठाता है वहां सत्य युक्तीयन भी ईसा के अनुकरण में अपने आसमान की बाप की मरु ही प्रवृत्त होता है। लाभों ने उमे। पजल। की कड़क और राखल की गरज के भीतर दूढ़ा। करोड़ों मे संसार के उंचे से उंचे पहा। और अम हीने मे अमकीने मुर्खों की गीशनी के भीतर उस की दूढ़ की। जब तक यथायं हाम ने अक्षित रहे तब तक कितना। माया मे बन्धों की तरह संतुष्य रहे। परन्तु योंही हाम नेत्र गुने, तुम्हें आंख अक्षर गई। आकाश का समझे? क्या उसके चमकने हुए मगर दृढ़ सितारों की

श्रीर उस महान् आत्मा की शोज में सर उठावै जो कि सन ऋषियों के एक श्रोर सितारों के भुङ्गुड का कोन्ट दिव्यार्द देता है जिसमे उसका, शोज में अपने पर की शोर पृथ्वी के दूसरे भाग के आकाश का श्रोर नज़र दोड़वै। इस कर्मकार श्रोर प्रकाशित होनेक आत्मा अकस्मात् विल्ल उठने हे कि वह न ऊपर, न यह न तिरछा, न बाँध में, इन स्थानों में उसे कौन देख सकता है। जब उस का कोई आकार ही नहीं, जब उसकी कोई मूर्ति नहीं, जब निराकार आकाश मे भी वह धनि द्युम है तो फिर दिशाओं ? उसकी शोज कहां हो सकती है ? किस दिशा में उभरे दूवै ? यदि पश्चिम न हो तो पूर्व में मिल सकता है ? यदि उत्तर में द्यापक न हो, तो दक्षिण में उसके दर्शन हो सकते हैं ? परन्तु जब क वह सारे भ्रष्टावृद्ध के अन्दर द्यापक है, जब आकाश श्रोर पृथ्वी, जल श्रोर वायु, अग्नि श्रोर विश्वगुन कोई भी उसकी द्यापकता मे पृथक नहीं; तो एक स्थान या एक यत्न के अन्दर उसकी शोज; पूर्ण प्रख्यता है। जब कोई स्थान कोई बस्तु भी उसकी द्यापकता मे पृथक नहीं तो यथा पदोभा, जग गण श्रोर कारी। वैकुण्ठन श्रोर गंग अर्थात् हिन्दी विशेष स्थान में भी सारे सारे किन्हे मे श्रायु का अतिशय प्राप्त नहीं हो सकता। फिर क्या उसकी शोज ही न करै ? क्या स्वयं-व्यापक कहने हवे भी उसके दर्शनों मे यज्ञिन रहें ? कवाचित् नहीं ? अथितु उसमे पवित्र श्रोर उच्च स्थान में शोज करै जहां कि हरे उसके खले दर्शन हो सकते हैं जो (हृगान्य की चौंटी के अन्तरेक पृथ्वी की गहरी मे गहरी कन्दराओं में उपस्थित रहे। क्या वह जेलन महानात्मा जेलन जीवनात्मा के अन्दर ही द्यापक नहीं ? जब मनुष्य के हृदय का वह ईश्वर है श्रोर वही उसका उच्च प्राप्तन है तो फिर अपने अन्तःकरण के भीतर उसकी शोज न करके ऊपर नीचे, दाएँ और बाएँ निगाह दीडाना श्रोर पहाड़, नदी, जंगल गीर बियावान की व्याक छानने किन्ना क्य बुद्धिमाना है ? उस निराकार अमल व्यपक परमात्मा को अपने आत्मा के अन्दर ही रहना चाहिये; श्रोर जब उसके दर्शन हों तो उसके दर्शन मे कभी भी अनुपस्थित न होना चाहिये।

हे प्राणपति परमेश्वर ! आपके सन्स्वरूप को मूल कर में स्थानों श्रोर यन्तुओं के अन्दर आप को दूँडा। मनु-ी श्रोर पशुओं के जीवन के अन्दर आपके प्रकाश की शोज की परन्तु कहीं पर भी शांति न मिले। कृपानाथ ! हम तरह का भटपना स्वैच बना रहेगा ? युक्ति श्रोर प्रमाणों से सिद्ध करे कि आप मेरे अन्दर विराजमान हैं। परन्तु क्या मेरा जीवन सिद्ध करना है कि मेरा यह विश्वास वास्तविक है ? यदि सख-युव अप के हृदयेश्वर होने का मुझका विश्वास हाता तो मैं क्या संसार के भले के लिये आप के सत्य को प्रकाश करने मे रुक सकता ? हे द्यागम्य ! कृपा करके इस अविश्वासा हृदय को विश्वासपात्र बना मुझ मेरे बर्तन्य का संस्था मार्ग दिखाइये।

## रमते राम

( श्री शान्ति )

मैंन भारत की प्रदक्षिणा की है। कलकत्ता से रामेश्वर तक श्रोर कदाची म बम्बई श्रोर यमुन्योटी तक। ऊपर का लामग सारा कूर्दीयर सीमा-प्राप्त भी देखा है।

गत वर्ष काश्मीर की यात्रा के पश्चात् उत्तर-पश्चिमी सीमाप्राप्त—नेबडाबाद, पेशावर, कोहाद, बम्बू आदि गना गया था। उसके बाद कुमायूँ प्राप्त के मैतीताल, राती खेत, अन्धो ! आदि खान देवे।

अ ग दो चार महीनों मे कौटा-बिलोचिखल में बैठा है। गुलाब के फूल बिने। सारा शहर महक उठा। जिपर देवो श्री-पुरुष गुणदर्शन बना रहे हैं। बालक-बालिकाएँ लुडी-दुपों बाणों मे घुस कर फूल चरा रही हैं। युवकों तथा यवतियों के लिये तो गुलाब के फूलों मे एक विशेष आकर्षण है, मादकता है। वसन्त ऋतु में अतिशय प्रसन्नता के करण उनके अपने चहरे भी मिल कर गुलाब हो रहे हैं।

हठार्द मोसम बदल। हवाएँ जल्लों कमन गुलाब की नायुक पं वियाँ गार कर जमीन पर बिहार गईं। चारों तरफ लल्लो, लेकिन सूर्यास्त की बस, फूलों की दो दिनकी लुशी खाम हुई। अब पाँच ऋतु हैं। शालें अति पले भी। गुलाब तो फिर अगले साल ही बिनिगा।

x x x

फूल के बाद फल आने हैं। आप कौटा की मर्कौट में मुबह के वक जाइये। फलों के टोकरे ही टोकरे। अट्टो, मेव, नासपाना, अंगूर, सरदे, नमबूज आदि, आदि। कौटा फलों के लिये मशहूर है। किस्म २ के फल मोटे और रसील। फलों मे यहा का मुकबलता शायद भारत का कोई खान नहीं कर सकता।

x x x

कौटा एक सात्वत्यप्रद खान है। समुद्र की लतह से ५ हज़र फीट ऊंचा। चारों ओर पडाँटियाँ और बीच में विशाल मैदान। हवा मूलाँ श्रोर ताकतवर। कुदरी बरसों का पानी उबडा और माडा। गरमियाँ म—अमले मे अगल तक-ऋतु बड़ा मुहावना। गमरी तो नाम को नहीं। और न घुसने पहाँटों को सो मुसलाधार वषों। हमारे देखने तो फुकत दान-भार बार शली बुँडा बाँदा इड। बस। कहने हे सरदेद्यों क्य होता है। वो भी बरफ की। क्या दत्य होगा / रह सी सफ़ेद बरफ़ीलाँ पहाड पड़ रही हो। कुट्ट कुडासा हो। विसम्भ, जनवरा का महीना। मानो हम हँलिलाल, पट्टब गये हैं।

कौटा, बिलोचिखल का मुख्य नगर है। इसकी आबादी ६५ हज़र क ल अग हागो। इस क साथ लु बनी भी है। यह खान बिलोचिखल का सिद्धार समझना चाहिए। इसीलिये अंग्रेजों ने जार्वी नाक बन्दी की है। हमने बम्बू, कोहाद, पेशावर के पडालों इलाके भी देखे हैं। हमारी राय में बिलोचि कीम अयंक्या गरीब, सीधी और

सुख ही नहीं काय है कि इस ओर उनकी आर-बी-ड बा आकाशनी नहीं। जहाँ ठहरी इतके में शिव की-कूक भी अकेले जाना भय वह होता है वहाँ इस ओर आधी रात में भी कोई झतरा नहीं मालूम होता। अनेक की-पुसक आरंभ पुरकेले रात के बाहर जब तक दूर २ की-सड़को पर घूमने रहने हैं ओन्कोले सुख-दुःख-सुखी-दुःखी-यहाँ की पुलिस और फौज दोनों शिव हिंसकीर हैं। अच-तो सिविक गाँव का भी इन्जाम हो रहा है। रमने-राम ने भी सल्लो-करी-पराने-को-छली है। उसे भी इरे है कि कहीं विदलर बाबा के संरक्ष-कमल-दुधर आये तो उसका दृढ-कमर-दल न शुभ हो जाय।

अस्तु, हमने यहाँ के अनेक स्थान देखे हैं यथा जमन पेशीम, शास(बांग, बंगले, आदि। बिसे-विस्तार का शेरमला जियारत में है। कौटा में लगभग ६० मील दूर। ऊँचाई ७ हजार फीट। हरिनाथो की अशिकता। हवा-वाली स्यादह डरदा। वहाँ के ए. जी. जी. स्वच्छि गरमियों में जियारत रहने हैं। ओर उनके सुस-अरत्कार भी। सन् १९३५ का मध्य-र भूचाल शायद पाठको की स्मरण होता रात के तीन बजे जमीन हिली थी ओर सब इमारतें कुड़ ही लथी में भूमिस्तर हो गई। ज न-माल का बड़ा नुकसान हुआ।

आज ५ वर्षों के अनन्तर कौटा फिर आबाद हो गया। शिघर देको भूचाल-भूक नहीं इमारतें। पहल में बड़ी ओर सुखर। नई सड़कें, नये बाग।

सबसे अधिक चलेती का नाम गाड़ी है। इसने तो चलना है। यदि आप चाहें तो इस पर चढ़ जायें। नहीं तो बड़े २ तोंका करें। आपके रोने-धोने व दूरा-भला कहने में इसका कुछ नहीं बिगड़ना।

हसी से "रमने-राम" ने आशा का पाठ पढ़ा है। आशा ही जीवन है। जीवन गति—निरन्तर गति—का नाम है। शायद 'जगत्' शब्द का भी गही अर्थ है।

[ पृष्ठ ३ का रोष ]

माता पिताओं ने अपने छात्रकों के लिए इस समाज में कौनसा पैसा खान बनाया है कि जिस में वे रह सकें। बालक माता के गर्भ से जब बाहर निकलता है उस समय प्रैसा प्यान नर्को के लिए रहते हैं क्या प्रैसा प्यान माना पिताओं ने बालकों के लिए रक्षता है? जिन अंगन में राष्ट्रीय शिक्षा के प्रति अभाव राजकीय दृष्टि में उपलब्ध किया गया था उन अंगन (राष्ट्रीय-मूलजन) के फल के परिष्कार-कोके के लिए अभाव-प्रयत्न-यै पुरी न करना शासक की इच्छा हो तो वह छात्रक समाज के कोसे पद को शोभित करें क्या यह देवना माता पिता का कर्तव्य नहीं है? समाज के अन्दर खानक का भान हो ओर अग्रणी नियुक्त हो वेसे क्या प्रयत्न माता पिताओं ने और समाज ने किए हैं?

अनेक-संस्थाओं का अंश-भोगी और शासक प्रजा के साथ संघर्ष होने से उस गुरुकुल शिक्षाप्रणाली में पढ़ने वाले छात्र-कों को भारत में कौनसा खान भलना चाहिए, यह सोचना

माता पिता तथा गुरुकुल के कार्यकर्त्तव्यों का और समाज का शिरोकलोर से फर्क है।

### गुरुकुल समाचार

गुरुकुल में शीघ्रता से अस्तु परिवर्तित होती जा रही है। रात के समय कुल २ डंड पढ़ने लग गई है। महाचारियों का स्वस्थ अस्तु की विषमता के होने पर भी उपाय है। महाविद्यालय में महाचारियों की संख्या बढ़ कर २२ होगी है। पिपकारी मन्-शायर की पार्सी सकुल गुरुकुल पहुँच गई है। श्री डा० इन्द्रसेन जी आर्युर्वेद-शास्त्र गुरुकुल की सेवा में विरत होकर गत १६ सितंबर को भारतीय सेवा विभाग में उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो रावलपिंडी चले गये।

### श्री डा० इन्द्रसेन जी की विदाई

गत सातवार के दिन श्री डाक्टर इन्द्रसेन जी के गुरुकुल की सेवा से त्यागपत्र देने पर, उनकी विदाई की समाधी उपाचार्य लालबन्धु जी के सभापति-त्व में हुए जिसमें उनकी कुल की ओर से निम्न आशय का अभि-मन्दन पत्र दिया गया—“आपने जिस खान, अद्भ्य-उत्साह, धैर्य और कार्य कुशलता से इस कुल माता और आर्युर्वेद महाविद्यालय की इस छोटे से कार्यकाल में सेवा की है यह इस कुल के प्रत्येक व्यक्ति को विदित है। यह आपके ही उपयोग का फल है कि गुरुकुलाय आर्युर्वेदिक बनस्पति वादिका आज लहलहा रही है। हमने इस अकिंचन अभिमन्दन पत्र की अपेक्षा यह वादिका ही आपका यथार्थ रूप में गुरुगान कर रही है। आप ही का यह कार्य था कि आज गुरुकुलीय गेय परिष्काराला वर्तमान समय में उभरती की सीमा पर पहुँच गई है। अ पक सरल व्यवहार और सेवा भाव हमें सदा आश्चर्य देना। आपके जाने से गुरुकुल को, विशेषतया आर्युर्वेद महाविद्यालय को जो क्षति होगी उसे आत्माती ने पूरा नहीं किया जा सकता।

आप जैसे उपयोगी महातुभाव का गुरुकुल से इनामिस्सन्देह हम सब के लिये दुःख जनक है। लेकिन हमें इसके साथ इस बात का हर्ष भी है कि आप और भी अधिक प्रतिष्ठित और अरत्वाधिक पद पर जा रहे हैं। इस मकलन पर हम आपको बधाई देने हैं और शुभ कामना करने हैं। आप उपाचार्य के प्रतिष्ठित इस कुल प्रता के छात्रक भी हैं आशा है आप जहाँ भी जायेंगे इन संस्था के नाम को उजल करेंगे।

इसने बाद डाक्टर जी ने महाचारियों के प्रति निर्देश करते हुये कहा कि तुमको सदा खान के लिए यक्षशील होना चाहिए और जो तुमने अपना उर्दे रूप बनालियाओ वहाँ वह कैसा ही क्या न हो उसके लिये रात दिन एक करके उस तक पहुँच कर हो दम लेना चाहिए।

### स्वास्थ्य समाचार

१ म० इयामलित १ अ० की विकास अंगर, २ म० सुखसेव ३ अ० की विभवजयर, ४ रागपदा ५ अ० की फोड़, अच सब अच्छे हैं।

## गुरुकुल कांगड़ी

की

# प्रसिद्ध औषधियां

### भीमसेनी सुरमा

आंखों की सुहाये तक सुरक्षित रखने के लिए "भीमसेनी सुरमा" नियमपूर्वक इस्तेमाल कीजिए। आंखों से पानी बहना, खुजल, कुंकर आदि रोग कुछ ही दिन में दूर हो जाते हैं। मूल्य ॥२॥ शीशी

### भीमसेनी दन्त-मंजन

इसका प्रतिदिन व्यवहार करने से दांत मोता के समान सफेद और चमकदार हो जाते हैं। दांतों से खून पीप का आना बन्द हो जाता है। मूल्य ॥२॥ शीशी

### ब्राह्मी बूटी

दिमागी रोगों के लिए बहुत प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होता है और आंखों की उज्योति बढ़ती है। बकल, अध्यापक, तथा क्लक आदि दिमाग का काम करने वालों को अवश्य हा इसका सेवन करना चाहिए। मूल्य ॥३॥ सेर

### ब्राह्मी तैल

खान के बाढ मिर पर लगाने के लिए ब्राह्मी का यह तैल बहुत उत्तम है। इससे दिमाग को ठंडक तथा तरावट पहुंचती है और आंखों का उज्योति बढ़ती है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

### च्यवनप्राश

स्वादिष्ट !

बहिया !!

रसायन !!!

मूल्य १ पाब (१८), आष सेर २८, १ सेर ४)

पजेन्टों के लिए विशेष सुविधा

पता:-गुरुकुल फार्मेसी, गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

ग्रांथ { देहली—बांयमी चौक ।  
मेरठ—सिपर रोड ।

गजेंसियां { लखनऊ—एजेंसां गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी श्रीराम रोड ।  
लाहौर— " " " " हस्तमल रोड ।  
पटना— " " " " मछुभाटोला बाँकीपुर ।

चौधरी हलासराय के प्रयन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मद्रित तथा प्रकाशित ।



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य )

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार १२ आश्विन १९३०: २७ मितम्बर १९५०

[ संख्या २४ ]

## हमारा सूर्य

( स्व. श्री श्री ० भद्रानन्द जी के अमरकविन धर्मोपदेश में )

यद्येन यद्यन्मया जन्म देवास्तापि धर्माणि प्रथमाभ्यासन् ।  
तेह नाकं सविमानाः स्वस्वन् यत्र पूर्वे साध्याः स्मिन् देवाः ।  
वस्तु ० ३१ । १६ ।

हिन्दसक जन्मुषी में भरे जंगल में अन्धेरी रात को मदकना और रास्ता न पाना कैसा भयानक है! मनुष्य बेर घर कांपता है और डर कर भागता है। जब तक कोई रास्ता बताने वाला और रोशनी के उजाले में भयानक स्थानों से उसको बचाने वाला न मिले उसका हृदय शक्ति नहीं पाना और भयका भय दूर नहीं होना। समझता है कि अब किसी जन्तु ने भया। कल्पना कर लो कि ऐसा न हुआ—कहीं खोई व स्वयंके में गिर गया निकलने का मार्ग न पाया—तो भी बिचारा व्याकुल होता रहा और अपनी अममर्थता तथा भ्रष्टके पर रुचन किया। अबचा अन्धेरे में किसी नगी में बह गया तो और भी व्याकुलता का सामना करा। निम्नन्देह अन्धेरे में जंगल की यात्रा कष्टों का घर है। रोशनी के उजाले में मनुष्य अपना परावा तथा अर्थनीच स्व देख लेता है। अन्धेरे में ठोकर पर ठोकर; भ्रष्टके पर भ्रष्टका लगता है और स्थान-स्थान पर गिरता पड़ता है। परमात्मा ने हमी लिये संसार में सूर्य का उजाला किया है कि उससे प्राणी सुरक्षा, सुखपूर्वक अपने लक्ष्य पर पहुँच ज में और मार्ग के कष्टों से आराम पावे। अहा! हमारा मनु हम पर कैसा दृश्य तथा छुपाव है। हर समय हमारा सुख रखता है। हमें गिरने और भय से बचाता है। ठण्डी ठण्डी वायु हर उदरे पर हमें प्राप्त है। शीतल जल पीने के लिये है। अच्छी अच्छी लुभावनी वनस्पतियाँ तथा नदियों के शीतल-जल आभर आग लाने और आँसों को तराबट देते हैं और हमारी शतोष्ण पृथ्वी को सींचते हैं। समुद्र, बरफ की बहाने, सूर्य, चान्द व तारासम्पन्न, पृथ्वी के बहुयुक्तपदार्थ, भीषण पदाथ हमारी आयु के साधन हैं। वह सब पदाथ परमात्मा की दैव हैं उनके सहवास में हमें

जिस प्रकार भानन्द है, वह मृष्टि की किसी वस्तु में पाया नहीं जाना।

कोई अन्धे से अन्धका खाना खावो। सोने, चान्दी व अनलम, व जलकून का भूषण धारण करो। राजा व मन्त्राट बनजावो। भूमि व आकाश पर चढ़ जावो—अगर परमात्मा प्यार न करे तो यह मामान हमें अन्धका नहीं लगता। उसके सामने हम कैसे ही निर्धन, हाँ-यदि वे हम में प्रेम करते हैं तो हमारे लिये बड़ी स्वर्गधाव है। क्यों वह ऐसा सुन्दर, बुद्धिमान, पकाशमान, विचित्र आनन्दस्वरूप, न्यायकारी सर्व शांत्काम है कि विशाल सूर्य चन्द्र आदि उसके द्वार पर रहे हैं। वायु जिसके आगे हाथ बांधे खड़ी है—जल जिसका आशापालक है अपि जिसका तुच्छ सेवक है, वह महान से महान, तेजस्वी से तेजस्वी है। राजाओं का राजा है। मय का दुःखविनाशक और रक्षक है। जो मनुष्य मन्त्रे हृदय में उसका उपासक है वह सदा उसके सहायक है वह मनुष्य के साथ हो तो उसके मार्ग व जंगल में चाहे किननी कठिनाईयें हो किञ्चिन् मात्र भयभीत नहीं होता—क्योंकि वह सब भय तथा कष्टों का दूर करने वाला है। यह सत्य है कि दुःख उसके नाम से भाग जाते हैं। परन्तु कठिन्ता यह है कि वह बाध चक्षुषों से दृष्टिगोचर नहीं होता और न महसूस होता है। उसके दर्शन के लिए आत्मा की स्वच्छता तथा आत्मा को पवित्रता, तथा उभता आवश्यक है। परमात्मा कहते हैं:—'यश्चमयजन्मदेवाः' कि जिन लोगों ने विश्वास के सूर्य से रोशनी पाई है। वहा शुद्ध होकर हम स्व स्व सकते हैं और जिन मनुष्यों ने विश्वास के प्रकाश से अपना आत्मा को शुद्ध नहीं किया वह अन्धे हैं और सूर्य का दर्शन नहीं कर सकते हैं। सत्य है जब सूर्य अपने आलस्य तथा प्रमाद में पक्षर सूर्य से अपना आँव चुराने हैं और मन्त्रे बन जाते हैं उन्ध परमात्मा का दर्शन प्राप्त नहीं होता। इसलिये हे परमेश्वर-देव का हमारे हृदय में प्रकाश करो ताकि शुद्ध हृदय से हम आप की शरण में आसके और आप के दर्शन करने का आनन्द पाने के अधिकारी बन सकें।

## कृष्ण कौन ?

[लेखक— आचार्य प० चन्द्रकाश बेकनासकरन वैदिक विचार्य एकादर]

गीता के अन्त में संजय की उक्ति है "यत्र योगेश्वरो कृष्णः यत्र पापार्थो धनुर्धरः। तत्र श्री विंजयो भूतिर्भवा नीति मतिर्मम॥" जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं, धनुर्धर अर्जुन हैं वहाँ लक्ष्मी है, विजय है, स्थिर नीति है—यह मेरी उद्द सम्मति है। स्लोक में ऐतिहासिक कृष्ण तथा अर्जुन की आश्रम में असौकिक कृष्ण की अगोभी अलस विचार्य व रची है। कृष्ण तथा अर्जुन की इस शुद्ध लक्ष्यता को समझने में गीता का हार्द समझ आ सकता है। कृष्ण समय पूर्व पादार्यों तथा कुक्षेक पाश्चाय विचारकों ने एक कपोल कल्पना उद्धार थी कि अगवतुगोता पर ईसाइयनका, कृष्ण-चन्द्र पर ईसा मसीह का प्रभाव है। ओप'रूम की कथाओं में, पशिया मानरन के बीसली धर्म में कृष्ण जीवन का मोल है। इन कल्पना को शिलालेखों तथा माहिय्य के प्रसन्न प्रमाणों से निस्सार प्रमाहित किया है। कृष्णचन्द्र के वैष्णव अर्थ को प्रतिपादित करने गोप-गोलोक संवन्धी अनेक लीलायें भारतीय वाङ्मय में विचार्य देवी हैं। अरवेद के "विष्णुगोपा काव्यः" "यत्र गावो भूरिष्टुता प्रयासः" इन मंत्राओं में इन कथाओं का बीज अद्यत है। ईसा तथा बाइबिल से पूर्व के वेद की इन अमर काव्यताओं में जो विष्णु गोपा हैं वे ही महाभारत-पुराण तथा भागवत के इष्टों में लक्ष्यन्द् गोप बन गये हैं। फिर इन्हीं वेद के विष्णु तथा महाभारत के गोप कृष्ण ने कपक की झोड़नी झोड़कर sheep तथा lamb के मार्गप्रदर्शक shepherd—ईसा मसीह का कप कर्मी न धारण किया हो ?

महाभारत के ऐतिहासिक बानावरणों में जो कृष्ण तथा अर्जुन नायक रूप में अभिनय कर रहे हैं। उनका कर्मणः विष्णु का अर्थ और इन्द्र के पुत्र रूप में स्मरण करने पर वेद के विष्णु तथा उनके सखा इन्द्र "इन्द्रस्य पुत्र्य, सखा" इसारी अर्थों के सामने नाचने लगने हैं। महाभारतकार ने अज्ञानावस्था के आद्य स्लोक में ऐतिहासिक कृष्ण तथा अर्जुन के चित्रों पर अध्यात्मिक रंग को लाली किङ्ककर का ही अनुपम कहा है "नारायण नमस्कृत्य नरं वैच नराधम। देवी सरस्वती चैव ततो जपपुत्रीर्येत्" कृष्ण नार अधीत जीवों के समूह क अयन वा शरणा होने से नारायण ही और अर्जुन कर्मफल में रमण करने की इच्छा न करने से निष्काम पथ का पथिक 'न रमते हतनरः'—अनुष्ठी का मार्गदर्शक "नवतीति नरः" है। गीता में अर्जुन ने कृष्ण को सखा कह कर पुकारा है। "सन्वत मन्वा प्रसमं यदुक्त हे कृष्ण हे यादव हे सकेति"। यह मित्रभाव कथन कृष्ण तथा अर्जुन के आध्यात्मिक रूपक नारायण-नर और जीव तथा शिव में भी दृष्टिगोचर होता है। कठोपनिषद् की मुनि शारी है कि "इह सुपर्णं सयुजा सखाया समानं कृष्णं पारिष्कज्जते। अयोध्याः पियले स्वाहसि—अनन्यकाम्यो ऽऽविष्वाकस्येति" अर्थात् संसार कर्णं पल्लवा व अन्वय वृक्ष पर मोक्षम तथा उद्धार रूप में जीव तथा परमात्मा क की ही पक्षी मित्रभाव से बैठे हुए हैं। जीव अन्वय अन्व-

युक्तिमान् है। अन्न सर्वत्र सर्वशक्तमान् आत्मन्वय "उपाम" पुत्र्य है। अन्न संसार में व्याप्त होते हुए भी अनात्मक है अस्मृतिपरकानुक्त है। यही अनात्मिक कृष्णचन्द्र जी ने अर्जुन के सारथी रहने हुए निःशरण रहकर पालन की है। संसार सरीसृप में एक पक्ष के समान अर्थक रहने में ही प्रभु की प्रभुता है। राजसूय यज्ञ में दिये गये निलक को महाभारत संग्राम का मूल समझ अर्थमें यह के समय अर्थ्य लेने से इस्कार करने कृष्णचन्द्र जी ने असंगता की पराकाष्ठा बतार् है। वेदों के अन्न तथा सांख्य के पुत्र्य में इसी अनात्मन के भाव की लूची देवी जा सकती है।

कृष्ण के पवित्र सारिज पर मध्यकाव में अनीति का आश्रय आ गया था। समय समय पर सुधाका के पहार से कृष्ण जीवन पर चढ़े हुए इस आश्रय को दूर किया जाता रहा है। अर्थ्य अलसक उपनिषद्, को वांछ के साथ पुराणों की महत्ता लुप्त होती गई। रामचन्द्र जो भारतीय इतिहास में अर्थमें शुद्ध वेध में विचार्य दिये। कृष्ण परने के पीछे क्षिप गये। बंकिमचन्द्र की तर्क प्रधान नीरसीर विवेक दृष्टि न कृष्ण के ज वन से संवह धर्म के गहन भावों की उपेक्षा करके कृष्ण जीवन को सर्वभेद रूप में उपस्थित करने का लुप्त्य प्रयत्न किया है। कराल काल महावंश का तरंगों में आज भी कृष्ण जीवन के कुक्ष अमर अर्थ्य अमर रहे हैं। इसी लिये हम कहने हैं कि कृष्ण जीवन की ऐतिहासिकता में भी अमरता क्षिप हुई है। नैरानमहाप्रभु भक्त चेतन्य वेध तथा यत्नमार्चार्थ के पथ के संस्वा-मियों ने कृष्ण कथा की आध्यात्मिकता बतार् है। गंगवत में भी कृष्ण के आयुष्यों को प्रभु के विविध गुणों के रूप में वर्णित किया गया है। वायुदेव, स्वर्ध्व, प्रह्लुण तथा अनिकर के चतुर्भुज का कर्मणः प्रभु, जीव, प्रह्लकार तथा मन के रूप में बचन करके व्यास के शारिर् आश्रय में कृष्ण के अध्यात्म स्वरूप का महत्ता बतार् है। सर जोरं श्रीय-संन के निर्र शर्मों में यही कृष्ण भाव भरा हुआ है। "Hence the soul devoted to the duty prescribed by Rddha self-abandonment to her beloved Krishna and all the hot blood of Oriental passion."

यस्तुतः संस्कृत साहित्य के प्राचीन इतिहास में कविता की धारा न इतिहास के पुष्प विस्तर गये हैं। इतिहास को कल्पना से अनुप्राणित करने प्राचीन विचारकों ने विश्व के शुद्ध सत्य प्रकट करने का दुष्कर मार्ग निकाला है। "अविर्भावकः शरीरं यत्न निर्वृत्तिवाक्यः तवोत्तरं परः अन्न कृष्ण इत्यभिधाने" स्लोक में कृष्ण के व्युत्पत्तिनाम्य यौगिक अर्थके द्वारा अतिमानव रूपा प्रतिपादन है।

कृष्णचन्द्र जी में विष्णु (व्यापक-प्रभु) का अन्वा होने से जहाँ वे वैष्णव हैं वहाँ उनम विष्णु अर्थात्-सर्व का कपक करितार्थ होम में भी वे वैष्णव हैं। नील आकश में बाएँ दिशाओं में अगमी किरणें फैलाने मात्रं स्वर्ण को विष्णु कहने हैं—इसी प्रकार नील वरु चतुर्भुज, पीताम्बर-धारी कृष्ण की विष्णु का अन्व्य कहा आ सकता है। विष्णु के आधिभौतिक स्वर्ण महिमा को स्वयंभवे के लिये कथियां

ने कृष्ण जीवन को उपयुक्त रूप में चित्रित किया है। इसी प्रकार गोपियों को रास में रस लेने वाले कृष्ण में स्नेहियो के रस को केन्द्र स्थानीय स्वयं विष्णु) का स्वयं देना जा सकता है। कहीं कहीं रास में अथ विष्णु कृष्ण तथा राधा दोनों बतलये गये हैं। यह माना शक्तियों ने अति-विगत ब्रह्म स्वरूप बनाने का एक प्रयत्न है। कृष्ण जी रास के मध्य में ही नहीं अपितु परिधि में भी हैं—यथा प्रभु संसार के केन्द्र तथा परेष्ठ दोनों में (Both Centre and circumference) नहीं है? परब्रह्म विश्व के अणु अणु में व्यापक-अन्वयामी होने हुए भी 'Transcendent' (असीम) परात्पर हैं "स्व घोषण प्रेतम्ब विभुः प्रजानु" रास में रमण करने हुए भी प्रभु नित्य ब्रह्मचारी हैं। यह रहस्य प्रभु को स्वयं 'उग्रगोप' रूप में बना कर उसमें संकीर्ण के अग्र्यांगेय से पुष्ट किया गया है।

कहीं कहीं कृष्ण जीवन को कुञ्जा के साथ जोड़ कर कल्पित चित्रित करने का प्रयत्न हुआ है। परन्तु सच्चाई यह है कि सत्य, रत्न, नमस् रूपी गुणों की विषमावस्था ही कुञ्जा है। पुरुष को नीरस बन कर इस से भागना नहीं है। अणितु इसे समस्त में लकर लुब्ध बनाना है। गोता का सौम्य सहासवादी सौम्य से रानी अन्ना म भिन्न है। गोता का दृष्टि में पुरुष प्रकृति में रचना हुआ भी असंग रहता है। भागवत के दृष्टिकोण में कृष्णलाला की कथा का रहस्य खोला गया है। पुराणाय में भगवान का कल्याण। शक्ति की महत्ता का ही प्रदर्शन मात्र है। कृष्णचन्द्र जो ने गोपियों को वृद्ध कर लिये थे इस हीनो-पमा से प्रभु तथा हम आत्माओं के बीच में कोई अग्रकाश नहीं है। इस नाविक साय को प्रकट किया गया है। श्रीक साहित्य में आत्मा (Psychic-जीवन्ती) धर्मराज के सन्मुख नभ दशा में उपस्थित नृया करता है। इसका भी यही तो अर्थ का रहस्य है कि कृष्ण का गया जन प्रि। कह कर प्रभु को प्रेम का भूया बन कर कथि ने स्वा ही सौन्दर्य भर दिया है। भागवत के रास के रूपक में और उपनिषदों के उद्देश्य में केसा अर्थ पाठ्य आर सौन्दर्य है? संसार का अन्त। शक्तियों अन्तराश्रय का तथा अन्त-वृत्तियों का 'Lug of life' ही रास है। इस सन्ध को समझ कर ही हम "रसो वैरमः" के इस वाग्य में दुःख की लग सड़न हैं। कृष्ण का यह स्वरूप ही हमें प्रिय है इसी स्वरूप ने कृष्ण के इतिहास को अलौकिक रमण दिया है। मयुस्वत सत्त्वमी ने इसी लिए कहा है "क-शात् परं किमपि तत्त्वमह न जाने"।

## गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ से०—भी दिनेश नर्मदा शंकर त्रिवेदी, अनुवादक—

श्री चमराज वैद्यकङ्कार ]

(१२)

राज्य—गुरुकुल प्रजाती को सबकी सहायता देने का कार्य राजा का है। जिस समय राजे महाराजे गुरुकुल को आश्रय देने थे तब इस प्रजाती की सफल-

ता थी। परन्तु इस समय तो यह देश पराधीन होने के कारण "राजा राज्य" रक्षित नहीं रहा। राज्य का स्वयं प त राजा नहीं है परन्तु राष्ट्रीय भावना द्वारा बलिदान करने वाले राष्ट्र नेता ही राष्ट्र के स्वयं पति हैं। ओर पराधीन राष्ट्र के पति के पास भावना और आत्मबलिदान के अनिदिक अन्य भौतिक साधन नहीं हो सकते। इ.लि. गुरुकुल जैसी राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं को जो सहायता राष्ट्रपति के हाथ से होनी चाहिए वह हो नहीं रही। किसी भी संस्था का संचालन करने के लिए अधिकार और अर्थ संयुक्त अधिकारों की सहायता होनी ही है। परन्तु आजकल यह न होने के कारण राष्ट्रीय संस्थों को संकीर्ण धानावरण में काम करना पड़ता है। इतना ही नहीं परन्तु किन्हीं ही बार विरोधी धानावरण का भी दूर करने की आवश्यकता पड़ती है। और शिक्षण का कार्य तो शासन एवं रम्य धानावरण में ही अच्छा हो सकता है। इसके अनिदिक अर्थ समाज धन्य है कि उसने असंख्य भूमिधानों में गुरुकुल प्रजाती के प्रयोग को साधना जारी रक्की है। राज्या आश्रय हो तो गुरुकुलके छात्रों को समाज में प्रतिष्ठित स्वतंत्र सिने इतना ही नहीं परन्तु उनको विद्या और शक्ति का योग्य उपयोग हो सके। इस प्रकार के संकीर्ण अवसर होने पर प्रयोग के नाकाल्य के लिए नीचे लिखे हुए प्रयत्नों का आश्रय पड़ता है।

(क) राष्ट्रीय भावनाओं को पुष्ट करने वाला संस्थाओं एवं अर्थ नेताओं का सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

(ख) राज्यकमचारियोंके हिन्दु होने से उनमें विश्वास जागृत फैलानी चाहिए। और उनको इस प्रथम लक्ष्यी विवेचना समझनी चाहिए।

(ग) हिन्दू के हिन्दु राजा, राजगुरु, एवं प्रधानों में गुरुकुल प्रशाली, प्राचीन भावना का चिन्तनार्थ केंद्र देने का चाहिए। यह कार्य करने वाले, कोई राजांच अर्थ-समाज में होना चाहिए।

यदि देशों राजाओं को इस रहस्य को पृथगत समझाये तब उनकी ओर से आर्थिक सहायता के अनिदिक उनके राज्यों में गुरुकुल के छात्रों को भी अच्छा स्थान मिल सकता है। इस तरह धार्मिक भावना प्रजा में फैल सकता है। स्व० बड़ोदानेश सयाजिराव गायकवाड़ के समय राजपि स्वामी निरानन्द जी का नेश बहुत ही आदरणीय सरकार करने थे। एक समय महाराज ने राज्य में कोमली भाषा और लिए र-पु-भाषा के तोर पर नियुक्त करनी चाहिए इस समरणा के लिए भिन्न भाषा शास्त्रियों को काम्कॉरस की। अन्त में जब महाराज ने स्वामी निरानन्द जी से सलाह मांगी तब उन्होंने ने कहा था कि हम प्रजा को नपुंसक बनाना नहीं चाहते 'अत जिस भाषा नपुंसक लिग न हा यहाँ भाषा हमें स्वीकार करनी चाहिए। जैसी भाषा हिन्दू होने से राष्ट्र लिए और भाषा के तोर पर हिन्दू का प्रस्ताव पास हुआ। यदि स्वामी जी का महाराज के साथ संपर्क न होता तो यह जन कल्याण का कार्य नहीं हो सकता था। (शे० पृष्ठ ५ पर)

# गुरुकुल

१२ आश्विन शुक्रवार १९६७

## गांधी जी का बल

(श्री आचार्य राम शंखे जी)

जब पहली ही बार गांधी जी संसदात् परिक्रित होने का—सागरमती आश्रम में चार दिन तक उनके साथ निकटता से रहने का—सुअवसर प्राप्त हुआ तो उन संमने जो बात चीत की वे आध्यात्मिक थीं। उनसे पूछने के लिए कुत्र प्रश्न लिखकर ले गया था, वे सब आध्यात्मिक प्रश्न थे।

अप्य कई उच्च काटि के पुरखों को मैं जानता हूँ जो कि या तो निराश होकर योगसाधन और तपस्या के लिए हिमालय जाने की योजना कर चुके थे या कर्मयोग का दृष्टि से 'अनाकिस्टर' पार्टी के सदस्य हो चुके थे किन्तु गांधी जी की अ.बा.रा.र.न.कर उदर गये। गांधी जी के किसी लेख, भाषण व वचन का समाचार पाकर उनमें एक उग्रमूल आशा का संचार हो गया। इन पंक्तियों का लेखक भी गुरुकुल काँग्रेसी की सातवीं आठवीं अंकी में देश के उद्धार के लिये बॉम्ब बनाने की संवारी कर चुका था, पर दसवीं अंकी में ही दक्षिण अफ्रिका के कोई गांधी जी के लेख पढ़ने को मिले तो एक नये प्रकाश के लिए आँखें खुल गयीं। ऐसे हज़ारों, शायद लाखों, लोग हैं जिनकी जीवन धारा का गांधी जी ने बहुत अधिक पलटा दिया है। गांधी जी में ऐसा अद्भुत बल कौनसा है ?

यह कोई बाह्य भौतिक बल तो नहीं है, एक प्रकार का अद्भर का आध्यात्मिक बल है। सचची धार्मिकता का बल है, और ठीक ठीक शब्दों में कहें तो, अत्युच्च नैतिक बल है। अपने इस बल द्वारा अपने वैयक्तिक जीवनरूपी मयानी से जब जब उन्होंने योग, कइसहन और तपस्या के लिये देशवासियों को आह्वान करने हुए देशको आन्दोलित किया, प्रया, तब तब जिनमें जरा भी आध्यात्मिकता, सचची धार्मिकता और नैतिकता थी वे अवश्य प्रभावित हुए और मन्थन की तरह ऊपर आ गये। आन्दोलन के वेग में कुछ समय हल हो वस्तुत् भी कमा कभी ऊपर आ जाता। यही और कभी कभी अधिक सुख मन्थन भी होर तक नीचे पड़ा रहा। पर बार बार के मन्थन से भारत की सब उन्कड़ना गांधी जी के बल से ऊपर आती गयी, सामने आती गयी है इसमें कुछ सन्देह नहीं। अब एक और मन्थन का समय आया हुआ है।

जब धार्मिक कहाने वालों संस्थाओं में भी मासुली 'पॉलिटेक्निक' और कपटनीति मन्त्रों से चलती है, वहाँ कांफ्रेंस जैसी विशाल और राजनैतिक संस्था में बहोतक सत्य और अहिंसा को प्रेषितवाने के आना गांधी जी का ही

काम है। गांधी भारत में ही नहीं किन्तु दुनिया में नैतिकता की पवित्रता को स्थापित करने पैदा हुए वीरने हैं। आश्विनिया में हिंसा घोर से घोर रूप में अपना दौर और वीमन्स ताण्डव करने उठ खड़ी हुई है तो इधर गांधी जो मैं भी उनने ही जोर से, बहिष्क उरने भी अधिक जोर और आत्म विम्वस को साथ बहिस्ताणिक मुक्करानी हुई उस हिंसा दलवी का मुकाबिला करने के लिए जागृत हो उठी है। गांधी जी अब कोई देवता आश्रय, कायक नया कदम उठाने हैं तो बहुत बार उनके नजदीकी साथी भी हैरान रह जाते हैं। मामों उन की नैतिकता की ऊँचाई को देखकर हमारा सिर लकराने लगता है। पर हम देखने हैं कि उनकी नैतिकता न केवल हिमालय नैनी ऊँची है किन्तु अपार समुद्र की तरह विरान और फैली हुई भी है। क्योंकि वे जो कदम उठाने हैं वह आत्म जन्ता के साथ आकाशना स्थापित किंगे हुये उनके पवित्र हृदय में निकला होने के कारण जनसाधारण में जागृ का सा असर करना है और व्यापक परिणाम उत्पन्न करना है।

पर ऐसा बल रचने वाले गांधी को पाकर भी आजतक भारत वर्ष गुलामी में पड़ा है। कोई प्रश्न सकता है—हम मुनें या न मुनें जगत् आज पृष्ठ रहा है—गांधी को पाकर, ७२ वर्ष से गांधी को अपना कर भी, ले भारतवर्ष ! नने क्या सिद्ध किया है, क्या प्राप्ति की है ? ! इसका उत्तर जिनना जल्दी हो सके, मानववासी माह्यो ! वे दो, ममय बरी नेत्री मे गुजरता जा ग्या है !

## मीन क्यों ?

[ श्री ज्ञानी ]

यह एक मनोवैज्ञानिक मन्थ है कि चिय चीत का हम में अ.पान तो वह हमें निर्गो र पिय प्रतीत होती है। पनने आरमियों को हमी कारण मोटे मनपय भले लगने है। मेये ही निर्गेलों को मवल। निर्गेलों को पनी। मेगियों को मथ। तथा कृपों को मन्धर।

कभी २ यह भावना ईर्ष्या अथवा घृणा में भी परिवर्तन हो जाती है यहाँ तक कि कई व्यक्तिक हय पाणा मे पागल होकर कभी २ दुमरों को हिन्मा तक कर देने हैं।

X X X

परन्तु यहाँ हमें इनकी दूर नहीं जाना। हइ अपने विषय में कह सकते हैं कि हमें वो व्यक्तिक पिय प्रतीत होने है जो शान्त, सम्मी, और वृद्धिमान हो। मयों का मीन उनना ही उपयोगी है। जिनना कि एक कृपा का वृष्ट। परन्तु एक बृद्धिमान व्यक्तिक, मच कुछ मममने वृद्धने हग भी, यदि मीन का अचलमन करे, वह अनकरगीय है।

हमें मीन क्यों भना लगता है ? कारण यह है कि हमारी अधिक मोलने को प्रवृत्ति है। जहाँ बैठेंगे, कइ न कुछ मोला करेंगे। फिर मोलना भी नै पडने है। जिनमे दूसरा पुरा हो और हम उसकी नजरो में उंचे सिम्हाई हैं। इस कारणे मीनमे जिनों को द्योगाये हैं उंचे किंती ही

की झूठी निष्ठा तथा अपने गुणों का अत्युक्ति-पूर्ण वर्णन किया करते हैं।

पण्डे भर की गप-राप के बाद हमने प्रायः अनुभव किया है कि "हम आदर्श से बहुत नीचे गिर गये।" हमें इस प्रकार दूसरों को प्रसन्न करने के लिये असत्य अथवा अत्युक्ति से काम न लेना चाहिये था। और यदि किसी ने बोले मैं आकर यह मान भी लिया कि हम बड़े आदमी हैं तो इससे ठोस प्राप्ति क्या हुई ?

मनो विश्लेषण शास्त्र में हमारे इस कृत्य का कारण Inferiority Complex (अभाव-विषमता) कहा है। क्योंकि हममें वास्तविक महानता नहीं है, इस लिये हम उस अभाव की गप-राप अथवा दिवाबट व अत्युक्ति से पूरा करना चाहते हैं। परन्तु मच पछें तो वो इससे पूरी होनी नहीं। संभव है कि हम प्रकार हम अन्य काल के लिये स्वयं अथवा अन्यो को बोले में डाल दें। लेकिन कुछ श्रमे बाद, जब मूल्यमा उतर जायगा, तब पीतल को मोना कोई क्योंकर समझेगा ?

X X X X

हमारी वासनाएँ जन्म-अभ्यन्तरों की हैं। जब तक हम उन्हें पूर्णतः शान्त न कर दें तब तक ये अबस्था बनी रहेगी। हमारे अन्दर जो अन्तर्गहमा है वो प्रायः हमारी छिपी वासनाओं की ओर इशारा करता है और उन्हें दूर करने की प्रेरणा भी। परन्तु हम हैं कि उस प्रेरणा की निरन्तर उपेक्षा करते हैं। हमें सांख्यिक-भोगों की प्रवृत्तियाँ प्रिय प्रतीत होती हैं। परिणाम यह है कि हम सदस्यों वपों में भी विकास के प्रथम सापान को पार नहीं कर सके।

जब हम कालज में पड़ते थे, हमें बोरर की फिलासफा भी पढ़ाई गई थी। नीरो, काट, रूयैन्मर आदि की अपेक्षा हमें 'इपिस्टेटम' और 'साकम ओरो लियम' अन्धे लगे। उनकी 'स्टोइक' फिलासफी बहुत पसन्द आई।

इसी प्रकार अपने शास्त्रों में निर्र का वाक्य हमें सदा म्मरग रहता है:—

जानस्रपि लि मेधावी  
जडवज्ञोः काचरेन ॥

फिर राजनीतिक क्षेत्र में हमें महान्मा गांधी इस लिये अन्धे लगते हैं कि वो मीन और शान्ति के पक्षपाती हैं। पं० जवाहर लाल नेहरू का रोग्य व योग्यता यद्यपि प्रशंसनीय है, परन्तु उनको जल्दबाजी, दिवाबट और चञ्चलबन्धा हमें नहीं सुगानी। हमारा आदर्श ता है वे व्यक्ति जो समुद्र की तरह विशाल और हिमाचय की बर्फीली चोटियों की तरह उण्डे हों। जिन्हें दुनिया की कोई उचल-पुचल हिला न सके।

हां! इस तरह के एक महान व्यक्ति देखे तो हैं। हमारा अभिप्राय पाण्डिचरी के श्री अरविन्द से है। उन में वे स्वयं गुण हैं जो एक आदर्श पुरुष में होने चाहिये।

मैं एकान्त में बैठा हुआ उन से पूछ रहा हूं कि क्या तुम में भी इनकी शान्त और गम्भीरता आ सकती है ? वो मुस्किरा कर कहते हैं "अस्कर"। "अप्यन्तु एक क्षण है— बान्नीभिन्म श्रेष्ठः कर औन श्रद्धा होमा ॥"

मीन क्यों! मैंने पूछा।

मीन से ही तो शान्ति मिलती है। इसी से मृत्यु का ज्ञान होता है। मानी-बुक्ति का यही डार है। जब पूर्ण मीन अथवा पूर्ण शान्ति हो जाय तब मनुष्य अपने संकल्पित क्षेत्र से निकल कर विशाल विश्वमय का अनुभव करता है। तब विषय-वामना की ममस्याएँ स्वयमेव नष्ट प्रतीत होने लगती हैं। तभी 'रमो मै मः' का भाव होता है।

लो! फिर मैं बोलने लगा। मुनी-मुनाई बात को विस्थापे में आत्म-अनुभव का रूप देने लगा। विचार हो आया कि पढ़ने वाले शायद समझेंगे कि मैं किनना पहुँचा हूँ।

बस इसी आत्म-आघाते ने तो मझे तंग कर रखा है। यथाकथं लोगों की नजरों में बड़ा बनने की इच्छा मझे व्याग जा रही है। इसका अब एक ही उपाय है—मीन। केवल वाणी से ही नहीं, अपितु उदय के प्रायैक कोने से।

हां! मुझे मीन रचना होगा। मीन, निरन्तर मीन।

(पृष्ठ ३ का शेष)

(३) देश के धनाढ्य पुरुषों में इस प्रखालो डरग विश्वास पैदा करना चाहिए।

अपनी शक्ति और बुद्धि के अत्यन्त मैंने विश्व मित्र विषय पर विश्वास प्रगट किए हैं। मुझे अभी तात्कालिक उपाय के लिए जो विचार आते हैं उनको प्रकाशित करना है:—

अध्यास पत्रिका:—

(१) विषयों के अन्दर जो विषय (Subject) अविष्य के लिए अत्युपयोगी हो उन्हें हटा देना चाहिए। भूगोल वगैरह विषय प्रशोधन के रूप में पढ़ाने चाहिए। Manual labour में दिलचस्पी पैदा हो ऐसे विषय अग्रगम्य में होने चाहिए।

(२) दीर्घाधिकारों में महाविद्यालय व प्रशिक्षणियों को अल्पे एवं सुप्रसिद्ध वृत्त वैद्य और नेत्र वैद्य के पास गुरु-कूल के छात्राचार्य को भेज देने चाहिए। ये दोनों विषय थोड़े खर्च में एवं थोड़े समय में सिखाए जा सकते हैं।

(३) मित्र २ यूनिवर्सिटियों के या कांजेज के किसी विषय (Subject) के निष्ठागत विद्वानों को आमन्त्रण देकर उनके भाषण (Lecture) कराने चाहिए। इन भाषणों को सुनना देना चाहिए। इसी तरह गुरुकुल के विद्वानों के अल्प कांजेज में भाषण हो इसी तरह का प्रवचन करना चाहिए। इसी तरह के विमिनस से गुरुकुल की वाहा-जगत कीपन करेगा और वाद्यजगत को गुरुकुल पहचानेगा।

(४) सिलार, बड़गिरि, लुआर, राजगिरि, जित्दमाजो बाग शर्मा, दुनने का काम वगैरह हस्तकलाओं का प्राथमिक ज्ञान देना चाहिए।

(५) अधिकारी परीक्षा बाद जिस विद्यार्थी को यूनिवर्सिटी की जैसा योग्यता प्राप्त करने हो तो उस के लिए उसी तरह का प्रबन्ध गुरुकुल में करना चाहिए। यदि इन प्रकार करना योग्य न हो तो विश्वेन्द्र की यूनिवर्सिटियों के साथ पत्र व्यवहार करके वहाँ के विद्यार्थियों की इच्छा-वृत्त-स्राह शिष्यों का निःशुल बनाने के लिए विश्व भ्रमण का

प्रबन्ध करना चाहिए। इस कार्य में गुरुकुल और संरक्षक दोनों को मिलकर कार्य करना चाहिए। यह के कालेज या महाविद्यालय का कॉन्सल्टर वर्क करने का अपेक्षा विदेश का दो साल का शिक्षण उपाय ही भव्य ही होता है। इस प्रकार होने से भी जिनको ज्ञानक बनना ही हो उसके लिये ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए। ऐसे ज्ञानक को ज्ञानक होने के बाद 2-3 साल तक अन्य संस्थाओं में अनुभव देने रहना चाहिए। आजकल हमारे पास वेद के ज्ञानक, आयुर्वेद के ज्ञानक और सिद्धांत एवं विद्या के ज्ञानक हैं। इस में आयुर्वेद के ज्ञानकों को व्यावहारिक ज्ञान मिलने देने योग्य के पास गुरुकुल की ओर से ज्ञानकों को आचार्य द्वारा भेजा जाना चाहिए। वेदाङ्गकरी को रिसर्च कार्य के प्रबन्ध के लिये पूना का भांडारकर इन्स्टीट्यूट, शांतिनिकेतन, अहमदाबाद एवं वेदके किसी आस्थासी के पास विचार परिचयनार्थ भेज देना चाहिए। इस तरह जब तक नहीं होगा तब तक गुरुकुल की शिक्षा समाज को पूरी तरह लाभदायी नहीं हो सकती।

(६) जिस प्रकार ये सिद्धांत मूल या कालेज होने हैं उसी तरह जिन ज्ञानकों को उपाध्यय बनना हो उसको शिक्षण कैसे देना चाहिए यह स्पष्ट करना आवश्यक है। और उसी तरह प्रोफेसिंग वर्ग गुरुकुल में खोलने से विद्यार्थियों एवं शिक्षक सहाय को बहुत लाभ होगा।  
परीक्षा पद्धति:—शिक्षण शास्त्रियों के कहने के अनुसार परीक्षा पद्धति बराबर है फिर भी गुरुकुल में यह प्रणाली जागी है। इसकी आवश्यकता है परन्तु परीक्षा में परिचलन की जरूरत है। उदाहरण के तौर पर यदि इतिहास की परीक्षा लेनी हो तो परीक्षा के समय विद्यार्थियों की इच्छानुसार उत्तर देने समय पुस्तकों का आश्रय देना चाहिए। प्रश्न निकालने के समय यदि बुद्धिमत्ता में प्रश्न निकालें होंगे तब तो जिस विद्यार्थी ने इतिहास पढ़ा होगा वही उत्तर दे सकेगा। और जिसने इतिहास नहीं पढ़ा होगा उसके पास ज्ञान पुस्तकों का देर ही क्यों न हो वह उत्तर नहीं लिख सकेगा। इस से बहुत सारी बातें याद रखने के बोझ में विद्यार्थी बच जायेंगे। और जीवन में लेखक या बच्चा को आश्रय के लिए पुस्तकों की सहायता लेनी पड़नी है इस लिए सब से बड़ा लाभ यह होगा कि विद्यार्थियों को Selection सूचना या Reference कोट करना और उसको योग्य स्थान पर नियुक्त करना बहुत आसान हो जायगा। इससे विद्यार्थी निष्ठातः परिश्रम बनेगा। आज कम आयुस्व क्रम में कितने ही छात्रों के विषयों के होने से विद्यार्थियों की भ्रष्ट शक्ति लुप्त होता जानी है। यह ठीक है कि संस्कृत के सुभाषित श्लोक एवं अन्य ज्ञानव्यवस्थाएं याद करा देनी चाहिए। जोड़ना यह आशय नहीं है परन्तु इसका उपयोग बहुत ही कम वर्ष तक करना चाहिए। इतिहास, भूगोल वगैरह विषयों की परीक्षा के समय पाठ्यपुस्तक पोंस रखने को आशा देनी चाहिए। सारे साल की प्रगति को देख कर बांधिक परीक्षा में भी आश्रय देना चाहिए। चरित्र, सहाय्य एवं शिक्षाकार की भी परीक्षा होनी चाहिए। और इनका परिचय अलग २

रचना चाहिए। शिक्षक को हरेक विद्यार्थी के अवस्यवहार सुधरे पर नोट करना चाहिए और उनके संरक्षक को बताना चाहिए कि उन अवस्यवहारों को सुधारने में क्या उपाय किये और क्या परिचय आया, यह भी लिखना चाहिए।

### संरक्षकों के साथ सम्पर्क:—

गुरुकुल को संरक्षक समाज बना देने से ही कार्य पूरा नहीं होता। संरक्षकों के साथ जितना ज्यादा गुरुकुल का सम्पर्क होगा—तना ही गुरुकुल उन्नति कर सकेगा। मैं तो मानता हूँ कि जव तक विद्यार्थियों को इस समाज में, संरक्षकों के पास भेजने का प्रबन्ध नहीं करेंगे तब तक बहुत से अहित दूर नहीं होंगे इसके लिए जल्दी सबंध हानों की जरूरत है।

अन्त में उपलब्ध है इतना निश्चय है कि गुरुकुल की जितनी जरूरत पूरकाल में थी उससे ज्यादा आजकल है और सविद्य में भी जरूरत रहेगी। परन्तु इसके लिए गुरुकुल के स्वतंत्रता में, अग्रगण्यता में गद्य अन्य बातों में शोच परिवर्तन की जरूरत है। गुरुकुलों का प्रान्तीय संगठन होना चाहिए, इतना ही नहीं परन्तु गुरुकुल यू. ए. ई. की एक ही होनी चाहिए। नतीजतन के जलक एक ही गुरुकुल में बहार निकलने चाहिए। प्रान्तीय संगठन के बिना यह सब आकाश भवन है। आजकल गुरुकुल इन दिनों हैं उनके समुच्च करने की जरूरत है। मुझे अद्वा है कि आर्य समाज को जीवित संस्था के तौर पर जी। है तो गुरुकुल के अस्तित्व की बहुत जरूरत है। इसके बिना आर्य समाज बांध बनेगा। और इस प्रकार होंने हुए 'कृष्णनाम विद्यमानम्' की उच्चभावना निरर्थक बनेगी।

अन्त में गुरुकुल के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बातें सुनिश्चित की दिव्य बिना यह निष्कर्ष अत्र समाप्त जायगा।

'गुरुकुल के उस महान प्रवर्तक अर्द्धे स्वामी अहमद जी को राष्ट्र निर्माता Nation Builder के रूप में प्रमाण करना है। भारत की प्राचीन पुरव भूमि की कुछ एक तंतावस्थितियों का उन्नत सादीक गुरुकुल है। नयीन भारत क विकास में गुरुकुल का स्थान महत्वपूर्ण है और रहेगा। वर्तमान भारत के शिक्षण क्षेत्र में सबसे बड़ी में वडी अंत 'गुरुकुल' है !'

—साधुवर बाबाजी।

'हिन्दुस्थान के प्रत्येक कोने में गुरुकुल के लिये पैलियां खुला मुँह करके पुकार रही हैं। परन्तु जाकर ले आने वाले पवित्र आश्रम नहीं हैं। मुझे सबे आशाओं को आश्रयकना है। अपने एक में गुरुकुल वृत्त को स्वीचने वालों को जरूरत है !'

—महात्मा मण्डीराम।

'मैं गुरु दयानन्द का पुजारी हूँ। उनके अनुयायियों की स्तुति करने बला हूँ। मैं होने राष्ट्रीय शिक्षण का और ज्यादा प्रचार किया है। राष्ट्रीय शिक्षण का ज्यादा प्रचार करने में उनके अनुयायियों का ज्यादा भाग है।

ये धार्मिक राष्ट्रीय विद्यालय भीते जागते अंदिर हैं। मैं निरन्तर ये कहता हूँ कि हिन्दुधर्म, राष्ट्रीय शिक्षण, और प्रत्यक्ष का संगम यदि किसी भी क्षण पर हुआ हो तो वह गुरुकुल में है।”

—सरदार बलभद्राई।

“युके, लोकमध्य और देश बन्धु आज कल की अयोग्य, विषैली और निर्भीक शिक्षण प्रणाली के विद्यार्थी विचार देते हैं। पर मुझे कहना चाहिए कि यदि हम देश की कुछ भी सेवा करना चाहते हैं तो उस विषयवस्तु के विषय का ध्यान करने ही कर सकते हैं। जब तक एक भारत वाली अंग्रेजी शिक्षा और अंग्रेजी जालबलन से विभूषित न हो तब तक वह देश को कुछ भी सेवा नहीं कर सकता यह पालक का प्रत्याय है। ऐसे मित्र्यावादी लोगों के सामने महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का ज्योत्सव उदाहरण है। यह कहने की जरूरत नहीं है कि स्वामी जी का विरजीवी कार्य (गुरुकुल) शुद्धभारतीय दिग्गम का कारण था।”

—महात्मा गांधी जी।

“साते हिन्दू में मौलिक और रसदायो शिक्षण का प्रयोग करने का कार्य गुरुकुल ने किया है। अधिमूलियों की पुराण-धुनीत पद्धति के साथ वर्तमान वैज्ञानिक पद्धतियों का सम्मिश्रण करके एकल जंगल में धार्मिक कल्पय करने वाले तन्त्रियों का यह तर्पण है। यहां पर अध्याचारियों का शरीर नीरोग और बलिष्ठ बनता है और उनका मन आत्माधारी सत्यवादी और भक्तिमय बनता है। गुरुकुल एक आदर्श युनिवर्सिटी है।”

—सर जेम्स मेस्सन। (समाज)

### गुरुकुल समाचार

गुरुकुल में अजुत दिनोदिन सुखदायी होती जा रही है। धूप में कम उष्णता प्रतीत होती है। महाविद्यालय में अध्याचारियों की संख्या बढ़नी जा रही है आशा है विज्ञान-दशमी का त्योहार असाह पूर्वक प्रनाय जायगा। २ अक्टूबर को गांधी-प्रथमो मगने की नैय्यारियां हो रही हैं।

### गुरुकुल कांगड़ी का

#### आयुर्वेद महाविद्यालय भवन

आर्य जनता के हर्ष का विषय है कि गुरुकुल विश्व-विद्यालय कांगड़ी में आयुर्वेद महाविद्यालय भवन बनकर तैयार हो रहा है। अभी तक अध्याचारियों की पढ़ाई बुधों के नीचे, मैदानों में, अन्न के बगमहों में हुआ करती थी जिससे वैज्ञानिक उपकरणों के लाने और ले जाने में विघ्न उठानी पड़ती थी। किन्तु इस भवन के बन जाने पर अध्याचारियों की पढ़ाई के साथ-साथ बाहर से आये हुए प्राचीन-रीतियों का विशेष सुविधा होगी। क्या कि आयुर्वेद महाविद्यालय भवन में पढ़ाई के ५ कमरों के अनिर्दिष्ट रीतिरिवाजों के देखने के लिए दो कमरे एकसरे के लिए १ कमरा तथा स्टोर, डिस्पेन्सरी और डाककम के लिए पृथक् २ कमरे बन रहे हैं। इस भवन के साथ ही एक अष्टा

शयणवेदन शूद्र भी तैयार हो रहा है। ऊपर के मंजिल पर विशाल आयुर्वेदिक प्रदर्शनी बन रही है। उदार दानियों की अथवा प्रवसन है कि विद्यालय के इस पवित्र कार्य में हाथ बंटाकर, हज़ारों रोगियों को नीरोग करने में सहयोग देकर पुण्य के भागी बनें।

### गुरुकुल-इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की रजन उपरती के लिये धन संग्रह करने के लिये एक इन्ड्रेशन भी प्रो० गोपाल जी की अध्यक्षता में अध्यालया गया था। वहां पर उसकी बहुत सरलता मिली। ३६५ एकल हुए। अध्यालया आर्य समाज ने ५७ दिये तथा श्री समाज ने ५३ दिये। श्री समाज ने यह धन पैसा-पैसा जमा करके एकत्र किया था। श्री ला० मुकुन्दलाल जी ने १० धार्मिक दान देने का वचन दिया है।

श्री ला० हलाकीदास जी तथा श्री ला० उपमेन जी, ने जो गुरुकुल के दो अध्याचारियों के संरक्षक हैं, अपना अमूल्य समय देकर और धूप में धूम-धूम का धन्दा एकत्र करवाया। यद्यपि श्री ला० ज्ञानाकीदास जी के एक निकट सम्बन्धी की उन दिनों मरादाबाद में मृत्यु हो गई थी और उनको मार हागा ज्ञाया गया था फिर भी उन्होंने गुरुकुल के काम को आवश्यक समझ कर वहां जाना स्वीकृत कर लिया और धन्दा एकत्र करवाने रहे। श्री ला० उपमेन जी ने जो अध्यालया के एक बड़े प्रतिष्ठित महानुभाव हैं धन्दाएकत्र करवाने में बहुत सहायता प्रदान की। दोनों महानुभावों का गुरुकुल इस सहायता के लिये हार्दिक धन्यवाद करता है। यदि इसी प्रकार प्रत्येक संरक्षक महोदय सहायता करें तो २५००० एकठा करता कोई कठिन कार्य नहीं।

कलीली आर्यसमाज के उत्सव पर भी श्री प्रो० गोपाल जी इत्याख्यान देने गये थे। वहां पर समाज का उत्सव होने से गुरुकुल के लिए चंदा एकत्र न हो सका। परन्तु वहां की आर्यसमाज ने जनवरी में गुरुकुल को रजन उपरती के लिए एक पुस्तक धन राशि भेजने का वचन दिया है।

### लाहौर से हिंदी “आर्यावर्त” का

#### प्रकाशन

१५ लिनम्बर से श्रीमती शकुन्तला देवी के मर्यादकृत्य में उर्दू और मुसलिम सभ्यता के गढ़ पत्राब से आर्य धर्म, आर्य संस्कृति, आर्य सभ्यता, व आर्य भाषा के प्रचार तथा आर्य महिलाओं का जगत् करने के लिए “आर्यावर्त” का प्रकाशन आरम्भ हो चुका है जिसका पहला अङ्क शिवाययोगी उच्चकोटि के १२ नम्बो, ३ मूल लन, कलितानो, २ गद्य काव्या, २ रोचक कहानियों, तथा ५ चित्रों का शासनदा संग्रह है। मूल्य २० नैय्यिक, ब्रह्मा २॥ ३०, विदेश ५ शिलि।

#### स्वास्थ्य समाचार

३० धर्मवीर १५ अंकी विषम उबर, ३० मनमोहन १ अंकी विषम उबर, ३० में मंजि २ अंकी विषम उबर, ३० कर्मेश्वर २ अंकी विषम उबर, ३० श्रीकृष्ण २ अंकी चोट। गन सनाह उपरोक्त ३० रंगा हुए थे। अब स्वबल्य है।

## गुरुकुल कांगड़ी

की

# प्रसिद्ध औषधियां

### भीमसेनी सुरमा

आंखों की बुढ़ापे तक सुरक्षित रखने के लिए "भीमसेनी सुरमा" नियमपूर्वक इस्तेमाल कीजिए। आंखों से पानी बहना, खुजली, कुकरे आदि रोग कुछ ही दिन में दूर हो जाते हैं। मूल्य ॥८॥ शीशी

### भीमसेनी दन्त-मंजन

इसका प्रतिदिन व्यवहार करने से दांत मोती के समान सफेद और चमकदार हो जाते हैं। दांतों से खून पीप का आना बन्द हो जाता है। मूल्य ॥१॥ शीशी

### ब्राह्मी बूटी

दिमागी रोगों के लिए बहुत प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होती है और आंखों की ज्योति बढ़ती है। वकील, अध्यापक, तथा क्लर्क आदि दिमाग का काम करने वालों को अवश्य ही इसका सेवन करना चाहिए। मूल्य ॥३॥ सेर

### ब्राह्मी तैल

खान के बाद सिर पर लगाने के लिए ब्राह्मी का यह तैल बहुत उत्तम है। इससे दिमाग जो ठंडक तथा तरावट पहुंचती है और आंखों की ज्योति बढ़ती है।

मूल्य ॥८॥ शीशी

### च्यवनप्राश

स्वादुिष्ट।

बदिया ॥

रसायन ॥॥

मूल्य १ पाब (१८), आष सेर २८, १ सेर ४)

एजेन्टों के लिए विशेष सुविधा

पता:-गुरुकुल फार्मसी, गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

आष	{	देहली—चांदनी चौक।
	{	मेरठ—सिपर रोड।
एजेन्सियां	{	लखनऊ—एजेन्सी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।
	{	लाहौर— " " " हस्पताल रोड।
	{	पटना— " " " मधुबादीवां बाँकीपुर।



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुद्रण-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २।।)

सम्पादक—माहेश्वरजी हरिवंश वेदालंकार

वर्ष-६]

गुरुकुल गाँधी, गुरुनगर १६ आश्विन १९६७: ४ अक्टूबर १९४०

[ संख्या २५

## हमारी मृत्यु से रक्षा करो

[ ६५० श्री हमामी ब्रह्मसंह्य ओ के सम्पादनित अधीनस्थ से ]

मानस्योके तमये मा न आशुषि मानो गापु मानो  
अश्वेपुरीरिष । वीराभ्या मद्र भागिनावाहंविष्मन्तः  
सर्वमिष्या इवामहे ॥

अब मनुष्य अपनी निर्बलता का अनुभव कर लेता है और यह भी जान लेता है कि सिवाय परमात्मा के और कोई भी देसा नहीं है जो उसको दिन रात रक्षा कर सके तब यह विचारने लगता है कि कौन कौन से विष्म यं जिनके कारण ईश्वर प्राप्ति के माधन यह वन् नहीं हो सकने । अनुभव से इन विष्मों के मूल कारण को जानना कठिन नहीं है । किसी बड़े शहर में जले जाये अभी दस कदम नहीं चले हो कि अकस्मात् सामने में एक पुरुष अपने हाथों में कपड़ों में लपेटा हुआ कुछ वस्तु लिये जा रहा है । पीछे बहुत सी शिष्ये हाहाकार करनी आरंभ हैं । जिन में से एक की शोकजनक आवाज़ पधरों को भी तला रही है । उस कपड़े में क्या लिपटा हुआ है ? और यह मुसीबत की मार्ग खी कौन है ? स्ववाल करने ही तुम्हारा साथी तुम्हें बताना है कि कपड़े में लिपटी हुई वस्तुजान बच्चों की आश है और यह उसकी माता जो दुःख से पीड़ित, जान की भी परवाह न करती हुई साध बली जा रही है । आगे अभी बीस कदम और न चले होंगे कि एक भय भयान के अन्दर हिलगुल मर्चा हुई है कि डाक्टर पर डाक्टर आ रहा है । क्या डाक्टरियों की तरह बर्बाद हो रहा है । सन्ध्या का समय है । गुरुकुल के ब्रह्मचारी उस समय संध्या में निवृत्त होकर पंचालदेश में उस समय हवन की तैयारी कर रहे हैं । परन्तु यहाँ एक आर्य भगवद्पुत्र का बड़ा महान है । अब तक सन्ध्या का किसी की ध्यान तक नहीं । तुम्हें फिर आश्चर्य होता है कि देसा क्यों है ? क्यों कि तुम मकान के मालिक को सन्ध्या में रुद्र देखा करने से परन्तु देको उसका केहरा देखा मुझेभाया हुआ है ? पूरने पर जान बूझता है कि उसका प्यारादसलाल का लड़का बीमार है । उसके दूध से दुग्धी होकर सब कुछ भुना दिया गया

है । नीसरी ओर जाये तुम्हें एक बीस वर्ष का नवजवान आदमी देकी कमर किये चलना दिखाई देना है । कठे-नना से हिल सकता है । इस दिन के बाद देवों तपेदिक ने उन्मेशमान भूमि के समीप पहुँचा दिया है नाकी डाक्टर के हाथ में है । कुछ दिन का ही यह महमान है । आह ! कैसा दुःख इस युवा पुरुष को मिल रहा है । फिर बीधी ओर जायो सारे कुटुम्ब को दूध से पालने वाली गाय मरने के समीप है, लड़क रही है और एक शानदार आदमी उसके सिन्हाने लड़ा जाय रहा है पांचवी तरफ एक अमीर, बोड़े के पास पैशु डाक्टर को लिये लड़ा है । मालों फवने हुए बोड़े के सख्त बोट आगई है । एक और मुहल्ले में जा निकले हो । म्याया हो रहा है । लिये लड़ी देव्ही ने कानी पीट पीटकर लून निक ल रही है और एक अमीरी पोषाक पहने प्रभावजनक मनुष्य एक मूनक का मुख देख देव कर रो रहा है । इनका एक युवा सम्बन्धी इसी समय है । दूख से सर्वको यहाँ अबला हो रही है । कहाँ तक बचन किया जाय । अपने सम्बन्धियों के वियोग और उनके कष्ट के कारण बड़े में बड़े धार्मिक मनुष्य भी ऐसे व्य कुल हो जाते हैं कि सन्ध्या बन्दन और ईश्वर प्राप्ति आ दसमल अभ्यसाधनों को भी मूल जाते हैं । कौन मनुष्य है जिसम जग भी लोचन का मादा है और यह यह नहीं समझना कि परमेश्वर प्राप्ति के बिना सांभारिक क्लेशों से लूटना कठिन है । परन्तु इनमें किन्तमें पुरुष है जो कि ऐसे समयों पर साध्यांन रहकर अपने साधनों को स्थिर रख सकते हैं ऐसी निर्बलता क्यों है ? यह प्रश्न ही व्यर्थ है ? मुझे तो तब अचम्भा होना अगर मनुष्यों के अन्दर ऐसा निर्बलता न पाई जाती । निर्बल तो मनुष्य ही हो । परन्तु यह निर्बलता तब तक है जब तक प्रकृति के संतानों में इसके, दाल बन रहे हैं । उदा-य्यों प्रकृति की दासता से लुटकारा होना आता है और परमात्मा के साथ प्रीति का सम्बन्ध स्थिर होना आता है त्यों त्यों यह निर्बलता दूर होगी आनी है । इन जगह साधारण पुत्रों को फिर सम्बन्ध उपलब्ध होता है । वे लोचने हैं जब जब ईश्वर सर्व उपायक है तो हमारे साथ उसका पहलने में ही सम्बन्ध है अब हमारा नया सम्बन्ध

क्या होगा। यह सब है कि परमेश्वर का हमारे साथ सबेव का सम्बन्ध है और सदा रंदा या परन्तु अब तक कि हम इस सम्बन्ध को न समझे, जब तक कि हम उस परम पुरुष को स्वीकार न करें तब तक कुछ बुर नहीं हो सकता। परमेश्वर को स्वीकार करना, उसी के पराधर्ष हो रहना कर्म है। जिनके कारण से कि सम्बन्धों के क्रोश और दुःख हम को सता नहीं सकते। सम्बन्धों हमारी निर्वलता तो ऐसी है कि स्वयं हय कुछ भी करने का योग्य नहीं है। हे नन्द परमानन्द। इसलिये आपकी पवित्र संथा में उपस्थित होकर बड़ी नज्जता में प्रार्थना करने है कि आप हमारे सम्बन्धों की रक्षा काजिये और हमारा आधुको भी मुक्त पृथक बड़ाइये ताकि हम भिषि-न आपकी प्राप्ति के साधनों पर आचरण करने हुये आप का पवित्र और शान्तिदायक ब्रह्मधाम के अधिकारी बन सकें।

— 0 —

## देशभक्ति और अहिंसा

[ हरिद्वय मोहन ]

हमारे देश में आज जो देशभक्त मौजूद हैं वे राष्ट्रीय भावों के विविध स्थितियों में संसृजत हैं। मोटे हिसाब से यह कहा जा सकता है कि इन चालीस वर्षों में हमारा देश मनीन प्रभावशाली और व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलन हुआ। हमारा राष्ट्रीय भावना-समुद्र में १९०६, १९२१ और १९३० में देशभक्ति का अजन्म लहरें उठीं। उन लहरों का कारण जो ज्वार आया, उसने संवेदनशील मनो को प्रभावित किया। कुछ व्यक्तियों के जोषनेद्वारा देश में ही परिवर्तन हो गया। उन्होंने पुराना लोक का राज-मार्ग छोड़ दिया और अपनी जीवन-नीका दुश्चरी ही दिशा में लेना शुरू कर दिया।

१९०६ में जो आन्दोलन हुआ उसमें अहिंसा सम्बन्धी विचार का कोई स्थान नहीं था। यद्यपि उस एक देश-भक्तों के नरम, गरम और कान्तिकारी, गेमे तीन दल बनें, तथापि देशभक्ति का अहिंसा से कोई सम्बन्ध न, या होना आवश्यक है, यह किसी दल के देशभक्तों ने महसूस नहीं किया। कुछ देशभक्तों को कान्तिकारों, आतंकवादी अथवा अत्याचरों, आदि नामा द्य प्राप्त थे। लेकिन उनका पक्ष हिसक होने के कारण अजायब, ऐसा मत प्रचलन नहीं था। उरडे विभागायाने नरम दल की यह विचार-धारा थी कि 'अंग्रेजों का खून करने से क्रान्ति नहीं हो सकती। और सशस्त्र संग्राम करने की शक्ति हमारी बुझाओ में है नहीं। जबकि अराज्य प्राप्त करने की भारतवासियों को नैयारी हो बिनाकुल कम न, ऐसी हालत में एकधे अंग्रेज का खून करना महज दीवानेपन के कलंक का पात्र होना है। नरम दल का यह विरोध तार्किक या धार्मिक नहीं था। उसका जड़ व्यावहारिक नीति-सम्बन्धी मतभेद में थी। इस विचार-धारा का अहिंसा से कोई सम्बन्ध नहीं था।

१९२१ में राजनीति में गांधी युग का आरम्भ हुआ। गांधी जी का राजनैतिक तत्त्वज्ञान दिलकुल नया, उनका

व्यापक आदर्श जनक, उनका आन्दोलन का तरीका परम्परागत तरीके से बिल्कुल भिन्न था। इसलिये देशभक्ति की प्राचीन परम्परा या विचार धारा में पने हुए देश भक्तों के मन में काकी उलझन हुई। ऐसी उसकी हुई मनकलित में वे गांधी-मनकलित आन्दोलन के प्रवाह में बहने लगे। उन्होंने गांधीजी के सिद्धान्त अपनाने नहीं थे। इतना ही नहीं, बल्कि उन सिद्धान्तों का विरोध करने हुये या उन सिद्धान्तों की उड़ उनके दिल में गहरी न बैठ पाये ऐसा प्रयत्न करने हुए भी, ऊपर ऊपर से नये आन्दोलन का अनुशासन उन्होंने मान लिया। स्वयं गांधी जी ने प्रारम्भ से ही सत्य और अहिंसा पर जोर दिया था, लेकिन फिर भी, विचारवान देशभक्तों को ऐसा नहीं प्रतीत होता। कि सिद्धान्त और व्यवहार, ध्येय और उसकी साधना की भेद दर्शक नखा बिल्कुल स्पष्ट रूप कर आन्दोलन चलवाया जा रहा हो। इन्में कोई शक नहीं है कि अधिकतर लरा अहिंसा को केवल एक तात्कालिक नीति के रूप में मान कर ही आन्दोलन में शामिल हुये थे। मौलाना मुहम्मदअली और शोकतअली तो विचार में भी अहिंसा का धर्म का स्थान शायद ही देने रहे हों। लेकिन उनके जैसे कट्टर मुसलमानों को भी गांधी जी ने अपने आन्दोलन में शामिल कर लिया था। गांधी जी की सेना कोई रोज कवायद करने वाले अनुशासन-निष्ठ मैनिकों की सेना नहीं थी। वह तो अस्संगठन स्वभाषों के या यों कहिये कि पिढारियों के समुदाय के दंग की सेना थी। गांधी जी को व्यवहार-कुशलता के कारण जिन लोगों ने उनके आन्दोलन में हिस्सा लिया था, उन लोगों ने यह कभी ठीक ठीक महसूस नहीं किया कि गांधी जी के अनुयायिकों की क्या क्या जिम्मेदारियां हैं। आन्दोलन में भाग लेने वाले अधिकतर लोगों के विचारों का अधूरापन और उलझन कई वर्षों तक कायम रहा।

गांधी जी का व्यक्तियु प्रसाधारण्य है और साथ और अहिंसा में उनकी निष्ठा उच्चतम है। लेकिन उनके आन्दोलन में शामिल होने वालों ने यह आवश्यक नहीं समझा कि गांधी जी के साधनों और अनुयायियों की भी सत्य और अहिंसा-विषयक अज्ञा तथा भावना उतनी हो जवनेत होती चाहिये। अराज्य की सितात आवश्यकता, निराधी जनता की निपट अनहायता और गांधी-पक्षीत आन्दोलन की प्रत्यक्ष और स्पष्ट सरकलता देखकर ही आन्दोलन में शरीक होने वालों की संख्या बढ़ने लगी।

हिन्दुस्तान के लोग १९२१ के पहले से ही यह जानने थे कि गांधी जी ने हज़ारों निराश्रम, हतवीर्य और पद्धतिल अप्रिका-निवासी हिन्दुस्तानियों को उगाया था। गांधीजी की सीरता का प्रत्यक्ष प्रभाव उन्हें मिल चुका था। निराश्रमों की प्रभावशाली स्याप्रादी-परीक्षा-मति का एक छोटा-सा प्रयाग पहले ही किया जा चुका था। गांधी जी के भारत को खोदने के बाद अन्वयन, खेड़ा, अरमदाबाद के अज्ञेयों और रोनेट वेष्ट के आन्दोलन आर संगठन, भारत की जनता ने प्रत्यक्ष देख भी लिये थे। गांधी जी के निराश्रम प्रतिकार, अनवस्थान,

सत्याग्रह, साधनय-मंग, आदि का तत्त्वज्ञान अपूर्व मने ही हो, तो भी उनके मार्ग अल्पव्यवहार्य नहीं हैं, इस प्रकार का आन्दोलन शत्रु पर निस्सन्देह परिणाम कर सकता है; उसे थोड़ी-बहुत सफलता भी मिल सकती है—यह अनुभव हलके हलके लोगों को होने लगा। गांधीजी का राजनैतिक तत्त्वज्ञान जिनको समझ में नहीं आता था, या आ उनके तत्त्वज्ञान का मशील करने थे, अथवा उसका विरोध करते थे, वे भी आगे चलकर उसी सत्याग्रह का—निःशस्त्र प्रतिकार का—आश्रय करने लगे।

१९२१ के बाद जो दो मुख्य आन्दोलन हुए। उनके अन्तर्गत अफासो-सत्याग्रह, अहमदाबाद-सत्याग्रह, शहीदवाज-सत्याग्रह, शस्त्र-सत्याग्रह, काकाडू भारतीय-सत्याग्रह (मगधपुर), सोमिया प्राकनि-सत्याग्रह (पूना), मागा नगर निःशस्त्र प्रतिकार (त्रैवाराबाद, दक्षिण), आदि कई आन्दोलन हुए। व्यक्तिगत और सार्वजनिक अभ्यासों के निवारण के लिये जेल में और जेल के बाहर कई छोटे-बड़े व्यक्तियों ने भूल-बुझताला या भग्नश्रम किये। निजाम राज्य के विरुद्ध इधर जो प्रतिकार किया गया, उसके सञ्चालक गांधी-तत्त्वज्ञान से विलकुल अज्ञान नहीं थे। यह भी नहीं कह सकते कि शहीदवाज की मस्तबिद्ध के लिये लड़ने वाले मुसलमान अहिंसा के तत्त्वज्ञान के काल थे। तो भी जो गांधी तत्त्वज्ञान में नहीं मानने या उसका विरोध करने हैं वे भी उन्हीं की प्रतिकार-नीति का अनुकरण करने लगे हैं; कई बंधकूक और जड़मूढ़ व्यक्ति भी अन्न-सत्य अन्न या प्राणोपवेशन करने पाये गये हैं। वे ऐन उपवासों के उदात्त उद्देश्य समझ भी न हाँगे।

इन उदाहरणों के कारण आपात-स्थिति खरगा हो जाती है कि सत्याग्रह की विजय हो रही है और गांधी जी का लक्ष्य विलक्षण-मार्ग प्राप्त हो रहा है। विरोधकों का भी सत्याग्रह का स्वाकार करना उस सिद्धांत के प्रवक्तार के लिये मूषणास्पद है, इस में कोई शक नहीं। तथापि विचारवान व्यक्तिको इन सब घटनाओं में भारत की भीषण असहायता प्रतीत हुए बिना न रहेगी। हिन्दुस्तान में जो सत्याग्रह होने हैं वे बीरों के, बहादुरों के, रणबाँकरों के सत्याग्रह नहीं हैं बल्कि तो लाचारी और विवशता की उन्मुख-अनिच्छिद या हठ है। बह विवशता, अज्ञान और अज्ञेयगुण से लाला है।

भारत में जो सत्याग्रहों वर्तमान हैं वे साबित आंशों वाले सत्याग्रही नहीं हैं; अल्प सत्याग्रही हैं। वे पर-प्राप्ति के कायल हैं, निःशस्त्र के नहीं। उन्हें स्वराज्य में प्रवृत्त है, अहिंसा और सत्य की कोई पराह नहीं। गांधी जी ने भारत में सत्याग्रह का नया तरीका प्रचलित किया, लेकिन आज तो यहाँ कहना पड़ेगा कि दूरअसल सत्याग्रह का स्वाकार करने वालों ने गांधी जी की शांति से लाभ उठाया। उनका और उसके नेताओं ने गांधीजी को स्वराज्य के आन्दोलन का साधन बना लिया। भारत के लोग गांधी जी के अहिंसामय प्रयोगों के स्थापन नहीं बने। स्वराज्य अहिंसा का स्थापन बनने के बन्दे अहिंसा ही स्वराज्य का साधन बनाई गयी।

यदि सब देखा जाय, तो गांधी जी अहिंसा की संग्रही में स्वराज्य का नग जड़ना चाहते हैं। अहिंसा-रहित स्वराज्य वे नहीं चाहते। अहिंसामय स्वराज्य है। उनके मत में वास्तविक स्वराज्य है। अहिंसा का मूल्य स्वराज्य से कहीं अधिक है। इस अर्थ अहिंसा को स्वराज्य का साधन बनाना, मार्ग मूल्यों के नारनम्य-भाव को मुलायमा है। परन्तु अहिंसा गांधी जी का अपना व्यक्तिगत और सार्वजनिक साध्य होने लुके भी भारतीय जनता और उसके अधिकार नेताओं का साध्य स्वराज्य में अधिक अर्थ नहीं है। उस महादा तक हिन्दुस्तान की नैतिक उन्नति नहीं हुई है, भारतीय जनता को आकांक्षा स्वराज्य से ऊपर नहीं उठ सकी है।

भारत में जो अभावदा राजनैतिक आन्दोलन हुए, न अहिंसा से प्रेरित हो कर या उसकी सिद्धि के नहीं हुए। अपने मन के प्रसिद्ध म अहिंसा और सत्यकपो अस्मिन् मूल्यों को जनता या उसके नेताओं में प्राप्त, हृत नहीं किया है। हमने अपने हृदय-मन्दर म इन प्रतिमाओं का पूजा नहीं की। जनता और उसके नेताओं को केवल इनकी ही चिन्ता है कि सत्याग्रह, निःशस्त्र प्रतिकार असहयोग और सविनयमंग, आदि साधनों से स्वराज्य कहाँ तक निकट आता है। वे तो अहिंसा का स्वराज्य का कसौटी पर कानन है। उनको मयोभूमिका इतने उच्च नहीं है। जनता या उसके नेताओं ने इस बात का ज्ञान भी न किंचित ही की हाँगी कि अहिंसा के मार्ग पर हम कितने अग्रसर हुए हैं। खुद गांधी जी के अग्रगण्य भी इस बात का अग्रनिश आग्रहपूर्वक नापनेवाला का प्रयत्न करने नहीं, पाये जाने कि हमने अहिंसा की विश्वास मकिनमी प्रगति की है और हम इस नैतिक शस्त्र को धरने के कहां तक योग्य हुए हैं। कारण, भारतीय देश अलों पर अहिंसा की धुन सबाार नहीं है। अधिक-से-अधिक इतना हा कहा आ सकता है कि कुछ महाभागों पर स्वराज्य की धुन सबाार है। अहिंसा का ज्ञान युक्त निष्ठा में इनकी शक्ति अवश्य है कि उसकी आराधना से अनेक लुहगुणों का विकास अनयायास ही हो। किन्तु पिछले बीस वर्षों में या एक पीढ़ी में सत्य और अहिंसा का सतत उद्योग होने पर भी कोई यह नहीं कह सकता कि हिन्दुस्तान में सात्विक और सद्गुणी व्यक्तियों की अविचित्र्य भृङ्गला बन गया हो।

[ शेष अग्रलेख अंक में ]

**शुद्धी की सूचना—**

'गुरुकुल' का ११ अक्टूबर का अंक 'आयुर्वेदोंक' विशेषांक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। प्रतिबंध की तरह इसमें अग्रलेख अंक—जो १० अक्टूबर की प्रकाशित होने को था—भवकाश रहेगा। पाठक इस बात को नोट करें।

# गुरुकुल

१६ भारतीय शुक्रवार १९६७

## विजय प्रयाण

(भी आचार्य अमरदेव जी)

'विजय हमेशा राम की होती है, रावण की नहीं; इस लिये जो विजय प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें राम की लीला करनी चाहिये रावण-लीला नहीं।' यही है एक संदेश जिसे भारतवासीयों को फिर-फिर सुनाने के लिये विजय-दशमी नित्य नये रूप में प्रति वर्ष आती है।

तो यदि विजय की तैयारी करना है तो आज से राम की लीला के मांग पर चल देना प्रारम्भ कर देना होगा। विजय तो अवश्य मिलेगी ही, वह तो एक दिन आने ही वाली है, पर उस शुभ दिन के आने से पहले वर्षों तक तुम्हें दुःख द्रविशता बेबसा अज्ञानान्धकार के कारखानेक बने हुए, सचन बसे हुए भारतीय प्रार्थीरूपा जंगलों में भटकना होगा। वहीं से तुम्हें 'पुराने दरें का' सब लड़ाई का सामान जुटाना होगा। रावण के बस में आये हुए लोग तुम्हें इस तपस्या और तैयारी में बिचन डालेंगे, तुम पर हँसेंगे, तुम्हें पागल कहेंगे। तुम्हें शाबासा देने वाले थोड़े ही रामभक्त मिलेंगे। पर राम की लीला तो बड़ी है। इसके बिपरीत राक्षसों रावण लाला तो, देवों, आज जोगों पर चल रही हैं। देश की इस दुर्वशा के समय में भी अन्ध सब का तबक से आँखें मीचकर अपने लिये धन कमाया जा रहा है और भोग भोगे जा रहे हैं। जो धन, बल, ज्ञान में निबल हैं उनकी इस निबलना का लाभ उठा कर और अपने पास जो खरा सँ धन शक्ति और शिवा है उसका दुरुपयोग कर करके निबलों का निरन्तर शोषण किया जा रहा है या उनके शोषण में हाथ बटाया जा रहा है। दम्भ, छल, कपट, हिंसा और क्रूरता का नम्र नृत्य ही रहा है। पर यह सब अंधकार रावण की लीला नहीं तक है अब तक कि राम की बनबाम की तपस्या पूरी नहीं हो जाती। उसके बाद तो कुछ ही दिनों में मांसशक्तिकता और संकुचित वैश्वभक्ति के भी समुद्रों को पार कर परार्थिना की लंका का अर्थ कर शोषण के रावण का अन्त कर दिया जायगा और राम की विजय होगी।

तो उठो, आज से ही राम की कठिन किन्तु संगत-सयी लीला का प्रारम्भ करो। आज के शुभ महीने में ही इस विजय के लिये प्रयाण कर दो।

## जीवन-साहित्य का एक उपेक्षित अङ्क

[ लेखक—भी वं. सत्यन विद्यार्थीकर ]

लेखक का, कथे का, साहित्यकार का अपना रचना के आवासस्थान कथानक, घटना, और परिणामिक के साथ आत्ममग्न हो जाना ही साहित्य में सजीवता, प्राण-शक्ति और अमरता पैदा कर सकता है। 'रामचरितमानस' ही को ले लें, जो आज देश में सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है और जिस में जनता को एक अद्भुत आकर्षण, साहित्यीय समा-मोहकता और अमर आत्मायना मिलता है। उसका मुख्य रहस्य यही है कि 'मानस' का रचना के पूर्व 'मानसकार' ने उसके हाथ के माथ अपने को आत्मसमर्पण कर दिया। उसमें असली जीवन-शक्ति आई है उस अनुशासन, मनन और साधन से, जिसे हम अतिक्रम उपेक्षित कर देते हैं—उसमें कल्पना या भावनाओं का ही वैभव नहीं है, बरन् उसमें एक अनुभूति है, जिसमें भावना और कल्पना के मनके पिरोये गये हैं। यह अनुभूति तुलसी में न होती तो उनकी रचना में इतनी की बलवान और नलक्य को तेजस्वी बनाने का सामर्थ्य भी न होता, आज 'मानस' लालों करोड़ों के लिए रूढ़न का पंज न होता, अन्तमग्न करने का ही नाम स्थापित है। इस दृष्टि से 'मानस' लोकोत्तर ग्रन्थ है और उसकी लोकोत्तर लाकप्रियता का यही प्रधान रहस्य है।

यह स्थापित जिस साहित्य में नहीं है, वह दूसरों को अनुप्राणित नहीं कर सकता। मर्राए के लेख के समान उसके बिना की गई रचना आवास्तावक सृष्टि है, जो कुछ समय के लिए ही बिनाए, आभाए या मनोरञ्जन का साधन बन सकती है। उससे व्यक्तिक, समाज अथवा राष्ट्र के नर्माण के लिए कोई ठोस या स्थिर सहायता प्राप्त नहीं का जा सकती।

हमारे समाज की रचना का आधार वैदिक दृष्टि से 'यज्ञ' या 'दोम' की भी भावना है, उसका साधा-साधा अर्थ अपने व्यक्तिक को समष्टि के लिए अर्पण कर देना है। वेदान्त की व्यावहारिकता या इसी भावना में निहित है। दिया यद् अपने तेज और बली का अर्पण नहीं करे, तो वह दुनिया में उजझा करने का साधन बन नहीं सकता। रत्नगर्भां वृषिषः के पेट में आज यदि अपने को खला न दे, तो उसके गर्भ से पैदा होये बली बनरते तुल्य ही जाय पार उस पर निभर रहने वाले प्राणियों। जीवन वृद्धर हा जाय। लेखक या साहित्यिक के पस अर्पण करने के लिए क्या है? शब्द-कोष, शब्द-प्रयोग, पद् योजना, वाक्य-रचना, प्रबन्ध-शैली, भाषा-साहित्य रच-माधुय, आलंकार-सौन्दर्य, दृश्य-वर्णन, चरित्र-वर्णन, आभ-व्यभिचारी और प्रमिभा एवं अनुकता के चमत्कार आदि से प्रगट होने वाला काव्य-कीरात साहित्य का केवक खल शरीर है। लेखक, कथे या साहित्यिक उसमें स्थापित से ही उस अमरता का प्रतिष्ठ कर सकता है, जो उसमें दीर्घ,

चेतना और जीवन पैदा करके दूसरों के लिए उसे सुखक बना देती है। इस स्वरूपमूर्ति के रूप में ही वह दूसरों के लिए अपना उत्सर्ग करती है और समाज की रचना तथा राष्ट्र के निर्माण के महान् कार्य में योगदान करता हुआ अपने कर्तव्य का पालन कर सकता है। बिना इसके कुम्हारों के बर्तों की तरह पाषाणियों को तैयार करते जाना किसी भी महान् उद्देश्य या आदर्श का पूर्य में सहायक नहीं हो सकता।

लेखक व साहित्यिक के आत्मसात और स्वानुभूति की दृष्टि से सौंदर्य साहित्य का एक सुन्दर अंग 'पत्र साहित्य' है, जिसका और हम लोगों का अभी ध्यान ही नहीं गया। दूसरा भाषाओं में इस साहित्य का अग्रज सम्मान है। वह आदर्श की दृष्टि से देखा जाता है और बहुत पढ़ा जाता है। कुशल अंग के पत्रों तक में उनको लेखन वाला जैसे अपना दल खोलकर रख देता है, वैसे ही कदा महान् विचार, लक्ष्य, उद्देश्य अथवा आदर्शों का पूर्य में सहायक रूप महान् पत्रों में भी उनके हृदय की अस्मिता द्वारा व्यक्त हो जाती है। मुझे इसकी प्रस्ताव सब से पहले तब हुई, जब मैं स्वर्गीय स्वामी अज्ञानम् जी महाराज का जीवन लिखन में लगा हुआ था। उनके कागजों को छान-छान करने से कुछ ऐसा पता चला कि अपने सब पत्रों का नकल रखना उनका स्वभाव-सा बन गया था। अपने सब पत्रों के जबाब का मसबिदा वे स्वयं अपने हाथों से तय्यार किया करते थे। उनका कलक उसकी नकल करके डाक में छोड़ देना था और वह मालिक मसबिदा काइल में पिरा दिया जाता था। उनक इस प्रकार संभल कर रखे हुए बहुत पुराने पत्र-व्यवहार को पढ़ने का उस समय अवसर मिला और जेने यह अनुभव किया कि उनके आन्तरिकता का ध्यान उन पत्रों में बाबर गुज रही था और उनके हृदय का अमलौ पत्र उनमें फलक रहा था। अफ्रीका से गांधी जी के साथ हुआ उनका पत्र-व्यवहार, राजा गोखले के साथ हुई उनकी चिट्ठी पत्रों और ऐसे ही कुछ और पत्र भी कितने बाध-प्रद प्रतीत हुए। दीनबन्धु एण्डरूज के साथ हुआ पत्र व्यवहार तो एक छोटा-सा पुस्तिका बन सकता है और उसमें दो महापुरुषों की जागती व उठती हुई आत्मा के दर्शन किये जा सकते हैं। 'जगती व उठती' शब्द मैंने इसलिये कहे कि उस समय न तो एण्डरूज 'दीनबन्धु' बने थे और न मुन्शीराम जी 'स्वामी अज्ञानम्' बन पाये थे। वो उठती हुई आत्माओं ने 'महान्' पत्र के शिखर पर पहुँचने के लिए आन्धकार में एक दूसरे के लिए सहायक होकर जो रास्ता टटोला था, उसका सजीव चित्र उनके उन पत्रों में अंकित है। 'गुरुकुल' उनके जीवन का सचबोड कांथ है। उससे सम्बन्ध रखने वाले पत्रों में गुरुकुल के प्रति उनकी भावना कहीं-कहीं सजीव होकर जाग उठती है। स्वामी जी के जीवन की प्रगतिर्था जैसे शत्रुत्पीली थी, वैसे ही उनका पत्र-व्यवहार भी है।

इस साहित्य के दो ताजे उदाहरण हम सबके सामने हैं। 'सरस्वती' के संवाहकों में आभासे महावीर प्रसाद जी

द्वितीय के पत्रों का-संस्कृत करने के लिए 'सरस्वती' में उन्हें प्रकाशित करना शुरू किया है। वे कितने उद्योगिक स्फूर्ति शायक और मनोरञ्जक होते हैं—यह उन्हें पढ़ने वालों से छिपा नहीं देना चाहिए। 'हरिजन' या 'हरिजन-सेवक' के कालमें में एक नया शोधक 'डाक का पैला' इन्हीं महानों में शुरू किया गया है। वह गांधी जी के साथ होने वाले पत्र-व्यवहार का सांख्यिक वाजु है! उसे पढ़ने में जो स्फूर्ति, प्रेरणा एवं उत्साह मिलता और पत्र-व्यवहार होता है, वह अनुभूत है। किसी भी एक पाठक के पत्र के जबाब में लिखा गई इस-पांच पंक्तियाँ सैकड़ों का मानसिक शांति का साधन बन जाती हैं।

बात यह है कि पत्र लिखन में मनुष्य को शब्द-योजना वाक्य रचना अथवा भाषा-साहित्य आदि किसी भी दृष्टि से कुछ थोड़ी-सी भी बनाबट नहीं करना पड़ता। उसमें बिलकुल सीधी-ससी, सरल भाषा में हृदय की भावनाओं का मौलिक रूप में उतार दिया जाता है। न यहाँ पाठकों का क्वि का सवाल सामने होता है और न किसी को प्रसन्न करने का। किसी की आलोचना का भी काई खयाल सामने नहीं आता। 'सत्सा-साहित्य-मण्डल' ने भी 'सुमन' जा का एक पोथी 'भाई के पत्र' के नाम से प्रकाशित का है। वे पत्र स्वभ्रतः इस पोथी के लिए ही लिखे गये हैं, फिर भी उनमें अपना अस्मिता मौन्य है। भाई उमने बढ़िया सीख बहिन को और क्या ने सकता है? यदि कहीं मौलिक पत्र होते, तो होने में सुगन्ध हो जाती। विचारक अवसर पर अपने नये माथा (पत्ता) को लिए मैं किम्मा सुन्दर गैट की लोज में था कि कलकत्ते में सहला मेरे हाथ योगेश्वर का अरविन्द क वे पत्र लग गये, जो उन्होंने सम्भवना पत्रकी जेल-गंगा का अवसर उपस्थित होने पर अपनी सहधर्मिणी को लिखे थे। मैंने कुछ पत्रों का उस पुस्तिका को सिया कोई और उपहार अपने विवाह में अपने हाथों से अपने नव साथी को नही दिया। मुझे खुले शब्दों में आभमान व गौरव के साथ यह स्वीकार करना चाहिए कि हम दोनों में विद्यमान साधारण ही राष्ट्रीयता को उत्तरोत्तर बढ़ाने में उन पत्रों में यथेष्ट बल मिला है।

महापुरुषों के पत्र वस्तुतः उनकी अनुभूतियों के चित्र ही तो होते हैं। महापुरुषों के छाया चित्रों एवं चरित्रों में मिलने वालों स्फूर्ति से कहीं अधिक प्रेरणा इन भावना चित्रों से मिल सकती है। लेकिन हिन्दी में ऐसे उपयोगी साहित्य का प्रायः अभाव है। उसे 'अग्र्यन्नाभाव' कहना भी कोई अत्युक्ति नहीं। चरित्र-चित्रण सम्बन्धी जीवन साहित्य का हिन्दी साहित्य में अभी विकास कुछ ही नहीं। 'पत्र साहित्य' जीवन साहित्य का ऐसा अंग है कि उसके बिना उसका पनपना जरा मुश्किल जान पड़ता है। लेकिन उसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता। जीवन-प्रेरक शक्ति और स्फूर्ति के पुञ्ज इस साहित्य की और भी जीवन साहित्य के निर्माताओं का ध्यान जरूर जाना चाहिए।

## पिण्डारी ग्लेशियर

( ले० श्री प्र० चमरसिंह जी )

कारमार से राजजिल्ला तक सुविन्मुन हिमालय में प्रकृति नदी की अनेकों गुप्त रङ्गभूमियाँ पैसी हैं जिनके विषय में बहुत कम लोग जानते हैं। पिण्डारी ग्लेशियर भी इनमें से एक है। कुमाऊँ प्रदेश के आन्तक में, पिरव विन्मुन नन्हा देवी की उपर्युक्त में, पार्वत्य पुर्वों की मटक से सुवामित पिण्डारी ग्लेशियर परम तयनाभिराम है। किमी ऊँचे स्थल से देखने पर हम घाटी की जो शोभा नजर आती है वह लेखनों का विषय नहीं, बल्कि स्वयं प्रत्यक्ष करने की वस्तु है। आराम-स्नानस्वक आम में जिम्ने भी यह नशारा एक बार देख लिया, वह जीवन भर उसे भूल नहीं सकता। हम छाँटे से प्रदेश में ईश्वर ने इतनी रमणीयता न जाने कहाँ कहाँ से लाकर एकत्र की है। देखते हुए शरीर पुलकित हो उठता है, मारे आनन्द के नशा सा आनंद लगता है और उस नटाधिपराज का शन-रात पन्थवाव किये बिना आँ नदी मानता जिनकी इस कला में उसकी अपनी ही सुन्दरता अभिव्यक्त हो रही है।

कहना न होगा कि पिण्डारा जिन की हमारा इच्छा बहुत दिनों से थी और हमके लिये कुछ समय पूर्व से हम तैयारी भी कर चुके थे। गन २० अगस्त को आ आचार्य जी और सुक्याभिज्ञता जी की अनुमति लेकर हम गुरुकुल कागड़ी के १२ विद्यार्थी समन्वय मार्ग की ओर चल पड़े। गर्मी के दिन और देह्रा-हावड़ा एक्सप्रेस में भीड़, कुछ दम पहुँचते। राम-राम जपते बरेली पहुँचे और छोटी लाइन की गाड़ी पर मयार हाँकर १० बजे काठगोशाम जा पहुँचे। काठगोशाम उस ओर रेल का आन्निम स्टेशन है। वहाँ से आगे हिमालय की ओरियाँ सड़ियों की तरह ऊँची ऊँची होसी हुई लिम्कन तक चली गई हैं। वहाँ से अलमोड़ा की दूरी ३० मील और नैनीताल ११ मील है। पडाइ की तराई होने के कारण काठगोशाम में गर्मी अधिक पकती है। वरमान में मलेरिया भी स्व जोग से फैलता है।

काठगोशाम में अधिक देर तक ठहरना हमें पसन्द नहीं था हम लिये समीपवर्ती नदी के शीतल जल में स्नान करने के बाद कुछ स्नान-पोंकर हमने अलमोड़ा की ओर प्रस्थान किया। यद्यपि नैनीताल-जन्मके स्वर्गीय दर्यों का तस्वीरें हम हर एक स्टेशन पर देखने आ रहे थे—समीप ही था, पर हमने यात्रा के कठोर अंश को पहले पार करके आनंद में लौटते समय नैनीताल जान का विचार किया और आगे बढ़ चले। १० माल की कठोर चढ़ाई बढ़ कर भुबाली पहुँचे। सूर्य की त्विल्लिखना श्रुप और पार्वत्य-ताजी शीतल हवाओं का आनन्द यहाँ म्ल मिलना है। मैदानों के गरम चालाकरण से तंग आकर जो लोग यहाँ पहुँचते हैं उन्हें जो तबियत की ताँकना प्राप्त होना है उसे ए-सुक भोगी ही जान सकता है। यहाँ का तपेक्षिक का हस्पताल भारत भर में विख्यात है। हिन्दुस्तान के कोने २ से तपेक्षिक के रोगी यहाँ स्वास्थ्य लाभ करने आते हैं। कुछ विश्राम करने के बाद—हमने अत्रा प्रकार स हल

हस्पताल को देखा। वहाँ और आसपास के बन-पर्वतों में हजारों चीड़ के वृक्ष अपनी 'भरभर' ध्वनि से रोगियों की जिन्वर्गा दान देते हैं। शायद 'भर-भर' करने से रोगियों में राग विनाशिताना पति.क्या ( Reaction ) पैदा होती है और वे शीघ्र ही सबल और नीरोग होने लगते हैं। हस्पताल के कर्मचारियों ने हमें गुरुकुल कागड़ी से आया ज्ञान कर सम्मान के साथ, अक्की प्रकार से सारे रोगी गृह, रोगियों की चिकित्सा पद्धति, पद्धति में नए सुधार, कुछ परीक्षण आदि व्याख्या करके समझाये। हस्पताल में सफाई करने के लिए प्रथम तो प्रकृत की सेविकाएँ श्रुप हवा बर्षा आये बहुत कुछ कार्य करती हैं फिर भी यहाँ मकई आदि का मारा प्रबन्ध बहुत उत्तम है। हिन्दुस्तानियों के बाईं से यूरोपियों का बाइ कहीं बेहतर है। यहाँ से उतर कर रामगढ़ की ओर चले।

रामगढ़ स्थान छोटा होने हुए आ आर्य जगन में पर्याप्त सराहूर है। त्याग सूर्ति श्री ब्रह्ममा नागव्य स्वामी जी का प्रसिद्ध योगाश्रम यहाँ है। स्वामी जी के भक्त व श्रद्धालु मञ्जन बड़ी दूर २ से दर्शनाय यहाँ आते हैं। यहाँ हमारे गुरुकुल के अनेक संरक्षक सज्जनों के मित्र जाने से किमी दान की कोई तकलीफ नहीं हुई। १

अलमोड़ा के मार्ग में सुकेश्वर दर्शनीय स्थान है। यहाँ पर तपेक्षिक आदि सैकड़ों बीमारियों के किटाणुओं के परीक्षण के लिए एक बड़ी रमायनशाला है। पर्वत की चोटी पर मघन कुञ्जों में आचार्य यह बस्ती विशेष विना-कर्षक है। यहाँ से अलमोड़ा तक जाने के लिये एक माथा-रग्न रास्ता है।

अलमोड़ा, कुमाऊँ ( कुर्माञ्जल ) का समृद्धि शाली नगर है। न निक सकानों और होटलों की दृष्टि से बलिक आशान-हवा और प्राकृतिक दर्यों की दृष्टि से भी। सुविमानन्दन पम्स का छायावाद यहाँ के वृक्षा के पारे २ कटन जाने के कारण प्रकाश से आवार हो रहा है। अब उनकी कविता, छाया का पुङ्गला छोड़ चुकी है। नृ-याचार्य उद्यरशुद्ध की नाट्यशाला देवद्वामों के कुञ्जों में परम रमयाक बना है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर को अलमोड़ा के सर्वोच्च शिखर ( Snow View ) पर निशाम करना बहुत पसन्द है। ईश्वर उन्हें शीघ्र नीरोग करें।

अलमोड़ा में दो दिन विश्राम और भार उठानेवाले स्वर्णों का प्रबन्ध करके बगेश्वर की ओर चले। यहाँ से पिण्डारी ग्लेशियर ७५ मील है। लम्बे २ देवनाम वृक्षाँ की चीरती हुई सङ्क, नागिन सी बल स्वानी चली गई है। शीतल हवा के भोंके स्थाने और हरियालों की नेत्रों से पागे हुए तबियत में वह साधकता छाई कि १६ मान चल चुकने पर भी किचित् थकावट महसूस नहीं हुई। बगेश्वर पहुँच कर हम ने अंतर में जाकर डेरा डाल दिया। ठहरने के लिए यहाँ सबसे नुली और हवादार यहाँ जगह मास्तु हुई। संधिप का सीधियों की धोना हुई सरयू नवा गजन-नजनके साथ बह रही था। दूसरी ओर से गोभना नदी, सयू से मिल कर आनन्द की उमङ्गाँ का प्रकट कर रही था। दो बहनों के मिलन का किनना मनमोहक दृश्य था।

बागेरबर से कफकोट १४ मील है। ५ मील के बाद एक रास्ता कैलारा मानसरोवर की ओर जाता है और दूसरा नाले के साथ २ पिण्डी ग्लेशियर की ओर। हमने नाले के सहारे २ ग्लेशियर की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। सबक तंग थी। दिन के दस बजेका समय था; धूप निकली हुई थी और इर-इर करती हवा अत्यन्त ही खर रही थी। ज्यों-२ आगे बढ़ते गए जंगल में नीरवता और सन्धता का सन्नाय बढ़ता गया। पत्तियों का कलरब शाब्द था, मनुष्य की कहीं गन्ध भी नहीं मिलती थी। हगभरा विशाल जंगल आकाश के सुने आवरण से ढका हुआ था। भरनों का गम्भीर अनहतनाय एकान्त का प्रियसंगीत सुना रहा था। दूर, नन्दा देवी का गगन भेदी २६००० फीट ऊँचा शिखर दोपहर की धूप में चमचमा रहा था। इस नीरवता में जन की लावण्य-श्री मूकरा रही था, सरिताएं हृष को किलकारा मर रही थी। चारों ओर वृक्षा और उष्माद छा रहा था।

अचानक बावल आ धर, शायद इन्हें हमारा सुख मखा नहीं हुआ। अथवा 'सुख के बाद दुःख और सुख के बाद सुख' हम फिलासफी को समझने में लगे हो गये। लगे कड़क-कड़क कर डूबमने? हमने दौड़कर पयत कन्दरा की शरण ला और शीत-पानी से बच गए। इन पर्वतों में बर्फ २ कन्दरायें देखने में आईं जिनमें पुरा का पुरा चरान मजे में रात बिता सकती है।

क्योंकि ओढ़ने बिजुन का सामान हम बहुत कम ले गए थे— १ कम्बल और २ चादरें— इस लिये सर्दी सहकर पयशा करन का हम अचूक अभ्यास हीनाया था। हाक बगलों में रात का पषाय करते ३ दिनवाह दुराकया पहुँचे। इस यात्रा में शायद ही कभी कोई गसा दिन आया होगा जिस दिन दोनों समय राटी भिला हो। इन यात्राओं में जन और सन्तु में ही वह स्वाद आता था जो मोहनभाग में नहीं।

अतः पुराकया से ग्लेशियर कुछ-पर्यन्त माल के पासले पर ही है। हम तब तक ३ घंटे उठकर चल पड़े किन्तु अन्वेष में मीलों भटक गये। सुख निकलने पर असली रास्त में जाने के लिये हमें फिर वही आना पड़ा जहाँ से हम चले थे। अपनी नाममफी पर बड़ी हँसी आई। जब ग्लेशियर पर चढ़ते हुए हम आगे चले तो बड़ा डर मालूम हुआ। पचास-पचास साठ-ठाठ फाटी माटी बरफ की तह ५ मील तक जमी हुई थी—जिसमें जगह २ लम्बी २ वगैरे पड़ी हुई थी। कई जगह बरफ की परतें बहुत हलकी थीं। यदि पर रखने ही बरफ टूट जाय और कोई अक्षेरा द्वारा में धंस जाय तो मौजूदा जमाने में बिक्रम के पास मेमा कोई साधन नहीं जो मृत्यु के मुख से निकल सके। थोड़ा २ देर में तोप छूटने का सा शब्द सुनाई देता था और पहाड़ पर से पिघल कर बड़े २ बरफ क टोंके टाई में गिर रहे थे। बाँध लपेट में कोई मनुष्य आशय तो चहान के नीचे चींट का तरह पित जाय। हमने अपने अन्दर का सारी शक्ति और हिम्मत बटोरों और फक २ कर, फक २ कदम रखते हुए पहाड़ पर चढ़े। यहाँ से सम्पूर्ण घाटों का आँग नन्दा देवी का जो दरय शीमता है वह अवलनीय है। चचल

किम चारों ओर बिलररा हुआ है जिसमें से धीरे २ पानी की धूँ पिण्ण २ कर द्रवित हो रही है। १३ हजार फीट ऊँचे इस विशुद्ध वातावरण में पवित्र-मन से अनेकों प्रकार की बड़ी २ उमंगे प्रकट होती हैं। शायद इनको कारण हमारे प्राचीन ऋषि-सन्तियों का हिमालय इतना प्यारा था। हमारे उपनिषदों, आरण्यकों और शास्त्रों की जन्मभूमि हिमालय के ये ही प्रदेश हैं, यह बात यहाँ पहुँचने पर अनुभव के द्वारा मस्य प्रतीत होती है।

हिमालय के उन्नत भाग तन्दा देवी को नमस्कार करके हम लौट चले। हमकी ऊँची चोटियाँ हमें आशावादी देती हुई—यह कहनी प्रतीत होता था:—“भारत माता के सपनों! यदि समाज में अपना मसक ऊँचा रखना चाहते हो तो स्वाम-तपस्या के आदेश का अन्वेषण अपने लगेन पर दृढ़ रहना संभ्य।”

## गुरुकुल समाचार

गुरुकुल के १२ विद्यार्थियों का एक दल प्रयाग्य ७ दिन के लिए म डरी गया है। इस दल में अधिकतर वे विद्यार्थी हैं जो स्व तपस्वी की श्रेणी में विशेष रुचि रखते हैं। आशा की जाती है कि यह दल रास्ते में प्रयाग के साथ २ अपने हस्तलाभ का भी अचूक परिचय देता जायगा।

गुरुकुल में हमलतों का काम पूर्णवत् जारी है। आधुनिक महाविद्यालय भवन के साथ २ वेद व कला महा विद्यालय भवन बनाने का काम भी शुक्र कर दिया गया है। नीच में पथरों की कुड़ाई जारी है। उदार दानी महामुभावों को इस पवित्र सत्य के लिये दान करने का अचूक अवसर हाथ आया है। अशा है दानी सज्जन शीघ्र से शीघ्र योग्य सहायता देकर जहाँ अपना नाम व यश स्थाई बनायेंगे वहाँ विद्यादान के पवित्र कार्य में सहायता देकर अक्षय पुण्य की भी भागी होंगे।

नयी धर्मशाला—गुरुकुल में बाहर से आकर उठरने वाले सज्जन का मुविधा के लिये चौथा धर्मशाला बनकर तैयार होगई है। आशा है यदि दानी लोग इस दिशा में उचित ध्यान देंगे तो शीघ्र ही और भी धर्मशालाएँ बन सकेंगी और इस सम्बन्ध में हम बहुत कुछ सुधार कर सकेंगे।

## गुरुकुल स्वास्थ्य समाचार

ब्र० रामेश्वर २५ अंशों विषमज्वर, ब्र० प्रेमनरूप ३५ अंशों विषमज्वर, ब्र० राजकिशोर ३५ अंशों विषमज्वर, ब्र० रामचन्द्र ३५ अंशों विषमज्वर, ब्र० लक्ष्मण १२वीं अंशों विषमज्वर, धर्मवीर १२वीं अंशों विषमज्वर, ब्र० मुनाचन्द्र १ अंशों विषमज्वर, ब्र० सर्वमित्र ३५ हृत्पण्डु ज्वर, ब्र० सोमदत्त २५ अंशों आमज्वर, ब्र० दमनशकुमार २५ नेत्रज्वर, ब्र० देशबन्धु २५ अंशों ज्वर।  
गण सताह उपरोक्त ब्र० रोमी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

## गुरुकुल कांगड़ी

को

# प्रसिद्ध औषधियां

### भीमसेनी सुरमा

आंखों को बुढ़ापे तक सुरक्षित रखने के लिए "भीमसेनी सुरमा" नियमपूर्वक इस्तेमाल कीजिए। आंखों से पानी बहना, खुजला, कुकुर आदि रोग कुछ ही दिन में दूर हो जाते हैं। मूल्य ॥८॥ शीशी

### भीमसेनी दन्त-मंजन

इसका प्रतिदिन व्यवहार करने से दांत मांती के समान सफेद और चमकदार हो जाते हैं। दांतों से खून पीप का आना यन्द् हो जाता है। मूल्य ॥१॥ शीशी

### ब्राह्मी बूटी

दिमागी रोगों के लिए बहुत प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होती है और आंखों की उज्योति बढ़ती है। वकील, अध्यापक, तथा क्लर्क आदि दिमाग का काम करने वालों को अवश्य ही इसका सेवन करना चाहिए। मूल्य ॥३॥ सेर

### ब्राह्मी तैल

स्नान के बाद मिर पर लगाने के लिए ब्राह्मी का यह तैल बहुत उत्तम है। इससे दिमाग को ठंडक तथा तरावट पहुंचती है और आंखों का उज्योति बढ़ती है।

मूल्य ॥२॥ शीशी

### च्यवनप्राश

स्वादिष्ट ! बहिया !! रसायन !!!  
मूल्य १ पाच (२), आठ सेर (२), १ सेर ४)

एजेन्टों के लिय विशेष सुविधा

पता:-गुरुकुल फार्मेसी, गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

ग्राहक { देहली—बांदनी चौक ।  
मेरठ—सिपर रोड ।

एजेन्सियां { अलमनऊ—एजेन्सियां गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी श्रीराम रोड ।  
साहीर— " " " " इस्पताल रोड ।  
पटना— " " " " महुआटोली बाँकीपुर ।

बीधरी इलासराय के प्रकल्प से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित ।



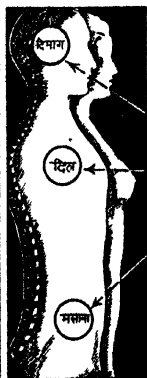
# गुरुकुल

संस्करण  
241  
संस्करण  
साहित्य-न पब्लिश हरिकेश वेदालकार

[ संख्या २५ ]

शुक्रवार ३ कापिक नं० १६६७ वि०; ता० १८ अक्टूबर १९४०

इस आड़ू को सम्भाल कर रखिए इस से आपको ५०) तक नकद मिल  
सकते हैं पूरा- विवरण पृष्ठ २१ पर देखिए-



## दिल दिमाग व मसाने की ताकत के लिये गुरुकुल कांगड़ी का

### च्यवन प्राश

सदा

इस्तेमाल करें-

हर मौसम में सेवन करने के लिये बढ़िया रसायन है।  
पुरानी खांसी, दिल की चड़कन, दमा व तपेदिक की खास  
दवा है।

मूल्य १-) पाव. २-) आध सेर. ४) सेर।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी पो. गुरुकुल कांगड़ी (सहायन पुर)

# विजयादशमी

।क—साहित्यरत्न पं० हरिवंश जी वेदालय, हरदोश, राधामी काश्मिरीय विद्यालय गुरुकुल कांगड़ी।

विजयादशमी हिन्दुओं का मस में बड़ा दिन है। यह वर्ष, श्राद्ध ऋतु के प्रारम्भ तिथि पर आता है। आज के दिन यह मस एक वर्ष की लक्ष्मी प्रतीक्षा के बाद मस्य पुनः आ उपस्थित हुआ है। ते नदी अपने शतप श्याम लवंग हरितान को पहिन कर हमारी आत्मों के चिक रहो है। वर्षी से धुले हुए वृक्ष-रिषों और वन पर्वत चित्तने मले मालुप हैं। मेघों से हीन निर्मल आकाश और और फूले हुए श्वेत काम-कुसुमों का ल हास कितना चित्तकरक है। रो में प्रफुल्ल कमलों पर भौगों की और सरिताओं के मोती जैसे स्वच्छ मल में हंस-कारावहव प्रभृति पक्षियों मस विहार, कैसा हृदयाह्लादाक है ? हुए हर्षान्तिक से शगी पर रोमांच हो है। अपने चारों ओर नव जीवन, नना, नवसूक्ति, नवजागृति और नई-नई नम्र आरती हैं।

विजयादशमी शक्ति की पूजा का, बल की ना का तौहार है। रहने हैं कि के दिन लामों वर्ष पूर्व मथुरा म मगन रामचन्द्र नी ने दुष्टों के त्रकानि रावण पर विजय प्राप्त की तेन की प्रतिस्मृति दुर्गा ने भी इसी हादुर्वे पहिपासुर, शुम्भ, निगुम्भ, पूण्ड्र आदि भवाचारों देव्यों का वध र। तथा से इस वर्ष को हिन्दु 'दुी नैयारी के माघ प्राति पव मनाती । ब्रह्मा अपने से महीनों पूर्व ते रत के हांग के रूप में रगल्ले ले की शुरू हो जाती हैं। इन दिनों में छंटे बंटे सभी शहरों में मगन न् पवित्र नाम-पर नाना प्रकार के राप-भाते हैं ; नृ, रा, बाज़ार गर्भ दोना णं नाचनी हैं और इस प्रकार हमारे

राष्ट्र को उन्नति की ओर ले जाने वाली सारी शक्ति आभोद-प्रभोद में वर्षादि हो जाती है। कहां विजयादशमी का बल-भोग प्राप्त करने का यह महान् पर्व और कहां जाति के नरु को लोमळा करने वाले ये अनाचार ! इस दिन के आने पर तो हमारे अन्दर ऐसी अग्नि प्रकट होनी चाहिये जो समस्त विकारों को जलाकर लाक कर दे। न किंके अपने अन्दर के विकारों को ही मल नरे बलि दीन-दुनिया में फेले हुए भैरवों प्रकार के अनाचार, पाप और अनीति को भी शिष्टा कर उनका नाम निशान तक बाकी न रहने दे। एमों उत्कट भावना आज के दिन हमारे अन्दर अश्रय उठनी चाहिये।

किन्तु शोक का विषय है कि आज क दिन शक्ति-संचय करने के बदले हम अपने देश की शक्ति का अपव्यय करने की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। यह ठीक है कि आज हमारा देश स्वधीन नहीं है, पर फिर भी हम संघटन के द्वारा बहुत कुछ कर सकते हैं। आज के दिन राव का नाम ले कर हमें अपनी लाई हुई शक्ति को बटोरने में लग नना चाहिये। रामचन्द्र जी ने भी जंगलों की अरर शक्ति वाली वानर, मालू आदि जातियों का संघटन करके वह शक्ति प्राप्त की थी जिससे लंका जैसे सुलह दुर्ग को नीना ग। यदि हमने अपने अन्दर क दुर्गुओं पर विजय पा ली है और हाथ में सत्य मष्टा, आत्म-मय, बुद्धि विरोधी धनाय वाम ली है तो निम्नलिख हने नष्ट करने वाले इस दुष्टिवा व कोई नहीं है। किन्तु यदि हम गम-चरित की इस प्रभार दुर्गीत कते रहेंगे तो हिन्दू जाति के नाश के दिन अब दूर नहीं है। राव तो अपने उन्मल चरित के कारण संसार में द्वा अय रहेंगे। किन्तु ऐसे अर्थ करती हुई हिन्दू मानि एक दिन दुनिया से अश्रय विहाई ले लेगी और हमारी

इस अनाथले विधि 'रावांचल' को दुष्टि-मरहल की अन्व मातियों प्रतिष्ठा के साथ-सगर्व अचनावेगी।

तो आज के दिन क्या करना चाहिये, क्या हमने इस पर मली मांति सोचा-विचार है। आइये, हम सच मिलकर विचार करें। संसार की सब जातियों परस्पर पतिवर्षा में आकर उन्नति-क्षिणर की ओर बढ़े पैम रे जाती रा रही है। मन् ४० की इस नाजुक परिस्थिति में भी हम पूर्ववत् ही गकलत की नीन में मोए रहे, यह कैसे संजू होगा। इस दिन हम अपने वैयक्तिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में आए सब मल्लों को दूर करके शुद्ध पवित्र हो जायें। आज के दिन कामज के बने रावक के पुतले को न मना कर, हम अपने अन्दर के वास्नाबह दुश्मन लोष, मोह, मत्वंश, जालीय-विद्वेष को पतन की ओर ले जाना वाला सुषुम्भमोचुलियों को जलायें। वर्मान्ध और उषांग शील भने। वास्दुओं में बकरो और बेंगों की बलि देना बन्द करके अपने मनो में सर किए हुए ऐश-आराम और भोग-विलास की बलि दें। काम्यं तर्ग, धारम त्याग, अन्नवर्ष, तपश्चर्या, क्त अनुष्ठान की दीक्षा लें। अपने हृदयों में बां धरम की भावना जागृत करें, बुराईयों को दूर करके अपनी पवित्र पाषाण-संस्कृति की रक्षा करें। हम उस समय के प्रायों के चरित्र से अपने अन्दर अमीम सावय लायें, पाषों-अत्याचरों का दलन करने का प्रलर भावना मन में उत्पन्न करें, और उन अदम्ब चित्तवा-काङ्क्षाओं का हृदय में आधान करें। जिनमें कोई राष्ट्र उन्नति के शिखर पर पहुंचना है।

इसलिये आज विजयादशमी के दिन यदि हम अपने मस प्दें रस्य-रामों का छोड़ कर शक्ति-सहाय करेंगे, अपने अन्दर आत्म-भावना को जागृत करेंगे, बुराईयों और कुटी-तियों के प्रति हृदय में बोग किंचि की भावना मशरत करेंगे तो ये दिन अन्न दुर नहीं मस हयोग देल की उन्नति की ओर लेनी से प्रगति करने देगा और तब सब सुल्ले शिखर से कठ सचेंगे कि जिनका दुर्गा की का मनाना हमारे लिए समर्थ हुआ।

## केश (बाल) और उन की रक्षा

क्या सफेद बाल काले त्तिये जा सकते हैं ?

(लेखक श्री प्रो० एफ० सी० विहन, एम० एस० सी० (आर०) एड०, प्रीयल के महाविद्यालय, मुंबई)

नोट:— यह लेख कांपों ग्राहक है बतः कोई महाविद्यालय नकल करने का यत्न न करें।  
मौन्द्य किम तो नहीं जाता। मनुष्य के शरीर का एक मुख्य भाग मिर है और यह प्रायः एक काठ भी नहीं रहता जाता इस लिये यदि यह बड़ा जाये कि मनुष्य के मिर का मौन्द्य मनुष्य का मौन्द्य है तो प्रवृत्त नहीं होगा। एक युवक के बाल यदि किसी कारण से सफेद हो जायें या झड़ जायें तो यह कहीं अधिक बयुवता एक बूढ़ा आदमी नज्म आने लगता है। और यदि एक काफी उमर के बूढ़े आदमी के बाल खिगाब से काले कर दिये जायें, तो उनकी बयुव कम नज्म आने लगती है। और यह नज्म वा लगता है, बयुवता सिर के लोन्दी के लिये पर्यंत बालों का होना नकती है। देखें चित्र सं० १ और २



चित्र सं० १

इस चित्र में आपे सि के बाल तथा आपे पर संव दिखाये गया है। संव आपे माग को डारने से यह चित्र कुछ ही लगता है परन्तु यदि बालों वाले माग को बांध दिया जाये और संव को रंगा कर दिया जाये तो बरी डरक प्रकाश नकर जाने लगता है।



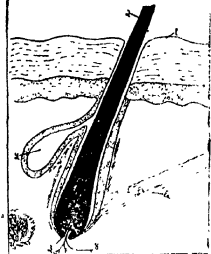
चित्र सं० २

इस चित्र में आपे सि के बाल सफेद और आपे पर काले दिखाये गये हैं। सफेद बालों को रक देने से यह चित्र युवक का मण्डल होता है। परन्तु काले बालों वाले माग को रंगा देने से यह युवक बूढ़े हो जाता है।

आम प्रजन यह होता है 'क बलों की रक्षा देगें की जाये। जब अन्न पेटा होता है तो उसके मिर पर लामों की ताइद में बल हंते हैं उनकी ठीक तरह से परवाह न करने से ही वे बड़ा बयुव में झड़ने लगते हैं और उनको खुगाब अन्धक तरह न मिलने से ही मरणा सफेद होने लाते हैं। सुदृढ वीतण यन्त्र की बढावना में दमने में मालुप होना है कि बाल त्वचा के नले माय में एक विशेष प्रसार से गडे हुये होत हैं इनकी जड़ों में रक्तवाहिनियों से रक्त प्रवाह होता है जिन बाल नो भोजन मिलता है और उसकी वृद्धि होता है। यदि किसी कारण से यह भोजन ठीक ढंग में न मिले तो बालों की वृद्धि बन्द हो जाता है और उन में कुछ रक्तवाहिनियां आ जाती हैं। देखें चित्र सं० ३।

**बाल झड़ते क्यों हैं**

(१) बालों को रक देने वाली ना बयुवों की शीशरें कुछ कारकों से कुछ अधिक शीशी हो जाती हैं उन में से रक



चित्र सं० ३ बाल की रचना

१-चर्म का गिरि का हिस्सा, २-ताइ, ३-बाल पर ४-रक्त वाहिनिया, ५-बालों की विद्यमान वाली दर की संधि।

पूरा मात्रा में नहीं जा सकता इसकी बालों की गडे समयों तथा कुछ कीली जाता है और बाल सफेद लगता है।

(२) बालों की जड़ों के पास कुछ ग्रन्थियां (Glands) होती हैं जिन में कि बालों को चितन रखने वाला एक निकलता रहता है। कुछ व्यक्तियों में इस मात्रा कम तथा कुछ में अधिक होती यदि अधिक निकलता हो और उमर बढ़ाने की जाये तो बालों को कम कर देता है।

(३) दाद, कोह आनाक और कई अन्य बीमारियां हैं जिन के कुछ बालों की जड़ों को या तो स्राव कर देते या उगने ही काट देते हैं। सि (Dandruff) को एक तरह की बीमारी होती है, यदि यह अधिक मात्रा में निकलने लगे तो यह भी एक कारण हो सकता है।

(४) शरीर के अन्ध रक्त वा Vitamin E की कमी।

(५) सुखक तथा अधिक सोडे पायुनों का प्रयोग बालों को कुछ करता है।

(६) कई वर किसी लम्बी की Typhoid Fever के बाद भी बाल लगते हैं इन का कारण भी बालों की में ठीक रक्त प्रवाह का न होना है।

(७) यदि बाल बहुत देर तक हैं तो भी उन में कमगरी आ जाती

**भड़ने अथवा गंजेपन का इलाज**

। बाल भड़ने श्रेय तो एक दम  
 ॥ जरूरी है मस से पहले यह देखना  
 के सिर में दाद भादि बीमारा तो  
 श्द हो तो उसका इलाज किसी  
 ॥ वैद्य से लुप्त कराना चाहिये।  
 ॥ धोर ध्यान देना भी अति आव-  
 यधि हो सक तो पोटास से बने हुये  
 काम में लावे, ये साबुन कुछ नम  
 अतः इन की टिकरी नहीं बनायी  
 ॥ ये द्रव साबुन liquid soap या  
 नाम से विकते हैं। किसी अच्छी  
 काम में लाने चाहिये। गुरुकुल  
 सोप का नाम बालिन शेम्पू साधारण  
 ही अथवा बहुत अच्छे सिद्ध हुये हैं  
 मिलसरीन और कुछ क्लामनासक  
 ती होते हैं, ये बालों में उपस्थित  
 तो दूर कर देते हैं परन्तु उनको  
 नहीं करते। यदि किसी और कास  
 भड़ रहे हों तो उग में ये साबुन  
 प्रदायक नहीं होते उस कास को  
 वा चाहिये। ये लिक्विड सोप बालों

की बुदि भी करते हैं। बांजला चूर्ण।  
 तोला (शक्काई चूर्ण) १ तोला। मांय काल  
 १ मर पानी में विगो देवे प्रातः हाथ से मल  
 कर् खान लेवे इम द्रव को साबुन के स्थान  
 पर काम में लाये। इन से बाल चमकीले  
 और लम्बे होते हैं और भड़ने भी बन्द हो  
 जाते हैं। बाल भड़ने को दूर करने के लिये  
 कुछ कैश तेल भी प्रयोग में लाये जा सकते  
 हैं बांजला, भांगरा, साक्षी, कैन्फाडीम के  
 तेल इस काम के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध  
 हुये हैं। इन को लगाना काम में लाना  
 चाहिये। गुरुकुल साक्षी डेयर ब्रायल में  
 बांजला, भांगरा भादि के साथ साक्षी भी  
 होती है यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ  
 है। कई व्यक्तियों के तो इम ने बहुत ही  
 जरूरी बाल भड़ने बन्द कर दिये हैं। यदि  
 बाल भांचक भड़ रहे हों तो यदि संभव हो  
 तो सिर पर उस्तम फितवा फर रात को सोते  
 समय ऊपर लिये तेलों की मालिश करनी  
 चाहिये। अंगुलियों के जगले पाग से सिर  
 को अच्छी तरह दस मिनट रगड़ना चाहिये,  
 ऐसा करने से रक्त का प्रवाह बालों की मटों में  
 होता है। यदि उस्तम न फिरवाया जा सके

तो प्रतिदिन दस मिनट मालिश करके कसदा  
 बांच कर सोना चाहिये। प्रातः ऊपर लिये  
 वा अन्य किसी अच्छे साबुन से सिर को धो  
 कर, तथा उम सुला कर ऊपर लिखा पोडा  
 सा तेल लगा देना चाहिये ऐसे तेल काम में  
 बांधो जिसमें लाद्योम (F' vitamin) की  
 पर्याप्त मात्रा उपस्थित हो। गंध बहुत बढ़  
 गया हो तो Ultra viole treatment,  
 करवाना चाहिये। इससे भी रक्त प्रवाह  
 बढ़ता है और बालों को पोषण ठीक प्रकार  
 से मिलने लगता है। गंध के लिये Lactic  
 acid सोल (बाबा प्रतिज्ञात) दिन में दो  
 बार लगाने के १ घंटा बाद सिर को धो देना  
 चाहिये। इस घोंने के लिये यदि टिकरी  
 के साबुन भी काम में लाये जायें तो अच्छी  
 किस्म क ही होने चाहिये।

**काले बालों के सफेद होने के कारण**

इस में शक नहीं कि इम विषय में और  
 अन्वेषण (Research) की जरूरत है।  
 पर फिर भी सौन्दर्य विशेषज्ञों की यह सम्मति  
 है कि बाल निम्न कारणों से श्वेत होते हैं।

(१) काले बाल सूर्य के प्रकाश में  
 ज्यादा देर रहने से श्वेत होने लगते हैं इसी

**शक्ति का खजाना—**

गु  
 रु  
 कु  
 ल  
 कांगड़ी  
 का

सब प्रकार के प्रमेहों, वीर्य दोषों व  
 कमजोरी की अन्वर्थ  
 महीषध

स त शि ला जी त

मूल्य ॥८॥ मोला

पता—गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

लिये कहते हैं कि पूर बालों को रवेत करती है किन्तु जब तक बालों को ग्रहों में रक्त प्रवाह ठीक तरह होता है, तब तक ये रवेत नहीं होते। इसलिये इसका मुख्य कारण रक्त प्रवाह की कमी है। इसमें भी रक्त बाहिनियों की दोषपूर्ण मोटी तथा रक्त प्रवाह कम हो जाता है।

( १ ) कई बार जुकाम का भी बालों पर प्रभाव पड़ना है और रवेत हो जाते हैं। इससे लिये जुकाम का इलाज करना चाहिये ऐसा करने से कईयों के बाल काजे होते देखे गये हैं। इसके साथ पौष्टिक भोजन का खाना भी जरूरी है।

( २ ) बामारी हेयर आयल—जिन में White oil की कुछ मात्रा होती है, के प्रयोग से भी बाल रवेत हो जाते हैं। इसका कारण यह होता है कि ये तेल धीरे २ उबता रहना है इसका असर बालों की जड़ों पर होता है।

**बालों के सफेद होने का इलाज**  
जान कब बाल काले करने के तेलों के हाथ पर सरसों जमा कर दिखाने वाले सैकड़ों विज्ञापन पत्र पत्रिकाओं में आते रहते हैं। हमने ऐसे बहुत से मारतंत्र्य तथा विदेशी तेलों का प्रयोग करवा कर तथा

विश्लेषण करके देखा है लेकिन किले के बाबर कोई नहीं निकलता। सच तो यह है कि आधुनिक विज्ञान भी ऐसी औषधि नहीं निकाल सका जिससे सफेद बाल थोड़े में काले हो जायें और फिर काले हूँ उरें; यद्यपि बाल कासा करने के अच्छे २ लिखाय बने हैं। यदि किसी तरह से सफेदता दूर है तो यही कि पौष्टिक भोजन किया जाये। दवाई के तौर पर आयुर्वेद की रासायन औषधियाँ 'मकरधन, आंवला, स्वर्ण' भी इसमें लाभदायक सिद्ध हुई हैं। इनके प्रयोग से रक्त प्रवाह बढ़ता है, बालों की जड़ें मजबूत होती हैं, और बाल पुनः काले हो जाते हैं। आयुर्वेद में आंवला, आंवले का तेल और ब्राह्मी को दिमागी ताकत के लिये अच्छा समझा जाता है। परन्तु तेल का स्वरस से बना होना जरूरी है। तेल का असर इस तरह होता है कि तेल बालों की जड़ों में आंवले के असर को पहुंचाता है इस से भी रक्त प्रवाह बढ़ता है। ऐसा ही ब्राह्मी के लिये भी सिद्ध हुआ है। १ माशा आंवला तथा त्रिफला के पूर्ण को सोते समय पानी के साथ फांकना चाहिये और तेल को लगाना चाहिये। आंवले ब्राह्मी आदि के तेल को प्रयोग करने की विधि यह है रात्रि में

उसकी कम से कम आधा चपाटा मांस के समरे अच्छे साधुन से भेसा कि गंध खिला गया है सिर को धोके दुबारा मोड़ी मात्रा लगानी चाहिये। प्रयोग उगे सफेद बालों को भी का देता है। पर यह तेल किसी पिरबन्त का ही होना चाहिये। गुरुकुल ब्राह्मण आयल जिसका वर्णन ऊपर भी संग थाया है, इसमें भी ल भदायक सिद्ध पर इसे देर तक लगाना चाहिये काले बालों वाले इसका प्रयोग करें बाल बहुत देर तक काले ही रहेंगे थोड़े सफेद हों उनके तो दो तीन काले हो सक्ते हैं। बामाक W वाले तेलों का इस से उलटा प्रभाव पड़सकलिये उनको काम में न लाय चाहिये। माचाराय प्रयोग के लिये स्नान के समय ही उचित होते हैं बाल काफी सफेद हो गये हों उन लिखी विधि द्वारा रात्रि में भी चाहिये। बालों के मुख्य रोग यही हैं। दूसरे रोगों का वर्णन किसी में करेंगे।

## स्नान के बाद प्रतिदिन केशों में विशुद्ध

# ब्राह्मी हेयर आयल

डाडीए

यह विशुद्ध तिली के तेल में बनता है  
इसकी भीनी २ गन्ध मन को  
मुग्ध कर देती है  
इसके व्यवहार से  
बाल लम्बे, काले और सुन्दर  
होते हैं  
कितना ही पढ़ो या लिखो  
दिमाग तरोताजा रहता है।  
एकवार

इसे लगाइए फिर सदा इसे ही मांगेंगे  
मूल्य ॥१॥ शीशी

पता—गुरुकुल कांगड़ी फाँसी गुरुकुल कांगड़ी ( सहारनपुर )

दिमागी कमजोरी व तरावट के लिए



## च्यवनप्राश

(कविता)

लेखक - श्री आनन्द उपस्यताक

च्यवनप्राश, दे च्यवनप्राश  
 विलकुल बरें होगए कान  
 खा खा कर वह कड़वी कुनीन  
 चाँचासों घण्टे कानों में  
 मानों बजती है एक चीन ।  
 सेवन की कितनी टफा बड़ी  
 टिकिया टिकिया सी एंट्रान  
 तब भी तो मेरे मानव का  
 ऊँचर हुआ नहीं है मूल हीन ।  
 हे वैद्यराज ! हे वैद्यराज !  
 आथा मैं तेरे निकट आज  
 'चूर्ण सुदर्शन', तू करना मुझ रोगी को इताश  
 रहा हूँ सुदत से, दे च्यवनप्राश दे च्यवनप्राश ॥  
 मैं नहीं "नेच रो पै थी" से  
 करवाऊंगा अपना इलाज  
 उस टब के अन्दर जाने क्यों,  
 जाने में आली मुझे लाज ।  
 मैं जिन्दा भी रह पाऊंगा  
 दो दो कर के उपवास भार ?

देगा मुझ को 'एनेमी' रूप  
 यह विकट अर्नमा शीघ्र मार ।  
 हे वैद्य प्रवर ! हे वैद्य प्रवर !  
 यह नेचर क्यों नहीं सुखकर ।  
 इस में तो नजना होगा हा, मुझको वह प्यारा प्रातराश  
 मैं मांग रहा हूँ आतुर हो, दे च्यवनप्राश दे च्यवनप्राश ॥  
 यह च्यवनप्राश है वही वस्तु  
 खा जिसे बुद्ध भी हों जवान  
 यदि खाले स्वयं युवा इसको  
 तो हा देगा वह गजब क्या न !  
 मेरा यह भारतवर्ष देश  
 भी तो है हा ! बल वर्षी हीन  
 सदियों से गैरों के हाथों  
 यह चुमता ही है रहा हीन ।  
 हे वैद्य देव ! हे वैद्यदेव !  
 दे यही हमें भी शीघ्रमेव ।  
 कट जाएँ जिसमे षष्ठ में ही इसके व सार बचपाश ।  
 मैं मांग रहा जाने कब से, दे च्यवनप्राश दे च्यवनप्राश ॥

### तो म से नी

—मलहम—

प्रकार के घावों  
 र लगाने के लिए  
 अकसीर है  
 एक शोशी अवश्य रखिए  
 मूल्य ॥) शोशी

—पता—

ल कांगड़ी फार्मसी  
 पो० गुरुकुल कांगड़ी

### गुरुकुल अशोकारिष्ट

प्रदर आदि तमाम घोनरोगों  
 को  
 दूर कर गर्भाशय की  
 सन्तान  
 के योग्य बनाता है ।  
 मूल्य ॥) पाव

पता—गुरुकुल फार्मसी फार्मसी पो० गुरुकुल कांगड़ी

## सोयाबीन

लेखक—श्री डा० लक्ष्मण जी त्रायुर्वेदालङ्कार

परिचय:—

सोयाबीन क्या है ? यह एक पौधे का बीज है, और गेहूँ आदि अनाज की तरह खाने के काम आता है। परन्तु अन्य सब अनाजों से अधिक पोष्टिक, इन भोजन से मानव की आस जन्मा परिचिन नहीं। अतः इसके गुणों पर कुछ प्रकार का ध्यान की आवश्यकता है। इनमें प्रोटीन और फेट जैसे शरीर के लिए आवश्यक तत्व बहुत मात्रा में है। इसी मात्रा में अन्य किसी खाद्य सामग्री में नहीं मिलते। जैसा कि हमें भी मई तालका से स्पष्ट हो जायेगा। बालक मांस व अण्डे की अपेक्षा भी इनमें प्रोटीन तथा फेट कमरा: दुगुनी और चार गुणा है। अर्थात् सोयाबीन जैतनिक विश्लेषण से भी इन अण्डेय पदार्थों का मुहाबला करता है।

इसके अतिरिक्त शरीर के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक अन्य तत्व लक्ष्य तथा विटामिन भी इसमें पवसि हैं। यहा कारण है कि चीनी और माषानी बहुत देर से लगभग २००० वर्ष से इन प्रयोग में ल गहे हैं और अन्व जातियों की अपेक्षा अधिक शक्त व स्फूर्ति रखते हैं। इन अनाज के बल पर ही वे लोग १२ फीट ऊँचा परिश्रम कर के भी थकते नहीं और थोड़े पैसों में अधिक मात्रा उत्पादन कर इन्डस्ट्रियल गतन का मुहाबला करते हैं। यहा नहीं बलक कर्नल जार्ज डंगलम प्रे (जा कि चीन में २० वर्ष मैडिकल आफिसर रहे हैं) ने अमुत्र क आचार पर अपने इलियड निबन्धनों को इसके प्रयोग के लिए बहुत मोर दिया है। उपरका ख्याल है कि सोया बीन क कारण ही चीनियों में टॉन व पेट के रोग

नहीं होते। उनमें एक २ लाख के शारीरिक निरीक्षण में एक भी रोगी नहीं देखा। जब कि फ्रांस में ऐसे सिपाही कम मिले जिनक खराब न हों। यह तो स्पष्ट ही है भोजन से ही टॉन रोगी होते हैं। मांस व अण्डे खाने वालों को ये रोग होते हैं। जापान ने इन की उपर भोजन और इन्डस्ट्री दोनों में ला है। अन्वले मन्चूरिया में इसक २२,०००,०००, पौंड का लाभ तो अमेरिका, इंग्लैण्ड जर्मनी आ यह प्रिय होता जा रहा है। मन्चुक (सर्वाहियों की भोजन की टिक्कीयोन से ही बनी है।

इसका पौड २४ फीट ऊँचा इसके पत्तों पर रोये होते हैं। फूल म है। कलिये लगकर उम में बाज के सोयाबीन होता है; जो कि मटर होता है। इसे glycin wax, अ soya wax चीन में yellow wax भाषा में सोयाबीन या जापानी मटर

पतझड़ में बसन्त

गुरुकुल कांगड़ी

का

स्वर्ण घटित !

कस्तूरि मिश्रित !

# सिद्ध मकरध्वज

नया खून पैदा करता है ! वीर्य को पुष्ट करता है !!

नस नस को तेज और स्फूर्ति देता है।

जॉर्ण और शोर्ण शरीर में नए रस का संचार करता है

मृत्य २७) तोला

पता - गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी, पो० गुरुकुल कांगड़ी ( सहारनपुर )

। के जाने गेन हैं। जिन में से  
 आचार्य पीछे होंगे हैं। प्रायः  
 बोने हैं। ए. एकड़ में १६-२८  
 १५०० से ३६०० गौंड  
 है। आचार्य अपने वाली व  
 की जमान हम के लगे अयुक्त  
 मोर नर्मन ग नने में तेल का  
 बोने में दातो में प्रोटीन की मात्रा

अधिक होती है। चीन, जापान में बहुतायत  
 से तथा मलाया, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, अमेरिका  
 इत्यादि और भारत में भी खेती होती है।  
 मोयावीन भोजन— भोजन के लिए  
 आरश्यक सभी त व हम में प्रचुर मात्रा में  
 पाये जाते हैं। मूदाबले क लिए हम ताखि का  
 में पाए हके ताखेगा --

प्रोटीन	फैट	कार्बोड्रइड्स	कैल्सी
८०	०.३	५६०	१०६५
१२०	१.७	७३.०	३.६१२
१००	३.०	५२.५	३.६३१
१५३	१.५	६७.५	३.५५०
३.०	४.०	५.०	५.२
०.८	०.४	१५.३	६.५६
१५.६	६.३	—	१.३७३
२०.०	१०.०	—	२.६८७
५२.८	२०.५	२०.०	५.७१५

हम ही प्रकार चने में इन में प्रोटीन  
 और फैट चर गुण है। दाढ़ भी इसका  
 गुणवत्ता नहीं करती। ताखि में भी यह  
 मात्रा के अनिश्चित मुक्त विशेषण में इसकी  
 उपयोगिता पर अधिक प्रकाश डालता है।  
 १— शरीर के लिए आरश्यक प्रोटीन  
 वटिया [ वम जनन हेतुने वाली ] तथा  
 वटिया ( सुगमत् में जनन होने वाला ) दो  
 तरह की पाई जाती है। गेहूँ आदि वानस्पतिक  
 पदार्थों में पहले प्रकार की और मांस अण्डे  
 आदि ज्ञानस्य में दूसरी प्रकार की होती है।  
 मोयावीन की प्रोटीन हममें से दूसरे प्रकार की  
 य जो उच्च दर्जे की है। जिसमें Albumin  
 मालो की अभिपत्ता है जो कि आधुनिक  
 विज्ञान में शारीरिक अध्ययनों की शब्दा के  
 लिए आरश्यक समझे जाते हैं। अन्य किसी  
 ज्ञान में यह उच्च दर्जे की प्रोटीन नहीं पाई  
 जाती। फिर मांस व अण्डे की प्रोटीन का  
 न केवल दर्जे में ही गुणवत्ता कता है अपितु  
 मात्रा में उनमें अधिक होने के कारण इनके  
 अल्पजन पदार्थों की मोयावीन पीछे छोड़  
 देता है।

**—उत्तम रक्त हो जीवन है—**

इसके

पत्रार या कम होजाये दर शरीर के सभी अंगों का  
 पोषण बन्द हो जाता है  
 और  
 रक्त में हा बुढ़ापा  
 घटने लगता है।

**महा लौहादि रसायन**

उत्तम

रक्त का भण्डार है

सके मेवन में खून का कर्मों के कारण होने वाले  
 सत्र रोग दूर होते हैं। पेट, जिगर, अंतर्द्वियां  
 और दिल व दिमाग बिना किसी थकावट के  
 अथना  
 पूरा र काम करने हैं।

मूल्य ६) तांला

ता-गुरुकुल कांगड़ा फार्मसी  
 पी० गुरुकुल कांगड़ी ( सहारनपुर )

२ मोयावीन में फट व चिकनाई भी  
 मांस व अन्य ज्ञानस्य में अधिक है और उच्च  
 दर्जे की गानी सुगमत् में जनन होने वाली  
 है। इस ही लिए यह अधिक ताकत देने  
 वाला है। गेहूँ के अटे में ३.५६ अटे में  
 फट १० गुण, दूध में ५ गुण और मांस में  
 २ गुण है। इसका नेत्र निकाल कर तलने  
 व खाने के काम आता है। मोयावीन के तेल  
 में शरीर के ज्ञान अन्तु दिल, दिमाग व जिगर  
 के आरश्यक पोषक तत्व कैल्सीन और  
 फ्लिकलीन (L. ethin & cephalin) ३ गुण  
 तक पाई जाती है। जिसमें यह अण्डे का  
 गुणवत्ता कमती है। अन्य किसी ज्ञान में  
 यह नहीं मिलती। कैल्सीन वानस्पतिक  
 फोस्फोरस का स में अच्छा रूप है। इसकी  
 मात्रा भोजन में पर्याप्त होने में बहुत से  
 वानस्पिक रोग नहीं जनत और बुढ़ापा भी  
 मरदी नहीं आत। रक्त में फोस्फोरस बढ़ाने  
 के लिए सोयाबीन बड़ा उपयोगी है। कैल्सीन  
 के साथ इस में पाई जाने वाली  
 Cephalin "सामय" विज्ञान की शोध



उपेक्षित की है। वनस्पतिक कैल्शियम ज्ञान तत्त्वों व विभाग की बकाबत ही दूर करना है। फांस में इमें मानसिक रोगों की चिकित्सा भी की गई है।

१— विश्लेषण से यह भी पता लगा है कि सोयाबीन में कार्बोहाइड्रेट की ऐसी मात्रा बहुत थोड़ी है जिसे गरीब आपने काम बना है। इमें निशाने की मात्रा केवल ०-८ प्रतिशत ही है। इस ही लिए मधुमेह शक्कर (Diabetes) के रोगियों के लिए यह बड़ा उपयोगी है। शक्कर के रोगी के शरीर की ताकत बढ़ाने तथा मराने वाली भूख को शान्त करने के लिए पर्याप्त मात्रा में 'गोलीन और फेट' रखते हुए भी अन्य अनाजों की तरह हार्नकर तब निश्चिन्ता न के बराबर होने से सोयाबीन ने चिकित्सकों की एक बड़ी बट्टिकाई को हल कर दिया है। और यही नहीं बल्कि इसके प्रयोग से शक्कर जनक हो जाती है।

४— सामान्य के लिए आर्यवर्ष के जिन लवण, माथा में पर्याप्त होने से भोजन आनन्द की सम्भवा की प्लेग मलबान कश्चि को भी दूर करना है। इमें १०५ ५-६ प्रतिशत है। जब कि गेहूँ में १६.०, मटर में २.६, जौ में ०.९६ तथा

अन्य अनाजों में १.३६ प्रतिशत ही है। इस की मर्यादा में पोशाकियम तथा कैल्शोरिक एंजिम प्रचक हैं। शेष कैल्शियम खादि भी पर्याप्त है। इन तरह गरीब के ज्ञान तत्त्व व आरथियों की पुष्टि के लए भी यह उपयोगी है। का इका Amino सारीय गुण रखती है। जब कि अन्य अनाज, मांस व मन्डे अम्लीय गुण रखने से सोयाबीन के मुकाबले में भोजन के लिए पेटिया ठहरते हैं। मि. कैलोम से इसकी क्षारीयता Alkalinity ४२.३ भांकी है। जब कि नारंगी में ५.६, सेब में ३.७ तथा दूध में २.० ही है। अम्लीय लवण युक्त भोजन से हमारा खून भी लव हो जाता है। जिस से वषर व जोड़ में दर्द, मटिया तथा गुर्दे खादि के बड़े रोग भवते हैं। मि. कैलोम का स्थल है कि हम लोग अम्लीय गुण के भोजन (जोषन: मांस व दालें तथा अन्य अनाज खाकर रक्त की क्षारीयता कम कर लेते हैं। परिश्रमन: कार्य से शकन, रोग म लहन की प्रतिशक्त का घटना जिगर, गुर्दे तथा रक्त रश्चिनों के नानाविध रोगों के कारण होत हैं। उपका स्थल है कि मनुष्य प्राय: इन्ही रोगों में अधिक होती है। इस तरह लवणों के अधिक मात्रा के मास क्षारीय गुण रखने से अन्य भोजनों की

बचपान स्तम्भ्य कायम रखने व न यह अधिक श्रेष्ठ है।

९— सोयाबीन में विटामीन भी है। इस का तेल ए का मात्रा में और दूध का मुकाबला करता है। अनाजों की अपेक्षा बी, सी, डी जी ई विटामिन भी पर्याप्त हैं। सोयाबीन में बीजों से एक और विशेषता: पई ग इमें पई जाने वाली विटामीन, कै जल दोनों में सुलनशील हैं। इस प्रकार आदर्श भोजन के लिए अधिक उपयुक्त है।

उपर दिये गये विश्लेषण से एक शरीर की पुष्टि के लिए आवश्यक न्यून गोलीन, फेट, कार्बोहाइड्रेट, लवण विटामीन प्रचुर मात्रा में होने के साथ टोषी के हैं। और मांस अपेदे जैसे पदार्थों के खाने की जरूरत नहीं। नालका से यह भी स्पष्ट है कि इसकी मात्रा से शरीर की आवश्यकता मकनी है। भोजन से शरीर को जो शक्ति मिलती है उसे बैलरी में मास साधारण खादि की दिन में २०० से २५० तथा मजदूर को २५० से ३५० की आवश्यकता होती है। इहाँ एक कार्बोहाइड्रेट (रोटी, जालू व अनाज) १६२, फेट १ पौंड (मक्खन, कृम, ४२२; १ पौंड (मांस, मखली, ६६० बैलरी देते हैं वहाँ १ पौंड से १६२० बैलरी देता है। इन्हीं लिए चीनी व जापानी अधिक कोमती मोस मांस खादि न लेकर भी सोयाबीन से शक्ति बनाये हुए हैं। सोयाबीन उपयोगी पदार्थ होने से यह तपेटक दोष व अन्य शारीरिक निमलताओं उपयोगी है। ऐसे खादों साथ पर प्रचार मागत में भी मकनी है।

असली

# काश्मीरी केसर

३॥ तोला

पता—गुरुकुल फार्मसी, गुरुकुल कांगड़ी

भोजन में प्रयोग के लिये पीले रंग के चिक म्बवहन होते हैं। क्यों कि ये पौष्टिक हैं। दानों को भून कर मेवे की स कर दलिया बना कर खाते हैं। इस बना कर दूसरे भाटे में २५% मिला केक खादि बनती हैं। विन्कुट, पन्टी, ६, काफी भी तय्यार होती है। दूध, इईस क्रोम व मोटाघाटर में मिला कर। हरा अन्नस्था में इसके स्वादु उसे बनती है। चीनी इस का दूब बना ६२ बच्चों को भी देते हैं। इस का ने व तलने के काम लाते हैं।

श्याबीन का तेल:—आज की इन्डस्ट्री महत्त्व रखता है। इसका तेल लोगों में के काम आता है। मोटर, रेलगाड़ी, प.प हथों में चिकनाई देने के काम। इस से नहाने के बरिया माधुन। जो कि मयूद्र क पानी में भी काम। अमेरिका में इस से उंचे दर्जे की मफेद पन्ट व अन्नमल बनाये जाते अन्नमी क तेल की तरह गंध से पीला रंग नहीं बदलते और माघ ही उल जाते हैं। इस से बनाया गया क् सीमेंट पुगों के लिए मस्ता और उद्योगी मिड हुआ है। इस से बनी रबड़, बिनली के तार व रबड़ क वाइप में बड़ी महायक हुई है। प्रेम की बरिया मलाने ही बना, पीनड पालिश, यद के लित्रौन भी बनते हैं। इसके १५ से नकलाट का मायान बिनली व, प्पाले खादि) नकली धींग की की व बटन खादि बनते हैं। फोटोग्राफ प्लेन, म्यू, कागज खादि लगभग १ में ५० तरह को मस्तुयें तैयार होती श्याबिना को देख कर ही अमेरिका ने

सन् १४ में १० साल एकड इसकी खेती बढ़ाती। १ टन बीज से लगभग १० गैलन तेल प्राप्त होता है।

तेल निकालने के बाद सोयाबीन की केक फासों को खिलाने के काम आती हैं। इस के पीदे का सूसा भी अच्छा बनता है।

सोयाबीन की म्ब. त प्रधीन के लिए बड़ी उपयोगी होती है। इसकी खेती करने के बाद गेहूँ बीजने से प्रति एकड ६ बुशेल गेहूँ तथा १०४० पींड भूषे की मगह १७३ बुशेल गेहूँ तथा २५४० पौषड भूषा पैदा होता है। वहीं २ तो १४ बुशेल गेहूँ अधिक पैदा हुआ है। एक बुशेल ४० पौषड के बराबर होता है। सोयाबीन की केक ( तेल निकालने के बाद भी) खाद क काम आती है।

इस गोड़े से परिचय से स्पष्ट है कि सोयाबीन नहरा खादरी भोजन के तौर पर जाति के जीवन में हटना, ताकत व स्फूर्ति देकर स्वास्थ्य

तथा कार्य शक्ति को बढ़ाता है; यहाँ इन्डस्ट्री में कितनी तरह की बस्तुएं देकर देश को बन दोहन से भी सम्पन्न बनाना है। इस ही लिए आवश्यकता है कि पारतर्पण में भी इसे मगह २ बीजकर देश की सुराहाती तथा स्वास्थ्य को उन्नत किया जाये। सर रौनट वैकस्किमन, जिन्होंने कुरूर में भारतीय भोजनों का विश्लेषण कर बड़ी खोज की है, इस बात पर दुःख प्रगट (क्या है कि इतने उपयोगी अन्नस सोयाबीन को पारतर्पण में अभी तक क्यों नहीं अपनाया। इसकी उपयोगिता पर पीछे बहसना मन्त्री जी ने भी खोल खिल कर इसकी बड़ी प्रशंसा की थी। आशा है कि चिन्तित तथा अन्वय सहजुभाव इसके परिचय कर जनता में पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अपने अनुभव देकर उसे प्रचारित करेंगे और स्वयं तथा जनता का स्वास्थ्य देकर यश के भागी बनने में चनी लोग इसकी इच्छा से देश को अधिक सम्पन्न बना सकते हैं।



## संजीवन चूर्ण

स्वप्नदोष व वीर्य की निर्बलता को दूर  
कर नए जीवन का  
संसार करता है।  
मूल्य १) शोरी

—पता—

गुरुकुलकांगड़ी फार्मसी, गुरुकुलकांगड़ी (सहारनपुर)

## अतिसार चिकित्सा

(लेखक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलानी आयुर्वेदालंकार)

अतिसार दो प्रकार का होता है।

प्रथम स्वर का रूप, और दूसरा स्वरान्तर रूप।

नित रोग में स्वर भोजन हो और

उसके साथ चार २ पल्ला दस्त आना हो उसको स्वगतिसार कहते हैं।

(१) स्वगतिसार—इसमें चिकित्सा

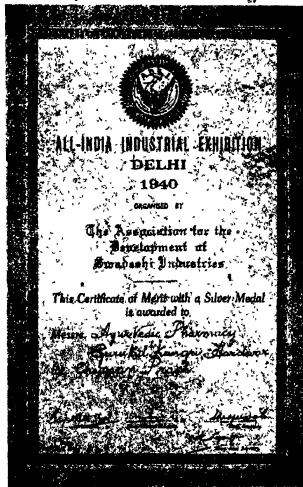
की विधीयता आती है। इस लिए

विचार कर इलाज करना चाहिए। अर्थात् मलारोपक पदार्थों के सेवन से स्वर नष्ट जाता है और पाचक तथा पचक द्रव्यों के सेवन से अतिसार बहने का भय रहता है। इसलिए पचक विरुद्धता चिकित्सा में आती है। ऐसी अवस्था में ज्वरनाशक चारक द्रव्य और अनुपान का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार चिकित्सा करने में शीघ्र लाभ होता है; जैसे आन्तक शैथिल्य को प्रथम अवस्था में मुस्तक (नाग मोषा) मूत्रोर्षि (बृषभ चूर्ण) का अनुपान, द्वितीयवस्था में पाचक और पाचक जैसे छु। नीरे वा चूर्ण, जन-वदन (प्लवंगी तथा अतिव्या के अनुपान से लेना चाहिए। कृष्णादि ना मर्गादि, दीर्घादि कषायों के साथ भी इन औषधियों का प्रयोग कर सकते हैं।

स्वगतिसार में प्रथम अंधन करगें फिर पेवा आदि का प्रयोग। अन्ध सात्त्व्य के लिए अन्ध पेवा का प्रयोग करना चाहिए। औषधियों में नीचे लिखी औषधियाँ प्रयोग करनी चाहिए। सिद्धपारो-  
रुद्रा, शालग्राम, महापद्मक और संमीरन

वटी आदि। पचक; प्रथमवस्था में सगुणः और स्वमसूद आदि। द्वितीयवस्था में स्वगुणः लघु भोजन देना चाहिए।

(२) अतिसार—नित रोग में च २ पल्ला दस्त निकले उसे अतिसार कहते हैं। यह वातम, पित्तम, कफम, द्विदोषम, त्रिदोषम और शोकम छः प्रकार का होता है। फिर चिकित्सा एवं अनुपान के सुधीत के लिए अम औषधि निगम भेद से दो



भागों में बंटा हो जाता है। पित्त निगम की ही एक अवस्था अतिसार होती है। उपर्युक्त अतिसारों में काण्डसुमार चिकित्सा एवं पचक का उपचार करनी चाहिए। तब पित्त प्राम में पाचक तथा पाचक और पाचक औषधि तथा अनुपान का प्रयोग

करना चाहिए। कोष्ठ शुद्ध होने और पाचक औषधियों का प्रयोग चाहिए। किन्तु दुर्बल, गर्भिणी, वृद्ध रोगियों को चारक और पाचक ही देनी चाहिए।

अतिसार की चिकित्सा वगैरे निराम को पहिचान करना कठिन इसलिए इसकी पहिचान कर लेनी निमको नीचे लिखे तरीकों से म चाहिए।

मारी होने के कारण आम में खुर जाता है किन्तु पका मल है। लेकिन अतिद्व आम मल लेना और गाढ़े पके मल की भी हो जाता है, इसको पहिचाना चाहिए। या कभी शैत्य से दूषित पका मल में खुर जाता है।

अपाम मल की बुग्ग में दर्द होता, दर्द के साथ जो शूल के साथ मल का और मोड़ा २ मल निकलने ममकना चाहिए। इसके निगम मममें। इन प्रकार निराम का निश्चय हो चिकित्सा करनी चाहिए।

आम की अवस्था में इकराना उत्पन्न है। क्योंकि इसके लिए प्रथम रुचन शोष्क वट दृष्ट दोषों को शांति कर तथा आम का पाचक भी लेयन के वट शोष्क तथा (लाज मरदाणिक) देना पचक में मूत्रकला, मूत्र, नापचक पाचक का मल अथवा और नाग मंथे वा नद

चाहिए। यदि रोगी बलवान् हो तो अको रोकने की कोशिश नहीं करनी क्योंकि रोकने में अनेक बीमारियाँ बुद्ध, पायड, प्लीहा, शुष्क, उत्तर, नदी आती हैं।

विदग्धाहार (अनीर्ष) से स्फूर्जित दोष सञ्चिन् रहते हैं और उनके अतिमात्र की सम्भावना हो तो ऐसी हलत में उन को निःशक्तता का प्रयत्न करना चाहिए।

पेडा २ अथवा नया हुआ नमक कासा ईर्ष के साथ आतसार का तो उनको ह्यगत और विपत्तियों के हस्तक स विरचन करना चाहिए।

एक अतिसार नम बार २ अथवा की ११ म हो ॥ रहना है तब नरुडी सांसाहक होने को ] विष करना चाहिए।

गुददाह या गारु में पेटोल पत्र [पानल] गुलहड़ी के पानी से सेवन करना चाहिए।  
॥ चकरी के दूध से भी सेवन कर सकते हैं।

नीर्ष अतिमार में दूध [विशेषतः नी २ ] अमृत के समान है। इस दूध को अतिसार के औषधियों का तीन भाग मिला कर गर्म करके पिलाना प।

पाषाण अतिमार में ज्ञानन्द, संजीवन वटी, लवणदि वटी सुो हूर, नीम बीज मधु के साथ चलिए।

अमर्तमार में नीलगण्डकी रस गेष कर बच्चों को ] माती-म और अमृताणव रस को क अमुगान या इन्द्रवा चूर्ण, मधु के साथ प्रयोग करना प।

अनतिमार में तिलयोग कृतादि, नगरादि चूर्ण, दिनेह बहा गन्धक आदि के साथ प्रयोग करार का रस—

मधु, कासा चूर्ण-मधु काजादि कषय, मुक्तक चूर्ण-मधु आदि क अमुगान से करना चाहिए।

विदग्धाहार, कर्पूर रस, कर्पूरेश्वर तथा प्रशशी कथित औषधियों का प्रयोग भी अतथापुत्रा करना चाहिए।

शोष, गूल, ज्वर, तृष्णा, कास, श्वास, अरोचक, छर्दि, मूर्छा, हृन्वी :न उपद्रवों से युक्त अतिमार आराम्य दे। यदि अतिमारी बहुमेदो भी हो तो असाम्य होता है।

स्नान, अभ्यंग, अथवा हन, गुक, [इंगव, मोहन अतिमोहन व्यायाम, अतिमगन्ताप आदि अतिमार के लिए अराम्य हैं।

मपी प्रकार के अतिमारी को प्रथम लंघन करना कर तब हलका पच्य देना चाहिये

काज मयद, यवबद, दही, सागुदाना, दही मात, केला ( कल्पा ) शारु, दही, लिचवी, आदि तथा क्षीणक विषम में पिप्ल्युआदि क्षीर का पच्य अवस्थातुमाग देना चाहिए। शारीरिक स्थिति ठीक होने पर चिरे २ पच्य बढ़ाना चाहिए। इस रोग में केला, सन्ता, गूरर नीर अनाम आदि फलों का प्रयोग करना चाहिए।

**ग्रहणी**

अतिमार होने के बाद अहार विहार की अभावधानी से पाचक संस्थान विशेषतः पच्यमानाक्षय (ग्रहणी) में विकृति हो जाती है। जिस से कभी पक्का मल और कभी कल्पा (गाम) पतला मल आता है। -स रोग को ही ग्रहणी की विकृत होणे के कारण ग्रहणी कहते हैं। यह वजन, विघ्न, क्षत और

**गुरुकुल कांगड़ी का**  
**बाल शश्वत**



**बच्चों की हर एक बीमारी को दूर कर उन्हें स्वस्थ बनाता है।**  
**सू० ॥२०॥ शीशी।**

**प्रता-गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी**  
**पो-गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)**

सन्निधानन मेद से चार प्रकार का होता है।

ग्रहणा रोग में भी अतिमार की तरह ही चिकित्सा करना चाहिए अर्थात् अचक्र में पाचक, दाचक अमुगान औषधियों का प्रयोग करना चाहिए और अचक्र मल में पाचक औषध का प्रयोग करना चाहिए।

सब प्रकार के ग्रहण में जति कलादि चूर्ण, नीर आदि मोद आदि औषधियों का प्रयोग करना चाहिए

वात प्रधान में नमक गुन्, रस, रिरेडक, डिवादि चूर्ण औषधियों का प्रयोग करना ठीक है।

पित्त प्रधान में मृत शैल, ल प्रायः प्रवाणपंच सुन आदि औषधियों का प्रयोग होता है।

कफ प्रधान में मातिकादि, शेषवी आदि चर्णों।

शाम मेंग्रहणी में ग्रहणी कपाट, ज्ञानन्द, शैव, दशपल पिष्ट, लक्ष्मणकफ, कुटमादि पंच सूत्रपद आदि का



। प्रगती होने पर नहीं केकते हैं बल्कि  
र को बेचकर अपने पैमे खरे करने हैं।  
। नन्दारों के कच्ची औषधियों का मन्ने  
क भी अच्छे नहीं है। इन सब  
की बचत में आयुर्वेद पर विश्वास  
वाले और आयुर्वेद विद्वानों के  
को बड़ा धोखा होता है।

न गदबदों को दूर करने के उपायों में  
हजारों हाथ में है और कुछ राजकीय  
समाजसेवा वालों के। राजकीय जनसुख  
। भी गदबद नहीं आसानी से दूर  
। है। हजारों हाथ में यह है कि हम  
ओं के पास ही हैं, उन्हें फल का ले।  
ताजी और गुणकारी अमला औषध  
खरीदें। अग्रे दुःखान दार को घर  
में जायगा कि उनका माल तथा  
स्ता है नच कि वह अच्छा न मा  
क २ होगा तो फिर वह मा अपने  
न बातों की तपक फरमा। नहीं तो  
को रहा है वह होता चलेगा।

। समस्त आयुर्वेद का या अन्य उन  
का एक बड़ा भारी कर्तव्य है जो  
वेद के सिद्धांत, कामयोग और

अन्वेषण के कार्यों को छोड़ें हुए हैं। इन  
सम्पत्तियों को इन औषधियों के लक्ष्यदायक तक  
ठोक २ पधुवन में बड़ा दिग्दर्शन लेनी  
चाहिए। जिन औषधियों के बारे में जो गद  
बद होती है और उनका हल क्या है वह  
समय २ पर आयुर्वेद या अन्य पत्र  
पत्रिकाओं में प्रकाशन करने रहना चाहिए।  
इसमें वैद्यों का और जनता का बड़ा लाभ  
होता है।

भौषण्य वन गुरुकुल रागहा की संस्था  
भी इस कार्य को सफल कोशिशमें नर रही है  
। खास संस्था के पास इस विद्या में कार्य करने  
के लिए पर्याप्त आर्थिक साधन नहीं हैं तो  
या जितना कुछ है उसमें प्रयोगनाय कार्य हो  
रहा है। इन आर्थिक साधन की कमी को  
दूर करने तो उदार दानियों का आभार  
कर्तव्य है और इस में संदेह ही नहीं है कि  
अ सुधे: के प्रेमी वनी महासुधाप इस तपक  
अपना ध्यान देग ही।

जो कार्य यह संस्था इस संस्थान में कर  
रही है उसका इस मासिका (विक्रम संवत् १९५०  
में भी इस आयुर्वेदिक में नहीं दिया जा सकता  
है क्योंकि इसका प्रकाशन आयुर्वेद अत्रिक

'Technical' वर्गों या पत्रिकाओं में प्रेषित  
है; और वहीं होने रहना उचित भी है।  
। इस मासिक पत्र, तथा कई के भिन्न २  
पत्रों के निम्न के विषय में कार्य हुआ  
तथा ज्योतिषवर्ती, तेजोवती, बुराहम,  
शंखपुष्पा, ब्राह्म, पारिवा अन्नतयून, श्यामा  
नागद्वयीनी भूषा, सुपत्नी, शशावती मेरी  
अमोक्त, अश्वत्थ दत्ता मेरुपुत्री, कर्मा,  
मरिचका, ब्रह्मवैवर्त, शशी आदि जनकों  
औषधियों के सम्बन्ध में बहुत सी अन्वेषणा-  
त्मक सामग्री एकत्र की गई। औषधियों के  
निष्पत्ति में एक छोटी सी वनस्पति पाठिका  
भा हमने खोजी हुई है। इसमें भी बहुत  
महायत्ता मिळती है। यह पाठिका यहाँ एक  
और आयुर्वेद महाविद्यालय व ज्ञानों को  
औषधियाँ मिलाने तथा वनस्पतिशास्त्र की  
विद्या में महायत्न होती है यहाँ साध ही माप  
शोदा बहुत ठोस गवेषण का कार्य करवाने में  
भी बड़ी लायकर है। इस समय गुरुकुल भूमि  
में ६०० शर्तों आयुर्वेदिक औषधियों के  
वृक्ष का वृद्धांश उद्व्यन है।

यह कुछ शब्द मैंने गर्वसाधक का  
ध्यान इस उपयोगी कार्य की ओर आकर्षित  
करने के लिए लिख दिए हैं।

# गुरुकुल कांगड़ी इण्डस्ट्रियल विभाग की बनी उपयोगी वस्तुएँ

फिनाइल रफ. सी. वेदन M 50 (M.S.) इण्डस्ट्रियल कैमिक्ट की वेल्डिंग में नहीं लायाव में नगर

आ तैयार करने का पाठ्यक्रम कीमत दो आना पेट्ट

सुखदन्तारुद्रोक्तिम सवा किमसकी

**गुरुकुल गान्धि**

१३ आर्यवर्क इन्फ्रास्ट्रक्चर कीमत १०००

हरकी एजेंसी केलिमे लिखें

इसकोने और फोरे प्रुमी केलिमे दुगा मारिने

सुखदन्तारुद्रोक्तिम सवा किमसकी

**लिक्विडसोप**

१३ आर्यवर्क इन्फ्रास्ट्रक्चर कीमत १०००

REGISTERED BY U.P. Govt. The

**फिनाइल**

टीनकेमकमिनेशिरसोतलोनेपया

नम्बर १३३ प्रिन्टिंग

सम्बन्ध १९४७ प्रिन्टिंग

कुरुकुल

नम्बरों की एक मात्र अचूक व सुविधादायक

**मास्केटो ओयल**

सिद्धे रफ. सी. वेदन १३३ (M.S.) इण्डस्ट्रियल कैमिक्ट की वेल्डिंग में नहीं लायाव में नगर

आ तैयार करने का पाठ्यक्रम कीमत दो आना पेट्ट

सुखदन्तारुद्रोक्तिम सवा किमसकी

**गुरुकुल पनवाम**

१३ आर्यवर्क इन्फ्रास्ट्रक्चर कीमत १०००

हरकी एजेंसी केलिमे लिखें

इसकोने और फोरे प्रुमी केलिमे दुगा मारिने

सुखदन्तारुद्रोक्तिम सवा किमसकी

**फास्टेनपैन ईक**

१३ आर्यवर्क इन्फ्रास्ट्रक्चर कीमत १०००

गुरुकुल कैमिकल इण्डस्ट्री हरिद्वार (वि. प्रसाद)



## गुरुकुल फार्मैसी का संक्षिप्त परिचय



सन् १९०२ में स्वर्गीय स्वामीश्रदानन्द जी ने चारनरूप की प्राचीन संस्कृत च्य-विज्ञान का पुनरुद्धार करने के उद्देश्य से गंगा के पार काँगड़ी ग्राम के समीप गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। अन्य वेद, वेदांगों के समान ही श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी पट्टारान को प्राचान आयुर्वेद के साथ भी विशेष प्रेम था। आयुर्वेद का उद्धार और उससे दवाइयों की संग द्वारा समाज की सेवा करना, इन दो महान् उद्देश्यों से प्रेरित होकर उन्होंने महाविद्यालय में आयुर्वेद के पाठन का भी प्रबन्ध किया। इस प्रकार आज से लगभग २१ वर्ष पूर्व आयुर्वेद महा-विद्यालय की नींव डाली गई।

शाम ही यह अतुल्य हाने लगा कि आयुर्वेदक की कृपात्मक शिक्षा के बिना

कबल पुस्तकों की शिक्षा एक झंझा रह जाती है। इस लिए ब्रह्मचारियों को औषध निर्माण की शिक्षा देने के लिए लगभग २० वर्ष पूर्व आयुर्वेद फार्मैसी का भी प्रांगण किया गया। इसमें औषधालय के लिए ही औषधियां बनती थीं प्रयोग में उनकी सफलता को देख कर इन औषधियों को बनाने का विस्तृत आयोजन करने का निश्चय किया गया कि जनता भी इन से लाभ उठा सके। दो तीन साल में ही इस आयोजन में लाभ प्रतीत होने लगा, इस में लगाया गया धन वसूल हो गया और ब्रह्मचारियों का उन्माह और भी बढ़ने लगा।

इस समय फार्मैसी को स्थापित हुए लगभग २० वर्ष हो गए हैं। जनता का प्रेम प्रति दिन बढ़ता जाता है। इस का परिणाम यह है कि अब फार्मैसी में ६००००००० का

साधान एक वर्ष में बाहर जाता है, कि आयुर्वेद म० वि० को भी पयोग प्राप्त होती है। गुरुकुल की औषधि शुद्धता को देख कर सरकारी भी भी फार्मैसी को अपनाने लगे हैं।

इस प्रकार माल की बढ़ती हुई को देख कर इस वर्ष मशीनों से काम भी क्रम बंध गया है। अब दवाइ कुटना, पीसना, चोटना, व टिकी बनाने काय मशीनों से होने लगे हैं।

द्रव्यास्त आदि के लिए बड़े-बड़े का प्रबंध किया गया है।

**फार्मैसी का उद्देश्य**— फार्मैसी मुख्य उद्देश्य ब्रह्मचारियों को बनाने की क्रियात्मक शिक्षा देने ही साथ जनता के पाम मन्थना प्र द्य.इत्यां भेज कर उनका उपकार कर

### फार्मैसी की कुछ विशेष

(१) गुरुकुल काँगड़ी का मधु दवाइयां बिलकुल गास्त्रीय



शिलाजीत व लौहभस्म से युक्त

गुरुकुल की

# -च न्द्र पू भा व टी-

प्रमेह, स्वप्नदोष, पथरी  
भगन्दर, दर्द, गुर्दा, श्रवोसार

व खून की कमी  
को

प्रसिद्ध महौषध

मूल्य ॥१॥ तोला, पांच तोला ॥१॥

पता—गुरुकुल कांगड़ी फार्मैसी पो० गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

सफाई तथा सावधानी के साथ  
जाती हैं।

१) गुरुकुल के पास गंगा तथा  
की तराई होने के कारण गंगल से  
टबा बहुत नायत से निब जाती हैं।  
दवाइयां तानी बूटियों से बनाई  
इस लिये पूरा खाम पहुंचाती हैं।

१) औषधियों की मांग अधिक रहने  
पुराना स्टॉक नहीं रहता, हमेशा  
रहता है।

१) औषधियों का मूल्य यथा संभव  
गया है।

१) प्राइकों के पास दवाइयां बड़ी  
तथा सावधानी के साथ भेजी

१) औषधियों की विक्री से जो  
लाभ होता है उसे आशुबंद कालेम  
के बच्चों को मुफ्त सिखा देने में  
जाता है।

१) औषधियां— गुरुकुल कांगड़ी  
की पूरे सभी दवाइयों का जनता ने  
सा है परन्तु प्रायः निच प्रयोग में  
के कुछ एक औषधियों का विशेष  
क्या है। इनमें भीमसेनी घुसवा,  
1, ब्राकी तेज, मन शिवाजीत,  
भीमसेनी मंत्रन, द्राघामव, व मित्र  
का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

### ल फार्मसी की शाखाएं

फार्मसी की औषधियों की सर्वप्रथम  
इस भी प्रमाण है कि जनता में  
सी लेन की मांग बहुत बढ़ती जा  
इस समय हमारी निम्नलिखित  
व एम्प्लियों की वार्षिक विकास  
कार के लगभग है—

देहली ग्रांथ-गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी  
क

सलमंड- एम्प्ली गुरुकुल कांगड़ी  
श्रीराम रोड

१. काहीर- एम्प्ली गुरुकुल कांगड़ी

फार्मसी हल्पताल रोड

४. पटना- एम्प्ली गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी

महुषा टोली

५. जमशेद- वैद्य सरदारीलाह जी,

कटकका चौक

जनता की जानकारी के लिए सब प्रांचों

व एम्प्लियों के पते- नीचे दिए जाते हैं—

१. लुधियाना- पं० विष्णुदत्त जी

विद्यालंकार, बल्लरुग औषधालय, कुरुवा लालमल

२. पेशावर शहर- मैमर्स प्राध्यापक कककड

ऐशबमन्त्र चौक रेशमगर्ग,

३. शिवखा- डाकर वर्धन, मोरार बाजार

४. खटौना (एम्प्लियों) श्री श्रीराम

रामदास मारवाडी

५. पीलीभीत- डा० नारायणदास

गुप्त मौजा दौलतपुर पो० इम्शेद

६. कोटा- टेट- राधो बुद्ध बिपो राधो

७. काहीर- एम्प्ली गुरुकुल कांगड़ी

फार्मसी, हल्पताल रोड

८. बदायूं- वैद्य निरमनदेव आशुबं-

दालंकार सेवाश्रम बिल्डिंग, कार्यलयमान

९. कगधी- श्री हरिश्चन्द्र जी, पेटेज

काठन को० लिमिटेड

१०. भागपुर (कांगड़ा) वै० वासुदेव

एएड सन्त्र, बुकसेलर

## आमला हेयर क्रॉयल

दैनिक उपयोग के लिए

शीतल ! सुगंधित !! केरावर्धक तेल

मूल्य 11/1) गीशी

गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी ( सहारनपुर )

## गुरुकुल द्राक्षासव

स्फूर्ति दायक अत्युत्तम पेय। हृदय व

पाचक अंगों की क्रिया को

ठीक कर अपूर्व उत्साह

देता है।

मूल्य १1/1) पीड

पता- गुरुकुल फार्मसी, पो० गुरुकुल कांगड़ी

( जि० सहारनपुर )



११. केशव-वैद्य सोमप्रकाश जी, मधु  
मेधिकल हाथ, परवरसन रोड  
१२. शिकोहाबाद- डा० गुलशन जी  
साधुवैद्यकांकार ११५ कटरा मीरा  
१३. तिर्वा (फर्रुखाबाद) आर्य मेधिकल  
स्टोर  
१४. अलाव पं० बाबुगोविन्द गव. प्रसाद  
बाबन्दी  
१५. नमीना- डा० हरकण्ड खाल  
गुरसरनखाल, साधुवैदिक औषधालय  
१६. लडकी-वैद्य चन्द्रकिरण साधुवैद्य-  
कांकार गुरुकुल स्नातक मेधिकल हाल  
१७. अन्नाला हावनी- पं० प्रेमसागर  
गुरुकुल अलेकार साधुवैदिक फार्मसी  
१८. देहरादून- डा० सुरजन, सुदर्शन  
फार्मसी, परदन बाजार  
१९. पटियाला- पं० वेदप्रकाश अनेकार  
औषधालय

२०. करनाल- डा० मनीराम सोदभर,  
सहक बाजार  
२१. लामरपुर- डा० बी. दत्त कचहरी  
बाजार  
२२. अयोध्या- मेधिकल सोप बकैस  
२३. बड़ौदा- आल इंडिया ट्रेडिंग  
कारपोरेशन मेडली  
२४. दाहू (सिंध)- लोक सेवक भंडार  
२५. मसूरी- दि दून प्रोविजन स्टोर  
केवरी बाजार  
२६. महसवान- ला० बार्सीराम वन्डिया-  
खाल, आर्य औषधालय  
२७. सुलतानपुर (अवध)- श्री महादेव  
प्रसाद देव चौक  
२८. आनमगढ़ मोरमूफकाश भंडार  
२९. सूर्यपुर (शाहबाद) श्री नानकीराम  
सिंहप्रसाद जी

३०. डाल्टन गंज- श्री रामप्रत  
प्रसाद खेतान  
३१. सहायपुर- वैसर्स जग  
दयालचन्द, पंमारी बाजार  
३२. पटना- एमैसी गुरुकुल  
महुआ टोली, वांकीपुर  
३३. दामकड़ी- वैद्यमुरलीधर  
सुनाय पौ० (पटियाला स्टेट)  
३४. फेजाबादश्री कृष्णादत्त साधु  
श्रद्धा चन्द औषधालय, चौक  
३५. परगोवा- मेडिकल  
आर्यममान बलाक नं० २  
३६. लखनऊ- एमैसी गुरुकुल  
फार्मसी शरीराम रोड  
३७. कलकत्ता- एमैसी गुरुकुल  
फार्मसी ४ भी महुआ बाजार स्ट्रीट

## च्यवनप्राश

विद

हाइपो फौस्फाइट्स

च्यवनप्राश में आधुनिक विज्ञान के आधार पर कैल्शियम, सोडियम और

पोटाशियम के हाइपोफौस्फाइट्स मिलाकर यह

योग तय्यार किया गया है।

इस में च्यवन प्राश के सब गुण यथावत् विद्यमान हैं

और फेफड़ों तथा ज्ञानतन्तुओं के

लिए अधिक उपयोगी है।

मूल्य २) पाव

पता-गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी, पो० गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

२. अन्नमेघ— वैद्य परवृत्तीलाल जी चौक
३. मोत पु।—श्री रामचन्द्र वर्मा एजेन्ट
४. भैरवी तामसेयंगन
५. तुलन्दत्तहा— भैरवी परमात्माशरण्य डिप्टा मंत्र
६. मिषाचन्द्र (मुलतान) श्री कांगी-हकीम
७. नयल्लाह—तनरल स्टोर्स बहा। बाजार (स्टेट)

८. पटियाला—वैदर्प वीरवल चिरनी-लक्ष्मी मगनीराम
९. हजोई—महेश प्रसाद भागतप्रसाद तार
१०. बिजनौर—पं० रामचन्द्र गणेशराम
११. भागलपुर—श्री नरेन्द्रनाथ गुप्त एवं समाज
१२. इलाहाबाद—पं० नरत्न जी
१३. एजेन्ट गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी १६ गज

इके अनिर्वाक मेरु में यद्यपि बरिसे श्री और उमसे अच्छी किन्ती हो रही भी वहां और गुलाबरा देव कर व म्वाल दी गई है निम्न का पता निम्न है:—

पुत्र ब्रांज गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी इ

गुरुकुल फार्मसी का एजेंसी का निषय जनक हैं, हमारी हार्दिक इच्छा है कि मरुजन आगे आएं और गांव २ में की औषधियों की एजेंसी लेकर गरीब को उनकी दार्मों पर औषधियां देन कर अपना तथा जनता दोनों का इन करें—

—सम्पादक

## केश सिंगार

सिर धोने के लिए एक अद्भुत आविष्कार  
इसके व्यवहार से  
बाल रेशम की तरह साफ  
और मुलायम होते हैं

पता—गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी पो० गुरुकुल कांगड़ी

## पायोकिल

पायोरिया अर्थात् दांतों से पीप  
आने की खास दवा  
मूल्य ॥) शीशी  
—पता

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी पो० गुरुकुल कांगड़ी सहारनपुर

## भीमसेनी नेत्र बिन्दु

कुकरों की खास दवा  
दुखनी आंखों में भी  
उपवहार करने से लाभ  
होता है ।  
मूल्य ॥) शीशी

पता—गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी सहारनपुर

# पुस्तक—समालोचना

[ समालोचनार्थ मेजी जाने वाली पुस्तकों की दो-दो प्रति आनी चाहिये ]

**वैदिक विनय ( तीन भाग )**—लेखक आचार्य अमरदेव जी । पृष्ठ सं० ३०० प्रति भाग । मूल्य १) प्रति भाग । मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी ।

लेखक के नाम से जनाता मली मति परिचित है, आपके लेखों और पुस्तकों से धार्मिक और भक्त जनता को बहुत लाभ पहुंचा है । वैदिक विनय आर्यकी लेखनों की जीवन-कृति है नदी खोन और (याकाल के वेदाध्ययन से आपने अपने जेठ जीवन के दिनों में इस अनुभव ग्रन्थ की रचना की है ।

यह पुस्तक तीन खण्डों में समाप्त हुई है । एक दिन के लिये एक प्रार्थना नियत है । इसका गुणगानी अनुवाद भी हो चुका है । इस पुस्तक के कई संस्करण हो चुके हैं । देश के मान्य नेताओं आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वानों और समाचार पत्रों ने मुक्त कंठ से इस ग्रन्थ की प्रशंसा की है । उत्तम टाइप और बद्धिवा कागज पर यह ग्रन्थ छपा है ।

**सोमसरोवर**—लेखक श्री ए० चतुर्पति जी एम. ए. । पृष्ठ सं० २७५ मूल्य—प्रतिखंड १।।) आन्डर १।।) । मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी ।

सामवेद यकों क लिये पाठ-नोट है । पाठक परिवारम के इस करने का पत्र पान करें, निश्चिन्तता से अध्ययन करें, मनन करें । पुस्तक की मंत्रों भाषा, बद्धिवा कागज, छपाई सफाई सब उत्तम है ।

**वेद गीताञ्जलि**—भद्रह कर्ता मूल्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी । पृष्ठ संख्या—१४४ मूल्य २), मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी ।

वेद मन्त्रों के आशय को अविवक्षित करने वाले गीतों का इस पुस्तक में संग्रह है । वेद के कुछ चुने हुए मन्त्रों के शब्दार्थ और उन पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवियों द्वारा हिन्दी में भावात्मक सुन्दर गीत इस पुस्तक में दिये गये हैं । यह अपने दंग की एक निगर्हा पुस्तक है ।

**स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश ( दो भाग )**—समुद्रोता बाबा सम्भूषण जी देवदह । पृष्ठ सं० ११४ + १०८ । मूल्य बाहर जान, प्रति भाग मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी ।

यह पुस्तक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के उत्कृष्ट, गम्भीर, भाषणा को उठाने वाले धर्मोपदेशों का संग्रह है । प्रत्येक घर और पुस्तकालय में इस पुस्तक की एक-ए कापी का होना आवश्यक है ।

**वृहत्तर भारत**—ले० श्रीयुत ए० चन्द्रगुप्त वेदान्त सं० ५००, मू० ४।।), मिलने का पता, पुस्तक भण्डार कांगड़ी ।

भारतीय संस्कृत का विश्वो में अर्थात् चीन, जापान, अफ्रीका, तुर्कमान, अफ्रीका और अमेरिका प्रभृति पञ्चर किम प्रकार हुआ, किस प्रकार भारतवर्ष क धर्मप्रदेशों में जाकर अपने धर्म को फैलाया । यह पुस्तक में पाठकों को मिलेगा । वृहत्तर भारत अतीत इस सुवर्णयुग कवियों का एक सुन्दर संग्रह है । इस विषय प में और कोई इससे अधिक प्रायागिक पुस्तक आपको न पुस्तक बद्धिवा एन्टिक कागज पर छपी है ।

**आत्म समीक्षा**—ले० श्रीयुत प्रो० नन्दलाल पृष्ठ सं० ३०३, मू० २), मिलने का पता पुस्तक भण्डार कांगड़ी ।

यह अपने दंग की अद्वितीय पुस्तक है । विद्वान 'जीवात्मा' के सम्बन्ध में हर एक पहलू पर बड़े विस्तार किया है । 'आत्मा' जैसे गूढ़ विषय को उदाहरणों इन मनोरंजक दंग क साथ लिखा है कि पुस्तक हाथ से । इन्का नहीं होती । ३५६१ खूबों पहने पर ही मालूम होगी ।

**आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति**—लेखनीश वेदान्तकार, पृष्ठ सं० ५०, मूल्य १- ) ।

योग्य लखर ने इस पुस्तिका में सजीव भाषा में व दंग से आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की दिव्यता का तथा जेठ क विचित्र अनुभवों का दिग्दर्शन क प्रत्येक गुरुकुल धर्मो को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये ।

**ब्रह्मचर्य सन्देश**—लेखक श्रीयुत प्रो० मधुसूदन लंकार । पृष्ठ सं० २९१, मूल्य दो हाथा । मिलने का पता भण्डार गुरुकुल कांगड़ी । 'ब्रह्मचर्य' जैसे न जुक्त विषय 'अच्छी दुमरी' पुस्तक हिन्दी साहित्य में नहीं है । स 'कर्मवीर' की मन्मात है कि—'इस विषय पर हिन्दी में अधिक प्रायागिक, सब से अधिक खोन पूर्ण और सब संज्ञातय विषयों से भरी हुई पुस्तक देखने में नहीं आई है ।

यह पुस्तक ऐसी है जिसे पिता, को पुत्र के हाथ गुप्त चितकों को अपने नवयुवक (मित्रों के हाथ में प्रकटी से देने चाहिये । अंग्रेजों में यह पुस्तक 'Confidential T. Youngmen' के नाम से प्रसिद्ध है । प्रस्तुत पुस्तक, इस संस्करण है ।

शिखा-मनोचिन्तन—लेखिका श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल ५० १० बी. टी.। पृष्ठ सं० ३३७, छायाई मफाई अत्युत्तम है (पृष्ठ ३॥), मिलने का पता पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

बच्चों को गिला किम प्रकार देनी चाहिए, बालक का (नामिक) विकास किम प्रकार होता है, इस बात को समझ कर यदि माँ को गिद्ध दी जाय, तो वह एक पुत्र की तरह खिन्ने लगता है। इनकल हयरे बालक म भ्राये हुये क्यों (दमल ई देते हैं, इनका प्रश्न यह है कि माता, पिता और गिद्ध बालक क मानसिक नाम क अध्ययन प्रिये हुए नहीं होते।

(हिन्दी साहित्य सम्मेलन न इम पर १९००) का संग्रह— १०० पारंपरिकी प्रथा है और नामका प्रचारिणा सभा ने १००) 'बिडला' पुस्तक प्रकाशित है।

दुर्गम स्कूली और कालेजों के लिये इमय अन्धी दूसरी तरह किमी भाषा में नहीं निकली।

बच्चों की स्थिति—लेखिका श्यामता चन्द्रावती लखनपाल ० १० बी० टी०। पृष्ठ सं० १८२ छायाई मफाई उत्तम, मूल (। मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

बच्चों के पढ़ने के लिये यह मय म उत्तम पुस्तक समझी गई बच्चों के हयों में देने के लिये, अन्धा पठशाला यों में इनम के लिये इमये अन्धी दूसरी पुस्तक नहीं मिल सकता।

पुस्तक इनकी अन्धी है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने पर १००) का पुस्तक प्रकाशित है।

मन्थ्यासुमन लखन श्री ५० नित्य चन्द्र जी वेदालकाय। ५० १६६, छायाई मफाई अत्युत्तम मूल्य १। मिलने का पता क भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

इय पुस्तक क गिद्ध लेख ने कई वर्षों तक शिमाका आर्य म में प्रोहित क प्र न छन पर प रहे हैं। यही कारण है कि न पुस्तक में मन्थ्या जैसे गुरु विषय पर बड़ा स्पष्टता एवं

मानसिकता के साथ प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ अपने विषय का अनयोक्त मय है। प्रत्येक भक्त बलिदानु को इस पुस्तक का एक बार अध्ययन अवलोकन करना चाहिए।

जल चिकित्सा शिक्षा—लेखक श्रीशुभ ५० देवगज जी (विद्यानालय न। पृष्ठ संख्या ५००। मूल्य १।॥। मिलने का पता पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

आनकल रोगियों और चिकित्सकों का ध्यान प्राकृतिक चिकित्सा की ओर बड़ तेज से बढ़ रहा है। लेखक ने जल चिकित्सा के मिद्वान्तों का (उद्योग के आचार पर विचार किया है। हिन्दी मया में यह पुस्तक बहुत आनन्दपूर्ण प्रकाशित हुई है। पुस्तक चिकित्सकों और रोगियों दोनों के लिये उपयोगी है।

हिन्दी निरुक्त भाष्य—लेखक श्रीशुभ ५० चन्द्र-मणि (विद्यालकार। पृष्ठ संख्या ८०५। मूल्य ७), मिलने का पता पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

वेद क मय में समझने के लिये निरुक्त मय का अध्ययन आवश्यक है। लेखक ने निरुक्त के गुरु मयन्तों को स्पष्ट तथा विशद शून्य बना दिया है।

रायल एंग्लोयटिक सोसायटी लंदन, श्रीशुभ चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, बड़मनामल इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, आदि मह सुभाओं ने मयक नयट में इय ग्रन्थ की प्रशंसा की है। वेद मयों मयननों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

इसके अनिश्चित निम्न पुस्तकें भी समाजोन्नाय प्राप्त हुई हैं जो गुरुकुल पुस्तक भण्डार में मिल सकती हैं:—

१. ब्राह्मण की भी, )
२. भाग्य वर्ष का इतिहास (तीन भागों) ६।) सेट
३. गुरुकुल धारणा एकादशी )।।।
४. कन फिग्युन भाग [ उर्दू में ] २।
५. गंगाई पुल ई न बूट क्लीनिग [ उर्दू में ]।।।
६. कन गेशन ई [ उर्दू में ] १।।।

श्री डा० इन्दुमेन जी B. A., M. B. B.S., D. 'T' M; आयुर्वेदाचार्य मू० पू० प्रो० पंजाब आयुर्वेदिक कॉलेज, वरिष्ठान प्रो० गुरुकुल (वस्त्रविद्यालय कांगड़ी), श्री विद्याना तीन पुस्तकें जिनकी हिन्दी मयन में सुकन कंटे से प्रशंसा की है:—

(१) पाश्चात्य चिकित्साप्रकार—इय पुस्तक में पारंपरिक चिकित्सा के कई अट्टपुन योगों के साथ साथ विषय को निहायत उत्तम ढंग से समझाया गया है। मूल्य १)

(२) फिरीय रोग—पुस्तक में इय विषय पर मयल सुबोध भाषा में अन्धी प्रकार प्रकाश डाला गया है। मूल्य २)

(३) एकमन्त्रे—एकमन्त्रे क्या है। इसका प्रयोग रोगविहाय में किस प्रकार किया जाता है, यह अन्धी प्रकार समझाया गया है। मूल्य ॥)

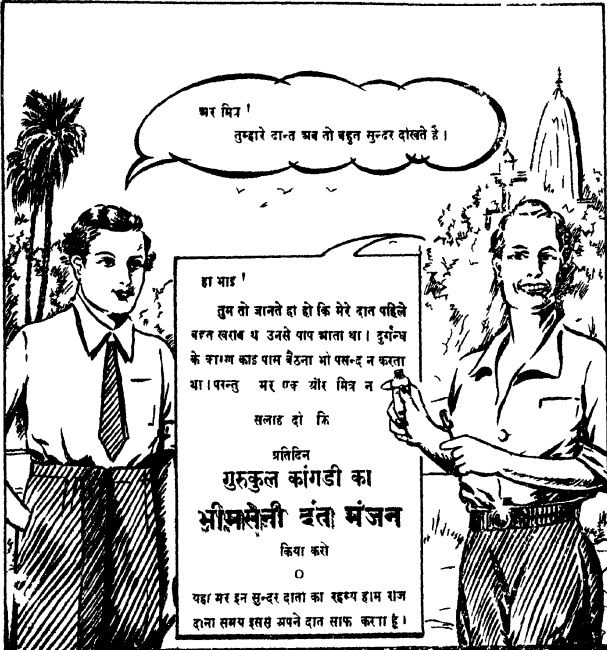
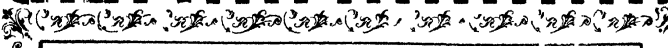
मिलने का पता:—पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी  
(जिला महारनपुर)

# इनाम लूटिये

इस श्रृंखला की प्रत्येक प्रति पर एक संख्या डाली हुई है। कुछ संख्याओं के लिए श्री मुख्याधिष्ठाता जी गुरुकुल कांगड़ी ने न.चे लिखे प्रकार इनाम देना निश्चित किया है। ये संख्याएं एक मुहर ध्वज लिफाफे में गुप्त रखी हुई हैं। अगले वर्ष इसी श्रृंखला में ये संख्याएं प्रकाशित की जाएंगी। जो मज्जन इन संख्याओं के एक हमारे पास वापस भेजेंगे उनमें उन संख्याओं के लिए निश्चित इनाम दिया जायगा गुरुकुल के कर्मचारी इसमें भाग न ले सकेंगे।

प्रथम इनाम ५०) पाच इनाम १०) प्रत्येक दूसरा इनाम २५) तम इनाम ५) प्रत्येक तीसरा इनाम २५)

—मैनेजर गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी



पता गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी (सहानपुर)



GURUKUL KANGRI HARDWAR

# आंख के निराश रोगियो गुरुकुल कांगड़ी का भीमसेनी सुरमा

एक बार

जरूर आजमाइये

गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य प्रोफेसरों द्वारा आविष्कृत

असली भीमसेनी सुरमा गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी

या उसकी पजेसियों से ही मिलता है ।

## धोखे से बचने के लिए

**-भीमसेनी सुरमा-**

बुढ़ापे तक  
आपको आंखों की  
रक्षा करगा  
इसका नियम पूर्वक  
इस्तेमाल  
करें  
मृत्यु ॥१॥ शीघी

हर पैकेट

पर

गुरुकुल

कांगड़ी

का

नाम

जरूर

मुझे यह लिखने हुए अत्यन्त  
प्रसन्नता होती है कि आपके  
भीमसेनी सुरमे ने मेरी माता  
की आंखों की ठीक करने में  
आश्चर्य जनक लाभ किया है ।

डा० कायलासिंह तहसीलदार  
किरतवाड काश्मीर स्टेट

देख लिया करें

## गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी ज़ि. सहारनपुर

बोथरी दुबारादाय के प्रबंध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित ।

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल (—)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥]

मन्दायन—भा. व्यंज. टारंग. म. दालना.

पृ ७ ]

गुरुकुल समाज शृङ्गार १० कालक १९७ २७ अक्टूबर १९२७

[ सन्ध्या २० ]

## ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान

( १० भा. चतुर्थांश )

ब्रह्मचर्य मनुष्य ज्ञान का एक व्यापक नियम है। पशु जगत् में भी यह नियम व्यापकतया स्थापित हो रहा है। मनुष्य को यह नियम अपनी उन्नत और विकास के लक्ष्य प्राप्त हुआ है और पशु का अपनी सामाजिक स्थिति बनाये रखने के लिये। पशु को इस पर चलने में पशुवत् व शारीरिकवत् मिलता है और मनुष्यको शरीर का बल मूलक के साथ युक्ति और आत्मा का बल भी प्राप्त होता है। पशु कुक्क प्राकृतिक नियमों और स्वभाव के बशवर्ती हुआकर ब्रह्मचर्य के आश्रय लेने है, परन्तु मनुष्य वैज्ञानिक और बल प्राप्ति के लिये—यानी अपनी बद्ध मुक्त उन्नति के लिये इन एक पवित्र नियम समझ कर इनका आचरण करना है। इस तरह ब्रह्मचर्य में जहाँ पशु को शारीरिक बल मिलता है वहाँ मनुष्य को शारीरिक बल के अतिरिक्त हृदि और आत्मा का बल भी प्राप्त होता है।

हमारे शास्त्रों में ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा गाई गई है। ईश्वर के महान्त गुरु-कालन में लकर लय अहिंसा संन्यास-मनिक आदि कशुभ धर्म कथन के साथ ही ब्रह्मचर्य का भी प्रभावशाली रूप से ध्यायमान हुआ है। शास्त्रों में तो ब्रह्मचर्य का वर्षाभ्यन्तम रूप में माना है। न केवल वर्षाभ्यन्तम का अर्थात् मनुष्य जावन का प्रारम्भ भी ब्रह्मचर्य द्वारा होता है। जीवनक लक्ष्य उपाय में लकर रजिन् सन्ध्या तक का सारा समय ब्रह्मचर्य के नामा रूपों में ही बिताए। एक द्वारा अनुष्ठान हुआ हृदि शान्त होता है। उन्नत बाल को ह के वस्तु में ब्रह्मचर्य की हृदयप्रसिद्धी परिभाषा दी जाती है। वृत्तों के बाजरायक अनुष्ठान के आश्रित व से लकर पत्र-पुष्प फल तथा परिपाक आनन्द के प्राप्ति में डाक २ और पत्र २ ब्रह्मचर्य की अगति उर्ध्वों में अथवा विप्रेतलोचन आचर्यापिका का वस्तु करने है। अतः ब्रह्मचर्य जीवन को विकसित करने वाला यह नियम है। अतः अथ से अनुष्ठान का यह, हम हृदि-प्रसन्न और आनन्द परिपुष्ट हो कर प्रकाशित होता है।

ब्रह्मचर्य को शास्त्रों में माना व्य रथा हुई है। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ भी अन्नक हूण है। ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करने से विषय लभ्य होते हैं और नाना प्रकार के फल मिलते हैं यह भी कहा गया है। इसलिये ब्रह्मचर्य भा है। किस वस्तु का नाम है। यह भी हम समझ लेना चाहिये। ब्रह्मचर्य के शारीरिक अर्थ बड़े र म्बर है और तत्त्व बाधक है। शास्त्र कहते हैं कि 'ब्रह्म' स्वयं व्यापक परमात्मा का नाम है। उसको जानने के लिये जो परिवाचरण करना है वह ब्रह्मचर्य है। ब्रह्म का अर्थ वेद भी होता है। और वेद का अध्ययन करने के लिये जिस प्रत्याचार में दीक्षित होना है वह भी ब्रह्मचर्य है। पार ब्रह्म परमात्मा और ब्रह्मक ज्ञान की प्राप्ति के लिये जिस ध्यानुष्ठान रूप लक्ष और तप किया व आरंभ होना है यह ब्रह्मचर्य है। इन शास्त्रिक अर्थों के साथ संगति रखते हुए 'दूरा' भी अन्नक अर्थ अथवा शब्द से निकलने है। जिनका ज्ञान हमारा भी हमारा लिय आचरणक है। क्योंकि इसका ज्ञान होने से हम ब्रह्मचर्य की सचर्चाओं में उल्लास व सुखता का परिचय हो जायगा। अथ ज्ञान होने में हम उन्नत पर-ब्रह्म की उपासना के लिये, ब्रह्म की प्राप्ति के लिये, उसके दर्शन और ज्ञान के लिये अन्तर्य उसकी आग गति कर सकेंगे। हमारा पत्र एक और बड़ी बड़ी प्रशामिसुल्य प्राप्ति करने में म्थनीत होगा। हमारा श्वलोच्छ्वस् का चलना और प्राणोपासनादि कार्याय ब्रह्म के अन्तर में विचरण करने हुए अथवा नियमित रूप से उस द्वारा सुरक्षित होकर होगी। हमारा आचार ज्ञान और धर्म के नियमों द्वारा परिचालित करना हुआ वह ब्रह्मचर्य हम अपना अनुष्ठान बनाकर सतत ब्रह्मचर्य की शिक्षा-दीक्षा में विनियुक्त करनेवाले।

अथ वेद का हृदि ११ में इसी महान्त आशय का किता। अन्तर्य में वस्तु हुआ है। कहा कहा है 'आचार्य' उपनय करता हुआ मानो ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के अन्तर्य धर लेना है वह उसको नाम दिन-रात धर्मन विद्या गुरुदाम निवास करके जब और दिन अन्त-वास से मुक्त करता है तो उस विद्या अन्त से प्रकाशित हुए का विद्यान्त लेना लक्ष्य तर्क में वलने' आन

हैं। यहां विद्या की गुहाओं आचार्य के समीप तीन रात्रि पर्यन्त ज्ञान प्राप्ति के लिये गुस्ता से रहना इस बात का निर्देश करता है कि वैदिक ब्रह्मचर्याभ्रम का अनुष्ठान वेद की प्रथी विद्या अर्थात् ज्ञान कर्मोपसना काण्ड के पञ्च पाठन के लिये किया जाना था। रात्रि में जिस प्रकार मनुष्य का वायु जगत् आँसों में शोभल होता है और केवल अम्नजंगत् अपने में विद्यमान्, हाता है इसी प्रकार आचार्य कुल में ब्रह्मचारी की आत्मा केवल सत्य विद्याओं ० आभ्यन्तर में हीनी चाहाय। बाह्य जगत् की उचल पुचल म फंस कर डाँवाडोल न होनी चाहिये। यही है ब्रह्म कुल में अन्नचारी का निवास। यहीं पर वह 'अभ्रकर्म संभाषिना' वाली स्थिति सुलभ करता है। और 'गर्भोभूया ब्रह्मलस्य योगी' मंत्र नुक्त देने वाली ब्रह्म-विद्या म गर्भ की तरह निषय में रहकर उसका ज्ञान प्राप्त करके कृत क्रय हो जाता है।

ब्रह्मचर्य सच तपों का मूल है। यह महान् तप है। 'ब्रह्मचर्यं परंपरः' कहा है। अथर्व काण्ड ११ में, अनु० ३। सू. ७ में तो ब्रह्मचर्य के तप को अत्यन्त प्रबल तप माना है। वहाँ पर बार-बार 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा सुपुत्रुपाज्जन्, इन्द्रा ब्रह्मचर्येण देवैः स्यः स्यमरतः' तथा 'ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति' इत्यादि वाक्यों से ब्रह्मचर्य रूपी तपोबल की प्रतिमा बन्नी गई है। विचारने की बात है कि वह ब्रह्मचर्य कितना दुर्घर्ष होगा- जो आई हुई सृष्टिका भी हनन करने में समर्थ है: दोन-हीन दुर्बल और पददलित प्रजा को मुग्धा बनाकर राष्ट्र रूप में उसका संरक्षण करने में योग्यता प्रदर्शित करना है- और प्रबल आरमा, जैसे विकल इन्द्रियों की म्बल बन्तान में योग्य है, जैसे ही ऐश्वर्यवान् होकर धर्मात्मा विष्टानों को मुक्तासामी प्रदान करने में सशक्त होता है। कितनी सत्यता में यह बात वेद में कही गई है कि 'ब्रह्मचारी समिधा मेजलया अमेण लोकांस्तपसा पिपतिः'। यथार्थ में तो इस मन्त्र काण्ड में ब्रह्मचर्य के स-स्त कर्त्तव्य सर्वे प में निर्दिष्ट कर दिये हैं। ब्रह्मचारी का समिधान्वयन हिराण्यदि साकन्ध का संग्रह कर अग्निहोत्र द्वारा यज्ञाग्नि का प्रज्वलित रज्जता; गुप्तेन्द्र्य का संयम तथा वीर्य के स्मलन स बचने के लिये मलसा और कौपीन का धारण करना, साथ विद्या की प्राप्ति के लिये यज्वान् रहकर, स्वाभ्यं रक्षा और आरमिय लाभ के लिये कठोर भ्रम करने में तत्पर रहना तथा अत्यन्त तपस्वरण द्वारा 'धर्मं वसानः' शाला, तपोजा अग्नि से आच्छादित होना, यह सब कर्त्तव्य कर्म ब्रह्मचारी का पालन और पूरण करने है। इनका नियम नियम के तौर पर अनुष्ठान करने शाला यणी सब लोकों को अपनी साधना में परिपुष्ट और आनन्दित करना है इसमें सन्देह नहीं।

वेद का रूपक वह जिसमें ब्रह्मचर्याभ्रम पूर्व समुद्र और सुखसादि आभ्रमों को उत्तर समुद्र कहा गया है कितना मज्ज प्रबल है। यह ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्त हुई शक्ति है जिससे पूर्व समुद्र में सहस्रा उभीके होके उत्तर समुद्र को भी धैर्य और साहस से ब्रह्मचारी नरने में समर्थ होता है। पूर्व समुद्र में उत्तर समुद्र तक पहुँचने में ब्रह्मचर्य मूल-

कारण है। ब्रह्मचर्याभ्रम नव आभ्रमों के मूल में होने से सबका आधार है यह ऐसी नींव है जिसके दृढ़ होने पर अन्य सब आभ्रमों का उत्कर्ष अर्थात् फलना फूलना होता है और इस नींव के दृढ़ न होने पर उत्तराभ्रमों का विकास कभी भली भर्ति नहीं हो पाता।

(कण्ठे बंध में समाप्त)

## दीपावलि

[ एक अनुसन्धान पूर्ण लेख ]

विजयादशमी के दिन मर्यादा पुरनोरास भी रामचन्द्र जी ने रावण का वध किया था— तथा दीपावलि के दिन अयोध्या पहुंचे थे ऐसा विचार प्रचलित है। परन्तु यह धारणा कल्पित प्रतीत होती है।

(१) वाल्मीकी-नामायण, अग्निवेशपुराण तथा पद्म-पुराण (पातालाकाण्ड) इस कल्पना के विरुद्ध हैं।

(२) पं० हरिमंगल मिश्र एम० ए० वैशाख कृष्ण चतुर्विंशी, पं० महादेव प्रसाद भी विपारी काल्युन सुदी एकादशी तथा पं० हरिकृष्ण जी दक्षिण चैत्रकृष्ण अमावस, रावण वध की तिथि मानते हैं।

(३) तुलसीदास रामायण से भी विदित होता है कि विजयादशमी के समय भी रामचन्द्र जी पद्मपुर में ही थे। वहाँ बीसने पर हनुमान् जी सीता की खोज में जाते हैं।

(४) भविष्योत्तर पुराण में विजयादशमी के दिन शत्रु का पुनरा बनाकर उसके हृदय की भीषण का विधान है। रावण वध का नहीं।

है। इस कल्पना से विज्ञाते २ रावण वध की प्रथा चल पड़ा हो-ऐसा मान सकते हैं। अतः आश्विन शुक्ला दशमी को रावण वध की कल्पना से बुनियाद प्रतीत होती है।

जब विजयादशमी के दिन रावणवध ऋद्ध है-तब इसदिन अयोध्या म श्रीराम का आना भी असम्भव है। जब रावण-वध काल्युन या वैशाख में हुआ-तब भी राम काति के अयोध्या कने पहुंचे। अतः इस पर्व का भी मर्यादा पुरनोरास भी रामचन्द्र जी से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं है।

यह प्राचीनतम पर्व है। भीराम के जन्म से हज़ारों वर्ष पुराना है। अतः विज्ञानों के बनाये धर्मशास्त्रों में इसका नाम ऋतु के अनुकूल दिया है। आयों में ऋतु के अनुकूल पर्व मनाने की रीति थी। ऐतिहासिक पर्व मध्यकाल की रीति है। ऋतु के अनुसार पर्व-सब जातियों सब संभ्रायों (हिन्दु मुसलमान दोनों) के लिये एक जैसी बन्तु है। उसका सम्बन्ध देश की (कुदरती) प्राकृतिक दशा में होता है, न कि पुरव विशेष, जाति विशेष या समय विशेष से होता है। ये पर्व सब जाति एवं समयों में मनाये जा सकते हैं।

मेरा श्रयणा क्याल है, कि इन पर्वों से किसी स्थिति (शस्त्र) का सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। क्योंकि कृष्ण कालबाद स्थिति की उपयोगिता उतनी नहीं रहती। क्योंकि वह-समयानुकूल विचार व समय का पोषक होता है। सब समयों के लिये आवश्यक सत्य का पोषक विचार या ज्ञान ईश्वर का ही हो सकता है। परन्तु जिस समय जिस महापुरुष की सवार्थ वैश की दशा की मुधारण में



अनुकूल हो उसका उस काल तक पर्वसे सम्बन्ध मानना अचरित है। यह आधुनिक-संस्कृति की भावना पर्वों के सम्बन्ध में मुक्त नजर आती है।

यह दोषावधि का पर्व शरद ऋतु एवं वर्षा ऋतु के बीचों बीच आता है। वर्षा की समाप्ति एवं शरद के आगमन की सूचना देता है। ऋतु बदलने समय रोग की आशंका स्वाभाविक है। हर आवर्ती इसका स्थान रमता ही है। दूसरी बात ऋतु बदलते समय अन्न पर अस्तर है। इसके मुताबक इस समय अन्न-पकना और कठना शुरु होजाता है। किसान का घर भंगुर होना शुरु होता है। व्यापारी अपना बहीखाना नया करते हैं। तेम देन चुकना किया जाता है। नाकि अन्न क्रीदने के लिये रुपया हो-नया उत्साह और संकल्प स.ध हो। यह पर्व अन्न तक प्रभाव पैदा कर रहा है। अतः अमरावा में इस पर्व का नाम नव सत्यंदि या नवार्चनंदि रखा गया है। मठों --गुरुकुलों में- श्राद्धों में, ध्यापार्यों में-किसानों में आज में ही अन्न भंडार जमा होता था। अतः सबको खुशी का कारण अन्न होता था।

(१) गौमिख शुद्ध सून, प्रपाठक ३, नवर्द ७ तथा \* से २७ सूत्र तक इसका विधान है।

(२) पाठक शुद्ध सून, कार्द २, कविदका ५, सूत्र १ से १८ तक इसका विधान है।

(३) आपस्तम्बीय शुद्ध सून, अथर्व १६, म इसी का वर्धन है।

(४) मानव शुद्ध सून, अथर्व ३, में सुन्दर प्रकिया है।

(५) मनुस्मृति अ० ४ श्लोक २६ भी इसका पोषक है।

प्रत्येक अमावस्या पर दशैदि का विधान होने से कालिकी अमावस्या में नवसत्येदि यह के साथ उसको किया जाता है।

परशु इस वर्तमान भारत की समस्या का हलाक करने वाले प्रथम पुनर्ध का भी उस दिन से स्वास् सम्बन्ध हो गया है। अतः वर्तमान भारत की दशा में दुःखी दिल इस पर्व पर उसकी स्मृति को भुला नहीं सकना। इसी दिन सार्यकाल अक्षय्य ३० तारीख १२३३ ईस्वी मंगलवार को महर्षि दयानन्द जी की आत्मा शरीर का परिःवाय किया था। अतः यह पर्व वर्तमान भारत के इतिहास में अमर हो गया है।

भी विधानम् वेदावकार।

## सब कर सकते श्रद्धार नहीं

[ जी १० जगन्नाथ प्रसाद पन् ५० ]

किस को मिलता यह शुभ अवसर पाये आत्मन बलि-वेदी पर किसका सहाय इतना उन्नत जिस पर सिद्धर लगे दुम्बर हर छत्ती पर, हर प्रीचा पर सजरा फूलों का हार नहीं।

(२)

गली स्वकी जीवन-सरिता पर्व किसका जीवन ही कविता किन्ने सद्भाव अरुमिषा से रंजित हो बन जाने सविता हर मांसल मन पर निराकार मानव होना साकार नहीं।

(३)

किसका दिल जब तब रो देता पर सुख हित निज सुख को देता। किसका बलिदान युगान्तर ऊर्ध्वनि पाणों को धो देता सब करुणानिधि के प्राय दुःख का नें सकते हैं भार नहीं।

(४)

लज्जकर अपने को सुन्दर प्रलभ हो जाने अल व्यस्त इतनी तदस्त किसकी मस्ती जिसके सम होवे उद्वेग अल सब सकने जीव रजस रेखा धनबोध घटा का पाग नहीं।

(५)

मसि के कामे अक्षर मन्धर रक्षित अक्षर ही हैं अक्षर काता कर देती स्वेन पूष कविता सुन्दर से भी सुन्दर प्रत्येक आत्म-अभिप्रेयजन में होती है सदा बहार नहीं।

(६)

दुनिया में येते विश कितने जो होने हैं विशाल इतने जो अमकाले वैरी का यश ने दुर्बल हो जाते जितने सब प्राप्त विजय को अपने रिपु के हित कर सकने हार नहीं।

(७)

हर रक्त सुबर्ष कुहार नहीं आभूषण का उपहार नहीं सब के शोभित से काल-राशि पाली तारों का हार नहीं संहार सभी हो सकने पर कर सकने उपसंहार नहीं।

(८)

आत्माहुति से मिलता प्रकाश पर आत्मघात-है सर्वनाश यह निर्बंध सभी न कर सकते हैं किंचित मुक्ति, है किंचित पाश सबको जीने का स्वयं मगन मरने का है अधिकार नहीं।

**गुरुकुल**  
१० कार्तिक कथुक्रवार १९६७

**तेरा यह दीपक**

( श्री आचार्य अमर देव जी )

कार्तिकी अमावस आ गयी है और बहुत से दीपक जलाये जा रहे हैं। ये क्यों जलाए जा रहे हैं ? यह तो इन दीपकों के प्रालिक जानें पर इतना जानना है कि दीपक की सार्थकता हो इसके जलाए जाने, प्रकाशित व प्रदीपित किये जाने में है। प्रदीपित करने से यह दीपक होता है। और उस में दीपित करने का जिनकी शक्ति होगी है उसी के अनुसार वह अपने चारों तरफ के अन्धेरे को थोड़ा या बहुत दूर करता है।

कैसे तो अपने ० घर में इनके राल हो लोग दीपक जलाने हैं पर इस रात बहुत से दीपक इकट्ठे जलाये जा रहे हैं, दीपावलि जलाई जा रही है। यह विश्विज बात है। यही नहीं, दीपावलि भी कभी कभी किन्हीं अन्ध अक्षरों पर जलाई जाती है और आज कल सिनेमा घरों पर या किन्हीं किन्हीं अन्ध दुकानों पर डर राज हो दीपावलि हो ही रहा होता है। पर फिर भी इस कार्तिक अमावस की पवित्र दीपावलि की महिमा और शोभा अपनी ही है। दीपावलि यही कहाती है। इस में एक पवित्रता का भावना है, जो अन्ध पर नहीं। इस का पवित्र बनाने वाला विशेषता क्या है ?

\* \* \*

जलता हुआ दीपक किन्तना सुन्दर लगता है। उस-की ऊपर उठने वाली स्थिर प्रकाशयम लो किन्तनी मन-मोहनी होती है !

“यथा दीपो निवानस्थो, नैकूने सोपमा म्भुता।”  
इस दीपक में ध्यान केंद्रित करने, दीपक की इस सुन्दरता में मोहित होने में स्वयं दीपक बन जाता है। ऐसा अन्ध-अन्ध हमें लगता है कि मैं भी एक जीता जागता दीपक हूँ। यथापि अमी अनजला दीपक हूँ। इस भौतिक दह-रूपी जगत् में मिट्टी के बरतन में जो शुक कृपा में ल भग गया है और अन्ध-अन्ध रूपों बनी अगाई है वह मानव-दीपक के रूप में जलने के लिये ही नो किया गया है। जगत के सब महाधारी जलने हुए दीपक हैं। अर्पित दयानन्द जैसे आज्ञप्त ब्रह्मचारी बहुत बड़े और बहुत भारी प्रकाशवाले, बहुत दूर दूर तक का अंधकार दूर कर सकने वाले महाप्रकाशमान दीपक थे जो इन से प्रकाश चाहने वाले अन्ध बहुत से अनजले दीपकों को जला सकने थे और न जाने किन्तों को जला गये थे। निःसन्देह जलता हुआ दीपक ब्रह्मचर्य जीवन की कहानी ही कहता है।

आज बहुत से दीपकों को जलाया जाता देख कर, हे मेरे स्वामी! मुझ में भी भावना उठती है कि क्या आज मेरे इस दीपक के जलाये जाने का भी समय आ गया है ? मैं बहुत समय से इस की बात जोड़ रहा हूँ। क्यों कि मैं जानता हूँ कि मेरी सार्थकता इसी में है कि मैं एक दिन जल उठूँ, प्रलियित हो जाऊँ। मैंने मेरी कृपा से, अमीलक अपने इस तैल को कभी बरबाद नहीं होने दिया है, इस बत्ती को कभी झुकने और गिरने नहीं दिया है। इस बत्तन को मजबूत और सुरक्षित रखा है कि कहीं खेद हो कर नैत्र आकर या किसी अन्ध तरह इसका तैल खूने न लगे इस का पूरा फिकर रखा है। यह सब मैंने बड़े धैर्य पूर्वक इसी लिये किया है कि एक दिन तूने अपनी उ्योति के लक्ष्मण के स्पर्शसे सिरां हल जगा देनाही, जगा देना है, प्रकाशित कर देना है और मेरे जीवन को सार्थक कर देना है। क्या वह शुक छोड़ी जा आ गई है ? दीपकों को जलना देख कर और दयानन्द का स्मरण आकर कुछ ऐसी ही आशंका होती है कि शायद अब मेरे भी उल उठने का समय आ गया है। यह मैं जानता हूँ कि जब भी तुम मुझे प्रदीपित करना चाहोगे तो तुम्हारी दिव्यउ्योति का केवल एक क्षण भर का पवित्र स्पर्श ही काफी होगा। उस क्षणिक स्पर्श से ही मैं जल उठूँगा, जगमगा उठूँगा, और निहल हो जाऊँगा। क्या वह क्षण अब भी नहीं आया है ? मैं तो उ्योति का प्यासा हूँ, मेरी अज्ञय उ्योति को तू अपनी उ्योति से पेंसा जगा दे कि मैं अन्धकरन जगना रहूँ, सदाही मेरी उ्योति से जगना हुआ मेरे काम आता रहूँ।

\* \* \*

जैसे एक मानव-दीपक जलता है, वैसे मानव दीपकों की दिवाली भी होती है। बहुत से ब्रह्मचर्य दीपि-रन्धमे वाले ऊर्ध्वना मिल कर जलने हैं, और मिल कर जगत् के अन्धकार को दूर करने हैं। प्रायः ऐसा होता है कि अज्ञय उ्योति से उ्योति पाने वाले, एक बड़े भारी दीपक के चारों ओर अन्ध बहुत से दीपक जल उठने हैं और शन दिव्यों के अन्धकार को दकने देलने दूर कर देन हैं। शायद ऐसा ही एक दीपावलि का समय अब आ गया है। उन्म के लिये दीपक जलाए जाने प्राग्भ हो गए हैं ऐसा भी दीखता है। इसी लिये मैं इसी लिये कि इस पवित्र दिवस में दिवसा मेंने के लिये, ते मेरे रक्षियता स्वाम ! तू आज त्वा मुझे जला देना ?

मैं पवित्र दिवाली की बात करता हूँ। अपवित्र दिवाली तो राज सिनमा घरों जैसी बहुत हो रही है। लोग मिल कर जल भेदे हैं; चमक दमक रहे हैं; इस लिये कि वे इस तरह लोगों को अपनी इन बाहरी स्वमक दमक द्वारा फभावें और उन्हे पलित करें। लोग मुझे भी अपनी (अपवित्र) चमक-से जल जाने को प्रलोभित करते खने हैं। पर मैं तो इतने काल से तेरे पवित्र प्रकाश-स्पर्श को पाने के लिये ही तपस्या कर रहा हूँ। उस तेरी पवित्र दिवाली में काम आने के लिये कैसाही करता हुआ फिर काल से प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जो कि दिव लो अन्ध लोगों

\* \* \*

को लक्ष्मण अंधकार से और अंधकारजित पीड़ाओं से छुड़ाने वाली होती है और (अज्ञापक) विद्युत् होती है। उस दिवाली में अब क्या देर है ? मैं तो देख रहा हूँ कि अज्ञापक आ गई है, अधिक से अधिक अंधकार का समय आ चुका है और मैं आशामयी निगाहों से सब भी देख रहा हूँ कि कुछ हाँवकों का कलना भी प्रारंभ हो गया है। फिर अब मेरे इस दीपक को जलने में क्या देर है ?

## हैदराबाद में

### आर्यसमाज का प्रगाँव

[ कुछ अनुभव ]

( लेखक—भी विद्यानन्द वेदाशंकर )

शहरी ब.तावरण में उत्सव बहुत शान से मनाये गये। मैं इन शहरों उसधों से छुट्टा पाकर जन गणना की मोटिंग में शामिल होने के लिये शोलापुर आया था। शोलापुर में भी सत्याग्रह की मीथरी के लिये बह दलिहासिक आर्यकाम्पेस हुई थी। तब से आर्य प्रतिमिथि समाज का कार्यालय शोलापुर में ही है। 'समाज' का एक प्रेस भी है। 'समाज' की और न जो अन्धकार निकलता रहा है उसके ग्राहक ३,४ हजार से कम नहीं हुए। परन्तु सरकारी कूरदधि का शिकार होकर उन्हे बार २ बन्द कर देना पड़ा। बार २ नये २ नाम से आधा लेकर अन्धकार निकाला गया परन्तु बार २ बन्द कर दिया गया। अब पर "आर्य कन्देश" नाम से निकल रहा है। लोग बन्द होने के भय से ग्राहक बनन म दिखकते हैं। परन्तु तो भी पर बहुत शीघ्र तरफकों कर रहा है। शोलापुर में मुझे भीयुत परपुराम जी गम्या जो स्वपनि नेट है तथा गुलबर्गासमाज के प्रधान हैं, मिले। आप के साथ मैं गुलबर्गा पहुँचा।

गुलबर्गा शहर रियासत का दुखरे मम्बर का शहर है। रियासत के ४ सुबों में एक गुलबर्गा सूबा भी है। आज कल में इसी सूबे के प्रचार कार्य का सञ्चालक नियम किया गया है। सारी रियासत में २५० के करीब समाजें हैं। जिनमें १२५ आर्यसमाज गुलबर्गा सूबा में हैं। इसका नगर-समाज भी कार्यशील है। भीयुत लालासह जी इसके बड़े लयन के कार्यकलाप थे। आपके समय प्रत्येक सुहसे में प्रचार होता था। आप पर इस कारण सरकारा कर्मचारियों की कड़ी नजर थी। अतः आप पकड़ कर जेल में डाल दिये गये। आज कल नगर समाज के मन्त्री भीयुत तुकाराम जी हैं। "सत्याग्रह प्रकाश कला" क कारण आपका नाम भारत भर में रोशन हो चुका है। इस रियासत में, सुहरीचर को कुरुगिरि बोलेते हैं। इसके कर्मचारी प्राण अनपढ़ होते हैं। अतः पूस लेने के लिये सा न जलत कर लिया करते हैं। आर्य समाजी भी कभी कभी मूल से अन्धकार में पड़ जाते हैं। भीयुत जन्मी जी भी पड़ गये। बस इतनी सी गलती पर मामला सदाकार और आर्यसमाज के बीच में लड़ा होगया। अब सब निबट चुका है ?

गुलबर्गा से चलकर मैं यादगिरी पहुँचा। यादगिरी के प्रधान नेट ईश्वर लालजी हैं। आप मरबाड़ी हैं। बहुत सम्पन्न हैं। आप के घर पर ही मैं ठहरा था। एक त्रेनमन्दिर में व्याख्यान का बन्दोबस्त हुआ। नेट जी पर एक मुकदमा चला हुआ था। आप से पुलिस को खन दंग का डर था। मैं तो इस मुकदमे पर पकड़म बैरान था। मैं स्थानीय वर्काल तथा नेटों से मिला। सब ने इन मुकदमे की अधिकारियों को सबहमी पलापान बताया। सारी यात्रा में मुझे कोई हिन्दु अधिकारी मिला हा नहीं। वोदर की तरह ही मुठमरकल में भी आर्य मुखमामानों के बहकाने से मुसलमानों ने लुट मचा ही थी। परन्तु पुलिस ने उनको बचाने के लिये आयसमाजियों को पकड़ लिया है। भीयुत दस्तानेय प्रमद जी वर्काल भी मे साथ आये थे। आप इस मामले का ज्ञांन कर रहे थे।

मैं यादगिरी में सोरापुर गया। यहाँ पहले बेहर आत का राज्य था। यह एक पहाड़ पर बना हुआ है। स्वास्थ की दृष्टि से सर्वोत्तम जगह है। मैनेट सिप-गम्यष जी का अतिथि बना। नेट जी ने समाज मन्दिर के लिये जगम देने का मुझे बखन दिया था। स्थानाय समी हिन्दु वर्कालों से मिलकर उन्हें आर्यसमाज का मेम्बर बनाया।

सोरापुर के मन्त्री रमणा जी हैं। मैंने रंगमेट म में प्रचार किया। यह वस्ती जुगुहरी का है। सब मुन कर गुजारा करने है। इन म आर्यसमाज का बहुत उत्साह है। इनका संगठन तथा उत्साह सरादनीय है। परन्तु स्थान म मुसलमान भी काफी आय थे। यह प्रथम देनात था जहाँ मुसलमान भाषण में विचार दिये। सोरापुर में मन्त्रीजी ने मकान पर बुलाकर हवन भी कराया। इस से पुलिस सकल इत्येक्टर बिड़ गया। उनमे मन्त्रा को बुलाकर बहाने में डींटा। "तुम सड़क पर हवन करते थे यहाँ दंगा हागा—तो, तुम पर जिम्मेवारी रहेगा।" अधिकारों डरा धमका कर कार्य में बाधा डालने की कोशिश करने है। जब डरान से काम नहीं चलना तो, चुप हीकर हुआजत दे देने है। ऊँट मुकदमों में फंसा दने है। लोग (मुसलमान) अपना मुकदमा जीतने क लिये दूसरों को आर्यसमाजी कह देने हैं। तब विचार डर कर इन्कार करता है, कि मैं आर्य समाजी नहीं हूँ। परन्तु सन्देह जाने पर, ना मुकदमा हार ही जाता है। सोरापुर में म रामचूर पहुँचा। यहाँ सात दिन किराँ जाति के लोगों ने पचान कराया। यहाँ हिन्दुओं की एक जाति हीनी है.. जो रंगारी-शिमपी वा अयनार जात्रिय कहलानी है। इनका पुस्तेनीयेशा रमना बुनना था किन्तु आजकल दर्जी का है। पायः ६० फीसदी अब भी दर्जी है। इन लोगों में बहुत अच्छा प्रचार हुआ। राजपूत एवं कस्ताव लोगों ने भी प्रचार कराया। ये सब अपने के आर्यत्वमिथि लिखायेंगे। भाषा हिन्दी लिखायेंगे। यहाँ मैंने साथ हर समय दो पुलिस रहते थे। ४, ५ ( C. I. D ) भी रहती थी। बाबजूद इन कठिनायों के मैंने जिद्द में बहुत काम कर डाला। रियासत में कौंरे अधिकारी बहुत

मंग करने हैं। प्रायः सर्वत्र कोरि न कोरि भाष्य का मोड करने वाला रहता ही है। नामादि प्रायः उपदेशको मे ही पूजने हैं। अगो सर्वत्र मे इतना ही लिखता हूँ।

## कालिदास—जयन्तो

आगामी ३१ अक्टूबर को भारत के सभी भागों में महाकवि कालिदास की जयन्ती समारोह पूर्वक मनाने की तैयारियाँ हो रही हैं। यह बड़े हब का विषय है कि अब हमने धीरे-२ अपने रसों को पक्ष्यानाम प्रारम्भ कर दिया है। जिस महाकविने अग्नीश्रमस-साधना के विषयमें हमारा मस्तिष्क ऊँचा किया है उल्लेख हमने अभी तक नहीं पक्ष्यानाम था यही आश्चर्य को बात है। अविष्य में यदि इसी प्रकार हम अपने पुराने कलाकारों की प्रतिष्ठा करते रहेंगे तो शीघ्र ही वह दिन आवेगा जबकि हमारे साहित्य का भण्डार भर जायगा।

राष्ट्रीय दृष्टि से कालिदास का महत्व हमारे लिये बहुत अधिक है। भारत का मदनक संसार में हिमालय के कारुण्य स्वनः ही सर्वोच्च है। उस पर भी कवि कालिदास के अमर काव्यों ने और अधिक उन्नत प्रवाहित करने वाले उपनिषदों ने आरंभ खंड लगा दिये हैं जिसका जोड़ का साहित्य, संसार भर में मिलना दुर्लभ है। इस कवि पुंज में अपने उत्तराधिकार में हमें अग्निमान शाकुन्तल, मेघदूत, कुमार सम्भव आदि जिन विभूति-रूप ग्रन्थों का दान किया है उनका कामल पाणिप-फलपत्रों—हीरा, मोतियों—द्वारा नहीं आंका जा सकता। यदि ये प्रणय-रत्न विदेशों में न पहुँच जाते तो आज भारत की संस्कृति और सभ्यता का वह उजबल पृष्ठ दुनियाँ की आंखों के सामने नहीं था सकता था।

अप्य है कवि कालिदास और अप्य है उनका कला-नालियः। जिसके द्वारा संसार के सर्वोच्च कवि और विद्वान् सभ्य अधिक प्रभावित हो सके हैं।

आज उनका स्मृति दिवस मनाने हुए हम सबको विविध प्रकार के प्रतिभा सम्मेलनों द्वारा इस दिवस को उत्कृष्ट बनाना चाहिये।

## कविता

[ श्री चान्द्र ]

सुकको सुक रही है कविता।  
पूर्व दिशा में उचित देखकर वह स्वराज्य का मविता  
सुकको सुक रही है कविता।

शोच चुकी है काली रात,  
हुआ आज भारत में देसा, नव विभाज्य अचरान।

शोच चुकी है काली रात।  
बह है हर्ष-वप को देसा,  
आधा, हो उम्पूक आज हम दिज मिल खेले खेला।

यह है हर्ष-वप को देसा।  
हिन्दू हों या हों ईसाई  
या हों मुसलमान, सब भारतवर्षी भाई भाई।

हिन्दू हों या हों ईसाई।  
बह गन सत्याग्रह का साक,  
जिसमें हम सब ने मिलकर थो रोपी राष्ट्र पनाम,  
स्मरण कराता रहे प्रतिपक्ष हमको भारत माँ का।

बह गन सत्याग्रह का साक।

## कन्या गुरुकुल देहरादून

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून का ३१वाँ वार्षिकोत्सव इस वर्ष दिसम्बर में बड़े विभो की सुधियों में बड़े समारोह पूर्वक मनाया जायगा। इस उत्सव पर देश के अनेक प्रसिद्ध नेता पुरुष सम्पादी, विद्वान् उपदेशक तथा विद्युवी महिलाएँ पधारेगी और वंच बाकी, सरस्वती तथा राष्ट्रमाता सम्मेलन, अन्तर्महाविद्यालय वादविवाद संगीत और माता सम्मेलन आदि में प्रधान पद स्वीकार कर धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक विषयों पर सार-गांभित एवं शिक्षाप्रद भाष्य में उन्नता को चर्चा-तुवाल का-वेने। कन्याएँ भी विभिन्न विषयों पर विचार-पहेली और व्याख्यान देगी, संस्कृत तथा हिन्दी में वादविवाद करेगी।

नवस्नानिकाओं का दोहागत भाष्य और नवीन प्रविष्ट प्रजाचारिणियों का वेदात्मक संस्कार भी इस अवसर पर होगा जो कि गुरुकुल उत्सव के बड़े महत्व पूर्ण अंग हैं। अतएव गुरुकुल शिक्षा प्रबालों के पक्षपातियों तथा जी शिक्षा के प्रेमियों को इस अवसर पर पधार कर उत्सव को शोभा बढाना चाहिये।

चूँकि इस समय गुरुकुल जालम में कन्याओं की संख्या २५० है अतः स्वाभाविक के कारण इस वर्ष थोड़ी सा कन्याएँ ही जा सकेंगी। जिन सज्जनों को अपनी कन्याएँ प्रविष्ट करानी हों वे प्रवेश पत्र प्रत्यापार कर्तव्य भर कर २० नवम्बर से पूर्व कन्या गुरुकुल कार्यालय को भेज दें।

उत्सव पर पधारने वाले सज्जनों के रहने इ.दि का प्रबंध कन्या गुरुकुल की ओर से किया जायेगा। जो अज्ञात अपने पृथक तम्बू लगाना चाहें उन्हें पूर्व सूचना भेज देनी चाहिये, ताकि उस समय कठनाई न हो।

## गुरुकुल समाचार

सत्री प्रशिक्षणार्थी यात्राओं तथा अपने २ वर्षों से लड़काल गुरुकुल में आगये हैं। महाविद्यालय और विद्यालय दोनों विभागों की पदाचार्य नियमानुसार प्रारम्भ हो गई है। श्री आचार्य जी विद्यालय की बैठक में सम्मिलित होने के लिये गये थे अब लौट आये हैं। इस बार विद्यालय में कई अभ्यन्त महाभूषण विषयों पर विचार किया गया।

चतुर्दश श्रेणी के दो उत्साह छात्र ३० सत्रीश और ३० विद्यार्थक इन वर्ष यात्राओं में सारंगकिला पर ही संयुक्त-प्रान विहार तथा बंगल के मुख्य नगरी व प्रानों का अवलोकन करने हुए कलकत्ते तक गये, इन्होंने लगभग २५०० मील का मार्ग केंदल एक प्रहाने = दिन में ही समाप्त किया। ये प्रशिक्षणार्थी युवक के आभ्यासक कथों में भी इसी प्रकार बड़े उत्साहपूर्वक के साथ कार्य करते हैं, ये क्रमशः कुलमन्त्री और कौशिकी भी हैं।

## गुरुकुल में शोक सभा

सब कुलवासियों की यह शोक सभा गुरुकुल के भूत-पूर्व आचार्य, मुख्यविद्यार्थक व उपाध्याय तथा कोलहापुर कानेज के प्रिंसिपल प्रो० बालकृष्ण जी P. H. D. के आत्मात्मिक वैश्वानर पर आरम्भ शोक अनुभव करती हैं और परमात्मा से उनकी विद्यगत आत्मा के लिये सहृदयता की प्रार्थना करती हुई उनके शोक संतप्त परिवार के साथ गहरी समावेदना प्रकट करती हैं।

## गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

विजया दशमी का उत्सव गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में बहुत धूम-धाम से मनाया गया। चार दिन तक हाकी फुटबाल तथा बाली बाल आदि खेलों के सामुप्य होले रहे। देसी खेलें भी होनी रही। अखिल दिन श्री स्वामी रामचन्द्र जी महाराज की अर्पणना में एक सभा हुई। सभा में गुरुकुल का कूडो के महाविद्यालय से आये हुए विद्यार्थियों ने भी भाग लिया। प्रशिक्षणार्थियों तथा अध्यापकों के श्री महाया-पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी के जीवन पर आच्य तथा कविताएँ हुईं। सभा के अन्त में देसी खेलों में विजयी प्रशिक्षणार्थियों को श्री स्वामी रामानन्द जी ने पारितोषिक विलास किये। तत्पश्चात् सबका सम्मिलित सहयोग हुआ।

अगले दिन प्रशिक्षणार्थियों की प्रार्थना पर भारत के प्रसिद्ध कवि श्री सूर्यकान्त जी त्रिपाठी "निराला" तथा श्री सोहनलाल जी त्रिवेदी गुरुकुल में पजारे। गुरुकुल की छात्र ने श्री निराला जी को अभिनन्दन-पत्र भेद किया गया। तत्पश्चात् एक कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें यहां के प्रशिक्षणार्थियों ने तथा दोनों मा व कवियों ने अपने २ कविताएँ सुनाईं: श्री निराला जी तथा श्री सोहनलाल जी त्रिवेदी की कविताएँ बहू-पसंद की गईं।

## गुरुकुल कुरुक्षेत्र

दीर्घवकाश के बाद १ अक्टूबर को नियमानुसार गुरुकुल खुल गया है। अक्काश के दिनों में छात्रे प्रशिक्षणार्थी गतवर्षों की तरह पक्का (नाहन) में रहे। बड़े प्रशिक्षणार्थी इस वर्ष यात्राएँ कहीं न जाकर गुरुकुल में ही रहे।

२ अक्टूबर को कुल में गांधी जयन्ती बड़ी धूम धाम से मनाई गई। प्रातः प्रपान करी के बाद राष्ट्रीय पताका का अभिवादन किया गया। और सायंकाल सभा में महात्मा जी के जीवन पर विविध ज्ञानवाणियों के तथा अध्यापकों के व्याख्यान हुए।

दानवीर श्री जुगल किशोर जो बिड़ला ने एक व्यायाम शिल्क गुरुकुल में अपनी ओर से रचना स्विकार कर लिया है और उसका ६ मास का वेतन भेज दिया है। इसके लिय सब कुलवासी सेठ जी का धन्यवाद करते हैं।

## ब्रमाही रिपोर्ट गुरुकुल कमालिया

इस समय गुरुकुल के सब प्रशिक्षणार्थी बिलकुल अन्ध प्रसन्न हैं। गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर ६ नये प्रशिक्षणार्थी प्रवेश हुए थे जो प्रशिक्षणार्थी उस समय न पहुंच सके थे उन को दालला के लिए समय दिया गया था। पांच नये ३० में गुरुकुल में प्रवेश किया है। इस समय भी कई सज्जनों के साथ पत्र व्यवहार हो रहा है दो चार बच्चों के और आने की आशा की जाती है।

पिड़ली ब्रमाही में भावणी जन्माष्टमी, विजयादशमी के त्योहार बड़े शान से मनाये गये थे।

३० को गुरुकुल की वढाई के अतिरिक्त प्रतिदिन गद-का, लाठी, लेजिम व बूसरी कई खेलें व आसन सिखलाये जाने हैं इसके लिये एक लाठी मास्टर रखा हुआ है। ३० की मेहत्त में इस ब्रमाही में आस नौर पर तरकीबी की हैं। कई प्रशिक्षणार्थी १०, १० पाँच बडे हैं। कमालिया का जलवायु बहुत उत्तम है। प्रशिक्षणार्थियों को भोजन में हफक खाने की चीजे पूरे नियम में और मौसमानुसार दी जानी है इसलिए रोगी बहुत ही कम होते हैं। हमें इस बात के जनलाने में प्रसन्न है कि १२ वर्ष के काफी समय में केवल दो प्रशिक्षणार्थी टार्काफूड से रोगी हुए है मलेरिया यहां बहुत कम होता है।

पढाई के लिए कविल अध्यापक लगाये हुए हैं जो जो प्रशिक्षणार्थी को प्रेम व लगन से पढाई करवाते हैं।

## स्वस्थ समाचार

३० मनमोहन १ अं० चोद, ३० जगदीश ३ अं० चोद, ३० देवदत्त ३ अं० चोद, ३० आकृष्ण ३ अं० Mump, ३० प्रेमनिधि ३ अं० मलेरिया, श्यामस्वरुप २ अं० मले०, ३० कर्मेन्द्र २ अं० मलेरिया, ३० प्रेमपाल ५ अं० मलेरिया, ३० अश्वभूति १३ अं० मलेरिया, ३० विमलचन्द्र १३ अं० मलेरिया। गत कालाहू ये प्रशिक्षणार्थी रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं।



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—सा.हृत्परब्रह्म हरिवंश वेंदासलंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार १७ कार्तिक १९६७; १ नवम्बर १९४०

[ संख्या २६ ]

## वास्तविक दीपावलि

( ने० श्री अशोक कुमार जी )

रामायण की जिस कथा को लेकर हिन्दुधर्माज में प्रथमवार जिस दीपावलि का प्रारम्भ हुआ था-तब से लेकर आज तक प्रतिवर्ष यही दीपावलि मनाई जाती है लेकिन अब और तब में कि नाअनर है। आज भी दीवाली अपनी उस मनमोहन शान से, निराश्री ब्रह्मा से आती है लेकिन अपनी बिना पर दीपकों की कालिमा लिये निराशा, भरे भाव के साथ लौट आती है। फिर अगले वर्ष शीक उठी सन्धय इसका आगमन होता है नयी आशा के साथ लेकिन फिर काशी हाथो लौट जाना पड़ता है। अगले वर्ष के लिये फिर यही चक्कर है। इस प्रकार न मासूम कितने चक्कर लगा चुक-कितनी बार दीपमालिका अपना, जाली प्याला लिये चली गई लेकिन हम यहाँ के यहाँ है न एक कदम आगे, न एक कदम पीछे। दीपमालिका का पवित्र संदेश जो इस अवसर पर सर्वकार का सर्वनाश करने वाले दीपकों का आत्मा में प्रतिबिम्बित होता है हमारे बहरे कानों में सुनाई नहीं पड़ता। यह पवित्र दृश्य जिन में आत्म-याग, य जनता जन-सेवा की सेवा का सूक्ष्म भाव दिखाई देता है हमारा। आँकों को दिखाई नहीं देना। क्या यही दीपावलि का संदेश है? भगवान राम के गुणगान करने वाले इन कथोद्गीतों का क्या यही कर्म है?

कहने हैं कि इन दिन राम और भरत का मिलन हुआ था-अब कि वे १५ वर्ष के बाद रावण का सर्वनाश कर सीता के साथ अयोध्या में लौटे थे। संभव है कि यह कथन सत्य हो और इस अवसर पर अयोध्यानिवासियों में रूपने राज्य के अविच्छाद देव के स्वागत में भी के दिव्य जलिये हो जिससे सारी अयोध्यामगरी देदीप्यमान हो उठी हो। लेकिन यदि इस पौराणिक कथानक को छोड़ दिया जाय और इस पक्ष के आध्यात्मिक अर्थ को लिया जाय तो इसका वास्तविक उद्देश्य हमारे सामने आ सकता है। रामायण के बर्णित सीता और रावण इन दो शक्तियों का विशेष मतलब है जिसे भूल से व्यक्तियों का नाम समझ लिया गया है। सीता शब्द उन पवित्र

भावनाओं का, वैश्वीय शक्तियों का नाम है जो मनुष्य में परमात्मा ने उत्पन्न की है जिनको सम्यक्तया समझने से व्यक्ति इस जीवन और मरण के अंगुठी से छूट कर पर ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है और रावण भी उन पवित्र शक्तियों का, आसुरी भावनाओं का सूक्ष्म है जो समय २ पर व्यक्ति के सतत जागरूक न रहने से उसके शुद्ध अन्तःस्थल पर आकर अपना अधिकार जमा लेती हैं और व्यक्ति को अपनी उंगली के इशारे पर नचाती हैं इनका रूप इतना सुन्दर एवं आकर्षक होता है कि प्राणी सोचते समझते हुए भी इनकी आरंभित चला जाता है। जिस पुनःहृते मृग आदि का जिक्र हम पढ़ते हैं वे सब इसी के ही रूप हैं। हाँ तो-अपने विद्यार्थी जीवन में रामचन्द्र जी इस सीता रूपी पवित्र भावनाओं की धरोहर को अच्छी तरह संभाले हुए थे लेकिन अवसर देसा हुआ कि उनके आँसू रूपकते ही रावण कृपी शक्ति ने उन पर आक्रमण किया उनकी इस पवित्र धरोहर को कब्जे में कर लिया। रामचन्द्र जी लुट गये, जिस शक्ति को उन्होंने इतने प्रयत्न से संभाली किवा था यह शक्ति उनके देह न २ शत्रु के हाथों में चली गई। पिता दशरथ की आका हुई, जाओ! जबतक पूर्ण परिपक्व न हो जाओ तब तक मत लौटना। रामचन्द्र को घने जंगलों में श्रेष्ठ मुनियों के पास जाना पड़ा और तब उन्होंने कठोर तप किया जिससे पूर्य होने में उन्हें पूरे १५ वर्ष लगे। इन समय में उन्होंने अपनी सब शक्तियों पर एकाधिपत्य कर लिया। रावण कृपी आसुरी भावनाओं का नाश किया और पुनः सीता कृपी पवित्र भावनाओं की धरोहर लिये वे अपने घर लौट आये। अस्तु—इस प्रकार से इस कथानक का हमारे जीवन से बहुत निकट सम्पर्क हो जाता है। हम भी जब बाध्यकाल में आओ थे, अपनी हमारी आँसे पूरे तरह खुली भी न थी रावण कृपी तुष्ट शक्तियों ने हमारी सीता कृपी पवित्र भावनाओं के लज्जाने को लुट लिया नभी हम लुटे हुए बालकों के संरक्षकों ने हमें हमारे पूज्य गुरुकुलों के पास भेज दिया, उस लुटी हुई शक्ति के संभारणों। प्रति वर्ष चातो हुई यह दीवाली ( शेष पृष्ठ ३ पर )

# ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान

( से० श्री बभनेवासी )

[ गताङ्क से आगे ]

स्वतन्त्रशास्त्रों में ब्रह्मचर्यानुष्ठान के अनेकानेक नियमों का विवेचन किया गया है। उन सबका निष्कर्ष तो यही निकलता है कि जो कामना, विचार या क्रिया मनुष्य के शरीर मन, प्राण और आत्मा की स्वाभाविक उन्नति में बाधक है, अथवा जा विषय ( रूप-रस-गन्ध-शब्द और स्पर्श ) इनकी फँसावट में डालकर इनमें विकार उत्पन्न करके इनके पतन का कारण होते हैं उनमें सतकता से बचाया जाय। यों एक गुरु है जिसमें आबालशूद्र ब्रह्मचर्याचरण का काम उठा सकता है। महाराज मनु जो न अपने भ्रम शास्त्र में जिन २ विषयाद् वस्तुओं को वर्जित किया है उनमें अन्धकार रहना ब्रह्मचर्य की इच्छा करने वाले के लिये अत्यन्त आवश्यक है। भागेच्छा ॥ स्वध्या परिध्याग के बिना ब्रह्मचर्याश्रम कर्षी समुद्र से पार होना सम्भव नहीं। जितना भी हा सफे क मादि वाननाश्री को उपर कर देने वाले मियुन भाव को द थकप न, शब्द अथ व में तथा व्यवहार-विचार में न आने देने में ब्रह्मचर्य सुरक्षित रह सकता है। यह सब संयम, निर्गुण और शम दम नाम से कहे जाते हैं। भोजनसाच्छादन म. स्नान-स्नान, शयन-जागरण में व्यवहार व्यायामादि म वेला का उल्लेखन करना ( आनन्दयित होना ) तथा आतंकर करना इत्याचर्य की रक्षा न विनवत् है। इन्द्रियों को चाहे यह जातेन्द्रियां हो या कर्मेंन्द्रियां हो और उन्मत्तक होने से म को भी हटव करने बाहर ले जान वाले विषया में रोकना रहे, ऐसा करने से उन्नत पारण द्वारा जो केन थी... मनोजय और यशेन्द्रियत्व का निधि प्राप्त होता है वह नाथक का प्राप्त हागी। अथ नृवह ब्रह्मविद्या और ज्ञान विज्ञान के ग्रहण में समर्थ भेषा ही प्राप्त होगा। इसने आधिक ऊँचा उठने के लिये या-गङ्गा-नुष्ठान द्वारा शरीरन्द्रिय मन प्राण को महत्त पोषा देने हुआ शुद्ध अध्यात्म विद्याओं का भी। सखि करने में सहाय हो सकता है।

ब्रह्मचर्य परम बल... ब्रह्मचर्य महान बल है। मनुष्य के शरीर इन्द्रिय म-प्राण और आत्मा तक के बल का दूबल है। समस्त यज्ञों को प्राप्त कराने वाला ब्रह्मचर्य है इस कारण ब्रह्मचर्य को परम बल कहा है। यह दल पर-मादि का है क्योंकि यह मूल, सबसे उन्नत आध्यात्मिक बल के रूप में भी प्रकट होता है।

उपनिषद् में ब्रह्म का अर्थ नाम न यद् किया गया है। 'अब ब्रह्म' 'अब ब्रह्मोः युगासीन'। अब ब्रह्म है, अब की ब्रह्म में समान उपासना करना चाहिये, इत्यादि। अब ब्रह्म का द्रव्यधन-व्यर्थत्व के मोर पर भी कहा गया है। इसमें यह विदित होता है कि ब्रह्मचर्या की

परमदेव प्रभु का अन्न बनकर रहना है-अपने समस्त आत्माभाव विषयों तक को ईश्वर का अन्न समझकर स्वाहाह्वानि का समपर्ण सुखि में प्रस्तुत करने रहना है। परम प्रभु बड़े अन्नाद हैं इस लिये ब्रह्मचारी अन्न प्रकृत हविष्यान्न अवश्य ग्रहण करेंगे ऐसा भाव हृदय में धारण कर उनकी परिचर्या में प्रस्तुत रहना है। इसका एक और मनोदंजक अर्थ भी हृदय में घटना चाहिये कि ईश्वरोंय बल के लिये तुष से ब्रह्माण्ड पर्यन्त और स्वयं ब्रह्मदेव भी जो इसमें 'ओत मोत' है अन्न रूप में प्राप्त हुए हैं। इन सबको भक्षण कर ('चर' गति भक्षणयोः) अर्थात् अपना स्वाध विषय बनाकर रत्ननेमें उसका ब्रह्मचर्य पूरा होगा। ब्रह्म तथा ब्रह्माण्डइत्ये पदार्थों को आत्मसात् करना उनका जीवनीय-योग डोक २ बृक लेना ब्रह्मचर्य का विश्व होना चाहिये।

अन्न के लिये चलना, धनसम्पदा के लिये सुधम और कीशाल पूर्वक आचरण करना या ब्रह्मचर्य का एक अर्थ है। अन्न को रुचिध्यापार द्वारा प्राप्त करना फिर ब्रह्मचर्या के अनुसार अर्थात् करना ब्रह्मचर्य का धोतक है। "ब्रह्म अन्न तत्संस्थि-र्य यत्प्राग्भमादिकं कृत्वाद्यत्तं तद्ब्रह्म-चर्यम्" इस प्रकार नाना अन्नो का उत्पादन-व्ययोजन और एक भक्षणदिक तक सकल किया कलाप ब्रह्मचर्य नाम से पुकरा जान को योग्य बना रहना है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली म-द्विक काल से आरम्भक ब्रह्मचर्य का शिक्षा का आधार माना गया है। गुरु शिष्य के सम्बन्ध से लेकर आत्मन वासना के व्यापार तक सभी चीजों में ब्रह्मचर्य का वायुमण्डल निवास करने पर ध्यान रक्षना गया है। मनुष्य-याद् ब्रह्मचर्य का सुप्रसन्न आत्म गुरुकुल-अश्री ० रूप में हा तो इसका साथ अनान स्वयं शुक लक्ष्य विषयव्यापार होकर ही रहगा। ब्रह्मचारी की आत्मा को परमात्मा और साथ ही साथ चत्मात्मा के लिये प्रस्तुत और समर्पण करना है इसलिये इस अथका ( ब्रह्मचर्याश्रम में) आत्मा और आत्मा के बीच देहेन्द्रिय मन-बुद्धि-मादी को स्वमिध-मेलन-अम-तपत्या द्वारा दृढ़ बनाना और अमृत यानि म निवास के द्वारा दल पु-वर्षा बढ़ाना आवश्यक है। यदि जीवन के इन समर्पणक प्रस ता में ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य नियमों के अनुष्ठान में चुकने और परिश्रितियों के वश में आकर वृत्तात्म्य से आलस्य प्रमाद करेंगे तो यह सर्वोत्थ रूप संसार के सभी लोगों का राम शाप, ब्रह्मचर्य कपो ब्रह्माल कमी नहीं प्राप्त होगा। नव यह हमारा जो है, समान और संसार इस के बिना इस प्रकार का हा जायगा जिस प्रकार कि सूर्य के बिना समस्त प्रा-वृत्त मण्डल, आ-वर्ष के बिना समस्त गुरुकुल, राजा के बिना समस्त प्रजा और शरीरमन्वत के बिना मानवीय काया। इसलिये ही इस अमृतुत गुरु देने वाले-स्वर्गायवत् संज्ञावन रस की प्राप्ति-रक्षा-बुद्धि और उन्नतम उपयोग के लिये निरन्तर यज्ञ शील होना चाहिये।



## श्री० बालकृष्ण जी का परिचय

[ श्री भिक्षोर सिंह चोपरा ]

श्री० बालकृष्ण जी का जन्म सन् १८८२ में मुल्तान नगर में एक नातिशय सफल परिवार में हुआ था। उनके पिता उन्हें उच्च शिक्षा देने का सर्व्व बड़ा प्रयत्न नहीं कर सकने थे इसी लिए उन्हें एक स्थानीय दूर्जी के यहाँ शशिर्ष रूप में कार्य सीखने के लिए नियुक्त कर दिया गया। परन्तु बालक बालकृष्ण एक महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही इस लोक में भेजे गये थे। उच्च शिक्षा की उकड़ चक्का ने उन्हें दूर्जी का काम छोड़ने के लिए प्रेरित किया और वे अद्भ्य उस्ताद के साथ अध्ययन में लग गये। D. A. V. कॉलेज लाहौर में सन् १९०८ में अपनी शिक्षा समाप्त करके, छात्रसुलक्षों की सहायता में उन्होंने पञ्जाब विश्वविद्यालय में गवर्नमेंट कॉलेज में इतिहास के M. A. की उपाधि प्राप्त की। इस परीक्षा में वे पञ्जाब विश्वविद्यालय में सर्व्व प्रथम आये।

इस शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के साथ साथ वे स्थानीय आर्य समाज के कामों में भी अधिक क्रियात्मक भाग लेने लगे। उनकी बोधि शक्ति एवं आर्य समाज में आध्यात्मिक गन्ध में शिक्षा के क्षेत्र में उनके लिए मार्ग संशोधन का कार्य किया और वे गुरुकुल कांगड़ा (हरद्वार) में कर्मशाला उपाध्याय, उपाचार्य, आचार्य और आचार्य में मुख्याधिष्ठाना के पद पर नियुक्त हुए और अपनी अग्रविद्यित योग्यता के चल पर वे आर्य समाज के एक प्रमुख नेता बन गये।

बाद में वे इन्वैरेण्ड भी गये और सन् १९२२ में लखन विश्वविद्यालय में अध्यापक के पौ. एच. डी की उपाधि प्राप्त की। वहाँ से लौट कर वे कोल्हापुर स्टेट (बाइसे प्रेसिडेन्सी) में राजराजकालिज के प्रिन्सिपल नियुक्त हुए। उस उच्चपद पर लगभग, २ वर्ष तक कार्य करने रहे और १९३० के अक्टूबर मास की २१ वी तिथि को मधुस गत में उनकी महान् आत्मा इस लम्बे संसार को छोड़ कर स्वर्ग निधारी।

श्री० बालकृष्ण जी का कर्मत जीवन हमारे लिये एक आदर्श उपलब्ध करता है। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप कोल्हापुर रियासत बोर्डे यूनिवर्सिटी में एक मुख्य शिक्षा केन्द्र बन गया था। आज राजागण कॉलेज में एक बड़ी तादाद में आर्य समाज और साहित्य में कार्य व्यक्त न्ययार होकर निकल रहे हैं। उन्होंने कोल्हापुर में एक लौकिक एवं ट्रैनिङ्ग कॉलेज की भी स्थापना का यो आर एक पृथक् विश्वविद्यालय स्थापित करने के विचार में वहाँ एक मैट्रिकुलेशन कॉलेज, कोलेज की भी कोशिश कर रहे थे। वे बम्बई विश्वविद्यालय के एक योग्य सदस्य थे। इतिहास व आर्यशास्त्र, राजतंत्रि, संस्कृत, हिन्दी और मराठी के उत्तम लेखक थे। उनकी अनेक पुस्तक पाठ्य-पुस्तकों के रूप में आर्य यूनिवर्सिटी में पढ़ाई जाती हैं।

सन् १९३३ में अम्बेदाट्टोय सर्व्व धर्म सङ्गठन में आर्य समाज के प्रतिनिधि बनकर उपस्थित होने के लिये अमेरिका भी गये। शूयाक, शिकागो, लखन और अन्य बड़े शहरों की समितियों के नवावधान में विद्ये

गये उनके सार्वजनिक व्याख्यान अधिक प्रशंसा एवं आशीर्वात के विषय बने।

उन्होंने कोल्हापुर में एक आर्य समाज और गुरुकुल भी स्थापित किया। आरिष्टी दम तक उन्होंने हिन्दी का प्रचार करते हुए आर्य समाज की सेवा की। अम्बेदाट्टर और मुक्ति के सम्बन्ध में उनका किया हुआ महान् कार्य सम्पूर्ण महाराष्ट्र में विख्यात है। कोल्हापुर नरेश और बड़ीदा नरेश रायकवाड़ उनका बड़ा सम्मान करते थे और उन्हें अपने गुरु मानते थे। वे अपने सम्बन्ध में अपने वाले सब व्यक्तियों के आदर और भेद के पात्र थे। ५८ साल की अवस्था में उनके आसामयिक देहावसान में कोल्हापुर के शिक्षा विभाग और आर्य समाज को बड़ी शक्ति प्रदुकी है। वे आज अपने बड़े परिवार और हम सब को दुःखी करके परलोक सिंघार चुके हैं।

( पृष्ठ १ का शेष )

हम हमारे उन कल्पय की याद दिलाता हूँ। दीपमालिका का प्रकाशन होता हुआ एक २ दोपक अपने टिम टिम के मदगीन में यही कहता है कि मोने प्राणी! हमारे इस प्रकाश में देख लेने अन्तस्थल का अर्थकार दूर हुआ है या नहीं, आर्य स्वो और इस प्रकाश के सहारे आगे बढ़ने का प्रयत्न कर। काश! कि आज का भारतीय समाज इस संदेश को नून पाता।

दीपमालिका का त्योहार मिलन का त्योहार है, आज क दिन राम और भरत, एक मां के लडुके बड़े-बुरों के बाद मिले थे। आज भारत मां के करोड़ों पुत्र जो उनको एक ही स्तन्य दुग्धपान करने हे- एक ही हाथ से मधुर-अन्न खाने हे-उनको क्षुब्धी पर-नेल कूद कर अपने बड़े हुए हे-आज एक दूसरे में पृथक् अपने अंडे उठाये निरक्ष भागों पर आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। जो मार्ग एक को इष्ट है-वह दूसरे का श्रेय है। जिस मार्ग पर चल कर १ इयक्ति स्वन्नत, के मन्दिर पर पहुंचने का विचार रचना है दूसरा उसे अपने पक्ष की स्वन्नतना के लिए घानक समझता है। अचिंत लोभ, सांप्रदायिक धैरमन्य और ज्ञानि भेद इन सब ने मिल कर भारतीय आंगण को विरमय एवं विच्छेद पूर्ण बना दिया है। हिमाचल की जिन उन्मुंग शृंखल को से सभ्यता का प्रकाश निकल कर सुदूर पूर्व एवं पश्चिम में फैल गया था, आज उसां विम-चल के अधिवासियों की पवित्र भूमि में पश्चिमी सभ्यता का प्रकाश ध्यात हो रहा है। जो कभी शिक्षा और ज्ञान का आश्रय समझा जाता था आज उसी के माली कोश को भरने के लिये पश्चिमी ज्ञान की आश्रयकता होती है। हमारी प्रवनात की यह पाकाच्छ है। दीपमालिका के इस प्रकाश में-हमें साहय कि हम साध्याधिकना के इस अंधकार को मिटा कर अंधगान की सब प्रजा में विद्यार एक ही आस्था का साक्षात्कार करें और एक दूसरे के कन्धे में कन्या मिला हिन्दू और मुसलमान का भाव मिटा कर अपने देश को आजादा के लिये प्रयत्न करें। जिस दिन इस लम्बे की समक लिया जायगा-उस दिन हम सबके आशा में दीपमालिका मना रहे होंगे।

# गुरुकुल

१७ कार्तिकशुक्रवार १९६७

## प्रिन्सिपल बालकृष्ण जी

( श्री आचार्य चमरपद जी )

गुरुकुल में ११०२ अक्टूबर को कोल्हापुर में तार भया कि प्रिन्सिपल बालकृष्ण जी का देहावसान हो गया है। मुन कर दुःख छागया और कुछ आरव्य भ्रा हुआ। जिन का कि सम्बन्ध गुरुकुल में आचार्य और मुख्यअधिष्ठाता के रूप में था- एस पुरुष के देहावसान से दुःख होना तो स्वाभाविक ही था। परन्तु उनको आयु अभी इतनी अधिक नहीं थी इस लिये कुछ आरव्यं हुआ। परन्तु उन्हें दर्द का सीमाही थी-यह भी हम जानते थे।

इम शोक समाचार को सुन कर मुझे अपनी विद्यापीठ काल की बहुत सी बातें याद आगयीं क्योंकि मैं प्रो बालकृष्ण जी का ही विद्यार्थी था। श्री बालकृष्ण जी इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीति के उपाध्याय ( प्रोफेसर ) थे और मैं इसी विषय का विद्यार्थी था। अपने स्वाम विषय के उपाध्याय से विद्यार्थियों का कुछ विशेष सम्बन्ध हीमा ही है। एक बार योग सीम्बने की पुन में मैं गुरुकुल में भागने का मोच लिया था, उस समय प्रो बालकृष्ण जी का आनि महद्वयता पूर्ण व्यवहार भी था जिसके कारण मुझे रुक जाना पड़ा। ऐसी उनके प्रेम पूर्ण व्यवहार की कई बातें स्मरण आती हैं और ऐसे महानुभाव नहीं रहे हैं—यह याद करके कुछ व्यथा भी दानी है।

परन्तु श्री बालकृष्ण जी की मुख्य विशेषता यह थी कि उन में एक उत्तम बुद्ध और प्रतिभा थी। पढ़ने लिखने का इतना अधिक शौक था कि उसे व्यसन तक कहा जा सकता था। उनकी यही विशेषता थी—जिसने म्हुं गुरुकुल का आचार्य तक बनाया तथा गुरुकुल के बाद वे इंग्लैण्ड जाकर अर्थशास्त्र के पी. एच. डी. बने और कोल्हापुर के राजाराम कलेज के प्रिन्सिपल पद पर काम करने हुए अपना जीवन समाप्त किया। वे घर से गरीब थे और घर वालों का विचार था कि वे बुरी का काम करके अपना जीवन व्यतीत करें किन्तु थोड़ा ही पढ़ने पर उन की बुद्धि और प्रतिभा ने अपना रूप दिखाया और वे लगातार बजोका पा २ कर कालिज तक पढ़ते गये और एम. ए. की परीक्षा में पंजाब यूनिवर्सिटी में पहले आये। कलेज जीवन में ही वे आर्यसमाज की और आकृष्ट हो चुके थे और आर्यसमाज का काम करने लगे थे। साहीर आर्यसमाज के उम्मेद पर जब इतका पहला ही व्यवसाय

हुआ तो वह इतना पसन्द किया गया कि तब से वे एक वकाल के तौर पर भी प्रसिद्ध हागये। उनका डीलडौल भय था और स्वामी अदानन्त जी के बाद उन्हीं के विषय में कहा जा सकता है कि जब वे गले में पीला दुपट्टा डाल कर आचार्य की हैसियत से घूम रहे होते थे तो बहुत शोभायमान होते थे।

गुरुकुल में आकर उन्होंने संस्कृत का भी अध्ययन किया। अंग्रेजी के परिभाषिक शब्दों का जगह संस्कृत के परिभाषिक शब्द खोजने और बनाने में उनकी बहुत दिलचस्पी थी। पाठकों को शायद आश्चर्य हो कि उन्होंने 'अभिज्ञान श्यामला' नाम का पुस्तक लिखा जो जिसमें अभिज्ञान के मंत्रों का अर्थ और तत्पत्र बताया गया था। यह एक संस्कृत और वेद के अनुशासन तथा प्रेम की प्रकट करता है। मैं तो उन्होंने अल्प विषयों पर बहुत ही पुस्तकें लिखा है। शायद अर्थशास्त्र पर हिन्दी में एक विस्तृत पुस्तक उन्हीं के द्वारा सर्वे प्रथम लिखा गई है। स्कूलों के लिये भारतवर्ष के इतिहास का पुस्तक भी उन्होंने लिखा था।

इनके विशेष अध्ययन का इच्छा को वेल्सकर पंजाब आर्यप्रतिनिधि समाज के अग्रणी तरफ से बजोका देकर उन्हें इंग्लैण्ड पी० एच० डी० होने के लिये भेजा। इंग्लैण्ड से पी० एच० डी० होकर लौट आने पर वे पंजाब प्रतिनिधि सभा की 'कैसी सेवा में कई कार्यों से बड़ी लग सक और पाछे यू० पी० प्रतिनिधि द्वारा संचालित कोल्हापुर के राजाराम कलेज के प्रिन्सिपल हो गये। तब उन्होंने यह उचित समझा कि पंजाब प्रतिनिधिसभा के बजोके के रूपे को लोटां और धीमे २ करके उन्हीं वह सब रूपया लौटा दिया। इनकी विद्वता के कारण बम्बई प्रेसीडेन्सी में भी ये शिक्षाविज्ञ के तौर पर प्रसिद्ध होगये थे और अन्तिम दिनों में बम्बई यूनिवर्सिटी के सिण्डिकेट के मेम्बर भी थे। अपने गुरुकुल के एक भूतपूर्व आचार्य और मुख्यअधिष्ठाता के शोक में गुरुकुल में एक दिन विद्यालय और महाविद्यालय बन्द रहे। शोक समा में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ वह 'गुरुकुल' के गत अंकों छाप ही चुका है। आशा है, पंजाब के, आर्यजगत् तथा शिक्षा जगत् के अन्य सब परिचित वस्तु भी इस अवसर पर उनके स्मरण करने में और समवेदना प्रकट करने में हमारे साथ हांगे।

परमेश्वर विदाता आत्मा को शुभ गति प्रदान करे और उनके परिवार को शान्ति।

## आयुर्वेद परिषद् का जन्मोत्सव—

आयुर्वेद प्रेमियों को यह ज्ञान कर प्रसन्नता होगी कि आयुर्वेद महाविद्यालय की मुख्य सभा "आयुर्वेद परिषद्" का जन्मोत्सव १. नवम्बर ४० तदनुसार २६ कार्तिक को कुलभूमि में मनाये जाने का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर उसकी प्रमुख पत्रिका "आयुर्वेद" का भी एक सुन्दर सुदृढ़ चित्रिका "जन्मोत्सविका" निकालने का विचार किया गया है। विचारशील ढेरकों, आयुक्त कवियों एवं स्वदेशी-गायिकों का सहभाग अपेक्षित है।

# प्रेम

[ श्री निबन्धकार ]

प्रेम एक बहुत ही व्यापक बस्तु है। इसके विषय में यह कहना आधुनिक न होगी कि यह हमारे सारे जीवन में झोल झोल रहता है। केवल इसके रूप में भेद होता है। यही प्रेम बड़ों के प्रति अज्ञा, भक्ति व आदर का रूप धारण कर लेता है। छोटी के प्रति दया या करुणा में बदल जाता है। बराबर वालों के साथ यह प्रेम या सहानुभूति की शक्ति में रहता है। मनोवैज्ञानिक विज्ञान के अनुसार, भक्ति, प्रेम, और दया लोगों को ही सामाजिक प्रवृत्ति माना गया है। पर यदि इनको प्रेम का ही भिन्न २ अन्वेषण में एक रूप मान लें, तो कोई हर्ज नहीं। साधारण-व्ययण में, मनुष्य में बड़े के अनुकरण की या उनके प्रति आदर प्रवृत्ति देखा जानी है। (कशोरवस्त्रा या जवानी में, मनुष्य में अज्ञा का प्रेम) बंद जाता है। उनमें अहंभाव का जाना है। वह किसी का अनुकरण नहीं करना चाहता। अपनी न्यूनता समझती रहता है। इसी समय उसका अपने बराबर वालों से विशेष परिचय होता है। उनसे संस्पर्श करने की इच्छा होती है। इनके बाद टुक़ पे में मनुष्य में दया की प्रधानता होती है। वह किसी भी युवक को साहस और वीरता के कार्य की ओर प्रवृत्त होता हुआ देखकर खबरता है। वह उसे इन काम को करने से रोकने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में उसका कोई स्वार्थ नहीं, वह सिर्फ हित की भावना में ऐसा करता है। इसलिये यह इन तीनों को प्रेम का ही एक रूप मान लें तो कोई आपत्ति न होनी चाहिये। इसकी व्यापकता इसी ही नहीं, कि यह मनुष्य के सारे जीवन में व्याप्त है। यह केवल मनुष्यों में ही, अपितु अन्य प्राणियों में भी उपलब्ध होता है। पशुओं में भी एक प्रेमिका के लिये उसी प्रकार लड़ाई होता है, जिस प्रकार मनुष्यों में।

प्रेम एक सामाजिक प्रवृत्ति है। यह कहा जा चुका है, कि यदि इसको व्यापक अर्थों में लें, तो यह जन्म से लेकर मृत्यु तक कायम रहना है। पर इनको जिन अर्थों में साधारणतया प्रयुक्त किया जाता है, उन अर्थों में इन के प्रथम का समय १५ या १६ वर्ष की आयु है। इन समय में लेकर यह २५, ३० वर्ष की आयु तक किसी भी समय, या इसी बच में कई बार प्रकट हो सकता है। इसके बाद इसका इतना तीव्र रूप नहीं रहना।

यह एक स्वभाविक प्रवृत्ति है, यह कहने में ही यह समझ लेना चाहिये कि यह अत्यंत के जीवन में अनिवार्य रूप से जाना है। संसार का कोई भी व्यक्ति, इस प्रकार का नहीं हुआ जा सकता है, जिसने प्रेम का कभी भी अनुभव और अनुभव न किया हो।

प्रेम अज्ञान की है। प्रेम अज्ञान होना है; यह उक्ति मशहूर है। इस क्षेत्र में अज्ञान और बुरे का निर्णय

करना लगभग असंभव है। यद्यपि अज्ञान बुरे की कलौटी किसी भी क्षेत्र में निर्मित नहीं-हो सकती है, पर इस क्षेत्र में तो इसके लिये कोई नियम बनाने का प्रयत्न करना भी व्यर्थ ही होगा।

एक मनुष्य का किसी भी व्यक्ति से प्रेम हो सकता है। यह व्यक्ति श्रीरी की दृष्टि में, किन्ता ही कुकुर और गुलहीन तो, पर प्रेमी को संस्तर में इससे सुन्दर व्यक्ति की कल्पना भी नहीं हो सकती। प्रेमी-अपने कुकुर प्रेम पात्र के लिये जान देने को भी तैयार होता है, छोटे मोटे समर्पणों की बान ही क्या? उदाहरण के तौर पर एक प्रसिद्ध कहानी को ले सकते हैं। लेला और मजदूर की प्रेम कहानी कितने नहीं सुनी। यह जानकर आश्चर्य होगा कि लेला बड़ी ही कुकुर और बुरी थी। पर मजदूर उसी के लिये मरता था। कहने हैं- कि एक बार राजा ने कैस (मजदूर) को हुलाकर बहुत समझाया कि तू इस कुकुर औरत के पीछे क्यों पड़ा हुआ है। मैं तेरा एक अनुपम सुन्दरी से विवाह करा दूंगा। इस का उत्तर को कैस ने दिया है, वह प्यार देने योग्य है। कैस ने कहा कि राजा 'तू कैस नहीं है, अन्यथा ऐसी बात न कहता'। इसी भाव को प्रकट करने वाला कई उक्ति भी मशहूर हैं। यथा (१) जो जिनके दिन में मृष जाये वो बेहतर है सब में।

(२) संस्कृत के कविशास्त्री ओ हर्ष ने भी इसी भावों को प्रकट किया है :-

चिद्रमज्ज चित्तुपरिपत यसैःस्विहाय वलभूरुसखे ।  
यानं क.विद्ययास्तानिकङ्क, संवसा कान्तितयनहिंसितम् ॥

(३) मुझ ही न जाने कहा, चाहे जहाँ मान लो।  
मन अपना है, और मानना भी अपना।

(४) पिपावुता शान्ति सुनिं वारिषा न जानु दुग्धा-  
म्यमुनोऽधकादपि ।

(५) कमलकर्म निन्दति कामनेषुः कमलकः कष्ट-  
कनस्पदस्तम् । प्रीती तयोरिच्छ मुञ्जेः समायां  
मध्यस्तानेकतरोपहासः ॥

प्रेम का कारण आकर्षण होता है। यह आकर्षण दो प्रकार हुआ करता है। एक सामाजिक आकर्षण, और दूसरा प्रास आकर्षण। प्रथम का दूसरा नाम Love at first sight है। इसकी दो तरह से व्याख्या की जाती है।

एक व्याख्या तीरस्थ विद्वान् करते हैं, उनका कहना है कि हम इस जीवन में देखते हैं कि मनुष्यों में सहानुभूति, उपकारादि से प्रेम हो जाता है। इसलिये First sight Love को यह समझना चाहिये कि यह ही व्यक्तियों के पिछले जन्म के सहवास या किसी अन्य सम्बन्ध का परिणाम है।

प्राधान्य विद्वान् पुनःजन्म को पूर्वतया नहीं मानते। अतः उनका कहना है कि इसका कारण यह है कि कई व्यक्ति सामाजिक तौर पर आकर्षक होते हैं। पर यह व्याख्या अपूर्वी है। यदि कई व्यक्ति सामाजिक तौर पर आकर्षक होते हैं, तो उनके प्रति सब क्यों आहूह नहीं होते? पर हम इस विषय में नहीं पढ़ते कि इन दोनों में से कौनसा

निष्ठात्म (Theory) ठीक है। यह सर्वसम्मत है कि स्वाभाविक आकर्षण भी होता है।

इस आकर्षण की विशेषता नहीं की जा सकती। यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक अपने प्रेमपात्र को किस विशेष गुण पर मुग्ध है, बस इनका ही कहा जा सकता है, कि यह मुग्ध है।

दूसरा आकर्षण क्रमिक होता है, या यह कह सकते हैं कि यह किसी विशेष गुण या परिस्थिति के कारण हुआ करता है। उदाहरण के लिये—१ वो व्यक्ति यदि बराबर आयु के गुरु शिष्य बने हुए हैं। तो उनमें प्रेम हो जाता है। इसका कारण शिष्या को कहा है। २. यदि दो व्यक्ति किसी समाज दुर्लभतम में पड़े हों, तो उनमें भी एक दूसरे से अपना दिल ओलने-२ प्रेम हो जाता है। कई बार एक व्यक्ति किसी दूसरे की किसी क्षम में विशेषता को देखकर मुग्ध हो जाता है। ३. कई व्यक्तियों की क्रिया और व्यवहार ऐसा होता है, जो हरेक ही-व्यक्ति को आकर्षित करता है। उनमें जो भी-किसी-प्रकार का सम्बन्ध रखता है, वह यही सम्बन्धता है, कि यह मुझ से प्रेम करता है। इस प्रकार ऐसे व्यक्ति बहुतों के प्रेमपात्र बने होते हैं। साधारणतया अपने इन प्रेमियों में से किसी एक पर उनका भी आकर्षण हो जाता है।

इन दोनों प्रकार के आकर्षणों में से किसी के लिये भी यह न समझना चाहिये कि यह दोनों में होता है। ऐसी अवस्था बहुत कम समय होती है, कि दोनों एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो। बल्कि एक प्रेमी और एक प्रेम पात्र बना जाता है। ऐसी अवस्था न प्रेमियों की मानसिक अवस्था बड़ी ही अजीब होती है। वह अपने प्रेमपात्र की हरकत-तह से खुश करने का प्रयत्न करता है। दिन रात उसके स्वर लेना रहता है, नाचा-कव्यनाएँ करता है। इस आकर्षण की अवस्था को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक सफल आकर्षण, और दूसरा असफल आकर्षण अर्थात् जब कबल इकतर्फा आकर्षण हो। इन असफल आकर्षण की भी दो श्रेणियाँ हैं। इनमें से एक प्रेमी तो बिलकुल निराश हो जाते हैं। और दूसरे वे हृदयिकी अन्ततक आशा बर्बाद रहती है। अब इन दोनों प्रकार के प्रेमियों की मानसिक अवस्था पर थोड़ा सा विचार करेंगे।

## कलकत्ता विश्व विद्यालय के वाइस-

### चान्सलर गुरुकुल में—

गतसप्ताह कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति (वाइस चान्सलर) तथा बंगाल भारी सभा के प्रधान (पीयर) श्री एम. अज़ीमुल हक कुलभूमि में पधारें। श्री मुख्याधिष्ठाना जी व आचार्य जी के साथ उन्होंने सारे गुरुकुल का निरीक्षण किया। इसके बाद एक सभा हुई जिसमें उन्होंने हिन्दू मुस्लिम समस्या पर अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा कि हिन्दू मुस्लिम न वन्द्या

विशुद्ध राजनैतिक समस्या है। इस समस्या को शिष्या द्वारा हल करने के लिये वे आजकल देश भर की प्रमुख शिष्या संस्थाओं का आवलोकन कर रहे हैं।

इस समस्या का हल कठिन नहीं है क्योंकि भारत की मुख्य विशेषता सम्मिश्र है। यहाँपर यूनानी, शक, यूषी आदि अनेक जातियाँ आयी-नाना धर्म आये उन सबका यहाँ सम्मिश्र हो गया। इसी तरह हिन्दूमुस्लिम सम्मिश्र भी कठिन नहीं किन्तु कुछ स्वार्थी व्यक्तियों के कारण, हिस्ट्रिकल बोर्ड वा थ्युनसियैकटी के आद, वस आने के लिये हजारों आदिमियों में यह क्रमिक मतभेद पैदा किया जाना है। हिन्दूमुस्लिम भेदों को अनाद्यतक रूप से बढ़ाया जाता है। आदिम, अर्द्ध हिन्दू हिन्दू में और मुसलमान मुसलमान में भी तो होते हैं किन्तु उन भेदों को कोई गम्भीर समस्या नहीं समझता। किन्तु हिन्दूमुसलमान के भेदों को एकदम बहाल में दी जाती है। अन्त में अपने यह आशा प्रकट की कि इस विश्वविद्यालय और कलकत्ता विश्वविद्यालय न आश जो सम्मिश्र बना है—यह आगे भी बना रहेगा।

अंतःसम्य अ पने दोनों विश्वविद्यालयों के प्रकाशित साहित्य के विभिन्न वर्गों को प्रार्यना भी स्वाकार करती।

## दो गीत

मेरी उससे आज मनायूं।

बहुत दिनों तक अन्न बढ़ाए

रोदन मे थोड़ा बिनाए

आज उदास करो मे अपर मे भी अपनी कुटी सजायूं।

कभी कभी आती बिबाखी

और सदा तो रजनी काखी

जा न पावगी अब यह खालों में भी दीपक एक बनायूं।

सब न दीप अन्नत जलाए

अपने युवक हृदय बहनाए

अपनी छोटी सी कुटिया में मैं छोटा सा दीप जलायूं।

[ २ ]

जल में ले लु दीपक जल।

मेरी इस कुटिया में छुनी

बाहर से अंधियाली दूनी

न अपना कर्तव्य निभा, न अपनी ज्योति जगा निर्मल।

मेरा स्नेह तुम के जीवन

जिससे पाकर भावुक योवन

कुटिया को आलोकित करते मेरी दीप शिष्या खंचल।

ओ! मेरे दीपक खोने के

भूख कुटिया के कोने के

खिर निर्मल के कर्मश बुझादे मेरी यह अनन्त भूलमल।

“बिराज”

## प्रभात की रश्मियों में

(वे० पञ्चसं०)

[ १ अक्टूबर, ७० का दिन ]

मेरठ शहर से १२ मील दूर, गङ्गा की नहर के किनारे कुछ सड़क और एक परहाल हाथोंपर होत है, गाँवों के लोग दल के दल बनाकर आ रहे हैं—सुला मीला आकाश, सूरज को झिलमिलवाती धूप, गर्म के लेत, प्राम का डर, य !

एक तपक दो छोटे से कमरे, कमरों का छन पर एक फूल की कुदिया—यहाँ कौन रहता है—कला ऊपर चढ़ कर देखें—शोध, ये कौन सुन वेद का ग्रन्थ ज्ञान मनन न लान है—य वेदोक्त साहित्य के अग्रतम विद्वान् त्याग और साधना की साधु सूरतें श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार ।

उत्सव बड़े साज में हो रहा है । प्राचीन संस्कृतन क प्रेमियों का यह सम्मेलन समारोह किताब ल्कृतिप्रद एवं शुद्ध, यक है ।

आइए, आपका मन्त्रप म न चले । श्री पं० प्रियवृत्ती जी विद्यावाचस्पति, श्री पं० हानचन्द्र जी वा. ए, श्री पं० भगवद्दत्त वेदालंकार सबक सब शोभायमान हैं ।

यह वैदिक आर्यसमाज के प्रासन्न सभ्यासी श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी और हरिजनो के लिए आभारपत्र उपवास करने वाले भीगत फुलसिंह जी श्रीमी यान से उत्तर कर चले आ रहे हैं ।

मन्त्रप के एक पार्श्व में विद्याध्यायः ब्राह्मणों के लिए कुदिया तैयार हो रही हैं । यहाँ विभिन्न आठ विषयों के विद्वान् अपनी अपनी विद्याओं का अध्ययन करेंगे ।

अन्य समय में ही आश्रम में आशासीत उन्नति करती हैं । गोशाला तैयार हो गई है— कुछ पशु आ चुक है । आया है एक दानी महादुभावो की सहायता से यह भा सम्पन्न हो जायगा ।

अन्वर्था तोर से एक काठ की पुस्तकालय का रूप द्वाया गया है । शोध ही पुस्तकालय का बनना आरम्भ जायगा । भवन के लिए विद्वान् के विभूत १२ बुद्धय श्री लाल रत्नाराम मलाराम जा १५००) व्यय करेंगे । पुस्तकालय का नाम आर्यसमाज के प्रासन्न विद्वान् स्वामीय श्री आचार्य रामदेव जी स्वृति में रामदेव पुस्तकालय रखा जायगा । मथाना कला मेरठ के निवासी स्वामीय श्री लोट जयश्री शिल्पज्ञान अपना बहुमूल्य पुस्तकें आश्रम के पुस्तकालय के लिए दी हैं ।

आया है दाना भाई पुस्तकालय का यथा शक्ति पुस्तकालय से सहायता करेगा ।

उत्सव से पूर्व श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार के मेरठ में व्याख्यान हुए । हजारी का संख्या में जनता ने उन्मुखता और बौद्धिक एवं आत्मिक लाभ प्राप्त किया ।

आश्रम में तीन विद्याओं के अध्ययन का कार्य शुरू हो चुका है ।

नक्षत्रविद्या विभाग के अध्यक्ष श्री सत्यबन्धु जगन्नाथ हैं । आप की. ए. बी कॉलेज लाहौर के छात्रक हैं तथा अन्वयत वायव्य एवं उत्साहो कार्य करती हैं ।

ललितकला विभाग के अध्यक्ष श्री सत्यबन्धु जी 'योगी' वेदालंकार हैं । आप प्रसिद्ध विद्वान् स्वामीय श्री आचार्य रामदेव जी के सुपुत्र हैं । गुरुकुल काङ्गड़ों के छात्रक हैं । एवं हिन्दी के उद्दीप्तमान कवि हैं । आपका प्रथम कविता-संग्रह शोध ही प्रकाशित हो रहा है ।

समाज शास्त्र विभाग की अध्यक्षा कुमारी प्रमत्त शोभा जी हैं । आप श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार की सुपुत्री हैं तथा कन्या गुरुकुल देहरादून में छात्रक श्री श्री म अध्ययन कर रही हैं । आपके बारे में इतना कहना ही पर्याप्त है कि आपकी अपने विद्वान् पिता के तुल्य ही प्रतिभा का बरदान मिला है ।

वेद विभाग के अध्यक्ष स्वयं श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार हैं । वे अर्थवेद तथा शतपथ ब्राह्मण का भय कर रहे हैं । अर्थवेद के प्रथम काण्ड का भाष्य हो चुका है— शोध ही प्रकाशित होने वाला है ।

अन्य संस्कृत प्रेमी जनता में प्राथना है कि यह स्वयं आश्रम आश्रम को देवेंद्र-ओर आर्यसमाज के विद्वान् तपसा की साधना का साक्षात्कार करें आने का पथ सीधा—मेरठशहर स्टेशन पर उतरें—बागपत दरवाजे पर पहुँचें—वहाँ से आपके 'जानी' जाने वाला लखियाँ और नाम मिलेंगे । जो आपके 'जानी' पुत्र पर उतरेंगे । यह पुत्र गङ्गा को नहर पर बना है । यहाँ नागा का अड्डा है । यहाँ से आश्रम दो माल है ।

कलकत्ता निवासा श्री मिहिर चन्द्रजी धामान में आश्रम के प्रचारकार्य के लिए एक मोटर दान दी है तथा २५) मासिक देने रहने वायदा किया है । इससे आश्रम के प्रचार कार्य में बहुत सरलता हा गई है ।

पुरातन वैदिक संस्कृति को क्रियात्मक रूप से वृत्तिया के सम्पुत्र विद्वान् के लिए वैदिक साहित्य के निष्कर्ष एवं प्रकाशन के लिए-शोध के संदेश को दिग्दिगन्त में गुंजाने के लिए आश्रम की स्थापना हुई है ।

यह विद्या और संस्कृति की रश्मियाँ फैला कर अन्धकार जगती में प्रभात लायगा—इस लिए यह प्रभात आश्रम है ।

## गुरुकुल--समाचार

१३ कालिके की दीपावली का पुरीन त्योहार बड़ी धूम धाम से मनाया गया । इस वर्ष ब्रह्मचारियों ने आर्योद् प्रमोद के स्थान पर इस उन्मव की वास्तविक स्वामी पुत्रा के रूप में मनाया । जेले मी की गई । हाँकी यावकम्पक व हस्तकम्पक इत्यादि के साथ देसी जेले विशेष रूप में की गई, कुली लक्ष्मीकृष्ण, कृष्णकृष्ण तथा अन्धायुक्त जेलों में विजयी ब्रह्मचारियों को पारितोषिक दिया गया । सांयकाल श्री आचार्य जी के सनापनिष में सना का गई ।

अगले दिन दयानन्द निर्वाण दिवस के उपलक्ष में सभा हुई, इसने आर्यसमाज की वर्तमान अवस्था तथा उसके भावों कार्यक्रम पर विचार किया गया । अन्न में मान्य उपाध्यायों तथा ब्रह्मचारियों ने वर्तमान कालिके के ऊर्ध्वदाता महर्षि के चरणों में अपनी भावभरी मन्त्र अर्पणकरिता समर्पित की ।

## जाड़ों में सेवन कीजिए गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों का कमजोरी धातु क्षयता पुरानी खांसी, हृदय की घड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान खां व पुरुष सब शीक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव (१८) आध सेर (२८) १ सेर (४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियों से तैयार की गई ये गोमिथों सब प्रकार की कमजोरियों में प्रसार हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करता है।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजीत और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों का अत्यन्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करता है।

मूल्य ३३) तोला

### तत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों का अत्यन्तम औषध।

मूल्य ३३) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियां बेच रहे हैं। इसलिए दवा खरोदने समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

प्रांच	{	देहली—बांदी चौक।
		मेरठ—सिपर रोड।
पर्वतीय	{	लखनऊ—गजेंसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी श्रीराम रोड।
		लाहौर— " " हस्पताल रोड।
		पटना— " " मल्लखाटोली बाकीपुर।
		अजमेर— " " वैद्यराज मन्थारीलाल जी कपूर चौक।

**गुरुकुल फार्मेसी गुरुकुल कांगड़ी जिला सहारनपुर**

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—माहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार २४ फा.ते.क १९६७; = नवम्बर १९४०

[ संख्या ३० ]

## दार्शनिक दयानन्द

[ श्री धर्मशास्त्र ]

बहुत से लोग बिना तालिका इष्टि से निरीक्षण किए ही वैदिक धर्म को अदार्शनिक तथा ऋषि दयानन्द को भी इससे अज्ञाता ही बता देते हैं। लेकिन ऋषि दयानन्द की फिलीफस्फी थी, और आत्यन्त उच्छुद्ध थी। उन्होंने संसार में तीन चीजों की सत्ता मानी थी। जिसे वैदिक त्रैलवादा का नाम दिया था। अर्थात्-ईश्वर जीव और प्रकृति।

इससे पहले हिन्दुस्तान के तबले पर दो और आचार्य हो चुके हैं—जिनका अग्रगण्य दर्शन है। एक तो शंकराचार्य और दूसरे रामानुजाचार्य। शंकराचार्य जगत् को मिथ्या बताने हैं, और एक ब्रह्म की सत्ता का ही प्रतिपादन करते हैं। शंकराचार्य प्रब्रह्मविधि किमर्थं प्रत्यकोटिभिः

ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥

इन्ने उन्होंने 'ब्रह्मैतवाद्' का नाम दिया है। लेकिन यह इसका खंडन व्यर्थ कर देते हैं। एक माया की सत्ता भी उन्होंने स्वीकार की है, जिसे से हीन वाद आजाता है।

रामानुजाचार्य अपने सिद्धान्त को विशिष्ट ब्रह्मैत नाम देते हैं।

ऋषि दयानन्द ने त्रैलवादा के मन्वन्ध में वेद के प्रमाण पेश किये थे—

इति सुपर्णा सपुत्राः सखाया समानवृत्तं परिवस्वजाने तद्योगैः पिप्लवै स्वदाक्षि अन्धनल्पः अग्निचाकशीति किलमी सुप्तर उपमा के डंग से इव सिद्धान्त को कहा गया है। प्रकृति को एक सुप्तर वृक्ष बताया गया है, उस वृक्ष पर दो पक्षी जो हमेशा रहते हैं, और मित्र हैं, बैठे हुए हैं। उन में से एक स्व्यादु फल का भोग करता करता है, और दूसरा न खाता हुआ केवल बैकता है। वो दो पक्षी जीवात्मा तथा परब्रह्मता हैं, और वृक्ष प्रकृति है।

सृष्टि की उत्पत्ति में उन्होंने ३ कारण बताये हैं। निम्न मंत्र से स्पष्ट है।

अजामेकं सांख्यं शुक्लं कृष्णं बह्वर्षी प्रजाः सृष्टमानी सारवाः अजोहृद्येको मुचमाको मिथेने जहात्येना सुकभोगा,मजोम्यः ॥

प्रकृति परमात्मा और आत्मा तीनों किसी से पैदा नहीं किये गये। यह तीनों सारे संसार के कारण हैं। इन का कोई कारण नहीं है। और निश्चय है। जीवात्मा प्रकृति का भोग करना है और इस में लीन हो जाता है, दूसरी तरफ परमात्मा न इसका भोग करता है, और नाही इसमें फँसना है।

सृष्टि के तीन कारण हैं—

१. उपादान कारण २. निमित्त कारण ३. निमित्तोपादान कारण। उपादान कारण परमेश्वर है जो सृष्टि पर शासन करता है। और जो प्रकृति में से सृष्टि पैदा करता है और फिर इस तत्वों में, सृष्टि कर देता है। निमित्तोपादान कारण जीवात्मा है। यह परमात्मा की बनाई सृष्टि में से निम्न २ पदार्थों को लेकर उनको निम्न २ प्रकार दे देता है। प्रकृति नीतिक कारण है। सृष्टि प्रकार का ज्ञान, शक्ति, उपकरण, समय, स्थान जो किसी पदार्थ को बनाने के लिये जरूरी हैं, साधारण कारण हैं।

आरम्भ में सारा संसार अंधकार में घिरा था 'नमःश्रीसामसा गृहममे'। इस में से परमात्माने इस संसार को बनाया। वर्तमान सत्वार १,२४,००,४२,६२७, साल पहले बना था, और यह २, ३२, ३२, २७, ०१२ साल और रहेगा। इसके बाद यह संसार लय हो जायगा और फिर पैदा किया जायगा।

वेदात्मी यह विश्वास करने हैं, कि संसार मिथ्या है यह पाना के तुल्यते के समान है, पर ऋषि दयानन्द के मत में यह वास्तविक है। वेदान्तियों के पास कोई प्रमाण नहीं है।

वेद हमें सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी और तारों के विषय में विस्तार से बताते हैं। और तारों के विषय में भारतीय विज्ञान इनना पुर्य हो चुका है कि एक ज्योतिषी अनेक साल पहले बता सकता है, कि एक विशेष तारे की उस समय क्या स्थिति होगी। जब सारा संसार एक नियम और व्यवस्था में चल रहा है तो कैसे अवास्तविक हो सकता है। प्रत्येकाल में भारतीय दार्शनिक संसार को मिथ्या बनाकर उसे न रहने योग्य बताने थे। स्वामी दयानन्द ने ईश्वर बताया कि संसार सत्य और रहने योग्य है। और हमें आराम में रहना चाहिये।

स्वामी जी ने देखा कि जाति पद दलित है, गरीब हो गई है। उ दोनों इन्हे शक्ति-शाली बनाने का ध्येय बनाया। उन्होंने मनुष्यों को ध्येय-पार और व्यवसाय में उन्नत करने के लिये उभारा। उन्होंने कहा-धन इकट्ठा करना चाहिए पर उसका नुसखयोग टूटा है, उसे दूसरे की भलाई में लगाना चाहिए, और पच्चात्मा में अज्ञा रक्षणी चाहिए।

संसार के विभिन्न मतों में मुक्ति के विषय में बहुत मतभेद है। ईसाई मुसलमान और यहां तक कि हिन्दुओं में भी वः विचार घर किये हुए हैं कि स्वर्ग एक विशेष स्थान है, मुकामा ये जाकर निवास करती है। Holy Bible में और कुरान में हम स्वर्ग का बरतून स्पष्ट वर्णन करने पाते हैं। उन में जीवात्मा को सब संवर्तीय पदार्थ मिलने का विश्वास प्रकट किया गया है। जेन्, शराब, स्त्री और दूसरे पदार्थ परन्तु ऋषि ध्यानम् का स्वर्ग का लक्ष्य विरक्त विभिन्न है। ये कहते हैं, कि स्वर्ग भौतिक सुखों से बहू कर है। जब हम मरते हैं, दफना दिये जाते हैं, या गाड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार भौतिक शरीर प्रायः या कीड़ा से खत्म कर दिया जाता है। जब शरीर नष्ट हो जाता है-भौतिक पदार्थ हमें सन्तुष्ट नहीं कर सकते। आत्मा रहती है, परन्तु आत्मा कभी भी शरीर आदि का उपयोग नहीं कर सकती। यह आत्मिक दृष्ट में कुछ उत्तम बातें हैं, यह ईश्वर के साथ परिव्यसम्बन्ध स्थापित करती है, इस प्रकार ऋषि दयानन्द के कथानुसार ज्ञ आत्मा मुक्ति प्राप्त करता है, तो सांभारिक बन्धनों से मुक्ति पा जाता है। यह आत्मागतन के चक्रों से छूट जाता है। न जन्म लेना है न मरना है।

ऋषि दयानन्द के अनुसार मुक्ति कुछ निश्चित बर्णों की अपेक्षा स्वाम है। जब वह अरसा स्वाम हो जाता है तब आत्मा फिर पैदा होकर अपने कर्म का फल भोगता है। परन्तु आत्मा बन्धन में क्यों है इस का कारण स्वामी जी बनाने हैं कि-अज्ञानता इसका कारण है। जो पापों का मोल है वहीं मनुष्य को परमात्मा के बजाय अन्य की पूजा में लगाना है, उसकी मस्तिष्क सम्बन्धी शक्तियों को लुप्त कर देना है। जिसका परिणाम पीड़ा और कष्ट है।

इस प्रकार ऋषि के अनुसार मुक्ति का सब से सस्ता तरीका अज्ञान का दूर करना है।

इतना तब आत्मा के स्वामे होने पर भी ऋषि को अदार्शनिक कहने वाले को क्या औषधि दी जा सकती है। ऋषि ने वेदों को स्वतः प्रमाण मानने हुए उसके अनुसार अपने दर्शन की रचना की है और संसार को सब पदार्थों पर स्पष्ट विचार किया है।

[ दयानन्द निराण दिवस पर साहित्य परिषद् में पठित - सं० ]

## भारत को एक नवोन, सेविका होमियोपैथी

[ इस लेख साका के लेखक श्री वास्तर गोम्पकाल को विद्याकांडार होमियोपैथी के विद्वान् हैं। गत वर्ष गुरुकुल विद्याविद्यालय में हम विषय पर प्रायः कालेक व्याख्यान करार गये। इन पाठकों के काम के लिये उनके विचारों को यहां प्रकाशित कर रहे हैं। सं० ]

[ १ ]

### भारत और सेविका

किसी समय हमारा यह भारतवर्ष देश भूमण्डल के सब देशों से अधिक सुशिक्षित, शक्तिशाली, धनवान् सभूत तथा परम सुखसम्पन्न देश था। इस समय (राम राज्य के समय) इसके बाहरी योद्धाओं तुलसी दास जी के शब्दों में निम्न प्रकार के होते थे—

“अत्यन्त-यु नहि कबलन पीटा,

सय सुन्दर, सब विरज शरीर।

नहि दरिद्र कोउ तुको न दीना,

नहि कोउ अग्रुध न लक्षण होना।”

भारत का यह आधुनिक उत्कर्ष महाभारतकाल से पहिले तक तो बहुत कुछ बना ही रहा परन्तु तबसे इसका शतमुख विनिपात प्रारम्भ हो गया। आज भारत एक परार्थीन देश है। इतने विदेशीय राज्य के साथ २ अशिक्षा, दरिद्रता तथा योग-राज्यों का साम्राज्य भी विष्काल से व्यापित हो चुका है। परन्तु, चूँकि—

“कस्यात्कर्तुं सुखमुपगतं दुःखमेकान्ततोवा

नीत्रैर्गच्छन्त्युपरिच दशा चकनेमि क्रमेण”

के अनुसार किसी का समय एकता नहीं रहा करता; अतः भारत का भाग्य चक्र भी एकबार रसातल को झुक कर अर ऊपर उठने की दिशा में गति करने लग गया है।

आज भारत म राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये जो भगीध प्रयत्न हो रहा है उसमें कौन-विश्व पुण्य अपरिचित है? शिक्षा के प्रचार के लिये धन तत्र अग्रज बहूत से शिक्षणालय खुल ही चुके हैं। वैदिक सभ्यता को पुनरुज्जीवित करने के लिये प्रान्त-प्रान्त में गुरुकुलों की स्थापना भी हो चुकी है। भारत के दारिद्र्य को दूर करने के लिये मित्र २ प्रकार के उद्योग-धर्मों को दिन प्रतिदिन जारी किये जा रहे हैं तथा भारत के दौम-अस्त बलहीन जनता के दुःख निवारण करने के लिये हमारा सरकार की ओर से नगर २ में हजारों अस्वतन्त्रों का जाल का विद्याया जा चुका है।

यह सब कुछ होने लूये भी भारत का, अधोगति के गस से कुछ विशेष उद्धार हो पाया है या नहीं इसका निर्णय करना हमारे लिये एक कठिन समस्या है। हमें तो आज भी उस की दशा लगभग वैसी ही प्रतीत होती है जैसी कि आज से पचास वर्ष पूर्व भारतेंदु बाबू हरिभद्र द्वारा लिखित “भारत वर्तमान” नामक में लिखित पत्नी जानी है। आज भी भारत में अशिक्षा का अन्धकार



कामचला की शिक्षा के समान-साया हुआ है, आज भी भारत देशवासियों के पक्ष में, काव्यक गिरान है तथा आज भी मध्यम को रोग प्रकृत से आये सोर से होर प्रकृता है।

आयुष्का, वृद्धता तथा रोग प्रकृतों की सुदृढवर्ती ने भारत को किस प्रकार भारत के रक्षा है उसकी कुछ कल्पना देशों की मृत्यु साक्षिका के प्रयोजन से सहज ही हो सकती है। प्रायः इन तीनों सुदृढों द्वारा ही भारत के वे संसद् सक्षम स्थल प्रतिदिन बूढ किये जाते हैं। इन तीनों सुदृढों के कारण ही भारत को इतनी बड़ी मनुष्य संख्या को प्रतिदिन सीधा खर्च का टिकड कर लेना पड़ता है। ऐसा प्रती होना है प्रायः मनुष्यमान ने भारत सुखाय को इन शिक्षाओं के पक्ष से कीज से शोच मुक्ति विधान के लिये ही मान्य-सिधों की शोचत आयु-२२ से ३९ वर्ष तक की नियत करती है जबकि उसी समय न की पश्चिमीय देशों की, मन्थान ४५ से ५९ वर्ष तक की शोचतन आयु का उपयोग कर रही है।

शिक्षा के क्षेत्र में आज कल जो धोड़ो-बहुत उचित हुई है वह अवश्य प्रशंसनीय है, परन्तु उस पर भी आज कयल उ प्रतिशत जनता ही शिक्षित हो पायी है। इस नगण्य सी शिक्षा के अन्त में भारत का कितना कल्याण हो पाया है इसका परिचय प्राप्त करने के लिये हमारे लिये आवश्यक हो जाता है कि हम सरकारी विम्बविद्यालयों के उन छात्रों की ओर भी दृष्टिपात करें जो उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी छोटी-२, वीकरियायों को छोड़ में मारे २ किये रहते हैं। विभिन्न शिक्षा प्राप्त सुदृढकों के ज्ञानको भी क्या वृत्त की ओर में दर-दर उपकर नहीं मारनी पड़ती? क्या इस प्रकार की शिक्षाओं द्वारा भारत की वृद्धता दूर करने का प्रयत्न हो सकता है? क्या शिक्षा के इतने पुंजले प्रकाश में भारत का अयोग्यति के गन्ध से बाष्पविक्रम उद्धार हो सकता है?

भारत के दारिद्र्य की क्या चित्तों वृन्नाक है इसका पता को उन्हें लग सकता है, जिन्होंने भारत के शोको में प्रतिदिन होने वाला इसका वीषय तादृच अपनी आंखों देखा है। कहने में "सर्वभूषणा दारिद्र्यता"। इनका प्रथं योग्य तथा अमेरिका के उन सक्षम पुरुषों को समझ में नो आ ही नहीं सकता जिन्होंने भारत के प्रायों की वृथा को एकबार भा अपनी आंखों से नहीं देख पाया है। भारत के नगरों की ऊपरी दीपदाय तथा समुच्च-पुरुषों की शिक्षाविद्या को वेकफर विदेशीय लोगों को भारत के "सोने की चिकिया" होने का भ्रम आज भी बना हुआ है। उन्हें यह लेने परत लग सकता है कि इस सोने की चिकिया के सोने के पंख कमी के एक २ करके पीने आ चुके हैं तथा आज यह पक्षी दाना पानी के बिना जलदीय मीन के समान पहा २ तड़क रहा है।

भारत में प्रिया राज्यों ने जो साम-द्वेष्य दृश्य उपस्थित कर रखा है उल्लास वृत्त। चिन्म भी भारत के प्राय-जीवन पक्ष पर ही स्पष्टतया दीख सकता है। देखिये—बड़ा मुँह उल्लास करने वाले, हँसे, कहे, किशान भी उल्लास-प्राय काय के मास में पहुँचा दिये जाते हैं तथा कितने नौजवान-जीव हैजे के काम आ जाते हैं? कितने

माताओं के हाथ शीतला (चेचक) की मेट बढ़ा दिये जाते हैं तथा कितने बालक मोकोप्युमोनिवा द्वारा कणाय-मेव कर दिये जाते हैं। क्या उड़ी-बुजार द्वारा प्रत्येक गांव प्रतिकर्षकितक-बंशता-मोही-बंशता-बंशता क्या इस प्रकार के अनेक संक्रामक रोग-राक्षसों के प्रकोप ने हजारों बसे बसाये गांव प्रतिवर्ष विधायन नहीं कर दिये जाते? क्या इन रोग-राक्षसों द्वारा होने वाला हर साल का यह नरसंहार गत महायुद्ध के कुल नरसंहार से संख्या में कुछ कम होता है।

भारत की यह दीन-दशा आज भी विद्यमान है उन सरकार के सुस्थवस्थित राज्य में जिसके साम्राज्य में सुख कमी अस्त नहीं हो पाता! क्या येमे प्रभापी राजा का कसम्य नहीं कि वह प्रजा मे लिये कर को इस प्रकार व्ययहार में लाये जिनमें प्रजा का पूर हित साधन हो सके? महाकवि कालिदास कहने हैं कि राजा दलीप कैवल्य प्रजा की भलाई के लिये ही कर लिया करने में इसप्रकार जैसे सुख पदार्थों से रह नीच कर उमे सहग्रयुष्का कर फिर वर्षों के रूप में उभरी पर करता देता है। क्या हमारी सरकार का भी यह कसम्य नहीं कि वह इस उच्च प्रारंश को अपना कर अपनी प्रजा के हित-साधन म तय्य हो जाय? भारत में रोग-राक्षसों द्वारा होने वाले इस नरसंहार को प्रतिदिन अपनी आंखों से देखकर भी क्या उसके दृश्य पर कुछ भी बौड नहीं पहुंचनी चाहिये? क्या रीज होने बालों हजारों विधवाओं के कल्ल कल्पन मे भी उसकी कुम्भकरणी जिज्ञा का भङ्ग नहीं हो जाना चाहिये? क्या बिलसते हुवे बालकों के अश्रुमुक्ता फलों के आघात मे उसकी पीठ पर जून देग जानी चाहिये?

राजा रामचन्द्र भी लक्ष्मण को उपदेश देते हैं—  
"जानु राज मिय प्रजा दुखारी

सो नूच अवधि नरक अचिकारी"

क्या अन्तरिम में दिखार देते नरक-यानतारों के नरद श्यों को देख कर भी हमारी सरकार का एक मात्र यह कसम्य नहीं हो जाता कि वह कम से कम इन रोग-राक्षसों द्वारा होने वाले अत्याचार मे तो अपनी मिय प्रजा का परिचाय करने में प्राणपन्न न जुद जाय?

हमारी सरकार स्वदा से यह कहती बली प्रापी है कि वह प्रजा के सर्वकार के दुःखों को दूर करने म कमी भी कोई कसर उठा नहीं रखती। वह कहती है कि उसने प्रजा की स्वास्थ-रक्षा के मिमित क्या नहीं कर रक्का? देखिये प्रत्येक जिले म लोगों को रोगों के आकमण खबरने के लिये है अकसर लोम तैयान रखने हैं, रोगियों को स्वास्थय साध कराने के लिये मगर २ में तथा कसने २ में अल्पतया मुने हुवे हैं तथा प्राय चानियो की चिकित्सार्थ वल अम्बताल ( Travelling Dispensaries) लगातार करि में लगा रहते हैं।

सरकार को इन सब सेवाओं के लिये उसका तादिक कस्यवाद करने हुवे इच्छुकवने पड़ना चाहने हैं कि क्या उसकी इन सेवाओं द्वारा भारत को अपनी समस्या भी (शेष कुछ ६ पर)

# गुरुकुल

२४ कार्तिक गुरुवार १९६७

## धन-शक्ति

[सर्वप्रथम तथा ६ अंशक में 'गुरुकुल' के गत वर्षों में आयाचन अभ्यर्थेय जो द्वारा विभिन्न एक उपदेश साक्षात् प्रकाशित होनी रही है। पन्ध्र जेब उलीं मासा का अंगमा भाग है। इयंमे पैर। कर्मे पर प्रकाश था। गया है।

-सं०]

आत्ममा और शक्ति के विषय में कह चुका अथ वेऽप्यर्थ पर आता है। वैश्य के गुरु कर्म का ढोक ठीक खर्चन कर सक्के, वैश्य की वृत्ति और कर्माणां को मज्जी प्रकाश तुम्हें समझा सक्के इसके लिये तुम्हें पहले वैश्य की शक्ति अर्थात् धनशक्ति क्या है, यह कर्मे काम करनी है इस विषय में कुछ आभारपूत बातें स्पष्टता पूर्वक समझलेना आवश्यक है। मैं तुम्हें यह भी बताऊँ कि यद्यपि मैं गुरुकुल में वेद का उपाध्याय होकर आया, और मैंने भी रुपये पैसे की बातें कर्मे वाले बुनियादी आदर्शों सा नहीं समझा आता, तो भी गुरुकुल में मेरा ऐच्छिक विषय अर्थशास्त्र था। और उसमें होशियार था, परन्तु मैं बहुत अज्ञ मित्रने थे। उन दिनों इतिहास-अर्थशास्त्र और राजनीति एक एकट्ठा विषय होता था। यही विषय मैंने लिया था क्योंकि समझता था कि वैश्वेया करने के योग्य बनने के लिये यही विषय सर्वोत्तम है, यद्यपि गार्होपाध्याय मैत्री गणिते सन्ध्या प्रतिमा उल्कार बहुत बाहते थे कि मैं गणित का विषय नूँ। इसलिए यदि मैं-अर्थशास्त्र की नां कुछ बातें कूक तो यह अनाधिकार बंधा नहीं लगनी आयगा। यह तो मुझे कठ ही देना चाहिये कि आधुनिक अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास के अध्ययन ने भी मुझे तो 'दुनयावो' कहलमे वाले बनाने की अपेक्षा मुझे परमेश्वर के अधिकाधिक नजदीक पहुँचाने में ही लहायता दी है इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। अम्नु,

## धन (अर्थ) क्या है ?

धन या अर्थ या संर्षल क्या है ? इस विषय में आज कल की भाषा के काश्च हमारा अम्पर एयं अमुक विचार और मालन धारणा" बैठ गया है कि इस सन्ध्या में मासुर्फी की स्वर और कर्मी कर्मे देनामा भी हमारे लिये काठिन होनाथा है। इन्हे हमें ठीक करना होगा। मैं अर्थ शक्त के कोई विशेष परिभाषिक शब्द इस्तेमाल नहीं करता। मोदी भाषा में बोले आऊँ। वे रुपये मैंने धन या अर्थ नहीं है। ये तो मुद्रा हैं, सिक्के हैं, बिन्द् हैं जो विनिमय के लिये स्थायन के तौर पर स्तुलियन के लिये बन्दे जाने हैं। जो काम में आने वाली, उपयोग में आने वाली वस्तुएँ हैं वे धन हैं, अर्थ हैं, सत्पत्ति हैं। तो तुम दम्भा कि तुम्हें जो रुपये मैंने रखने से बना किया जाता

है तो इससे तुम्हें धन रखने की मनाही नहीं है। धन तो तुम्हें रखने दिया जाता है। ये तुम्हारे पत्तिने हुए कपड़े धन हैं, तुम्हारे लोहे वाली चाँदि बरतन धन हैं, मीठान धन है। यह अर्थ देने वाली पृथ्वी और म्वास द्वारा प्राण जीवन देने वाले वायु का आकाश, ये परमेश्वर के दिये हुए धन हैं। ये कोई आध्यात्मिक या आलंकारिक अर्थों में धन नहीं हैं, किन्तु अर्थ-शास्त्र की भाषा में ही ये धन हैं, जब मैं पहली बार अपने प्राम में गया और देखा कि प्राम के पयु-सवूह को बरिंक उनके एकत्रित होने के लान को 'धन' कहते हैं तो एक स्फुर्ति वाक्य आरम्भ मिला। क्योंकि आधुनिक प्राम-भाषा जिन परछपरा से आवी है उस समय के लोगों में जो वस्तुओं के शुद्ध दर्शन करने की शक्ति या ज्ञान था उसकी कमी थी। स्वयंयुव ये गौर' धन हैं, प्राम के लव गौ आवि पयु प्राम के अति उकृष्ट धन हैं। हम सब पशुध्व भी टाडू की सत्पत्ति हैं, धन हैं, जैसे मारन की भूमि, यहाँ के नदो, पहाड़, खनुद, जंगल आवि भारतीय टाडू की सत्पत्ति हैं, मतलब यह कि सब काम में अने वाले, सार्थक उपयोगो पदार्थ अर्थ हैं, धन हैं। तो

## धनोपार्जन का क्या मतलब ?

यह सामने मेज़ पड़ी है। इसका बनाया जाना अर्थ की उत्पत्ति, धनोपत्ति है। जब तक यह एकट्ठी निरर्थक (निरपयोगी) थी तब तक यह अर्थ (धन) नहीं थी। जब अर्थ द्वारा बुद्धि और हाथों के अर्थ द्वारा इन्हे उपयोगी (सार्थक) रूप में ले आये तो हमने एक अर्थ की उत्पत्ति करवी। कपाल निरपयोगी (या काम उपयोगी) पड़ी थी, हमने उन्हे चुन, कात और चुनकर कपड़ा बना लिया तो हमने धन का (अर्थिक सुव्यवस्था धन का) उत्पादन किया। रुपये पैसे इकट्ठाल में बनने से धनोपत्ति नहीं होती रुपये या, मोठ बनाने में चाँदी या कागज को अमीर व्यवहारोपयोगी प्रकार देने में इकट्ठाल के क्रियाओं द्वारा जो अर्थ किया जाता है वह धन ही उत्पत्ति है। जिस अर्थ के बदले में हमें रुपये मिले हैं और हमने जेब में डाले हैं उन अर्थ में जो उपयोगी वस्तु सिद्ध हुए हैं वही धन का अर्थन हुआ है, तयवा तो इसका केवल एक बिन्द् है, 'डिकट' मात्र है, एक प्रमाथ पत्र है जिसमें दूसरों में धन (उपयोगी वस्तुओं और अर्थ) के लेन देन में आसानी हो सके। ये सिक्के रूपों प्रमाथ पत्र असल में कर्मी हैं, एक वास्तु या कागज के टुकड़े को लो, हजार या लाख रुपये मान लिया गया है। यह देखा ही है जैसे हम पीछा में तुम्हें अर्थ देते हैं और काठने हैं। असल में न कुछ देते हैं और न कुछ रख लेते हैं। ये केवल योन्मा की सापेक्ष माप लेने के लिए कर्ज कर लिए आते हैं। पैसे ही ये सिक्के सत्पत्ति का सापेक्ष माप करने के लिए कर्मी बिन्द् हैं। धन को ज्ञा भाषा कहा जाना है लो हम सिक्कों के रूप में तो यह भाषा है ही। क्योंकि ये कुछ भी न होते हुए सब कुछ हैं। ये इतना प्रमाथ दकते हैं कि लोम लखलो धन का कौडुकर भी (खंडने बटोरने की शुभ में) बर्णन

खते हैं। मुझमें से भी बहनों को बंधों की माया का इतना आकर्षण प्रभाव है कि वे जिस किसी तरह बंध का लेना चाहते हैं। बंध तो कथित किये जाते हैं स्वर्णों द्वारा योग्यता बढ़ाने के लिए। पर मायात्म्य होकर जब बिना योग्यता बढ़ाये भी बंध का पाने की इच्छा होती है तो पूर्ण बोधी करना या परीक्षा में नकल करने आदि की प्रवृत्ति होगी है, जैसे कि जब धर्म किये बिना धन (उपयोगी वस्तु) प्राप्त करने की इच्छा होती है तो जाली सिक्के ब नोट बनाने या सिक्के चुराने की प्रवृत्ति होती है। यह सब सिक्के की माया है।

और यह सिक्के रूपी टिकटें विनियम के लिए हर शासन में उत्पन्नी हैं वह भी नहीं। जैसे पहले गुरु लोग निकट और वैयक्तिक संबन्ध होने से शिष्य की योग्यता को देखे ही जान लेते और जांच लेते थे, जैसे पुराने लोग सिक्के के बिना ही, वस्तुओं का ही लेन-देन कर लेते थे। मेरे दादा और चाचा जी कहते थे कि उन्हें रुपये पैसों की छः छः महीने की बर्बादी तक देखने का भी जरूरत नहीं पड़नी थी। दोनों फमलों पर ध्यान होता था उसे खाने थे, कपाम खान लेते थे। फिर बड़ई लुहार जुलाहा चमार पोथी आदि मे जो महायातारों लेते थे उनके बदले में उन्हें भी नियत परिमाण में भ्रष्ट दे देते थे। कभी कभी ही बनिषों के साथ व्यवहार में सिक्का दूटना पड़ता था। मध्यमव्यय जब से सिक्के का महत्त्व बढ़ गया और इसका चलन बढ़ गया तब से मूर्खता और पंचोदगी भी बढ़ती गई। इस्लामिक धर्म के विचारक सिक्के रहित समाज-व्यवस्था या अर्थ-व्यवस्था को कल्पना करते हैं और इनी में संसार का भला देखते हैं। हमारी प्राचीन प्रणाली में तो कान कितना धनी है यह उसके पास कितनी मुद्रा है इसको अपने पास उसके पास कितनी गांव है या कितनी भूमि है इससे ही गिना जाता था। प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था ही ऐसी थी जिसमें सिक्के को बहुत कम स्थान था। बर्षों में शायद वैश्य शूद्र को और आश्रमों में केवल गुरु-आश्रमी को सिक्के की जरूरत होती थी, वह भी बहुत कम। बहुत कुछ वस्तु विनियम से ही काम चलता था। यह कहा जा सकता है कि वह असभ्यता का जमाना था। पर अब तो वर्तमान सभ्यता को महारोग भी कहा जा रहा है। हमारी ममक में तो मुद्रा को महत्त्व न देने वाली वह सभ्यता ही मध्यम था, क्योंकि उसमें लोग अधिक सुखी थे और उनकी शारीरिक मानसिक और आत्मिक उत्थति करने का अनुकूल वायुमंडल था। इसलिए तुम्हें तो अहोभाग्य मानना चाहिये कि तुम्हें मुद्रा के भगवें से रहित अवस्था में रखकर तुम्हें पाला पोसा जा रहा है, तुम्हारी सब आवश्यकताएँ पूरी की जा रही हैं। कुछ यदि इस आदर्श का उपलब्धता को समझ जाओ तो बाहर जाकर भा ब्या-संबन्ध इसके स्थापित करने का यत्न करो। मुझे गुरुकुल के छोटे बहो-चारिणी में यह देखकर दुःख हुआ— इतना ही दुःख हुआ किताब कि प्रायः में गौरी के समूह को 'धर्म-सुनकर' आत्मन्द् हुआ था— कि वे रुपये पैसों को महत्त्व

देना सीख रहे हैं। मैं प्रति पुष्पिमा को छोटे ब्रह्मचारियों में जाना हूँ। पिछली बार वे पूछते थे कि आपको कितनी वनस्पत मिलती है—आप बड़े हैं तो आपको बहुत वनस्पत मिलनी होगी। मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की कि सपने की जरूरत ही क्या है, खैरी करके अन्याज और फल शाक पैदा करलो उसे खाओ, कपास से कात वस्त्र के कपड़ा बनाकर पहिन लो, धागाया बड़ई लुहार और मकान बनाने का काम मीसला— बस रुपये को जरूरत ही क्या है। अमल में यदि गुरुकुल प्रणाली ने विष्णुव होना है तो प्रायः प्राय में जो गुरुकुल होगे, वे भिक्षा में रुपये पैसे नहीं किन्तु अन्न वस्त्र ही लिया करेंगे। अब भी छोटे कह-लाने वाले गुरुकुल ऐसा ही कर रहे हैं, यह हमारा गुरुकुल तो शाही गुरुकुल है; अमीरों का गुरुकुल है। ब्रह्मचारी पैसे न रखें, बल्कि इस सब बड़े भारी परिवार का आधुनिक संघ व्यवहार बिना पैसे रुपये के बोध में धार्य हो— इस प्रणाली के पीछे जो आदर्श था उसे अब हम मिलकुल भूलने जा रहे हैं यह बात है जिसे देखकर मुझे उस दिन दुःख हुआ जब कि मैंने उन गुरुकुल के छोटे छोटे बाबकों में भी ऐसे विचार देखे। नहीं तो छोटे बालक के लिये तो रुपये पैसे का भी तभी सुख है यदि वे खाने जा सकते हों उनके लिखौने का काम दे सकते हों। छोटा बच्चा तो नारंगी या गुड़ के मुकाबिल में पैसे रुपये या नोट को पेंक देगा। पर जब बड़े होकर हमारी आधुनिक को देखकर बालक भी जानने लगता है कि पैसे में 'नो मान' को बाजों का भी प्राप्त कर देने का शक्ति है, वह देखना है कि मिठाई बनाकर रखने वाला आधुनी मांगने से उसे खाने के लिये मिठाई नहीं देना पर पैसा देने से दे देता है, तो वह भी इसके महत्त्व को जान जाना है और खाने की चीजों की जगह अपने माँ-बाप से पैसे मांगने लगता है। एक बार तो मैंने देखा कि एक कोषा भी हमारे घर में चारपाई पर से एक चबर्नी चींच में उठाकर उपर जा बैठा। पशु पक्षी भी हमारे महवान से 'मध्य' होने जा रहे दीखते हैं ?

सिक्का अमल धन नहीं है इस बात का एक बार एक गांव के आधुनिक मजाक में अच्छी तरह प्रकट किया था। हमारे पास के गांव में एक जिमीदार का बिल भी रुपये के नोट ला गया। नोट तो मिल नहीं सकते थे। उसके एक मित्र ग्रामबासी ने इंतने हुए पूछा कि 'मेरा यह बिल कितने रुपये का था ?' उसने कहा कि डेढ़नी को लिया था। "तो यह अब बटरीसी का होगा। डेढ़नी का था ही, नी रुपये और इसके पेट में चले गये। २५०) का हांगया।"

अन्तु ;

( अथमास )

(शुद्धि का श्रेय)

हल हो रहा है वा नहीं? क्या अन्य पश्चिमीय देशों के समान भारत में भी संक्रामक रोगों का प्रकोप लगातार कम होता चला जा रहा है? क्या संयुक्त चिकित्सा प्राप्त न होने के कारण अकारण मृत के बाद उन्नतों का सिलसिला भारत में बन्द हो गया है?

यदि इन प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है तो भारत को सरकार के लक्ष्ये बौद्धे गालवजाने अथवा कागजी घोड़ी से क्या सम्बन्ध हो सकता है?

हमारी तुच्छ सम्मति में भारत सरकार विशेषतया इस दिशा में—स्वास्थ्यरक्षा के कार्य में—अपने कसब्यों का पाकन करने में बहुत कुछ असमर्थ सी रही है तथा इसका दोष भारत की दूरिदायका पर डालती रही है। यह कहनी है कि भारत से गुराब देश में यह बात केले पैदा की जा सकती है जो अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा जर्मनी आदि धनी देशों में पायी जाती है। यदि उक्त देशों में संक्रामक रोगों में परित्राण पाने में सफलता प्राप्त हुई है तो उसके लिये धन भी किस प्रकार पानी के समान बहाया जाता है? क्या भारत को उनकी बराबरी करने की इच्छा करने में पूर्व अपनी चादर की ओर नज़र नहीं डाल लेना चाहिये?

भारत सरकार की इस संयुक्त विचार परिपाटी को बिना अनुभव के स्वीकार कर लेने के परभाव हमें उस में यह पुष्टता चाहते हैं कि यह उन प्राचीन व अर्वाचीन चिकित्सा प्रणालियों को क्यों नहीं अपनायी जिनके द्वारा उनमें ही सर्वे में, जो जैवैष्यिक चिकित्सा प्रणाली पर किया जाता है, उससे कई गुणा अधिक लाभ उठाया जा सकता है। यह कौन नहीं जानता कि गैलांपैथी एक पैलांग महंगी चिकित्सा प्रणाली है जिसके द्वारा इलाज करने का नाम, गांव वाले तो क्या, शहर वाले भी असामर्थ मे नहीं उठा सकते।

जब आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली द्वारा भारतीय अस्पतालों में चिकित्सा का कार्य प्रवृत्त करने का प्रस्ताव भारत सरकार के सम्मुख उपस्थित किया जाता है तो उत्तर मिलता है कि चिकित्सा विज्ञान (non-new) नहीं है अतः उसे चिकित्सा का एक मात्र अधिकारी किस प्रकार बनाया जा सकता है, तथा जब आयुर्वेद सब रोगों की चिकित्सा या परित्राण करने में भी असमर्थ है तो सरकार अस्पतालों में उसे किस प्रकार स्थान दिया जा सकता है!

यद्यपि सरकार की इन बेंतुकी बानों का संयुक्त उत्तर आयुर्वेद के प्राक्ख विद्वानों द्वारा समय २ पर दिया जाता रहा है तथापि सरकार का पूर्णपरितोष अभी तक नहीं हो पाया है। इसपर भी आयुर्वेद की उत्पत्ति के लिये बहुत से आयुर्वेदिक कॉलेज कोलेज तथा उनमें शिक्षा प्राप्त देशों की स्तुनिसिपैलिटी तथा डिस्टिक्ट बोर्डों के अस्पतालों में नियुक्त करके भारत सरकार ने आयुर्वेद का जो उपकार किया है वह अवश्य प्रशंसनीय है। आयुर्वेद का अधिकाधिक प्रचार होने पर भारत का बहुत कुछ कल्याण हो सकता है इसमें किसी संशय हो सकता है!

किसी मारती से इस विचार में, जिसकी आवाही इस कठोर से भी की गयी है, जो कि हो सके वहाँ लखवा डोपुले से भी क्यों काम चल सकता है। ये सब तो प्रायः मंगरी में ही बन्द आते हैं अर्थात् भारत की इन लखवा का लो अग ५ वां हिस्सा ही बाल करती है। इस प्रकार मारन की ८० प्रति लैकडा आवादी जो गांधी में रहनी है प्रायः किसी प्रकार भी उचित चिकित्सा प्राप्त करने से वञ्चित रह जाती है। शहरों से पुष्कर वैद्यों वा डॉपुले से इलाज करना वकी समय से इसलिये बाहर होना है कि वे उनकी फीस वा दवा के दाम इत्यादि का प्रबन्ध करनी २ अपना सर्वल बेचकर भी नहीं कर पाते। अतः गांधवासी भारतीयों का अजी निराशाचो की मीन भर रहे है।

भारत में अपनी सत्यान का इस प्रकार पुष्कर-भरक वैककर तुल से शतधामि हो, फूट २ कर रीने लगता है। यह दीन दृष्टि से बाटों ओर निहारा है—इसलिये कि उस वैदिक तथा अशक का भी कहीं कोई सहायक मिल जाय। यह बार २ पुष्कर प्रचाना है—इसलिये कि शायद उसकी पुष्कर का सुम्ने बाला भी कहीं कोई हो।

अब सब प्रकार से निराश हो यह धक कर बैठ जाता है तो अकारणक उसके काला में एक धोमी सी ध्वनि "मैं आपकी सेवा करनी" सुनाई पड़ती है।

भारत बौक कर बिहा उठता है— "तुम कौन हो?" गंगन गिरा विद्वान्गुतो लो कहती है— "मैं हूँ आपकी एक परम-भक्तसेविका"।

भारत इस मरी लो आवाज को सुनकर तिरस्कार भरे स्वर में कह उठता है "कि प्रकौन (समर्थन)?" (असमर्थन) भक्त से क्या लाभ है? अथकी बार गंगन गिरा कड़क कर कहती है "कि शकन-पकारिया" (अपकार) शक से ही क्या लभ है। भारत इस स्पष्ट बचन का सुनकर समक जाता है कि यह अवश्य कोई दिव्य शक्ति है। वह कह उठता है "भक्त शक सेवक मुझे चाहिये जो कोई होय"। आकाश बाणी कहती है "मे हानो गुण युक्त हूँ राजन परकिच जोय"।

भारत अपनी दयनीय दशा पर दृष्टिगत करके कहता है— "कृते कल्याति लोहदम"।

गंगन गिरा दृढ़ता पूर्वक लोच स्वर में कहता है— "भक्तो शक्तो च मां राजन नावभातुयमहंसि"।

भारत गहू गहू करके से कहता है "तथास्तु" अब तुम प्रगट होकर हमें अपना परिचय दो।

पाठकद्वय, "शुद्धिकुल" के अगले अङ्क में भारत की इस नवीन सेविका का "भारत के दरबार में होमियोपैथी" इस शीर्षक के नीचे परिचय दिया जायगा।

## दीपक-माला

जलो, जलो, व दस्तियुज। तुम जलो, जलो, दीपक माला! अब तम मे उद्व्रांत पथिक पग भीमे भीमे भरता हू, आधी दीपक जल, जल, लूण लूण मे अकता हू, दुष्कता हू; तब तुम उसकी मार्ग दिखाने, सत्य पर ले जाने को, ज्योतिष्य दिखानाओ अयना, नदीपिन दीपक माला!

इष्ट उपासक मन्दिरे में जड़ देव-अर्चना करे को,  
अर्ध-पाल सज, स्नेह दीपक से पूजा करने को;  
विषय को मारम्भ आरती, तब निज घरद हस्त देकर;  
करो आरती सफल तुम्हीं हो, तेजोमय दीपक माला !

यह बह में तुम्हें दीत कर, अक्षिरूप से कर पूजा;  
अग्नि-उपासक देव अक्षिरस, गन्ध द्रव्य से कर स्थाहा;  
अपने अन्तर में भी फिर कर, उसी अग्नि का ही उन्ध्याम;  
आत्माराम्य की हवि देने हैं तुम्हें में ए दीपक माला !

राष्ट्र-यज्ञ में तुम्हें दीत कर, आज्ञादी के चुको में  
लोग देखते तुम्हें, कामिन् विदूष के सक्के ापों में;  
तब भीमें भीम के कुल कण भङ्गक इस तरह है पङ्कन;  
तुम्हा नहीं पाते जिसका लःको पानी; दीपक माला !

ऊर्ध्वलोक में सूर्य तुम्हें रा ही प्रतीक बन सङ्गा हुआ-  
अस्तरिष्ठ में तद्विद्वलता बन चित्त तुम्हारा गङ्गा हुआ-  
लोक पूजता तुम्हें को; विरिष्ठ ज्योतिरिङ्गणों में नू हां;  
ध्यापक बन सर्वत्र सङ्गा है नू ही ए दीपकमाला !

प्रलयक क्ष में फैल तुम्हीं ही अस्म सभी जग हो काती,  
फिर उपासि समय में तुम ही रूप नया जग को देती,  
यह सारा जग लीन तथा उद्वुञ्ज तुम्हीं से है होता  
जग की उपासक संहारक बनी तुम्हीं-दीपक माल !

जिस में तेरी आग न रहती यह बन जाता है सुवर्त,  
जिस में तेरी ज्योति न रहनी रहद बन जाता है काहिल;  
तेरे कारण ही साग जग घूम रहा है इधर उधर;  
ज्योति रूप बन आओ हम में, तुम हो ए दीपक माला !

भारत माता के सुपुत्र, निस्तेज वदन जो हैं फिरने;  
गली गली कूबे कूबे में धक्के जो जाने फिरने;  
उनम नेत्र-पुञ्ज भरने को करने को नव शीघ्र-प्रदान;  
भारत-भू में आकर उतरो तुम ही ए दीपक माला !

भूल गये हैं भारतव सा, आज्ञा दा क्या होती है,  
पिञ्जके से निर्मुक्त विहग में क्या मादकता होती है ?  
इन सब में अपनी अपनी अन्वर्हित शक्ति निरन्ने को  
आत्म ज्ञान के दाप जलाओ, तमनाशक दापक माला !

भारत-मां जो लोह-मगड-कुसित पापों से है अकङ्गा,  
शत्रु हस्तगत मुह से जो है नहीं आह ! तक कर सकती;  
उसको अक्षम दूख-अधन से मोचन करन का भगवान;  
भारत-भू में आकर उतरो तुम ही ए दीपकमाला !

देश धर्म की बलिबेदी पर मिटने वाले दोषान,  
दीपकसे ज्विच दृष्य दृष्य म, जल जल, बन पागल परवाने,  
खर्ग, मर्ष्य, जो अग्नि लुहलुहों से आनाकित कर डेंते;  
ऐसे महाभाग शिशु पाये, भारत मां, दीपकमाला !

तुमने पुञ्ज रूप दीकर, शिष्य के प्रलेक में स्थान लिया,  
जिसके इक-अ-भङ्ग मात्र ने देव मदन था द्रव हुआ,  
नाग-यज्ञ में उतर तुम्हीं ने, नागों को यग यक्ष किया,  
मस्म करो आ शत्रु तुम्हीं ही भीषण बन दीपक माला !

शत्रु तुम्हें ही दीपक उल्लेखाल सजा नारन माता,—  
रक्त बहने से सज, मसूर पर लगा रक्त का हा दीका,  
शत्रु नयन जल से अभिषिञ्जन करना श्री चामुण्डा का,  
शत्रु सदन-स्तोत्रो से पूजा करे आज्ञा दीपक माला !

शत्रु नयन जल से अभिषिञ्जन करना श्री चामुण्डा का,  
शत्रु सदन-स्तोत्रो से पूजा करे आज्ञा दीपक माला !  
पूर्य राम के विजयोत्सव में दीप जलकरे कृष् तुमने,  
स्वागत था कुङ्क किया अयोध्या में, उनका उस अवसर में,  
आज उसी का एक अनुकरण ही भारत जनना करती,  
बन सजीव आओ भारत में, फिर नुनीत दीपक माला !

— X —

### गीत

( ने ० श्री चामुण्ड )

( दीपमाली की सभा में ३० वेद्वेद भ्रंथ द्वारा पठिन )  
दिन में दस दस बार दिवाली  
अब प्रमात की बेला आती,  
सुरज की लाली का जाती,  
अंतुने अंतुने में प्रतीत तब होती दीपों की उजियाली !  
दिन में दस दस बार दिवाली  
प्रभु ने एक दिया वाला है,  
उगता सूर्य जहां उखाला है,  
जलनिधि जिसमें मेल तरलतर, पृथिवी ने मिट्टी की प्याली !  
दिन में दस दस बार दिवाली !  
हम सब भी दीपों की लो बन,  
जग मग कर दे जग का कन कन,  
नितर बिनर कर डाले सारी वह अंधियाली काली काली !  
दिन में दस दस बार दिवाली !

— १० —

### तपोधन की दिवाली

[ श्री चामुण्ड जी ]

आज दिवाली है। एक भिखारी का ऊँचे प्रासाद के  
तले सङ्गा है। सठ उम्रे एक पैसा देने आता है। भिखारी  
कहता है मुझे यह भिखा नहीं चाहिए। सेंठ ने पूजा-क्या  
आज दिवाली के दिन तुम और भी कुछ देई ? भिखारी  
ने यह भी नहीं चाहा। तो फिर तुम्हें क्या चाहिए सेंठ ने  
पुनः प्रश्न पूछा।

भिखारी ने भीख मांगी-मुझे यही चाहिए कि आज  
तुम पटाखे न बजाओ। दीपमाला न रचो। जो पैस बनें  
उसको गंव के लिये लुकल बनने वाला है। उसके खर्चे  
में देवां।

सेठ-वाह ! तो फिर हम दिवाली कैसे मनायें। एक  
तो आनन्द मनाने का दिन था उसे भी खाहा। ज्ञाने दे ?  
भिखारी-तुम इस प्रकार दिवाली मनाओ- जब लोग  
दिये जला रहे ही-पटाखे बजा रहे हों उस समय तुम एक  
अधेरे क्षमरे में खले जाना-साथ में कुछ भी न ले जाओ।  
वहां जाकर केवल एक ही दीपक जलाओ-जिस के  
ज्वाले में पैसा आनन्द होगा जो घर में सवहीं दीपकों  
के जलने में न होगा।

सेठ-तुम अजीब बात करते हो। लालों कमा में  
बिना किसी चीज के मैं दीपक कैसे जलाऊंगा।

भिखारी-यह अज्ञान बन नहीं है। जीव कलिय  
यः काम का वाज्र है। देवां ! तुम उस लाला अधेरे  
कमरे में चर जाना। बैठकर सोचना-“वधवार मेने क्या

किया है? आनन्द प्राप्ति के प्रेने कितने पक्ष किये हैं और कितने में मैं सफल हुआ हुआ हूँ।" तुम्हें पता लगेगा पहले तुम्हें शरबत पीने में आनन्द आता था। तुम थोड़ी थोड़ी देर में शरबत के प्याले मंगवाने थे। आज तुम्हें शरबत का प्याला देखकर चुबा आती है। तुम मिष्टान्न का मूब खाद लेते थे। अब तुम उसे ३ रौंदी से ज्यादा नहीं खाया जाता। यह सब क्यों है? इसके कारण को दूँदना। अपने वर्ष भर के कार्यों की इन्मी इन्मी में लेकर उस पर कड़े आत्म निरीक्षण की विद्यासलाहें रगड़ना। एक ज्योति प्रकट होगी। उसक प्रकाश में सब आनन्द के श्रोत का देख लना। फिर उस ज्योति को हृदय में दिखाने में तब जाना। वहाँ उस आनन्द-कोट को दिखाने वाला दीपक पड़ा हुआ होगा। उस बुझे हुए दीपक को आज तुम जला देना। फिर, उसे कमी बुझने न देना। उसके प्रकाश में हमेशा सचमें आनन्द को पाना। तुम्हारे पास जो ऐसे सच्चे उसको गांध में एक विद्यालय स्थापित करने में लगाना जहाँ विद्यार्थियों के दिल में उस दीपक को उलथाया जाय।

इस प्रकार इस गांध में एक खलती फिरती दीपमाला रोज मलाई आवेगी।  
 हृदय को मालिक! यह तपोधन आज तुमसे यही सीख मांगने आया है। आज तपोधन ऐसी ही दिवाली मनाते जा रहा है।  
 [ दीपावली की सभा में पठित ]

### गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में दिवाली तथा ऋषि दयानन्द निर्वाण उत्सव

ये दोनों उत्सव बड़े समारोह से मनाये गये। दीपमाला के दिन सारा आश्रम तथा विद्यालय दीपों में जगमगा रहा था। मद्यचारियों ने कण्ठीस बनाकर अपने २ कमरों को सुसजित किया हुआ था।

श्री प परमानन्द जी विशालंकार का अध्यक्षता में सभा हुई जिसमें बड़े प्रभावशाली व्याख्यान हुए। श्री सर्यांग पुरुषोत्तम राम तथा श्री प दयानन्द जी जीवनों पर रोजनी डाली गई। ब्रह्मचारियों ने कविताओं, संगीत तथा अपने निबन्धों से जनता को अभिनन्दित किया। कई दूरक महोदय बाहर से पधारें हुए थे। रात्रि को सबका सम्मिलित महोत्सव हुआ था। तन्पश्चात् ब्रह्मचारियों ने गुम्बारे उठाये

इसके अतिरिक्त निर्वाण उत्सव के दिन अमेजी रेजीमेंट के साथ ब्रह्मचारियों का हाकी साम्युक्त हुआ, जिसमें दोनों दल बराबर रहे। खेल बड़े उत्साह से समाप्त हुई।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेम,

### गुरुकुल-समाचार

दीपावली के बाद प्रका के अनुसार कुल की सभी सभाओं के संश्रियों का नूतन निर्वाचन हो गया है। सभी सभियों ने अपने २ कार्यों को बड़ी उत्तर दायित्व के साथ पूरा किया था। प्र० सीस कुमारजी के स्थान पर प्र० गिरिधर जी, सर्वसम्मति से कुल संत्री बनाये गये, आप इस पद के योग्य और उपयुक्त हैं। अपनी इस सफलता पर वे हम सब के बधाई के पात्र हैं। अन्य सभाओं के संत्री निम्न प्रकार से चुने गये हैं।

सभा	संत्री	उपसंत्री
साहित्य परिषद्	भीष्मदेव जी	धर्मपाल जी
संस्कृतोत्साहिनी	बीरेन्द्रकुमार जी	दयानन्द जी
वार्तवर्धनी	चन्द्रगुप्त जी	प्रकाश चन्द्र जी
कॉलेज यूनियन	देवेश्वर जी	हरिवंश जी

हम इन सब बन्धुओं का स्वागत करते हैं, आशा है कि अपने संश्रित्व काल में आप सभाओं की खूब उत्पत्ति करेंगे। इन दिनों प्राय सभी ब्रह्मचारी यज्ञ के रूपमें चर्ला या तकली कातते हैं परन्तु यह कार्य नियमित रूप से नहीं होना था, अब चर्ला संप की स्थापना हो गई है, उसके प्रधान प्र० धर्मवीर जी हैं। कुलोपसंत्री हरिवंश जी चुने गये हैं।

डाहूप रायटिंग का कार्य प्रारम्भ हो गया है, १२ ब्रह्मचारी बड़े उत्साह सह साथ रहे हैं, सभी ने इन बोर्डों की दिनों में आश्चर्य जनक उत्पत्ति करली है।

श्री आचार्य जो गांधी सेवा संघ की बैठक में भाग लेने बर्धा गये हैं, आप वहाँ से ११ तारीख को आयेंगे।

दशान के उपाध्याय श्री सुलदेव जी विद्यावाचस्पति आम्न उबर से प्रमत्त थे, अब धीरे २ स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं।

इस मसाल के मान्य सभिय श्री पं० विराट् जी विशालंकार हैं। वार्तवर्धनी सभा की ओर से आपका 'मेरे संसार' के अनुभव' विषय पर वक्ता अनुभव पूर्ण मनोरंजक एवं उपादेय व्याख्यान हुआ।

### स्वास्थ्य समाचार

गुरुकुल १३ वीं श्रेणी ब्रह्म, दिनसगि ११ वीं श्रेणी उबर प्रतिरथाय, सच्चिदानन्द ११ वीं श्रेणी उबर प्रतिरथाय, सत्यप्रकाश ११ वीं श्रेणी उबर प्रतिरथाय, राजेन्द्र २ श्रेणी, आम्न उबर, विलीप २ वीं श्रेणी चोट-उबर, गोपाल ५ श्रेणी उबर, हरिवंश १२ श्रेणी उबर, सुरेन्द्र १५ श्रेणी चोट। अब सब अच्छे हैं। प्र० राजेन्द्र का भी उबर कम हो रहा है। आशा है कि शीघ्र आराम आजावेगा।

गुरुकुल कांगड़ी में सश्रित तथा प्रकाशित।

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विधविद्यालय का मुल-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहाय्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार १ मार्गशीर्ष १९६७; १५ नवम्बर १९६०

[ संख्या ११ ]

## प्रकाश का मूल आधार

[ स्व० श्री स्वामी भद्रानन्द जी का एक अनूनामिंत चर्मांतरण ]  
नतप्रसूतीभाति न चन्द्रतारकग्नेना विद्युतो भाति न कुतोऽप्यग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्यभामा सर्वमिदं विभाति ॥ कठोपनिषद् ।

यह पृथ्वी जो सहस्रों मील तक नाना प्रकार की वनस्पति, पत्थर, रेत, धातु आदि अनेक वस्तुओं से आच्छादित है, अपना चक्कर नित्य प्रति दिन काटती हुई किसा विचित्र दैवीय शक्ति का आधार बूँडती है। यह आकाश जिसमें करोड़ों मील तक तारे सितारे और अनेक सूर्य अपनी गति में अटल नियम का पालन कर रहे हैं जत-जाता है कि यह उदयति, यह सृष्टि और यह हरय किसी सर्वज्ञ और पूर्ण सर्वव्यापक शक्ति के आभित है। वायुचक्र, विद्युत् और भौतिक पदार्थ जब वैज्ञानिक तौर पर निम्न शक्तों को धारण करते हैं, क्रियात्मक रूप में बतला रहे हैं इस सृष्टि का कर्म महागम्भीरता और उद्योतमय शक्ति से अलंकृत है। जिज्ञासु जब इन विचित्र लोलाओं को विचारता है तो अपने नित्य के कार्यों में प्रकाशमय शक्ति को जोला का अनुमान करता है। दिन रात के समय में परिवर्तन हो रहा है। मौसम दिन प्रति-दिन बढ़ रही है। आज यदि पतझड़ से वृत्तों के पत्ते झड़ गये हैं वायु शुष्क और तीक्ष्ण चल रहा है गरम वायु शरीर फूलस रही है तो वह दिन दूर नहीं जब शीतल वायु आकाश मण्डल में मेघ दल को एकत्र करके इस हमारे निवास स्थान से वर्षा को विभूषित कर देगा। वर्षा की श्रुत कुम्ह भोषे दिन रहती है कि शांत श्रुत का आरम्भ होजाता है। फल फूल वनस्पति आदि सब अपने नियम से समय पर सृष्टिक्रम का प्रकाश करते हैं। जिज्ञासु आश्चर्यगुण भावों को अपने मन में विचार कर इस परि-खाम में पहुँचता है कि इस प्रकृति, इस ब्रह्माण्ड का जो रत्नक स्वामी और सृष्टा है उससे हमारा चनिष्ठ सम्बन्ध है। जब जहाँ और अधिक सोचता है तो अपनी बनाबट और ईश्वरीय आत्मिक शक्तियाँ उसे पूर्ण विरवास दिलाती है कि मैं हूँ संज्ञा के अनेक अनेक और असोम गुणों को ग्रहण कर अपने जन्म का सुधार कर सकता हूँ। इस भाव को धारण कर जिज्ञासु अपने से उच्च गुणों वाले महात्मा पुरुष की खोज करता है जो उसे अपनी क्रियात्मक अनु-

भव और दुख सुख का वर्णन कर सके। ऐसे महान् पुरुष सत्कार में प्रायः कम देखते हैं। आत्मिक बल के अभाव में और विद्याहीन होने के कारण वह किसी स्थूल वस्तु को अपना आधार बनाना चाहता है जिससे वह ऐसे महान् उद्योति स्वरूप को प्रत्यक्ष कर सके। परन्तु भौतिक इन्द्रियाँ अपने भौतिक विषयों में ही मग्न रहती हैं। उस उद्योति-मय अद्भुत अनन्त ब्रजवान और सर्वज्ञ ईश्वर की जो केवल स्थूल ही नहीं अपितु सूक्ष्म से भी भाति सूक्ष्म हैं क्यों कर पास करते हैं। जिज्ञासु विस्मित चित्त हो हारकर बचता जाता है और उसके मन को शांति के स्थान में आबिर्वास घेर लेता है। कभी भीरुजपन के विचार सिर पर सवार हो जाते हैं। कभी पुरति विचारों के संकाश पुनः आकर जगते हैं कि सूक्ष्म जगत् लक्षा को स्थूल पदार्थों का विषय न समझे। हमारा रूप का प्रत्यक्षज्ञान एकमात्र हमारा चक्षु द्वारा होता है। वस्तुएँ तभी दृष्टि गोचर होती हैं जब इस भौतिक चक्षु को अग्नि, विद्युत्, चन्द्रमा, तारा और सूर्य की उद्योति प्रकाश दान देती है। परन्तु यह पदार्थ तो स्वयं स्थूल हैं। इनसे स्थूल पदार्थ प्रतीत होगे। अतएव मन्त्रब्रह्म ऋषि विचार करते करते अपने विचारों को सरल उपदेश भरी बाणों में प्रगट करते हैं कि इस महान् प्रकाशमान् अनन्त जगत् रचयिता को अनुभव करने के लिये इस स्थूल उद्योति देने वाले भौतिक पदार्थों का आश्रय मत लो; क्योंकि न वहाँ सूक्ष्म का गमन है, न चन्द्रमा और तारा को उद्योति पहुँचती है न यह आँसों के चक्षियाने वाली बिजली उस स्थान पर प्रवेश कर सकती है और यह भौतिक अग्नि ता कदा जा सकेगा? उस महान् उद्योति के प्रकाश से यह सब प्रकाशित होता है और भौतिक प्रकाश देने वाले पदार्थ भी अपनी उद्योति उस उद्योतिमय से प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार से रूप आँस का विषय होता हुआ भी सूर्य, चन्द्रमा, तारे बिजली या अग्नि के आश्रय से चक्षु को प्रतीत होता है ऐसे ही इन भौतिक पदार्थों का प्रकाश भी उसी प्रकाशमय के आधार है। आनो! ईश्वर के दर्शन करने वाले सज्जनों! हम अपनी अज्ञानता को विचारों और सूक्ष्म से सूक्ष्म जगत् लक्षा को अनुभव करने के लिये अपने आत्मा के अन्दर गोता लगावें। क्योंकि इन भौतिक पदार्थों का ज्ञान उस अनन्त सरोवर की ओर हमें लेजाने में असमर्थ है।

## भारत के दरबार में होमियोपैथी

( ने. शी. ०. भोगवाज जी ]

( गतक से आगे )

( यह भारत अपने सबको सहित दरबार में सिंहासनाकङ्क है। प्रतिहारो एक शुभ्रवचना, शशिबदना महिला को भारत के सम्मुख प्रस्तुत करता है )

भारतः—क्या तुम वही महिला हो जिसने कल गगनगिरा द्वारा अपनी सेवाये हमें समर्पित की थीं ?

महिलाः—भगवान् मैं आपकी वही तुच्छ सेविका हूँ जो श्रीमान् की सेवा करने का अवसर प्राप्त करने में अपना परम सीमावय समझती हूँ ( यह कहती हुई मन मत्सक हो नमस्कार करती है ) ।

भारतः—( ध्यान पूर्वक महिला को नज से शिष्ट तक देखकर ) परन्तु तुम्हारा यह शरीर कृत्रिम के समान सुकुमार शरीर, हमारी भयङ्कर रोग-राक्षसों द्वारा दूषित, हीन दृष्टि तथा महानिर्बल स्तन/म की क्या सेवा कर सकेगी ?

महिलाः—श्रीमान् ! आप मेरे इस बाह्यावरण पर ध्यान मत दीजिये। मेरे इस ऊँच शरीर के तरकश में ऐसे २ शर भरे पत्रे हैं जो आपके भीषण से भीषण रोग राक्षसों का संहार करने में भी राम-बाण का बल रखते हैं तथा इसी कामधेनु-सामान स्वल्पकाल में सुधा के वे खोल भी विद्यमान हैं जिनके अनुसृत्य घृष का पान कर आपकी निर्बल से निर्बल स्तनान भी बड़े-२ कसानों का सामना करने से भी विमुक्त न हो पायगी। श्रीमान् ! मैं आपका ध्यान इस ओर विशेषरूप से आकर्षित करना चाहती हूँ कि मेरी इन सेवाओं का मूल्य भी इतना खल्प होगा जितना कि कल्प वृक्ष से ऊँचे फलों का।

भारतः—( आश्चर्य से ) तो क्या तुम हीन-दृष्टिों का तुच्छ दूर करने के लिये साक्षर दुर्गा, कामधेनु, तथा कल्प वृक्ष का अवतार धारण कर हमारे दरबार में उपस्थित हुई हो। परन्तु तुम्हारे श्लाघ्य तो हमें दृष्टिगोचर हो ही नहीं रहे हैं।

महिलाः—भगवान् ! मेरे श्लाघ्यों का, औषधमंडार का संक्षिप्त रूप यह आपके सन्मुख प्रस्तुत है। ( यह कह कर वह एक छोटी सी सम्पूककी खोलती है जिसमें कुछ शुद्धवर्ण की नर्तियों २ गोलियों से भरी कुछ शीशियाँ तथा कुछ लक्ष्म जल समान द्रव्य से भरी अनेक एक २ ड्राम की शीशियाँ पंक्तियों में बची विचार देती हैं )

भारतः—( होमियोपैथिक दवायों से भरे बक्स को देख कर ) यह क्या ! यह तो एक अच्छा फ्रासा मानुमती का पिठारा है। बालकों का मन बहलाव तो इससे बलुबो हो सकता है। देवी जी ! क्या तुम हमें भी इनसे बहकाया चाहती हो ?

महिलाः—नहीं महाराज ! ऐसी धृष्टता यह तुच्छ-सेविका कदापि नहीं कर सकती। श्रीमान् ! मेरे इन श्लाघ्यों में—इन स्वल्पकाल गोलियों में—रोग-राक्षसों का संहारा करने के लिये वह विष्य-शक्ति भरी पत्री है जो बड़े २ तोप के गोलों में भी नहीं पायी जा सकती तथा इन शीशियों के शिशिर जल में जगत् के जीवमान को जीवन प्रदान करने की वह अमोघ शक्ति अल्पनिहित है जो जगदाधार अलद-पदर्यों में भी तुल्यभ होती है !

भारतः—यह २ क्या कहने हैं तुम्हें गाल बजाना तो खूब ही आना है ! अच्छा, अब आप छपया अपने इस मानुमती के पिठारे को समेट कर शीघ्र ही यहाँ से सरपट हो जाइये। पधारने का कष्ट करने के लिये बहुत २ धन्यवाद। अर्घ्य सन्धि ! श्रीमती जी को कुछ पारिभ्रमिक धारिभ्रमिक भी तो भिन्न.....

महिलाः—नहीं महाराज ! मैं पारिभ्रमिक प्राप्त करने की लाहला से आपकी सेवा में उपस्थित नहीं हुई हूँ अपितु.....

भारतः—( बातकाट कर ) देवी जी ! जो रोग-राक्षस बड़े-बड़े सुतीक्ष्ण श्लाघ्यों से कट-बंदकर तथा विविध-विध उच्चेशनों को सुदृषों से निषेध कर भी बश में नहीं आ पाते, मझा वे तुम्हारी इन नर्तियों २ गोलियों की ओली भाली शक्ति देखकर थोड़े भाग बड़े होंगे, बशर्ते कि इन में कुछ जादू ही न भरा हो।

महिलाः—भगवान् ! इनमें सबकुछ जादू ही भरा होता है जिनका पता इनको परख करने पर ही चल सकता है।

भारतः—( आश्चर्य से ) क्या तुम सब कह रही हो ?

महिलाः—भगवान्—सत्य ! पूर्ण सत्य !! नहीं तो क्या पयंताकार शरीरवासा हाथी ही सबसे अधिक शक्ति-शाली होता है ? क्या उसे एक छोटी सी चींटी नहीं उलट देती ? क्या महाकाय मर्कट, नट द्वारा तरह २ के नाच नहीं नाचता ! क्या एक आस में हा अर्घ्यसुपूरल को निगल जाने वाली मिश्रा-मिश्राचरी बालातप के भागमन की सूचना मात्र प्राप्त करते ही समुद्र में नहीं जा कूवती ? क्या हमारा यह २ काम मोक्ष प्र सि का सचन भूत सुख शरीर अदृश्य आत्म-शक्ति से परित्यक्त होकर निश्चेष्ट नहीं हो जाता ! ( गाती है )—

कंह कुंभज, कंह सिन्धु अपारा,

लोकोक्त तुमल सकल संसार।

रवि मरुजल देवत लघु लगा,

उदय ताडु भिम्बन तम माता।

भारतः—पद्यपि तुम्हारी युक्तियाँ तो बड़ी प्रबल हैं परन्तु तुम्हारी दवायों में भी कुछ बल हो सकता है इसका विश्वास हमें तो होता नहीं।



महिला:—भगवन् बिना परने कैसे विश्वास हो सकता है ( गाती है )

जाने बिना न होइ परतीति,  
बिना परतीति होइ नहिं प्रीति ।  
प्रीति बिना नहिं भगति इच्छार्ह,  
जिनि तल पर जल की बिकनार्ह ।

भारत:—लेकिन हमारे सचिव गण भी तो तुम्हारी इन बधाइयों का उपहास ही कर रहे हैं ।

महिला:—“न वेत्ति यो यस्य गुरु-प्रकथं स तस्य निम्नं सततं करोति” जो जिनके गुरु को नहीं जानता वह उसका उपहास ही नहीं अपितु निम्नता तक कर जाता है । भगवन् ! यदि आपके ये हंस वंशावर्तल सचिव गण पकवार इनका गुरु पहिचान जायेंगे तो इनके अक बन जायेंगे । “संभ्रहः स्यात् न बिन्दु पहिचाने” । यदि इनकी परब हो जाने के पश्चात् इनका संभ्रह किया जायगा तो मेरा दावा है कि आपका एक सचिव भी कट्टी तिक कषाय श्रौषधियों के भर भर गिलास पीने में फिर कभी भी प्रवृत्त न हो पायगा । इस पर मैं याद कीर्ति पक्षपातवश इनका परिहास करेगा तो भी उससे इनका कक्षया ही होगा । ( गाती है )

“कल परिहास होइ हित मोरा,  
काक कहहि कल कइत कडोरा” ।

भारत:—इसने माना कि तुम्हारी ये गोलियां तुम्हारी बाणी के समान लुब्ध मजुर मजुर हैं परन्तु ये “म्याऊ” का दौरा” कैसे पकड़ सकेंगीं ? प्लेग के कीटाणुओं को ये पित्त किस प्रकार किल Kill कर सकेंगीं ?

महिला:—इन प्रकार जैसे अनेकषु तृण भ्रष्टार को, मिहशावक मत्त दन्तियों को न । कोटिकाम सुन्दर रामचन्द्र दशकंधर को भगवन्, मेरे इस कथन में लेशमात्र भी अत्युक्ति नहीं है । देखिये तुलसी व स ज्ञा भी कहते हैं—“तेजवत लजु गणिय न काह” यदि श्रीमान् इन अक्षयकाय गोलियों की बल परीक्षा करेंगे तो श्रीमान् की भी वही दृशा हो जायगी जो कौशल्या जी को लज्जा विजयी श्रीराम ज्ञा को दंभकर होगयी थी । ( गाती है )

“कौशल्या पुनि पुनि बुववरदि,  
बिनबनि कृपानिषु बुववरदि ।  
हृदय विचारति वारंहिवारा,  
कवन भसि लज्जापति मार ।  
अत सुकुमार युगल मम वारे,  
शिखर सुभट महाबल मारे ।

भारत:—अच्छा, तुम्हारी गोलियों की बल परीक्षा तो बाद की होगी पहिले अपना नाम धाम तो बताओ ।

महिला:—भगवन् ! सेविका का नाम “होमियोपैथी” है तथा धाम “जर्मनी” ।

भारत:—( चौंक कर ) है जर्मनी !!! देखने में तो तुम गौरी पार्वती सी लगती हो पर हो हिटलर की बनिन ! बस अब तुम्हारे गोल गोलें हमें न चाहियें । अब आप कृपया यही से.....

महिला:—( बात काट कर ) लेकिन मेरी पहिली उम्भभूमि तो भारत ही है । श्रीमान् मैं आपके लिये कोई विदेशीय वस्तु नहीं हूँ । आज भी आपके अनेक कविराज ओ मेरे सिखाव्यों के अनुसार “शतपुत्री तथा सहस्रपुत्री” श्रौषधियों के निर्माण करने में पूर्ण किपुष्ट है, मेरे भारतीय होने में सच्ची-रूप होकर प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

भारत:—हाँ याद तो कुछ हमें भी पड़ता है कि तुम इसी खान को मंजु हो । ठाक है “ममो हि जन्मभार संग तक्ष्म” । अच्छा यह तो बताओ तुम अब तक कहां लुप्त रही ?

महिला:—भगवन् आपके वैद्यराजों ने लक्ष्मी महागणी का पूर्णधिपय होने ही मेरा इस प्रकार परिस्थान कर दिया जिन प्रकार रामचन्द्र जी ने सीता जी का । तब अशरथ हुए मैं भस्मनात् हो भूतल में समा गया ।

भारत:—लेकिन अब तुमने अपनी मानभूमि का परिस्थान कर विदेश में क्यों उम्भ लिया ?

महिला:—यद्यपि मेरी मानभूमि भारत ही है तथापि परम पिता परमात्मा की आज्ञानुसार मुझे पश्चिमीय देश में इस्लामि उम्भ लेना पड़ा जिससे संसार मात्र का कल्याण हो सके । ( गाती है )  
“श्रीषधि भवति भूति भल सोर्ध,  
सुरसार् सम सब कर हित होई ।”

इसके अतिरिक्त यदि जिस खान में पैदा होती है वहां उसका पूर्ण आवृत्त वा सम्मान कभी नहीं हो पाता । ( गाती है )

“मधि माणिक मुकता कृषि जैसी,  
अधि गिरि गज सिर सोहन तैनी ।  
नृप किरोट, तरुणी तन पाई,  
सकल लहदि ोभा अचिकार ।

इसी प्रकार मेरा भी जो आवृत्त परदेश में हुआ वह लदेश में कभी नहीं हो सकता था ।

भारत:—लेकिन तुम परदेशियों के सम्मान तथा आवृत्त का मोह परिस्थान करने हमारी सेवा करने के लिये यहाँ कैसे आ पहुँची ?

महिला:—श्रीमान् ! “सती च योषित् प्रकृतिश्च निःसला पुनासमभ्येनि जनाम्परेष्वपि” ।

“कि मैं आपकी पूर्व जन्म की सती सेविका हूँ अतः आपकी अकि मेरे हृदय से बिकान में भी नहीं आ सकती । इसी लिये मैं दूर देश में जन्म लेकर भी आपकी सेवा में आ उतखिन हुई हूँ ।

भारत:—परन्तु तुम्हारा शौर कब हमारी सेविका होने का क्या अर्थ हो सकता है ?

[ सेन वृत्त ५ पर ]

# गुरुकुल

१ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९६७

## धन की शक्ति

गताक से आगे

मैं जो तुम्हारे हृदय पर अक्षित करना चाहता हूँ वह यह है कि तुम रुपये जैसे को धन समझना छोड़ दो। धन (अर्थ) तो वे सब वस्तुएँ हैं जो हमारे लिए उपयोग की हैं। सिक्के (रुपये जैसे) तो उन वस्तुओं के विनिमय के केवल साधन हैं। बहुत सी अनुकूलताएँ देखकर मनुष्यों ने इन धातु के (या कागजों के भी) टुकड़ों को विनिमय साधन के तौर पर स्वीकार कर लिया है। इनका धनत्व इतना विनिमय साधन होने में ही है। असली धन तो वे सब वस्तुएँ हैं—खाना, कपड़ा, पुस्तकें आदि—जिन्हें हम इन मुद्राओं द्वारा खरीदा जाना हुआ देखते हैं। असल में ये वस्तुएँ इन मुद्राओं द्वारा नहीं खरीदी जातीं किन्तु जिन वस्तुओं को हमने अपने अम से बना कर इन मुद्राओं को प्रमाण पत्र के रूप में पाया है उन वस्तुओं द्वारा ही खरीदी जाता है। मुद्रा तो केवल एक प्रकार की सहायितय के लिये बीच में रख ली गयी है। बल्कि हम जरा और धारिका से देखें तो हम पायेंगे कि हमारे अम से बना उपयोगी वस्तुएँ नहीं, बल्कि हमारा वह उपयोगी अम ही धन है। सिक्के के द्वारा दो आधिमियों के अर्थों स धनी उपयोगी वस्तुओं का विनिमय नहीं होता; किन्तु उन धाना के उपयोग अर्थों का ही परस्पर विनिमय होता है ऐसा कहना चाहिए।

यदि उपयोगी वस्तुएँ या उपयोगी अम धन है तो धनोत्पत्ति, अर्थोपाजन है उपयोगी वस्तुएँ उत्पन्न करना, उपयोगी अम करना। कुम्हार मिट्टी से घड़ा बना देता है ता वह कुछ उत्पन्न करता है, अनुपयोगी को उपयोगी बनाता है। खेत में एक शान बालने से हमारे अम द्वारा उसमें १०० दाने पैदा होते हैं तो यह धन का उत्पात है। पर रुपये का जेब में आजाना धनोपाजन नहीं। वह तो केवल विनिमय के साधनमूल सिक्के का आजाना है जो कि एक जगह से दूसरी जगह जाना ही रहता है। उससे कोई नयी वस्तु नहीं पैदा हुई, कोई उत्पत्ति नहीं हुई 'फल हेराफेरी हुई, फल स्थानान्तर हो गया। किन्तु मैंने जो अपने अम से कोई उपयोगी वस्तु रचा—सूत काता या शान की कोई पुस्तक लिखी—जिसके प्रत्याख्यरूप मुझे जैसे जेब में बालने का मिले, उस वस्तु को रचना तो बराबर अर्थोपाजन, नयी वस्तु का उत्पादन हुआ, न कि रुपये का मेरे पास आना। उस क्षात्रने या पुस्तक लेखन के अम के बहने में मुझे प्रत्याख्यरूप के रूप में जैसे मिले या न मिले पर अर्थोपाजन तो हो ही गया, अर्थोत्पत्ति होगी। वह उत्पन्न अर्थ किसी काम में लाया ही जा सकता है। तो बार बार सामने आने वाले सिक्के के पीछे जो अन्वली

धन है उसे मुझ अर्थी तरह समझो, पहचानो इसी लिए इतने विस्तार से इस विषय का कदा है। असली अर्थ, धन यही है ऐसी तुम्हारी धारणा हट होजानी चाहिए। और अर्थ को यह व्याख्या मैंने कोई आध्यात्मिक अर्थों में या किन्हीं दूसरे अर्थों में नहीं कही है, अर्थशास्त्र के अनुसार ही अर्थ की जो व्याख्या है वही मैंने बतायी है।

अब तुम यह देखो कि धन की शक्ति क्या है, इसकी शक्ति का स्वरूप क्या है? धन की यही शक्ति है न कि इसे देकर हम अपने में दूसरी अपने काम की चीज ले सकते हैं। अपना अम करके मैंने जो गेहूँ पैदा किया है (कमाया है) उसका कुछ अंश मैं लोहार को और चर्मकार को देकर चाकू और जूता प्राप्त कर लेता हूँ। आनाज को मैं सहायितय के लिये सिक्के के रूप में परिवर्तित कर खूँ तो भी वही बात है। आज कल ज्यादा तर होगा पैसा ही है, पर इस तरह बोझने से असली बात भ्राम्य हो जाती है। यदि मैं आनाज के पैसा से खरीदता हूँ ता भी असली धन यही है कि मैं अपने आंतरिक आनाज से चाकू और जूता आदि लेता हूँ। आनाज जगह बहुत घेरता है उसे इधर उधर लेजाना कठिन है अतः हम सिक्के को ही बरतते हैं, पर सिक्के का जहाँ यह लाभ है वहाँ यह दोष भी है कि इसी के कारण अति संग्रह तथा धन का अति दुरुपयोग संभव होता है और इन की सब हातियाँ समाज को अर्थ व्यक्ति को भोगनी पड़ती हैं, आनाज आदि वस्तुओं के संग्रह एक व्यक्ति बहुत नहीं कर सकता पर सिक्के बहुत रख सकता है एवं सिक्के के होने से धन शक्ति का दुरुपयोग (जिसका कि मैं आगे जिक्र करूँगा) अधिक आसान हो जाता है। और, आनाज से (या आनाज को बेच कर इकट्ठे किये पैसे से) मैं दूसरी चीजें खरीद सकता हूँ यह धन की शक्ति है। पर आनाज क्या है? यह मेरे अम से कमाया मेरा धन है। चाकू और जूता क्या है? ये लोहार और चर्मकार के अम के फल हैं। तो और मौलिक भाप में कहूँ तो धन की शक्ति यह है कि इससे हम दूसरों के अम को (अतएव अम के फल को) खरीद सकते हैं। तो धन इसी लिये जमा किया जाता है—अपनी तात्कालिक आवश्यकता से अधिक रखा जाता है—कि उससे हम दूसरों के अम का फायदा उठा सकें, बल्कि दूसरों के अम पर अधिकार पा सकें, मनुष्य के (शारीरिक या मानसिक) अम से जो कुछ धन सकता है उस धन में से जो चाहे वह पा सकें, जो चाहे मनुष्य के अम से बनाया सकें। अतएव समझा जाता है कि धन से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, या जैसा कहा जाता है "खरीदा जा सकता है"।

पर असल में धन की यह शक्ति कितनी परिमित है यह हम जान लें तभी हम यह समझ सकेंगे कि आश्रय या अक्षय का वर्ण वैश्य के वर्ण से ऊँचा क्यों है। सब से मध्य बात तो यह है कि धन की यह शक्ति तभी काम करती है जब कि किसी दूसरे लोगों में धनाभाव, धन-कान्क्षा, निधनता हो। जैसे विद्युत् शक्ति सब बनती है, धारा रूप में तब बहती है जब कि धन-अप्य रूप में वह कुण्डलापन हो जाती है। जैसे ही धन की शक्ति तभी बनती है जब कि एक धनी है तो दूसर निरन है, उसे धन की

आकांक्ष है अतः वह उस धनी से धन पाने के लिये अपना श्रम देने को वैशर है। यही तो कुल नहीं। कल्पना करो किसी आत्मीय के पास हजारों बीघे जमीन है या अरबों रुपया है, पर किसी कारण से दूसरे लोगों में से कोई भी उसकी जमीन या रुपये से फायदा नहीं उठाना चाहता, उसे अपना श्रम नहीं देना चाहता। वे अपने में संतुष्ट हैं अतः उन्हें उसकी जमीन या उसके रुपयों की दरकार नहीं। तो उस धनी आत्मीय का धन किस काम का ? इसमें कोई शक्ति नहीं। उसकी जमीन जंगल के समान है, उसके रुपयों का डेर उतनी मिट्टी के डेर के समान है। और यह केवल कल्पना नहीं है। संसार में सब जगह ऐसे कारण और ऐसी अवस्थाएँ प्रति दिन उपस्थित होती हैं जब ऐसा बस्तु होता है। पर हमारा उनको तरह ध्यान नहीं जाता। पं० धर्मेंद्रनाथ जो सुनाते थे कि एक बार सफर में बरसात के दिनों में बाढ़ के कारण उनकी रेलगाड़ी जिसमें वे यात्रा कर रहे थे ऐसी जगह फंस गयी जहाँ उनका सब वस्त्रक से संकथ्य दूट गया, वे सब शायद दो दिन तक भूखे रहे। यद्यपि उनकी जेब में रुपये नोट बहुत थे। क्यों कि उनके रुपये लेकर अपना श्रम देने वाला कोई आत्मीय लभ्य नहीं था। अतः उस समय उस गाड़ी में बैठे हुए वक्त्रों से बड़े आमीर और जिनके पास एक छद्मधर्म भी नहीं ऐसे गरीब एक बराबर थे। रुपया पैसा तो ख़ाया या छोड़ा नहीं जा सकता था। यदि किन्हीं के पास असली धन अर्थात् भोजन बन्धा होगा या वर्षा से बचने को कम्बल आविष्ट होगा तो वह तो काम आया होगा, पर सिक्के के रूप में आया धन तो वहाँ बिलकुल शक्तिहीन था। हम धनी इन्हीं लिये होना चाहते हैं न, जिसमें हम स्वयं आराम करने और मीज करने और अपने धन की शक्ति से दूसरों का ब्रह्म खरीद कर अपने इस आराम और मीज के लिये साधन जुटावें। हमारे घर में फ्राइडू दूसरा लगावे, हमारी दही दूसरा साफ करदे, हमारा भोजन दूसरा बनावे, और फिर इसके बाद हमारी और अनभिगत इच्छायें हैं जिनकी पूर्ति हम धन द्वारा चाहते हैं। पर ऐसे बहुत से कारण हो सकते हैं, और नोट होते हैं, कि जिनसे हमें दूसरा हमारे चाहे जितना धन देने पर भी अपना श्रम देने को न मिले। यही धन शक्ति को मर्यादा है। हम वृद्धि समझते हैं कि धन से सब कुछ खरीदा जा सकता है। मैं धन द्वारा उसी आत्मीय से बही बस्तु खरीद सकता हूँ जो आत्मीय उस वस्तु के लिये मुझ से धन पाने की परवाह करता है। यह जरूरी नहीं है कि वृत्ति कोई निर्धन है अतः वह मेरे धन की आकांक्षा भी रखता होगा। भौतिक धन न रखता हुआ भी कोई मनुष्य आत्म संतुष्ट, आत्मनिर्भर, बलिष्ठ आत्माओं की तरह बेचक और बेपरवाह हो सकता है। उसे कौन निर्धन कह सकता है ? और उस पर किसी की धनशक्ति क्या असर कर सकती है ?

स हि भवति वरिद्धि वर्य रूपा विराला,  
मनसि तु परितुष्टे कोऽर्षवान्, को वरिद्रः ?

ऐसे कश्चित् और ब्राह्मण होते हैं। वे निर्धन होते हुए भी (उँचे धनसे) धनी होते हैं। अतः धन शक्ति उन्हें बरा भूत नहीं कर सकती। वे कत्रिय या ब्राह्मण पद के

इसी लिये पृष्टे होते हैं क्यों कि वे इस वैर्य की शक्ति धनशक्ति—की परिमितता को अनुभव कर इस के बन्धन से मुक्त हो इसके ऊँची शक्ति को प्राप्त कर चुके होते हैं। (कमराः)

(दृष्ट ३ का शेष)

महिलाः—भगवन् ! यद्यपि भगवान् ने मुझे समस्त भूयस्वदल के प्राणियों की सेवा करने के लिये भेजा है तथापि भारत से मुझे विशेष प्रेम है। मेरे बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेने पर श्रीमान् का स्वयं पता चल जायगा कि अब भी मेरी बनावट (Make up) भारतीय ही है।

भारतः—परन्तु तुम्हारे शरीर और आयुर्वेद में तो बहुत अन्तर प्रतीत होता है।

महिलाः—भगवन् ! वाद्य-रूप में अन्तर होने पर भी मेरी और आयुर्वेद की अन्तरङ्ग बनावट लगभग एकसी ही है। देखिये, कोई पश्चिमीय चिकित्सा प्रणाली, मेरे समान, आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती सिवाय भारतीय आयुर्वेद के। तथा आयुर्वेद ही मेरे समान औषधियों को पुष्टी में (Potencies में) व्यवहार में ला चुका है। औषधियों के गुणों का केवल मनुष्यों पर परीक्षा करके परिष्कार प्राप्त करने की विधि मुझ में और आयुर्वेद में ही समान है तथा आयुर्वेद और मैं ही समस्त लोगों की उत्पत्ति प्रथम कर्मज तथा बाद की विदोषज मानते हैं। यदि मेरा चिकित्सा का एक मात्र नियम "समः समं प्रशमयति" (Similar Cures similia) है तो आयुर्वेद में भी "विषय विषमोषधयः" का सिद्धान्त चिकित्सा से प्रचलित है।

इस प्रकार आयुर्वेद से अपनी समता का कहीं तक बलान करूँ। सब पूछिये तो मुझ में और आयुर्वेद में नाम मात्र का ही भेद है। जब मैं आयुर्वेद सुजाता कन्या हूँ तो भेद होने का कारण भी क्या हो सकता है।

परन्तु आयुर्वेद ने मुझे चिरकाय से मुला दिया था। अब महात्मा हनीमैन के प्रसाद से मेरा "पुनर्जन्म" हो गया है जिसके द्वारा मेरा मुख-लक्ष्य संसार भर में पुनः प्रकाशित होगया है।

भारतः—यद्यपि तुम्हारे इस कथानक को श्रवण कर तुम्हारे अमदाता महात्मा हनीमैन की तथा अन्न कथा सुनने के लिये हमारी उत्सुकता बढ़ती ही जा रही है तथापि समय का विचार कर वह कार्य कल के लिये कथित किया जाता है।

महिलाः—भगवन् ! आपकी आज्ञा मुझे तिरोधर्म है तथा मुझे पूरी आशा है कि श्रीमान् मुझ पर नया कृपादृष्टि बनायें रखेंगे। (गाती है)

"बड़े सनेह कथुन पर करहीं  
गिरि मित्र सिरिज सदा लृल धरहीं  
जलजि अगाध, मोनि वह केंद्र,  
संतत धरति धरत सिर रेणु"

## प्रेम

[ अन्त- श्री विद्याकर ]  
( गतांक से आगे )

प्रथम अवस्था मिल में दोनों में आकर्षण होता है, बहुत ही आनन्द प्रद है। इस समय प्रेमी जन अपने को बहुत सुखी अनुभव करते हैं। उनका दृष्टि किन्तु बहुत आशा-वादी होता है। संसार की प्रत्येक वस्तु और किया उनको मुग्धवायी प्रतीत होती है। उनको दुःखी मनुष्यों को देख-कर बहुत आश्चर्य होता है। इस अवस्था में हरेक व्यक्ति यह अनुभव करता है, कि हमारा प्रेम-अवर्णनीय है। आज तक हमारे सिवाय किन्हीं दो में इतना गाढ़ प्रेम नहीं हुआ, न होगा।

'अपने युग में सबको अनुभव प्राप्त हुई अपनी हास्य, अपने युग में सबको अनुभव प्राप्त हुआ अपना प्यासा, फिर भी तुम्हें से जब पूछा एक यही उत्तर पाया, अब न रहे वे पीने वाले, अब न रही वह मधुराला।'

हमारा प्रेम अनन्तकाल तक इसी तरह से रहेगा। यह इस विचार की कल्पना को भी मूर्खतापूर्ण समझते हैं- कि एक समय आर्याणा, अब हमारा प्रेम घट जायेगा। इस समय प्रेमियों में अपने प्रेम के विषय में अलौकिक सम्बन्ध जोड़ने की आशय होती है। वे कहते हैं कि हमारा यह सम्बन्ध सामाजिक ही था। मेरी रक्ति भी ऐसी थी। लोग मुझे ऐसा ही कहा करते थे। यथा-ब्रह्मदेव को बान्हने वाला व्यक्ति, कहता है, कि त्वं म मुंके ब्रह्मनिष्ठ कहते थे, अर्थात् मेरा तो इससे सम्बन्ध होगा ही था। सत्यदेव को बान्हने वाला कहता है, मेरे माता पिता का बन्धन था कि मैं अगले जीवन में सत्य प्रेमी बनूंगा। ऐसी बातें अचानक हुई होती हैं, परन्तु वे इन से अपना सम्बन्ध जोड़ने लगते हैं।

इस समय दोनों में एक दूसरे को सुखी देखने की इच्छा होती है। वे अपने प्रेम पात्र को खुरा करने के लिये अपने आप दुःख भी सहने हैं। ऐसी बीजों भी करने लगते हैं, जिनमें उनकी रक्ति न थी। अपने प्रिय से पिय शौक को भी, जो प्रेमपात्र को पसन्द न हो, स्वीकृत कर देने हैं। प्रेमी को खुरा करने के लिये ऐसे साहसपूर्ण और आतुरता कार्य भी करने को तैयार हो जाते हैं साधारण अवस्था में जिनके वर्णन को भी वे सहन न करने थे। इस समय दोनों एक दूसरे के लिये व्याकुल रहते हैं। दोनों को देखने निकट पहुंचने और स्पर्श करने की इच्छा होती है, और इनसे उनको आनन्द प्राप्त होता है।

यह एक दूसरे को चाहना-इतना अधिक बढ़ जाता है, कि प्रेमी अपने प्रेमपात्र को केवल अपना ही देखना चाहता है। यदि उसका किसी और से सम्बन्ध जोड़ा जाये तो, इसको वह सहन नहीं कर सकता। उस दूसरे के प्रति उसमें ईर्ष्या का भाव आश्रित होता है। इसी को प्रेमसम्बन्ध न इन शब्दों में कहा है। प्रेम सोभी लावी गी नहीं, लुंकार शेर है, जो अपने शिकार पर किसी को आंक भी नहीं पंने देता।

किन्तु यह आकर्षण स्थायी वस्तु नहीं। कुछ समय बाद, भोजन की तरह से प्रेम पात्र से भी ऊंच जाते हैं। कोई भी वस्तु बहुत अधिक सहज से 'नापसन्द' हो जाती है। प्रसिद्ध भी है Familiarly breeds contempt, इस समय दोनों मनुभव करते हैं, कि दूसरा मेरे प्रति अवासीन होता आ रहा है। बचपन के शब्दों में— दो दिन ही मनु तुमके पिलाकर, ऊंच उठी साफी बाला,

मरकर अब जिसका देती है, वह मेरे आगे प्यासा। नाज, अर्दा, अर्दाजों से अब हाथ पलना दूर हुआ। अब तो कर देती है केवल फर्ज अर्दाई मधुराला। आगे वह इसी की सिद्धान्त के रूप में रहते हैं:— फितनी अन्वी साकी का आकर्षण घटने लगता है। अरे दूसरे ही दिन पहले सी रह न गई मधुराला। इस समय दोनों में सन्नेह और भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं और मन में एक बार भ्रम का प्रवेश होने पर उसे निकालना कठिन है। इस समय वह आनन्द नष्ट हो जाती है कि मेरा प्रेमी सुखी रहे। परहित का जगह स्वार्थ की भावना आजाती है। और वह प्रेम जिसको दोनों व्यक्ति संसार की बेजोड़ मिसाल समझते थे; सन्नेह, निराशा और दुःख से भरो हुए दुःखान्त नाटक के रूप में समाप्त हो जाता है।

इसका यह मतलब नहीं कि प्रेम का निराशा और दुःख अनिवार्य परिणाम हैं। इस निराशा और दुःख से बचने का भी एक उपाय है। जिस समय प्रेमियों में प्रेम की आग प्रज्वलित हो, उस समय उनको बेकबर होकर पड़े न देना चाहिये। अपितु अवसर का महत्व समझ कर अपने प्रेम का बहुरूप परिवर्तित कर लेना चाहिये। यह बहुरूप यथापि प्रेम का परिणाम है, किन्तु उसकी तरह स्थायिर नहीं। इस को सारे जन्म भर भी चलत्या जा सकता है। यह उपयोगी बहुत है। जीवन में इस प्रकार के बहुरूप बहुत ही सहायक होते हैं। 'यानि कानि च मित्राणि कर्तव्यानि शतानि च' में मित्र से ऐसे बहुरूप का हो तापर्य है। यदि दो प्रेमी बहुरूप बन चुके हों, तो फिर उन में किसी दूसरे व्यक्ति को प्रेमपात्र का प्रेमी देख कर भी ईर्ष्या नहीं होती, क्योंकि उनका प्रेम बहुरूप में परिवर्तित हो चुका होता है।

प्रेम में संचारयुक्तता संयोग और विधोय दो अवस्थाएँ होती हैं। इन दोनों ही अवस्थाओं का बहुत वर्णन किया गया है; किन्तु फिर भी विधोय का महत्व अधिक है। क्योंकि संयोग में यथापि पहिले व्याकुलता और अघोरता होती है, किन्तु फिर भी धीरे-धीरे तृप्त होती जाती है, विच का शान्ति मिलती है। किन्तु विधोय में उसकी इस व्याकुलता को तृप्त होने का मौका ही नहीं मिलता। अतः प्रेमी अपने प्रेमपात्र के लिए अधिक लग्न होजाता। दूसरे बहुत समय तक साथ रहने से कभी न कभी अनन्त भी हो जातो है, और प्रेम प्रकाश उनमें कुछ मनो-मालिण्य हो जाना है। किन्तु विधोय की अवस्था में उन कष्ट अनुभवों की स्थिति भी मधुर हो जाती है। क्योंकि इस समय ये कष्ट अनुभव स्थूल रूप में नो होते नहीं; अपितु प्रेमी को जो प्रेम पात्र के लिए व्याकुल है,

प्रेमपात्र की स्मृति देते हैं, अथवा उसमें कुछ समीपता ले आते हैं, और इस प्रकार बुझवायी होने के स्थान में सुखदायी हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में कवियों की उक्तियाँ भी प्रसिद्ध हैं—

१. विरह के आघात से प्रिय प्यार भी दूभा हो गया है। अश्वेत,

२. प्रेम को विरह पेय कोरि सूद होगा तो कहेगा।  
विरह की पीडा न हो तो प्रेम क्या जीता रहेगा ॥

३. किसी बस्तु के मूल्य का उस समय पता लगता है, जब वह न रहे। प्रेमसम्ब,

अब उन प्रेमियों पर आने हैं जिनका आकर्षण एक तरफ़ा होता है। हम में भी पहिले उनको लेते हैं, जो कि अपने प्रेमपात्र से बिलकुल निराश हो चुके हैं। यह निराशा की अवस्था बहुत ही बुझवायी होती है। प्रेमी अपने को असहाय, और नगण्य समझने लगता है। उसका किसी भी काम में रुचि नहीं होती, और इस प्रकार वह सामाजिक क्षेत्र में भी पिछड़ जाता है। परिणामतः उसमें Inferiority complex का प्रादुर्भाव होता है, जो अस्वास्थ्य की जड़ है। इस प्रकार के मनुष्यों को कई बार तो इतना घबका लगता है, कि वे पागल भी हो जाते हैं। इन निराश प्रेमियों का देख कर दया आये बिना नहीं रह सकती। यह अवस्था बहुत ही अवांछनीय है। यदि कोई मनुष्य इस अवस्था में स्थित हो जाये तो समझना चाहिये कि उसका जीवन बर्बाद हो ग।

। असामात )

## गुरुकुल—समाचार

श्री आचार्य जी गार्धी सेवासंघ की बैठक में भाग लेकर लौट आये हैं। वाग्दिनी सभा की ओर से सब कुल वासियों के बीच में आपने देश की वर्तमान परिस्थिति पर अन्वष्टा प्रकाश डाला। अन्त में ब्रह्मचारियों का शंकाओं का समाधान किया गया।

## प्रायुर्वेद जन्मोत्सव की सफलता

प्रायुर्वेद परिषद् का १६वां जन्मोत्सव २६ कालिक रविवार को बड़ी धूमधम से श्री पं० केशवदेव जी हानी के समापित्व में मनाया गया। इसमें गुरुकुल के कृति कार्यों ने अपनी २ लेखन शैली का दिग्दर्शन कराया। साथ ही श्री समापित जी तथा उपाध्याय श्री वैद्य धर्मदत्त जी सिद्धान्तालंकार, प्रधान प्रायुर्वेद परिषद् के भाष्य बहुत ही सारगर्भित एवं गवेषका पूर्ण हुवे। श्री वैद्य जी ने प्रायुर्वेद की महानता को दर्शाते हुये बहुत ही सुन्दर एवं रोचक ढंग से प्रायुर्वेद के आधार भूत सिद्धन्तों (वात, पित्त, कफ) का विश्लेषण किया। इसने अतिरिक्त इसमें निबन्ध प्रतियोगिताएँ भी थीं। जिनमें एक प्रतियोगिता श्री ल० लक्ष्मण जी वैद्य की निम्नलिखित की ओर से थी। इसमें निम्न सर्वोत्तम निबन्ध लेखकों को ३ इनाम दिये गये। प्रथम पुरस्कार—श० रामदेव जी १४ श० ५। द्वितीय पुरस्कार—श० रघुनाथ जी १४ श० ३।

तृतीय पुरस्कार—श० शोभाकाश जी (शु०) १४ श० १।  
दूसरी प्रतियोगिता श्री आतक धर्मप्रकाश जी मेरठ निवासी की ओर से थी, उसमें श० ब्रह्मेश कुमार जी १३ श० ० को ३ पुरस्कार रूप में दिये गये।

प्रायुर्वेद परिषद् की ओर से कविता, गल्प, प्रहसन और गद्यगीत प्रतियोगिताओं में निम्न प्रकार से पारितोषिक वितरित हुआ।

सर्वश्रेष्ठ गल्पकार श० जगदीश जी ११ श० १।

सर्वश्रेष्ठ प्रहसन श० वेदराज जी १४ श० १।

सर्वश्रेष्ठ गद्यगीत श० आनन्द जी १४ श० ३।

सर्वश्रेष्ठ कविता का पुरस्कार श० उदयवीर जी १४ श० ० की ओर से दिया गया था, परन्तु उन्होंने छोटे ब्रह्मचारियों की गायक पार्टी से प्रसन्न होकर उनको ही देने की घोषणा करवाई।

सभा के उपरान्त एक प्रतिभोज का आयोजन किया गया उसमें भार्गव रमेशचन्द्र जी १२ श० ० ने अपने सुमधुर गानों से सबको आनन्दित किया।

सायंकाल को प्रायुर्वेद महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों का कुल से हस्त कम्पक में साधुबुद्ध हुआ जिसमें प्रायुर्वेद वालों की विजय हुई।

अगले दिन रात को सभा का नवीन चुनाव निम्न प्रकार से हुआ जिसमें निम्न महासुभाषक अपने पदों के लिये उपयुक्त समर्थक चुने गये:—

श० भास्कराज जी

(अध्यक्ष प्रायुर्वेद महाविद्यालय) प्रधान-

श० ब्रह्मेशकुमार जी १३ श० ०-अग्नी

श० विद्यार्ति जी १२ श० ०-उपअग्नी

श० दयानन्द जी १२ श० ०-सम्पादक "प्रायुर्वेद" पत्रिका

श० शंकरदेव जी ११ श० ०-उपसम्पादक

अन्त में भूतपूर्व मन्त्री श्री श० रघुनाथ जी १४ श० ०

और श्री उपअग्नी श्री लीपवन्धु जी १३ श० ० ने जो इस वर्ष पर्याप्त सफलता पूर्वक कार्य किया है, उनको सम्पूर्ण प्रायुर्वेद महाविद्यालय के सदस्यों की ओर से धन्यवाद दिया गया। इसके अनन्तर शान्तिपाठ के बाद सभा विरामित।

## स्वस्थ समाचार

श० वेदप्रकाश ३ अंश की उमर, श० रवीन्द्र ३ अंश की उमर, श० देवदत्त ३ अंश की उमर, श० देवेन्द्र ४ अंश की उमर, श० वेदभूषण ४ अंश की उमर, श० अमर सिंह १ अंश की उमर।  
गत सप्त हये ब्रह्मचारी बीमार थे—अब सब स्वस्थ हैं।

भूल सुधार—गत श्रमक में भूल से चर्कालंघ के प्रधान पद के लिये श० धर्मवीर जी का नाम चुन गया था। प्रधान की सत्यचूना जी हैं। श० धर्मवीर जी मन्त्री हैं।

## जाड़ों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों को कमजोरी धातु क्षीयता पुरानी खांसी, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभ दायक है। बरुचे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शोक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाख (१०) आध सेर (२०) १ सेर ४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियों से तैयार की गई ये गोलियां सब प्रकार का कमजोरियों में अक्सोर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करती है।

मूल्य २७) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजीत और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ॥) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ॥) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियां बेच रहे हैं। इसलिए दवा खरोदते समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

जान	{	देहली—चारनो चौक।
		मेरठ—सिपर रोड।
एजेंसियां	{	लखनऊ—एजेंसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।
		लाहौर— " " " " इस्पताल रोड।
		पटना— " " " " मल्लभारती बाकीपुर।
		अजमेर— " " " " वैद्यराज सरदारालाल जी कृष्ण चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी जिसहानपुर**

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २।।)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश बदलंकार

वर्ष ५.]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार ८ मार्गशीर्ष १९६७; २२ नवम्बर १९५०

[ संख्या ३२

## जिज्ञासुओं की कुञ्ज सेवा

(इस लेख में श्री प्रो० विष्णुनाथ जी वेदोपाध्याय प्रश्नों के उत्तर देते हैं।)

प्रश्न—शिक्षा ने क्या सुराह है। सर पर सम्पूर्ण बाल रक्षना अथवा सर के मध्य में थोड़े से बाल रक्षना ?

उत्तर—शिक्षा के प्रमाद्य निम्न हैं—

(क) “अथ विन्नं स्वर्ग्ययं पुरस्तात्प्रसक्तं गृह्णाति “विष्णो-स्तुषोऽसीति”। यद्यो ये विष्णुः, तस्येयमेव शिक्षा स्तुषः। येनामेवास्मिन्नेतद्गृह्णाति। पुरस्ताद् गृह्णाति, पुरस्ताद्गृह्यं स्तुषः, तस्मात्पुरस्ताद् गृह्णाति” (शतपथ ब्राह्मण १।३।५)

नोट—शतपथ ब्राह्मण को भारतीय विद्वान लगभग ३००० ई० पू० का मानते हैं।

(ख) “ये भूतानामधिपतयः विशिखासः कपदिनः।” (यजु० १६।५६)।

नोट—विशिखासः—शिक्षाविशिष्टाः।

(ग) “यत्र बाष्पाः संपतन्ति कुमारः विशिखाः इव” (यजु १७।४८)।

प्रश्न—शिक्षा रखने की कब से प्रथा है ? क्या आदि काल से है अथवा किसी दूसरे काल से ?

उत्तर—शिक्षा सम्भवतः एक विन्ध है मस्तिष्क की सुरक्षा और उन्नति का।

प्रश्न—शिक्षा रखने का क्या प्रयोजन है। यह क्यों का विन्ध ही है या इसका कोई और विशेष प्रयोजन भी है। इसने क्या लक्ष्य है ?

उत्तर—शिक्षा में हृदय की उन्नति अधिक अपेक्षित है इस लिए मस्तिष्क की उन्नति का विन्ध उनके लिये नहीं नियत किया गया।

प्रश्न—यदि यह विन्ध रूप ही है अथवा इसका कोई दूसरा प्रयोजन भी है तो सम्भ्यासी और शिष्यों के लिये क्यों इसका विधान नहीं है ?

उत्तर—संभ्यासी सभी विन्धोंसे मुक्त रहते हैं। संभ्याय अथवा मे स्वैच्छति के स्थान में परीक्षति का मुख्य स्थान होता है। इस लिये स्वैच्छति के विन्ध संभ्याभावस्था में कोई भी नहीं रखे जाते। इस लिये शिक्षा स्व आदि विन्ध जो सर्व साधारण के है उनका धारण करना सम्भ्यासी को बहित है।

प्रश्न—मुष्टन संस्कार के समय जब बच्चों के पहिले बाल काटे जाते हैं उस समय क्यों शिक्षा नहीं रखा जाती ? दूसरी बार बाल कटवाने पर रखा जाती है।

उत्तर—प्रचीन समय में कई सम्प्रदाय या वंश एक म अधिक शिक्षार्थ भी रखते थे। ये मस्तिष्क की भिन्न २ शक्तियों की सुरक्षा तथा उन्नति के विन्ध रूप होने होंगे—सम्भवतः यही धारणा यहाँ काम करती हो।

प्रश्न—शिक्षा के लिये सर का मध्य स्थान क्यों निश्चय किया गया ? इस में क्या लक्ष्य है : सर के प्रागे-पीछे-दायें-बायें क्यों नहीं रखते ?

उत्तर—यस्तुतः ये सब विन्ध ही हैं किन्ती विशेष उद्देश्य के स्मारक रूप में हैं। इन विन्धों को ध्यय समझ लेना भूल है। इस लिये ऋषिद्वयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में गरमी आदि के आधिक्य में शिक्षा कटा देने का भी विधान किया है।

## होमियोपैथी के जन्मदाता

### महात्मा हनोमैन का अवतार:—

(नेपोथी० डा० ओम्पकारा जी विद्यालङ्कार)

(३)

यद्यपि आधुनिक होमियोपैथी के आविष्कारकर्ता सैम्युल फ्रेडरिक हनीमैन (१७५५-१८४०) ही हुए हैं तथापि होमियोपैथी के प्रथम जन्म का दाता भारतीय आयुर्वेद ही है, अतः होमियोपैथी की जन्म-कथा आयुर्वेद के जन्म काल से ही प्रारम्भ होती है।

आयुर्वेद का जन्म, बीज रूप से, अथर्ववेद के अन्तर्गत सम्भूत हुआ है। भाष्यप्रकाश लिखता है "विधाताथर्व-सर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन्" अर्थात् ब्रह्माने अथर्व वेद के सत्यत्व आयुर्वेद का प्रकाशन किया है।

आयुर्वेद का द्युपनिषत् "आयुषो वेदः" है। अर्थात् जो विज्ञान आयु विषयक सब ज्ञान वा प्रक्रियाओं का प्रतिपादन करता है वह आयुर्वेद कहलाता है। आयुर्वेद शब्द की निम्न दो व्युत्पत्तियों के आधा पर आयु विषयक सब ज्ञान आयुर्वेद शब्द के अन्तर्गत हो जाता है। (१) "आयुः विन्दतीत्यायुर्वेदः" जिस विज्ञान द्वारा मनुष्य रोगों द्वारा अपहृत की जाती आयु को पुनः प्राप्त कर लेता है वह आयुर्वेद कहलाता है। इसके अनुसर चिकित्सा-विषयक (Treatment) द्वारा रोग आयुर्वेद के अन्तर्गत हो जाता है तथा (२) "अयुषेणोन्व्यायुर्वेदः" जिस विज्ञान द्वारा मनुष्य आयु का प्राप्ति करने के साधनों का ज्ञान लेता है वह भी आयुर्वेद कहलाता है। इसके अनुसर स्वास्थ्य रक्षा (Hygiene) तथा परिमाण (Prophylaxis) का साधन कार्य भी आयुर्वेद शब्दा-न्तर्गत हो जाता है। सांग्रह यह है कि संसार की सब भाषाओं में आयुर्वेद शब्द ही एक ऐसा व्यापक शब्द है जिसके अन्तर्गत आयु सम्बन्धी सब ज्ञान आ जाता है।

जब आयुर्वेद इतना व्यापक तथा विस्तृतार्थ बोधक है तो उनमें उन सब विधाओं का जिनके द्वारा आयु सम्बन्धी कुछ भी कार्य होता है सम्मिलित होना परमआवश्यक है तथा उसके जनक अथर्ववेद में भी उसका व ज रूप से पाया जाना आवश्यक हो जाता है। आधुनिक होमियोपैथी के "समः समं प्रशमयति" के सिद्धान्त के अनुसार चिकित्सा तथा परित्राण विषयक सब कार्य भली भाँति सम्पन्न हो रहा है अतः उसका सम्मिलित आयुर्वेद में अवश्य होना चाहिये तथा बीजरूप से उसका अस्तित्व अथर्ववेद में भी पाया जाना अनिवार्य है।

आयुर्वेद में "विषमोषधम्" का सिद्धान्त तो पाया जाता है जिसके क्रियात्मक रूप "दुष्कानो किल बन्दिना हिनकरः मेकोपिन्धोऽन्नदः" से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक होमियोपैथी के "समः समं प्रशमयति" के नियम का आदिधान्त आयुर्वेद में ही है।

अथर्व वेद में भी यह सिद्धान्त बीजरूप से कहीं विद्यमान है या नहीं इसकी जाँच करने पर हमें निम्न अर्थ प्राप्त हुआ है।

"अपेहि अरिस्त्रि अरिर्वा अस्ति। विष विषमपृ कथा, विषमिदृ वा अपृ कथाः। अहिमेवाभ्युपेहि तं जहि।" सप्तम काण्ड। अनुवाक ८, सूक्तम्, मंत्र १।

हमारी सुस्पष्टबुद्धि द्वारा इसका यह अर्थ हो सकता है:—

"दूर हो तु शत्रु है, या शत्रु सा है। उसे दूर करने के लिये इस प्रकार कार्य कर जैसे विष को दूर करने के लिये विष का प्रयोग किया जाता है, विष का ही प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ—ताप का पकड़ और उसके विष से विष को मार। इसका सांग्रह यह है कि जित प्रकार विष से विष को मारा जाता है उसी प्रकार शत्रु को शत्रु द्वारा मार। इस प्रकार बिना किसी प्रकार की चैतनाती किये इस मंत्र में "विषस्य विषमापधम्" का बीज स्पष्ट-तया झलक रहा है।

इतिहास वेत्ता विद्वान् प्रायः एक मत होकर स्वीकार करते रहे हैं कि भारत में ही सब विद्यार्थ देश देशान्तरों में प्रवाहित हुई हैं। सिकन्दर के आक्रमण काल में अल्प देशीय मनुष्यों का भारत में याना-यान लुलकार होने लगा था। तभी से भारतीय सभ्यता सदिता अविच्छिन्नरूपेण अन्य देशों में बहने लगी; जो अरब तथा पर्सिया इत्यादि देशों में बहनी हुई प्रीस में जा पहुँची। भारतीय आयुर्वेद विज्ञान का भी इस मार्ग में प्रीस में पहुँच जाना असम्भव नहीं हो सकता।

प्रीस का प्रसिद्ध डाक्टर Hippocrates (B. c. 456) पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का आदि शुरु सम्भूत जाता है। उसने लिखा है "Diseases can be cured either by opposites or similars" अर्थात् रोगों का प्रशमन या तो "समा" अथवा "विषमो" के सिद्धान्त के अनुसार हो सकता है। उसके इन विचारों का जन्मदाता क्या हमारा आयुर्वेद तो नहीं है?

डाक्टर मैकडोनाल्ड साहब अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "A History of Sanskrit Literature" में लिखते हैं:

"Some close parallels have been discovered between the works of Hippocrates and Charaka. अर्थात् चरक और हिप्पोक्रेट्स के लेखों में बहुत सी समानताएँ पायी गयी हैं।

इस लेख को पढ़कर हमारा सम्मति तो यही हो जाती है कि आयुर्वेद का प्रभाव हिप्पोक्रेट्स पर पड़ा जिसने योरोप का चिकित्सा विज्ञान के दोनों सिद्धान्त साथ २ समापत् किये। अठाहर्षी शताब्दी के अन्त तक योरोप में केवल "विषयो" के सिद्धान्त के अनुसार ही चिकित्सा का कार्य होता रहा जिसका मूलमन्त्र "विषमं विषमं शमयति" रहा। इस सिद्धान्त के अनुसारे होने वाली चिकित्सा पद्धति "Allopathy" कहलायी, जिसका सब से विख्यात प्रवर्तक Dr. Galen हुआ।

Allopathy के इतिहास के अनुशीलन से हमें पता चलता है कि इस सिद्धान्त के अनुसार चिकित्सा होने



पर जो कुछ सफलता होती रही उससे न केवल साधारण जनता के विज्ञान पुरुष अपितु इसके उपासक भी बहुत कुछ असन्तुष्ट ही रहे।

बेकन (१६२१ ई.) के नाम से कौन विद्वान् पुरुष अपरिचित है। उसने तत्कालीन प्रचलित एलौपीथी की चिकित्सा विषयक अशक्तता को अनुभव करते हुए लिखा था कि "दार २ असाध्य कहकर छोड़ दिये जाने वाले रोगों का इलाज कर सकने वाली विद्या की बड़ी सबन आवश्यकता है, क्योंकि रोगों को असाध्य वा अचिकित्स्य घोषित करना अपना अज्ञान वा प्रमाद प्रगट करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।

इसी भाव को रसायन शास्त्र के आदि गुरु Boyle ने भी निम्न शब्दों में प्रगट किया था "मैं विज्ञान चिकित्सकों से यह कहते कि नहीं रह सकता कि उन्हें चिकित्सा विज्ञान के अग्रगत अथवा सब विषयों की अपेक्षा रोगों की चिकित्सा विषयक उन्नति की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये; क्योंकि चिकित्सकों का मुख्य उद्देश्य रोगियों को रोग-मुक्त करना मात्र ही होता है।

Boyle के उक्ताने में चिकित्सा विज्ञान ने Anatomy, Physiology, तथा Pathology में विशेष उन्नति प्राप्त की थी। परन्तु उसकी सम्मति में यह सब बेकार थी जब कि वह चिकित्सा के कार्य में कुछ विशेष सहायक न हो पायी।

Sir Johan Forbes ने जो कि इङ्ग्लैंड का उस समय का सबसे प्रसिद्ध डाक्टर था लिखा था:-

"Things in medicine have arrived at such a pitch that they cannot be worse, they must mend or end" (अर्थात्-चिकित्सा का कार्य असफलता की उस पराकाष्ठा का पहुँच चुका है कि जहाँ पर या तो निःशेष हो जाना चाहिये अथवा इसका पृथ मुधार हो जाना चाहिये।)

इस प्रकार के अनेक और उदाहरण भी दिये जा सकते हैं जिनसे यह विषय स्पष्ट हो जाता है कि योरोप के डाक्टर लोग ही तत्कालीन चिकित्सा से असन्तुष्ट होकर या तो उसे सदा के लिए समाप्त ही कर देना चाहते थे या फिर उसमें सुधार करना अनिवार्य समझते थे। चिकित्सा के कार्य की सदा के लिए समाप्त कर देने को कहना उसकी उन्नति के लिए अधिक से अधिक जोर दार शब्दों में अग्रज करना मात्र ही हो सकता है।

इस अभीष्ट से अतिरिक्त होकर योरोप के निम्न २ देशों में अनेक चिकित्सकों ने चिकित्सा विषयक उन्नति करने के लिए विशेष प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। चूँकि इनके पास भी, इनके पिताओं के समान, चिकित्सा विज्ञान के साथ नियम का कोई विश्वेशक यन्त्र मौजूद न था; अतः इनके घोर प्रयत्नों का परिणाम पहिले से भी अधिक घातक सिद्ध हुआ। इन्हींने डार्वे तो खूब जोर से मेसी प्रारम्भ करदी परन्तु भाव कोलना—लङ्कन उठाना—भूल गये। ज्यो २ इन्हींने खूब बल के साथ भाव सेना प्रारम्भ

किया तब ३ भाव के आध्यात्मिक हिलने दुलने से भाव में पानी भरने लगा। भारी भाव का क्या हुआ करता है यह सब जानने ही हैं।

इसो नामक फ्रांस के एक प्रसिद्ध चिकित्सक ने रोष सागर से पार पाने का एक नया साधन आविष्कृत किया। उसने बताया कि तमाम रोग रक्त की अधिकता तथा उसके संवाहक में तेजी आ जाने के कारण ही पैदा होते हैं; अतः यदि रोगी के शरीर में से कुछ रक्त निकाल लिया जाये तो रोग प्रशमन शीघ्र ही हो सकता है।

इस Physiological System के अनुसार रोगियों को रक्त के मात्र से मुक्त करने के लिये उससे फ्लस तुलना (Venesection) जोक लगवाना, तथा cupping द्वारा रक्त निकालना इत्यादि उपायों का भी आविष्कार किया। इन उपायों द्वारा रोगियों को रक्त से मुक्त करने की अग्र-परम्परा योरोप में सर्वत्र जारी हो गई। उन समय किसी ने भी यह सोचने का कष्ट नहीं उठाया कि भाव में स्वभाव याज्ञिकों की भोजन-नामप्राप्त समुद्र में फँक कर भाव को हलका करके उमें शास्त्र में शीघ्र उद्दिष्ट स्थान पर पहुँचाने का यत्न करने का क्या परिणाम हो सकता है! क्या माने जाने काल्पनिक नृकान द्वारा इन कर मरने का आशङ्कना में यानियों को भूला मरना उचित है? न भिक्षु या मत समर्थक, जिस प्रकार आग में हाथ डालने पर आग जलाने का काम किये बिना कभी नहीं चूकनी उसी प्रकार कसों की यह विवेकमय चिकित्सा प्रणाली समान मूल-दीपकों के समान अन्तिम दिग्दिग्माहट दिग्-कर रोगियों का मदा के लिये शान्त करने लगी। रोगियों के सम्बन्धी-गण अपने प्रिय जनों को, उनकी नील पुकार बन्द हो जाने के कारण पहिले कुछ २ अशक्त होना समझ तथा बाद की अचानक चुपचाप जिसकना देखकर आश्चर्य सागर से गोने लाने लगे। उनका इस आश्चर्य सागर से निस्तार करने के लिये डाक्टर लोग दार्शनिक विचारों का सहारा देते लगे। भारत के समान यहाँ भी भाग्य, आयु, विधि-विधान इत्यादि आचरणों द्वारा डाक्टर लोग अपने चिकित्सा-विषयक अज्ञान तथा अशक्तता को छिपाने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु स्वर्ग का सीधा टिकट कदा युक्त रोगियों के प्रियजनों के दृष्टे दिग् इन हलीलों के ऊपरी टाँके से कहाँ लुट सकने थे। उनके वे टाँके निज प्रियजनों की वियो तन्नि में पिघल पिघल कर बलान् अलग २ जा पड़े तथा उनके हृदयकरों घट कुट २ कर अस्मिन् अशुभधारा धरमाने लगे। योरोप में जहाँ ओंग हाहाकार मच गया तथा यत्र तत्र सर्वत्र "आहि माम् आहि माम्" की पुकार नुमाई पड़ने लगी। हजारों विधवाओं का करण कन्धन, लावो मानाओं की पथुवर्वा संकटों पिताओं की दहाड़े तथा असंख्य बालकों का आर्षनाद आसमान के भातों पर्वों का फाड़ कर परम पिता के कर्ण कृपों में जा ही पहुँचा!

# गुरुकुल

८ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९६७

## धन की शक्ति

[ ३० वीं आचार्य धर्मवचन ]

( गणाक से आगे )

द्वितीय की शक्ति वीरता-शक्ति है, और ब्राह्मण की शक्ति ज्ञानशक्ति है। धनशक्ति से जो कुछ मिलता है द्वितीय और ब्राह्मण को वह तो बिना धन के ही मिल जाता है और धनशक्ति से जो नहीं मिल सकता वह भी इन्हें वीरता और ज्ञान की शक्ति से भरपूर मिलता है। वीर, साहस, उत्साह, पुष्कर का अपने भरण पाषण के लिए फिक्र करने की जरूरत नहीं होती, उनके अनुयायी, उन्हें अपना संरक्षक और पालक देखने वाले उन्हें इस फिक्र से निश्चिन्त रखते हैं। इसी तरह ज्ञानी पुरुष को उनके दूसरी तरह के अनुयायी, शिष्य, भक्त, उनकी ये सब चिन्ता करने हैं, उन्हें इसकी भी परवाह नहीं होती कि उनकी चिन्ता हो भी रही है या नहीं, यदि चिन्ता नहीं हो रही तो भी वे किसी भरोसे निश्चिन्त रहते हैं। मतलब यह है कि धन से जो कुछ सामूली तौर का मनुष्य के अर्थ का फल मिलता है वह भरण पोषण आदि ता द्वितीयों और ब्राह्मणों का यों ही मिलना ही है पर मनुष्य के ऊंचे जूर के अर्थ का परिणाम भी ( जो धन से नहीं खरीदा जा सकता ) उन्हें उपरांत अधिक मिलता है—यह महान और अद्भुत परिणाम वैश्य से अधिक ( वीरता शक्ति वाले ) द्वितीय को और क्षत्रिय से भी अधिक ( ज्ञान शक्ति वाले ) ब्राह्मण को मिलता है। प्रतापमिह जैसे क्षत्रिय को भामाशाह जैसे वैश्य ढुंढते फिरते हुए आकर मिलते हैं और सब कुछ दे देते हैं। रामदास जैसे ब्राह्मण को शिवाजी जैसे क्षत्रिय अपना 'संपूर्ण' राज्य तक समर्पित करके उनके आश्रितारी अनुचर हो जाते हैं। धन में मनुष्यों का वह अद्भुत और महारथ अर्थ प्राप्त करने की शक्ति कहा है जो कि वीरता और ज्ञान में है? जब एक मरुचा वीर पुरुष किसी दुष्कर कार्य के लिये ललकार करता हुआ उठता है तो सैकड़ों हजारों पुरुष अपनी जान हथेली पर रख कर उसके पीछे हो लेते हैं। क्या वह उन्हें धन देकर अपना अनुयायी बनाता है? एक महान गुरु के शिष्य अपना सर्वस्व, शरीर और भौतिक संपत्ति ही नहीं किन्तु मन हृदय भा अहम् से उनके चरणों में समर्पित कर देते हैं, अपना कल्याण समझते हुए उनको सब आशा मन और हृदय से पालन करने के लिये सदा तैयार रहते हैं। क्या वे वीरता या ऐसे किसी भाववेश में आकर स्वयं-सेवक सैनिकों की तरह कुछ काल के लिये अपना 'सेवाएं' दे देने का, अपने को जोशा में खपा देने का आनन्द पाने के लिये कहीं ऐसा करते हैं? धन मिलने की तो बहा बात करना ही व्यर्थ है। मनुष्य धनाकर्षण या धन शक्ति में हा

परिचासित होता है वह मरणा मनुष्यता का अपमान करना है। रक्षिक ने ठीक कहा है कि आज कल के अर्थ-शास्त्री तो यह समझ कर चलते हैं कि मनुष्य एक केवल स्थूल भौतिक तत्व का बना हुआ यन्त्र ( मशीन ) है जिस में जितना धन रूपी कोयला क्रोंका जायगा वह उतना ही अधिक काम होगा। पर मनुष्य केवल भौतिक शरीर नहीं है उसमें अनुभव करने और बिचारने की शक्ति है, ( प्राण और मन भी है, ) वह जीवी जागती भावनाओं से भरा हुआ है, उसमें हृदय है और उसमें अत्यन्त अद्भुत शक्ति वाला आत्मा भी है। सो मनुष्य क अन्तर की जितनी ऊँची से ऊँची शक्ति को स्पष्ट किया जाता है, उतनी ही अधिक और अद्भुत कार्य क्षमता, अर्थ सामर्थ्य, रचना शक्ति उसमें प्रकट होता है। धनशक्ति तो मनुष्य के बहुत ही स्थूल तत्व को स्पष्ट करती है। केवल धन से तो मामूली मजदूर भी अधिक काम नहीं करता। वह जहाँ भ्रम, महानुभूति, मानरक्षा पाता है वहाँ वह कम वेतन पर भी अधिक काम करता है। पहले जो स्वामी और सेवक का, मासिक और मजदूर का सम्बन्ध होता था ( जो केवल आर्थिक नहीं होता था ) वह धन को महत्व देने वाला इस नयी सभ्यता के प्रचार से अब लगभग भ्रम हो चुका है। इसी लिये कारखानों में रोड हथालों होती हैं। यदि मालिक को कोई वाज स्वभाव नहीं है पर उससे यदि मजदूर का कोई सांधा सम्बन्ध नहीं—यदि उस बारे में उससे जवाब तलब नहीं किया जा सकता तो आज कल का मजदूर उसे खराब होने देगा। पर अपने पना के साथ रवे जाने वाले सेवक स्वामी के सामान का रक्षा के लिए भी अपनी जान तक दे देते देखे जाते हैं। सो केवल धन से तो कुछ भी बढ़ा काम नहीं कराया जा सकता। अपने देश की रक्षा की भावना से स्वयं आये स्वयंसेनिक युद्ध में जितनी वीरता से लड़ेंगे, मन आर प्राण की शक्ति भी उसमें पूरी तरह उड़ैनी जाने के कारण उन की शक्ति शक्ति का जितना अद्भुत बल रहेगा, क्या रूपों से खरीदे गये सैनिक कभी उतनी वीरता या, अधिक हट्ट पुष्ट होते हूयें भी, उतनी शारीरिक शक्ति प्रकट कर सकेंगे? तो मनुष्य के प्राण बल को स्पष्ट करने वाली क्षत्रशक्ति और उसकी युक्ति व आत्मा को भी स्पष्ट करने वाली ब्रह्म-शक्ति मनुष्यों से जितना भारी और चाबत्कारिक कार्य ले सकती है; धनशक्ति उनके मुकाबिले में कुछ भी काम नहीं ले सकती। दुनिया भर के इतिहास को घटनाएं, बल्कि वर्तमान को रोज़ को घटनाएं ( इसको साक्षी हैं ) इतिहास का आर्थिक व्याख्या ( 'इकॉनॉमिक इन्टरप्रिडेशन ऑफ़ हिस्ट्री' इस नाम की एक पुस्तक कभी पढ़ी थी ) की आज कल काफी चर्चा सुनी जाती है। पर इस सम्बन्ध में एक महापुरुष-वाल् ( प्रेटेंसैन थियरी ) भी है। यदि आर्थिक व्याख्या वाले वाग में कुछ सचार्ड हैं तो इस वाग में भी है। यह ठीक है कि साधारण लोग ( आम जनता, प्रजा, विरा, वैश्य लोग ) सामान्य अवस्थाओं में बहुत कुछ आर्थिक विचार से परिचासित होते हैं। पर यह आम लोगों की 'वैश्यों' को और शूद्रों की बात है। जन साधारण वैश्य लोग आर्थिक होते हैं, अतएव आम प्रजा को

'विशा' कहा जाता रहा है। पर ये वैश्य भी जो आर्थिक विषयों से परिचालित होते हैं सो वे भी पूरी तरह सेगर्दी, हमेशा नहीं, और जरा भी असहयोग अवस्था में नहीं। क्षत्रिय और ब्राह्मण समाज में अपेक्षा कम होते हैं पर वे आर्थिक विचार से परिचालित नहीं होते, बल्कि बहुत बड़े अर्थ उनका अनुसरण करता है। उन्हीं में जो विशेष महानुरूप समय समय पर होते हैं वे जगत् में महान् और असली परिवर्तन करते हैं, इतिहास को बनाते हैं, धन-शक्ति प्रारम्भ में ही नहीं तो कुछ समय बाद केवल उनका अनुसरण करती है। अकेली धनशक्ति द्वारा अगत् में कोई भी महान् और वास्तविक परिवर्तन, कोई भी महान् या वास्तविक नवनिर्माण नहीं हुआ। या तो मामूली परिवर्तन या निर्माण हुए हैं या वे बस्तुतः परिवर्तन व नवनिर्माण हैं ही नहीं, केवल ऊपरी परिवर्तन हैं या केवल जरा इधर उधर होना है। पर अधिकतर तो यह है कि ऐतिहासिक जिन बड़ी घटनाओं को आर्थिक कारण से हुआ देखते हैं उनमें अर्थशास्त्र ने किमी अन्य बड़ी शक्ति का (जिसे वे देव्य नहीं पाते) केवल अनुसरण किया होता है। अतः धन की शक्ति जितनी है उतनी ही हमें देखनी चाहिये। हम अपने मन आत्मा की दुर्बलता के कारण—दृष्टिदृता के कारण—ही धन को वह महत्त्व दे देते हैं जो कि उसमें है नहीं। तुमको—तुममें से ब्राह्मण और क्षत्रिय विशेष निकलते चाहिये ऐसी आशा जनता करता है—तो अपनी छिपी हुई आन्तरिक शक्तियों के पहचानने द्वारा अपना आन्तरिक दरिद्रता हटा देनी चाहिये, तो फिर बाहरी धन का जो असली थोड़ा सा महत्त्व है वहीं रह जायगा। और तब भी या तो बिना धन के, कुम्हारों बहुत सा काम चलेगा या धन तुम्हें दूँ देता हुआ आकर मिल जायगा। स्वामी रामनोर्थ जब अमेरिका गये तो वहाँ का नियम था कि जिसके पास कम से कम ५०० डालर न ही उसे अमेरिका में उतरने न दिया जाय क्यों कि वे अपने देश में विश्वमंगा को नहीं पैदा होने देना चाहते। जब उनसे इतना धन दिखाते के लिये कहा गया तो उन्होंने चटसे अमेरिका के तकालीन प्रेसिडेन्ट का नाम लेकर कर्न दिया कि उनके मजाने में जो रूपया है वह सब मेरा ही है। वे मचमुच ऐसा अनुभव करते थे तभी वे ऐसा कह सके, तभी सुनने वाले पर भी उसका प्रभाव पड़ा और उन्हें जाने दिया गया। मरुवा क्षत्रिय अपनी उदार शक्ति से मचमुच विश्वास करता है कि सब धन मेरे देश या मेरे राष्ट्र का है जिसका कि मैं एक मंचक हूँ, एक सन्ना ब्राह्मण अपनी ज्ञान शक्ति से, और भी अधिक ठीक रूप से साक्षात् देखता है कि सब धन उसके परमेश्वर का है जिसका कि वह एक पुत्र है। अतएव वे कभी धन के आभाव को नहीं अनुभव करते, धन के प्रति दौन होने की बात तो दूर रही, और अतएव धन को उन्हें अपना ममकता है और उनकी सेवा के लिए सदा तैयार रहता है। वे धन को परवाह नहीं करते, अतएव धन उनके पीछे पाछे फिरता है। वे धन में आसक्त नहीं होते धन से ऊपर आक्षिप्त रहते हैं अतएव असल में वैश्य की अपेक्षा (जो कि बरता है कि धन के बिना उसका जीवन कैसे चलेगा अतः धन के

लिये दौन होता और उसमें आसक्ति रखता है) धनोपभोग का आनन्द भी अधिक प्राप्त करते हैं, वे धनोपभोग का मुक्त, खुला और अधिक पूरा आनन्द प्राप्त करते हैं। धन में आसक्ति रखने वाले कन्जूस को देखो जो अपने ऊपर भी धन खर्च नहीं करता, जो आता है उसे जमा करता जाता है। उसने जो एक-दो लाख रूपया जमीन में गाड़ कर रखा उसे म अपना क्या न समझें ?

त्याग भोग विहीन धन धनिता यदि ।

• भवामः किं न तेनैव धनेन धनिता यथम् ?

वह रूपया किसी भा दूसरे आदमी का उनका ही है जितना कि उस गाड़ने वाले का है जब कि उसने उस खर्च नहीं करना है और जीवन भर केवल इस मानसिक सन्तोष का ही आनन्द लेता है कि 'मेरे पास इतना रूपया है', 'वह रूपया मेरा है'। इससे हम आसक्ति विषय पर आजाते हैं कि धन का सदुपयोग और दुरुपयोग क्या है।  
(कवराः)

## प्रेम

[ अन्तु— श्री विद्याचक्र ]

( गतांक से आरंभ )

इस अवस्था से मुक्त होने का एक तरीका है। वह यह कि ऐसा प्रेम ही इस निराशा को निराशा की सीमा तक पहुँचा दे, अथवा इसका द्वारा अपने में आत्मसम्मान को जगृत करलें। यदि प्रेमपात्र उसकी उपेक्षा करता है, तो यह वह सोचें कि मैं ही कुछ हूँ। यदि वह नहीं प्रेम करना तो क्या हुआ ? मुझे उसकी कोई परवाह नहीं। मैं किसी अन्य म प्रेम कर सकता हूँ। अथवा कई बार यह प्रेम भी निराशा मनुष्य का क्षेत्र बदल देता है। वह किसी अन्य क्षेत्र में जाकर अपना खूब नाम कमा लेता है। तुलसी का उद्-हरण जगत्-विख्यात ही है। इस प्रकार वह अपने आत्म सम्मान के द्वारा कई बार अपने निराश करने वाले प्रेमपात्र में बदला भा ले रहा होता है। और Unconsciously बदलें को भावना भी उभरने में बहुत सहक होती है। जब मनुष्य निराश हो जाता है, तो उसे परा २ पर आशा दिखाई देने लगती है।

किन्तु यह आत्मसम्मान की भावना को जगृत रना और उपेक्षा करने वाले प्रेमपात्र की उपेक्षा करना बहुत ही कठिन है 'मेम एक बीज है जो एक बार जमकर बड़ा मुरिकल में उबड़ना है' वाक्य स्पष्ट रूप से इस कठिनता का निर्देश करता है साथ ही यह इस प्रयत्न में बाधक भी होता है। किन्तु उभरने मिय और इस अशांतिमय अवस्था में दृष्टकाए चाहने वाले के लिए यह आवश्यक है।

अब ऐसे प्रेमों का वर्णन है, जो असफल है, किन्तु निराश नहीं। ऐसी अवस्था भी यद्यपि वांछनीय तो नहीं, किन्तु कम से कम सख्त है। ऐसा व्यक्ति कम से कम अपने को सम्मोच तो देना रहता है। उसे कभी असहा अशांति का अनुभव नहीं होता। वह प्रमत्ता की अवस्था

में होता है। और प्रतीक्षा कइयों के मन में मिलन से भी आनन्द प्रद है। यह हम दैनिक जीवन में भी देखते हैं। हम किसी उद्देश्य की प्राप्ति में बड़े उत्साह से लगे होते हैं, किन्तु उस उद्देश्य की प्राप्ति के अनन्तर हम शान्त हो जाते हैं। अर्थात् प्रतीक्षा और आशा हमें सक्रिय बनाये रखता है। हम किसी साधना में लगे रहते हैं। इसलिए कई तो हम अस्फल किन्तु आशा व दी प्रेम को सफल प्रेम से भी उच्छेद मानते हैं। और वास्तव में इसमें स्वयं भी है। क्योंकि हम पहिले ही देख चुके हैं, कि प्रेम अस्थिर है, और यदि प्रेम को बन्धुत्व में न बदला जाये, तो वह स्वयं और निराशा में परिणत हो जाता है, किन्तु ऐसी अवस्था में निराशा का कोई स्वाद ही नहीं। दसः ( प्रेम-चन्द्र जा के शब्दों में ) जीवन का मुख्य तो अभिलाषा में है। यह अभिलाषा पूरी हुई तो कोई दूसरी आसक्री होगी। जब एक न एक अभिलाषा का रहना निश्चित है, तो यही क्यों न रहे ? इसके सुन्दर आनन्द प्रद और कौनसी अभिलाषा हो सकती है ? इसके सिवा स्वल्प प्रेम में यह भी तो मय होत है कि कहीं जीवन का यह अमिनय विद्योगान्त न हो ?

इसके अनिर्लकः—

देकर हृदय, हृदय पाने की आशा व्यर्थ—लगाना क्या ?।

प्यार नहीं पाजाने में है, पाने के झरमानों में !  
पाजाला मय, हाय, न इतनी प्यारी लगनी मनुशला ॥  
आदि याक्य भी ऐसे व्यक्ति को सन्तोषप्रद होते हैं। और स्वन्तोष से बहकर दुःखिया में कोई सुख नहीं। यही कारण है- कि परमात्मा का प्रेमी, उसकी आशा में अपना सारा जीवन एक स्वधनादय और शांतिमय बनाए रहता है। उसको कभी आशांस्त नहीं अनुभव होना, क्योंकि उसको एक अभिलाषा है, उद्देश्य है। उसे अन्य बन्धुओं को देखने की कुरस्त ही नहीं। इसी प्रकार हमी तरह का प्रेमी भी इधर उधर भटकता नहीं फिरता। उसके प्रेमापात्र भी बदलने नहीं रहते।

परन्तु इस स्थिति को बनाए रखना भी बड़ा कठिन है। इस प्रकार का प्रेमी मिलना उनना ही दुर्लभ है, जितना परमात्मा का प्रेमी मिलना। साधारणतया यह आशा निराशा में परिवर्तित हो जाया करती है। और उन्मत्त समय प्रेमियों की अनुपस्थिति एक विविध प्रकार की होती है।

हम प्रकार की निराशा को न आने देना चाहिये। यदि निराशा न आये तो यह स्थिति बहुत अच्छी है। किन्तु यदि निराशा आजाये तो इनको आम सम्मान में परिवर्तित कर लेना चाहिये।

यह देख चुके कि प्रेम का आधार आकर्षण है। इस आकर्षण के उभयभाग हो सकते हैं। हम नीलों में मानसिक स्थिति मित्र मित्र प्रकार की होती है। यदि इन स्थितियों में रहने हुए प्रेमी में विवेचनात्मक शक्ति न आजाये, तो इनका परिणाम दुःख है।

आकर्षण में आँसों का बहुत महावर्षण स्थान है। इसका मुख्य साधन ये आँसों ही हैं। साधारणतया देखने पर ही एक दूसरे को आकर्षण होता है। प्रारम्भ में प्रेमी इन आँसों की भाषा से ही बातचीत करते हैं। वे एक दूसरे के भावों को इन्हीं के द्वारा जानते हैं। मनुष्य को बस में करने के लिए आँसों का उपयोग, मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी स्वीकृत है। लीजर ने अपने आप कहा है:—  
"I went, saw and won the field."

आँसों की भाषा के प्रयोग का एक लाभ भी होता है। प्रेमी प्रारम्भ में अज्ञानरूप से बालवीन करना चाहते हैं। ऐसा वाणी से हो नहीं सकता। अतः वे आँसों के द्वारा उसे बाल चीन कर लेते हैं। ये आँसों एक दूसरे को पहचने में बड़ी सहायक होती हैं। वे यदि अपने भावों को क्षियाने का प्रयत्न करें, तो ये आँसे हृदय का भेद बाल देती हैं।

नेत्रों का सुन्दरता से घना सम्बन्ध है। संस्कृत—साहित्य में तो आँसों को प्रेम का उद्भव स्थान माना गया है। मुरारि-कवि ने अपने अमर-भाष्य में—स्वप्न लिखा है—

"चक्षुः प्रतिमुञ्चयन्ती मनुञ्चयन्ति चापरार्ण कुसुमशर चापला न ॥" सभी भावाओं के साहित्य में सौन्दर्य यथेन के प्रयोग में आँसों को प्रमुख स्थान मिला है। ( क्रमशः )

( पृष्ठ ३ का शेष )

क्या परम कारुणिक भगवान अब भी अपनी प्रजा को पुकार कर उपेक्षा कर सकते थे ? क्या उसकी सुखीबन का प्याला भरने में अब भा कुछ कसर बाकी थी ? क्या वे अपनी प्रतिष्ठा को भुंसा सकते थे ? क्या उनकी निम्न प्रतिष्ठा न थी ?

"अब जब होय धर्म की हार्ति,

बाइहि असुर अथम अभिवानी।

कहि अभिनीत जाह नहीं धरनी,

सीदहि विधे मनु सुर धरनी।

तब तब प्रभु धरि विवेध शरीरा,

हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ॥"

भगवान ने अस्तर जान अपनी अश्रुत एक महान् आशा को तुल्य कहा है कि "जाओ बन्ना ! अब तुम शीघ्र ही अन्य लोक में जाओ और चिकि सा के नाम पर होने वाले इस अत्याचार से-कियों का परिणाम करो; जाओ, जाओ, बहराओं नहीं—मैं तुम्हारे अस्तरात्मा में एक गंली दिव्य विद्या का प्रकाश करूँगा जिसके द्वारा तुम ससत भूमण्डल का उपकार करने में समर्थ हो सकोगे। जाओ, मेरा आशावादी मुंहारे साथ जलोग।"

सन् १७५५ ईस्वी के अगस्त मास की ११ वीं तारीख को ब्राह्मणदूत में घोरोप के अर्जुनी प्रदेशमें एक दिव्यपुत्रि बालक का जन्म होता है जिसका प्रद-से सारा घर जगामगा उठता है। इस बालक का नाम सैम्युल-फ्रीडरिच द्वीरी सैन रचना जाता है। ( सैम्युल का अर्थ है रक्षक )।

क्या इस बालक के नेत्रों शरीर में बही दिव्य आत्मा तो नहीं आबसी है जिसे स्वयं भगवान ने अर्जुनी

की रक्षापर्यं ऋषयः तस्मिन् होने की आशा दी थी ? इस प्रश्न का उत्तर तो समर्थ ही देगा परन्तु उस बालक का जीवन-चरित्र लेखक लिखता है कि उस दिन कई दिनों के घना-डम्बर के प्रभावार्थ आकाश में पूर्णतया मेघ-मुक्त हो गया था तथा अन्तरिक्ष बालात्प की सुनहरी किरणों से जगमगा रहा था; पर्यागण शीत से परिभाष्य पाकर प्रेम मग्न हो खडखडा रहे थे तथा जर्मनी का बच्चा बच्चा एक अनिर्वचनीय मुख का अनुभव कर रहा था।

यह वर्षण पढ़ कर हमें राजा रघु का जन्म दिन याद आ जाता है जिसके विषय में महाकवि कालिदास ने लिखा है:—

“विशः प्रमेयं मरुतो वपुः सुखा,  
प्रदक्षिण-विर्हविर-उभरदं  
बभूव सर्वं गुप्त शशितल्लक्षं,  
मघोडि लाकामुयुवधाय तादशाम्”

क्या इस बालक का जन्म भी लोक के अमृद्युदय के लिये नहीं हुआ था ? क्या सैम्युल हनी मैन बाल्य में संसार का गूढ़क सिद्ध नहीं हुआ ?

## गुरुकुल समाचार

**विजयोत्सव**—प्रयाग-विश्वविद्यालय की ओर से होने वाला वाद विवाद प्रतियोगिता में इस वर्ष स्वल्पा की ओर से कुल के तीन सदस्य २० वेदराज जी, २० उदयवीर जी और २० वींग्मू जी को प्रतिनिधि बना कर इतिहास के उपाध्याय श्री वेदवृत्त जी अध्यक्षता में भेजा गया था, बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमारे कुल ३२ गुरुकुल के गौरव की रक्षा करते हुए बड़ी शानदार विजय प्राप्त करके आये हैं और अपने साथ संस्था को मिले हुए विजय चिह्न 'ट्रोफी' को भी ले आये हैं।

हमारी संस्था को इस प्रकार की विजय प्रथम विजय नहीं है, हमारे प्रतिनिधि जब भी इस प्रकार की प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए जाते हैं, चाहे वह प्रतियोगिता हिन्दी की हो या संस्कृत की हो सदा विजय प्राप्त करते आते हैं। वज्रयो कुल बन्धुओं का वाय के साथ स्वांगन किया गया, श्रीर कुलक मन्मान में महाविद्यालय प्रबन्धकारियों की ओर से कुल के सब प्राण्य उपध्याय एवं अध्यापकों को प्रोत्तियोज दिया गया।

**कुरती-वृक्ष**— कुल में रहने हुए प्रबन्धकारी जहां वीरदक और मानासक प्रतिभा का विकास करते हैं वहां शारीरिक प्रतियोगिता में भी उनकी ही दिलचस्पी रखने हुए अपने शरीरों को सुन्दर और स्वस्थ बनाते हैं। इस समाह दृक्षक का वृहदायोजन किया गयाथा, प्रबन्धकारियोंके कुरती कौशल से प्रसन्न होकर श्री वं० केशवदेव जी हानी ने विजयी प्रबन्धकारियों को पारितोषिक प्रदान किया।

—श्री आचार्य जी १ मास के लिए पाण्डिचेरी वाले गये हैं, जिन महातुभाओं ने व्यक्तित्व रूप से पत्र व्यवहार करना हो वे अविभ्राम पाण्डिचेरी के पने ने ही पत्र व्यवहार करें।

दर्शन के उपाध्याय श्री प्रो० सुबन्धेव जी विद्यावाचस्पति बन्धु पूर्ण स्वल्पा हो गये हैं और अब आपने पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया है।

बाणवर्धनी सभा की ओर से श्री डाक्टर रघुनाथ जी आयुर्वेदालयकार का 'मेरे मलाया के अनुभव' विषय पर व्याख्यान हुआ, श्री डाक्टर जी दो वर्ष से मलाया में, प्रसिद्ध नगर पिनंग में अपना कार्य कर रहे हैं।

## स्वास्थ्य समाचार

धर्मपाल १२ श्रेणी प्रवाहिका, आभमानन्द ५ श्रेणी चोड, रामकुमार ३ श्रेणी चोड, विलाप २ श्रेणी चोड, वींग्मू ३ श्रेणी ज्वर, लक्ष्मण २ श्रेणी ज्वर, हानचंद्र Fracture of the Tibia. गन समाह उपरोक्त प्रो० बीमार थे अब सब अच्छे हैं। प्रो० हानचंद्र की हड्डी सँट कर दी गई है। आशा है कि शीघ्र सुख जावेंगे।

## गुरुकुल मूलतान के समाचार

दो तीन प्रबन्धकारियों को माध्याह्न उबर है श्रेष्ठ स्वधी प्रबन्धकारी प्रसन्न हैं। ६, १० नवम्बर को प्रबन्धकारियों की साहि-योगमाहिनी सभा का वार्षिकोत्सव था जिनमें प्रबन्धकारियों ने बड़ी धूम धाम में मनाया। इस में शहर के आर्य सज्जन भी उपस्थित होने रहे। सभा में प्रबन्धकारियों ने अपने लिये निष्पन्न, गल्प तथा कविताएं आदि पढ़ीं।

दान वीर श्री चिडला जी न ३०) मासिक होने इस उद्देश्य से दिए हैं कि प्रबन्धकारियों को स्थानों के लिए पक्ष व्यायाम प्रारम्भ रख लिया जाए जो कि स्वधी स्थलों के अनिर्गक लाठी, तलवार आदि का चलाना भी सिखा सकता हो। जैसा वह चाहते थे जैसा अध्यापक रख लिया गया है।

## वृत्तना

तुम अपने ही को ठगने हो !  
पूजा की उठनी स्वर-लहरि-  
सुंझत होती प्रतिध्वनि गहरी,  
तुम अपनी दीवारों को हां पूज्य समझने में लगने हो !  
तुम अपने ही को ठगने हो !  
मेरी प्रीतिमा है भावात्मक-  
पर, तुम उसमें बनने बाधक,  
अस्वफलता से रूक जाता है,

तुम तब भी निज को रंगने हो !  
तुम अपने ही को ठगने हो !  
मुझ में आह गमं निकलनी-  
वन ज्वालाप्रथमोंका-चलनी,  
में ज्यों ज्यों तुम्हें वृष्णकः है

तुम ज्यों त्यों अधिक मुलंगने हो !  
तुम अपने ही को ठगने हो !  
श्री राजकुमार शर्मा 'श्रीकृम'।

## जाड़ों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों का कमजोरी धातु क्ष.यता पुरानी खांसा, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शीक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव १०) आध सेर २०) १ सेर ४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वयं कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियों से तैयार की गई ये गोणियां सब प्रकार की कमजोरियों में अक्सर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करता है।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजीत और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों का अत्युत्तम औषध है। शारारिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ॥) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ॥) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियां बेच रहे हैं इसलिए दया खरोदने समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

नाम	{	देहली—चांदनी चौक।	
		मेरठ—सिपर रोड।	
॥जैसियां	{	लखनऊ—गजेंसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।	
		लाहौर—	हस्पताल रोड।
		पटना—	मुकुआटोकी बाँकीपुर।
		अजमेर—	बैद्यराज सरदारिलाल जी कदका चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी जिमहानपुर**

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख्य-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार १५ मार्गशीर्ष १९६७: २६ नवम्बर १९५०

[ संख्या ३३ ]

## गोपालन की महिमा

(ले० डॉक्टर रामस्वरूप जी)

### १. गौ माता है

भारतवर्ष संसार भर में एक कृषि प्रधान देश माना गया है। खेती बाड़ी ही के सहारे यहाँ के ६० फी सदी लोगों का गुजारा है, और जितने पैसे व मरकम हैं वे सब खेती ही के आधीन हैं। इस देश में मित्र ५ जलवायु वाले प्रांत हैं। हरेक प्रकार की उपज इन देश में है। यहाँ किसी समय पशुओं के लिये वन तथा हरी उपजाऊ भूमियाँ अधिक परिमाण में थीं। गुरुकुलों तथा ऋषि मुनियों के आश्रमों पर गौओं तथा केले कुछ सुरोहित थे। मनुष्यों का स्वास्थ्य गौओं पर ही निर्भर है। अभी कुछ काल पहले भारत में ग्रैविक बुधक अपनी योग्यतानुसार गौएँ पालता था। दूध, बी, मक्खन पर्याप्त मात्रा में था। अन्न भी काफी होता था। वैद्य, इकीम, डाक्टर कम थे और औषधालय तथा खिरियालय प्रायः न होने थे। रोग पान न आते थे। नागों का आत्मिक व शारीरिक बल खूब समृद्ध था।

जीवन की सब आवश्यक वस्तुएँ यथा दूध, दही, मक्खन और मित्र २ प्रकार के अन्न यथा गेहूँ, जौ, चना, चावल, गूड, शक्कर, कपास, सन, धलसी, मगसों,— (अभिप्राय यह है कि खाने पीने तथा पहिनने के कपड़े तथा घरों में जलाने के लिए ईंधन तैल इत्यादि) ये सब वस्तुएँ गौ माता ही के कारण मिलती रहती थीं। भारत दूसरे देशों पर आश्रित नहीं था। उन दिनों यहाँ दूध की नदियाँ बहती थीं, मुख्य पर दूध का खेचना अचगुण सम्भवा जाता था। उस प्रथा का प्रभाव हमारे देश के कई घरों में अब भी दिखाई देता है, वे बी तथा दूध के कृषिक्रम को पाप समझते हैं। एक बीनी यार्वी को अपनी भारत यात्रा के अनुभव में यह लिखना पड़ा कि मैं भारत में प्यासा रहा। अर्थात् कहीं जल मांगता था तो उसके स्थान पर दूध दिया जाता था। आर्य-जति गौ को गो-माता के नाम से आह्वान करती है वहीं कि जन्म-माता तो कुछ मास ही दूध पिनाती है मगर गौ माता तो जीवन कर्षवस्तु दूध पिना कर शक्तिशाली बनाती है। दूध के असीम गुणों के कारण ही गौ का माना के रूप में मान है।

मनुष्य के लिये भोजन में जिन २ तत्वों की आवश्यकता है वह सब दूध में उच्चिन् प्रमाण में उपलब्ध होने हैं। यह एक सब से उत्तम पिय है। जैसे पशु का दूध पिया जायगा उसमें बैसा ही प्रभाव होगा रासायनिक परीक्षणों के द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है। इतना ही नहीं दूध से मित्र २ बीमारियों की बिकरता की जा रही है। अमेरिका में इस प्रकार के बिकरतालय खुल रहे हैं। हर तरह के रोग दूध के आश्चर्यकारी गुणों के कारण दूर होते हैं। अनेक रोगी जो असाध्य समझे गये थे दूध के इलाज से पूर्ण स्वस्थ हो गये। एक प्रसिद्ध लेडी “अना-वेलर विलकोषवा” (Ella Wheeler Wilcox) का कथन है कि हृदय मस्त्रन्धी रोगों (Organic Heart Troubles) को छोड़ कर कौरे शारीरिक रोग पैसा नहीं जा यज्ञ करने पर दूध के सेवन से दूर हो जाय, यहाँ तक कि लय, अर्बद (Tuberculosis, Cancer) तथा क्षातक रोगों को भी पृथ रूप से दूध के जरिये ठीक किया जा सकता है। सारांश यह है कि दूध आत्मिक व शारीरिक व्यथियों को दूर करने वाला है।

ग्रामों व नगरों में बालकों व मनुष्यों को यद्यपि शुद्ध दूध नहीं प्राप्त हो सकता। किसी वीधे को उगने ही बाद पानी नहीं मिले तो वह फूलता फलना नहीं परन्तु कुम्हला कर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार इस देश के बच्चे दूध के अभाव से अचपायु, निबल, अर्पीर, तथा अत्यन्त रोगी होते हैं। मिलेज “इसा दुबीड” जो बुध विज्ञान में बहुत अनुभवशील हैं अपनी पुस्तक (Cow Keeping in India) में लिखती कि “जिन माता पिता को अपने बच्चों की अलार का ख्याल है वह उनको मैस का दूध कमी न दें, यदि बच्चों को पैसा दूध दिया जायगा तो उन्हें अन्न (Intestines) व जिगर (Liver) के कई प्रकार के रोग हो जायेंगे। लंदन की “मैशनल सिनक पब्लिसिटी कॉसिल” की तरफ से “Milk of the Home” नामक एक पुस्तक प्राकशित हुई है जो बड़े विद्वान् डाक्टरों की सम्मति से लिखी गई है। इस पुस्तक में अहाँ रोग नाशक शक्ति का वक्षन किया गया है वहाँ गर्भस्थिति के लिये दूध को परमावश्यक बनाया गया है। दूध गर्भिणी तथा शिशु दोनों की पुष्टि करता है इसको उद्गृह्य करी सरकार भी अनुभव करनी है तथा स्थानीय अधिकारियों के द्वारा

गर्भवनी स्त्रियों के अन्तिम ३ मास तथा बृष पिताने वाली माताओं के लिये भी जिनकी परिवारिक आय पचास नहीं होती, बृष का प्रबन्ध करा. है।

पश्चिमी देशों में अब से कुछ वर्ष पूर्व वहाँ के मनुष्य बृष के गुणों को ठीक प्रकार से नहीं जानते थे, वे मक्खन तो खूब खाने थे: अब अमेरिका व योरप वालों द्वारा बृष के पोषक तत्वों का खोज हुई है। पना चलता है कि बृष में पदार्थों के अतिरिक्त सब तरह के विटामिन भी विद्यमान हैं। अब वह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि जिस देश में निवासी बृष, दही और मक्खन प्रयोग में लयेंगे वहाँ के निवासी अधिक बलवान, स्वस्थ बहादुर तथा दीर्घायु होंगे तथा उनकी सूर्य संख्या घट जायगी। बीमारियाँ भी कम हो जायँगी। आज काल अमेरिका, रूस जर्मनी, इंग्लैण्ड, इटली, नार्वे, डेनमार्क, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, हॉलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, स्वीडन और जपान आदि देशोंकी सरकारें बृष और मक्खन अधिक परिमाण में मिल सकें ऐसा प्रयत्न कर रही हैं। भारत में तो प्राचीन समय से ही बृष का प्रयोग होता रहा है। आश्रमों व गुरुकुलों में प्रारम्भिक शिक्षा गोपालन में आरम्भ होता थी। उस समय उच्चम गुरु तारा बृष पर्याप्त मिलता था जिससे उनका स्वास्थ्य उत्कृष्ट, कान्ति उज्ज्वल तथा बुद्धि तीव्र होती थी। जब ब्रह्मचारी गोपालन की कठोर परीक्षा में उसीका ही जाता था तब गुरु ब्रह्म शिष्याय देता था। उस समय के आर्य श्री पुरुष गोपालन को परम धर्म मानते थे। उन्हें गौशौं का पालन पोषक तथा बृष नुहने का कार्य अपने हाथ में करने में अति आनन्द आता था और उस समय गोपालन की शिक्षा (Duty) प्रत्येक घर में विद्यमान थी।

मिस्टर ५० सी० अत्रवाल मीरसर बंसेरिनी कालिङ्गलक्षी ने वैज्ञानिक रीति द्वारा बृष नुहने पर एक पैम्फ्लेट लिखा है, तथा उसमें एक चित्र भी है। इस पुस्तिका में ४४० वर्ष पूर्व गौशौं के बृष नुहने व मक्खन निकालने की विधि का बर्णन है। उक्त चित्र Babylon (इराक) "Toll El Ob-id" में विद्यमान मस्जिदों के चरदहरी से प्राप्त हुआ है। इसमें प्रतीत होता है कि वहाँ भी गो-माता का सम्मान था।

ईसा से तीन सहस्र वर्ष पूर्व सिंध के मीनारों पर गौ जालि के चित्र पाये जाते हैं। मीन में जो स्तिकाएँ पहलें चलता था उस पर शैल की (बृषभ) मूर्ति अंकित थी। ग्रीक तथा रोमन ग्रन्थों में भी गो-पूजन पाया जाता है। सिक्न्दर का जर्मन ने जब भारत पर आक्रमण किया तो वह लोटेने समय दो लाख गौरों अपने साथ ले गया था। इन गायों में सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में गौ-पूज का सब देशों में अत्यंत आदर था।

श्री इच्छ गौशौं की सेवा तथा उनके घराने का कार्य स्वयं करने थे, तथा बृष, दही, मक्खन आदि का खूब प्रयोग करने थे। यह राज बिदाह के वहाँ लालों गौर रहती थीं। गो-पालन और भेरी के विषय में सब प्रकार का प्रबन्ध करना हमारे गात्रशौं का मुख्य धर्म माना

जाता था। प्राचीन काल में जन की गणना में मुख्य गौ-धन ही माना जाता था। राजा क्षत्रपुर्ण और नर गोपालक थे तथा महाराजा युधिष्ठिर के बाने ज्ञाना सहदेव को गो-विक्रान्ता का अष्ठा परिधान था। महाराजा अशोक के समय में भी जगह-जगह पशु चिकित्सालय थे। नेपाल राज्य में अब भी गो-माता का बड़ा आदर है। "आरने अकबरी" में लिखा है कि गौ से नाना प्रकार के उपकार होते हैं इसी कारण अकबर ने अपने राज्य में गौ बध का निषेध कर दिया था। "आरने अकबरी" से यह भी सिद्ध होता है कि अकबर ने ३२५ वर्ष पूर्व एक २ गाय आधा मत्त तथा उससे भी अधिक बृष देती थी। उक्त समय की भूमि भी अधिक उपजाऊ थी। उन दिनों वे लोग अन्न का प्रयोग बहुत न करने बृष, दही, मक्खन, धो आदि का प्रयोग अधिक मात्रा में करते थे। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि गौ के दुर्दान में सुख की प्राप्ति होती है, और बृष, दही, मक्खन धो गोबर व मूत्र द्वारा रोगों को निवृत्ति होती है।

## होमियोपैथी का जन्म

(ले० श्री० डा० श्रोमफकारा जी विद्यालङ्कार बिजौर)

(४)

भगीरथ के उग्रतप में प्रसन्न हो ब्रह्मा जी ने कहा "वर मांगो"। भगीरथ ने नत मस्तक हो उत्तर दिया "महाराज! हमारे पूर्वजों का उद्धार करने के लिये पतित पावनी गङ्गा जी को मर्त्य लोक में प्रवाहित कर दीजिये।" ब्रह्मा जी ने कहा "मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने के लिये नृ-स्मरिता का मर्त्य लोक में अघतरित होने की आज्ञा तो दे दूँगा परन्तु स्वर्गलोक से सवेग गिरती उसे धारण कौन कर सकेगा! यह तो अपने तीव्र वेग के कारण धरातल को फोड़ पताल लोक में प्रवेश कर जायेगी।

भगीरथ ने कहा "भगवन्! इसका उपाय भी श्रीमान् ही बतायेंगे" ब्रह्मा जी ने बताया कि त्रिषय शिवजी के और किसी का शिर उसे धारण करने में समर्थ नहीं हो सकता। भगीरथ ने कैलाश-वासी शिव जी के पास जाकर कुछ काल तक भक्ति पूर्वक उनकी सेवा की।

"भक्त्या हि तुष्कल्यि महाउभवाः" के अनुसार शिव जी ने प्रसन्न हो उसे वरदान देने को कहा। भगीरथ ने स्वर्ग में स्ववेग गिरती गङ्गा जी को निज शिर पर धारण करने को उनमें प्रार्थना की। शिव जी ने उसकी प्रार्थना सहर्ष स्वीकार करली। महादेव जी ने गङ्गा को किस प्रकार अपने शिर को जड़शौं में धारण किया तथा उसे लोकोपकारार्थं पृथ्वी तल पर प्रवाहित कर दिया, इस कथानक में कील भारतीय विद्वान् अपरिचित हैं।

मरुती नजर में देखने पर गङ्गावतरण की यह कथा यद्यपि एक अचञ्चली ज्ञानी गण्य मान्य होती है परन्तु गम्भीर विचार करने पर अब इसका असली तथ्य पता चलता है तब विश्व-पुरुष हमें एक सत्य, केवल सत्य चटना ही समझने लगते हैं।



व्युत्पन्न ने वैद्य से गिरते लेब को देखा। उससे पूर्व न जाने कितने मनुष्यों ने लेब को गिरते देखा होगा—लेब गिरता होगा और धरती में समा जाता होगा। परन्तु व्युत्पन्न ने गिरते लेब को गिर पर धारण कर लिया—और अपने गिर से विज्ञान के एक अज्ञात नियम का प्राक्किकार करने के लिये लोकोपकारार्थ संसार क्षेत्र में प्रवाहित कर दिया। पृथ्वी में सदा से विद्यमान प्राकृतिक नियम का केवल प्रायुर्वाच कर देने तथा उसे प्राक्किकार के उपकारार्थ धाम दे देने के कारण आज सारा संसार व्युत्पन्न का विद्वत् श्रेणी तथा विद्वत्-कृतक है।

परमपिता परमात्मा द्वारा, इसी प्रकार, अनेक दिव्य ज्ञान प्रतिज्ञाएं निरन्तर प्रवाहित होने रहने हैं, परन्तु उनको धारण करने का सामर्थ्य किसी २ महात्मा आत्मा में ही हुआ करता है।

सैक्युलर इनीमेंट के शरी में भी एक ऐसी महात्मा आत्मा का बाल या जल ने सकल ज्ञानविज्ञानागार, भाविगुरु विश्व भगवान् के बरधारविन्द से अघिरित प्रवाहित होने वाले चिकित्सा विज्ञान के एकमात्र सत्य नियम को अपने प्रसक्त में धारण कर इसे धरती में समाने से बचाकर, सुरक्षित की धारा के समान प्राक्किकार के कल्याणार्थ समस्त संसार क्षेत्र में प्रवाहित कर दिया। यह नहीं कि चिकित्सा के इस सत्य नियम की धार इनीमेंट से पहिले होने वाले अन्य चिकित्सकों की तीव्र-दृष्टि से एकदम ओझल ही रहा हो, परन्तु उसको धारण करने का सामर्थ्य इनीमेंट की शक्ति शाली आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी में न था।

महात्मा आत्माओं के चरित्र सर्वसाधारण पुरुषों के चरित्रों से सर्वथा भिन्न हुआ ही करते हैं। उनको तो—

अन्याः जगद्विस्तृतयोः बहसः प्रवृत्तिः  
अश्वेय कापि रचनाः यचनावलाम्नाम्  
लोकोत्तराच्च कृतिरकृति रार्द्र-दद्या,  
विद्यावर्ताः सकलमेव गिर र्वीयः ॥

के अनुसार सब बात ही निराला होती है।

इस दृष्टिकोण से महात्मा इनीमेंट का जीवन-चरित्र भी पण पण पर शिवाच घटनाओं से भरा पड़ा है तथा संसार को उसकी देन भी ओकोलर ही हुई है।

इनीमेंट के पिता एक बहुत ही साधारण हँसियत के मनुष्य थे, जो पोलैनीन के बसंत बनाने का कार्य किया करते थे; परन्तु असाधारण प्रतिभा सम्पन्न होने के कारण, वे जो बसंत बनाना करने थे उन्हें हरबार उत्तम से उत्तम तथा नवीन से नवीन रूप दे दिया करते थे। उन्होंने बालक इनीमेंट को भी एक नवीन साँचे में ढालना प्रारम्भ कर दिया। वे उसे विद्या शील बनने का धारणा उपदेश दिया करते थे तथा सत्य के अन्वेषण में उद्यत रहने का आदेश। उन्होंने बालक इनीमेंट के लुकोमल हृदय में यह विचार विशेषतया अंकित कर दिये थे कि किसी बात को स्वीकार करने से बिना कमी भी नहीं मानना चाहिये तथा परीक्षित वस्तु का परित्याग किसी प्रकार की कठिनाई, भय तथा प्रतीति के कारण कदापि नहीं करना चाहिये।

इसी प्रकार पितृ-अनन में भावपूर्ण-जीवनोपदेशों अन्तर्गत शिक्षाओं से दीक्षित विन्मान बालक इनीमेंट सत्कालीन शिक्षाकालों में लौकिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेज दिया गया; जहाँ उसने अल्पकाल में ही योरोप की पाँच मुख्य २ भाषाओं प्रकाण्ड पाठ्यक्रम प्राप्त करके अपनी प्रतिभा का अत्युत्तम परिचय दिया।

यद्यपि इनीमेंट की प्रवृत्ति साहित्य की ओर विशेषतः प्रतीत होती थी परन्तु परम पिता की प्रेरकानुसार उसके पिता ने दृष्टान्त का शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् उसे Leippig के प्रसिद्ध Medical College में दाखिल करा दिया।

कक्षाप्रवृत्ति इनीमेंट ने २४ वर्ष की अवस्था में एल्बेण्डो की M D की डिग्री सम्मान पुरस्कार प्राप्त करके चिकित्सा का कार्य प्रारम्भ कर दिया "होनाकार विज्ञान के होल चीकने पात" के अनुसार उसने कुछ ही वर्षों में चिकित्सा जगत् में विशेष ख्याति प्राप्त कर ली। डाक्टर Hahneland ने, जो उस समय जर्मनी का स्वयं प्रसिद्ध चिकित्सक था, इनीमेंट के विषय में लिखा था कि वह जर्मनी के विशेषतया परिगकिन डाक्टरों में एक था

("Hahnemann was one of the most distinguished physicians in Germany") इसा प्रकार योरोप के अन्य देशों के चिकित्सक भी उसका आवाह रण प्रतिभा तथा चिकित्सा विषयक योग्यता का कमी-मुक्तकट से प्रशंसा करने ही रहा करते थे।

परन्तु उन्हीं २ संसार उसकी चिकित्सा विषयक सफलताओं को देख कर उसकी प्रशंसा करने में लगा हुआ था, वह अन्य अपनी असफलताओं का विचार करके अपनी चिकित्सा से अलग-थलग होता चला जा रहा था। इस असन्तोष के कारण ही वह उसने लिखा था कि उन्में इस बात में मन्देह है कि उसके परीक्षित अशिकतया उस की दवा के बिना अधिक चढ़े रहने हैं अथवा उस को दवा आकर।

कुछ काल परन्तु जब उसने देखा कि उसके पूर्ण प्रयत्न करने पर भी बहुत से अशोध बालक तथा युवा-युवनियाँ काल के गाल में बलात् बनने चले जा रहे हैं तो उसकी मनोवैयक्तिक चिकित्सा प्रणाली में पैदा हुई अग्रज निराशा में परिणत हो गयी। अनप्य, शीघ्र ही, उसने प्रचलित चिकित्सा के उपायों को दोषोपशमन के कार्य में न केवल अशक अपितु हानिप्रद समझकर चिकित्सा के कार्य में सन्ध्या परिगमाय कर दिया।

क्या कोई साधारण मनुष्य इनीमेंट की स्थिति तथा संवर्धन-प्रद प्रैक्लिज को केवल अपनी अनपराधता की चुपन के कारण छोड़ने का साहस कर सकता है? क्या इनीमेंट "यो मन्त् कामात्पि हन्त् कामः" बाला वैद्य था? क्या इनीमेंट "यमेरा अलसोत्तर" बनने के लिये अन्वेषित हुआ था?

इनीमेंट उन धीर पुरुषों में से था जो अपनी अनपराधता की आवाज़ को किसी भाव भी नहीं बँध सकते। उसके साथियों ने उसे बहुत समझाया कि "सत्यप्राप्तता हीः त्यज्यमाना शपनीति लोके प्रसिद्धम्" के अनुसार उन्में

[ गेब वृद्ध ६ पर ]

# गुरुकुल

१५ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९६७

## धन की शक्ति

(३० श्री.आचार्य.वासुदेव जी)

(गतांक से आने)

### धन का सदुपयोग और दुरुपयोग क्या है ?

हर एक शक्ति का सदुपयोग भी किया जा सकता है दुरुपयोग भी। वही बात धन-शक्ति को भी लागू होती है। दुरुपयोग दो तरह से हो सकता है। धन का जहाँ उपयोग करना चाहिये वहाँ उपयोग न करने से भी दुरुपयोग होता है; जैसे कि जहाँ नहीं करना चाहिए वहाँ करने से होता है। पहली तरह का दुरुपयोग तामसी पुरुष करते हैं और यह शायद अन्य देशों की अगोला भारतवर्ष में बहुत होता है। लोग रुपयों को गाड़ कर, मुन्टकों में बन्द करके या अन्य तरह रोक कर रखते हैं, सोचने रहते हैं पर स्वर्च नहीं करते। अन्त में प्रायः उनके घरने के बाद लूटा या टगा जाकर वह बुरे उपयोग में व्यय हो जाता है।

गर्न भोगो नारा, निश्रो गतयो मञ्जलि विलम्ब।

यो न यद्वति, न अंके, तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

जैसे पानी जब बहुत नहीं रहता तो वह सड़ना पैदा करता है, वैसे ही धन भी रुक जाने से, न बहने से, गंदगी पैदा करता है। जिसके नाना रूपों से हम परिचित हैं: अन्न: यह केवल अन्नपयोग की दुराई नहीं है किन्तु एक जगह रुका रहने से जो उम्र व्यतिक तथा उसके आस पास विकरा का ('सुभ्र रूप में कहे तो ईर्ष्या, द्वेष, मोह, आमक्ति, चोरी, चङ्गयन्त्र आदि का) वातावरण पैदा करता है वह एक भावाम्भक दुराई है। दूसरे प्रकार का दुरुपयोग तो माफ ही है जो राजमिक लोग करते हैं। जहाँ धन का उपयोग नहीं करना चाहिए वहाँ करते हैं।

एक शब्द में यह दुरुपयोग है— शोषण के लिये धन का उपयोग। सभी शक्तियों का ऐसा दुरुपयोग किया जाता है। यह आसुरी भाव से होता है। यदि ज्ञानी अपनी ज्ञान शक्ति का उपयोग अज्ञानियों से फायदा उठाने में करे तो वह ब्राह्मण नहीं, वह असुर है। यदि क्षत्रिय अपनी शक्ति का उपयोग निर्बलों के सतने में करे तो वह क्षत्रिय नहीं वह दानव है। इसी तरह धनशक्ति का उपयोग निर्बलों को, और खुसने में किया जाय तो यह मनुष्य का काम नहीं, राक्षसी काम है। पर वह राक्षसी काम दुनिया में बहुत हो रहा है। और शायद हम सब जानते हुए या न जानते हुए उसमें कुछ संमिलित हैं। क्योंकि आश्र कल धनशक्ति का जितना व्यापक दुरुपयोग हो रहा है उतना और किसी शक्ति का नहीं। असल में आज अन्य सब शक्तियों ही लुप्त हैं, क्षिपी पक्षी हैं या चञ्च से पीछे हटो हुई सो हैं। यह उमाना ही भौतिकशास्त्र या धनशक्ति की प्रभुता का

है। वही तो हम देखते हैं कि बुद्धि, रखने वाले, ज्ञानधनी भी अपने ज्ञान को बेच रहे हैं, क्षय हो रहे हैं, बल को बेच रहे हैं। वे अष्ट ब्राह्मण और अष्ट क्षत्रिय हैं। धन के बल से विभागों को इस काम में लगाया जा रहा है। के वे मनुष्य की हत्या करने के अधिक से अधिक कारगर तरीकों का अधिकार करें। धन के बल से—अपने, कारखानों का मोला बालू विक सके इस लिये—विना अहस्त के भी सड़ने को अपने राक्ष को वैयत्र कर दिया जाता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय के भूख हो जाने से वैश्य ( वैश्य तो नहीं कहना चाहिये, धन वाले ) उन पर राक्ष कर रहे हैं। असल में वहाँ रहे ही नहीं हैं। वहाँ का नाम ता मैं वर्षा व्यवस्था की ठीक दिशा दिखाने के लिये ले रहा हूँ। आज तो ज्ञान वाले, वीरता वाले और धन वाले सब मिल कर आसुरी चक्र पर चढ़े हुए यथाराजि दूसरे निर्बलों का ( ज्ञान, बल और धन में निर्बलों का ) शोषण कर रहे हैं और आसुरी सुल पा रहे हैं। पर धन इनके केन्द्र में है। अपनी आर्थिक व्यवस्था द्वारा ही, धन के जादू से ही दूसरे लोगों को वश में करके रखा गया है। दुनिया इध धन के दुरुपयोग से उपज की गई दुःखस्था से निकलना भी चाहती है। इसी लिये जो जो नये वाद उपबन्ध होते हैं वे मुख्यतया धन की ही किसी नयी व्यवस्था को स्थापित करना चाहते हैं—समाजवाद है, कम्युनिजम है, बोल्शेवियजम है। पर ये धन के दुरुपयोग को संगठित करने वाली पूँजीवाद, मार्क्सवादादि की शक्तियों का अभी तक सफल मुक्तफिला नहीं कर सके। क्योंकि इन में देवभाव नहीं आया—असुर भाव पूरी तरह से नहीं गया। मेरी कल्पना में तो इसका ठीक इलाज जगत्-व्यापी वर्षा व्यवस्था है। अर्थात् धनशक्ति का इतना भारी संगठित दुरुपयोग तब तक नहीं रुक सकता जब तक कि धन शक्ति पर जगत् व्यापी रूप में क्षत्रिय और ब्राह्मणों का ( ऊँची भावना और ज्ञानका ) अंकुरा न हो। सीधी सी बात है कि यदि हम चाहते हैं कि धन का दुरुपयोग न हो, सदुपयोग हो तो ऐसा करना चाहिये जिससे धन अधिक से अधिक अच्छे आर्थिकियों के वश में हो, बुरे आर्थिकियों के नहीं। धनशक्ति को परिवर्तित करना, जैसे आधमी के हाथ में होगा वैसे ही धन का उपयोग होगा। धन असुर के हाथ में जायगा तो वह आसुरी काम करेगा, गरीबों दुखियों को और सताने के काम आयेगा। देव के हाथ में जायगा तो वह यज्ञार्थ, उपकार, सब की भलाई में उपयुक्त होगा। वैदिक वर्षा व्यवस्था के अनुसर ब्राह्मण और क्षत्रिय का तो जीवन यज्ञसय होना ही था किन्तु वैश्य को भी यज्ञार्थ जीवन बिताने का ही आदेश था, यह तीनों वर्णों के लिये एक समान कर्तव्य था। जैसे धन के सब दुरुपयोग को 'शोषण' इस एक शब्द में कहा जा सकता है वैसे सब सदुपयोग को 'यज्ञ' इस एक शब्द में कहा जा सकता है। ज्ञानी जब अपना ज्ञान अज्ञानियों को ज्ञान युक्त करने में अर्पण करता है तो वह महान ज्ञान-यज्ञ करता है। यही ज्ञानशक्ति का सदुपयोग है। क्षत्रिय जब अपने बल को निर्बलों को रक्षा में लगा देता है, निर्बल को सताये जाने से बचाने के लिये बलवान दृष्ट का दान करने में

प्राप्ति शक्ति (आहुत) करता है तो वह अपना यज्ञ करना है। इसी तरह और्य का धर्म—उसका यज्ञिय धर्म—यह है कि वह धन का ऐसा उपयोग करे जिससे निर्धनों के पास भस् पहुंचे। लेकिन आज यह हो रहा है, आर्थिक व्यवस्था ऐसी बनी हुई है कि जो निर्धन है वही शरीर सलाया जा रहा है, वह विनों दिन और निर्धन होता जाता है। और जो धनी है वह विनों दिन और धनी होता जाता है। ब्रह्म-तरह कर्मिक विधमता बढ़ती जाती है। एक तरफ एक आधमी है जो दिन भर तन तोड़ कर मेहनत करता है पत्नीना बढ़ाता है फिर भी उसे खाने तक को नहीं मिलता। दूसरी तरफ एक लक्षपति निरुद्धा बैठा है जो केषम, भोगता है, भ्रम-कुल नहीं करता। अमेरिका के एक मन्त्र से बड़े धनी के विषय में सुना गया था कि उसे किसी काम में एक लाख की दानि की खबर भी जाती है तो वह टेनिस खेलता खेलता ही कह देता है—क्यों कि व्यापार पर उसका इतना एकाधिकार है—कि उस वस्तु पर एक पाई की दर से बृद्धि कर वां बम। उसके लिए एक लाख की दानि ऐसी है जैसे हमारी एक रुपये की दानि। कभी यह भी पूछा था कि अमेरिका के केवल सात-आठ आधमियों के पास इतना धन है जितना अमेरिका के बाकी सब ज़िवायियों के पास मिला कर है। धन की यह विधमता इसी क्रिये हुई है क्योंकि आर्थिक नीति के द्वारा शोषण का एक ऐसा सुन्दर षड्यंत्र तरोटा बना लिया गया है जिससे निर्धन शोषित होकर दिनों दिन और और चीय होता जाता है और धनी रक पी पी कर विनों दिन और और पीन होता जाता है। इम शोषण का सही इलाज एक ही है—बहि। शोषण द्वारा असुर को तुम करना छोड़ कर यज्ञ द्वारा देन को तुम करने की और मूह मोड़ा जाय। सब क्रम बदल जाना चाहिये। अब तो धन वाले अपनी अधम वृत्तियों को तुम करने में वेगुध होकर लगे हुये हैं, इसी में धन खर्च करते हैं। ज्ञान और बल वाले भी उनकी महद करते हैं या अपने को बेच देते हैं, मारा वायुमण्डल ही ऐसा है। चाहिये यह कि धन वाले भी अपनी ऊंची वृत्तियों को जागृत करने का यत्न करें, इम अपने मनुष्यत्व को उठाने और विकसित करने में ही धन को व्यव करके अपने धन को सफल करें, जब कि धन से ऊपर रहने वाले कृत्रिय और साहाय ऊंची भावना और ज्ञान द्वारा उनका शीक विद्या में सञ्चालन करें। धन की कोई ऐसी ही यज्ञपरायण व्यवस्था, जिसमें धन अपने उचित स्थान पर ही रहे और इससे ऊपर की तक शक्तियों के सम्भावन: आधीन रहे, यदि प्रवर्तित हो सके नही धन के अमल दुःखयोग से पीड़ित वर्तमान जगत को षड्यन्त्री राहत मिलेगी इम मौलिक परिवर्तन को न कर अम्य परिवर्तनों के जोर शोर से करने से भी कुछ बनेगा नहीं।

## प्रेम

[ चतुः— श्री विद्यावंशकार ]  
(गतांक से आगे)

प्रेम होने वाले दोनों व्यक्तियों के स्वभाव में क्या सम्बन्ध है? इस विषय में मुख्यतः दो विरोधी सिद्धान्त प्रचलित हैं। एक कहने है कि—प्रेम विरोधी गुण वालों में होता है। सामान्य गुण वाले तो श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और धन से धन विद्युत की तरह एक दूसरे से भागते हैं। दूसरे सिद्धान्त का मत है, कि प्रेम विरोधी गुण वालों में न होकर सामान्य गुण वालों में होता है। विरोधी गुण वालों की तो कभी धन ही नहीं सकता। किसी ने कहा भी है—

ययोरंघ समं विसं ययोरंघ समं कुलं।

तयोर्मेरी विवाहवह न तु पुष्ट विपुषयोः।

इस प्रकार इन दोनों ही पक्षों के विषय में पर्याप्त कहा जा सकता है। किन्तु यह मानना उचित होगा कि प्रेम पूरक गुण वाले व्यक्तियों में होता है। इस सिद्धान्त में सिद्धते दोनों ही सिद्धान्तों का सम्बन्ध हो सकता है। पूरक गुणों को विरोधी साम्य लेना तो एक सामान्य भूल है। अतः इस पक्ष में अधिक कहना व्यर्थ है। सामान्य गुण वालों में प्रेम होता है—ऐसा समझने का कारण यह है, कि—साधारणतया प्रेम अस्मिन् होता है, यह हम पहिले ही बता चुके हैं। इसको स्मर बनाने की द्वां विधियां हैं। जिनमें से एक का तो पहिले जिक्र हो चुका है। (प्रेम को बन्धुत्व में परिवर्तित करना)। दूसरी विधि यह है कि दोनों प्रेमी किसी एक विषय में अपनी दिल-चस्पी उत्पन्न करलें। यदि ऐसा करे तो उनका प्रेम नष्ट नहीं होता, पर वास्तव में यह भी प्रथम विधि के अन्तर्गत ही है। इसमें उन दोनों के लिए एक सामान्य उद्देश्य बन जाता है इम उद्देश्य की प्राप्ति में लगे होने पर दोनों के सामान्य गुण ही, सामान्य भावों का दृष्टिगोचर होने हैं। इसी लिए एक यह सिद्धान्त बन गया है कि प्रेम सामान्य गुण वालों में होता है। किन्तु सत्य यह है कि प्रेम पूरक गुणवालों में होता है।

इतने विवेचन के बाद धांड़ा सा इस पर भी विचार कर लेना चाहिये, कि प्रेमियों को क्या २ विशेषताएं हैं। इनको साधारणतया ५ धर्मियों में विभक्त किया जा सकता है !

१. कुछ प्रेमी ऐसे होते हैं, जो किसी के बिना रह नहीं सकते। इनके लिए प्रेम पात्र के प्रति सच्चा रहना, उनकी अनुपस्थिति में कठिन हो जाता है। इनका मुख्य सिद्धान्त यह बना होता है कि आनन्द करो। एक के लिए कष्टक रोते रहें। आज एक मरता तो कल दूसरा मीचू है। किसी के लिए रोने का क्या लाभ? वह रोने में लौटने तो लगा नहीं? इस लिए व्यर्थ में क्यों रोएं।

२. कुछ प्रेमी इस प्रकार के होते हैं, जिन्होंने एक बार जिसमें प्रेम किया, वह अमल काल के लिए प्रेमपात्र बन गया। ये मरने पर भी उम नहीं भूलने। इम का

सिद्धान्त है कि हमें अपने प्रेम पान के लिए लक्ष्मा रहना चाहिये। अन्न नहीं तो आत्मे जन्म में मिलेंगे। इन में विश्वास होता है। वह अपने प्रेमपान पर छोटी छोटी बातों पर सन्देह नहीं करते। परिवारम सुख होता है। भारतीय पवित्र आदर्श यही है। यही कारण है कि यहाँ विवाह हमें पर लम्बक नहीं होता।

३. एक प्रेमी येन होने हैं, जो किसी से लक्ष्मे समय तक प्रेम नहीं कर सकते। इनका सिद्धान्त है कि सदा एक से प्रेम करने का क्या फायदा। प्रेम का अनुदेह्य तो आनन्द है। और आनन्द विविधता में है। परिवर्तन का नाम जीवन है। प्रवाह में लम्बकता है। उका हवा प नी भी लम्ब जाता है। फिर प्रेम का तो कहना क्या? इस-लिए एक से ऊने, और दूसरे से किया। इनके लिए प्रेम पान की अनुपस्थिति भी आवश्यक नहीं। यह गोरोपियन आदर्श है। इसमें और पहिले में कुछ भेद है। पहिले में तो फिर भी कुछ बकावारी कही जा सकती है, किन्तु यह तो बिलकुल ही व्याज्य स्थिति है। पहिली प्रेमी तो कुछ हद तक जायज भी होगी चाहिये। युवती विधवा के लिए अन्न भर पतिव्रता रहना बड़ा कठिन है: जब कि विधवा को इतना प्रबल कहा गया है—

दुस्यजा हि विधवा विदुषापि,

४. यह प्रेमी ऐसी है जो एक समय में एक से प्रेम करती है। इसको प्रथम और तृतीय प्रेमी में अन्तर्गत किया जा सकता है। यदि यह प्रथम प्रेमी में है, तब तो प्राज्ञ और हितकर भी कही जा सकती है। किन्तु यदि यह अवस्था तृतीय प्रेमी को रूप में है, तो इसका लक्ष्य करना समाज के लिए एक समस्या हो जायगा।

५. यह उन लोगों को प्रेमी है, जो एक ही समय में कइयों से प्रेम करने हैं। यह अवस्था सबसे अधिक अनैतिक है। इस प्रकार के प्रेमी सदा धोखेबाज होते हैं। All is but to love and war, यह ऐसे ही प्रेमियों का सिद्धान्त है। इसके कारण बहुत से नवयुवकों और नवयुवतियों के जीवन बर्बाद हो जाते हैं। इस प्रेम का एक दम अस्मित कहना चाहिये। ऐसे प्रेमियों को भी वैश्या प्रेमी में समझना चाहिये। इनकी भी समाज में वे ही लाम और हानिया हैं, जो वैश्याओं को।

इन प्रेमियों का एक अन्य दृष्टि से भी भेद किया जा सकता है। इस दृष्टि के अनुसार प्रेमी दो प्रकार के होते हैं, एक आत्मसमर्पक और दूसरा आत्मसम्प्राप्ति। ये दोनों ही स्थितियाँ यदि Extraneous पर हो तो अच्छी है। क्योंकि जो पूर्ण रूप से आत्म समर्पक है, उसे कमी सन्देह, शिंकायत हो नहीं सकती। और यदि कोई पूर्ण रूप से आत्मसम्प्राप्ति है, तो वह छोड़े भी अवमान व अपेक्षा को सह नहीं सकता। इसलिए वह ऐसे प्रेम को एक दम समाप्त कर देगा। अधिक देर तक अशांत नहीं रह सकता। किन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। ये दोनों ही कुछ प्रेमियों में पाये जाते हैं। और यदि दोनों ही न हों तो प्रेम ही नहीं सकता, क्योंकि आत्म समर्पक के बिलकुल अभाव में तो प्रेम असम्भव है, और यदि

पूर्ण आत्म समर्पक हो तो यह प्रेम न होकर दासता हो जायगी। अन्त जिसमें इन दोनों में से जिस शुद्ध की मुख्यता होती है, उसके अनुसार उसको नाम दे दिया जाता है। [कर्मणः]

[पृष्ठ ३ का]

आती लक्ष्मी की मार्गभूत अपनी विपुल प्रीतिस्त्रि को कदापि नहीं छोड़ना चाहिये; परन्तु उसने यही उचित समझा कि चिकित्सा के नाम पर प्राच-वर्ष की प्रक्रिया द्वारा उदर-दरी-भरक करने की अपेक्षा किसी नाचनान्तर से जीविका बहाला ही कहीं अधिक भ्रैयस्कर होगा।

क्या हनीमैन के इस प्रतीतिक पद्यात्मक पर मर्चुडरि का निम्न प्रसिद्ध श्लोक पूरा नहीं उतरता ?

"निम्नतु नीति-निपुणाः यदि वा लुच्यन्तु

लक्ष्मी समाविशतु गच्छन्तु वा पयेष्टम्

अर्थात् वा मरुच्यन्तु युगान्तरे वा

न्यायाप्यः प्रविचक्षन्ति परं न धीराः ॥

यद्यपि अन्तरात्मा की आकांक्षानुसार हनीमैन ने चिकित्सा के कार्य से सर्वथा हाथ धींच लिया तथापि उसका मस्तिष्क प्रतिष्ठ चिकित्सा विद्यान के उन्नत करने के उपायों को लोचने में ही लगा रहना था। उसका पूर्ण विश्वास था कि परम ध्यानु परमात्मा ने अपनी सम्मान को, रोगीपरममन के किसी लक्षकः साधन बिना इस प्रकार रोगों से निर्वीच सताये जाने के लिये कदापि उत्पन्न नहीं किया है।

अपने इस दृढ़ विश्वास के अनुसार वह उस उपाय व साधन को वा जाने के लिए सदा लज्ज व हता था।

प्रायाः नाराशा की भ्रमक इस प्रकार विधी रहती है जिस प्रकार बाघों में बिजली तथा अमावस की रात में प्रतिपक्षचन्द्रलेका। निराशा-निशा के पूर्य होने ही आशा की चमक दीखने शगती है। हनीमैन की इस पूर्णता को प्राप्त हुई निराशा-निशा का जिस दिव्य परीक्षण द्वारा अवसान हुआ उसने आगमन का अवसर भी प्रा ही पहुँचा था।

हनीमैन ने चिकित्सा के कार्यों का परित्याग करके सन् १७६० ईस्वी में अंग्रेजी में लिखित Cullius के Materia Medica का जर्मन भाषा में अनुवाद करना प्रारम्भ कर लिया था। इस पुस्तक का अनुवाद करते २ हनीमैन Cinchona Officinalis Nalis नामक औषधि पर झा पहुँचा। सिन्कोना क्यो उच्च संस्कारक है इसकी व्याख्या करते हुए Cullius की पुस्तक में यह लिखा था कि चूँकि यह बड़ा कटु पदार्थ है अतः यह आमाशय (Stomach) को शक्ति प्रदान करके उच्च का नाश करता है। यह पढ़ने ही हनीमैन ने कथम मेरु पर रहती तथा तर्कना शक्ति के लक्ष्मा आपृत हो जाने के कारण यह पूर्य लोचने लगा, "यदि सिन्कोना कटु पदार्थ होने के कारण उच्च संस्कारक है तो Coffee, सालिसिच, आरसैनिक तथा आरनीका इत्यदि पदार्थ क्यो उच्च संस्कारक हैं ? ये सब तो येने कटु पदार्थ नहीं

हैं। कृषि, सिनकोना भी उबर के कुछ ही रोगियों पर प्रसर करना है, सब पर नहीं। उन्हे याद आया कि काफी इत्यादि न केवल उबर सकारक हैं अपितु कमी कमी अधिक मात्रा में लेने पर, उबर की पैदा भी कर देते हैं। तब उसने सोचा कि क्या सिनकोना भी उबर उत्पन्न कर सकता है? बस, इस विचार के आते ही उसने सिनकोना का Liquid extract तय्यार करके दो ड्राम सुबह तथा दो ड्राम सायंकाल स्वयं पीना प्रारम्भ कर दिया। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब कि उसने देखा कि उसे उसी प्रकार के जाड़े बुखार ने लता दिया जिस प्रकार के जाड़े बुखार के रोगियों को सिनकोना देकर वह अच्छा किया करते था। अब हर्नोमैन सोचने लगा कि "क्या यह बात तो नहीं है कि सिनकोना रोगियों में उबर-संहारक इसलिये है कि जब कि वह स्वल्प मनुष्यों में उबर उत्पन्न भी कर सकता है?"

पाठकहृन्द्! इसी विचार द्वारा परमात्मा ने हर्नोमैन के हृदय में चिकित्सा के उस सत्य-नियम का प्रकाश कर दिया जिसे प्राप्त करने के लिये वह अब तक तड़फड़ा रहा था तथा जिसके प्रकाश करने का समाधासन देकर भगवान् ने उन्हे इस मय-संसार में अवतरित किया था। हर्नोमैन के प्रसन्नक में इस विचार का समाप्ता ही "होमियोपैथा का गर्भ म आना" है।

गर्भ में आते ही यह विचार हर्नोमैन के परीक्षणों द्वारा परिपुष्ट होने लगा। हर्नोमैन ने अनेक औषधियों द्वारा वही परीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया तथा बहुत सी औषधियों का लक्षण-संग्रह तयार कर लिया। अब जब कभी उसे किसी रोगी के लक्षण उन औषधियों में से किसी औषधि के समझीन लक्षणों में मिलने दिखाई दिये, उसने उन्हे वह औषधि परीक्षणार्थ देनी प्रारम्भ कर दी। फल यह हुआ कि यह रोगी स्वस्थ हो गया।

इन परीक्षणों द्वारा उन्हें यह निश्चय हो गया कि न केवल सिनकोना अपितु समस्त औषधियाँ रोगों का शमन हमलिये करनी हैं और वे स्वस्थ मनुष्यों में रोगलक्षणों के समान लक्षण पैदा कर भी सकती हैं।

इस प्रकार किये गये चिकित्सी परीक्षणों की सफलता प्राप्त होने पर हर्नोमैन ने चिकित्सा का काय पुनः नियम-नुसार प्रारम्भ कर दिया, जिन उन्हे अशानीत सफलता प्राप्त होने लगी। इस ऐकान्तिकी सफलताक कारण पर विचार करने हुये उन्हे डा० हिप्पाके दृष्ट का "रोगोपशमन कार्य समी तथा विषमो दोनो के अनुसार हो सकता है" यह अर्थ याद आया। विषमों के निश्चालन के अनुसार चिकित्सा करने पर उसे जो असफलता प्राप्त हुई थी उन्हे वह कैन्ने मुला सकता था! उसी के कारण तो उन्हे चिकित्सा के कार्य में हाथ धो बैठना पड़ा था। उसने मरमत् सिद्धा कि हो न हो यह सफलता "समो" के निश्चालन के आधारे पर चिकित्सा करने का ही परिणाम है। शीघ्र ही उसके हृदय में यह दृढ़ निश्चय हो गया कि जिस की कोज में वह अवतक मारा फिर रहा था, चिकित्सा का वह सत्य नियम—"समो" का ही है। इस नियम के हाथ लगने ही उसने उन्हे "समः समः प्रथमयति" का प्रत्यक्षकथ

ने कर संसार के सामने प्रस्तुत कर दिया। पाठकहृन्द्! चिकित्सा के इस एक मात्र सत्य नियम का संसार में प्रगट होना ही "होमियोपैथी का जन्म" है।

## गुरुकुल समाचार

ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। चिकित्सालय में कोई नवीन रोगी प्रविष्ट नहीं हुआ। शत्रु का उच्यतना का प्रमाद ब्रह्मचारियों के स्वल्प बेहरी पर स्पष्टतया प्रकट हो रहा है। महाविद्यालय की समाप्तों के साप्ताहिक अचि-वेशन नवीन श्रमियों की क्रियाशीलता के कारण सोमनाह हो रहे हैं।

### गोष्ठीसमा:—

गत शुक्रवार की रात्रि का गोष्ठी-समा का साधारण अचिवेशन श्री प्रो० वागीश्वर जी के सभापतित्व में किया गया। सभा में कवियों, गानिकों तथा महसजकारों ने अपनी उन्कट कला का अचक्षा परिचय दिया। सर्व श्री सविदाभर, सत्यदेव, सुयं कुमार, श्री कुमार, आनन्द, सत्यसूयक जी 'योगी' की कविताएँ स्वल्प पसन्द की गईं। श्री सभापति जीने प्रसन्न में कवियों का माग प्रदर्शन करने हुए उनका उन्माह बढ़ाया।

### दो गद्य गीत

[ लेखक की अज्ञात कृति 'मा' में ]

[ १ ]  
मां के पास जो बैठता है वह मां का हो जाना है।  
बालक मां की गोष्ठी में बैठकर मां को अपना समझता है।  
मां का स्वल्प पनकर मां पर स्वल्प समझता है।  
बहुता मां का वृष पीकर स्तन त्याग करना नहीं चाहता।  
पक्षी पेड़ की कोल में रहकर पेड़ छोड़ना नहीं चाहता।  
मां का प्यार जब मां के पास जाना है तब मां उन्में समीप विडानी है।  
समीप बैठने में पल पल मां का प्यार मिलता है।  
दूर बैठने में मां आँसों में श्रोमल हो जाती है।  
मां का प्यार तुला कोर दूर का चीज़ नहीं है।  
वह तो पस में मिलता है।  
बलक मां की मीठी गोष्ठी में मां का प्यार पाना है।  
मां के कोमल स्पर्श में मां का आशीष पाना है।  
मां की साया में रहकर फूला नहीं समाना।  
मां के पास जो बैठता है, वह मां का प्यार पाना है।  
मां की गोष्ठी में बैठकर मां का हो जाना है ॥

[ २ ]  
अज्ञान के कारण अनेक गैरव रहस्यों की श्रोट में झिपकर जब सुख सांसार्य और स्वोदय के मद्र कृतीयों और प्रसादों पर प्रमादा करते हैं तो ओं! मनु प्रेम के बन्धे, नू उन बूँद बूँद पिए हुए स्तन के वृष की शक्ति से शत्रु का सामन कर कि जिससे शत्रु के भयानक आक्रमणों का प्रतीकार नेरी रौद्र रथ चातुरी करने में सक्षम हो। अन्त्याय और अभ्रमान में कुसजिजन आका-भगणों के मन्थ में विदुग्ध में नू सुस्कर नेने वीर गोत्रा उन्हे पते पते शिथिल और निर्धाय बनाने जिन्म उन हासक रहस्यों का बोधास तापडव नेने मुखा क सदस्य विज्ञय-श्रुतों का ध्वनि में दसककर अपन सर्वनाश में सकनादूर हो जाय ॥ 'शिफ'

## जाड़ों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी धातु क्षीणता पुरानी खांसी, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शौक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव १०) आध सेर २०) १ सेर ४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियों से तैयार की गई ये गोणियां सद्य प्रकार की कमजोरियों में भ्रक्सीर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करता है।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजीत और लोह भस्म की प्रधानता है। सद्य प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ॥) तोला

### मत शिलाजीत

सद्य प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ॥) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियां बेच रहे हैं इसलिए दवा खरीदने समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

बांच । देहली—चांदनी चौक ।  
। मेरठ—मिपर रोड ।

पार्सियां { बखनऊ—एजेंसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड ।  
। लाहौर— " " " हस्पताल रोड ।  
। पटना— " " " मधुषादोली बाँकीपुर ।  
। अजमेर— " " " वैद्यराज सरदारगाल जी कृष्ण चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी ज़िम्हानपुर**

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २।।)

सम्पादक—सार्द्धस्थरक्ष हरिवंश वेदाङ्ककार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार २२ मार्गशीर्ष १९६७; ६ दिसम्बर १९६७

[ संख्या ३४ ]

## आचार्य रामदेव-दिवस

प्राचीन आर्य संस्कृति के प्रबल पोषक, आर्यसभ ज के सर्वश्रेष्ठ वका और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सुदृढ़ स्तम्भ आचार्य रामदेव जी को दिवंगत हुए ६ दिसम्बर को पूरा एक वर्ष होता है। इस पुरुष-सिंह ने अपनी अमूर्त्य सम्पत्ति ( अपनी यौवनावस्था ) की कुर्बानी करके लगभग ४० वर्ष तक अथक रूप से देश और धर्म की जो उन्नत सेवा की है उससे कौन देशवासी अपरिचित है ? इतिहास, धर्मशास्त्र, आचार-शास्त्र, और राजनीति के इस पुष्कर विद्वान् ने भारतीय संस्कृति की धूम न सिर्फ आर्यावर्त में अपितु, इङ्ग्लैण्ड, अमेरी और अमेरिका तक में मंचा दी थी। रूपों पैसों के लोभ से बहुत दूर, ब्रह्मादि शारीरिक भृंगारों से सर्वथा निरीह, देश के अकलात्क सेवी, उग्र कर्मठ और महान् आशावादी इस बीरतावा की बर्बा, एक वर्ष से भारत के प्रत्येक कोण में—सभी समा-सोसाहदित्यों और समाचार पत्रों में—मोती रही है। आर्य प्रतिनिधि समा पंजाब ने ६ दिसम्बर को समस्त भारत में ‘आचार्य- रामदेव-दिवस’, ससमारोह मनाने जाने की घोषणा की है। आर्या की जाती है कि देश के सभी छोटे बड़े शहरों की आर्य समाजों, शिक्षक संघार्य तथा आम पब्लिक इस दिवस को बड़ी मेधवारी के साथ मनावेगी।

## आचार्य रामदेव जी का मेवाकार्य

भारतीय धर्म और संस्कृति की सेवा करने हुए आचार्य रामदेव जी ने राष्ट्र की भी बड़ी सेवा की। राजनीतिक आन्दोलनों में प्रमुख भाग लेते हुए स्वतंत्र, इसाहयों और पारसियों को भी समझ २२ सहायता देते रहे। यों तो भारत का शासक ही कोई सामाजिक या सांस्कृतिक खंभ ऐसा बचा होगा जिसमें आचार्य रामदेव जी ने अपनी अमूर्त्य सेवार्थ न दी हों, फिर भी शिक्षक क्षेत्र में क्रांति-कारी होने के गाने आपकी लम्बे अमूर्त्य सेवार्थ गुरुकुल को ही प्राप्त हुईं। आपने अपने जीवन का सबसे वैशकीभूत हिस्सा गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी और कश्मीरगुरुकुल देहरादून को उन्नत करने में लगाया। आर्य जनता की ये दोनों शानदार संघार्य आचार्य रामदेव जी

के दृढ़-परिभ्रम और अघ्यावसाय के बल पर ही बड़ी हैं और दिनोदिन अधिकाधिक उन्नति की और बढ़ने का प्रयत्न कर रही हैं। इनके देव देव और आगे उन्नत करने की जिम्मेदारी निस्सन्देह जनता पर है।

## दो लाख की अपील

गतवर्ष आचार्य रामदेव जी के देहावसान के परचात् आर्य प्रतिनिधि समा पंजाब ने उनके शेषकार्य को पूरा करने के लिए दो लाख रुपयों की अपील निकाली थी—जिसमें से प्रथम एक लाख रुपया विशेषतः कन्या गुरुकुल के लिये है। आज ‘आचार्य रामदेव दिवस’ पर क्या हम ऐसी आशा करें कि न सिर्फ आर्य जनता बल्कि भारतीय-संस्कृति प्रेमीमान उस महान् कार्यशील आत्मा का स्मरण करके अपने कर्तव्य को पहचानेंगे ? उनके प्रारम्भ किए हुए कार्य को अपने हाथों में लेकर उले पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। भारतीय-संस्कृति और सभ्यता के प्रतीक रूप इन दोनों शिक्षक-संस्थाओं की आयतनताओं और कमियों को अनुभव करेंगे, और इस दिशा में अधिक से अधिक प्रयत्नशील होंगे।

हमें आशा ही नहीं अपितु पूरा विश्वास है कि हमारे देश का समुन्नत सुसंस्कृत समाज इस तथ्य को अनुभव करके और आचार्य जी का कार्य-सूच अपने हाथ में लेकर इन दोनों संस्थाओं की उन्नति में उचित सहयोग देगा। गत वर्ष महात्मा गांधी जी ने आचार्य जी के निधन के परचात् कन्या गुरुकुल की सहायता के लिए एक मार्मिक अपील ‘हरिजन’ में प्रकाशित की थी— उससे प्रेरित होकर अनेक धनी मानी सज्जनों ने योग्य सहायता भी दी थी। किन्तु यह अपर्याप्त रही। आज के दिन हम आपकी पुनः कर्तव्य स्मरण करने हैं। आशा है आप इसे भूलने नहीं और तन, मन, धन, से पूरी सहायता देकर अपनी सचेष्टता, उत्साह और जागरूकता का परिचय देंगे।

—यं० हरिवंश वेदाङ्ककार

# महात्मा गान्धी की अपील

स्व० आचार्य रामदेव स्मारक की  
सहायता कोजिये

गत मास उग्राह्य महात्मा गान्धी ने अपने विषय पत्र में कन्यागुरुकुल देहरादून की सहायता के लिये अपील की है। मैं हम अविकल रूप में नीचे प्रकाशित करने हूँ।

सेवाग्राम,

वर्षा

२०. ११.४०

आचार्य रामदेव स्मारक निधि के लिए जो धन इकट्ठा होगा उसका उपयोग देहरादून कन्यागुरुकुल चलाने में होगा। एक लाख रुपये इकट्ठा करने का संरक्षकों का संकल्प है। आचार्य रामदेव का कन्या गुरुकुल के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मेरी आशा है कि दानी लोग इस स्मारक को अपनायेंगे।

मो. क. गान्धी



## कन्यागुरुकुल की सहायता की अपील

स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी मेरे पुराने मित्र थे। उन्होंने अपनी आयु भर जिस लग्न और तप के साथ आर्य समाज की हर प्रकार से सेवा की वह आर्य जगत को भली प्रकार प्रकट है। स्वामी भद्रानन्द जी के बलिदान के पश्चात् उन्होंने गुरुकुल काङ्गड़ी के कार्य भार को सम्भाला। कन्यागुरुकुल देहरादून के तो वह प्राण ही थे। श्रीमती विद्यावती जी सेठ आचार्या जी के सिवाय कोई दूसरा व्यक्ति नहीं जिस ने स्वर्गीय रामदेव जी से अधिक उक्त कन्यागुरुकुल की सेवा की और उसको उन्नत किया। शरीर छोड़ने से कुछ ही समय पहिले कन्या गुरुकुल के गत वार्षिक अधिवेशन पर वह बहुत लम्बे थे और बोलने में भी बहुत कष्ट होता था। तिस पर भी जो उनके मित्र वा दर्शक उनको देखने के लिये आते थे उन से वह गुरुकुल के हित की बर्षा करने से नहीं शुकने थे। कन्या गुरुकुल की आर्थिक दशा इस समय विचारणीय है। महात्मा गान्धी जी ने ठीक लिखा है कि स्वर्गीय-रामदेव जी की कीर्ति धमर करने का सब से अच्छा

उपाय यही है कि कन्या गुरुकुल की सहायता करके कन्याओं का सर्वश्रेष्ठ शिक्षण जाये। आर्य प्रतिनिधि समाज पंजाब ने श्री रामदेव जी के स्मारक के लिये फरब कोला और अपील की है। बाबा की जानी है कि आर्य जनता विश्व मोक्षकर उक्त फरब के लिये दान देगी जिस से कन्या गुरुकुल की आर्थिक दशा सुधरे और स्वर्गीय-रामदेव जी की आत्मा को शान्ति मिले।

गङ्गा प्रसाद गिटायई भीफूज जज  
दिहरी (गढ़वाल स्टेट)

लि० १७-११-४०

## होमियोपैथी का विकास

(ले० श्री० डा० चोम्बकांग जी विद्यालङ्कार किन्नौर)

(५)  
यद्यपि सहकार के नव-राज्य के बालाक के समान रक्तवर्ण तथा कोमल २ नव पल्लवों को देखकर अनायास यह अनुमान किया जा सकता है कि यह हीनता पादव समय आने पर अवश्य ही किसी ऐसे महान् वृक्ष के रूप में विकसित हो जायेगा जिसका नीचम संसार को मुग्ध करने वाला तथा जिसके मधु-मधु फल काने बालों से कोकिलों के समान इसका गुणगान करा लेने वाले होंगे। तथापि वृक्ष के सर्व-समान सुदृढ बीज को देखकर सिवाय किसी विश्व पुत्र के सर्व-साधारण मनुष्यों के लिये यह भविष्य बाणी करना प्रायः असम्भव ही होता है कि इस सुदृढ बीज में इतना महान्-काय वृक्ष अस्तित्वित है जिसकी शक्ति प्रतिशतार्थ न केवल आकाश की अपितु पताक की ऊपर लेने से भी नहीं शुकनेगी।

इस प्रसङ्ग में संस्कृत साहित्य के प्रेमियों को मगध के महाद्वज नन्द तथा उनको दासी सुमङ्गला की कथा का स्मरण हुये किना नहीं रह सकता। महाद्वज नन्द ने वट से विशाल काय वृक्ष के बीजों को मुह में धरे, रेल गाड़ी के समान भागी चली जाती चींटियों को देखकर पत्मात्मा के छुट्टि-पुत्र का विचार करके स्मित किया। महाद्वज को स्मित करता देख, दिना उसका क्रूर स्वामि, दासी ने भी स्मित कर दिया। महाद्वज बन्ध और दासी के स्मित में जो मेद है वह बानी तथा अज्ञानी पुरुष के बचन में—विशेषतया अकेल्य के विषय में कहे गये बचन में—होता है।

महात्मा हनीमैन ने "समों" के किं-कस्ता के स्वतन्त्र-वियम रूपी सुदृढ बीज के अपने मालिक में समा जाने पर ही तदुचित्यक एक भविष्यद बाणी भी थी जो निम्न है—  
"मेरा चिकित्सा विद्यान का यह सुदृढ बीज, बातीं ओर से अज्ञान-मङ्गलों द्वारा घिरा होने पर भी, अज्ञान होकर आज तीन पल्लव २ तमों का एक छोटा सा पादव बन चुका है तथा मेरे देखते २ ही आस पान के अन्त्य सब वृक्षों से ऊंचा उठता चला जा रहा है।" आगे हनीमैन लिखते हैं "केवळ पूर्वक इतने किताब को देखते आये—इसकी ऊँचे कोकिलों नसे छोड़ रही हैं, तने मोटे होते चले जा रहे हैं तथा यह एक महाकाय वृक्ष-वृक्ष का



खा रूप धारण करता जाता आ रहा है; इसकी शाखा-प्रति शाखाओं में जो अनेक-अनेक को वे रती जाती आ रहीं हैं तथा ऊपर, अक्षय्य न पाकर, सुलभ की और मुककर बंधु, पादांत में भी प्रवेश कर रहीं हैं। समय आने वाला है जबकि यह बृह शीघ्र ही बड़े २ पुरुषों से भी अग्रकल्प होकर अग्रमंडल भर में आ जायगा जिसकी शीतल क्षायामें, शीमानप से संतत क्षमल संसार के पथिक-गण परम शान्ति तथा विश्राम लाभ कर सकेंगे ॥

हमीमैत्र ही यह अविष्यद् वाणी क्या सुमङ्गला के लिये के समान निरर्थक थी? क्या उसे परमात्मा के सृष्टि-नैतुष्य का परिहान न था? क्या उसके मस्तिष्क में उस बुद्धीशक्ति की इतना महान् विकास देने का सामर्थ्य विद्यमान न था? क्या कियासिद्धि महान् आत्माओं के सत्त्व में घास नहीं करती?

इन प्रश्नों का उत्तर होमियोपैथी के विकास के इतिहास का अनुशीलन करने पर सहज ही में मिल जायगा।

हमीमैत्र के मस्तिष्क में उभा यह "समी" के नियम का बीज, उसकी विचार धारा में सिञ्चित होकर तथा उसके परीक्षणों का नाच पाकर शीघ्र ही फूट निकला जो प्राग्-पुरुष के शिपायु के समान (शिपायुर्ध्वं दुर्दैव पुरुष) तीन तनों में ऊपर को उठा तथा उनमें से अनेक शाखा प्रतिशाखाओं के ब्यान २ घर फूट निकलने पर शीघ्र ही वैसा महान् बृह बन गया जैसा कि हमीमैत्र की अविष्यद्-वाणी में बनी दर्शाया गया है।

"समःसमं प्रशमयति" के बीज में उत्पन्न हुये वे तीन मुख्य तने कौन से हैं तथा उन में से कौन २ सी शाखा-प्रतिशाखायें उत्पन्न हुई हैं—इसका वर्णन ही होमियोपैथी के विकास का इतिहास है जिसका संक्षिप्त-रूप पाठकों के परिचान के लिये प्रस्तुत किया जाता है। इस बीज से निकला सब से मुख्य वृथा प्रथम तना—

**Similar Remedy (समीपथि)**

यम का है जिसका अर्थ है रोगी के समान लक्षणों वाली औषधि। जो रोग लक्षण रोगी में दिखायी देते हैं यदि उन्हीं लक्षणों को कोई औषधि लक्ष्य मनुष्यों में भी उत्पन्न कर चुकी होती है तब वह Similar Remedy या "समीपथि" कहलाती है। ऐसी औषधि का एक नेगी में प्रयोग करने पर वह भीरोग वा लक्ष हो जाता है। क्लिप्त प्रकार तुला में जब दोनो पदार्थों में एक दम समान भार हो जाता है तब तुला की डण्डी संतुलित हो जाती है—निजकुल सीधी हो जाती है—उसी प्रकार जब रोगी के लक्षण तथा औषधि के लक्ष मनुष्यों पर उत्पन्न किये गये लक्षण एक दम समान होते हैं तब-और केवल तब ही—उक्त औषधि के प्रयोग से वह रोगी सर्वथा रोग मुक्त हो जाता है। उस पर क रोम का आक्रमण इस प्रकार मस्तिष्क दृष्ट हो जाता है क्लिप्त प्रकार पूर्ण-निकल्प तात्पर्य में एक कण्टक के गिरने से उत्पन्न हुई २ चतुर्भाकार में डबनी तरङ्गें, घास ही वृसद, उसके समान भार बार वाले कण्टक के गिरने से उत्पन्न की गई

तरङ्गों से टकराकर विनष्ट हो जाती हैं तथा तालाव तरङ्ग दृष्टि होकर पुनः अपनी असली हालत में, क्षमाभावना में अथवा लक्ष्मणवत्ता में आ जाता है।

यूँकि मित्र २ रोगों के रोगियों में, मित्र २ रोग लक्षण प्रगट होते हैं अतः उन सबके समांन लक्षणों वाली मित्र २ औषधियों के परिचान के बिना चिकित्सा का कार्य होना असम्भव हो जाता है। हमीमैत्र ने इस आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये अनेक औषधियों के लक्ष्य मनुष्य पर परीक्षण द्वारा प्राप्त किये गये लक्षणों का संग्रह अपनी "Materia Medica Purā" नामक पुस्तक में प्रकाशित कर दिया है।

पाठकों के लिये यह जान लेना भी आवश्यक है कि होमियोपैथिक चिकित्सा विज्ञान में लक्ष्य मनुष्यों पर औषधियों के लक्षण उत्पन्न करने के परीक्षणों को "Provinga" या "औषधित्व सिद्धि" कहते हैं तथा इस प्रकार उत्पन्न हुये २ लक्षणों को Pathogenetic Symptoms या "औषधि-उत्पन्नलक्षण" कहते हैं।

यदि कई औषधियों के मिश्रण द्वारा ये परीक्षण किये जाय तो यह पता चलना असम्भव हो जायगा कि किस औषधि द्वारा क्या २ लक्षण उत्पन्न होते हैं अतः यह अनिवार्य हो जाता है कि इन परीक्षणों में अकेले २ औषधियों का ही प्रयोग किया जाय।

जब औषधियों के लक्षण-संग्रह अकेले २ औषधियों की औषधित्वसिद्धि द्वारा प्राप्त किये गये हैं तो उनका रोगियों में प्रयोग भी अकेले २ करना ही आवश्यक हो जाता है अतः "समीपथि" नामक मुख्य तने में से दूसरा—

**[२] Single Remedy या एकीपथि**

नाम का दूसरा तना लक्ष्य फूट निकलता है जिसका अर्थ है एक समय में "एकीपथि" का ही प्रयोग करना। इसके अनुसार न तो औषधित्वसिद्धि में ना ही चिकित्सायें रोगियों में, एलोपैथिक द्रव्यों के समान कई औषधियों का मिश्रण होमियोपैथिक चिकित्सा में व्यवहार में लाया जा सकता है। रोगी की परीक्षा करने पर उसके लक्षण-समुदाय को लेखबद्ध कर लिया जाता है तथा उन लक्षणों के समान लक्षण रखने वाली औषधि का चुनाव कर लिया जाता है जिसका उचित मात्रा में प्रयोग करने पर रोगी रोग लक्षणों से निमुक्त हो लक्ष्य हो जाता है। यदि इस प्रकार एक औषधि का प्रयोग करने पर रोगी के लक्ष लक्षणों का प्रथम न हो पाय तो शेष बचे लक्षणों के समान लक्षण रखने वाली दूसरी औषधि का, पहिली औषधि के अपना कार्य समाप्त कर देने के पश्चात्, प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार मनुक्त हुई दूसरी औषधि को पहिली औषधि का "पूरक" या (Complementary Remedy) कहते हैं।

यूँकि रासायनिक समास के रूप में समस्त हुये २ अनेक पदार्थों के वैपथिक गुण उसके समास में क्रतिय नही रखते अतः रासायनिक समास एकीपथि के रूप में ही मनुक्त होते हैं। इसीलिये सोलियम हरिद्र (Solium— शेष पृष्ठ ६ पर)

**गुरुकुल**  
२२ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९६७

**घन की राक्ति**

[ बे० श्री आचार्य चमरवेषा जी ]  
(गाथांक से आगे)

**कुछ धोखे की बातें**

संस्तमान शोषक परपण आर्थिक व्यवस्था की कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हसे सचने के बिना कहीं विना में झारने नहीं नल सकता। ये ऐसी बातें हैं जो कि जैसा प्रचार बिधा गया है उसके अनुसार हमें डीक लगती हैं अतएव हम (प्रथम अध्याय में ही) इसके अनुसार चलने हैं और शोषक के अंगीकार होने रहने हैं। पर बाद हम सचमुच धन के सनुपयोग में ही—यह काम में ही—हिस्सा बंटाना चाहते हैं तो हमें इन धोखे की बातों से सावधानी और यत्न के साथ बचना प. हर।

(१) कुछ धानो से—पढ़े लिखे लोगों के मुँह से इन बातों को सुनते सुनते—मुझे बिड़ हो गयी है। उन में परलसे बात है सस्ते—महंगे की। 'सस्ता और महंगा' इस पर मैंने एक बार 'आलुकार' में एक लेख भी लिखा था। जैसे धन का उरुपयोग मैंने दो प्रकार का कहा। जैसे धन का सनुपयोग भी दो प्रकार का है। जहाँ (शोषक कर्म में) धन का उपयोग नहीं करना चाहिये वहाँ धनोपयोग न करना भी उसका जरूरी सनुपयोग है। पर जब हम लोगों को, उदाहरणार्थ, विदेशी कपड़ा और मिल का कपड़ा सस्ता होने पर खरीदने से (वहाँ धन का उपयोग करने से) रोक्ने हैं और बाकी को महंगा होने पर भी—खरीदने को कहने हैं तो हमें दुना बिधा जानना है कि 'बह तो कार्यशाख का सिद्धान्त है 'सस्ता करीबो और महंगा बेचो'। पर मैं कहता हूँ कि यदि कर्षी शाख का सिद्धान्त इतना ही है तो इसके जिये तो किसी 'शाख' की जरूरत नहीं। इनकी बात ता शाखात्मिक बना एक 'विलकुल बेपड़ा' आदर्श भी, जो केवल उदा ही गिनती आगता है यह भी जान सकता है और आगता है। इसके बिंद किसी शाख की जरूरत नहीं है। शाख ता यह होता है 'जो कुछ शासन (अनुशासन) करता है। अनुष की जो अध्यात्मिक संसि प्रवृत्तियाँ हैं उनके अनुसार तो अनुष अपने आप ही चलता है, शाख का काम तो यह है कि वह उसके कर्त और बागीकियों का जान कर कर्त अनुष को अपने इस चलने को यथा समर्थ नियंत्रित करना और डीक बिशा में ही गति करना सिक्ता है। इस लिये कार्यशाख की जरूरत तो इस बात के लिये है कि वह अनुष को ऐसी बागीकी की और करने से बचाने वाली बातें बता सके कि अनुष कवस्था में महंगा तो लेने में (और सस्ता) बना, मुक्त भी न लेने में) धन का सर्व प्रेष्ठ सनुपयोग है।

सस्ता तो को, पर सबा अर्थ शाख कहता है कि 'यदि वेकसी कि यह चीज सस्ती क्यों है।' यदी की भाग लंगा में से कोयला सस्ता मिलसकता है या 'मूल्य' अर्थान में से है 'सस्ता मिल सकती है।' इस लिये हिस्साविकि कि सस्ते के लिये क्विमि कोर और मूल्य तो हमें नहीं खड़ाई है। पर सचमुच हम जो सुन्दर सुन्दर और अति सस्ती चीजें देखते हैं उनके पीछे ऐसी ही बबादी हुई हो चुकी होती है तभी ये सस्ती होती हैं। सस्ता तो औरी का माल होगा है। जिसने अपने अन्न से कोई चीज बनायी है उसे वह सस्ता नहीं है सस्ता, अपनी मेहनत से भी सस्ता देते हुए उसे बर् होगा। पर औरी के माल के जितने भी पैसे उठ जाय उतने ही बहुत हैं अतः वह सस्ता दे सकता है। निःसंदेह अर्थिकशास्त्री सस्ती चीजों के सस्तेपन का कारण अल्पतः यह होता है कि उसके बनाने में अन्न करने वाले को कहीं कम मजदूरी दी जाती है—उस पैसे की औरी की जाती है। हम यहाँ रुपये का १६ सेर दूध लेते हैं, पर मैंने अपने पास ३-४ वर्ष से जो पाखी है और कलका बुरा पूरा हिस्सा रखा है, मैं तो कह सकता हूँ कि इतना सस्ता दूध (दूध न हो कुछ और हो तो और बात है) किस चोगे लिये को नहीं दे सकता है। पूरी तरह क्षान्धीय करने में तो कहीं औरी निकलती। हमारे अल्पतः जो अल्पतः सस्ता ही देखने की मज्जि है कसी का यह परिचय है कि आकलन काय पदाथों का भी कुछ मिलना पुष्कल होगा है। कहते हैं कि पहिले समय में 'असमय' क्षीण धन यन्त्र के लिये कर्मों को जूहर देते थे। पर अब की सम्भता में और बना हो रहा है। कर्मों करने के लिये काय पदाथों में तरह तरह की मिलावट कर लाहय्य की दृष्टि से उन्हें दूबित कर बेचना बना रुपये धाने के लिये दुसरो को (एक को नहीं, सैकड़ों को) जूहर बिलाना नहीं है। बी, दूध, तेल, खादा यहद कुछ भी कुछ मिलता अन्न कर्मि हो गया है। इन सब में न जाने किन किन बुरी चीजों की मिलावट की जाती है। जो चीजें शुद्ध होतीं, जिसमें धर्मो को पैदा मजदूरी दी गई होगी वह अरोचना महंगी होगी हो। अन्न और बच्च आकलन की हालत में अरोचना महंगे होने चाहिये।

जो किसान दिन भर मेहनत करते फल जैसी अल्पतः सवयोगी वस्तु अन्न करता है, वह फल स्वयं भूमि मरता है कहीं कि उसके अन्न को कीमत नहीं मगाई जाती है—आर्थिक अन्वला ऐसी पैदा कर दी गई है कि उसे अल्पतः शोकर अपने अन्न की उपज को सस्ता बेचना पक्या है। सिक्के में बीच में आकर सन्ते और महंगे फल के पैर को तीर बना दिया है। यदि किसान अन्नाक का ही विभिन्नय करे तो उसे इतनी सुविधा न हो। गरीबी का उसका कुछ-कुछ कम हो जाय। अब तो उसका अन्नाज महंगा निकलना चाहिये यदी डीक उनीय है—अन्ना में तो कुछ पैसा होना चाहिये—ऐसी बात पहिले जलविधोभा की से सुनी थी तभीसे जंच गयी है। कि अनुष की अपनी काम-पनी का अनुष भाग (मानो ५० की लम्बे) कामें कर्मों में ही व्यव करना चाहिये। तभी अन्न बच भावि अत्यन्त

उपयोगी वस्तु (धन) पैसा करने वालों के साथ न्याय ही संभव है। मैंने मेरे परिवार में ५०) मासिक खर्च होता है तो लगभग ५०) तो खाने कपड़े में ही व्यय होने चाहिये। इससे धन के सुसुपयोग की आधार शिखा रखी जायेगी। क्यों कि इससे जो अधिक से अधिक अधिकारी है उसके पास अधिकसे अधिक धन पहुंचेगा,अमको पूरा पूरा प्रतिकूल मिलेगा। पर ही यह रहा है कि १००) वेतन लेने वाला कहता है कि मेरे खाने पर तो ५) महीना ही खर्च होता है। फिर खर्च और किस बाब पर होता है ? लोग दूध २) का पीते हैं पर उस दूध को पीने के लिये प्याली 1) को रखते हैं। जिन चीजों से हमें वस्तुतः कुछ लाभ नहीं होता, जो आवश्यक नहीं, बल्कि हानिकारक हैं उन्हें खरी-दने में हम बहुत, बेहद, बिना किसी अनुपात के खर्च करते हैं। यही कारण है कि हमाराारी का और सब से आवश्यक अम करने वालों के पास वे कुछ नहीं पहुंचता। पर फेकल बोलने का अम करने वाले को १०) २०) प्रति घन्टा एक आखानी से मिल जाता है।

और ऐसी अन्य विचारसिद्धा की चीजें जिसकी लागत २ पैसे (१। पैसे) भी नहीं होती हम खुरी से 1) देकर लेते हैं, पर कुछरा का एक थका खरीदने समय उससे भगवते हैं। बार पैसे के भी तो पैसे देना चाहते हैं। और कहते हैं कि इसका मार्केट रेट (बाजार भाव) यही है।

(२) यह दूसरा शब्द आ गया जिस से मुझे विद्व है। यदि मैं किसी छोटा समझे आने वाला अम करने वाले को कुछ अधिक विराही या कुछ अधिक मांसिक वेतन देना चाहता हूं तो लोग कहते हैं कि "क्या इन्हें आप मार्केट रेट से भी उपादा दे देंगे ?" पर यह बाजार भाव (मार्केट रेट) क्या होता है, यह कभी नहीं सोचते। यह तो गरीबों पर दोहरा अन्याय करना है, और अपने को धोखा देना है।

हमने भीमप या माव ही पहिले कम्प्याय से बताया है, अतएव राजत बनाये हैं या बनने दिष्ट हैं। पर यदि उस गलती को सुधारने की तरफ ध्यान लीजा जाता है तो उसे ठीक कर देने की जगह 'बाजार भाव' जैसा एक और बहिया शब्द बोल कर अपने आप को धोखा देते हैं। और गरीब के प्रति किये गये कम्प्याय को 'और आगे बढ़ते जाते हैं। हम यह भी मान लेते हैं और कहते हैं कि बाजार भाव धारा और उपलभ्यता (प्राप्यता) (Demand and supply) से बनता है। पर पहिले तो बाजार भाव इन से (मांग और प्राप्यता से) स्वभावतः बनता नहीं है, कृत्रिम तौर से—बनराफि के दबाव से, व सुसुपयोग से बहुधा बनाया जाता है। धन की अधिकता होने से धनी व्यापारी निमित्त होकर अपना अपनी को कुछ फल के लिये सखा बना कर (गरीब लोग तो अपनी चीज को सखा बना कर भी नहीं सकते) दूसरों के व्यापार को नष्ट कर देते हैं या फिर 'पूर्वोक्त किसी छिपी हुई बर्बादी या भीरी के कारण देखने में सखा कर लेते हैं और फिर भीडा पाकर मर्हना कर देते हैं और कहते हैं कि यह बाजार भाव है। अन्याय पूर्ण बाजार भाव हमने

भी बनाया है। अब हमें समझ आती है, और हम उसे ठीक करना चाहते हैं तो ठीक करने दो। उसे हम ठीक कर देंगे ती यही बाजार भाव हो जायगा और यह सख्या बाजार भाव होगा। तब उस में बैराक मांग और प्राप्यता का संतुलन भी लागता। वैसे तो तब भी और और प्राप्यता की बंधे तीर पर नहीं चलने देना होगा, समाज के इन्हे कम्प्याय के लिये धर्म नैतिकता और सचाई के अनुसार उकट चीजों की मांग को बढ़ाना (जैसे आज अमम चीजों की मांग नीची रही को उगाने और बढ़ाने द्वारा बढ़ाई जाती है) होगा और किसी की प्राप्यता को घटाना होगा। यह ठीक है कि बाजार भाव के सखे न्याय के आधार पर व्यवस्थित कर किये जाने पर भा बढ़ा मांग और प्राप्यता का नियम स्वभावतः उगेगा और वह उतने धारा में उचित भी होगा। पर पहिले तो बाजार भाव किसी न्याय पर आधारित हो, ऐसा कुछ यात हमें करना चाहिये। कम से कम ऐसा कुछ तो होना ही चाहिये कि जो भी मनुष्य (धन में अघाट घण्टे (या जितने घण्टे जरूरी समझे जायं) समाज की दृष्टि से कोई उपयोगी अम करता है तो उसके अम का भाव (बाजार भाव) इतना जरूर होना चाहिये जिस से वह ठीक तरह (शारीरिक, मानसिक, आत्मिक उन्नति करता हुआ) जीवन व्यतीत कर सके। मैंने गुलकुल में एक सपरिवार व्यक्ति के लिये यह जीवन निर्वाह का भाव कम से कम २५) रखा है। इससे कम किसी को नहीं मिलना चाहिये। इस से कम में (रुपयों की वर्तमान कीमत में) जीवन निर्वाह नहीं हो सकता। रुपयों की कीमत घटती बढ़ती रहती है। अतः मनुष्य की आवश्यकताओं की परिगणना को जा सकती है कि इतनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने लायक वेतन (कम से कम) सिककों या वस्तुओं के रूप में) प्रत्येक अम करने वाले को मिलना ही चाहिये है। यहां सूचना दे दू कि गांधी सेवा-संघ ने एक उपसमितिक बनायी है जो कि सोज कर यह निब्यय करेगी कि वर्तमान काल में हमारे देश में प्रत्येक परिवार की कम से कम आवश्यकताएं क्या हैं जिनकी पूर्ति उसके ८ घन्टे के अपने उचित अम के बदले में आवश्यक की जा सके। तो तत्काल यह हुई कि प्रत्येक अमी को उसके अम की पूरी पूरी कीमत मिल जानी चाहिये और वही उसका बाजार भाव होना चाहिये। भाव कम का बाजार भाव या तो डाका है या जुम्लम है। यदि गरीब लोग मजदूर होकर डाका डालें तो वह तो सम्भव में आता है। पर आज कम तो अमीर लोग गरीबों पर डाका डालते हैं और मजा यह है कि उस डाके को कोई डाका समझता ही नहीं। जब अन्याय से अपने स्वार्थ के लिये किसी चीज को मंहगा कर दिया जाता है तो उस सरासर डाके को बाजार भाव के नाम से छिपा दिया जाता है और दूसरी तरह जब उसी तरह अन्याय से अपने स्वार्थ के लिये गरीब के अम को सखा कर दिया जाय, है उस सरासर जुम्लम को भी बाजार भाव कह के छिपा दिया जाता है।

किसी अम के बदले में भाज हम ) देते हैं तो कुछ दिनों बाद गरीबी बढ़ जाने पर ) देते लगते हैं, गरीबी के बारे में बेचारे ) पर भी गजी हो जाते हैं ; फिर रु) कर देते हैं । इस तरह भाजार भाव बनता है । ज्यों ज्यों गरीबी बढ़ती जाती है त्यों त्यों हम उन्हें और लगते जाते हैं । इन का नेतन और और कम करते जाते हैं । क्योंकि तो वह कि गरीबी बढ़ने पर उनका नेतन बढ़ना उम्क । कम मत तो यह है कि वे गरीब अपनी असली शक्ति को नहीं पहिचानते । असल में धन अम है और वह अम रूपी धन उनके पास है, अपने उस अम को वे जहां बाई वहां में, जहां न चाहे वहां न में अपने इस बल को वे नहीं पहिचानते । इसलिये बेवस हैं । पर हम बड़े कहलाले वालों को तो न्याय करना चाहिये । ठीक ठीक न्याय तो यह है कि जिस से हमने अम कराया है उसे उसके अम की जो ठीक ठीक कीमत है वहीं नहीं किन्तु उसने कुछ अधिक देना चाहिये । न्याय भी देना चाहिए क्योंकि यदि हम यह समझ गये हैं कि असली धन उपयोगी पदार्थ ही नहीं किन्तु उपयोगी अम है तो हम यह भी समझ सकते हैं कि जब हम किसी का अम लेते हैं, तो हम उसका अम रूपी धन उधार लेते हैं । क्योंकि जब किसी दूसरे के अम की जरूरत है तो वह उस को मर्जा है कि वह देवे या न देवे । हमें तो अपने ही अम पर अधिकार हो सकता है दूसरे के अम पर नहीं । पर यदि वह अन धन रूपी धन वे देता है तो वह उधार देता है ऐसा समझना चाहिये । मतलब यह है कि गरीबों के अम की कीमत हम कितने मन्तव्य से लगाते हैं इस पर हमें अपनी आंख खोलनी चाहिये ।

३. यहाँ एक और शब्द बाध आगावा है, स्पर्द्धा । लोग कहते हैं कि स्पर्द्धा होनी चाहिये । पर वह स्पर्द्धा क्या है, कैसे होती है ? हमें एक नौकर की जरूरत है, (५) हम वेंगे । नौकर बहुत से अपने आप को पेश करते हैं । तो (४), (२) या (१) तक लेने को नीचे उतर आने हैं । और हमने (२) मांगने वाले को रख लिया तो हम समझते हैं कि हमने वहा धर्धरासस जानने का काम किया । नौकरों में स्पर्द्धा हुई और हमने सस्ते में काम चलावा । हमने अपने गुणकर्म में कलई करानी है और इसके लिये कई ठेकेदार ठेका लेने को तय्यार हैं । तो जो कम बोली बोलता है उसे ठेका दे देना— वह भी न देखना कि कलई उसकी कैसी है, कलई सफाई से ठीक प्रकार से हो ऐसा उसके पास प्रबन्ध है या नहीं, यह देखना तो दूर रहा कि वह अपने नौकरों की मजदूरी भी ठीक देता है या नहीं—केवल स्वार्थ की दृष्टि से भी उचित नहीं होना । हरद्वार देशन से गुणकर्म जाना हो, बहुत से चांगे जाली हों तो हम उन में स्पर्द्धा कराते हैं और जो कम से कम पर तय्यार हो उसे ले आते हैं, चाहे उस का बोझा अधिक हो और रास्ते में तड़क होना परे । इस स्पर्द्धा से भला क्या उन्नति होती है ? किस की उन्नति होगी है ? केवल अपने कुछ पैरे बच जाते हैं । यहाँ स्पर्द्धा शब्द का प्रयोग ऐसा ही है जैसे कि अंग्रेज लोग हिन्दुस्तान को मुक्त व्यापार (Free trade) का उपदेशा देते थे । मुक्त व्यापार

(Free trade) होना चाहिये, कितना सुन्दर शब्द है । पर जब वे स्वयं अपने उद्योगों को बुरा करते थे तब तो उन्होंने भारत के हाथ बने कपड़ों पर भी २०० प्रतिशत तक रक्षा कर भागिये, तब मुक्त व्यापार नहीं होने दिया, किन्तु जब उनके तो अपने उद्योग ज़रम गये उनकी टाकर में भारतीय उद्योग पनपने में भागिये इस के लिये, जो अपने उद्योगों की रक्षा में भारतीय नेता रक्षा कर ( Protection duty ) लगाने की बात कहते तो उन्हें कहा जाने लगा, 'नहीं ; व्यापार तो मक होना चाहिये, खुली स्पर्द्धा होनी चाहिये । यह सब केवल शब्द जाल है । हम गरीब श्रेणियों में ऐसी स्पर्द्धा केवल इसलिए कराते हैं जिससे हमारा स्वार्थ सिध हो और उनको बेराक बर्बादी हो ।

[ क्रमशः ]

( पृ ३ का शेव )

chloride) या साधारण लवक, औषधिय लिडि तथा बिक्रिस्ता के कार्य में "एकीषि" के रूप में उसी प्रकार प्रयुक्त होता है जिस प्रकार फ्लोरोस या सल्फर ।

होमियोपैथी में जहाँ इनके औषधियों के मिश्रण का प्रयोग में लाने का पृथक् निवेध है वहाँ औषधियों का पदार्था (Alternation) में प्रयोग ज्ञाना भी सर्वथा निविध है । बहुत से एक होमियोपैथिक Aconite तथा Belladonna नामक औषधियों को एक २ छोटे बाद, एक के बाद दूसरी तथा दूसरी के पश्चात् पहिलः औषधि का प्रयोग करने पाये जाते हैं । उनकी यह प्रक्रिया उनकी होमियोपैथिक-विज्ञान-मुक्तता की प्रक्रियायक माल ही होती है । जिस प्रकार कैथी के प्रयोग से बड़े २ कग कट जाने पर शेष लकड़ा के लिए उस्तरे का प्रयोग किया जाता है इसी प्रकार एक औषधि द्वारा बहुत से मुख्य लक्षणों का प्रशमन हो जाने के पश्चात् शेष लक्षणों के लिए दूसरी औषधि का प्रयोग किया जा सकता है । परन्तु एक औषधि के पश्चात् दूसरी तथा दूसरी के तुम्ह पश्चात् पहिली का प्रयोग उखी प्रकार फलगत है जिस प्रकार कैथी के बाद उस्तरे का तथा उस्तरे के बाद फिर कैथी का प्रयोग । उस्तरे के प्रयोग के कुछ कल पश्चात् सम्भव है फिर कैथी की आवश्यकता पड़ जाय, तब उसका पुनः व्यवहार में लाना उचित ही है । इसी प्रकार एक औषधि के कार्य कर चुकने पर दूसरी तथा दूसरी के बाद तीसरी औषधि का प्रयोग युक्ति संगत है । परन्तु पहिले देकर दूसरी तथा दूसरी के बाद फिर पहिली का पदार्थ में प्रयोग करना होमियोपैथिक-विज्ञान में सर्वथा निविध है । हां, एक के बाद दूसरी तथा दूसरी के बाद तीसरी तथा तीसरी के पश्चात् योग में पहिली औषधि के लक्षण पुनः अभिव्यक्त होने पर उसका प्रयोग चक्र-क्रम (Rotation) में हो सकता है । इस प्रकार पहिले लकड़ा, इसके पश्चात् कैथेरिया, उसके पश्चात् जालकोपीडियम तथा उसके पश्चात् फिर सल्फर नामक औषधियां प्रायः एक क्रम में ही जाती हैं । इस प्रकार औषधियों का प्रयोग करने पर योग के समस्त लक्षण समुदाय का पृथक् प्रशमन कर जले, सर्वथा योग्युक्त किया जा सकता है ।

प्रत्येक मनुष्य की शक्ती सूक्ष्म के अनुसार ही भोजन मिलना चाहिए है, कम या अधिक नहीं। जिस प्रकार सूक्ष्म से अधिक भोजन देने पर हानि होने की सम्भावना रहती है तब कम देने पर सूक्ष्म की शक्ति नहीं हो पाती उसी प्रकार रोगी को उचित मात्रा से अधिक औषधि मिलने से हानि की सम्भावना रहती है तथा कम मिलने पर रोग का पूर्वतया प्रशमन नहीं हो पाता।

सतः आवश्यक है कि रोगी को उचित मात्रा में ही औषधि मिलनी चाहिये। औषधि की उचित मात्रा यही हो सकती है जिसको प्रयोग करने पर रोगी के रोग लक्षणों का तो पूर्ण प्रशमन हो जाय परन्तु साथ साथ औषधि के प्रयोग के कारण उसे विशेष अनावश्यक कष्ट भी न पहुंचने पाये। दूसरे शब्दों में इसे यूँ भी कह सकते हैं कि औषधि न केवल रोगी के समान लक्षणों वाली चाहिये अपितु शक्ति में भी समान होनी चाहिये। इसके अनुसार:-

[ ३ ] Sim lar Dose या "समान मात्रा"

का सीखना तब उसी बीज से स्वयं उत्पन्न हो जाता है। हनीमैन ने प्रथम २ अब "समी" के नियम के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ किया तो उसने रोगी के समान लक्षणों वाली सफेदी औषधि का उसके मूर्त-रूप की कम से कम मात्रा में प्रयोग करना प्रारम्भ किया था जिसका परिणाम यह हुआ कि कभी तो रोगोपशमन ही पूर्वतया न हो पाया तथा कभी रोगी पर औषधि के आवश्यकता से अधिक प्रभाव उत्पन्न कर देने के कारण रोगी को महान् कष्ट पहुंच गया। औषधियों के इस प्रभावाधिक्य (Aggravation) को दूर करने के लिए हनीमैन ने औषध की एक बूँद मात्रा में भी पानी मिला कर उसे और हल्का कर के प्रयोग में लाता प्रारम्भ किया। परन्तु इस प्रकार प्रयोग करने पर भी औषधियों के प्रभावाधिक्य के लक्षण जारी ही रहे।

इस दोष को दूर करने लिये हनीमैन ने औषधियों के १ बूँद मात्रा के बोझ का भी विभाजन करना प्रारम्भ कर दिया। उसने पहिले औषधि की १ बूँद मात्रा को १०० बूँद जल में घोला तथा उसमें से १ बूँद लेकर उसे फिर १०० बूँद जल में इस प्रकार प्राप्त किये घोल को उसमें कई बार जोर २ से हिला कर रोगियों पर प्रयोग किया। इस पर उसे पता चला कि औषधियन् बजाय घटने के और बढ़गया है—अर्थात् औषधि ने बहुत शीघ्र रोगोपशमन कर दिया है। हनीमैन ने अचानक प्राप्त हुई इस सफलता से प्रेरित होकर Dilution (घोल) Subdivision (विभाजन) तथा Succession (हिलाने की इस प्रक्रिया को और भी आगे बढ़ा दिया। इस प्रकार तत्पश्चात् की गयी औषधियों का प्रयोग करने पर उसे पता चला कि उसकी उक्त प्रक्रियाओं द्वारा औषधियों के मीतिक तथा रासायनिक गुण स्वयं २ गुण होते जाते हैं, ४ गुण में कुछ देखे विषय गुण प्राप्त हुए होते जाते हैं तिनका परिधान उनके लक्ष्य मनुष्यों को बार २ देने तथा रोगियों पर प्रयोग करने पर ही हो सकता है।

हनीमैन ने औषधियों में विषय गुण उत्पन्न करने वाली-उनके सुपुत्र गुणों को जगृतावस्था में लाने वाली--इन Dilution, Subdivision तथा Succession की प्रक्रियाओं को Dynamization (विषयीकरण) या Potentization (पुष्टीकरण) के नाम से प्रसिद्ध किया।

होमियोपैथी के त्रिपाहू की उत्पत्ति के पश्चात् "पावो-स्पेहामचयुनः"—विषयीकरण का यह चौथा पाद, इस प्रकार, बाद को उत्पन्न हुआ, जिसके आविष्कार के कारण हनीमैन को यह विषय शक्ति प्राप्त हो गयी जिसके द्वारा उसने संसार के समस्त पदार्थों को, स्थावर और जड़म को साहज्य या असाहज्य को (Organic या Inorganic पदार्थों को) उस प्रकार साक्षात् कर लिया—अपना दास बना लिया—प्राधिमान के कल्याण के लिये प्रयुक्त कर दिया जिस प्रकार आवि पुरुष के चतुर्थापाद ने—(ततो विष्वक् व्यकामन् साहज्यमसाहज्यम) कर दिया था।

हनीमैन का इस Dynamization की प्रक्रिया के विषय में Dr. J. T. Kent लिखते हैं कि His greatest & last attainment was his discovery of Dynamium, which has distinguished him from all men and established a Hahnimianism that will stand as long as the world stands.

## गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह ३० नवम्बर को श्री स्वामी सत्यदेव जी परित्राजक ने (हरकी पैड़ी पर सत्याग्रह करने से एक दिन पूर्व) ब्रह्मचारियों की प्रार्थना पर गुरुकुल में पंचार कर एक मनोरंजक एवं सार गमित व्याख्यान 'सत्याग्रह के महत्व' विषय पर दिया। व्याख्यान से पूर्व और अनन्तर आपसे ब्रह्मचारियों ने देश-विदेश की राजनीति के सम्बन्ध में अनेक रहस्य पूर्ण प्रश्न किए जिनका आपने बड़े उत्सम ढंग से उत्तर दिया। सत्यकाल कुछ लघु भाहार करने आप सत्याग्रह करने की उमंग में गुरुकुल से बिदा हुए।

स्वास्थ्य समाचारः—गत सप्ताह ओ ३० रोगी थे वे स्वास्थ्य-शाम कर रहे हैं। शेष ब्रह्मचारों अच्छे हैं।

छुट्टी की सूचना — प्रतिवर्ष की भांति 'अज्ञानम्-अंक' निकलने के अवसर पर 'गुरुकुल पत्र' एक अंक की छुट्टी लेता है। पाठकों से निवेदन है कि अगला अंक १६ दिसम्बर को न प्रकाशित होकर २० दिसम्बर को 'अज्ञानम्-अंक' रूप में प्रकाशित होगा।

## जाड़ों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों को कमजोरी धातु क्षीणता पुरानी खांसी, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शीघ्र से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव (१८) आध सेर (२८) १ सेर (४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियाँ से तैयार की गई ये गोलियाँ सब प्रकार की कमजोरियों में अक्सर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करता है।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजांत और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों को अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ॥) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ॥) तोला

## धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियाँ बेच रहे हैं इसलिए दवा खरीदते समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

नाच	{	देहली—चांदनी चौक।
		मेरठ—सिपर रोड।
पार्सेलियाँ	{	लखनऊ—एजेंसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।
		लाहौर— " " हरपताल रोड।
		पटना— " " मधुआढोली बाँकीपुर।
		अजमेर— " " " वैद्यराज सरदारिलाल जी कड़का चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी जिलाहानपुर**

## श्रद्धाञ्जलियां

मैं स्वामी भद्रानन्द जी की पवित्र स्मृति में साक्षर अञ्जलि समर्पित करता हूँ और आशा करता हूँ कि उनके उदाहरण को देश सामने रखकर उनके आदर्श से प्रेरणा लेगा।

—पं० जवाहरलाल जी।

आर्य धर्म तथा आर्य आदर्श का संसार में प्रचार हो तथा आर्य सभ्यता की भारत में फिर स्थापना हो यही प्रत्येक सच्चे आर्य धर्मा का प्रयत्न और श्रेय होना चाहिये। संसार की सच्ची सार्वाका यही मार्ग है।

—जगलकिशोर बिहड़।

स्वर्गीय स्वामी भद्रानन्द का जीवन, सर्वल समाज के लिये बलिदान करने का जीवन था। उन्होंने अपना कुछ भी अपने लिये न रखकर सभी समाज को अर्पित कर दिया था। यह आत्मबलिदान का मूलतः नियम, मनुष्य के जीवन का सर्वोच्च बनाया करता है। इसी का अनुकरण आप में से प्रत्येक को करना चाहिये।

—महात्मा माणवक स्वामी जी।

स्वामी भद्रानन्द जी के बलिदान-दिवस के सम्बन्ध में गुरुकुल के विद्यार्थियों के लिये मेरा यही संदेश है कि जिस आत्मिण्या से मैं दिन होकर स्वामी जी ने गुरुकुल की नींव डाली थी उसे वे सदा हृदय में रखने हुए और अपने प्रति दिन के जीवन में आत्मनियन्त्रण का अभ्यास कर अपने को इतना शक्तिमान बनायें कि वे देश के अविध्य निद्राण में ऊँचा राग ले सकें।

— राजेश—पुरुषोत्तमदास टंडन।

मैं श्री स्वामी भद्रानन्द जी की स्मृति में अपनी नम्र अञ्जलि अर्पित करता हूँ। स्वामी जी महात्मा थे और उन्होंने अपने जीवन को हिन्दू संगठन की बलिबेदी पर चढ़ा दिया था।

—वैरिस्टर सावरकर।

स्वामी भद्रानन्द जी एक महापुरुष थे। उन्होंने अपना सारा समय हिन्दू जन को उपकार और संगठन में लगा दिया और आप में इसी कारण उन्होंने अपने प्राण त्यागकर दिए। उनकी सर्वा मंगले समय उनके अनुयायियों के लिये मेरा यही संदेश है कि सब निर्भीक जनता को सेवक बनने का यत्न करें।

बी. जी. खेट, प्रमिस्टर एडवोकेट।

स्वर्गीय स्वामी जी का जीवन हमारे लिये एक आदर्श जीवन है। उन्होंने सांसारिक सुख को तिलांजलि देकर प्राचीन शिक्षा पद्धति को पुनर्जीवित और स्थापित करने में अपने जीवन का बहुत बड़ा योग्य लगा दिया। निर्ममता के स्वयं उदाहरण—उन्होंने अपने प्राण भी सत्य की प्रतिष्ठा में ही अर्पण किया। उनकी कौर्ति, उनका सारा जीवन हमारे लिये पथ प्रदर्शक है। ईश्वर से बड़ी प्रार्थना है कि हम सबको इस के यत्न बनाये जिससे जो काम अचूक रह गया है उसे सम्पूर्ण बनने में हम सब कुछ सहायता कर सकें।

—राजेश्वरप्रसाद।

श्री स्वामी भद्रानन्द जी की पुरुष तिथि पर मैं अपनी अञ्जलि अर्पित करता हूँ। जिस निर्भीकता से आपने अपने जीवन को बिताया और जिस साहस से आपने राष्ट्रीय सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और शिक्षा संबंधी संग्रामों को पुष्ट किया और हम सबको नये मार्ग बतलाए, वह हमारे लिये सदा आदर्श रहेगा। मैं तो यही आशा कर सकता हूँ कि हम अपनी वतसंबंधी हानिका परम्परा के अनुसार केवल इस वीर पुरुष की पूजा मात्र में अपने कर्तव्य को हमित्री न समझेंगे और नैतिस कोटि देवताओं में एक को और न बढ़ा देंगे, पर इनके बननाए मार्ग पर खुद भी साहस से चलकर देश और समाज को आगे ले चलने में सहायक होंगे।

—श्री प्रकाश।

## स्वामी प्रह्लानन्द के संस्मरण

स्वामी भद्रानन्द एक ऐसे पुरुष थे, जिन्हें "यथावादी तथाकारी" कहा जा सकता है। अपनी मातृभूमि से सब तरह की हठार्यों का नाश करने में वह एक निमग्न योद्धा थे। वास्तव में उन्होंने अपना सभी कुछ होम कर अन्न में मातृभूमि की सेवा, के लिये अपना जीवन भी समर्पित कर दिया। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिये उन्होंने अपने जीवन का भी मोह नहीं किया।

—विश्वेश्वर महाशय।

## व भारत के प्राचीन वीर युग के पुरुष थे

स्वामी भद्रानन्द जी मेरी स्मृति और प्रति की दृष्टि के सम्बन्ध आज भी बड़े हुए हैं, हमारा पाँड़ों की एक विरहसंकीर्ण मूर्ति के रूप में और से आगे बढ़कर बड़े हुए हैं। मैं सदा अनुभव करती रही हूँ कि स्वामी जी हमारे बीच में भारत के प्राचीन वीर युग के एक पुरुष थे। अपने मन्व्य विशाल शरीर द्वारा आप अपने ज्ञानदायक महान् व्यक्तित्व-द्वारा, दोनों तरह से स्वामी जी अपने समकालीन मनुष्यों में एक देव की तरह स्पष्ट औरों से ऊँचे उठे हुए दृष्टिगोचर होने थे। यद्यपि एक समय विद्याभ्यास के बड़े भारी शिक्षणालय (Academy) के मुख्याधिष्ठाता थे, तो भी वे करे विचार करने वाले अकियात्मक (Academic) पुरुष कभी नहीं थे। इसके विपरीत वे तो अपने जीवन के अन्तिम दिन तक जिसका अन्वयन एक शहीद की मृत्यु में हुआ था—भारतीय जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में उन बहुत से राष्ट्रीय सुधारों के लिये जिनके कि ने वीर नायक थे, शक्ति अंडार और कम-बयता के एक विलक्षण और अनुपम मूर्ति के बहादुर होकर जीये थे। मैंने सदा उनकी मनुष्य मान की सेवा की इस उदात्त भावना का प्रेममय पूजन किया है।

—सरोजिनी नाथक।

## स्वामी जी की सेवाएं सूर्य की तरह रोशन हैं।

मैं इस बात के बताने की आश्चर्यचकित नहीं समझता कि स्वामी भद्रानन्द जी ने हिन्दू जाति और देश की कोल कोन सी सेवाएं की हैं। यह सच है सूर्य की तरह रोशन है कि उनका जीवन और उनकी मृत्यु दोनों ही धर्म और जाति के महायक में आदिन किये गये।

—आई परमानन्द।

# आचार्य स्वामी श्रद्धधानन्द जी

( जे० श्री० प्रो० विद्यानाथ श्री वेदोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी )

स्वामी श्रद्धाानन्द गुरुकुल-पद्धति के जनकदाता थे। उन्होंने के कर कमलों से गुरुकुल कांगड़ी की नींव गंगा पार कामांडी प्रान्त की भूमि में पड़ी थी। श्रम स्थानों में जो भिक्षु २ गुरुकुल स्थापित हुए हैं वे स्वामी श्रद्धाानन्द के गुरुकुल के अनुकरण रूप ही हैं। गुरुकुल-पद्धति के स्वरूप को स्वामी श्रद्धाानन्द ने वधार्थ रूप में समझा हुआ था। स्वामी श्रद्धाानन्द गुरुकुल कांगड़ी के प्रथम आचार्य थे। आचार्य का जो आदर्श स्वामी श्रद्धाानन्द ने क्रियात्मक रूप में रखा है वह वास्तव में अनुकरणीय है। जिस समय कामांडी प्रान्त की भूमि में गुरुकुल का बीज अंकुरित हुआ था, उस समय हनु अंकुर की रक्षा तथा पोषण पोषक जी-जात से इच्छा की जाय। जब गुरुकुल के सब कमचारों तथा प्रहारियों राम के समय सुख की गहरी नींद में सोया करते थे उस समय स्वामी श्रद्धाानन्द एक लम्बे दूरद की दृष्टि में लिये इनकी सुरक्षा के लिये चक्कर लगाया करते थे। सरकारी के दिनों में लोचने हुए प्रहारियों पर गरम बल डालते हुए स्वामी श्रद्धाानन्द कई बार देने जाते थे। एक बार श्रीधरशुक्ल की रात को सोए हुए एक प्रहारी की छाती पर एक कमिचर लाप बैठा हुआ स्वामी जी ने देखा। सभी गहरी नींद सोए हुए थे। प्रहारी जरा पकटा बैठा कि लाप अलग काम कर देता। परन्तु रातों रात जाग कर रक्षा करने वाले आचार्य ने जब यह दृश्य देखा तो बड़ी धीरता से झपटने लम्बे दूर को देखा सुनाया कि लाप चोट खाते ही एक दम दूर जा पड़ा और मार दिया गया।

स्वामी श्रद्धाानन्द रतदिन सोचते रहते थे कि प्रहारियों में कहीं कुबेदाओं के, अंकुर जमा न आवें। इसके लिये वे अपने आचार्यत्व को पूर्ण रूप से क्षार्थक करने का प्रयत्न करते रहते थे।

रोगी शिष्याओं में दिन में दो-चार बार चक्कर लगा अन्ना उनका नियम था। रोगी प्रहारियों के पास बैठना, उनसे प्रमाणाप करना, उन्हें आश्वासन देना तथा उनकी सेवा करना-इसे वे अपने पैरुद में जो साक्षर होना समझते थे। आचार्य प्रहारियों का पिता ही। भिक्षु मरता है। बर्तन क कर्षाई कमचारी में बामाद, श्रेष्ठा तब भी उस की देखभाल के लिये आचार्य श्रद्धाानन्द उसके घर जाया करते थे। उसके औषधोपचार का पूरा पर्वाज किया रहता था।

प्रहारियों के कामकाज की देखभाल करना, उनके साधन-ध्यायन करना, इनके साधन क्षान करना तथा अभिमान में आश्रित होना-ये भी आचार्य श्रद्धाानन्द के सर्वेच्छा से स्वीकृत करने थे। प्रहारियों की कोठी में भी के बहुत रक्षि शिक्षादाता करते थे। कोठी में स्वयं बर्षाभक्त होकर प्रहारियों का अस्वास्थ्य किया करते थे। उनकी उत्पत्ति में कोठी में प्रहारियों का उन्हाड़ कर ही गुंथा रीढ़ जाया करता था।

स्वामी श्रद्धाानन्द जो अपने आचार्यत्व का इतना ब्यास रहता था कि वे अपने गुरुकुल-वास ही अधिक पसन्द करते थे। गुरुकुल वाले को छोड़ना उन्हें पसन्द न था। कार्यभार बाहर जाना भी पडा तो बहुत शीघ्र ही गुरुकुल वापिस लौट आते का बख किया करते थे। गुरुकुल भूमि उनके लिये सेनिटोनामिया था। बाहर अगर वे बीमार पड़ जाते तो वे गुरुकुल शीघ्र लौट आया करते थे। उन्हें विश्वास था कि गुरुकुल लौटने ही वे गुरुकुल भूमि में स्वस्थ हो जायेंगे।

प्रतिवर्ष द्वां मास के अग्रकार के दिनों में उनकी यह धारणा रहनी थी कि वे ही स्वयं प्रहारियों के रंग पर्यन्त-यात्रा या सरस्वती यात्रा किया करें। शिष्या के लिए प्रहारियों को भिक्षु २ स्थानों में ले जाने का नाम उन्होंने सरस्वती यात्रा रखा था। वे प्रहारियों के साथ को-जहाँ तक सम्भव हो-छोड़ना न चाहते थे।

गुरुकुल ही उनके लिये शिष्या दीक्षा का स्थान था। वे कहा करते कि गुरुकुल ने ही उनका जीवन बनाया है, गुरुकुल ने ही उनके जीवन में स्फूर्ति का संचार किया है। गुरुकुल जीवन ही उनका दीक्षा-ग्रन्थ था।

इस प्रकार आचार्य श्रद्धाानन्द ने अपने आचार्यत्व को पूर्ण ही निभाया। उनका आचार्यत्व शिष्या-संघाओं के सभी आचार्यों के लिये अनुकरणीय है।

## स्वामी श्रद्धधानन्द जी का सब से महान् कार्य

### 'प्रहार्याभम' का पुनरुद्जीवन'

( जे० श्री० प्रो० विद्यानाथ वेदाचार्य )

अर्थे स्वामी श्रद्धाानन्द निम्नोक्त एक महान् बाल्या थे। अगवाह के इस खूबि-युक्त को हिला, अपूर्वता व अक्षम सरता आदि दोषों से मुक्त करने के लिये महान् आत्माप्रेरक इस युद्ध में अपनी विशेष धारुति प्रदान किया करती हैं। ये वे दिव्य यन्त्र होने हैं जिन से कि इस खूबि का महान् यन्त्री खूबि-युक्त को प्रियालित करता है।

स्वामी जी, का जीवन एक ऐसा आदर्श और विश्वास जीवन था कि समाज, ज्ञाति व देश के सुधार का कोई भी कार्यक्षेत्र उन से छुट्टा नहीं गया था। कार्यसमाप्त, हिन्दुसमाज, और कार्यक्षेत्र के क्षेत्र में सर्वत्र प्रेषान एवं अग्रणी बन कर कार्य करते रहे। इस में कोई लम्बे नहीं कि कार्य भ्रम का प्रचार, हिन्दु-संगठन एवं शक्ति, शिष्टा प्रचार, दान कुबियों एवं सुमित धीरुतों की सेवा, राजनीतिक आन्दोलन में प्रमुख सहयोग आदि उनके सभी कार्य महत्त्वपूर्ण तथा उनकी महान् बनावे वाले थे। किन्तु उनकी अग्रणी हस्तलिखित जीवनी को पढ़ने से, उनके यमों परदेशों का अनुशीलन करने से तथा उनके समस्त समय पर निकट हासिक उद्गाराओं से यह स्पष्ट पता चलता है कि वे भारतवर्ष में प्रहार्याभम के पुनरुद्जीवन को अपना जीवनोद्देश्य समझते थे। इसी कार्य को वे सब से अधिक (नेच पृ० ७ पर)



**गुरुकुल**  
१ पौष शुक्रवार १९२७

**“भारतवर्ष की एक विभूति”**

[ श्री आचार्य आश्वमेध ]

हमारे स्वामी भद्रानन्द जी महाराज भारतवर्ष की एक विभूति थे। वे समय की मांग को पूरा करने के लिए जन्म थे। अन्तर्पथ से उन आदर्शवान् महापुरुषों में नथ जो कि दुनियावा लोगों की बनाइ पनाइचिइयों पर ही चल कर इष्टपन्न होना नहीं चाह सकन परन्तु अपन आदेश पर ठीक पहुँचन क लिए पहाड़ों, जंगलों, नदियों की भीर कर जन जान वालों नई नमूनों का बनाने हैं जिन पर आगे आन भाव लाग चलन लगते हैं। जब महारामा मुण्डीराम को गुरुकुल-गिरा प्रकाश की दर्शन हुआ तो व घर बार छोड़ कर उठ बैठे हुए, दर दर (फरे और विपदान आन-बुझाओं में भी गुरुकुल को स्थापित करके छोड़ा। यद्यपि लोग उन्हें पागल कह कर पुकारते थे और उन्हें उन दिनों ऐसी सुखीयते भूलकी सुखी जिज्ञासी कि आज हम करपना भी नहीं कर सकन। पर आज तो न केवल इस देश के किन्तु विदेश क शिक्षाविद् भी गुरुकुल शिक्षा प्रकाश की तरफ आशा मरी निगाहों से देख रहे हैं। और इस देश में तो जो कोई नया शिक्षाकीय कोसला है वह अपने न म के साथ 'गुरुकुल' व 'आश्रम' सैला कोई शब्द जोड़े बिना पूरी तरह गौरवान्वित नहीं हो पाता। जिन समय उन्होंने हिन्दी-भाषा क महाव की संमक लिया उली समय एक ही रात में अपने सब्दों प्रचारक का उर्दू से हिन्दी में कर दिया, लाग कहने रहे कि इसक प्राहक 'म' के बराबर रह जायेंगे, पर महारामा मुण्डीराम का हुकन था "नहीं, सब्दप्रचारक काल से हिन्दी में ही निकलना।" और आज हमें मासूम है कि वह सब्दों प्रचारक अपने दिनों में उकर भारत क पुराने से सबसे अधिक प्राहक संख्या वाला रहा। यही स्वामी जी के जीवन की व्यापक कथा है। अपने आदर्श को सामल देखने हुए वे समयमागों को प्रहक करने से कभी नहीं डरे, कभी नहीं किम्कते, कभी 'विचार' में नहीं पड़े। कना वनको पथप्रदर्शक पुकारने वाले भारत-पुत्री उनको कोसता के, इन आदर्शवागिना के, अनुयायी बनने का यान करेगे। कौनिक कनकी यत बोरता सत्य-मिथता और आदर्श-कविता ही अस्सी और अमर अन्ध-नन्ध थे, उनका मासुपान शरीर नहीं।

**सुनसरी के स्मृति में**

( लेखक— आचार्य अश्वमेध जी, वरकचरपति वृत )

वे सवीर्य युत थे। जब किसी को भी मार्ग सूझन था तब वे मार्ग पर चल रहे थे। ऐकमेसे के जाहूँ कं पद विन्द को गुहाम बनाया था जो स्वभावसे की नीलकता में भारत को सज्जता का स्वान दिवाया था। मोहितसरी, डाउन, मोडक आदि शिक्षक पदवितयों से हमें सुक के धर्मों को विधाने का यज्ञ प्रवरय किया है। आज के महापुरुष महारामा मांभी जी में यद्यो शिक्षक पदवित के द्वारा भारत को आजाद बनाय का सकम्प अवश्य किया है—परन्तु शिक्षक का सबा रहस्य तो हमें सन्यासी ने अपनी आँच दहि ने सुककुल प्रकाश के रूप में कनी का बत व है। अथ २ पर्यवतन हीक आज के विश्व न सर्वाक शिक्षक के सेवक भी प्रतिपल परिवर्तन हो रहा है, जसि को अपने भावी क निर्माँक का रास्ता दिक्कत नहीं दे रहा है, तब भी है महान् सन्यासिन्। तुम और तुम्हारा प्रानसकुन सुककुल, प्रकाश के पथ की अर अमुलि निर्देश कर रहा है। यद्यपि आज तुम अपने भौतिक कष म सहा नहीं विचर रहे हो परन्तु तुम्हारी भावरावका आज भी अँवित व आगुन है अन तुम मीअद हो, अमर हो।

हे विशाख-कायु, राजाँष। तुम्हारे हृदय की मिशालता तो कैसी अनुपम थी। युव ने विष्-प्रिज्ञान, अमर को यदि अनुम पिलाया तो तुमने भी डूँ अजल शत्रु। "कहे जाने वाले शत्रुओं को प्रलकों पद उदाय, और हृदय म विहारा। तुम्हारा वास-धर्म आश-धर्म से अलूता न था, तुमने अशगरी बेगम को "शान्ति देवी" बनाया तुम्हाम मसजिद के पवित्र आसक पर बैठकर हिन्दु-मुसलमानों को प्रेम का आसू पिलाया, हिन्दु मतानों और बच्चों पर आँसू बहाने हुवे भी तुमने-मोपकक हृथ काँड के समय प्रभु से मुसलमान मार्यों को सद्बुद्धि को प्रार्थना की, डा० कम्सारी और हकीम अजमलकाल की गोद में प्राया रखने में तुम्हें जरा भी हिचकिचाहट न थी, प्यान धर्म'न्य अमूल परीद को तुमने अपनी छातो के लून का कदोग पिलाया था—परन्तु हमें आश्चर्य और दुःख तो तब होता है जबकि लोग तुम्हें मुसलमान मार्यों का शत्रु बताते हैं। सर सिचम्बर हवाल काँ और फजलुल हक हमारी आश-माना का कलेबर विगाइना बाहने हैं और मि० सि० भारत माता के दो दुकड़े करना बाहने हैं—ऐसी अवस्था में भी महात्मा जी और राजा ज्ञा 'spotting off' करके आपसी उद्वृत्ता की पराअक्ष कर-मो है परन्तु सेव घटने की, जगह इहता आरह है—मेरे मुसलमान भाइ हम से हुरी ही अक्षमस करने आ रहे हैं—फिर सर सयू की लक्ष्मीते की पुकार, मककार कान में पुरी की काकड़ कनों न हो जाय। इस किरामर की निशामें स्वसिद्ध, हम निम्नि-मेध दहि ले तुम्हें देलना बाहने हैं—तुम किसी को सेक-पाङ्क के रूप में, से किसी को इक्षामसोम तो किसी को अरपनि शिक्षाज। कप म दीने थे। तमब तन्नेमेवकमोड



सौम्य मूर्ति ही आकृष्ट कर रही है जो भीषण से भीषण विषाद तथा महान् से महान् हर्ष के कारकों से भी बिना प्रभावित हुये उनके सदा स्मयमान मुकारविम्ब को धारण करती रहती है ।

इमें वह दिन कभी नहीं भूलना जब कि महारामा भुम्भीराम का बीम हजारा की लागत का स्टीम प्रेस, किसी गुप्त शत्रु द्वारा अशानक आग लगा दिये जाने के कारण, भस्म हो गया था और वह धीरे पुरुष सृष्टु शय्या पर पड़े अपने साधारण से एक भक्त को समारवासन में ले लिये उन्नी समय निःसंकोच चल पडा था । क्या "अमूर्त राजसम्पत्ति" के अनुसार, भारत के तत्कालीन याइसराय लाइ' बंम्सफोर्ड के निमंत्रण का अवसृतमय सम्मान पाकर भी उसने किसी प्रकार के हर्ष-विम्बों को अभिव्यक्त किया था । इस प्रकार भगवान् राम को समान हर्ष विषाद स शून्य छद्मानीत पुरुष भी यदि सौम्य मूर्ति न होना तो और कौन हो सकती !

गोस्वामी तुलसीदास जो राम के विषय में लिखते हैं:-

शील-सकोब-सम्पु रघुराज,  
सुमुख, सुलोचन, सरल स्वभाज, ।  
नीति, पीति, परमारथ, स्वार्थ,  
काउ न राम-सम जान वधार्थ ।  
को रघुवीर- सारिभ सहाग,  
शील मनह निबाहनि हारा ॥

जिन सज्जनों को स्वामी अज्ञानम्ब जी के सहवास का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है वे इन चौपायों के अर्थ को कितना भली प्रकार समझ सकते हैं !

राजभाषिके हो जाने के पश्चात् राजा रामचन्द्र जी जब अपने सब उपकारी महाउभावों को बड़े सन्कार, प्रेम तथा छनहना प्रकाशन के साथ विदा कर चुके तो अन्त में अज्ञान् के विदा करने की बाटी भी झा ही पहुँची । परन्तु वह राम के प्रेम-पारावार में इतना निमग्न हो चुका था कि वह अपने घर लौटना ही नहीं चाहता था । अज्ञान् की बल समय की दशा का चित्र तुलसीदास जी इस प्रकार खींचते हैं:-

अज्ञान् इदय प्रेम नहि धोरा,  
फिरि फिरि बिलस राम की ओरा ।।  
वार वार कर बन्ध प्रयासा,  
मन अस, रहन कर्हहि सोधि रासा ।  
राम-बिज्ञाननि, बोलनि चखनी,  
सुमिनि सुमिनि सोचत, हंसि मिलनी ॥

क्या स्वामी अज्ञानम्ब के सहवास में रहकर लौटते हुये उनके मनो की भी ऐसी ही दशा नहीं हो जाती करती की ? क्या वे उस सौम्य मूर्ति का "हंसि हंसि मिलनी" को आज मा भुजा सकते हैं !

## अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द

[ लेखक— श्री लक्ष्मणराय की सैयब आनम्भारम्भ लुधियाना ]

नामी कोई वीर मुशककन नहीं हुआ ।  
सी वाग जब धकीक कडा तब नहीं हुआ ॥

अमर शहीद स्वामी अज्ञानम्ब जी के गुणों से लाभ उठाओ ।

मन्त्र से अधिक प्रशंसा में अमर कुलु लिखा या कहा जा सकता है इसके सिवाय कुलु विचार में नहीं आ सकता कि अमुक मन्त्र उच्च कोटि का दिव्य विद्याया रचना है । प्रयः का बार इन शब्दों का प्रयोग अपने स्थान पर नहीं होना, क्योंकि योग्यता जो दमाग में सम्बन्ध रखती है और मन्त्रों जो मन में सम्बन्ध रखती है यह दोनों प्रायः एक जगह एकत्रि नहीं होती । परन्तु मेरे स्वामी श्री अज्ञानम्ब जी महागज में जिस प्रकार बावजूद एक हृदये के शिलाफ योग्यताएँ एकत्रि थीं उसी प्रकार उनको ईश्वर ने दिव्य व दिमाग दोनों उच्च कोटि के दिये थे । यहाँ तक स्वामी जी के सम्बन्ध में यह कहना कठिन था कि उन में भलाई और बुद्धि में से किसी की अधिकता भी परन्तु उहाँ तक विचार किया जाता है उनकी सम्मत्तों में सम्मननः भूल की सम्भावना हो । परन्तु उनके गुण उच्च थे इन्हीं कारण उनके बलिदान के बाद डाक्टर अन्सारी ने लिखा था "स्वामी अज्ञानम्ब जी का सफाई-ए-दिव्य और जूरत का मैं दिव्य में महा था" । यद्यपि उनकी योग्यताएँ उच्च थीं परन्तु उनके और फ और सफाई-ए-कलब इसके भी बढ़कर थे । तुलसी का कहना है कि जो मनुष्य बुराई से रहित हो, मुस्लिफ मिशाफ और अपनी आन का एकदा हो और अपने मातङ्गों पर मेहरवान हो, कर्मशाह हो, बडे़ २ कार्यों में वीरता और उदता में कूदने के लिये तैयार पर तैयार हो वन शरीक है । इनमें यदि उदारता का गुण और बड़ा दिया जावे तो कुल सम्भेद नहीं कि अमर शहीद स्वामी अज्ञानम्ब जी पृथ्वतया उच्च कोटि के पुरुष थे । जो अधिकार आप केवल इत्सलक व योग्यता में हज़ारों नहीं न ही मनुष्यों के विलो पर आने थे वह किसी को अपने परिचर के मैड्रान पर भी नहीं होता था । जिस कदर भी उनके इह मित्र और मित्रने बलें थे सभी उनके प्रशंसक थे और सभी उन में अगाध प्रेम करते थे । और उन पर दृढ़ विश्वास था । इसलिये पञ्जाब तो क्या कुल भारत वर्ष में उनके बलिदान पर ऐसा असह्य धक्का अनुभव किया गया जैसा कि किसी को अपने परिचर के हाँ व्याक के विन्याय पर होना है, इससे अर्थाक और मेरे स्वर्गीय स्वामी जी महागज की महानता का क्या प्रमाण मिल सकता है । उनका महानता की उसने अधिक युक्ति उनको असाधारण सकलता था जो उनको अपने पवित्र लक्ष्य गुरु तुलसीदासों में हुई । क्योंकि योग्यताएँ चाहे कितनी भी उच्चकोटि क हों न ही जब तक उनके साथ उच्चकोटि का इत्सलक न हो कुल परिवार नहीं निकल सक । उन्होंने अपनी अधिकतर आयु सार्वजनिक जीवन में बिताई । जिन में इनके अग्रिम २२ वर्ष इह

अवस्था में स्थित हो चुके कि उनके अपने ही उनके दोषों की बात में रहे। मित्र क्या, दुर्जन क्या सभी को उनके हरेक कार्य को परखने का अवसर मिला। विरोधियों की सदैव यह इच्छा रही कि कोई ऐसी बात हाथ लगे जिस से स्वामी जो कौ भीका देखने का मीका मिले और गुरुकुल आदि उनके पिय कार्यों को टागि पदुं। इसके होने डुवे भी कोई ऐसा अवसर नहीं मिला और विरोधी सदैव की तरह निराश रहे। और कोई समय ऐसा न आया कि उनके पवित्र जीवन के विरुद्ध कोई माकूल बात हाथ आती। उनके उच्च जीवन का सब पर ही प्रभाव पड़ता था। उनकी भव्यमूर्ति देखने हा सामाजिक कार्यों में सेवाभाव का जोश दिलों में ठाठे मारने लगता था। उनकी अनथक शक्ति और दृढ़ता एक मीन उपदेश था। जो उनके चरख गिहा पर चलने के लिए सबको आग्रह करत था। इस में संशंभ नहीं कि वह अपने उच्च जीवन से सारी आर्य जाति में आशा इकल्लाव का बीज बो गये। यह सम्पूर्णगुण जो एक सत्यग्रही में होने आवश्यक है उसे सब बोधना, सच्चा प्रेम, मित्रता, दिलेरी और स्वतन्त्रता उनका विशेषताओं में से थी। इसलिए उन्होंने अपनी सचारी के कारण एक सन्तुष्ट को अपना विरोधी बना लिया परन्तु जिस बात को यथार्थ जाना उसके करने और कहने में जग भी संकोच नहीं किया। जिस पर आप दृढ़ डुवे उसके अनुकूल कहा और वैसा ही किया। और जिसमें सभारी समझी उसके करने में किसी विरोधी शक्त की परवाह नहीं की। संभव है कि स्वामी जी को कोई बात समझने में भूल हुई हो परन्तु जहाँ तक में उनके स्वभाव को कल्पना कर सकता हूँ यह बात असम्भव थी कि उन्होंने कभी भी अपनी आत्मा के विरुद्ध कुछ कहा और किया हो। देश और जाति की तरह से अपने कर्त्तव्य में निरलित करने में मीन भी उन्हें डगमगा नहीं सकी। कायरता करने से पहिले कई बार मर जाने ह परन्तु बहादुर मोत का मद्रा एक बार चखत है। पूर्य न्याम जो कर्म योगी थे ब्रह्मचर्य प्रयादा स्थापित करने और वैदिक सभ्यता को फैलान के लिये गुरुकुल काङ्गड़ा स्थापित किया जो उनके त्याग का जो वत प्रमाण है। अन्त में उन्होंने अपना जान भा इस। आदर्श के लिये अपंग करदो। हम सांसारिक प्रलोभनों में फंसे डुवे पुनश्च उनके जीवन को अपना लक्ष्य बनाकर अपने को उन्नत कर सकते हैं। इसो में हमारा कल्याण है। बोला, अमर शहीद स्वामी ब्रह्मानन्द को जय !

( देविणर पूष्ट ३ का शेष )

महेश्वर नेते थे। ब्रह्मचर्याभ्रम को पुनः प्रतिष्ठा, देश की संपत्त रूप माथी संतते-देश के नवयुवकों और नवयुव तियों—के चरित्रबन को उन्नत करना, उनके ब्रह्मचर्याभ्रम की नींव को सुदृढ़ करना ही देश के अभ्युदय के लिये रामबाण शोध है। ऐसी उन की आविचल अह्रा थी। सामाज्यनया भी संपूर्ण देश के सदाचार का मान दण्ड उखा डुए बिना देश स्वतंत्र, मुल्का व सन्तुष्ट नहीं हो सकता ऐसी उनकी निश्चिन्त समति थी। अमृतसर

कांग्रेस के स्वगताभ्युदय-पद में अपना ऐतिहासिक भाषण देते हुए उन्होंने निम्न उद्गार प्रकट किये थे—  
"यदि जाति को स्वतन्त्र देखना चाहते हो तो स्वयं सदाचार की मूर्ति बन कर अपनी सन्तान के सदाचार की सुनियार्थ रख दो। जब सदाचारी ब्रह्मचारी हो शिवक, और कौमी हो शिक्षापद्धति, तब ही कौम की ज़रूरतों को पूरा करने वाले नीजवान निकलेंगे, नहीं तो इसी तरह आपकी सन्तान विदेशी विचारों और विदेशी सभ्यता की गुलाम बनी रहेगी।... जिस वेदना में मेरे गुरुजनों का पञ्चाष को सौमार्थ प्राप्त हुआ है उस का फल यह है कि जातिका 'तप' का गौरव मान्य हो गया। मार्शल—ला के दिनों में पना लगा कि पोलिटिकल अधिकांरों का शोर मचाने वाले यदि चरित्रहीन हों तो वे देश को रक्षानल में ले जाते हैं। इसलिये सब में बढ कर काम चरिा साठन का है जिसे जाति-को अपने हाथ में लेना चाहिये।"

ब्रह्मचर्याभ्रम को पुनरुज्जीवित करने का विचार स्वामी जी के मन में कैसे आया इस संबंध में उनके अपने लेख काफी प्रकाश डालते हैं। किन्तु हय पेसा प्रतात होता है कि महर्षि दयानन्द के सत्सग के दिनों में हा स्वामी जी के मन में एक अलक्षित संकल्प घर कर गया था। महर्षि दयानन्द अग्र पूरा आयु जीने रहने ता प्रचीन-युगर्तल के अनुसार चर्याभ्रम को परिपाटी का पुनरुद्धार कर अपने वैदिक धर्म के प्रचार और नसार के उपकार के कार्य को बढ्यूल समझते। महर्षि के दर्शन के समय में हा उनके भाव बढ शिष्य, उनके मिशन पर सर्वस्व म्योडायर करने वाले स्वामी ब्रह्मानन्द जी के चित्त पल पर यदि महर्षि की इस हाविक कामना का प्रतिबिम्ब पड़ गया हो तो इस में कोई आश्चर्य नहीं समझना चाहिये।

महर्षि के प्रयोग के स्वाध्याय में पं० गुरुदत्त जी के मन में यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि संस्कृत भाषा के उच्च अध्ययन के लिये गुरुकुल त्रैसा संस्था कोले विना महर्षि का वैदिक धर्म का मिशन सफल नहीं हो सकता। पं० गुरुदत्त के अकाल देहावसान के पश्चात् स्वभावतः ब्रह्मानन्द जी ने ही उन का स्थान ग्रहण किया और उनके दल के विचारों का नेतृत्व किया। स्वामीजी 'सहस्र प्रचारक' में लिखा करते थे कि 'आधर्म्यवस्था के विना यशुं व्यवस्था कायम नहीं हो सकती। आधर्मो पर ही वर्ष निर्भर है। जब गुरुकुल नहीं है, तब आधर्म पद्धति का उद्धार कैसे हो ?" अनेको शिक्षा प्रणाली में और डी ए. या. कालिज की प्रणाली में भी ब्रह्मचर्याभ्रम की पद्धति का अभाव उनको बहुत खटका करता था। इसी लिये उन्होंने ब्रह्मचर्याभ्रम के पुनरुद्धार को ही अपनी सब चेष्टाओं और कियाओं का परम लक्ष्य बनाया। गुरुकुल स्थापित करने के कई वर्ष बाद भी उस ब्रह्मचर्य का संदेश अनता तक पहुंचाने के लिये उन्होंने 'अह्रा' पत्रका का स्रष्ट्यादन प्रारम्भ किया। ब्रह्मचर्याभ्रम को रक्षा और शक्ति उर्ध्वी का ठीक ठीक प्रचार करना 'अह्रा' का मुख्य उद्देश्य था।

# गुरुकुल

एक प्रति. का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुद्रण-यंत्र ]

वार्षिक मूल्य १५।)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

पृष्ठ ५ ]

गुरुकुल कांठाकी, शुक्रवार १३ पौष १९६७; २७ दिसम्बर १९६७

[ संख्या ३६ ]

## नैष्ठिक ब्रह्मचर्य

( श्रीविभेका )

मनुष्य का जीवन अनुभव का शास्त्र है। उस अनुभव से मानव समस्त का बहुत विकास हुआ है। परन्तु हिन्दू-धर्म ने इस अनुभव का शास्त्र बना कर जो एक विशिष्ट साधना कद की है, वह है ब्रह्मचर्य। अन्य धर्मों में भी संयम तो है ही; परन्तु उसे शास्त्रीय स्वरूप देकर हिन्दू-धर्म ने विश्व प्रकार उसके लिए एक शब्द यद्वा है, उसी प्रकार का शब्द-अन्यत्र नहीं पाया जाता। एक पीढी छोटा होता है, तब उसे अच्छे-से-अच्छे वाद की आवश्यकता रहती है। पीढी जन्म भर चाहिए; लेकिन कम-से-कम बचपन में तो वह सबको भिन्नता ही चाहिए। जिस दृष्टि से हिन्दू धर्म के ब्रह्मचर्याभ्यास की योजना की। विष्णु आज भी उस आभ्यास के विषय में 'अमुक ब्रह्मचर्य' इस वस्तु के उद्देश्य में रहने वाला है।

मैं अपने अनुभव से इस परिचय पर पहुँचा हूँ कि यदि प्राचीन ब्रह्मचर्य पालन करना हो, तो ब्रह्मचर्य की कल्पना आभास प्रक (नैष्ठिक) नहीं होनी चाहिए। 'विषय-मे वन मत करो' यह आभासात्मक आभास है। इतना काफी नहीं है। 'यह दृष्टियों की शक्ति आत्मा में लक्ष्य करो' इस प्रकार की भावात्मक (प्रेमिष्ठिक) आकाश होनी चाहिए। ब्रह्मचर्य के विषय में 'अमुक मत करो', कहने से काम नहीं चलेगा; 'अमुक करो' ऐसा कहना चाहिए।

'ब्रह्म' याने कोई भी सुख कल्पना। यदि कोई आदर्श अपने सुख को पर्याप्त-रूप में मानकर उसकी सेवा करता है और पुत्र स-पुत्र्य बने ऐसी इच्छा रखता है; तो पुत्र

ही उसके लिए ब्रह्म बन जाता है। पुत्र के लिए ब्रह्मचर्य पालन करना उसके लिए आसान हो जायगा। मां अपनी सन्तान के लिए रात दिन लपटी है। किन्तु वह सोचती है कि मैंने उसके लिए कुछ भी नहीं किया। काश्च, उसका सम्पन्न के प्रति जो प्रेम है, उसके बरिनाश में उसके कुछ अर्थ है। उसी प्रकार ब्रह्मचारी व्यक्ति का जीवन तप-संयम से—परिपूर्ण होता है। किन्तु उसके सामने जो विशाल कल्पना होती है, उल्लेख पश्चिमात् में, वह सारा समय वह व्यक्ति अर्थ-ही समझता है। 'मैं अत्रि-निष्ठ करता हूँ' इस कर्तव्य-प्रयोग के बन्ने 'दृष्टि-निष्ठ किया जाता है'; यह कर्म-वि-प्रयोग बाकी रह जाता है। हिन्दुस्तान की गृहीत जनता की सेवा यदि किसी का ध्येय हो, तो वह सेवा उसका ब्रह्म बन गया। उसके लिए वह जो कुछ करेगा वह ब्रह्मचर्य है। सारांश, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-पालन के लिए एकाग्र विशाल कल्पना यदि नज़र के सामने हो, तो ब्रह्मचर्य आसान हो जाता है। ब्रह्मचर्य को मैं विशाल ध्येयवाद् और तदर्थ संयमान्तर कहना हूँ। ब्रह्मचर्य के संबंध में यह मुझे की बात मैंने कहा।

जो दूसरी एक बात कहनी है; वह यह है कि जीवन की झोटी-मे-झोटी बातों में भी नियमन होना चाहिए। काना, पीना, धोखना, धैर्य, सोना आदि सब बातों में नियमन होना चाहिए। चाहे जैसा जीवन स्थिति करने, और दृष्टि-निष्ठ साध्य करने यह आशा व्यर्थ है। उसके में यदि झोटा-सा भी धिड़ हो, तो भी वह बेकार हो जाता है। उसी प्रकार जीवन में धिड़ नहीं होना चाहिए।

( 'सौंदर्य' से )

## होमियोपैथी के विकास की पूर्णता

( ले० श्री० डा० चोमकाश जी विद्यालङ्कार विक्रमौर )

[ १ ]

“रत्नैर्महाहँस्तुत्तुचनं देवा।

न भेजिः भीमविषेण भीतिम्।

सुधां विना न प्रययुर्विग्मं

न विभित्तार्याहं विरमन्ति धीराः ॥”

हनीमैन यह धीर पुरुष था जो परमात्मा के द्वारा उसे यह प्रतिभा करके चला था कि वह नञ्जिवल चिकित्सा के नाम पर होने वाले आयाचार से प्रकामिक की रक्षा करेगा अपितु सत्य-चिकित्सा-प्रणाली की दिव्य-सुधा का पान करकर उसके तीनों तारों की शान्ति भी करेगा। अपने जीवन के इस उच्च उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर, “कार्यं वा साधयंश्च देहं वा पालयेयम्” का मन्त्र अपने अपने अर उतने कर्तव्य-पथ की ओर और आगे पैर बढ़ा दिया। उसने देवताओं के सुधा-प्राप्ति करने के निश्चय के समान दृढ़-निश्चय कर लिया था कि वह होमियोपैथिक चिकित्सा को पूर्णता प्राप्त कराये बिना कदापि विभ्राम न लेगा।

उसने प्रारम्भ में प्राप्त हुई अपनी एलेंगेपैथिक चिकित्सा की सफलता को इस प्रकार लात मार दी थी जिस प्रकार सुधा-प्राप्ति के लिए कृत्रिम विषय देवताओं ने समुद्र-मन्थन के कार्य में प्रारम्भ में प्राप्त हुये महाह रत्नों को तथा होमियोपैथी चिकित्सा प्रणाली के उच्चतम शिखर पर पहुँचने में आधी विष्णु-बाधाओं को इस प्रकार धक्का दे दिया था जिस प्रकार देवताओं ने कालकूट विष को। इस प्रकार प्रयोधनों तथा विनीचिकों से प्रभावित हुये बिना वह अपने उच्च उद्देश्य की ओर—सत्यचिकित्सा-विद्या के उच्चतम शिखर की ओर—होमियोपैथी के विकास की पूर्णता की ओर तबतक निरन्तर बढ़ना ही चला गया जब तक कि उसने उसे पा नहीं लिया।

अपने लक्ष्य के उच्चतम शिखर पर पहुँचने में हनीमैन को जिस दिव्य प्रक्रिया ने—जादू की झोड़ने सबसे अधिक साहाय्य प्रदान किया उनका नाम द्वितीयकरण (Dynamization) या Potentization (पुटीकरण) है जिसके विषय में गूत अध्याय में संकेत किया जा चुका है। हनीमैन को जादू की यह झोड़ संसार ने जिस पदार्थ पर भी फिर गई उसने अपना भौतिक तथा रासायनिक गुणों का पुराना चोला एकदम उतारकर फेंक दिया तथा एक दिव्य गुणयुक्त नवीन सूक्ष्म शरीर धारण कर लिया। संसार के समस्त पदार्थों ने “राम-प्रनाय विषमता लोभे” के अनुसार इस प्रक्रिया के प्रभाव में आकर अपने मिल २ रूपों की विषमता का कोकर एकसा शुद्ध रूप धारण कर लिया तथा बहुत से सुपुत्रगुणों को जगृत कर अपना वास्तविक दिव्यगुणयुक्त शुद्ध-स्वरूप प्राप्त कर दिया।

पद्यों के इस स्वरूप में संसार का कितना कल्याण हुआ तथा हो रहा है उसकी कल्पना कौन कर सकता है ? देखिये—इस जादू की झोड़ी के प्रभाव में आकर ही कलमूँहा कोयला (Carrot-Vegetable) कपास का सा

कोमल तथा चबल-रूप धारण करके हिम समान शीतल हुये जीवों में भी उष्णता का संचार करने लगा है तथा वहाँ में भी बल उठाने वाला “फास्फोरस”—अपने सब उद्दलनात्मक रासायनिक गुणों का परिचाय करके रोगियों की अलग शान्त करने के कार्य में लग गया है। एसीप्रकार द्वितीयकरण की इस प्रक्रिया में मया गया “संलिया (Arsenic), जो पहले मान से ही जीवों को मृत्यु-मुलक में पहुँचा दिया करता था, अब मृत्यु-मुलक में पहुँके रोगियों का भी बलात् कौच खाने लग गया है तथा मनुष्य जाति का सब से भयङ्कर शब्द “कोमासांफ” (Naja Tripudans), जिसके पीस खाने पर ही प्राणियों का दल काय जाता था, अब हृदय की चरकन के असाध्य-प्र.य रोगियों को दिलासा देने के कार्य में लग गया है। “नमक” जैसा साधारण भोज्य पदार्थ भी इस जादू की लकड़ी के आसर में आकर अब न जान किनने जादू भरे कार्य करने लगा है तथा साइकोपैथियम सा उदासीन पदार्थ, जो केवल पिच्छ को पलपिला होने से बचाने का ही काम किया करता था, आज उस सोटी से बुद्धकर कोटी तकड़ीर वाले उन म्युनियोना के मरीजों का रक्त बन गया है जो अपने बलमग के चुल्लूम जल में ही डूब जाता करने थे।

पाठक धृन् ! हनीमैन की इस जादू की झोड़ी अथवा “द्वितीयकरण” (Dynamization) की प्रक्रिया का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिये कौन विद्य-न-प्रेमी पुरुष समुत्सुक न होगा ?

मान लीजिये “लेंदे” का द्वितीयकरण (Dynamization) करना है; अर्थात् उसके भी तक तथा रासायनिक गुणों का आहरण करके उसके अन्दर विलीन उन दिव्य गुणों को जगृत करना है जिनके द्वारा वह रोगियों को रोगमक करने में पूर्णतया समर्थ हो जाता है। भाप जानते हैं कि लोहा जल में जल अयुक्त शील रहना है—यह उनका भौतिक गुण है। अब हमें हनीमैन की इस दिव्य-प्रक्रिया में से गुज़ार दीजिये, लोहा सुलन-शील हो जायगा। इस कार्य को करने के लिये लोहे के कुछ तोल रफ एक प्रेन ले लीजिये और उसमें १०० प्रेन दूध की शक्कर मिला कर पाथर की (Pocelain) कौड़ी में डालकर पाथर के लोटे में खूब रगड़िये। तीन घंटे तक परस्पर मिलाने, रगड़ने, लुढ़कने तथा मिला कर फिर रगड़ने की प्रक्रिया के पश्चात् इस मिश्रण में से २ प्रेन खूब अलग तोल लीजिये और इसमें १०० प्रेन दूध की शक्कर मिलाकर फिर उसी प्रकार ३ घंटे तक कार्य कीजिये। अब हमें से एक प्रेन खूब लेकर उसमें १०० प्रेन दूध की शक्कर मिलाकर उसी प्रकार रगड़ने आदि के कार्य कीजिये, इस प्रकार प्राप्त हुये खूब को जिसमें गमिन के अनुसंधान लोहे का ? का १० साक्षवां भाग रह जाता है, शुद्ध जल में डालकर देखिये। आप देखेंगे कि यह खूब जब में बुल जाता है; अर्थात् लोहे ने जल में अयुक्त शीलना के अपने भौतिक गुण का परिचाय कर दिया है। सुलन शील हुये १ इस खूब का १ प्रेन अब आप अल-लोहे से २ भाग तथा ४ भाग शुद्ध जल के

मिथस की ६०० वृद्धों में बोल लीजिये। इस बोल की ६ वृद्ध लोहे की शोशी में लेकर उसमें १०० वृद्ध भ्रंशकोहल मिलाये तथा मिथस की १०० बार डोर २ ले भ्रंशका दीजिये, इस शोशी में अब लोहे की यह प्रथम "गुब्ब" Potency तय्यार हो जायेगी। इसमें से १ वृद्ध बोलें केबरे उसमें फिर १०० वृद्ध भ्रंशकोहल मिलाइये तथा १०० बार Shakes दीजिये पेसा करने पर लोहे की बुलंदी Potency तय्यार हो जायेगी। इसी प्रक्रिया द्वारा ब्रह्मली पोटेंसिया बनाने वाले जाइये। इसप्रकार तय्यार की गयी १२ वीं पोटेंसिया में आप की किसी भी रासायनिक व-भौतिक परीक्षा द्वारा लोहे के अस्तित्व का परिष्कार प्राप्त ही कर सकते हैं।

अब किसी भी भौतिक तथा रासायनिक परीक्षा द्वारा इस बोल में लोहे के अस्तित्व का पता नहीं चल सकता। तां साधारणतया यही धारणा करनी पड़ती है कि इस बोल में लोहे का अभाव हो गया है। परंतु विज्ञान का यह निष्पत्ति है कि किसी भी ससायान् पदार्थ का कमी अत्यन्तमात्र नहीं होता। हनीमैन ने विज्ञान के इस नियम का अमरक करने बुधे यही निम्नत्व किया कि जब इस बोल में लोहे का सत्ता अवश्य विद्यमान है तो उसका परिष्कार भी किसी प्रकार हो ही जाना चाहिये। जिन प्रकार तार में वर्तमान विद्युत् नेत्रों का नियंत्रण न होने पर भी तबका द्वारा सुगमता में प्रवाह होती है वसी प्रकार भौतिक तथा रासायनिक परीक्षाओं द्वारा अभाव होने पर भी लोहे की इन पोटेंसिया में लोहात्व के परिचायक गुणों का परिष्कार किसी न किसी साधनान्तर से हो ही जाना चाहिये।

हनीमैन ने प्बल करने पर पोटेंसिया में पदार्थों के अस्तित्व का परिष्कार प्राप्त करने का एक नवीन साधन शीम ही वृद्ध निकाला। उसने उपयुक्त रीति के अनुसार तय्यार की गयीं पोटेंसियाओं को परीक्षणार्थ सल्ल मनुष्यों को बिलाला प्रारम्भ कर दिया जिसका फल यह हुआ कि कुछ पर असाधारण लक्षण उत्पन्न होने लगे। हनीमैन ने उन लक्षणों का लेखा तय्यार कर लिया तथा उन रोगियों को, जिनमें उसके लेख के समान रोगलक्षण दिखाई दिये, लोहा की पोटेंसिया औषधिकपत्र से वेनी प्रारम्भ कर दी, जिसके फल-फलक्य वे रोगी मरीचो हो गये। इन परीक्षणों द्वारा हनीमैन को यह निश्चय हो गया कि लोहे को विद्युत्करक की इस प्रक्रिया में से गुजारने से यद्यपि उसके भौतिक तथा रासायनिक गुणों का लोप हो जाता है तथापि लोहे के अस्तित्व का लोप नहीं हो जाता। अपितु उसके बहुत से विलीन गुणों का आविर्भाव हो जाता है जिनके लोहे में यदि वे शुद्ध विद्यमान न होते तो लोहे की वे पोटेंसिया सल्ल तथा रोगी मनुष्यों पर कष्ट भी प्रभाव उत्पन्न करने में कदापि समर्थ न हो पातीं।

इस प्रकार मनुष्यों पर किये गये परीक्षणों तथा निरीक्षणों के आधार पर होमियोपैथिक औषधियों की पोटेंसिया में औषधिकपत्र की सत्ता का प्रदर्शन हो जाने पर भी हुत से तार्किक विज्ञान उनके विषय में तर्क २ की

शुद्ध करते पाये जाते हैं। उनकी शुद्धता का समाधान करने के लिये हम निम्न "इकात" प्रस्तुत करते हैं।

यदि लोही लोहे लैनिकों की लो पकियां एक दूसरे ने सिमडा कर लड़ी करदी जात नो उन १० इजार सिपातियों में से केवल ५०० सिपाही ही, जो चीलर्का लड़े होंगे, युद्ध करने में कुछ २ समर्थ हो सकेंगे। शेष ६६० सिपाही इस लिये बेकार लड़े रूंगे कि वे चीलर्का लड़े सिपाहियों ने बिर जाने के कारक बिलने जुलने तक में भी असमर्थ होने हैं। अब यदि उन लख लैनिकों को एक लोही पक्ति में एक दूसरे से सटाकर लड़ा कर दिया जाय तो वे युद्ध करने की यद्यपि पहिलां अवस्था की अपेक्षा बहुत अधिक समता प्राप्त कर लेंगे तथापि पूर्ण समता तो वे नभी प्राप्त कर सकेंगे जब उनमें से प्रत्येक के बीच कम से कम इतना अन्तर तो वे दिया जाय जिनसे वे सखल्लवना पूर्ण अपने राजाओं का प्रयोग कर सकें। इस पर भी प्रत्येक लैनिक में क्या कर्ण्य कुशलता या युद्ध समता सिपी पड़ी है इसका पता चलना असम्भव ही रहता है। इसका परिष्कार तो तभी हो सकता है अथकि प्रत्येक लैनिक को समुचित अवकाश देकर उसे अपना कौशल दिखाने के लिये प्रेरित वा संलुब्ध भी कर दिया जाय। तब हम देखेंगे कि वह ऐसे २ विद्यमयोत्पायक कौशलों का प्रदर्शन करने लगता है जिनके अस्तित्व का हमें स्वप्न में भी ध्यान नहीं होता।

ठीक इसी प्रकार हनीमैन की दिव्यी करंछ को इस प्रक्रिया में पदार्थों की अपने प्रच्छन्न गुणों का प्रदर्शन करने के लिये न केवल अवकाश अपितु प्रेरणा भी मिलती पती जाती है।

प्रत्येक दृश्य पदार्थ अदृश्य मात्राओं की असंख्य संख्याओं के संयोग में बना हुआ होता है। ऐसी संघटित अवस्था में मात्राये अपने सब गुण किसी प्रकार भी प्रदर्शित नहीं कर सकना। क्या नमक की एक बड़ी डली दाल में डालने से सारा दाल को नमकीन कर सकनी है? उसको, अथ, पानी में घोलेकर दाल में डाल दीजिये-सारी दाल नमकीन होजाती है। क्यों? इस लिये कि इस बोल में नमक की असंख्य मात्राओं की असंख्य गणियां अब पहिले में (डोसबन्धा में) बहुत अधिक अवकाश पा लेती है जिनमें अपना गुण प्रदर्शन करने का आस्त्र प्राप्त हो जाता है। अब हम नमक के इस बाल में से १ वृद्ध लेकर १०० वृद्ध जल में मिलाकर उसे भटकने में तो अब इस प्रक्रिया द्वारा इस बोल में नमक की मात्राओं की गनुये चीर भी अधिक अवकाश पा जाती है तथा भटकने में आत्मी के साथ एक दूसरे से बलगत २ हो जाती हैं।

दिव्यीकरक की इस प्रक्रिया में जहां बोल (Dilatation) द्वारा मात्राओं को अधिक अवकाश प्राप्त होता चला जाता है वहां संघर्ष अवस्था भटकन द्वारा मात्राओं का विघटन भी होता चला जाता है। भटकन का इस क्रिया द्वारा मात्राओं का न केवल विघटन ही हो जाता है अपितु उन्हें अपने गुणों का प्रदर्शन करने के लिये प्रेरणा (Excitement) भी प्राप्त होगी रहती है। इस प्रकार अवकाश तथा प्रेरणा पाकर पदार्थों की मात्राये अपने

[ शेष पृ. ५ पर ]

# गुरुकुल

१३ पौष शुक्रवार १९६७

## धन की शक्ति

[ श्री आचार्य रामचंद्र शुक्ल ]

( ६ )

### धन का सदुपयोग

हैं यह तो ठीक है कि 'स्पर्धा' में उन्नति होती है,' पर यह तब होती है जब स्पर्धा उचित के लिये कराई जाय। हम तो अंग्रेजी की किताबों के कुछ शब्द रट लिये हैं, यह नहीं जानते कि उनका असली उद्देश्य क्या है? स्पर्धा भ्रम की। कामत काम करने को नहीं किन्तु भ्रम को उखल कराने के लिये करानी चाहिये। इन्हें पर गुरुकुल तक नामों की कामत तो उचित तौर पर निश्चित होनी चाहिये, और यह ज़रूर ही जानी चाहिये। उस कामत पर चुनाव उस नामों का करना चाहिये, जिसका बाड़ा अच्छा है, तांगा साफ़ सुथरा है, जिसका नाम वाला, गल्ले बकने वाला नहीं किन्तु प्रेम से मुसकिया से (और अपने घोड़े में भी) व्यवहार करने वाला हो। इत्यादि। ऐसा करने से भी नामों में स्पर्धा होती जिसका फल होगा कि नामों वाले अपने घोड़ों को खिलायेंगे पिलायेंगे, तांगे को साफ़ सुथरा रखेंगे, उन्हें और अपने बाप को सुध देंगे। क्यों कि जो ऐसा करेगा उसका नाम अधिक पसन्द किया जायेगा, उसे काम मिलेगा। पहले तरह का स्पर्धा करने में और इस तरह की स्पर्धा कराने में कितना फर्क है! पहले तरह का स्पर्धा सत्ता यह प्रवृत्ति होती है कि बे काम पाने के लिये अपना कामत घटाना चाहते हैं, उससे घोड़े को भी कम मिलते हैं, अन्य अवश्यक बातों की तरह ध्यान नहीं देते। इस प्रकार नामों वाले का व्यवहार पारंपरिक तौर पर ही हीनतर होता जाना है। दूसरे तरह की स्पर्धा से नामों वाले का व्यवहार शुण्ड अतिआधिक उन्मुक्त है। यह प्रवृत्ति होती है। दोनों हालतों में मैंने काम तो एक ही नामों के लिये का दिया, दोनों हालतों में मेरी दृष्टि से बाका सब बका रहे। अतः बंकाया को दूर करने की दृष्टि से दोनों एक समान है। यह नहीं कि कम पैसे देकर मैंने बंकाया उब दू कर दू (कम ही दूर का) परन्तु उनके भ्रम का मूल्य पूरा देन में मैंने उन अथ प्रवृत्ति में डाला कि भ्रम की पूर्ण कामत देनी चाहिये तो वह नामों वाले भी पास चेंचने वाले में या बड़ों में जो भ्रम झरनेवाला उसकी भी यह पूरी कामत देना ठीक समझेंगा। इस तरह सरे समान में एक व्यापक प्रवृत्ति की लहर चलती। सारा व्यवस्था सुधरेगी। अतः चाहिये यह कि प्रत्येक भ्रम का

व्यापक मूल्य निश्चित होना चाहिये, और उससे अधिक या कम करने में कोई स्पर्धा नहीं होनी चाहिये। कम करने में नहीं तो अधिक करने में भी नहीं। यदि इन्हें स्पर्धा से मुक्त न कर लिये तो नामों वाले को भी अधिक स्पर्धा देना पड़ेगा। १) नहीं मानना चाहिये। अपना भाव बढ़ाना नहीं चाहिये। और वे अब बहुत करके अपना भाव बढ़ाने लगे लिये हैं कि वह हम उन्मुक्त बहुत बार काम करने को विवश करते हैं। दोनों तरह से एक प्रकार के भ्रम का मूल्य तो निश्चित होना चाहिये, व्यर्थ का बकवक और समय गंवाना भी बन्द होना चाहिये। पर काम उसे मिलना चाहिये, जो कार्य को अच्छी तरह करता हो। नामों वाले को भी अच्छी सवारी को ही बिठाने का अधिकार है, वह उसे बिठाने लिये वह नामों को न खराब करने वाला, पैसे ठीक तरह देने वाला या अच्छा व्यवहार करने वाला देवे। पर उसे काम नहीं बढ़ानी चाहिये। कामत निश्चित होनी चाहिये। हम कलर का देका उनी आदमी को दें जो उत्तम चुनाव करने, जो कलर एक बराबर व्यवहार से कराये और अपने मज़दूरी को ठीक पैसे देना हो। पर हम कलर कराने का व्यापक चिन्तन जो निश्चित काम है यह उसे (या जिसे हम चुनें ऐसे हरेक कार्य करने वाले को) देने को सदा उद्यत होना चाहिये। ऐसा करने से समाज का सामूहिक समर्थन बढ़ती है, हर एक अपनी अपना भ्रम अधिक से अधिक उत्तम प्रकार से करने को प्रवृत्त होता है। अतः अन्त में प्रत्येक व्यक्ति को ही इस तरह लाभ पहुंचना है। मुझे समझना चाहिये कि मुझे चाहें ठीक भाव के सुनायक नामों के।) की जगह।) देने पड़े पर असल में अन्ततः उस ग्याय की लहर में मुझे भी आर्थिक दृष्टि से ही लाभ होगा, हानि नहीं।

पेसा बर्त है जो हमें समझनी चाहिये। और जो सच्चा अर्थशास्त्र है वह हमें पेसा ही माने सिखाता है जिसकी तरफ़ ऊपर से हमारा ध्यान नहीं जाता और जिस काम होने में सामाजिक समर्थन का नाम होता है और अन्त में हमें हानि उठानी पड़ती है। तो असली स्पर्धा क्या है, अन्तुओं के मूल्य का निश्चय न्यायालय कैसे होना चाहिये, और वही बाजार भाव होना चाहिये, कोई चीज मंगनी क्यों है सलाह क्यों है उसके कारण को उन कमी मंगनी बहुत भी नैना हमारा कारण होना है-न्यायि बार्ते हैं जिन्हें हमें अर्थशास्त्र द्वारा सीखनी चाहिये। इन्हें हम जब सारमें तभी हम धन का सदुपयोग कर सकेंगे। यह कह कर धन का सदुपयोग का प्रकाश समाप्त करना है।



(पृ० ३ का शेष)  
 उन विलीन गुणों का उद्घाटन करने लगती हैं जो गुण साधारणतया अदृश्य तथा अप्रकृत होने के कारण दिष्ट गुण कहते हैं। बल्कि पदार्थों के दिष्ट गुणों का—वह प्रकृतियों प्रकाशन का वेनी है अतः इन्ने दिष्टी करण की प्रकृतियां कहते हैं।

पदार्थों के सुषुप्त वा विलीन गुण संघर्षक द्वारा जागृत अथवा प्रगट हो जाते हैं इस बात में किन्ने सन्देह हो सकता है। क्या शीशा रेशम से रगड़नाकर विजली नहीं उगलने लगता ?

क्या बांस, बांस से टकरा कर वन व आग लगाने का काम नहीं कर जाता ? क्या तुम्हें चुकाई सा आग तलाई जाने पर पुनः भड़क नहीं उठता ! क्या लकड़ी से चूहा गया मृग पंकार नहीं माने लगता ? क्या जावन संज्ञा में विपत्तियों की रगड़नाकर मनुष्यों दिष्ट गुणों का उदय नहीं हो जाता ? महाकवि कालिदास लिखत है—  
 “असलिन च लोचनयोऽपि न, विप्रकृतः पञ्च कण्ठां कुम्भे ।  
 नेत्रयो ससौभात् प्रायः प्रतिपद्यते नेत्रः ॥”

इस प्रकार, विभाजन तथा संघर्ष की मिश्रण भूत इस दिष्टीकरण की प्रकृतियों का महायना से थीर हनीमैत्रिण शक्तिमान विज्ञान के उस उच्चतम शिखर पर जा पहुँचा जहाँ से वह हासियाधि की उस सुधाभय प्रवाह को प्रभावित करने में समर्थ हो गया जिसका स्नान करने के पश्चात् प्राणिकान्त्र अपने विविधताप से पूर्णतया विमुक्त हो परम शान्ति लाभ करने लगे।

“सो” के नियम के अनुसार औषधियां का पुटा में (Potencies में) प्रयोग में लाते पर, अथ, हनीमैत्रिण को शक्तिमान के कार्य में आशुतीत सकलता प्राप्त होने लगता।

इस सकलता से अधिकाधिक प्रोत्साहित होकर, वह इस सूक्ष्मशक्तियों के रूप में परिवर्तित हुयी २ औषधियों के रोगोपशमन के कार्य में पूर्ण समर्थ होने के कारण का अनुसन्धान करने में स्वचित्त हो गया।

प्राचीन परिपटी के विचारों का अनुसार यह भी हमारे मन शरीर का—इस सूक्ष्म शरीर को ही—हमारा सब कुछ मानता चला आ रहा था। इसे अभी तक यह परिचयन था कि हमारे इस सूक्ष्म भौतिक शरीर में कोई अदृश्य सूक्ष्म शक्ति भी वास करता है। परन्तु जब उसने देखा कि सूक्ष्म शक्तियों के रूप में आधी औषधियों की हमारे सूक्ष्म शरीर पर लक्षण उपपन्न करने में—उसे प्रभावित करने में—समर्थ हो रही हैं तो उसे हमारे शरीर के केवल सूक्ष्म रूप होने में सन्देह उपपन्न हो गया।

पाठकभूम्भे ! इन सम्झने के कारण ही उन्ने उन दो सच झूठों का और परिचय प्राप्त हो गया जिन्होंने चिकित्सा जगत् में युगम्भर उपस्थित कर दिया। उन्ने पता चल गया कि हमारे स्थूल शरीर में अथवा कोई सूक्ष्म शक्ति व्याप्त है जिससे ऊपर अधिकार करने पर ही उसकी सूक्ष्म शक्तियों के रूप में आधी औषधियां अपने लक्षण पूर्ण शरीर पर अभिव्यक्त करने में समर्थ हो जाती हैं। इसी तर्कना के आधार पर उन्ने यह भी पता चल गया कि रोगोत्पादक पदार्थ अथवा अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों के रूप में होते हैं जो हमारे सूक्ष्म शरीर के अन्दर व्याप्त अदृश्य सूक्ष्म आत्म शक्ति पर अधिकार करके अपने लक्षण उपपन्न कर देने हैं तथा

जिनका परिहार उनकी पुटों में आधी—अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों के रूप में परिहित हुयी २—औषधियां बड़ी आसानी से कर सकती हैं।

इस प्रकार Dynamization की प्रकृतियां के आविष्कार के कारण ही उन्ने हमारे सूक्ष्म शरीर में एक अदृश्य सूक्ष्म आत्म शक्ति (Vital force) के अस्तित्व का, तथा रोगोत्पादक पदार्थों की भी अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों के रूप में मानना आवश्यक हो गया। इससे पूर्व हनीमैत्रिण भी रोगोत्पादक पदार्थों को नूत्र रूप में—वैकरीरिया के रूप में मानना चला आता था परन्तु अब उन्ने उनके असली रूप का पता चल गया। इस विचार-परम्परा के कारण ही आज हनीमैत्रिण के अनुप्रायियों का मनना पड़ना है कि—  
 “हम सूक्ष्म शक्ति हैं, सूक्ष्म शक्ति ही—  
 कर सकती हम पर अधिकार।

वह सूक्ष्म शक्ति के तर मारकर,  
 कर देता उनका संहार ॥”

विद्यीकरण की इस प्रकृतिया द्वारा हो-विद्योपैथिक चिकित्सा प्रणाली को पूर्णता की परकाठा पर पहुँचा देने के पश्चात् ही हनीमैत्रिण की चिकित्सा के कार्य में कुछ अड़चने पानी ही रही। हमने देखा कि जो रोग-गल्लन उनको दिष्ट शक्तियों की मात्र से एककार सर्वथा विमुक्त हो जाते थे वे कभी २ पुनः सिंग उठा लेते थे। रोगों की इस अस्व-मित्रीताके खेल में उन्ने बहुत ही अधिक परेशान किया। परन्तु यह धार पुनः इस विषय का विध्वंस करने के लिये भी प्रारम्भ में जुट गया।

१२ वर्ष के अनवरत परिश्रम के पश्चात् उसे इस खेल के चोर का पता चल गया। उसने बताया कि संसार के प्रायः समस्त रोग, जो मिश्र २ नामों से पुकारे जाते हैं, Psora नामक सूक्ष्म शरीरों राक्षस के मिश्र २ रूप होते हैं तथा “Syphilis” और “Syconis” नाम के उनके और दो भाई होते हैं। ये तीन रोग-राक्षस ही समस्त रोगों के मूल कारण (Fundamental Causes) हैं जिनसे मिश्र २ नामके रोग मिश्र २ रूपों व प्रगट होते रहते हैं। ये रोग-राक्षस कभी तो मनुष्यतावस्था में अजाने हैं। इनके इन दो अणुकाओं में आने के कारण ही रोग-गल्लन आन्व मित्रों में खेल लेलने दिव्यायी देने लगते हैं।

रोगों का इन दोनों अणुकाओं में सद्गुण-मूलन करने के लिये हनीमैत्रिण ने Antipsores, Antisyphilitic, तथा Antisyconic औषधियों का अनुसन्धान किया तथा उनके Proving (लक्षणसंग्रह) अपने “Chronic Diseases” नामक पुस्तक में प्रकाशित कर दिये।

हनीमैत्रिण ने इस प्रकार हासियोपेथा के विकासोन्मुख सुधार को न केवल पूर्णता तक पहुँचाकर, अपितु उसे निष्कलङ्क बनकर चिकित्सा जगत् के अमर रत्न में प्रस्तुत कर दिया। तात्कालीन चिकित्सकों ने इस प्रभाव-तरल ज्योति को उदित होना देखकर, प्रथम २. एकदम अकार्षणीय हो जाने के कारण, किस प्रकार उसमें मूढ़ मोड़ लिखा तथा कुछ काल पश्चात् उन्ने सुधाकर की सुधास्वनिष्ठी चर्चुका के समान सकल लोक कल्याणकारिणी चिकित्सा प्रणाली सम्मक कर अपना लिया इसका वर्णन अगले अध्याय में होगा।

# प्रेम

[ अन्त- श्री विद्याभार ]  
( गतांक ले प्राणी )

विचारने पर प्रतीत होगा, कि आत्म समर्पण और आत्म समर्पण ये दोनों ही गुण आवश्यक हैं। और यदि इनको अपने समयानुसार अति (extreme) पर पहुँचा दिया जाये तो बहुत उपयोगी होंगे। प्रेम की अवस्था में पूर्ण समर्पण उपयोगी है, यदि ऐसा संभव हो सके तो फिर समुद्र और निराशा निरवकाश हो जायेंगे। किन्तु यदि एक पक्ष की उपेक्षा हो रही है, और वह उसको अनुभव करता है, तथा अवाञ्छनीय समझता है, तब उक्त आत्म समर्पण पर कथम न रहना चाहिये। उसको पूर्ण आत्म समर्पण बन जाना चाहिये। उक्त अन्वय-प्रमाणों के आश्रय को 'यज्ञं यत्सर्वमन्वज्जगत्सर्वं, एतन्मम न त्वेकस्यान्वितत्तया' अर्थात् प्रेमवान् से किसी भी प्रकार की आर्थात्मा न करनी चाहिये। परन्तु इन विचारों को जाना बहुत कठिन है। प्रेम एक ऐसा बन्धन है कि इसको छोड़ना चाहते हुए भी नहीं छोड़ना जा सकता। मान को विचारते हुए भी, प्रेम ही अपने प्रेमवान् को बन्ध, उससे याचना कर दो देता है। परन्तु यह निश्चयी बना नहीं कर सकता। उससे लिये कुछ आसंभव नहीं।

प्रेम के लाभ —

१. यह प्रेम और मित्रता यद्यपि प्रायः वृक्षानां होने हैं, किन्तु फिर भी इनका उपयोग और लाभ है। इन्द्र की सृष्टि में, किसी भी वस्तु को सर्वथा अनुपयोगी नहीं कहा जा सकता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहने हुए बहुतों के सम्पर्क में आता है। इनके विषय में उसकी कुछ सम्मतियाँ बन जाती हैं। इन सम्मतियों को वह पूर्ण आत्म समर्पण नहीं कर सकता, क्योंकि कार्यों के विषय में उसकी बुद्धि सम्मतियाँ होती हैं। और यदि वह इच्छा प्रकट करे तो उसको बर होता है कि दूसरे भी उनके विषय में ऐसी ही सम्मतियाँ प्रकट करेंगे। इनके अतिरिक्त उसकी ऐसी अनेक घटनाएँ और चरित्र होते हैं, जिनसे वह स्वयं शर्मना है। पर साक्षरी मनुष्य की यह भी स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपनी बातें किसी को बताता चाहता है। इनसे वह अनुभव करता है कि उसका कुछ शोक हलक हो गया। इसलिये उसको एक सार्थी या प्रेमी की आवश्यकता होती है, (प्रेमी को ही मन्थी के रूप में परिवर्तित कर लिया जाये तो बहुत अच्छा, जिसको वह अपने मन की सब बातें कह सके। किसी देरे गैरे को भी ये बातें नहीं बमर्दा अ लक्ष्मी कर्मोंकि उनपर उसे अविश्वास होता है। इस प्रकार का सार्थी प्रेमी ही हो सकता है, क्योंकि इस पर उसे विश्वास ही होता है, और इसके लगने अपना हृदय भी खोल सकता है। यदि यह लक्ष्मी केवल सार्थी हो, किन्तु समय प्रेमी न रहा हो तो उसके सामने बिम्बुजल स्पष्ट बका होना कठिन और प्रायः असंभव होता है। दूसरे जब हमने कोई अपना भेद खोल देता है तो, हम उसमें अपना भेद नहीं छिपा सकते। और

इस प्रकार दोनों प्रेमियों में वह किन्ना पारस्परिक हो जाती है, परिणामतः विश्वास भी बढ़ता जाता है।

२. मनुष्य में आकर्षण सामाजिक है। यदि उसका एक प्रेमी या मित्र हो तो, उसको जगह २ भटकने का एक अवसर होता है। यही कारण है कि विकास करने हुए मनुष्य समाज में विवाह बन्धन कायम कर लिया है। इस विवाह के कारण यह जीवन भर एक के साथ बन्धा रहता है। इसका एक लाभ यह भी है कि उसका एक चिरस्वामी मित्र बन जाता है। पुरानी प्रथा (जब विवाह प्रचलित नहीं हुआ था) यद्यपि मनुष्य का आकर्षण या संभोगेच्छा पूर्ण हो जाती थी, किन्तु उसका कोई सुख दुःख का सार्थी न रहता था।

३. मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतः वह किसी का बनकर रहना चाहता है। प्रेमी या मित्र विहीन अनसर्ग में यह अपने को असह्य और अकेला अनुभव करता है। वह सोचना है यदि सुख पर कोई सुखी बन आये तो कोई भी सुखे वाला नहीं। दुनिया तो पृथ्वी नहीं, कोई मित्र होता तो वही सुखे चाहता होता; और वही कारण है, दो प्रेमी कसो की भी परवाह नहीं करते। उस समय वे एक दूसरे को अपने लिये पर्याप्त समझते हैं। एक और एक यह रहते हैं, दो नहीं; यह प्रसिद्ध ही है। रात को यह अंधेरे में भी हम अकेले जाने हुए उठते हैं, किन्तु दो होने ही सब डर गायब हो जाता है। अर्थात् अकेलेपन को दूर करने के लिये एक भी काफी है।

अभी तक प्रेम के उपयोग देखे। किन्तु कोई भी वस्तु एक व्यक्ति ही नहीं होती। इसका भी एक बड़ा अवयव है। प्यार का अत्याचार प्रसिद्ध ही है। इस अत्याचार की लक्ष्मी यह है कि इसका विरोध भी नहीं किया जा सकता। यथा-प्रेमी किसी विषय में उन्नत करने के लिये बाहिर जाना चाहता है, किन्तु प्रेमापक उसे अपने से अलग नहीं होने देना चाहता। इन अवस्था में प्रेमी लाचार हो जाता है। यह अत्याचार बन्धु के और तोप के अत्याचारों से भी बढ़कर है। उनका विरोध और प्रतिकार किया जा सकता है किन्तु इसका विरोध कल्पनातीत है। यदि यह विरोध कभी किया जा सकता है, तो यही जब कि वास्तव में प्रेम समाप्त हो चुका होता है।

## प्रमथय अवस्था की कुछ अजीब स्थितियाँ —

१. कई बार एक को दो चाहते हैं। परिणाम यह कि उनमें लड़ाई हो जाती है। इस बात के दृष्टान्त के तौर पर मनुष्य उपसृष्ट की कहानी मसहूर ही है।

२. कई बार एक दो को चाहते हैं। इस समय यदि उन प्रेमियों को पता लग जाय तो वे दोनों उस पर अविश्वास करने लगते हैं। जो एक से दो का हुआ वह किसी का न रहा। (No one can serve two masters) इस लिये इस स्थिति को टलने के लिये वह दोनों प्रेमियों को जोना देना है, मुझ दोस्ताने है, बहुत सी बातें छिपाता है।

३. प्रायः एक व्यक्ति अमुक और वह किसी दूसरे को चाहता है। मनुष्य हीरे ने इस लय को निरुद्ध शब्दों में रचवा है—  
“या विन्मवाभि सततं प्रिय सा विरक्ता,”

४. बहुधा प्रेमपात्र के प्रेमपात्र से प्रेम हो जाता है। इस समय वह दो को चाहते लगता है। यह भी एक कमीच समझा है। इस को हल करना सख्त नहीं।

५. दो नये प्रेमियों में से यदि एक के प्रेमपात्र को दूसरा चाहने लगे, तो वह अपने पुराने प्रेमपत्र व से ईर्ष्या करने लगता है, क्योंकि वह उसके रास्ते में बाधक है।

इसी प्रकार और अनैक स्थितियाँ होती हैं। ये बड़ी कमीच पहचान हैं। इनका हल असंभव ही समझना चाहिये। क्योंकि लूचि के आरम्भ से प्रेम चला आ रहा है, और इनको समझाएँ या विधमान हैं, पर उनका कोई हल नहीं हो सका। यदि संभव होता तो हा जाता।

प्रेम का षोडश बड़ा फलसूत्र है। इसे बड़ी मनुष्य-अनुभव करता है जिस पर शान्त होती है। भुक्त भोगी भी दूसरे के दुःख का अनुभव नहीं कर सकता। मान लाजिये दो प्रेमी हैं। उनमें से एक अधिक आकृष्ट है। दूसरा एक कल्प को भी चाहता है। इस समय आकृष्ट व्यक्ति का हृत्कान बहुत ही व्यनोय होनी है। किन्तु समय बदलता है। और अब वह व्यक्ति अधिक आकृष्ट हो जाता है, जो पहिले आकृष्ट का विषय था। और जो पहिले अकृष्ट था, एक दूसरे को चाहता है। इस अवस्था में यद्यपि पहिला मुक्त भोगी है, फिर भी वह दूसरे के कष्ट की कल्पना नहीं कर सकता। इन समय दोनों के सिद्धान्त बदल जाते हैं। दोनों यह अनुभव करते हैं कि हम गलती पर थे। किन्तु वास्तव में बात यह है कि दोनों की प्रेम की मात्रा बदल जाती है।

इस प्रकार यहाँ परिणाम है, कि प्रेम का अन्त बहुधा दुःख में है, पर कि आँसू भी लोग इसके पीछे भागे चले जाते हैं। एक प्रेमपात्र से निगूरा होने के दुःख का अनुभव करने या वे दूसरे का अपना प्रेमपात्र बना लेते हैं, और फिर उसी दुःख के चक्र में पड़ जाते हैं। इसका कारण यह है कि इसके बिना जीवन नीरस हो जाता है।

### गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह कुलभूमि में अद्भुत सुसाह तैयारी के साथ मनाया गया। यद्यपि इन दिनों गणन-मण्डल मन्त्री से आकृष्ट विलग्न तथापि भीड़ मन्त्रा जी के उत्साह के कारण खेलों का प्रोग्राम सुचारु रूप से संपन्न हुआ। ता० २३ दिवस तक बड़ी यशस्विलता म मयका सन्मिलित वृहद्व्यवस्था और तत्पश्चात् सप्ताह जिवमें माण्य उपाध्यायों के सार्वभौमिक ध्यान्ध्यान हुए।

### गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में नये बालकों का प्रवेश

नये बालकों का निश्चिन्त इन्टर की सुविधियों में गुरुकुल के वाणिज्योत्सव के अन्तर्गत पर होगा। जो सञ्जन अपने बालकों को गुरुकुल में प्रवेश कराने के इच्छुक हैं उन्हें शीघ्र ही प्रार्थना पत्र भेजकर स्वीकृत प्राप्त कर लेनी चाहिये।

निवासी तथा प्रवेशकाल 'कार्यालय' गुरुकुल कांगड़ी (जि० सहायपुर) से संपर्क करें।

मत्स्यप्रत  
सुख्याधिष्ठाता (गुरुकुल कांगड़ी)

### गुरुकुल चित्तौड़गढ़

६ दिस० की प्रातःकाल स्वर्गीय प्रो० रामदेव जी (मृतपूर्व आचार्य गुरुकुल कांगड़ी) का स्मृति-दिवस गुरुकुल चित्तौड़गढ़ में मनाया गया। गुरुकुल के प्रमुख प्रोफेसरो के श्री आचार्य के जीवन पर व्याख्यान हुए तथा ब्रह्मचारियों की उपदेश दिया कि अपने जीवन में उनके सद्गुणों को ग्रहण करनेका प्रयत्न करें। कार्यवाही से पूर्व उपस्थित सभ्यों ने दो मिनट के लिये मौन धारण किया तथा ईश्वर से प्रार्थना की कि परमात्मा उनकी आत्मा को शान्त प्रदान करें। गुरुकुल का कार्य भी समस्त दिन के लिये बन्द रहा।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ के आचार्य तथा नुव्याधिष्ठाता श्री स्वामी प्रतापन्दी जी की धर्मार्थ वर्ष-गाठ गुरुकुल चित्तौड़गढ़ में बड़े समारोह पूर्वक मनाई गई। गुरुकुल का समस्त कार्य बन्द रहा ब्रह्मचारियों ने प्रताप्यास द्वारा श्री स्वामी जी के गुणों को अपने जीवन में बढानेका निश्चय किया।

### गुरुकुल यनाथधाम के ब्रह्मचारियों की बहादुरी

गुरुकुल महाविद्यालय यैनाथधाम के निकटवर्ती जंगल में एक लूटकार बण्डला आ गया था, जो आसपास के ग्रामीणों के पशुओं पर घुरी मरह आकण्ड करता था। ग्रामीण जनता उससे भयभीत हो रही थी। ८ दिसम्बर रविवार को प्रातः जबकि ब्रह्मचारी श्रीचार्थ बाहर निकले तो उस भयानक दिव्य जन्तु की आवाज़ उन्होंने सुनी। ब्रह्मचारियों ने उसका पोंका किया। पहले तो वह घुरिया किन्तु मीड देवकर जंगल में आग निकल। ब्रह्मचारी लाठी और हाकी से बराबर उसका आधा करने रहे। अन्त में दो माल पोंका करने के बाद ३० विस्फामित्र ने हाकी से ही उसे मार डाला। कुलभूमि में उसे बचन के झर प्रामोण जनता की बहादुरी मीड थी। इसके प्रार्थना से लोगों में बड़ी प्रसन्नता हुई।

### स्वास्थ्य समाचार

रामकुमार ३ श्रेणी श्लेष्म-ज्वर, यनीष्ट ५ श्रेणी श्लेष्म-ज्वर, सन्ध्यान्ध ५ श्रेणी श्लेष्म-ज्वर, ओम्प्रकाश १ श्रेणी उग्र, युधिष्ठिर २ श्रेणी चांदा, दमेशकुमार २ श्रेणी कोण, सोमप्रदा २ श्रेणी प्रतिष्ठाप, रामेशचन्द्र श्रेणी १२ चांदा।

गत सप्ताह उपरोक्त ३० रोगी इन्धे थे, अब सब स्वस्थ हैं।

### कोषाध्यक्ष श्री दीवानचन्द जी का स्वर्गवास

गत २० दिसम्बर का रात्रि के २ बजे गुरुकुल के कोषाध्यक्ष श्री ला० दीवानचन्द जी का पाण्डु रोग से अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। इन शोकमें महाविधिय लय में अगले दिन होने वाली अद्भुत सुसाह की सब खेलों का प्रोग्राम स्थगित कर दिया गया।

सं० ला० दीवानचन्द जी अपने वैयक्तिक गुणों के अतिरिक्त जिस लगन, ईमानदारी और हृष्टता के साथ गत ११ वर्ष से गुरुकुल को सेवा कर रहे थे उससे प्रत्येक कुतर्पासी परिचित हैं। उनके दिवंगत होने से निःसन्देह गुरुकुल की क्षति हुई है। ईश्वर दिवंगत आत्मा को शान्त तथा शोक-संतप्त परिवार को धैर्य प्रदान करें।

## जाड़ों में सेवन कीजिए: गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी धातु क्षीणता पुरानी खाँसी, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शीक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव १०) आधा सेर २०) १ सेर ४)

सिद्ध मकरध्वज	चन्द्रप्रभा
स्वप्नां कस्तूरी, आदि बहुमूल्य औषधियों से तैयार की गई ये गोलिधां सब प्रकार की कमजोरियों में प्रकसीर हैं। शीर्य और धातु को पुष्ट करती है।	इसमें शिलाजांत और लौह मसम की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।
मूल्य २०) तोला	मूल्य ११) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और शीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ११) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से छपनी औषधियां बेच रहे हैं। इसलिए दवा खरीदते समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

गंध	{	वेदनी—चांदनी चोक।	
		मैरठ—सिफ रोड।	
पर्वसिया	{	कानपुर—पर्वसिया गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी श्रीराम रोड।	
		लाहौर—	हरियाणू रोड।
		पटना—	मधुभाखोली बाँकीपुर।
		अजमेर—	वैशाल सरस्वतीबाबा जी कृष्ण चोक।

**गुरुकुल फार्मेसी गुरुकुल कांगड़ी जिलासहारनपुर**



२. मैसो क भी दूध केवल अमी पुरुषों (यथा कृषक मजदूर) के लिए आवश्यक है रागी, बालक, विधवायें या विमागी कार्य करने वाले के लिए यह दूध विशेष उपयोगी नहीं।

३. वनस्थान भी का प्रयोग संबंधा त्थाव्य है। इसकी अपेक्षा सरसों या तिल का नेल कहीं ज्यादा अच्छा है।

प्रत्येक कृषक को औ १०० बीघे भूमि होना है कम से कम दो गोप्रे अवश्य रखनी चाहिए। इसी हिसाब से अधिक भूमि वाला अधिक गोप्रे पाले।

५. म्युनिस्विपलिटि, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, देहाती पञ्जायत आदि के लिये आवश्यक होना चाहिए कि वे दूध, मक्खन, घी के व्यापार को चमाने के लिए कम्पनियां गोल कर उन्हे सुविधाएं दें।

६. चमड़े तथा हड्डियों के करवाने भारत में ही खोले जाने चाहिये।

७. जंगल, नहर, व रेलवे के अधिकारियों की तरफ से चार के लिये सुविधाएं मिलनी चाहिए।

८. जिन प्रायों में प्राचीन समय से गोबर भूमिवा विद्यमान हैं वहां 'कैबल ड्रीडिंग इम्प्रूवमेंट सोसायटी' या 'को आर्टिफिशियल सोसायटी' जैसे संस्थाओं को प्रोत्साहित करने से गोशालाएँ सुलभ हो सकती हैं। (बम्बई कृषक इव् देवट नं० सन १९१२)।

९. वर्तमान गोशालाओं को दो भागों में बाँट दें। प्रथम में अच्छी नुसार गोप्रे व बड़े गोप्रे तथा दूसरे में बेकार गौओं को रखें।

१०. मेला, प्रविष्टियों तथा जाँचपूछों की आयवनी का कुछ भाग गौओं की वृद्धि में व्यय किया जाय।

११. शिक्षित पुरुष जो बेकार हो उन्हे गोशाला की क्रियात्मक शिक्षा देने के अनन्तर उनको अच्छी सरगाहों पर गोशालाएँ खुलवा कर नियुक्त करें। ऐसे स्थान सरकार अपने बनी तथा तान्त्रिकेदारों से उचित उपायों द्वारा प्राप्त करके ले। पशु चिकित्सकों तथा कृषि विरोधकों द्वारा इन स्थानों का भली प्रकार निरीक्षण करना सरकार का कर्तव्य है।

१२. प्रत्येक जिले में गौओं की वृद्धि, तथा उनकी उन्नति के लिए कमेटियाँ बनाई जायें।

१३. स्कूलों तथा कलियों में विद्यापियों को कुछ दूध का सेवन अवश्य कराया जाये गोशाला के विषय में उनकी दिलचस्पी पैदा हो, ऐसा किया जाय।

१४. राजा, मराठाजा, जमींदार, तान्त्रिकेदार और धनी लोगों को चाहिए कि उचित उचित जगहों पर गोशालाएँ (Dairy Farms) व्यापारिक आधारों पर स्थापित करें।

## होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली की सर्वोत्कृष्टता---

(ले० श्री डा० कोमलचन्द जी सिंघानकर निजामी)

जब नागरिकों से लेकर प्राचीन जनता तक, शिक्षित समुदाय से लेकर वे पढ़े लिखे तक तथा राजा से लेकर

रड तक इस नवीन चिकित्सा प्रणाली के श्रेष्ठ गुणों से पूर्वजना परिचित हो जायें तो सम्भव नहीं कि इसका लघुचित्त आदर व स्तम्भार न हो। जिस प्रकार अग्नि प्रीति में से बिना आंच आये पाए हो उनके कारण भी खीटा जी आंच भी खीटा-शिरोमणि मानी जाती है तथा मन्थिय में भी मानी जाती रहेगी उसी प्रकार अगले सात अध्यायों में की गई विवेचनाएँ-परेशना में से गुजरने पर भी जब यह चिकित्सा-प्रणाली चमकमाने ही निकलेगी तब इसे सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा-प्रणाली मानने से कौन सहज्य पुरुष बिमुक्त हो सकेगा! सम्भव है तब भी को विरला पुरुष इसे कलः सु लगाने का साहस कर सके!!!

परन्तु का सोने का कसौटी पर चढ़ाने से क्या डर! उसका तो इस परलभ उपकार ही होता है। इसी प्रकार इस दिव्य चिकित्सा प्रणाली को तर्क की कैदीटी पर कसने से इसकी सर्वोत्कृष्टता ही सिद्ध होगी। अतिशय, माल जबतक शाण पर नहीं चढ़ी तबतक वह राजाओं के युद्ध में खाल पाने की अधिकारणी भी नहीं हो पाती।

होमियोपैथी के गुणों का-उमकी सूक्ष्म विशेषताओं का-मक शून तथा प्रदर्शन करना इसलिये भी परमावश्यक है कि जिस वस्तु के गुणों का प्रदर्शन नहीं हो पाता वह दिव्य-गुणयुक्त होने पर भी प्रायः तिरस्कार का उपहार ही पाली रहती है। इस विषय में पंडितप्रकाश कहने हैं:-

“अपराधीकृतशक्तिः शक्तः प्रियत्रतिरक्रियां लभते निवसन्नन्तर्द्विषि संव्ये वरिदुः न तु उखलितः ॥

जिस प्रकार लकड़ी के अन्तर सुलगती हुई आग को कोई भी लोच सकता है उसी प्रकार जिस वस्तु की शक्ति का प्रदर्शन नहीं हो पाता उसका तिरस्कार करना सब के लिये हँसी खेल हो जाये। परन्तु जिस समय वह ज्वल ज्वल लपटों के आल से व्योम भरदल में मंडलती बल्लो आग के समान, अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने में समर्थ हो जाती है तब तकिशाली से तकिशाली प्राणी भी उसका तिरस्कार करने का साहस नहीं कर सकता।

होमियोपैथी को स्वतन्त्ररूप से भारत की सेवा करने लूके लगभग एक शताब्दी ध्वनीत हो चुकी है परन्तु भारत सरकार ने अयोग्य होने नहीं अपनाया है। यद्यपि इसके अनेक कारण हो सकते हैं तथापि हमें तो उन में से मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि भारत सरकार को होमियोपैथी ने एक योग्य सेविका होने में अमितक सहाय्य नमा हुआ है। वह समझती है कि होमियोपैथी में उन गुणों का अभाव सा है जोकि किसी एक योग्य सेवक सेविका में पाये जाने परमावश्यक हैं। किसी सेवक कहलाने वाले योग्य व्यक्ति में किन किन गुणों का होना परमावश्यक है इस विषय का निम्न श्लोक में कितनी भली प्रकार दर्शाया गया है।

“अपभेन च कालेण च शुक्रः स्यात्किमुक्तेतकिसम् प्रका-विक्रम शालिनोऽपि हि भवेत्किं भक्ति हीनः तस्मात् प्रका-विक्रम-भक्त्यः समुद्रिताः येषांशुकाः भूयैः नैः शूयःशूयनोः कतवमितोः संपत्सु आपत्सु च ॥”  
हमके अनुसर किंसा संख्ये तथः योग्य सेवक

कहलाने के अधिकारी व्यक्ति में भक्ति, शक्ति तथा प्रज्ञा इन तीनों गुणों का पाया जाना अनिवार्य है। यदि होमियोपैथी भारत सरकार की एक सम्मानित सेविका बनना चाहती है तो उसके लिये भी आवश्यक है कि वह अपने में इन तीनों गुणों की विद्यमानता पूर्णतया सिद्ध करदे।

होमियोपैथी की शक्ति का प्रदर्शन तो केवल एक इसी बात से भली प्रकार हो सकता है कि बहुत से प्रसिद्ध २ एलोपैथी के विद्वान भी अपनी प्रेषणी का परिचय्य करके, इस शक्तिशाली चिकित्सा-प्रणाली की शरण में आ चुके हैं तथा आने चले जा रहे हैं, क्या, आये दिन, एलोपैथी द्वारा असाम्य कहकर छोड़े दिये गये रोगियों की भी सफलता-पूर्वक चिकित्सा कर दिखाने पर भी होमियोपैथी की अदकूट शक्ति का प्रदर्शन नहीं हो पाता? क्या एलोपैथी की भयावह तथा परम कष्टदायिनी केवल शल्य चिकित्सा द्वारा ही साध्य उद्योषित रोगियों को अपनी मीठी २ गालियाँ खिलाकर हँसता मंलना कर देने वाली चिकित्सा-प्रणाली शक्ति हीन हो सकती है?

अतः वह कहता है जो अपने स्वामी पर किसी प्रकार की आपत्ति आने ही न दे। क्या होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली केवल अपने "समी" के नियम के आचार पर ही प्राणियों का रोगों के आक्रमण से परित्राय करने में पूर्ण समर्थ नहीं है? क्या एलोपैथी वैसी शक्तिशाली चिकित्सा-प्रणाली को भी परित्राय (Prophylaxis) के कार्य के लिये जिस चिकित्सा-प्रणाली के नियम का आश्रय लेना पड़ा है वह किसी भी चिकित्सा-प्रणाली से कम शक्त तथा अक्षम हो सकती है? क्या एलोपैथी का Vaccination इत्यादि का परित्राय का कार्य अपने "विषयों" के सिद्धान्त के अनुसार सम्पन्न होता है?

होमियोपैथी की "विज्ञान शीलता" का प्रदर्शन भी इसी तथ्य से हो सकता है कि यह चिकित्सा-प्रणाली, चिकित्सा (Treatment) तथा परित्राय (Prophylaxis) का समस्त कार्य अपने एकमात्र "समी" के नियम के आधार पर ही निभाने में पूर्णतया समर्थ है। उसे आयुः विज्ञान विषयक किसी भी कार्य के लिये परमुखा-पैथी नहीं होना पड़ता। जो चिकित्सा-प्रणाली केवल अपने नियम के अनुसार ही आयुः विज्ञान विषयक समस्त कार्य सम्पन्न करेगा निम्ना सकता है उसकी "विज्ञान शीलता" तथा बुद्धिमत्ता में कौी संशय होना चाहिये? क्या विज्ञान की प्रस्तरीय दृष्टि आचार शील पर स्थित हुये बिना होमियोपैथी यह सब कुछ कर दिखाने में समर्थ हो सकती है?

इस प्रकार होमियोपैथी की शक्ति, भक्ति तथा विज्ञान शीलता का संश्लेष में विवर्शन करा देने पर धर्षण यह स्वीकार किया जा सकता है कि होमियोपैथी में भारत की सेविका बनने की योग्यता विद्यमान है तथापि इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि यह प्रणाली अन्य प्रणाली से-विशेषतया एलोपैथी से-उत्कृष्ट भी है।

होमियोपैथी की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि जहाँ बलकी विवेचनाओं का विस्तार से विवेचन किया जाय वहाँ अन्य चिकित्सा प्रणालियों के साथ २ उसकी तुलना भी की जाय।

यदि हमें मोर और मरल (हंस) में से कौनसा पक्षी उत्कृष्ट है इसका निर्णय करना हो तो हमारे लिये आवश्यक हो जाता है कि हम इन दोनों पक्षियों के न केवल प्राण गुणों का निरीक्षण करके छोड़ दे अपितु इनके आन्तरिक गुणों का भी पूर्णतया विवेचन करें। देविये: निरीक्षण मात्र से मोर किंवा मुन्दर तथा आकण्ड लगता है। वह, जब अपने इन्द्रियुत्पन्न से नू-विशुद्ध पंखों का पंखा खड़ा करके जानना हुआ मुरल को तान आलापता है, तब तो यही प्रतीत होता है कि समार भर में उसने उत्कृष्ट पक्षी हो ही नहीं सकता। अब जरा उसके आन्तरिक गुणों की थोर भी दृष्टिप त कांजिये। देविये कि उसका भोजन भजन क्या है; उसका यह मुन्दर शरीर कैसे २ विषैले पदार्थों के पाचन का परिणाम है! तभी तो तुलनीयता जो ने असन्तो की वर्णन करने हुये निम्न चोपाई लिखी है—

बोलाई वचन मरुत जिमि मारं

साहि महा प्रति, इत्यकडोर ॥

अब मोर के मुन्दर शरीर को देखकर उसकी इस कर्तुल का पता चल सकता है? इसी प्रकार, क्या हंस के संधे साने एक दम श्वेत शरीर का नेत्रकल उभरी नीर-नीर-विषैकता का परिचय प्राप्त हो सकता है? क्या उसका यही प्रच्छन्न गुण उसे सम्यो का उपमान नहीं बना देता? क्या हंस प्रसङ्ग में तुलनीयता की का निम्न दोहा सुनाया जा सकता है?

जड़ बेलन, गुण दोष मय, विश्व कीन्द् करनार।

सन्न हंस गुण गहाई पय, परिहरि वारि बिकार ॥

अब न केवल विभिन्न रूप रंग वाले अपितु समान वर्ण वाले पदार्थों की भी पूरी परब की जाती है तब उनके वाहनिक स्वरूप का पता चल ही जाता है। कारु, और कोयल यथापि दोनों कृष्ण वर्ण के होने में परन्तु कल-धरमि करने पर कोयल की पहचान होने में किनकी देर लगती है।

इसी प्रकार मिश्र २ चिकित्सा प्रणालियों की सर्व्वी, वास्तविक तथा पक्षपात रहित गुण दोष-विवेचना करने पर यह निर्णय किया जा सकता है कि किसका सर्व्वह तथा किनका परित्राय किया जाय।

भारत में आज अनेक चिकित्सा प्रणालियाँ प्रचलित हैं। परन्तु उन में से कौन सी प्रणाली सर्व्वोत्कृष्ट है इसकी परब करना क्या उतना भी आवश्यक नहीं है जितना कि आलुओं को ऊरीद्वे हुये उनका उलट पलट कर देखा! किन्तु आश्रय की बात है कि बाजार में किसी साधारण स्त्री वस्तु को ऊरीद्वे के लिये भी हम चार दूकानों पर उलकी देखनाल करते हैं परन्तु अब हमारे सामने चिकित्सा का मश उपलब्ध होता है—उस वस्तु के प्राप्त करने का अवसर आता है जिस पर हमारी या

[ मेष पृष्ठ ६ पर ]

# गुरुकुल

२७ पौष शुक्रवार १९६७

## धन की शक्ति

[ श्री भाषाचं प्रमथेश्वर जी ]

रातां के आगे

( ७ )

धन के सम्बन्ध में या धन के लिये जो बुराई होने की प्रवृत्त संभावना रहती है, उसी को ल.य में रख मनु महाराज ने आर्थिक पवित्रता पर बल दिया है। क्या सुख्य कहता है—

यो धर्थं शुचिः स शुचिः, न सुहृत् शुकुचिः शुचिः ॥

मिठी और पानी से जो सफाई, शुचिता, पवित्रता करता है, वह क्या पवित्र होता है? असल पवित्रता (शुचि) तो वह है जो आर्थिक तोर से पवित्र है। रुपये जैसे कं मानने में पवित्र होना चाहिये। ऐसी पवित्रता करना कुछ कठिन है, पर यही पवित्रता काम की है। वेद में एक सूक्त में ( अथर्व वेद १-११५ ) प्राणं लक्ष्मी और पुत्र्या लक्ष्मी का भेद बताया है। प्राणी लक्ष्मी से अपना पितृह जुड़ाने की, उसे फँक सकन की प्रायश्चा की है। उस अपवित्र धन, उन अपवित्र बच्चे, औ को त्याग पवित्र होने की इच्छा की है। सचमुच कुछ अप्यायार्जित पाप की कमाई होती है जिस से अपना संबन्ध करने से—चाहे ऊपर से हमारे शरीर किनन ही साफ सुधर रहे पर हस्त, रा प्राण, मन, आत्मिक शरीर तक मलिन हो जान है। बलिह इयां स्थूल शरीर में भी राग हो सकने है। हम इन बातों का समझने नहीं। यह जो कहा जाता है कि किन्हीं रूपों में बरकत होती है, बरकत वाला एक रुपया और बहुत से रूपों को बाँच ले आने वाला होता है—रुसमें सच्चाई है। दूसरा तरफ यह भी सच है, जैसा कि उसी वैदिक सूक्त में कहा है—कुछ धन (पाप लक्ष्मी) पैना होना है जो हमें सुख देता है, हमारा सब जीवन रख निष्ठा होता है शोच कर लेता है, जैसे बन्दना बेल जिस पेड़ पर छा जाती है वह पेड़ सूख जाता है। ऐसे धन के आने से हम आन्दर से आशा, विभवा प्रसन्न रहने लगते हैं। हमें जरा सी सुख रचि प्राप्त हो तो कुछ धनो को (रुपये जैसे या बस्तुओं का) देण कर ही घुंटा होगा, वे धर्म आपत्ति, कष्ट से भरे बूझे दिखाई देंगे। उन्हें हमें चाहे कोई किनना देन, चाहे) हम प्रहस नहीं कर सकेंगे। ऐसे धनो को अस्वीकार करने से या मीसूद हो तो त्याग कर देने से (फँक देने से) निश्चित रूप से आर्थिक पवित्रता और बन्धन मुक्तता प्राप्त होती है। ये मल कर होते हैं। असल में तो यह मल, देखा धन कापण ही नहीं होना चाहिये। यह कापण इसी लिये होता है क्योंकि यह

( सर्वहित के कार्य में उपयोग करते रहने ) द्वारा, यथा कला द्वारा, धन प्रवाहित नहीं होता रहता। जैसे न बहता पानी कहीं जड़ा रह कर सदाय वैदा करता है, जैसे रक्त प्रवाह कहीं रुक जाने से रोग पीड़ा, कुस्ती, पीप आदि को पैदा करता है, वैसे ही सार्य क्रम्याय के कारण कहीं रुकना होकर विरुन हुआ धन इन मल को पैदा करता है।

तो धन का उद्देश्य सुख है यह कहना प्रम जनक है। भोगपरायणता में तो सुख नहीं है, सुख यक्ष में है, त्याग पूर्वक भोगने में (त्यक्तो न भुंजीया)। भोग लिप्सा तो यक्ष यक्ष को भग करती है, इसके चलने में बाधा पहुँचानी है। तो धन यक्ष के लिये है, यक्ष यक्ष को प्रवर्तित रखने के लिये है। और वृत्तिक यक्ष का अन्तिम विषय परमेश्वर प्राप्त है। धन का हमें एकमात्र बहो उपयोग करना चाहिये जिस से हम किसी न किसी रूप में परमेश्वर के अधिक समीप हो सकें। यही उच्छेद यक्ष है। इसके लिये हम धन में भी परमेश्वर रचि रखना चाहिये। सब धन परमेश्वर का है यह आस्था प्राप्त करनी चाहिये।

कस्य सिन्धु धनम्? (यजुर्वेद ४०-१)

धन किस का है? किसी का नहीं। यह 'क' (सुख स्वरूप) का है। परमेश्वर का ही सब देवधर्म है। इस सत्य को यदि हम समझ जाय तो आर्थिक पवित्रता रखना बहुत आसान हो जाय। क्यों कि तब धन में आसक्ति हट जाय। धन मेरा नहीं है, भगवान का है और भगवान के काम के लिये है। इस सत्य भाव में शक्ति करने से ही, जैसा कि श्री अरविन्द कहने हैं, धन शक्ति को जो आसक्ति निष्ठ प्रायश्चित्तियों के कष्टों में हुरी तरह प्रायी हुई है फिर भगवान के लिये जीती, प्राप्त की जा सकती है। अतः यह भी स्पष्ट है संरक्षकता-बाध (दृष्टीग्राह्य विधेरी) जैसे महात्मा गांधी जी जैसे सत्य पुरुष कहने हैं, ही ठीक है, न कि समाजवादियों का विचार जबरदस्ती से धन जत करना या क्रमन तौर पर समता लाने का यत्न करना ठीक हलाज नहीं है। पर यदि धनी लोग भी धन को अपना न मानें, देश का या भगवान का मानें, अपना आपको केवल उस धन के संरक्षक, मासिक की आहा से केवल उसका उपयोग करने वाले माने तो धन में गान्धी कापण करने वाला, बुराई कापण करने वाला ज़हर न रहे। तब धन बस्तुतः सुख, शक्ति और समृद्धि को देने वाला हो। क्यों कि तब हम धन के गुलाम न रहे, मासिक हा जाय अजेदार बात है कि जब तक धन को हम अपना समझते हैं, उक्त में आसक्ति रखते हैं तब तक हम धन के गुलाम रहते हैं, पर जब उन्ने अपना नहीं समझते, परमेश्वर का समझते हैं, उसको असल। स्वरूप को जान जाते हैं तब हम उसने स्वामी हो जाते हैं। धन का पूरा स्वामी तो ब्राह्मण होता है क्यों कि उसने धन शक्ति के साथ स्वरूप और ज्ञान को पूरी तरह समझ लिया—साक्षात् कर लिया होता है।—

ब्राह्मण एव पति न वैश्यो न राक्षसः (अथर्व ५-१-६)

ब्राह्मण तो सचमुच भौतिक धन को अपने परमेश्वर का ही समझता है और किसी का नहीं। इस लिये उजके



परमेश्वर्य में यह भौतिक धन ही उसे आवश्यकतानुसार प्राप्त है ऐसा उसे विश्वास रहता है। और अपने लक्ष्य और काम के अन्तर्गत ऐश्वर्य के सम्बन्ध में वह भौतिक धन को मुख्य समझता है। कृत्रिम भी धन के ईश्वरवाय होने में ब्राह्मण प्रेक्षा अधीत विश्वास न रखता हो तो कम से कम धन को सारे देश की संपत्ति है ऐसी भ्रमा रहता है अतः देश सेवा करता हुआ अपने जब भावनाओं के ऐश्वर्य के सामने भौतिक धन की चिन्ता नहीं रखता। क्यों कि देश वह तो इसे देगा ही ऐसी पूरी भ्रमा और आत्मविश्वास उसे होता है। पर वैश्य धन की चिन्ता आवश्यक करता है। क्यों कि वह सब भावना का बल या उच्च ज्ञान का प्रकाश प्राप्त न होने से धन की अपरिहार्य आवश्यकता को मानता है। पर उसे भी धन को परमेश्वर का ही मानना चाहिये। धन द्वारा परार्थ पूर्णक हो स्वार्थ साधन करना चाहिये। यही वैश्य का यज्ञ है। मनुष्य ज्यों ज्यों अपनी इस साधारण वैश्य अवस्था से विकास करता हुआ धन के सामाजिक रूप और ईश्वरीय रूप को जानता जाता है त्यों त्यों वह कृत्रिम या ब्राह्मण होना जाता है। इस लिये वैश्य के इस भौतिक और नाशवान धन का उद्देश्य यह है कि वह क्रमशः उसे कृषिकाम्य-भित्ति आन्तरिक विद्य और अन्तर्भर धन को प्राप्त करता हुआ उसे उन्नत करने जाने का साधन बने और अन्त में उसे परम आत्मीय परम विद्य और परम अन्तर्भर धन को को अर्थात् परमेश्वर्य परमेश्वर को प्राप्त करे। इस लिये हम देखते हैं कि भौतिक धन से जो ऊँची शक्तियाँ हैं उन्हें भी विविध रूप में धन सम्पत्ति या ऐश्वर्य नाम से पुकारा जाता है। वेध में परमेश्वर को सर्वोत्तम धन कहा है। परमेश्वर के पाने के साधनमूल शम दम आदि को बद्ध सम्पत्ति कहा जाता है। गीता में अमय सत्य से मुक्ति आदि का वैधी सम्पत्त कहा है। बान और बिद्या को अन्तमोल धन कहा जाता है। शीघ्र तेज आदि को भौतिक ऐश्वर्य से उपमा दी जाती है। इष्टय में या सिर में अक्षयकोश (बन्धुगाला) है। इत्यादि प्रकार के बचन वेद से लेकर आज कल की सब धर्म ग्रन्थों में पाये जाते हैं। तो सबसुख वैश्य की शक्ति रूप वैश्य के पास जो भौतिक धन रहता है उसका उद्देश्य यही है कि वह उस के लिये यज्ञ द्वारा सर्वोच्च धन को प्राप्त करने का साधन बने। इसी में धनशक्ति की सार्यकता है। धनशक्ति के इस सामान्य विवेचन के बाद अब मैं वैश्य के गुणों और कर्मों का का वर्णन ठीक तरह कर सकूँगा।

## बापू के दर्शन

[ श्री केशव ]

मैं बापू (म. गान्धी जी) के पीछे २ बखर रहा था और सोच रहा था कि यह दिन कितना सौभाग्य शाली है मेरे जीवन में। मेरे जैसा स्वार्थी जीव आज संसार के अत्यन्त-पुण्य के साथ जा रहा है।

मैं ने चलते २ गान्धी जी की चर्चालियों के किन्हीं पर अपने पैर रखन भी कोशिश की। परन्तु म. ने चुपके से कहा "इस से क्या लाभ?" खट्टर न पहन कर, क्रियात्मक प्रोग्राम को पूरा न करने हुए केवल चर्चालियों के चिन्नों पर चलने से क्या होता है!

X X X

२ बवार २५ नवम्बर की बात है। हम प्रातः ही उठ कर चल पड़े। सेवाप्राम बर्धा से लगभग ४ मील के फासल पर हैं। मार्ग में आचार्य काका कालेलकर जी के दर्शन हुए। वे प्रातः अमच से वापिस लौट रहे थे। उनकी प्रतिभा-शाली सौम्य स्मृति देखकर ऐसा लगा मानो शकुन हुआ है कि आज का दिन अच्छा गुजरगा।

बच्चे भर नेत्र फुटार से चलने के बाद सेवाप्राम की ओपड़ियाँ दिखाई दीं। बर्धा को ऊँची-नांची, गंगी (बुद्धादि से रहल) जमान म ये आश्रम मानो रंगिस्तान में मोठा भरना है। छोटे २ कच्चे मकान, मिट्टी का दीवारों फूस ल खपरले के छपर और प्राम-वासियों का सादा जीवन बहा आकर्षक प्रतीत हुआ। हमने समझा मानो गांधी जी ने भारत के लोको प्रामों का एक प्रतिनिधि दुनिया के सामने पेश किया है।

X X X

ठीक समय पर बापू सैर के लिये अपनी कुटिया से निकले। दो-चार बच्चे, और ५-७ आश्रमवासी उनके साथ थे। हम भी उनके पीछे २ हो लिये।

कहते हैं कि समय के समय बापू से कोई भी बात कर सकता है। वो प्रत्येक का उत्तर बड़ी शक्ति से देते हैं। मार्ग में बच्चों से खेलने और हलते भी जाते हैं।

आज के दिन एक मद्रासी डाक्टर उनसे Blood Pressure (खून के दबाव) पर बात कीत कर रहे थे। मद्रासी चुआंचार अंग्रेज़ी बोल रहा था। बापू भी देर तक अंग्रेजी म जवाब देते रहे। लेकिन आखिर उनसे रहा न ग. न। बोल ही उठे "डाक्टर साहिब! आप हिन्दुस्तानी क्यों नहीं सीखते!" "मैं जानता तो हूँ पर गतिरानो हो जायगी इस लिये संकोच होता है।"

"गतिराना तो मैं खूब करता हूँ। पर मुझे निश्चय है कि मेरे आशय को जानता भली मति समझ लेंगे।" डाक्टर साहिब अंग्रेजी और कहने लगे कि "अच्छा! मैं आवश्यक प्रयत्न करूँगा।"

इसी समय एक बूढ़ा प्रामवासी उस मार्ग से गुज़रा और बड़ी भ्रमा से बापू के चरणों पर प्रणाम किया।

बापू भी मुसिकराये।

इतने में आश्रम से एक छोटी लड़की "आमा" भी दौड़ती हुई बापू के पास पहुंची। बापू ने अपनी मुट्ठी तान कर उसकी ओर मार्ग का इशारा करते हुए पूछा "क्यों, इतनी देर से आई?" उसने कुछ जवाब दिया जो स्पष्ट न था।

इस प्रकार हलते चलते बापू ने प्रातः-समय समाप्त किया।

X X X

बापू की कुटिया छोटी सी है। मिट्टी की दीवार और फूल की छत। बाहिर चरके का निशान है। चारों ओर शान्ति का राज्य।

बपू की कुटिया में मिना आना नहीं जाना चाहिये। विशेषतः आज कल ज. कि वो देश के अत्यावश्यक कार्य में व्यस्त है। उनका साग समय और सस्वी शक्ति बेश-कीमती है।

आज के दिन "वाहनीज्ञ मिशन" के Dr. Tai Chi Tiao आए हुए थे। उनमें २ घण्टे तक बात चीत हुई।

स्टेडमैन पत्रिका के सम्पादक खूर साहिब भी गांधी गांधी जी से लम्बो 'इंटरव्यू' करके हट गे।

फिर मद्रस के प्रोफेसर श्री राजगोपाल चारी जी भी आए थे। उनसे मद्रास—प्रान्त के सत्याग्रह का सारा प्रामाण्य बनाना था। शायद खूर साहिब के तुलह के इशारों पर भी विचार करना था।

मे बापू की कुटिया के सामने लड़ा २ सोवता रहा "इस छोटें से व्यक्ति में किनी भी महानता है। किस अनुल विश्वास पर वो सारे भारत की राजनीति यन्त्र रूपेण चला रहा है और किस अनुसुत आकर्षण के बश देश का विभूतियां बर्षों की आर विचो चला आती है।"

× × ×  
इतने में सामन ल चौधरी पृथ्वीसिंह जी आन

द्वारा दिये। चौधरी लामो, बलिष्ठ युवा, बोर आकृत। परन्तु यहाँ तो मिह मा अपना हिंसा खूब जाले है। खूब-खूब भेड़ और भेड़िया एक घाट पक्री, पाने है। संक्षाम क पृथ्वीसिंह को देख कर कौन कहेशा कि "यह महान् कानि कारी था।" हा! कान्तिकाही तो अब भी है। परन्तु अहिंसा और सेवा की कान्ति अब उसका ध्येय है। मारने से मरना अब उन्न, अघ्नर, प्रतीत होगा है। कितना मौलिक परिवर्तन है।

× × ×  
आगे बढ़े तो श्री सुन्दरलाल जी के दर्शन हुए। इन्होंने ही प्रसिद्ध पुस्तक "भारत में अंग्र जी राज" लिख है। बापू इनसे सलाह मशविरा कर रहे है कि किस किस प्रकार देश में बढ़ते हुए साम्राज्यिक विष को रोक जा सकता है।

सबसे महान् बुद्धको का प्रवृत्ति बहु-मुख होती है। ओर बापू ने कार्य का क्षेत्र तो प्रयत्न विशाल है। देश के अराज्य में लेकर ताड़ा के गुड और पत्तों के साग तक उनका विस्तार है। पाठक जानकर आश्चर्य करेंगे कि बापू ने साँपों के विषय में भी महान् अध्ययन व अनुभव किया है।

× × ×  
दुपहरिया इलने को आ रही थी। हमने भी प्रथम किया और बर्षों की ओर चले। मार्ग में सोचने लगे कि "जीने तो सभी हैं। पर उसी के जीने से लाभ है जो दूसरों के दुःख-दारिद्र्य को दूर कर उन्हें किसी क्रम में सुखी बना सके।" यही वृत्ति-नारायण की सखी पूजा है

[दोपहर ३ का शेष]

हमारे प्रियतम परिवर्तनों की जीवन मरुत की तुला संतुलित होती है—तब हम सिवाय उस बड़ी वृकान के, जो रङ्ग बिरङ्गी तथा आकर्षक पैकटों वाली आभूषणियों से लघालक्ष भरी होती है और किसी छोटी मोटी वृकान की ओर नज़र उठाकर देखने का कद उठाना भी सहन नहीं कर सकते !!! जिनके चित्त को मोर चुग लेने हैं वे भला हंस की ओर नज़र घुमा भी कैसे सकते हैं ?

क्या प्राचीनता अथवा अर्वाचीनता पदार्थों की उत्तमता तथा उ-कृष्टत की निर्धारक हो सकती है ? क्योंकि पलायनिक चिकित्सा प्रणाली सदियों से चली आ रही है अतः यह सर्वोत्कृष्ट है इस युक्ति को विश्वेक शील पुरुष कैसे स्वीकार कर सकते हैं ? क्या वे नहीं जानते कि:—

पुराण भिन्नेष न सानु सर्वं, न चापि नूनं नवमिः यवयम् सप्तमः परीक्ष्यात्परतदु भङ्गने, मृदुः पर प्रत्ययेय बुद्धिः।

इस श्लोक के अनुसार, क्या प्रत्येक विषय शील पुरुष का यह परम कर्तव्य नहीं हो जाना कि वह प्राचीन व अर्वाचीन सभी चिकित्सा प्रणालियों की परीक्षा करने में प्रयत्न शील हो तथा परन्व करने के पश्चात् सर्वोत्कृष्ट मानी गयी चिकित्सा प्रणाली को ही अपनाते में अपनाना परम भेय समझे।

मनु महाराज कहते हैं:—

"न, शिष्टं भूमं कारवम्"

इसके अनुसार अर्थात् हम प्रत्येक कल्पन वल चारी पुरुष को वास्तविक सम्पत्ती मानने के लिये तैयार नहीं तथा बिना अंगवले कल्पे सँभने पुरुष को भी उसके गुणों के कर उ लब्धा सम्पत्ती मानने का सम्मान प्रदान करने के लिये तैयार हैं तो हमें प्रत्येक चिकित्सा प्रणाली को भी उसके गुणों के अनुसार क्यो न आदर देना चाहिये ?

इस लेखमाला के अगले सात अध्यायों में की गयी विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों की तुलनात्मक समीक्षा के अध्ययन से पाठकों को येन-विश्वास हुवे बिना नहीं रह सकता कि भागत में प्रचलित सब चिकित्सा प्रणालियों में होमियोपैथी ही सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा प्रणाली है। नमी तो-भारत सरकार, द्वारा अमी तक सम्मानित न होने पर भी-यह चिकित्सा प्रणाली अन्य चिकित्सा प्रणालियों को स्थानान्तरित करती चली जा रही है तथा करती चली जायगी।

जब, होमियोपैथी के चिकित्सा नियम क अनुसार, यह बात निर्दिष्टा है कि:—

गुणवत्तर पत्रेण, क्षाद्यन्ने गुणिनां गुणाः

गमो दीपयिष्ठा काशिता, न भामाद्युदिने सति।

तो-होमियोपैथी को न केवल उत्तमता का अपितु सर-कार का भी अधिकार सम्मान प्राप्त होना अवश्य भावी ही है। जिस प्रकार सुवर्ण के उद्भूत हो जाने पर ही प शिवाओं को उपोनि स्वयं मन्व हो जाता करता है इसी प्रकार भारत सरकार, द्वारा होमियोपैथी के अर्वाचने जाने पर गुण हीन अथवा लक्ष-गुण युक्त चिकित्सा

प्रवासियों के प्रत्यक्ष का-अन्द यह जाना भी लक्ष्य सिद्ध है।

आज के लगभग १०० वर्ष पूर्व होवट वा पतीस स्रोतों में धरे तेल-बसी के लुले दीपक ही हमारे घरों में अन्धकार दूर करने का कार्य किया करते थे। वे दीपक न केवल आंधी पानी में हमारी सेवा करने से निमुक्त हो जाया करते थे अपितु कभी २ हमारे घरों में आग लगाने का हमारा सर्वज्ञ तक अपहरण कर लिया करते थे।

समय आया अब कि मही के तेल वाले जालटनों से गुणवत्तर होने के कारण उन दीपकों को स्थानान्तरित कर दिया।

आज हमें बिजली की बत्तियां प्राप्त हो रही हैं, जिन के कारण तेल वाली जालटने का कष्ट देने वाली, विमलियों की सफाई करने में समय नष्ट करने वाली, गुण की दुर्गन्ध से हमारा मस्तिष्क भ्रष्ट करने वाली, बैठे २ भंडभङ्गाने वाली तथा घण्टेघण्टे तक श्रम देने में भी असमर्थ, अनेक दोष पूर्ण जालटनों का भी बहिष्कार हो रहा है। आज बिजली की बत्तियों को कौन नहीं अपना रहा है? क्या प्राचीन परंपरा पर अर मिटने वाले वैदिक षट्पंक्तों ने भी इन पक्के कलंक विहीन, शशि समान—गुण उन्मोक्त—प्रदायिनी, परमात्मा कारिणी तथा मणि-दीपा-नुकारिणी बिजली की बत्तियों को नहीं अपना लिया है? क्या वे गुणों के उपलब्ध नहीं हैं? क्या उन्हें महाकवि भवभूति का यह पद्य—

“शिशुत्वं श्लेष्णं वा मधुतु मनु सव्यासि जगन्म  
गुणाः पूजास्थानं गुणिनि न च लिङ्गं नच वषः”  
याद नहीं?

क्या ऐसे गुणानुरागी, विद्याव्यसनी, ईश-वंशावतलस चिद्धजन, अपने गुणालोक के कारण अन्ध-सर्व जिकिसा प्रवासियों को निरन्तर स्थानान्तरित करने वाली, मुख-लाभ्य, सर्वोपयोगी तथा सर्वोत्कृष्ट विकिसा प्रवास का बरण करने में कभी चूक सकने है? क्या ऐसे सज्जन दुर्गों का समाव परीक्षा करने के पश्चात् उच्चम पायी गयी वस्तु को ग्रहण करने का नहीं होता?

समाप्ता हनीमैन मो वनसे इससे अधिक आशा नहीं रखते हैं। देखिये वे क्या लिखते हैं:—

“Mind is an inductive system of Medicine, make the experiment for Yourself as I have indicated, and as You do not Come to the same conclusions as myself, Through Homoeopathy away and call-me a liar.”

“मेरी विकिसा प्रवासी परोक्ष-निरीक्षणार्थक है, अतः उसकी सच्चाई की जांच करने के लिये वैधानिकों को आवश्यक है कि वे केई निर्देशानुसार उसकी स्वयं परीक्षा करें; अर्थात् तत्पश्चात् भी यदि वे उन्हीं परिणामों पर न पहुँचें किन्तु पर कि मैं पहुँचा हूँ तो उन्हें पूरा अधिकार है कि वे होमियोपैथी को रही की दोकरी में फेंक दें तथा शीक हो मुझे अधिक-भादी करें।”

क्या हनीमैन की व्याप्य घोषणा ही उसकी विकिसा प्रवासी में विश्वास उत्पन्न कर ने के लिये पर्याप्त नहीं है?

यह, माइल की विधि-साम्य से सत्यापित, इतिहास दलिन जनता का भागीरथी के प्रवाह के समान परम कल्याण करने में पूर्ण समर्थ इस विकिसा प्रवासी का अर्थ भी भारत में समुचित चादर न होगा तथा—

“भले, भले कह काँड़िये, कोरे प्रह जयदान”  
ही होता रहेगा?

## गीत

उपहार नहीं मांगा जाता—

सुव ही—कृता करता उपवन,

सुव ही—आया करता सावन,

हर रोज स्वयं करने आती—

ऊषा—सधार्थे नीराजन—

यह रंग विरंगा विधना से—

संसार नहीं मांगा जाता।

सुव ही—समती है अस्फुलता,

सुव ही—अम्बर का उर जलता,

अंधिवालो कला रजनी में—

सुव ही—चन में छिप गाथा चलता,

इस जीवन में परवशता से—

उर-भार नहीं मांगा जाता।—

अर्ध-जाने में लुट जाना मन,

नक जाते हैं ये कही नयन,

यों ही बस तट से टकराकर—

सरिता बदला करती जीवन,

ओ भोले मानव! दुनियाँ में—

यह प्यार नहीं मांगा जाता।—

—श्री सूर्यकुमार

## गुरुकुल-समाचार

इस समाह समा के प्रधान श्री विश्वम्भर नाथ जी यहाँ प्यारे आप ने प्रश्नकारियों को तान उपदेश दिये जो कि सामयिक एवं शिक्षाप्रद थे।

गुरुकुल का हीकी दल बलरामपुर राज्य की ओर से होने वाले सान्मुख्य में खेलने के लिये बलरामपुर गया हुआ है। प्रथम तीन मैचों में उसने अद्भुत सफलता प्राप्त की है, आशा है कि हमारा ये दल पूर्ण विजय करके ही लौटेगा।

श्री पं० चन्द्रकान्त जी वेदवाचस्पति का स्वास्थ्य अच्छा है। अब उनकी बुरा प्रतिधि सुधर ली जा रही है। इस समाह कोई प्रश्नकारी इग्न नहीं हुआ औपधास्य बिलकुल खाली रहा। सब प्रश्नकारी अपनी वाचिक परीक्षा की तयारी में लग गये हैं।

## जाड़ों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी धातु क्षायाता पुरानी खांसा, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शीक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव (१०) आध सेर २०) १ सेर ४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूर आदि बहुमूल्य औषधियाँ से तैयार की गई ये गोल्यां सब प्रकार की कमजोरियों में अक्षर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करता है।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजांत और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों को अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करता है।

मूल्य ॥) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ॥) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियां बेच रहे हैं इसलिए दवा खरोदते समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

ग्रांथ	{	देहली—बांकी चौक।
		मेरठ—सिपर रोड।
पत्रिका	{	लखनऊ—एजेंसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी भीराम रोड।
		लाहौर— " " " हस्पताल रोड।
		पटना— " " " मछुआटोली बांकीपुर।
		अजमेर— " " " वैद्यराज सरदारोवाला जी बक्का चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी जे. सहानपुर**

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुद्रण-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहस्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार ५ माघ १९६७; १७ जनवरी १९५१

[ संख्या ३६ ]

## सेवा ग्राम में

[ श्री केवल ]

“आप कहकर कब से पहनते हैं ?” एक आश्रमवासी ने पूछा। “सन् १९२० के करीब शुरु किया था। बरसों केवल कहकर पहनता रहा। अब थोड़ा बहुत बेसी मिलों का कपड़ा भी इस्तेमाल करता हूँ।” हमने उत्तर दिया। “क्या शुद्ध कहकर का वृत नहीं ले सकते हैं ?” “बाहिये तो। परन्तु.....”

हममें सामान्यतः एक बखलवृत्ति है। हवा के रुक के साथ चलते हैं। पानी के वेग के साथ बहते हैं। हमारा ध्येय कुछ नहीं। जब मीठा, तब तीखा। बुद्धि-पूर्वक विचारते नहीं। निर-वृत्ति से निश्चय नहीं करने। यों ही चलें जाते हैं, जिधर मुंह उठा। परिणाम क्या होगा, इसे तो भगवान् ही जानें।

× × ×

हमारे साथ एक आश्रम-वासी था। उसे नीरा—कजूर की ताड़ी ताड़ी—पीने का शौक था। परन्तु दुर्भाग्य से देर हो गई। बापू के साथ सैर करने में समय व्यतीत हो गया। नीरा की जगह गुड़ मिला। मीठा था पर रुचिकर नहीं। देहली के गुड़ की तरह नहीं। शायद नई चीज़ हाने से नहीं भाया। हां; गुड़ विभाग में एक विद्यार्थी मिला—जम्बू का रहने वाला। बड़ा जोशीला, बड़ा उन्साही। झर्री लहका सा ही लगता था। उसके कोमल मुख पर उल्टे की धार न लगी थी। गान्धी जी के प्राम-सेवा कार्य की शक्ति से प्रभावित होकर यहां आया था। मिला २ विभागों में बाड़ी २ से काम लीख रहा था। उससे बरतों बात खीत हुई। वह पंजाब के एक कालिज का प्रौद्युत था। उसके व्यवहार में शास्त्रोन्मत्ता थी। वह शीघ्र ही वापिस खोद कर एक प्राम में आसन अमाएगा और प्रामोयोग द्वारा देश सेवा के कार्य में अग्रसर होगा। हम उसकी हृदय से सफलता चाहते हैं। ए २ कर इतना सम्यक् होता है कि कालिज का एक

शौकीन—मिजाज नौजवान कितने दिनों तक विभूति रमाए संघतावस्था में रहेगा ?

× × ×

दो बजे। आश्रम वासी अपना २ चरबा लेकर हाल की ओर बौड़े। यह कातने का समय था। हमें भी कीतूहल वहां खंच ले गया। कई बुद्धे, कई जवान, ली-पुख लगे हुए ये कच्चे तार निकालने में। उनके चहरो पर तपस्या की कृशता थी। वह साधना कर रहे थे। भारत-माता की नमना को वो इस बाटीक मृत से हांपना चाहते थे।

× × ×

महामा गान्धी एक महान् पथ कर रहे हैं। उसका उद्देश्य दानवों का दमन और देवताओं की प्रसन्नता है। उभों २ पथ की अग्नि प्रचरक हो रही है। त्यों २ दानवों का तादृश्य भी बढ़ता जाता है। कई भक्त निराश होकर दुःख अनुभव करने लगे हैं। परन्तु गान्धी जी के लिये सुख-दुःख दोनों समान हैं। आशा निगशा में कोई भेद नहीं। वो तो फल की आकांक्षा छोड़कर ही अपने कार्य में प्रवृत्त हुए हैं। कर्म में ही उनका अधिकार है। फल तो भगवदाधीन है।

× × ×

सेवाग्राम की सद्गी बड़ी पसन्द आई। छोटी २ पास-फूल की कुट्टण, सरल क्रियात्मक जीवन, सादा खाना, कहकर के मोटे दो-चार कपड़े और देश-सेवा का आग्रह प्रत।

मैं वहां से चला तो सोचने लगा “कल यदि बापू केव् हो जाय अथवा उपवास आरम्भ कर दें ?”

बापू सेवाग्राम की आरता हैं। उनके वहां से जाने पर ऐसा लगता है मानों अवेतन शरीर।

सेवाग्राम भारत के लाखों प्र.मों का प्रतिनिधि है। हमें सर्वत्र देश-सेवा का मन्त्र बनाना है और उसमें बापू की मूर्ति प्रति प्रति करनी है।

× × ×

## चिकित्सा-प्रणालियों की सर्वोत्कृष्टता- निर्णायक कसौटी

( ले० श्री डा० भोमराज जी विद्यावर्धन बिजौर )

२.

अस्वस्थ मनुष्य को स्वास्थ्य लाभ करने के लिये जो उपाय, उपचार वा क्रिया की जाती है वह "चिकित्सा" कहाती है। तथा जो मनुष्य इन कार्य को करना है वह "चिकित्सक" कहलाता है।

चिकित्सक का एकमात्र महान् उद्देश्य इस के अर्थात् कि शरीर को स्वस्थ हो सकना है कि यह अस्वस्थ मनुष्य को ऐसी सहायता प्रदान करे जिसके द्वारा वह शीघ्र ही योगात्मक होकर स्वस्थ हो जाये। मरणात्पश्चात् ही मनुष्य को निज शरीर में प्रगट करने के :-

"The physicians high and only mission is to restore the sick to health, to cure, as it is termed."

आयुर्वेद कहता है:-

"अस्वस्थो येन विधिना स्वस्थो भवति मानवः

नमेव कारयेद् वैद्यः, यन् स्वास्थ्यं मयेऽस्मिन् ॥

अर्थात् - वैद्य को उसी प्रक्रिया का प्रयोग करना आवश्यक है जिसके द्वारा अस्वस्थ मनुष्य स्वस्थ हो जाय; क्योंकि अस्वस्थ पुरुष को स्वास्थ्य लाभ करना ही सदा अर्थात् है।

स्वस्थ कौन होना है इस प्रश्न का उत्तर अस्वस्थ शब्द ही दे देता है। "स्वस्तिम्-आमि-धितः इति स्वस्थः" जो मनुष्य अपने में-आम शासन में-स्थिर होता है वही स्वस्थ कहाता है। इसके प्रतिकूल, जो मनुष्य आम-शासन में स्थित नहीं होता-जिस पर किसी अपर शक्ति का शासन वा अधिकार स्थापित हो जाता है-वह अस्वस्थ कहाता है।

जो मनुष्य स्वस्थ होता है उसकी क्या पहचान होती है, इस प्रश्न के उत्तर में आयुर्वेद कहता है:-

"प्रसन्नान्द्रियमना स्वस्थ इत्यभिधीयते"

जिस मनुष्य का आत्मा, मन तथा इन्द्रियां सब प्रसन्न (At ease) हों उसे ही स्वस्थ समझना चाहिये तथा जिसकी आत्मा मन तथा इन्द्रियां प्रसन्नता की विपर्ययावस्था में, अर्थात् At dis-ease हों उसे अस्वस्थ समझ लेना चाहिये।

आयुर्वेद के स्वस्थ शब्द की इस परिभाषा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अस्वस्थता के लिये शरीर में अङ्ग-प्रयुक्तों की रचना में परिवर्तन (Tissue-Change) आजाना उनका आवश्यक नहीं है जिनका कि आत्मा मन तथा इन्द्रियों की प्रसन्नतावस्था में परिवर्तन आजाना। इसी कारण यह मनुष्य भी जिसका कि केवल जी मिचला रहा होता है अस्वस्थ कहाता है तथा योगियों की अंगी में परिष्कृत हो जाता है।

महात्मा हनोमैन की Dis-ease (रोग) को निज परिभाषा भी ठीक इसी भाव का समर्थन करत, है:-

"Dis-ease is nothing more than alteration in the state of health of the healthy individual which is expressed by the altered normal sensations and functions of the body."

अर्थात्-रोग, स्वस्थ मनुष्य की स्वाभाविकी परि-वर्तितावस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता; जो परि-वर्तितावस्था शरीर के अन्न धारण लक्षणों-परिवर्तित हुये हुये साधारण संज्ञानों (Sensations) तथा कार्य्यों (functions)-द्वारा ही लक्षित हो जाती है।

रोग की इस परिभाषा से अनुसरण इस बात में किने स्पष्ट हो सकता है कि जो प्रक्रिया-रोगों की इन अन्ना-धारण संज्ञानों तथा कार्य्यों द्वारा लक्षित होती हुई अस्वस्थ के स्थान में साधारण संज्ञानों तथा कार्य्यों वाली अस्वस्थता का प्राणवर्धन करा सकता है-वही सच्ची चिकित्सा कहलाने की अधिकारिणी हो सकती है।

चिकित्सा का यद् कार्य्य क्वि विविध प्रकार के साधनों द्वारा सम्पन्न होना चला आया है अतः चिकित्सा की अनेक प्रणालियां बन गई हैं, जिन्हें निम्न दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है:-

(१) प्रथम-श्रीषधियों की सहायता द्वारा चिकित्सा करने वाली।

(२) द्वितीय-श्रीषधियों के बिना, साधनान्तर से चिकित्सा करने वाली।

प्रथम विभाग में-यूनानी, मिस्रानी, वैद्यक, पाल्-थैयिक तथा होम्योपैथिक चिकित्सा प्रणालियों के न म मुख्यतय परिगणित किये जा सकते हैं। द्वितीय विभाग में-जल चिकित्सा तथा प्राकृतिक चिकित्सा का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। शून्य चिकित्सा भी इसी विभाग में आ जाती है।

बहुत से चिकित्सा विद्वत् समार में प्रचलित सब चिकित्सा-प्रणालियों को (१) प्राकृतिक तथा (२) अप्राकृतिक इन दो विभागों में विभक्त करके प्राकृतिक चिकित्साओं को ही सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। परन्तु हमारी तुल्य सभ्यता में चिकित्सा प्रणालियों का इस प्रकार का विभाजन सम्भव ही नहीं हो सकता।

यदि जल-कलाधिक को प्राकृतिक (प्रकृत-जन्म) माना जाय तो श्रीषधियों को अप्राकृतिक मानने का क्या कारण हो सकता है! क्या अशुभियां भी-जिनकी वेदों में भी बड़ी प्रशंसा मिली है तथा उपादेय बताया गया है-प्रकृति-जन्म नहीं हैं? यदि मनुष्यों द्वारा कृपाकरत कर दिये जाने के कारण श्रीषधियां अप्राकृतिक हो जाती हैं तो क्या जल को प्राण-रूप में परिवर्तित करने उससे चिकित्सा करना भी अप्राकृतिक नहीं हो जाना? क्या बली कर्म द्वारा आत्मा में बल बढ़ाया प्रकृति-देवों ही स्वस्थ है? यदि नहीं-तो इस प्रकार को जल-चिकित्सा भी प्राकृतिक नहीं हो सकती।

वास्तविक प्राकृतिक चिकित्सा तो यही हो सकती है जिनमें प्राकृतिक पदार्थों का रूपान्तरण किये बिना उनके प्राकृतिक-रूप में ही अस्वस्थ मनुष्यों को स्वास्थ्य लाभ

करने में सहायता ही जाय। ऐसी अवस्था में—क्या सर्व प्रकार के रोगियों को सहायता प्रदान करने के लिये इस प्रकार के प्राकृतिक पदार्थ प्रत्येक समय सुगमता से उपलब्ध हो सकते हैं? यदि नहीं, तो इस प्रकार की प्राकृतिक चिकित्सा का अस्तित्व किस प्रकार स्थिर रह सकता है।

यद्यपि:—

‘चित्ति जल पावक गगन समीरः’

पञ्च रचित यह अथम शरीर।’

के अनुसार हमारा यह शरीर इन पांच प्राकृतिक तत्वों से ही बनता है तथापि इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि जब यह जीवित्वावस्था में होता है तब इसमें किसी सूक्ष्म चेतन शक्ति का संचार नहीं होता। जब यह शरीर सूक्ष्म प्राणशक्ति से अनुप्राणित होता है तब इस पर केवल सूर्यरूप में वर्तमान इन पांच तत्वों का क्या प्रभाव हो सकता है? अतः इनको भी जब तक हम सूक्ष्म शक्ति के रूप में परिचित नहीं कर लेते तब तक इनका भी हमारे शरीर पर क्या प्रभाव हो सकता है। इस प्रकार प्राकृतिक पदार्थों का भी रूपान्तर करना हमारे लिये आवश्यक हो जाता है।

जब चिकित्सा के कार्य के लिये प्राकृतिक पदार्थों का रूपान्तर किया जा सकता है तब औषधियों का परम लाभप्रद रूपान्तर क्यों नहीं किया जा सकता। तब, प्राकृतिक तथा अत्याकृतिक विमंग को क्या आवश्यकता रह जाती है।

इस म्याथ्य चित्त के पश्चात् भी यदि यही माना जाय कि प्राकृतिक पदार्थों के प्राकृतिक स्वरूप द्वारा ही चिकित्सा का कार्य सम्पादन करना चाहिये, नभ ता, नवींशताब्द वास्तियों के लिये प्राकृतिकता में प्राप्त अपने कुश्रों का ब्यारा जल ही न केवल पीने अपितु सर्व प्रकार के रोगों से मुक्त होने के लिये भी प्रयोग में लाना आवश्यक हो जाता है।

ऐसी अवस्था में:—

‘नातम्य कृयां अभिति ब्रवाणाः’

चारं जलं कापुरुपाः पिबन्ते॥’

वाली बान चरितार्थ हो जाती है तथा प्रतिदिन ‘धियो यो नः प्रबोदयात्’ जपने का भी आवश्यकता नहीं रह जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा का एक अर्थ यह भी समझा जाता है कि किसी प्रकार के रोगी को भी किसी प्रकार की बाधा सहायता न देकर उन्हें रोगमुक्त होने के लिये प्रकृति की कृपा पर ही छोड़ देना चाहिये। जिस प्रकार प्रकृति में अन्धकार का नाश प्राकृतिक पदार्थों द्वारा स्वयं हो जाता है उसी प्रकार रोगी प्राकृतिक शक्तियों द्वारा रोगमुक्त हो जाता है।

यदि हमारी प्राणशक्ति रोगोपादक पदार्थों की दलबन्धन शक्ति से सम्बन्ध स्वयं ही मुक्त होने में समर्थ होती अथवा प्राकृतिक पदार्थ ही उसे उससे मुक्त कर देने में समर्थ होने तब तो चिकित्सा प्रणालियों का स्वयं प्रबंध ही समाप्त हो जाना है।

‘अर्कं चेन्मधु विन्देत् किमर्थं पतंतं त्रजेत्॥’

जब आक के पेड़ पर ही मधु (शब्द) की उपलब्धि हो सकती हो तो कौन मधु पुरुष पतंत पर पहुँचने का प्रयास करना पसन्द करेगा!

हमारी प्राणशक्ति रोग शक्तियों से स्वयं मुक्त हो सकती है या नहीं—इस विषय में महात्मा हर्गमैन की निम्न सम्मति है:—

“Unassisted, the vital force is no match to these hostile powers, it hardly opposes a force equal to the hostile operation, and this, indeed, with many signs of its own suffering.”

अर्थात्—बलवन्तर, शून्यभूत रोगोपादक शक्तियों से साम्युत्थ्य करती हुयी हमारी प्राणशक्ति-बिना किसी बाधा शक्ति की सहायता के—उन्हे जीतने में कदापि समर्थ नहीं हो सकती; क्यों कि, यदि ऐसा सम्भव होता तो वह उनसे आक्रान्त तथा अभिभूत हो क्यों हो पाता। बिना बाधा शक्ति की सहायता के जब वह साधारण रोग शक्तियों के साथ साम्युत्थ्य करने में बहुत कुछ हानि उठा जाती है तब महाबल-शक्ती रोग राक्षसों का भला वह क्या मुकाबला कर सकती है!

हर्गमैन का यह कथन निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिये कि एक मनुष्य म्युमोनिया से आक्रान्त होकर, बाधा शक्ति की सहायता न पाने के कारण उक्त रोग की क्रियावाश्रय में पहुँच गया है। क्या उसकी जीवन रक्षा, अथवा बिना बाधा सहायता के ही सकती है? यदि दैवात् वह बच भी जाता है तो क्या वह फिर म्युमोनिया का बारम्बार शिकार नहीं होने लगता, तथा अन्ध में, लय-रोग स प्रसन्न हुये बिना बच सकता है। क्या, तब भी, कठगामयी प्रकृति-मत्ता उसका मृत्युपाश से उद्धार कर देती है! क्या शक्ति शाली मुसाकिनी से आक्रान्त एबीसीनिया की-ट्टिशिका सहक सहायता न पाने पर-वैध द्वारा रक्षा हो सकती है!

यद्यपि, ममता मयो मत्ता के समान प्रकृति-देवी स्वयं-प्रकार के भयों से हमारी सदा रक्षा करती ही रहती है, परन्तु जब हम उसके नियमों का बारम्बार उल्लंघन करने उसे अपसन्न कर देते हैं, तथा साथ-र अथनी प्राणशक्ति को भी निर्मूल बना लेते हैं, तब भी क्या वह रोग राक्षसों से हमारी रक्षा करने के लिये समुत्त रह सकती है! क्या तब भी वह हमें क्षमा प्रदान कर सकता है!

“क्रियासम महारिणा र्थापन्तं क्षेपत कः॥”

क्या, बार-र अपराध करने वाले को मो कोई क्षमा कर सकता है! क्या ऐसे क्षम्य में वह प्रेममयी माता एक कठोर-हृदया विमिता का रूप नहीं धारण कर लेती! जिस प्रकार केकया ने दामवन्तु जी का अयोध्या से निकाल कर ही दम लिया था; उसी प्रकार क्या वह हम हमारी पुरी (शरीर) में से निकालने पर नहीं तुल्य जाली! ऐसे संकट के समय, किसी बाध शक्ति की सहायता के बिना, क्या हमारा उद्धार होना सम्भव है! यह सहायता, सिवाय अमृतमय औषधियों के और किस रूप में प्राप्त [ मेष १० ६ पर

# गुरुकुल

५ माघ शुक्रवार १९६७

## आयुर्वेदालङ्कार वैद्य हैं या डाक्टर

(ले.—श्री आचार्य अमरदेव जी)

पञ्जाब के एक कार्य कुशल छातक, "आयुर्वेदालङ्कार" लिखते हैं:—

आयुर्वेद के छातकों के सामने एक समस्या होती है—वे अपने को डाक्टर कहें या वैद्य। कुछ स्नातक डाक्टरों की डाठ से रहना पसन्द करते हैं और अपने बोर्ड पर भी डाक्टर लिखते हैं। आयुर्वेदालङ्कार विभी को उन्हीं अपने अनुकूल बनाना पड़ता है। O.M. Sc. (Kang.) A. V. A. (Kang.) आदि लिखना आम हो गया है। इस सम्बन्ध में आपके विचार जानना चाहता हूँ। मुझे वैयक्तिक रूप से जवाब न देकर गुरुकुल पत्र में इन सम्बन्ध में लिख सकें तो और भी अच्छा है जिससे अन्य आयुर्वेद के स्नातकों को भी आपके विचार मालूम हो जायँ।

इसमें तो मेरे क्याल में किसी को शक नहीं होगा कि गुरुकुल का आयुर्वेद महाविद्यालय आयुर्वेद पद्धतिका है जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, अतः 'वैद्य' और 'डाक्टर' ये दो शब्द जब मिश्र अर्थों में बोले जाते हैं—और ये अवश्य मिश्र अर्थों के द्योतक होते भी हैं—तो हमारे इस महाविद्यालय के स्नातक वैद्य ही कहलाने चाहियें, डाक्टर नहीं। इस लिए इस विषय में मेरी सम्मति सफ है। किन्तु मेरी यह सम्मति जान लेना कठिन नहीं है, पर इस सम्मति पर अमल करना बहुतों के लिए अवश्य कठिन है। गुरुकुल की, गुरुकुल के अधिकारी की सम्मति तो इच्छे अतिरिक्त और हो ही क्या सकती है। पर फिर भी जब हम देखते हैं, जैसे कि हम भार ने कहा है, कि बहुत से 'स्नातक डाक्टरों की डाठ से रहना पसन्द करते हैं और अपने बोर्ड पर भी डाक्टर लिखते हैं' तो इसका कारण अवश्य जानना चाहिये, और जान कर उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी बात पर कुछ ध्यान र्त्तव्य है कि मैं यह लेख लिख रहा हूँ। नहीं तो, इस विषयक सम्मति तो इतनी साफ है कि न तो इस पर कुछ लिखने की जरूरत है और न पूछने की हो।

केवल शब्द 'वैद्य' या 'डाक्टर' को मैं कोई महत्त्व नहीं देता, पर ये शब्द जिन विभिन्न विकिरण पद्धति के द्योतक हैं, और अलग-अलग इनके पीछे जो भावना और मनोवृत्ति विद्यमान है वह बहुत महत्त्व की है। जैसे तो यदि कोई आयुर्वेदालङ्कार—आयुर्वेद की भावना रखता हुआ और आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति करता हुआ भी-सोमों में डाक्टर कहलाने लगे तो यह कुछ बुरा नहीं है। क्योंकि बहुत जगह तो चिकित्सक (स्नातक करने वाले) के अर्थ में ही लोग डाक्टर शब्द का प्रयोग करने लगते हैं। पर

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति और भावना में तथा पश्चिम से आई वर्तमान डाक्टरों की चिकित्सा पद्धति और भावना में आकाश पाताल का भेद है। यदि इस भेद को हम ठीक तरह नहीं समझते हैं और अपने को आयुर्वेद पद्धति की विश्वास में ही विकसित नहीं कर सकते हैं तब तो गुरुकुल के साथ महान प्रयास करते हुए आयुर्वेद महाविद्यालय चलाना ही वृथा हो जाना है।

गुरुकुल के साथ आयुर्वेद महाविद्यालय चलाने का उद्देश्य यह है कि चार उपवेदों में जो एक आयुर्वेद है उसके ज्ञान को फिर से प्राप्त किया जाय और उसे प्रचारित किया जाय, लुप्त होती जाती हुई प्राचीन आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को उसके मूल तक पहुँच कर और मूल से उसे लिखित करके पुनः उसे हरा भरा किया जाय, उसमें आगे दोषों को हटा कर और नये आवश्यक सत्य-ज्ञानों को उसमें प्रवेश करा कर उसे जीवित जागृत और प्रवहमान रखा जाय। यह कार्य बेशक कठिन है, पर यही हमारा उद्देश्य है। एक तरफ प्राचीन विज्ञान के तत्त्व को जानने का यत्न करते हुए गम्भीर खोज करना, दूसरी तरफ वर्तमान चिकित्सा की उत्तम चीजों से भी सम्पर्क रखना ऐसा दोहरा काम हमें करना होता है। इसी लिये हम अपने आयुर्वेद महाविद्यालय में प्राचीन के साथ वर्तमान शरीर किया विज्ञान (फिज़ियोलॉजी) शरीर (अनाटमी), चिकित्सा विज्ञान (पैथोलॉजी) शल्य क्रिया (सर्जरी) भी पढ़ते हैं। पर ये सब अपने आयुर्वेद शास्त्र को समृद्ध और विस्तृत करने के लिये पढ़ाने हैं, न कि उसका उच्छेद कर उसकी जगह पढ़ाने हैं। गलती यही होती है कि इन दोनों का जुदा जुदा समझा जाता है। यदि यह रहती है कि इन दोनों का ऐसा मेल नहीं बैठ पाता कि ये साथ नये ज्ञान और तरीके आयुर्वेद रूपी अङ्गी के अङ्ग रूप होकर हमारे यहाँ संयुद्धी हो सकें। हमारे महाविद्यालय में चिकित्सा पद्धति आयुर्वेदिक ही इसी लिए रखी गयी है। यही वह अङ्गी है इसके अनुकूल अङ्ग रूप में अन्य सब सहायक ज्ञानों का सिखाया जाता है।

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति से मेरा मतलब त्रिदोष (वात पित्त कफ) सिद्धान्त पर आश्रित उस चिकित्सा पद्धति से है जो रोगी की भैयत्तिक प्रकृति-जीवन-जैविक-रासायनिक प्रकृति का तथा उसी दृष्टि में वस्तुओं के विध्य गुणों का ध्यान रख कर प्रवृत्त होनी है। परीक्षित और उत्तम औषध द्रव्य तो इसमें नये नये भी लिये जा सकते हैं। विषमोपचार (एंसांथेपी) के साथ इसमें समोपचार (होमिओपैथी) की चिकित्सा भी की जा सकती है। स्वस्थवृत्त (हार्डजीन) और प्राकृतिक उपचार (नेचरोपैथी) तो आयुर्वेद के सब से आवश्यक भाग हैं। पर फिर भी जो आयुर्वेदिक पद्धति में और वर्तमान पारम्पर्य पद्धति में भेद है वह यही कि यह हमारी पद्धति ऋषिओं द्वारा देखे जगद् में आम करने वाले और मनुष्य शरीर में भी काम करने वाले त्रिदोष नामक सत्य और गम्भीर सिद्धान्त पर आश्रित है। पश्चिम के विज्ञानों ने अपनी विद्या में नियुक्त पाई है, कमाल भी किया है। भौतिक अन्वेषण, परीक्षण, शरीर के स्पृष्ट भाग की ज्ञान-



बीन उन्हींने चरम सीमा पर पहुंचा दी है। पर उस सख की रक्षणा करते हुए भी हमें अपनी अधिक ऊंची चीज़ को बेकार समझ फेंक नहीं देना चाहिए। बात पिचक कफ का सम्बन्ध सूक्ष्म और बहुत अधिक प्रभाव रखने वालों तबों से है। इसका नाम शरीर-शास्त्र या चिकित्सा शास्त्र न रख कर आयुर्वेद रखने का यही मनलब है कि व प्राचीन ऋषि शरीर को जिस वस्तु का बाह्य रूप या छ्वाया मात्र देखते थे ऐसे जीवन, प्राण्य (आयु) को ही वे महत्व देते थे और उसका स्वादात जान करते थे। और आगे कहें तो वे शरीर को आत्मा के लिये समझने थे, न कि आत्म विमुख भोग के लिए। इसे ही मैं आयुर्वेद की भावना कहना हूँ। संक्षेप में कहें तो आयुर्वेद पद्धति अन्तर्मूर्खी है, आत्मा को मुच्छता देने वाली है, अतएव सूक्ष्म प्राण, वात पिचक कफ, धातु आदि सूक्ष्म किन्तु सजीव और परस्पर संबद्ध तबों एवं वैयक्तिक तथा विश्व प्रकृति के आधार पर चिकित्सा करने वाली पद्धति है। दूसरी आजकल की पद्धति बहिर्मुखी, आत्मा की अहंलना करने वाली, अतएव सूक्ष्म किन्तु जीवित जगत् और बहुत प्रभाव रखने वाली शक्तियों और अतएव वैयक्तिक और जगत् प्रकृति को भी भुलाकर प्रवृत्त होती।

अतएव जब मैं अपने आयुर्वेद के स्नातकों में देखना हूँ कि उनको नाड़ी परीक्षण में निपुण होनेका जगह स्टेथोस्कोप का उपयोग करने का अधिक शौक है, धैर्य पूर्वक रोगी का प्रकृति और रोग का मूल जानने की अपेक्षा अमृक रोग की अमृक औषध है यह जानने की जन्दी है, स्वास्थ्य रक्षा की जगह वे इलाज पर जोर देते हैं, अपने प्राकृतिक उपचार कल्प, पच कर्म को बिचकुल एक तरफ कर भस्मा या लूचीबंध में अधिक आस्था रखने हैं, रसायनों और निकल दि सादी दिव्य औषध द्रव्यों की जगह आसुरी तीव्र औषधियां बताना तथा जहां तहां शल्य-क्रिया की सलाह देना उन्हें अच्छा लगता है तो मुझे दुःख होता है। मैं देखना हूँ कि हम पथ भ्रष्ट हो रहे हैं। अस्तु। यह सब तो मैंने अपनी ठीक दिशा क्या है यह दिखाने के लिए लिखा है। ठीक दिशा, यदि आत्म में आभल न हो जाय तो कुछ न कुछ देर में भटक भटक कर भी पथिक ठाक जगह पर पहुंच हो जाता है।

पर दिशा को बहुत कुछ जानने हुए भी हमारे इस तरह भटकने के दो कारण हैं—आन्तर और बाह्य। (१) पहिला (आन्तर) कारण तो यह है कि गुरुकुल के इस अपने आयुर्वेद महाविद्यालय में ही हम आयुर्वेद का जैसा चाहते हैं वैसा वायु मण्डल नहीं बना सके हैं। इस के लिए गुरुकुल में ऐसे वैद्य आने चाहिये जो वैद्यक के ज्ञान और चिकित्सा में पूर्ण निष्णात और अनुभवी होने के साथ साथ आयुर्वेद चिकित्सा ज्ञान को भी जानते तथा उसके मुकाबिले में अपनी सुल्लभ उच्छ्रिता स्वपित वर सकने वाले हों। इसके सिद्ध होने में ता अमी समय लगेगा। इस बीच मैं मैं प्रार्थना करता हूँ कि इस दिशा में सब महाशुभाब, विशेषतः हमारे ही आयुर्वेद के स्नातक गुरुकुल की सब तरह से मदद करें। आयुर्वेद सम्बन्धी अन्वेषण का कार्य ही करने को बहुत है। पर उसमें लगने

वाले, अपने को रूपा देने वाले व्यक्ति नहीं मिलने। हमारे स्नातक ही अपने को बनाने का ऐसा यत्न करें, और ईश्वर करे वे हममें सफल हों।

दूसरा (बाह्य) कारण वाहर का वायुमण्डल, विदेशी राज्य, दासता की प्रभोवृष्टि की प्रभावना है जिसने हमारे ऐसे स्नातक जिन्होंने अपनी आजीविका के लिए ही आयुर्वेदिक शिक्षा ली है पर जिनके सामने कोई आयुर्वेद का या अन्य आदर्श नहीं है अपने स्थान और समय के अनुसार डाकूरी की तरह रहने में, डाकूर कहलाने में अपना लक्ष देखने हैं। पर मैं उनका ध्यान भी एक दो बातों की ओर खींचना चाहता हूँ जिससे शायद उन्हें यह मान्य होजायगा कि स्वार्थ की दृष्टि से भी उनका डाकूर को अपेक्षा वैद्य बनना ही अधिक अच्छा है।

(१) गुरुकुलिय शिक्षा दीना हो ऐसी है कि हमारे स्नातक आजकल की डाकूरी बातों में सुपरिगिन होने हुए भी वैद्य के तौर पर ही सफल हो सकने हैं, डाकूर के तौर पर नहीं। असफल जीवन बिनामा हो तो और बात है। पर हमारे स्नातकों के बढ़ने, कमकने, प्रसिद्ध और पारंगत होने की संभावना वैद्यक की दिशा में ही है। डाकूरी दिशा में सफल होने के लिये हमें अपने का बहुत ही अधिक बदलना होगा जो दुःसाध्य है।

(२) गुरुकुल के स्नातकों में आशा ही जनता वैद्य होने की करती है, डाकूर का कदापि नहीं। डाकूरी आयुर्वेदिक ज्ञान भी होता हमारे स्नातकों को वैद्यों में ही अन्य केवल वैद्यों की अपेक्षा ऊंचे दर्जे का और अधिक सफल बनाने में सहायक होगा। पर यह हमें वैद्यों की जगह डाकूर नहीं बना देगा। हमें भी त्रुट्ट पर ठाठ से रहना चाहिये, मगर वह ठाठ वैद्य का होना चाहिये। बंगाल में और विशेषतः कलकत्ते में वैद्यों को, कविराजोंकी इननी धाक है कि वैद्य के डाकूर भी वैद्य के ठाठ से रहने, रहने का यत्न करने हैं और बहुत से एम.बी.बी.एस. ों के वाद कविराज की उपाधि प्राप्त करने का यत्न करने हैं। अतः यदि आयुर्वेदालंकार या वैद्य के प्रतिफल कल और कहलाना ही है तो डाकूर की अपेक्षा 'कविराज' 'प्राणाचार्य' जैसे कुछ कहलाने की तजवीज बंधक करें। वैदिक शब्द चलाना चाहो तो 'मयक्' कहलाना। वैद्यों जैसा ही वैद्य रलो, और वैद्यों जैसा ही अपना औषधालय। डाकूरी नकल करना पर-धर्म है 'परधर्मों भयावहः'।

(३) और दिनांदिन अत्र गैसा समय अरु रेशा हैं जब कि डाकूरों की अपेक्षा वैद्यों की अधिक ज़रूरत होगी। कभिस तथा अन्य प्रांतीय सरकारों ने भी प्रायःकेशों में वैद्यों की ही व्यवस्था शुरू का है—ओर कुछ नहीं तो केवल रमत्रिये कि आयुर्वेदिक वैद्यधियों और चिकित्सक सन्ने पड़ने हैं। ज्यों वे श्रेष्ठ अपने आप में जागेगा त्यों २ आयुर्वेद की ही प्रतिष्ठा बढ़ने वाली है। अतः इस अर्द्ध भविष्य की दृष्टि से भी वैद्य बनने का हा यत्न करना अच्छा है।

अपने आयुर्वेदालंकार की उपाधि को भी जो अत्रे जी दङ्ग की बनाने की प्रवृत्ति है, उस पर मैं अगले समाह लिखूंगा।

[ पृ० ३ का शेष ]

हो सकती है ! क्या तुच्छ। अनन्य मृतप्राय चातक के जीवन की रक्षा करने में विद्याय स्वाती की बूँदों के झोर कोइ रस समर्थ हो सकता है ! यदि नहीं, तो क्या ऐसे आड़े समय में भी उस रोगी को, सहृदय सुहृद् के समान प्राप्त हो सकने वाली औषधियों की सहायता से वञ्चित रखना किसी प्रकार भी संभवित हो सकता है ?

जिस प्रकार मित्र दो प्रकार के होते हैं उसी प्रकार औषधियाँ भी दो प्रकार की होती हैं। प्रथम प्रकार की वे होती हैं जो पारदर्शक सौहार्थ-युक्त मित्र के समान सदा कल्याण करने वाली ही होती हैं। दूसरे प्रकार की औषधियाँ वे होती हैं जो "विषकुर्ममं पयोमुक्कम्" मित्र के समान ऊपर से तो sugar-coated होने से, लो मालूम होती हैं परन्तु अन्दर से विष-मयी होती हैं।

जिस रोगी को, भाग्य से, प्रथम प्रकार की औषधि समुपलब्ध हो जाती है, वह, उसका—सूखती नेती का धारासार में बरसने जल के समान—क्या उपकार नहीं कर गुजरती ! क्या ऐसी औषधि के अमृतमय जल-विन्दुओं द्वारा उसमें नव-जीवन का सञ्चार नहीं हो जाता ! तब यदि वह रोगी, निज सुन्दर शरीर में किये गये—

"शोकारति-विराणं, प्रीति-विस्मभ-भाजनम्  
केन रत्नमिदं मृष्टं, मित्र भियञ्चरद्वयम्" ॥

एक सम्मित्र के अमिनन्दन के समान, उस औषधि का भी इसी प्रकार का अपूर्व स्वामान करे तो इसमें आश्चर्य की क्या बात हो सकती है !

परन्तु जिस रोगी के सिर पर, भाग्य के नेत्र से, दूसरे प्रकार की औषधि पड़ जाती है, तो वह भी उसका—सूखती नेती पर पड़े झोलों के समान-सर्वनाश करने में क्या कसर छोड़ देती है ? तब यदि वह "विषकुर्ममं पयोमुक्कं" मित्र के समान प्राप्त हुयी उस औषधि को सदा के लिये नमस्कार करना ही अर्थस्वर समझने लगे तो इस में भी आश्चर्य की क्या बात हो सकती है ! तुलसी दास जी तो ऐसा करने की ही अनुमति देते हैं।

"आगे कठ सुदु बात बनाई, पाके अनमल मन कुटिलाई ।  
जाकर चित अहिगति सम भाई, अस् कुमित्र परिहरे भलाई ।

जिन रोगियों को दो चार बार, द्वितीय प्रकार की औषधियों से वास्ता पड़ जाता है वे 'दुध से जला बाह्य पैरु २ कर पीये' की कहावत के अनुसार औषधि ग्रहण से सशङ्क हो ही जाते हैं। जिस प्रकार, मित्ररूप में आये परन्तु शत्रु-रूप में प्रगट हुये कुमियों से तङ्क आये मनुष्य मित्रना करने से ही विमुख हो जाते हैं, उसी प्रकार द्वितीय प्रकार की औषधियों से तङ्क आये रोगियों ने भी यदि औषधि मात्र का भायकाट करना प्राक्तम कर दिया है तो इसमें आश्चर्य का क्या विषय है। उनके इस बय-काट के कारण ही आत्र ताना विविध प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालियाँ फलती फूलती दिखाई दे रही हैं जिनका हम भी स्वागत करते हैं।

परन्तु, एक प्रकार की औषधियों से हानि उठाने के कारण औषधि-मात्र का भायकाट करना कहाँ तक ग्वाय-संगत है यह भी एक विचारणीय समस्या है।

क्या एक दो बादलों के कड़वा निकलने पर सब बादल गोदाम में बन्द कर दिये जाते हैं ? क्या, प्रथम २ कम चमाने हुये पीतल के आभूषणों को कुछ दिनों बाद मन्व-प्रम होता पाकर धातु मात्र के आभूषण बनवाना बन्द कर दिया जाता है ! क्या संसार में कोई ऐसी धातु विद्यमान नहीं है जो न केवल वायु, अप्रियु जल तथा चम्पों से प्रभावित हुये बिना अनन्तकाल तक अपनी आभा को बनाये रख सके ! यदि इस प्रकार की धातु उपलब्ध हो सकती है तो क्या कारण है कि विषेक-शील पुरुष आभूषण-गण करना ही छोड़ दें ?

यदि चणू-विहीन पुरुष के सिर पर एक बार अचानक सर्प गिर चुका हो तो, वह न पहायी गई उसम से उसम पुष्पमाला या मर्मिमाला की भी सर्प समझ कर एकदम उतरकर फेंकने का ही प्रयत्न करेगा। परन्तु, क्या प्रका चणू संज्ञक विनेत्र पुरुषों को भी इसी प्रकार का व्यवहार करना अनुचित हो सकता है ! तब, क्या बुद्धि-मान् पुरुषों को मित्र २ प्रकार की सब चिकित्सा-प्रणालियों का गुण-दोष विवेचन करने के पश्चात् ही संभव व ग्वाय का कार्य नहीं करना चाहिये !

जब कसौटी पर कस कस कर सब धातुओं की परीक्षा की जा सकती है तथा यह ज्ञान जा सकता है कि इनमें से सर्वश्रेष्ठ धातु कौनसी है; तो क्या कारण है कि इसी प्रकार की किसी कसौटी द्वारा यह ज्ञान प्राप्त न कर लिया जाय कि प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियों में कौनसी चिकित्सा प्रणाली सर्वोत्कृष्ट है—अतएव उपादेय है !

चिकित्सा-प्रणालियों का सर्वोत्कृष्टता-निर्णायक कसौटी इनके अतिरिक्त और क्या हो सकती है कि—

जो चिकित्सा-प्रणाली,—

- (१) अपने मनुष्य नियमों के अन्ध र पर प्रवर्तित हो;
- (२) सुदु-नम प्रक्रिया द्वारा, अर्थस्व मनुष्यों को—
- (३) शोषानिशीघ्र तथा
- (४) स्थायीकल्प

स्वल् करने की शक्ति से पूर्णतया सम्पन्न हो, वही चिकित्सा प्रणाली सर्वोत्कृष्ट समझी जाय।

चिकित्सा-प्रणालियों को—सर्वोत्कृष्टता-निर्णायक—इससे श्रेष्ठ और क्या कसौटी हो सकती है !

जिस चिकित्सा-प्रणाली के कर कमलों में, दुर्जन मनुष्यों के मल-नाशक में कृत्रिक के समान, प्रतिक्षण तीक्ष्ण सुरी धरो रत्नी है उसका सुदृता से भला क्या सम्बन्ध हो सकता है ! जो चिकित्सा-प्रणाली दुष्-मुख बालकों तथा अशलाओं पर भी बन प्रयोग किये बिना नहीं चूकती उसे सुदृन्त, का समर्थक कहना सुदृता का उपहास करना नहीं तो और क्या हो सकता है ?

क्या, दर्द-मुदं से मुदं हुये मरोज को, शोषानिशीघ्र यानना-बमुक कर देने के कारण जो मारकिय हई कुशम पहिने स्वर्गीय दूत सा दिखाई देता है, वही—स्वायी-

कपेक्ष रोग-विमुक्त करने में असमर्थ होने तथा नामा विष अन्य उपद्रव बड़े कर देने के कारण—बादको—दुरी तरह नहीं बदकने लगता। इस प्रकार—चिकित्सा-प्रणालियों की सर्वोत्कृष्टता निर्णायक कसौटी पर हर प्रकार से जोड़ा उनरने पर भी जो चिकित्सा-प्रणाली "को जोधा जग मोहि ममाना।"

की घोषणा बड़ों की चोट के साथ कर सकती है उसे इसके सिवाय और क्या उत्तर दिया जा सकता है कि—  
"निज मुख-सुदूर-बिलोकहु जाई"

जो धातु कसौटी पर खर्चीय आभा-युक्त रेखा देने में असमर्थ होने पर भी सर्वोत्कृष्ट धातु होने का दावा को—उसे इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है कि अब उसे अपनी अन्तरङ्ग परीक्षा कराने के लिये तय्यार हो जाना चाहिये। यद्—

"यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निषण्णच्छेदन-नाप-नाइनेः तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते, नानेन, शीतेन, श्रूनेन, कमणा॥" के अनुसार परीक्षा करने पर जो धातु खेदन, ताप, तथा साइन की अन्तरङ्ग परीक्षाओं—खुल्लमिच, मलन तथा विदोषों ही जाती है, यह हम निषण्ण की यहा परीक्षा में किन प्रकार खरी उतर सकती है।

इसी प्रकार—अयुर्वेद के निम्न श्लोक—

"रोगमादौ परीक्षेन, तदनन्तरमोपपन्नं

ततः कमभिपयु सम्यग्-ज्ञानं पूर्वं समायेतु।

के अनुसार—जिस चिकित्सा-प्रणाली में—

- ( १ ) रोगी में रोग का सम्यग्-ज्ञान
- ( २ ) औषधि में औषधियुक्त का सम्यग् ज्ञान तथा
- ( ३ ) रोगी में औषधि के प्रयोग करने के नियम का सम्यग् ज्ञान नहीं पाया जाय, वह भला रोगी की सूदनम प्रक्रिया द्वारा, शीघ्रान्तिशीघ्र तथा स्वायी रूपेण किस प्रकार रोग-विमुक्त कर सकती है।

चिकित्सा-प्रणालियों की सर्वोत्कृष्टता निर्णायक कसौटी पर जोड़ा उतरने पर भी, जो कुछ एक चिकित्सा प्रणालियों सर्वोत्कृष्ट होने का दावा करती हो चली जाती हैं, तब, उनका इन तीन अन्तरङ्ग परीक्षाओं में से गुजरना आवश्यक ही हो जाता है। अतः चिकित्सा-प्रणालियों की अन्तरङ्ग परीक्षा का यह तुल्य कार्य अग्रे अध्याय में प्रारम्भ किया जायगा।

### गुरुकुल-समाचार

गत सप्ताह आम्मान में पर्याप्त बाढ़ल क्षाप्त रहे और वर्षा अच्छी हुई। १२ दिसम्बर को कुल भूमि में मकर संक्रान्ति का त्यौहार बड़े उत्साह पूर्वक मनाया गया। इस में सारा कुल वालियों ने बड़ी उमंग के साथ भाग लिया।

### बलरामपुर हाकी टूर्नामेंट में—

### गुरुकुल-दल का सुन्दर प्रदर्शन

इस वर्ष ४ जनवरी से प्रारम्भ होने वाले अखिल भारतीय बलरामपुर टूर्नामेंट में गुरुकुल का हाकी-दल

पूरी तैयारी के साथ सम्पन्न हुआ। गुरुकुल के अतिरिक्त, रामपुर टाइटान्स, बी. वार्ड, ए. लखनऊ, भूपाल सिक्किमिया, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, मैनीमाल-गोखल क्लब आदि मुम्बई टूर्नामेंट में भी मजिदगिरी करते रहे थे। नगर निवासियों और टूर्नामेंट कमेटी वालों में भी गत वर्ष की अपेक्षा अधिक उत्साह दृष्टि गोचर होना था। महाराजा साहब और महारानी साहिबा ने इन मैचों में पर्याप्त दिल चस्यो प्रदर्शित की। यही प्रति दिन ही जोड़ा खेल के चारों ओर जनता हजारों की संख्या में एकत्रित होती थी किन्तु जिन दिन गुरुकुल का नाम सुन्य हाता था उस दिन माँझ का कुछ ठिकाना न गफता था। खेल प्रारम्भ होने के घट्टे पूर्व से ही लोग उत्सुकता पूर्वक प्रत्या करने थे। खेल प्रारम्भ होने पर जनता तथा हाका के विशेष दर्शकों हा, गुरुकुल के खिलाड़ियों के हस्तकोशल और सफाई की मुकदम न प्रशंसा करते थे और शाबासों देकर उत्साह बढ़ाने थे। प्रथम मैच में गुरुकुल दल ने गौडा-डिस्ट्रिक्ट का मशहूर टिम को ३ गोल मे हराया। अगले दिन बनारस हिन्दूयूनिवर्सिटी और रामपुर टाइटान्स का मैच भी अत्यन्त दिलचस्प रहा। रामपुर टाइटान्स ने गत दो वर्ष तक लगातार इस टूर्नामेंट का कप जीता था, किन्तु इस वर्ष २ दिन तक सफल मुकाबला करने के पश्चात् भी तीसरे दिन यह दल हिन्दू यूनिवर्सिटी में २ गोल मे पराजित हुआ। गुरुकुल दल का अगला मैच इस हिन्दू यूनिवर्सिटी की टीम से पड़ा। गुरुकुल दल के खिलाड़ी दुगने उत्साह और परिश्रम के साथ खेलें और अन्त में ३ गोल से विजयी हुए। इस मैच में ब्रजवासियों की कीड़ा दक्षता, दृढ़ परिश्रम और सहज शीलता से प्रयत्न होकर रामपुर की महारानी साहिबा ने १०० उपहार में दिए और सुन्दर खेल की तारीफ का। सर्वत्र नगर में ब्रजवासियों के अद्भुत कोशर का प्रशंसा होता रहा।

प्रदर्शनार्थ किंग राम मैचों में, तथा प्रैक्टिस मैचों में गुरुकुल दल ने २ सत्रों में खिलाड़ियों का दुर्गा यवशा सम्पादित की। जिन का कारण ये अमनक खेलने में अग्र रहते। यद्यपि इन्हीं कारणों से गुरुकुल का दल लखनऊ का टीम से अतिरिक्त समय में पराजित हुआ तथा, १ घट्टे तक इस दल ने विफल का जो मफल मुकाबला किया उसके कारण सर्वत्र प्रशंसा हुई। टूर्नामेंट समाप्त होने पर सर्वोत्तम दल (Best Team) का पारितोषिक 'गुरुकुल' का ही प्राप्त हुआ। बलरामपुर के जनता की यह गुण प्राप्तता प्रशंसनीय है।

### गुरुकुल स्वास्थ्य समाचार

ब्र० राजकुमार १३ अंशों कापला, ब्र० दिनमणि ११ अंशों नानरश ब्र० विश्वामित्र ११ अंशों मलेरिया उबर, ब्र० श्यामनिवास १ अंशों निमोनिया, ब्र० मन्तकुमार १ अंशों श्लेष्म उबर, ब्र० कीरेन्द्र ३ अंशों मलेरिया उबर, ब्र० रामेश्वर २ अंशों श्लेष्म उबर, ब्र० कपिल ४ अंशों श्लेष्म उबर, ब्र० सत्यव्रत ५ अंशों मलेरिया उबर। गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब अंशे हटा रहे हैं।

## जाड़ों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी धातु क्षीणता पुरानी खांसी, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शीक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव (१०) आध सेर २०) १ सेर ४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियाँ से तैयार की गईं ये गोणियां सब प्रकार की कमजोरियों में अक्सीर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करती हैं।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजीत और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ३३) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ३३-) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियां बेच रहे हैं इसलिए दवा खरोदते समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

प्रांच	{	देहली—वांदनी चौक।
		मेरठ—सिपर रोड।
पंजसियां	{	लखनऊ—पंजसो गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।
		लाहौर— " " " हरपताल रोड।
		पटना— " " " मछुआटोली बाँकीपुर।
		अजमेर— " " " वैद्यराज सरदारोशाल जी कड़कल चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी ज़ि.महानपुर**

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥]

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १२ माघ १९६७; २४ जनवरी १९६१

[ संख्या ४० ]

## वेद (ब्राह्म) धर्म ही सर्वतोभद्र क्यों है ?

( लेखक:—आचार्य पं० कल्याणजी जी वेद आचरति वेदमनीषी तिलक स्मोकर धूरत )

धर्म मानव आत्मा का स्वाभाविक रस है, असभ्य से असभ्य और नास्तिक से नास्तिक प्रजा में भी धर्म की प्रकृति टिम टिम रही होती है। सभ्यता एवं ज्ञान के विकास के साथ तो यह धर्म की प्रकृति तीव्रतर और गंभीर होती जाती है इस लिये धर्म जहाँ स्वाभाविक है वहाँ आवश्यक भी है। धर्म के क्षेत्र में ऊँच नीच, नया पुराना आदि भेद निस्सार है। व्यवहार की अभ्यस्त भाषा धर्म है और धर्म की कौकिक व्याख्या व्यवहार है। इस दृश्य जगत् से पने कोई गूढ अज्ञात तत्त्व आत्म विभोना खेल रहा है, यह सत्य शिव और सुन्दर है, इसकी भ्रमक को पकड़ने में लगे हुए सृष्ट्य नवन ही धर्म के क्षेत्र हैं। उपनिषदों, गुह्याद्गुह्यतम वेदों के सूत्र, उद्भिद्ध एव स्कंभ की उलझनों को जो धर्म अधिक से अधिक मरजता से सुलभा सकता है वही ऋकृष्ट समुभा जाता है। दूसरे शब्दों में कहे तो जो धर्म जीवन में प्रोत प्रोत होकर सर्व देशी ( Universal all sided ) होवे वही सर्वतो भद्र होता है। इस कमीटी पर वेद धर्म ही कसा जाता है। वेद धर्म को ही ब्राह्म धर्म या हिन्दु धर्म कह सकते हैं। वेद-धर्म का मूल वेद है, भूति है। ये महान् प्रभु के “निःशसिनमेतन्” विश्वास हैं। ब्रह्मायुध के अणु अणु में प्रतिष्ठा सुनाई देने वाले इस विश्वास को, गहरी ध्वनि को अति और अति-प्रतिपादित धर्म सुनाते हैं। अना वेद धर्म ही शाश्वत और सनातन है; अकारण एवं सर्वमर्तो का उद्गम स्थान है।

१. सब के लिये व्यवस्था:— धर्म का धरम साथ्य आत्मा की परम शक्ति है। मानव आत्मामों की विविध

वृत्ति और अनुकूलता के भेद से इसे पाने के लिये अनेक मार्ग हैं। बालक—यूवा, सभ्य-असभ्य हर एक को जो धर्म अधिकार के अनुसार मार्ग बनाता है वही धर्म मर्ष प्रिय होता है—“अधिकारिभेदात् धर्मभेदः”। इरेक व्यक्ति अपनी अपनी वृत्ति के अनुसार जीव, शिव तथा प्रकृति की त्रिवेणी में स्नान किया करता है। इन सब वृत्तियों को संतोष देने के लिये जिस धर्म में पूर्ण साधन बताये गये हैं वही धर्म, मूल-मूल धर्म है। व तो हर धर्म में समय समय पर आवश्यकतानुसार साधनों में परिवर्तन की प्रथा रही है वस्तु जिसमें ज्ञान, कर्म, भक्ति, त्याग, वैरम्य, परोपकार, श्रवण, मनन, निदिध्यान आदि साधनों को संबंध सम्पूर्ण रूप में उपस्थित किया गया हो वही सर्व भेद धर्म है और ऐसा एक वेद धर्म ही है। इस में ब्रह्मवारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सम्न्यासी हर एक कोटि के अनुक्य के लिये स्पष्ट मार्ग तथा साधन हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य शूद्र हर वर्ण के धर्म बताये गये हैं।

२. आत्मा तथा अनात्मा को योग्य महत्या:— वेद में ईश्वर, जाव तथा प्रकृति का स्वरूप बताते हुये तीनों को ही उपादेय बताया गया है। ब्राह्म धर्म शब्द में ब्रह्म का अर्थ ईश्वर [ ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति ] जाव तथा प्रकृति [मम योनि: महेशरा: ] तीनों ही है। इन तानों तत्त्वों का क्रमशः अधिगत करके ही मानव आत्मा अपना कल्याण कर सकता है—यह ब्राह्म धर्म का रहस्य है। वेद में लिखा है—

“उद्धय तमसस्पर्दे स्वः परमन्नः उत्तरं देवं देवमा सूर्यं मगन्म उयोतिरुत्तमम्” उख् ( तमः matter ) उत्तर तथा उत्तम इन तीन उयोतियों को जानकर ही सत्त्व पूर्ण ध्येय को पा सकता है। वेद धर्म जगत को शुद्ध, अलीक एवं माया बताकर “पर” की भाषा अतीन्द्रिया में अटक कर साधक का इह तथा परलोक नष्ट नहीं करता है।

## होमियोपैथी तथा अन्य-चिकित्सा प्रणालियों में रोगी-परीक्षा

(जे० श्री डा० मोरगुणकरी विद्याभार विज्ञान)

जिस चिकित्सा-प्रणाली द्वारा रोगी में रोग का सम्यग्ज्ञान-यथार्थज्ञान-प्राप्त नहीं हो सकता, वह रोगी को स्युप्तम प्रक्रिया द्वारा, शरीरान्तिरीक्षित तथा स्वार्थी रूपेण रोग-मुक्त भी किस प्रकार करा सकती है! अतः, आयुर्वेद कहता है:—

“यन्मु रोगमविज्ञाय, कर्माचार्यारभते मिषम्  
अप्योपध विधानञ्च, तस्य सिद्धिर्यदृच्छया।”

जो चिकित्सक, औषधियों के विधान से विष्व होने पर भी, रोग का सम्यग् ज्ञान प्राप्त किये बिना चिकित्सा का कार्य करना है उसे युष्कार न्याय से ही, कभी न, सफलता प्राप्त होती है। महाकवि कालिदास तो विकार (रोग) का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किये बिना, चिकित्सा के आरम्भ करने का ही निषेध करते हैं:—

“विकार परमार्थतोऽज्ञात्वा, अनागम्यः प्रतिकारस्य।”

अतः चिकित्सक के लिये आवश्यक हो जाता है कि वह, रोगी में उसके उस रोग-विशेष का सम्यग् ज्ञान प्राप्त करने के लिये कटिबद्ध हो जाय जिसका प्रतिकार करना उसे अभीष्ट है। चूंकि, चिकित्सक को, रोगी में ही रोग का प्रतीकार अभिप्रेत होता है अतः, उसका सम्यग्, मन्थने प्रथम, वह प्रभ उपस्थित हो जाना है कि—

### रोगी कौन है ?

इसका उत्तर स्पष्ट है कि जिसमें रोग रहता है वही रोगी हो सकता है। रोग किसमें रह सकता है—रोग का अधिकरण अथवा अधिष्ठान कौन होता है—इस विषय में मिश्र २ चिकित्सा प्रणालियों का मिश्र २ मत है।

पल्लोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली के मत में रोग का अधिष्ठान क्या है? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर तो प.या नहीं जाना, परन्तु, उसका रोग की मूल परिभाषा से कि “शरीर की रचना तथा कार्यों में परिवर्तन आजाते को ही रोग कहने हैं” (( Any alteration of structure or function of the body is called a Disease )

यही प्रतीत होता है कि उसके मत में रोग का अधिष्ठान, इस प्रत्यक्ष लक्षित शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उसकी Physiology की पुस्तकों का अध्ययन करने से भी इसी अर्थ की पुष्टि होती है। पल्लोपैथिक द्वारा लिखी गयी “शारीरिक-विज्ञान” की किसी पुस्तक में भी शरीर सम्बन्धी विचार के अतिरिक्त अन्य किसी सुक्ष्म शक्ति य. आत्मशक्ति का प्रत्यक्ष तर्क नहीं आया है ऐसा अवस्था में जब इस दृश्यमान मूर्त शरीर के अतिरिक्त अणुमा का अधिष्ठान भी इसके अतिरिक्त और कहा हो सकता है। नच तो यही अणुमा पड़ना है कि इस शरीर का ही जी मिचलाता है, इसी के पेट में दर्द होता है तथा इसका के हाथ पैर कांपने लगते हैं। परन्तु जब इस शरीर को शब्द-व्यक्त मान लिया जाता है, तब इसमें मे

क्या निकल जाता है? जिसके अभाव में ना तो इसका जी ही मिचलाता है, न पेट में दर्द होने का अवसर ही आता है, ना ही इसके हाथ पैरों का कभी कांपन ही हो पाता है। इस प्रश्न के उत्तर में कहा जाता है कि इसमें मे निकल तो कुछ नहीं जाता परन्तु, चूंकि यह एक सर्वथा विगड़ों मशीन के समान बंकारा हुआ जाता है अतः इनके पेट में दर्द इत्यादि का हानन भी सदा के लिये समान हो जाता है। इसी लिये, इसे तब अमिस्रात् अथवा भूमिस्रात् कर दिया जाता है।

यदि मनुष्य का यह शरीर, साधारण मशीनों की ही समानता रखता है तो अन्य मशीनों के प्रतिकूल, यह अपने आप विकारन तथा लय को कैसे प्राप्त होजाता है, तथा, अपनी प्रतिकृति वी दूसरी मशीन इसमें से ही कैसे उत्पन्न कर देता है? यद्यपि इन प्रश्नों का समुचित उत्तर देना एक अनात्म-व्यक्ति के लिये बड़ी देवी खीर है, तथापि यह, “इस मशीन की ऐसी ही प्रकृति है” इत्यादि तर्कना शक्ति की कसौटी पर लोटे उतारने वाले कुछ न कुछ उत्तर देकर अपना पिएड छुड़ा ही लेता है।

परन्तु, उस के इस जड़बाद को संसार की चेतना-युक्त कियाओं की व्याख्या होना उसो प्रकार असम्भव है जिस प्रकार गुरुकुल के भेड़िये ने भड़ो को भगाना। क्या लक्षितान्द स्वकृप परमात्मा का सृष्टिकर्म, अदृश्य सुक्ष्म शक्ति-स्वरूप आत्मा के अस्तित्व में संशय करने हुये समझ में आ सकता है? क्यों, एक जीव, जन्मते ही, चामीकर की चकमच से मनुष्य पथ चटाया जाकर, चांदी के गुदगुद-गद्गद्दार पालने में मुलाया जाता है; तथा दूसरा जन्मने के स्थण मे भी सम्यस्त कराकर, तिसाकिया भरता हुआ, उसा समय, सीधा स्वर्गालोक में पहुँचा दिया जाता है इत्यादि प्रतिदिन घटित होती घटनाओं की व्याख्या क्या, आत्मा के अस्तित्व को श्योकार किये बिना ठो सकती है? शास्त्र कहना है

“शरिद्र्य-रोग-दुःखानि, बन्धन व्यसनानि च  
आत्मापरायवृक्षस्य फलाभ्येतानि देहिनाम्” ॥

इस श्लोक मे यह बात कितनी स्पष्ट होजाती है कि इन दृष्टिय, रोग, दुःखादि का बीज बिना आत्मा के अधिष्ठान के और कहाँ जम ही नहीं सकता। अन्यथा, शब्द-शरीर को रोग छोड़ने ही नहीं; दुःख, और कहाँ उेर खालने ही नहीं, तथा सुसुखत, फिर और किसी को मनाती नहीं।

जिस चिकित्सा प्रणाली में रोग का अधिष्ठान केवल मूर्त शरीर को ही माना जाता है, उसमें-रोग का स्वरूप-भी शरीर के तन्तुओं के परिवर्तन (Tissue-change) तथा उनके कर्त्यों में परिवर्तन आजाते के अतिरिक्त और हो हो क्या सकता है। उसमें, रोगी वही माना जाता है जिसका या तो जिगर—कोई अणु, घट बढ़ गया हो गया हो या फिर उसके मूलमूल का अदृश बदल ही गया हो। परन्तु जिस मनुष्य की अणुमा, आत्मज्ञान करने की होने लगती है, वह, इस चिकित्सा-प्रणाली में रोगी कैसे कहाँ सकता है? क्योंकि उसमें रोग का मूर्त रूप लक्षित नहीं हो पाता। जिसे मनुष्य के सब

अङ्ग प्रत्यङ्ग यथास्थान सुरक्षित हैं तथा उनकी रचना या लक्ष कार्यों में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो पाया है—वह, मला रोगी ही भी कैसे सकता है !

क्या एक एल्लैपैथी का उपासक उन्मे स्थल कर सकता है ? वह उसे स्वस्थ करने में प्रवृत्त तो सभी हो जब उसे वह पहिले अस्वस्थ तो मानले ! परन्तु जिस मनुष्य के शरीर में कोई तन्तु-परिवर्तन ही दृष्टि गोचर नहीं होता उन्मे वह रोगी मान भी कैसे ले ! उसके लिये तो ऐसे तथाकथित रोगी को स्वस्थ करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी लिये वह उसको उसका Neurosthetic अथवा अन्य कोई सुन्दर सा नामकरण संस्कार कर के, चलाता कर देता है।

परन्तु, प्रश्न होता है कि वह मनुष्य, क्या वास्तव में ही रोगी नहीं है ? यदि रोगी न हाता तो उसके हृदय में रोगी होने का भाव ही क्यों उठता ? उसको अनन्यता उस किसी चिकित्सक के पास ही क्यों पहुँचानी ? जब उसका आत्मा, मन तथा इन्द्रियाँ अप्रमत्त—A L-Divine हुए तभी तो, उनको—A L-God—या प्रसन्नचित्त में लाने के लिये, वह, चिकित्सक के पास पहुँचा ! परन्तु जिस चिकित्सा प्रणाली में, आत्मा तथा मन की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का कुछ विचार नहीं किया जाता, वह उसकी क्या चिकित्सा कर सकती है ? जो चिकित्सा प्रणाली, अपने मूलवाद के कारण, अस्वस्थ मनुष्यों को अपने द्वार से कोरा बौद्धा देती है, वह मला-सर्वाङ्गकृता का दावा क्या कर सकती है ?

अब, एल्लैपैथिक चिकित्सा-प्रणाली में—रोग के अधिष्ठान तथा रोग के स्वरूप को मूलरूप में माना जाता है, तब उसमें रोगोत्पादक पदार्थों ( रोग के कारणों ) को भी मूलरूपधारी मानना आवश्यक हो जाता है। इसी लिये, उक्त प्रणाली में, सब रोगोत्पादक पदार्थ प्रायः कीटाणुओं के रूप में ही माने जाते हैं।

क्या मूल-शरीर-धारी कीटाणु, रोग का कारण हो सकते हैं ? क्या, टारफाइड-ज्वर से प्रसन्न रोगी के रक्त में अबतक कीटाणुओं का उपलब्धि नहीं हो जाती तबतक वह रोगी नहीं हाना ? यदि कहां—“होता है” तब तो उसका कीटाणुओं के बिना रोग-ग्रस्त होना निश्च हो जाना है। यदि उसके रक्त होने के पश्चात् कीटाणुओं की उपलब्धि होता है, तब कीटाणु रोग का कारण हुये अथवा कार्य ? क्या बिछा के टोकरे उठा ले जाने याने मेहतर गम्भीर का कारण होते हैं ? क्या इसी प्रकार यह कीटाणु, रेड क्रौस सोसाइटी के सदस्य अथवा Sommerers नहीं हो सकते जो सदा मारपीट के बाद ही पहुँचते हैं ? जिस प्रकार ज्ञान पात्रादिक करने के बाद मेहतर लोग विशुद्ध हो जाते हैं, क्या इसी प्रकार ये कीटाणु बार बार के परिमार्जन के बाद शान्ति-हीन नहीं हो जाते ?

जिन रोगों के कीटाणुओं को उपलब्धि अभी तक नहीं हो पायी है, क्या, उनसे—उन सूक्ष्म शक्तियों से—मनुष्य प्रभावित नहीं होते ? क्या बेचक तथा मसुरिका ( Measles ) के कीटाणुओं की अभी तक उपलब्धि हो सकी है ? क्या इन रोगोत्पादक पदार्थों के वायु मण्डल

में वर्तमान सूक्ष्मानसूक्ष्म विषयों से रोगी नहीं होते ?

जिस चिकित्सा-प्रणाली में, रोग का अधिष्ठान, रोग का स्वरूप तथा रोग के कारण, यह सब ही मूल-रूप में माने जाते हैं, उसमें चिकित्सा का प्रकार भी यदि मूल रूपता की पर काट्टा को पहुँच जाय तो इसमें आश्चर्य की क्या बात हो सकती है ? अशिल बद्ध गये तो कौट दो; कैसर हो गया हां तो—काट दो; वृषु हां गया हो तो—पाट दो। इत्यादि जङ्गलों-लाट-साहिबी चिकित्सा, इसी जट-वाद की प्रस्तुतियों नीव पर आधारित है।

क्या ऐसे चिकित्सा प्रणालों के उपसर्कों में, शासन चिन्त से कभी इस बात पर विचार करने का कुछ उठाया है कि उनकी इस कठोर चिकित्सा का रोगियों पर पविष्य में क्या प्रभाव होगा ? क्या कटे दीर्घाल याने रोगी, बाद का, लघु-रोग के मार्जार द्वारा नहीं दोष लिये जाते ? ऐसी अवस्था में, उन को यह चिकित्सा क्या कहा सकती है ?

हमें याद है कि, एक बार स्कूल में बड़ी गड़बड़ी हो रही थी। समझा यह क्या कि उक्त स्कूल के लड़के बड़े शरारती हैं। हेड मास्टर साहिब ने दो चार लड़कों को बँत उड़ादी तथा कुछ को स्कूल की चार दीवारी में बंध कर दिया। कुछ दिन तक तो इस दृङ्ग-विधान का ऐसा आनन्द सा हा गया कि किसी ने चूँकि तक भी न की। परन्तु शंभ ही एक छोटी सी बात पर साए स्कूल अशांता बन गया। ज्यों र भगड़ों को दवाने का पल किया जाने लगा त्यों र फुटथाल के श्वैडर के समान वह रूप को उखलाने लगा। अन्त में इसकी सूचना इन्स्पेक्टर साहिब को पहुँची। उ-हीन चुपके से एक नीति कुशल हेड मास्टर को भेज दिया जिसने शरट् व्युत् के समान आने ही, उस उपनती नदी को एक दम शांत कर दिया।

क्या यह सब राजा भगड़ा स्कूल के लड़कों के बिगाड़ के कारण उठा था ? या नहीं—तो क्या हमारे शरीर में जो कुछ रोगों का उफुन सा आया करता है वह पंचल शरीर के बिगाड़ के कारण ही हुआ करता है ? जिस प्रकार स्कूल के लड़कों के अधिष्ठान, र बिगाड़ या सुधार पर सारे स्कूल का बिगाड़ या सुधार निर्भर करता है, क्या, उसी प्रकार, इस शरीर के अधिष्ठान के बिगाड़ या सुधार पर सारे शरीर का बिगाड़ या सुधार निर्भर नहीं होता ? तब, इस शरीर का कोई अधिष्ठान न मानना, और, उस पर किसी अथर शक्ति के अधिकार होने पर उन्मे अस्वस्थ हुवा हुआ तथा उसका प्रतिकार वा परिहार हो जाने पर, उन्मे पुनः स्वस्थ हुवा न समझना, कहां तक म्याय-सगत हो, सकता है ?

क्या कलहर साहिब के नीति कुशल तथा सवधान रहने पर, जिनमें बलबा हो सकता है ? क्या, जिनमें शान्ति-स्थापित रखने का अर्थ सत्वाय जिज्ञापीश के किसी और को मिला करना है ? इन्ही लिये मनु महाराज कहते हैं—

“राजा कावस्य कारणम्”

[ शेष पृ ५ पर ]

# गुरुकुल

१२ माघ शुक्रवार १९६७

## अंग्रेजी उपाधि का मोह

(ने.०—श्री आचार्य अमरदेव जी)

गत सप्ताह में एक आयुर्वेदालङ्कार बन्धु का पत्र उद्धृत कर चुका हूँ जिसमें उन्होंने लिखा था कि 'डाकूरी डाठ में रहने वाले ज्ञातकों की अपनी आयुर्वेदालङ्कार डिग्री को भी अपने अङ्गुल बनाना पड़ता है। (O. M. Sc. (Kang), A. V. A. (Kang) आदि (लिब्दा आम हो गया है।) इसी विषय में एक और आयुर्वेद के ज्ञातक लिखने हैं। मैं उनके विस्तृत पत्र को लगभग सम्पूर्णा ही नीचे उद्धृत करता हूँ; क्योंकि इससे मेरा काम बहुत सा हलका हो जाता है:—

"अभी कुछ दिन हुए गुरुकुल के एक ज्ञातक के साथ गुरुकुल की उपाधियों के बारे में मेरा पत्र व्यवहार हुआ था। वे एक वेदालङ्कार हैं परन्तु अपने नाम के साथ वेदालङ्कार लगाया करने हैं। मैंने उनसे पूछा था कि क्या वह उचित है? वे कहने हैं कि 'वेदालङ्कार' शब्दा को कोई नहीं जानता और विद्यालङ्कार काफी ब्यापि प्राप्त कर चुकी है। फिर वेदालङ्कार कहने में ऐसा लगता है कि मैं तो हम वेद के सिवाय कुछ नहीं जानता; हम पुगने पहिड़तो जैसे मनीदर अङ्गुरने और पगङ्गे वाले एक पहिड़ता होंगे और विद्यालङ्कार कहने से कुछ दूसरी ही तरह का असर जमता है। मैंने उन्हें यह उत्तर दिया था कि जहाँ तक स्यात का सम्बन्ध है विद्यालङ्कार डिग्री भी शुरु में उतनी ही नहीं और एक अज्ञेय की चीज रही होगी। जैसा कि आपकी रायमें वेदालङ्कार है। इस उपाधिसे विद्युत्ति स्नातकों में ही इमें प्रसिद्ध किया है तो क्या वेदालङ्कार उपाधि वाले स्नातक यदि योग्यता रखने होंगे तो अपनी उपाधि को विसा ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय न बनालेंगे। और फिर मैं तो यह मानता हूँ कि गुरुकुल के स्नातक को अपने स्नातकपत्र अथवा अपनी उपाधि के सहारे सङ्के होने की कोशिश ही न करनी चाहिये। मेरे स्थान में उनका यह कर्तव्य है कि वे पहले अपने आप कुछ बन कर दिखाएँ और फिर अपने बल पर गुरुकुल और उसकी ही हुई उपाधि का नाम उल्लेख करें।

(यहां प्रसिद्ध सर्गीनर ओकरानाथ जी का एक दृष्टांत देकर वे लिखते हैं)

'अस्तु, मैंने उन्हें लिखा कि आदर्श की बात भले ही जानें दीजिए पर यदि आप वास्तव में यह अनुभव करने हों कि आपकी उपाधि वेदालङ्कार की जगह विद्यालङ्कार हीना चाहिए तो आपको चाहिए था कि शुरु में ही वेदमह-विद्यालय की जगह साधारण महाविद्यालय में प्रविष्ट होने और यदि स्नातक बनने के बाद आपको यह अनुभव

हुआ हो तो आपको चाहिए कि आप अपनी सम्मति वाले स्नातकों के साथ मिल कर एक ही उपाधि कर देने का (क्योंकि पाठ्यक्रम साधारण तथा वेदमहाविद्यालय का लगभग एकसा ही है) आन्दोलन करें। परन्तु जब तक गुरुकुल आपकी उपाधि में परिवर्तन नहीं करता तब तक यदि आप अपनी उपाधि से निज गुरुकुल की ही किसी अन्य उपाधि का उपयोग करने हैं तो यह अनुचित है।

"यह तो फिर भी कुछ कम है पर आयुर्वेद के स्नातकों को बमल कर देने हैं। जनता की गुलामी की मनोवृत्ति के कारण संस्कृत शब्दों को अथवा अंग्रेजी शब्दों का अर्थ मान होता है अतः आयुर्वेद के नामक भा आपने आप को आयुर्वेदालङ्कार और 'य' लिखने की जगह 'डाकूरी' और O. M. Sc. इत्यादि आयुर्वेदालङ्कार का अंग्रेजी अनुवाद Ornament of medical science लिखने है यह क्या हास्यस्पद चीज है! हां किं लता O. M. Sc. (Kang) लता है जिसका जनता पर यह प्रभाव पड़े कि शायद यह विश्व का को, बड़ी भारी डिग्री लेकर आए हुए है। इस र तो मुझे दासता की मनोवृत्ति और Inferiority Complex ही दिखाई देता है। पर क्या यह गुरुकुल की उपाधि का अपमान अथवा व्यङ्ग्य और जनता की कर्मजोरी में लोभ उठाने और उसे धोखा देने का प्रयत्न नहीं है? यदि गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय से भी ABCD धरी डाकूरी ही निकलने हैं तो क्या यह अधिक अच्छा न होगा कि आयुर्वेदमहाविद्यालय को बन्द करके उसमें कोई अधिक संज्ञक और सुसम्पन्न लब्धनरणीर अथवा कर्मही के मेडिकल कॉलेजों को ही अपनाया जाय और इस प्रकार शक्ति और धन का अपव्यय रोकाला जाय। हां हम लोगों की देखादेखी कुछ वेदालङ्कार और विद्यालङ्कार भी V. A. लगाने लग पड़े ह पर उन्हें लोभ इतना ही बता देना काफी है कि पञ्जाब विश्वविद्यालय के सामने यह प्रस्ताव है कि लक्ष्मियों को B.A. (Bachelor of Arts) की जगह V.A. (Vagum of Arts) उपधि दी जाय।

"क्या आप इस बारे में गुरुकुल पर द्वारा अपनी रय देना परसन्न करेंगे।"

मैं इन भाई को यह बतला दूँ कि आयुर्वेद वालों की देखा देखी नहीं, किन्तु जब आयुर्वेद की उपाधि देना शुरु की नहीं हुआ था तभी कुछ (पर कुछ ही) विद्यालङ्कारों ने ही यह दुःख की बात है, यी. ए. लिखना शुरु कर दिया था। निःसन्देह यह अंग्रेजी का मोह था, अंग्रेजियत की वैठी हुई भाक में लाम उठाने को दासता। पूर्ण मनोवृत्ति से ही प्रेरित था। कुल की बात इसी लिए है क्यों कि ऐसी मनोवृत्ति को हथाना ही और इसकी जगह संस्कृत व राष्ट्रभाषा में प्रेम तथा प्राचीन भारतीय सभ्यता का गौरव विठाना और उसी में आत्म सम्मान सम्मलना गुरुकुल का एक मुख्य कार्य था। पर वह प्रवृत्ति बहुत नहीं बढ़ी। इसका कारण यही है कि सचमुच विद्यालङ्कारों ने अपने आन्तरिक योग्यता के कारण इस संस्कृत की उपाधि की प्रतिष्ठा स्थापित कर दी। पर 'विद्यालङ्कार' इस संस्कृत या हिन्दी की उपाधि को



अंग्रेजी में अंग्रेजी सर्वोप के दृष्टि से लिखने के लिए V. A. लिख देना भी कुछ समझ में आ सकता है, जब अंग्रेजी में ही नाम आदि लिखना पड़े और विद्या अलङ्कार शब्द को भी रोमन लिपि में और साथ ही संक्षेप में लिखना जरूरी हो तो यह उचित भी कहा जा सकता है ( यद्यपि प्रायः सदा ही V. A. लिखने का प्रेरक भाव अंग्रेजी के रोष में आना या उपाधि लिखने के इन परिचयी दृष्टि से लाम उठाना हा होना है ), इसी तरह आयुर्वेद लङ्कार को A. V. A. लिखने के विषय म भी कहा जा सकता है; किन्तु आयुर्वेदालंकार को ( ) M. Se. लिखने को तो मैं निरा कपट ही कह सकता हूँ और कुछ नहीं। मुझे जो आयुर्वेद के ज्ञातक ऋषुओं के पत्र मिलते हैं उ में मैं देखता हूँ कि कुछ ने तो अपने चिह्नी के कागजों पर वाक्यादा ( ) M. Se. King ) ऐसा कुछ छपवा रखा है। यह तो कोई उपाधि नहीं है, कम से कम गुरुकुल से दी गई कोई उपाधि नहीं है। यह ऐसा है जैसे कोई गोपाल सेवक नाम वाला ( जिसके माता पिता ने उसका यह नाम रखा हो ) आदमी जहाँ के लोग गांधी जी को नहीं पहचानते वहाँ अपने को महात्मा गांधी वाला कर कावादा उठाये, और जब उससे पूछा जाय कि तुम तो गोपाल सेवक हो तुम गांधी जी कैसे बन गये तो कहे कि गोपाल का वही अर्थ है जो मोहन का और सेवक का अर्थ होता है दास, इस लिए मैं महादास, गांधी हूँ। यदि इस, तरह उपाधियों का भावान्तर चलने लगे तो बड़ा अर्थ होजाय। तब तो आयुर्वेद भूषण उपाधि वाले अपने को वेष्टके आयुर्वेदालंकार ही न लिखा करे, क्योंकि अलंकार और भूषण एक ही बात तो है और इसमें तो भावान्तर भी नहीं है एक ही भाषा के एक शब्द की जगह उसका दूसरा पर्याय वाची रख दिया गया है।

आशा है गुरुकुल कांगड़ी के ज्ञातक ऋषु गुरुकुल की दी गयी उपाधि के ऐसे अनुचित रूप में दुरुपयोग किए जाने को अपने और इस कुल को कर्त्तिक करने वाला कार्य अनुभव करेंगे और अंग्रेजी के मोह को छोड़ेंगे, बल्कि यह आत्मविश्वास रखेंगे कि ( यदि गुरुकुल की प्रतिष्ठा बढ़ती गई और गुरुकुल में उच्च केंद्र के ज्ञातक निकलने लगे तो ) ऐसा समय शीघ्र आयागा जब जिन्होंने कपट ही करवा है वे अंग्रेजी अक्षरों की उपाधि की जगह हमारे अक्षरों जैसा ( गुरुकुल का उपाधि से मिलनी जुलती ) उपाधि लगाने में अपना काव्दा समझेंगे।

वेदालंकार की तरह सिद्धान्तालंकार की उपाधि को भी कई ज्ञातक बन नहीं करते हैं ( यद्यपि कई सिद्धान्तालंकार को भी पूरे गौरव के साथ अपने नाम के पीछे लगाते हैं )। किसी उपाधि में यदि वस्तुतः कुछ दाब है तो उसे दूर करवाना चाहिए। जैसे, वेदालंकार उपाधि के पाठ्यक्रम को बदलने का एक प्रस्ताव मने ही शिक्षा-पटल में पेश कर रहा है। वेदालंकार उपाधि वाले तबीहार अक्षरवा और पढ़ी वाले स्वयंके जायेंगे इसका तो मुझे

कुछ खर नहीं है। यदि बहुत से हमारे ज्ञातक और विरोधनः वेदालंकार सचमुच ऐसा ही वेशा अपना बनगें तो वे उस वेश में सजेंगे ही, इसमें कुछ लुगई नहीं है। पर साथ ही उनको वेद सम्प्रदायी योग्यता भी काफी होनी चाहिये। और वह योग्यता "पुराने अक्षरले वाले परिद्वनों की कृमकमडकता वाला" न हो, बावजूद पुराने असली पाण्डित्य के साथ साथ नये ज्ञान वाले पुरुषों को भी प्रभावित कर-सकने वाली हो। यह ज़रूरी होना चाहिये कि न तो पुरानी परिद्वनई रहे और न नया ज्ञान। दोनों का अच्छाईको का संग्रह होना चाहिये। अन्तः वेदालंकार उपाधि का यह शिक्कापत तो ठाक है कि उस उपधि से वेद का विशेष ज्ञान जितना संचित होता है उतना उनम नहीं होना। इस लिये कुछ ऐसा विचार है कि एकदश द्वादश में ता एक सामान्य पढ़ाई हो। पिछले दो सालों में वेदालंकार होने वाले वेद सम्प्रदायी ज्ञान को विशेष रूप से प्राप्त करें। इन विषय में जा ज्ञातक-ऋषु और कुछ निर्देश या सुझाव भेजना चाहें ने अवश्य भेजने की छुपा करे। पर जा यह शिक्कापत है कि वेदालंकार को वेद के परिद्वत ( जिन्हें दुनियां का गौर कुछ पता नहीं ) समके जायेंगे वह तो कुछ समय में अपने आप हट जायगी, जैसे यह विद्यालंकार के सम्बन्ध में भीमे थोमे हट चुकी है। बल्कि अलंकार सम्बन्धी कों भी उपाधि- ( कों क अक्षरान्त उपाधि गुरुकुल कांगड़ी जैसी एक उच्छेद संस्था के स्नातकों की है वह लगभग प्रसिद्ध हो चुका है ) हमारा प्रलिष्ठा को बढ़ाने वाली होगी। पर यह होगा तभी जब कि गुरुकुल कांगड़ी से उच्छेद स्नातकों के निकलने की परंपरा जारी रहेगी, अर्थात् जब कि गुरुकुल संस्थानक अपने योग्यता, गुण और ज्ञान के बल पर ही अपने कुल के नाम और उपाधि को सुप्रसिद्धित करने वाले बनने में अपने को गुरुकुल-अनुप से थोड़ा बहुत उच्छेद हुआ मानेंगे और इसके विपरीत जो गुरुकुल के नाम और उपाधि के बल से अपना काम चलाने की, अपना स्वार्थ सिद्ध करने की तुल्य द्रोहिणी प्रवृत्ति की शुरुआत दें-बने लग, है यह एक दम बन्द हा जायगा।

[ ५० ३ क रोष ]

इसी प्रकार हमारे शरीर में जो कुछ भी गड़बड़ी-रोगाक्षुण्ण-रुद्धिग्नर होने हैं—ने सब अदृश्य अन्तःशक्त ( Internal Government ) के विनाउ के कर प ही हो सकते हैं तथा उसके ठीक हो जाने पर हमारा कार्य इस प्रकार मुच क रूप से चलने लाता है जैसे—शरदु में,

"पहने न गुरु, सोह अस धरणी  
नीति-निपुण सुप की जस करणी।

इस प्रकार, युक्ति तथा प्रमाओं द्वारा यह बात निश्चिन्त हा जानी है कि मनुष्य, केवल शरीर मात्र हा नहीं होता अपितु उसमें एक अदृश्य शक्तिरूप शरीरों भी सम्मन्वित होता है। परन्तु क्या इस बात को पुष्ट संसार की कोई चिकित्सा प्रणाली भी करने के तय्यार है ?

इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मआयुर्वेद का हाथ सधमे प होने उठना है। यह कहना है:—

“एतस्य निवन्धस्य फलं चिकित्सा पुरुषस्यः पुरुषस्तु चतुर्विधिति नश्य—जीवात्म-समगमः” ॥

इस संदर्भ में स्पष्ट है कि आयुर्वेद का उद्देश्य उस पुरुष की चिकित्सा करना है जो शरीर तथा शारीरी के समवाय सम्बन्ध से निर्मित होता है। शरीर तथा शारीरी का यह समवाय सम्बन्ध जब तक बना रहता है, तभी तक पुरुष चिकित्सा का विषय रहता है।

आत्म शक्ति के न्यूनता का धारण करता हुआ—यह ब्रह्म आयुर्वेद—१८वीं शताब्दी के आरंभ तक—सिद्धत्व के समान, उन्नत मूलक कथे अज्ञान ही ब्रह्म रहता। परन्तु १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पश्चिमजन्म ने भी सिर उठाया, जिसने आत्म शक्ति के इस भास्वर को ऊँचा उठ-कर—वहाँ के चिकित्सा जगत् को न केवल चकचाँध ही कर दिया अपितु उने पुनर्नया प्रकाशिन करने के एक युगान्तर भा उपस्थित कर दिया।

पाश्चात्य देशों में, महात्मा हनीमैन ही पहिला चिकित्सक हुआ है जिसने वहाँ के चिकित्सा जगत् में, प्रथमवार, भेदा नाद के साथ यह घोषणा की है कि “हमारा यह दृश्यमान जड़ शरीर, एक अदृश्य जेनन शक्ति का, यावत् उपकरण मात्र होता है, जिसमें जीवित्वायत्न में, समकथ प सम्बन्ध से घाम करनी हुयो यह शक्ति, उसके साथ एकत्व को प्राप्त हो जाती है”।

सबसे शरीर में व्याप्त, वह आत्म शक्ति ही इस शरीर पर निर्बाध-रूपेण शासन करती है तथा शरीर के सब अङ्ग प्रत्यङ्गो का सम्पत्कया संचालन करती रहती है; जिसके कारण, हमारा वृद्ध युक्त मन, इस शरीर-रूपी रथ को—जीवन के उच्च आदर्शों की ओर सदा अग्रसर करता रहता है। (देखिये—Organon of the physician) हनीमैन के इस लेख को पढ़कर, क्या उपनिषद् का निम्न श्लोक स्मरण हुये बिना रह सकता है ?

“आत्मानं राधिन बद्धि, शरीरं रथमेव च

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रथमेव च” ॥

यद्यपि, पाश्चात्य देशों के दार्शनिक तथा धार्मिक विद्वान्, आत्मा के अस्तित्व को चिकित्सा संस्वीकार करने चले आये हैं, तथापि चिकित्सा विज्ञान के प्रत्यक्ष बादी। वह, आज भी आत्मा के अस्तित्व की उपेक्षा कर रहे हैं; जिसके कारण उनका चिकित्सा—विषयक उन्नति लम्बित सी हुई पड़ी है। महात्मा हनीमैन का निरन्तर वज्र-निनाद होने हुये भी, वे पक्षपात की गाड़ लित्रा में निमग्न होने के कारण, “पश्यन्वपि न पश्यन्ति” तथा “श्रुद्वयन्वपि न शृणोति” की अवस्था में सोये पड़े हैं। परन्तु, महात्मा हनीमैन—अपने इस आविष्कार के प्रकाश में—चिकित्सा विज्ञान की दोड़ में उनसे कौनों आगे निकल गए हैं।

रोग के अधिष्ठान को सूक्ष्म शक्ति के रूप में निश्चित कर लेने पर, महात्मा हनीमैन को, प्राकृतिक रोगोपादाक पदार्थों (Natural morbidic Agents) को भी सूक्ष्म-शक्तियों के रूप में मानना आवश्यक हो गया। जब रोगोपादाक पदार्थ, आत्म शक्ति के समान—सर्वथा

अदृश्य ही हैं तब उनकी ज्ञान बीन में सम्यय तथा शक्ति का दुरुपयोग करना हनीमैन को कैसे सख हो सकता था! यह, शीघ्र ही, कीड़े मकोड़ों के पीछे पड़ने के क्षान में, रोगों में प्रगट होने, रोग के स्वरूप को पहचान करने में दश चित्त हो गया। उसने बताया कि रोगों में, स्वस्वायत्ता के प्रतिकूल, जो भी लक्षण समुदाय (Totality of symptoms), चिकित्सक को अपने आत्मा मन तथा इन्द्रियों द्वारा लक्षित होता है—वही उस रोगी में रोग का—स्वरूप—होता है तथा उसका प्रतीकार हो जाने पर वह रोग-मुक्त हो जाता है।

हनीमैन का यह दावा है कि रोगों में रोग के स्वरूप का परिचान प्राप्त करने का इयत्न सुगम तथा सम्यक् उपाय हो ही नहीं सकता !

जब तक, आत्म शक्ति का, निर्बाध रूपेण, शरीर पर शासन बना रहता है तब तक शरीर के सब संज्ञान वा कार्य, गम्भीर जन पर चलती नाव के समान, इस प्रकार मुच्चार रूप से चलने रहते हैं कि कोई असाधारण संज्ञान वा कार्य लक्षित हो नहीं हो पाता। परन्तु, अ्योंही, किसी बलवश विदेशीय शक्ति (Natural morbidic Agent) का हमारा आत्म शक्ति पर अधिकार होजाता है, त्यों ही बहुत से असाधारण स्वज्ञान वा कार्य (Abnormal sensation & function) शरीर में प्रगट होने लगते हैं। किं असाधारण स्वज्ञानों (जैसे, मिश्र प्रकार की पीड़ाओं का होना, असधारण गर्मी सर्दी का लगना, असाधारण क्षुत्पिपासा का होना, तथा जी मिचलाना इत्यादि) का परिचान स्वयं रोगी को ही हो सकता है अतः ये स्वानुभूत लक्षण (Subjective Symptoms) कहाने हैं; तथा असाधारण कार्यओं (जैसे उद्धल कृद, कंपन, लासो, लकवा इत्यादि) का परिचान चिकित्सक को भी हो सकता है अतः ये परानुभूत लक्षण (Objective Symptoms) कहाने हैं।

इस प्रकार विदेशीय शक्ति से आत्म हुयी २ आत्म-शक्ति की प्रजा, इन स्वानुभूत लक्षणों के हा हा कार तथा परानुभूत लक्षणों की उद्धल कृद के मित्र से अपने मित्रों (चिकित्सकों) की सहायता प्राप्त करने के लिये बारम्बार पुकार मचाती है। क्या, वह, अपने पर हुये २ विदेशीय शक्ति के आक्रमण को सूचना, अपने मित्रों को, इन साधनों के बिना, किन्हीं अन्य साधनों द्वारा, अथवा सुगमता से तथा सली प्रकार पहुंचा सकती है ? तब, क्या चिकित्सकों का भी यह कर्तव्य नहीं हो जाता कि, इस सूचना को पाने ही वे अपने मित्रों को सहायता पहुंचाने में एक क्षण का भी विलम्ब न करें !

परम कारुणिक परमात्मा के सृष्टि-रूप द्वारा रखा गया यह रोगों के आक्रमण के प्रकाशन का उपाय, क्या अपूर्ण हो सकता है ? क्या इस उपाय द्वारा ही, चिकित्सकों को, रोगका पूर्ण-परिचान प्राप्त करने में समर्थ न होना चाहिये। क्या, जब Stethoscope तथा तापमापक यन्त्र इत्यादि नहीं थे तब परम पिता परमात्मा की प्रजा का दुःख दर्द किसी को पना ही नहीं चलता था ? क्या, केवल अणु-

वीक्षण यन्त्र (Microscope) द्वारा ही रोगों का निदान हो सकता है ?

चतुर वैद्य तो,

“श्रीकोशैव चतुरास्तरक्यन्ति परेकृतम् ।

गर्भस्यैव केतकी पुष्पं, आमोदेनैव बद्धवाम् ॥

के अनुसार, अनादि काल से आमतक, रोगी द्वारा अवि-  
व्यक्त किये गये लक्षणों द्वारा ही रोग का निदान करने में  
पूर्वै समर्थ होते चले आये हैं। क्या निपुण-गुरुण हस्त-मुला  
पर तोलकर ही वस्तुओं का प्रमाण (भार) नहीं जान लेते ?

यह सब कुछ अङ्गीकार करने हुये, महारत्ना हनीमैन  
का वेदज्ञ लक्ष्मण-समुदाय द्वारा ही रोग निदान करने का  
उपय किस प्रकार अनुपुष्ट तथा प्लस तोष जनक कहा  
जा सकता है ?

क्या होमियोपैथी में, उतने समय—टाइफाइड के  
रोगियों की चिकित्सा भी सम्भव नहीं हो जाती—जिनमें में  
कि, एनोपैथी में ( रोगी के रक्त में उक्त रोग के कीटाणुओं  
की उपलब्धि न होने के कारण) पुरा निदान भी नहीं  
हो पाता ?

होमियोपैथी, अपने निदान के आधार पर ही, घोषणा  
करती है कि किसी भी रोग का कोई निश्चित काल  
( Course ) नहीं होता, अपितु, प्रत्येक रोग लक्षण-समु-  
दाय के आधार पर—प्रारम्भ में ही निःशेष किया जा  
सकता है।

इस प्रकार चिकित्सा के कार्य में असम्भव को सम्भव  
कर दिखाना, क्या रोगी में रोग का सत्यम् ज्ञान प्राप्त किये  
चिन्ता सम्भावित हो सकता है ?

जिस चिकित्सा प्रणाली में रोगी-परीक्षा का ऐसा  
उत्कृष्ट साधन विद्यमान है उमके सर्वोत्कृष्ट होने में किन्ते  
सन्देह हो सकता है ?

### गुरुकुल-समाचार

गण सप्ताह अञ्जी वर्षा हो जाने के कारण गुरुकुल  
की वाटिकाओं और किमानों के खेतों को पर्याप्त लाभ  
पहुँचा है। गुरुकुल के चारों ओर खेतों में फूले हुए सरसों  
बसन्तनामक शुभ सूचना दे रहे हैं। ब्रह्मचारी गण  
बसन्तौत्सव मनाने की तैयारी कर रहे हैं। इस बार की  
बसन्त पञ्चमी गंगा के उम पार मनाई जायगी। मिडिली  
वर्षा के कारण यद्यपि शीत बहुत बढ़ गया है, 20 दिन  
प्रायः १४ बजे तक घना कुहरा भी छाया रहा, तथापि ब्र-  
ह्मचारियों के स्वास्थ्य पर इसका कोई बुरा असर दृष्टि-गोचर  
नहीं हुआ। चिकित्सालय में कोई रोगी प्रविष्ट नहीं हुआ।

### संस्कृतोत्साहिनी सभा का जन्मोत्सव

विगत रविवार १६ जनवरी को महाविद्यालय की  
संस्कृतोत्साहिनी सभा का जन्मोत्सव श्री पं० विद्यानिधि  
जी सिद्धान्तकार के सभापतिवृत्त में बड़ी सफलता के  
साथ मनाया गया। संस्कृत भाषा में ब्रह्मचारियों के  
ओजस्वी और प्रभाव शाली भाषण हुए। अन्त में श्री  
सभापति जी द्वारा सर्वोत्तम ब. का. भण्ड लेखक, कवि और  
समस्या-पूर्ति कर्त्ताओं को पारितोषिक दिए गए। सर्व  
प्रकार से यह सम्मेलन सफल कहा जा सकता है, इसके

लिये संस्कृतोत्साहिनी के अन्त्री श्री. विद्या-सागर जी अन्व-  
वाद के पात्र हैं।

### गुरुकुल चित्तोद्धार के वार्षिकोत्सव की धूम

गुरुकुल चित्तोद्धार के ११ वां वार्षिकोत्सव  
१, २, ३, तथा ४ फरवरी १९४१ को होना निश्चित हुआ है  
आर्य जगत् के बड़े २ इयत्थान दाताओं के माधुय होने।  
ब्र० श्रीश्वर व्यायाम विशारद की अध्यक्षता में ब्रह्मचारी  
व्यायाम तथा खेलों का प्रदर्शन करेंगे। उत्सव की तैयारियां  
बड़े जोरों पर हैं। जनता से प्रार्थना कि यह अधिक से  
अधिक संख्या में सम्मिलित हो लाभ उठावे। उत्सव  
में नये बालकों का प्रवेश भी होगा। प्रवेशद्वय गुरुकुल  
चित्तोद्धार कार्यालय से भगाये जा सकते हैं।

### गुरुकुल शिवाङ्क के राजकुल के कुवरों का प्रवेश

गुरुकुल चित्तोद्धार में श्री महाराज शिवदानसिंह  
जी के सुपुत्र कुंवर मानसिंह का हाल ही में प्रवेश  
हुआ है। उद्योग राजगृह का बः प्रथम बालक है।  
उद्योग महाराज की क्षत्र क्षाया में गुरुकुल चित्तोद्धार का  
भविष्य उजल ही होगा इस में क्या सन्देह है। जनता तथा  
राज के जागीरदारों से प्रार्थना है कि वे भी अपने बालकों  
को गुरुकुल में प्रवेश करा, आदर्श शिक्षा का लाभ  
उठावे।

### गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की रजत जयन्ती

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में  
श्री. प्रो० गोपाल जी की अध्यक्षता में एक डेपूटेशन  
फरीदा बाद बल्लभगढ़ तथा पवल्ल काम करता रहा। वहाँ  
आर्यमाध्यों ने डेपूटेशन का स्वागत किया और नगर में  
धूमधन धन इकट्ठा करने में सहायता प्रदान की, जिसके  
लिये उनका हृदिक धन्यवाद है। डेपूटेशन सफल रहा।  
गुरुकुल रजत जयन्ती का सम्प्रेष इन सब स्वागों में अशुद्धी  
नरह उद्घोषित किया गया।

रजत-जयन्ती महोत्सव २१ फरवरी से २४ फरवरी  
१९४१ तक होना निश्चित हुआ है। इन से पूर्व १६ से २०  
फरवरी तक श्री लाम्बी केवलानन्द जी महराज की हीवान  
हाल देखलो में कथा होगी, जिसका समय विभाग यथा  
समय प्रकाशित किया जायगा।

गुरुकुल रजत जयन्ती के उत्सव के लिये बुकानदारों  
के प्राधान्यपत्र अभी से आने प्रारम्भ हो गये हैं। दं.  
हलशर्मा की बुकामें और एक दाबा Hymn वी० हो चुका है  
जो बुकानदार अपनी बुकामें उस में लेकर लगाना चाहें  
उनके लिये स्थान इसी समय Hymn वे किये जा सकते  
हैं। बुकानदारों का किराया निम्न प्रकार होगा।

हलशर्मा की बुकामें	१०)
दाबा	५)
फल	३)
पुस्तकें	१)
कपड़ा	१)

## जाड़ों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी धातु क्षीणता पुरानी खांसी, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शीक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव १-) आध सेर २-) १ सेर ४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियों से तैयार की गई ये गोलिणं सब प्रकार की कमजोरियों में अकसीर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करती हैं।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजांत और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ॥) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ॥) तोला

## धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियां बेच रहे हैं इसलिए दया खरोदने समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

मांघ	{	देहकी—बांदी चौक।	
		मेरठ—सिपर रोड।	
पर्सियां	{	कलकत्ता—पूजेशी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।	
		लाहौर—	हस्पताल रोड।
		पटना—	मछुभाटोली बाँकीपुर।
		अजमेर—	वैद्यराज सरदारोहाल जी कड़क चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी जिनसहानपुर**

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य —)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥]

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६]

गुरुकुल कागड़ी, गुरुवार १६ मार्च १९६७; ३१ जनवरी १९६१

[ संख्या ४१

## वेद (ब्राह्म) धर्म ही सर्वतोभद्र क्यों है ?

( लेखक:—शा.बा.पं. वं. चन्द्रकान्त जी वेद-वाचस्पति वेदमधीय विस्व-श्रीलार पुरत )

( २ )

वेद धर्म जगत् को सुन्दर, शान्तिक, एवं साया बतारकर 'पर' की मात्रक मरीचिका में भटका कर साधक का इह तथा परलोक लक्ष लक्षी इकरण लयुव इसमें दोनों ही लोकों की उन्नति के जिये व्यापक दाष्ट रखी गई है। चाचाक ने जदां प्रकृति एवं इसके भागों पर बल दिया—“अणु कृत्वा धृतं पिवेत्, ” वहां बौद्ध धर्म ने “सर्वं दुःखम्, सर्वं शून्यं, सर्वं क्षणिकम्” जगत् को दुःखमय और निस्सार बतारकर प्रकृति का उपेक्षा की और फलतः एक बार भिक्षु धर्म (संन्याम) अन्तरय फैल गया; परन्तु साथ ही व्यावहारिक व्यवस्था भी विश्वङ्कल होगई। ईसा-मसीह की बाइबल के Sermon the mount में वृक्ष एवं पक्षियों के दृष्टान्त से अप्रामदह के जियेवियं गये उपदेश से तो रोमन कैथोलिक लोगों में मन्सुप का धर्म फैला था परन्तु लगभग १२वीं शताब्दी में रोम और फ्रांस के संघर्ष से इस पर व्यावहारिकता का रंग चढ़ाया था। अतः प्रोटेस्टेन्ट लोगों में देखी जाने वाला व्यावहारिकता का अर्थ ईसाइयत को नहीं अपितु प्रीस और रोम का है। वेदधर्म में तो पद पद पर ऐहिक अन्धध के भोग और त्याग के उपदेश दिये गये हैं। तुक की कुटीर में समित्याशि आये हुए शिष्य को “मा विद्या या विमुक्तये” के साथ साथ “कुरालाक्ष प्रमदितव्यम्, भूयै न प्रमदितव्यम् ” (ते० उ०) भूति का उपदेश भी दिया गया है। यही कारण है कि पाश्चात्य प्रजा के समय साहित्य में एकजिहवा (One-sidedness) है। वहां आर्यप्रजा ने वेद-उपनिषत्, महाभारत जैसे सर्वांगीण सर्वदेरा साहित्य को काजसरिता की तरंगों में पढ़ाया है।

( ३ ) जरा जीव के विषय में विचार करके देखें। सेनेटिक (Senetic) धर्मों ने आत्मा की उत्पत्ति बतारकर

जड़वाद (Materialism) को अपनाया और जड़वादी होने हुवे भी विज्ञानवाद के चोने में आत्मा का उगति ने पूर्व विद्यमान जगत् के द्रष्टा के रूप में ईश्वर की उता मान और यह मूल गये कि आत्मा को माने बिना जगत् और जगत् के द्रष्टा दोनों ही निस्सार हैं। बौद्धमत की बाल ही निगली है। इमने तो आत्मा का सर्वथा बिल्कार किया और आलस्य विज्ञान और प्रकृति-विज्ञान के रूप में विज्ञान के प्रवाह Stream of Consciousness को पैसा बहाया कि सब कुछ ही बह गया. और शून्य ही शून्य रह गया। परन्तु वेदधर्म में आत्मा को भाज कहा, ब्रह्म (महात्मा) कहा, अन्धज्ञ होते हुए हुवे भी अनादि, अनन्त, अत्रन्ता बनाया बाल ने भी अधिक सुक्ष्म होते हुवे भी जीवन की उपाति बनाया—“बालादेिकमणीयम्कम्” ।

( ४ ) ईश्वर के स्वरूप के बारे में वेद धर्म के विचार अद्वितीय हैं। ब्रह्म को अन्तर्यामी (Immanent) तथा पर (Transcendental), केन्द्र (Centre) और परिधि (Circumference) दोनों साथ ही साथ बताया गया है “अप ते आत्माः सन्तर्याम्यसुः” “स ओतश्च प्रोतरन विमुःप्रजासु” यहूदीधर्म (Judaism), ने प्रभु को उपदण्ड राजा के अर्थकर रूप में चित्रित किया है। ईसायत ने प्रथम में तो प्रभु को मानव जाते के पिता (Fatherhood of God) के रूप में कलित करके प्रक-नत-ज्ञान के प्रभाव से धोये धोये प्रभु की कल्पना में उन्नति की है। गौड धर्म ने तो पहले ईश्वर जीवादि अदृश्य तत्वों के विषय में विचार हा नहीं किया था और जब किया तब उस में हिन्दु धर्म का रंग चढ़ चुका था।

( ५ ) ईश्वर, जीव तथा प्रकृति का परस्पर क्या सम्बन्ध है इसका बयान बुद्ध-सुषण तथा अज्ञ-प्रजा के रूपक से जैसा वेद धर्म में किया गया है, ऐसा समार के किसी भी धर्म में नहीं है। जीव, प्रभु को राजा, पिता, माता, स्वामी, मित्र और पति के रूप में किस प्रकार अनुभव करता है यह अलौकिक दृश्य केवल वेद धर्म में है।

## ‘पोखर’

(श्री अमर)

वैभाष जेट की दोपहरी ।  
 झिल्ली की मन मन खर लहरी ॥  
 निष्पन्द वायु को ऊष्मा से ।  
 हो गयी और भी जो गहरी ॥१॥  
 मैं चला, चलो मिय परछाई :  
 अब भी वह थी कुल्ल अलसाई ॥  
 उफ, मानव को आवश्यकता ।  
 पैमा लू में भी ले आई ॥२॥  
 जिस तरह बना चलता आया ।  
 अपने को यों छलता आया ॥  
 जलने कदम्ब की छाया में ।  
 मैं भी जलता जलता आया ॥३॥  
 यथाप कुरा उसकी काया थी ।  
 पृथ्वी पर फिर भी छाया था ॥  
 मैं रुका—, नहीं पर सोच सका ।  
 ऊपर यह किसका माया थी ॥४॥  
 जब आँखें नुली, उधर देखा ।  
 ऊसर देखा, बजर देखा ॥  
 गेंदला, छिछला जन लिये हुए ।  
 इक छोटा सा पोखर देखा ॥५॥  
 देखा पशु आये, खग आये ।  
 गिरते पकने डगमग आये ॥  
 अपना कटु प्यास बुझाने को ।  
 दुनिया के सब लगमग आये ॥६॥  
 बुझ गयी सभी का प्रबल प्यास ।  
 थो जितने मेरे आस पास ॥  
 पर मैं, तृष्णा से लडा किया ।  
 बैठा संयम का बना दास ॥७॥  
 सधने उसके भीतर देखा ।  
 भातर निर्मल अन्तर देखा ॥  
 पर मानव की दुबल पवित्रता  
 उसने बाहर बाहर देखा ॥८॥

## ‘मधुमास के दिन आ गए’

—श्री श्री कुमार शर्मा

( १ )

दिसके करों के स्पर्श से  
 हिम राशि गिरि की घुल चली,  
 अति शीघ्र सिङ्कड़ी सी सरित—  
 की गह सहसा खुल चली,  
 निमल तबल जलधर से  
 विस्तार फूलों को मिला—

( २ )

हेमन्त बाताहत विटप  
 जजेर खड़े थे बाग में,  
 निकले नए पल्लव कुसुम,  
 वे गा रहे खुद राग में,  
 प्रत्येक शाखा सज गई  
 आधा फूलों को मिला—

( ३ )

अरमान पूरे हो गए  
 सूनी लता की गोद के,

मेरे सुविन भी आँखें

सुख-दर्प के आमोद के !

विश्वास हो वह क्यों न, जब  
 शृंगार शूलों को मिला—

## गीत

सरसों के पीले फूलों पर अंकित मेरा ही पीलापन ।  
 मेरे उर का ही मधु लेकर-  
 मधु श्रुतु बिलराती आती है,  
 मेरा ही खोया गायन यह  
 पंचम में कोयल गाती है,  
 मैं देख रहा-कण कण मैं है विम्बित मेरा बीता जीवन ।  
 मेरे उर का उल्लास मुखर-  
 सब हंसते हैं, सब गाते हैं,  
 मैं सुल गया—मेरी कृतियों से  
 ही सब मन बहलाते हैं,  
 धरती का जीवन बन कर वह आया मेरा ही पागल पन ।  
 तरुओं के नव पल्लव दल पर  
 होता मेरा ही चिन्तन,  
 मेरी उच्छ्वास सुरभि से भर,  
 चल पकती है यह मलय पवन,  
 उपवन की खिलती कलियों पर चित्रित मेरा ही हास रुदन ।  
 सरसों के पीले फूलों पर अंकित मेरा ही पीलापन ।  
 —‘सूर्य कुमार’

## ‘पतम्बर का साथी कुसुमोत्सव’

१.

फिर आज हरे नर, धन, उपवन ।  
 विकसित लतिका के नए सुगन  
 जिस तक से निष्ठुर पनभर ने  
 दो पत्तों का भी किया हरमा  
 वे पाते हैं नूतन पल्लव ॥

२.

सरिता के शीतल नील मलिन-  
 से बही खेवता मलयानिल ।  
 पतम्बर में थी जो चलो गई,  
 आ गई वही । फर से को फल  
 खर में लें मादक ॥ अ. मनव ॥

३.

जब जब प्रमूत नव खिलते हैं  
 भोंके समीर के चकते हैं;  
 ये पराधीनता में जकड़े  
 युवकों के बाहु भचलते हैं ।

कर देने का नूतन विद्रुव ।  
 पतम्बर का साथी कुसुमोत्सव ॥

४.

जग तो यद्यपि बहलाएगा  
 उर की पीड़ा सहलाएगा;  
 पर इतनी सागी सुपमा को  
 बोली कैसे सह पायेगा

‘यह भावहीन मुकसा मानव ?  
 —‘विशाल’ ॥

# होमियोपैथी तथा अन्य चिकित्सा प्रणालियों में रोगों का वर्गीकरण

( Classification )

( वे० जी० डा० कोल्पकास जी विद्याबंधार विज्ञानी )

रोगों के अधिष्ठान, स्वरूप तथा कारणों का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी, चिकित्सक को चिकित्सा के कार्य में संप्रतिपत्ती सफलता नहीं प्राप्त हो सकती है जब उसे प्रत्येक रोग का विशेष ज्ञान भी सम्पन्न तथा पहिने से उपस्थित हो।

अधिष्ठान भेद से एक रोग, भिन्न २ प्रकार का स्वरूप धारण कर लेता है इससे किन्से स्मरण हो सकता है। जिस प्रकार एक गुरु द्वारा पढ़ाया गया पाठ उससे दस शिष्यों पर प्रायः दस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करना देना गया है, उसी प्रकार एक रोगोत्पादक पदार्थ दस प्राणियों पर प्रायः दस प्रकार के रोग-व्यवस्था उत्पन्न कर देता है। क्या शीत का प्रभाव भिन्न २ प्रदर्थों पर भिन्न २ प्रकार का नहीं होता? इष्ट प्रतिदिन वेधने हैं कि शीत के प्रभाव से, एक मनुष्य को केवल प्रतिश्याय, दुस्तक का काम तथा तीसरे को ग्युमोनिया तक हो जाता है। इसी प्रकार चेचक के दिनों में किसी बच्चे को इन्फेन्सी ग्लैन्डी, किसी को म्पाधारण तथा किसी को घातक प्रकार की माता (चेचक) निकलनी रहती है।

जिस प्रकार धारासार में बरसला पानी, मट्टी के देनों का चूना कर देता है, लकड़ी को कुड़ २ गला देना है परन्तु गिरिशिलाओं का पूरा गीला करने में भी पक्षधर्म रहता है, उसी प्रकार, एककी रोगोत्पादक पदार्थ किसी मनुष्य को एक बम बिच्छू देता है, किसी पर कुछ हल्का-प्रभाव प्रदर्शित करता है तथा किसी को, चिकने भडे के समान, झड़ता छोड़ देता है।

एककी रोगोत्पादक पदार्थों के इय प्रकार के भिन्न-भिन्न प्रभाव को प्रदर्शित करने वाले भिन्न अधिष्ठानों में निहित, इस कारण को रोगातृशयिता ( Susceptibility ) कहते हैं। जिस मनुष्य में यह रोगातृशयिता त्रिनती अधिक होती है, वह रोगोत्पादक पदार्थों से तना ही अधिक प्रभावित है। इसलिये एक मनुष्य कभी मलेरिया, कभी टायफाइड, कभी ग्युमोनिया तथा कभी क्षय-रोग के पारश में बध होता रहता है तथा दूसरा बीरोग रहता है।

यह रोगातृशयिता न केवल अधिष्ठान भेद से, अपितु, प्रत्येक रोगोत्पादक पदार्थ के लिये भी एक अधिष्ठान में भी, भिन्न २ पथी जाती है। जिस प्रकार कमल, दिनकर की कर माला से ही खिलते हैं, शीतल चन्द्र-किरणों से नहीं, उसी प्रकार कुछ मनुष्य कुछ विशेष रोगोत्पादक पदार्थों से ही प्रभावित हो पाते हैं सा से नहीं। इसी लिये यह आवश्यक नहीं होता कि जो मनुष्य, मूलने मान की गन्ध से प्रभावित हो वने के से लक्षण प्रदर्शित करने लगने हैं वे क्षय रोग से या उसी प्रकार

सुगन्धता से प्रभावित हो जाय तथा-जो नासुद मितान् महिलासे सुवास की गन्ध से भी मुकाम पा जाती है वे हिस्टीरिया से भी अवश्य लगनी जायें? रोगातृशयिता में, रोगोत्पादक पदार्थों के प्रति इस प्रकार की विभिन्नता उत्पन्न करने वाली यह रोगातृशयिता क्या होती है तथा किसे उत्पन्न होती है इसका परिज्ञान इस अध्याय के प्रतिप्र भाग से स्वयं हो जायगा।

भिन्न २ रोगोत्पादक पदार्थों में उत्पन्न किया गया रोग का स्वरूप ही न केवल भिन्न २ माना है अपितु उस के लिये कान की म प्र भी भिन्न २ अयुक्त होती है। इसी लिये, जो रोग, वर्षा नदी के समान, चटपट अपना काम समाप्त कर के चलने बतने हैं वे तीव्र रोग कहाने हैं। परन्तु जो रोग, शीतकल के समान आने भी शीतः २ ते ओग जाने भी शीत, २ हैं पर सदा के लिये मेहमान नहीं बन जाते, वे नानि तीव्र कहाने हैं। कुछ रोग ऐसेहोते हैं जो, कुम्हकारों के समान, एक बार प्रवेश पाकर अपन प्रभाव शनः २ उत्पन्न करने रहते हैं परन्तु जाने का कभी नाम तक नहीं लेते, वे स्थायी रोग ( Chronic Diseases ) कहते हैं।

इस प्रकार, अधिष्ठान, कारण तथा काल इत्यादि के भेद से रोग-शास्त्र "मानाकपधराः कोलाः विचरन्ति महातले" के अनुसार, अनेक रूपों में प्रगट होने दिखायो देते हैं। रोगों के इन भिन्न २ रूपों के कारण रोगों की संख्या असंख्य सी हो जाती है जिसेका सभ्यम् ज्ञान प्राप्त करने के लिये चिकित्सक को अनेक सौर्य संशयसुरों की अपेक्षा हो सकता है। परन्तु उसे इस कार्य के लिये किन्दा स्वल्प समय मिलता है!

चिकित्सक को दो एक वर्ष के अव्य काल में समस्त रोगों का परिज्ञान प्राप्त कराने के लिये, आयुर्वेद के आदि पुरुषों ने, रोगों के इस असंख्य परिवार क वर्गीकरण कर दिया है जिसेके द्वारा रोगी-परिक्षा क, यह मह सागर एक कुंभ में समा जाने के कारण हन्य-मलकवद् हो जाता है।

रोगों का पेंसा वर्गीकरण वही हो सकता है जिसमें समस्त रोगों का केवल एक ही उद्गम-स्थान या मूलधार है। जिस प्रकार एक बड़े अक्काश में पूरा हुआ ऊर्ध्व-नभि (मकड़ी) का तन्तु सन्तान वितान (ताला) उस के शरीर से ही निकलता है तथा उसी में समा जाता है उसी प्रकार, जब रोगों का समस्त परिवार एक ही उद्गम-स्थान से निकलता, तथा उसी में समा सकता हो तभी उसका सक्षित रूप हो सकता है।

रोग-परिवार का इस प्रकार का एक उद्गम-स्थान या मूलधार है भी या नहीं, यदि है तो कौन सा है? यह एक बड़ी निकट सपस्या है।

जिस प्रकार सूर्य्य वंशीय राजाओं की अनन्त वंशाली के अनेके मनु महाराज ही एक उद्गम-स्थान हैं तथा वृक्ष के अस्तंब, पर पुष्प फल, शाखा प्रति शाखा नने इत्यादि का एक ही मूलधार होता है उसी प्रकार  
[ शेष पृ० ६ पर ]

# गुरुकुल

१६ माघ शुक्रवार १९६७

## साथ में अंग्रेजी उपाधि भी क्यों न दी जाय ?

(उ०—श्री आचार्य रामचंद्र जी)

गत अंक में मैं अंग्रेजी उपाधि के मोह की चर्चा कर चुका हूँ। परन्तु युक्त प्रान्त के एक अच्छे कुशल आयुर्वेद के छात्रक इस विषय में कुछ ऐसा लिखने हैं कि उस पर ध्यान दिये बिना नहीं रहा जा सकता। मुझे इनका कार्य और औपचार्य स्वयं देखने का भी सुअवसर एक बार हुआ था और उन्हे देख कर मुझे खूब प्रसन्नता हुई थी। अपने एक पत्र में ये छात्रक लिखते हैं:—

“हम गुरुकुल के पढ़े चिकित्सकों को चिकित्सक के क्षेत्र में इस प्रदेश में पर्याप्त सफलता मिलती है परन्तु कुछ बातों में कठिनाई होती है जो क्रियात्मक जीवन आगने से ही पता चलती है। इधर तीन वर्षों से लगभग चिकित्सा करने हुए मेरे सामने कुछ कठिनाईयाँ आयीं हैं उनको आपके ध्यान में ला देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। अतः आपको लिख देता हूँ अगर आप उचित समय में तो इसमें सुधार करवाने की कोशिश करें।

“१—गुरुकुलमें छात्रावसथ अंग्रेजी भाषामय है क्योंकि इसी भाषा को राज मय्यता है। हमारी उपाधि को अहिन्दु जनता तथा अन्य हिन्दीभाषीय मूढ़ जन नहीं समझते और नहीं उनसे इसका उच्चारण ही ठीक होता है अतः मेरी सम्मति में हमारी आयुर्वेदिक उपाधि का कुछ अंग्रेजी रूप भी होना चाहिये, ऐसा कि अन्य आयुर्वेदिक संस्थाओं का दे। जैसे—D.I.M. (ऋषिकुल) H.B.M. हिन्दु यूनिवर्सिटी (आयुर्वेदाचार्य के लिये)। G.I.M.S. पटना विश्वविद्यालय इत्यादि। तत्पर्य यह है कि सभी आयुर्वेदिक संस्थाओं की उपधियों का अंग्रेजी रूप भी है। आपको पता ही है कि हमारे बहुत से छात्रक O.M.Sc. आदि लिखते हैं पर यह भी आपकी यूनिवर्सिटी से स्वीकृत उपाधि नहीं। अतः आप इसे ही अपना अंग्रेजी अंग्रेजी उपाधि को स्वीकृत कर लेंगे तो बहुत अच्छा और सामयिक होगा। आप अंग्रेजी का प्रमाण-पत्र देने ही है अगर उसी के साथ G. A. A. M. S. (Graduate in Ayurvedic and Allopathic Medicine and Surgery) की उपाधि भी दें तो बहुत अच्छा हो इस विषय को आप गुरुकुलोपसमा में भी विचारार्थ रख सकते हैं।

“२—गुरुकुल का आयुर्वेदिक पञ्चमहासंज्ञक विद्यार्थी ध्यान से और परिश्रम से पढ़ें तो मैं हिन्दुस्तान की समस्त आयुर्वेदिक शिक्षा संस्थाओं से देखने के बाद

कह सकता हूँ कि सर्वोत्तम है। परन्तु यू०पी० सरकार ने हिन्दु विश्वविद्यालय और ऋषिकुल को अधिक्त सम्पत्तियां सन् १९४० के Indian Medicine Act में की है। गुरुकुल में एक कमी थी कि वहाँ का कोर्स १५ वर्ष का था पर अब तो आपने भी ५ वर्ष का कर दिया है इस लिये ये सब अधिक्त आपको होने चाहिये, पर ही नहीं। हिन्दु यूनिवर्सिटी के छात्रक गुरुकुल छात्रक होने के बाद A. Chinn में तथा ऋषिकुल के B. Chinn में रजिस्टर्ड हो सकते हैं। आपके छात्रक ५ वर्ष में चिकित्सक करने के बाद ही कर्माह्वय में तथा १० वर्ष में चिकित्सक करने के बाद ५० फुलस में रजिस्टर्ड हो सकते हैं। इस विचार में भी कठिनाई-इत्यादि में उन्हीं के छात्रकों को सम्पत्तियां जा रही है। १०० बैचों की यू०पी० गवर्नमेन्ट ने प्रामो-में नियुक्ति की जिसमें १६२ हिन्दुयुनिवर्सिटी के छात्रक हैं, १० ऋषिकुल के, एक आपके गुरुकुल के। तथा शेष अन्य संस्थाओं के। हमारे गुरुकुल के अनेक छात्रक बहुत उच्च विद्यालय में जाना चाहते थे। थोड़े में मैंने दो छात्रों लिखी हैं छपवा उचित व्यवस्था और प्रयत्न करने की कृपा करेंगे ऐसा आशा है।

एक छात्रक मैंने जो दूल्हो बात लिखी है वह तो ठीक है। हमारे आयुर्वेद के छात्रक हिन्दु विश्वविद्यालय तथा ऋषिकुल के आयुर्वेदिक छात्रकों के काम में काम न-महल समझे जाय, अतः भी बहुत तो न समझे जाय इसके लिये काम सम्मान पूर्वक जो ध्यान करना आवश्यक तो वह सब किया जाना चाहिये। युक्तप्रदेश में ही क्यों पंजाब आदि प्रान्तों में भी हमारे आयुर्वेदालोक सेवा के लिये सर्वथा योग्यता-सम्पन्न आने जाने चाहिये। इस विचार में श्री मुन्ध्याधिष्ठाना जी के कार्यालय द्वारा कल किया भी जा रहा है।

परन्तु उन्होंने जो पहिली बात लिखी है उसके साथ में सहमत नहीं हो सकता। यह तो अच्छा है कि ये उन में से नहीं हैं जिन्होंने अपने आप ही एक अंग्रेजी अकादमी की उपाधि निःसंकोच होकर अपने साथ लगा ली है, अतः ये धृति और द्वांस नथा दृढात्मत देने हुए अभील करने हैं कि गुरुकुल को स्वयं ही अंग्रेजी संस्कृत की उपाधि के साथ साथ एक अंग्रेजी उपाधि भी देनी चाहिये।

मेरा तो सीधा करना यह है कि यदि हम ऐसा काम लेंगे तो अंग्रेजी उपाधि से बिना न रह सकेंगे—तो हम गुरुकुल ब रहेंगे। छात्रक की एक से बहिल लिखि है हिन्दु विश्वविद्यालय आदि शिक्षा संस्थाओं में अंग्रेजी उपाधि देना भी आवश्यक समझा वे गुरुकुल नहीं हैं, उनका अंग्रेजी गुरुकुल उचित नहीं है। मेरी-दृष्टि में उनको तो धीरे धीरे गुरुकुल की तरफ जाना है। उन्होंने साथ में स्वीकृत की उपाधि की है इतना लिखा है सो ही अच्छा किया है इस से ये एक कृतज्ञ आने बड़े हैं गुरुकुल की तरफ आये हैं। जब हमारा देश-स्वातंत्र्य में आयेगा—अपने आप को पा ज्ञेयता तो हमारे देश में कौन-सी बिदेसी भाषा में उपाधि देने का विचार रखने में आपने मन में न लायिगा। अतः हम ने तो इस संकल्पकाल में बिदेसी भाषा के मोह से अन्धों को भी-बचाना है, इस अल से



निष्ठावाना है न इसमें हमें ही फुल जानना है। इस ठीक-रुटि से जब हम देखेंगे तो हम यह नहीं सोच सकेंगे कि अंग्रेजी उपाधि देना गुरुकुल के लिये अच्छा है या सामयिक है।

यह हमारी पराधीनता, गुलामी के कारण है कि हमारी संस्कृत की उपाधि की बगैर तक हमारे देश में कीमत नहीं; राज मान्यता नहीं। पर जो अनन्त देश हैं उन-विदेशों में हमारी उपाधि चलती है। क्यों कि वे उपाधि के आकारों को नहीं देखते, उपाधि धारा ने क्या पड़ा है यह देखते हैं। इस लिये विद्यालंकार और आयुर्वेदालंकार विदेश में जाकर तो जी. एच. डी. वा एम. डी. हो जाते हैं, यहाँ वे एम. ए. या कुछ अन्य उपाधि की धरीक्षा में बैठने योग्य भी नहीं होते। इस पराधीन मनेदृष्टि के मुकारिणों में ही हमें उठे रहना है, और इसे ठीक कर देना है, न कि स्वयं मुक जाना है।

स्वर्गीय आचार्य ए. एम्. जी. की सुनार्द हुई यह बात कि याद आती है कि उन्होंने सुप्रसन्न लाला हरदयाल जी के एक हंस को वैदिक मैगजीम में प्रकाशित करने हुए उनके नामके आगे 'एम. ए.' भी छप दिया था तो लाला जी बड़े-भारतल इत्थे थे। उन्होंने लिखा कि "डी. ए. एम. ए." आदि तो इस ज्ञात के सूचक हैं कि हम उस नीति-मूढ करते वाली और राष्ट्रता में सन्न करने वाली प्रक्रिया में से गुजर कर आये हैं जो अत के तीव्र नों को नष्ट करती है, अतः ऐसे प्रथमान जनक शब्द को मैं अपने नाम के साथ लगाता नहीं चाहता।" इसी तरह श्री राधादासजी गौड़ ने (जो गुरुकुल में भी रसायनोपाध्याय रहे हैं) एक पुस्तक में सुवि अग्रुधि पत्र द्वारा अपने नाम के आगे लगाये गये एम. ए. शब्द को शुद्ध बताया था। रामदास गौड़ इमेरा हिन्दी में तार दिया करने थे। कुछ समय हुआ ए० अच्युतलालजी को हिन्दी में दिये गये तार कलकारों में छोड़े थे, अब नो और। कां लोग ऐसा करते हैं। श्रीमत्पथ शिवप्रसाद शुक्ल तो अन्धी मोट्ट गाड़ी पर संख्या भी अंग्रेजी की जगह हिन्दी में लिखने के कारण बहड़ तक योग्य चुके हैं। हमारे लिये तो सामयिक ये बातें हैं। इन कार्यों में यदि कुछ कटुता है तो वह कटुता भी गुरुकुल को शोभा देती है और अब तक देनी रही है। गुरुकुल वैसी शुद्ध स्वधी राष्ट्रीय संस्था (अंग्रेजी की जगह) हिन्दी (या कर्ण संस्कृत) ऐसा आग्रह रखे यह तो हमसय की सम्पत्ती माना है। अतः यदि कुछ गुरुकुल बातों को अंग्रेजी की उपाधि की आवश्यकता प्रतीत होती है तो यह इसी धन का चिह्न-सम्पन्न जाना चाहिये कि उन-ज्ञानकों पर गुरुकुलीय भावना का रंग अच्छी तरह नहीं चढ़ पाया है।

और क्या सम्भव अंग्रेजी की उपाधि न होने से जानकों को—आयुर्वेदिक या अन्य जानकों को—सफलता देने में बाधा रहती है? मुझे नो इसमें सन्देह है। यदि कारण है तो यह बहुत ही छोड़ा है। नगदय है। इसे तो स्वाभिमान पूर्णक सहन्य चाहिये और पसल होना चाहिये। पर मेरे विचार में कटुता नार तो जलकलता के अन्य ही, कुछ कारण

होते हैं और हम सम्भव या अविवार से, इसका दोष अंग्रेजी आकारों से रहित अपने सादा संस्कृत उपाधि पर मड़ देने हैं। आम निष्कम अनिय कि यदि हम सचमुच कुशल, सेवाप्राप्य, समर्थ सेवा या विदुष्य, या अन्य प्रकार के कार्य करना होंगे तो हम री उपाधि की कोई भी जांच पड़ताल न करेगा। देश के ऐसे बहुत से कर्मकर्ता हैं जिनका सर्वथ सम्मान है पर लोग जानते या नहीं हैं कि उनके पास कोई अंग्रेजी की उपाधि है या नहीं।

यह जो कहा गया है कि गुरुकुल की उपाधि को दूसरे लोग-समक नहीं सकने और उसका शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सकने खां तो पूरा विचार कर नहीं कहा गया। क्या इसका यह मतलब है कि अंग्रेजी की उपाधि को (उसके अर्थ को) लोग अर्थिक सम्मान हैं और अंग्रेजी उपाधि का (अंग्रेजी शब्दों का) उच्चारण अर्थिक शुद्ध करने है? क्या आयुर्वेदालंकार 'या' आयुर्वेद भूषण की अपेक्षा, एम. एम. सी. वा 'जी. ए. एम. एम. अर्थिक सम्मान में आग्रहणी? जब अर्थ सम्पन्न हो है तो G. A. M. S. अर्थात् (Graduate in Ayurvedic Medicine and Surgery) को अपना सीध आयुर्वेदालंकार का अर्थ सम्मान और सम्मानना हम लोगों के लिये कहीं अर्थिक आसलन है। उच्चारण ता अंग्रेजी शब्द की अपेक्षा संस्कृत शब्द का ही एक भारतवासा (हिन्दी ही नहीं मुसलमान भी) हद हल म डूक करता। अंग्रेजी के Doctor को डी. ल. जी. जे. अंग्रेजी रहि से उसका शुद्ध उच्चारण करने कितने लोग (पढ़े लिखे भी) बोलते हैं। बालियो वषं हम पढ़े लिखे लोगों के बोलमें रहने वाले हमारे कर्मचरी भी मजे से 'डॉक्टर साहब' या 'डाक्टर' कहते हैं। वे यदि 'शैव जी' की जगह 'शैव जी' भी कहेंगे तो क्या हजं है? अंग्रेजी का प्रमाण पत्र हम देने हैं वह और बात है। वह दीक्षान कसमय नहीं दिया जाता वह तो हमारे प्रमाण पत्र के अंग्रेजी भाषन्तर के रूप में जिसे ज़रूरत होती है, जो इसे मांगना है उसे दे दिया जाता है। ऐसे तो आयुर्वेदालंकार को भी अंग्रेजी या किता अन्य भाषा में भाषन्तर करने बताया जा सकता है, यदि ज़रूरत हो। पर उपाधि तो वेदान्तकार ही रंभी। भारतीय उ ता ने गांधी की महामा। जिने श्रीमत्पथ मालवीय जी आदि को पारन-भूषण आदि। कहना शुक कर दिया, मामों ये उपाधि दे हीं। तो अंग्रेजी में भी उन्हें Mahatma Gandhi ही लिखते हैं, Great-soul Gandhi नहीं लिखे जाने। महामा का अर्थ अंग्रेजी में सम्मानना हो तो बेशक उन तरह सम्मान्ये। फिर किसी विषयविद्यालय की ही हुई उपाधि के शब्दों की परिवर्तना तो और भी अर्थिक मानी जाती है, क्योंकि यह ऐसे ही नहीं किन्तु एक विधान के द्वारा ही जाती है।

मैं तो कहीं प्रमाण पत्र अंग्रेजी में नहीं देता, यदि किसी को अंग्रेजी में भी चाहिये हो, तो अपने किले हिन्दी (या संस्कृत) के अस्तौ प्रमाण पत्र की अंग्रेजी भाषन्तर की प्रतिलिपि बेशक दे देता हूँ। मतलब यह कि है

असली प्रमाणात्-पर हिन्दी या संस्कृत का ही होना है। शायद आम लोगों को यह पता न हो कि गांधी सेवा संघ का असली विधान हिन्दी वाला ही है, अंग्रेजी वाला नहीं, जिधक बहुत ही ( प्रायः सभी प्रसङ्ग) राष्ट्रीय और धार्मिक संस्थाओं के भी असली प्रामाणिक विधान अंग्रेजी के होते हैं हिन्दी या 'दु' वाले उसके केवल अनुवाद होते हैं, वे प्रामाणिक नहीं होते। हमने बहुत से नेता सोचने अंग्रेजी में हैं, असली प्रस्ताव भी अंग्रेजी में ही बनाने हैं, पीछे में उन्हें हिन्दी या हिन्दुस्तानी या उर्दू का रूप दिया जाना है। यही मानसिक गुलामी है जिसको ऋद्धि से निर्मूल करने के लिये बलिष्ठ ऐसी बातों के विरोध रूप में ही गुरुकुल बोला गया था।

जापान में एक जगह, कबिचर हबोर्द् नाथ डाकुर ने अंग्रेजी में बोलने से इन्कार किया था कहा था कि मैं अंग्रेजी में बोल नहीं सकता अतः अंग्रेजी में यो ही बोल भी नहीं सकता और बंगाल में बोले थे। यह है स्व-भाषा का स्वयं जिन (अंग्रेजी) बतों के साथ) पोषित करने और इसे प्रतिष्ठान करने को गुरुकुल बोला गया था। अतः यदि गुरुकुल के स्नानकों में भी अंग्रेजी के सःश अंग्रेजी मय मनोवृत्ति ही पैदा हो जाती है तो यह इस धर्म का लक्षण उल्टा है कि गुरुकुल-यन्त्र में कहीं कुछ होर आगया है, पर यदि गुरुकुल ही स्वयं अंग्रेजीयन के आगे खुद जाग है तैसा कि स्नानक जी के प्रस्ताव का अभिप्राय प्रतीत होता है— तब तो मालला ही स्वतन्त्र पर स्वयंसेवा चाहिये।

[ पृ. ३ का शेष ]

रोगों के इस असंख्य परिवार का केवल एक उदगम-स्थान होना तो अवश्य चाहिये अन्यथा उसका वास्तविक वर्गीकरण ही ही नहीं सकता।

पलापैथिक चिकित्सा प्रणाली में तो रोगों का वर्गीकरण एक आधार पर हो ही नहीं पाया है। यदि उस के शरीर के संस्थानों के आधार पर किये गये वर्गीकरण को स्वीकार किया जाय तो उसमें, उन रोगों का जिनका किसी संस्थान-विशेष में सम्बन्ध नहीं होता, (यथा चेतक, कानरा, इट्कूपरजा इत्यादि) किसी संस्थान में (System) सन्निवेश नहीं हो पाता। यदि जन्म या उत्पत्ति के आधार पर किये गये वर्गीकरण का मान लिया जाय तो, जिन रोगों (जैसे सूत्रों, हिस्टोरिया, दमा इत्यादि) के उत्पादक कोटाएण्डों का अभी तक पता नहीं चल पाया है वे शेष रह जाते हैं।

आयुर्वेद में समस्त रोगों का वर्गीकरण एक आधार पर पाया जाता है या नहीं, इस प्रश्न के उत्तर में यद्यपि हमें "नहीं" मुनयी दे रहीं हैं तथापि निम्न प्रमाणों के बल पर हम "हाँ" कहने का साहस कर सकते हैं। भाष प्रकाश लिखना है:—

"कमला कथिता केचिन्, द्वां त्रः तन्नि चापरे  
कर्मे शोषोद्गवाश्रान्ये, उवाचयत्किंवा" म्नाः।

इस श्लोक में रोगों का वर्गीकरण उपात्त विभागों में किया गया है जिनमें, स्वाधारक तथा किया जाने वाला, वात, पित्त, कफ, शाना विना, र, केवल शोधन एवं चि में

के अन्तर्गत हो जाता है। इस पर भी रोगों का वर्गीकरण एक आधार पर नहीं हो पाया है। परन्तु इस श्लोक की व्याख्या करके निम्न संदर्भ से यह स्पष्ट हो जाना है कि आयुर्वेद के मत में रोगों का मूल/आधार केवल एक "दृक्कर्म" ही माना गया है जिसने हो बात पित्त कफ के विरोध उत्पन्न होते हैं।

"मिथ्याहार-विहार-प्रकृपित्त-वाल पित्त कफजाः दृषजा इत्युच्यन्ते"। इसमें शब्द उदायी है "ननु मिथ्याहार-आमपि प्रा कन सुकृतेनैव वैकर्म्यं दृश्यत एव, ततो दृषजे स्वपि प्राकन दृक्कर्म्येन कारणम्—तत्कर्म्यं दृषजा इत्युच्यन्ते?" इसका निम्न उत्तर दिया गया है "दृषजेत्यपि-वस्तुत आदि कर्ण दृक्कर्म्यं वर्गित एव; तन्न मिथ्याहार विशार दृषिताः दृषा हेतवो दृक्कर्म्ये—तन्नि दृषजा उच्यन्ते"।

इसमें स्पष्ट है कि आयुर्वेद के मत में समस्त रोगों का मूल/आधार "दृक्कर्म्यं" ही ठहरना है जिसमें वे वात, पित्त, कफ के तम मुख्य तने निकलते हैं। फिर इन तीनों में से ही भिन्न र रोगों का समस्त परिवार, शाखा प्रती शाखा, पत्र, पुष्प, फलादिक रूप में, प्रकृष्टित हो जाता है।

होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में भी रोगों का वर्गीकरण ठीक इसी प्रकार हुआ है। महत्त्वा हसीमैत्र ममस्त रोगों का मूल/आधार, दुर्बलता के प्रति किये गये दृष्टिगन, (Ill-thinking) को समझते हैं, जो दृष्टिगन एक "दृक्कर्म्यं" के अनिर्दिष्ट और तो ही क्या स्वहता है? अतः मानना पड़ना है कि उक्त चिकित्सा प्रणाली में भी समस्त रोगों का मूल/आधार केवल एक ही होता है और वह, "दृक्कर्म्यं" है।

दृष्टिगन के इस बीज में कौन र से अंकुर निकलते हैं तथा बाद में उनमें से शाखा प्रति शाखाओं के प्रकृष्टित होने पर किस प्रकार यह एक विशाल तथा घना गेवा-वृक्ष बन जाता है—इत्यादि का वर्णन ही होमियोपैथी का रोगों का वर्गीकरण है जिसका सक्षिप्त रूप पाठकों के परिचान तथा मनोरञ्जनार्थ नीचे दिया जाता है।

महात्मा हनीमैत्र लिखते हैं कि जब तक मनुष्य सृष्टि-नियमों के अनुकूल चलने रहे तब तक—रोग क्या होता है?—इसका किंसां को पता भी नहीं था। परन्तु, अ्यों ही उन्होंने, प्राणिमात्र के कल्याण के लिये विविध परमात्मा के सांख्यीय महात्मन का—सांख्यीय भ्रम का—दृष्टिगन द्वारा उल्लंघन करना प्रारम्भ कर दिया त्यों र परम कृपालु प्रकृति-माता ने उन्हें अर्थात् में सामित रखने के लिये रोग रूपी बन्धनों का प्रादुर्भाव कर दिया। रोगों के इस अप्रदूत, दृष्टिगन को, महात्मा हनीमैत्र, मानसिक लज्ज (Mental ateli) के तम में पुकारते हैं। शारीरी के अन्तरङ्ग-तम भाग में उत्पन्न हुयं, र दृष्टिगन को यह आंच, उसके शासन को न जाने कहां तक कल्पित कर डालती, इस डर से प्रकृति माता उसे उसके रास्य की गतिः तम सीमा तक लघुकृ वेती है और बर्तान-वचन पर पटु कर, काज मारते, लाल र दानों के रूप में क्षमि-व्यक्त हो जाती है। बृहत् अन्तरात्मा का शासन, influx न.मक प्राकृतिक नियम के अनुसार, सदा केन्द्र में परिधि

की शीर प्रवाहित होना रहता है अतः मानसिक लज्ज का यह विकार भी उसी चार में वह कर अन्धर से बाहिर आ जाना है। इयालु प्रकृति अपने इन Influx द्वारा, वेष्ट्र से परिधि पर—त्वचा पर—सेको गयी इस बाह्य लज्जु द्वारा (जिसे Poxa कहते हैं) न केवल शारीरी के अन्तरङ्ग शासन को हानि पहुंचाने से बचा देती है, अपितु, उसमें षटपदी अन्न तथा वायु उत्पन्न करने उसे सचेत भी कर देती है कि उसे (शारीरी को) उनके प्रकृति के विधियों का उल्लंघन करने पर इस प्रकार का पुरस्कार भी मिल सकता है।

ऐसी अवस्था में, शारीरी के लिये उचित तो यह था कि वह अपने शासन के प्राकृतिक प्रवाह में, अतिरिक्त प्रेम-अल्ल बहा कर उस मालिन्य को सदा के लिये दूर करने का प्रयत्न करता, परन्तु, वह अपने दुष्कर्म के पुरस्कार में प्राप्त हुयी २ उस उत्कट वायु तथा विकट जलन से सहसा कीज तथा पेशान होकर, उसका सर्व-नाश करने के लिये हकीम, वैद्य अथवा डाक्टरों की रण में पहुंचता है। दूरवीर चिकित्सक लोग, त्वचा पर सामने बैठे उस रोग-राक्षस को अनेकानेक अस्त्र-हथियारों से एक बाह्य रोग समझ कर—उसका विनाश करने के लिये, उस पर तीक्ष्णति तीक्ष्ण औषधियों के शरो का प्रहार मारम्भ कर देते हैं। घर के यहि द्वार पर पहुंचे हुए बस चोर पर जब सामने से मार पड़ने लगती है तब वह लाचार होकर फिर उठते फिर लोट पड़ता है तथा घर की किसी अन्तरङ्ग कोठरी में लुका छिप कर आ बैठता है।

इस प्रकार त्वचा से उत्पन्न काफूर हुयी २ वह लज्जु, रोमी शीर चिकित्सक दोगों को, हर्षातिरेक से फुलाकर फुला बना देती है। रोमी, मूल को हनी मृगमना से भगा जान संतोष की एक सांस भरना है तथा डाक्टर साहिब मूजी को मलहम से मरा जान, इस प्रकार तबू क फड़ाक प्राप्त हुयी सफलता पर अपनी पीठ ठोकता है। परन्तु न तो विचारते दोगों को ही यह पता होता है कि उसका घर से बाहिर हुआ चोर, फिर अन्धर

दकेल दिया गया है; नाही, लाला चाजं करार कर भीड़ को भगा देने वाले कलकुर के समान, उस डाक्टर को ही यह डर होता है कि भिन्टों में टला टलायी वह बला—उसके रोमी पर, न जाने कब, कैसी २ विषम विपत्तियों की बिसाल गिराने वाली—वाली घटा बनकर आ शिरोगी! त्वचा से चलती की गयी वह लज्जु, बिजली बनकर, जब उस सख्त हुये २ (?) रोमी के किसी अन्तरङ्ग पर टूट चुकनी है तब कहीं, उनको गजना तर्जना सुनकर, चिकित्सक महाशय को पता चलता है कि उसने रोमी पर किसी नये रोग का गिरि-शिखर अचानक आ गिरा है। "कुछ बान नहीं" कहता हुआ वह अपने शस्त्राओं से सुसज्जित हो, उख गुरीय रोमी पर फिर पिल पड़ता है। रोमी का रोग राक्षस भी—धुपु.पि व्याध का आता दक, अपना धार कर चुकने के पश्चात् "मार कर भाग जा" को स्वरूप करता हुआ, यह जा, यह भा हो, रोमी के किसी अन्तरङ्ग नम माग में फिर जा छिपता है। पशु चिकित्सक की कड़ी मार का डर दूर हो जाने पर वह रोग

राक्षस "काले काले च प्रतिमानुनिष्टेत् इच्छ नर्पयत्" की नीति का अनुसरण करना हुआ फिर किसी मयङ्ग मेघ में नामने आ बग होना है। इस प्रकार, उस में तथा अन्तर चिकित्सक में एक प्रकार का गुच्छि-समर किड़ जाता है। ऐमे संभ्राम में किलकी विजय हुवा करनी है, यह सभी युद्ध-विधा-विशारद जानने की हैं।

महात्मा हनीमैत्र, संसार के विचार-शील चिकित्सकों का ध्यान इस शीर विशेष रूप से आकर्षित करता चाहते हैं कि वे आन्तरिक रोग (Internal Diseases) तथा यहि रोग (External Diseases) के भेद को पुरखनया समझने का प्रयत्न करें। क्या, जिं दोगों की जड़ शरीर के अन्तरङ्ग-नम भागों में जमी होती है वे यहि रोग हा सकते हैं? क्या उनके प्रयत्न लक्षित होने वाले स्वरूप का स्फाया कर देने पर उनका जड़ विनष्ट हो सकती है? क्या, जो मालो, काक के पतों तथा शस्त्राओं की बारम्बार काटकर उसकी जड़ को उद्यान-पाद्यों के पास पृ थो में छिपा छेड़ देना है, वह मालो कहलाने के दाम्य हो सकता है? क्या उसकी ऐसी किया से उद्यान-पादप पतप सकते हैं।

इसी प्रकार, शारीरी के अन्तरङ्ग नम मानस में पड़े दुरिक्लान के बीज से उत्पन्न हुयी २ यह लज्ज-बला, क्या अपने बाह्य लक्षित स्वरूप के कट छूट जाने पर सदा के लिये समाप्त हो सकती है? तया ऐसा होने पर यह, बहरी के समान, और अधिकाधिक नहीं फली फूलती? इसी लिये, महात्मा हनीमैत्र, इस Poxa नामक लज्जु को सहस्र शीर्षा राक्षस (Hydra-headed Monster) के नाम से पुकारते हैं। यही अनेकानेक मायावी, अपने जगुतायत्ना में, अचिछान भेद सं, दमा, दृष्टी, बहासोर भगम्बर, उग्रमाह इत्यादि २ अलक्ष्य दोगों के रूप में प्रगट होता रहता है। तय अपना सुपुत्रा वा विलासायत्ना में मनुष्यों को उस दशा में लं आता है जिसमें वे न जोते हो ई न मरते ही।

इस मायावी की सुपुत्रायत्ना ही मनुष्यों में एक प्रकार की रोगानुशयिता (Susceptibility) उत्पन्न कर देती है, जिसके पशोभूत रोगक वह ध्यान के समान उन्मत्त होकर इधर उधर किता हुवा कर्मा ऐले ध्यान पर मो ज. पहुंचना है जहां पर उले अतहाह (Syphilis) तथा उपद्वार (Sycom) का शकार हा जाना पड़त है। ये दोनों रोग राक्षस भी, Poxa के समान मौलिक तथा मठा-भयङ्कर होते हैं। इन दोनों रोग राक्षसों के ब्यस्त तथा समस्त रूपों से संसार के समस्त रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसी लिये ये दोनों, आयुर्वेद के वात, पित्त तथा कफ के समान, रोगों के मूल-कारण (Fundamental-Causes) कहाने हैं।

जब, रोगों के मूल-कारण रूप ये तानो रोग, व्यधि तथा साम्प्रद रूप से अपनी सुपुत्रायत्ना में रहते हैं तब ये मनुष्यों में भ्रम २ प्रकार की रोगानुशयिता (Susceptibility) उत्पन्न कर देते हैं। यही रोगानुशयिता, होमियोपैथिक विज्ञान में, रोगों को प्रवर्त्तक कारण (Predisposing Cause) समझी जाती है। इस रोगानुशयिता

ने अभिभूत पुनर्वो पर जब विश्व २ प्रकार के उत्तेजक कारण (Exciting Causes) प्रभाव डालने हे नव उनमें नला विष तीव्र रोग प्रसद हो जाते हैं। सूक्ष्म सूक्ष्म कारणों से उत्पन्न हुये २ रोग, आकर, कमी जाने नहीं, (जिना उपलब्ध के) अतः ये ही चिर-स्थायी रोग (Chronic Diseases) कहलाते हैं। यह बनाने की आवाश्यकता नहीं कि इन चिर-स्थायी रोगों की सपुन बन्ना पर, जब जब, उत्तेजक कारणों (जैसे अत शीत तथा अति-आनपादि) का प्रभाव पड़ ग-रै, नव लव, विश्व २ प्रकार के तीव्र रोग उत्पन्न हो जाते हैं। तीव्र रोग, चिर-स्थायी रोगों के प्रवृत्त रूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं होते।

आजकल के स्वस्थ संसार में कोई विरला मनुष्य ही ऐसा मिल सकता है जिसमें यदि रोग नहीं तो, किसी न किसी प्रकार की रोगानुशयिता भी विद्यमान न हो। हज़ारों, लाखों वर्षों से होने वाले आने रक्त-संशोधन के कारण इस रोगानुशयिता से कोई श्रुता बच-ही नहीं सकता। रक्त संशोधन के कारण ही मनुष्यों में वैतृक रोग (Inherited Diseases) आ जने हैं। इसी कारण जनमने अचोच बालक भी रोग-ग्रस्त होते हैं। कमी २ वैतृक रोग, जो पहिले सपुन बन्ना में रहते हैं, उत्तेजक कारणों द्वारा बाद में अत्युत्पन्ना में प्रगट कर वये जाते हैं।

यह रोगानुशयिता जिस मनुष्य में जितनी अधिक होती है, वह उन्में अधिक कान्छों द्वारा उनना ही अधिक प्रभावित होता है तथा रोगों की उत्पत्ती ही तीव्र-रूपान्ति प्रगट करता रहता है। जिस मनुष्य में रोगानुशयिता तो कम होगी है परन्तु वह उत्तेजक कारणों के प्रभाव में बाधवार आता रहता है उसमें या रोगों को ताम्र-रूपान्ति प्रगट हो ही जाती है, इसी लिये तुलसीदास जी लिखते हैं—

“अनि मंषपं करं जं कोई।  
अनल, प्रगट चन्दन ते होई ॥”

परन्तु, जिस मनुष्य में रोगानुशयिता नाव मात्र को भा नहीं होती उसमें उत्तेजक कारण, रोग उप-प्र करने में सर्वथा विकल हो जाते हैं। तब, यह,

“इगुन शम्भु शरासन कैरे,  
कामा वचन सना मन जैरे ॥”

वासी अवस्था में पहुँच जाता है। क्या समार में आज ऐसा एक पुरुष श्री हाथ आ सकता है।

आजकल ऐसे मनुष्य तो अनेक मिल सकते हैं जिनमें तानों प्रकार की रोगानुशयिता विद्यमान हो, अथवा जिनमें तानों प्रकार के सूक्ष्म कारण तीव्र रूप में लजिन हो रहे हों। ऐसे पुण, तुलसीदास जी की निम्न चौपाई के अनुसार काम बात कक, जोम अप्यार, कौष, पित नित श्यामी जाग ॥  
प्रीन करहिं जो तीनड भाईं.

उपजड सजिवात दुःखदाई ॥  
यदि, सजिप त की यातना सहे तो उसमें क्या आश्चर्य हो सकता है ?

परन्तु निम्नकारणों की परीक्षा भी सचिवात्मसे निरकर करने में ही छोड़ी है।

रोगों के मूल कारण, सूत, हान, तीन रोग राक्षसों से सुलाया, मर्या, प्रतपद मिटाए की अति प्रतिक्षण मये, २ रोगों के रङ्गों को बदलता हुआ मनुष्य, जब किसी ऐसे विकिसता शक्ती के पास पहुँच जाता है जिसे रोगों के लक्षण का अर्थान्न ज्ञान नहीं होता, तब तो उसकी वह परम्मत बनती है जो परम्मत के निम्नमेद की ११ बाँक्या में, बालाक, काक, लयने, खियर, तथा अतुर बाने से घिरे बख्खंद उच्य महाराज की, शेर ने बनसपुरी थी। क्या ऐसी चौकड़ी के हाथ पडा कोई भी जीव बच कर निकल सकता है !

बीजन, धन संयन्त्रिः, प्रमुचमरिचिकता  
पकैकमप्यनर्थाय, क्रियु यत्र चतुष्टयम् ।  
बीजन, धन संयन्त्रि, प्रमुच तथा अविवेक अनेने २ ही महा अनर्थ का डालने में समर्थ होते है, उसा प्रहार (1) Poison, (2) Syphilis (3) Sycoosis तथा (4) अर्द्ध बण्ड चिकिसा भी अकले २ क्या २ गजब नहीं डाल सकती ! परन्तु जब यह चारबाल चौकड़ी, उचर्य व चतुष्टय के समान संय डन हाकर किसी का घेर लेनी है तब तो उसका सिवाय परमेस्वर के और नोन रक्षवाग हो सकता है !

इस प्रकार बुध्दित्तन के बीज में उपर हुये २ इन तीन रोगोद्गमों (Miasm) से हो संसार के समस्त रोग प्रसुदित हा जाने हैं तब इहाँ तीन विभागों में पुनः सखिविष्ट हो जाते हैं। अतः हासियोरिया का रोगों के वर्गीकरण का यह प्रकार, आनुवंद के विदोच के वर्गीकरण के समा, पूछना क, पराकाष्ठा का पहुँच जाता है, जिसका अध्ययन तथा मनन करने, चिकिसक लोच, समस्त रोगों का सम्यगु ज्ञान, लक्षण-सम काल में, प्राप्त कर सकते हैं। इस वर्गीकरण का एक विशेष लाभ यह भी है कि रोगों के समा, समस्त औषधियों का वर्गीकरण भा—

- (1) Anti -Psoic—बख्खंद
- (2) Anti-Syphilitic—घातशकहर
- तथा (3) Anti-Sycoitic—उपर्द्धशहर

इस तीन विभागों में करके, चिकिसा के कार्य में सर्वतो-मुखी तथा सुनिश्चित सकलनः प्राप्त की जा सकती है। जो चिकिसा प्रयासों, आत्र तक, अनिश्चितता (Uncertainty) की त्रासि में बिसतती चिकिसा की प्रकिया को सुनिश्चितता के मुनेक पर्यंत के उचुङ्गुट्टु पर अचिधित करदे, उसने सर्वोच्छेद होने में किने सम्भेद हो सकता है ?

होमियोपैथिक विज्ञान वेत्ताओं की सम्मति में, चिकिसा का सुनिश्चितता के उच्चतम-शिखर पर पहुँचाने का सब से अधिक भय, महात्मा हनीमैन की हन कण्ड-कल्पना (Psoa-theory) को ही दिया जाता है; जिसने विषय में Dr. J. C. Allen लिखते हैं—

“महात्मा हनीमैन ने जिस समय “कण्ड कल्पना” के नात्र-मडक को खडा किया था उस समय उसी भी इसने बाल्मविक मुच्य का पता नहीं था ॥”

बीधरो हुलासराय के प्रबन्ध से शुक्ल मुद्रकालय शुक्ल कमाड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २।।)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल कागड़ी, गुरुवार २६ माघ १९३७; ७ फरवरी १९५१

[ संख्या ४२

**श्री महाराज जी !**

( स्वर्गीय स्वा० रामानन्द जी )

( वे० विरेक )

दूर तक फैली हुई पथरोझी अरायली पर्वतमाला, चमकती हुई चट्टानें, गर्मियों की लू, सर्दियों की खीरती हुई हवा, बिल्वे हुए गोबक, कटौली भरबेरियाँ, गहरे लाल रंग के देव, लज्जु, और लज्जु के बीच में अगना, यही है गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ।—

उन्हीं ऊँची दीवारों, कड़े कड़े दरवाजों, लम्बे बैरकों से मकान, सब कुछ विद्यालय और मजबूत।

पुस्तकें, के ऊपर आश्रम और विद्यालय के बीच में फैला हुआ मैदान, मैदान में खेलते हुए छोटे छोटे लम्बे बालक, और दूर पर आश्रम के एक कोने में लड़ी मुस्कुराती हुई एक काषाय मूर्ति।

छोटा रुद्र, छोड़ा माया, बुढ़ा सिद्ध, चेहरे पर हलकी मुस्कराह, गम्भीर मुद्रा, आँसों में क्लेश, अनुभव में सराबोर यही हैं 'महाराज जी' श्री स्वामी रामानन्द जी।

आप नमस्ते काजिए। 'नमस्ते महाराज जी' जवाब पायेंगे। फिर वे आपको शुभ मिलायें। की टाँह से देखते रहेंगे। ही नहीं सकता कि आपके हृदय में अज्ञा का भाव न आए।

मैं उनमें निरीक्षण में ५ साल रहा हूँ। सदा उन्हें यड़ी की लुरी की तरह पात्र है। यड़ी इनके कमरे में थी पर उसे भी उन्हें देख कर हीक मिलिया जा सकता था।

सुबह के तीन बजे। वे अपनी बोरी पर ध्यान मग होगे

उठो महाराज जी! वे अपनी छोटी खालटेन लेकर सब प्रवचनियों को उठा रहे हैं, अर्थात् माझे बार बजे हैं। कुछ लड़के तो शरारती होगे ही। सर्दी में नहाने से बचना चाहेंगे। पर महाराज जी अकुर अ पकोँ जान. गार के शाले में मिलेंगे। लड़के नमस्ते करते हैं अर्थात् 'हम नहाने जा रहे हैं।' कुछ बसते करते पीछे पीछे ही लोड भी आते हैं। पर सर्वह. कोच करे। यह तो खेह का हास्य है।

पहाड़ी के नीचे महाराज जी ने खेती का काम शुरू किया हुआ है। खेती कतने नहीं खुद करते हैं। बुढ़ा

शरीर, कोई अभिलाषा नहीं, कोई स्वार्थ नहीं, पर हर रोज शाम के साढ़े तीन बजे नीचे आकर आप उन्हें काम करते पायेंगे। (संभवतः वे सोचते ही 'कुर्वन्वेषह कर्माणि जिजीविषेत् शानं समाः')।

मुख्य यदि जानते बुझते मगान बन सकता है; तो वे थे। गरमी, सर्दी, बरसात, उनका जीवन गति उसी काम में निबांध चलती रहती।

अपनी कुछ इच्छाओं की अपन ही लिए बाल कर लेना भी कठिन होता है। और दूसरों के लिए अपनी कुछ इच्छाओं की बलि कर देना और भी कठिन है। पर दूसरों के लिए अपनी इच्छामात्र को खमस्त कर देना उससे बहुत ही कठिन है। और उससे भी कठिन है दूसरे की इच्छा को ही अपनी इच्छा बना लेना। महाराज जी जो कुछ करते थे केवल इसलिए कि किसी तरह गुरुकुल उन्नत और विद्यालय हो सके। वे किसी के अपने हाथ पसारने वाले व्यक्ति नहीं। न अपने लिए, न दूसरों के लिए।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का ऊपरी मैदान उन्हीं का मैदान किया हुआ है। पेड़ उनमें ही लगाए हुए हैं। और इस सब की मेहनत की गहरी क्षाप इनकी आकृति पर थी। गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को अपने स्व से सींचने वाले इस व्यक्ति ने न तो कभी इस समय का प्रचार ही किया और न अलखारों में प्रसिद्धि प्राप्त की और न कभी आकबक चकूताएँ ही दीं। संभवतः बहुत अश्लील तो नहीं पर ऐसी चकूताएँ तो वे बहुत दे सकते थे। लकने थे जैसी कि देकर आज के सन्यासीगण तथा अन्य लोग प्रसिद्ध हो जाते हैं। पता नहीं उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया। शायद उन्हें 'पुनैः श्यापात्र विस्मयकारकम् लोकैश्चणायाम् व्युत्पाद्य' रोके रहा।

आज वे नहीं हैं। सुनने हैं किसी दूसरे लोक में खले गए हैं। शायद 'महाकवि 'पे' को अपनी निज पत्नियाँ लिखने हुए किसी ऐसी ही व्यक्ति का ध्यान रहा हो।

'कितने अममकाल तक एक मीरनिर्भर की-अम्य कम्बुआओं में ही रहते विलोम हैं। कितने अमम मृदु-हाथ लोका विधि की-सिल अनजाने में ही होगे रसहीन हैं।'

## जीवित विद्यालय

ले० बीकुमार वर्मा

'अब वह न मिलेगा शुभ-आश्रय'  
( १ )

जिसके चरणों ने सिखलाया

इस जग में चलना सुँभल सँभल,

जिसके हाथों ने सिखलाया

करना कठोर भी काम सरल,

अब वह न मिलेगा गुण-संचय !

अब वह न मिलेगा शुभ-आश्रय !

( २ )

जिसके अधरो का लघुकम्पन

कहता था—'मत होना निराश',

जिसके मुख-मंजुल की आभा

करती जीवन का विमिर नाश,

अब वह न मिलेगा शोभाभय !

अब वह न मिलेगा शुभ-आश्रय !

( ३ )

जिसके अन्तर की स्थिरता में

ये एक रूप, मम और विषम,

जिसकी गोदी का छिपा प्यार

सहजा, देता था कभी मरम,

अब वह न मिलेगा सुदुल हृदय !

अब वह मिलेगा शुभ-आश्रय !

## धा तुम्हें स्नेह हमसे गुरु वर !

ये बीते दौराव के कुछ पक्ष—

स्थिति में का दृग् में भरते जल,

जब हमें बनाने को तुमने—

दी हमें किशकियां थी कोमल,

हम जाते थे गुस्से में भर !

अब शिष्टाई में हो चला बुधक,

तुम जेह मधुर थे हित चिन्तक,

केवल बूढ़ जेह नहीं मिलता—

मिलती है डांट बपट अवतक,

हम छूट गए आगे पथपर !

जीवन की ध्वनि थी राम राम,

तुम पूर्ण सफल तुम थे अकाम,

'तुम चले गए' ऐसा सुनकर—

में चकित रह गया हृदय ध्राम,

तुम चले गए झुलने विःस्वर !

धा तुम्हें जेह हमसे गुरुवर !!

—'विद्या'

## श्रद्धांजलि

वह द्यौत्य, मुर्खि, फिर स्नेह भरी

शिशुओं के प्रति करुणा दुलार,

शिशुओं से भोजे आनन पर

अंकित बत्सकता अमित प्यार ।

जग के जीवन में एक रूप

बन कर अस्तित्व विहीन स्वयम्,

जगकी गति ही अपनी गति है

यों ही चलते जाने का क्रम ।

यह अथक साधना फिर सेवा-

अन का यह अग्निम अनुष्ठान,

थी यशोकामना, अभिलाषाये

हुई उसी में लीयमान ।

कुल उपवन के आधार भूत

बन फिर जीवित त्रिकाल राम,

तेरे चरणों में युग युग तक

है मेरी श्रद्धांजलि प्रथाम ॥—

—'सुधांजना'

यह भ्रंज रहा है क्या अम्बर ?

गुरु नहीं मगर गुरु से ऊपर

मानव तुम देव ! इसी भूपर

साक्षात् सरलता के स्वामी ! तुम गए किधर ? तुम गए किधर ?

यह भ्रंज रहा है क्या अम्बर ?

दोनों संभ्यायें ये आती हैं

तब बुधली स्थितियां लाती हैं

प्राणों में मेरे कूक रहा—तेरे बोले "सन्ध्या" के स्वर

यह भ्रंज रहा है क्या अम्बर ?

हा सबेनाश ! हा सबेनाश !

हा स्वर्गवास ! हा स्वर्गवास !—

सुनकर यह मानव सिहर गया—यह कैसा विधि का स्वर्ग सुघर ?

यह भ्रंज रहा है क्या अम्बर ?

यह वेला भी खुदा होने की !

या कमजोरी थी दोनों की !

दोनों आपस में नाप रहे, है कौन तुल्य ! है कौन प्रवर !

यह भ्रंज रहा है क्या अम्बर ?

—'श्री जगदीश त्रय'

## त्याग का वह राग !

भर रहा मेरा हृदय है,

हर रहा मेरा हृदय है,

है छिपा इस राग में; कितना मधुर अनुराग !

गूँते मधु बचन क्षय क्षय,

और होता ध्वनित ज्ञीवत,

प्राज्ञ युक्त में फूँकती है प्राण—स्थितियां जाग !

क्यों न तब वे झुकराते,

और उनका गान गाते,

कह रहे—वह चेतना हम से गई है भाग !

त्याग का वह राग ! !

— श्री लक्ष्मणम् ।

## वह आदर्श जीवन

( वे०—श्री सतीशकुमार जी )

समाचार पत्र में काली २ मोटी रेखाओं के बीच में मैंने एक युग्मक समाचार पढ़ा, एक ऐसे व्यक्ति का जिसके बारे में वैदिक में शिष्यभाष के विद्याध्ययन करता रहा हूँ स्वर्गवास हो गया था। वह व्यक्ति बीतराम था, उसका जीवन हमारे लिए आदर्श था। उस व्यक्ति ने एक धार्मिक संस्था में ही सेवा कार्य करते हुए निष्काम साधना करने हुए अपनी आयु के अन्तिम तीस वर्षों २ वर्षें गुजारे थे। वे स्वामी जी थे।

स्वामी जी के अनीत के जीवन के विषय में मुझे बहुत कम बात है। उनका वर्तमान जीवन ही इतना आकर्षक था कि मुझे कभी और जानने की उत्सुकता ही नहीं हुई। इतना मासूम है कि संन्यास ने पहिने उनका नाम मुंशी राम सिंह था। स्वामी भद्रानन्द जी को वे अपना दीक्षा गुरु कहा करते थे।

जब मैं चतुर्थ भेणी में था तभी मुझे स्वामी जी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, परन्तु उनके निकट सम्बन्ध में मैं तब आया जब पंचम भेणी उन्नीस करके गुरुकुल प्रारम्भ गया। स्वामी जी हमारे कई विषयों के अध्यापक थे। हमारे गणित, अर्थशास्त्र, इतिहास, और धर्म शिक्षा आदि विषय उन्हीं के पास थे। स तवीं भेणी के भी यह सब विषय उन्हीं ही ले रने थे। आठवीं भेणी को आर्यभाषा और इतिहास भी, साध ही पढ़ाने थे। मूल में विशेषतः गुरुकुल में किसी के साथ अन्तर भंग होना कोई आश्चर्य की बात नहीं परन्तु स्वामी जी के पास विषय भी बहुत थे। हमने स्वामी जी को कभी भी कुर्मी पर बैठ कर पढ़ाने हुए नहीं देखा। सब अन्तरो में बैठे रह कर ही पढ़ाने थे।

स्वामी जी का सारा जीवन चलना हुआ सा था। उन्होंने कभी भी अपने जीवन में विराम और विश्राम का अनुभव नहीं किया। प्रातः काल से लेकर ब्रह्मचारियों के सोने के समय तक वे एक गति चक्र की तरह घूमा करते थे। बाद में आश्रम अधिष्ठाता बनने पर रात को भी कई बार चक्रभ्रम लगाने और जिन ब्रह्मचारियों के दाय उतर जाने उन्हें उठाने थे। ब्रह्मचारियों को सुलाना, उठाना, सन्ध्या हुकम कराना इत्यादि कामों को स्वामी जी स्वयं भी करते जाते थे। वे नियम में रहकर नियम पालन सिखलाते थे। भोजन भण्डार में स्वामी जी सब को बिल पिला कर स्वयं सन्ध्या से कथिन नियम के अनुसार अपनी रोदियों को पानी में भिगो कर खाते थे। एक ही समय आहार करते थे। ब्रह्मचारियों के प्रत्येक कार्य को उन्हीं की तरह करते, यानकों पर भी ब्रह्मचारियों के साथ ही जाते थे। गुरुकुल के इतिहास में यदि किसी व्यक्ति ने अपने दिन के अधिक से अधिक घण्टों को, अपने महानों के अधिक से अधिक दिनों को, अपने वर्ष के अधिक से अधिक महानों को और जीवन के अधिक से अधिक वर्षों को ब्रह्मचारियों के साथ एकाकार करने में बिलया है तो वे स्वामी जी ही थे।

झोटे बच्चों की इच्छा होती है। कि उन्हें सदा खेलना ही मिलना रहे। छड़ी भेंची में हमारी भी वही दशा थी। हम भी चाहते थे कि स्वामी जी अपने अन्तर में जितनी देर से आये उतना अच्छा है, परन्तु स्वामी जी कभी देर से नहीं आये। हमने उनकी इस समय की निरामितना को देख कर उस समय प्रायद मुग्धता कर बचपने में उन्हें 'लासगाड़ी' कहना प्रारम्भ कर दिया था, स्वामी जी यदि जीवित होते तो अपने इस नाम पर अब स्वयं हँसते। परन्तु आज हम अनुभव करने हैं कि हमने हास्य में ही उनके जीवन के एक गम्भीर सूत्र को जान लिया था। सब कामों को वे अपने निश्चिन कदमों के साथ करके खले जाते थे। दार्शनिक कास्ट के समय के लिए जो बात सुनी थी, वही स्वामी जी के व्यवहार में हमने अनुभव की। स्वामी जी के जीवन को बहुत सो मनोरंजक घटनाएं भी हैं जिनकी स्मृति अब केवल विषाद ही लाती है। स्वामी जी के साथ अपने वैयक्तिक सम्बन्ध के विषय में मैं यही कह सकता हूँ कि यदि मेरे जीवन में किसी ने मेरा सब से अधिक विश्वास किया है तो वे स्वामी जी ही थे। कौशल में आने पर भी मैं प्रतिवर्ष उनके चरख झूकर आना था।

स्वामी जी की आयु उनके शरीर और कामों से बहुत अधिक थी। केवल उनकी आयु का ध्यान रखकर आयु से अध्यापक का काम न लेने का विचार किया गया, परन्तु स्वामी जी ने कदा कि अभी मेरे में सामर्थ्य है और जब मैं अपने को असमर्थ समझता तब स्वयं कह दूंगा कि मैं नहीं कर सकता हूँ। परिणामस्वरूप कुछ अन्तर कम कर दिये गये पर फिर भी वे पढ़ाने रहे। पीछे बहुत वर्षों बाद इस वृद्धावस्था में भी पढ़ाई लिखाई का कार्य करते हुए जब उनकी मंत्र उद्योति मन्त्र हीमारे तब उन्होंने अध्यापन का कार्य छोड़ दिया।

स्वामी जी एक सफल वैद्य भी थे। आस पास के ग्रामों के निवासी सदा हा व्यापों जो वे औषधि ले जाया करते थे। यह कार्य अपने मन्त्र परीपकार भोर कर्त्तव्यभावना से किया, महंगो से महंगी इवाई देने पर भी कभी वेमै नहीं भिगे। स्वामी जी ने अपने जीवन को आवश्यकताओं के लिए जो कुछ अंश किया मन्त्र मजदूरों का तरह ही किया। इन्द्रमन्त्र की वैदिक विद्याल चट्टानों को अपने हथौड़े की अनथक खोद से तोड़ कर मैदान बनाकर ही उन्हींने बनाया। ऊँची २ जमीन को खोद कर तथा बाँटों को भर कर ही ( ) के हिसाब से कमारों का। पथरीली जमीन को खेत का रूप देकर, उसे पानी से सींच २ कर स्वामी जी जो कुछ भी शाक-सब्जी उगन्न कर सके उससे ही उन्हींने कमारों का। स्वामीजी ने अपनी इस कमारों का उपयोग एक ऐसे सुन्दर कर्म के लिए किया जो सदा उसकी याद दिलाता रहेगा। अपना इस गहरी कमारों द्वारा एक २ पैसा जाड़ कर तथा अपने कुछ प्रिय शिष्यों द्वारा कुछ चम्पा इकट्ठाकरके स्वामी जी ने एक अर्थ्य भद्रानन्द पुस्तकालय मभन बनवा दिया है। अब उनकी मोक्ष सम्पत्ति भी इस तरह उपयोग में आ गई है।

( शेष पृ० ७ पर )

# गुरुकुल

२६ माघ शुक्रवार १९६७

## स्वामी रामानन्द

(ने०—श्री प्र० वेदवत श्री इतिहासोपाध्याय)

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के निर्मात्री मेवक श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज इस समय यद्यपि पर्याप्त बयोवृद्ध थे किन्तु फर्ग भी घर सप्ताह उनके स्वर्गवास के समाचार को सुनकर मुझे बहुत धक्का लगा। यह जानकर श्री अधिका दुःख हुआ कि उनका एक देहावसान एक लारी के नीचे आ जाने से हुआ। वे गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के सामने वाला प्राण्डवटूक सड़क पर प्रवेश कर रहे थे कि एक फौजी लारी उन पर से गुजर गई। क्योंकि प्रमथ के समय वे एकाकी थे अतः लारी वाने उठे अपने साथ हाँ दिल्सां। ले गए श्रीर वहाँ इरविन हस्पताल में उनका स्वर्गवास हो गया। जिस महादुःखवत ने अपने ज वन के ३०-५ वर्षों का एक एक क्षण गुरुकुल की सेवा में व्यतीत किया हो उसके—यूँ चूँटनप्रस्थ होकर श्रीर गुरुकुल परिवार ने दूर विवंगन हो जाने पर गुरुकुल वासियों के हृदय में गहरी वेदना का उपपन्न होना निःसन्देह अत्यन्त स्वाम्याधिक है। इसी मास में होने वाले गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के रजन जयन्ता समारोह पर स्वामी जी का प्रभाव बहुत बढ़तकना। उचित तो यही था कि इस अवसर पर गुरुकुल-परिवार उनका अनवरत निष्काम सवा के लिए अपना कृतज्ञता प्रकट करता और उनका अभिनन्दन करता, लेकिन हुआ यह कि देव ने उन्हें इससे पहले ही हमारे बीच से उठा लिया। इस बात के मन में आने पर उनका स्वर्गवास प्रसामयिक और कष्टद्व अनुभव होता है।

मुझे भी अनेक वर्षों तक स्व० श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज के चरणों में बैठकर विद्याभ्यास और चरित्र निर्माण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। स्वामी जी का मेरे गृहजनों से बहुत अच्छा परिचय और सम्बन्ध था। अपने व्यक्तित्व अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि स्वामी जी की सबसे बड़ी इच्छा सदा यही रहती थी कि गुरुकुल की सेवा करे और विद्यार्थियों को स्वयंसेवक पर ले जाये। हमने दीर्घ काल तक गुरुकुल की अत्रैतिक सेवा करने हुए उन्होंने गुरुकुल जीवन के अनेक उत्तम-व्यङ्गाव देके, किन्तु कभी भी गुरुकुल के प्रति लिखना या पत्राङ्गमुख्य का भाव उनके हृदय में अंकुरित नहीं हुआ। गुरुकुल को नैतिक उन्नति के पथ पर अग्रसर देने के ही उनकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि वे कभी कभी विद्यार्थियों व अधिकांशियों की धरणा तक भी कर डालते थे। उनका 'पत्रताल' करना प्रसिद्ध था। किन्तु तारीफ़ की बात यह थी कि कभी न। किसी ने उन की

बाँट को दूर नहीं भ्रमना। क्योंकि उनकी युग कामा पर कभी किसी को सम्बोध नहीं हुआ और सब उनका अधिकार समझने थे। वे एक प्रकार से गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के बुधवितामह थे। उनके हाथों में वाले ब्राह्मणारी लैंकें की संख्या में खलक हो चुके हैं। स्वामी जी के स्वर्गवास के समाचार ने उन सब की स्मृतियाँ एक धार फिर नाजा हो जायेगी और मेरे यह लिखने का सम्पूर्ण करेनी कि स्वामी जी के उठ जाने से गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ निर्धन हो गया है।

यह बिलकुल ठीक है कि विशाल प्रासादों के कंगूरे यद्यपि दूर से ही दीख पड़ने हैं किन्तु उन की स्थिति उन की बुनियादों पर होती है, जो बुनियादों अरथ श्रीर जमीन के नीचे रह कर ठोस सेवा करती हैं। चिन' प्रतिकूल या नाम की लिप्सा के स्वामी जी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के एक ऐसे ही ठोस और रचनात्मक कार्यकर्ता थे। इन्द्रप्रस्थ को वर्तमान रूप में देने वाले का प्रधान इस और कम ही जाता होगा कि उसे यह रूप देने में स्वामी रामानन्द जी का किन्तना बड़ा हाथ था। यह ठीक है कि इन्द्रप्रस्थ की इमारतों को मेठ विह्वला जी के कारी-गदों ने कनामय बना दिया है, लेकिन इन्द्रप्रस्थ की असली इमारत स्वामी जी के स्तून, पत्नीने पर ही उठर रही है। इन्द्रप्रस्थ की दुर्गम पथरीली जमीन पर सड़क बनाना, उनके दोनों ओर सायादार पेड़ लगाया, नीचे नेलने के लिये मैदान तैयार करना, नावो सज्जी के लिये बनीचा लगाता, ऊपर इमारतों के बीच में विशाल स्वयंभू मैदान निकालना, शानदार पुस्तकालय—स्वामी जी के ही पुण्य परिश्रम का फल है। स्वामी जी एक र पीया लगाकर उसे प्रतिदिन अपने हाथ से सींचा करते थे। एक ही पीछे के मरने या किसी डाग तोड़े जाने पर वे दुःख मनाया करते थे। यह उन दिनों की बर्तन है जब मैं इन्द्रप्रस्थ के हाई स्कूल में पढ़ता था। मुझे इस बात का फल है कि मैंने भी श्री स्वामी जी महाराज की अण्यक्षता में स्थिर पर बजरी और मिट्टी की टोकरियाँ दोर्त थीं और पाथर फोडे थे। सबमुख स्वामी जी जैसे कार्य-नया और संयमी व्यक्तिके निकट रह कर एक बर्हसल प्रेरणा होती थी। यह सब काम स्वामी जी, जिना कुड़ लिये, एक ऊँचे सेवा-आदर्श और कर्तव्य-निष्ठा से प्रेरित होकर करते थे। उन्होंने अपने प्राण को गुरुकुल के साथ पेंसा एक रूप कर दिया था। कि कभी यह विचार ही मन में नहीं पैदा होता था कि यह भी कभी बाहिर ले आये होंगे, या गुरुकुल से कभी हम्का वियोग होगा। जीवन उनका हमना संयन और नियमित था कि उन्होंने अपने सारे संदिग्ध बात फिर एक वक्ता बिलकुल काले कर लिये थे।

मेरे महादुःखवत की हित गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के लिये एक अवर्हसल शकता है। इस दुःख में हम सब की सम्बेदना गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के साथ है। यह गुरुकुल ही स्वामी जी का परिवार था। आशा है, स्वामी जी की पुण्य स्मृति को स्थिर करने के लिये गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में अवश्य कोई प्रकाम किया जावेगा। स्व० स्वामी जी के



पुराने शिष्य व परिचित जब कभी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ जाया करते तो उन्हें वहाँ कुछ कभी अनुमन हुआ करेगी। संभव है, एक सुन्दर सा स्मारक इस कति को कुछ अंश में पूर्ण कर सके। अन्त में, मैं विद्वंगनामा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि सादर समर्पित करता हूँ।

## वे गुरुकुल के एक स्तम्भ थे स्व० स्वामी रामानन्द जी

(ले० भी० स० सहदेव जी)

संसार में पारमार्थिक रूप में लड़िमानी की तरह जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति स्वल्प ही हुआ करते हैं। राओहजम (Thoism) के प्रवर्तक महत्त्वा लुटेजे के कथनानुसार "कुछिमान व्यक्ति बिना कुछ किये सब कुछ काने का पक्ष करता है और अपने उद्देश्यों को वाणी का प्रयोग किये बिना ही दूसरों तक पहुँचाना है। अर्थात् कुछिमान व्यक्ति के आचरण द्वारा ही लोगों को मूक शिवा मिलती रहती है।" सचमुच महात्मा लुटेजे के उपरोक्त वचन स्वामी रामानन्द जी के जीवन में अद्भुतः चरितार्थ होते हैं। स्वामी जी कौन थे? उनकी जन्मभूमि कहाँ थी? इन प्रश्नों पर विचार न करने हुए हम उनके गुरुकुलांग-जीवन के विषय में विचार करेंगे।

आज के चालीस वर्ष पूर्व विश्व शांति के उपासक महर्षि व्यासम्भ के विचारों को क्रियात्मक रूप देने के लिए अमर शहोद स्वामी अज्ञानम्भ ने जब पंजाब के नगरों में प्रयाण किया तो उनके विचारों की द्वाप पंजाब की जनता पर पूर्ण रूप से अंकित हो रही थी। स्वामी अज्ञानम्भ जी के कथनानुसार स्वामी रामानन्द जी ने अपना जीवन कुलपिता के चरणों में सदा के लिए अर्पित कर दिया था। गुरुकुल का उद्घाटन करने समय स्वामी अज्ञानम्भ जी के सामने जितनी समस्याएँ उपस्थित थीं उनमें एक समस्या यह भी थी कि गुरुकुल में आर्य समाजी विचारों के लंग कहाँ से लाये जाएँ? सचमुच उस काल में जब कि वैलेन्टाइन शिरोल ने गुरुकुल तथा आर्य समाज को राज-नैतिक संस्था बता कर पाश्चात्य विचारों का सूत्रपात करना चाहा था, जिन समय आर्य समाज का नाम भी सुनाने न देता था, उस समय स्वामी अज्ञानम्भ जी के सामने सच्चे आर्य प्राप्त करने की एक अत्यन्त असह्य समस्या उपपन्न हुई थी। लेकिन सर्व प्रथम अन्वला जिला में ही स्वामी अज्ञानम्भ जी ने स्वामी रामानन्द जी को अपना प्रमुख शिष्य बन-या। स्वामी रामानन्द आर्य समाजी विचारों के ध्यक्ष थे। उन्होंने अपने जीवन को गुरुकुल की निस्वार्थ एवं अधैतनिक सेवा में व्यतीत करने का स्वामी अज्ञानम्भ जी के सामने प्रण किया था, जिसे वे अजीवन निभाते रहे।

गुरुकुल कार्यक्षेत्र में तो उन्होंने पौड़ ही वर्ष व्यतीत किये थे परन्तु उनके जीवन का शेष स व अरावली परंत के सुविस्तृत अर्चाक्ष में अवस्थित गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की सेवाओं में ही व्यतीत हुआ था। स्वामी जी की सेवाओं में

गुरुकुल का प्रत्येक निवासी मसी भ्रंति परिचित है। हमारे लिए उनके जीवन का एक र लक्ष्मी बह्मभूय प्रतीत होता था। वे गुरुकुल जगत् के सुदृढ़ स्तम्भ थे। यद्यपि मुझे उन की सुत्रबद्धा में पलने का सोमनाथ आनुयायिक रूप में ही गम हुआ है परन्तु मुझे पूर्ण आशा है कि गुरुकुल के शेष विद्यार्थी जो अब तक अज्ञत हो चुके हैं या जो वर्तमान में विद्यालय में अध्ययन में तत्पर हैं, स्व.मां जी के जीवन से मसी भ्रंति परिचित होंगे।

अरावली के उस दामन में, जहाँ पहले पथकों के टीले ही नज़र आते थे, आज उसी जगह पर स्वामी के लून और पसीने से अभिभक्त नीलों वाली गगनचुम्बी अद्वैतिकार्य और बुद्धि अपनी शाल दिवा रहे हैं। इस महत् कार्य के लिए हम कुलबन्ध उनके सर्वदा श्रेणी रहेंगे।

उनका जीवन गुण-गरीमा से पूर्ण था। यद्यपि वे बुद्ध थे परन्तु उनकी शक्ति नवयुवकों की ली थी। स्वामी जी के संयक बनने से पहले वे शानदार महलों में शिष्यगी बसर किया करते थे। यदि वे चाहते तो राजाजीवन अमीरी का दुनिया में निवास कर सकते थे। लेकिन उन्होंने सम्पूर्ण ऐश्वर्य को तात मार कर सभ्यता के बोहड पथ पर, विश्व-प्रेम के विशाल प्राङ्गण में सतर्प प्रयाण किया। सचमुच उनका जीवन तपोमय जीवन था, वह गीता के व्यावहारिक-दर्शन का परम साक्षी था, वह उत्सर्ग और त्याग की मूक कहानी था, दिव्य विराग्यन की प्रतीक था। मेरा पूर्ण विश्वास है कि आर्यसमाज के वर्तमान इतिहास का अन्तस्त्वभ न करने पर भी ऐसी वीरगा और उत्सर्गवान् सभ्यता की मिलना नितान्त दुर्लभ है। गुरुकुल शिष्या-महाशो से उन्हें अत्यन्त अनुपगत था। उन्होंने स्वामी अज्ञानम्भ के महत्त्व को पूर्ण बनाने में ही अपना कल्याण समझा। इसी निमित्त इनका जीवन गुरुकुल की अमन्य सेवाओं में व्यतीत हुआ है।

वे गुरुकुल में रहने हुए बच्चों से पिता के समान व्यवहार करते थे। एक पिता को जिस प्रकार अपने बच्चे से मोह होता है उसी प्रकार उन्हें भी हम बच्चों में अनुपगत था। सश विद्यार्थियों के दिल को बहलाना, उन्हीं के सुख दुःख में अपने को सुखी दुःखी समझना— उनके दैनिक जीवन की एक बर्षा थी। वे के ल विद्यार्थियों से ही नहीं अपितु कर्मचारियों से भी प्रेम-पूँक बनाते करते थे। प्रत्येक विनाम का कर्मचारी उनसे सशु था। कार्य-संलग्नता उनके जीवन का एक प्रतीक थी। उनके प्रति यह ईश्वर को देने सईया अनुमाननीय है।

गुरुकुल जगत् के निवासी इस वीर से मसी भ्रंति परिचित हैं कि उन्होंने किस प्रकार एक ठुबक की भ्रंति अचिरन परिधम से संचिन धन द्वारा गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के वीरान टीले पर एक शानदार मय्य-भवन का सूत्रन किया है। पारस्परिक कृषि प्रेम के सचनों में अकड़ें हुए दुनियाँ के लोग भले ही उस नेजली की स्मृतियों की उपेक्षा करने रहें लेकिन अरावली पर्यतमावा की उस तपोभूमि के टीले और बुद्धि जहाँ प्रज्ञाविधानक सामन्तों के अत्याचार-भूतक ससात्मक साप्रान्य का विनाश करने धर्मगज युधिष्ठिर ने विश्व बभ्रुय का परिचय दिया था,

सन्धिपुत्रा की विध्व मूर्ति स्वामी रामानन्द जी के संस्कारों पर प्रतिदिन बिचार किया करेंगे।

क्या स्वामी जी का जीवन त्यागमय नहीं कहा जा सकता? वे वामी थे, परन्तु आजकाल के कीर्तिलोलुप दानियों की तरह के नहीं। वे दिये हुये दान को गुप्त रखना चाहते थे। अपने बनवाये हुये भवन पर उन्होंने अपना नाम तक भी अंकित नहीं किया। लोग इन्हे उपेक्षा-दृष्टि में देखते हैं परन्तु यह एक स्वानस पुरुष कीज है। भले ही हम इस गुप्त त्याग को आवर की दृष्टि में न देखें लेकिन प्राचीन भारतीय दृष्टि में यह कार्य सर्वथा श्लाघ्य एवं अनुकूलणीय है।

स्वामी जी ने "गुरुकुल" में एक लेख लिखने हुये अपने शिष्यों में कुछ धन की याचना की थी। मैं इस चीज में सर्वथा अनभिज्ञ हूँ वे अपने मनोगत में सफल हुये हैं य नहीं? परन्तु मैं अपने कुछ बन्धुओं ने सानु-रोध आग्रह कर्त्तव्य कि यदि वे स्वामी जी की इस अभिलाषा को उनके अविन रहने पुरुष नहीं कर सके तो वे इसी दिन से यथाशक्ति धनोपार्जन करने उनकी सद्भावना के नाम पर, उन्हीं की पुण्य स्थिति में एक विशाल स्तूप का निर्माण करें, ताकि गुरुकुल की भावी स्मृति उनका स्मरण कर सके गुणों को अपने जीवन में डालने का प्रयास कर सकें।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को स्थापित हुये आज २५ वर्ष हो चुके हैं। उसकी स्रष्टा जयन्ती दिन-प्रतिदिन निकट आ रही है। यह एक तथ्य है कि गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के उन्धों में स्वामी जी ने (गुप्त रूप से) जिनकी सेवाएं प्रदान की हैं स्वभाव उतनी भिन्नो से न सी होंगीं। गुरुकुलीय इतिहास की विचारों पर उन की धारों के गहने चिह्न लगे हुये हैं। अत्यन्त श्रेष्ठ का विषय है कि उनकी असाधारण सूर्यु के कारण गुरुकुल की जो असीम कति हुई उसकी पूर्ति करने वाला आज कोई भी व्यक्ति दृष्टि गोचर नहीं हो रहा। जब स्वामी जी हमारे बीच में उपस्थित थे तो गुरुकुल-जीवन का बगीचा खिला हुआ सा प्रतीत होता था। लेकिन आज वह मुरझाया हुआ है क्या करें? उद्यान के प्रायाची प्राणी की ओर इशारा करते हुये हमें अन्त में यही कहना पड़ता है—

हाय! गुरुजीने दहर में कैसी नादानी हुई!

फूल बह तोड़ा कि गुलशन-अर में बीरामी हुई!!

स्वामी जी ने मानव-जीवन की यातनाओं के साथ धीरे संश्राम करने हुये आज निर्वाण-पद प्राप्त किया है। अन्त में परमपिता कर्णामय भगवान् से हमारी यह प्रार्थना है कि वे विद्यंगतात्मा को सद्गुणनि प्रदान करे।

(पृ. ३ का शेष)

उनकी धार्मिक और वैद्यक की पुस्तकें पुस्तकालय में पढ़े जा रही हैं। कर्मरत्न अरुण्डार के अन्त्य वरुणों में मिल गया है, दण्ड पदरेदार के पास है, सूर्यचर्म किसी छात्र ने ले लिया है। उनका अपना क्या था जो साथ ले जाने वे स्वामी ही तो थे।

कई लोग सूर्यु के कारणों को देख कर ही सारे जीवन का अनुभव लगाने का प्रयत्न करते हैं, स्वामी जी के विषय में उनकी चरखा मिया ही लिख होगी। स्वामी जी इस बात के अग्रवाद रहे। उनका जीवन अितना निस्वार्थ, साधनामय, और संयम पुरुष था सूर्यु उस प्रकार नहीं हो सकी।

स्वामी जी हमारे गुरु थे, हमारे अधिपति थे, हमारे चरित्र के उत्तरदाता थे। एक तरह से वे हमारे सब कुछ थे। आज वे नहीं रहे हैं, इन्द्रप्रस्थ के विशाल छात्रावास की सन्ने पहली कुटिया गूथ हो गई। आभय वृषों का कोई परिचारक नहीं है। इन्द्रप्रस्थ के जीवन का मुख्य गतिचक्र टूट गया है। प्रजातन्त्र में प्रजाकारियों को उठाने वाली चिर परिचित आवाज गूथ में चिन्नी हो गई है। सम्भव है प्रजाकारियों के तैयिक कर्म कुछ विलम्ब में हो रहे हों। उनके इस आत्मविक निम्न पर गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की अपार सति हुई है जो पूरा हेमि प्रसन्नमय है।

स्वामी जी के स्मरण में हम कोई स्मारक बनाए, स्वामी जी स्वयं अपना स्मारक अपने जीवनकाल में ही बना गये हैं जोकि उनकी कठोर तपस्या का परिणाम है। अगवकी की पथरीली चोटियों के बीच में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ उसकी श्रुतिता, सातिरकता, प्रायुर्ध और जो भी कुछ अचक्षा है सब उनका स्मारक है जिने हम आज भी देख सकते हैं।

मैं उन निस्वार्थ सेवी कर्तव्य सम्बन्धों के चरुणों में अपने अन्तस्तल की कीमलतम भाव भरा अज्ञातशियां समर्पण करता हूँ।

## कर्मवीर सन्यासी

अधेव स्वामी रामानन्द जी—पद्यि आज हम संसार में नहीं है तथापि उनकी जीती जागती मूर्ति मुझाई नहीं जा सकती वे एक अमान्य पवित्र की म्याई अपने निधन सेवा पथ पर धीरे-गम्भीर गति से बढ़ रहे प्रसीत होत हैं उनके चेहरे पर निःस्वार्थ कर्तव्य-वाचन के स्पष्ट चिह्न चमक रहे हैं। आत्म संतोष, आभन्द और उन्मत्त उनके चेहरेकी मुद्रा पर प्रति-दिशित है। आक्षय और भयान उन्हे अभिदूत नहीं कर सकते।

×

×

×

वे एक निःस्वार्थ कर्मयोगी थे। तब—अपित कश्चिपुत्र-वर्षाशिवों के लिये उनका जीवन कार्यपूर्ण अनुकरणीय था। उन्होंने अपने मूल को पक्षीने की तरह बहा कर जो अन्धी अक्षरिणि (बाग बगीचे को पैदावार को मुझा में परिचित कर) पैदा की उस का भी उपयोग अपने छात्राग के लिये न कर के गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की आभयकटा की पूर्ति के लिये उने त्याग दिया। वहाँ तो चली गयी मेहनत की नेक कमाई और उसका परार्ध उपयोग, जो कदां आज कल के स्थापितियों का पृथित दान से निर्वाह और उद्धार निश्चितसम्बन्ध जीवन!

उन के इस अनुकरणीय जीवन का रहस्य उनका निश्चित उर्ज बंध था। सोमा-भाग्या, जाना-भोग्य, बहमा-पान्त, बागुबानी

बाद कम लेवा; कुछ श्रेष्ठता, अन्याय, श्रेष्ठ विविध प्रकार की सेवा, वे सभी कार्य विभव से—योग युक्तता के साथ—होते थे। यही कारण था कि उन के चारों ओर के लोग उन्हें 'महाराज' शब्द से पुकारते थे। ये एकै किली मात्रा सुचक शब्द के थे सचमुच प्राधिकारी थे।

उसका जीवन प्राकृतिक नियमों के हतमा चतुर्दश था कि प्रकृति उन्हें किली योग अपना सर्वसाधारण्य बना के पाठ से नहीं रुचक प्रकृति; और थापु में थी, वे रक्षक-सोच को छोड़ कर—बुधा ही प्रतीत होते थे, एक युवक की भाँति समर्थ, कर्मधर्म और सतन-किन्ना शीघ्र सिद्धार्थ होते थे। घटा: क्रियाशाला वे उन्हें एक समापितक थापाठ से ही बुझाई में काठ-कर्मवित किया।

विधाता के विधान में न-मु-न-च करना अनुरदशिता है। वह परम पिता उक्त विरहगत को संप्रति प्रदान करें और हम में वह हमें दे, निताओ कि हम उन के जीवन से अपने जीवन को उचल कर लें।

—श्री जगन्नाथ वेदालंकार ।

## श्री आचार्य अमरदेव जी की स्वास्थ्य-साधना

गण दो-तीन सप्ताह से श्री आचार्य अमरदेव जी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आश्रमकी मास करते के लिए जनता के माना प्रकारके पत्र पत्रकुल में प्रा. रहे हैं। श्री आचार्य जी के चलेक सहयोगियों, भातों व प्रेमिय ने, श्रीके आश्रम जो के प्राप्त भी उतारके था-एव के विषय में निम्ना प्रकट करते हुए अपने पत्रोंमें वहाँ तक लिखा है कि "बदि थापुकी बाधा हो तो हम नहीं (आशावात में आकर थापुकी सेवा में लक्ष्मी)।"

किन्तु, जहाँ तक से ही श्री आचार्य जी का जो स्वहस्तलिखित एक सप्ताह के नाम आता है, उससे पता चलता है कि वे बाधों बाधत में हैं। जनता जो अपने कुलवित करने के लिए हम उस पत्र को प्राधिकार रूप से नीचे देते हैं—

श्री सत्यायुक्त जी:

नमस्ते। मैं यह सूचना पत्र आपको अपनी बीमारी के बारे में लिख रहा हूँ क्योंकि मेरे हृदय से सजनों के एक हाथ आनेको को आ रहे हैं। आश्चर्य और चिन्ता प्रकट को जा रही है। आश्चर्य को वान तो जरूर है क्योंकि लगभग २० वर्ष से मैं बीमार। से प्रायः अज्ञात: रहा हूँ—बीमारी की आदत तो विरहकूल नहीं रही है। पर चिन्ता की कुछ बात नहीं है। और असल में आश्चर्य की भी कुछ बात नहीं है, क्योंकि मेरे शरीर में कुछ भी मयी बात अब नहीं हो गई है। जिसका हृदय कर रहा हूँ वह एक वेसी नृदि है: जो कि शरीर में बहुत बहिले से है, बचपन से है। नयी बात केवल यह हुई है कि अब सह पचिक न हुआ है कि इसको तुरन्त ठीक करना चाहिये नहीं तो प्रसन्न है। असो तक इतने वर्षों तक मैं इसे सहना रहा, इसकी उपेक्षा करता रहा। आसनों की न्यायाम करते रहने तथा स्वास्थ्य के नियमों के स्वाभाविक पालन के क रथ यह विकार बढ़ने नहीं पाया, अभी तक कोई उपद्रव पैदा न हुआ है। आश्रम पिकने एक वर्ष से आश-रामा निरन्तर शरीर की इस नृदि-रथ ही अंगुलि रत्न

रहा-था: कइला:भा कि इन्से ठीक कियेकिना "तुल आने-शरीर-कइ लकले", यथ-उसके अन्वय का उद-नयन करेना अस्व-क-हो यथा है। यह जो आश्रम की दृष्टि से हुआ, बाहर से भी पना लगा कि यदि इस अवस्था में यह विकार होकन किया गया तो आने शमेशा के लिये विधाइ हो जायगा। वस, इसीलिये मैं पहिले 'शैला अच्युत' माला शिखता इवा भी बीमारा बन गया हूँ।

अज्ञानको बीमारी इतनी ही है कि मेरे शरीर का याम आण विरह रचना युक्त: सुखा कठोर और प्राकृतिक सा है और यह बचपन से है। एवं इस विकार के नईन पुराना हो जाने के कारण यह किली अवरुद्ध हलाज के विना ठीक भी नहीं किया जा सकता। तो भी चिन्ता की बात इसलिए नहीं है कि कि इसका ठीक हो जाना संभव है यह युके रूप्य हो गया है।

शरीर की इस बीमारी नृदि की तरफ सवने पहिले मेरा ध्यान तब गया था जब कि मैं १६,१७ वर्ष का हो चुका था, गुरुकुल में शायद अष्टम या नवम श्रेणी में पढ़ता था। नव-योग की तरफ रुचि होने के कारण 'स्वरोदय' का ज्ञान होने पर मैंने आश्चर्य से देखा कि मेरे आश्रम इतनाही प्रार्थना चर्या मालिका का स्वर नहीं चलता है। पिगला या लुलुला ही चलनी थी। यह ज्ञान कर और भी घबराहट हुई कि छे भ्रमोंने तक कि किली का एक स्वर न चलने तो वह भर जायगा। कौनिक स्वरोदय की तुलक में ऐला भी लिखा था। मैं चर्या करदर सेट-लेटकर वामस्वर चलाने का यथ किया करता था। पर स्वयं स्वभावतः बायां स्वर नहीं चलना था। और और आसन प्राणायाम करने से कुछ थोड़ा सा ज्ञान हुआ, और वामस्वर न चलने पर भी अन्य कुछ शिष्य हानि होती न देखकर मैंने इसकी उपेक्षा करनी मुठ कर दी। पर कुछ समय बाद आसन प्राणायामों से हा मुझे यह भी साफ दीखने लगा कि मेरा वाम स्वर नहीं चलता; इतना ही नहीं किन्तु मेरा संयुक्त वाम भाग ( वाम पैर, हाथ, पार्श्व और सिर ) सुखा और सिद्धा हुआ है, उसमें प्राण-रस का ठीक तरह संचार नहीं हो रहा है।

अब कुछ महीने हुये शरीर की इस विरह रचना, विकार का एक कारण भी सम्भक्त में आया है वह यह है कि जब मैं ६,७ वर्ष का बच्चा था तो मेरे सिर के दायें भाग में ई-ट युक्त गयी थी और हरदोह के निमित्त लय से शयनकिया भी करनी पड़ी थी, उसके गहरे विश्व अभी तक मेरे सिर के दायें भाग में विद्यमान हैं। कुछ ऐसा मासुम पड़ता है कि उस बचपन की चोट से ज-य-वीय आघात पहुंच जान से वाम पार्श्व की पुष्टि रुक गयी। आश्रमों ने कुछ मयी रचना भी बना ली है जिनका कि बहकना अब इस ४३, ४४ वर्ष की आयु में कठिन है। अतः कुछ डाक्टरों की राय न—एक दो प्रसिद्ध डाक्टरों को दिखाना है—उन्के पास इसका कोई हलाज नहीं है। अस्तु, मेरे योग को जानने की उत्सुकता निव रथ करने के लिये इतना विवरण काफी होगा।

जब और कहीं इसका कुछ हल ज होना दीखता नहीं था तो एक दो मरुफ मित्रों के आशावात में प्रचलित यहां

की विराही मात्स्य की पद्धति को आज्ञा देने को कहा । इस पद्धति का कुछ भाग मुझ और पढ़कर मुझे भी विश्वास होगा कि वहाँ मेरा यह विचार ठीक हो सकता है । इसलिये मैं वहाँ आया हूँ ।

यहाँ को मात्स्य की पद्धतियों के विषय में तो मैं अगले पत्र में लिखूँगा । कई कालक कर्मियों ने तथा मित्रों ने सेवा के लिये यहाँ आने की तथा अन्य प्रकार की चिन्ता प्रकट की है उनके उस प्रेम और कृपा के लिये हार्दिक धन्यवाद करना हुआ यह पत्र समाप्त करना है । यहाँ मुझे किसी ऐसी सहायता की जरूरत नहीं है । परमेश्वर की दया ने यहाँ का काम धारी तक ठीक चल रहा है ।

आप सबकी कृपाएँ साधना हुआ—

आपका कर्म—

अमर

आर्य वैद्यशाला

कोटक, दक्षिण-मालाबार ।

२३-१-४१

## गुरुकुल समाचार

वार्षिक परीक्षा समीप आ जाने के कारण ब्रह्मचारी अध्ययन में पूरी तरह ध्यान दे रहे हैं । महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की परीक्षा ७ मार्च से प्रारम्भ होगी । यद्यपि सब और अध्ययन का मायु मंडल ही रहि जायक होता है तथापि समाचार शास्त्र, अक्षर, मूल आदि में भी ब्रह्मचारी खूब दक्षत्वसे आगे चल रहे हैं ।

## गुरुकुल में स्वतन्त्रता दिवस

गत २६ जनवरी, रविवार को गुरुकुल में बड़े उत्साह के साथ स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया । महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों के एक बड़े दल ने प्रातः ३५ बजे जाग कर गुरुकुल विश्वविद्यालय के प्रत्येक भाग में घूम कर "वन्देमातरम" के गान और मुमुक्षु अक्षर के साथ प्रभात-केरी की । उस दिन यद्यपि दिवालय की ओर से आने वाली ठंडी हवाएँ लड़ू को भी जमा देने वाली शीतकता लिए हुए थीं तथापि ब्रह्मचारियों के उत्साह में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आई प्रत्युत उनका उत्साह इस बाधा के आने पर और भी बढ़ गया । प्रातः काल के अन्वकार में ही ब्रह्मचारियों ने सर्द कपड़ों में ४५ मील का चक्कर लगाकर अजंठत पुर, अजालपुर, सीतापुर, अजालपुर, वानप्रस्थःश्रम, मुक्तिपीठ में स्वतन्त्रता दिवस का समारोह, स्वोदय से पूर्व ही पढ़ाया दिया । बाल रवि के उदय होने पर सब कुल बालियों ने सम्मिलित होकर राष्ट्रिय प्रार्थना का अभिवादन किया । तत्पश्चात् ६ बजे से चर्चा-सम्मेली दंगल हुआ जिसमें पंचपुरी निवासी भी आमन्त्रित थे । इस प्रतियोगता में भाग लेने वाले ३५ के लगभग स्वयंसेवक जिन्हें कुल बहिर्ने भी थीं । दो घंटे तक यह प्रतियोगिता हुई जिसका परिणाम अगले अंक में प्रकाशित किया जायगा ।

## वार्षिकोत्सव सूचना

—गुरुकुल कुलसेन का वार्षिकोत्सव आगामी २२,

२३, २४ मार्च को होना निर्धारित हुआ है ।

—गुरुकुल नारसेन का वार्षिकोत्सव तां० ७, ८, ९, कचेरी को होगा ।

—गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के उत्सव की तिथि २१, २२, २३, २४ कचेरी है ।

—गुरुकुल मुलतान का वार्षिक समारोह १४ मार्च से प्रारम्भ होकर ३ दिन तक रहेगा ।

## स्वास्थ्य समाचार

३० रामप्रकाश ५ अंणी उमर, ३० गोविन्द ५ अंणी कास उमर, ३० कपिल ५ अंणी कास उमर, ३० नारायण ५ अंणी उमर, ३० सत्यमन ५ अंणी चोट, ३० कर्म-धीर ३ अंणी चोट, ३० राजेन्द्र ५ अंणी लिए दर्द । गम सस्ते ह उपरान्त ब्रह्मचारी टैमी हुए थे । अब सब स्वस्थ हैं ।

## गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

सब कुलवासियों को यह समा खगर्भित श्री गुरु स्वामी रामानन्द की महाराज की आकस्मिक तथा दुःखद मृत्यु पर अत्यन्त शोक प्रकट करनी है और परमात्मा से प्रार्थना करनी है कि वह उनकी दिवंगत आत्मा को सन्तानि प्रदान करे ।

श्री गुरु स्वामी की महाराज ने जिस विश्वास तथा निष्ठा-भाव से गुरुकुल कागरी तथा गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में रहकर शिक्षा दी वह कदाचित् ही और हमारे जिन्दे अनुभवी ही है । हम स्वामी की महाराज एक उच्च कीर्ति के महान्ना थे । अर्थात् "सर्वत्र गुरुकुल के जिन्दे उभरने दिया हुआ था । रात और दिन उन्हें गुरुकुल ही ही चिन्ता थी । ऐसे महान्ना के विद्योग में गुरुकुल को च-अन हानि पहुँची है ।

हम सब कुलवासियों को प्रथम दृष्टि में कोई भवन या कोई और स्मारक कायम करने के जिन्दे सभा तथा उच्च बालिकारियों ने प्रार्थना तथा अनुरोध करने हैं और अत्यन्त कुल गाली से यह भासा रहते हैं कि वह अन्वरक इस स्मारक के निर्माण में पूरा २ सहयोग देगा ।

अमर में पुनः उनके प्रति अपनी हृदयानु-आद करते हुए ईश्वर में प्रार्थना है कि वह हमें सब में कि हम उनके इस जीवन को अपने अन्तर किनायिक कर दे सकें ।

## गुरुकुल में शोक-सभा

समीकार पत्नी द्वारा स्वामी रामानन्द की की मोटर-मुद्दमा से आकस्मिक दहायवान का समारोह पाकर गुरुकुल विश्वविद्यालय में शोक का गया । समस्त कुल गालियों की शोक सभा हुई जिस में परमात्मा से दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना की गई । इस शोक में गुरुकुल के सभी विभाग बन्द रहे ।

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य —)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल काण्डी, शुक्रवार १० फाल्गुन १९९३, २१ फरग १९५२

[ संख्या ४४ ]

## शक्ति का पुजारी योद्धा दयानन्द

( लेखक—मेहता त्रैलोक्य जी बी० ए० )

आज समस्त हिन्दु शिवागिनि का पर्व मना रहे है। परन्तु यह योहार गुजरात और काठियावाड़ में जिस मन्मारीह से मनाया जाता है वेना पञ्चाष और यू० पी० में नहीं। मूल शङ्कर को उस दिन न केवल सक्के शिव का बोध हुआ बल्कि भारत की कमजोरियों का हान हुआ। अध्यात्मशक्तियों, ईश्वर भक्तों और शिव के पुजारियों की कमी भारत में नहीं थी, लेकिन सक्के अर्थों में शिव जी के पुजारी समाप्त हो गये थे। इसलिये स्वामी दयानन्द जी ने एक श्रम से सक्के शिव जी की तलाश करने में जीवन व्यतीत किया। परन्तु साथ ही उन्होंने सक्के शिव जी के पुजारी बनने का साधन बताया। इन अर्थों में हम कह सकते हैं कि स्वामी जी आत्मा और परमात्मा के योग-साधन से ज्ञान के प्रचारक थे बल्कि उनका विश्वास था कि शक्ति देशी की पूजा के बगैर परमात्मा तक पहुँचा तो कहाँ हम संसार में जीवित नहीं रह सकते। जर्मनी के प्रोफेसर वार्नगसी ने १९२३ ई० में एक भाषण में लूथर और दयानन्द जी की तुलना करते हुए बयान दिया कि स्वामी जी एक योद्धा थे जिन्होंने बड़ी धर्मता से समस्त संसार के सक्केदायों का दुकावला किया। लूथर को केवल कैथोलिक मन से लड़ाई लड़नी पड़ी थी। वार्नगसी महोदय ने तो स्वामी जी को धार्मिक योद्धा वर्णन किया है परन्तु मैं तो उन्हें भारत की स्वतन्त्रता का योद्धा कहना हूँ। स्वामी जी का द्रष्ट्य 'अर्थानिविनय' पत्रिये उसमें है। अर्थों को बोरना, ब्रह्मचर्य, राज प्राप्त करना बल्कि, पक्षधरों राज्य प्राप्त करने का उपदेश करने हैं। स्वामी जी ने हिन्दुओं के रङ्ग का ज्ञान लिया था कि यह ज्ञाति कमजोर होने के कारण नुदा हो रही है। इसका सबसे बड़ा रोग शक्तिहीन होना है। इसलिये आर्यसमाज के नियमों में हृदये नियम में सक्के प हले शारीरिक उन्नति पर जोर दिया। आत्मिक उन्नति पर जोर दिया। आत्मिक उन्नति को दूसरा ज्ञान और सामाजिक उन्नति को तीसरा ज्ञान दिया, इसलिये उनकी शिक्षा का निचोड़ यह है कि आर्यजाति न केवल आध्यात्मिक जीवन की

विधा और उपदेश में जीवित रह सकती है बल्कि इस के साथ राजनैतिक शक्ति, सैनिक शक्ति और सामाजिक-राष्ट्रीय शक्ति की आवश्यकता है। इसलिये उन्होंने आर्य-समाज स्थापन की। स्वामी दयानन्द जी ने कोई नये-नये सिद्धान्त आर्यसमाज के नियमों में सम्मिलित नहीं किये हैं; बल्कि हिन्दू जाति को सङ्कटित और नियन्त्रण में रहने का साधन बताया।

(२) स्वामी जी का दूसरा दृष्टि कोण यह है कि आर्यजाति इन तरह निजीव हो चुकी है कि वह आर्याचार सतन करना क्षमा भाव समझती है, तुच्छ और कष्ट सह लेना अपना गुण समझती है। भाव्य पर विश्वास रखना धर्म समझती है। स्वामी जी का विचार था ऐसे विचार गुलाम और कमजोर जाति के हुआ करने हैं इसलिये उन्होंने बताया कि आर्य जाति का कर्तव्य न आर्याचार करना है और न आर्याचार सहना। आर्यजाति का कर्तव्य आर्याचारों और गुणों को क्षमा करना नहीं है बल्कि नियंत्रण को क्षमा करना है। इसलिये स्वामी जी का विचार था कि भारत का धर्म सत्यता और संस्कृति कमी जीवित नहीं रह सकती जब तक कि ब्रह्मचर्य के बल से शक्तिशाली और योद्धा बन कर अपनी रक्षा करने के योग्य न बन जाये। स्वामी जी स्वयं सत्यासी, तपस्वी और योगी थे। ऐसे शक्तिशाली थे कि राजा कर्ण के हाथ में तलवार छीन कर उस के ही तुकड़े २ कर सकते थे। जयन्त हमारे मन्दिर स मना करने की शक्ति नहीं तब तक हम धर्म का पैला का बचा नहीं सकते हैं। हिन्दुओं के हजारों मन्दिर थे उनमें दिन रात पूजा होती थी। महादेव सोमनाथ, जगन्नाथ में स्वयं जगत पूजा के षड्विधाल बजते थे बल्कि मुलानल महसूब बस हजार फांज लेकर आया। उनका स मना करने की शक्ति नहीं तब तक ही इसलिये मन्दिर तोड़ दिये गये। देवता खण्डन हुए। यहाँ तक फारो के विश्वेश्वर नाथ कुंठ में जा खिरे।

(३) स्वामी जी का विश्व स है और तापयें यह था कि धर्म केवल अपने अक्ल अक्लें गुणों प्रोण उत्पन्नता ही में नहीं चलता परन्तु उनके साथ ही उसकी रक्षा करने का शक्ति और सहायता भी चाहिए। ऐसे ईसाइयों का गढ़ था।

परन्तु मुसलमानों ने शारीरिक और राजनैतिक शक्ति से सारे स्पेन को इस्लाम में परिवर्तन कर दिया; फिर ईसाईयों ने शक्ति प्राप्त की और क्रुपान को निकाल कर फिर ईसाईयों को स्थापित कर दिया और इस्लाम का नाम निशान भा स्पेन से मिटा दिया। बस धर्म के फैलाने में शक्ति का बहुत हाथ है। [असमाप्त]

## चिकित्सा का एक मात्र सत्य-नियम

(The Law of Cure)

(वे०-भा० चोप्यकाशक जी विद्यालंकार, चिकित्सक)

रोगी में रोग विशेष का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात्, भेद्यज्ञ चिकित्सक का औषधि-विधान द्वारा, रोगी में रोगाणुहरण करने में लक्ष्य भर का विलम्ब करना भी ठीक वैसा ही सिद्ध हो सकता है जैसा कि सीता जी को अति-विकल होना देख कर भी रामचन्द्र जी का धनुष-भङ्ग करने में पलभर का विलम्ब कर देना। तब ऐसी अवस्था में सीता जी के समान रोगी का भी एक एक पल, कल्प शत के समान नहीं व्यतीत हो रहा होता? क्या चिकित्सक की सृष्टिक उपयोग से रोगी के अपार अपकार होने की सम्भावना नहीं बन जाती? और फिर—

“सुखित वारि विनु जो वनु त्यागा,  
गुरु करइ का सुधा तवागा ॥”

अतः आनुवंशिक, चिकित्सक को आभा देता है कि—  
“यस्तु राग-विशेषज्ञः, सर्वभेषज्य कोविद्:

भेषजानां विधानेन, कुर्याच्छ्रेष्ठं चिकित्सितम् ॥”

रोगी में रोग-विशेष का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर, भेद्यज्ञ चिकित्सक को औषधि का प्रयोग करने में शीघ्र ने शीघ्र प्रवृत्त हो जाना चाहिये। तब उसे (किया कालं न हापयेत्) चिकित्सा के कार्य में तनिक सी भी देर न करनी चाहिये।

जिस चिकित्सक को चिकित्सा-विधान के औषधि-प्रयोग के सत्य नियम का भी सम्पूर्ण ज्ञान हो चुका हो, उसे धनुर्वेद-विशारद गम के समान, रोगी के रोग-कपी जीर्ण-धनुष का अचिरात् मञ्जुन करने में क्यों संकोच हो सकता है? उसे तो,

“लेत, चढ़ायत, खँचत गाढ़े,  
काहु न लखा, देखे सब ठाढ़े।

तेहि लष, राम, मध्य धनु तोरा,  
भरे भुवनध्वनि घोर कठोरा ॥”

के समान, रोगी के रोग का (वर्धित करने के पल लगने हैं) वह तो बात की बात में रंगी के तीव्र से प्रीव रोग का विधान कर डालता है तथा—

“सुखित कहहि जहँ तहँ नर मारी,  
मंजेउ राम शम्भु धनु भारी ॥”

की प्रस्ताव रूपी पुष्प वर्षा के बीच—

“सिय, जयमाल, राम उर मैला ॥”

की अवस्था को प्राप्त हो जाता है। जब चिकित्सक,

इस प्रकार के चिकित्सा के अज्ञान चमत्कार विश्वास है तो उनका भी उसे जीती-जागती प्रतिष्ठा को जयमाल पहिने से क्यों चूक सकती है!

परन्तु, जिस चिकित्सक को चिकित्सा-विधान के सत्य चिकित्सा-नियम का परिज्ञान नहीं होता वह कैसे निःशर्क होकर चिकित्सा के कार्य में प्रवृत्त हो सकता है, और यदि हो भी जाय तो कैसे वैकान्तिकी सफलता प्राप्त कर सकता है? ऐसी अवस्था में—क्या उसका रोगाणु तथा भेद्यज्ञ होना लोक-व्यवहारानिमित्त घुस के सर्व शास्त्र-पारकृत होने के समान व्यर्थ नहीं हो जाता?

चिकित्सक के लिये, यह इसलिये आवश्यक हो जाता है कि वह चिकित्सा के सत्य नियम का परिज्ञान प्राप्त करने के लिये सबसे प्रथम प्रयत्न करे। क्या वह धनुष पर जिसके पाल सच्चा धनुष ही नहीं है, अनेक प्रकार के शरों से सुलझित होने पर भी लक्ष्य भेद कर सकता है? इसी प्रकार, जिस चिकित्सक के प्रकारक भुज दृष्टि में चिकित्सा के सत्य नियम का उद्वेग-कोद्वेग (Stethoscope नहीं) न लटकता हो, वह विविध औषधों के भ्रष्टार का अधिपति होकर भी रोगी का क्या उपकार कर सकता है?

चिकित्सा का एकमात्र सत्य-नियम क्या है?—यह तो एक बड़ी जटिल समस्या है। परन्तु इससे पूर्व, चिकित्सक के सम्मुख दो एक और छोटे २ प्रश्न उपस्थित रहने हैं कि—“क्या, चिकित्सा का कार्य बिना किसी नियम के नहीं चल सकता? क्या, संसार के सब रोगी चिकित्सकों द्वारा ही मीरोग किये जाते हैं? क्या, साधु-महात्माओं की रामचन्द्रकी अथवा चण्डीचण्डी से ही अनेक रोगी रोग-विमुक्त नहीं हो जाते? क्या, हम प्रकार का चिकित्सा का कार्य भी किसी नियम के आधार पर सम्भव होता है?!”

हम प्रश्नों का समुचित उत्तर तो यही हो सकता है कि चिकित्सा का प्रत्येक कार्य, सदा चिकित्सा के सत्य-नियम के आधार पर ही होता है; चाहे उसका पना चिकित्सा करने वाले के हो, या न हो। क्या सब मनुष्यों को यह पता होता है कि फूँक मारने से आग क्यों अड़क उठती है? क्या, भोजन की अधिक मात्रा पकूँचाये बिना यह सम्भव हो सकता है? क्या नम्रजन से भरे जार के उलट देने पर भी बुझा-सा-कोयला, फिर बल उठ सकता है?

जब सर्व नियन्ता परमात्म की बनायी इस सृष्टि में प्रत्येक कार्य किसी विशेष नियम के आधार पर ही प्रवर्तित हो रहा है, तो वह कैसे सम्भव हो सकता है कि चिकित्सा का सा कार्य—जो परमात्मा की अद्भुत देन (मनुष्य शरीर) का अद्भुत कार्य (उसका सुधार) है—बिना किसी सत्य नियम के आधार के प्रवर्तित हो रहा हो!

इस प्रकार, जब चिकित्सा का कार्य किसी एक सत्य-नियम के आधार के बिना हो ही नहीं सकता तो उसका परिज्ञान प्राप्त किये बिना चिकित्सक चिकित्सा के कार्य में किस प्रकार प्रवृत्त हो सकता है!

बि कसला के सत्य नियम का परिष्कार प्राप्त करने में पूर्ण चिकित्सक को यह जान लेना और भी अधिक आवश्यक है कि "चिकित्सा" किने कहने है? इस प्रश्न के उत्तर में आयुर्वेद कहना है कि—

"या क्रिया व्याधिहरा रणी, सा चिकित्सा निवारणे"।

ओ क्रिया, व्याधि का अपहरण करे वही चिकित्सा कहाती है। परन्तु, क्या चिकित्सा को यह परिभाषा पूर्ण हो सकती है? इसकी अर्थता का अनुभव करते हुए ही आयुर्वेद को कहना पड़ा है कि—

"या ह्युदीर्घे" शमयति, नान्यं व्याधि करोति च।

सा क्रिया, ननु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥"

ओ क्रिया प्रयत्न लक्ष्ण होनी व्याधि का तो प्रशमन (?) करने परन्तु किसी अन्य व्याधि को बढ़ा कर दे वह क्रिया, चिकित्सा नहीं कहा सकती। अर्थात्, जिस क्रिया के करने पर एक रोग का तो संक्षयन (Suppression) हो जाय तथा दूसरा बढ़ा हो जाय, वह चिकित्सा वास्तविक चिकित्सा नहीं हो सकती। वास्तविक चिकित्सा तो वही होती है जिसके द्वारा एक रोग का प्रशमन होने के पश्चात्, तत्सम्बन्धी कोई दूसरा रोग बढ़ा हो न पावे। दूसरे शब्दों में इसे यह कह सकते हैं कि चिकित्सा तो वही है जो रोग का स्थायी रूप (Permanently) प्रशमन (Cure) करदे, न कि संक्षयन या संमोहन (Suppression)। अर्थात्, चिकित्सा द्वारा क्रिया गया व्याधि का वह प्रशमन, अवश्यमेव स्थायी रूप (Permanent) होना चाहिये।

स्थायी रूप से वाला चिकित्सा का यह कार्य, यदि शीघ्रगति शीघ्र (Rapid) भी हो सके तो क्या कहने हैं, और यदि मृदुतम व्यवहार द्वारा (Gentle) भी सम्पन्न हो सके तो निस्सन्देह "सोने में सुगन्ध" आ जाती है। अतः 'चिकित्सा' की संपूर्ण परिभाषा यही हो सकती है कि—

"जो क्रिया मृदुतम प्रयोग द्वारा, रोगी को शीघ्र ति-शीघ्र तथा स्थायी रूप से नीरोग करदे, वही चिकित्सा कहाती है ॥"

उक्त गुणों से विशिष्ट चिकित्सा किस निरुद्ध के आधार पर हो सकती है, यही एक प्रश्न अब उस चिकित्सक के सम्मुख हो रहा है जो (१) रोगी में किसी प्राकृतिक रोगोत्पादक पदार्थ (Natural Morbific Agent) द्वारा उत्पन्न किये गये लक्षण समुदाय का-रोग विशेष क—निदान कर चुका है, तथा जिसे (२) अनेक कृत्रिम रोगोत्पादक पदार्थों (Artificial Morbific Agents = Medicines) द्वारा उत्पन्न किये गये मिश्र २ लक्षण समुदायों का समग्र ज्ञान भी हो चुका है। चिकित्सा का प्रत्येक कार्य केवल दो निर्णयों के आधार पर लेना ही सम्भव है—

(१) प्रथम "समोपचार" के नियम के आधार पर अर्थात् समोपचार।

(२) द्वितीय, विषमोपचार के नियम के आधार पर अर्थात् विषमोपचार।

अब त्रिकाण्ड चिकित्सक को केवल यही जानना शेष है कि इन दोनों में से किसका अवलम्बन करने पर चिकित्सा की परिभाषा के अनुसार, उसे चिकित्सा के कार्य में सफलता प्राप्त हो सकती है।

एक बच्चा मिठाई पाने के लिये रो रहा है। उसे भी केवल दो प्रकार से ही खुप किया जा सकता है (१) प्रथम-समोपचार द्वारा-अर्थात् उसे इष्ट वस्तु देकर-उसे समुत्तुष्ट करके। (२) द्वितीय-विषमोपचार द्वारा-उसे डरा धमकाकर। जिस प्रकार इस उदाहरण में यह निर्णय करना अत्यन्त सुगम है कि बच्चे को किस प्रकार खुप कराना चाहिये, उसी प्रकार यह निर्णय करना भी कठिन नहीं है कि चिकित्सा के कार्य में उक्त गुण विशिष्ट सफलता, समोपचार द्वारा प्राप्त हो सकती है अथवा विषमोपचार द्वारा। परन्तु, एक नवीन चिकित्सक, विषमोपचार के प्रतिपादक चिकित्सकों के बाहुल्य, राज-सन्मान तथा श्रेष्ठ मनुष्य से चौंधिया कर द्विविधा में पड़ जाता है। उसकी स्वीय प्रथा तो "समोपचार" का समर्थन करती है, परन्तु लोकान्तर उसे "विषमोपचार" की ओर लुचता है। ऐसी अवस्था में—वह विशुद्ध के समान, बीच में ही टंगा रह जाता है। शीघ्र ही उसकी यह सम्मति बन जाती है कि इस जजाल में पड़ने से—यह निर्णय करने का कष्ट उठाने से कि कौनसा उपचार श्रेष्ठ है?—तो यही अच्छा है कि यह मान लिया जाय कि दोनों प्रकार ही अच्छे हैं। क्या दोनों प्रकारों के द्वारा चिकित्सा का कार्य आज तक सुचारु-रूप से सम्पन्न होता नहीं चला आ रहा है?

उक्त कथन के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि किसी कार्य का सुचारु रूप से (?) चलना और बात है तथा किसी वैज्ञानिक कार्य का उसकी परिभाषा के अनुसार सम्पन्न होना और ही बात है। जिस प्रकार दो विष्णु-ओं को मिलाने वाली केवल एक ही सरल रेखा हो सकती है उसी प्रकार किसी विज्ञान का केवल एक ही मूल धार या नियम हो सकता है, किसी अवस्था में भी अनेक नहीं। क्या एक म्यान में दो तलवारें रह सकती हैं? क्या एक राज्य के दो राजा हो सकते हैं? क्या दो राजाओं के होने पर किसी राज्य का कार्य सुचारु-रूप से चल सकता है? पञ्चतंत्रकार कहते हैं—

"एक एव दितायाम्, तेजसी पायिषो भुवः।

युगान्त इव भासन्ती बहवोऽत्र विपश्ये।

क्या, जब अनेक दूर्य निकल आते हैं तो प्रलय नहीं मन्व जाती? क्या समान-बल-शाली राजा और मन्त्री के द्विज आधार पर भी एक राज्य स्थिर रह सकता है? नीतिकार कहते हैं—

"आयुचिह्नं मन्त्रिणं पायिषोऽथ,।

विद्वन्म्य पादावुपतिष्ठन्नेभिः।

सा खी सभावाद्सहा भरम्य,।

नयोर्द्धयोरेकतरं जहाति ॥"

जिस प्रकार लक्ष्मी दो आधारों पर स्थिर नहीं रह सकती, उसी प्रकार कोई विज्ञान भी दो आधारों पर, कभी (गैब ५० प ५)

## गुरुकुल

१० फ़ान्गुन शुक्रवार १९६७

### गुरुकुल कांगड़ी में ५० हजार का वेद-भवन

#### श्रीः सेठ जुगलकिशोर बिड़ला का दान

गुरुकुल प्रेमी जनता को यह शुभ सम्वाद जान कर प्रसन्नता होगी कि विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी में दानवीर सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला ने एक आदर्श 'वेद-भवन' निर्माण कराने का शुभ संकल्प किया है। यह वेद भवन एक आदर्श तथा दर्शनीय भवन होगा। जिस प्रकार सेठ जी बिड़ली में 'मीता-भवन' बनवा रहे हैं उसी प्रकार गुरुकुल में वे 'वेद-भवन' बनवायेंगे। सेठ जी उन इन्हें गिने दानियों में हैं जिन्होंने अपनी गाड़ो कमाई का पैसा देश आति और धर्म के लिए स्योधावर कर दिया है। सेठ जी की गुरुकुल में यह एक चिरस्मर्य यादगार होगी। विद्या प्रेमी जहाँ गुरुकुल देखने पधारेंगे वहाँ यह गुरुकुल मूर्ति में इस आदर्श भवन को भी देखकर गद्गदगद होंगे। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि यह भवन सेठ जी के नाम के अनुकूप ही होगा। सेठ जी के नाम से न जाने कितनी संख्याएँ बल रही हैं। आप का नियम है कि आप को जो आमदनी होती है वह मनु को आप के द्वारा देश सेवा के लिए देन है। भारत के हित के लिए कोई भी कार्य प्रारम्भ हो उसमें आपका हिस्सा जरूर होगा है। इस धर्म कार्य के लिए बिड़ला जी ने अपना मेजना प्रारम्भ कर दिया है। अनुमान है कि यह इमारत पचास-सत्तर हजार रुपये में बनेगी। हम इस पुनीत कार्य के लिए सेठ जी के हृदय से आभारी हैं और संख्या उन की सदा श्रुधी रहेगी। हमारा अनुरोध गुरुकुल प्रेमी माद्यों से भी है कि इस समय गुरुकुल में आयुर्वेद महाविद्यालय और वेद महाविद्यालय की भी आधीमान इमारतें बन रही हैं। दानियों के लिए यह स्वर्ण अवसर है। आशा है उदात्त जनता यथा शक्ति दान देकर पुण्य की मागी बनेगी।

### मालाबार की चिकित्साएं

[गुरुकुल पत्र के गल २६ भाग के पृष्ठ में श्री काचार्य जयमदेव जी का स्वास्थ्य सुचार के निष्पत्ति में एक विस्तृत पत्र प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने अपनी बीमारी और उसके चिकित्सा करने का विचार प्रकट किया था। उनका पत्र दूसरा पत्र वा० १०-९-४१ का किया हुआ हमें अभी प्राप्त हुआ है। इस पत्र में वहाँ उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रसिद्धियों, अर्थात् मिसिंग की विशेष जानकारी प्राप्त होती वहाँ पाठकगण आभाकार की विशेष चिकित्साओं (मात्रिक

चिकित्साओं) से जो परिचित प्राप्त करेंगे। हम श्री काचार्य जी के उस पत्र को यहाँ सचिकित्सक द्वारा से प्रकाशित करते हैं:—सं०]

श्री युत संपादक जी:

सम्यक् नमस्ते।

आपका १२-१०-६७ का पत्र मिला। अब तुम पर चिकित्सकों की उत्तमी पाचन्दी नहीं रही। जैसे अच्छे कैदियों के लिए कोई २ जेलर जेल नियमों को हीला कर देते हैं, वैसे ही तुमके अब यहाँ के वैद्यराज जी ने लिखने पढ़ने की काफी स्वाधीनता दे दी है। गल २६ जनवरी के दिन यहाँ की वैद्यशाळा का बायिक उत्सव था, उस अवसर पर उन्होंने तुमके अनुमति नहीं दी; बल्कि आशा की कि मैं उस समारं में संलग्न में भागच हूँ—खी पांच मिनट का भागच भी तुमके देना पड़ा। अतः इस तरह चिट्ठी रूप में कुछ लिखने रहना मेरे लिए संभव हो गया है।

यहाँ की चिकित्सक पद्धति के विषय में जानने की तो दिलचस्पी आम लोगों को न होगी। पर तुमके यह तो बला ही देना चाहिए कि जब उत्तर भारत में बहुत से वैद्य महातुभाव ये जिनमें से कई मेरी चिकित्सा बड़े प्रेम से और शायद शुफल कर देते तो तुमके यहाँ इतनी दूर आने की क्यों जरूरत हुई। बात यह है; वास्तव में कुछ चिकित्सो पचार देते हैं जो मालाबार के अपने हैं, अन्यत्र कहीं नहीं हैं। विशेषतः ये तैलों के मलने आदि के उपचार है। हमारे वैद्य भी १०० धर्मवत् जो विद्यालंकार इधर मद्रास रहे हैं। वे भी इधर की इन चिकित्साओं से परिचित हैं। उन्होंने भी मेरे मालाबार की चिकित्सा करने का समर्थन किया। उधर पौडिचेरी में एक मित्र ने मालाबार की चिकित्सा करने को तुमके स्वयमेव कहा। कई इस प्रकार के रोगियों का हाल सुनाया जो मालाबार जाकर अच्छे हो आए। इस पर मैंने उन की एक पुस्तिका देखी। उसे देखने से लगा कि ऐसी ही चिकित्सा की मैं जोर में था।

इधर वाग्मट के अर्धांग-हृदय का बहुत प्रचार है। कहते हैं वाग्मट यहाँ आकर रहे थे। आयुर्वेद के पंचकर्मों में जो जोहन स्वेदन की प्रक्रियाएँ है उन्हें यहाँ और अधिक विकसित किया गया है। बस, ये ही यहाँ के विशेष उपचार हैं। मैं जिन बात से इधर आकृष्ट हुआ है वह अर्धांग हृदय के निम्न श्लोक में सुस्पष्टतया वर्णित है:—

“शुक्लान्यपि दि काष्ठानि कोहस्वेदोपपादयैः  
राश्वयं कर्मण्युत्तारं नेतं किमु गात्राणि जीवनाय ॥”

ऐसा कहना चाहिए यहाँ तेज मलने का जोर नहीं किया जाता किन्तु सख्मव तैल में जान कराया जाता है। जैसे तो मालिश आदि के बहुत से उपचार यहाँ प्रचलित हैं, जैसे पीचू, तलपोदिवल, पचकी, उडो-बल (यह पैरों से को जाती है) अन्यत्र, अग्निपेक, मल्ल स्नेहवसित आदि; परन्तु इन में मुख्य बार है (१) धारा (२) पिण्डिच्छ (३) नवरक्तिञ्च (४) शिरोवस्ती। इनमें से शिरोवस्ती कुछ उधर के वैद्य भी करते हैं पर यह भी वहाँ यहाँ ऐसी प्रचलित नहीं। पहिले



तीन उष्व र तो मासावार के ही हैं। इन में से मुझे शिरोवस्ती तथा पिण्डिचल क्रमशः ७ दिन और २२ दिन कराये गये हैं। शिरोवस्ती में सिर पर एक बमड़े की टोपी रख कर उसमें कुछ उष्ण तेल भगा जाता है। पिण्डिचल में चाहे चायपी १ पर उष्व बैठ कर एक हाथ से कोष्ठ तैल शरीर पर निम्बोड़ने जाने हैं और दूसरे हाथ से मार्शलश करने जाते हैं। मलयालम भाषा में 'पिण्डिचल शब्द का अर्थ निम्बोड़ना होता है।

मेरे एक मित्र ने मेरे इस इलाज को शाही इलाज कहा है और शिरोवस्ती की टोपी को मुकुटसे उपाय द्वा. है। मैंने उन्हें लिखा है कि जब पहले दिन यह टोपी मेरे सिर पर कसी गई तो मुझे मुकुट का तो क्याल नहीं आया, बल्कि न जाने क्यों उस टोपी की याद आ गई जो कि कभी २ देशभक्तों को फांसी के तख्ते पर लट्ठा करके पढ़नाई जाती सुमी गई है। पर पिण्डिचल के समय बेशक ऐसा लगता था मानो मुझे रात्र्याभियेक का खान कराया जा रहा है। शिरोवस्ती में तो तकलीफ भी होनी है पर पिण्डिचल सचमुच शाही इलाज है। सुना है कि इधर के अमीर लोग जैसे नंबोदोने मालख बिना किसी रोग के भी—कंबल ताज़गी, प्रफुल्लगा या नव-जीवन के लिये ही—साल में एक बार पिण्डिचल करा लेते हैं।

यह तो मुझे कहना पड़ता है इस इस इलाज से भी—यद्यपि इलाज तो शिज्जुल ठक हुआ है—अमो तक (आज इलाज पूरा होने में केवल दो दिन बच हैं) मुझे कुछ भी पैसा लाभ नहीं हुआ है जैसे कि मैंने आशा लगा रखी थी। शायद मैंने इस चिकित्सा से कुछ अधिक ही आशा लगा ली हो जैसी कि आर्य जनता में गुरुकुल से निकलने वाले छात्रकों से लगा ली थी जो कि सर्वमान अवस्थाओं में ठीक नहीं बतल सकती थी। पर वह इलाज ज़रा भी व्यर्थ नहीं गया है—और कुछ प्रत्यक्ष लभ भी अव्य. हुआ है। बल्कि मेरा पैसा क्याल है कि यदि इसी उपचार से से मैं एक आध बार और गुजर्न तो बिलकुल ही ठक हो जाऊँगा। ऐसा लगता है कि चूँकि मेरा रोग बचपन से है—लगभग ३५ वर्ष पुराना है—इस लिये इस आयुसम चिकित्सा द्वारा भी ठीक होनेमें कुछ समय लगे।

यद्यपि ऐसी चिकित्सा के कारणे के लिये लाग बूर २ से यहाँ (म.सा.वार) आते हैं—गत वर्ष प्रसिद्ध समाजवादी नेता जय प्रकाश नारायण जी ने यहाँ डेढ़ मास रह कर चिकित्सा करायी थी, हिन्दु-महासभा के प्रधान भी साबरकर जी के भी इलाज के लिये यहाँ आने की कुछ बात भीत बली थी, मद्रास के एक एलोपैथिक डाक्टर आजकल अपना इलाज यहाँ कर रहे हैं। एक अमेरिकन महिला अपना यहाँ इलाज करा कर अच्छी हुई है और वह अब यहाँ के चिकित्सक को अपनी बहिन के इलाज के लिये अमेरिका लेजाना चाहती है (युज के कारण रुकी हुई है)—जो भी मैं यह नहीं समझना कि यह इलाज अष्ट स्थानों के सुयोग्य वैद्य नहीं कर सकते। यहाँ के उष्व क चारों मसिह उपचारों को मैंने काफी ध्यान से

देखा है। मैंने पाया है कि इन में तो कोई शुभ रहस्य है, न कोई ऐसा विशेष परंपरागत हस्त कौशल है जिसे कर्मों द्वारा हस्तगत न किया जा सकता हो। मेरे विचार में हम अपने गुरुकुल में भी इन उत्तम उपच.रों को जारा कर सकते हैं—यादों से ही विशेष ध्यान द्वारा। पञ्जाब के प्रसिद्ध वैद्य भी मूल्य पं० ठाकुरदत्त जी मुलतानी अपनी सहाज कृपा से मेरी इस चिकित्सा में विशेष विलसवरी ले रहे हैं। उनको आशा से मैं यहाँ की चिकित्सा का उभान पूर्णक अध्ययन भी कर रहा हूँ। मुझे आशा है कि उक्त माध्य वैद्य जी की देखने में तो हम आसानी से इन मालागारी चिकित्साओं को अपना सकते हैं।

इन चिकित्साओं के समय में हो नहीं किन्तु उसने बाद भी जितने दिन की चिकित्सा हो उतने ही दिन का विभ्राम (शारीरिक और मानसिक विभ्राम) करना ज़रूरी होता है। उस विभ्रामकाल को यहाँ की भाषा में 'मा-प्यम्' का समय कहते हैं। उसके कुछ सख्त नियम हैं। सो आजकल मैं यहाँ आराम कर रहा हूँ। मानकाल का समय तो यहाँ के उपचार औरताने घोंने में ही बीत जाता है। अम के साथ साथ दिन में सोना भी वरित है। फलतः दिन भर हलके काम में लगा रहना पड़ना है अतः भोजन के बाद कुछ पत्र आदि लिखना और पढ़ना यही मेरी दिनचर्या है। आजकल 'हनु-स्तान' मानो अर्थ से इति तक चढ़ जाता है और दैनिक 'प्रताप' की 'यत्र तत्र सर्वत्र' जरूर पढ़ना है और हंस लेता हूँ। और ५ से ६ तक कुछ कपड़े के बाहर ही दहलना, ६ से ७ तक भजन और फिर दूध पीकर ८। जरूर सो जाना यह नित्य नियम है।

आशा है अगले सप्ताह से मुझे अधिक कार्य करने की स्वाधीनता हो जायगी।

आत्मा बन्धु—

अमृत.

आर्य वैद्यशाला कोटक

वसिष्ठ मालावार

२०—२—४१

[ पृष्ठ ३ का लेख ]

भी लड़ा नहीं हो सकता। जिस प्रकार, दो अर्कों का होना और बात है तथा एक अर्क के अनेक मस्से होना और और बात है, उसी प्रकार किसी विज्ञान के दो परस्पर प्रतिकूल नियमों का होना और बात है। तथा एक नियम के अनेक उपनियमों का होना और बात है। क्या, किसी एक बृक्ष की अङ्गु के सब मस्से उसके गुणों से विशिष्ट नहीं होंगे? इसी प्रकार किसी भी विज्ञान के उपनियमों में उसका मूलनियम सदा अोन-प्रोत्त रहता ही है।

अब, 'समोपचार' तथा 'विचोपचार' नाम के चिकित्सा के दोनो प्रकार, आकाश वाताल, उष्णरीय तथा

दांशपीय पुनः, एवं अग्नौ और बल्ल के वृक्ष के समान, सर्वथा एक दूसरे से विभिन्न हैं, तब उन दोनों के आधार पर चिकित्सा-विज्ञान का वृक्ष किस प्रकार लड़ा रह सकता है ?

अतः, जिज्ञासु चिकित्सक के लिये यह निर्णय करना आवश्यक हो जाता है कि चिकित्सा-विज्ञान का यह वृक्ष, इन दोनों नियमों में से किसके आधार पर लड़ा है। इनका निर्णय केवल एक प्रकार से ही हो सकता है कि जिस नियम का अग्रत्वम्बा करके, पूर्व निर्णीत चिकित्सा की परिभाषा के अनुसार, चिकित्सा के कार्य में सफलता प्राप्त की जा सकती है—वही, और केवल वही नियम, चिकित्सा-विज्ञान का एक मात्र सत्य-नियम हो सकता है।

महात्मा हनीमैन ने—(निम्न प्रकार से)—मिन्न २ दो प्राकृतिक रागों के मिलने पर स्वयं हो जाने वाला चिकित्साओं के आधार पर यह सिद्ध कर दिखाया है कि चिकित्सा की निर्णीत परिभाषा के अनुसार, प्रकृतिक चिकित्सा का कार्य, विषयों के सख्तान्त के आधार पर होना सव्या असम्भव है। इस प्रकार, जब विषमोपचार का संबंध नकारकर हो जाता है तो परिशेषात् "समोपचार" ही रह जाना है। महात्मा हनीमैन ने न केवल,

विषमोपचार का लखन मात्र ही किया है अपितु 'समोपचार' का मखन भी पुर्यंतया कर दिखाया है। इस प्रकार जब अन्वय-व्यतिरेक द्वारा यही सिद्ध हो जाता है कि 'समोपचार' ही चिकित्सा की परिभाषा को पुर्यंतया निम्नाने में समर्थ है तो उसका 'समो' का नियम ही, चिकित्सा विज्ञान का केवल एक मात्र सत्य-नियम हो सकता है। चूंकि जिज्ञासु चिकित्सक को केवल उसी का अग्रत्वम्बन करने पर चिकित्सा के कार्य में यथार्थ सफलता मिल सकती है अतः उसको ही चिकित्सा-विज्ञान का एक मात्र सत्य-नियम के रूप में अङ्गीकार करके, समोपचार द्वारा ही चिकित्सा के कार्य में प्रवृत्त होना चाहिये।

महात्मा हनीमैन बताते हैं कि प्रकृतिक म, जब कभी विषम-लक्षणों वाले दो रोग एक अधिष्ठान म (एक रोगी में) उदकते हैं तो केवल निम्न तीन अवस्थायें ही उत्पन्न हो सकती हैं -

- (१) नवगत सबल रोग का पूर्वागत हीन-बल रोग को दबा देना = Suppression सुप्रापन।
- (२) पूर्वागत सबल रोग का नवगत हीन-बल रोग को भगा देना = Repulsion निर्यासन।
- (३) पूर्वागत रोग का नवगत समानबल रोग के साथ मज्जकर Double Complex (द्वि-वशासन) स्थापित कर देना।

परन्तु कभी भी विषमलक्षणोपेत दो रोग आपस में टकरा कर एकदूसरे बकनाशूर नहीं होते, अतः रोगी रोग-विमुक्त नहीं हो पाता।

यह तो सभी समभव हो सकता है जब कि दोनों रोग समान लक्षणोपेत हों। तब तो वे दोनों एकामिर्बाभ नाशः होने के कारण एक स्थान में इष्ट-युद्ध करते हुये आपस में

लड़ सकते हैं और रोगी रोग-विमुक्त हो जाता है।

एक प्राकृतिक रोग का दूसरे प्राकृतिक रोग से टकराना, अथवा एक प्राकृतिक रोगोत्पादक पदार्थ (Natural Morbific Agent) से उत्पन्न किये गये रोग लक्षण समुदाय का—दूसरे कृत्रिम रोगोत्पादक पदार्थ Artificial Morbific Agent = Medicine से उत्पन्न किये गये रोग लक्षण-समुदाय से—इष्ट युद्ध करना, एक ही बात है। प्राकृतिक रोग-रोग के, अथवा रोगीरधि (रोग और औषधि) के इष्ट युद्ध का विषय करने में पूर्व निम्न तीन बातें पुनः इष्ट-युद्ध कर लेनी चाहियें।

(१) मनुष्य रोग से आक्रान्त तभी होता है जब उसकी आत्मशक्ति बाह्य रोग-शक्ति से हीन बल होती है, तब उसके शासन के स्थान में रोग शक्ति का शासन स्थापित हो जाता है जिससे उपोद्धित हुई २ उसकी प्रजा असाधारण लक्षण समुदाय का प्रगट करके—रोग शक्ति से मुक्त होने के लिये किसी बाह्य शक्ति को पुकारती है जो उसे औषधि के रूप में प्राप्त हो सकती है।

(२) औषधियां रोग शक्ति से उत्पन्न किये गये लक्षण-समुदाय के समलक्षण समुदायोपेत भी होती हैं तथा विषम लक्षण समुदायोपेत भी।

(३) रोग शक्ति से आक्रान्त आत्म शक्ति को मुक्त करने के लिये, चिकित्सक का यह कर्तव्य होता है कि यह ऐसी कृत्रिम शक्ति (औषधि) का प्रयोग करे जिसके द्वारा रोग शक्ति तो सर्वथा विनष्ट हो जाय परन्तु आत्म-शक्ति को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे अपितु आत्म-शक्ति का शासन, पुनः स्थापित हो जाय।

उक्त कार्य को करने के लिये, प्रकृति के समान चिकित्सक भी, पहिले विषमलक्षणोपेत (Dissimilar) औषधि का प्रयोग करता है। अब उनका इष्ट-युद्ध निम्न चित्र-पट पर देखिये:—

(१) एक मनुष्य में (भारत में) कोई प्राकृतिक रोग (मुसलमान) बिरकाल से अद्वा जमाये बैठा हुआ है। अब यदि उस पर किसी बलवन्धर विषमलक्षणोपेत अन्वय प्रकृति रोग का (अग्निजों का) आक्रमण हो जाय तो निश्चय से ही, पहिले हीन-बल रोग का प्रस्थापन (Suppression) हो जायगा तथा सबल रोग का शासन स्थापित हो जायगा।

प्रकृति में इस प्रकार के विषम रोगों की परस्पर टकराव के अनेक उदाहरण मिलते हैं। Dr. Tulpis लिखते हैं कि एक बालक के मृगी के दौरे, उसके दाद से आक्रान्त होने पर एकदम बन्द हो गये। परन्तु शीघ्र ही दाद के बरबाद होने ही वह बालक मृगी के वशीभूत हो पुनः मृगी के समान उद्वल हूद मचाने लगा। अग्रार्थ नवगत, सबल विषम रोग (हृद) ने प्रस्थापित Suppressed हीन-बल, पूर्वागत मृगी रोग, नवगत रोग के उसने भी हीन-बल होने ही पुनः उठ लड़ा हुआ। इससे यह पिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि विषम रोगों के इष्ट-युद्ध में आत्म-विषयी (Suppression expression) तो हो सकता है परन्तु प्रशमन (Cure) कदापि नहीं हो सकता। इसी

लिये अंग्रेजों को आक्रमण होने पर भी भारत स्वतन्त्र नहीं हो पाया ।

(२) यदि पूर्वागत रोग, मचागत-विषम रोग से सबल होता है तो वह उसे अपने अधिष्ठान में बड़ा भी नहीं होने देता । अर्थात् उसका तुम्हें निर्यासन Re-pulsion कर देता है । इसी लिये हृद्य रोग से प्रसन्न मनुष्यों पर संक्रामक ज्वरों का आक्रमण होने सुना ही नहीं जाता ।

इस प्रकार, सबल रोग से आक्रान्त रोगी का बलहीन विषमियों ( Allopathic Medicines ) द्वारा क्या समाश्लासन हो सकता है ? क्या एलोपैथिक औषधियों के समस्त-अपहार द्वारा भी हृद्य रोग का पराजय हो सकता है ?

(३) कभी कभी जब पूर्वागत रोग, किसी मनुष्य ( अफ्रीका महाद्वीप ) के किसी भाग पर अधिकार करके सन्तुष्ट होकर बैठ जाता है तब वह अन्य रोगों ( इटली, फ्रांस, जर्मनी इत्यादि ) को भी, अपने से विषम तथा बलहीन समझता हुआ, उसके अन्य भागों पर अधिकार कर देने देता है । इस प्रकार एक मनुष्य कई विभिन्न तथा विषम रोगों का एक साथ शिकार हो जाता है । तबतो वर्षा ऋतु में—

“निशि-तम, घन, सघोत, विराजा,  
जनु वंभिन कर मित्रा समाजा ॥”

का मथा आ जाता है । क्या अफ्रीका महाद्वीप की ऐसी ही शोचनीय दशा नहीं हो रही है ? इसी प्रकार, क्या आतशय से मारा नहीं जाता-विष-विषमियों की चारों ओर से मार काकर अधमरा नहीं हो जाता ? धम्य है वे चिकित्सक, जो मधवा ( इन्द्र ) के समान “सुर मारि मङ्गल चहत” बने रहते हैं !

इस प्रकार इन तीनों संग्रामों को प्रत्यक्ष देखकर, चिकित्सक को पता चल जाता है कि इन विषम-विशियों ( Dis-similar medicines ) द्वारा रोगी का रोग शक्ति से मुक्त होना तो दर किनार रहा, अर्पणु वह और ज्ञान में उलझ जाता है । विषमोपचार से निराश हुये चिकित्सक के लिये अब रोगी के उद्धारार्थ केवल उसकी समलक्षणोपेत औषधि का प्रयोग करना ही शेष रह जाता है । वह उषोही “पति पशुति; रविर्न रयेश; तुरङ्ग साधी. तुरगाविरु;म्” ही समोपचार की औषधि का प्रयोग करता है : योही मैदान साफ हो जाता है, रोग लक्ष्मण की सेना का सर्वनाश हो जाता है तथा उससे विमुक्त हुयी आत्म शक्ति की लजा फहराने लगती है । सूर्य के प्रकाश के फैलते ही सब दीपक मग्-मग् हो जाते हैं, किनाइल के पत्रों ही नालियों की दुर्गंध दूर हो जाती है तथा कोयल की कूक के सुजायी देने हो कण्ठों की ‘का-का’ कहा रह जाती है !

मेरे एक शेर ने ( एक लघु-काय शशक ने ) तो एक मेरुको शेर को परछाईं दिखाकर ही मार निराकर हर्षातिंगक से दुष्मि मारते हुये पलमर में पशुओं की समाज में पहुंच समोपचार का यह चमक र जा सुनाया !

चिकित्सकों के लिये भी महात्मा हनीमैन ने मनुष्यों में प्राकृतिक रोगों द्वारा होने वाले समोपचार के अनेक उदाहरण संग्रहीत कर रक्षे हैं । जिनमें से दो चार का

यहां उद्धरण देना पाठकी आवश्यक द्धिकार होगा ।

(१) बेचक के आक्रमण काल में प्रायः नेत्र शोथ ही जाता है, यह सभी चिकित्सक जानते हैं । Dr. Leroy ने एक ल्यायी नेत्रशोथ के रोगी को बेचक का टीका लगाने के पश्चात् उक्त रोग से सर्वथा विमुक्त होते देखा है ।

(२) गाय के फफोलों ( Cowpox ) के रस से बेचक परित्राण करने का प्रकार तो पुराना हो चुका है, परन्तु यह बात कोई २ चिकित्सक ही जानता है कि उक्त रस की सूक्ष्म मात्राओं के प्रयोग से बेचक का उपचार भी हो जाता है ।

(३) मधुरिका ( Measles ) में होने वाली कास, कुकरा कांसी से बहुत कुछ भिन्नती जुलती होती है । Dr. Bosquillon लिखते हैं कि कुकरा कांसी के रोग-संकमण ( Epidemic ) में वे बच्चे जिन्हें बसरा निकल आया, कुकराकांसी से सर्वथा बरी रहे ।

(४) Dr. Hughes लिखते हैं कि भारत वर्ष के वैद्य मधु-मण्डियों पर गरम पानी डाल कर जो रस तय्यार करते हैं उससे वे भिन्न २ प्रकार के जलाशयों ( Dropsy ) का बड़ी सफलता पूर्वक उपचार कर लेते हैं । क्या मधु-मण्डियों के कान्ठे पर शरीर का वह भाग जल-भरा सा नहीं हो जाता । भारत के इस प्रयोग के अनुकरण में इंदोश में अनेक परीक्षण किये गये तथा Apis Mellifica नामक औषधि तय्यार की गयी जिसके पुटीकृत रूप से ( Potency से ) आज होमियोपैथिक चिकित्सा प्रगत हो गई । अनेक प्रकार के जलाशयों का उपचार किया जाता है । बच्चों के मस्तिष्क के आवरण की शोथ ( Meningitis ) के लिये तो यह औषधि रामबाण सिद्ध हुयी है । क्या एलोपैथी में इस रोग की चिकित्सा Lumbar Puncture इत्यादि से उन्कट प्रयोगों के बिना हो सकती है ? क्या जो मनुष्य बात से मर सकता है उसे लात मारना समुचित हो सकता है ? इस प्रसङ्ग में निम्न श्लोक को लिखने का लाभ संवर्धन करना हमारे लिये अलसमय सा हो दो रहा है—

“बने प्रबलितो वङ्गि, दहन मुजानि रचति ।

समुजोन्मुलनं कर्ष्यात्, वायुर्वैद्यदुःशान्तः ॥”

क्या, मलिनो को सुखाने के लिये हिम-सेक ही पर्याप्त नहीं होता ?

इस प्रकार, इन प्राकृतिक समोपचार के उदाहरणों द्वारा, यह पृथगत सिद्ध हो जाता है कि रोगों का प्रशमन ( Cure ) तो केवल “समी” के नियम के आशर पर ही हो सकता है । यह पहिले सिद्ध किया जा चुका है कि “विषमों” के नियम के आशर पर चिकित्सा की परिभाषा के अनुसार उपचार होना सम्भवित ही नहीं है । अतः अन्वेष तथा व्यतिरेक, दोनों प्रकार से यही सिद्ध हो जाता है कि चिकित्सा का एक मात्र सत्य नियम “समी” ( Sim-lars ) का ही हो सकता है, तथा समोपचार द्वारा ही चिकित्सा की परिभाषा का पृथगत परिप्राप्त हो सकता है ।

समोपचार द्वारा रोगी किस प्रकार रोग-विमुक्त हो जाता है इसकी व्याख्या करते हुये महात्मा हनीमैन बताने

है कि चूँकि समान लक्षणों वाली श्रोत्रधि ठीक वहीं २ जा पड़ सकती है जहाँ २ रोगशक्ति में अधिकार कर रक्खा होता है, अतः दोनों का समान चल होने पर, एक दूसरे में टकरा कर बचना बुरा हो जाना अनिवार्य हो जाता है, जिसके पश्चात् आमशक्ति पूर्णतया स्थलम्भ हो जाती है। क्या भारत की स्वतन्त्रता का गूढ़ रहस्य भा इसी समोपचार में नहीं छिपा हुआ है ?

समोषधि को गम-शक्ति में कुछ थोड़ा सा बल उत्तर होना इसलिये आवश्यक है कि यदि दोनों शक्तियाँ स्वयंया समान-बल-शालिनी हों, तो उनका उन्व-युद्ध प्रलय-काल तक भी समाप्त नहीं हो सकता।

अनः यथाप "समोपचार" का सूत्ररूपः—  
"समः सम प्रशामयति"

का है, तथापि उसका पूर्ण रूप निम्न हैः—

"A weaker dynamic affection is permanently extinguished in the living organism by a stronger one, if the latter (while differing in kind) is very similar to the former in its manifestations."

अर्थात्—जीवितानुबन्ध में दिव्य-शक्ति-शाली रोग, लक्षण-सादृश्योपेत अन्य बलवत्तर रोग द्वारा स्थायीरूपेण शान्त हो जाता है।

कथम्

"बलवत्तर सम-शक्ति हो सके,  
स्वल्प-शक्ति भी प्रशामनहार।"

क्या इसके अनिरीक, चिकित्सा का एकमात्र सत्य-नियम कोई और हो सकता है ? इसी लिये हम संसार के सर्व प्रकार के चिकित्सक-मात्र से सातुरोध अभ्यर्थना करना चाहते हैं कि—

धन्वी ? सम-उपचार ८—  
धनु में, श्रोत्रधि तीर—  
तान; मार इकतान हो,  
मरै रोग, नरै कीर ॥

### गुरुकुल समाचार

इष्टर कुछ दिनों से ऋतु की विषमता अपना प्रभाव दिखा रही है। वन सप्ताह कुछ दिन आकाश में बादल घिरे रहे। दो बार हल्की वर्षा भी हुई। ऋतु का इस विषमता का प्रभाव धाड़ा-बहुत ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य पर भी पड़ा है। कुछ ब्रह्मचारी श्लेष्मउत्तर से पीड़ित हुए किन्तु अब ऋतु अनुकूल हो गई है। अतः ब्रह्मचारी स्वयं हो गए हैं।

वार्षिक परीक्षाओं के समीप आज्ञाने के कारण कुलभूमि में सर्वत्र अभ्यथनाध्यापन उत्तर आता है। इन्हीं दिनों में गुरुकुल वृन्दावन के भूतपूर्व मुख्याधिष्ठाता श्री आचार्य श्री पं० बृहस्पति जी गुरुकुल में पधारे। महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की सभा में आपने "वेद का महत्व" विषय पर एक गवेषणापूर्ण श्रोत्र-प्रभावशाली भाषण दिया। आप

ने गुरुकुल में वेद के सम्बन्ध में एक व्याख्यान माला देनी थी किन्तु स्वास्थ्य के ठीक न रहने के कारण यह न हो सका।

### गुरुकुल मुलतान का वार्षिकोत्सव

गुरुकुल मुलतान का वार्षिकोत्सव १५-१६ मार्च १९५१ को होगा। जो सज्जन अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहते हैं वे अब से उत्सव तक किसी समय भी कर सकते हैं। यह गुरुकुल कांगड़ी की सब से पुरानी शाखा है। इसके प्रबन्ध आदि की देव भाल श्री आचार्य जी गुरुकुल कांगड़ी के निरीक्षण में एक प्रबन्ध कर्तुं समा करती है। मुलतान का जलवायु प्रशहूर है। पढ़ाई आदि का प्रबन्ध भी सम्पूर्ण जनक है। इस शाखा में विशेषता यह है कि पढ़ाई के अनिरीक समय में कई एक प्राज्ञिविका के साधन भी सिखाए जाने हैं। मासिक शुल्क पहलों से तीसरी तक १०) और चौथी, पांचवीं म १२), छठी से आठवीं तक १५) लिए जाने हैं। गुरुकुल की नियमावली और प्रवेशार्थ प्रार्थना-पत्र मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल मुलतान से मंगावा सकते हैं।

### गुरुकुल कुरुक्षेत्र का वार्षिकोत्सव

गुरुकुल कुरुक्षेत्र का सलाना जलसा ७-८ और ९ मार्च को बड़ी धूम-धाम से मनाया जावेगा। उत्सव को सफल बनाने के लिये पूरा प्रयत्न किया जा रहा है। गुरुकुल के लिये धन संग्रह करने के लिये गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री पंडित सोमदत्त जी बराबर आसपास के इलाके में घूम रहे हैं। अभी तक श्री पं० बुद्धदेव जी, मो० धर्मन्द्-नाथ जी, श्री पं० शान्तचन्द्र जी, श्री पं० प्रियव्रत जी आचार्य उपदेशक महाविद्यालय लाहौर ने उत्सव में पधारना स्वीकार कर लिया है। श्री पं० सत्यदेव जी विद्यालङ्कार संपादक (हिन्दुस्तान) के सभापतित्व में एक मनोरंजक वाद विवाद होगा। वाद विवाद का विषय होगाः—क्या हिन्दू मुसलिम ऐक्य के बिना स्वराज्य मिल सकता है ? पंजाब के प्रसिद्ध गायनाचार्य मो० देशचन्द्र जी के सभापतित्व में सङ्गीत सम्मेलन होगा जिसमें म० चिरंजीलाल जी प्रिंसिपल शंकर संगीत विद्यालय, तथा म० धर्मवीर जी गायनाचार्य आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञ भाग लेंगे। पंजाब सरकार की हिन्दी गुरुमुखी विरोधी नीति का विरोध करने के लिये एक कामर्सेंस भी करने का विचार है। ब्रह्मचारियों के शारीरिक व्यायाम के खेल होंगे तथा ब्रह्मचारी "परिवर्तन" नाम का एक अभिनय भी करेंगे।

वार्षिकोत्सव के अवसर पर २० नवीन ब्रह्मचारी प्रविष्ट किए जायेंगे, जिनका प्रवेश संस्कार ९ मार्च को होगा। जो महाभुभाव अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहते हैं वे अभी से कामें भरकर भेज दें। प्रवेश कामें "सैनिक गुरुकुल कुरुक्षेत्र, जि० करनाल" के पते से मिल सकते हैं।

चौथी बुलासराय के प्रबन्ध ने गुरुकुल मुद्रण लय गुरुकुल कांगड़ी में सुदृष्ट तथा प्रकाशित।

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य २)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुद्रण-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥]

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल काँगड़ी, शुक्रवार १७ फाल्गुन १९६७; २८ फरवरी १९४१

[ संख्या ५५ ]

## इन्द्रप्रस्थ के स्वामी रामानन्द जी

( लेखक—अभय )

( १ )

अब मैं गतवार १, २ मार्गशीर्ष को गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ गया था तो स्वामी रामानन्द जी से स्वायत्त तौर से उन्हें बुलाकर मिलना था । उनमें मिलने का आस तौर से बिचार करने के इन्द्रप्रस्थ गया था, पर उस समय मुझे क्या मालूम था कि मैं उनका अग्रिम दर्शन कर रहा हूँ । गोविंदेरी से भी मैंने दो बार गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के सहायक-मुद्रणविद्यालयाधीन माधव गोपाल जी को पत्र लिखते हुए यह इच्छा प्रकट की थी कि जब स्वामी रामानन्द जी का कर्तव्य के तौर पर सब काम चुका दीजिये, उनकी जो इच्छा हो बस वही वे करें और धाराम में जीवन व्यतीत करें ऐसा प्रबन्ध कर दीजिये, एक खातक बन्धु ने भी मुझे ऐसी पत्रिका की थी कि स्वामी जी का जब कार्य भार खुदा देना चाहिये, पर उस समय मुझे क्या मालूम था कि जिन के बहुमूल्य देह की मैं हूँ तब तराई बिना कर रहा हूँ वह फीट खारी के नीचे आकर बहिराज होने के लिये लिखा जा रहा है ?

( २ )

'बहिराज' शब्द मैंने सन्भोजन प्रयुक्त किया है । आज परिचय में तो बहोचलता "कौजीवन" बहुत से निरोह निर्दोष प्राणियों की दिन रात जान के रहा है । उस का एक छोटा सा दरख हमारे सामने भी आया । अन्धबुद्ध कौजीवन का इस पृथ्वी लक्ष से आलस करने के महान उद्देश्य से ही हमारे देश के कुछ उत्कृष्ट लोग संशयग्रह कर रहे हैं—जाने स्वतन्त्र जीवन का बहिराज कर जेज आरहे हैं । पर जिसने केवल ऊपर ही भारत में पूजा जाने वाला पवित्र कपाय बस्त्र नहीं पहिना हुआ था बल्कि जो धान्य में भी पवित्र, परमात्म-परायण शान्त और विपत्ता युक्त था ऐसे संशयानी रामानन्द जी का कौमो खारी में टहना कर प्र जाना मुझे ऐसा ही लगता है कि वे जेज जाना ही नहीं, किन्तु अपने शरीर का भी बहिराज हल "कौजीवन" के लिये कर गये । इन्द्रप्रस्थ में जो मुझे सम्भावना मिली है उसके अनुयायी खारी टहराने में उन्हीं १०, १२ जाना भोट धारी; फिर भी वे अन्त तक होश में रहे । दिना छेस चतुस्र किसे जीवन के जित् अन्त तक संरक्षक करने रहे । एवं उनकी मृत्यु भी की मृत्यु थी । मरणाधीन रामानन्द के जीवन का हम क्या मूल्य जाना सकते हैं ? पर क्या आत्मा को संरक्षक जो अपने को वैश्व 'कौजीवन' में मुत्ते होने का श्वाहा करमां है—तामानवर्त जी के निधन

में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को जो अशर प्रति पहुँको है उसका कुछ प्रति-शोध ( सुभावना ) किसे जाने के अपने कर्तव्य की तरफ ध्यान देती ?

( ३ )

इन्द्रप्रस्थ ही उनका वस्तुतः इस समय कुटुम्ब व परिवार था । समाचार में कहा गया है कि अन्त तक उन्हें गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का ध्यान बना रहा । गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ जिसका राजत अवमती उत्कृष्ट अर्थात् भोक्ते दिनों बाद ही समाया जाने वाला है—यह स्मरण याकर उनका विवेक बहुत ही अचिक्क दुःख दायी बन जाता है । मेरा विश्वास है कि स्थूल शरीर को छोड़ कर गया उनका अन्तरात्मा तब तक शावत् अपने मानसिक और प्राणमय शरीर को नहीं छोड़ना चाहेगा, सम्भवतः नहीं छोड़ेगा अब तक कि वह अपने स्वप्न-शरीर द्वारा इन्द्रप्रस्थ की राजत अवमती के उत्सव को सफलता पूर्वक मनाया गया न देख लेता । परमेश्वर करे कि उनको, स्वप्न-शरीर धारी उनको यह संतोष और सुख प्राप्त होंगे । हम भी उष उच आत्मा को प्रसन्न और मंगुष्ट कर सकने वाले उत्तम कृत्यों द्वारा उस आत्मा को नृस करने का पान करें ।

( ४ )

मुझे यह सौभाग्य तो नहीं प्राप्त हुआ कि मैं उन से पढ़ा होऊँ या उनके अधिष्ठान्मय में रहा होऊँ । पर हम विद्यालय विभाग में हो थे जब तुमा था कि दो महानुभाव गुरुकुल में नये आये हैं किन्हें अपने जीवन गुरुकुल को अर्पण किया है—उनमें से एक थे सुन्हा रामसिंह जी थे जो पीछे स्वामी रामानन्द जी हुए । पर इनकी महिमा का पता तो बर् ही होकर; बरिह, आतक होकर ही पला । इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल बन जाने के बाद स्वामी रामानन्द जी ने अपने जीवन का सुख-काल इन्द्रप्रस्थ में ही बिताया और ऐसा कोई रिरक्षा ही अभागा होगा जो इन्द्रप्रस्थ में पढ़ा हो और रामानन्द जी के जीवन का प्रभाव उस पर बिल्कुल न पका हो । प्रारम्भ में उनकी कर्त्तव्य न करना बल्कि कभी कभी उन्हीं सँग भी करना पर पीछे से कम से कम दिख में उनकी कर्त्तव्य करने लगना यह है एक सामान्य इतिहास जिनम व बहुत से इन्द्रप्रस्थ में आये विद्यार्थी प्रायः गुजरते हैं । श्रेणी जीवन द्वारा पढ़ने वाला प्रभाव प्रायः धीमे धीमे ही पचता है यद्यपि वही अन्त तक पहुँचने वाला होता है और अन्तमय चिरस्थायी

अब यह निव गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की राजत अवमती में पहुँची ही खिता गया था, वहाँ की जयन्ती अभी २४ फरवरी को सफलता पूर्वक मनाया हो चुकी है—मं०

होता है। और स्वामी रामानन्द जी के विषय में ही लह-खबले अधिक कहा जा सकता है कि वे इन्द्रप्रस्थ में ( यदि गुरुकुलीय दृष्टि से देखें एक ऐसे व्यक्ति थे जिनके जीवन का—न कि भातों या भाग बाहरी व्यवहारों का प्रभाव पड़ता था।

इसविषये जब मुझे स्वामी रामानन्द जी के विषय का समाचार मिला तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो इन्द्रप्रस्थ से गुरुकुलीय पताका गिर गयी। उनका जीवन गुरुकुलीयता से ऐसा रंगा हुआ था कि वे निसन्देह इन्द्रप्रस्थ में एक ऊँचाई किरती जीतोन्मयता गुरुकुल पताका थे। परमेस्वर गिरी हुई गुरुकुल पताका को फिर उँचा करे। आशा है गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के सब मान्य अध्यापक को सिद्धकर हम के लिये अवश्य ही यत्न शील होंगे।

( २ )

स्वामी रामानन्द जी का कोई स्पष्ट स्मारक तो गुरुकुल इन्द्र-प्रस्थ में होगा ही काहिये। क्योंकि सामान्यतया लोगों को उद्बोधन देने के लिये स्थूल वस्तु बहुत सहायक होती है। परन्तु क्या ही प्रश्ना हो कि गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के विद्यार्थी स्वामी रामानन्द जी महाराज के वद धनुषायी हो जाय, गुरुकुलीय जीवन में उनके लम्बे शिष्य हो जाय, अर्थात् इन्द्रप्रस्थ के महाप्राची, स्वामी जी को आदर्श रख कर अपने शिष्य कर्मों का अनुष्ठान तथा शिष्य शिष्यों का पावन इनकी स्वामिनि सत्ता तथा हृदय में ही और आनन्द से कान्ते वाले हो जाय कि इस विषय में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ काय सब गुरुकुलीयों के जिसे हृत्ताप स्वरूप बन जाय और जब जब गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की इस विरोधता की चर्चा हो तो इसके कारण के लीर पर सदा यह कहा जाय कि यहाँ के विद्यार्थियों के बीच में एक सज्जनत्व संभली ३० वर्ष तक रहे थे। यदि ऐसा हो जाय तो यह स्वामी रामानन्द जी महाराज का जीता जागता स्मारक होगा। यदि पैदा हो जाय तो चाहे स्वामी जी का यह देह इन्द्रप्रस्थ में कच बचल चिरता नहीं दिखायी देगा पर ये इन्द्रप्रस्थ के जीवन में हमर हो जायगी।

### काली कमली वाले बाबा मनीराम जी

पुण्य-भूमि भारत और उसमें भी तपस्वियों की भूमि हिमालय। हिमालय के मुख्य शिखर हैं कैलाश, गंगोत्री, जगन्मोयी, बद्रीनाथ, केदारनाथ। इनमें से पहले की छोड़ कर बाकी सब शिखरों तक जाने के लिए बाबा काली कमली वाले की धर्मशास्त्रों की प्रशिक्षण लड़ी हुई है। हज़ारों शिष्यों वाली हरेक श्रम करके आपने की कृतार्थ साधने हैं। बड़ा सचका सचका है।

श्रुतिकेश में हज़ारों साधु और लोकजनों विद्यार्थी बाबा काली कमली वाले के हाथ से निरिच्छत होकर जीवन प्राप्त कर रहे हैं। हर साल लाखों का दान आता है और फ़ार लक्षों का कर्म है।

इस मन्त्रक में नन्द, जिसे ब्रह्म ब्रह्म दान में मिलता है जब गुरुकुल उड़ाना होगा। मोटर से उसके प्रास होगी। इन्हीं का संकोट-पेकाह नहीं होगी, आज बड़ा कल यहाँ। पेसा ही स्तेक-की हल्का होयी है। क्योंकि सामान्य प्रकृति ऐसी ही है।

भ्रम के ताम पर ५६ लाख विष्णुवासी साधु लूष शीत उड़ान रहे हैं ऐसे ही यह माँ उड़ाना श्रेया, जून ५६ उड़ाना श्रेया !

पर क्या कहें। अगर मैंने उसे देखा न होता तो मैं खुप रह जाता। अब भी केवल विरोध के लिए नहीं कह रहा हूँ बल्कि न कहने से पाप होगा इस लिए कहने लगा हूँ।

मैं थका हुआ पहुंचा था। कपड़े मैले कुचैले, बाल बड़े हुए और बिखरे हुए, एक झूटा और एक उपमां हाथ में था और हाथ में कुछ नहीं। तुम देकर तो मैं इस पड़ते और तुम ही क्यों-बापूरा में चलते हुए एक पनवाड़ी की नुकान के शीशे में देखकर मुझे खुद भी हँसी आ गई थी। हाँ, तो मैं थका हुआ बाबा काली कमली वाले की श्रुतिकेश की धर्मशास्त्रा के कार्यालय में पहुंचा था।

बड़ा वर तक तो यही समझ में आया कि यह कार्यालय है या कथा मन्त्राली। क्योंकि सारा काम बड़े शान्त से चलाकर रख में हो रहा था। अभीन पर ही एक गद्दे पर बहुत से लोग बैठे हुए थे। कुछ लिख रहे थे, कुछ सज्जन बात कर रहे थे जो कि शायद दान के बारे में था। कुछ बर्हाबाने खुले पड़े थे और यह सब जगहां यह कोई कमरा न था बल्कि टीन से टँका हुआ धर्मशास्त्रा का एक कोना था। इतनी बड़ी धर्मशास्त्रा, इतना विस्तृत इन्द्रप्रस्थ, और उसके कार्यालय के नाम पर एक कमरा भी नहीं। कोई यूरोपियन होता तो अकर चिढ़ जाता।

फिर यह कैसे पता चले कि मैं नन्द कीर ? पूछताछ से मालूम हुआ कि वे जो काली दाढ़ी वाले सज्जन बैठे हैं यही मैंने नन्द है क्या इस सारे प्रश्न-प्रश्न के सर्वे नर्वा है ? पहले विनोबा जैसे आदर्श, काले काले बड़े बाल और दाढ़ी, जिस पर पगड़ी लगी हुई थी, सबके बीच में ऐसे बैठे थे मानो इस सब से कोई मतलब न हो। ये थे बाबा मनीराम जी 'काली कमली' के सर्वे सर्व।

मैं पहुंचा। कहा कि 'उठरना चाहना है।' 'कौन हो?' 'कहाँ से आए हो?' 'क्या करने हो?' पता नहीं कितने प्रश्न उठने। पर 'गुरुकुल' से आया हूँ यह सुनकर वह सारा प्रश्न-प्रश्नो अविद्युत् में ही विलीन हो गई। मुझे उठरने को जगह मिल गई और सारा इन्द्रप्रस्थ हो गया।

कोई बिना देखे चाहे कुछ कहे पर उन्हें देखकर 'गुरुकुल' की बात तो दूर ऐसा लगता था कि मानो टोडी भी नहीं खाई है।

श्रुतिकेश में बिजली की तारें हैं। पर काली कमली के कार्यालय में मुझे न तो बिजली के पंखे लीने न बिजली के लहट्टे। किजूल कर्ची यदि कुछ हो रही है तो सबकी जानकारी में हो रही है। साधुओं को व्यर्थ बिना भ्रम बिलाना यदि किजूल कर्ची न हो तो और कुछ सम्पत्ति का दुरुपयोग ग्रहां नहीं था।

उनके कार्यों की आलोचना व्यर्थ है क्योंकि उनकी नीयन पर संदेह नहीं किया जा सकता। वे जो कुछ कर रहे हैं वह सही है या गलत इस में किली का मतलब ही सकता है पर वे जिसे ठीक समझते हैं उसे ईमानदारी से कर रहे हैं इसमें प्रमत्त कोई शिष्य सन्भावना नहीं।

कबा मनीराम श्वेत वस्त्रधारी, अविवाहित, काली दाढ़ी, काले गाल, आनने आचार्य भी स्वां अनुभवदेव जी

की थाढ़-भाजती है।

बाबा जी को साम्प्रदायिक कहना हू भी नहीं गई थी। वे समाजगी; हम कार्य सलामी, पर हम सब का वे आत्मबर्ष अनक साकार करते थे। हम इनके साथ नहीं रहे पर पता नहीं कैसे उन्हें प्रत्येक गुरुकुल के व्यक्ति मे प्यार था।

आज वही बाबा मनीराम जी इस संसार में नहीं हैं। श्रमाल्कार पत्रों में प्रकाशित हुआ कि वे अघानक ही इस देह को छोड़ गए हैं।

कीर्ति-के-ओ फूल इन लोगों की स्मृति पर चढ़ने चाहिये बना नहीं किस प्राचीन कर्म विपाक के कारण उन्हें मरत्य नहीं होने ?

नहीं तो क्या निःस्वार्थ भाव से एक ही जगह एक ही नीरस काम में अपना जीवन नया देना मरत्य है ? मुझे पता नहीं कि काली कमली के प्रबन्ध मे तीर्थ यात्रियों को बुध्न मान्य होता है कि नहीं, पर वह स्पष्ट है कि काली कमली के प्रबन्ध से तीर्थ यात्री अनेक कष्ट पूर्ण कठिनाइयों से बच जाते हैं और उन्हें अपनी नितान्त आवश्यक तीर्थ यात्रा समाप्त करने में बड़ी सहायता और सुविधा होती है और कम से कम इनका पुत्र्य ता काली कमली के संभालक आश्रय ही पाने के अधिकारी हैं। परमात्मा उस निःस्वार्थ तथा स्नेहशील आत्मा का सद्गुणति प्रदान करे।

“विराज”

## होमियोपैथी की शक्ति

( ले०-डा० गोमकांत जी विद्याभार, विजौर )

चिकित्सा प्रणालियों की सर्वोत्कृष्टता निर्णायक कसौटी यही शानी गयी थी कि जो चिकित्सा प्रणाली अपने मुबोच निबन्धों के ज्ञाकार पर प्रवर्तित होकर मूढतम प्रक्रिया द्वारा अस्वस्थ मनुष्यों को शीघ्रानि-शीघ्र तथा आणीकण्य स्वास्थ्य लाभ करने की शक्ति से पूर्णतया सम्पन्न हो, वही सर्वोत्कृष्ट समझी जाक।

समोपचार के सुबोध निबन्ध-वाल होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली। इस प्रकार की शक्ति से सम्पन्न है या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर पिछले बार आप्पायों में की गयी चिकित्सा प्रणालियों की ज्ञानरत्न परीक्षा द्वारा स्वयं ही-ब-प्राप्त-गाना है। जिस चिकित्सा प्रणाली में, रोगी-परीक्षक-ज्ञा-प्रकार-सर्वोत्कृष्ट-हो जिसको आधिपत्यां औपनिषदों की पञ्जाङ्ग परीक्षा में सबसे प्रथम स्थान प्राप्त करके सब जिनकी चिकित्सा का नियम वही हो जो कि चिकित्सा-का एक मात्र स-य निबन्ध हो सकता है; उस चिकित्सा प्रणाली के ऐसी शक्ति से पूर्णतया सम्पन्न होने में कितने-सम्भवे हो सकता है ? क्या, चिकित्सा प्रणालियों की ज्ञानरत्न परीक्षा में सर्वाधिक अद्भुत प्राप्त किये बिना कोई चिकित्सा प्रणाली चिकित्सा-प्रणालियों की यश परीक्षा में ( चिकित्सा-की-परिभाषा के अनुसार चिकित्सा के कार्य में अज्ञान-ज्ञान-कारणों की स्वर्धीय आत्मा-युक्त-पेला-देन में ) सर्व प्रथम स्थान प्राप्त करने में समर्थ हो सकती है ?

जो चिकित्सा प्रणाली, उक्त दोनों परीक्षाओं में सर्वोत्कृष्ट उदरती है उन्में न केवल उक्त प्रकार की शक्ति का प्राप्ता जाना ही अनिवार्य है अपितु वह शक्ति उन्में सर्व श्रेष्ठ तथा सर्वाधिक भी होनी चाहिये।

होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में तब शक्ति सर्वोत्कृष्ट रूप में प्राप्ता अधिक से अधिक मात्रा में नियमान है—इसको सिद्ध करने के लिये अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

क्या, महात्मा हनीमैन ने एलोपैथी द्वारा प्राप्त हुयी असफलताओं मे निराश होकर ही उक्त चिकित्सा प्रणाली के अनुभवय गृहीतियों के सुमधुर तथा शीतल जल से परिपूर्ण मानसरोवर का अनुसंधान नहीं किया था ?

क्या उसी ने ही, विविध-विध रोगियों, से परिचरयित जनता को उक्त सरोवर में स्नान-कराने के पश्चात् रोग मुक्त करा कर, उसी ने ही ( जनता से ) यह नहीं कहला लिया था कि वह जिसे जलाशय समझते थी वह केवल मृग-मरीच का मात्र ही था तथा उसे प्राबन्धिक सरोवर का तब तक परिचय ही न था ? क्या अल में जल का तथा जल में थल का मनि-सम केवल सुबोध आशया व्योथन को ही होता रहा तथा हो चुका है ? क्या ऐसी ही मनि-श्रम अनेक चिकित्सकों को भी चिकित्सा के विषय में, अभी तक नहीं हो रहा है ?

समय ऐसा आता ही रहता है जब कि अपने नियमम परिजनों की चिकित्सा के लिये विषमोपचार वाली चिकित्सा प्रणाली की मृग-मरीचिका से निराश होकर लौटने हुये कुछ चिकित्सकों को बराल्, समोपचार के मानसरोवर पर पहुँचने का कष्ट उठाना पड़ ही जाता है तथा उसके द्वारा जीवन लाभ होने पर उनका मनि-श्रम सदा के लिये दूर हो जाता है उक्त मान सरोवर में स्नान करने ही सब उनके मित्रजनों का उद्धार हो जाता है, तो उनके लिये, इसके अतिरिक्त चारा ही क्या शेष रह जाता है कि वे विषमोपचार को सदा के लिये नमस्कार करके, समोपचार के अनुभव-म-क तथा उपासक हो जायें ? क्या इस प्रकार अनेक एलोपैथि चिकित्सक, होमियोपैथिक की शरण में नहीं आ चुके हैं ? क्या महात्मा हनीमैन से लेकर डा० केट, फरिक्रूडन, हेरिङ्ग, ह्यूजस, मरन्डालस सरकार, युनन इत्यादि चिकित्सा जगत् के विख्यात हार्डकोर्ड के जज, इसी प्रकार समोपचार की शक्ति से आकृष्ट होकर इसकी शरण में नहीं आ चुके हैं ?

क्या आये दिन, अनेक रोगी प्रयत्नर शक्य चिकित्सा द्वारा स्विधन बीरोगता प्राप्त करने की अपेक्षा यमराज के घर पहुँचना ही अधिक प्रयत्नर समझने हुये, कमी २ समोपचार की अनुभवय औपनिषदों का गङ्गा-जल पान करने को बाध्य नहीं हो जाते ? क्या ऐसी अवस्था में भी जब समोपचार द्वारा उनका उद्धार हो जाता है तब वे उसके परम भक्त बने-बिना रुक सकते हैं ? क्या ऐसे जने जागते स्वयं बिचरने मरत्य प्रमाथों की उपास्थिति में भी, समोपचार की शक्ति की सिद्धि चरने के लिये अग्र्य प्रमाथों की श्रवण्यकन रह जाती है ?

( देखिये पृष्ठ ५ पर )

# गुरुकुल

१७ फाल्गुन शुक्रवार १९६७

## ज्ञानयोगी श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन

[ ७०-सनातन संशोधक और विचारकार ]

आर्यशास्त्रों ने वैदिक तथा उपनिषत् कालिक ऋषियों को "त्रिकालदर्शी" नाम दिया है। उनका "त्रिकालदर्शन" मनोमय भूमिका से प्रवृत्त तर्कसिद्ध दर्शन नहीं होता था, अपितु मनोमय सृष्टि की उदात्त अवस्था "स्युति" (Intuition) का सहज सिद्ध, स्वयं स्फुरित दर्शन होता था। महात्मा श्रीयुक्त अरविन्द काय ने तो लोगों की इस सामान्य धारणा को बदल कर अपनी साधना और साक्षात्कार द्वारा ऐसा प्रतिपादित किया है कि वैदिककालिक महाऋषियों का दर्शन स्युतिजन्म दर्शन नहीं था, अपितु मनोमय भूमिका से भी ऊर्ध्वस्थित, विज्ञानमय भूमिका में निष्पन्न हुए साक्षात्कारों का नेत्रस्थो, सौंदर्यमय और प्रतिमा पूर्ण प्रकटीकरण था। इस प्रकार की मौलिक स्थापना करने उन्हीं विज्ञानमय भूमिका के रहस्यों का विशद स्पष्टीकरण तथा विज्ञान (Supermind) की सिद्धि का अनुभवजन्म मार्ग अपने "पूर्वयोग" के पञ्चम खंड में—विज्ञानयोग में—प्रदर्शित किया है।

पारम्परिक दार्शनिक अर बुद्धिजन्य (Intellect) के विषय में संशोधन करने लगे हैं। मोबल पारितोषिक विज्ञाना विषय तर्क दार्शनिक हेनरी बर्गसन की तो समस्त भोज ही "स्युति" को केन्द्र मान कर की गई है। शंकराचार्य, वेदार्थ, साक, काण्ड, शापनहार, तथा बर्गसन ऋषि ने स्युतिजन्म ज्ञान (इष्टपृथिव मालेज) के विषय में जो विचारना और स्थापना की है, स्मृति, कल्पना और बुद्धि के विषय में हेगल और बर्गसन ने जो रूप प्रस्तुत किया है तथा दर्शन उन्नत में स्युति की आकाङ्क्षाएँ कर अकालतुल्य अरन्ध, कर्णार्थ, दिपनोक्त, वाक्का, काण्ड ऋषि ने जैसा और जिनका मार दिया है, उसकी जितनी स्पष्टता प्रदर्शित की है उत सम धर अब पुनर्विचार, संशोधन तथा नवीन मूल्यांकन होने लगा है। इस नवीन प्रतिपादना में श्रीयुक्त ऋषिन्ध बोध के (Intuitive phase) का महत्त्व बहुत अधिक है। उन्हीं "स्युति" के विषय में समग्रव्यापक, समर्थ और विशद धारणाएँ प्रस्तुत की हैं। महात्मा अरविन्द बोध के परमानु जीवन दर्शन में स्युति (Intuition) की सच्ची महत्ता को समझने वाले हमारे आधुनिक तत्त्व-चिन्तकों (दार्शनिकों) में आचार्यवर सर्वपल्ली राधाकृष्णन अधोक्ष का बहुत गौरव पूर्व स्थान है। श्री राधाकृष्णन केवल तर्क कुशल

बद्ध नहीं हैं। न वे परम्परागत कठिनों, सम्प्रदायों, धारणाओं और पूर्वग्रहों से आबद्ध पुरानी शैली के दार्शनिक हैं। बुद्धि के नवीन-नवीन आवाजों द्वारा बंधन के लिए विशुद्ध बना देने वाले केवल बुद्धि शैली संशयमय (Sceptic) भी वे नहीं हैं। तत्त्वज्ञान, वस्तुतः केवल बुद्धि से उतना आबद्ध नहीं है जितना कि वह स्युति की साधना के लोभ्य से तथा सामर्थ्य से देवी-व्यापना सहजसिद्ध है। आचार्य राधाकृष्णन तो मनोमय जंगल में स्युति की भूमिका (Intuitive phase) पर साधना का समागम करने वाले जीवन प्रद है। जीवन और जगत् को सचार्थ के साथ समझने वाले तथा जीवन संप्राम के पलों को निहार कर संस्कारिता सिद्ध करने वाले संस्कार-नेता हैं।

"इष्टिजन्य फिलसोफी" नामक विपुल ग्रन्थ में इनकी तत्त्वपर्याय विद्वता और सर्जनशील विचारणाएँ हम देख सकते हैं। अपने Hindu View of life ग्रन्थ ग्रन्थ में हमने हिन्दु धर्म का मौलिक विवेकात्मक पर तथा ही प्रकाश डाला है। Philosophy of Upanishads में महर्षियों का समग्र दृष्टि को और उनके अर्थ विज्ञान-दर्शन को बड़ी ही खूबी के साथ समझाया है। The Vedanta according to Shankara and Ramanuja में इनका गहरी विवेक शक्ति, तुलना शक्ति और सुस्पष्ट समझ का पता चलता है। The Religion of Religion in Contemporary Philosophy में तथा The Religion We Need जीवन के पुनर्विधान की स्वतन्त्र दृष्टि, धर्म के उपयोग के विषय में हमने अनेक अनेक मौलिक और सुसंगत धारणाएँ प्रस्तुत की हैं।

An Idealist View of life इनको अर्थ रचना है इन्होंने समग्र जीवन की गहरा सिर से स्वतन्त्र विचारणा की है। मन, अर्थ और आत्मा के सम्बन्ध में नई-नई धारणाएँ बड़ी बोधक और समाधान-परक शैली में उपस्थित की हैं। "संस्कृति का अधिष्ठा" नामक अपनी कृति में अपने वाली संस्कृति का स्वतन्त्र, सहजसिद्ध दर्शन करने राधाकृष्णन ने अपनी स्युतिकार होने की समता बड़ी अच्छी तरह से सिद्ध की है।

आचार्य राधाकृष्णन की दृष्टि में Intuition is the extension of perception to regions beyond sense (परिज्ञान का इन्द्रियों से परे के क्षेत्र में प्रसार पाना ही सहज स्युति है।) परन्तु ऊपर कथित "स्युति-ज्ञान" द्वारा मनुष्य जीवन-स्वामी नहीं बन सकता। हाँ जीवन का प्रयोग-वीर बन-सकता है। जीवन-स्वामी बनने के लिए तो मनुष्य को मनोमय सृष्टि से ऊपर रहने वाले विज्ञान (Super mind) की सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए। उसकी प्राप्ति के लिए विज्ञानमय कोश (Supplemental phase) को प्राप्त करने का उपाय साहस करना चाहिए।

(Intellect) बुद्धि का विवेकशील उपयोग करने वाला व्यक्ति सामान्य जनन से सुखा होता है। और Intuition का साधक तो बुद्धि-वर्धियों से भी बड़ी



और सभी ज्ञानसिद्धि को प्राप्त करता है। परन्तु 'बुद्धि ज्ञान' तथा 'स्मृति ज्ञान' का विस्तार और प्रभाव भी सीमित है—परिमित है। इन अवस्थाओं में अन्तरात्मक अथवा मूल ज्ञान और स्वरूप प्राप्त नहीं कर पाता, ज्ञान इस अवस्था में अन्तरात्मा की शक्ति और सुन्दरना अर्थात् और अर्थात् ही रहती है। बुद्धि की भूमिका में ज्ञान का स्थान रहना है और स्मृति ज्ञान की सिद्धि में परिमितता का काल होता है। परन्तु विज्ञान की सिद्धि में तो मात्रक आत्मवीर बनता है। उसे जीवन की विषयता का डीक र भाग होता है। इसे ही विषय जीवन की भूमिका में जाना कहा गया है। महात्मना अरविन्द जीय इसी विषय जीवन की साधना को अनुभवजन्य बना रहे हैं। उनकी यह धारणा आज विषय के बुद्धिवादियों को आश्चर्य विमूढ़ बना रही है। पश्चिम के महान् दार्शनिक उनकी साधना और स्थापना को देख कर बहुत विस्मय प्रदर्शित कर रहे हैं।

हमारी आर्य भूमि विरकाल ने ऐसे साधकों और उदात्त आत्मियों की क्रीडा भूमि रही है, जो कर्मशास्त्र, स्मृति और विज्ञान की भूमिक में विहार करने हुए विषय जीवन प्राप्त करने थे। इस युग में हमारे देश में श्री अरविन्द के पश्चात् इन उदात्त भूमिकाओं की ओर अभियान करने का सामर्थ्य आचार्य राधाकृष्णन में है। उनके बुद्धिजन्य विचारों में भा अनुभूति की गहरी क्षाप सुस्पष्ट प्रतीत होती है। इसी कारण हम उनको उदात्त भूमि की ओर गया हुआ मनोनी कह सकते हैं। आचार्य राधाकृष्णन इस दृष्टि से अविनाश द्रष्टा हैं— विज्ञानियों की ओर प्रयास करने वाली उदात्त विभूत हैं। इसी कारण उनके विधानों को इष्टव्यक्त करना बहुत सरल प्रतीत होता है। आर्य भूमि के इस विरल ज्ञान योगी को हमारे बहुत प्रशिक्षण है।

( देखिये पृष्ठ ३ का मेर )

जिस प्रकार, तुलसीदासजी की मित्र चौपायी के अनुसार: —

आगत यदि सर अति कठिनार्थ,  
राम कृपा किन्तु भांड न जाई ॥

मान सरोवर पर पहुँचना अत्यन्त कठिन है तथा राम की कृपा के सहारे के बिना कोई पहुँच ही नहीं पाता, उसी प्रकार समोपचार के अद्वय सरोवर पर पहुँचना भी अत्यन्त कठिन है तथा शोमियोपैथिक साहाय्य के महारसियों की पुस्तकों के अध्ययन की सहायता के बिना कोई उस तक पहुँच ही नहीं सकता। परन्तु, जिस प्रकार मान सरोवर की यात्रा करने लोहे यांत्रियों के आदेशानुसार चलने से, वहाँ पहुँचना अत्यन्त सुगम हो जाता है, उसी प्रकार समोपचार द्वारा जीवन लाभ करने वाले रोगियों के विषय ही इस समोपचार के सरोवर तक पहुँचना भी अत्यन्त सुगम हो सकता है।

इस प्रकार होमियोपैथी की शक्ति का सुगमता से पश्चिम प्राप्त करने के लिये, पश्चिम अनेक चुरम्बर समोपचार-चिकित्सकों द्वारा जीवन लाभ कराये गये

रोगियों का विषय, उनकी पुस्तकों के उद्धरणों के रूप में प्रस्तुत किन्तु ज्ञात सकता है; तथापि, इस कार्य के लिये यह अधिक उपयुक्त होता कि उन को ही रोगियों का विषय पाठकों की भेंट किया जाय, जिनको समोपचार द्वारा निराशा-नदी में डूबा विये जाने के पश्चात् समोपचार द्वारा उद्धार पाने, लेखक ने स्वयं आँकों देखा है।

लेखक को समोपचार द्वारा जिस रोगी के जीवन लाभ करने पर होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में प्रथम २ शब्दा उत्पन्न हुई, उसका विषय निम्न है:—

रोगी विषय ( Case ) I

सन् १९२५ में अमेरिका के प्रदर्शन में, जब कि मैं गुण्डुल कांगड़ी के मधोस्वयं में सन्निहित होने के लिये गया हुआ था, मेरे १५ मंस की आयु वाले पुत्र आनन्द प्रकाश को Cholera Infantum ( बाल-विषुचिका ) हो गया। उसके उक्त रोग से प्रसन्न होने की सूचना पाकर जब मैं घर पहुँचा तो उसे बड़ी ही शोकमयी दशा में पाया। पढ़ने पर पता चला कि उसकी चिकित्सा बिजनौर के चिकित्सक-सर्जन सहाय्य कर रहे हैं। मेरे लिये इससे अधिक समतोष की बात और क्या हो सकती थी कि मेरे पुत्र की चिकित्सा बिजनौर के योग्यतम चिकित्सक के सुपुर्वाई थी। परन्तु जब मुझे यह पता चला कि उस दिन उन्ने लगभग चालीस दस्त आ चुके हैं तो मुझे कुछ घबराहट का अनुभव करना स्वाभाविक ही था। फिर भी यात्रा की थकान के कारण मैंने कुछ सोनाया। रात्रि के १२ बजे मुझे सहसा जगाया गया। मैंने जाकर देखा कि रोगी को उसी समय एक बड़ा सा दस्त हुआ है तथा उसने आँकों फाड़ दी हैं और वह एकदम मूर्च्छितवस्था में पड़ा है। उसके, इस प्रकार जीवन-प्रदीप को बुझता देखकर मैं किन्तु-संकल्पविमूढ़ हो गया। ठीक मध्य रात्रि में किसी अन्य चिकित्सक को कह देना उचित न समझ कर मैं स्वयं उसके लिये औषध विधान करने की इच्छा से तैय्य जलाकर Allen's Materia Medica लेकर बैठ गया। उसके सब लक्षण Arsenic में पाये गये, परन्तु उसे प्यास का नामोनिशान तक भी नहीं था जो कि Arsenic का मुख्य परिचयक (Characteristic) लक्षण है। मैंने डूँडना आरम्भ किया कि ऐसी औषधि मिल जाय जिसमें आरसैनिक के न सब लक्षण मौजूद हों परन्तु प्यास का लक्षण न हो। चूँकि शिशु की जीवन-रक्षा करना परम-पिता को अनोढ़ था अतः ऐसी औषधि के मिलने में मुझे अधिक समय न लगा। मैंने Aethusa Cynapius की 200 Potency को १ बुँद जल में मिलाकर बालक की जीभ पर डालरी और उसका प्रभाव देखने के लिये पास पड़ी आराम कुर्सी पर पड़े रहा। बालक में कुछ सुप्त-लक्षणों को उद्यत होना देख, मैं शीघ्र ही निद्रा के वशीभूत हो गया।

जब उठा, तो देखा कि सूर्य-महापराश्र की कीमल किण्व माला बांगन में अठलेखिणी भेज रही हैं और आनन्द प्रकाश आनन्द मंगन हो अंगुठा चूस रहा है। द्वारा की धार देखने पर पता चला कि कुछ महिल-वैसकेट्टेसी चादर छोड़े आकर बिना बात किए ही लौठी चली जा

रही है। रात सायंकाल ही सब को यह निस्वयं हो चुका था कि रात कटनी। असम्भव है, भले; उनको उल्लेख्यवाहक का अर्थ लयमेंने में मुझे प्रकटि कर न लखे। परन्तु ब्रह्म आनन्द कन्द भगवान् का ही उस शिष्य की रक्षा करनी शक्यीष्ट थी तो उन प्रद-भदित्वाओं को अनुष्ठान को-पब्ध देना ही उसके लिये कौन बड़ी बात थी। तभी तो तुलसीदासजी ने लिखा है:—

‘गल मृधा, सिपु करति मितार्इ, सो-पद् शिष्य अनल शितलाइं  
गमय मूमेर रेगु मम ताही, राम कृपा धर चितवहिं जाही ॥

जिस विकिसा प्रणाली द्वारा किसी का बच्चा, मौत के मुह में से इस प्रकार लौंच किया जाय, यदि उसके प्रति उसके हृदय में भ्रष्टा का सागर भी उमड़ पड़े तो क्या आश्चर्य हो सकता है ?

बिजनीर की जनता के हृदय में समोपचार के प्रति किस प्रकार भ्रष्टा उन्मत्त हुए थे ?— इनका प्रदर्शक निम्न रोगी-विवरण दिया जाता है।

**रोगी विवरण ( Case ) II**

बाबू प्रतापसिंह जी, रिटायर्ड इंस्ट्रिक्स जज के पौत्र की भुजा पर एक बहुत बड़ा फोड़ा निकल आया, जिसकी शल्य-चिकित्सा मस्ती के एक प्रसिद्ध अंग्रेज डाक्टर ने करने का निश्चय हो चुका था। वैद्यत् मेरे एक हितैषी महाशय ने जज साहिब को यह अनुमति दी कि वे Operation कराने से पूर्व लेखक की अवश्य विज्ञाने, शायद यह औषधि द्वारा ही उसकी चिकित्सा कर सके। बच्चे को पिता उसे लेकर मेरे पास आये। मैंने उसकी परीक्षा करने हुये यह लक्षण विशेषतया पाया कि वह न केवल फोड़े को ही छूने नहीं देता था अपितु बहुत चिड़चिड़ा भी हो रहा था। मुझे उक्त लक्षणों वाली औषधि का स्मरण होने पर न लगी। मैंने Hepar sulph 200 की चार मात्राएं बनाकर येहीं और यह आदेश दिया कि प्रतिदिन प्रातःकाल एक मात्रा बच्चे की पिलायी जाय।

बड़ी श्रम्य मनस्कता तथा उदासीन कृति से उसके पिता यह औषधि लेकर चले गये तथा मैं भी उदासीन एक बरतन में सम्मिलित होकर लाहौर चला गया। जब पांच दिन बाद लाहौर से लौटकर मैं अपने घर की ओर चला जा रहा था तो मार्ग में अनामक-जज साहिब मिल गये जो मुझे देखने ही उल्लस पड़े। कौन बड़े तपस्व से बोले "I congratulate you Dr. Srinib for this excellent treatment, I never knew that such miracles can be performed by Homeopathy" मैंने उन्हें नमस्कार करते हुये उत्तर दिया "जज साहिब, मैं आपको बहुत सम्प्रदाय देना हूँ इस लिये कि आपने मुझे होमियोपैथी की शक्ति का प्रदर्शन करने का एक सुअवसर तो प्रदान किया"।

इस चिकित्सा की वर्षा में बिजनीर नगर में, जब मैं मैल विन्डु के समान फैल गयो। बहुत से लक्षणों ने यह कहने हुये कि "आपने मरुत पढ़ा वामी पिला कर ही उस भयानक फोड़े को अच्छा कर दिया" मुझे सा-वदाओं की बौद्धा ने तरबतर कर दिया।

यद्यपि उक्त-ग्रन्थ-विलम्ब के माहादेश में ही कहा गया होना, तथापि उसको सफूर्त में भी कुछ विशेष आपत्ति नहीं हो; खफसी। क्या अन्क-अर-क्या-किरार के अतिरिक्त कुछ और को लक्षता है ? तब-क्या बह-जल, मन्व-पुन-—किपार पूर्वक विना मया—नहीं था। कुछ भी हो; समोपचार की ह-व-किरि-कल-को-देख-का-वि-क-नौर की जनता के हृदय में होमियोपैथी के लिये कषय-अदा उन्मत्त हो गयो, ब्रिजने कल-कल-को-कय-लक्षणों ने मुझने होमियोपैथी पढ़ना भी प्रारम्भ कर लिख। जज साहिब को तो बाद को ऐसा अनुभव होने लगा, आगे:-  
"विन्डु औषधि ध्यायि विधि कोरे"।

बिजनीर के पत्तोपैथी के अवासक चिकित्सकों में तोमियोपैथी के प्रति आदर भाव किस प्रकार उत्पन्न हुआ— इनका निदर्शन निम्न रोगी विवरण द्वारा हो सकेगा।

**रोगी विवरण ( Case ) III**

सन् 1882 की बात है। फरफरी का महीना था, जज कि बिजनीर के सरकारी अस्पताल के अस्तिवैज्ड सर्जन साहिब का दुग्ध-मुग्ध बालक उद्भ-विनों से बीरक चला आ रहा था; जिसका इलाज बिजनीर के सिलिल सर्जन साहिब, एक अन्क-कोथ रिटायर्ड सिलिल सर्जन साहिब के द्वारा करे से कर रहे थे।

एक दिन रात्रि के ६ बजे एक आदमी अस्पताल से भागा हुआ आया, और मन्व से साथ बच्चे की आर्थना करने लगा। उससे पूंछने पर, मुझे पता चला कि डाक्टर साहिब का बच्चा ८ दिन से बीरक है तथा बाह्य उसकी हालत कुछ अच्छी नहीं है। परन्तु भगवान् का नाम ले मैं तो औषधियों का Hand-ling हाथ में ले सुरम्न अस्पताल जा पहुंचा। घर के अन्व-पर-रन्व-हे-दे-बेना-हूँ क्या, कि लगभग आधे बर्जन-अम्प-व्याहियान पहिले ने विद्यमान हैं। अस्तिवैज्ड सर्जन साहिब का मुझे आदेश हुआ कि मैं बिना विलम्ब के रोगी की परीक्षा करके उसे होमियोपैथिक औषधि दे हूँ। मैं कुछ देर के लिये तो एकदम सहम सा गया परन्तु श्राय ही ऐथर्य धारण कर कार्य प्रारम्भ कर दिया। जब रोगी के लक्षणों की औषधि के लक्षणों में वृत्त उन्नता पा किया तो सुरम्न औषधि की ( Arsenic 30 ) एक मात्रा मैं दे बच्चे को पिलायी। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह द्रो वर्ष का बच्चा उस मुग्ध-मुग्ध औषधि को बहुत बड़ा बच्चे ही गया। मैंने १५ मिन्ट बाद एक मात्रा और दी—और ब्रह्म। इस दूसरी मात्रा के देने के साथ ही वह क्षुद्र-क्षुद्रता हुआ बच्चा एक दम शान्त हो गया। सब का सर्व-ह हुआ कि कहीं कुछ गड़बड़-झाका तो नहीं है। मा-री तथा हृदय-परीक्षा करने के पश्चात् डाक्टर साहिब को यह निश्चय हो गया, कि बात किपड़ नहीं रही है। मैं भी डाक्टर साहिब की स-ह-निर्णय तथा बच्चे को मात्रा के समामासक के लिये समग्रण जाया चंदा और पैठ र्हा। ज-व-डाक्टर साहिब को पूरा विश्वास हो गया कि न केवल बच्चा, अपितु उसकी माता भी वास्तविक लुख की जीव के पूर्व-

तथा बध्मिभूत-हो धार्य है तो क्यातया मुझे भी प्रेम-पूर्वक शिक्षा किया गया।

अस-काल, अभी आठ मी न-बच्चे पाये होंगे कि मुझे अस्पताल से फिर बुलाया आया। सोचा, न-जाने क्या मामला है परन्तु इसी समय फड़फुकी देखिष भुजा ने मुझे औरत बंधा दिया कि जो कुछ हो जा, होगा मला ही।

डाकूर साहिब की बैगक में पैर रखने ही मैंने बहुत मे डाकूरी तथा नवागणमुक सज्जनों को बन्नी देते पाया, जिनसे नमस्कार विनिमय करने के पश्चात् डाकूर साहिब ने अपने पिता जी से मेरा परिचय कराया जो मुझफुकर-नगर से वहाँ के एक प्रसिद्ध प्लोपैथ डाकूर साहिब को साथ लेकर रात्रि में २ बजे शिजतीर पधार चुने थे।

अब तक बचपे के विषय में मुझ से किसी ने कुछ भी नहीं कहा; परन्तु सबके मुखारविन्दों पर खेळती प्रसन्नता को देख कर मैंने निःशुद्ध-भाव से अनुमान कर लिया कि बच्चा अवश्य अच्छा है। मेरे पूछने पर कि "बच्चा कैसा है?" उत्तर मिला "चलकर देव न लोजियेगा"। अन्दर पहुँचकर मैंने बच्चों का आंग चल्-विष्णो प किया ही था कि मेरे कानों में एक मृदु-ध्वनि "डाकूर साहिब, देखिये आपका यह मरीज अब तो खूब हँस हँस कर खेळ रहा है" सहसा आ पड़ी। (जिधर से यह सुधा-स्यन्दिना-ध्वनि आ रही थी उधर आल उठाते हा मुझे ऐसा प्रतांत हुआ भागों बहुत से मालती-गुण्य मालाकार हो मेरी ओर बढ़ रहे हों। मैं भी मतमलक हो मुग्न कह उठा। "बहिन जी, भगवान जिते हँसावे वह क्यों न हँसे"। मैंने सुना "परन्तु हमें हँसाने के लिये तो आप ही भगवान बन कर आगये हैं।

मैंने कहा "भगवान के मेजे एक तुच्छ सेवक के रूप में तो मैं आपकी सेवा में अर्पय उपस्थित हुआ हूँ"।

अस्तु। इस प्रकार उमड़ने प्रेम-पारवार में जब सबने मिल कर खूब स्नान कर लिया तब मैं भी बबे की परीक्षा तथा उसकी भागा का ममाभ्यासन करके बाहिर बैठक में जा पहुँचा, जहाँ सब उपस्थित सज्जनों ने बघारियों की पुण्य मालाओं से मेरा अर्ध अभिनन्दन किया। परन्तु, मैं सुदृढ़ जीव इनना बाक कदां संभाल सकता था!

शीघ्र ही इस पृथता को प्राप्त सम्मान ने पूषिमा के बन्धुमा के समान मेरे पीछे भी राहु और केतुओं को लगा।

होमियोपैथी की यह पृथता यद्यपि राहु और केतु को निमग्न वे ही चुको थी तथापि यह कंसे हो सकता था कि पूषं विजु को देखकर उर्ध्व के समान कोर भ। एसा सज्जन बहूँ उपस्थित न होगा जो होमियोपैथी की इस पृथता को उस परतरे विमृति का—देवकर फूला न चमा रहा हो। एसा सज्जन वहाँ उपस्थित था, और अ-श्य इपस्थित था। परन्तु, तुलसीदास जी की निम्न चौपाई के अनुसार—

"सज्जन, सकुत सिन्धु मम कोर,  
देखि पर-विजु वाढ़ई जोर"।

था, केवल एक ही। उक्त डाकूर साहिब का सौहार्दु य भी मेरी ओर इतना बढ़ा कि वह बढ़ने २ सहोदर भाई के समान मेरे गले का लगा। डाकूर साहिब ने होमियोपैथी की इस अमृतपूर्व सफलता का अवलोकन कर उससे परिचय प्राप्त करने के लिये, होमियोपैथी की पुस्तकों का अध्ययन भी प्रारम्भ कर दिया।

बाकी की प्रशस्ति में कहा गया मताकवि भारवि का यह निम्न श्लोकः—

"विविकवर्षा-मरका सुल-भर्ताः  
प्रसाद्वयन्ती हृदयाम्पयि शिवाय  
प्रवर्तने नाकृत पुत्रकर्मयोगाम्-  
प्रसाद गम्भीर पदा सरलरी"॥

होमियोपैथी की प्रशस्ति में, कुछ परिवर्तनों के साथ, इस प्रसङ्ग में उद्धृत करना, क्या पाठकों के मनोरञ्जन का हेतु न होगा?

"विविक वर्षा, रसना, सुल-प्रदा  
प्रसाद्वयन्ती हृदयाम्पयि शिवाय  
प्रवर्तिता कि हनिमै न येही,  
नदी चिकित्सा विधि लोक विभूता" ॥

## श्री सेठ बिड़ला जी का गुरुकुल कांगड़ी में शुभागमन

श्रीमान् सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला २० फरवरी सांय काल लगभग ६। बजे दिहो से सांघे गुरुकुल में पधार। आपने आयुर्वेद महाविद्यालय तथा वेद महाविद्यालय की इमारतों का अवलोकन किया और वेद-भवन के लिए भी स्थान की देख भाल की। जितना को यह जन कर प्रसन्नता हांगी कि वेद महाविद्यालय भवन का इमारत प्राचीन स्थापत्य कला के अनुसार बनवां जा रही है।

वेद महाविद्यालय को बन रही इमारत को देख कर बिड़ला जी बहुत प्रसन्न हुए और आर्यशीली पर बनता देख समताक प्रकट किया। इमारतों के शैलन के पश्चात् ज्यों ही बिड़ला जी लङ्गे हुए थे कि उन्हें चारों ओर से छोटे ब्रह्मचारियों ने घेर लिया और इतने में ही एक छोटे ब्रह्मचारी ने बिड़ला जी से प्रश्न कर दिया कि आपका 'वेद-भवन' कब बनेगा? शीघ्रतः बिड़ला जी ने उत्तर दिया कि तुम जितन ब्रह्मचारी लङ्गे हो तुम सब के सब वेद-भवन ही हो। बिड़ला जी और ब्रह्मचारी खूब प्रसन्न हुए और इसके पश्चात् श्री संठ जी अपने निवास स्थान को चले गये। शनिवार की प्रातः काल श्री बिड़ला जी पुनः कुल-भूमि में पधार। इमारतें आदि देख कर वेद-भवन के लिए स्थान का निरीक्षण किया। आशा है वेद-भवन निर्माण का कार्य शीघ्र ही आरम्भ हो जायगा।

## गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का रजत-जयन्ती

### महोत्सव

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ देहली का रजत-जयन्ती महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। हजारों की संख्या में लोग एकत्रित हुए। देहली नगर तथा ग्रामीण जनता दोनों ने बड़ी दिलचस्पी से इस में भाग लिया।

सोहल से बीस फरवरी तक गुरुकुल की ओर से दीवान हाल ( देहली ) में श्री स्वामी केवलानन्द जी की कथा हुई। तदनन्तर गुरुकुल भूमि में २१, २२, २३, २४ फरवरी को उत्सव प्रारम्भ हुआ। इन वर्ष भीड़ अधिक होने के कारण स्वैमि वा. क्लोन्गारियाँ उपादह लगानी पड़ी। पर डाल गन यहाँ की अंग्रेजा इण्डोडा बनाया गया था तथा ओताओ को लुविग्या के लिये महाशायर ( Lord Spenser ) का प्रबंध किया गया था।

### प्रथम दिवस

उपदेशों तथा व्याख्याओं के अतिरिक्त श्री प्रो० मुल्लदेव जी दर्शनवाचस्पति के सभापतित्व में हिन्दा साहित्य-सम्मेलन हुआ जिसमें मित्र भिल वक्तव्यों ने हिन्दो के राष्ट्रभाषा बनाए जाने के महत्त्व पर प्रकाश डालने हुए "हिन्दुस्तानी भाषा" (वषयक कांग्रेस की नीति का देश के लिए अहितकर बताया।

रात को श्री सोहनलाल खिंचेदो ( लखनऊ ) की अध्यक्षता में कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें दूर २ के कवियों ने भाग लिया। श्री सभापति जी के अतिरिक्त श्यामकृष्ण जी दाक्षिण, ओ वरुगेरा ज्ञा, मोचाना फोलरू तथा ग० नागेन्द्र प्रम० ग० प्रभृति की कविनाएँ पसन्द की गईं।

### द्वितीय दिवस

२० फरवरी को श्री प० प्रियव्रज जी वेदवाचस्पति श्री स्वामी केवलानन्द जी तथा श्री स्वामी सवदानन्द जी महाशय के सुन्दर उपदेश व व्याख्यान हुए तथा श्री प० रामचन्द्र जी देहलीवा के सभापतित्व में जाग हुना सम्मेलन हुआ जिसमें सार्वदेशिक सभा के निर्णयानुसार जाति-आर्य, धर्म वैदिक, भाषा हिंदी तथा लिपि देवनागरी लिखाने के लिये सब आर्य भाषियों से निवेदन किया गया।

रात को प्रश्नकारियों के शारीरिक व्यायाम तथा छाता पर से मोटर गुत्तारने की खेलों के बाद संगीत सम्मेलन किया गया जो लगभग १ बजे समाप्त हुआ। इसमें विधिपर सर्गात पाठियों ने भाग लिया यह सम्मेलन बहुत सफलता से मनाया गया।

### तृतीय दिवस

२३ फरवरी को प्रा० सत्यन जी गुप्तराधिता गुरुकुल-कांगड़ा तथा प० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति के व्याख्यानों के बाद गुरुकुल की वार्षिक रिपोर्ट तथा लगभग १५००० के दान की घोषणा की गई। सांयकाल श्री युत प्रम परस अंग जी की अध्यक्षता में पारिक्रमान विरोधा सम्मेलन

हुआ। इसमें श्रीरबुदीरसिंह जी, डा० धूलसिंह जी बजाड़ तथा परिडल अरुनीन्द्र जी विद्यालंकार प्रभृति ने पाकिस्तान की योजना को देशघातक, अव्यवहार्य तथा विध्वंसक बताया तथा भाषणसे इस का विरोध करने की अपील रात को श्री उपेन्द्रनाथ जी दास निबियाकालिज की अध्यक्षता में स्वास्थ्य सम्मेलन तथा स्वामी केवलानन्द जी का उपदेश हुआ।

### चतुर्थ दिवस

२४ फरवरी को श्री प्रो० लालचन्द्र जी प्रम प्र० तथा प० मुल्लदेव जी वेदवाचस्पति के व्याख्यानों के परचार्य श्रुतिबोधोत्सव मनाया गया जिसमें मित्र २ वक्तव्यों के अतिरिक्त श्रीयुत दानवीर सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ना ने आर्यसंस्कृति के महत्त्व तथा उनके पुनरुद्धार पर बल देने हुए श्री स्व मो दयानन्द जी के प्रति अपनी श्रद्धाजलि समर्पित की। साथ ही आर्यसमाज के कार्य की प्रशंसा करते हुए आर्य-जाति के मित्र २ अंगों को संगठित करने की अपील की।

इन व्याख्यानों व सम्मेलनों के अतिरिक्त प्रतिदिन पहलवानों की कुश्तियों तथा बाला बाल, हाका के सामु-ख्यों के कारण बहुत चहलचल रही। देहली तथा बाहर की टीम खैली। श्री० रामनारायण ज्ञा अज के कफमलों ने विजेताओं को पारितोषिक विनाश करवाया। हाकी का कप गुरुकुल कुश्तन तथा वीली बाल का विजयोपहार आर्यकुमार समा दीवान हाल को दिया गया।

इन प्रकार यह उत्सव बड़े सकारोह व धूमधाम के साथ सफलता पूर्वक समाप्त हुआ।

### स्वास्थ्य समाचार

ब्र० विद्यारत्न १४ श्लेष्मज्वर ( influenza fever ) ब्र० रणवीर १४ श्लेष्मज्वर, ब्र० योगेन्द्र २२ श्लेष्मज्वर, ब्र० जगदीश ११ श्लेष्मज्वर ब्र० धर्मपाल १२ श्लेष्मज्वर, ब्र० जगन्नाथ ५ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर ब्र० प्रद्युम्नकुमार ५ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर, ब्र० श्रीमधकाश ( देहरादून ) ५ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर, ब्र० नारायणसुनि ५ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर, ब्र० धर्मपाल ५ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर, ब्र० रामप्रसाद ( जौन ) ५ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर, ब्र० सत्यानन्द ५ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर, ब्र० हरिदचन्द्र ४ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर, ब्र० विद्वनाथ ४ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर, ब्र० रणजीतसिंह ४ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर, ब्र० दमनेशकुमार २ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर, ब्र० देवेन्द्र ( आम्बाला ) ४ श्लेष्मी श्लेष्मज्वर।

गत सप्ताह उपरोक्त प्रश्नकारों रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। इन दिनों श्रुतु परिवर्तन के कारण श्लेष्मज्वर ( influenza fever ) की शिकायत है। उसके लिए आश्रम में मा प्रश्नकारियों को दवाई दी जानी है और दूध आदि से तुलसी, दालचीनी, एला तथा पिपली उबाल कर देने से ताकि रोग से बचाव रहे। अब सर्दी हलकी होती जा रही है।

चोपरी हुमानगरय के प्रबंध से गुरुकुल सुदृक्तालय गुरुकुल कांगड़ा में मुद्रित तथा प्रकाशित।

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न द्वारवंश वेदालंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २४ फाल्गुन १९६७; ७ मार्च १९६१

[ संख्या ४६ ]

## बन्धन से मुक्ति

( २२० श्री दशो भद्रानम् जी के धर्मोपदेश से )

अनाद्यनन्त कलिलस्य मध्ये विश्वस्य मृश्टरमनेकरूपम् ।  
विश्वम्यैक परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते भवंपारीः ॥

आदि और अन्त से शून्य, परमाणुरूप अवस्था में जगत् को रचने वाले, नाना प्रकार से संसार में व्यापक होने वाले, पूर्ण प्रकाशमान् को ज्ञातकर मनुष्य सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है ।

मनुष्य अपने से किसी अधिक बलशाली शक्ति को न जानकर बहुत बार संसार में स्वतन्त्र के गढ़ों गढ़ों में पड़ा हुआ क्या कुर्म कर बैठता है। सारी सृष्टि के पदार्थों को अपना भोग्य पदार्थ जानकर इन्द्रियों पर अधिकार रखने के स्थान में इन्द्रियों का हस बन बैठता है। नमोयुग की नीच दशा को प्राप्त हा अपने असल स्वरूप को भी भूल जाता है। अपनी आगतिक और शारीरिक विचित्र उपत्ति को मृदा को दया के सिवा पंदा हुआ जानकर अपने आन्तरिक शक्ति का दुरुपयोग करता है गीर संसार में अधिक अन्धरे फैलाने का कारण बनता है और स्वयं मोह और अहंकार के जाल में फँस कर कभी मुक्त और कभी दुःख मानता है। इन्द्रियों के विषयों में मिला मुख, लक्षणमंशुर् गेने के कारण उसकी लालसा को बढ़ाता चला जाता है। संसार में चारों ओर कलेश और अनहद दुःख की यह भयानक ध्वनि जगत् को दुःखमय प्रापट कर रही है। प्राकृतिक साधन हिमाच्छदित पर्वत, सुरस्य सरोवर, शीतल पवन, उत्सव जल के क्रीडा और स्वादिष्ट वनस्पति सबके सब दुःखद एक बन रहे हैं और हा हा-कार की रीत अन्ध और बाहर से बगबर आ रही है। आत ! क्या मनुष्य स्वभाव में ही दुःख का कारण अथवा दुःख भागने का हेतु बना है। मनुष्य सर्वप्राणियों में श्रेष्ठ बनकर इतना दुःख क्यों भोगता है ? जबकि पशु पक्ष और सारी सृष्टि के जांब जगत् सब अपने अपने भोगों को प्राप्त करते बड़े आगम और शान्ति से अपनी प्राण्य व्यतीत कर रहे ह। यदि मनुष्य में सृष्टि नियम को समझना और मृदा को आत्मा का पालन

करता तो यह दुःख स्वरूप जगत् शान्ति धाम बन जाता। इस अस्मान में पढ़कर कि संसार में कर्मों का दण्ड-दाता कोई नहीं और इन्द्रियों के भोगों में ही आगम है, मनुष्य नास्तिक बनकर पशु समान खाने पीने सोने और मैथुन आदि को ही अपना कर्तव्य जान लेता है। परन्तु कर्म-नाति पबिल है। किंये कर्म का फल प्रबन्ध भोगना पड़ना है और अज्ञान का फल तो दुःख ही है। कर्म करने से पूर्व ज्ञान की उपलब्धि होनी आवश्यक है। ज्ञान से मनुष्य, मनुष्य पदवी को प्राप्त होता है और संसार की उत्पत्ति तथा परमात्मा की अनन्त शक्तियों का विचार करता हुआ इस सम्पूर्ण रचना को ज्ञान के चक्षु से देखता है और संसार की उत्पत्ति तथा परमात्मा का अनन्त शक्तियों का विचार करता है कि अनन्त जगतकर्ता कारण-रूप से प्रकृति को नाना प्रकार की सृष्टि में परिवर्तित कर रहा है और वेद द्वारा उपदेश देता है कि यह प्राकृतिक की वस्तुएं तुम्हारे भोग और सुख के कारण बनी हैं। यह हमारा ही वीच है कि उत्तम और लाभदायक पदार्थों को उपयोग में नहीं लाते हैं और यह हमारा ही अपराध है कि अज्ञ, उसकी शक्तियों और उस के ज्ञान को न जानने हुये दुःख पाने हैं। इसलिये दर्शाया है कि हे मनुष्य ! तुम परमात्मा के ज्ञान को जानो और उसके अनुकूल अपने आचरण रक्तों, इसी में तुम्हारा कल्याण है। परमात्मा के ज्ञान को उपलब्ध करके कर्म गति को समझने हुये उस अन्त और आदि से रहित स्वशांतिमान्, सर्वज्ञ, सर्वान्त्यामः परमात्मा की संगत करो; इसी शक्ति से समस्त बन्धनों में सुदुःकार पावोगे ।

## प्रेमी पाठकों व ग्राहकों से—

‘गुरुकुल’ पत्र के अनुसरणी पाठकों की सेवा में पुनर्पि हमारा साग्रह निवेदन है कि किन्हीं सम्बन्ध १९६७ का २॥ वार्षिक चम्पा अमरी तक भेजने की रूपा नहीं की है वे शीघ्र ही भेज दें अथवा हमें बां. पी. भेजने की अनुमति दें, क्योंकि अब साल समाप्त होने ही वाला है। ज्ञान की, प्रार्थ समाजों और प्राज्ञक महातुभावों से हमारा विशेष निवेदन है।

## महाकवि कालिदास एवं शेक्सपीयर

( श्री ३० वर्षीय श्री उपसहायक )

शेक्सपीयर अंग्रेजी साहित्य में नाटककार के नाम से प्रसिद्ध है किन्तु कालिदास नाटककार व काव्यकार भी हैं। इन दोनों कवियों की तुलना करना मुश्किल है। एक तो महात्त्व कवियों की तुलना करना ही खतरे से भरी होती है। किन्तु कालिदास और शेक्सपीयर अपने २ क्षेत्र में महान् हैं। इनको समानता अवश्य है कि हमारे यहाँ जो खेदना कालिदास को प्राप्त है वह वहाँ शेक्सपीयर को। शेक्सपीयर ने जीवन के कितने ही पहलुओं को लेकर लिखा है परन्तु कालिदास का क्षेत्र परिमित है। हमारे यहाँ संस्कृत साहित्य में ऐसे नियम थे कि नाटक स्वयन्त ही लिखने चाहिये; दृष्टान्त नहीं। कवि कालिदास ने तीन नाटक रचे हैं— विक्रमोर्वशीय, अम्बिकाण्णमित्र और मालविकाग्निमित्र। इन तीनों का स्वतंत्रतः कथानक इस प्रकार है कि दो प्रेमी हैं जो कल्पित परिस्थितियों के कारण मिल नहीं सकते या अलग हो जाते हैं और अन्त में फिर मिल जाते हैं। किन्तु शेक्सपीयर के नाटक उन्मत्त और मन्मथान दोनों हैं; यहाँ इनके यहाँ कोई ऐसी नियम नहीं है जैसा कि हमारे यहाँ है। भवभूति का उत्तररामचरित यद्यपि दृष्टान्त है किन्तु भी कवि ने उसे स्वल्प भावने का भरसक प्रयत्न किया है। शेक्सपीयर स्वतन्त्र था; वह कालिदास की तरह नियम बद्ध नहीं था।

विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र दोनों मधुरता और सौन्दर्य दृष्टि से अच्छे हैं किन्तु इन्हें उद्देश्य की दृष्टि से बहुत अच्छा कहना असंयुक्त होगी। इन दोनों का कथानक इस प्रकार है कि एक राजा है जो अपनी गनी से विरक्त होकर किसी दूसरी सुन्दरी से विवाह करना चाहता है। अन्त में गनी उदार बनकर स्वयं राजा के समन्वय उसकी नव-प्रसाधिनी को उपस्थित कर देती है। कालिदास ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि नायिका नायक की अपेक्षा अधिक उन्नत है और साथ ही स्वयं श्लाघा का भाग्य भी है। शेक्सपीयर के नाटकों के अनुशीलन से भी हमें यही पनीत होता है कि नायिका नायक की अपेक्षा कहीं उन्नत है।

कालिदास और शेक्सपीयर के नाटकों के विरुद्ध सकल विद्वेषक हैं। मूच्छकटिक का कवि कालिदास की अपेक्षा सब क्षेत्र में अधिक सकल है। मूच्छकटिक में कहीं भी मीरसता नहीं पनीत होती और बिटुबुव का पाठ आदि से लेकर अन्त तक अच्छा चला जाता है। कालिदास के नाटक शूद्रगाररत्न प्रथम हैं। शूद्रगार के प्रतिरिक्त इसके नाटकों में वीररत्न भी पाया जाता है। प्रायशः इसके नाटकों में पाया जाता है काव्यों में नहीं। कुछ लोगों का मत है कि ये नाटक और काव्य अलग २ कालिदास के लिये हुए हैं किन्तु यह मत सर्वथा हेय है यह प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है। इसके नाटकों और काव्यों में कुछ स्थल ऐसे हैं जिनसे पनीत होता है कि ये एक ही कवि द्वारा रचे गए हैं। यथा—“इति यदुक्त्वमे अन्वयि वाग्निह्वयः” ( अर्थात् इसका कहीं भी अपवाद नहीं मिलता )। इन

तरह के कई स्थल हैं जो कुमार संभव और शकुन्तल दोनों में ही समानतया पाये जाते हैं।

कवि कालिदास को जहाँ बाह्यप्रकृति से प्रेरण है वहाँ उस पर अधिकार भी है; किन्तु, शेक्सपीयर अन्तः प्रकृतिकर्षार्थ मानसप्रकृति से भावों को चित्रण करने में मास्टर है। इसका मानसविषय में बहुत ही सूक्ष्म अध्ययन है। मानस भावों को इतना अधिक चित्रण करने वाला हमारे साहित्य में कोई भी कवि नहीं है। हाँ; कहीं २ इसके अंकी अवश्य मिल जाती है। हमारे यहाँ भवभूति ने कालिदास को अपेक्षा मानव चित्रण उपाय किया है किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि किसी मानस भाव का चित्रण कहीं समाप्त हुआ है और कहा है वह प्रारम्भ होता है। शेक्सपीयर ने मानव भावों का यथार्थ चित्रण किया है किन्तु साथ ही इसके नाटकों में कुछ हासि भी हुई है। हमारे यहाँ संस्कृत साहित्य में रामायण परम्परा करना, प्रेम प्रदर्शन, लड़ाई आदि का अभिन्न चित्रण निषिद्ध है किन्तु शेक्सपीयर के यहाँ ये चीजें सम्मान-युक्त हैं। इसके नाटकों में ऐसे दृश्य बहुत उगादा देखने को मिलते हैं।

दोनों कवि संगीत मिय हैं। कालिदास का शाकुन्तल संगीत से प्रारम्भ होता है। एक जगह कालिदास ने संगीत सुनकर कहा—“अहो रागपरिवाहिलीभीतिः”। ऐसे स्थलों से मालूम होता है कि कालिदास अन्वयि मन्त्रिक रहा होगा। रघुवंश के २ य सर्ग में जब राजा दिलीप यन में जाकर प्राकृतिक सुन्दर परिस्थिति में पड़ता है तो ऐसा मालूम होता है कि जैसे संगीत चल रहा हो। और राजा उसे सुन रहा हो। दिलीप को पक्षियों के शब्द में संगीत सुनाई पड़ता है। इस चीज़ को अनुभव करने के लिए एक विशेष प्रकार के मन्त्र दृश्य की आवश्यकता होती है।

कालिदास अहिंसा का उपासक है किन्तु शेक्सपीयर के नाटकों में प्रायः हिंसा का ही वाग्यकरण है। ऐसा कहा जाता है कि बौद्ध-धर्म के चरम मीमांसे में पढ़ने जाने पर हिन्दुओं ने उनके बदन में अश्वमेध-यज्ञ रचये। इस प्रकार हिन्दुओं के जीवन का पुनरुद्धार अश्वमेध-यज्ञ माना जाता है। किन्तु उसी समय कालिदास हुआ। उसके कव्यों को पढ़ने से कहीं भी हिंसा का वाग्यकरण नहीं मिलता। रघुवंश में उसे अपने नायक को नीचा दिखाना पसन्द है किन्तु अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े की हिंसा करना पसन्द नहीं। रघुकुलपतिस जितने युद्ध में इष्ट को नीचा दिखा दिया था क्या उसके लिये अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े को क्षीयता मुश्किल था ? किन्तु रघु ने कहा—“अच्छा ! तुम यह घोड़ा न दो। इसी तरह अपने सेना सहित जब राजा ‘अश्व’ स्वयंवर के लिए जा रहा था तो मार्ग में नदी के किनारे उसे एक हाथी मिला जिसने सारी सेना में अगव्य मचा दी थी। ‘अश्व’ ने उसे फलका रहित बाण मारा जिससे वह भाग गया। वह हाथी नहीं, अपितु मार्गवेधकारों एक मन्वय था जिसने पन्थ होकर ‘अश्व’ को सम्मोहनायक किया। इस अश्व की विशेषता यह थी कि शत्रु भी नहीं मरता था ‘न चाग्निर्हिंसायिजयश्च’ परस्परान्तः स्वयंवर के परस्पर अज्ञ और क्रम्य देश के राजाओं में जो लड़ ई हुई उसमें ‘अश्व’ ने अपने बन्धव के लिए, उसी अश्व का प्रयोग किया

जो हमें गन्धर्व ने प्रसन्न होकर दिया था। इन उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास को हिंसा से किन्तु अधिक घृणा थी। शाकुन्तल को पढ़ने समय यशु हिंसा के सम्बन्ध में एक चुटकी मिलती है। प्रकृतियों का शिकार करने समय धीवर ने एक मछली को पकड़ा। उम्मे काटने पर धीवर को उसमें से एक अंगूठी मिली। अंगूठी का बाज़ार में बेचने समय उम्मे एक सिपाही ने पकड़ लिया। जब उम्मे अज्ञात में लाया गया तो उसने कहा- 'पशुमारगर्भमंशान्तः'—अर्थात् मछलियों को मारना हमारा वंशपरम्परागत कार्य है। जैसे पशुहिंसा करता हुआ भी पुरोहित पण्डित कहाता है ऐसे ही यह हमारा सामंजस्य काम है।

शेकसपीयर की तीन सन्तानें थीं किन्तु कालिदास को सब प्रकार के संसारिक सुख प्राप्त होने हुए भी सन्तान का सुख प्राप्त नहीं था ऐसा मालूम होता है। रघुवंश के प्रारम्भ में उम्मेने कहा है "तया हीन विधानमो कथं पश्यन्न दृश्यते"। इधर शाकुन्तल में आलसदास मुकुन्द म... आदि-ने भी सन्तान के प्रति आनुरता ज्ञान होती है।

मालूम होता है कालिदास को दर्शन में विशेष प्रेम था। "दर्शनमुत्समनुभवतः साक्षात्पि तन्मयेन हृदयेन। स्मृतिकारिणा त्वया मे पुन पुनरपि चिन्वि कृता" शाकुन्तल के इस पद्य से मालूम होता है कि कालिदास दार्शनिक था। उसके काव्यों में यह चीज़ व्यापक है। परमात्म को भी वे मानो दर्शन का पाठ पढ़ा रहे हों—

मृत्यु के सम्बन्ध में—

"मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवनमुच्यते वृथैः"।  
ऐसे विचार बहुत से नाटकों में आये हैं कि यह जन्म किसी अच्छे जन्म से गिर कर हुआ है जब कि हमारा विश्वास है कि मानव जन्म-जन्मात्मरों में विकसित हो रहा है। कालिदास का यह विचार बाइबिल से मेल खाना है। गन्धर्व का हाथी रूप आदि उसके उदाहरण हैं। इसी विचार को बईस्वर्ध ने पुष्ट किया है—'हमारा जीवन का तारा इस लोक में कहीं से अस्त होकर आया है। इत्यादि।

### होमियोपैथी की भक्ति

(वे०-३०) प्रोफेसर जी विद्यालंकार, बिकनौर )

जिस प्रकार एक स्वामी को एक शक तथा भक्त सेवक की आवश्यकता होती है उसी प्रकार आयुर्वेद को (आयुषो वेदः)—चिकित्सा विज्ञान को—ऐसी चिकित्सा-प्रणाली की आवश्यकता है जो अस्वस्थ मनुष्यों को स्वास्थ्य लाभ करा सकने के कारण न केवल शक ही हो, अपितु स्वस्थ मनुष्यों की स्वास्थ्य-रक्षा करने—रोगों के आक्रमणों से उनका परित्राण करने—में भी पूर्णतया समर्थ होने के कारण साथ र भक्त भी हो।

हनुमान जी राजा रामचन्द्र जी के सच्चे सेवक कहलाते हैं; इसलिये कि उन्होंने न केवल शोराम जी पर आर्या विपत्तियों का संहार करने हुये अपनी अलौकिक शक्ति का ही प्रदर्शन किया, अपितु अपने बालों विपत्तियों ने

उनका पूर्णतया परित्राण करके अपनी अतन्व्य-भक्ति का भी समय र पर अपूर्व परिचय किया। यदि हनुमान जी ने निशिचर-निकर के संहार करने में अपनी अथाह शक्ति का प्रयोग करके अपने स्वामी को विजयी बनाया, तो उसी ने ही अथाह पागवार को पार करके लायी गई जानकों जी को सुधरूपी सुधा द्वारा अपने स्वामी को विधोषाग्नि में भस्म होने से भी बचाया। यदि हनुमान जी में स्वामि भक्ति की लेशमात्र भी कमी होती तो क्या रामचन्द्र जी का शक्ति-वृद्धिखलसमय के शोक-सागर से कभी भी निस्तार हो सकता था? क्या ऐसे सेवक को कोई स्वामी खुल सकता है? महादेव जी कहते हैं:—

"हनुमान समर्पणं नहि बहुभारगं, नहि कोऽरामवरुण अनुरागी गिरिजा! जातु प्रीति सेवकृथी, बाबा(प्रभु)निज सुख गाय।"

इसी प्रकार उच्च-चिकित्सा-प्रणाली से बहुरूप-प्रणाली और कोई चिकित्सा-प्रणाली नहीं हो सकती जो चिकित्सा विज्ञान के दोनों कार्य (१) चिकित्सा (Treatment) तथा (२) परित्राण (Prophylaxis) केवल अपने नियम के आधार पर निभा सकने के कारण अपने स्वामी आयुर्वेद की पूर्ण शक तथा भक्त सेविका हो।

होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली अपनी दुर्गा के समान रोग संहारिणी शक्ति के कारण, आयुर्वेद की एक शक सेविका के रूप में स्वीकार की जा सकती है—इसका निश्चय गत अष्टाध्यायों के अध्ययन से पाठकों को ही हो चुका है। अथ प्रश्न उठना है कि क्या होमियोपैथी काम-धेनु के समान, आयुर्वेद की एक भक्त सेविका भी हो सकती है? अर्थात्—क्या, चिकित्सा-प्रणाली द्वारा आयुर्वेद का स्वास्थ्य रक्षा या परित्राण का कार्य पूर्णतया सम्पन्न हो सकता है या नहीं? (जसप्रकार पेलोपैथी, जिन्न र प्रकार के टीके इत्यादि लगाकर मयङ्कुर से मयङ्कुर रोग-नाशकों के आक्रमणों से स्वस्थ मनुष्यों के परित्राण करने का दावा रखती है, क्या होमियोपैथी भी इस प्रकार के परित्राण के कार्य का भार अपने मुकोमल कर्णों पर धारण करने के लिये तय्यार है? क्या होमियोपैथी का छोटी र गोलियों की बौद्धिक कौलरा, ड्रूंग, सेचक टाफकाइड से भोग्य रोगराशुलों को, मनुष्यों के स्वास्थ्य पर आक्रमण करने से विमुक्त करके मार भगाने में भी समर्थ हो सकती है?)

इन सब प्रश्नों का उत्तर होमियोपैथी बड़ी दृढ़ता, प्रसन्नता तथा आत्म-विश्वास के साथ देती है कि वह आयुर्वेद के स्वास्थ्य-रक्षा विभाग का भार भी बड़ी सुगमता से वहन करने के लिये तैय्यार है। वह बड़े ज़ोरदार शब्दों में कहती है कि उनकी "सर्मा" के नियम की प्रस्तारमयी दृढ़ आध र-शिला, आयुर्वेद के भारी से भारी, विशाल से विशाल तथा उच्च से उच्च-भवन के भार को वहन करने में सर्वथा समर्थ है। जब पलोपैथी, उसके सर्मा के निधम के आधार पर अपना परित्राण का कार्य चला रही है, तो क्या वह अपनी आधार शिला पर परित्राण के कार्य का भार अत्यन्त (पृष्ठ ६ पर देखिए)

# गुरुकुल

२४ फ़ाग्यून शुक्रवार १९६७

## गुरुकुल का उत्सव

'गुरुकुल' का यह अठ्ठ जव पाठकों के हाथ में पहुंचेगा तब उत्सव में केवल एक मास शेष रह जावेगा। गुरुकुल-विश्वविद्यालय कांगड़ी का वार्षिकोत्सव आर्य समाज का सबसे बड़ा मेला है। इन अवसर पर भारत के कोने-कोने से प्रतिवर्ष सहस्रां नर-नारी श्रद्धा-मंज-माख से आते हैं और उपदेशावृत मे हृदय को पंगितुन कर लौटते हैं। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी न केवल आर्य समाज की सब से बड़ी और शानदार संस्था है बल्कि भारत में राष्ट्रीय शिक्षा का सब से बड़ा केन्द्र भी है। यह संस्था आर्य समाज के बड़े गौरव की वस्तु है। इसकी शान आर्य जनता की शान है। लुप्त होनी हुई आर्य-संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता का पुनरुद्धार करने वाला गुरुकुल शिक्षणालय ही है। यह वह वाटिका है जिसे आर्यों ने कठिन परिश्रम करके लींका है इसे हरा-भरा देवने की कितने प्रयत्न इच्छा न होगी? हर्ष का विषय है कि आपके अत्यन्त प्रिय उसी गुरुकुल का वार्षिक-महोत्सव ११ मास की लम्बी प्रतीक्षा के बाद पुनः आ रहा है हम आपके सादर निमिषत्रत करने हैं कि यहां आकर अपनी इस लहलहाती वाटिका का निरीक्षण की जाए। अपनी यह गुरुकुलोत्सव-यात्रा वास्तविक अर्थों में तीर्थ यात्रा होगी। गुरुकुल के समान सच्चा तीर्थ नम्रप्रति इस भारत में कौनसा है? आश्रय, इष्ट-भिक्ष, बन्धु बन्धुवृत्तों तथा एकल परिवार के साथ पधारिये। विद्याओं और महत्त्व-ओं के अभूतल्य उपदेश भवष कर लाभ उठाइयें।

इसके साथ ही हम आपके कर्तव्य भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं गुरुकुल इस समय एक छोटा-मोटा शिक्षण-पालय नहीं, अपितु विश्वविद्यालय का रूप धारण कर चुका है। इस संस्था का वार्षिक लब्ध सममय एक लाख साठ हजार है। इस वार्षिक व्यय का भार निस्सन्देह गुरुकुल प्रमियों पर ही है। हमें आशा ही नहीं किन्तु पूरा निश्चय है कि आर्य जनता अपनी जिम्मेवारी समझ कर धन संग्रह के कार्य में जुट आयेगी और अल्पकाल में ही लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ने वाली इस संस्था पर किसी प्रकार का बाटा न आने देगी। गुरुकुल की उन्नति में आप की उन्नति है और गुरुकुल की शान न आप की शान। इस लिये सभी आर्य भाइयों से हमारी प्रार्थना है कि वे गुरुकुल की आवश्यकताओं को समझें और उसकी पुति के लिये तन-मन-धन से जुट जायें। यदि आप कठिबख हो जायेंगे तो इस अर्थ-दायि का धोड़े समय में ही एकत्र होना कोई बहुत मुश्किल बात नहीं है। उत्सव उर्षी २ समीप आता जावे आप शिगुण उत्साह से गुरुकुल का

सहस्रता के लिये कार्य आरम्भ कर दीजिये। एक-बार आप तैयार होकर जुट जाइये, फिर आप देखेंगे कि आप ने आधा कार्य कर लिया है। कसारा है आर्य आर्य अपने कर्तव्य को पूरी तरह से समझने हुए तप, मन, धन से गुरुकुल का सहयोग दें।

इस बार, उत्सव पर जब आप गुरुकुल भूमि में पधारेंगे तब यहां के मधीन किमंत सभ्य मन्वों को देखकर आपका हृदय हर्षोत्फुल्ल हुए बिना न रहेगा और गुरुकुल को आप गत वर्ष की अपेक्षा एक कदम आगे बढ़ा हुआ पावेंगे।

अनन में आर्य जनता को हमारा सादर निमन्त्रण है कि यह अधिक ने अधिक संख्या में गुरुकुलोत्सव में सक्रिमलित होकर कुलवासियों के उत्साह को बढ़ायेगी तथा अधिक से अधिक आर्थिक सहायता पहुंचा कर कार्य कर्साओं का हाथ बढायेगी।

गुरुकुलोत्सव पर उपस्थित होना केवल मनोविनोद या उपदेश-भवषण की दृष्टि ने ही नहीं अपितु एक कर्तव्य पावन और उत्तरदायिब की दृष्टि से भी परमावश्यक है। इस लिये आप गुरुकुल चलने की शीघ्र ही तैयारी कीजिए।

## पुस्तक समालोचना

### श्रीअरविंदका योग

हमारा योग आर उसके उर्देश्यः—श्रीअरविंदकी 'योग एण्ड इट्स आबजेक्टिव' नामक पुस्तकका अनुवादः अनुवाद श्री मदन गोपाळ गाडगीविया, संपादक आचार्य श्री अमरयदेव विद्यालंकार, प्रकाशकश्री अरविंद प्रथमाला पांडीचेरी, पुस्तक विमारा गुरुकुल कांगड़ी से प्राप्य, १५५ संख्या ५६, मृत्य ॥१।

श्रीअरविंदका योग से काः अविमय है यह उन्होंने इस छोटी सी पुस्तक में सहज स्पष्ट और सुन्दर रूप से संक्षेप में वर्णन किया है। ऐसी उपयोगी पुस्तक का सरल और सुन्दर हिंदी अनुवाद कर अनुवादक ने देश की बहुत बड़ी सेवा की है, कारण किचकंपगम समय में श्रीअरविंद के योग और उनके कार्य के विषय में केवल प्रांत धारणा फैला हुईं हां यही बात नहीं है, बल्कि स्वयं योग के संबंध में भी लोभ ऊटपटांग विचार रक्ते हैं। काम धारका ऐसी है कि योग सामारिक जीवन से कोई भिन्न वस्तु है और यह केवल उन इने-गिने लोगों के लिये ही है जो जीवन का रचना करने तथा संख्यासी वा वैगमी बन जाने को प्रेरणा का अनुभव करने हों। योग के विषय में इस प्रकार की जो धारका है वह योग की उन कतिबष प्राचीन काल से प्रचलित साधनओं से संबंध रखती है लिनमें अगत को मिथ्या माना गया है और शूल, अतिव्य और किराकार म्ब को ही एकमात्र सहस्तु स्वीकार किया गया है, किंतु श्रीअरविंद का योग जीवन का रचना नहीं करता, बल्कि उनके योग का उर्देश्य है जीवन को सर्वांग संपूर्ण बनाना। मोता के शब्दों में योग ही कर्म की लम्बी कुप्रकता है। इस



महात्मा पूर्ण कायिके तत्पर्य को और अग्रे बढ़ाने हुए हम यह कह सकते हैं कि श्री अरविन्द के दृष्टिकोण से योग जीवन और कर्म की इसी कुशलता तक करता है। उनसे योग के आचार हैं, हमें जीवन के सचच सिद्धांत को बताने वाले उपनिषद् और गीता हैं। "तव तुम उस ज्ञान में अधिकारिक विद्याल कर सकते जिसे उपनिषद् और गीता ने जीवन का सिद्धांत माना है।

तब तुम समस्त विद्यमान वस्तुओं में आत्मा को और आत्मा में समस्त विद्यमान वस्तुओं में देवताओं में तुमको समस्त वस्तुएं प्रकृत ही मानिन होगी, 'सर्वं कश्चिद् ब्रह्म' परन्तु इस योग की बरम उपनिषत् तो बत होती है जब तुमको इस बात का ज्ञान होता है कि वह समग्र जगत् एक अनन्य भागवत स्वरूप की ही अभिव्यक्ति, प्रतिष्ठा या लीला है। 10 वर्षों मान समय में मानव जाति जगत् के इस स्वरूप में यास नहीं कर रही है, उसकी वर्तमान दृष्टि अहमात्मक है और उसको भागवान् जो सब किसी के एक आत्मा हैं, उनकी उपस्थिति का सचेतन ज्ञान नहीं है। मनुष्य अपने आपको अपने अहंकार के साथ, जिनकी सीमा उसके मन प्राण और शरीर तक हो जाती है, तदाकार कर लेता है, और दूसरों की रोटी खीन कर अपने हम अहंकार की संतुष्टि और बुद्धि के लिये जीना चाहता है, और फलतः उसका दूसरे-दूसरे वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय अहंकारों के साथ संबंध होने लगता है और यही है मानव जाति की समस्त अनवन और विपद् का मूल कारण। इस बात का ज्ञान कि अहंकार हमारा साथ आत्मा नहीं है, बल्कि यह हमारे व्यक्तिक के विकास के लिए प्रकृति की एक अस्थायी रचना है, और साथ ही यह ज्ञान कि हम अपने सत्य आत्मा में समस्त मानव जाति और ईश्वर के साथ एक हैं, यही वह आध्यात्मिक साथ है जिसको आधापन बनाकर पूरा मानव-जीवन और समाज का विकास किया जा सकता है और यही है श्रीअरविन्द के योग का उद्देश्य। श्रीअरविन्द कहते हैं, "जिसकी योग साधना हम करते हैं वह केवल हमारे लिये नहीं है, बल्कि वह मानव जाति के लिये है। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत मुक्ति नहीं है, यद्यपि मुक्ति योग की एक आवश्यक अवस्था है, बल्कि इसका उद्देश्य है मनुष्य जाति को मुक्ति। हमारा उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से आनंद को प्राप्त करना नहीं है, बल्कि यह है कि भागवत आनंद,—ईसा का स्वर्गीय सन्नाय या हमारा सत्ययुग—को पृथगे पर उतार लाया जाय।"

इस काम को पूरा करने का क्या उपाय है? इष्टयोग, नञ्जयोग, तन्त्रयोग, विमार्गयोग, ( ज्ञान, कर्म, भक्ति ), इन सभी ने अपनी रीति से मनुष्य जीवन की छिपी हुई संभवनाओं को दिखाया है, किंतु इसके लिये मोक्ष, कठोर साधनाएं करनी होंगी जो संसारी मनुष्य के लिये नहीं बनी हैं; और इनको द्वारा यद्यपि मनुष्य की अमुक शक्ति-वैशेष्य का विकास होता है, फिर भी ये उसको पूर्ण नहीं बनातीं। परन्तु यह पृथक्ता जो मनुष्य को देवता या अतिमानव बना दे—यही वह लक्ष्य है जिसकी ओर मानव जाति समस्त परिघटनों के अंदर से होती हुई अग्रसर हो रही है; ओर सभी योगपरश्रितियां तथा धार्मिक और

आध्यात्मिक साधनाएं एवं मनुष्य ने अपने दीर्घकालीन अस्मित्व में जिन समस्त अनुभवों को प्राप्त किया है वे अनुभव ये सभी मानव जाति को इसी सिद्धि के लिये तैयार करते हुए आ रहे हैं। श्रीअरविन्द को उनकी आध्यात्मिक दिव्य दृष्टिद्वारा यह दिखायी दिया है कि इस प्रपक्ष की पूर्णवृत्तिका समय अब आ गया है और उनके योग की समस्त प्रतिक्रियाएं इस चरमवर्षलक्ष्य का ही निर्देश करती हैं।

जैसा लक्ष्य वैसा मार्ग। मानव जीवन और समस्त मानव कर्मचरणाओं को पूर्णरूप से रूपांतरित करके दिव्य बना देने का जो यह लक्ष्य है यही श्रीअरविन्द के योग की विशेषता है जो पहले के किसी योग में नहीं है; वास्तव में यदि देखा जाय तो यह योग उन सभी योगों को पूर्ण बनाता है। इस योग में सात्विक अपने ही प्रयास पर निर्भर नहीं करना, बल्कि वह अपने-आपको पूर्णरूप से भगवती माता के हाथों में सौंप देना है। "दूसरे-दूसरे मार्ग हैं जो अधिक तात्कालिक फल बताने हैं अथवा कम-से-कम तुम्हें कुछ ऐसी निश्चिन किया, जिसे तुम स्वयं कर सकते, बताने के द्वारा तुम्हारे अहंकार को एक तरह का संतोष करा देने हैं कि तुम कुछ कर रहे हो, जैसे आज इनसे अधिक प्राणायाम किये, आज इतनी अधिक देर तक आसन जमाया, आज इतने अधिक जप किये, इतनी साधना हो गयो, इतनी प्रगति साफ-साफ देखने में आयो। परन्तु जब तुममें इस मार्गको एकबार चुन लिया है तो तुम्हें इसको पकड़े रहना चाहिये। दूसरे मार्गों में अस्मित्व पद्धतियों के हैं, इस मार्ग की तरह नहीं हैं। अस्मित्व शक्ति का-यन्त्रिण करती है। इस मार्ग में शक्तिभी चुपचाप और कभी-कभी बिल हुल्ल अहात रूप से ही अपने लक्ष्य की ओर चलती है, कहीं वह आगे बढ़ती है तो कहीं रुको हुई सी दिखाया देती है और फिर अपनी शक्तिशालिना और विजयशीलता का परिचय देती हुई उस विद्यालय कार्य को जिसको उसने इस बीच में पूरा कर लिया होता है हमारे सामने लाकर उपस्थित कर देती है।" इस मार्ग में गीता के सर्वश्रेष्ठ वाक्य,

"सर्वं धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अर्हत्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मायुजः॥"

का व्यावहारिक उपयोग किया गया है। "समस्त धर्मों का ( समस्त सिद्धांत, नियम और हर तरह के साधन तथा धर्म विधान बाहरे अपने पूर्व के अन्वय और विकास द्वारा निर्मित हुए ही या बाहर से लाये गये हों ) परित्याग कर और एकमात्र मेरी ही शरण में आ, मैं तुम्हें समस्त पापों और दोषों से मुक्त कर दूंगा—शोक मन कर। "मैं मुक्त कर दूंगा"—तुम्हें परेशान होने या संघर्ष में पड़ने की आवश्यकता नहीं, मानो जिन्मेवारी तुम्हारे ही ऊपर हो या सफलता तुम्हारे ही प्रयत्न पर निर्भर करती हो, कारण तुमसे कोई अधिक शक्तिशाली सत्ता इस काम को अपने हाथ में लिये हुए है।

मानवजाति की भक्ति का यही सच्चा रहस्य है। मानवप्रकृति का वास्तविक रूपान्तर केवल राजनीतिक सामाजिक अथवा अर्थिक पुनर्नवस्थापन से नहीं होगा,

यह काम धार्मिक और नैतिक अनुशासन द्वारा भी नहीं होगा। यह तो आत्मसमर्पणयोग द्वारा ही हो सकेगा। और जब तक मानव प्रकृति बदल कर दिव्य न बन जाय तब तक मानवजीवन की समस्या का वास्तविक हल होगा ही नहीं। भारतवर्ष ही वह देश है जिनमें यह काम करके संसार को दिखा देना है। "परन्तु अब वह समय आ गया है जब कि उपर की तरफ गति करने के लिये पराला पग उठाया जाय, अर्थात् एक नवीन सामंजस्य और नवीन सिद्धि की प्राप्ति के लिये प्रथम प्रयास किया जाय। यही कारण है कि मनुष्य समाज ज्ञान, धर्म और सदाचार की पृष्ठता के लिये आजकल इनके तरह के विचार फैल रहे हैं। परन्तु सच्चे सामंजस्यका पना अभी तक अप्राप्त है। केवल भारतवर्ष ही इस सामंजस्य का आविष्कार कर सकता है। कारण यह सामंजस्य मनुष्य की वर्तमान प्रकृतिका रूपान्तर करने के ही—उसके पुनर्व्यवस्थापन द्वारा नहीं—विकसित किया जा सकता है और इस रूपान्तर का होना योग के बिना संभव नहीं है। मनुष्य और वस्तुओं की प्रकृति इस समय वैमल्य हो गयी है, इनका सामंजस्य बेमरा हो गया है। इसको पुनः सामंजस्य पूर्ण, सुगुली बनाने के लिये मनुष्य के हृदय, कर्म और मन के समग्र रूप से परिवर्तित होने की आवश्यकता है। यह परिवर्तन आंतरिक होगा बाह्य नहीं, न ता यह राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं द्वारा होगा, न धर्मसंप्रदायों और दर्शन शास्त्रों द्वारा ही, बल्कि यह होगा हम में और इस जगत् में भगवायत् की उपलब्धि करके और उस उपलब्धि द्वारा जीवन को एक नये ही साँचे में ढाल करके। यह बात केवल पूर्ण योग द्वारा ही हास्यती है, जो एक ऐसा योग है जिसकी स्थापना किसी विशेष प्रयोजन को लक्ष्य कर नहीं की जाती, चाहे वह प्रयोजन सुख या आनंद ही क्यों न हो, बल्कि जिसका अर्थ है दिव्य मानवता को अपने में और दूसरों में सिद्ध करना।"

यही है श्रीअरविन्दका आदर्श और उनके महान् आध्यात्मिक प्रयास का तात्पर्य। क्या भारत इस साधना को आज से ही प्रारंभ कर देगा और उपनिषद् के इन शब्दों में संसार में कहेगा:—

"श्रुण्वन्तु विश्वे अमृतम्य युवाः !"

पुस्तक छोटी होने हुए भी बहुत मूल्य है और हम चाहते हैं कि प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी इसे पढ़े।

—अनिलबलरथ राय।

(पृष्ठ ३ का शेष)

सुगमता तथा उत्पन्नता से नहीं बहन कर सकती? क्या फ्लोपेथी का Vaccination (टीका लगवाना) द्वारा किया जाने वाला चेचक के परित्राण का कार्य, होमियोपैथी के नियम के अनुसार नहीं होगा? क्या फ्लोपेथी की Anti-Cholera, Anti-Plague, तथा Anti-Typhoid इत्यादि के Serum, "समो" (Similars) के नियम के अनुसार कार्य नहीं करते?

इस कथन से हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि फ्लोपेथी द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले परित्राण के

ये स्थापन, बूँदिक समोपचार के नियम के अनुसार कार्य करने हैं अतः होमियोपैथी को भी ये उसी रूप में—(जिस से फ्लोपेथी प्रयोग करनी है) सर्वथा मान्य हैं।

होमियोपैथी इन साधनों के आधार को ठीक मानती हुयी भी इनके लक्षण इनकी भाषा तथा इनकी प्रक्रिया से एक दम असहमत है। वह फ्लोपेथी द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली Vaccination की भी मीषण प्रक्रिया को न केवल अनावश्यक, अपितु अत्याचार-पूर्ण भी समझती है।

सुकुमार बालकों को दवावृत्त कर चेचक का टीका लगा देने के पश्चात् बाँह सूजना, दस्त आना, उग्र-अस्त होना, तथा कभी-कभी शरीर पर चेचक के से दाने निकल आना-इत्यादि २ जिस असह्य तथा कठोर-रुध-परम्परा में से गुजरना पड़ना है उसका स्मरण करके किस मन्वानवाय् पुरुष के हृदय में ठेस नहीं पहुँचती? कौन सहृदय पुरुष दिल से चह सकता है कि उसके ब्रिगर के टुकड़ों को इस प्रकार की कड़ों वेदना अकारण ही पहुँचे तथा उसके पहुँचाने में वे ही स्वयं एकमात्र कारण हों? यदि जनता को यह पता हो कि टीका लगवाने के सिवाय किसी अन्य द्रव्य उपाय द्वारा उनके लाल, शीतला की भेंट चढ़ने से बचाये जा सकते हैं तो वह सरकारी नियम का निरादर करना तथा दृढ़ भोगना तो पसन्द कर सकती है परन्तु यह कभी भी सहन नहीं कर सकती कि उनके प्यारे बच्चों की कामल भुजाओं को खुरख २ कर वह विधेया पदार्थ मलने दिया जाय, जिस के कारण उनमें से कुछ एक का तो मरुष तथा बहुतों का एक दारुण-रोग-परम्परा में से गुजरना आवश्यक हो जाता है।

ऐसी अशोच जनता को होमियोपैथी, मेरी-बोच के साथ बलना यादृकी है कि उसको मधु २ गोबियों में यह शक्ति भी विद्यमान है जिसके द्वारा वह उन बच्चों का चेचक इत्यादि मीषण संकामक रोगों के आक्रमणों से भी परित्राण कर सकती है। बिनाहृये आप होमियोपैथी की V.riolinum की मोटी २ गोबियों को, और देखिये उनका समरहा! जिन बच्चों को चेचक के दिनों म उक्त औषधि की गोबियाँ मिल जायगी—हो नहीं सकता कि "माना" उन्हें नज़र लगा सके। हो नहीं सकता कि शीतला देवी उनमें से एक का भी बाल बाँका कर सके; किन्तु भेंट मांगना तो दर किनार रहा?

होमियोपैथी के इस दाने की जनता को एक बार परीक्षा तो अवश्य ही करनी चाहिये। परीक्षा करने पर ही उसके कथन में विश्वास उत्पन्न हो सकता है तथा उस विश्वास से ही उनके बालकों का परम कल्याण हो सकता है।

"कवनउ सिद्धि कि बिनु विश्वासा"

यदि जनता में एक बार परीक्षा करने का साहस न हो तो उसे कम से कम उन विचरणों को तो अवश्य पढ़ना चाहिये जिन में बारम्बार किये गये ऐसे परीक्षकों का परिश्रम प्रदर्शित किया गया है। अमेरिका में, होमियोपैथिक औषधियों के प्रयोग द्वारा चेचक से

परित्राण पाने के परीक्षण पञ्चाल वर्षों से हो रहे हैं, जिस की प्रशंसा प्रतापों है कि अमेरिका के होमियोपैथिक ने ये यह सिद्ध कर दिखाया है कि सेचक का परित्राण, होमियोपैथिक औषधियों के बिलाने पर भी ठीक वैसा ही हो जाता है जैसे कि बच्चे पर टीका लगाने से। परन्तु प्रथम रीति में एक विशेष यह शुद्ध है कि उसके प्रयोग से किसी प्रकार के अवायव्य लक्षण कभी भी नहीं उत्पन्न होते। इन परीक्षणों के कारण ही आज अमेरिका गणराज्य का कोई ऐसा नियम नहीं है जिसके कारण प्रत्येक बच्चे को सेचक का टीका लगवाने के लिये बाध्यित होना पड़े।

परित्राण का यह कार्य समोपचार के नियम द्वारा किञ्च प्रकार सुगमबन्ता से सिद्ध हो सकता है— यह निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जायगा।

Scarlatina नामक रोग की चिकित्सा, समोपचार की प्रणाली में पुटीकृत (Potentized) बलाडोना नामक औषधि द्वारा हो जाता है, इसलिये कि उक्त औषधि, लक्ष्य मनुष्यों में डेते हो लक्षण उत्पन्न कर देती है जैसे कि Scarlatina के रोग में पाये जाते हैं। उक्त रोग के प्रकोप के दिनों में कुछ स्वस्थ बच्चों को बलाडोना की एक २ मात्रा प्रतिदिन तीन दिन तक बिलाने पर पाया गया है कि वे बच्चे उक्त रोग के आक्रमण से सर्वथा मुक्त रहे। इस परीक्षण से क्रियामक रूप में यह सिद्ध हो जाता है कि बलाडोना, स्कारलाटीना का न केवल संहारकर्ता ही है अपितु उससे परित्राण करने वाला भी है।

इसी बात को विज्ञानात्मक रूप में इस प्रकार स्पष्टका जा सकता है। जब हम स्वस्थ बच्चों को बलाडोना नामक औषधि बिलाने में तो उस का यह अर्थ होता है कि हम उनके हाथ में स्कारलाटीना के समान लक्षणों वाली तथा क्षणभंग्य समान शक्ति वाली, एक तलवार पकड़ने से दे देते हैं। जिस समय स्कारलाटीना की तलवार का उन पर प्रहार होत है तो दांती तलवार एक दूसरे से टकरा कर चकनाचूर हो जाती है तथा वे बच्चे स्कारलाटीना की तलवार से—उन्मके रोग-लक्षणों से—अक्रान्त तथा क्षत-विक्षत होने से बच जाते हैं। चूँकि समोपचार द्वारा ही गई तलवार के समान लक्षणों वाला तथा क्षम-बल-वाला होती है अतः टकराव होने पर उन में से कोई भी श्रेय नहीं रह जाता; एव बच्चे स्वस्थ बने रहते हैं। चूँकि होमियोपैथिक औषधियाँ उन्नी प्रकार के सूक्ष्म रूप में होती हैं जैसे कि रोगोत्पादक पदार्थ; अतः समोपचार के अतुसार परित्राण का कार्य भी पूर्वतया निश्चय हो जाता है और रोगी का किसी प्रकार का कष्ट भी नहीं पहुँच पाता। यदि औषधि की शक्ति, रोगशक्ति से बल में कम रह जाती है तब उसकी मात्रा को आशुति द्वारा उसे उचित रीति से बलवान् बनाया जा सकता है।

प श्चु पुरोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में, Vaccination इत्यादि द्वारा किया गया परित्राण कार्य, यद्यपि समों के नियम के अन्तर्गत पर प्रयुक्त होकर सफल हो ही जाता है तथापि मात्रा के अ बन्धकता से बहुत अधिक होने के कारण कभी २ बड़ा अवायव्य सिद्ध होता है। इसी

कारण, टीका लगाने के पश्चात् बच्चों को नाना-विध कष्ट परम्पर में से गुजरना पड़ता है। तथा इसी कारण डोग का टीका लगाने के पश्चात् किसी २ पूर्ण स्वस्थ मनुष्य का सहसा स्वर्गोत्थान भी हो जाता है।

क्या एक निर्विषय योद्धा के हाथ में एक भारी तलवार देने पर यह परित्राण होने से बन्ध सकता है? क्या टीका इत्यादि कृत्रिम रोगोत्पादक शक्तियाँ नहीं होती? क्या इनकी एक सी मात्रा को मिश्र २ रोगानुशयितार करने वाले मिश्र २ प्राणी समान रूप से बर्दाश्त कर सकते हैं? क्या विषमोपचार की चिकित्सा-प्रणाली में, परित्राण के कार्य में व्यवहृत औषधियों को रोगोत्पादक पदार्थों के समान सूक्ष्म रूप दिया जा सकता है? तब फिर प्राकृतिक रोगोत्पादक-पदार्थों से टकराकर चूर होने से बची हुयी कृत्रिम रोगोत्पादक शक्ति, (औषधि—Vaccine, Serum इत्यादि) आत्मशक्ति पर आंधकार किये बिना कैसे चूक सकती है? यदि उस श्रेय शक्ति के अत्यन्त बलवान तथा अधिक होने पर आत्मशक्ति का शासन सदा के लिये भी शान्त हो जाय तो इसमें आश्चर्य का क्या विषय है?

क्या टीका लगाने के बाद भी अनेक बच्चों को सेचक नहीं निकलते, रहती? क्या चिकित्सकों ने इसने वास्तविक कारण का परिहान प्रस करने का कभी कष्ट उठाया है?

यदि विषमोपचार के पक्षपाती चिकित्सकों ने इस विषय पर मरुपीर विचार किया होता तो न केवल परित्राण के नाम पर होने वाला अर्थ ही कभी का बन्द हो गया होता, अपितु चिकित्सा के रूप में होने वाला अन्याचार भी कभी का कथावशेष हो गया होता। क्या इस अन्याचार की जड़, विषमोपचार का जड़पाद ही नहीं है? क्या वही जल, जो सुखनी खेती में नभ जीवन का सञ्चार कर देता है ओलों के दृष में बरस कर हरीभरी खेती का भी सर्वनाश नहीं का गुत्तरना?

क्या परित्राण के कार्य में समोपचार के नियम के अतुसार कार्य करनी हुई एलोपैथी, अपनी मूर्खता में प्रयोग की गयी औषधियों द्वारा बड़ी कार्य नहीं कर गुजरती जो ओलों के रूप में बरसना जल?

क्या इस प्रकार मूर्खता में औषधियों का व्यवहार करने वाली चिकित्सा प्रणाली, आयुर्वेद-व्याप्ती की शक्त तथा मत्त सेविका हो सकती है? क्या जो चिकित्सा प्रणाली, सूक्ष्म शक्तियों के रूप में विद्यमान अपनी मनुष्य मही-धों के पथ का पान कराकर आयुर्विज्ञान विषयक समस्त कार्य मरुतकया सत्यादन कर सकती है, वही, केवल वही, आयुर्वेद की मत्त तथा शक्त सेविका कहलाने की अधिकारिणी नहीं है?

क्या विश्व चिकित्सकों को परित्राण के कार्य के लिये भी समोपचार की चिकित्सा-प्रणाली को छोड़ कर अन्य किसी चिकित्सा प्रणाली का आश्रय ग्रहण करना उचित है? क्या उनके ऐसे करने पर—

"ने जड़, काम-धेनु शुद्ध स्थानी।

लोजत आक किरिह पय लागी।"

वाली बात कतिपय न हो जायगी?

## पेरिन बाडिया हाकी कप टूर्नामेंट बड़ीदा में गुरुकुल सूपा की द्वितीय शानदार

### विजय

[लेखक—एक खिलाड़ी]

आज २१-१२-४० का दिन है। आज मैदान में उतरने की हमारी बारी थी। हमारा मैच ३। बजे Free Looters के साथ होना था। प्रतिपक्षी का बल अज्ञान होने से हमारे मन में शंका होती स्नाभाविक थी। हम खेल की ड्रेस पहिन कर ३। बजे प्राउण्ड में पहुँच गये। पिछली बार विजयी होने के कारण क्रीड़ा जगत् हमको अच्छी तरह जानता था। हमारी टीम का धाने देखकर लोगों ने कानाफुर्मी शुरू कर दी। धर्मिक भाव पैदा हुए। प्रतिपक्षियों के मन में झुल्ला चुभा, प्रशंसकों में हर्षान्तिके हुआ और टूर्नामेंट सञ्चालकों में टूर्नामेंट के सफलता की भावना उदुदुद्ध हुई। ठीक ३। बजे खेल शुरू हुई। Camp Free Looters अच्छे डडे बाज थे। इन में एक सरदार जी भी थे। फिर क्या था रहा सही कमी भी पूरी होगई। सरदार जा का नाम 'बर्दासिंह' था। इनका मूलमंत्र यहा था कि "सर जावे ना जावे साडी बाल न जाने पावे"। टीम को बराब खेल न खेलने के लिये नेतावनी मी दीगई परन्तु सरदार जी की टीम Warning proof थी, उस पर कुछ असर न हुआ। हमने Free Looters को ८—२ गोलों से हराया। दा गोल उतरने से हमारी जमी हुई धाक को काफ़ी धक्का पटुंवा और हमने अगले मैचों में यह कमी दूर करन का निश्चय किया।

दूसरा मैच यंग मराठा क्लब Young Maratha Club तथा Baroda Colloge में हुआ। सब को उम्मीद तो यही थी कि कालिज जीनेगा। परन्तु हुआ बिन्दुल उलटा। क्लब के फाल्ड बहल सुन्दर थे। उन्दांन कालिज के पिछाड़े को परेशान कर दिया और उन पर दो गोल चढ़ाये।

आज २२-१२-४० का दिन था। आज भी हमारा खेल ३। बजे शुरू होना था। हमारी प्रतिपक्षी टीम बड़ोदा-सिटी जामखाना था। जीमखाने की टीम अच्छी थी परन्तु हमने उसकी खेल देख रखी थी इसलिये बराबर व्यूह रचना कर ली। क्लब की मूल का प्रायश्चस भी करना था इसलिये हम लुब डट कर खेलें। ज प्रकाने की बड़ी तुरी तरह दबाया और खेल समाप्त तक उस पर ३ गोल चढ़ाया।

आज का दूसरा मैच यंग मराठा क्लब तथा कैम्प यूनिवर्स का था। दोनों टीम बहुत सुन्दर खेलने वाली थी खेल न लुब उनार चढ़ाव आये। कैम्प की सब फाल्ड लुब मजबूत थी परन्तु मराठा क्लब का (पछाड़ा कमजोर) था। कैम्प ने इस कमजोरी का फायदा उठाया और २ गोलों से जीतगा। (शेष अगले अंक में)

## श्री डा० राधाकृष्ण जी की विदाई

गुरुकुल प्रायुर्वेद महाविद्यालय के सुयोग्य उपाध्याय श्री डा० राधाकृष्ण जी गत १ मार्च को गुरुकुल-वेवा मे विराम पा गए। आपने गत १८ वर्षों में बड़े उत्साह व लगन से गुरुकुल की सेवा की। आप 'व्याजम्-नेवा-सदन' के भी आजीवन सदस्य रहे। श्रद्ध-क्रिया एवं चिकित्सा में आप बड़े ही सिद्धहस्त माने गए। आपने अपना सेवा काल निर्विग्रह समाप्त किया इसके लिये आपको बधाई है। समस्त कुल वासियों की सभा में आपको विदाई पर दुःख प्रकट किया गया। वकाशों ने आपको योग्यता, मिश्रकारणा, सद्-व्यवहार और जिन्या-दिलो का गुणगान किया। आपको श्रद्धाचरियों, उपाध्यायों तथा मित्र-मरुदलियों द्वारा पदियों दी गईं जिन्हें आपने प्रेम पूर्वक स्वीकार किया। आशा है यहाँ से विदा होकर श्री डाकुर जी जहाँ कहीं भी जायेंगे, गुरुकुल से स्नेह बनाए रखेंगे।

विदाई समारोह के पश्चात् डाकुर जी प्रतिष्ठा पूर्वक गुरुकुल से विदा हो गए।

## पुस्तकसमालोचना

खिलौना—लेखक डा० इन्द्रसेन जी मूल्य २) पृष्ठ १०० १६

यह छोटा सा ट्रेकु भी डा० इन्द्रसेन जी के एक भाषण का परिवर्धित रूप है जो कुछ समय पहले उन्होंने आल-बहिडया रजिस्ट्रारके देहली में भाडकाट किया था। उस समय भी श्रोताओं ने इस भाषण को बहुत पसन्द किया था। अब यह पुस्तिका के रूप में हमारे सामने आया है। श्री डाकुर साहेब मनोविज्ञान के विशेषज्ञ हैं और 'सं' विषय के अग्र्यपक भी हैं। जिस उन्नतना मे खिलौना जैसी चीज को उन्होंने मनोवैज्ञानिक रूप देकर इन से बच्चों की शिक्षा तथा मानसिक उन्नति की ओर माना पिताओं का ध्यान आकृष्ट किया है उस के लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। उन्होंने ठीक ही लिखा है कि भारतवर्ष में अभी तक हम बच्चों की ओर उतना ध्यान और उन्हें उतना महत्त्व नहीं देते। हमें आशा है कि डाकुर साहेब आपनों ऐसी ही कृतियों द्वारा भविष्य में भी समाज के इस आवश्यक, महत्व पूर्ण तथा वर्तमान में उपेक्षित अंग की ओर ध्यान दिनाकर माता पिताओं की आँखें खोलकर भाषी समाज के निर्माता बच्चों की सेवा करने में सहायक होंगे। यह निबंध रोचक है तथा पठन और मनन करने योग्य है।

—पं० रामरक्बा जी, गुरुकुल कांगड़ी

## स्वास्थ्य समाचार

राजेश्र् भेणी ३ स्रे०म् उबर, वमनेश कुमार भेणी २ स्रे०म् उबर, रामकुर भेणी ३ स्रे०म् उबर, इन्द्रसेन भेणी ३ स्रे०म् उबर, कृष्णचन्द्र भेणी ५ चोट, सोमदश भेणी २ स्रे०म् उबर, रामकृष्ण भेणी ३ फोंडा, राममन्थन भेणी ३ फोंडा।  
गन सताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुये थे अब सब स्वस्थ हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबंध में गुरुकुल सुद्राक्षलय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—माहेश्वरजी हरिवंश वर्दालका

वर्ष ६ ]

गुरुकुल काशी, गुरुकुल चैत्र १९६७ १४ मार्च १९६१

[ संख्या ४७ ]

## विराट-पुरुष

( एवा. ब्रह्मचर्ये श्री के धर्मोन्मेषे मे )

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिदस्मात्प्राचीनजयायांऽस्ति कश्चित् । बृह इव स्तम्भो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पृथं पुरुषं गम सर्वम् ॥

मुक्ति का स्वरूप समझ में आ चुका । उस वास्तविक सरोवर को प्राप्त करने की वातात्मा जो कुछ अनुभव करता है उस का भी ज्ञान हो चुका है । श्रुतियों की साक्षी मिल गई । पूर्ण निश्चय हो गया कि ब्रह्मधाम में पहुँचना मनुष्य के लिये संभव है । परन्तु फिर व्याकुल जीवात्मा के अन्दर बड़ी प्रश्न उठता है ? ब्रह्म कहाँ है ? उसे किस जगह ढूँढ़ें ? उसकी उन्नता को सुनकर भोला पुरुष समझ लेता है कि वह बहुत दूर है इसलिये चकित रह जाता है । समझ में नहीं आता कि हिमालय की ऊँची चोटियों तक कई मनुष्यों की पहुँच नहीं हो सकती । तो फिर उस ब्रह्म तक, जो दूर से दूर बतलाया जाता है किस प्रकार पहुँचे ? और ऐसी अवस्था में निबेल जीवात्मा हाथ पैर डीला छोड़ देता है ! पुरुषार्थ को बिलकुल जबाब दे बैठता है । तब हृदय के अन्दर बड़ी तीव्र गति पैदा होती है । निराशा जीवात्मा भी कुछ समय के लिये विषयों से उपरम सा हो जाता है । निराशा, अनुभव करने के उसे अयोग्य बना देती है । तब अन्तर्मुख होकर उसे एक प्रकार का हृष्टि गोचर होता है । उसको देवकर्म चकित हो जाता है तब श्रुति हाथ पकड़ कर सावधान कते हैं । कहते हैं “क्या तुमके न कहा था कि मन धरवा । परमात्मा जहाँ उन्नता के कारण दूर से दूर है वहाँ अपनी व्यापकता के कारण समीप से समीप भी है ।” प्रभु रोम रोम में रह रहे हैं । जीवात्मा के अन्दर निवास करते हैं । गंगा और काशी में उसे ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं । मन्ना और मरिजद की उससे मिलने के लिये आवश्यकता नहीं । गिरजा और मन्दिर उसकी श्रोज में जाने की आवश्यकता नहीं । वह समीप से समीप है । उससे अधिक समीप हमारा सम्बन्धी कोई भी नहीं । परन्तु केषल समीप होने ही से तो फटिनता दूर नहीं होती । वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है । उसकी महत्ता को समझना मनुष्य के लिये कब सम्भव है ? फिर समीपता से भी क्या लाभ हुआ ? जब हम

उसे देख नहीं सकते, जब हम उसे दूरी इन्द्रियों से अनुभव नहीं कर सकते, तो उसकी समीपता से हमें क्या लाभ पहुँचा ? इस प्रकार की शंकायें जब मन को घेर लेती हैं तब श्रुति फिर जिज्ञासु का हाथ पकड़ कर उसे परमात्मा की महानता को दर्शाते हैं तब मालूम होता है कि वह जहाँ सूक्ष्म से सूक्ष्म है वहाँ बड़े बड़े भी बड़ा बड़ी है । उसकी उन्नता की कोई सीमा नहीं । चान्द्र और सूरज, तारागण्य और नक्षत्र, वायु-मण्डल और अग्नि, पर्वत और जंगल, एक एक उन्नी परमात्मा की महानता और उन्नता की साक्षी दे रहे हैं । परन्तु इस प्रकार विस्तृत होने पर भी वह परमेश्वर ब्रह्मायुध में व्यापक, दृढ़ वृत्त की तरह निश्चल है । वह सारे जगत् को चला रहा है । परन्तु उसे कोई भी चलायमान नहीं कर सकता । वही प्रभु चारों ओर भरपूर हो रहा है । वह एक ही है कोई उसका हिस्सेदार नहीं । सहायक नहीं । साग ब्रह्मायुध उसकी मत्ता से पूरित हो रहा है । इसलिये

ततो यदुत्तरत्वं तदहमवमानमयम् । यत्तद्विद्वुरमुनाम्ने भयनयथैतरे दुःखमैवापि याति ॥

“ उस अनुभव करने के योग्य प्रभु को जो परे से परे है वह और जो अदृश्य है, इन्द्रियों से जानने के अयोग्य और दुःख रहित है जो जानते हैं वे अन्तर् हो जाते हैं और जो उसे नहीं जानते निश्चय दुःखों को प्राप्त होते हैं ।” परमेश्वर की समीपता प्राप्त करना इस लिये हरेक मनुष्य का कर्तव्य है कि मुक्ति को प्राप्त करे । दुःखों से मुक्त हो । बस कोई भी मनुष्य यह कह कर पीछा नहीं छोड़ सकता कि उसे मुक्ति की आवश्यकता नहीं । जिस प्रकार सभ्य देशों में इसलिये शिक्षा को बाधित कर दिया गया है कि प्रत्येक मनुष्य देश के नियमों से परिचय प्राप्त करके और आपस में सामाजिक व्यवहार की उन्नता को जानकर मनुष्य समाज के लिये योग्य बन जावे ; इसी तरह हरेक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अन्तर् परमेश्वर प्राप्ति के साधनों को प्रयोग में लावे । क्योंकि जब मनुष्य समाज के अन्तर् वास करता है तो जब तक एक एक मनुष्य मुक्ति के साधनों में तत्पर न हो जावे तब तक संसार के अन्दर सुख और शान्ति का रावण आ नहीं सकता ।

## होमियोपैथी 'पूर्ण-विज्ञान' है

(ले०-डा० ओट्टोव्हाल्ड ओ विडमर, विजनी)

होमियोपैथी को चिकित्सा तथा परित्राण के कार्य में प्राप्त होती अद्वितीय सफलता को देखकर बहुत से स्वच्छन यह कहने लगे हैं कि "होमियोपैथी की दवा लय गयी तो नीर है नहीं तो नुस्का"। उनके कथन का अर्थ स्पष्टतया यही प्रतीत है कि होमियोपैथी-औषधियां भी "बाधा तो का राख की चुटका" के समान होती हैं जो "अंग की लाठी" अथवा "बुझाकर न्याय" से कभी २ अज्ञानकर्म्य ऐसी ठीक बैठ जाती हैं कि भाग्य से निकली लाटरी के समान गंगी का एक दम यद्वा ही पार कर देती हैं।

उनके इस कथन में एक यह गुदाशय भी स्पष्ट भूलक रहा है कि होमियोपैथी कोई विज्ञान धोड़े है जिसका नियमपूर्वक अध्ययन वा अभ्यास करने के पश्चात् चिकित्सा के कार्य में उसने सदा एकरस सफलता प्राप्त की जा सके!

होमियोपैथी चिकित्सा-विज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञ पेशे स्वच्छनों के इस भ्रम का समूलोन्मूलन करने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि होमियोपैथी का "विज्ञान" होना, युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा भी सिद्ध कर दिया जाय। गणित को संसार के सब विज्ञान-वेत्ता पुरुष "विज्ञान" मानते हैं। क्यों? इसलिये कि वह "विज्ञान" की कन्सीटी पर पूरा उतरता है। प्रश्न होता है कि "विज्ञान" की कन्सीटी क्या है? "विज्ञान की कन्सीटी, विज्ञान की परिभाषा के अनिर्गुण क्या हो सकती है। शब्द-कोश में विज्ञान की निम्न परिभाषा पायी जाती है:—

"Science is a systematised knowledge gained by making experiments & observations." अर्थात्—"विज्ञान उस क्रम-बद्ध विशेष ज्ञान का नाम है, जो परीक्षणों तथा निरीक्षणों के आधार पर प्राप्त किया जाता है"। चूँकि गणित का जो ज्ञान परीक्षणों द्वारा प्राप्त होता है उसमें एक क्रम या नियम का निरीक्षण किया जाता है अतः गणित "विज्ञान" कहाना है। ये परीक्षण, बाहे हम पैसो, से करे अथवा रूपों से, हर हालत में इस में से पांच निकालने पर पांच ही शेष रह जाते हैं। इस प्रकार के अनेक परीक्षणों में, चूँकि हम एक क्रम या नियम का निरीक्षण करने हैं अतः गणित को हम "विज्ञान" मानते हैं। इसी प्रकार, रसायन (Chemistry) शास्त्र को भी विज्ञान माना जाता है, इसलिये कि उसके कार्यों में भी—रसायनिक प्रमाणात्मक बनने तथा टूटने इत्यादि में भी एक क्रम या विनियम का निरीक्षण किया जाता है।

अब प्रश्न होता है कि होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली में भी परीक्षणों तथा निरीक्षणों के आधार पर कुछ कोई ऐसा क्रम या नियम पाया जाना है जिसके कारण उसे भी "विज्ञान" मान लिया जाय? इस प्रश्न के उत्तर में होमियोपैथी अपने 'समः समं प्रशमयति' के विनियम को सामान्य संसार के सम्युक्त प्रस्तुत करती

है, जो केवल परीक्षणों तथा निरीक्षणों के आधार पर ही सिद्ध किया गया है।

होमियोपैथी के इस चिकित्सा-नियम की विद्यमानता में होमियोपैथी को विज्ञान मानने का नुस्साहस यही सब पुरुष कर सकते हैं जिसे होमियोपैथी के उन परीक्षणों तथा निरीक्षणों का परिज्ञान न हो, जिनके आधार पर ही महात्मा हनीमैन ने होमियोपैथी के इस सत्य चिकित्सा-नियम का आविष्कार किया है।

हनीमैन को अपने ऊपर लगे गये Cinchona के प्रसिद्ध परीक्षण द्वारा यह ज्ञान हुआ कि यह औषधि रोमियों में जिन लक्षणों का प्रशमन कर देती है उन्हीं लक्षणों को वह स्वल्ब मनुष्यों में उत्पन्न भी कर देती है। हनीमैन ने इस ज्ञान को विज्ञान का रूप देने के लिये अल्प बहुत सी औषधियों द्वारा परीक्षण प्रारम्भ कर दिये। उसने प्रत्येक औषधि द्वारा किये गये परीक्षण में यही निरीक्षण किया कि प्रत्येक औषधि उन्हीं रोग-लक्षणों का प्रशमन करने में समर्थ होती है, जिन्हें वह स्वल्ब मनुष्यों में उत्पन्न भी कर सकता है। उसने अपने इन सब परीक्षणों में एक क्रम या नियम का निरीक्षण किया जिसे उसने:—

"समः समं प्रशमयति"

के मूल-रूप में बद्ध कर दिया।

इस प्रकार होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली का यह नियम जब केवल परीक्षणों तथा निरीक्षणों के आधार पर ही सिद्धित किया गया है, तो होमियोपैथी को 'विज्ञान' मानने से कौन विज्ञान वेत्ता पुरुष विमुख हो सकता है!

चूँकि होमियोपैथी, केवल अपने इन नियम के आधार पर ही आयु-विज्ञान विषयक चिकित्सा तथा परित्राण का समस्त कार्य पूर्णतया निभा सकने में समर्थ है अतः उसका "पूर्ण-ज्ञान" हाना भी स्वयं सिद्ध हो जाता है।

युक्ति तथा प्रमाणों के बल पर, इन प्रकार होमियोपैथी का "पूर्ण-विज्ञान" होना निश्च ही जाने पर भी बहुत से एनोपैथिक चिकित्सक इन एक साधारण विज्ञान मानने का सम्मान प्रदर्शित करना भी नहीं चाहते! उनका कहना है, कि चूँकि होमियोपैथी का चिकित्सा का सिद्धान्त प्रकृति के आचरण के सर्वथा प्रतिकूल है अतः उसे वे विज्ञान होने या न होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अपने कथन की पुष्टि में वे यह युक्ति पेश करते हैं कि चूँकि प्रकृति में अंधकार का नाश प्रकाश से तथा प्रकाश का नाश अंधकार से होता है, अतः चिकित्सा का कार्य भी जिसमें रोगों के विनाश का कार्य होता है, प्रकृति के आचरण के अनुकूल "विद्यमान" के सिद्धान्त के अनुसार ही हो सकता है न कि 'समो' के नियम के अनुसार। उनका यह कहना है कि "यदि चिकित्सा का कार्य 'समो' के नियम के अनुसार नश्यत् हो सकता है तो प्रकृति में भी अंधकार का प्रशमन अंधकार से तथा प्रकाश का प्रकाश से होना चाहिये था" बहुत कुछ युक्ति-युक्त ही प्रतीत होता है।

पलौपैथी की इन शूद्राओं के उत्तर में होमियोपैथी का कहना है कि प्रकृति में भी वास्तव में अन्धकार का प्रथमन उससे बलवत्तर अन्धकार से तथा प्रकाश का उससे बलवत्तर प्रकाश से ही होता है। प्रकाश का अन्धकार से तथा अन्धकार का प्रकाश से तो केवल संश्लेषण या सम्मोहन मात्र (Suppression) ही हो पाता है, परन्तु प्रथमन नहीं होता। सपय आना है जब कि प्रकाश से दबाया गया अन्धकार प्रकाश के हीन-बल होने ही पुनः आ चिरना है। परन्तु सम्यक् अन्धकार से प्रशंभित बिरल अन्धकार, फिर कभी कुछ तक नहीं उठा पाता। यह बात प्रकाश के उदाहरण से बिलकुल स्पष्ट हो जायगी।

देखिये:—ग्राह्य सुदृक् में जलनी हुई बिजलियों की बलियों का प्रकाश शून्ये २ अण्ड पड़कर अदृश्य हो जाता है। क्यों? इसलिये कि उससे बलवत्तर प्रकाश का (सूर्य का) उदय हो चुका होता है। क्या आकाश-मण्डल में स्थित चन्द्रमा मध्याह्न में दिखाई देता है?

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रकृति में भी प्रथमन का कार्य समोपचार द्वारा ही सम्पन्न होता है, जिसके समर्थक अनेक उदाहरण न केवल प्रकृति में अपितु विज्ञान-पुरुषों के खचनों में भी प्राप्त होने हैं।

मुनिये:—अकारण खचने में तूतों की आवाज़ क्यों नहीं सुनायी देती? क्या डोल की दमादम में आर्य वीणा की सुनबुर झङ्कार सुन सकते हैं? सूँघिये—क्या दिना का इन लंघने पर गुञ्जाब के फूल का आप सूँघकर पहिचान सकते हैं? चल्किये:—बादल के गिदोड़े खाकर भाये गये अङ्कुर क्यों फीके लगने हैं? एषर्य काँजिये:—सूजन के कारण चलने हुये शरीर के भाग पर गरम गरम पुण्ड्रिक बर्षिये, क्यों सुहानी है? इस प्रकार आपने देखा लिया कि हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ समोपचार के प्राकृतिक नियम की ही परिपुष्टि कर रहीं हैं।

मानसिक क्षेत्र में भी प्रथमन का यह कार्य इन्हीं समोपचार द्वारा ही सम्पन्न होता है, इसका प्रदर्शन करने के लिये दो एक उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। क्या नयी हुयी २ विधवा के दिल की जनन, दूसरी दिल-जल: विधवाओं के मिलन के बिना जा सकती है? क्या ऐसी महालाओं का सिनेमा गियेटर कावादि से कुछ भी अन्धोरजन हो सकता है? क्या अपने प्रेम-विह्वल परित्यक्त बन्धुओं के करुण-कण्ठन से विदीर्ण होने स्व-सीमिकों के दिग्ग की संभाल, सिवाय मरु बाजे की गड़ गड़हाड़ के अन्य किन्हीं प्रकार से हो सकता है?

प्रकृति में प्रतिदिन यह सब कुछ होता देखकर भी क्या कोई विवेक-शील पुरुष यह कहने का साहस कर सकता है कि प्रथमन का प्राकृतिक नियम सिवाय समोपचार के कुछ और हो सकता है?

इसके अनैतिक परिणाम—नीति शास्त्रकार क्या कहते हैं। यदि उनकी युक्तियाँ म कहीं "करडकैनेव करडकम्"। लम्बा मिलता है तो कहीं "शठे शठ्यं समाचरेत्" का पाठ पढ़ाया जाता है। कायकार कहते हैं "अनुदुःखने घन-धर्मिन् न्तु गोमातुरनानि तेवगी" बादलों की गरज

को सुनकर शेर दहाड़ने लगने हैं, क्यों? इसलिये कि वे अपनी आवाज़ के समान आवाज़ को सहन नहीं कर सकते। क्या जेर गाँवों की बोलों पर भी कभी बोलने हैं? पञ्चतन्त्रकार कहते हैं "दशयानां किल वक्रिणः हितकरः सेकोऽपि तस्योत्सवः" क्या अनुभवों पाचक लोग, अज्ञानक हाथ जल जने पर उस पर भीगी पट्टी बांधने के अभ्यस्त होने हैं? क्या जलने हाथ को आँसू के नामने कर देने पर उसकी जलन तुरन्त ही शान्त नहीं हो जाती? इसी प्रकार, क्या कामाग्नि को कोई भी मनुष्य जानाति के बिना शान्त कर सकता है? क्या महादेव जी ने अपने सृतीय नेत्र द्वारा कामदेव को अहम नहीं कर दिया था?

"तव शिव तीसर नयन उधारा,  
चिन्तन काम भयड जरि छारा"।

क्या किसी भी देव या महादेव के सृष्टि-नियम के प्रतिकूल, सिवाय ज्ञान-बलु के अन्य कोई तीसरा नेत्र हो सकता है? क्या मन में उत्पन्न होने वाला कामाग्नि, मन में उत्पन्न होने वाला ज्ञानाग्नि के बिना भस्म हो सकती है? क्या इस विषय की पुष्टि गीता के निम्न श्लोकों से नहीं हो जाती?

"आतुतं ज्ञानमेतन्, ज्ञानिनो नित्य वैरिणः  
काम रूपेण कौतये, दुःपूणानमेतन् च"।

अथिच "ज्ञानाग्निः सर्व कर्मणि भस्मसात् कुतेर्जन।  
गौम बुद्ध महाराज ने भी एक दुःखी आत्मा की जलन—अपने उपदेशासूत से शमन करने में असमर्थ होकर फिर सरसों बाँटने भेजने के मिष से उसे अनेक दुःखितों की दर्दनाक कथायें सुनवाकर ही शान्त की थी।

गोस्वामी तुलसीदास जी भी जब ज्ञान (पुरुष) द्वारा नारी के मोह की जीतने में असमर्थ रह गये, तो उन्होंने भक्ति-रूपा नारा का हृदय में प्रवेश कराकर ही नारी का मोह शान्त किया था। वे स्वयं लिखने हैं:—

"मोहे न नादि, नारि के रूपा,  
पश्रगारि! यह रीति अनुपा"।

तुलसीदास जी इस रीति पर—समोपचार के इस नियम पर—आश्चर्य प्रगट करने हैं कि नारी, नारी के रूप पर कभी मोहित नहीं होते! अर्थात् भक्ति रूपा बलवती नारी, सुन्दरी के रूप पर कभी मोहित नहीं होती—उस के साथ कभी गुट-बन्दी नहीं करती—अपितु उसे सदा भरा देती है, उसके मोह का पुरण प्रथमन कर देती है। इस चौपाई का तात्पर्य यही है कि ज्ञान की तो—विषम होने के कारण (पुरुष होने के कारण) सुन्दरी से गुटबन्दी हो सकती है परन्तु भक्ति-रूपा नारी की उससे कभी भी नहीं पट सकती। ये दोनों एक ही तत्ववारे एक स्थान में कभी भी नहीं समा सकते!

तुलसीदास जी के इस कथन का मनन करने के पश्चात् भी, क्या कोई विश्वास पुरुष यह कहने का साहस कर सकता है कि मानसिक क्षेत्र में भी प्रथमन का सर्वोत्कृष्ट साधन सिवाय समोपचार के कुछ और हो सकता है?  
[ शेष ०५५ पर ]

# गुरुकुल

२ वैश्व शुक्रवार १९६७

## व्यक्ति समाज की सम्पत्ति है ?

( ले० श्री प्र० वेदराज जी उपन्यासक )

जीवन एक संग्राम है। जो आदमी सोना तान कर आफनों का मुकाबिला कर सकता है, आपत्तियों की घनघोर घटा में बिजली की तरह प्रकटा सकता है, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा नैतिक प्रत्येक दृष्टि बिन्दु में अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना सकता है; जो टूट जाना पसन्द करना है परन्तु घुटना नहीं। इस जीवन संग्राम में उसी क्षीर के माथे विजय का मेहराग बंधन है। व्यक्तिवाद राष्ट्र में इसी प्रकार की स्वायत्तप्री व्यक्तियों उत्पन्न करता है जो अपने पैरों पर खड़ी हो सकें, अपने व्यक्तिव का समन्वित दिशा में विकास कर सकें। इसके विरुद्ध समाजवाद व्यक्तियों को स्वायत्त समझ कर उनसे व्यक्तिव को कचला देता है। येही सम्पत्ति में नहीं आता कि यदि व्यक्ति विकसित न हो तो स्वरा समाज कैसे विकसित हो सकता है।

जीवन संग्राम में निरन्तर प्राकृतिक चुनाव हो रहा है जो संग्राम में नहीं टिक सकता उसका उन्धिया भे नाशो-निशां मिट जाता है। परन्तु स्टेट के हस्तक्षेप से बहुत से अयोग्य व्यक्ति भी जो समाज के लिए अभिशप्त हैं, अपनी जीवन कपी मालगामी को धीरे २ खींचने चले जाते हैं। कई बार राज्य संस्था को कम करने के लिए स्टेट की तरह से कानून बनाए जाते हैं, हाथियार और पञ्जर-शौमित्र स्थापित किए जाते हैं; परिणामतः अवस्थाओं को अच्छा कर देने पर कमजोर लोग भी जीने रहते हैं। कमजोर और बलवान में विवाह से जाति की रचना खोजने में जाती है। इस प्रकार शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक प्रत्येक दृष्टि बिन्दु में समाज का सर्वेड्डर गिर जाता है। ऐसे कानून जो व्यक्ति को इस योग्य नहीं बनाने कि वह अपने पैरों पर खड़ा खड़ा हो सके, कहां तक उपयोगी है।

जीवन संग्राम की समस्याओं का हल लोग नखि डारना करते हैं। यदि कानून बना कर उनकी सब समस्याओं हल कर दी जाय तो व्यक्ति की बखि का विकास सम्भव है। जब समाज का दृष्टि बिन्दु यह हो जाय कि व्यक्ति समाज की संपत्ति है और समाज हर बात में उसके जीवन को नियंत्रित करना चाहता है तब व्यक्ति उन्नत होने के स्थान पर अवनत होना चला जाता है।

हमें इस विचार को भी अपनी आंखों में ओझल नहीं करना चाहिए कि राजनीतिक पक्षपात और सरकारी पक्षपात से प्रेरित होकर स्टेट, जनता की मुक्त समृद्धि

के लिए नित नए २ कानूनों का बनाना आवश्यक सम्भला है। बहियों से उठने वाली चिनगारियों के समान सभी देशों की पार्लियामेंट नए २ कानून बनाती चली आ रही हैं। परन्तु वस्तु स्थिति का अध्ययन करने से पता चलता है कि बहुत बार कानूनों से अभीष्ट लाभ तो होने नहीं बल्कि जिन हानियों की ओर हम टा नज़र नहीं जाती वे हो जाती हैं। इतिहास इस बात का जीता जागता सचन है कि कानूनों के अत्यधिक निर्माण से वाहे उनका प्रेरक भाव कितना ही उच्च क्यों न हो; लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। उदाहरण के लिए अमेरिका में शराब-पब्लिकी का कानून पास हुआ परन्तु वह किया रूप में परिष्कृत नहीं किया जा सका। किराए की बर्षों वाले छिपा २ कर लोगों को शराब पिलाने लगे। फेबल शराब पीने की स्वाति हो बहुनों ने अमेरिका छोड़ दिया। इतिहास में इस प्रकार के उदाहरणों की कमी नहीं है। राणी एलिजाबेथ के जमाने में इंग्लैंड में गरीबों के पालन-पोषण के लिए जनता पर Poor Tax पर लगाए गए। इसमें कोई संदेह नहीं कि कानून बनाने वालों की दृष्टि थड़ी अच्छी थी परन्तु बाद में इसके बड़े बुरे परिणाम निकले। इसमें आला,सर्दी को बहुत प्रोत्साहन मिला। जनता को बड़ा महानत का। कर्मांड पर मुसुबोरी का व्यवसाय करने वाले पलने लगे। समाज विज्ञान के माहो अध्ययन तथा मानव प्रकृति के मनो वैज्ञानिक विश्लेषण से हम इस परिष्कृत पर पधुंचने हैं कि जब तक व्यक्तियों का आचार उन्नत नहीं तब तक कानून का कोई फायदा नहीं। फेबल कानून बना कर हम मानव प्रकृति को नहीं बवल सकते। व्यक्ति की स्वतन्त्रता को समित न करके उमने नदी के प्रवाह को तरह बहने देना ही उसमें व्यक्तिय के विकास को दृष्टि स उत्सम है।

मनुष्य को एक निर्जीव मशीन नहीं माना जा सकता, उदे किसी प्रकृति की तरह नहीं घरा जा सकता, उससे जबर्दस्ती पूर्व नियंत्रित कार्य नहीं कराया जा सकता। उदे परमात्मा ने स्वतन्त्र इच्छा शक्ति दी है और उसका अपना स्वतन्त्र व्यक्तिय है। मनुष्य एक हांवा नहीं अपितु एक वृक्ष है जो अपनी अन्तरीय शक्ति के अनुसार धारों तन्क बढ़ता और विकसित होता है। व्यक्तियों को अपनी स्वतन्त्र संपत्ति बनाने और उस पर आचरणा करने का पूरा २ अधिकार होना चाहिए। व्यक्ति के लिए स्टेट का प्रामोकोन होना आवश्यक नहीं, जिस पर स्टेट का रिक्तार नष्ट दिया जाय और बर डीक उमी तरह सोचने, बोलने और क्रिया करने के लिए बाधित किया जाय जिस प्रकार स्टेट कानी है।

सोशियल क्लस में लोगों को बाधित किया जाता है कि वे वहां के तान शार्ड स्ट्यालिण के मिहद एक शब्द भी मूह मे न निकाले। बहुत से नोजवानों को जो अग्रज जीवन रहने-न जाने अपने देश के लिए किनने उपयोगी सिद्ध होने, केवल इन्स लिए फांसी के तखने पर खड़ा दिया गया कि उनके स्थालत स्ट्यालिन से नहीं मिलने थे। ट्रांसकी जो किसी जमाने में लेनिन का दाहि १ हाथ सम्झा जाता था, जिसकी विडवा का सिखा अज सारं दुनिया मानती



है, केवल इसलिए वर २ भद्रकला फिर उसके तथा स्टालिन के सिद्धान्तों में विरोध था। आज सारा जर्मनी हिटलर के इराते पर नाचना है। उसके विन्दकों को अपनी स्वतन्त्र सभ्यति प्रकट नहीं कर सकता। हिटलर के विरुद्ध कोलने पर Concentration Camps की हवाएं खानी पड़ती हैं। जर्मनी के जामूसी विभाग गेस्टापो का भूत हमेशा सिर पर सवार रहता है। होटल, पार्क उद्यान आदि सार्वजनिक स्थानों पर राजनीति चर्चा करने हुए दिल में एक डर सा बना रहता है। क्या अप कल्पना कर सकते हैं कि इटली में तुसोलिनी के विरुद्ध कोलने वला व्यक्ति जिन्या रह सकेगा ? इन देशों में स्टेट रूपी मशीनरी जिन्य तरह व्यक्तियों को चलाती है उसी तरह उन्हें चलाता पड़ना है। इनकी दृष्टि में व्यक्ति स्टेट का साधन है साध्य नहीं। यह व्यक्तियों की स्वतन्त्रता पर बड़ा भारी कुठाराघ त है। स्टेट के आत्यधिक हस्तक्षेप से व्यक्ति का पूर्ण विकास असम्भव है।

प्रतिभाशाली व्यक्ति स्वतन्त्रता के वायु-मण्डल में ही रह कर अकसो मौलिक विचार धारा, साहित्य अथवा दर्शन का सूत्रन कर सकते हैं। कला का विकास सदा व्यक्ति में होता है। यदि हम संसार के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें पता लगेगा कि जब २ व्यक्ति को स्टेट का साधन समझा जाता रहा, उस पर अनुचित दबाव डाला जाता रहा, तब २ बड़े जांगी का प्रतिक्रिया हुई। मध्यकाल में यूरोप में जब पोप का बोलबाला था और उसके पास अनगिनत अधिकार थे जिनके द्वारा वह किसी भी व्यक्ति को यदि उसकी सम्मति कैथोलिक धर्म के बिलकूल हो मृत्युदंड दे सकता था। उस जमाने में स्वतन्त्र विचारधारा मौलिक दर्शन, विज्ञान तथा साहित्य को बिलकूल प्रोत्साहन नहीं दिया गया, परिणामतः सभ्यता का परम उत्कर्ष नहीं हो सका। जिन वैज्ञानिकों के सिद्धान्त कैथोलिक धर्म के विरुद्ध सिद्ध होते थे उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाता था। प्रसिद्ध एपोलॉनियस को केवल इसलिए जिन्या जला दिया गया क्योंकि उसका ज्योनिव-सम्बन्धी सिद्धान्त कैथोलिक धर्म से मेल नहीं खाता था। गैलीलियो पर अमानुषिक आत्याचार किए गए। जब क्रान्ति के लिए पर्याप्त मजाला इकट्ठा हो गया, एक महान् आत्मा प्रादुर्भूत हुई, उसने इस असय के विशाल पहाड़ में साथ की एक छोटी सी चिनगारी लगाई। इतिहास में वह आत्मा द्यूधर के नाम से अमर है। यदि समाज की सामूहिक शक्ति द्वारा द्यूधर की आत्मा को दबा दिया जाता तो क्या समाज का कल्याण सम्भव था। व्यक्ति के सच्चे विकास में ही राष्ट्र का विकास निहित है उसके दमन में नहीं।

हमारा प्रतिदिन का अनुभव इस बात का साक्ष्य है कि प्रतियोगिता द्वारा मनुष्य की शक्तियों का विकास होता है। मकानिने में आकर आदमी पर एक दूसरे से आने बढ़ जाने की धुन सवार रहता है और उसकी व शक्तियां जो पहले सुप्त थीं जागृत हो जाती हैं। इस प्रकार मनो-विज्ञान व्यक्तित्व को प्रोत्साहन देता तथा परिपुष्ट करता है। इस विपरीत जब समाज प्रत्येक व्यक्ति की जिम्मेवारी

अपने ऊपर ले लेता है और व्यक्ति की प्रत्येक आवश्यकता को पूरा करने का बीड़ा उठा लेता है तब व्यक्ति की शक्तियों का विकास अवरोध हो जाता है। जिस प्रकार वह विद्यार्थी जिनके सब सवाल अध्यापक ही स्वयं हल कर देता हो कमी योग्य नहीं हो सकता, इसी प्रकार जब व्यक्ति प्रत्येक चीज में स्टेट पर आश्रित रहता है तो उनकी शक्तियां कुशिल हो जाती हैं। व्यक्ति में स्वावलम्बन की भावना उगात्र करने के लिए व्यक्तिवाद पर बल देना आवश्यक है।

इस तथ्य से कोई भी इन्कार न करेगा कि स्टेट के नीचे जो पद या महकम होते हैं वे आर्थिक दृष्टि से बड़े खर्चों तथा प्रबन्ध की दृष्टि से बड़े रहते हैं। उनमें बाए-नाम देनिहर्चार्थ आदि को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है। रजवत का बाजार सदा गर्म रहता है और बहुधा अयोग्य व्यक्ति ऊंचे २ पदा पर आसीन होते हैं। इनके विपरीत वैयक्तिक प्रबन्ध (Private Enterprise) आर्थिक दृष्टि से कम खर्चों तथा व्ययस्था की दृष्टि से उत्तम होते हैं। क्योंकि वैयक्तिक प्रबन्ध में व्यक्ति में स्वावलम्बन की भावना जागृत होती है, उसमें उन्ने अपनापन दिखाई देता है और वह अपने को उस में खपा देता है।

उन्ने २ सरकार व्यक्ति में अधिक हस्तक्षेप करना है वह व्यक्ति को स्वावलम्बन की भावना को घटाता है। एक बार एक प्रसिद्ध अंग्रेज ने बड़े अभिमान से कहा था कि हमारा औपनिवेशिक राज्य व्यक्तियों की आर्थिक शक्ति और स्वास्थ्य द्वारा जीता गया है, हालांकि सरकार ने परा-पग पर अनेक भूले कीं। ऊँ ईश और उसके साथी, अपनी आंखों में बड़े २ नम्र लिए हुए भारतवर्ष में आए और उन्होंने अपनी प्रतिभा तथा बुद्धिबल के आधार पर भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भंडा गाड़ा।

अहिंसा तथा सत्य के परम उपासक, महात्मा गान्धी तथा विश्वविख्यात कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर किसी स्टेट कपी मशीनरी की उपज नहीं हैं। यदि वे युग प्रवर्तक महान् आत्माएं स्वतन्त्रता के वायु मंडल में न पली होती तो संसार का कल्याण असम्भव था। व्यक्ति के सच्चे विकास में ही राष्ट्र का विकास निहित है उसके दमन में नहीं।

[ पृष्ठ ३ का शेष ]

श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज, आर्य समाज का स्तवतां नियम यह बनाने हैं कि "सबसे प्राति पूर्वक, धर्मनुसार, तथा योग्य बर्साव करना चाहिये"। क्या इस नियम में पहिले दो क्रिया विशेषणों ने ही काम नहीं चल सकता था ? फिर इस "यथायोग्य" विशेषण क्यों बढ़ाया गया ? इसका सविशेष इसलिये किया गया कि—शिवाजी महाराज, औरङ्गजेब के बल का जबाब बल ने तथा जल का जबाब जल ने दे कर भी मदा आर्य-शिरोमणि कहलाने रहे !

विद्योपचार का चिकित्सा का सिद्धान्त कितना अपाकृतिक है—इसका स्पष्टीकरण केवल एक उदाहरण से हो जायगा।

एक बालक एक लिलौना पाने के लिये रो रहा है उन्ने आप लूब और से डरा धमका दीजिये। निश्चय ही

उसका रोगा घटना तुरन्त शान्त हो जायगा। अब आप परीक्षाएँ, उसकी आँसों से ओझल हो जायें और छिपे रहें, देखिये कि क्या होता है। आप ६६% यही पावेंगे कि आपके बुर होने ही वह हिचकारियाँ भरकर रोगा प्रारम्भ कर देंगी।

वेब लिखा थागने विषमोपचार का फल! क्या यही परिणाम एलोपैथी द्वारा चिकित्सा होने पर नहीं पाया जाता? उखिन रोग के मरीज को दोजिये मारिया और देखिये क्या फल? पहिले दिन तो वह मौरिया देने ही पवश्य सो जाना है परन्तु दूसरे दिन उसकी बनी लुञ्जी नींद भी काफूर हो जाती है। क्या उनिद्र रोग के मरीज की नींद मगाना ही आपकी चिकित्सा का उद्देश्य था। क्या विषमोपचार के पक्षपाती चिकित्सकों को चिकित्सा के कार्य में प्राप्त हुयी इस प्रकार की सफलता ने अब भी उखिन न हो जाना चाहिये?

बहुत ने एलोपैथिक चिकित्सक अपनी चिकित्सा-विषयक असफलताओं ने तद्गु अकार तथा समोपचार की सफलताओं को प्रत्यक्ष देखकर, यद्यपि होमियोपैथी को मध्य नियम को स्वीकार करने के लिये तैयार हो भी जामे हैं तथापि वे होमियोपैथी की पानी सी औषधियों में विश्वास लाने में असमर्थ होने के कारण होमियोपैथी को फिर—Quackery, Humbug, Bogus तथा Nonsense इत्यादि पदियों से विमूचित करने लग जाते हैं।

होमियोपैथी की जल-समान औषधियों में औषधित्व का परिष्कार प्राप्त करना भी जब परीक्षण तथा निरीक्षण का विषय है तो उसकी जांच करने से उन विज्ञान-नेताओं को क्यों चुकना चाहिये? क्या वे Vitamines सी अदृश्य सूक्ष्मशक्तियों का अस्तित्व, केवल परीक्षण तथा निरीक्षण के आधार पर ही स्वीकार नहीं करने? क्या किसी शक्तिशाली से शक्तिशाली सूक्ष्म-रीक्षण यन्त्र (Microscope) द्वारा ही Vitamines का अस्तित्व आज तक दृष्टि-गोचर हो सका है?

जिस प्रकार मनुष्यों को मित्र २ प्रकार के भोज्य पदार्थों को खिला २ कर ही, उनमें अदृश्य रूप में विद्यमान मित्र २ प्रकार की Vitamines की सत्ता का परिष्कार, उनसे उत्पन्न किये गये प्रमावों के निरीक्षण के आधार पर ही किया जा रहा है, क्या उसी प्रकार जल-समान पुदीरुन औषधियों में औषधित्व की सत्ता का परिष्कार भी परीक्षण तथा निरीक्षण के आधार पर नहीं किया जा सकता?

प्रायः बहुत से एलोपैथल, अरैली Vinum Ipecoe नामक औषधि की केवल एक बूँद मात्रा का घमन शान्त करने के लिये प्रयोग करने पाये जाते हैं। क्या इस प्रकार चिकित्सा करने पर उन्होंने होमियोपैथी के त्रिपाद का (१) सम औषधि (२) अरैली औषधि (३) मन्व्यतम मात्रा का अपहरण नहीं कर लिया है? क्या Ipecoe का घमन शान्त करने के लिये प्रयोग में लाना विषमोपचार का समर्थक हो सकता है? क्या अब अरैली औषधि की एक बूँद मात्रा में ओषधित्व की सत्ता, उस के रागो

पर प्रभाव दिखा देने के कारण स्वीकार की जा सकती है, तो क्या कारण है कि होमियोपैथी की पुदीरुन औषधियों के बारम्बार रोगियों पर प्रभाव दिखा देने पर भी उनमें औषधित्व की सत्ता को बिना मनत्रुच के न मान लिया जाय?

जब एलोपैथी ने उपसक्तों ने Ipecoe के समान अनेक औषधियों को अकेले २ तथा स्वल्पतम मात्रा में समोपचार के नियम के अनुसार प्रयोग में लाकर, होमियोपैथी के त्रिपाद का अपवस रू कर हो लिया है तो उनकी उसके अनुपात (पुदीरुन औषधियों) का भी अपन ने से क्यों चुकना चाहिये?

इस प्रकार जब एलोपैथल ने होमियोपैथी को कथाव-शेर करने के लिये अपना परम पुर्वपथ प्रयुक्त करना प्रारम्भ कर हा दिया है, तो अब उनके लिये यह आवश्यक हो जाना है कि वे होमियोपैथी के चारों पादों का, न केवल आंशक अथवा "पूर्व-प्रदण" शीघ्र से शीघ्र कर डालें। तब तो होमियोपैथी का—

"पूर्ण्य पूर्णमास्य पूर्णमेवावशिष्यते"

हो जायगा। जिस विज्ञान का सब कुछ जिन जाने पर भी सब कुछ बचा रहे—उसके सिवाय, अन्य कुछ रहे ही नहीं—उसके पूर्ण होने में किसे सम्भेद हो सकता है?

पैनिन बाडिया हाकी रूप टूनमैट बड़ीदा में गुरुकुल सूपा को द्वितीय शानदार

विजय

(३)

[ लेखक—पु. क. लिलारी ]

आज २३-१२-२० का दिन है। टूनमैट का चौथा अथवा अन्तिम दिन है। हमारा और कैम्प यूनियन का भाग्य निर्णय होना था। ४ बजे ने ही प्राउएड में प्रेसकों के ठट्ट जम होने लगे थे। सभी मैच शुरू होने की इन्तजार कर रहे थे। हमारी टीम ४ बजे प्राउएड पहुंच गई, कैम्प यूनियन शामिलाने के परने छोर पर पहिले ने ही डटी हुई थी। हम भी मस्तानी चाल चलने हुये निश्चत स्थान पर जाकर बैठ गये। दोनों टीमों शाब्ध परिचयों के ममान एक दूसरे की ओर घूरने लगीं। दोनों दलों में आज पूर्ण शान्त विचार रहे थी। १० बजने से ५ मिनट पूर्व नायब दीवान ओ कर्नल शिवराज सिंह जी आये। विजेता दल को इन्होंने ही पानिगोविक वितरित करना था। गुरुकुल दल का कर्नल म्हाब से परिचय कराया गया और १० बजने ही लेल की सीटी बज पड़ी। आज थीर हुतात्मा स्वामी अत्रानन्द जी का बलिदान दिवस था और हमारा परीक्षा दिवस था। आज के दिन शक्ति पुत्र कुनपिता ने अपने जीवन की बलि देकर हमको जीता जागता वीराना का पठ सिखाया था। आज हमको सबके अर्थों में वीर पूजा करने था।

खेल प्रारम्भ हुई। हमारों का भावद में दर्शक हाजिर थे। वे अपनी आँसों को नली प्रकार तृप्त करना चाहते थे। चारों ओर सम्राटा था। यह लड़ाई, रमशन का नहीं

अपितु आंधी से पहिले का था। भयंकर भ्रातृमरण प्रया-  
कर्मों का सूचक था। सीटी बजी, हुली हुई और प्राउरड में  
भगदड़ मच गई। सब का आंखे भाइय-विधातु गेद पर  
केन्द्रित हो गईं। परन्तु कण्य हो कुल पुत्रे ! तुमने तो  
गजब किया। ऐकहों मीलों से आकर, स्वयं से दूर  
होकर, एक अजनबी विराट नगरी में आकर, गजब किया।  
अभी तो खेल शुरू हुवे ५ मिनट भी न हुवे थे कि कैरप  
युवियन का कड़ा बज गया। क्या गजब का धड़का हुआ।  
प्राउरड में भी चुप्यो, दर्राक समूह में भी चुप्यी। सबके  
हृदय धुक २ करने लगे। मांने उनकी आंखों ने कुछ  
आवाजुकुलीय अम्यवशित दृश्य देखलिया हो। परन्तु कुल  
पिता की अमर अलौकिक आत्मा चार्गे कोर मनु रिमि  
कनी नजर आनी थी। हमारे दिलों की लुखी तो अंग २  
से फूटी पड़ती थी। हमारे हाथ पैर हमनी निपुलता से  
कम्प कर रहे थे कि मांने वे किसी पारलौकिक शक्ति द्वारा  
सञ्चलिन हो रहे हों। और हमनी चमककर के कारक हमने  
सबके देखते देखते दूसरा गोल भी चड़ा दिया। सब  
दिक् मुड़, निर्मिमेध नयन हो ताकते रह गये।

परन्तु मरना क्या न करता। बुझने से पहिले छोटा सा  
दुःख भी अपनी समग्र जीवन शक्ति खचित कर एकवार  
दिम टटा उठता है। कैरप के फास्ते तो उड़ गये थ परन्तु  
उसने जोर मांगा। हमारी समग्र हीम सिहर उठी सब  
जगह हंशामा मच गया। दर्राकों में सजीवनी का सञ्चार  
हुवा। वास्तव पलटने की आशा होने लगी और वास्तव म  
आसार भी ऐसे ही थे। एकदमक तुलु नाद हुआ ! लो,  
वंशों जी, कैरप के फारवर्ड आये बड़े, गुरुकुल के हफयेक  
पिक्क गये, सब शंका की बाटे हैं, छोड़, वैक भी पिक्क  
गये। अरे यह क्या, अरे से शिशु का नाति गेद हमार  
जास में झूलती दिक्करी दी। बलः फिर क्या था, मौनी  
बाबाओं के मुख झूल गये, चारों ओर कानों की बहटा कर  
वेने यसा तुलु हंपनाद। आकाश पाताल एक हो गये  
समी जगह तुलु का समुद्र हिलोरे मारने लगा।

परन्तु यह सब क्षणिक सिद्ध हुआ। हमारे सामने  
शक्ति और अमरविश्रवास की जीती जागती मूर्ति उपस्थित  
थी। हमारे पीछे सेही जनों की उत्साह धर्षक मनु रमु-  
तियां थी, हल्लारे निकड भड्डां का मार्ग दिखाने वाले  
आनाय भी प्रियवून जी की उपस्थिति थी। फिर हमारे  
पल होने का क्या करण ? बड़ी-कुलपुत्रो; बड़ो-तुम्हें कौन  
रोक सफला है। हम बड़े और हतना मागे बड़े कि किसी  
की कहण ना तक न थी। फिर वही फट्टे बजने का दिल  
द्रावक शब्द ! सर्वत्र सबाटा छा गया। यह सबाटा आंधी  
से पूर्व का नहीं अपितु इमशान की विरशांति था। निशा  
वेका भीमे भीमे अपने आवरण आकाश में फैलाने लगी।  
भूलल के क्षमत्त मुर्माये चेहरो की अपने अंचल में छिपाने  
लगी। विज्जाने आज हमको फिर से विजय माला पहि-  
नाई। हमारे चेहरे आद्वितीय वीति से दमक उठे और सर्वत्र  
कुलपिता का जय जयकार कर उठे।

शांभियाने में बड़े २ अकसरों के साथ कर्मल साहिब  
येठे हुवे थे। उनके सामने मेज पर छोटे बड़े कर खंड  
हुवे थे। दांनो टीमें उनके दायें बायें क्रम बड लकी हो रईं।

कर्मल साहिब ने छोटा सा प्रवचन किया और हमारी खेल  
तथा खिलाड़ीपन की भावना की भूरी भूरी प्रशंसा की।  
अन्त में करतलध्वनि की बीच, उन्होंने विजिता गुरुकुल दल  
को १ बड़ा चांदी का कप और प्रत्येक खिलाड़ी को १-१  
छोटा चांदी का कप भी दिया और परम कृपालु प्रभु  
को धन्यवाद देते हुवे टूर्नामेंट नमस्ति की घोषणा की।

२६ दिसम्बर १९४० को गुरुकुल का विजयी दल कुल  
में पधारा। कुल वस्तुओं में मुख्य मार्गों को भ्रष्टिच्यों और  
बन्दनवारों से खूब सजाया हुआ था। चिर प्रतीका के बाद  
हमारी विजयवाहिनी ने मध्यारह कं ३ बजे कुलभूमि में  
प्रवेश किया। रंगबिरने से बरखों से सुशोभित नन्हें नन्हें  
बचके और कुलवासी इनह से गडगद हो विजयी घोषों की  
आरती उतारने लगे। कदम कदम पर कुंकुम के टीकों  
और पुष्प लालों से स्वागत किया गया। जूस मुख्य  
मार्गों में होता हुआ हाल में पहुंचा। वहां से विजयी दल  
अध्याहार करके सुसज्जित सभामण्डप में पहुंचा। सभा  
में खिलाड़ियों ने अपने अनुभव सुनाये। दुर्गुण-अनुभव  
लोगों ने विजया दल को अगली बार भी जीत कर शैम्प-  
यन होने का आशीर्वाद दिया और परम प्रभु परमात्मा  
की निस्सीम कृपा के लिये धन्यवाद दिया। सभा  
विसर्जित हो गई। अगले दिन विजय के उपलक्ष्यमें विधा-  
लय तथा सब विभाग बन्द रहे।

### गुरुकुल में चतु-यज्ञ

गुरुकुल विश्वविद्यालय कागड़ी हरिद्वार के  
'अदानन्व सेवाश्रम' में यू तो सारे साल ही आपरोशन  
होने रहते हैं परन्तु इस वर्ष २५ मार्च से आंखों के  
आपरोशनों के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया है। जिन लोगों  
ने मांतिया बिन्दु, पलक बन्दी आदि भालों के आपरोशन  
कराने हो वा कमजोर नजर के लिए चश्मे लेने हो  
उन्हें इस अवसर से लाभ उठाना चाहिये।  
इस धर्मकार्य के लिए मसूरो और देहगद्दुन के  
प्रसिद्ध नम-चिकित्सक श्रीयुत डा० बी० एस० रायक  
साहबने अपनी सेवाएं गुरुकुल अदानन्व-सेवाश्रम  
को प्रदान कर दी हैं।

रोगियों से किसी प्रकार की फीस आदि नहीं ली  
जायगी। रोगियों को अपना विस्तर साथ खाना चाहिये।  
रहने का प्रबन्ध सुफ्त होगा।

रोगियों को २२-२४ मार्च तक गुरुकुल पहुंच जाना  
चाहिये।

सुखाधिष्ठाता।

### गुरुकुल कुरुक्षेत्र

पिछने दिनों श्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के  
उपवाहन श्री पं० विश्वभरन्ध जी, राय साहेब ला०  
अमृतनाथ जी के साथ अचानक गुरुकुल में पधारे और  
प्रातः काल से सायम् काल तक गुरुकुल के प्रत्येक विभाग  
का पूरी तरह निरीक्षण किया और निम्न लिखित सम्मति  
सम्मति पुस्तक में लिख गये -

"आज मुझे राय साहेब श्री० अमृतनाथ जी के साथ



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—सार्दिन्यरत्न हारवश वदतलका

वर्ष ५ ] गुरुकुल कांगड़ी, शुकवाट ६ चैत्र १९६५; २१ मार्च १९६२ [ संख्या ५८

## अमृत प्राप्ति

( स्वा. भद्रानन्द जी के धर्मोपदेश में )

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये मंत्रिविष्टः ।  
हृदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तो य एतच्छिद्रदूरमृतास्ते भवन्ति॥

परमात्मा की खोज में बाहर घूमते हुवे कई मनुष्य-मनुष्याओं को युग बीत गये परन्तु सुख और शान्ति की प्राप्ति का उनके लिये अभी पहला दिन ही है। बुनखाने श्री गिरजापग, भरिजदं और वेदी अनेक प्रकार के भव्य भवन बनवा बनवा कर मनुष्यों के सम्प्रदायिक प्रभाव जमाने के प्रयत्न किये और उनके द्वारा पाप से जले हुवे हृदयों को शान्त करना चाहा। सामयिक उपाय कई अवस्थाओं में मनुष्यों को पोखे में डालने वाला हुआ है परन्तु अन्त में अशान्ति अधिक से अधिक बढ़ती गयी। यह क्यों ? इसलिये कि वह परमात्मा चेतन प्रकारा स्वरूप और ज्ञानमय होने के कारण जीवात्मा के बहुत ही समीप है—निकट से भी निकट है। क्योंकि जिस हृदय आकाश के अन्दर जीवात्मा विद्यमान है उसी हृदयाकाश के अन्दर जीवात्मा को भी अपना शरीर बनाये हुवे परमात्मा विद्यमान है। वे जीवात्मा के अन्दर परिपूर्ण हो रहे हैं और होना भी ऐसा ही था। क्योंकि जब प्रकृति की अपेक्षा जीवात्मा का अधिकतर निकटतम सम्बन्ध परमात्मा से है। यद्यपि अविद्यान्धकार में पड़कर इस समय हमने उस पवित्र सम्बन्ध को विरक्तुल मुलादिया है। किसी युग और किसी अवस्था में भी जीवात्मा का परमात्मा से यह सम्बन्ध दूर नहीं होता। यह सम्बन्ध नित्य है। इसको तोड़ने की शक्ति किसी में भी नहीं है। फिर हम लोग कैसे मूर्ख हैं जो परमात्मा को खोज करने के लिये बाहर भटकते फिरते हैं जबकि वह हृदय का स्वामी सदा हमारे संग संग है। जिसके दर्शन हम हर समय बिना हिले जुले ही कर सकते हैं। उसके दर्शनों की इच्छा में जंगलों और निजन प्रदेशों में यदि भटकते फिरें तो हम सा मूर्ख कौन हो सकते हैं। और सामारिक कठिन से कठिन कष्ट भी हमें इस लिये सताते हैं कि हम अपने अलसी सम्बन्ध को समझ नहीं

रहे हैं। परमेश्वर की लोत्र और मुक्ति की प्राप्ति की प्रबल इच्छा रखते हुवे भी मनुष्य अपने मन के अन्दर बुरे से बुरे भाव उठाते हैं। जिसकी व्यक्ति किसी समय उनके बाह्य कर्मों के अन्दर भी हो जाती है। उसका कारण क्या है ? क्या वह हिन्दू यात्री जो तीर्थों के अन्दर भी व्यवचार, पोखा और छल से हटता नहीं, मुक्ति का अभिलाषी नहीं ? क्या वह दीनदार सुसहमान जिसका मस्तिष्क में भी नमाज के समय दूसरे की जूती की ओर ध्यान है वास्तव में पापों से मुक्ति का अभिलाषी नहीं है ? क्या वह ईमानदार ईसाई जिसकी दृष्टि शिरछे के अन्दर भी उसके विवाह के लिये किसी नव-युवती की की तलाश कर रही है, शान्ति का अभिलाषी नहीं है ? यह सब मुक्ति के अभिलाषी हैं। परमात्मा हृदय का ईश्वर और मन का स्वामी है। जब हम लोग उसके अन्दर विद्यमान होते हुवे भी किसी का बुरा चिन्तन कर सकते हैं तो हमने परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध को नहीं समझा। इस लिये हम उसके समीप होते हुवे भी अपने आपको उससे प्रथक् समझ रहे हैं। ऐसी अवस्था में सुख और शान्ति की अभिलाषा रखना हमारे लिये व्यर्थ है। प्रिय बन्धुगण ! परमात्मा हमारे मन और हृदय का स्वामी है। वह हमारे एक संकल्प को जानता है, उससे हमारा कोई भी विचार छुपा हुआ नहीं है। जब हमें निश्चय है कि हमारे अन्दर हरेक भाव का साक्षी विद्यमान है तो फिर हमारे लिये आवश्यक है कि हम अपने अन्तःकरण को हरेक बुराई से पवित्र करें। परन्तु हम सब निर्बल हैं। इस देवासुर संग्राम का सामना होने ही अपीर हो जाते हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार के दल बादल की तरह उमड़े हुवे आते देखकर हमारे होश मारे जाते हैं। परन्तु क्या इन सबका हमारा लुच्छ हृदय सामना कर सकता है ? कदाचिन् नहीं। अपितु इस देवासुर संग्राम में भी हमको बड़ी जगदीश्वर सहायता देते हैं। जिनकी समीपता हमारे लिये उच्च आनन्द का निश्चय दिला रही है। प्रभु धन्य हैं ! उनकी सहिमा धन्य है ! हम लिये आओ; सबे मन से उन से सहायता माँगें जिससे आसुरी सेना का दमन होकर हमारे मनमें सबे सुख का प्रकाश हो।—

## रमते-राम

[ श्री श्यामी ]

कहने हैं कि घूमते हुए चक्कर पर मिट्टी नहीं चिप-कनी। "रमते-राम" भी घूमते रहते हैं। पर इन पर थोड़ी सी नुनहरी मिट्टी चिपक गई है। इस लिये अब कुछ भारी हो रहे हैं। शायद इसी लिये अब घूमना-फिरना कम होने लगा है।

X X X X

२१ फरवरी को पाण्डिचेरी में दर्शन का दिन था। सोचा कि बड़ी २ विभूतियां एकट्ठी होंगी। धूल-धाम रहेगी। चलो चलो, हम भी कुछ पुण्य सृष्ट ले। २० की रात को मद्रास से चल कर २१ ता० की सुबह वहां जा पहुँचे। सैकड़ों शायी दूर २ से आये थे। बंगाला, बुज्जराती और हिन्दुस्तानी। मैं हैरान था कि लखभर के दर्शन के लिये इतनी दूर से आने और इतना कष्ट उठाने की जरूरत? श्री अरविन्द किसी से बोसने नहीं। किसी को समीप आने देने नहीं। ओर लख भर के दर्शन के समय भी हाथ उठाकर आशीर्वाद तक नहीं देने। फिर भी लोग चलने आते हैं। सैकड़ों, हजारों। इतना रपया खर्च कर। काम-धन्या छोड़ कर। और सुलीकैने भेल कर।

लोगों में भेड़-नाल ज्यादा है। सोचना-विचारना नहीं। एक दूसरे के पीछे अन्धा-बुध्द बंधे चलने जाना। और जाल काटके, झाड़ें उल्ले धार्मिक व साम्प्रदायिक अचर्या सुनाई दे। श्री अरविन्दभयम में दर्शन के समय उपासक भीड़ होने का हमारी समझ में तो यही कारण है।

X X X X

हम भी गये और भीड़ में नफ़ेदो गये। अनेक श्री-पुरुष, हट्टे-जवान, मित्र २ श्यानी स आये हुए थे। भीड़ में कुछ बचके भी थे। प्रायः सब ही नये मूल पहने थे। साधक भी अपनी पूरी वेशा-भूषा में थे। प्रायः दर्शकों के हाथों में मालाएं अथवा गुलदमन थे। हमने भी एक मित्र से कुछ फूल मांग लिये।

पक ६ बजे बड़ी थी। हमारी बारी आने में अभी १। घंटे की देरी थी। हम बड़े २ दर्शकों व साधकों की मुल्ल-मुद्राओं का अध्ययन कर रहे थे। कुछ शान्त थे। कुछ मंत्रोत्तर थे। कुछ विनित्त थे। कुछ उन्मुक्त थे और कुछ त-पारं थे।

घीरे २ पक आगे बढ़ने लगी। न्यो २ हम समीप पहुंच रहे थे; न्यो २ हमारे हाथों के फूल गुरका रहे थे। राम का समय और सुबह के फूल। आज़िर इन कोमल पत्रियों का जीवन ही किनना।

ऊपर पहुंचे। दीप जल चुके थे। आराध्यदेव—श्री अरविन्द सामने ही आसन पर विराजमान थे। उनके चरको के समीप ही फूल-मालाओं के ढेर पड़े थे। योड़े कासने पर, एक लकड़ी की पेटी में, धन की मेट थी थी।

हमने हाथ जोड़े। प्रणम किया। आंखें मिलानी बारी। किमान नहीं हुई। कुछ देला मान हुआ माने भी

अरविन्द नराज़ हैं। वो कह रहे हैं "अब तुम अनेक बार आ चुके हो। तुमने साहित्य भी पढ़ा है। अन्वर से 'परि-वर्तन' की प्रेरणा भी है। लेकिन सांसारिक धमता को तुम नहीं छोड़ना चाहते। यदि इतना भी त्याग नहीं है तो यहां किस मुंह से चले आते हो। समझदार होकर, 'श्यामी' कहला कर, आशानियों का सा जीवन बिताते हो।"

साथ ही माला जी विराज रही थीं। आज उन्हीं का जन्म दिन है। चलने से पूर्व उन्हें प्रणम किया। उन्हीं ने बड़े प्रेम से मुस्किया दिया। मानो श्री अरविन्द की भर्त्सना उन्हींने भी सुनी। कहीं हमारे कोमल-हृदय पर आघात पहुंचा हो, उन्हींने अपने सहज हास्य से उसे 'आशा और धैर्य' की प्रेरणा में परिवर्तित कर दिया।

दर्शन करके बाहिर आया। मित्र लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरी मंत्री वशा उन्हींने देखी। इससे पूर्व कि वो कुछ पूछें मैं खुद-ब-खुद ही मुस्कियाने लगा, मानो जो कुछ देखा वह फेवल-मात्र दिशा-स्वयं था।

X X X

रात का समय था। चांदनी जिल रही थी। हम ५-६ मित्र मोटर में बैठ कर मद्रास की ओर रवाना हुए। पाण्डिचेरी से मद्रास लगभग ११० मील है। सड़क इतनी अच्छी नहीं। रात के बारह बजे हम वापिस हर आगे।

नींद का समय गुज़र जाने से मैं बिलर पर सोदना रहा। बार २ बड़ी प्रयत्न उठा "पाण्डिचेरी में क्या देखा?" दिल ने छुपे लीप से कहना कहा "क्यों नहीं तुम अपने मांग का लिख्य करते? मेने नृबिधा में कब तक पड़े रहोगे? तुमने भोग भोगें हैं। शरीरों को भी भोगते देखा है। ये चक्को तो इसी तरह चलती रहेगी। दाने आयेगे। कुछ देर चक्की में दूध-कांटेगे। फिर दो-पासों के बीच में आकर दल जायेंगे। जब तुम यह सब जानने हो तो क्यों नहीं "अनासक्ति" का निश्चय करने? त्याग से तुम्हें क्यों डर लगना है? भोग की वासना की क्यों नहीं विदा कर देने?"

मन ने दूरी ज़बान से पूछा कि "क्या कोई ऐसा उपाय नहीं जिससे भोग करने हुए भी त्यागी बन जायें?" मन अपने प्रश्न पर स्वयं इंसा। शरीर के विषयों में रमने हुए आत्म-चिन्तन असंभव है। आज और पानी का सुराना-वेर है। यहां तक कि उबलता हुआ पानी भी आज को शुभक देला है। उनमें समझौते की गुंजाहश नहीं।"

विषय की नमीरता से, सिर भारी हो रहा था। निद्रा-देवी ने हमें बेन्धुच बना दिया। हां! उठने से पहिले फिर स्वयं देखा। वही श्री अरविन्द-दर्शन। परन्तु आज भी अरविन्द प्रसन्न हैं। आंखों ने ही "साधु-साधु" कह रहे हैं। आज हम सर्व-परिधायक कर आभ्रम-वासी हो गये हैं। साधक बन चुके हैं। गुण की चरच-रज को मलक पर चढ़ाया है। विषय-भोग की नृबिधा छोड़ कर त्याग-तपस्व्य का जीवन अपनाना है।

## महात्मा हनीमैन की संसार को देन

( ले०-डा० योगेश्वर जी विद्याधर, बिनौर )

दान की महिमा अपरम्पार है। ऊँचा पहुँचने का सर्वोत्कृष्ट साधन दान ही है। भारत के विम्ब-विजयी सम्राट्-गण अपने उत्कर्ष की चरम-सीमा विम्बजित् यकों द्वारा सर्वस्व दान करने में ही समझने रहे हैं। दान की सोझी पर चढ़ने हुये ही वे स्वर्ग के सौध-शिखर पर पहुँच पाये हैं। अग्नि में सर्वस्व अर्पण करती हुई आहुति, ऊँची उठ कर व्योम-मण्डल में व्याप्त हो जाती है। दान करने के लिये जल राशि को जमा करने वाली मेघमाला, हिमालय के उच्च से उच्च शिखरों पर जा घिराजती है; परन्तु क्षारी सरिताओं का रस चूसने पर तुला हुआ सागर, सबसे नीची स्थिति पाता है। अपनी चमक दमक का दान देने वाली मणि, क्षान में उत्पन्न होकर भी राजाओं के मुकुटों में जा झगती है। पत्र, फल, पुष्पों का दान देने वाले अल्पकाय-बुद्ध पर्वतों के मस्तक पर स्थान पाने के अधिकारी हो जाते हैं।

जिन महापुरुषों ने संसार के मुल की वृद्धि करने के लिये किसी प्रकार की भी उत्तम देन संसार को समर्पित की है, संसार उनका सदा सन्मुखित आर्द्र करता चला आया है। क्या रेल, तारबर्की, रेडियो, एरोप्लेन इत्यादि उत्तमोत्तम देनों को देने वालों पुरुषों के नाम, इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णक्षरों में नहीं लिखे जाते ?

जिस महापुरुष की देन जितनी ही उत्कृष्ट होती है—संसार की मुल-वृद्धि की साधक होती है—संसार उसको अपनी ही ऊँचाई पर बैठा कर उसका उनना ही सम्मान तथा पूजन करता है। यदि भारत की जनता, महात्मा गांधी को सर्वश्रेष्ठ विभूति के रूप में मान कर उनकी अपूर्व पूजा करती है तो इस लिये कि यह उनके विचारों की देन को निज कल्याण के विषय अखिरीय समझती है।

द्विष्ट जनता, गोखामी तुलसा दास का नाम क्यों इतने आर्द्र तथा भद्रा के साथ याद करती है ? इसलिये कि उस महा-पुरुष ने उसको एक ऐसी 'म.नस' की देन दी है जिसमें ज्ञान करने पर न केवल उसके विविध तापों का ही शान्ति हो जाती है, अपितु उसका मनन-रूपी जल-पान करने पर उस के समस्त आर्यन्तर मलों का प्रक्षालन हो जाने से इसे परम सुख की प्राप्ति भी हो सकती है।

महात्मा हनीमैन ने भी संसार को एक देन दान में दी है जिसका नाम—होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली—है। होमियोपैथी की इस देन से संसार का कुछ दिन-सावन का कल्याण हो पाया है या नहीं, इसकी परख करने से पून, हमें यह जानना आवश्यक है कि हनीमैन ने यह देन किस मनो-कामना अथवा उद्देश्य से संसार को समर्पित की है।

महात्मा हनीमैन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक

"Chronio Disease के भीमिका में लिखते हैं:—

"If I did not know for what purpose I was put here on earth--to become better myself as far as possible and to make better everything around me that is within my power to improve—I should have to consider myself as looking very much in worldly prudence to make known for the common good, even before my death, an art which I alone possess, and which it is within my power to make as profitable as possible by simply keeping it secret."

"यदि मुझे यह पता न होना कि इस संसार में मुझे किस लिये भेजा गया है तो मैं उस विद्या को जो कि केवल मेरे मस्तिष्क की ही उपज है तथा जिसे गुप्त रत्नरूप में असंख्य धन-राशि का खामोस हो सकता है, अपने जीवन-काल में ही संसार पर प्रगट करता हूँ। अपने आपको सर्वथा लोक व्यवहारात्मक समझना ! परन्तु चूँकि मुझे भला प्रकार विदित है कि मुझे इस संसार में इसलिये भेजा गया है कि मैं न केवल स्वयं उत्तम बनूँ अपितु अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक पदार्थ को भी यथाशक्ति उत्तम बनाऊँ, अतः मैं इस विषय न को संसार के सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ।"

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि महात्मा हनीमैन ने होमियोपैथी की यह देन, केवल लोक-हित की कामना में प्रेरित होकर ही संसार को समर्पित की है। उसे यह निश्चय था कि उसकी इस देन को पाकर, संसार पतित से कहीं अधिक सुखी हो सकेगा, अतः उसने अपने मस्तिष्क में समाये होमियोपैथी के इस गङ्गा-प्रवाह को समस्त भूमण्डल में प्रवाहित कर दिया।

गङ्गा के विषय में तुलसी दास जी लिखते हैं:—

"गंग सकल मूढ मंगलमूला,

सब सुख करनि, हरहि सब शूला।"

क्या यही बात हनीमैन की इस देन के विषय में नहीं कही जा सकती ? क्या यह चिकित्सा प्रणाली, सब शूलों का अपहरण कर सकने के कारण सारे सुखों की लान नहीं है ? क्या इसका यह अद्भुत-मय-प्रवाह सकल मजूकों का मूल नहीं है ? क्या लाखों मनुष्य जो प्रतिदिन इसके प्रभाव से प्रीत के मूँह में बलात् खींच लिये जाते हैं, इस बात की साक्षी देने से विमुक्त हो सकते हैं कि होमियोपैथी का यह प्रवाह ही सच्चा तथा वास्तविक गङ्गा-प्रवाह है ? क्या वे जीव जो अग्र्य चिकित्सा प्रणालियों द्वारा निराशा-नदी में डुबो दिये जाने के पश्चात् भी समोपचार की इस नाव द्वारा उबार लिये जाते हैं, पुकार कर यह नहीं सुना रहे कि संसार को सब देनों में से हनीमैन की यह देन ही सर्वोत्कृष्ट देन है ?

बीरसाखाल योनियों की परम्परा में से कर्म-यश गुज्रता हवा; यह जोव, बड़ो तपस्या तथा भय से ही इस मनुष्य शरीर का प्राप्त करता है तथा इसके द्वारा ही अपने लोक तथा परलोक को सुधार पाता है। इसी

[ शेष पृ० ५ ]

# गुरुकुल

६ वैश्व शुक्रवार १९६७

## गुरुकुल का उत्सव समीप है।

आपको यह जान कर अत्यन्त हर्ष होगा कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३६ वां वार्षिकोत्सव ईस्टर की छुट्टियों में १० से १४ अप्रैल तक बड़े धूमधाम से गुरुकुल-भूमि में मनाया जायगा। इस शुभ अवसर पर सम्मिलित होने के लिये हम आप सब सज्जनों को सादर आमन्त्रित करने हैं।

गुरुकुल आर्य समाज की मन्त्र से सफल और शानदार सस्था है। गुरुकुल खोलेकर आर्य समाज ने न केवल शिक्षा-क्षेत्र में अभूत-पूर्व क्रांति की है अपितु संसार को एक सम्पूर्ण भी दिखलाया है। गुरुकुल आर्यसमाज की दामिमान भावनाओं का जीत-जामाना नबूना है। आर्य समाज के त्याग, तस्माह और धैर्य का गुरुकुल मानो एक दर्पण है जिस में आर्य जनता के ये गुण प्रतिबिम्बित देखे जा सकते हैं। प्रातः स्मरणीय स्वामी भद्रजनपद जी और आचार्य रामदेव जी इस गुरुकुल उपवन को अपने खुन और पसनों से सींच गये हैं। इनकी लगन ईई यह वाटिका सदा फलती फूलती रहेगी।

स्थापना से लेकर अब तक गुरुकुल ने शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक सफल-आश्चर्यकारी पराजण किये हैं। इस समय गुरुकुल एक छोटा-मोटा शिक्षणालय नहीं अपितु विश्व-विद्यालय का रूप धारण कर चुका है। गुरुकुल काङ्गड़ी तथा उस से सम्बद्ध सस्थाओं में लगभग दो हजार विद्यार्थी ब्रह्मचर्य पूर्वक शाखा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुल में वेद, शास्त्र, उपनिषद्, संस्कृत-साहित्य, आयुर्वेद आदि प्राचीन विषयों के इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, रसायन, पाश्चात्य-दर्शन, पाश्चात्य चिकित्सा आदि आधुनिक विषयों का भी उच्चतम शिक्षा साधुभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती है। इस समय गुरुकुल विश्व-विद्यालय भारत का सबसे बड़ा राष्ट्रीय शिक्षणालय है। यहाँ के विद्यार्थियों में भारतीय संस्कृति, समाज सेवा, स्वदेश-प्रेम आदि गुण उत्कट रूप में पाये जाते हैं। यह संस्था आर्य समाज की बड़ी गौरव और शान की वस्तु है। इसे आर्य जनता ने अपने तन, मन, धन से सींचा है। इस वाटिका को लक्ष्यता देवने की किन्तु आर्यबन्धु की इच्छा न होगी। इसकी शान आर्य जनता का शान है।

गुरुकुल को सफल बनाने का काम कबल आर्यसमाज का ही नहीं मङ्गल्य भाग्य वष का भी है। आर्यसमाज ने गुरुकुल क. स्थापना की, उलने पाला पोसा और दीवन तक पहुँचाया। भाग को आर्य ( हिन्दु ) जानि ने हृदय खोल कर इनका स्वागत किया, धन की सहृदयता दी और सबसे बड़ कर अपने गोद के लाल देश-सेवा-कार्य

के लिये दिये। गुरुकुल में ब्रह्मचारी केवल पंजाब से ही नहीं आते; पंजाब के इतिहासिक युग प्रान्त, गुजरात बड़बड़ बिहार, बंगाल, हैदराबाद, मद्रास आदि सभी प्रांतों के विद्यार्थी यहाँ प्राबद्ध होने हैं।

हर्ष का विषय है कि आपके प्रिय उली गुरुकुल का वार्षिक महोत्सव लम्बा प्रतीक्षा के बाद पुनः आ रहा है। आपकी यह गुरुकुलोत्सव यात्रा सच्चे अर्थों में तीर्थ यात्रा होगी। गुरुकुल के समान सच्चा तीर्थ आर्य-कुल इस भारत में कौन सा है? आधुनिक तीर्थ तो अब यथाथ तीर्थ नहीं रहे हैं। हिमालय की उपायका के सघन रमणीय वनों से घिरे हुए गंगा के पवित्र तट पर वेदध्यान से पूर्ण गुरुकुल के विद्युत् वातावरण में आर्य समाज के उच्चतम कोर्ट के विद्वानों और महामात्रों के संसर्ग से बड़ कर प्रान्द की बीज इस संसार में और क्या हो सकती है? 'सन्त-समागम' और 'हरिकथा' दोनों आयन दुर्लभ वस्तुयें यहाँ पर आपको एक स्थान पर मिलेंगी। इस लिये आपसे सप्रद निवेदन है कि आप इस अवसर को न चूकिये और अपने पुत्र-कन्य, बन्धु-बान्धव, इष्ट-मित्रों के साथ नियत तिथि को गुरुकुल अग्रदश पहुँचिये। गुरुकुल में आपके उठरने का, खान-ध्यान तथा खान पान आदि सभी बातों का समुचित सुप्रबन्ध रहेगा और आपको किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा ध्यान रखा जायगा।

अन्य में जनता को हमारा पुनः सादर निमन्त्रण है कि यह अधिक से अधिक संख्या में गुरुकुलोत्सव में सम्मिलित होकर जहाँ इस उत्सव को सफल बनायेगी यहाँ गुरुकुल को उन्नति के लिये भी सक्रिय परामर्श देकर हम अनुग्रहीत करेगी।

गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी में

श्री डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर का

दीनान्त अभिभाषण

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३६ वां वार्षिक-उत्सव ईस्टर की छुट्टियों में १०, ११, १२, १३ तथा १४ अप्रैल को मनाया जायगा। इस वर्ष दीनान्त अभिभाषण श्री डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर देगे। —सत्यव्रत

मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

प्रेमी पाठकों व ग्राहकों से---

'गुरुकुल' के अनुरागी पाठकों की सेवा में हम पहिले भी दो बार निवेदन कर चुके हैं कि जिनमें से १९६७ का पत्र का वार्षिक खन्दा २॥ अभी तक नहीं भेजा है वे शीघ्र ही भेजदें-किन्तु कई महादुःखीय का बन्दा हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। कृपया वे महादुःखीय शीघ्र हमें सूचना को पढ़ने ही अपने कर्तव्य का स्मरण करते हुए सभी आर्य से २॥ भेजदें। क्योंकि हिन्दी वर्ष समाप्त होने में अब कुछ ही दिन शेष हैं। हमें पूरी आशा है कि हमारे उद्धार-पाठक इस सूचना पर पूरा २ ध्यान देकर अब किसी प्रकार का प्रमाद न करेंगे। —सम्पादक



[ पृ० ३ का शेष ]

लिये महाकवि कालिदास कहते हैं "शरीरमाद्य लघु धम्मं साधनम् ॥" इस मनुष्य-शरीर के विषय में गोस्वामी तुलसी दास जी लिखते हैं:—

"बड़े भाव्य मनुष्य तनु पावा,

सुरनुर्मम सब प्रपट्टि ग या

साधन-धाम, मोक्षक हाग,

भय सागर सन तारन हाग ॥"

ऐसा मनुष्य शरीर, क्या परमात्मा की सब देनों में सर्वोत्कृष्ट देन नहीं है? क्या इस शरीर-रूपी मशीन के ठीक प्रकार से चालू रहने पर मनुष्य, संसार की अग्र्य सब देनों को प्राप्त करने तथा अपने जीवन के लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ नहीं हो सकता?

परन्तु, उसमें थोड़ा सा भी बिगाड़ आजाते पर, क्या यह संसार की सब देनों से वञ्चित नहीं रह जाता? एक धनी पुरुष, जिसे संसार की सर्व प्रकार की उत्सोक्तम देने, जैसे मोटरकार, रेडियो, स्क्वम्बल, बहुरस - भोजन, भव्य भवन तथा मनोरम उद्यान इत्यादि २ सभी प्राप्त हो; परन्तु जिसका स्वास्थ्य बिगाड़ चुका हो, वह हा सब देनों से क्या लाभ उठा सकता है? क्या ये सब सामग्रियाँ उसे तनिक भी सुखी कर सकती हैं? क्या ये सब देन, उमरे, और भी अधिक सुखाने वाली नहीं हो जानी!

संसार की ये सब सुन्दर देन, उमरे सुखी करने में तभी समर्थ हो सकती हैं जबकि पहले उसे वह देन प्राप्त हो जाय जो उसकी बिगाड़ी मशीन को ठीक २ सुधार दे।

मनुष्य शरीर रूपी मशीनों को सुधारने का काम भिन्न २ चिकित्सा-प्रणालियाँ करनी चलीं आयी हैं तथा आज भी कर रही हैं। जिस प्रकार मनुष्यों को, परम-कल्याण का मार्ग; प्रदर्शन करने के लिये ज्ञानमार्ग, कर्म-मार्ग तथा धर्मिक मार्ग के उपासक यत्न-नत्र-सर्वत्र मिलते रहते हैं; उसी प्रकार रोगियों को रोग-पाश से मुक्त करने के लिये, एलोपैथी, होमियोपैथी, वैद्यक, यूनानी, बिसराधी इत्यादि अनेक चिकित्सा प्रणालियों के चिकित्सक, जहाँ तहाँ ३पनी २ दूकान जमाये बैठे दिखाया देते हैं। ऐसी अवस्था में—मनुष्य को, जिस प्रकार यह निर्णय करना महकठिन हो जाता है कि उक्त मार्गों में से किसका अवलम्बन करने पर उसका परम कल्याण हो सकता है, उसी प्रकार उसे यह पता लगाना भी अत्यन्त दुष्कर हो जाता है कि इन भिन्न २ चिकित्सा-प्रणालियों में से कौन सी चिकित्सा प्रणाली ऐसा है जिसके द्वारा चिकित्सा कर ने पर उसकी बिगाड़ी मशीन, शीघ्र से शीघ्र पूर्वतया दुरुस्त होकर अपने लक्ष्य की ओर बलवत्ते अग्रसर हो सकती है।

परन्तु, परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि-रूपा सारथी की एक ऐसी देन दी है जो उसे दुस्तर से दुस्तर मार्गों में से भी निकाल ले जानी है। जिस प्रकार मनुष्य, इन सारथी की सहायता से अपने कल्याण मार्ग का निश्चय कर लेता है उसी प्रकार उस

बुद्धि-रूपी सारथी की सहायता से वह यह भी पता लगा सकता है कि किस कारणोंमें उसकी बिगाड़ी मशीन सही २ दुरुस्त हो सकती है। बुद्धि-पूर्वक, थोड़ा सी जांच पड़ताल करने पर भा उमरे पता चल सकता है कि किन कारणोंने में ऊपर से लीया-पोंती करके भग्नूर धाजं कर लिया जाता है तथा किसमें कम कीमत पर ही मशीन के आन्धन्तर मल्लों तक का परिशोधन करके उमरे वाक्यायवा फ़िट कर दिया जाता है।

मनुष्य, जहाँ अग्र्य सब चिकित्सा प्रणालियों की परख करने रहते हैं, क्या कारण है कि वे वहाँ होमियोपैथी की परीक्षा करने से भी विनूब रहें? क्या उनका यह कसंय्य नहीं वे इस नवीन कारखाने की भी पूरी २ परख करें? बहुत सम्भव है कि जांच पड़ताल करने पर उनके लिये होमियोपैथी का कारखाना हा सर्वोत्कृष्ट साबित हा। यदि वाग २ परीक्षा करने पर उमरे यह दृढ़ निश्चय हो जाय कि भक्ति-मार्ग का समान होमियोपैथी ही उनका सबसे अधिक दिन साधन कर सकती है तो फिर उसके कारखाने को ही सदा के लिये अपने नाम में उमरे क्या नमंकोच हो सकता है।

भिन्न २ चिकित्सा-प्रणालियों की तुलनात्मक समीक्षा करने वाली इस लेखमाला के अध्ययन से विद्व-पाठकों को यह निश्चय हुवे बिना नहीं रह सकता कि होमियोपैथी ही ऐसी सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा-प्रणाली है जो हमारी शरीर-रूपी मशीन के आन्धन्तर मल्लों तक का अपनी सुक्ष्म तथा शुष्ककारी शौकधियों द्वारा पूर्ण परिष्कार करके, इमे इस योग्य बना सकती है कि यह फिर बिना किसी लब्-लदादक के अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती ही चली जाय। तुलसीदास जी लिखते हैं:—

"अम भगति जल बिनु रतुगई,

आय्यनर मल कबहुं न जाई ॥"

जिन प्रकार मनुष्य के आन्धन्तर मल, बिना भक्ति-जल के नहीं जा सकते, उसी प्रकार बुद्धिन्तन की आंच से उत्पन्न होने वाले मानसिक रोग-रूपी आन्धन्तर मल, बिना सुक्ष्म-रूप दिव्योपधियों की भाफ के कैसे जा सकते हैं?

क्या धुआँ देने वाली बलियों से, अंधकार का नाश भली प्रकार हो सकता है? क्या वे छोड़े हुवे काजल के कारण अंधकार की और भी सहायक नहीं बन जाती? तुलसी दास जी कहते हैं:—

"राम-भगति चिन्तामेय सुन्दर,

बसइ विमल जाकर उर अन्दर।

करत प्रकाश विशद दिन रातो,

नहि कुञ्ज चाहिये दिया घृत बाती ॥

क्या इस प्रकार की भक्ति-रूपा चिन्तामणि के समान, हमें कोई ऐसी चिकित्सा प्रणाली प्राप्त नहीं है, जो स्वयं विशुद्ध-रूप होती हुई तथा बाह्याहङ्गय की अपेक्षा अपने बिना, अपने दिव्य-गुणों से ही रोग-रूपी अंधकार का सर्वथा विनाश करके हमारे हृदयों को सुख के प्रकाश से पूर्णतया चमकन कर सके? क्या होमियोपैथी का रक्ष-प्रदोष यह कार्य नहीं कर रहा है? क्या उसका स्वरूप

पङ्क-कलङ्क विहीन होना हुआ पूर्ण-विशुद्ध नहीं होता ? क्या उसे किसी बाह्याङ्ग-वर्ण की आवश्यकता होती है ? क्या वह सदा लोकोद्दिष्ट में निरत नहीं रहता ? जिस प्रकार,

“राम-मगनि-मणि उर बस जाके  
दुःख लखनेश न सपनेहु ताके ॥”

होता है, उसी प्रकार होमियोपैथी मण्डि-दीप से प्रकाशित अन्तःकरण में किसी प्रकार के भी रोग-जन्य दुःख का लक्षण ही नहीं रह सकता। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह सिवाय होमियोपैथी के मण्डि-दीप के अन्य किसी प्रकार के भी प्रदीप को कदापि व्यवहार में न लाये। जिस प्रकार तुलसीदास जी राम चरित मानस के पठकों से यह श्रीलक्षण करने हैं कि:—

“राम नाम मणि दीपधर, जीम देहरी डार

तुलसी, भीतर बाहेरहु जो साहसि उजियार ॥”

उसी प्रकार क्या, इस लेखमाला के योग्य पाठकों ने हमारी यह सातुरोध-प्रार्थना उचित न होगी कि वे भी यदि अपनी शरीर-रूपी मशीन को, वायु तथा आभ्यन्तर मसलों से मुक्त कराना चाहते हैं तो उन्हें भी अपनी जीम पर सिवाय होमियोपैथी की मनुष्य दिव्योपधियों के अन्य कोई कृतिक औपधि कदापि धारण नहीं करनी चाहिये ? हमारी इस अपील को अङ्गीकार करने वाले योग्य पाठकों को हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उनको परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट देन मनुष्य शरीर रूपा मशीन, जब कभी भी भाग्यवश बिगड़ जाया करेगी तो वह महत्त्वाद् हीमैन की इस उत्कृष्ट देन की सहायता से शीघ्र इस प्रकार सुगमता से सुधर भी जाया करेगी कि वह उनको संसार की सब देनों का पुरुषोत्तम उपभोग करानी हुयी, उनको जीवन के लक्ष्य का और बढ़ाती ही चली जावेगी।

क्या परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट देन का इस प्रकार सर्वोत्कृष्ट सुधार करने वाली होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली की देन, संसार की सर्वोत्कृष्ट देन कहलाने की अधिकारिणी नहीं है ?

क्या ऐसी अद्वितीय देन को देने हारा महापुरुष विश्व का अभिनन्दनीय नहीं है ?

“वदनं प्रसाद-सद्वनं, सदयं हृदयं, सुधासुचोवान् ।

करणं परोपकरणं येषां—केषां न ते वन्द्याः ॥”

जो अपने जीवन के प्रारम्भ-काल से ही दुःखितों को प्रसन्न-वदन करने में लगा रहा हो, जिसका हृदय दूसरों के परिताप से ही द्रवित होता रहा हो, जिसने न केवल अपने परम कल्याण-कारिणी बाणी द्वारा अपितु मनुष्य महीषयों की सुधाधार द्वारा भी दूसरों का दुःख दूर करने में ही अपनी समस्त जीवन समर्पण कर दिया हो, वंसा परोपकारक व्रत, संसार-हित-साधक, महापुरुष किसका वन्दनीय नहीं होगा ?

पाठक दुन्द ! आइये, हम सब भी मिलकर, ऐसे शिव-स्वरूप पुरुष का अभिनन्दन तथा अय-त्रय-कार करके अपनी वाणों को हन-कृत्य करें। (समाप्त)

## स्नान और स्वास्थ्य रत्ना

( किराज गद्युद्ध “साधनीयः” प्राकृतिक चिकित्सा-गुरुकुल कांगड़ी )

ज्ञान का स्वास्थ्य मे श्रेष्ठ सम्बन्ध है। यदि यह कह दिया जाय कि स्वास्थ्यरक्षा का मूल साधन ही ज्ञान है तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि प्रत्यक्ष देखने में आया है, कि जो पुरुष नियमित रूप से प्रतिदिन ज्ञान करते हैं, वह सदैव प्रसन्न चित्त, और आरोग्य नये २ रोगों व निराशा, निरासाह आलस्यवादि दोषों से मुक्त और शारीरिक व मानसिक कार्य करने में चुस्त रहते हैं। उनके मुकुमण्डल पर कान्ति और मस्तिष्क में शान्ति निवास करती है, शरीर विद्युत्-तन्त्र चमकता रहता है। इसके विपरीत जो ज्ञान से काले नाग की तरह डरते रहते हैं और कदापि ज्ञान नहीं करने या नाममात्र को ऊपर पानी डाल कर भ्रष्ट उठ जाने को ही ज्ञान समझते हैं वह सदैव विविध व्याधियों में प्रसिन्न रहते हैं। कभी स्त्रि में दूब, कभी जुकाम, उबर, सर्दी, सन्निपात, दमा, खांसी की शिकायत, कभी बद्धजमी, कब्ज का आक्रमण आदि २। अस्तु क्योंकि हम केवल तनू और मूत्र से ही स्वास्थ्य नहीं लेते, अपितु हमारे शरीर में जो करोड़ों रोम खिद्र हैं, इनके द्वारा भी स्वास्थ्य लेते हैं। जो स्नान न करने अथवा नाम मात्र का ज्ञान करने से मल मे रुक जाते हैं। और शुद्ध वायु का प्रवेश यथावश्यकता हमारे शरीर के अन्तर नहीं होता। परिणाम स्वरूप हमारे शरीर के प्रधान आवश्यक फेरुडे शुद्ध वायु के अभाव में कमजोर हो जाते हैं।

बस फिर बनते हैं हम उपरोक्त रोगों तथा उन से भी भयङ्कर सुय, शोथ, सन्निपात, संभ्रवी, उन्मादादि के शिकार और घूमने लगते हैं। पागलों की तरह यत्न-तन्त्र अपने भाग्य व ईश्वर को कोसने हुए, कि हाथ हमारे भाग्य में ऐसा ही लिखा था, ओ पाप, ईश्वर; तूने हमारे साथ यह अन्याय क्यों किया, जिससे कि हमें यह दुःख देवने का नसीब हुआ आदि २।

पाठकगण, तनिक धैर्य से विचार कीजिए कि इसने आप का भाग्य तथा ईश्वर का कौनसा अपराध है। अ पतु यह सब आप का ही अपराध है क्योंकि आपने ज्ञान न करके उस अमृत ( जल ) से अपने शरीर को वञ्चित रक्खा है, जिस जल के अन्तर भयङ्कर से भयङ्कर रोगों को समूल नष्ट करने की औषध-शक्ति पर्याप्त मात्रा में व्याप्त है। देखिए हमारे धर्म ग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान वेद में भी लिखा है।

अमृतान्तरमृतममृत भेजाम्। अथर्व १।४।४

अथ— (अमृत व्रतः) जलों के बीच में (अमृतम्) अमृत औषध, रोग नाशक सामर्थ्य है।

अमृत विधानि भेजजा। अथर्व १०।६

अथ— (अमृत) जलों में (विश्वानि) सब (भेजजा) द्वापर्यायों हैं।

उपरोक्त वेद मन्त्रों के मात्रानुसार ही जल चिकित्सा के आविष्कर्ता जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टर लूरे कूने ने अनेक

प्रयोगों की आशंका कर वह लिखित किया है कि प्रत्येक रोग के लिये सबसे उत्तम ज्ञान (जल) चिकित्सा है। इस विषय पर उसने जो कुछ लिखा है लोगों ने उसे इतना पसन्द किया है कि अनेक भाषाओं में उसके अनुवाद हो चुके हैं। भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद हुए हैं। लूई कूने का मत है कि मेदा ही सर्व रोगों की ऊँड़ है। मेदे में जब गर्मी होती है तब शरीर के बाह्य अङ्ग में छोड़े कुंसी आदि निकलते हैं या गर्मी बाहर आकर सारे शरीर को गर्मी पहुँचाने लगती है। अतः मेदे की गर्मी संसने ठंडे पदुचाने से ही मिटती है, इसी से उसने इस प्रकार ठंडे जल से स्नान करना बताया है जिस से मेदे के समीप भागों को ठंडे पहुँचे। इस ज्ञान के लिये उसने विशेष प्रकार का दीन का टब बनाया है। परन्तु इसके बिना भी काम चल सकता है। पुरुष, स्त्री के मित्र २ कद के अनुसार ३६ इञ्च के या इस से छोटे बड़े दीन के टब कुछ लम्बाई लिए गोल से बाजारों में बिकने हैं वह ३० लूई कूने कथिन ज्ञान के लिए अच्छे हैं। ३० लूई कूने का कथन है कि हम टब का तीन चौथाई भाग जल से भर देना चाहिये, रोगी को इस प्रकार बैठना चाहिए कि उस के पैर, क्रीर धड़ जल से बाहिर रहे। नाभि से लेकर जर्घ्यो तक भाग ही जल के अन्दर रहे। पैर किसी पीड़े, या पट्टे पर रख दिये जायें तो अच्छा हो। रोगी बिलकुल नम्र जल में बैठे। लेकिन यह ज्ञान ऐसी कोठरी में करना चाहिए जहाँ प्रकाश, वायु, तथा धूप आती हो। जल में बैठ कर रोगी को किसी छोटे छुदरे पर जल से जब के अन्दर अपना पैरू-धोरे २ मलना चाहिए या अन्य से मलना चाहिए। इस प्रकार यह ज्ञान पसे ३० मिनट या इससे भी अधिक समय तक किया जा सकता है। प्रायः इससे तुरन्त ही प्रभाव होने देखा गया है। यदि रोगी को बादी हुई तो तुरन्त वायु सरने लगती है या उकाने आने लगती हैं। उत्र हुआ तो ज्ञान के पांच मिनट बाद ही थर्मामीटर का पारा एक दो या अधिक डिग्री नीचे उतर जाता है। इसने दस साफ हो जाना है। धने मनुष्य को थकान आती रहती है। जिन्हे बिलकुल नींद नहीं आती उनका मस्तिष्क शान्त पड़ जाता है, क्रीर नींद आजाती है। जिन्हे नींद आधिक आती है वे जगने लग जाते हैं, तथा उनमें चैनम्यना आ जाती है। बहुत पुराना अंश भी ज्ञान तथा आहारदि के उपचार से नष्ट हो सकता है। यदि किसी को बार २ धुकने का अभ्यास हो तो उमे यह ज्ञान करना चाहिए। प्रारम्भ करने ही बड़ा लाभ होगा। इससे भिन्न मनुष्य भी बलवान हो जाते हैं। इससे अनेकों का लपिबाव (गठिया) भी अच्छा हो गया है। एक भाव के लिए यह बड़ा लाभकारी है। इससे रक्तविकार भी दूर हो जाता है। सिर की पीड़ा में कोई स्नान करे तो तुरन्त लाभ होगा। अग्नादाद रोगों पर भी इसका अच्छा प्रभाव प्रगट हुआ है। कठने का अभिप्राय यह है कि ऐसा कोई भी रोग नहीं जिस परस्नान (जल चिकित्सा) का अच्छा प्रभाव न देखा गया हो। अतः यदि आप भी रोग, शीतल, डायूट, शैर्षों के प्रपञ्च से बचकर स्वस्थ जीवन

संसीत करने की इच्छा रखते हों, तो नियम अति प्रायः मदीय शीलत जल से स्नान किया करें।

## उप-नयन

उत्सं भुवन का उप नयन, जिसका सकल परिवार दीक्षित, आज मानो हो रही दीक्षा स्वयं साकार दीक्षित। यह का यजमान वह, जो यह मधि आचार्य दीक्षित, आज मानों जा रही होने स्वयं संस्कृति सुसंस्कृत ॥ फूल की माला न वह, पाकर जिसे मन फूल जाये और अपने आप को भी मोह मद में भूल जाये। नाम है उपर्वात इसका, खुब खुल पुनीन इसका वेद भी गाने सनातन से रहे हैं गीत इसका ॥ बन्धनों में डालकर यह बन्धनों से मुक्त करना यह-शिशु इसका निरीक्षण प्राय कर दिन दिन उभरता। चिन्ह शिव संकल्प का, अध्यात्म का मृङ्गार है यह, यह प्रय जीवन भुवन का दिव्य बन्धन धार है यह ॥ अज्ञ में बस अज्ञ-रंज, न और कोई अज्ञ कर में; दिग्विजय का नाद फिर भी गुंजित है विश्व भर में ॥

— जो आचार्य प्रवाद पम० प०

## गुरुकुल समाचार

पतञ्जलि के पद्वत्त बसन्तनागमन के कारण कुलभूमि के वृक्ष नये २ पत्तों से लद गए हैं, यहाँ की यात्रिकाओं के आभूषणों पर मत्तवर्ष की अनेका अधिक मीर आये हैं। आशा है मौसम के आने पर इन वृक्षों पर पर्याप्त फल लगने और इस प्रकार ब्रह्मचारियों को प्रचुर मात्रा में फल दिये जा सकेंगे।

महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की वार्षिक परीक्षा समाप्त होने वाली है और सब उत्सव की तैयारी में लग गये हैं। छोटे ब्रह्मचारियों की परीक्षा उत्सव से १० दिन पूर्व प्रारम्भ होगी। इस बार का बधिकोत्सव कई कारणों से विशेष महत्त्व का होगा इस कारण उसकी प्रतीक्षा उत्सुकता पूर्वक की जा रही है।

श्री आचार्य अमरदेव जीगत १४ मार्च को गुरुकुल पहुँच गये हैं और सारा कार्य आर संभाल लिया है।

वार्षिकोत्सव के सबसर पर संरक्षकों की एक बड़ी संख्या यहाँ आती है, जो संरक्षक किसी कारणवश उस समय न पधार सकते हों वे अपने बलकों की फोटो असेकार चित्र-शाला गुरुकुल कमांड्री, से भंगवा सकते हैं।

## स्वास्थ्य समाचार

अन्धकेतु ४ अंशों सेल्सियस, ब्रजलाल १ अंशों चोट, कर्मवीर ३ अंशों चोट, रामकृष्ण ३ अंशों चोट, कीरेन्द्र ३ अंशों कास, अयोध्याका १ अंशों कर्णशूल, गोविन्द ४ अंशों नेत्र रोग, विजय कुमार १४ अंशों शी चेषक।

गत सप्ताह उपरोक्त ३० रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं।

## सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी धातु क्षीणता पुरानी खांसा, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शीघ्र से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव (१०) आध मेर (२०) १ सेर (४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियों से तैयार की गई ये गोलियां सब प्रकार की कमजोरियों में अक्सर हैं। शीघ्र और धातु को पुष्ट करता है।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजांत और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों का अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ॥१) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ॥२) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियां बेच रहे हैं। इसलिए दवा खरीदते समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

भाँच { देहली—चांदनी चौक।  
मेरठ—मिर्जापुर रोड।

पैकिंग { लखनऊ—गर्जनी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।  
लाहौर— " " " हस्पताल रोड।  
पटना— " " " मल्लुआटोली बाँकीपुर।  
अजमेर— " " " वैद्यराज सरदारनाल जी कपूर चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी जिलासहानपुर**

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मूल-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १६ चैत्र १९६७; २८ मार्च १९५१

[ संख्या ३६ ]

## गुरुकुल विरवविद्यालय कांगड़ी का ३६ वां वार्षिकोत्सव आगया

आर्य जनता को यह जान कर अपार हर्ष होगा कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३६ वां वार्षिकोत्सव १० से १४ अप्रैल तक बड़े समारोह के साथ गुरुकुल भूमि में मनाया जायगा। इस पुनीन अवसर पर पधारने के लिए आप को हमारा सप्रभय-साग्रह निमन्त्रण है। आइये, अपने पुत्र-कलत्र, बन्धु-बान्धव, दृष्ट मित्रों समेत इस शांतिधाम में 'पर्याप्त' कीजिए। ब्रह्म और भक्ति के साथ ज्ञान गङ्गा में गोसा लगाइये। उपदेशावृत का पान करके लक्ष्मण अमरत्व को प्राप्त कीजिए। वीतराग-महात्माओं के दिव्य-बचनों से अपने जीवन को सफल और प्रकाशमान बनाइये। पवित्र एवं हृदयहारी संगीत-सुधारस से अपनी अन्तरात्मा को उल्लसित कीजिए। इस दुर्लभ अवसर को न चूकिए और गुरुकुल चलने के लिए आज ही ले तैयारी प्रारम्भ कर दीजिए।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का वार्षिकोत्सव न सिर्फ आर्यसमाज का सब से बड़ा मेला है अपितु इस अवसर पर देश की तात्कालिक राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर भी गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाता है। बड़े २ प्रतिष्ठित महात्माओं और नेताओं के संलग्न से जनता भरपूर लाभ उठानी है। अनेक आर्यसमाजे अपन आगामी वर्ष का प्रोग्राम यहाँ के उत्सव पर ही निरधारित करती हैं। यहाँ के उत्सव पर आने वाले सभी महात्मावृ, उत्सव के पश्चात् आध्यात्मिक भावनाओं की बहुमूल्य सर्वाप्त लेकर लौटने हैं। आप भी आइये और इन वार्षिक समारोह का अधिक से अधिक लाभ उठाइये। अपने आगामी वर्ष को अधिक सक्रिय, अधिक उत्साह पूर्वक और विर-धरणीय बनाइये। अब विश्वम्भ न कीजिए, शीघ्र ही गुरुकुल चलने का तैयारी कीजिए।— आप के यहाँ आने पर ठहरने का, ज्ञान-ध्यान, ज्ञान-पान आदि सभी बातों का सुचित सुप्रबन्ध रहेगा और आपको किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा प्रयत्न किया जायगा।

प्राचीन ऋषियों की इस तपोभूमि में, गंगा के पवित्र तट पर हिमालय के आञ्जल में स्थित, गुरुकुल की इस पुण्य-भूमि में पधारने पर आप के मानसिक कष्ट स्वयमेव दूर हो जायेंगे और आपका अन्तरात्मा निस्सन्देह प्रफुल्लित हो उठेगा। यहाँ आकर आप अमर-शहीद भी स्वाभ्रदानम्बजी महाराज द्वारा लगाई हुई, श्री आचार्य रामदेव जो द्वारा परिपालित इस गुरुकुल घाटिका को नहलवाता हुआ देखेंगे। यहाँ आकर ज्ञान का उद्देश्य सफल कीजिए। गुरुकुल के पवित्र वातावरण में ऊँची आध्यात्मिक भावनाओं को उद्बुद्ध कीजिए। सायम्नातः ब्रह्मचारियों के वेद-भ्रमों की ध्वनि से कर्ण-कुहरो को पवित्र कीजिए। अपने जन्म दिन से ही गुरुकुल सब विश्वाओं में निरन्तर उन्नति करता चला आ रहा है। आर्य जनता की लगन, तपस्या और उत्साह को आप यहाँ मूर्तरूप में देखेंगे। गुरुकुल का वर्तमान अधिकारी वर्ग, किस तत्परता से इसके उत्थान के लिए प्रयत्नशील है यह भी आप यहाँ आकर भला भाँति देख सकेंगे। इस उत्सव को रोचक और शानदार बनाने का पूरा-पूरा यत्न यहाँ के कार्यकर्ता कर रहे हैं। हमें आशा है आर्य जनता पूरी तैयारी के साथ इस अवसर पर पधारना और बड़े उमङ्ग और उल्लास पूर्वक अपने तन, मन, धन से उत्सव को सफल बनाने में सक्रिय सहयोग देगी।

इसवार का उत्सव अनेक कारणों से तथा अनेक सम्मेलनों की आयोजना से ज्ञान महत्त्व का होगा इस लिये आर्य जनता का कर्त्तव्य है कि वह भारा संख्या में एकत्र होकर पूरा लाभ उठायेगी कार्य कर्ताओं का उत्साह बढ़ायेंगी।

### ११ अप्रैल को—

११ अप्रैल को विश्वकाय भी रवीन्द्रनाथ टैगोर का दीनान्त अभिभाषण होगा। इस अवसर पर विश्व-भारती (मानि निकेतन) के आचार्य दिति मोहन सेन भी पधार रहे हैं। प्रत्येक दृष्टि से उत्सव को सफल बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। पत्र-पत्र में प्रति वर्ष की तरह इस वर्ष भी लाऊड-सर्कार का प्रबन्ध किया जा रहा है। अन्त में आप सब महात्मावृओं को हम रा सादर-साग्रह निमन्त्रण है कि इस महोत्सव पर अधिक से अधिक संख्या में एकत्र हों। —०—०—०—

## भारत में प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली

(ले० प्रो० धारोग्य जी विश्वनाथ, साहित्यशास्त्रार्थ)

शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक विकास कर उन्में उच्चम नागरिक बनाना है। यदि भारत में प्रचलित वर्तमान सरकारी-शिक्षा-प्रणाली को जांच इस दृष्टिकोण से की जाए तो अत्यन्त निराशा होगी है। इस प्रणाली के प्रति निरन्तर बढ़ता हुआ असन्तोष अधिक दबाया नहीं जा सकता। किन्तु ही प्रान्तों में इसके दोषों पर विचार करने तथा इस के उपायों का निर्देश करने के लिए कमीशन बनाए गए और उन्होंने अपने पामादेश पेश भी किए परन्तु अभी तक कुछ फल निकलना नहीं पाया। बत यह है कि शिक्षा के कुछ मुख्य सिद्धान्त हैं, जब तक उनका अनुसरण नहीं किया जाएगा सफलता न होगी। मैकाले महाशय ने काले अग्रज उपलब्ध करने के लिए इस मैशान का निर्माण किया था। इस में कुछ समय तक सूबे कार्य किया। परन्तु अब यह चिस चुका है। दूसरी ओर भारत-वासी भी अब जाग गए हैं। फलतः काले अग्रज बनने के लिए उनकी धुन काफी हद तक हट चुकी है। ऐसी दशा में इस शिक्षा प्रणाली का असफल होजाना बिलकुल स्थानाधिक ही था।

अपने, लगभग १०० वर्ष के जीवन काल में इस शिक्षा प्रणाली ने जो कल हमें दिया है वह अत्यन्त कटु है। यूरोप में शारीरिक विकास को शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्ग समझा जाता है किन्तु आज भारतीय शिक्षा में स्वाभ्य रक्षा तथा शारीरिक उन्नति के लिए कोई स्थान नहीं है। शिक्षालय प्रायः शहरी की घनी छायादी के बीच में बनाए जते हैं जहां का दूषित वातावरण विद्यार्थी के शरीर तथा मन दोनों को अस्वस्थ करता रहत है। यूरोप में जहां प्रत्येक विद्यार्थी बाधित रूप से खेलों में भाग लेता है। उन्में र्विक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है, वहां भारत में विद्यार्थी के लिए इस प्रकार का कोई नियम नहीं है। गण्डे, अण्डेरे अस्वस्थ घरों में निवास, अपुष्टिकारक अपर्याप्त भोजन, कुसृष्टि, नियले दर्जे के कल-विनय और उत्स पर पढ़े ई लिखाई का अनावश्यक भारी बोझ, विद्यार्थियों के शरीर को पनपने नहीं देने, बचपन से ही वे असाध्य रोगों से शिकार होने लगते हैं। दुबला पतला शरीर आँसू पर मेनक, बरतजमी या बवासीर ये एक विद्यार्थी के आवश्यक चिह्न हैं। मनलब यह है कि विद्यार्थी उनना ज्ञान उपर्जन नहीं करता जितना रोग।

केवल पुस्तकें पढ़ा देने मात्र से ही यहां शिक्षकों के कर्तव्य ही इतनी ही होजती है। बालकों को बुरी आदतों से बचा कर उन्हें सदाचारी बनाने की ओर किसी का ध्यान नहीं जत। कोई ई शिक्षक तो उन्हें उन्नत दुदाचार की शिक्षा देने में भी नहीं लूकते।

घरों में माना या तो प्रायः अशिक्षित ही होती है। यदि कुछ शिक्षित ही हूँ तो उसे यह कार्य से ही कुसं

नहीं मिलती, जिससे कि यह बच्चे की ओर ध्यान दे सके। इस प्रकार की उपेक्षा से बच्चे का चरित्र विगड़ता ही चला जाता है। किसी र गरीब बालक को विद्यालय से लांड कर घर के कार्यों में सहायता करनी पड़ती है जिससे यह अपना सारा ध्यान एकमात्र पढ़ाई में नहीं लगा सकता। जिन विद्यार्थियों को कोई गृह हाउसों या होस्टलों में रहना पड़ता है उनको अवस्था और भी अधिक खरब होती है। इन आश्रमों का वातावरण प्रायः अत्यन्त दूषित होता है। पूर्ण निरन्तर के अभाव में बहुत सों बुराइयों इन आश्रमों में उत्पन्न हो जाती है। जिन्हें न तो कोई रोकने का यत्न ही करता है न वे रोकती ही जा सकते हैं। इन आश्रमों के विद्यार्थी और भी अधिक उच्छुद्ध आचारहीन तथा शरारती हो जाते हैं। वे प्रायः किसी भी दुष्कृत्य से बच नहीं रहते। इन आश्रमों में माना पिना की दृष्टि से दूर रह कर अमीर, किजुलकर्त, विद्वे हुए, फैशनोबल विद्यार्थियों की देखा देको देहातो के सीधे साथे विद्यार्थी भी इन बुराइयों में लस जाते हैं। विद्यार्थियों में दुराचार सम्बन्धी रोगों की संख्या तीव्र-गति से बढ़ रही है। शूद्रता की साम्प्रदायिक शहरी शहरों के विद्यार्थी करीबने ही उनकी साधारण स्वशुद्ध महिलाएँ भी नहीं करीबनी। नए से नए फैशन के शिकार पहले-पहले ये विद्यार्थी ही होते हैं। इस से यह स्पष्ट है कि देश के वे नवयुवक जिन्होंने जतीय भवन की नींव में एक दिन पथर का काम देना है, किन्तु प्रकाश मोलने और धोये हो जाते हैं। क्या ये कभी राणा प्रताप और ज्ञानपति शिवा जी की तरह देश की स्वाधीनता के संग्राम में अपने जीवन की आहुति दे सकते हैं।

सरकारी शिक्षा प्रणाली द्वारा शिक्षित-नवयुवकों का मानसिक विकास पूर्ण नहीं हो सकता। इस का सबसे बड़ा कारण शिक्षा का माध्यम मातृभाषा का न होना है। विद्यार्थी के जीवन का बहुत सा अत्युक्त भाग तो केवल अंग्रेजी भाषा सीखने में ही व्यय हो जाता है। बी, ए. तक अंग्रेजी भाषा आवश्यक विषय के रूप में पढ़नी पड़ती है। जब भी उस पर विद्यार्थी को पूरा अधिकार प्राप्त नहीं होता। बोलचाल आदि के लिए काम चलाऊ अंग्रेजी ही सीख लेने पर भी उसे गम्भीर तथा कठिन विषयों का अध्ययन व.स.सिक कार्य भी किया ही नहीं जा सकता। भारतीय विद्यार्थियों के साथ किसी अन्य स्वतन्त्र देश के विद्यार्थी की तुलना तो कीजिए, जिसे ज्ञान विज्ञान सीखने के लिए किसी विदेशी भाषा पर अपनी शिक्षा का सबसे अधिक समय खोना पड़ना है। यही कारण है कि अन्य देशों में साधारण ज्ञान तथा उच्च शिक्षा का स्टैण्डर्ड यहां की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च है।

इसका दूसरा दोष यह है कि अध्यापक तथा विद्यार्थी का सम्बन्ध विद्यालय में केवल कुछ बच्चों के लिए होता है। वे अध्यापक भी केशों में अक्की तरह से नहीं पढ़ते जिससे कि विद्यार्थी घर पर हलाकर उनसे पढ़ें और इस प्रकार उन्हें आर्थिक लाभ हो। साथ ही यह भी बात है कि जब तक अध्यापक तथा विद्यार्थी में शुद्ध शिष्य की

पवित्र भावना न हो और विद्यार्थी गुरुओं के निकट सह-वास में रह कर उनके आचार विचारों से निरन्तर कुछ न कुछ सीखने न रहे तब तक उनका विद्याभास पूर्ण हो ही नहीं सकता। पुस्तकों तथा मौखिक उपदेशों को अपेक्षा कहीं अधिक गहरा प्रभाव उच्च जीवन का पड़ता है। किन्तु भारतीय विद्यार्थी इससे सर्वथा धाँस रहना है यह उबक बड़ा दुर्भाग्य है ?

यह शिक्षा विद्यार्थी को योग्य बनाने के बदन अयोग्य बना देती है, अपने हाथ से काम करने में उसे श्रम आती है, परिश्रम बर कर नहीं सकता। नौकरी आजकल मिली नहीं, कला कौशल शिक्षणलयों में सिखाए नहीं जाते, व्यापार के लिये साधन नहीं, विद्यार्थी जीवन में आदत अव्यवस्था को पड़ जाती है, कौशल की फीस देने के घर का दिवालाना निकल जाता है। आम-विश्वास है नहीं परिश्रम यह होता है कि एक दिन यह आम्रमघान द्वारा अपने जीवन के अन्ततम नाटक का उपनाम कर देना है।

इस दुषित शिक्षा का एक अत्यन्त विषमय प्रभाव यह हुआ है कि हम युरोपियन जातियों के मुकाबिले में अपने आपको हीन समझने लगे हैं। भारतीय विद्यार्थी अपने पूर्वजों के उजल इतिहास को, उनकी संस्कृति, उनकी सभ्यता को या तो जानना ही नहीं, यदि जानना है तो बिलकुल अशुद्ध। उन्हे यहाँ पढ़ाया जाता है कि वेद गङ्गारियों के गीन हैं। भगतीयों का कोई धर्म कोई सदाचार कोई गण्य कर्मी रहा ही नहीं। भारत का जल वायु तथा भौगोलिक परिस्थितियाँ ही ऐसी है जिनमें कोई जान किसी प्रकार की उन्नति कर ही नहीं सकता। इसलिए भारत सदा से बाहर के आक्रमण-कारियों द्वारा लूटना पिटना और जीना जाना रहा है। वह सदा से परधान रहा है। छोटी भ्रष्टियों में लेकर ऊपर तक यही विश्वास करने लगते हैं कि हमारे पात्राचार्य गुरु जो कहते हैं वह अक्षरशः सत्य है। हमारे पूर्वज जंगलों थे, उन्होंने कभी कोई आविष्कार नहीं किया, धार्मिक या राजनीतिक उन्नति नहीं की, विज्ञान नहीं की, दार्शनिक विचार, आध्यात्मिक चिन्तन नहीं किया। प्रकृति, जीवामा तथा परमात्मा सम्बन्धी समस्याओं में उनके ध्यान को कभी आकृष्ट किया ही नहीं। हम कपिल, व्यास, गीतम, कणाद, बुद्ध, चन्द्रगुप्त, अशोक, समुद्रगुप्त, कालिदास आदि के विषय में जाना नहीं जानते जिनका परिच्छेदल, पेट्री, सिकन्दर, शेक्सपीयर, मिट्टन, स्पूटन, कष्ट आदि के विषय में जानते हैं। इस शिक्षा ने सचमुच ही इन थोड़े से दिनों में हमारे हृदय को अमरतीय बना दिया है ! हमें अपने धर्म, अपनी संस्कृति, अपने पूर्वजों और महापुरुषों से प्रेम नहीं रहा। इस अनर्थ परम्परा की समाप्ति नहीं हो जाती। अब कालिजों में सह शिक्षा का भी परीक्षण और प्रचार हो रहा है। अमेरिका में इस सह शिक्षा ने जो गुल बिल्लाये हैं उन्हें देख कर ही हमारी आँखें नहीं खुलतीं। हम अन्धे होकर युरोप का अनुकरण कर रहे हैं। हमारी यह मानसिक दासता कर्म कहा दुष्भाग्यी ? नहीं कहा जा सकता।

हमारी शीस्त आयु २३, २४ वर्ष है। उनमें से २२ वर्ष के

लगभग तो यहाँ की उच्च शिक्षा प्राप्त करने में ही लग जाते हैं। उसके परन्तु अधिक विलायत जाकर भी न पढ़े तो क्या पढ़ें ? क्योंकि अच्छी नौकरी यदि मिल सकती है तो विलायतों डिग्री के बल पर ही। हिन्दी और साम्प्रदाय का उच्च अध्ययन भी विलायत में ही, इससे बड़कर भारतीय शिक्षा प्रणाली का उपहास क्या होगा ? इतनी दौडधूप करने के बाद भी मकड़ी ने सूँक दिया तो देखने ही रह जाते हैं। नौकरियाँ अब परीक्षाओं और योग्यता के आधार पर नहीं किन्तु जातीय अनुपात के आधार पर मिलने लगी है। जातीय अनुपात का आधार विचित्र गोरलधन्दा है। यह हमारी समझ में नहीं आता। यदि ईसाई और मुसलमान काम हैं तो कमी के कारण, और यदि अधिक है तो अधिकता के कारण नौकरी उन्हें ही मिलनी चाहिए। हिन्दू बड़ भाई हैं बहुपद के हैं इसलिए उन्हें त्याग करना ही चाहिए।

यह ता हुई शिक्षा की वान, अब परीक्षा को लीजिए। प्रतिवर्ष परीक्षा परीक्षा निकलने के पश्चात् असफल विद्यार्थियों द्वारा आम्रमघान करने के समाचार सुनने में शान रहते हैं। काली माई बकरों और बैसों की बलि मांगनी है तो परीक्षा-पत्राची नर बलि से कम में संतुष्ट नहीं होता। "विद्ययामृतमश्नुते" विद्या कर्मी अमृत-प्राप्ति का साधन भी आज यह सूत्र्यु का कारण बन गयी है।

शिक्षा-प्रणाली के दोष से परीक्षा को अनुचित महत्व मिल गया है। ऐसा कोई उपाय नहीं सूझा जिससे विद्यार्थी प्रति दिन याद करके साथ ही परीक्षा दें। परीक्षा क्या है ? रक्त-पिपासु महाजन का चिह्न है, जिसे वर्ष या दो वर्ष बंद बन्दकध्याज के साथ अपना स्वाभ्य, अपने शरार का रक्त देकर चुकाना पड़ता है। सभ शिक्षा-विद्य स्वर्कार करने हैं कि प्रबलित परीक्षा-पद्धति योग्यता की वास्तविक कसौटी नहीं। हममें कड़ुता स्मृति शक्ति का खेल है, कुछ भाग्य को करमात, तो भी "पञ्चों का कहा सिर माथे, पर पतनाला वहीं रहेगा"। अमाया विद्यार्थी एक वर्ष एक पर्व में अनुसोण होना है तो दूसरे वर्ष दूसरे में। शिक्षा के कणधार कसम खाग बैठे हैं कि जब तक सब पर्वों में एक साथ उत्तर्ण न होगा आम्रम कदम न बढ़ने देंगे। कोई इसके विरुद्ध आन्दोलन करना चाहें तो नज़ारखाने में नृती की आवाज कीन सुनना है ? जो इस चक्की में से रुठें सलामत निकल गए, उन्हें क्या गरज पड़ी है कि इसके विरुद्ध आवाज उठाएँ, जो इस में से निकल नहीं उठतीं उनही मुनता कीन है ?

समझ और स्मृति शक्ति में बड़ा अन्तर है। भारतीय विद्यार्थी के लिए अंग्रेजी भाषा सीखना, उतना समझने पर आश्रित नहीं जितना रटने पर। अपनी मातृभाषा में विषय का किनना ही विरुद्ध ज्ञान क्यों न हो, यदि विद्यार्थी उन्में कुछ अंग्रेजी में नहीं लिख सकता तो परीक्षा की भूल-भुलट्या से निकल सकता उसके लिए असमर्थ है। मनसब यह कि भारतीय विद्यार्थी के लिए आज मातृभाषा नहीं किन्तु अंग्रेजी ही "स्वमेव प्रता च पिता स्वमेव, स्वमेव बन्धुश्च सखा स्वमेव। स्वमेव विद्या प्रविष्टी स्वमेव, स्वमेव सर्वे मम देव देवः" है। संस्कृत या फारसी की

# गुरुकुल

१६ वैश्व शुक्रवार १९६७

## गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की मौलिक विशेषताएं

(डॉ० माधव विश्वनाथका मुम्बईविद्यालय गुरुकुल-विश्वविद्यालय कांशी)

यदि किसी में प्रश्न किया जाय कि 'आधुनिक शिक्षा प्रणाली' की क्या विशेषता है तो इसका उत्तर लिया इसके और क्या हो सकता है कि यह शिक्षा प्रणाली 'आधुनिक' है। जिस शिक्षा प्रणाली की एक मात्र विशेषता यह है कि वह 'आधुनिक' है आज कल चल रही है—यह अर्थपूर्ण बहसों पर कभी भी पुरानी कल की रही शिक्षा प्रणाली हो सकती है। हम प्रणाली की अपनी कोई विशेषता या गुण नहीं है। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली अतीतक वागवर्ण जागी है, इसका कारण यह नहीं है कि अर्थ प्रणालियों के साथ दीर्घ काल तक संघर्ष होने के बाद इसने अपनी उदायिता को मित्र कर दिया है, बल्कि इसके विपरीत इसका कारण यह है कि हमें किसी संघर्ष में से गुजरना ही नहीं पड़ा। संघर्ष में से गुजरने का सबब यह नहीं है कि हम प्रणाली का कमशः स्वाभाविक विकास हुआ है। यह प्रणाली तो विदेशियों द्वारा पुराधान लोगों पर जबरदस्ती लादी गई है। यही वजह थी कि जब जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में राष्ट्र के भाविष्य निर्माण का वागडोर आरंभ तब शिक्षा विभाग में विशेष रूप से एक महान् आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। अचानक ही सब को इस बात का तौलना में मान हुआ कि शिक्षा के क्षेत्र में हम किसी रूपध आदर्श का अनुसरण नहीं कर रहे, यो ही अर्थ में दास्ता टडोल रहे हैं। जनता के चुन हुए प्रतिनिधियों के हाथ में एक वर्ष में कम समय तक यह का वागडोर रही लेकिन इस थोड़े में अर्थ में ही प्रचलित शिक्षा पद्धति में आन्दोलन चल परिचलन करने के लिए अनेक योजनाएं देश के विचार-शाल विद्वानों द्वारा पेश की गईं। अन्तः राष्ट्रीय सरकार के इस्तीफे की बदौलत विश्वज्ञान अध्यायक ही काफ़ेसी मन्त्र मन्त्रालय ने नूट जाने तो अवश्य ही शिक्षा के क्षेत्र में मुख्य की प्रक्रिया जारी रहनी और हम अनेक विकल-नाशों और स्फुलनओं के परभाव वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पर भारतीय मस्तिष्क की छाप डालकर नूतन पद्धति का आरम्भ कर लेंगे। मात के श्रुति मुनियों द्वारा आधिष्ठान गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के आदर्शों और सिद्धान्तों में वर्णमान समय में शिक्षा पद्धति के निर्माण में कर्ता तक और क्या सहायता मिल सकती है इस दृष्टिकोण का समुचित रवने हुए इस लेख में कुछ विवेचन किया जायगा।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की प्रथम विशेषता 'कुल' की भावना है। 'गुरुकुल'—इस शब्द का अर्थ है 'गुरु का घर'। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के आदर्श के अनुसार विद्या के क्षेत्र में पदापेक्ष करने ही बालक मन, शरीर और आत्मा से अपने आप को गुरु के प्रति समर्पित कर देता है। विद्या से बालक का जितनी जन्म होता है। बालक का पहला जन्म तब होता है जब मां बाप के द्वारा उसका स्थूल देह इस संसार में आता है, और अब वह गुरुकुल में गुरु के साक्षिण्य और सतत निरीक्षण में रहकर ज्ञान उपाति के द्वारा पुनः आविर्भूत होता है। प्राचीन ऋषियों ने इस विचार को आलंकारिक भाषा में मन्विरता के साथ प्रकट किया है; आचार्य ब्रह्मचारी का अपने गर्भ में रवता है, और कठिन तपस्या के पश्चात् उसे जन्तु के मरुतुल उपस्थित करता है। हम प्रकार बालक डिजम्मा बनने के लिए गुरु को अपने पिता के रूप में वरण करना है। इस वरण के द्वारा गुरु के परिवार का बालक शिष्य भी एक सदस्य बन जाता है। भारतीय मनाधियों का कथन है कि वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति गुरु और शिष्य के इस निकट सम्बन्ध के आधार पर ही हो सकती है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अनुसार बालक मां बाप का घर छोड़ कर गुरु के घर में आ जाता है। यहाँ ध्यान देने योग्य बंजु घर है। बालक अपने मां बाप से जुड़ा होता है, लेकिन गुरुकुल पद्धति बालक को घरेलू वातावरण से अलग हुआ नहीं देखना चाहती, घरेलू वातावरण की जारी रखने के लिए यह माना पिता के घर के स्थान पर बालक के लिए गुरु के घर का प्रबन्ध करती है। समाज के हित की दृष्टि से बालक को उष्ण में उन्नत शिक्षा-युद्ध मिलना चाहिये। सब घरों को आदर्श बना सकता एक दुस्कर कार्य है, किन्तु शिक्षागृह क्यों व्यवस्था और नियन्त्रण द्वारा शासित होने हैं इस लिए किसी हद तक हमें आदर्श के समीप ले जाया जा सकता है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य यह है कि विद्यालय में रहते हुए जटा विद्यार्थी ज्ञान खान करे वहाँ वे घरेलू वातावरण में संविन न रहते हुए उसके फायदों को भी पूर्णतः में उठा सके। प्रायः यह आशेष किया जाता है कि गुरुकुल के कठोर वातावरण में रहते हुए बालक घर के जीवन में उल्लेख होने वाले संस्कार को प्राप्त नहीं कर सकता। लेकिन असल में वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। गुरुकुल में रहकर बालक अपने सब साधियों के साथ भई का व्यवहार करना सीखता है। गुरुकुल में आकर उसे अपने सीमित घर की अपेक्षा एक विशाल-धर प्राप्त हो जाता है, जहाँ उसके बड़े और छोटे भाई हैं और गुरुजन भी हैं। परन्तु प्रश्न होता है कि एक अर्थ में हीन दम्भिर गुरु अपने इतने बंधों का भण्ड भोख कैसे कर सकता है? हमें समझने के लिए हमें ही जाने ध्यान में रखनी चाहिये। पहली है, गुरु का अपना आदर्श और दूसरी तात्कालिक समाज रचना का हाँसा। भारतीय विचार परम्परा के अनुसार गुरु की दृष्टि में आर्थिक समृद्धि का विशेष महत्व नहीं है, उसके लिये अध्यात्मसंग्रह स्वर्गपते बन्तु है। दिन रात एक करके देश के होनहार





शुक्र शास्त्रालय ही ऐसा स्थान है जहाँ बालक धैर्य, उत्साह, कार्य शक्ति आदि जीवन के कठिन और दुःखद प्रसंगों में काम आने वाले गुणों को अपने अन्दर समुच्चय कर सकते हैं। अगर ऐसे प्रसंग आते हैं, नहीं तो सब से अच्छी बात है, लेकिन आते हैं तो उनका करा मुकाबला करने के लिए तत्काल जमा की हुई होनी चाहिये। यदि हमारे युवक जिन्दगी के बदलते हुए हालात के साथ कदम न मिलाकर पीछे हटते हैं तो यह हमारी शिक्षा-प्रणति का दोष है। गुरुकुल के प्रशिक्षण ने सैनिक बनाना है। यह कठोर काष्ठ-रीया पर शयन करना है। माटा खाना है, सर्दी गर्मी बर्बाद करना है, जीवन की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने संतुष्ट रहना है। सब प्रयोगों को यश में करना है, ये सब बातें उसे इस लायक बनाती हैं कि वह समाज का ऐसा योग्य सेवक बन सके जिसे अपनी सेवा कराने के लिये किसी अन्य व्यक्ति की जरूरत न हो। आजकल के विद्यार्थी इनना नाजुक जीवन बिताते हैं कि आपस के लिए वे क्षमा का जग भी स्वीकार नहीं कर पाते। प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता 'विलियम जेम्स' का तपश्चर्या के विषय में कथन है कि नियमित और धारणापूर्ण तपश्चर्या बीम को उस किस्म के समान है जो घर और सामान की सुरक्षा के लिये दी जाती है। इस किस्म से तत्काल कोई लाभ नहीं होता और सम्भव है समस्त जीवन में कभी लाभ न हो, लेकिन अगर अचानक आग लग जाए तो संभलते में अदा की हुई किस्म सर्वनाश से बचाने में उपाय बन सकती है। इसी प्रकार जिस आत्मीय से शारीरिक कष्ट सहन किये हैं ध्यान को एकमात्र करके अपने यश में किया है और कम से कम वस्तुओं में काम चलाने का प्रयत्न किया है एक शब्द में जिसने 'तप' किया है, वह तूफान आने पर तत्काल के समान अचल होकर खड़ा रहेगा और नाजुक तटीय वाले उसके साथी भूसे का तरह इस आंधी में सर्वनाश की लपेटों से न बच कर अदृश्यता में विलीन हो जाएंगे।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की प्रथम विशेषता चरित्र-निर्माण है। शिक्षालय के प्रधान को प्राचीन समय में आचार्य कहते थे। नेरुन-शास्त्र में आचार्य का लक्षण किया गया है 'भावार्थ' ब्राह्मणीति आचार्य' अर्थात् जो शिष्यों को उसमें चरित्र की शिक्षा दे यह आचार्य है। गुरुकुल में आचार्य का प्रधान उत्तरदायित्व प्रशिक्षण के आचार को समुच्चय करना है। आजकल यह कार्य महत्व-पूर्ण होता हुआ भी प्रायः सब जगह इसकी उपेक्षा की जाती है। स्कूल के मास्टर का सारा ध्यान इतिहास के नतीजे की तरफ होता है, वह बच्चों के वैयक्तिक चरित्र की ओर कोई दृष्टिपात ही नहीं करता। इसका मुख्य कारण यह है कि स्कूलों में विद्यार्थियों का अध्यापकों से सिर्फ किनासी सम्बन्ध होता है, पढ़ने पढ़ाने के बाद दोनों का एक दूसरे में मतलब नहीं रहता। लेकिन इसके विपरीत गुरुकुल में क्योंकि गुरु शिष्य २५ घंटे साथ रहते हैं अतएव उनका परस्पर नाद सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। गुरुकुल में विद्यार्थी को 'प्रशिक्षणारी' कहकर पुकारा जाता है। इस शब्द के अनेक अर्थ किये जाने हैं किन्तु

आमतौर पर वर्य रहना के सम्बन्ध में इस शब्द का प्रयोग होता है। आचार्य शिष्यों के सर्वांगीण विकास के लिये यत्न करत हुआ उनके प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान रखता है। मनोविज्ञान का प्रसिद्ध विद्वान् फ्रायड मनुष्य की काम-प्रवृत्त को सार्वजनिक और सहज-प्रवृत्ति स्वीकार करता है, इसलिए जो शिक्षा पद्धति इन ओर से विमुक्त रहती है क्या उसे हम पूर्ण शिक्षा पढ़ने कह सकते हैं? इसमें सन्देह नहीं कि यह एक नाजुक और कठिन विषय है, लेकिन इसी लिये तो हमें आवश्यक समझ कर प्रत्येक शिक्षक को इस पर गौरव करना चाहिये। बालक के जीवन को हमने अधिक वितर्य करने वाली और कोई प्रवृत्त नहीं है, अतएव शिक्षक को धैर्यपूर्वक इसका और हमने सम्बन्ध समस्याओं का समाधान करना चाहिये। पुरातन गुरुओं में आचार्य इस नाजुक विषय को सहस्र-पूर्वक अपने हाथ में लेता था और उचित दिशा में कामवेग को नियन्त्रित करके बालक को उसके मानस में इसके कारण उपलब्ध होने वाला अनेक जटिलताओं से बड़ी सफलता के साथ बचा ले जाता था। और सब बतों को रहने भा दिया जाय तो ही प्राचीन भारतीय शिक्षक के अर्केले इस कार्य को देखते हुए आधुनिक शिक्षक के सामने उनकी श्रेष्ठता बड़ी आसानी से समझ में आ सकती है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का सार यह है कि अपना किसी शुद्ध के भोजन, वस्त्र, निवास आदि का प्रबंध करने हुए बालक को गुरु के परिवार का पूर्णरूप में अंग बनाना उसे सादे रहन सहन और तपस्या के वातवरण में रखना तथा चरित्र निर्माण करने हुए उसके बौद्धिक विकास में सहायक बनना। इन सब बातों के परचात् मिलने पढ़ने की चारी आती है। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की इन विशेषताओं को आवश्यक परिधर्मा के साथ आधुनिक शिक्षा प्रणाली में उचित स्थान दिया जा सकता है। में यह मानना ठीक कि एक पुरानी प्रणाली ही बहू उसी ढंग से बीसवीं सदी में जारी नहीं की जा सकती, किन्तु गुरुकुल प्रणाली कोई बंधी हुई ढोस प्रणाली नहीं है, इसके कुछ आदर्श हैं, वे मिल २ परिस्थितियों में भी लागू हो सकते हैं। ये आदर्श और विचार नित्य हैं। आजकल भी अर्थशास्त्रों से वाधित होकर अनजाने में शिक्षा-विद् इसी आदर्शों की ओर नेत्री से कदम बढ़ा रहे हैं। शिक्षालय में श्रेष्ठ वातावरण होना यह जो गुरुकुल प्रणाली की विशेषक विशेषता है हरेक प्रणाली इसे अपनाना चाहती है और चाहेगी, क्योंकि वास्तविक शिक्षा केवल इसी उपाय द्वारा समुच्चय तो सकती है।

**पृष्ठ ३ शेष**

ऊँको परीक्षा देकर केवल अंग्रेजों में भी, ए. ए. और एम. ए. पास करने पर वह विद्यार्थी प्रोप्रेट बन सकता है जिसने एक भी विद्यालय नहीं पढ़ा, किन्तु मातृ-भाषा द्वारा कई विद्यालयों की उच्च शिक्षा प्राप्त करने की वह अपेक्षा ही बना जाता है। हमारी लक्षा और वेदना की पराकाष्ठा हो जाती है जब हम अपने पढ़े-लेखे विद्यार्थियों और शिक्षकों को कक्षाओं के मुख से यह सुनते हैं कि भारत में मातृ-भाषा द्वारा उच्च शिक्षा नहीं दी जा सकती। क्या परमात्मा ने संसार भर में छांट कर हिन्दी को ही ऐसा बनाया है कि उसमें वह टूटी फूटी शिक्षा भी नहीं दी जा सकती जिसे पूर्ण करने लिए विलासत जाने की आवश्यकता शेष रह जाती है। सचार्थ तो यह है कि हम अपनी भाषा का आदर करना ही नहीं जानते। जब गुरुओं की यह मनोवृत्ति है तो शिष्यों का कहना ही क्या ?

परीक्षक विद्यार्थी की मानसिक योग्यता के विषय में वैयक्तिक रूप से कुछ भी नहीं जानता। वह केवल पत्रों को देखता है। एक एक परीक्षक को लेकर वर्षों की घसकाई होती है; फिर परीक्षक है भी मनुष्य ही। वह अपनी मानसिक मनोवृत्तियों से ऊपर नहीं उठ सकता। उसका प्रभाव उसके अङ्क देने पर पड़ता है। कितनी ही बार परीक्षक के मन या असावधानता से विद्यार्थी अनुपरीक्षित हो जाते हैं किन्तु उन्हें मुँह खोलने का अधिकार नहीं। खून के अणुओं की अपील का अधिकार है पर परीक्षार्थी उससे भी वञ्चित है। एक विषय में कुछ नम्रों की कमी रही नहीं कि मामला फिर ३६५ दिन पड़े जा पड़ता है। गरीब विद्यार्थी के लघु जीवन के वर्ष कितने व्यनीय रूप में खलते हैं? हमें इस बात की चिन्ता नहीं कि हम अपने नव-युवकों के जीवन के अंशतः भाग की व्यर्थ के प्रयत्नों में व्यय न कर, उन्हें शीघ्र योग्य बना राष्ट्र निर्माण के महान् कार्य में लग जायें।

धन, जीवन, स्वास्थ्य, सद्चार, स्वधर्म, और स्वसंरक्षण का लोकर प्राप्त किए हुए तथा-कथन शिक्षा के ये कुछ अक्षर कितने महंगे हैं? इतका अनुमान कीजिए। देश में प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली की असफलता को निहट करने के लिए यह भी तब हिन्दी अन्य प्रमाण की आवश्यकता है ?

**महात्मा हनीमैन का अभिनन्दन**

(१)

हो हनीमैन का जुग जुग जग म,  
अभिनन्दन अम त्रयज्यकार ।  
जो हुआ लोकहित परमेष्वर का,  
पश्चिम में कां शुक अवतार ॥

(२)

बलवत्तर सम-शक्ति हो सके,  
स्वल्प शक्ति की प्रशमनकर ।  
यह नियम प्रकृति का हमें सिखाकर,  
किया जगत् का अहित उपकार ॥

(३)

यह देह हमारा हम हैं देहा,  
आत्म-शक्ति-आकर साकार ।  
यह ज्ञान कराकर किया हमारा,  
योगशास्त्र से परमोच्चार ॥

(४)

हम सूक्ष्म शक्ति हैं, सूक्ष्मशक्ति ही,  
कर सकती है हम पर अधिकार ।  
यह सूक्ष्म शक्ति के तीर मार कर,  
कर देता उसका संसार ॥

(५)

अब अन्य शत्रु का काम नहीं,  
कटु तिक औषधी हैं वेकार ।  
जब मधा गया यह जीव जन्तुमर-  
स्यार, अमृत हुआ तय्यार ॥

(६)

यह अमृत पीकर तुम प्यागे,  
रोग-मुक्त हो मली प्रकाश ।  
उस शिव-स्वरूप अह्वि हीमैन का,  
कने न मिल सब जय जय कार ॥  
डा० कोटप्रकाश जी  
विद्यार्थकार ।

**गुरुकुल समाचार**

पिछले दिनों अमृत की विरमता का जो उदात्त प्रभाव प्रवचनियों के स्वास्थ्य पर पड़ा था वह अब सर्वथा दूर हो चुका है। अब प्रवचनियों का स्वास्थ्य उत्तम है। गर्मी दिनों दिन बढ़ती जा रही है। सब कुलवाची वायुको-न्वय की नैय्यानी में लग गए हैं।

**कांगड़ी ग्राम पाठशाला का सफल**

**उत्सव**

गत २०-२३ मार्च को कांगड़ी ग्राम पाठशाला का उत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया। २२ ता. को आनयास के गांव में भूम २ कर भजन मण्डलियों ने प्रचार किया। २३ ता. को उत्सव में उपस्थित पद्यारि रहो। रात्रि को 'जयप्रथ-चय' नाटक खेला गया। पं० ध्यादेश्वर जी और पं० मूलवन्द जी के विशेष उन्माह के कारण य उत्सव सफलता पूर्वक सामान्य समाप्त हुआ।

**स्वास्थ्य समाचार**

सूर्यप्रकाश ३ अंगी ३०३३३३, अंक ६३३३ अंगी ३०३३३३, शंकरदेव ५ अंगी ३०३३३३, गोविन्द ५ अंगी ३०३३३३ गन समाह उपरोक्त प्रवचनारी रोगी हुये थे अब सब स्वस्थ है।

**गुरुकुल कमालिया के वार्षिकोत्सव की**

**तिथि में परिवर्तन**

निवेदन है कि गुरुकुल कमालिया का वार्षिकोत्सव ५-६ अप्रैल १९५१ को रखा गया था। श्री आर्य प्रति निधि समा पंजाब की आह्वान से अब ३०-३१ वैश्र वा १ वैशाख तदनुसार ११-१२ १३ अप्रैल १९५१ को रखा गया है। संरक्षक मोहदय वा प्रेमी नोट कर लेंगे प्रवचनियों का प्रवेश रविवार वैशाखी के दिन १३ अप्रैल को कीजियेगा।

## गर्मियों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी धातु क्षीणता पुरानी खांसी, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभ दायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शीघ्र से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव १८) आध सेर २८) १ सेर ४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियों से तैयार की गई ये गोलिधां सब प्रकार की कमजोरियों में अक्षर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करता है।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजांत और लोह भस्म की प्रधानता है। सद्य प्रकर के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ॥) तोला

### सत शिलाजीत

सद्य प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ॥-) तोला

## धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम में अपनी औषधियां बेच रहे हैं। इसलिए दवा खरोदने समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

बीच { देहली—चांदनी चौक।  
मेरठ—मिर्जापुर रोड।

पत्रिकायां { लखनऊ—गर्जना गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।  
लाहौर— " " " " हस्पताल रोड।  
पटना— " " " " मछुआटोली बंकीपुर।  
अजमेर— " " " " वैद्यगज सरदारीलाल जी कड़का चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी जिसहानपुर**

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिचंद्रा वेदालंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २३ चैत्र १९६७; ४ अप्रैल १९५१

[ संख्या ५० ]

## निमन्त्रण

साह्यवर !

आपको यह जानकर पसन्दा होगी कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३६ वां वार्षिकोत्सव २६ चैत्र से एक वैशाख १९६६ तदनुसार १०, ११, १२, १३ अप्रैल १९५१ को बड़े समारोह के साथ गुरुकुल भूमि में मनाया जावेगा। मैं बड़े प्रेम और आग्रह से आपको इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित करता हूँ।

गुरुकुल भारत का सबसे बड़ा राष्ट्रीय शिक्षणालय है। यहाँ वैदिक और संस्कृत-साहित्य के साथ इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, दर्शन, रसायन आदि विविध विषयों को उच्चतम शिक्षा राष्ट्रीय हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती है। गुरुकुल में उच्च मानसिक शिक्षा के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य के नियमों और आश्रम-प्रणाली द्वारा विद्यार्थियों के चरित्र सुधार के लिये विशेष उद्योग किया जाता है।

इस समय गुरुकुल कांगड़ी तथा उसकी शाखाओं में एक हजार से ऊपर विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर जितने भी विद्यार्थी अब तक स्नातक हुए हैं, उनका बड़ा भाग देश, जति, धर्म और साहित्य का सेवा में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

इस अनुपम शिक्षणालय का वार्षिकोत्सव अपना एक विशेष स्थान रखता है। आर्यसमाज का यह सबसे बड़ा वार्षिक मेला है। इसमें दूर दूर से हजारों नर-नारी सम्मिलित होते हैं। इस वर्ष गुरुकुल का उत्सव बहुत महात्वपूर्ण होगा। ईस्टर की छुट्टियों में अब सर्वत्र आपके दैनिक कार्य स्थगित हो गये गुरुकुल के इन उत्सव पर आश्ये और अपनी आत्मा तथा मन को तृप्त कीजिये। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपने परिवार, बन्धु तथा इष्ट-मित्रों के साथ पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ावेंगे।

आपका गर्वनामिका—

सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

सम्पादिताना, गुरुकुल कांगड़ी

## गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का

३६ वां वार्षिकोत्सव

आकर्षक-कार्यक्रम

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३६ वां वार्षिकोत्सव ईस्टर की छुट्टियों में १०-११-१२-१३ अप्रैल १९५१ को बड़े समारोह के साथ मनाया जायगा। विश्व-कवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का दीक्षान्त भाषण भीयुन क्षितिमोहनसेन अध्यक्ष विद्याभवन, शान्ति निकेतन पढ़ेंगे। दीक्षान्त अभिभाषक ११ अप्रैल को प्रातःकाल १० बजे होगा।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज, श्री नारायण स्वामी जी, श्री पं० बुद्धदेवजी, श्री पं० सत्यव्रत जी, श्री पं० इन्द्रजी, श्री पं० गंगाप्रसादजी रिठावई दीवान देहरी स्टेट तथा अन्य अनेक आय समाज के प्रसिद्ध नेताओं के सुन्दर सुमनोहर उपदेश व व्याख्यान होंगे। इसअवसरपर अनेकों समा-सम्मेलन करने का आयोजन किया गया है। पूना के जगत् प्रसिद्ध संगीताचार्य श्री पं० विष्णुद्विगम्बर जा के सुपुत्र श्री पं० दत्तात्रेय जी ने १३ अप्रैल की राति को गुरुकुलोत्सव पर होने वाले संगीत सम्मेलन का समापन-पद ग्रहण करना स्वीकार कर लिया है।

सुक्याचिह्नता

प्रेमी पाठकों व श्राहकों से—

'गुरुकुल' पत्र क अनुपमगी पाठकों से निवेदन है कि जित महापुरुषों का संवत् ६७ का वार्षिक अन्त्या २॥) हम अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है उनकी सेवा में हम २॥) की वी० पी० सेत्र रहे हैं। आशा है गुरुकुल के द्वितीय पाठक अवश्य वी० पी० छुड़ा लेंगे अपने कर्तव्य से विमुक्त न होंगे।

## भारत में प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली का एक मात्र उपाय गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

[ २ ]

( ले० प्रो० बागोदर जी विद्यालंकार, साहित्याचार्य )

कहते हैं कि एक तत्ववेत्ता दोषहर के समय प्रदीप लिए रोम की सड़कों पर घूम रहा था। किसी ने उससे प्रश्न किया कि 'तुम किसे ढूँढ़ रहे हो।' तत्ववेत्ता ने उत्तर दिया 'मैं मनुष्य को ढूँढ़ रहा हूँ।' पूछने वाले ने फिर कहा कि मुझे सड़कों पर चारों तरफ मनुष्य ही मनुष्य ढींख रहे हैं, तुम कहते हो 'मनुष्य नहीं मिलता'। तत्ववेत्ता ने उत्तर दिया—'नहीं, ये मनुष्य नहीं हैं।' शताब्दियों पर शताब्दियों व्यतीत हो गईं पर ढूँढ़ने वाले को आज भी मनुष्य नहीं मिलता। मनु समाज ने लिखा है।

प्रपक्ष प्रयत्नेष्वेन नर-परितप्तमान।

(कन्तु मे पशुभिरनुत्थं किन्तुस-पुनरैरिति)॥

अर्थात् मनुष्य को वह हिए कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठ कर आम निर्गलण को कि उनमें कितना अशा पशुओं का है और कितना सन्तुकों का। बात यह है कि बहुत सी प्रवृत्तियाँ मनुष्य और पशु में समान हैं अन्तर केवल इतन ही है कि शिक्षा द्वारा मनुष्य की प्रवृत्तियों को संस्कृत कर दिया जाता है जब कि पशुओं में ये स्वाभाविक रूप में विकसित होती रहती हैं। यदि मनुष्य की प्रवृत्तियाँ शिथिल हो गयीं तो भी, और वह उनका दास बना रहे तो उसमें और पशु में कुछ भी भेद नहीं। गुरु शिक्षा का उपनयन करने के तन्त्र के एक-एक अङ्क की बलि देता है। प्रत्येक संस्कार, प्रत्येक प्रवृत्ति के पार्श्विक अशा को काट कर पशु को अपने में आहुति दे देता है। यही तन्त्र मनुष्य का बच है। पशुत्व के बच को ही अर्थकार के रूप में पशु-वध कर दिया है। आचार्य 'यम'। उसके पास जाकर आर्थात् मृत्यु को प्राप्त होकर ब्रह्मचारी उसके गर्भ में तीन रात्रि निवास करके दूसरा जन्म प्रसूत करता है। तब वह जिज कहावत है। शिक्षा-लय कैसा होना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर वेद ने यह दिया है कि यह माता के गर्भ में समाप्त हो। माता के गर्भ में बालक पर आठर के कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाते। संसार की बड़ी में बड़ी घटना, अनुभवों के परिवर्तन, अपने भोजन आच्छादन की विभत्ता से वह अज्ञात रहता है। उसका काम उस समय केवल यही है कि वह एकान्त में आराम - निर्माण करे। प्रकृति, पुनर्व और परमात्मा सम्बन्धी तीन अज्ञान ही तीन गतिधियाँ हैं। केवल प्रकृति विषयक ज्ञान, प्राप्त कर ब्रह्मचारी 'बन्तु' कहलाता है। गणित, भौतिकी, रसायनधर्म, अर्थशास्त्र कृषि, यांत्रिकी, पशुपालन, आदि प्रकृति सम्बन्धी विद्याओं में निपुण होकर वह धन कमाने के योग्य वैश्य स्नातक बन जाता है, यही उसका 'यम्य' है। दूसरा अज्ञान पुनर्व विषयक है। मनोविज्ञान, राजनीति, व्यवस्था इतिहास आदि का भी अध्ययन कर ब्रह्मचारी 'रुद्र' बनता है। यह ५ त्रिय के लिये आवश्यक-सवस्व-ज्ञान प्राप्त कर चुकना

है। इस प्रकार उस की द्वितीय रात्रि में गुरु के गर्भ में स्थली हो जाती है। जिसको ज्ञान विद्यामा इससे भी शान नहीं होती, वह परमात्मा सम्बन्धी उच्च अध्यात्म शास्त्रों का अध्ययन कर आदित्य के समान देवीप्यमान 'आदित्य' ब्रह्मचारी बन जाता है। आचार्य ने उपनयन करते समय उसे आदित्य के दर्शन कराए थे कि मैं तुम्हें ऐसा बना हुआ। आज आचार्य की प्रतिष्ठा पूर्ण होती है। ऐसे आदित्य ब्रह्मचारियों के रहने हुए संसार में अशुभाग नहीं रह सकता। "मूर्धे नपत्यावरणाय वट्टेः कल्पेन लोक य कथं तमिन्म"।

प्रलोभनों से रहित, अनुकूल परिस्थियों में इतने दिन रह कर उसके अशुद्ध आभ्यास, माधु आचरण, शिल्प-व्यवहार, शील आदि स्वभाव के रूप में परिणत हो जाते हैं। कोई प्रलोभन उसे खिंचित नहीं कर सकता। वह मनुष्य ब्रह्मचारी इच्छानुसार (रोहती) आर्थात् दोनों लोकों में—स्त्रियों और पुरुषों में-विचरण करता है। उसका पैर कहीं फिसल नहीं सकता। उसके अन्तर देव अर्थात् मन सहित इन्द्रियों संयत होती हैं, अनुकूल होती हैं। फिर वह गृहस्थ होकर (पृथर्वो दिव्यं) ब्रह्मचारियों और सन्यासियों की पालना करता है। तथा अपनी सन्तान के भावी आचार्य के कार्य को अपने तप द्वारा मुग्न बनाता है।

## आर्य समाज

( ले० पं मन्वदेव विद्यालंकार सभापक-हिन्दुस्तान )

"आर्यसमाज के साथ मिल कर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। हम और आपको अनि उचिन है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा; उसकी उचति तन-मन-यन से सब मिल कर प्रीति से करें। इस लिये जैसे आर्यसमाज आर्यावर्त देश की उन्नति का कार्य है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता।"—यह है वह वाचा, जो आर्यसमाज के सम्बन्ध में उसके संस्थापक ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के उस प्रकरण में किया है, जिसमें उन्होंने प्रार्थना समाजियों और ब्राह्म समाजियों में यह दोष बताया है कि "इन लोगों में स्वदेश-भक्ति बहुत म्यून है।" अपने देश की प्रशंसा और पूर्वजों की बड़ाई करना तो बुर रहा, उसके स्थान में पेट भर निन्दा करते हैं।" फिर इसी प्रकरण में ऋषि ने लिखा है कि "अन्ना ह्यत्र अब आर्यावर्त देश में उत्पन्न नये और इसी देश का अन्न-जल लाया गया, अब भी ब्याने पीते हैं, तब अपने माता-पिता, पिनामहदि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मत्तों पर अधिक मुक्त जाना, ब्राह्म समाजी और प्रार्थना समाजियों का एतद्देशक संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करन, इंग्लिश भाषा पढ़ के पढ़ेबतामिस भी हकर शोभ एक

॥ ब्रह्मचारी-व्यवस्थाति रोहती उसे तस्मिन्नेषाः संमसो अर्थात् ॥ स त्वापर गतिधियों विषं धम आचार्य तपमा विपतिं ॥ अथर्व १-२ ॥

मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का 'सि' और बुद्धि-कारक काम क्यों कर हो सकता है ?" थियोसोफिस्टों के साथ आप क्यों नहीं मिल सकते, इसका कारण आपने यह बताया कि "जब आपने देश में सब सत्य विद्या, सत्य धर्म, ठीक ठीक सुधार और वरम योग की सब बातें थीं और सब भी हैं, तब विचारें कि थियोसोफिस्टों को एतद्देशवासियों के मत में मिलना चाहिये या आर्यावर्तियों को थियोसोफिस्ट होना चाहिये।" यह थी उत्कृष्ट राष्ट्रीय भावना और उज्ज्वल देश भक्ति, जिससे प्रेरित होकर ऋषि दयानन्द ने अपने देश को 'आर्यावर्त' कहने में गौरव अनुभव किया। यहाँ के निवासियों को 'आर्य' नाम दिया और आर्यावर्त एवं आर्यों की उन्नति के लिये 'आर्य-समाज' की स्थापना की। आर्यसमाज को एक कोरी धार्मिक या निरी साम्प्रदायिक संस्था मान कर जो लोग आर्यों को विभिन्न जानि, समाज या सम्प्रदाय का नाम देने हैं, वे ऋषि दयानन्द के महान् और व्यापक मिशन को समझ नहीं सकते। उन्होंने ऋषि दयानन्द को सिर्फ एक धार्मिक समाज सुधारक और हिन्दू जाति का उद्धारक ही मान लिया है। वे ऋषि के राष्ट्रवाद को न समझते हैं और न समझना चाहते हैं। उन्होंने महान् कान्तिकारी, महान् राष्ट्रवादी और महान् देशभक्त महापुरुष पर अपनी संकुचित मनोवृत्ति का जो परदा डाल दिया है, उसे वे दूर नहीं करना चाहते। आर्यसमाज में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जिन्होंने इस महान् संगठन को एक कर्म-काण्डी, कोरी धार्मिक या निरी साम्प्रदायिक संस्था बना दिया और माल लिया है। इनमें बड़ा कोई और अग्रगण्य व ज्यादाती ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के साथ नहीं की जा सकती। जिस संकुचिन् बुद्धि और साम्प्रदायिक मनो-वृत्ति ने हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म में भीषण कान्ति करने के लिये महात्मा बुद्ध से लेकर आज तक न करिये गये सब प्रयत्नों को विफल बना दिया है, उसने आर्यसमाज के रूप में मुलगाई गई कान्ति की महान् मट्टी की दहकती हुई भीषण आग को भी राख बना दिया है।

ऋषि दयानन्द तब कार्यरत में पदार्पण करने हे, जब १८५७ में किया गया देश को आजादी का अन्तिम प्रयत्न असफल हो चुका था, लाई कैकाले वारा की गई तलवार की फतह के बाद लाई कैकाले का हिन्दुस्तानियों के दिल व हिम्मा को जीतने का सफल प्रयत्न बांधा जा चुका था और ईसाव्यतल की चक्रवर्ति में इस देश के संग्राम-विमान एवं स्वदेश-विमान को तिलाञ्जलि देने जा रहे थे। ऐसे समय में आर्यसमाज की स्थापना करके ऋषि ने देश में विद्रोह की, कान्ति की और विद्रुव की आग सुलगाई थी। लाई कैकाले सराये कुल्लि अग्नेज्ज राज-नीतिज्ञों ने इस देश के साहित्य, संस्कृति, धर्म, विज्ञान, इतिहास, भूगोल और धर्म-वैभव को जतना को नजरो से गिरा देने की जो कारिशरी जारी की थी, उनके विरुद्ध आर्य समाज प्रगट हुआ था। ऋषि दयानन्द इस परि-धाम पर पहुंचे थे कि "विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने का कारण आपस की फुट, मनभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना, बाह्यभस्मा।

अस्यंवर विवाह, विषया-सक्ति, मिथ्या भाषण, वेद विद्या का अपचार आदि कुलत्पण हैं।" इन कुलत्पणों को मिटाने में ऋषि ने अपने जीवन की बाजी लगा दी। "जब तक एक मत, एक हानि-लाभ, एक सुख-दुख परस्पर न मारें, तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है।" इस स्वचार्म को ऋषि ने अनुभव किया और राष्ट्रवाद की इस भावना को देशवासियों में पैदा करने का सतत प्रयत्न किया।

'सत्यार्थ प्रकाश' को सहस्र आर्यसमाज का बार्निश, कुगल या पुराण कह दिया जाता है। लेकिन, उसका असली स्वरूप उसमें कहीं अधिक व्यापक है। उन्हे हर हिटलर के कैम्फ से उपमा दी जा सकती है। लेकिन, उसमें भी एक अन्तर है। वह यह है कि 'सत्यार्थ प्रकाश' सात्विक भावना से लिखा गया है और 'मीन कैम्फ' द्वै-वर्ण्य आसुरी भावना से। फिर भी स्वदेश प्रेम, स्वराष्ट्र की चर्चमुक्ती उन्नति एवं प्रगति का जहाँ तक सम्बन्ध है, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। "सत्यार्थ प्रकाश" में जहाँ देश का दुःशा का वर्णन किया गया है, वहाँ ऋषि की आत्मा रो पड़ती है और जहाँ देश के गौरव का उल्लेख किया गया है वहाँ देश भक्ति का स्तोत्र बह निकलता है। जब कांग्रेस का कहीं नाम न था, स्वायत्त की कितनी को कल्पना तक न थी और स्वदेशी खर्चा भी कहीं नुन नहीं पड़ती थी, तब ऋषि ने स्वराज्य, स्वदेशी और अपने देश के चक्रवर्ती साम्राज्य आदि की खोज "सत्यार्थप्रकाश" में अत्यन्त भोजवली भाषा में की थी। स्वराज्य की उनकी कल्पना यह थी कि "कोई कितना हो कर, परम्पु जो स्वदेशीय राज्य होना है, वह सर्वोपरि उसम हाता है। मनमानान्तर के आग्रह से रहित, अपने पराये को पक्षपात से शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, ध्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य एवं मुलदायक नहीं होता।" सावभोम चक्रवर्ती साम्राज्य के बारे में उन्होंने लिखा है कि "सुष्टि में लेके पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सर्वोपरि चक्रवर्ती अधोत् भूगोल में सर्वोपरि एक मात्र राज्य था। अन्प देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहने थे।" "अब अन्प देशों में राज्य करने को तो कथा ही क्या कहना, किन्तु आर्यावर्त में भी अर्यों का अखंड, स्वतन्त्र, स्वाधान, नान्य राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है, सो भी विदेशियों से पादाकाल हो रहा है। क्या बिना स्वदेशी-न्तर और शीप शीप न्तर में राज्य व व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है ?" स्वदेशी की सर्वाथ कान्ते हुए ऋषि ने लिखा है कि "देशो अग्नेज्ज अपने देश के बने बुजे जूने को कार्यालय और कचहरी में जाने देने है, इस देशी जूत को नहीं। इनने हो म समझ लो कि अपने देश के बने जूने की भा किननी म-न-प्रतिष्ठा करने हैं, उतना भी अन्प देशल मनुष्यों को नहीं करने।" जिन वेद-मन्त्रों और वैदिक ऋचाओं को सिर्फ धार्मिक प्रार्थना के लिये समझ जाता रहा है, इनसे ऋषि ने राष्ट्रीय प्रार्थनाओं का सुत्रपात किया है। "आर्याभि वचथ" राष्ट्रीय प्रार्थनाओं की पुस्तिका है। ईश्वर के लिये राज, साम्राज्य-प्रसारक,

# गुरुकुल

२१ वैश्व शुक्रवार १९६७

## गुरुकुल चालिये

सम्भवतः आर्य जगत् को यह भली-भांति ज्ञान होगा

कि इस वर्ष गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३६ वां वार्षिकोत्सव १० से १४ अप्रैल तक गुरुकुल की सुदृढ भूमि में आयुर्वं उत्साह एवं सज्जध के साथ मनाया जायगा। आप जिस दिन की प्रतीक्षा उत्सुक-नयनों द्वारा एक साल से कर रहे थे वह दिन आने ही वाला है यह समाचार जानकर सारी आर्यजनता के हृदयों में अपार हर्ष उमड़ पड़ेगा। प्राचीन ऋषियों द्वारा शतशः प्रशंसित हरिद्वार की इस तपोभूमि में पदार्पण करने हुए आपका हर्ष क्यों न उमड़ेंगा? गुरुकुल का इतना विशुद्ध-वातावरण और गंगा के किनारे हिमालय की उपत्यका में वेदशास्त्रों का चिन्तन, किनारा आनन्ददायी है यह आप अनुभव करके ही जानेंगे। इतनी सुन्दर गंगा की धारा और प्रकृति की अनुपम शोभा आपको अन्यत्र कहाँ उपलब्ध होगी और उस हृदय की उदा कल्पना कीजिये जबकि येने पुनीत स्थान पर गुरुकुल में वार्षिकोत्सव होगा जिसमें आर्य समाज के उच्चतम कोटि के सभ्यसिंघों एवं विद्वानों के उपदेश तथा व्याख्यान होंगे। सोने में सुगन्ध होना इसी का नाम है। हमारा आप से साग्रह निवेदन है कि आप इस अवसर को न चूकिये और अपने बन्धु-बान्धव, इष्ट-मित्र, पुत्र-कलत्र के साथ नियत तिथि को गुरुकुल अवश्य पधारिये। आपके यहाँ आने पर उदरने का, स्नान-ध्यान तथा ज्ञान-दान आदि सभी बातों का समुचित सुप्रबन्ध रहेगा और आप को किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा ध्यान रखा जायगा।

इस उत्सव के साथ गुरुकुल अपने जीवन का एक अन्य वर्ष समाप्त कर रहा है। यद्यपि कहने को कुल का जीवन केवल ३६ वर्ष का है किन्तु इस धोड़ें ही का नम हमारे देश में शिक्षा-क्षेत्र में चढ़ी सुधी उन्नत का है। एक समय था जब कि शिक्षा के माध्यम, आभ्रम जीवन आदि अनेक बातों में हमारे देश की शिक्षा संस्थाएँ गुरुकुल से बहुत पिछड़ी हुई थीं। भीम २ हमारे देना देवीअथवा समय के प्रभाव से देश का शिक्षा-संस्थाओं ने लिखान्त-रूप में उन सब बातों को हवीकार कर लिया कि जिन के आचार पर गुरुकुल की शिक्षा अवलम्बित है। इस समय भारतीय शिक्षा के विकास में दूसरा युग आया। बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय, विजयापट्टन में आर्य विश्वविद्यालय, व हैदराबाद में जामिया उस्मानिया का जन्म इसी युग में हुआ था। किन्तु उन्हीं दिनों महात्मा गांधी के नेतृत्व में वह प्रखर-उत्साह आ देश में आर्य जिसमें खुले रूप में देश का ध्यान राष्ट्रीय शिक्षा की ओर आकृष्ट हुआ। इसी

जमाने में काशी, गुजरात, बिहार व जामिया (मिलिया आदि विद्यापीठ कायम हुए। यह सन्तोष की बात है कि इस सब विद्यापीठों ने गुरुकुल के शिक्षा-क्रम व आभ्रम जीवन को काफी हद तक अपनया। दिल्ली के निकट युवना के पवित्र तट पर छोटे विद्याधियों के लिये जामिया-मि लया द्वारा स्थापित नये आभ्रम हमारी इस बात के उत्सल प्रमाण हैं और अब देश के शिक्षाक्रम में एक नवी कान्ति होने जा रही है। कान्ति को इस उद्यतपुत्राल में हमारा गुरुकुल क्या भाग ले सकता है इसका निर्णय करना हरेक गुरुकुल प्रेमी का कर्तव्य है। गुरुकुल का वार्षिकोत्सव उसी पुनीत कर्तव्य की याद दिलाता है। हमें आशा ही नहीं निश्चय है कि भारी संख्या में उपस्थित होकर जहाँ इन्, उत्सव को सफल बनायेंगे वहाँ गुरुकुल की उन्नति के लिये भी सक्रिय परामर्श देकर हमें अनुपगृहीत करेंगे।

कई सामयिक परिस्थितियों के कारण इस वर्ष का उत्सव विशेष महत्ता लिये हुए होगा। उत्सव को रोचक, आकर्षक और शिक्षाप्रद बनाने का अधिकारी वर्ग भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं। आशा है इस महोत्सव का देश पर स्थायी प्रभाव पड़ेगा। सरस्वती सम्मेलन, कविता सम्मेलन, वेद सम्मेलन आदि-आदि विविध सम्मेलन विशेष महत्त्वपूर्ण होंगे। ११ अप्रैल को दीक्षान्त संस्कार होगा और नवज्जानकों को उपाधि प्रदान की जायगी। विष्व कवि गुरुदेव श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर का दीक्षान्त भाषण होगा। आचार्य क्षितिमोहन सेन शान्ति-संकेतन गुरुदेव के विशेष सम्बोध के साथ उनके भाषण को, पढ़ेंगे। तदनन्तर अपना भाषण भी देंगे। उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखते हुए हम तो आप से यही आर्थात्ना करेंगे कि प्रत्येक आर्य आर्य को अपने परिवार तथा इष्ट मित्रों सेवत इस महोत्सव अवश्य में आना चाहिये और इस सारे प्रोग्राम का लाभ लेकर ही लौटना चाहिये। अन्त प हम पुनः आशा करते हैं कि आर्य जनता अधिक से अधिक संख्या में भाग लेकर गुरुकुलगत को पूर्णरूपेण सफल बनाने का प्रयत्न करेगी।

## ‘गुरुकुल-अन्मोत्सव’ की तिथि में

### परिवर्तन

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के वार्षिकोत्सव के अवसर पर होने वाला ‘गुरुकुल-अन्मोत्सव’ पूर्व सूचना-नुसार ६ अप्रैल को न होकर १४ अप्रैल को होगा। उत्सव पर पधारने वाले सज्जन नोट कर लें।

नायदेव  
कुल मन्त्री

### बुद्धी की सूचना—

वार्षिकोत्सव आ जाने के कारण ‘गुरुकुल-पत्र’ का अगला अंक ११ अप्रैल को प्रकाशित न होकर १८ अप्रैल को प्रकाशित होगा। हमारे पाठकगण नोट कर लें।



# गुरुकुल के ३६ वें वार्षिकोत्सव का कार्यक्रम

१ अप्रैल १९४१ तदनुसार २६ वैश्र १९९७

प्रातः—

- ७-२० से ८-१० तक हवन तथा भजन
- ८-३० से ९ तक उपदेश श्री स्वामी प्रतानन्द जी महागज
- ९ से १०-३० तक वेद सम्मेलन

ब्रह्मचारियों के वेद विषयक निबन्ध  
सभापति—श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार

मध्याह्न—

- १ से १-३० तक भजन
- १-३० से २-३० तक व्याख्यान श्री पं० मुखर्जि जी  
व्रतानवा इति
- २-३० से ३-३० तक व्याख्यान श्री पं० वेदव्रत जी  
वानप्रस्थी
- ३-३० से ४-३० तक छोटे ब्रह्मचारियों की अन्यास्यगी  
रात्रि—

७-३० से ८ तक भजन

८ से ९ तक व्याख्यान श्री स्वामी सत्यानन्द जी महागज  
विषय—“स्वाभ्याय”

९ से १० तक व्याख्यान श्री पं० यशपाल जी मिद्धान्तालङ्कार

११ अप्रैल १९४१

प्रातः—

७ से ११ तक दीक्षान्त संस्कार  
विश्वकवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का दीक्षान्त-  
भाषण होगा। आचार्य क्षितिमोहनसेन ज्ञाननिकेतन  
गुरुदेव के विशेष सन्देश के साथ उनके भाषण को  
पढ़ेंगे। तदनन्तर आपना भाषण भी देंगे।

मध्याह्न—

- १ से १-३० तक भजन
- १-३० से २-३० तक व्याख्यान श्री पं० धर्मेश्वरनाथ जी  
तर्कशिरोमणि

विषय—“हिन्दुत्वान की सुलभिम समस्या”

२-३० से ३-३० तक अपील

श्री पं० सत्यव्रत जी, मुख्याधिष्ठाता

रात्रि—

७ से ८ तक भजन

८ से ९ तक व्याख्यान श्री पं० बुद्धदेव जी वि.अ.

विषय—“मैंने कविता क्यों छोड़ी ?”

९ से १० तक व्याख्यान श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

विषय—“ज्ञानि यः शक्ति”

१२ अप्रैल १९४१

प्रातः—

७ से ८-३० तक भजन (मुख्य पंडाल)

७-३० से ९-३० तक आयुर्वेद महाविद्यालय का उद्घाटन  
श्री पं० ठाकुरदेव जी वैद्य अमृतधारा के कार्यक्रमों  
द्वारा। यह उद्घाटन आयुर्वेद महा-विद्यालय की  
जो नई इमारत बनी है वहां होगा।

९-३० से ११ तक दलितोद्धार सम्मेलन  
सभापति—श्री पं० यशपाल जी सिद्धान्तालङ्कार  
सञ्चालक, दलितोद्धार विभाग, पंजाब।

मध्याह्न—

१ म १-३० तक भजन

१-३० से २-३० तक व्याख्यान श्री पं० प्रियव्रत जी  
वेदवाचस्पति

२-३० से ३-३० तक व्याख्यान श्री पं० रंगामसाद जी  
एम ए, रिटायर्ड स्टाफ, जज

३-३० से ४-३० तक व्याख्यान श्री महाराम नारायण  
स्वामी श्री महाराज

विषय—“संकल्प बल”

रात्रि—

७ से ८ तक भजन

८ से १० तक व्याख्यान सम्मेलन

१३ अप्रैल १९४१

प्रातः—

७ से ९-३० तक वेदारम्भ संस्कार, श्री आचार्य  
अमरदेव जी नवीन प्रविष्ट ब्रह्मचारियों को उपदेश देंगे।

९-३० से ११ तक श्री पं० बिहारीलाल जी काव्यतीर्थ  
विषय—“मत्तमत्तान्तरो का राजनीति पद-प्रमाद्य”

मध्याह्न—

१ से १-३० तक भजन

१-३० से २-३० तक व्याख्यान डॉ० फुलनलाल जी  
विषय—“यक्ष के वैज्ञानिक लाभ”

२-३० से ३ तक भजन

३ से ४-३० कविता सम्मेलन

रात्रि—

संगीत सम्मेलन

१४ अप्रैल १९४१ तदनुसार २ वैशाख १९९८

प्रातः ८ बजे गुरुकुल जन्मोत्सव

## सूर्य-दर्शन-द्वारा दृष्टि सुधार ( उपनेत्र परित्याग )

( वेदक-श्री अक्षर गाल की बालमस्की, आधरिकाग्रम, आकाशपुर, हरिद्वार )

मेरी आयु का इस समय ६७ वर्ष वर्ष है, मैं २५ वर्षसे उपनेत्र ( चक्षुः ) लगा कर ही पढ़ सकता था। किन्तु अब एक वर्ष से अधिक होगा है कि मैंने उपनेत्र ( चक्षुः ) लगाना छोड़ दिया है और मैं उसके बिना ही सब प्रकार के अक्षर पढ़ और लिख सकता हूँ। यह कैसे सम्भव हुआ, यह बात मैं पाठकों को सुनाना चाहता हूँ, जिससे उनमें से कोई सख्तनी ही इस विधि का प्रयोग करे, अनुभव करे और लाभ उठाये।

सन् १९३६ में मैं देवराषाढ़ सत्याग्रह संग्राम के कारण गुलबर्गा जेल में बन्द ( कद ) था। वहाँ श्री नारायण स्वामी ज. महाराज और ला० लुगहाल चन्द जी खुसंभ को जेल से पृथक एक अन्य बंगले में रखा गया था, मुझ भी वहाँ ही भेज दिया गया। यह बंगला ऊँची भूमि पर था; उसके अग्राने की दीवारें चार पांच फाट से ऊँच नहीं थीं; उलक चारों ओर अन्ध भवन वा दूर तक वृक्षों कुछ नहीं थे; इस लिये प्रातःकाल जब मैं बगले के अग्रान में प्रमत्त किया करता था, तो भगवान् भुवन-नास्कर के दर्शन मुझे उदय के साथ ही हो जाते थे।

मैंने एक योग्यास्यासे मे सूर्य के बाहक की बात सुनी हुई थी; उसने मुझे बताया था कि इससे उसके नेत्रों की ज्योति बहुत बढ़ गई थी। अतः मैंने भी उस अवसर को इस कार्य के लिए उचित समझा और मैंने सूर्य की रोशनी फैलने के आरम्भ होने के साथ ही अपने नेत्र उसके समुच्च लगातार चाले रखा- आरम्भ कर दिया। मैंने प्रथम ५ मिनट देखा किया, किन्तु शनैः २ बड़ा कर मैं बीस मिनट तक देखा करने लगा था। जब मैं नेत्र सूर्य की ओर बालता था, तो आरम्भ में चौंध लगती थी, किन्तु एक या दो मिनट के बाद ही चौंध लगना बन्द हो जाता था और सूर्य की, करवें बीच में से लुप्त जैसी होजाती थी तथा सूर्य का मडल बहुत स्पष्ट दीखने लगता था। उस में कई रंगों को चमक भी देखती थी और बड़ा शान दीखने लगता था। इस क्रिया में मेरे नेत्रों की ज्योति भी उभर होती हुई मुझे प्रतीत हुई। तीन चार मास बराबर ( वर्षों के दिनों को छोड़ कर जब प्रातः सूर्य मेघों में उदय होता था ) मैं इस क्रिया को करता रहा। तब मैंने बिना चक्षुः पढ़ना और लिखना आरम्भ किया। प्रथम तो मैं साधारण अक्षर ही पढ़ सकता था, किन्तु धीरे धीरे शक्ति बढ़ गई और अब सुक्ष्म अक्षरों के पढ़ने में भी कोई कठिनाई नहीं होती। यह भी बनला देना उचित होगा कि २५ वर्ष में मुझे तीन बार चक्षुः लगा पड़ा था। पहला १ + १५, दुबारा + २५० और तिसरा + ३.२५ लिये था। यही चक्षुः मैंने छोड़ा है अब भी मैं बन्द-कदा, जब लम्बे होता है जंगल में प्रातः काल उदय के पश्चात् ही सूर्य की ओर नेत्र झोल कर ५ व १० मिनट तक उसका प्रभाव अपने नेत्रों में ले लिया करता हूँ।

( पृ० ३ का लेख )

सुराज्यप्रद, राज्य विधायक, महाराजाधिराज, सन्नाह आदि शब्दों का प्रयोग करना भी उनको उचित राशीयता का चीनक है। उनके सारे ही जीवन में यही दृष्टीयता झोल-झोल थी। राजस्थान उनके कार्य का विशेष क्षेत्र रहा। यहीं पैठ कर उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' लिखा। यहीं पर 'परोपकारिणी सभा' की स्थापना की। स्वामी रामदास ने जैने शिवा जी को और गुरु गोविन्दसिंह जी ने जैने बन्धा धरामों को जोज निकाला था, जैसे ही श्रुति ने किसी क्षत्रिय की जोज में सारा रज्याण छान मारा था और इसी जोज में उनके महाल जीवन का उत्सर्ग हो गया।

आज आर्य समाज का स्थापना-विषय मनाते हुए क्या हमारा ध्यान श्रुति के इस राष्ट्रीय स्वरूप की ओर जायगा और क्या हम श्रुति के महान मिशन की दृष्टीयता को हृदयंगम कर उसकी पूति में अपने को लगा सकेंगे ? तब ही सारे विश्व में आर्यवंत के सात्राज्य की स्थापना करके "कुण्वतो विश्वमायम्" के नाने को हम स्थापक कर सकेंगे।

## गुरुकुल वैधान्य धाम

भरवृकों से आवश्यक निवेदन

गुरुकुल महाविद्यालय वैधान्य धाम की अन्तःकृत् सभा का गलाधिवेशन 'आर्युति' संवाहक श्री मिहिरचन्द जी धीमान' के सनायित्व में कुनभूमि में संयत हुआ। 'सर्व' सम्मति से 1-नक्षत्र किया गया। कि इस वर्ष का वार्षिकोत्सव पूजा की लुट्टी के दिनों में अर्थात् ३५ और ५ अक्टूबर को समांगह के साथ किया जाय। प्रथम श्रुतु में वार्षिकों को अनेक प्रकार की अनुविधा रवनी है इस-लिए वह समय छोड़ दिया गया।

गुरुकुल कांगड़ी से निराक्षरक नियुक्त होकर श्री प्रो० हरिदत्त जा वेदालकार यहाँ आए और उन्होंने अच्छी प्रकार से अक्षरारिणी की पढ़ाई आदि का निरक्षण किया। उनकी सम्मति में पढ़ाई बहुत संतोष जनक है। उनकी सम्मति के अन्तर्गत पर ही गुरुकुल कांगड़ी की विधासभा इस बात का निश्चय करेगी कि गुरुकुल वैधान्यधाम की दशम श्रेणी ( विद्यारज ) परीक्षा का 'अधिकारिणी' परीक्षा के समकक्ष समक कर उतीर्ण विद्यार्थियों को सोचा गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में प्रविष्ट कर लिया जाय। राय बहादुर ब्रजनन्दसिंह जी, रिटावर्ध एक्सपैडिज कमिश्नर बिहार ने भी श्रेणियों का निरीक्षण किया और उनकी प्रगति पर संतोष प्रकट किया।

शिवरात्रि के पूर्व पर श्री दयानन्द शोषोत्सव को धूम-धाम से मनाया गया। सवेरे ४ बजे ने ही प्रभात फेरी करना हुआ जल्ल ससीपस्थ अनेक प्रामों में घुमा और श्रुति का सम्प्रेष पढ़वाया गया। बुद्ध दहन और सभा के साथ यह कार्य समाप्त हुआ।

अनेक संरक्षक गुरुकुल की पुरानी नियमावली के अनुसार १२ वर्ष तक के लड़कों को प्रविष्ट कराने के लिए लेकर आ जाते हैं। पिछले दिनों अनेकों को निराश होकर लौट जाना पड़ा। जनता को इस झूति से मुक्त करने के लिए सूचित किया जाता है कि नयी नियमावली के अनुसार १० वर्ष तक के ही विद्यार्थी प्रविष्ट किए जा सकते हैं। इसको ख्याल रख कर ही प्रार्थी आवेदन पत्र भेजेंगे।

—वीरेन्द्र, आचार्य।

### गुरुकुल समाचार

गुरुकुल का वार्षिकोत्सव समीप आ जाने के कारण गुरुकुल के सब विभाग तय्यता से कार्य कर रहे हैं। यद्यपि इन दिनों गर्मी बढ़ती जा रही है तथापि चार्जों ओर के वातावरण में किया-शीलता और उत्साह नज़र आ रहा है। अधिकारी वर्ग अधिकार से उत्सव को सफल और शानदार बनाने में लगे हुए हैं। आशा की जाती है कि यह उत्सव विशेष तौर से कामयाब होगा।

गत ३१ मार्च को दानवीर सेठ श्री तुंगलकिशोर जी बिड़ला के इञ्जिनियर भ्रियुत गय प्रमोदय गुरुकुल आए। आपने वेद-भवन के लिए उपयुक्त स्थान को पसन्द किया। आशा है वेद महाविद्यालय बनने के बाद शीघ्र ही 'वेदभवन' का कार्य प्रारम्भ कर दिया जायगा। इञ्जिनियर साहब ने मैदार हो रहीं इमारतों में स्थापयकलासुसार थोड़ा परिवर्तन करने की भी सम्मति दी जिसके कारण नई इमारतों की सुन्दरता और भी बढ़ जायगी।

### स्वास्थ्य समाचार

वीरेन्द्र ३ भेपी वि० उबर, वेदभूषण ४ भेपी वि० उबर, लाजपत ४ भेपी नेत्र रोग।  
गन समाह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुये थे। अब सब स्वस्थ हैं।

### गुरुकुल कुकुक्षेत्र समाचार

वार्षिकोत्सव के बाद पढ़ाई नियमानुसार शुरू हो गई है। अब तक गुरुकुल में ८ मं भेपी तक ही शिक्षा का प्रबंध था; इस साल से ६ मं भेपी की पढ़ाई का भी यही प्रबंध कर दिया गया है। अगले वर्ष १० मं की पढ़ाई भी शुरू करा दी जायगी। इस प्रकार ब्रह्मचारी यहाँ से पढ़ाई पूरी करके सीधे गुरुकुल कांगड़ी जा सकेंगे।

जो महातनुभाव कारण वश गुरुकुल के उत्सव पर बालक प्रवेश करने के लिये नदी आ सके वे गुरुकुल कांगड़ो के उत्सव पर अपने बालक को गुरुकुल कुकुक्षेत्र के लिये प्रविष्ट करा सकते हैं। इस संवत्सव में सब बालक ही १० सोमदत्त जी मुख्याधिष्ठाता के पास करनी चाहिये। आए कांगड़ी के उत्सव में पहुँचेंगे।

### गुरुकुल कमालिया

गुरुकुल कमालिया का वार्षिकोत्सव ११ १२, १३ अप्रैल १९४४ को बनाना निश्चय हुआ

है। नये ब्रह्मचारियों का प्रवेश संस्कार १३ अप्रैल रामनवमी के पवित्र दिन होगा। जिस सज्जन ने अपने ब्रह्मचारी को गुरुकुल में प्रविष्ट कराना हो वह मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कमालिया में सोधा पत्र व्यवहार करे। इस वर्ष केवल १० नये ब्रह्मचारी प्रविष्ट किये जाएंगे।

### गुरुकुल मुलतान

उत्सव बड़ी रीनक के साथ समाप्त होगया। गत वर्षों की अपेक्षा बड़ा विस्तृत परदाहा बनाय गया था। यह सब का सब भरा रहता था। उत्सव पर मं स्वामी वेदानन्द जी महाराज, श्री पं० प्रियव्रत जी, श्री० पं० सोमदत्त जी, श्री० पं० रामस्वरूप जी के व्याख्यान तथा पं० हरिश्चन्द्र जी के भजन होते रहे जिनको जनता ने बहुत पसन्द किया। इस अवसर पर हिन्दी भाषा, पाकिस्तान, संगीत आदि सम्मेलन भी हुए। श्री० पं० सोमदत्त जी की अपील पर तथा पहिले एकत्रिन किया हुआ धन कुल २५००] हुआ। तत्पश्चात् ब्रह्मचारियों ने पं० सोमदत्त जी का बनाया 'परिवर्तन' नाम का नाटक किया और प्रो० विक्रम जी की अध्यक्षता में खेल दिखाया।

इस अवसर पर एक दानी ने आश्वासन दिया कि यदि कुछ सज्जन गुरुकुल में अपने बालकों को प्रविष्ट करना चाहते हो पर आर्थिक दशा के कारण गुरुकुल का नियत शुल्क १०] मासिक न दे सकने हो तो उनके बालकों को ८] मासिक पर ही ले लिया जाए। १० संख्या तक प्रविष्ट होने वाले बालकों का शेष धन २]०० प्रति मास के हिसाब से २०]०० प्रति मास दे दिया करेंगे।

### अमर शहीद श्रद्धानन्द

- बलिदान धर्म-देश की खातिर ब्रह्म होगया।
- अन्ध आत्मन् भग नहीं जीता सिन्धु गया ॥१॥
- ईश्वर और वेद की विद्या जब लून हुई।
- आन्धर्य की वनार्थ हुई शिक्षा फैला गया ॥२॥
- विशवा अलूत अनर्थों का दुःख देख।
- बिगड़ी दशा सुधार के तुलझ मिटा गया ॥३॥
- बिछुड़े लिये के टुकड़ों छाती को लगा लगा।
- मुस्लिम ईसाई होने से उनको बचा गया ॥४॥
- हिन्दी जो हिन्दू को भाषा बनी थी प्रिय।
- शिक्षा में उच्च मान उसको कितना गया ॥५॥
- स्वार्थीनता स्वदेशी का हार्थ बना अजब।
- अभिमान देश जाति पै करना सिन्धु गया ॥६॥
- राष्ट्रीय मेल मिलाप का अगुआ बना अजैय।
- संगीन किर्च के कारों का डाल बन गया ॥७॥
- शुद्धि के प्रेम-सम्भन की दीक्षा लिये प्रथम।
- प्यारे की गोली बुद्ध रख मरना निश्चा गया ॥८॥
- था आर्थ्य विश्व-प्रेम प्रचारक सदा अमय।
- संसार के उपकार में जीवन खिला गया ॥९॥

"दिवेक"



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विधाविद्यालय का मूल-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदाक्षर

वर्ष ६]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार ६ वैशाख १९६८; १८ अगस्त १९६१

[ संख्या ५१ ]

## दीक्षान्त-अभिभाषणा

( श्री रवीश्याम अग्र )

( गुरुकुलोपन पर शरीर की अवस्थान के कारण विध-विधि उपवेश की रीतिगण्य डाकुर स्वयं उपस्थित न हो सके उसके निम्न भाष्य की भी प्रति मोहन सेन आचार्य शा.सत निकेतन ने पत्रा और तपस्कार, यथा: दीक्षान्त अभिभाषण्य भी दिया )

—सम्पादक

मुझे तुम्हें है कि मेरा तुम्हें देह तथा तुम्हें व्याधि मुझे इस महात्मा उत्सव में उपस्थित होने के मान्य मे रचित कर रहा है। आज इस गुरुकुल विधाविद्यालय के नवम् शतकगण्य अपने गुरुकुल के शंको में बैठकर प्राप्त किये जाने से दीक्षान्तकृत करके और सब प्रकार से सुगन्धित होकर, कुलमाता को प्रत्यक्ष नमस्कार कर, विभूत संभार में विभीषण भाव से प्रवेश करने के लिये उत्पन्न है। मैं इस तपस्व बनायाकों के भाषी प्रवचनों में पूर्ण सफलता चाहता हूँ तथा उनको अपने हृदय के अन्तःस्थल में आशीर्वाद देता हूँ।

उप से मैंने शिक्षक बनने का दुःसाध्य प्रत ग्रहण किया है सभी से शिक्षक कार्य का एक विशेष रूप में प्रेरण ध्यान आकृष्ट किया है। आज मैं एक बार फिर उस विशेषरूप पर जोर देना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं अपने पुराने विचारों का विधेयक कर रहा होऊंगा किन्तु यह मेरी अवस्था के व्यक्ति के लिये अभिवार्य है।

एक जाति के रूप में, हरे यह उपलब्धि पूर्णतया हो जानी चाहिये कि हम हैं क्या? यह उक्ति एक स्वतःसिद्ध सत्य है कि किसी जाति की एकता की उपलब्धि से उस जाति के व्यक्ति तथा समष्टि दोनों रूपों का पूर्ण ज्ञान अभिप्रेत होता है। परन्तु हम में से अधिकांश व्यक्ति भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ में इन दोनों दृष्टिकोणों से सर्वथा अपरिचित हैं, इतना ही नहीं, किन्तु हम में इस ज्ञान को विकसित करने की सीमा कार्याका भी नहीं है।

राजनैतिक प्रचार में अज्ञता के साथ अपनी राष्ट्रिय एकता को उद्घोषित करके, हम अपने को यह विश्वास दिला देते हैं कि हम में यह उपलब्धि विद्यमान है और इस प्रकार राजनैतिक विद्यालयों के कल्पनाओं में रखा करने हैं।

सत्य तो यह है कि हमें अपने देश के विषय में ऐसी रुचि बहुत कम है जो मनुष्य के प्रति सहाय्युक्ति के रूप में प्रकाशित होती है। हम राजनीति और अर्थशास्त्र की चर्चा करना पसन्द करते हैं, शास्त्रीय गुरुताओं के सुष्ठु वायुमण्डल में ऊंचा उड़ान लेने को उद्यत हैं, निरर्थक प्रभावाद के शरद्यों के छायाशोक में भरते हैं, परन्तु संकीर्ण सामाजिक सीमाओं को अतिक्रमण कर अपने प्रतिवेशी जनसमुदाय के द्वार तक आने की उत्साह कभी नहीं करते। हम स्वयं यह जिज्ञासा भी नहीं करते कि शास्त्र-पद्धत के ये सब लोग क्या सोचते हैं, क्या अनुभव करते हैं, कैसे अपने ज्ञान को प्रतिष्ठा करते हैं, और किस प्रकार अपने जीवन को डाल रहे हैं।

मनुष्य के मानवमैम में सम्भावतः ही ज्ञान की क्षुधा रहती है। यदि हम में राजनैतिक वाद-प्रतिवादों के अतिरिक्त इस क्षुधा का सर्वथा अभाव हो तो भी कम से कम निष्काम ज्ञान-पिपासा ही हमें एक दूसरे के निकट ला सकती थी। परन्तु, इसमें ही हम असफल ही रहे और हम ज्ञान ढडामी पड़ी कर्मीक ज्ञान की दुर्बलता शक्ति की दुर्बलता की मिस्रि है। जबकि हमारे मन में भारतवर्ष का पूर्णरूप से स्पष्ट बोध नहीं हो जाता तबतक हम भारतवर्ष की उसके साथ स्वरूप में नहीं प्राप्त कर सकते। और जहाँ सत्य ही अर्पूर्व है, वहाँ प्रेम का पूर्ण राज्य हो नहीं सकता। हमारे शिक्षक केन्द्रों का वरिष्ठ कार्य हमें आत्मा-तुशीलन में सहयता देना है और तभी इसके साथ ही साथ आत्म-निर्देश के लिए प्रेरणा उत्पन्न करने का दूसरा उद्देश्य भी पूर्ण हो जायगा।

योरोंप की इतनी विशाल बौद्धिक शक्ति का कारण उसकी मार्गसक शक्तियों का सहयोग है। योरोंप ने एक ऐसे साधन का विकास कर लिया है जिसकी सहायता से उस महाद्वीप के सब राष्ट्र एक साथ मिलकर साच सकते हैं। विचारों की इतनी बड़ी संघटना अपनी गति के प्रकण्ड प्रवाह से स्वभावातः योरोंप के विचारों के सब वैयक्तिक विकासों तथा अर्थोक्तिकता के आतिशय्य को मिटा देती है। यह योरोंप की कल्पना की उड़ानों को उद्दाम नहीं होने देती और उसे उपयुक्त सीमा में रखकर शासन किये रहता है। योरोंप की विभिन्न विचार किण्वे एक सामान्य

संस्कृत में कंग्रित हो गई हैं और यह संस्कृत घोषण के सभी विश्वविद्यालयों में पूर्णरूप से अभिव्यक्त होती है।

दूसरी ओर, भारत का बिना विभक्त और विकीर्ण है। यहां कोई सामान्य मार्ग नहीं जिस पर चलकर हम इस तक पहुँच सकें। हम वही दुःख से देखना पड़ता है कि हमारा मानसिक शक्तियों का निर्माण करने वाली शास्त्राय शिक्षा में संजीवनी-शक्ति की मृत्युना है। इन मनों द्वारा ज्ञान और सहाय्युक्ति के सहयोग से देश के बुद्धिमानों का समुल्लेख किया जा सकता है। हमारा शिक्षणसंस्थाओं का सब से अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य प्रत्येक विद्यार्थी को उसके व्यक्तित्व की उपलब्धि करने में सहायता देना है। यह उपलब्धि ऐसी होनी चाहिये कि प्रत्येक विद्यार्थी यह उदारतापूर्वक अनुभव कर सक कि वह व्यक्त रूप में सर्वोच्च जाति का प्रतिनिधित्व कर रहा है और यह जानने में भी समर्थ हो सके कि इस विशाल मानव-जगत् में उन्पर होना उनके जीवन का महत्त्वम नथ्य है।

भरत में यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे भारत जो कुछ श्रेष्ठ है उसकी अभिव्यक्ति का वह अवसर हमें नहीं मिलता जिससे संसार को शक्तिशाली राष्ट्रों के साथ बलिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। आजकल राष्ट्रों की संबंध-भ्रष्टता पारस्परिक आशंकाओं की कड़ियों से बनी होती है। इस भ्रष्टता की दृष्टता आनन्द पर आश्रित है। परिणामतः स्रद्धाविधान, भर्त्सना तथा भयप्रदर्शन की प्रतिस्पर्धा में साधनों का असाधारण संश्लेषण हो रहा है। राजनीति के दुःस्वप्न के तमसावृत्त प्रदेश में सत्य के पवित्र प्रकाश को प्रविष्ट कराने वाली कोई महती वंशी भूमिगोचर होने की प्रतीक्षा कर रही है। परन्तु भारत में हमें अभी अवसर प्राप्त नहीं हुआ है तथापि हमारी अपनी मानवीय वादी हैं जिसकी सत्य को आकांक्षा है। उस क्षेत्र में भी जहाँ हम कार्य करने के लिये आश्रमिष्ठ नहीं हैं, हमारा यह अधिकार है कि हम निष्पक्ष करें और न नयमन का उचित दृष्टिबिन्दु की ओर पथप्रदर्शन करें तथा उनके यथार्थ के हृदय में विद्यमान आदर्शवाद की आँकीं दिलायें।

## दीक्षान्त अभिभाषण

(आचार्य कितिमोहनमेन)

विद्या-प्रत-ज्ञातक तरुण मित्रों,

विशाल है यह सना। नाना देशों के ज्ञानी और गुणी विद्वज्जनों का यह महान सम्मेलन है। आज ज्ञान और तपस्या का महायज्ञ यहाँ अगुप्त होना। इस महायज्ञ क जो आश्रम है उनके पृष्ठभूमिक के लिये भारत के नाना क्षेत्रों से यहाँ अथ उपनीत हुआ है। उत्तर-पूर्व भारत का पुत्रा इस ज्वालायंश में उपस्थित करने का लीलाय लेकर में यहाँ आया है। तथापि ऐमे ऐमे खरेख्य सन्तुक्तों के रहने हुए मेरे लैसा कुलभिक्ष व्यक्ति किसी प्रकार का सकार पाने का अधिकारी नहीं है। फिर भी मेरा एक महालैलाय है कि मैं अब्बना में अंग्रेज ज्ञान में श्रेष्ठ, भारतज्ञानता के महाप्रतिभाशाली पुत्र

महाकवि आश्रमगुरु रवीन्द्रनाथ का अर्घ्यपात्र वहन करते इस महायज्ञ में उपस्थित हुआ है।

मैं अपने किसी व्यक्तिगत गुण के लिये यह सम्मान नहीं पा रहा हूँ। मुझे नहीं भूलना चाहिये कि जिस महात् व्यक्त का अर्घ्य पात्र लेकर मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ, उनके गुणों के कारण ही मैंने यह सम्मान पाने का अधिकार पाया है। भिय स्वजनों के यह से जो दास वृत्तियाँ सौगत लेकर आनी है वे अकिचन होने पर भी सम्मान पाती हैं। भियजनों की वार्थी ले आने व ला मामूली कागज का टुकड़ा भी वरख्य हो जाता है। फिर भी कागज, कागज ही है और उसकी कीमत उस संदेश के कारण है जो वह लेकर उपस्थित हुआ है। यहाँ रवीन्द्र-नाथ की एक छोटी कविता मुझे याद आ रही है—

रथ-यात्रा लोकारण्य महा धूम धाम,  
भकेरा लुटाये पथे करिखे प्रणाम।  
रथ भवे आभि देव, पथ भवे आभि,  
सुनि भावे आभि देव, हावे अल्लयामी।

अर्थात् "रथयात्रा के समय लोगों की भीड़ जमी हुई है, धूम धाम के साथ उत्सव मनाया जा रहा है। भक्त झुलटिन होकर प्रणाम कर रहे हैं। रथ सोचता है, मैं ही देवता हूँ, पथ सोचता है मैं ही देवता हूँ मुझे मूर्ति सोचनी है कि यही असल देवता है। अल्लयामी देव देव कर हँस रहे हैं।" तो भी आप लोगों ने अगर मुझे मेरे संदेश से भी अलग करके सम्मानित किया है तो यह आपकी महिमा और गाढ़ प्रीति का ही परिचायक है, मैं अपने को सचमुच ही उस हाकार और सम्मान का अधिकारी समझ कर आप को उस प्राति और महिमा को छोटा करना नहीं चाहता।

इस उपलक्ष्य में इस महानिर्घं में आने का अवसर पाकर मैं स्वयमेव धन्य हुआ हूँ। न जाने कितने दिनों से यह हरिद्वार तीर्थ और स धना का क्षेत्र है। नाना पुराणों और नाना शास्त्रों में इस क्षेत्र का साहाय्य पुनः पुनः उद्घोषित किया गया है। यह इतिहास आप लोग मुझ से अच्छा ही जानते हैं। बार-बार सुनी हुई उन बातों को नये लिये मे वृहत्तरे को कीर्ति अकरन नहीं है। आज कार्य बहन है, समय थोड़ा है।

इस तीर्थ के साहाय्य को आपके इन गुरुकुल ने बहुत अधिक बढ़ा दिया है। इतने दिनों से कितने ही साधकों ने यहाँ ज्ञान की साधना की है और प्राचीन-साधना पीठ को नई प्राणशारा से और भी पवित्र, और भी प्राणवान तथा और भी महनीय बनाया है। उषा की श्रुवेद ( ३. ६१. १ ) में "पुरानी युवनी" कहा गया है। उषा का विरग्नन सौन्दर्य प्रति राज के अस्त में मृत्यु के समान घने तिमिर सागर में क्षान करके निर्य नया जन्म धारण करके और भी मनोरम हो उठता है। अथय वह जीवन से जीवन्त है, यही कारण है कि वह फिर नहीं है, पुरानी युवती है। यैशों के सनातन संदेश में यही विर-नवीन महिमा है। आपने इस पुराने साधनापीठ में शाश्वत वेद-वाणी को नवीन रूप में उपलब्ध किया है।

यह साधना उषा की भांति ही पुरानी युवती है फिर नवीनता किये हुए है।

इस तपस्या के गुरु श्रीमन् स्वामी अज्ञानन्द जी को उनके गुरुद्वेष्य जीवन में भी देखा है और उनकी तापस श्रमका में भी मैंने देखा है। आज उनकी तपस्या की यहाँ स्वियमती देखकर ऐसा जान पड़ रहा है कि उनकी सम्पूर्ण भाव से उपलब्ध कर रहा हूँ। वे आज परलोक में नहीं हैं, आपकी इस तपस्या में पहले मे कहीं अधिक जीवित हैं। उनके साथ जो परिचय हुआ था, वह परिचय मुझे पूर्ण और सार्थक जान पड़ता है।

पश्चिम सत्य के दो रूप हैं, एक ख्रिश्चितीय और दूसरा गतिशील। यूरोप के विचारकों को धारणा है कि हम पूरब के रहने वाले सत्य के ख्रिश्चितीय रूप के उपासक हैं और वे लोग गतिशील रूप के। किन्तु जब मैं देखाता हूँ कि वे अपने गतिशील विज्ञान की सहायता से अपनी आदिम ख्रिश्चितीय मनोवृत्तियों को ही पूजा करने हैं तो मुझे उनका भाग्य हमारी अपेक्षा बहुत आशा जनक नहीं दीखता। आदिम मानव के हाथ में जो काठ-पत्थर बौद्ध अथवा धेड़की कई गुना शक्तिशाली होकर वैज्ञानिक मशीनों के रूप में अपनी ही रूप हैं। आगे के मनुष्यमत्ती एकाध व्यक्ति को बनाया करने थे, आज एक पूरा राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को निगल रहा है। इन्हे "यू-केनिलिगम" या सामूहिक मनुष्यमत्तलन न कहें तो क्या कहें। विद्वेध और एक शोषणकी प्रवृत्ति ने जातीयता का नाम लेकर अपने को भद्रवैशी सम्प्रदाय के रूप में विज्ञापित किया है। इस समय अज्ञानक उसका रूप उद्घाटित हो गया है। जो रक्तचूषण दूसरों के रक्त से इन्ने दिनों के नम होनी रही है वह आज अपना ही रक्त चूसने के लिये भयंकर मूर्ति धारण कर रही है। कहानियों में कर्मा कर्मो राक्षसी सुन्दरी की का रूप धारण करके राजकुमार के पास जाने सुनी गई है किन्तु अयोधी उस तोने या अश्व पद पर, जिसमें कि उस (राक्षसी) का प्राण बनना है, किसी का हाथ पड़ता है त्यों ही उसकी वास्तविक राक्षसा मूर्ति अज्ञानक प्रकट हो जाता है। यूरोप का भद्रवशा सम्प्रदाय का राक्षसी रूप आज विकराल भाव में फूट पड़ा है। उस सम्प्रदाय का प्राण जिस स्वाध्यायना नामक लोग ने बाल करना था वह आज नुरक्षत नहीं है, इसा लिये यह विकराहता है।

मैंने कहना का यह तथ्य नहीं है कि सारा यूरोप येनै स्वार्थपर लोगों से ही भरा है। यहाँ की सम्प्रदाय ने प्रधान रूप से ऐसे लोगों का वाद्ययुक्त है जो बन्तुतः आदिम वृत्तियों के ही बपासक हैं। थिसे व्यक्तिगत रूप से यहाँ बड़े बड़े साधक और तपस्वी आज भी विद्यमान हैं इस विषय में कोई दो मन नहीं हो सकते। किसी भी देश में सारा देश का देश तपस्या द्वारा आदर्श हो उठा है ऐसा कभी नहीं हुआ है। स्वधेध अधिकार भेद होता है और सत्य वृत्तिये ही इस महान् भारतवर्ष के आधुनिक अधिवासी हल सचमुच ही आधुनिक वृत्ति के है या नहीं इस बात की परीक्षा का मौका इस युग में आया। आशा ही नहीं; उपयुक्त अवसर

पाने पर हम क्या हावे, कौन कह सकता है! उस परीक्षा का समय आयेगा। शीघ्र आयेगा। उसके लिये तुम्हारे प्रवीण पुत्रों ने कुछ कुछ तैयारी करनी शुरू की है। यह सभा उसी तैयारी का रूप है।

सो इस महालेख में जो सब साधु सज्जन, भक्त और साधक गण पचाने हुए हैं और जिन महामा लोंगों ने शिक्षा को ही जीवन का अंत समझ कर प्रहल किया है, उन सबको आज प्रणाम करता हूँ।

किन्तु हे ज्ञानक गण, तुम्हें आज इनकी जल्दी छोड़ने से तो काम नहीं चलेगा। प्रहलचर्य और गार्हस्थ्य के संधिषण्ड में तुम उपासक हो। तुम जब हम से पथ-निर्देश की आशा करने हो तब तो चुप रहना सम्भव नहीं है।

दिन की जहाँ समाप्ति है और रात्रि का जहाँ आरम्भ है या फिर रात्रि की जहाँ समाप्ति है और दिन का आरम्भ होता है उन पवित्र संधिलों का भागवत मुद्गल कटने हैं। तुम्हारे भी क्षात्र-जीवन का अवसान और उत्तर जीवन का आरम्भ होने जा रहा है। इस भागवत पुण्य-क्षण में तुम्हें कुछ बनाने क समय बताने वाले के भीतर तुम्हारे प्रति एक गरमर अद्भुत का आदर्शकता है। देश अथकार से समाच्छन्न है और तुम्हारा दाप जल चुका है। अन्धम्य लोगों का मार्ग दिक्कन का और बुभे दापकों की जना इन का भार तुम्हारा ऊपर है। भविष्यत युग के गुरु तुम्हीं हो। इस प्रकार तुम भी नमस्य हो।

आज का समस्या बड़ा जटिल है। प्राचीन काल का सदस्या शायद इनकी सुविध्या में नहीं थी आज प्राच्य और पाश्चात्य, युगान्त और नूतन सभी समस्यायें यहाँ आकर उपस्थित हुई हैं। इस तद-हीन, बेला-हीन महा सन्ध्र म तुम्हें यात्रा करनी है। भूल ज्ञान्य की लम्बावना पद-पद पर है। इसी लिये जब तुम हमारी ओर, जिन्होंने कि इन दास्ता की कठिनतायों का कुछ परिचय प लिया है, मार्ग जानने की आशा से देखने हो तो चुप रहना ठीक नहीं।

मुझे कबल अपने बताने सकने की योग्यता और अथकार क सम्बन्ध में संदेह होता है। अतीत ही अधिष्य के मार्ग को निर्विद्ध करता है। भारतीय ज्ञान-साधना के क्षेत्र में जो मूलकाल के अधीश्वर हैं वही मन्त्र की गति निर्देश करें। इसी लिये हम इतिहास से ही राहने के बाल पूछ सकते हैं। हमारी संकीर्ण बुद्धि उस मह-उपदेश को बाधामस्त कर सकती है। पर इतिहास हमें निश्चिन सत्य की ओर इशारा कर सकता है।

जिस प्रकार मिट्टी के नाना स्तरों के जमने से डेन्टा बना करत है उसी प्रकार भारत वर्ष की सभ्यता नाना जातियों की साधनाओं के एक दूसरे पर जमने से बनी है। वैदिक आयों की सभ्यता, उसके पूर्व की द्रविड़ आतियों की साधना और उसके भी पूर्व की द्रविड़-पूर्व जातियों की बहुल-स्त्री चिन्तायें और साधनायें इस भूमि पर एकत्र हुई हैं। आगे चल कर और भी बहुत-बहुत (शेष पृ० ५ पर)

## गुरुकुल

६ वैशाख शुक्रवार १९६८

### गुरुकुलोत्सव पर एक दृष्टि

गुरुकुल विश्व-विद्यालय कांगड़ी का ३६वां वार्षिकोत्सव १० अप्रैल को कुल भूमि में धूमधाम से प्रारम्भ हुआ। चार दिन तक यह धूमधाम बराबर जारी रही। दूर २ से आर्य सभ्यासी और आर्यनेतागण इस उत्सव में भाग लेने के लिये पधार। दर्शकगण बड़ी संख्या में बराबर आने रहे। अनेक सामाजिक, राष्ट्रीय व अन्य सामयिक दिलचस्पी के सम्मेलन इस अवसर पर किये गए। चारों ओर दीनक और चहल पहल नज़र आ रही थी। सब कुलवासी प्रबन्ध में व्यस्त रहे।

१० अप्रैल को प्रातःकाल सन्ध्या हवन के साथ उत्सव की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। इसके बाद गुरुकुल के ही, सुयोग्य स्नातक प्रसिद्ध आर्य सभ्यासी स्वामी वनानन्द जी महाराज का धार्मिक उपदेश हुआ उसने बाद वेदों के प्रकांड विद्यालय और गुरुकुल के वेदोपाध्याय पं० विश्वनाथ जी के समाप्त-वचन में वेद सम्मेलन हुआ, जिसमें वेदों के विभिन्न गहन और विद्यों पर डॉ० श्रीमद्भास्कर, भीष्मदेव और भवपल ने निबन्ध पढ़े; जिन पर बाद में बहस भी हुई। समापति महोदय ने अपने भाषण में वेदों के महत्व का प्रतिपादन किया।

### डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर का दीक्षान्त भाषण

११ अप्रैल को गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी का दीक्षान्त समारोह (Convocation) बड़ी धूमधाम से मकशाल सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर भात वर्ष के अनेक प्रसिद्ध मान्य संस्थावा, नेतागण और शिक्षाविज्ञ उपस्थित थे। गुरुकुल विश्वविद्यालय के चान्सेलर और आर्य प्रतिनिधि यमा पताश के प्रधान राय बहादुर दावान बन्नीदाम जी का अध्यक्षता में डाक्टर रवानन्द्रनाथ टैगोर का दीक्षान्त भाषण शान्तिकेतन के आचार्य द्विनेमोहनसेन ने पठकर सुनाया। डा० टैगोर स्वामीय ठाकुर न होने तथा वृद्धावस्था के कारण स्वयं उपस्थित न जा सके। डा० टैगोर ने अपने भाषण में पाठकत्व और पुस्तकत भावनाय शिक्षा-प्रणालियों का तुलना करने हुए गुरुकुल का आधुनिक समस्त आस्था का भी संकेत किया और गुरुकुल के नव-स्नातकों को संनम मानव समाज के समुच्च पराजित भारतीय सभ्यों को पेश करने का आदेश किया। आचार्य द्विनेमोहनसेन ने अपने प्रथक भाषण में बहुत सुन्दर ढंग में शिक्षा के वेदिक आदर्शों का प्रतिपादन किया और

धार्मिक वाणी में नवस्नातकों का आह्वान किया कि मैदान में आकर भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार का प्रयत्न करें। ये दोनों भाषण इन्हीं शंके में अन्त्य हो जा रहे हैं—

[संपादक]

अन्य में श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज और प्रधान राय बहादुर बन्नीदाम जी ने आशीर्वाद दिये तथा संस्कार समाप्त किया। इस वर्ष गुरुकुल विश्व विद्यालय से २० स्नातक निकले हैं, जिन में श्री० श्रीमद्भास्कराश मने प्रथम रहे और उन्होंने अनेक पदक प्राप्त किये।

### लोहारू कांड सम्मेलन

स्वामी सत्यानन्द जी के सभापतित्व में आर्य जनता का एक विशाल आम जन्मा हुआ, जिसमें लोहारू रियासत में आर्य समाज के जन्म पर आक्रमण की निन्दा की गई, घायल आर्यों के प्रति महानुभूति प्रकट की गई, और भारत सरकार से प्रार्थना की गई कि वे दस्तावेज पर इस कांड की निष्पत्ति जांच करवाये और ऐसा प्रबन्ध करें जे घटनायें सुलझाना रियासतों में बार २ नहीं सकें। पं० इन्द्रजी, श्री उपा वेदव्रत जी, राय साहब अमृत-रायजी, पं० विश्वनाथ जी और स्वामी सत्यानन्द जी ने प्रस्ताव पर ज़ोरदार भाषण दिये। आर्य जनता ने यह भाव भी प्रकट किया कि यदि ज़रूरत पड़े तो किसी प्रकार का सत्याग्रह भी किया जाय। रात को अपने प्रथक भाषण में स्वामी सत्यानन्द जी ने हिन्दुआ में और विशेषतया आर्य समाजियों में ज्ञान भाव पैदा करने वाता बड़ा आश्चर्य भाषण दिया। आपने कहा कि यदि आर्य समाज अपनी शक्ति का सोच समझ कर उपयोग करे तो संयुक्त प्रान्त और पंजाब में वह प्रान्तीय मंत्रि-मंडलों के निर्माण में भी बड़ा भारी भाग ले सकता है।

### स्वामी सर्वदानन्द जी का स्वर्गवास

आर्य समाज क बहादुर दावानग नता सभ्यासी स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के स्वर्गवास का तार पाकर तमाम कुलभूमि और उत्सव कैम्प में एक दम शाक का लहर फैल गई। सब का जगाना पर स्वामी जी की सेवा और निभयता का चर्चा था। राय बहादुर दावान बन्नीदाम जी के सभापतित्व में एक विशाल सभा दोपहर को हुई, जिसमें आचार्य अक्षय देव जी, डा० राम रव्यामल जी, पं० भीमसेन जी, पं० सत्यवन जी सभा मंत्री गुरु दिनामल जी आदि के भाषण हुए। तथा शाक प्रस्ताव करके स्वामी जी का सारांश का स्मरण किया गया और उनका दिवंगत आत्मा के लिए सद्गति की प्रार्थना का गई।

### गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय भवन

श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज द्वारा उद्घाटन १२ अप्रैल को प्रातः आर्य मी सत्यानन्द जी महाराज ने, एक विशाल जनसंख्या के सम्मुख, गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ा के आयुर्वेद महाविद्यालय के नवीन विशाल भवन का उद्घाटन किया। यह इमारत इसी वर्ष तोस हजार रुपये को लागत में बनकर तैयार हुई है। इसमें स्वच्छिन्न आर्षेशन भवन, राशी-गृह आदि तो पहले से ही विद्यमान हैं।



गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री प्रो० सत्यव्रत जी ने अपने प्रारंभिक भाषण में गुरुकुल आयुर्वेद भवन और संबन्धित भ्रष्टानन्द सेवाश्रम का इतिहास बताते हुए इस पर प्रकाश डाला कि इन संस्थाओं की क्या उपयोगिता है। आपने एकसरे, लंबारोटरी, रोगीशय्याओं के लिये धनकी सामंजस्य की बात की, जिस पर कुछ रकम में सौके पर ही प्राप्त भी हो गई। जिनमें गुरुकुल के प्रेम। लम्बूराज जी ने गुरुकुल का नाम उल्लेख योग्य है। स्वामी सत्यानन्द जी ने भी आपने भाषण में गुरुकुल की सेवाओं का जिक्र करन हुए जनता में उदारता पूर्वक धन देने की अपील की।

### अन्य हलचलों

मुख्याधिष्ठाता प्रो० सत्यव्रत जी ने संस्कृतियों के संबंध में एक सुन्दर भाषण दिया और गुरुकुल की उपयोगिता बताई। आपके भाषण के बाद उपस्थित जनता में धन समग्र हुआ। इस वर्ष कुल मित्राकर गु कुल के लिये १,२०,००० में अधिक दान प्राप्त हुआ। रात को १० इन्टर्ज विद्यालय, लक्ष्मणपुर और १० बुद्धव्रत जी विद्यालयकार के प्रभावशाली भाषण हुए। १२ ता० का हा १० यशपाल जी के सभापतित्व में दृष्टिगोचर सम्मेलन हुआ जिसमें कुछ हरिजनादार सम्बन्धी प्रस्ताव भी पास किये गये।

### गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों के खेल

१२ अप्रैल को बहुत अधिक हाजिरी थी। इतनी पिछले कुछ वर्षों से देखने में नहीं आई थी। इतना होने पर भी प्रबन्ध ऐसा अच्छा रहा कि कोई अशुभ वाददान नहीं हुई।

१२ ता० को रात राय साहिब अद्वैतराय जी के महापतित्व में व्यायाम सम्मेलन बहुत कामयाबी से हुआ। छोटे-बड़े ब्रह्मचारियों के शारीरिक खेल और कसरत देखने के लिये पंडाल नर नागियों से लक्ष्मणच भरा था। छोटे बच्चों के लेसिम, लाठी, प्रप-मेकिंग वगैरह के खेल बहुत पसन्द किये गये। विद्यालय और महा विद्यालय के विद्यार्थियों ने बज्र उठाने, पैरेललबार, बाक्सिंग, रिंग, शर शैया, गले से सीव मोहन, डक्यू ताश की गम्भी फाड़ने आदि के चमत्कार पूर्ण खेल दिखाये जिन्हें दर्शकों ने बहुत पसन्द किया। पंडाल में उम्मी समय २०० रूपया से अधिक रुपये और पैसल इनाम के तौर पर इन ब्रह्मचारियों को मिले। महाविद्यालय के ब्रह्मचारी शान्ति स्वरूप के व्यायाम बहुत पसन्द किये गये।

१३ ता० को सुबह नवीन प्रविष्ट ब्रह्मचारियों का वेदांग्ग संस्कार हुआ। इस वर्ष ५७ ब्रह्मचारी नये दाखिल हुए। जिनमें भारतवर्ष के सब प्रांतों के ब्रह्मचारी शामिल थे।

गुरुकुल के स्नातकों और ब्रह्मचारियों के मंत्रचक्रों में इन वर्षा खास हलचल नजर आती थी। वे अपनी २ सभायें करके गुरुकुल की उन्नति और उसे और लोकप्रिय बनाने पर विचार करते रहे।

### गुरुकुल कांगड़ी का उत्सव संकुशल समाप्त श्री दत्तात्रेय का मजुर संगीत

१३ ता० का सायंकाल एक बृहद् कथि सम्मेलन हुआ, जिसमें बाहिर से पधारें व गुरुकुल के अनेक कवियों ने अपनी रचनायें सुनाईं। रात को संगीत सम्मेलन हुआ। इसके समापति इस युग में संगीत के पुनः-मज्जारक स्वामी श्री विन्ध्य विरागर जी के योग्य पुत्र श्री दत्तात्रेय थे। आप की अवस्था अर्थात् २० वर्ष की ही है, लेकिन आपने संगीत में जनता को मंत्र मुग्ध कर दिया था। श्री पुलकर की वाद्यलिनि और दिक्षी के श्री विन्ध्यचन्द्र का गायन भी पसन्द किये गए।

१५ नारीय को जगमोस्तव्य सभा के साथ गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का वारिकोन्भव समारोह में मज्जल समाप्त हुआ।

इस वर्ष गुरुकुल का उत्सव बड़ा सफल रहा। पिछले वर्षों में दान भी अधिक प्राप्त हुआ, विद्यार्थी भी अधिक प्रविष्ट हुए और हाज़िरी तो पिछले कई वर्षों से इतनी देखने में नहीं आई थी। प्रबन्ध भी बहुत अच्छा रहा। प्रभु की कृपा से कोई अघटनीय घटना नहीं घटी।

(पृ० ३ का मेष)

जातियां यहां आती रही हैं घोर भारतीय साधना-युक्त में अपनी-अपनी आहुति देती रही हैं। अमेरिका और आस्ट्रेलिया में जिस प्रकार सम्बन्ध की सम्बन्धी पुरानों जातियों को नुक करके जातीय एकता की प्रतिष्ठा की गई है वैसे कभी इस देश में नहीं हुआ। यहां किसी जाति न दूसरों कीसा जाति के उच्छेद की बात नहीं साम्नी। आज हम जिस रूप में दिखाई दे रहे हैं उसमें उन आर्य-अनार्य बहुविध जातियों का देन है। हमारी स यता नाना जाति की साधनाओं के सम्मिश्रण का फल है।

पुराने आर्य जाति की शिक्षा का क्षेत्र यक्षभूमि थी बीच-बाच में बड़े-बड़े सम्मेलनों में एकत्र होते थे। ये ही विशेष ब्रिंशेप महायुक्त का जात थे। महायुक्त बहुत कुछ आज क कानफरेंसों और कांफरेंसों के समान थे। इन यहां के समय निर्णयों का अश्रय करके ही भारतीय उपायन विधान सन्निह हो उठा था।

यहां में आपका पितृव्य महादास का उपाख्यान स्मरण करना चाहता हूँ। महादास के पिता की दो पत्नियां थीं। एक ब्राह्मणा दूसरी इतरा था शूद्रा। यह के समय उन्होंने अपनी ब्राह्मणी पत्नी में उपरत पुत्र का ता शिक्षा दी। लेकिन शूद्रा गर्भ में उपरत महादास को नहीं। महादाम ने युक्ति होकर माता को अपना दुःख बताया। व बोलीं—हम महा ( = शूद्रवी) की सन्तान हैं, महा के सिवा इतरा कौन है? माता के स्त्व में महा देवा आर्यभूत होकर महादास को अपने घर ल गई और जगत् के गर्भारणम हान की शिक्षा देने लगीं। महा का शिष्य होने के कारण ही महा दास महादास हुए और

चूक इतरा या शुद्धा के पुत्र थे इस लिये पेलेरये कहलाये।  
दर्शों का रचित ब्राह्मण ऋग्वेद का सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण है।  
अथर्व वेद के बारहवें काण्ड के आरम्भ में ही मही  
मूक है। यहां ऋषि पृथ्वी की स्तुति करते हैं, स्वर्ग की मर्ती।  
इसी वेद के दसवें काण्ड का त्रितीय सूक्त और श्याहवें  
काण्ड का अष्टम सूक्त न्यून है जो अपनी अपूर्व मतिमा  
के कारण मनीषियों का मुख्य किये हुए है।

तपोवन, प्रकृति और मनुष्य का सखा सम्मेलन है।  
मही के समान कोई दूसरा गुरु नहीं है। प्रकृति के निकट  
जो शिक्षा मिलनी है वही सखी और गम्भीर होती है।  
प्रकृतिमाता की गोद में बैठकर अहां सचमुच का मध्य  
गुरु के आसन पर आसीन होना है वह तपोवन ही  
शिक्षा का आदर्श साधना-मीठ है। भारत के इस प्राचीन  
आदर्श को सामने रखकर कविचर रवीन्द्रनाथ ने शांति-  
मिकेतन आश्रम की स्थापना की थी। भारत के तपोवन एक  
दिन मानव-गुरु के ध्यान से और प्रकृति-गुरु के रस से  
परिपूर्ण होकर शिक्षा के उसम क्षेत्र बन सके थे। अज  
हमारे बालक हम आनन्दमय ज्ञान की गोद में  
परिप्लव है।

प्राचीन भारतीय ऋषियों ने जीवन की सयाम्याओं  
में सामंजस्य विधान करके ही चतुरा भ्रम की प्रतिष्ठा की  
थी। गाहंस्थ्य आश्रम के लिये ब्रह्मचर्य आश्रम  
शिक्षा काल है और संन्यास आश्रम के लिये है  
ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य साधना का क्षेत्र ही तपोवन है। इन्  
ब्रह्मचर्य का एक सुन्दर वर्णन अथर्व वेद के ग्यारहवें  
काण्ड के मसम सूक्त में है। यह कौं स्वीचर्य जीवनचर्य  
नहीं है बल्कि समस्त क्षेत्रों में और समस्त दिशाओं में  
इसकी साधना की है। इसमें जियाँ बुर नहीं रखी गई हैं।  
उनका भी इसमें स्थान है (११. ७. १८)। कहा गया है  
कि राजा की गण-नपत्या भी ब्रह्मचर्य है, ब्रह्मचारी ही  
पृथ्वी का बालक है, वही धरती की प्रतिष्ठा है, वही  
नप या मे बाल्याँ को पुत्र करना है, वही स्त्री लोक को  
आरक्षण से बचाता है।

मध्ययुग के ज्ञान का इतिहास गुरु-शिष्य से सम्बन्ध  
का इतिहास है। आज तुम लोग जब गुरु और शिष्य के  
संनिर्गमिष्ठ हुए उपाधि हो, तुममें से कौं मवी युग के युव  
बनेंगे, ऐसीं हासल में उन पुरानन गुरुओं का इतिहास  
तुमने जाना चाहिये।

हमारे देश में यह विश्वास किया जाना है कि मानव  
जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। महान आदर्शों और विशाल सत्य  
को उपलब्ध करने के लिये मनुष्य शरीर से बहकर दूसरा  
मात्रन नहीं है। इस देश की हमें लापरवह ही में सह नहीं  
कर देना चाहिये इसी लिये कठोरप्रतिबन्ध में कहा है—

पुरुष अर्धं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः (१. ३. ११)

मनुष्य ही समस्त कर्म तपस्व, ब्रह्म और परम ब्रह्म  
है, स्वीचर्य में ब्रह्मण्य ही स्मरण विश्व है। नाना मिश्रण के  
उज्जाल में यह मनुष्य समाच्छा है उन्में जो पहचान  
लक्षणा है वह आधिवा के बन्धन में मुक्त होता है—

पुरुष एवेह विश्वं कर्म तपो ब्रह्म वगमृतम्।

प.म.द. श्रौ. वेद विहितं गृहार्थं सोऽविद्यमानं।

विकिरीतह सोम्य। सुब्रह्मणेतिषद् २. १. १०

मानव का स्वरूप विराट् है, विराट् ब्रह्माण्ड इस  
मनुष्य में ही श्रुतिमान् हुआ है, सब समुद्र का निरुत्तर  
विराट् आकांशन इस मानव की नाड़ी में ही मय  
प्रतिस्थापित होता है—

मनुश्रो वस्य नाभ्यः पुरुषेति समाहिताः। अथर्व १०. ७. १५  
इस मानव में जिसने ब्रह्म को प्राप्त किया है उसीने  
उसके परमोत्तम परमेशी स्वरूप को उपलब्ध  
किया है—

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्। अथर्व १०. ७. १७

मानव के इस विराट्-स्वरूप की क्यायोग्य उपलब्धि  
और सम्मान प्राप्त भी नहीं हुआ। मैंने सोचा था कि  
ज्ञान विद्या से हम पाश्चात्य सभ्यता में इस स्वरूप की  
उपलब्धि होगी। अन्ततः पश्चिमी विचारकों ने दावा कुछ  
इसी प्रकार का किया था। निस्सन्देह उन में यह घोषणा  
भी थी, क्योंकि उनके धर्म मत से मनुष्य ईश्वर का ही  
रूप है और मानव पुत्र पृथ्वी के द्वारा ही उनकी उपासना  
होती है। किन्तु आज की हम मारामारी और क्षीना-  
रूपेटी को देखना है तो निराश होना पड़ता है, यह  
अशा भी धूलिसल होती सील रही है। इस महासत्य  
को व्यक्तितान भाव में जिन्होंने उपलब्ध किया है ऐसे  
अनेक मनुष्य यूरोप में आज भी हैं परन्तु यहाँ की जनता  
उमत्त है उनके ज्ञान बर्धन हो गये हैं। इसी लिये इस  
सत्य का मुनबार्द अः उस देश में हो सकेगा ऐसी  
सम्मानना नहीं है। हम लाग यद्यपि मुंह में कड़वे रहते  
हैं। 'यत्र जीवः तत्र शिवा' किन्तु तोमी यह सत्य क्या  
सचमुच हमारे भीतर क्यायोग्य स्थान पा सका है? इतनी  
बड़ी माामारी काटाकाटी का सामर्थ्य हमम नहीं है  
और दर्शिलिय हम इस मारामारी में मुट नहीं गये। कौन  
ज्ञानता है उपयुक्त अवसर मिलने पर हमारा कैसा  
बीमत्स रूप प्रकट हो जाना। कुछ भी शक्ति न होने पर  
भी अमृश्यता के मामलं में हमने अपनी उड़ी हिसा-  
पटुता प्रदर्शित की है वही सारे जगत् को संभव कर देने  
के लिये काफी है।

तो भी मानव-गत यह महासत्य हमारे ऋषियों के  
निकट उद्-नास्त हुआ था। हम यदि इस मानवोपलब्ध  
को साकत् कर सक तमी भारतवर्ष के प्राचीन सत्य  
द्रष्टा अथवग प्रसन्न और तृप्त होंगे।

इस महातपस्या का पथ विज्ञायेगा कौन? यहां भी  
मनुष्य के माहात्म्य की यात ही स्मरण करनी होगी।  
युवदेव सदा ही कहा करने थे कि बुखेरो पर अवलम्बित  
मत हो खुद अपने आपको दीपर बनानाओ—'आप-रीपो  
मय'। उपनिषद् भी यही बात कहती हैं। मनुष्य तो  
विश्व-मय है किन्तु किन्ता किस बात का है (बृहदारच्यक  
२. १. १६) मानव ही तो सत्य-ओति है (बृहदार. ७. ३. ६)।  
तुम्हारे भीतर जो विश्वतमय परम ओति विद्यमान है  
उन्में आवाहन करके उदुवांशित करो। अमरस्थित महानुद  
के सिधा ऐसा और कौं दूसरा नहीं है जो यह महा-  
आलोक दे सके। मानव के भीतर जो चिन्मय वेद है एक-

मान उसी के द्वारा परिपूर्ण संत्य की उपलब्धि हो सकती है। विश्व अन्तर में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उस अन्तर-वेद के लिये अग्रगण्य हो। इतिहास-उपनिषद् में कहा गया है कि ऋक् मंत्र अग्रा तुमने जाना है तो अथिक से अथिक यही कहा जा सकता है कि तुमने देवताओं का रहस्य जान लिया है, यजुर्वेद अग्रा तुमने जाना है तो यहाँ का रहस्य ही समझा है, साम मन्त्र की जानकारी प्राप्त की तो माना कि और भी सब कुछ जान गये हो परन्तु मानव की अन्तरात्मा में जो अन्तर वेद है, उसे तुमने जाना है नहीं मन्त्र को जाना है—

ऋचो ह यो वेद स वेद देवान्  
यजुँ य यो वेद स वेद यज्ञम् ।  
सामानि यो वेद स वेद सर्वम्  
यो मानसं वेद स वेद ब्रह्म ।

( आशिष्टाचार पब्लिकेशन, पृ० ११ )

साधना के द्वारा अपने अन्तर स्थित विन्मय शक्ति को उद्भासित करने शक्य नत्य को जानो, जाग्रत होओ। जाग्रत न होओ मन्त्र ब्रह्म को नहीं जाना सकता और न उनकी सेवा की जा सकता है। ये जो सब पुरोहित ब्राह्मणों के निद्रा-मग्न दल हैं उन्हें समान सिद्धि होने से काम नहीं चलेगा—

मोक्ष ब्रह्म वे तन्द्रयुग्मं ( ऋग० ८, ६२, ३० )

उत्तमी और जाग्रत लोग ही धन्य हैं, निद्रासु और प्रमद प्रसन्न नहीं। अन्तर्द्र उत्सवहीली लोग ही आनन्द-लोक के अधिकारी हैं। क्योंकि ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि देवता उसी के साथ साथ चलते हैं जो अग्रसर होकर चल पड़ा है—

इन्द्र इच्छतः सखा ( ७. १५. १ )

पाप-पुण्य की समस्याओं को लेकर ही उपदेशकों के दल व्यस्त रहते हैं, ऐसे अग्रसरों के लिये ऐतरेय ब्राह्मण का संश्लेष है कि बड़े चलो तुम्हारा पाप तुम्हारे चलने के मार्ग में अव्यय हनवीर्य हो कर सो रहेगा—

शोरेऽन्य सर्वे पाप्मानः अग्रैश्च प्रपथे हता ।

( ऐतरेय ७. १५. २ )

हम कह सकते हैं, कि हम दुर्भाग्यवस्तु हैं, हम क्या हम मन्त्र की साधना कर सकते हैं? ऐतरेय ने इस आर्पाच का दृढ़ कंड में प्रतिवाद किया है। माग्य है क्या वस्तु? जो शैठा रहता है उसका भाग्य भी शैठा रहना है, जो उठ खड़ा होता है, उसका भाग्य भी उठ खड़ा होता है, जो सोया पड़ा रहता है उसका भाग्य भी सोया पग रहना है। जो अग्रसर होता है उसका भाग्य भी अग्रसर होता है। इसलिये आगे बढ़ो—आगे बढ़ो—

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतु ।

शोभे निपद्यमानस्य चरानि चरतो भग ॥

चरैवेति चरैवेति

( ऐत० ७. १५. ३ )

यह कहना संकर है कि इस कलियुग में यह बातें नहीं हो सकती। क्योंकि ऐतरेय में कहा है कि सो रहने को ही कलियुग कहते हैं। निद्रा छोड़कर जग पहना; ही ज्ञापक है,

उठ खड़ा होना ही सेवा है और अग्रसर होना ही सत्ययुग है। अतः आगे बढ़ो—आगे बढ़ो ।

कलिः श्यामो भवति संजिहानस्तु ज्ञापकः

उत्तिष्ठेद्वेत्ता भवति क्लृप्तं संपद्यते चरन् ।

चरैवेति चरैवेति ।

( ७. १५. ४ )

शक्ति के अभाव की विन्ता कभी न करना। सारे संसार को आलोक वितरण करने वाले सूर्य को कभी क्या आलोक का अभाव अनुभव हुआ है? उयो २ वह आलोक वितरित करता हुआ आगे बढ़ता गया है त्यों त्यों उसका अ.लोक-अच्छादण पूर्ण होना गया है।

सूर्यस्य पश्य अमाष्य यो न तन्द्रयते चरन् ।

( ७. १५. ५ )

मैं नहीं जानता कि ऐतरेय ब्राह्मण के इस 'चरैवेति' मंत्र से अधिक गतिशील और शक्तिशाली मंत्र जगत् के किसी अन्य जाति के शास्त्र में है या नहीं। हे तन्त्र मित्रों, जीवन में जब कभी तुम्हें अवसाद अनुभव हो, तुम इस मंत्र को ज़रूर याद करना, तुम ज़रूर नयी शक्ति अनुभव करोगे।

जब तक हम बैठे रहते हैं तब तक आगे और पड़े का वेद चिन्तुल ही नहीं मिटता। चलने के द्वारा ही हम अतीत और अनागत को, भूत और भविष्य को एक कर सकते हैं। काल के साथ काल का और स्थान के साथ स्थान का यह जो योग है उसे ही अंगरजी में ( Synthesis, और हम 'योग' कहते हैं। हमारे देश में समस्त साधनाओं में श्रेष्ठ साधना योग की साधना है।

[ अर्पण ]

## गुरुकुलसमाचार

वार्षिकोत्सव के पश्चात् विद्यालय और महाविद्यालय विभाग की पढ़ाईयां नियम पूर्ण प्रारम्भ होगई हैं। इस वर्ष अनेक नई इमारतों के बन जाने के कारण अध्ययना-ध्यापन में पर्याप्त सुविधा हो गई है। गुरुकुल के सभी विभाग नव-वर्षाकरम्भ के साथ नये उत्साह से अपने कार्य में लग गए हैं।

गुरुकुल को हाकी दल कलकत्ता को—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कागड़ी का 'अ' दल इस वर्ष भी कलकत्ता में प्रतिवर्ष होने वाले शाहटन-कप हाकी टूर्नामेंट की ओर में स-सम्मान निमग्नित किया गया है। यह दल ता० १८ अप्रैल को प्र. प्रो० सत्यव्रत जी मुख्याधिपता की अध्यक्षता में यहाँ में प्रखान कर चुका है। आशा है इस वर्ष यह दल पूरी सफलता प्राप्त करके लौटेगा। इसमें भाग लेने वाले खिलाड़ियों के नाम नीचे दिए जाते हैं:—

सर्व श्री विद्यारण्य जी, योगेश्वर जी, पं० वाष्पति जी, विद्यानन्द, श्रीकान्त जी, शंकरदेव जी, केवल कृष्ण, ब्रज-नन्दन, दिल्लीचन्द्र, महेन्द्र, पं० हरिवंश जी।

अतिरिक्त लिल डी-सर्व श्री सत्यव्रत, सत्यपाल नरोत्तम, धर्मवीर।

# गर्मियों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी धातु क्षीणता पुरानी खांसी, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान लो व पुरुष सब शीक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव १८) आध सेर २८) १ सेर ४)

सिद्ध मकरध्वज	चन्द्रप्रभा
स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियाँ से तैयार की गई ये गोलियाँ सब प्रकार का कमजोरियों में असर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करती हैं।	इसमें शिलाजांत और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों का अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।
मूल्य २७) तोला	मूल्य ॥) तोला

## सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों का अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ॥८) तोला

## धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियाँ बेच रहे हैं। इसलिए दवा खरोदते समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

- |        |   |   |                                 |
|--------|---|---|---------------------------------|
| भाव    | { | देहली—चांदनी चौक।                                 |                                 |
|        | { | मेरठ—सिपर रोड।                                    |                                 |
| पैकिंग | { | खानऊ—एजेंसों गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड। | हस्पताल रोड।                    |
|        | { | लाहौर— " " " "                                    | मल्लुआटोली बकीपुर।              |
|        | { | पटना— " " " "                                     | वैद्यराज सरदारीखाल जी कंठका चौक |
|        | { | अजमेर— " " " "                                    |                                 |

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी जिलाहानपुर**

# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २।।)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५ ]

गुरुकुल कांगड़ी, शुकवार १३ वैशाख १९६८; २५ अगस्त १९५१

[ संख्या ५२

## एक पत्र

( लेखक श्री अम्बाबाबु पुराणी )

[ पवित्र जीवन से फिर उठना चाहने वाले एक नवयुवक को लिखा गया यह पत्र और बहुत से नवयुवकों के लिये बड़े काम का हो सकता है अतः यह प्रकाशित किया जा रहा है । इस पत्र के लेखक श्री अम्बाबाबु पुराणी का परिचय मैं पहिले 'गुरुकुल' के पत्रकों को करा ही चुका हूँ ।

—अमय ]

तुम्हारा—पत्र मिला । पढ़कर खुशी भी हुई और दुःख भी हुआ । आनन्द तो यह जानकर हुआ कि अब भी तुम्हारे दिल में पवित्र जीवन के लिये आकर्षण बाकी है और उसे अपने जीवन में घटाने के लिये अब भी तुम्हारे मन में लालसा है यह आशा किरण कोई ऐसी बैनी चीज़ नहीं है । यदि भगवत्कृपा का अथतरण हुआ तो वह स्वच्छे दिल से की गई इस मांग के उत्तर में ही होगा । जो लोग दल दल में फँस चुके हैं और यह जानना तक नहीं चाहते कि वे किन अवस्था में हैं उनके लिये तो ज़रा कम ही आशा है, तुल्य इतलिये होता है कि लगभग शोष से ही मैंने मुझे देखा है और तुम्हारे प्रति वास्तव्य की पवित्र भावना का भी अनुभव किया है । उस समय की निर्दोष मुख मुद्रा मुझे इतनी अच्छी तरह याद है कि यदि मैं चित्रकार होता तो अब ठीक ठीक चित्र बना दिखता । उस समय मैंने सोचा था कि 'यह बच्चा बहुत पवित्र जीवन बिताने वाला होगा । पापों स्वर्णों और वास्तवों में एकदम अज्ञान रहेगा, ऐसे बच्चे जन्म से ही भगवान के समीप हुआ करते हैं ।' आज इतनी मुक्त के बाद तुम्हारा पत्र पाकर अपने हृदय की इस भावना को प्रकट कर रहा हूँ ।

तुम्हारा पत्र पढ़कर और यह जानकर कि मेरी आशा कलौषल न हो पाई—दुःख हुआ । क्या संसार की काली काली घटाएँ अपने घटाटोप अधकार से सुन्दर और सुरभ्य स्वानों को भी अन्ध करके ही रहेंगी ? क्या प्रयत्न करने पर भी मनुष्य इस से छूट न पाएगा । नकारात्मक उत्तर क्योंकर और कैसे दिया जाए ?

हाँ, अब तुम्हारी बात पर आना है । मैं अत्यधिक आशावादी हूँ, निराशा और निरुसाह मुझे बहुत

नापसन्द हैं । असफलता पर असफलता मिलने पर भी धैर्य के साथ प्रयत्न किये जाने में मेरी अझा है । इसका यह मतलब नहीं कि सिर्फ अपने बलबूते पर और अपने ही प्रयत्न से मनुष्य सफलता प्राप्त कर सकता है । मंत्र अनुभव है कि अपने प्रयत्नों को जारी रखते हुए स्वच्छे दिल से भगवान से सहायता मांगने वाले को देर में हो या जल्दी पर भगवान की सहायता मिलती अवश्य है । हमें भगवान को यह विश्वास दिखाना पड़ता है कि हम स्वयं अपने प्रयत्नों और अपनी अथमता को दूर किया चाहते हैं । चाहे मनुष्य के रूप में किये गए हमारे प्रयत्न भले ही सफल न हो पाएँ पर धैर्य के साथ प्रयत्न जारी रखते हुए यदि भगवान की सहायता मांगी जाए तो उस सहायता के द्वारा असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाएंगे । यह अझा का विषय है और इसमें तर्क नहीं किया जा सकता । अनुभव द्वारा ही इसके सत्य को जाना जा सकता है । इसे आजमाएँ बिना यँ ही किसी निर्णय पर पहुँच जाना अज्ञानिक ( Unscientific ) दग है ।

तुम्हारी सुखिकल के मुझे दो हल सुझने हैं और वे दोनों तुम्हें बताएँ देता हूँ । याद मेरी सम्मति स तुम्हें कुछ लाभ हो सका तो मुझे बड़ा हर्ष होगा । जीवन का कार्यक्रम अथवा व्यवसाय निश्चित करने से पहले जीवन की सामान्य दिशा का निश्चय कर लेना ज्यादा अच्छा है । एक रास्ता तो यह है कि सामान्य कुटुम्ब जीवन बिताने हुए यथासम्भव अपनी कुटुम्ब का और देश का उन्नत करने में भाग लें और इस प्रकार आगे बढ़ने का यत्न करें ।

और दूसरी राह यह है कि किसी आदर्श को अपना कर जीवन में उसे सृजितमान करने में सारी शक्ति लगा दी जाए इसमें कुटुम्ब जीवन आवश्यक नहीं है और यह भी जरूरी नहीं है कि कुटुम्ब जीवन से दूर हो रहा जाए । पर हाँ इस मार्ग में जीवन का भ्रम कुटुम्ब जीवन न होगा बल्कि मनुष्य किसी कला, आदर्श अथवा प्रभु को प्राप्त करने के लिये सारी शक्ति लगा देगा यदि इसके साथ साथ गुरुकुल जीवन भी चल रहा होगा तो वह बहुत ही गोण रूप में—इस प्रकार के लोगों का गुरुकुल जीवन गुरुकुल के रूप में कोई बहुत सफल नहीं हो पाता ।

तुम्हें शीघ्र ही इन दोनों में से किसी एक रास्ते को चुनना होगा। साधारण कौटुम्बिक जीवन बिताना ही तो किसी अच्छे घर की सुसंस्कारों वाली कन्या के साथ विवाह करके तुम इस कठिनार्थ में से निकल सकते हो। पत्नी के साथ सामाजिक शारीरिक सम्बन्ध करने से प्रायः अत्याभाषिक आशयें जाती रहती हैं। हाँ, जो बहुत ही गिरी। दूर दूरा को पहुँच चुका हो उस को तो बात भी अलग है, पर ऐसे बहुत थोड़े होते हैं।

इसका यह मतलब नहीं कि पति पत्नी के बीच शारीरिक सम्बन्ध और सम्बन्ध बढ़ाना चाहिये, परन्तु अत्याभाषिक वासनाओं के वश में होने की अपेक्षा इन्हें एक स्वामाजिक मार्ग देना इष्टावह इष्ट है। इसमें भी शोभ ही संयम से काम लेने और बुद्धि पूर्वक और झाँकेँ सोचकर प्रगति करने की आवश्यकता कुछ कम नहीं है। अग्यथा यह स्पष्ट है कि कुटुम्ब जीवन भी सुखी न बन पावेगा। कुटुम्ब जीवन का अर्थ पशु जीवन हगिज्ञ नहीं है। कुटुम्ब जीवन जिम्मेदारों और परस्पर आन्तरिक उन्नति करने की तैयारी और सहकार है। पत्नी पति की लीडी अथवा बाईं नहीं है और इसी प्रकार सब के सामने आसन शिक्षा पूजे जाने वाली और तथाकाथित स्वतन्त्रता का उपयोग करने वाली परन्तु अकेले में अपना शरीर पति की सिक्रियत में देने वाली गुलाम भी नहीं है। पत्नी है पति के स्वमात्र की सृष्टि। जितने और में पत्नी गुलाम है इतने ही और में पति भी मानहीन है। कोई अपने ही अर्थों का अग्रमान कर्ते और सामाजिक-मानी भी कहाय। "जब पत्नी को अग्रम दूरा होती है तो उसका अकेला का हाँ पतन नहीं होता, उसके पत का भी साथ ही साथ पतन होता जाता है। मनुष्य अपने अन्दर चरित्र की अथवा आध्यात्मिक और नैतिक उच्छ्रिता देखना चाहता हो उसका पहलें उम्मे पत्नी के साथ के व्यवहार में अनुभव करना चाहिये।"

यदि ऐसा हो तभी विवाह उन्नति में सहायक हो सकता है अग्यथा अधोगति को ही प्राप्त करता है। दो हाँ चार वर्ष में शारीरिक आकर्षण का कुनूहल समाप्त होने पर भी पुरुष के जीवन का आनन्द घटना शुरू हो जाता है। हमारे कौटुम्बिक जीवन में असफलता का कारण यही हुआ करता है कि पत पत्नी में कोई आन्तरिक मन नहीं होता। उनम इस प्रकार की मैत्री की अभिलाषा नहीं होती और दो भी ताँ उम्मे क्रियात्मक रूप देना नहीं आता।

यदि गृहस्थ धर्म ही अपनाता हो तो जैसा ऊपर लिखा है कुछ इस प्रकार का कार्यक्रम बना कर कनार के साधनस्वरूप कोई हनर साँभ कर धनोपाप्राप्त के लिये नहीं अपितु आदर्श कुटुम्ब जीवन बिताने का ध्येय सामने रखकर उसके लिये एक साधनस्वरूप धन प्राप्त करी।

अगर तुम्हारा मन इस प्रकार के जीवन की ओर आकर्षित होता है तो फिर तुम्हें इसे ही अपनाना चाहिये। लेकिन यदि यह कोई आदर्श जीवन लगता हो और अन्तर में किसी आदर्श को सिद्ध करने की ज्वाला ध्येयक रही हो तो तुम्हारा रास्ता दूसरा ही होगा।

यह आवश्यक नहीं है कि किसी भी अदर्श के लिये प्रयत्न करने वाले के जीवन में तुम्हारी बनाई हुई काम-वासना सम्बन्धी कठिनायों का इत्त निकल आए। बहुत-नेरे प्रयत्न करने वाले अपने आदर्श को तो अपने जीवन में सृष्टिमान कर लेते हैं पर तुम्हारी बनाई हुई मुश्किलों का हल फिर भी नहीं कर पाते। यह भी हो सकता है कि जब ये दिक्कतें उनके मार्ग में आएँ तो वे विवाह करके सामान्य पारिवारिक जीवन बिताने हुए वासना को समुच्च करेँ और अपने आदर्श की ओर बढ़ते जाएँ पर ऐसे कम ही होने होंगे। बहुत से आदर्शसेवी युवकों को यह सलाह तंग करता ही रहता है और गृहस्थ जीवन में भी वे इससे छुटकारा नहीं पा सकते। उम्मे अर्पुता बलती है पर पूर्णता के न तो दर्शन ही होते हैं और न उसे प्राप्त करने का मार्ग ही मिलता है।

मेरा तो यह विश्वास है कि भगवान की शरण जाने पर ही पूर्णता का मार्ग मिल सकता है। कोई भाग्यवान अपने-प्रकृति की असुखियों से बच जाय तो ऐसा बचना कोई पूर्णता का चिन्ह नहीं कहा जा सकता। यह काम तो तभी हो सकता है जब भगवद्भक्ति को ही हम अपने जीवन का ध्येय बना लें। और यह मार्ग भी कोई छोट्टा नहीं है। यह बहुत ही लम्बा रास्ता है परन्तु इसे छोड़ दूसरी कोई राह भी तो नहीं है।

तुम लिखते हो अपने आपको अकेला पाकर मन हृदय-वाली के पास आकर बहुत रोया है, उसने प्रार्थना की है, बल माँगा है, कृपा और कृपापात्रता के लिए याचना की है—हाँ यही तो स्वप्नार्ग का प्रारम्भ है! इस हृदयवाली अन्तर्ध्याती को जगा कर-उसे सतत जागृत रखते हुए-अन्तर और बाहर सब जगह उसी का राज्य स्थापित करना चाहिये—यही भगवान का मार्ग है।

ही सकता है कि शुरु शुरु में प्रलोभन बहुत बढ़ने लगें और असफलताओं का ही ताँता रंध जाय, और तुम्हारी पूर्णता को अपेक्षा श्रद्धा कहीं अधिक मालूम पड़े पर फिर भी हिम्मत न हारना। याद रखो इसे छोड़ विजय प्राप्ति का और कोई रास्ता नहीं है। यह किन्तुल निश्चित बात है कि सच्चे दिल से अपनी कमजोरियों को दूर करने की इच्छा रखने हुए ध्येयपूर्वक इस मार्ग को पकड़ने वाला एक दिन अवश्य सफलता प्राप्त करेगा। ध्येय पूर्वक प्रयत्न, अज्ञा और दिल की सच्चाई—ये तीन चीजें मनुष्य की ओर से ही और भगवद्कृपा—उसे सामर्थ्य, शान, कर्तव्य-वाही सो नाम दे लो—ही तभी विजय मिल सकती है।

तीसरी बात यह है कि यदि तुम अपने प्रयत्न में ... .. की सहायता लेना चाहो तो वह भी मिल सकती है। यदि तुम्हारे अन्तर में उनके लिये अज्ञा हो और तुम अन्तःकरण से अपनी कठि-नाइयों के हल करने में उनका सहायता माँगो तो वह अवश्य मिलेगी। इनकी सहायता भी तुम्हें सफल बना सकती है पर हाँ सहायता लेने की शक्ति तो हमी ही चाहिये।

दिन भर किसी न किसी काम में लगे रहो और यह अज्ञा रखो कि तुम्हारा मन भगवान के संरक्षण में है।

भगवान से सदा यह प्रार्थना करते रहो कि हे भगवान मेरी रक्षा करो, मेरे अन्तर अन्तिम विचार न घुसने पाए तुम्हारी रक्षा प्राप्त होगी तो मैं अपनी ओर से प्रयत्न करता जाऊँगा।

तुम अपनी ओर से पूरी तरह मन को काम में लगाए रखो फिर भी हो सकता है कि अच्युतना (Subconscious) इन्हीं विचारों और भासनाओं में फँसी रहे और बार बार उन विचारों को जागृतारब्ध। मैं अथवा स्वप्न में मनमें लाने की कोशिश को। तुम काममें लगे हो और फिर भी अन्तर का कोई भाग अग्रम वृत्तियों में फँसा हो तो भी यह भ्रष्टा रखो हमारे अ.स.प.स और अन्तर की गहराइयों में भी भगवान की कृपा और उनकी रक्षा विद्यमान है। ऐसी अथवा मैं अपनी अथवा शक्ति द्वारा मुक्तिक को हल करने की क्षमता पूरी भ्रष्टा के साथ भगवान की शक्ति ने ही रक्षण के लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

प्रयत्न जारी रखते हुए परिणाम में सूचित करने रहना। दिन रात किसी न किसी स्थूल या सूक्ष्म कार्य में लगे रहना और जब जब मन उधर जाय तब तब भगवान से रक्षा करने के लिये प्रार्थना करना।

.....

श्री अरविन्दात्म स्नेहाधीन  
पाईचरी .....

### दीक्षान्त अभिभाषण

(आचार्य जिनमोहनसेन)  
(गतक से आगे)

जगत् में एक बड़ी भारी सँकीर्णता है। प्राचीन वर्तमान को स्वीकार नहीं करना और वर्तमान भी अतीत की उपेक्षा करना चाहता है। कोई नहीं समझता कि एक के बिना दूसरा पंगु और अर्थहीन है। आधुनिक लोगों का कहना है कि प्राचीन में केषल आचार-विचार है संयम है, Control और डिस्प्लिन है। उसमें गति नहीं है। प्राचीन गण कहते हैं, आधुनिकता में सिर्फ गति ही गति है, संयम नहीं है। इसलिये यूरोप ने गतिशील विज्ञान का सहारा लेकर संयमहीन धर्म को छोड़ दिया। किन्तु आज जब विज्ञान की दिग्ग गण्टसी मति प्रकट हुई है तब यूरोप को कौन बचायेगा? हमारे इस देश की दुर्गति दूसरी तरह की है। हम संयमशाल धर्म को पकड़ कर, गतिशील ज्ञान विज्ञान को छोड़ कर असाद-प्रस्त हो घुसपार बने हुए हैं। इसका मतलब क्या है?

असल में अंध-पशु न्याय से दोनों का योग आवश्यक है। घोड़े को छोड़ देने से लगाम निरर्थक है और लगाम के बिना घोड़ा भयंकर है। पनवार के बिना कौन समुद्र में अँगी छोड़ने का साहस कर सकता है और जहाज को छोड़कर पनवार पकड़े रहने में ही कौन-सी बुद्धिमानी है। संस्कृत के दशरथाश्वत्थ्याय में यही बात कही गई है।

हमारे देश में शास्त्र और आचार में प्राप्त जो संयम है वह हमारे भविष्य के मार्ग में हमारा सहायक हो और

खलने के द्वारा हम उस संयम और आचार को सार्थक करें।

साधना के दो महासैन हैं—देश और काल। देश (म्यान) में जो चर और अचर है वही काल में भूत और भव्य है। ये दोनों ही एक ही परम देवता के दो रूप हैं। उनमें तो कोई विरोध नहीं है। बृहदारण्यक में इसीलिये कहा गया है—ईशानं भूतभव्यस्य (४-४-१५) कठोप-निषद् (२-४-५) में भी यही बात कही गई है और शतपथ ब्राह्मण (२४-७-२-१८) में भी इसी सत्य की प्रतिध्वनि है। अथर्ववेद (१३-३-७) में परम देवता को 'भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्मिन्' कह कर स्मरण किया गया है। वस्तुतः परम देवता के इन दोनों रूपों में कोई विरोध नहीं है। फिर भी हममें से कुछ लोग भूतोपासना पुर तन पंथी और कुछ लोग भविष्यद् या भव्य के उपासक नूतन-पंथी बनकर एक अजीब टंटा खड़ा कर देते हैं। अतीत काल में जो पुरातन-पंथी के स्थाप्य या भूतनाथ हैं वही भविष्यत् के नूतन-पंथी के भव्य-ईशान या माथी काल के चालक हैं।

हमारे देश में जो उनके एक स्वरूप को छोड़ कर अन्य स्वरूप की पूजा करने हे वे पूजा के बहाने उस परम देवता का अपमान करने हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि एक ही यज्ञ के भूत और भव्य ये दोनों रूप दिखाई देते हैं—'स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत' (१३-१-५५)। उसी में यह सब कुछ उत्पन्न हुआ है, तस्माद् यज्ञ इदं सर्वम्। साधारण जगत् में भी, दुखते हैं कि कल, आज और आगामी कल में कहीं विरोध नहीं है, गत के ऊपर ही आगत की प्रतिष्ठा है और आगत के ऊपर आगामी की प्रतिष्ठा है—

अस्ति सत् प्रतिष्ठितम् सति भूतं प्रतिष्ठितम्  
भूतं ह भव्य आ ह्यं भव्यं भूते प्रतिष्ठितम्॥

(अथर्व १७-१-१६)

इसीलिये ऋषि ने कहा है, तुम्हीं भूत हो तुम्हीं 'भव्य—भूतमसि भव्यं स' (शौकिक सूत्र ६२-१३)। भविष्यत से विद्युत् करके भूत को वे नहीं देखने। साम-मंत्रब्राह्मण का कहना है कि भूत को भविष्यत के साथ जोड़ कर देवता चाहिये—भूतं भविष्यता सह (२-४-१०)। वैमिनीय ब्राह्मण (२-५२) में भी यही बात कही गई है। इसीलिये उन्नीने भूत और भविष्यत् को एक साथ आधाहन किया है—'भूतान्य भूता भव्याय न्या' (मैत्रायणी शा० १-३-३५) और 'भूते न्या भव्यं य न्या भविष्यते न्या' (मैत्रेयीय संहिता ७-१-१३-५)। शतपथ ब्राह्मण ने भूत और भविष्यत् की स्तुति एक साथ की है—'भूतं भविष्यत् प्रस्तौमि' (१०-४-१-६)।

भूत और भविष्यत् दोनों के मिलने से जो परम सत्य है उसी की आराधना यदि कर सकें मनी हमें अभय मिल सकता है।—'भूतं भविष्यदभयं विभ्रमस्तु मे' (आवह.यन गृह सूत्र २-४-१४)

इस पृष्ठा का जो अंश छोड़ दिया जायगा उसी ओर से सृष्टि-बाण आयेगा, जिस प्रकार कहानी के एक-आंख- [शेष पृ० ५ पर]

# गुरुकुल

१६ बैशाख शुक्रवार १९६८

## मैंने अपने सुपुत्र को गुरुकुल क्यों पढ़ाया ?

[ श्रीमान् सुखदयाल जी, सुभाषिदाता और संभाषक गुरुकुल कमालिया ऊपर छपे शायक से लिखते हैं:— ]

'आर्यसमाज के नियम धारा ३ ( वेद का पढ़ना पढ़ाना और मनुना मनुना आर्यों का परम धर्म है ) का ज्ञान मुझे Non-cooperation १९२०-२१ के समय हुआ। मैं आर्य स्कूल का छात्र रहा था। नीकरी वा असहयोग आन्दोलन के समय तक मैं हिन्दी भाषा में भी अनभिज्ञ था। हिन्दू शुद्ध वा अशुद्ध लिखनी शुरू करके कुछ सीख गया। इस समय तक भी कई अशुद्धियाँ हो ही जाती हैं; ऊपर लिखित धारा आर्यसमाज में प्रवेश करने समय मन में चुन्नी और शर्म भी आई [मैंने चारों बंदीक यह को करके मनु लिया है अब स्वाध्याय कर रहा हूँ। यजुर्वेद की पूर्णा-रूति वा सारं वेद का यह भा पूज्य महात्मा दकचन्द्र जी द्वारा करवाया था।] विचार यह पैदा हुआ कि मे स्वयं तो सीख न सका यदि मैं जीवित रहा तो मैं अपने बालक को जो उस समय लगभग एक वर्ष का था यह संस्कृत विद्या का सम्पर्क मैं अवश्य तब भी हो सका दूँगा। इस पर उन्ने सात वर्षकी आयु में गुरुकुल में प्रविष्ट कराया गया।

"कमालिया में सन् १९६८ में गुरुकुल खोलने के बाद मुझे एक कष्ट यह भी हुआ कि इस विषय का दिन के लिये कमचारियों को हर समय अक्षय वा बुर आदर्मी में दान मागना पड़ता है। निश्चय किया कि यदि मेरा बालक स्नातक हो गया ( जो कि इस वर्ष स्नातक बन कर निकल रहा है ) तो उसका किसी गुरुकुल में ५) जेब भन्धे वा १०) बीमा भन्धे (वह ५०००) का Insured) लेकर काम करने के लिये हवाने कर दूँगा। मैंने अपने सुपुत्र में (जब वह पिछले वर्ष प्रभाषकाण पर बर आया था ) इस पर विचार कर के अनुमति ले ला है। वह मेरा इच्छानुसार कार्य करने में तैयार होगा है। परमात्मा को कि यह मेरी प्रणोकामना को अपनी आयु में पूरा करके दिखाय।"

[ श्री सुखदयाल जी का यह सुपुत्र ब्र० रणवीर ११ अग्रेल को स्नातक होकर निकल चुका है। मैं भी इस सुयोग्य ज्ञानक की श्राद्ध धर्म के कठिन मार्ग पर चल सकने में समर्थ होने के लिये शुभ कामना करता हूँ।

अभय ]

## लोहारू कांड पर प्रस्ताव

वापिकोसव पर हुए सम्मेलन में निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था।

२६ मार्च १९४१ को मुस्लिम गुंडों और राज के कमचारियों ने जिनमें पुलिस के आदर्मी, फौज के सिपाही, पटवारी और नम्बरदार इत्यादि सम्मिलित थे, लोहारू में आर्यसमाज के शान्त धार्मिक जलूस पर अकारण ही जो बर्बरतापूर्ण आक्रमण किया है उस पर यह सभा और रोष और घृणा प्रकट करती है।

यह सभा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, भक्त फूलसिंह जी और सख्त शायल हुए अन्य १२ भाइयों और साधारणतया जल्मी होने वाले ३० आर्य भाइयों के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति और सम्मान का प्रकाश करती है।

यह सभा गणपतिचारियों विशेषतः राज्य की पुलिस के व्यवहार का और निन्दा करती है जिसने पुलिस के पहले में जलूस निकालने के लिये आर्यनमाजियों को न केवल प्रेरणा ही की बरन् आग्रह भी किया साथ ही उनमें जलूस का इस नीति में स्वाचालन किया जिससे यह गुंडों की हिंसावृत्ति का सहज हो शिकार बन गया। इस अवसर पर पुलिस निरपेक्ष भाव में दशक क रूप में अलग लड़ी रही उनकी आश्यों के सामने निस्सहाय जलूस वालों पर लाठियों कुल्हाड़ियों और फर्सियों में निर्दयतापूर्वक प्रहार होना रहा।

राज्यधिकारियों क उपयोग व्यवहार और आर्य-समाज के सम्मान में लोहारू के आर्य समाजियों पर हुए व्यवस्थित अत्याचार का दखल हुए राज्य से किसी न्याय की आशा नहीं है, इसलिये यह सभा सन्नद्ध के प्रतिनिधि में प्रायना करती है कि वे लोहारू को दुःखद घटनाओं क सम्बन्ध में शांति में शांति निरपेक्ष जांच कराए, आर्य-समाजियों की जान और माल का रक्षा के लिये तत्काल उपाय करें और धार्मिक आधिकार और अनुष्ठाना क लिये उक्त पुण स्वतन्त्रता दिल न की व्यवस्था करें।

## दलितान्धार सम्मेलन के प्रस्ताव

गुरुकुल कांगड़ा के वापिकोसव पर हुए स्वतन्त्राधार सम्मेलन में निम्न प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे।

यह सम्मेलन इण्डियनसिपोलिटो तथा जिलों के हाकिमों से आग्रह पूर्वक प्रायना करता है कि वह इण्डियनसिपोलिटो तथा जिलों के दानों में बने हुए कूभो को दलित जातियों के उपयोग के लिये भी खोलने को आशा प्रचारित करें और आशा भंग करने वाला को दंडनीय समझे। तथा साथ ही उन स्वर्णी भाइयों के प्रति भी अनुपयत्ता के जाने, प्रायना करता है कि वे इस मार्ग में बाधक न बने अपितु अपने पंचायती तथा शैयतिक कूभो पर भी चढ़ने के लिए दलित भाइयोंको प्रोत्साहित करें।

प्रस्तावक स्व० ब्रह्मानन्द जी आनु० श्री० हरदेशसिंह जी २-यह सम्मेलन सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षा संस्थाओं के सञ्चालकों में आशा करता है कि वे अपनी



शिक्षा-उपस्थाओं में दक्षिण वर्षों को अधिकाधिक संख्या में प्रविष्ट करने की कोशिश करें। तथा इन और सबषी वर्षों में ध्यावहारिक भेद न होने दें। साथ ही इन दक्षिण वर्षों की शिक्षाभित्त के लिए वजीफ़ों को भी नियत करें।

प्रस्तावक श्री त्रिलोकाशकुमार जी वेदालंकार अत्रु० श्री धर्मवीर जी वेदालंकार

३-यह सम्मेलन दक्षिण जातिधों से भी आशा करता है कि वे अपने उपजाति सम्बन्धी लुआलुत तथा भेदभावों को संस्था पाठ्याग करेंगे। इस प्रकार अपने में सुसंगठित हाकर स्वोन्नति के मार्ग पर अपने आप भी बढ़ेंगे और केवलमात्र सखणियों की सहायता पर अवलम्बित न रहेंगे तथा इस निमित्त स्वच्छता, भोजन शुद्ध और कमलवर्षों को और भी अधिक ध्यान देंगे।

प्रस्तावक श्री० आनन्दराव जी पिघालकार अत्रु० स्वा० रामानन्द जी

[ पृ० ३ का शेष ]

वाने श्रुत के पास आया था। भारतवर्ष में जिस दिन भूत की उपासना में संज्ञा होकर भय ही उपाज्ञा शुरु का उसा दिन उस भय का आरंभ ही उस क पास मृत्यु-बाण उपस्थित हुआ। इसा लिये जा साधना परवृष्ण है उसमें नवीन और पुरातन का कोई उच्छेद नहीं है, इनम कहीं विरोध नहीं है। पुरातन का दुहाइ देकर हम यदि नूतन को स्वीकार न करें तभी उस साधना का विधिपात होता है। दूत-यह का कथा म इसी सत्य को धारणा का गई है। इसी तरह पुरातन को त्याग कर नूतन का भी नहीं प्रदण किया जा सकता। एक ही देवता के दो स्वरूप है। इन दाना स्वरूपों के साथ क यदि परस्पर विवाद करे ना कल्याण कहा है जहाज जब समुद्र क मध्याग म हो आर उसा समय उस क लक्ष आ पास न लड़ कर अलग अलग हा जाये ता 'महता विनष्टि' क। सवा क्वा हाथ आ सकना है। इसा लिये आध्यात्मिक गृह्य सूत्र म कहा है कि भूत आर भाव-य दाना मिल कर हमारा कल्याण कर- 'भूतं भाव-यदुनभद्रं मस्तु म'। अथर्ववेद म यह महत्त्व-पूर्ण वाक्य कहा गया है कि हम भूत क डार। भी रक्षित रहे आर भाव-युत क डार। भा— नूतन गुणो भव्यन व्याह ( १-२-२६ )। इसा लिये आध्यात्मिक ( static ) और गतिशील ( dynamic ) वस्तुओं म अन्तर्लन का विरोध नहीं है। दाना एक दूसरा क पूरक है। समुद्र म चलता हुआ जहाज जब दिक्भ्रष्ट होता है तो चलन हुए बादल उसको सहायता नहीं करत, उन अचल भूव नक्षत्र ही मार्ग दिखाना है। तुम्हारा साधना में शिव आर शक्ति का यह योग बराबर बना रहना चाहिये ताकि यह साधना सार्थक हो सके।

यह मन विराट् है, दृक्कट है। किन्तु मय की कोई वान नहीं। तुम में अपने योग्य गुरुओं से योग्य शिक्षा पाई है और समस्त अनीत का भ्रष्टार तुम्हारे अन्तर म संचालित होकर तुम्हें चालित करेगा। और भी दो गुरु तुम्हारे अत्यन्त निकट सदा वर्तमान है। एक स्वर्ण गुरु हिमालय, दूसरा जङ्गम गुरु गंगा। इन दानो गुरुओं का दीक्षा यदि तुम समर्पित कर सको तभी तुम्हारी दीक्षा पूर्ण होगी।

नील नदी जिस प्रकार मिश्र का प्राण है उसी प्रकार गंगा भारतवर्ष का प्राण है। मां से हमने देह पाया है, प्राण पाये हैं—माता गुरु की गुरु है। गंगा से हमारे देश में काया पाई है और आज भी इस माता का सत्य पान करक जी रहा है। अचल अटल हिमालय ने हमें ध्यान की दीक्षा दी है। और गंगा देती है प्रेम और सेवा की दीक्षा। अटल ध्यान के साथ जब नित्य सेवा का मिलन होगा तभी हमारी मुक्ति होगा।

वृक्ष में इन दो साधनाओं का भाध्यजनक समन्वय है। उसका मूल स्तम्भ हाकर लोक लोचन के अन्तस्तर में अतल क रस का आत्मनात् करता है और उसको शाखा और पल्लव, फूल और फल, छाया और शीतलता प्रति दिन प्राणियाण का सेवा म लगें हैं। इन दोनों में कहीं भी तो विरोध नहीं है। इसा लिये साथक का भी परिपूर्ण साधना क लिये इन दोनो भावों का स्वीकार करना होगा।

गंगा के तीर पर बड़े बड़े नगर, राज्य-साम्राज्य इतिहास, शान साधना सब जाप्रत हो गये है। मानव-मानव क बाध गंगा ने योग स्थापन किया है, जहां प्राण-वैष्य है वहा इस गंगा न प्राण स्वचार किया है। गंगा का धारा पकड़े हुए समुद्र में जाओ, सारे विश्व क साथ तुम्हारा योग स्थापन हो जायगा। इसा लिये गंगा परम-मुक्ति-द्वारी है। इसके तीर पर ही लगभग सारे तीर्थ है, देवालय है, आश्रम है। इस प्रकार का प्राणमयी गतिशील दीक्षा और कौन गुरु द सकता है।

देवालय का द्वार बन्द करके पंडे और पुरोहित अपना व्यवसाय चलाते है, पर गंगा का द्वार कौन बन्द कर सकता है? धर्म, दरिद्र, ऊच, नीच सबके लिये इस महागुरु का द्वार सदा उन्मुक्त है। इस गुरु क यहा बण-भेद नहीं है। उच्च नीच सभी इस के यहा स्थान पाते है आर इसमें प्राणमयी दीक्षा पाते है।

गंगा में एक और अपूर्व शिक्षा लेना है। सर्व जीव की सेवा म दिन रात लगें, रहने पर भी गंगा एक क्षण के लिये भा अस्वाम समुद्र की ओर जान बला अपनी यात्रा भूलती नहीं। उसका दिन भर का कर्म उसके नित्य कतव्य का प्रतिबन्धा नहीं होता। उसके प्रात्यहिक और शाश्वत कतव्य म कहीं भी विरोध नहीं है। ऐसा ही कि तुम्हारा साधना भी प्रात्यहिक कतव्य को तुच्छ न कर आर सासागक आदेश तुम्हारे शाश्वत कतव्य का उपहास वाच्य न समझे। मनुष्य क भातर हा प्रात्यहिक आर शाश्वत साधना म विरोध का बात उठाई जाती है। पर माता स्मृति इस बात का सार्थी है कि विरोध गलत है। पृथ्वी एक ही सत्य अपनी दैनिक और वार्षिक गति में चल रही है। कर्म और पूजा में जो कहीं भी विरोध नहीं है, यह शिक्षा गंगा तुम्हें देगा।

समस्त जीव जन्तु और लाकारण्य को मृत करने क बाद जो कुछ बाकी रह जाता है उसे ही लेकर गंगा अर्थात् प्रति अपनी अद्भुत शक्ति लेकर चल पड़ता है। इस अपूर्व पूजा की गुरु गंगा है। सुष्ठु गुरु योग कहा करते है, देवता का उच्छेद नहीं देना चाहिये, किन्तु महागुरु गंगा कहता है कि सबको मृत कर लेने के बाद जो कुछ बच रहे उमा

मे अनन्त का पूजा होती है। इसी बात को रवीन्द्रनाथ ने कहा है—

सवारे बंचित करि, तब पूजा नाहे [ नेवैच ४४ ]

सब को बंचित करके तुम्हारी पूजा नहीं हो सकती!

अप्य को अपवित्र और अप्रसूय बना कर ही हमारी पवित्रता निभाती है, गंगा की महिमा यह है कि वे सबको पवित्र करनी हैं—इसी लिये तो वे पतितपावनी हैं। जो कोई भी धारा, चाहे वह जितनी भी मलिन क्यों न हो एक बार गंगा में आकर मिलने ही पवित्र हो जाती है। हमारी इस सामाजिक दुर्गति के दिनों में हम क्या गंगा की महत्त्वपूर्ण शिक्षा को प्रत्यक्ष करने में असमर्थ हो रहे हैं?

सब की पूजन यह दिव्य धारा गंगा है, किन्तु सबसे नम्र, सबके निकट विनीत है—पैरो के नीचे से ही बही जा रही है। निम्नतम धारा को बहिन कर, के वह बली है इसी लिये प्रत्येक धारा उन्हीं में आकर मिल गई है। और इस का फल यह हुआ है अपनी साधना के मार्ग में गंगा जितनी ही अप्रसर होनी गई है, उतनी ही पुष्ट होनी गई है उतनी ही गंभीर होती गई है। नम्र भी यह शिक्षा प्रण करी। नम्र हो आ, निर्भयमान बने, सब प्रकार के अहंकार त्याग करो। तभी तुम्हारी साधना दिन दिन शक्तिशाली होगी। भूल न जाना कि जो सब प्रकार के गुरु हैं वही पृथ्वी बन कर हम सभी के पैरों तले पड़ी हुई है हमारी प्रतिष्ठा बना हुई है।

कैला अपूर्व प्रेम है इस गङ्गा का। पितृ गृह हिमालय में उनमें जैसा शीतलना थी, वैसा ही निर्मलता भी थी। अधम सन्तानों के प्रेम में उन्होंने उनका सागर ताप, सारा मालिन्य अंगीकार किया और उन्हें पवित्र बनाया, निर्मल बनाया। कब वह दिन आया जब हम लोग यह शिक्षण ग्रहण करेंगे? जो सात्विकता और श्रुतिता इस संसार के सर्व जीवों की दुःख दुर्गात मलिनता दूर करने में कृति होती है वह तो एक आध्यात्मिक विलासिता ही है। इस आदर्शगत विलासिता ने गंगा हमें मुक्ति दान करे।

इस प्रकार के जीवन्त महागुरु के तार पेट कर तुमने दिन रात साधना की है, यह तपस्या यदि तुम्हारे जीवन में सत्य नहीं हुई तो फिर कैसे तुम यथायत्न जातक हो सकोगे? तुम्हारी असली गुरु-बलिणा ही बाका रह गई।

पहले ऐतरेय ब्राह्मण की कथा नुमा आया है। इस ऐतरेय महीदास की शिक्षा, दार्ढ्य गुरु मही या पृथ्वी थीं। मही की शिक्षा पाकर उनका बाण्य में इनकी गम्भीरता और शक्ति आई थी। क्योंकि महा (Soul) न हो सारी शक्ति निहित है। जितने विज्ञान है; जितने शिल्प हैं सबका आश्रय यह मही या पृथ्वी ही है। इसी लिये ऐतरेय ब्राह्मण में ऋषि का ध्यानमय तपस्या और मही माता को नयामयी और शक्तिमयी शिक्षा की दो धारणें युक्त वेणी की भांति प्रयाहित हैं। ईशोपनिषद् में कहा है विद्या और अविद्या दोनों युक्त न होने पर सत्य नहीं होता; इस ऐतरेय में दोनों ही युक्त हो सके थे इसी लिये वे परिपुत्र संस्कृति की बात कह सके थे। पहले ही 'वैश्वेति' मंत्र में हमने इसकी गतिशील प्रवृत्ति का अन्वेषण पा लिया है। कला या शिल्प के सत्त्वग्रन्थ में इसीलिये वे एक उदार और महती दृष्टि दे सके थे।

शिल्प मर्म की कहानी ऐतरेय ने इस सुन्दरता से विवृत की है कि वह किसी भी काल में और किसी भी देश में पुरानी नहीं हो सकती।

“हमारे शिल्प के द्वारा उस देव शिल्प का ही स्वरूपान किया जाता है। उस देव शिल्प के द्वारा हमारे सभी शिल्प Inspired हैं अर्थात् देव शिल्प की ही अनुकृति है।—

शिल्पानि शंसन्ति देवशिल्पानेषां वै शिल्पानामनुकृतीह शिल्पमधिगम्यते।

जिन्होंने यह रहस्य समझा है वे ही शिल्प या कला के वास्तविक मर्म को जानने हैं—

‘शिल्पं हास्मिन्नधिगम्यते य एवं वेद्’।”

यह का फल तो हम जानते हैं, किन्तु जो पूजा शिल्प के द्वारा होती है उसका फल क्या है? उसके द्वारा क्या हम स्वर्ग पाते हैं? ऐतरेय कहते हैं, नहीं यह बान नहीं है। शिल्प अपने को ही संस्कृत करने के लिये है—

आत्मसंस्कृतिर्वाय शिल्पानि।

जिसने यह सङ्कति पायी है उसने अपने को विश्व के छन्द के साथ एक छन्द में बांध रखा है अर्थात् उसने अपने को विश्व छन्द में छन्दोमय बनाया है—

छन्दोमयं वा एतैर्वजमान आत्मानं संस्कृते।

ऐतरेय ६-५-२

शिल्प या कला के सत्त्वग्रन्थ में इससे बड़ी बात कहीं के आयुनिकतम शास्त्र में देखी है, ऐसा याद नहीं आता। इन सब वाक्यों को हम आधुनिक नहीं कह सकते क्योंकि आज जो आधुनिक है वह कल जीव और पुरातन हो जाता है। ये वाक्यानि शाब्दतः सनातन है, Eternal है। जिसे ऋग्वेद में ‘युवतिःपुराणी’ कहा है।

ज्ञानक गण, तुमने आज तक प्राचीन शास्त्रों में ही ये बातें पढ़ी हैं, इन सब महा सत्यों का शास्त्र में ही बह रक्षने से काम नहीं चलेगा। मर्षाग्रथ जिस प्रकार तम और मलीन मानव के लिये ब्रह्म कमण्डलु के समान पवित्र स्थान से भी गंगा का बाहर ले आये थे उसी प्रकार तुम लोग भी इन महा सत्यों को शास्त्र की पवित्र भूमि में निकाल कर जगत् को बचाओ और स्वयं भी धन्य होओ।

ज्ञान को यदि मुक्ति दे सको तभी तुम भी मुक्ति पाओगे। ज्ञान ही तो परमा मुक्ति है। जिनका ज्ञान ही बह है उन्हें कौन मुक्ति दे सकता है। ज्ञान यदि पा सके हो तो मुक्ति के विषय में कोई चिन्ता नहीं है। कीर्तियों में कहा है कि शुःक बोज को यदि रस में लींवा जाय तभी उस बाँध का आरोग्य विदोष्य होगा और तभी अङ्कुर मुक्ति पा सकेगा। ज्ञान प्रदीप होने ही सब कुक्ष को चुनौती देता है। अग्नि संस्कार ने हमारे इस देश में कनक नैयार करने के लिये कुक्ष अग्नी विद्यालय कोले थे। उस दिन उन्होंने सांखा भी नहीं था कि अधिप्य के लिये थे कितना बड़ा बल्लेड़ा कर रहे हैं। आज वह सब शिक्षित व्यक्ति मुक्ति की मांग रख रहे हैं। सिन्दुवाद का दैत्य अपने पीपे से निकल कर फिर किसी प्रकार उसमें लौट जा सका था, पर ये शिक्षित किसी प्रकार अपनी

पुरानी अवस्था में लौट जाना नहीं चाहने। यही ज्ञान का अभावभावी फल है। दीप जलाया जायगा और अंधेरा भी बना रहेगा, यह कमी हो ही नहीं सकता। यदि दीप जलाये जाने पर भी अंधेरा दिखाई दे तो समझना चाहिये कि या तो दीप ही विषम-लिखित और नकली है, या फिर जलाने वाला ही अंधा है। बारविल की कथा से जाना जाता है कि ज्ञान-बुद्ध का फल प्राप्त कर आदमी स्वर्ग को देने को प्रस्तुत है पर वह पुरानी झुड़ता में रहने पर रागी नहीं है। तुम लोग इतने दिनों तक इस झाड़-झोत्र में निवास कर चुके हो, भायी जीवन तुम्हारी परीक्षा के लिये तैयार है कि भीतर और बाहर तुमने इस ज्ञानालोक को किसना आग्रससात् किया है।

भारत का प्राचीनतम ज्ञान का रत्न माण्डार—उसका 'शिवशि'—वेदविद्या है। तुम में से प्रत्येक ही उस वेद विद्या के जीवित प्रतिनिधि हो। तुम यदि आराम जीवन के द्वारा इस समय की दुनिया की समस्यायें न सुलझा सको तो तुम्हारे हाथों वेद विद्या का जो अपमान होगा वैसा अपमान कोई अर्थात् वेद-शास्त्र भी नहीं कर सकेगा। इसीलिये आज तुम्हारे ऊपर दाय्य उपस्थित किया जा रहा है कि आध्यात्मिक ज्ञान, विज्ञान और शिष्य कला आदि में सब प्रकार अपने आपको पूर्ण करके सर्व मानव के अभाव मोचन में तुम आगोसग्न करो।

हमारे देश में गुरु और शिष्य की सम्मिलित तपस्या में ही ज्ञान की साधना है। उस साधना का पुण्यपीठ तपावन थे। मानव जीवन की तपस्या को बार भाग करके उसकी चिन्मय संपद की उपलब्धि और परिचय का अवसर तरुण जीवन को दिया था। तारुण्य का ब्रह्मचर्य ही चारों आश्रमों की प्रतिष्ठा भूमि थी। गुरु के चरण तले बैठकर तरुण जो ज्ञान पाने थे उसी ज्ञान को जीवन में प्रतिष्ठित करने का साधन था गृहशास्त्रम और अपने जीवन को उस महान् आदर्श की ओर अप्रसर कर देने के लिये ही अन्तिम दो आश्रमों की व्यवस्था थी।

इसी लिये तपोवन भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा-भूमि थी। भारतीय संस्कृति का इतिहास तपोवन का इतिहास है। हमारे सिर पर जिस प्रकार चिन्मय आकाश है और नीचे सूक्ष्मय धूर्वी है उसी प्रकार तपोवन के एक ओर तो सत्य ब्रह्मा ध्यान-परायण ऋषिगण गुरु हैं और दूसरी ओर है, स्नेहमया शोभमयी प्रकृति माता। तपोवन का महत्त्व समझने के लिये कवि गुरु रघोदनाथ का 'तपोवन नामक प्रबन्ध एक बार पढ़ने का अवरोध करना है। तुम्हारे जीवन में यह तपोवन सार्थक हो उठे। शायद इससे बड़ा मार्ग में तुम्हारे सामने नहीं उपस्थित कर सकना।

प्राचीन काल में विद्या भारतवर्ष की ध्यैकगन संपत्त नहीं थी। विद्या की साधना सब समाज की सम्मिलित साधना थी। इसीलिये समस्त समाज के निकट ब्रह्मचारी का दाय्य समान भाव से ही चलता। इस समय जैसे बाप माँ ही सन्तान की शिक्षा का ध्येय भार वहन करने हैं उन दिनों ऐसा रूप नहीं था। जिस जगह भी ब्रह्मचारी जाता, वहीं उसकी माता उपस्थित होती, वहीं उसे अन्न प्राप्त करने का अधिकार था। मांमो यह बोधना करने के

लिये ही ब्रह्मचारी घर-घर जाकर अन्न की मांग पेश करते कि वे सारे समाज के हैं और समस्त समाज का उन पर दाय्य है।

श्रीक गण मूल्य लेकर विद्यादान करते थे। भारतवर्ष में यह बात अत्यन्त निम्नित थी। भारतवर्ष में कोई विद्या बेच नहीं सकता था, अन्न-सेवा और तपस्या के द्वारा यह विद्या पार्ज जा सकती थी और अर्थ लिये बिना इसे वितरण किया जा सकता था। इसी लिये इस देश में गुरु-शिष्य का संबन्ध निविड और जीवन्त था। बाहर के विधिविधान या आर्रन-कानून इस संबन्ध में कोई विच्छेद या आविलना नहीं ले आ सकते थे। ग्रंथ और शास्त्र सबसे बड़े गुरु माने जाते थे। गुरु और शिष्य के भीतर किसी पुस्तक या पुस्तकालय को व्यवधान सृष्टि करने का अधिकार नहीं था।

[ अर्पण ]

## गुरुकुल स्वास्थ्य-समाचार

धर्मद्वनाथ ५ अंशो नेत्ररोग, रघुनाथ ३ अंशो नेत्ररोग, केशवदेव २ अंशो नेत्ररोग, सन्तोषकुमार १ अंशो नेत्ररोग, सुमन्तकुमार ५ अंशो शीतपित्त, जगन्नाथ ६ अंशो श्लेष्मज्वर, धर्मपाल ६ अंशो श्लेष्मज्वर, रामकुमार ४ अंशो श्लेष्मज्वर, वेदव्रत ४ अंशो श्लेष्मज्वर, वेदव्रत ४ अंशो श्लेष्मज्वर, श्रीकृष्ण ४ अंशो मलेरियाज्वर, विशामूर्ख ३ अंशो मलेरिया ज्वर, उदयमानु २ अंशो मलेरिया ज्वर, सत्यदेव २ अंशो बलरु, दामनेश ३ अंशो अजीर्ण, रूपनारायण मलेरियाज्वर, वेदमूर्ख मलेरिया ज्वर, प्रताप मलेरियाज्वर, कृष्णकुमार १२ अंशो श्लेष्मज्वर, अन्नवकुमार ११ अंशो मूत्र।

उपरोक्त ब्रह्मचारी गत दो सप्ताहों में रोगी हुए थे। नेत्ररोगी ब्रह्मचारियों को दवाई लग रही है आशा है कि शीघ्र आराम आयावेगा। शेष सब ब्रह्मचारी स्वस्थ हैं। आजकल दिन में पर्याप्त गर्मी तथा पिछला रात्रि में ठण्ड होती है। अधिकतम तपमान १०४ डिग्री फ़ा० तथा न्यूनतम ८० डिग्री फ़ा० होता है।

## गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में नये वर्ष की पाइयाँ शुरु होगई हैं। ६३, ७३ तथा ८३ अंशो का परीक्षा परिणाम निकल आया है। मन्त्रचक्रों को परिणाम भेज दिया गया है। अभी नवम तथा दशम अंशो का परिणाम नहीं निकला है।

५ मई १९४१ से मीठ्याभकाश के कारण गुरुकुल इन्द्र-प्रस्थ डेढ़ मास के लिये बन्द रहेगा। ब्रह्मचारियों के पर्वतीय यात्राओं पर भेजेने का प्रबन्ध हो रहा है। सरसक महोदय मार्ग ७वय के लिये १५) शीघ्र यहाँ भेज दें।

## गर्मियों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी धातु क्षीणता पुरानी खांसी, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शीक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाब (१८) आध सेर २८) १ सेर ४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियों से तैयार की गई ये गोलियां सब प्रकार की कमजोरियों में अक्सीर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करती हैं।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलार्जात और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ॥१) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ॥२) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियां बेच रहे हैं। इसलिए दवा खरोदते समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

मांच	{	देहली—चांदनी चौक।
		मेरठ—सिपर रोड।
एजेंसियां	{	लखनऊ—एजेंसियां गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।
		लाहौर— " " " इस्पताल रोड।
		पटना— " " " मछुआदोली बंकीपुर।
		अजमेर— " " " वैद्यराज सरदारोदाल जी कड़ा चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी ज़ि.सहानपुर**



एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुद्रण-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदान्तकार

वर्ष ६]

गुरुकुल कागड़ी, शुक्रवार २० वैशाख १९६३; २ मई १९४२

[ संख्या २ ]

## दीक्षान्त अभिभाषण

( आचार्य ऋतिमोहनसेन )

( गतक से आगे )

इस लिये प्रचलन भारत में गुरु और शिष्य दोनों की साधन से मिलकर एक अलखड तपस्या का सृष्ट कर सकी थीं। शिष्यगण अपने को गुरु से स्वतंत्र करके नहीं सोच सकने थे, अपने समस्त ज्ञान में वे गुरु को ही विराजित देखने, शिष्य धारा में गुरु ही रुन्तन हुआ करने। शिष्यगण अपने व्याख्यात ग्रंथ और ज्ञान का गुरु की ही वस्तु मानते थे इसी लिये एक शंकराचार्य के नाम पर सौ-सौ शहराचार्यों ने ज्ञान दिया है। मध्ययुग में भी एक कबीर और एक नानक को पीछे कितने-कितने नानक मुनई देते हैं। केन नामक यूरोपियन पंडित ने बुद्धसाहिता की भूमिका में इस ध्यान पर विस्मय प्रकट किया है।

बौद्धयुग का इतिहास यज्ञे-बड़े साधुओं का इतिहास है। इसीलिये उस समय गुरु शिष्य के मध्य में गंचन तपस्वन बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के रूप में बदल गये। जो ज्ञान का परिचार था, वह ज्ञान की संस्था हो उठा। समस्त पृथ्वी में यहाँ ज्ञानार्थी श्रम्यारगत आया करने, विश्व-विद्यालय के साथ ही साथ बड़ा लाइब्रेरिया संगठित हुईं। फिर भी उन दिनों भी गुरु-शिष्य का संबंध लुप्त नहीं हुआ। पुराण में, स्मृति में और तत्र में गुरु-शिष्य का संबंध एक घनिष्ठ प्रीति का संबंध है। इसीलिये जब भारत की स्वाधीनता-रुद्ध हुई तो उनके अंतर्गत से विद्यापीठ फिर से जागृत हो उठे गुरु और शिष्यों ने युद्ध तपस्या के बल से भारतीय संस्कृति को मरने से बचा लिया। कौन उन विश्वविद्यालयों को तब कर सकता था? वे ईट पत्थर के तो बने नहीं थे। एक-एक गुरु ही एक-एक विश्वविद्यालय थे। प्रोफेसर देश को मुक्तान, अफलन्त और अरबू, मध्ययुग के फ्रांस के एवेलाड, ये प्रत्येक ही एक-एक विश्वविद्यालय थे। भारतवर्ष में भी गुरुगण एक एक विश्वविद्यालय हो कर रह गये।

आज के लोग जब भारत में आये ता हमारे इस देश का शिक्षा और विद्या का व्यवस्था देखने के लिये W Ward को नियुक्त किया गया। उन्होंने १८०० ई० के

आसपास तत्कालीन भारत-सरकार के पास अपनी रिपोर्ट पेश की थी। यह बहुत अनुकूल भाव में नहीं लिखी गई है, तब भी बंगाल और काशी आदि स्थानों में जिन संस्कृत पाठशालाओं और चतुष्पाठियों का विवरण उन्होंने दिया है उसमें कोई भी सभ्य देश गर्वित हो सकता है। उन्होंने इस देश की प्रत्येक चतुष्पाठी को 'कालेज' नाम दिया है। ये गुरु और शिष्य गण उन दिनों राजा की सहयता से चंचित थे तो भी समाज की सहायता से उन दिनों शिक्षा आज की अपेक्षा अधिक फैला हुई थी। यही गुरु गण एक-एक जगह बैठ कर शिक्षा दिया करते थे जब कि संन्यासी गुरु गण उन्में एक कोने से दूसरे कोने तक फैला बैठे थे। इसीलिये एक प्रदेश की विद्या देखने-देखने नाना प्रदेशों में फैल जाती।

उन दिनों तीर्थ ज्ञानप्रचार के एक और साधन थे। एक-एक पुण्ययोग के आस्रण पर नाना प्रदेश के लोग एकत्र हुआ करते थे। और ज्ञान अपने आप चला करता। यूरोप का Peripatetic अर्थात् जगम शिक्षा की व्यवस्था हाल की कल्पना है, पर हमारे देश में यह बहुत-बहुत पुरानी है। ज्ञान का क्षेत्र समझ कर ही उन दिनों लोग तीर्थ में दान किया करते थे। इस समय दुर्भाग्यवश तीर्थगुरुगण अपनी प्राचीन तपस्या में लक्ष हो गये हैं। उन दिना तीर्थों में जा दान दिये जाने थे वे नाना भाष में ज्ञान की कल्याण धारा के रूप में साग देश में संचारित होते थे। इधर तीर्थ में दिया हुआ धन केवल व्यक्तित्व आग उद्देशहीन संन्य के रूप में बदल गया है और नाना दुर्भाग्य अपकर्म में मिश्रित हो रहा है। भाग जब चलती है तब पवित्र होती है और वह धारा जब बह हो जाती है तो सूख जाती है। तीर्थ की यह धारण्ये आदर्शकयुत होकर बह हा गई है और उन्में सद्गान आ गई है।

प्राचीन काल में तीर्थों में जो दान होता था वह ज्ञान के लिये स्वेच्छा प्रदत्त दान था। उन्में बाले टैक्स का तरह उन्में देने को बाध्य नहीं थे। वे दाता अपना सर्वस्व दान करने धम्य हुआ करते। यह टैक्स हम आज भी ठेके रते हैं किन्तु व्यर्थ ही। आज विद्या की बात उठी नहीं कि नये टैक्स का प्रस्ताव आना है।

आजकल के टैक्स से गठित विद्या दान की व्यवस्था सकेद हाथी पालना है। यह सकेद हाथी किसी काम में नहीं आता पर उसकी मूख का अन्त नहीं है।

अकर्मरूप तीर्थ आज हमारे समाज के ऊपर खेत हस्ती के समान ही है। फिर यह जूनन शिक्षा-व्यवस्था नाम का एक दूसरा सकेद हाथी भी इस समाज की गर्दन पर सवार कराया गया है। दूरिद देश इन दो भयंकर दबावों से पिसा जा रहा है। इस शिक्षा-व्यवस्था के लिये अधिकारियों को और से जो कष्ट भी लब्ध होता है उसका तीन चौथाई तो इमारत और लाहा-सफकड़ में ही लग जाता है। बाकी एक चौथाई ही असली कार्य में लब्ध होता है। यह भी Efficiency के नाम पर बहुत थोड़े स्थानों में लब्ध किया जाता है। अर्थात् आज का अधिकारी वर्ग पिरामिड की रचना उसके आधार की ओर से नहीं उसके सुष्यम शिखर की ओर से करने को कटिबद्ध हुए हैं।

अब भी तीर्थगण एकदम शिक्षाहीन नहीं हुए। किन्तु वहाँ जो लोग वस्तुतः शिक्षा का कार्य सम्पादन करते हैं वे अत्यन्त दुःखी और दूरिद हैं। काशी आदि तीर्थों में इन निर्धन दुःखी गुन्माओं ने कितना कष्ट सहकर हमारी संस्कृति को बचा रखा है, वह कह के समझाया नहीं जा सकता।

गुरु के नाम के लिये देश के सर्वश्रेष्ठ मानवों की जकड़त होती है। यूरोप पैसा देकर ऐसे मनुष्यों को संग्रह करता है। भारतवर्ष ऐसे को भ्रष्टा भक्ति देकर संग्रह करता था। इस देश में अष्ट्यापकों के सम्मान की सीमा नहीं थी। आज यूरोप का अनुकरण करके हम भ्रष्टा भी नहीं देना चाहते और फिर पैसा देने में भी असमर्थ हैं। इस शिक्षा के क्षेत्र में हम अष्ट्ये आदमों की आशा नहीं कर सकते। इसके बाद जब देश में एक एक बार प्रवण्ड उत्तेजना की सृष्टि होती है, उस समय विद्यार्थियों के मन तुरे का विचार किये बिना उनकी तपस्या से हम उन्हें खींच लते हैं। इस प्रकार नाना मुगलित से हम अपने देश के अविषय को नष्ट करने के लिये उद्यत हैं। मूख किसान भी जानता है कि रोपे जाने वाले धान्यांकुनों की रक्षा अपने अन्तिम पत्तीनें की रूँद से की जाती है। हम माना भाव से अपने रोपे जाने वाले धान्यांकुनों को ही मारने वाले हैं क्योंकि हमारे तरुण क्षत्र ही ये अंकुर हैं। इन में बड़ा अभाग्य और कौन है ?

हे ज्ञातक गण, तुम्हीं भाषी भारत के गुरु हो। तुम्हारा व्रत महान् है, पर बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इस देश के लोग तुम्हारा योग्य तपस्या का कोई भी सम्मान नहीं कर सकते। पैसा दे सकते की क्षमता भी इनमें नहीं है और भ्रष्टा और भक्ति दे सकते योग्य महत्व भी इनके हृदय में नहीं रह गया है। तुम्हारी सेवा का महत्व कोई समझगा ही नहीं। लूच संभव है लोग तुम्हारी अवज्ञा ही करेंगे, उपेक्षा ही करेंगे, फिर भी तुम्हें व्रत-अष्ट नहीं होना होगा, क्योंकि तुम भारत की महत्त्व परम्परा के इस युग में प्रतिनिधि हो। इस युग के दरबार में तुम पुरातन अतीत युग के राजदूत हो।

यदि तुम गुरु हो तो तुम्हारे पास गौरव होना ही चाहिये। सब को मित्रत्व देने वाले ही यदि गवज्जम न प्राप्त करे तो कैसे काम चलेगा। इसीलिये आज मैं तुम से कठिन मांग करूँगा। तुम दूरिद्व्यवस्था और विवदता के होने हुए भी तुम्हें अपने पदोचित महत्व की रक्षा करनी होगी और अपने माहात्म्य का प्रमाण देना होगा। इस दूरिद देश को ज्ञान-विज्ञान से, शिल्प-कला से इस प्रकार दीम कर दो कि यह उदात्त-कंठ से कह सके:—

पतहं शमयुतस्य सकाशादप्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिखरेण पृथिव्यां सर्वं मानवाः ॥

मनु० २-२०

हमारी शक्ति कम ज़रूर है पर इसलिये दूसरों की ओर ताकने रहने से काम नहीं चलेगा। यदि व्यक्तिगत सामर्थ्य से वह संभव नहीं होगा तो समिलित सामर्थ्य से उसे पूरा करना होगा। यह जो तुम्हारी आश्रम-पावनी गंगा वह रही है, इन्में यदि बिन्दु बिन्दु अलग कर दिया जाय तो इन की महासमुद्र की यात्रा समाप्त हो जायगी, सब कुछ रास्ते में ही सूख जायगा। अगणित बन्दुओं के एकत्र होने से इनकी शक्ति अपराजेय है। भगवान् के निकट प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारी व्यक्तिगत शक्ति परिमित होने पर भी तुम्हारी समिलित शक्ति सकल बाधाओं को पार करके अपने अपार लक्ष्य की ओर अग्रसर हो।

गुरुकुल को किसी स्थान विशेष पर बह देखना एक तरह की भौतिकता ही है। तुम्हो नो वास्तविक गुरुकुल हो, प्राचीन गुरुओं की भांति तुम में मे प्रत्येक एक एक जीवन और अलग-अलग विभविद्यालय बनो।

यूरोप में एक बड़ी भारी समस्या व्यक्तिव और समाज को लेकर बड़ी हुई है। यदि मण्डली को बड़ा बनाना है तो व्यक्ति को मरना आवश्यक है और व्यक्ति को बड़ा होने देने में, समाज दूर हो जाता है। इसीलिये कई धर्मों में व्यक्तिव को पीस कर धर्म के संगठन को ही शक्तिशाली बनाया है। हमारी नवतुल्य व्यवस्था में इन दोनों के सामंजस्य की व्यवस्था है। गुरुत्वार्थ में जहाँ समाज के सभी विधि नियमों को स्वीकार किया गया है, वहाँ संस्थास आश्रम में उनकी उपेक्षा का अधिकार भी दिया गया है। किन्तु आज जीवन को पुराने जमाने के ढंग पर गृहस्थ और संस्थास आश्रम के रूप में बाँट कर देखना ठीक नहीं होगा। हमारा आदर्श इसी जीवन में साथ ही साथ गृहस्थ और संस्थास के आदर्शों का सामंजस्य होना चाहिये। तभी हम व्यक्ति और समाज की समस्या का समाधान करेंगे।

यद्यपि मैं जानता हूँ कि तुम्हारे भावी जीवन में कठिनाइयाँ आने हें, दुःख मुगलित बहूँ है फिर भी मैं तुम से बहुत कुछ आशा कर रहा हूँ। और कहाँ और किसके सामने करे, देश के भावी तो तुम हो।

अन्तहीन दुःख का बाँक तुम्हारे सिर पर लाद दिया है, मन में तुम सुष्य न होना। क्योंकि कठिन दुःख के सिवा हमारे अन्तर्निहित अस्मास संपद का संभवन हमें मित्रता कहाँ है ? कठ के भीतर की सुन्द अग्नि को मंथन

से जगाया जाता है। इसी लिये जब दुःख युगति के दिन होते हैं तभी देश में बड़े बड़े महायुद्धों का आविर्भाव होता है। इसीलिये बड़ी बड़ी समस्याओं का आना देश का सौभाग्य है। पराधीन देशों को ऐसे सौभाग्य सब समय नहीं मिलते और इसी लिये अपनी अन्तर्निहित शक्ति को जान सकने के सौभाग्य से वंचित रह जाते हैं। फिर भी दुःख काम नहीं है, हमारी समस्या भी छोटी नहीं है। तुम्हें इसी के भीतर से अपनी वास्तविक शक्ति कोजानी पड़ेगी।

जब तुमने आलोक पाया है तो जल कर भी तुम्हें दूसरों को आलोक देना पड़ेगा। आलोक का मूल्य ही सर्वस्य दान है। बिन्दु बिन्दु मूल लय कर के ही दीप प्रति-सूय अपना आलोक पाता है। अपने अन्तिम बिन्दु तक को जब तक वह निःशेष न कर दे, उसको निष्कृति पाने का अधिकार नहीं है।

इतने बड़े महाव्रत के लिये स्वामी दयानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने तुम्हें पुकारा था। अपने चित्त की दीनता के कारण उनकी पुकार को यदि छोटा करके देखोगे तो उनका अपमान करना होगा और यदि तपस्या में अक्षय हो पड़ोगे तो अपने अन्तरात्मा का अपमान करोगे। आज इस समावर्तन के दिन तुम्हें समरण करा देता हूँ कि उस महान् पुकार का जवाब तुम्हें देना होगा, किसी प्रकार की कथरता तुम में न रहे,—'कैव्य मासमः पार्थ'। तुम्हें कहना होगा कि जगत में जो कुछ धोर है, जो कुछ करूँ है, जो कुछ पाए है, हमारी तपस्या से वह सब शान्त हो, सबका कल्याण हो।—

शमयामोहं यदिह धोरं यदिह करं यदिह पापं  
तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥

(अध्याय १६. ६. १४)

ॐ शान्तिः

## वेद और राष्ट्र धर्म

[ लेखक—श्री. व० धर्मपाल ]

[ यह लेख गुरुकुल धार्मिकोत्सव पर हुए वेद सम्मेलन में पढ़ा गया था। ]  
आधुनिक युग में जहाँ व्यक्ति का व्यक्ति के साथ जाति का जाति के साथ तथा समाज का समाज के साथ संबंध चल रहा है वहाँ राष्ट्रों में भी आसस में घोर विरोध प्रकट हो रहा है। अतएव एक राष्ट्र को लिये अपने को सभी दृष्टियों से सुश्रुत करने की चिन्ता करना अपरिहार्य है। उसे अपना शासन विभाग सुसंगठित और सुव्यवस्थित करना होना है, मेना की वृद्धि तथा शस्त्रों से प्रत्येक सैनिक को लैस करना तो इरर्यत्त अ.व.यक कार्य है। और एकता तथा नियम में संपूर्ण राष्ट्र को बाँध देना भी चिन्तनीय होता है।

इन सब उपयुक्त सावधानियों के लिये आजकल जो उत्तम शासन व्यवस्था स्वीकार की गई है वह Democratic अर्थात् प्रजातन्त्रशासक शासन पद्धति है। जिस में प्रजा स्वयं अपने लिये अपने द्वारा शासन करती है।

परंतु यह शासन प्रणाली कोई नवीन उपज नहीं है वृद्धि के आरंभ में ही ईश्वरप्रदत्त सब सत्य विद्याओं के पुस्तक वेद में इस का स्थान स्थान पर बड़ी उत्तमता तथा स्पष्टता से उल्लेख है। तथा इस प्रणाली के अंग अंग का उस अंग के कर्मव्यो का तथा उत्तम रूप से शासन का उपदेश अत्यंत मनोरंजक और सरल ढंग से पाया जाता है। आर्यों धोड़े में वेद की इस विद्या पर विचार करें—

राष्ट्र की उन्नति तथा सुव्यवस्था के लिये वेद ने एक उत्तम राजा की आवश्यकता बनाई है। जिस के गुण इसी शब्द से प्रकट हो रहे हैं—'राजा रज्ज्नात्'—'रज्ज्वति प्रजा' जो प्रजा को प्रसन्न रखता है। तथा 'राजते इति राजा दीप्यमानः' जो स्वयं प्रकाशमान तथा वृत्तों को प्रकाशित करने वाला है। जो स्वयं तेजस्वी होगा तथा जिस के शासन में राष्ट्र का तेज बढ़ेगा उस का भी नाम वेद की दृष्टि में राजा हो सकता है। इस राजा के लिये यजुर्वेद अध्याय २० में सुस्तोक सुमंगल आदि विशेषण आये हैं। जो मुख्यतः अर्थात् सु उत्तम श्लोक यश बाला हो अर्थात् राजा का आचार भ.वण तथा सभ्यता हर प्रकार से प्रशंसनीय होनी चाहिए। तथा सुमंगल—उत्तम मंगल विचारों का प्रचार और कल्याणमय मंगल सत्कर्म करने वाला राजा होना चाहिए। और सत्य राजा होना चाहिए। पुरोहित कहता है—

तेजसे ब्रह्मवचंसाय अग्निषिचामि र्षियाय राश्राथाय  
अग्निषिचामि बल्लय ऋषे यश से अग्निषिचामिः—

मैं तेरा इसलिये राज्यभियेक करता हूँ कि तुम्हारे राज्यशासन से राष्ट्र का तेज बढ़ता रहे और ब्रह्मवचंसा हान का प्रभाव राष्ट्र में बढ़ता रहे तथा राष्ट्र की पीठ शक्ति बढ़े और अन्न आदि पदार्थों की दृष्टि हो यहाँ—  
तेज और ब्रह्मवचंसा शब्दों द्वारा ब्राह्मणों का कर्म, वीर्य शब्द से क्षत्रियों का कर्म तथा अन्नाय शब्द से वैश्यों का कर्म बताया हो। अर्थात् राजा को बिना किसी पक्षपात के तीनों वर्गों की उन्नति करनी चाहिए।

तथा राष्ट्र में धन, धी और यश की वृद्धि करनी चाहिए। राजा को कहा है—

“अत्रस्य योनिगिस्त्रस्य नाभिरसि  
मात्वा हिंसी मा हिंसी”

तू सब अर्थात् शीर्य का मूल कारण है और शीर्य वीर्य का तू नाभि (केन्द्र) है। षड् बन्धने जिस में सब वस्तुएँ एकत्र करके बाँधी जाती हैं। और हे राजव, तेरा कोई हिंसा न करे और न तू हमारे में किसी की हिंसा कर। सब शब्द का अर्थ कालिदास लिखित रघुवंश के श्लोक से प्रकट है—'सुलता किल त्रायत इन्द्रमः स्रस्य शब्दः मुदनेयुक्तः' जिस गुण से वंशों से बचाया जाता है या लय विनाश से रक्षण किया जाना है। पुरोहित कहता है—

धृतमनः वरुणः पस्वगानु आ निषसाद'

नियमों का धारण करने वाला तथा वरुणः—अग्नि के निवारण करने वाला 'वारयति अग्निधमिति वरुणः' प्रजाओं (शेष पृ. ५ पर)

# गुरुकुल

२० वैशाख शुक्रवार १९६८

## इस वार का सफल उत्सव

गुरुकुल विन्धविद्यालय कांगड़ा का ३६ वां वार्षिकोत्सव गुरुकुल की पुनीत भूमि में जिस धूम-धाम और सफलता के साथ मनाया गया उसकी जितनी प्रशंसा की जाय छोड़ी है। देश के वर्तमान विद्युम्भ वातावरण में अपूर्व उस्ताह के साथ जनता का इतनी भारी संख्या में यहां पधारना सम्भव अपनी कुछ विशेषता रखता है। इस उत्सव पर एक न नई आर्य जनता की लगन, रुचि, कर्तव्य-परायणता को देखकर निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि गुरुकुल का भविष्य उज्वल है। इस वर्ष ६० नवीन प्रशिक्षार्थी प्रविष्ट हुए और दान की रकम ६२ हजार रुपये थी। २२ प्रशिक्षार्थी स्नातक बन कर देश और जगत की सेवा में संलग्न हुए।

हमारे देश में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो सेवा निराशा के ही गीत गाता पसन्द करते हैं। वे अपने देश का भविष्य अन्धकारमय देखते हैं। अपनी शिक्षा संस्थाओं को कोसते और गुरुकुल प्रणाली को बुरा भला कहते हैं। इसे समाप्तिक और निरुपयोगी बताते हैं। किन्तु इस वार के उत्सव पर सामान्य गणिक क तो कहना ही क्या, ये महासुभावों के चंहरों पर भी आशा की एक उज्वल मुस्कान-दृष्ट नज़र आई और उन्होंने अनुभव किया कि गुरुकुल प्रणाली में समाधत्तः कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण यह प्रणाली सदा जीवित रहेगी और इसका नाश कभी हो नहीं सकता।

एँ तो प्रतिवर्ष हो गुरुकुल का वार्षिकोत्सव बड़े समा-रोह के साथ मनाया जाता है लेकिन इस वर्ष का उत्सव सब दृष्टियों से अत्यन्त सफल रहा। वेद-सम्मेलन, कवि-सम्मेलन, व्यायाम सम्मेलन, संगीत सम्मेलन, सांहासकान्द प्रादि सम्मेलनों के कारण उत्सव की अच्छी भी-वृद्धि हुई। आर्य समाज के उच्चतम कोटि के विद्वान् तथा महाभाग्य भी पधारें। सर्व भो एं बुद्धदेव जो विद्यालंकार, एं इन्द्र जो विद्यावाचस्पति, एं धर्मैन्द्रनाथ जो तर्क शिरो-मणि, एं गंगामनाथ जी जीक जज, एं प्रियव्रत जी वेद-वाचस्पति, एं यशपाल जी सिद्धान्तलंकार, एं व्रतानन्द जी, एं सत्यानन्द जी, महामा नारायण स्वामी जी ने अपने उपदेशासूत की बर्षा से जनता को परिचय किया। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अलखला के कारण न पधारने पर भी आचार्य क्षितिमोहन सेन शान्ति निकेतन ने उनका भावण पढ़ा और तत्पश्चात् अपना सार गभित हृद्य-भावण भी दिया।

इस प्रकार धन-जन संग्रह की दृष्टि से यह उत्सव पूरी तरह सफल रहा, उत्सव के चारों दिन पंडाल भरपूर रहा।

कहीं तिल रकने की भी जगह नहीं थी, गुरुकुल में चारों ओर नर-सुरङ्ग ही नर-सुरङ्ग दृष्टि-गोचर होते थे। इसके साथ ही धार्मिक जनों की आध्यात्मिक तथा मानसिक भूख को सुल करने और विविध विषयों की उपयोगी चर्चा होने के कारण यह उत्सव अन्य वर्षों के उत्सवों से एक कदम आगे बढ़ गया।

## तूफान

तूफान चला तूफान चला।

हर हर हर हर हर हर हर, हर हर हर तूफान चला।

कुछ मेष उठे कुछ धूल उठी,

फिर ललकंकर पवमान चला।

भर गप पत्र, भर गप फूल,

नव पल्लव सुल में उठे भूल,

तब लखक लखक कर लहराए—

बल्लरियां सम्कूल गईं भूल,

सारी संसृति में गरज गरज—

वीथन का भीषण गान चला।

बाहे कितने ही फूल गिरे,

बाहे कितने तरु डूब गिरे,

चाहे वन की सब बल्लरियाँ—

वन की शोभा को लूट गिरे,

यह रौद्र रूप धर कर वीथन

कोमलता से अनजान चला।

यह धूल उड़ी जाती देखो,

लहरें बल्ल गायी देखो,

सारी जगती इस झटके से—

नूतन जीवन पाती देखो,

हर पल्लव लतिका लहरों को

करता जीवन का दान चला।

मयनों से लड़, तब से भिड़ कर,

लेकर पर्यन से भी टक्कर,

जो चीज़ मिली साने उससे—

बिलकुल पागल पन से अड़कर,

हड़कम्प मबाता सुनियॉ में

जीवन संघर्ष महान् चला।

घरों तक भीषण घहर घहर,

कुछ बड़ बड़कर फिर डहर डहर,

सौ सौ विच्छिन्न का मिला ज़हर—

शेकर पीड़ा की एक लहर,

हो हम्बेध में परिवर्तित

निष्ठुर प्रियतम का ध्यान चला।

कितने तरुओं से नीड़ गिरे,

कितने बेलों से फूल झरे,

हा उजड़ गप उधान करे—

सुखमय, शोभामय हरे मरे,

यह सदा हमारी क्षाती का

आकर बाहर नादान चला।

तूफान चला तूफान चला।

“विद्याज”।



२०३ से आने

विद्युत तथा विकीर्ण करना चाहिए। प्रजाजनों को दीप्यमानः तंजली बनाना चाहिए। और सत्राद् को 'सम्यक् राजते' पूर्णता से चमकने वाला बनना चाहिए। तथा विराट् 'विशेषेण राजते' विशेष प्रकार से चमकने वाला बनना चाहिए और 'स्वराट् स्वर्णेन राजते' अपने ही बल से सुशोभित बनना चाहिए।

राजा को प्रजाजनों की उन्नति तथा सुख सम्पत्ति युक्त बनाने के लिए वेद ने निम्न मंत्रों द्वारा शिक्षा दी है—

'अमन्वात् स्तोमाम्भरे मनीवासिन्धावधिषियतां भाव्यस्य यो मे सहस्रममितीत सवान्तूर्तो राजा भव इच्छमानः' ॥  
 ब्रह्मचारी ब्रह्मता है— (सिन्धवी अधिषियतः) नदी तट पर निवास करने वाले (भाव्यस्य) अमन्व के इच्छुक राजा का रूप। (अमन्वात् स्तोमान्) में उच्छ्रय या अनेक विद्याओं से युक्त वेदों को (मनीया प्रभरे) अर्थात् पूर्वक या बुद्धि पूर्वक धारण करके। (यः अमन्तः राजा) जिस गम्भीर या जल्द वाक्पी न करने वाले राजा ने (भव इच्छमानः) प्रशंसा की इच्छा करते हुए (मे) मेरे जैसे ब्रह्मचारियों के लिए (सहस्रं सवान् अमितीत) हज़ारों शिक्षणालयों का निर्माण किया है।

यस्य इस मंत्र में बतलाया गया है कि राजधानी सदा नदी तट पर होनी चाहिए और राजा का धर्म है कि वह अपने राज्य में स्थान २ पर उत्तम कीटि के शिक्षणालय खुलवाये। जहाँ कि ब्रह्मचारी लोग वेदों का स्वाध्याय करें और इस शिक्षा दान से लाभ उठाने के लिए प्रत्येक ब्रह्मचारी को गुरुकुल जाना चाहिए। और वहाँ अर्थात् तथा बुद्धि पूर्वक वेदों का अध्ययन करना चाहिए।

'न सायकस्य चिकित्ते जनासः शोचंनवर्गिन परशु मन्थमानः' ॥  
 नवाजिनं वाजिनः हास्यन्ति भगवन्ं पुरो अश्वानपन्ति ।  
 जो क्षत्रिय (शोचं परशु मन्थमानः न नयन्ति) तपोलुब्ध ब्राह्मण को तस्यदर्शी समझते हुए युद्ध में नहीं पकड़ते, अपने से निम्न पर हाथ नहीं उठाने और प्रःल शत्रु के सामने कबड़े हो कर अपनी दीनता नहीं दिखाते (सायकस्य चिकित्ते) उन्हें राजा शस्त्राओं के अधिकारी समझे।

'अदाभं योमकृत्यः पञ्चदशं त्रसदस्युषूनाम्  
 मंहिद्यो अयं सप्तपतिः ।

(चौरकृत्यः) अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रधारक (मंहिद्यः अयं सप्तपतिः) प्रजा से पूजित, भेष्ट, सज्जनों के रक्षक (त्रसदस्युः) दस्युओं को भयभीत करने वाले राजा ने मुझे १५ बहुरं प्रदान की अर्थात्—

पुरस्कार के रूप में सेनापति आदि उच्च राजकर्मचारी लोगों को पुत्राद् सम्बन्धियों के विवाह राजा रज्य की ओर से करवाने। पैसा करने में उत्साह बढ़ता है। राजा और प्रधानमन्त्री का धर्म है कि वे परराष्ट्र में गये हुए प्रजा जनों की बर्हा भी पूर्ण करा दें। और पैसा न हो कि उस राष्ट्र के शत्रु के प्रयत्न होने से उन प्रजा जनों की उपेक्षा की जाने।

'य इन्द्राग्नी सुनेषु वां सप्तषोभन्ता युधा  
 जोषवाकं वदतः पञ्चाधोविषा न देवा असधर्यन ॥'

(अत्रातुष्ठा पञ्चाधोविषा देवा इन्द्राग्नी) है सत्य प्रकारक तथा अपनी ब्राह्मणों को पालन करने वाले देव, प्रधान मन्त्रिगण तथा राजन् । (यः सुनेषु तेषु वां स्वतः) जो मनुष्य अर्थात् सोम पदार्थों के उत्पन्न होने पर तुम्हारा सत्कार करता है। (असध) उस का तुम अन्न खाते हो (चनजोषवाकं वदतः न) परन्तु अयनशील सम्पत्ती का अन्न नहीं मांगते। इस मंत्र में यह बताया है कि जो मनुष्य केवल जप तप रखे हैं और उनके पास सम्पत्ति नहीं उन ब्राह्मणों को ने कर नहीं लेना चाहिए।

'नि सर्वं सेन इषुर्धोरसक समयो गा अजति यस्यवष्टि  
 चोष्कृयमाण इन्द्र मूरि वामना पश्चिर्भूरसदधि प्रवृद्धः' ॥  
 (इन्द्र) हे राजन् (अयं) गः समजति जैसे वैश्य गौओं को रक्ता है (सर्वसेन इषुचिरंसक) वेसे तुम अश्वारोही गजारोही पदाति सब प्रकार की सेनाओं से युक्त होते हुए शस्त्राओं को रत्न (यस्य वष्टि) जिस को तुम चाहते हो और (अधिप्रवृद्धः) १८ वर्ष के ब्रह्मचारी होने हुए (त्वंअस्मत् मूरि वामं चोष्कृयमाणः) तुम हमें अतिप्रशस्त न्याय के दान वाले बनो (पश्चिः मा मूः) तथा वैश्य मत हो जाओ।

इस मंत्र में संक्षेपतः यह बातें बताई गई हैं (१) वैश्य का काम पशु पालन है (२) राजा का धर्म राज्य प्रबन्ध है (३) राजा बड़ा वृद्ध तथा १८ वर्ष के ब्रह्मचारी होना चाहिए (४) और वह किसी तरह का व्यापार कार्य न करे। वैश्य राजा के होने से प्रजा नष्ट हो जाती है।

'कदु महीरघृष्टा अश्व नविषीः कतु वृत्रघ्नो अस्तुतम्' ॥  
 इन्द्रो विश्वान्केकनाटः अहदंश उत कवा पार्थरिभः ।  
 (अश्व महीः अघृष्टाः तपिरीः कत् उ) इस राजा की बहीर घोर सेनायें राष्ट्र के लिए सुखदायिनी हैं। (वृत्रघ्नः अस्तुतम् कत् उ) और शत्रु मर्दन राजा का अक्षय्य बल सुख दायी हो (इन्द्रः वेकनाटम्) और राजा दुगना व्याज लेने वाले और (अहदंशः) यहाँ के दिनों को देखने वाले (विश्व न् पणीत्) सब बतियों को (कत्वा अभि) न्याय-कर्म के अनुसर र दृष्टिगत करे।

'वो विश इन्द्र मृधवापः सप्त पत्युरः शर्म शारदीवंत्  
 कृषोरयो अनयथाण्यं यूने वृत्रं पुरुकुसाय रन्धीः' ॥  
 (इन्द्र) हे राजन् (दनः विशः मृधवापः) करप्रदाना प्रजा को शिक्षा द्वारा मनुष्यवाणी वाली बनाये (शारदीः) शरदु आदि ऋतु ऋतुओं के अनुकूल (सप्त पत्युरः) विधुत्त प्रयत्नलाभ्यनागरिकों को शर्मरत्) सुखप्रद बनाये (अनयथा) तथा हे पापरहित राजन्, (यूने पुरुकुसाय) आप पुरुषार्थी कृषकों के लिए (अर्थाः अयः कृषोः) नहरों का जल पहुँचाये (वृत्रं रन्धीः) पशु इन नाथनों से कत्नेश का नाश कीजिए।

यस्य इस मंत्र में कर देने वाले मनुष्यों के लाभार्थ तीन राजकर्मव्य बतलाए हैं (१) शिक्षा प्रदान (२) ऋतु ऋतुओं के अनुकूल नगर बसाना जिससे सदा सुख मिले (३) और कृषकों के लिए नहरों द्वारा जल पहुँचाना।

इस प्रकार उपरोक्त युद्धों से युक्त तथा प्रजाहितार्थ कार्य करने वाला मनुष्य ही राजा बन सकता है। वेद ने

किसी को पीढ़ी दर पीढ़ी से राजा बनाने की आशा नहीं दी।  
वंशपरम्परानुसार राजा न हो कर गुणानुसार राजा ही  
वेद सम्मत है।

यह राजा प्रजाजनों द्वारा सर्व सम्मति से चुना जा  
कर शासन कार्य को सुचारु रूपेण चलाता है। ऋग्वेद दशम  
मण्डल १७३ सूक्त निर्वाचित होने की विधि को  
वर्णन करता है—

“आथा हावर् अन्तरधि भ्रुवस्तिस्रा विषाचलि  
विशस्त्वा सर्वा वाक्कन्त मा त्वद्राष्ट्रमधिप्रशत्”

(त्वा आहावर्) राजन्, मैंने तुम्हें राष्ट्र का स्वामी संवरण  
किया है, ‘ह संवरणे’ (चुनना)। (अंतःपधि) तुम हमारे  
अंदर रहो (भ्रुवः अधिवाचलीः तिष्ठ) भ्रुवतारे कां व्यार्  
निश्चल रहो। (त्वा सर्वा विशः वाक्कन्तु) तुमको सर्व प्रजा  
जन चाहते हैं (स्वत्) तेरे कारण (राष्ट्रं मा अधिप्रशत्)  
राष्ट्र अधोगति को न पहुँचे।

(श्रेय अगले अङ्क में)

## श्रेय और प्रेय मार्ग

(१)

अन्यथा योऽप्युत्तमं प्रेयस्तं वमं नानर्थे पुरुषं स्मितीतः।  
तयोभेयं श्राद्धदानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थायउभेयोवृषीते ॥

—कठोपनिषद्

इस संसार में दो ही मार्ग हैं एक भेय अर्थात् आत्म-  
कल्याण का मोक्ष मार्ग है दूसरा प्रेय अर्थात् इस लोक  
के सुखोपभोग का मार्ग है। ये दोनों मनुष्य को भिन्न २  
अर्थों में बाँधते हैं, दृढ़ करते हैं। जो भेय मार्ग है वह  
मनुष्य को भक्ति, उपासना, उपकार, सेवाभाव, इन्द्रिय-  
निग्रह, पवित्रता, निर्माकता तथा ज्ञानदि मोक्ष के साधनों  
में दृढ़ करता है पर जो प्रेय मार्ग है वह मनुष्य का  
विषयासक्ति, स्वार्थ, धन, मान के अभिमानाद् में जकड़  
रखता है। इन दोनों के परस्पररूप भेय मार्ग की ओर  
चलने वाला को तो अन्त्य में “साधु भवति” कल्याण होता  
है परन्तु जो (मंद मति) “प्रेयोवृषीते” केवल प्रेय मार्ग  
को स्वीकार करता है वह अपने जीवन के उद्देश्य से गिर  
जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में जो कृष्ण जी ने यह कहा  
है कि—

शुक्ल कृष्णे गर्तीहोते जगतः श्राद्धंते मते।

एकया याश्वनाचुत्तमभ्ययावर्तते पुनः ॥ ८. १६ ॥

जगत् में ज्ञान और अज्ञान ये दो मार्ग अनादि काल  
से चले आते हैं, इनमें से ज्ञान मार्ग से जाने वाला मोक्ष  
प्राप्ता है और अज्ञान मार्ग से जाने वाला जन्म मरण के  
चक्र में फँसता है। थोड़े से कथन-भेद से इन दोनों का  
भाव एक ही है। ज़रा हम इस बात का विचार करें कि  
हमने इनमें से किस मार्ग को पकड़ा हुआ है? कोई भी  
मार्ग हम क्यों न पकड़े, किसी मार्ग को पकड़ना या उस  
पर चलना यह बातला है कि हमने कहीं न कहीं  
पहुँचाना है।

तो फिर हमने यहाँ पहुँचाना है या हमारे जीवन का  
क्या उद्देश्य है? इस प्रश्न का हल सर्वप्रथम कर लेना

चाहिये। हम ज़रा सच्चारों से अपने से यह पूछें कि क्या  
हमारे जीवन का कोई उद्देश्य भी है या यही व्यर्थ में ही  
इस संसार में जीते हैं? गहरी विचार दृष्टि से देखने पर  
यह बात होगी कि हम में से बहु-संख्या उन लोगों की है,  
जिनके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं, जो जीते हैं इसलिए  
कि उन्हें जीना पड़ता है। दूसरे वे लोग हैं जो किसी  
निरुद्ध उद्देश्य की पुरि के लिए जीते हैं। परन्तु “मनुष्याणां  
सहस्रेषु” हजारों में कोई एक सीमाभ्यायत्न जीवन के  
वास्तविक उद्देश्य को पहचानता है।

हाँ, तो ‘कर मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्या है? योगि-  
राज भी अविद्यन् पोष के शब्दों में सुनिए।

“हमें अब भी कौन सी गई वस्तु प्राप्त करनी है।

“(१) प्रेम, क्योंकि अभी तक तो हमने केवल द्वेष  
और आत्म संतोष ही पाया है। (२) ज्ञान, क्योंकि अभी तक  
तो हम स्वप्नलोक, अवलोकन और विचारशक्ति की ही प्राप्ति  
हुई है। (३) ज्ञानन्द, क्योंकि अभी तक सुख दुःख और  
उदासीनता ही प्राप्त कर पाये हैं। (४) शक्ति, क्योंकि  
अभी तक निर्बलता, प्रयत्न और पराजित विजय ही हमारे  
पहुँचे पड़ी है। (५) जीवन, अभी हमने जन्म बुद्धि और  
मरण ही तो पाया है। (६) ऐक्य, क्योंकि अभी तक तो  
युद्ध और संघ की ही उपलब्धि हुई है। एक शब्द में कहे  
तो हमें “भगवान्” को पाना है और अपने आप को उस  
के दिव्य स्वरूप की प्रतिमा के रूप में फिर से गढ़ना है।”

अतएव जितना शीघ्र हो सके हमें यह निश्चय कर  
लेना चाहिए कि मनुष्य न केवल खाने पीने आदि के  
लिए इस संसार में आया है और न ही इसके बिये जीता  
है किन्तु अपने परमात्मा को पहचानने के लिए ही जीता  
है। संसार की सुनहरी चमक दमक पर मोहित होने के  
कारण तथा अज्ञानवश यदि अभी तक यह बात हमारी  
समझ में नहीं आई, तो इसमें दाब हमारा ही है और हमें  
वेसा समझना चाहिए कि हमारा अभी सीमाभ्याय का समय  
नहीं आया, ज़रा ठहर कर ज़रा सा प्रयु की हवा का पात्र  
बनने पर हमें यह स्वयंमेव समझ में आ जावेगा और हम  
स्वामी रामतीर्थ जी की तरह कहने लगेंगे—

बस एक आत्म ज्ञान है अद्वैत रस की खान।

और दबन बक-क मरन, भूक भूक भरना जान ॥

कठ उपनिषद् में भी एक स्थान पर कहा है कि “माक्  
शरीरस्य विव्रस” शरीर के नूटने से पहले ही, इस जीवन  
के सार, जिस के बिना यह जीवन व्यर्थ है, निसार है, वेसे  
प्यारे प्रयु को जानने की सामर्थ्य प्राप्त कर ली तब तो यह  
जीवन सफल कर लिया अन्यथा “महती विनष्टिः”  
(कठोपनिषद्) आगे बहुत बड़ा नाश है। हम प्रायः कई  
मार्थों से कहते हुए सुनते हैं कि मनुष्य आये तो हमारी  
इन सब दुःखों से जान छूटे किन्तु अब से कोई कहे कि क्या  
...गे आप के लिए कोई फूलों की लेज बिछी हुई है, आगे  
भी तो यही अज्ञान पूर्णक मरना जीना लगा ही हुआ है, फिर  
बुद्धिमानों इसी में है कि हम कोई वेसा मार्ग खूँ

निकालें कि हम इस दुनियाँ के कष्टों, भयंकर झुंझों, पापों तथा रोगादिकों का भीर भीर होकर मुकाबिला करते हुए, पवित्र कर्म करते हुए, प्रभु की किसी पूर्णशान्ति, पूर्ण-प्रकाश और पूर्णानन्द में निवास कर सकें। प्रवचि लोग कहते हैं ऐसा वह पवित्र श्रेय मार्ग हमारे सामने खुला पड़ा है यदि हम उस पर चलना पसंद करें।

—दृष्य देव।

## उपालम्भ

(जी बीरेल विभागाध्यक्ष)

“हृदय हानि ध्वंस लोलाओं में मानव की अभिरुचि संहार की मर्यादात्मक व्यथाओं को पृथ्वी, समुद्र और अन्तरिक्ष के धीमत्स उपीड़नों में मुक्तित कर रहा है। स्मृति के कमल से कोमल पृष्ठों पर हिंसाघात का यह कज्जल लेल अपने रीरव अक्षरों से उस वैशाचिक कृत्य को उदुघोषित करता है जिसका सामी श्रव तक का मानव समाज अपने घुणित से घुणित इतिहास में भी उपाखित नहीं कर सका। यह बर्बर विजयेष्ठु अधिकार और शक्ति के मद में वह रण ताण्डव रच रहे हैं जिनकी प्रतिस्पर्धा में सत्य, न्याय और स्वातन्त्र्य की अरुणित दंभी पग पग पर कुचली जाकर अपमानित हो रही हैं। क्या उन्हीं का नाम रणशूर है जो हिंसा और प्रतिहिंसा की उजाला जलाकर तोपों और बरबों के विस्फोटक अदहास में सन्ध मानवता की बाल चढ़ाने को उत्तुक हैं। कहने दो उन्हें अपने आप को विजेता और थोड़ा जाँक बूस्ते के खून से नहीं परन्तु सर्वस्व लेकर भी तुम नहीं होते। और ऐसे ही रीरु समी के अधम काण्डों में वह अपनी विजय वैजयन्ती फहराने हैं जहाँ मानवता का खून होना है, सत्य और न्याय का गला घोंटा जाता है, कला और सौन्दर्य का सर्वस्व हरण होता है और स्वातन्त्र्य को पराधीनता के मरघट में दफनाया जाता है। हम नहीं जानत उन नर पशुओं को क्या कहें जो मानव भ्रम की पनपती हुई फुलवारी को युग युग से रोदा करते हैं और अपने कठोर अभियानों के प्रलयङ्कर ध्वंस में ही अपने कर्तव्य की इति भी समझते हैं।”

## गुरुकुल समाचार

वाषिकोत्सव के पश्चात् नए सत्र की पढ़ाईयाँ नियम पुत्रक प्रारम्भ हो गई हैं। अधिकारी भोखुं, के आ जाने के कारण महाविद्यालय में प्रह्लाचारियों का संख्या ८५ हो गई है। उपाध्याय गण तत्परता से अध्यापन कार्य में सलम्न हैं। गत सप्ताह श्री प्रो० वेदप्रत जी इतिहासोपाध्याय का महाविद्यालय के प्रह्लाचारियों के बीच “अन्तर्राष्ट्रीय परि-स्थिति” विषय पर एक ओजस्वी एवं गवेषणा पूर्ण व्याख्यान हुआ।

## याइउन कप-टूनमिन्ट की हार

गुरुकुल का हाकी दल कलकत्ता के ‘लोग-टूनमिन्ट’ के विजेता पुलिस-पथलेटिक क्लब से १ गोल से पराजित होकर गत २६ अप्रैल को गुरुकुल वापस आ गया। गुरुकुल दल के खिलाड़ियों का हस्त कौशल पुलिस-क्लब से कहीं अच्छा था और लगभग सारे ही समय गुरुकुल दल ने पुलिस क्लब को दबाए रखा; किन्तु अकस्मात् समय की समाप्ति पर १ गोल चढ़ जाने के कारण गुरुकुल-दल हार गया। कलकत्ता में निकलने वाले अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला सभी पत्रों ने गुरुकुल के खिलाड़ियों की प्रशंसा में अपने कालम रंग दिए। पर अफसोस; टीम हार चुकी थी! चलने समय टूनमिन्ट के गुण-प्राही मन्त्री ने मुक कद से गुरुकुल दल के खेल की तारीफ की और आगामी वर्ष भी टूनमिन्ट में अग्रय्य सरिमन्तित होने के लिए सभ्रम निमन्त्रित किया।

## स्वास्थ्य समाचार

जगदीश ११ भेणी रुहेभमजर, ब्रजनन्दन ११ भेणी रुहेभमजर, सत्येन्द्र ३ भेणी Mensles, ओम्प्रकाश ३ भेणी Mensles उपनारायण ३ भेणी ChuekenPox, विद्याधर ३ भेणी मनेरियाज्जर, कृण्णदत्त १ भेणी रुहेभमजर, सोमदत्त ३ भेणी रुहेभमजर रामदेव १ भेणी नेत्रा-भिष्यन्-धर्मवीर २ भेणी नेत्राभिष्यन् ।

गतसप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० प्रताप १म भेणी को गत सप्ताह टाय-फायड से अधिक कष्ट था। अब वह भी स्वस्थ हैं। ब्र० सत्येन्द्र तथा ओम्प्रकाश ३ भेणी को खसरे के कारण उबर था अब उन्हीं भी आराम है। ब्र० रामकृष्ण ५ भेणी की टांग में जलम देर से चल रहा था अब वह भी ठीक हैं। आजकल यहाँ अधिकतम तापमान १०६ फा० तथा न्यूनतम ७३ फा० है।

## पं० धारेश्वर जी का देहावसान

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के मूलपूर्व अध्यापक तथा कांगड़ी-ग्राम पाठशाला के वर्तमान कार्यकर्ता श्री पं० धारेश्वर जी का गत १४ अप्रैल को अकस्मात् देहान्त हो गया। पं० धारेश्वर जी सन १९१४ में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा बुलाये जाने पर गुरुकुल कुरुक्षेत्र में यहाँ आए थे और ४ साल तक गुरुकुल की पाठशाला में कार्य करते हुए कटारपुर केंस ७ साल के लिए जेल भी गए। वहाँ से लौटने पर कांगड़ी पाठशाला में १६ वर्ष तक शिक्षक का कार्य करते रहे तथा आसपास के प्र मो में वैदिक धर्म का नाद गुंजाते रहे। उनकी सेवाएँ अनगिनत थीं। अपने जीवन में पं० जी न गुरुकुल विद्याविद्यालय कांगड़ी की आ सेवाएँ की हैं उनमें आर्य जनता भला-भाँति परिचित हैं। ईश्वर उनकी दिवंगत आत्मा को सद्गमनि दें।

## गर्मियों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी धातु क्षीणता पुरानी खांसी, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शीक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव (१८) अर्ध सेर २८) १ सेर ४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्त्राण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियों से तैयार की गई ये गोणियां सब प्रकार की कमजोरियों में अक्षर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करती हैं।

मूल्य २७) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलार्जात और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ३३) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ३३) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियां बेच रहे हैं। इसलिए दवा खरीदने समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ा का नाम अवश्य देख लिया करें।

ग्रांथ		बेहली—चांदनी चाँक।
		मेरठ—सिपर रोड।
गर्मियों में	{	लखनऊ—गर्जनी गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी श्रीराम रोड।
		लाहौर— " " " " हस्पताल रोड।
		पटना— " " " " सट्टाआटोला बाँकीपुर।
		अजमेर— " " " " वैराज सरवारीलाल जी कड़वा चाँक

**गुरुकुल फार्मेसी गुरुकुल कांगड़ी जिलासहानपुर**

# गुरुकुल

एक प्रति का मूला -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वैशालंकार

वर्ष ६ ] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २७ वैशाख १९६८; ६ मई १९५९ [ संख्या २

## कुल माता के प्रति श्रद्धाञ्जलि

[ वैशालंकार नवम्बर १९१६ और वैशाख वैशालंकार ]

( १ )

सारांशकाल का समय था। सूर्य भगवान् अस्ताचल की ओर जा रहे थे। मैं मस्ती में गाता हुआ वादिका में घूम रहा था। कम्बारा बल रहा था, फूल बिल रहे थे, पंखी मा रहे थे, मन्त्र २ लगीर बह रहा था, फूलों पर मत्त छन्द गीत गा रहे थे, आकाश में बादल कुछ गम्भीर वाज्रं कर रहे थे। मैं अपने में प्रसन्न था और प्रकृत के संगीत को सुन रहा था।

इतने में एक मद्र-पुरुष आए और प्रशामादि के उपरंत पूछने लगे कि आपके गुरुकुल की विशेषता क्या है ?

मैंने उन्हें बड़ी मन्नता से जवाब दिया कि यहां एक ऐसा विषय पढ़ाया जाता है जो बाहिर के और किसी विश्वविद्यालय में नहीं पढ़ाया जाता।

उन्होंने बड़ी अस्तुकता से पूछा वह कौन सा विषय है जो केवल आपके यहां ही पढ़ाया जाता है ?

मैंने उन से कहा “वह विषय Science of Life” है। फिर उन्होंने पूछा Science of Life (जीवन - विज्ञान) के प्रांफेसर कौन है। मैंने पास एक गुलाब का फूल बिल रहा था, मैंने उसकी ओर इशारा करते हुए कहा, ये हमारे Science of Life आर्थात् जीवन विज्ञान के प्रांफेसर हैं। यह सारी विशाल प्रकृति हमारी शिक्षका है। क्या ये गाने हुए पंखी, बिलने हुए फूल, उड़ती हुई गज्जा की तरफ़ें आपके मनस में नई उमङ्गें, जोश, जीवन और उत्साह पैदा नहीं करतीं ? संसार में जिनमे भी समग्रहित साधक एवं महामा पुरुष हुए हैं उन्हे यह आतिरक विषय Science of Life (जीवन विज्ञान) अवश्य पढ़ना पड़त है। श्री ल्पमा रामतीर्थ जी ने एक ल्पन पर लिखा है कि मैं अपने जीवन का सबसे अच्छा संस्कार तब निकाल सका जब मैंने अपने को सम्पूष प्रकृति के साथ एक कर दिया। गङ्गा और गिरिजा हमालय के चरणों न बैठकर ही साधकों ने अपने जीवनो का निर्माण किया है। जिनकी भी अच्छी २ दर्शने या विचारधराओं को जीवित

जाग्रत टीकाएँ है, ये सब प्रकृति के घनिष्ठ सम्पर्क में आकर लिजी गई हैं। यदि वेदान्त की सब से अच्छी टीका देवकी हो तो मतवाले राम तीर्थ और अमेरिका की धर्म सभा में दहाड़ने वाले वेदान्तकेसरी विवेकानन्द के दर्शन करो, यदि गीता की सब से अच्छी टीका देवकी हो तो भगवान् निलक के चरणों में जाओ, यदि आर्य समाज की सब से अच्छी टीका देवकी है, तो देव ब्यानन्द के दर्शन कर अपने को कृतार्थ करो। जिन महत्पुरुषों ने भी अपने प्रकाश्य पवित्र्य और उच्चल अतिर डाम संसार को कुछ दिया है, उन सबने प्रकृति माता के चरणों में बैठकर घोर तपस्या और साधना की है। बिल अतिर निर्मांष किये, बिल साधना किये हम विष्व की अर्पुप्राकृत करने वाले साहित्य का सृजन नहीं कर सकते। महामा गांधी और विन्-विष्वान कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साहित्य में उनकी दिव्य आत्मा का प्रक हा झलकना है। अतिर निर्मांष के लिए ये साधना और नमस्याएँ प्रकृति माता की गोद में बैठकर बहुत अच्छी तरह की जा सकती है और अपने जी.न के ल.य को हम भली भांति अधिगम कर सकते हैं। यह सब गान हम प्रकृति माता मे प्राप्त करते हैं।

( २ )

फिर ये सज्जन कहने लगे, गुरुकुल की और कोई विशेषता बतलाइए। मैंने उनसे कहना प्रारम्भ किया— भागतवर्ष की विष्व को सबसे बड़ी देन यह की भावना है। (यह की भावना से अविभाय-प्रेम, परोपकार, पवित्रता की भावना से है) आर्य संस्कृति का यह आंधारभूत स्तम्भ यही यथीय भावना है। हिन्दुसंस्कृति में प्रत्येक क्षीने से छोटा कृत्य जबतक यथीय भावना में प्रोत्-प्रोत् नहीं तब तक उस कृत्य को ऊँचे और मन्के अर्थों में सफल नहीं कहा जा सकता। वैदिक संस्कृति के अनुसार जिस समय ब्रह्मचारी शिषा के लिए ब्रह्मचर्याभ्रम में प्रविष्ट होता है उसकी शिक्षा “शिषाद्यज्ञ” के नाम से पुकारा जानी है। प्राचीन भारतवर्ष में यह शिक्षा यह की भावना बहुत प्रबल रूप से कार्य करता हुई दिखाई देती है। सम्पूष जनता ब्रह्मचारियों पर लपना अधिक समझती थी और ब्रह्मचारों की जनता की संवा के लिए म्दा कतिबध रक्षने थे। आज हमारे इस गुरुकुल में भी

शिक्षायाह की कुछ अवशिष्ट भूलक रहिगोचर होती है। आर्य जनता बड़ी अढा और प्रेम के साथ इस शिक्षा पर धन की आहुति काँडालसी है और इस शिक्षायाह ने उठे हुए का. तक रप चुन, ब.स. ब.स. कर केवल भारत-वर्ष में नहीं, अपितु भारतवर्ष से भी बाहिर (जुड़ी अफ्रीका आदि प्रदेशों में जहाँ २ आर्यसंस्कृति के विकास की आवश्यकता अनुभव हुई, वहाँ जाकर बरसे। जहाँ २ वे घरने आर्य संस्कृति का पीषा लहनाहा उठा। हमारी सभ्यता और संस्कृति बहुत प्राचीन है। विश्व के मन्विर में यूनान, रोम, मिश्र तथा भारतीय अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का दीप जला कर एकत्र हुए। और सबके दीप एक गप, परन्तु आर्य संस्कृति का दीप अब भी आजस्यमान प्रकाश के साथ प्रदीप्त हो रहा है। वेद, उपनिषद और गीता आर्य संस्कृति का सर्वस हैं। इन्होंने ही विश्व को अस्तुतपान कराया है। शुद्धि का ध्येय आर्य संस्कृति का हरम उपवर्ष पश्चिमिक स है। हम आर्य समाज के हैं, आर्यसाज हमारा है।

(३)

फिर ये सज्जन कहने लगे—यहाँ की और कोई विशेषता बतलाए। मैंने उनसे कहा शुक किया—तिलक भगवान का यह नारा—“Swarnj in my birth right” (सुराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है) आज प्रत्येक तटस्थ हृदय में गुञ्जायमान हो रहा है और अनेकों भारतीय तटस्थों ने मातृभूमि की बलिबेदी पर इस नारे का गान करने हुए अपने प्राणों की आहुति दे दी। परन्तु हमारा सबसे बड़ा जन्मसिद्ध अधिकार विद्या है, जिसे कि हम धीमे २ कोतने चले जा रहे हैं। जिस समय बच्चा अपन मधुरतरम शीशय में प्रविष्ट होता है उसके चहरे पर मधुर दंभाय सुसकाम भिन्नकितारी है, वह साक्षात् दिव्यता का प्रतिनिधि होता है। हमारी संस्था की स्थापना इसी दैवीय भाव की सदा बनाए रखने के लिए हुई है। हमारी संस्था का नारा है—“दिव्यता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।” यदि हम अपनी दिव्यता का विकास करने चले जायें तो हमारी संस्था सच्चे अर्थों में सफल है।

(४)

प्रयाग राज में गङ्गा, युगता, सरस्वती के सङ्गम की तरह, यहाँ धर्म, राष्ट्रियता और उदारतावाद का संगम होता है। उदारतावाद (Liberalism) की लहर धर्म और राष्ट्रियता को कहरता में परिणत होने से बचाती है। मेरी सम्मति में धर्म का दर्जा राष्ट्रियता से उँचा है और धर्म राष्ट्रियता का रक्षक आधार है। आज महात्मा गांधी अपने धर्माधार आत्मिक बल के प्रकाश से विश्व को जगमगा रहे हैं। धर्म के बिना सच्ची राष्ट्रियता विकसित नहीं हो सकती। राष्ट्रियता अगर पूरा है तो धर्म उसका मजबूत ङ्कल है। सके राष्ट्रियता के लिए धर्म की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। हमारे शुद्धि का ध्येय आर्य समाज, आत्मिक व्यक्तियों के जन्म के लिए हुई है।

(५)

अन्त में ये सज्जन बहने लगे—आप की संस्था में बुद्धि और वसत्रोर्ध्वों की तो बहुत सारी हैं।

मैंने उन्हें बड़ी नम्रता से जवाब दिया—भीमन् ! बुद्धि और धर्म दोनों ही अत्यन्त महत्त्व हैं, परन्तु धर्म का साथ काँडालसी है। उस संवलयन भगवार को छोड़ कर कीक-धर्म है ? हमारी संस्था अपूर्ण है, तभी तो आगे बढ़ने के लिए प्रयत्न है।

जिस तरह शूकर कहता था—England ! with all thy faults I love thee still.

(इंग्लैण्ड ! दोष पूर्ण होंगे हुए भी तू मुझे बहुत प्यार है।)

उसी तरह—

मेरे शुद्धि ! अनेक कमियों के होने हुए भी तू मुझे प्राणप्रिय है !!

## श्रेय और प्रेय मार्ग

(२)

जैसे मूठ से सत्य की, क्रोध करके शान्ति को, पाप करके पवित्रता की तथा अन्धकार में कड़ू रह कर प्रकाश की प्राप्ति असम्भव है, ऐसे ही विषय-मोगी संसारी मनुष्य बने रह कर, इस लोक में जीने की बने भोग-विलास करना चाहे, विषय सुख भोगने चाहिये “किमम्बकामदौतुकम्” (गी० १६. ८.) इस विचार को मन में रख कर हम “प्रेय-मार्ग” पर नहीं चल सकते हैं, प्रभु की शान्ति, उसके प्रकाश तथा उसके आनन्द को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। शायद हम में से कई लोगों की समझ में यह बात व आये तो इसका कारण यह है कि जैसे ऊँट को काँडे खाना ही भाता है, शूकर विद्या को देख कर आनन्द से खाने को चूड़ना है, कीये को मनुष्य की नाक से निकला बलगम बहुत स्वादु लगता है ऐसे ही जिन लोगों को संसार के विषय मोगी की मलिनताओं में ही अभी रस आना होगा उन्हें श्रेय का मार्ग, कतराश का मार्ग, दुष्क निवृत्ति का मार्ग, पवित्रता का मार्ग या जिसमें उँटों २ आगे बहिये र्यों २ ज्ञान, आनन्द और शक्ति की प्राप्ति होती जाती है ऐसा यह सबका मार्ग प्यारा न लगे यह सम्भव है। इसी कल्पेपनिवृत्त में आगे चले कर पमाचार्यों ने शिष्य से कहा भी है ‘न साध्यायः प्रतिभाति बाले प्रमाद्यन्तं विल मोहेन मूढम्’ धर्म के मोह से युक्त, आसली अर्थात् विषय-विलास में फने हुये बाल-बुद्धि अर्थात् विवेक रहित मनुष्य को यह संलोक मुक्ति की बात अच्छी नहीं लगती।

हम जरा आँसे झोल कर देखें तो ही यह मातृम होता कि हम में अत्यन्त लाम देते हैं जो पैले के पीले पागल हुये फिरने हैं। राय से, आत्मानर से जैसे भी बने धन कमाने की कोशिश करते हैं, कई लोग मान-सिद्धा तथा यश पाने के लिये मतवाले हो रहे हैं, फिर कई ऐसे भी हैं जिनको दूसरों को संताने और बुद्धि देने में ही मज़ा आता है, बहुत से स्त्री-पुत्रादि के अशुचित मोह में फँस रहे हैं, कई अमाने मनुष्यों का अपने देश को शुक भी ही प्यारी लगती है। अला इन केवल “प्रेय मार्ग” पर ही

बलने बढ़ती तथा उपरोक्त वस्तुओं की प्राप्ति को ही जीवन का अर्थ मानने वाले मनुष्यों को कौम-व्यवस्था के अन्तर्गत मनुष्य के अधिक कर्तव्यों का अर्थ नहीं है। जब धर्मोक्तियों के अन्तर्गत जीवन के अर्थ को जानने के लिए आने हैं, या जब अपने पिता-पितृव्य की इच्छा की पूर्ति सम्पत्ति को खो उठा ले जाते हैं या व्यापार में यथायक घाटा हो जाता है अथवा किसी अन्य प्रकार से धन का बाधा हो जाती है तो इस धन में अनुचित मोह के कारण कई लोगों का तो विचार ही हो जाता है, कई इन घटनाओं से याग्य भी देखे जाते हैं। इसी प्रकार अपमानित हो जाना, बी आदि का वियोग हो जाना आदि अनेक घटनाएँ (अपने आप को बड़ा आदमी समझने वाले परन्तु वास्तव में मामूली) हम मनुष्यों की परेशानी का कारण होती हैं। लक्ष्मी, मान तथा विषय सुख भोग जिन पर यह आशानों संसार मरता है ये सभी अज्ञान हैं, अनित्य हैं, नश्वर हैं, इन नाशवान् पदार्थों का संयोग वियोग प्रतिदिन हमें धोखा देता रहता है, गीता में कृष्ण जी ने कहा भी है—

“यद्दि संस्पर्शजा भोगा दुःखोऽन्य एव ते ।  
आप्यन्तवन्तः कौश्लेय न तनु रमन्ते एषः ॥” गी० ५. २२. ॥

अर्थात् इन अनित्य पदार्थों के मोह में विचकी दुःख नहीं फँसता है पर हम लोग मोह के इस अनुचित प्रेम के जाल में ऐसी तुरी तरह फँसे हैं कि कुछ सोचते नहीं। जब ये संयोग वियोग अनित्य हैं तब फिर इन नाशवान् पदार्थों से प्रेम कर करके हम धोखा क्यों कायें, क्यों न किसी नित्य और विशाल वस्तु को अपने प्रेम का पात्र समझ कर वसमें अपने प्रेम को रख कर प्रेम के सच्चे सुख को प्राप्त करें।

तो फिर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हमारा प्रेम का पात्र, सच्चा पात्र कौन है? वही जो हम सब के हृद्यों का स्वामी है, जिन प्रेम पात्र ने सभी भक्तों के हृद्यों को हर लिया है, जिसके प्रेम से वञ्चित हुए मनुष्य पोधा जीवन स्वतीत कर रहे हैं हम सभी के अन्दर ठहरा हुआ सदा प्रेम जिसकी प्रतीक्षा कर रहा है; हाँ वही एक प्रियतम ओ सौंदर्य के द्वारा इस भौतिक जगत् में अस्मिन् प्रकट हो रहा है, मानसिक जगत् में आनन्दरा, प्राणों में बल द्वारा तन्मयागत जगत् में प्रेम द्वारा प्रकट होकर विष्क-लीला को बसा रहा है। निश्चय जानिये “एतदात्ममनं अर्थ एतदात्ममनं परम्” इसी का सहारा उक्तम है और इसी का आश्रय सर्वोत्तम है। यही एक सदा प्रेम-पात्र है जिनके प्रेम के सम्मुख मिलोकी कारण भी तुच्छ है। इसी एक के विश्रुत बाहुओं में आश्रय प्रदत्त कर लेने से मनुष्य सब कठिनायों और संकटों से पार हो जाता है, सब पापों से मुक्त हो जाता है। यही एक जीवन का रहस्य है, यही एक जीवन की परीक्षा है, यही एक ऐसी प्यारी वस्तु है जिसने लिये इस एक शरणा की तो बात ही क्या है ऐसे अनेकों शरीर संस्कारान् किये जा सकते हैं, शोचनीय किये जा सकते हैं। एक का मार्ग सब के लिये खुला पड़ा है, इस का प्रेम सबके ऊपर अनादि काल से बरस रहा है; परन्तु अज्ञानी जिसकी प्रवृत्ति है वह उतना ही उल्टे लेना है। इससे प्रेम फल में फँस कर मनुष्य की

सब कल्पितों बूट जाती है। इससे प्रेम करने वाला विश्व से प्रेम करना सीखा जाता है। ऐसे इस पूरे प्रेम पात्र की राह पर चलने वालों के लिये “जोड़ का मार्ग” खुला पड़ा है यदि कोई इन पर चलना पसंद करे।

## वेद और राष्ट्र धर्म

[ लेखक—मी० क० धर्मदास ]

[ २ ]

“इतिन्द्रो अदीधरदु अर्धः भूवेव हविषा तस्मै सोमो अग्निं वत्-नाम्ना उ प्रवक्ष्यतिः ।” (इमं भूवं) इस भूव राजा को (अर्धेव हविषा) फिर कर से (इन्द्रः) कोषामात्य धारण करे (तस्मै सोमः अग्निं वत्) उसको शान्ति अन्नाय न्यायाभ्याय संमति प्रदान करे (तस्मै उ प्रवक्ष्यति) और उसको वेद पारण प्रेष-नाम्नाय कर्तव्याकर्तव्य जतलये।

भूवं ते राजा वरुणो भूवं देवो बृहस्पतिः भूवं त इन्द्रश्चान्वित्, व राष्ट्र धारयतां भूवम् राजन् (ते राजा वरुणः भूवं) तेजस्वी अज्ञानाधिकार निवारक शिक्षामात्य राष्ट्र को नियम बढ धारे। (देवः बृहस्पतिः भूवं) पूर्य वेद पारण। प्रधानामात्य राष्ट्र को नियम बढ धरे और (इन्द्रः) कोषामात्य और (अग्निः) अग्नी सेनामात्य राष्ट्र को नियम बढ धारण करे। इस प्रकार इन मंत्रों में, अग्ने, इन्द्रों से स्पष्ट होना है कि राजा को परामर्श देने के लिये एक अन्विष्यवत्त का निर्माण होता था जिस में निम्न मंत्री अपने-द-कर्मों पर अधिकार होकर शासन कार्य करते थे।

(१) इन्द्रः (इवं करोमीति इन्द्रः) (इहि परमेभ्यो-इत्ते परमेभ्योवान् अयमीति इन्द्रः) परमेभ्यवान् कोषामात्य ।

(२) सोमः = शांतिस्वभाव न्यायामात्य ।

(३) बृहस्पतिः = प्रवक्ष्यति = ज्ञानपति । चारों वेदों का ज्ञान प्रधानामात्य ।

(४) वरुणः = अज्ञानाधिकार निवारक । शिक्षामात्य ।

(५) अग्निः = अग्नी सेनामात्य (अग्निं देवानां सेनामी) अर्थात् राजा उच्छ्वस न होने पावे और उस का उदय का कर्मभार भी कुछ हल्का होकर अग्नी में बँट जावे, क्योंकि एक व्यक्ति एक काम को उनमें अन्वेषे ढंग से नहीं कर सकता जितना एक एक व्यक्ति उस के एक-ए भाग को लेकर कर सकता है। अतः एक सभा समिति की योजना को चालू किया गया जिसे अग्नि में सत्यार्थ प्रकाश में राजार्थ सभा से सम्बोधित किया है। जिस के अग्नि शासन के एक-ए भाग को अपने हाथ में लेकर रह चुके अज्ञान करने हैं।

“स विशो मनुष्यवत्त्वं तं सभा व समिति व सेना च सुता च अनुव्यवहत्त्वं”

जो राजा प्रजा का अनुसरण करता है उस का सभा प्राग्निवासियों की सभा तथा Acongregation राष्ट्रीय महासभा समिति होती है। यह दोनों तथा सेना और (शेष पृ० ६ पर)

# गुरुकुल

२७ बैशाख शुक्रवार १९६८

## मालाबार का प्रवास

(वे०-भी आचार्य अमर देव जी)

### १ परिचय

मालाबार में मैं चिकित्सा के लिये गया था। इसलिये यद्यपि मैं वहाँ के एक ग्राम में सवा मास तक एक स्थान पर ही रहा तो भी कर्षीक प्रारम्भ के दस बारह दिनों में चिकित्सा के लिये उचित स्थान ढूँढ़ने के लिये मुझे लगभग सारे मालाबार प्रदेश में घूमना और भटकना पड़ा। इसलिये मैं कह सकता हूँ कि मैंने सारा मालाबार देखा लिया है।

भाषा के अनुसार हमारी राष्ट्रीय मंडालभाषा ने जिन प्रान्तों में भारतवर्ष का विभाजन किया है उससे मालाबार 'केरल' प्रान्त में है। केरल प्रान्त की भाषा मलयालम है। मद्रास में सीधी-सीधे में मुख्यतया चार भाषायें हैं—तामिल-तैलुगू-कनाड़ी और मलयालम। मलयालम भाषा बोलने वाले केरल प्रान्त का एक भाग मालाबार है। यह अस्सल में दो जिलों से भी कम है। एक नवी की सीमा को मान कर उत्तरी मालाबार और दक्षिणी मालाबार इन दो भागों में मालाबार बँटा हुआ है। मुझे इन दोनों ही भागों में घूमने का अवसर हुआ। दक्षिणी मालाबार का मुख्य स्थान कालांफट है जो किसी समय भारतवर्ष का एक बहुत बड़ा व्यापारी नगर था। और उत्तरी मालाबार का मुख्य स्थान केनानोर है, जहाँ आज-बल एक अच्छी छावनी रहती है। इसके आगे महाराष्ट्र का कोकण प्रदेश शुरू हो जाता है।

### २ मालाबार प्रदेश

मालाबार का प्रदेश बहुत ही हरा भरा है। मित्र २ प्रकार के ताड़, पान, सुपारी, मारियल, केल के वहाँ जङ्गल के जङ्गल बड़े हुए हैं। इधर के हिमालय प्रदेश की साँद हरिगवल्ल वहाँ पर दृष्टिगोचर होती है। ऊँचे ऊँचे डेरे-भरे वृक्षों ने सुसज्जित वह प्रदेश तथा हरे हरे धान के खेतों ने मस्यस्यामला वहाँ की भूमि मालाबार की विशेषता है। यह प्रान्त कुछ पर्वतीय सा है। पथरीला तो नहीं है लेकिन ऊँचा नीचा है। मिट्टी लाल रंग की सी है। बस्तियाँ या गाँव छोटे २ हैं। दो बार बड़े शहरों या कस्बों को छोड़ कर शेष सब छोटे २ ग्रामों से बने हुए गाँवों को देख कर यह आश्चर्य होता था कि ये लोग सुरक्षा के लिये अधिक बड़े २ जन सन्तुदाय में मिल कर क्यों नहीं रहते।

### ३ वहाँ के निवासी

जैसे हमारे यहाँ पहाड़ी लोगों में खोरी डाका आदि की घटनाएँ कम होती हैं वहाँ के लोग अपने घरों में—तोला भी बहुत कम लगाने हैं, वैसे ही मालाबार के गाँवों में भी खोरी डाका आदि का विशेष डर नहीं होता। इस का यह मतलब नहीं है कि वहाँ पर लड़ाई वगैरे नहीं होते। शायद मद्रास के अन्य इलाकों को अपेक्षा यहाँ लड़ाई वगैरे अधिक ही होते हैं। पर शायद यह शहरों और बड़ी बस्तियों तक ही सीमित होने हैं। अभी वृ: सान महीने हुए वहाँ के दंग की खबर पाठक सम्प्रदायों में पढ़ चुके होंगे। वहाँ के कांग्रेस में भी समाजवादियों का अधिक जोर है ऐसा कहा जा सकता है। बाकी मद्रास प्रान्त के अन्य लोगों की तरह मैंने मालाबारी भाइयों को भी रहने सहने में सीधे सारे, चपल और खतुर, फुर्तीले और समझदार पाया है।

### ४ मोपला लोग

सन् १९३० से मालाबार के मोपला लोगों से सब देशवासी परिचित हो चुके हैं। मालाबार के मुसलमान मोपला कहलाते हैं, जोकि अपने को सीधा (समुद्र मार्ग द्वारा) अरब से आया हुआ मानते हैं। इसलिये यह अधिक कहते हैं। अरबक भी होते हैं। उनके वहाँ रोज़ा नमाज़ न करने वाला मार दिया जा सकता है। परन्तु मुझे मालूम हुआ है कि उनकी कटहरना भी धीमे-धीमे कम हो रही है। इसका कारण कुछ अंश में शायद यह हो कि उनमें भी पाश्चात्य सभ्यता का असर हो रहा है। परन्तु अधिक बलिष्ठ कारण यह है कि उन में भी सुपरी याद का असर हो रहा है। यह असर वांछनीय है। वहाँ के एक राष्ट्रीय नेता श्री युत नारायण मेनन से जिन को कि सन् १९३० में मोपला लोगों को भड़काने के सुभ में हो १४ वर्ष का जेल देरी गई थी मेरा बलिष्ठ परिचय हो गया था। मोपलाओं के मन्वन्ध में मेरे इस ज्ञान के तथा मालाबार से मेरी अन्य परिचिति के बहुत कुछ जिम्मेवार ये मेरे मित्र श्री नारायण मेनन जी हैं। इन के साथ मुझे एक दिन भर मालाबार में घूमने हुए रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। यह निश्चय से कहा जा सकता है कि वहाँ के मोपला लोग इनने भयंकर नहीं हैं जितनी कि हम कल्पना करते हैं।

### ५ आर्य समाज

पाठक यह जानना चाहेंगे कि मालाबार में आर्य समाज की क्या अवस्था है। मुझे यह ज्ञान अवश्य दूर कर देना चाहिये कि दक्षिण मालाबार के जिस कोटकल नामक ग्राम की आर्य वैद्यशाला में मैं अपनी चिकित्सा करा रहा था उसका आर्य समाज से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस वैद्यशाला के आरम्भ में जो 'आर्य' शब्द लगा है वह द्रविड़ शब्द के विरोध में जो आर्य शब्द बोला जाता है उस आर्य में है। आर्य समाज का तो वहाँ बहुत कम, नाम मात्र का ही परिचय है। जितना परिचय है वह बहुत अशुद्ध और भ्रम जनक है। जिन दिनों मैं कोटकल में



रहता था उन दिनों जन गणना का आयोजन चल रहा था। गुरुकुल के सुयोग्य तथा प्रतिष्ठित ज्ञातक श्री पं० धर्म वेध जी विद्यावाचस्पति जी उच्च सार्वदेशिक सभा की प्रेरण से कार्य करने हैं की अंग्रेजी में लिखी हुई जनगणना सम्बन्धी एक पुस्तिका मुझे मिली जिस में यह अपील की गई थी कि आर्य समाज के स्वस्थ न होते हुए भी समुक्त प्रकार से मानने वाले मनुष्य अपने आप को जनगणना में 'आर्य' लिखावें। वरु अपील जब मैंने आर्य वैद्यशाला के मुख्य चिकित्सक को दिखाई और उनसे पूंजा कि वे क्यों न अपने को आर्य लिखावें, तो इस पर उन्होंने इंकार किया और कहा कि हम तो हिन्दू लिखावेंगे।

मालाबार में आर्य समाज के प्रचार का अभी तक कुछ ठीक, समीपजनक प्रयत्न नहीं हो सका है। उत्तर भारत के प्रचारक अभी तक वहाँ भोजन आदि के प्रतिकूलता के कारण टिक नहीं सके हैं ऐसा मालूम हुआ है। अतः आजकल कैनामीर (उत्तरी मालाबार) में एक मलयाली महातुभाव ही उपर्युक्त श्री पं० धर्मवेध जी की देख रेख में कार्य कर रहे हैं। और कलकट में (दक्षिण मालाबार) में होशियारपुर पंजाब के श्री युन मझा जी विशेष परिश्रम से कार्य कर रहे हैं, वे एक 'हृदयविजय' नाम का अंग्रेजी का साप्ताहिक पत्र भी निकाल रहे हैं।

### ६. कथकली

मालाबार का एक नृत्य मशहूर है जो कथकली नृत्य कहलाता है। भी उद्यमकर भी ने इस नृत्य को विशेष रूप से चिन्ध्यात कर दिया है। इसका विशेष लक्ष्य क्या है यह तो विशेष तौर से मुख्यकला विशेष के चर्चा करने का विषय है। जब इसके विशेष इसकी बढ़ाई करते हैं तो इसमें कोई उत्समता होगी ही। पर मैं जान ही जानता हूँ कि यह कला भी बहुत अम के बद्द हस्तगत होती है। कथकली सीखने के लिये १२ वर्ष की निरन्तर शिक्षा की आवश्यकता होती है ऐसा वहाँ के लोग कहते हैं। कोरकल की आर्य वैद्यशाला में भी इस की शिक्षा का प्रयत्न था। और पांच सः शिष्याधी उन्ने सीखा करते थे। यहाँ के श्री वैद्यराज जी कथकली के प्रेमी हैं। इसका सिद्धान्त यही है कि विशेषतः हाथों और उंगलियों के संचेतों द्वारा बिना बोले अपने मन के भावों की पूरी पूरी अभिव्यक्ति करसकना।

मालाबारी लोग धैरे भी अधिक कलाप्रिय होते हैं। यह वहाँ जाने से स्पष्ट दीख जाता है। वेहातो कनरियापम्बिबेरी में तामिल लोग भी बनाते हैं परन्तु यैसी ही कनरिया मालाबार की बनी हुई विशेष उप्वर और कला पूर्ण होती है। वहाँ के वेहाती लोग एक प्रकार का डोप बनाते हैं जो कि कूली का भी काम देता है और बसे पहिन कर बसत में किसान लोग अन्नको बेती का काम भी करते हुये देके जाते हैं।

### ७. संस्कृत भाषा काम में आई

मलयालम अ वा एक द्राविड़ भाषा कहलाती हुई भी संस्कृत-बहुल भाषा है, यह निस्संशय कहा जा सकता है। परन्तु भाषा के सम्बन्ध में जो मुझे वहाँ सब से अधिक आनन्द दायक अनुभव हुआ वह यह है कि वहाँ संस्कृत भाषा के माध्यम द्वारा बातचीत करने का अनिवार्य अवसर प्राप्त हुआ। मेरी संस्कृत भाषा काम में आई। विभिन्न प्रान्तों के दो मारतिशों को जोड़ने का अंग्रेजी की जगह संस्कृत भाषा माध्यम हुई। मलयालम भाषा में नहीं जानता था और ऐसे लोगों से वास्ता पड़ना था जो अंग्रेजी या हिन्दी भी नहीं जानते थे परन्तु वे आयुर्वेद का अध्ययन करने के कारण संस्कृत जानते थे और संस्कृत के कारण वेच नागर अक्षरों से भी परिचिन थे। इस प्रकार इस वैद्यशाला के वार्षिक उत्सव की सभा में मुझे संस्कृत में भाषण करने के लिये कहा गया जो सचने सम्झा। इस सभा के सभापति मद्रास के एक पत्र. पत्र. महातुभाव थे। उन्होंने अपने अन्तिम भाषण में मलयालम भाषा में बोलते हुये मेरे भाषण की बहुत प्रशंसा की ऐसा कई लोगों ने मुझे अगले दिन सुनाया। शायद यही कारण था कि उसके बाद मुझने मिलने आने वालों की संख्या कुछ बढ़ गई। तीन व्यक्ति मुझसे प्रायः प्रतिदिन मिलने आते थे। उनमें से एक तो विद्यार्थी था जो बहुत कुछ अपनी हिन्दी भाषा के बोलने का अभ्यास करने के लिये मेरे पास आता था, कुछ हिन्दी की पत्र पत्रिकाएँ मुझ से ले जाता था, वह हिन्दी की कोई पुरीक्षा भी दे रहा था। दूसरे वहाँ के एक चिकित्सक थे जोकि मेरा हाल-चाल पूछने और मेरी आवश्यकताएँ जानने आया करते थे। उनसे अंग्रेजी में बात चीत करना ही अनुकूल होता था, कभी २ आयुर्वेद सम्बन्धी बात होने पर संस्कृत के शब्दों का उपयोग करना आवश्यक होता था। तीसरे व्यक्त जो 'सांस बीचने वालों' की श्रेणी के थे। (मेरे पास अकूट होने वाले व्यक्तियों का जो तीन प्रकार का वर्गीकरण श्री पं० रामेश्वर जी ज्ञातक ने कर रक्खा है उन में से जो योग जिज्ञासा के कारण मेरे पास आते हैं उनका नाम उन्होंने 'सांस बीचने वाले' रक्ख छोड़ा है) यह भाई अंग्रेजी भी नाम मात्र ही जानते थे इस लिये इन से मेरे साथ चालात्ताप हृदयशा संस्कृत भाषा में ही होता था।

इस वैद्यशाला के संस्थापक वृद्ध वैद्यराज जी से वचपि पहिले तो अंग्रेजी और मलयालम जानने वाले-उपस्थितों के द्वारा बात चीत हुई परन्तु पीछे से उनके साथ बातचीत का माध्यम भी संस्कृत भाषा हो गई थी।

### ८. आर्य वैद्यशाला

इस आर्य वैद्यशाला के संस्थापक श्रीयुत पा. स. वरियर वैद्यराज हैं जिन की आयु ७२ वर्ष की है। वे स्वयं आज कल चिकित्सा का काम नहीं करते। किन्हीं विशेष २ रोगियों के लिये ही हमें कष्ट दिया जाता है। इनके कुछ सम्बन्धी और शिष्य ही जो अंग्रेजी पढ़ लिख गए हैं भोग आजकल के रोगों से परिचिन हो गये हैं इस

यद्यपि को सफल प्रारंभ चला रहे हैं। इस वैद्यशाळा का औपचर्याग्र्य स्थानों की अपेक्षा प्रायोगिक समझी जाती है। इन्हें आमदना काफ़ी होती है। इलाज का मुक़ामी ये रूपों की अपेक्षा अधिक लेंते हैं। यहाँ की औपचर्याग्र्य बहुत असलानी में मिलती हैं और आयुर्वेद का प्रचार होने के कारण कालोक्त शहर के बाज़ार में प्रयेक चार पांच दुकानों के बाद एक औपचर्याग्र्य की दुकान अवश्य दिखाई देती है। पर कौटुम्बिक के प्रभ होने के कारण यहाँ और भी अधिक सङ्कलनमें हैं। अम सस्ता है। गांव में गांवों के हांसे से (इधर मेंस नहीं होती) औपचर्याग्र्य के लिये गो वृष और गोधुत बहुत आसानी से मिलता है। यहाँ के प्रसिद्ध खीरबला, नैल में शीतलघ्न काफ़ी मात्रा में पड़ता है।

यहाँ की विशेष चिकित्सा पद्धतियों के बारे में मैं पहिले ही लिख चुका हूँ। इस वैद्यशाळा के उन्नत कार्य की योजना में यह भी सूचित कर देना चाहता हूँ कि यह जय भय अपेक्षे हा। अर्थात् एक अच्छा आयुर्वेद विद्यलय भी चलाने रहे हैं। जिसमें २०-३० के आसपास छात्र पढ़ने के श्रेष्ठ सुविधाओं की सोचते हैं।

६. धन्यवाद

कर्म में मैं श्री स्वामी जी भारी और श्री नारायण मेनन, वेदामाहारी आदि का बिना धन्यवाद किये यह लेख नहीं समाप्त कर सकता जिनके कारण माझावार में रहने हुए मेरे अन्दर वह भाव कुमरो नहीं आने पाया कि मैं परदेश में रह रहा हूँ। श्री नारायण मेनन का पश्चिम में ऊपर करा चुका हूँ। स्वामीजी भारी सुन्दर दास के विषय में इनकी ही कहना पर्याप्त है कि यह एक गुजराती हैं, कालीकट शहर के एक बड़ा व्यापारी हैं, सार्वजनिक कार्य में हिंसा जंगलवाले और जनता का डीकनेरुच करने वाले सेवा परायण लक्षण हैं। धनी होने हुए भी इन की उमंग सदा यह रहती है कि इनका व इन्के धन का उपयोग देश सेवा में हो। जब से इनसे परिचय हुआ तब से इन्होंने अपने घर के आदमी की तरह मुझे रक्खा, श्री नारायण मेनन से भी परिचय इन्होंने ही कराया।

( १०३ का शेष )

कोश उस राजा का अनुसरण करने हैं। इस समिति में अन्य अमात्यो के साथ निम्न अधिकारी भी अपने-अपने-अपने कर्तव्य परायणता से कार्य कर राष्ट्र के आकाश में सदा उड़ने का सुर्भूत भूमकाले हैं। अश्वमेद दशम मंडल १४। सूक्त में पठव विषयक वर्णन हैं—

प्र नो यक्ष्मवर्षमा प्र भगः प्र वृहस्पतिः

प्र देवा प्रोत ख्युता रापो देवो ददातु नः ॥

अर्ध पर्याप्त यक्ष्मवर्षमाति अर्धमा—दामाध्यक्ष 'तमाह' अर्धमा यो ददाति' राष्ट्र कोश को दान दे। भग = देवर्षय दास्यः Finance minister वृहस्पति विश्वामित्रिक या सुद कर्मिण 'वृहती वाक् सेना वा तस्याः पति' तथा देवो दिव्य सुभूत य को ख्युता स्वाव किय वाणी कावका (धर्माधिकारी) अपने-द अधिकार का हमें दान दे। आदिप्राविश्वोर्ष्य ब्रह्मार्थ य वृहस्पति

विन्सु यको वे विन्सु' यह चिकारी और सूरी ब्रह्मिण्य आदि-य ब्रह्मचारी जो कारो वेदों का इता है। संध्य—

इन्द्र वायु वृहस्पति सुवर्षो इवामर्ध

यथा नः सव्यं इजानः संगतां सुवनाः संस्यते ॥

इन्द्र = सेनापति वायु = वैश्व (व्यापार शक्ति) सुवर्षो जिन का सुगमना से आधान हो सकता है। उन्का आधान करे।

"वार्त विन्सु" सरस्वती सगितरं य वांजिनम्"

सरस्वती शिक्षा देवी को सविता राजाशा-प्रकारक आधान को।

इस प्रकार एक समिति द्वारा राजा के अधिकारों को सीमित तथा उस के कार्यभार को हल्का कर दिया जाता है। जब कोई समस्या राष्ट्र में उठ खड़ी होती है तो तत्-विभगाध्यक्ष उस को हल करता है। यदि राष्ट्र की जनसंख्या इनकी बुद्धि को प्राप्त हो जावे कि उत्तम रूप से बहन सहन न हो सके, तो साधारण उपनिवेश स्थानों की आकांक्षा राजा के मन में प्रगट होती है जहाँ अपनी ब्रजा को बसाया जा सके। यह कार्य सेनापति को सौंप दिया जाता है कि किसी निर्ले राष्ट्र पर विजय प्राप्त करे इस उद्देश्य को हृत्समा दे—इस राष्ट्र विजय के लिये सेनापति अग्नि किसी सुभवं राजा के राष्ट्र की तरफ दृष्टि डीक्षता है—जो राजा 'प्रमुकारेण भवति अतिक्रमा' प्रजाजनो को बहुत सताता है उस के राष्ट्र पर चढ़ाई कर उसे संभ्रता का पाठ पढ़ाता है—अश्वमेद दशम मंडल १०२ सूक्त में आता है—

न्यरुण्यगुपान्त ए भेदधन्ववर्षं मध्य आजेः

नेन सुभवं शतसहस्रं गवां सुगुणतः प्रथमे जिताय-अजे मध्ये युद्धस्थलों के बीच में व रुधःअ ने इस बुरी-वर्षतीति सतः मेघ को लाकर न्यकान्वयं गरजवाया तथा अग्नेध्वयं-बरसबाया। इस प्रकार कोषाङ्क उपयुक्त दिया, जिस म शत्रु दल फंस गये। इस विधि से सेनापति ने सुभवं-प्रजा को सताने वाले राजा को जीता, तथा शतसहस्रं गवां-गांव जिता प्राप्त रूप में सैकड़ों हज़ारों मृगियों को जीन लिया।

इस प्रकार वास्तविक से विजय प्राप्ति का वर्णन एक और मंत्र में भी है—

इमं त पश्य वृषमस्य युञ्जं काहाया मध्ये द्रुक्ष्वः शयानम् येन जिताय शतसहस्रं गवांसुगुणतः पुनराप्यु वृषमस्य मेघ के इस युक्त सहयोगी को देवो काष्ठाया मध्ये शयानम्-आग्नेय काटडा उष्यन्ते 'जो जमीं के बीच में सो रहा है अर्थात् विद्रुयुत जिसकी सहायता से युद्ध में सेनापति ने विजय प्राप्त की।

सेनापति को अपनी सेना को सुव्यवस्थित तथा शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित बनाने के लिये धन को अर्थव्यक्त आवश्यकता होती है। इसे वह कर विमोहा के अर्थव्यक्ष द्वारा प्राप्त करता है सेनापति कहता है—

अपि देवाः द्विषमावजन्तां अपि आशीस्तु मपि देवो वि देवता होत. वीचतुवन पूर्व-रिदा श्याम तथा सुवर्षो— देवा—राष्ट्र के व्यवहारी लोग मुझ में द्विषं-धर्म को आहुति आयजनां देने रहे—प्रोद मुझे आशीर्वाद दें तब—

बेवृत्ति—इस की निरन्तर मेरे में प्राप्ति पड़ती रहे।  
आदि—

इस प्रकार दूसरे राज्य को विजित कर के जो एक राज्य स्थापित किया जाता है उसे साम्राज्य 'सम इत्येकी-मूलं राज्यम् साम्राज्यम्' कहते हैं।

परन्तु इस साम्राज्य की महत्वाकांक्षा से पहले दूसरे राज्य में वृत्ती भेजने का बेवृत्ति में वर्धन है। जिससे शत्रु को पहले सुधरने का मौका मिले। परन्तु यदि इस पर भी वह सीधे राले पर न आये तो उसे उखिन दृष्ट किया जाय। इस वृत्ती के लिये 'सरमा' शब्द का प्रयोग है—

'सरतीति सरमा' जो दूसरे राष्ट्र में सरण कर के जाती हो। सर्व प्रथम यह शत्रुओं या अशुभों को समझती है— परन्तु सीधे राले पर न आने पर उनको दृष्ट दिखवाती है। अर्थात् साम दाम द्रव्य आदि का यह पूर्ण प्रयोग करती है।

अन्य सचिव भी अपने २ काम को अच्छी तरह निबाहते हैं। राजा सचिव का या उद्योग सचिव स्वाम का यह प्रमुख कार्य रहता है कि राष्ट्र में नये उद्योगों को चालू करे। अथवा दशम मद्रहल १०१ सूक्त में इन उद्योगों का स्पष्ट वर्णन पाया जाता है।—

"मन्त्रा ह्युध्यम् (अथ आसुध्यम् नाभमरिचमरुर्धं ह्युध्यं चंरुणुष्वंमायुधार् ह्युष्वं प्राञ्च" यन् प्रथयता संज्ञायः" (मन्त्रा ह्युध्यम्) आत्मन् दायक कर्मों को किया करो, (नाभ मरिच परंरु ह्युध्यम्) नोका बनाया करो जो शत्रुओं से भाग कर सकने योग्य तथा पार कर सकने योग्य हो— या कण्डू द्वारा पार लगाने वाली हो। (चंरुणुष्वम्) अन्न नैव्यार करो। (आयुधार् ह्युध्यम्) पर्याप्त आयुधों को तैयार किया करो।

"युनक सीरा विभुगा तनुच म् हुते धोनौ वपनेह बीजम्" हल जोता करो; आगे जुआ लगाया करो भूमि के नैव्यार हो जाने पर बीज बोया करो।

(शेव अगले अङ्क में)

### गुरुकुल समाचार

#### गुरुकुलीय स्वास्थ्य-विभाग की सफलता—

पिछले दिनों हरद्वार शहर में विभूषिका रोग फैलने की शिकायत सुनी जा रही थी। इस का विषय है कि गुरुकुलीय स्वास्थ्य विभाग की सक्रियता के कारण इस रोग का प्रवेश कुल-भूमि में बिलकुल न हो सका। अब सर्वत्र विद्यमान सुधर जाने के कारण यहाँ पर काम-पान गंगा-स्नान आदि पर से पिछले लगी हुई पारिवार्या उकासी गई है और प्रसन्नकारी प्रति दिन गङ्गा स्नान से स्वास्थ्य एवं स्फूर्ति लाभकर रहे हैं।

नैर्ऋत्याम्भुसूक्ष्म — प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी गमियों में सुषुम्न की ओर से तैरी प्रति योगिता का अपोजन किया जा रहा है। जिसमें दूर २ के तैपक लोग भाग लेंगे। यह प्रति-योगिता १॥ मील तैरने की होगी; और सर्वप्रथम: मई मास के ३ रे सप्ताह में होगी। यके हुए सैराकों को सहाय देने के लिए नहर-विभाग की ओर

से नाव का प्रस्थ भी किया जा रहा है। प्रथम तीन विजेताओं को योग्य पुरस्कार दिया जायगा।

महाविद्यालय-प्रवेश - ईस्कार— गत ३ मई, गमियों के दिन महाविद्यालय विभाग की ११ वीं श्रेणी में प्रवेश दृष्ट २२ प्रसन्नकारियों का प्रवेश-संस्कार भी आचार्य अयुषदेव जी ने कराया। प्रसन्नकारियों ने अन्न-सहित व्रत धारण किया। इस अवसर पर श्री आचार्य जी ने प्रसन्नकार्यों के संस्कार में विद्यार्थी जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी भव्य दिया। जिसका प्रसन्नकारियों को हृदयों पर स्थायी-अस्तर पड़ा।

#### श्री प्री० बेवृत्तन जी का शुभागमन—

गत ३० मई के गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के नव नियुक्त ड. प्रयाय श्री प्रो० वेदरत्न जी M. B. B. S. गुरुकुल पवार। आप ने, उच्च मनोयोग के साथ श्री प्रो० राधाकृष्ण जी के विषयों को पढ़ाना आरम्भ कर दिया है। गुरुकुल के सब सवारों में भी आप बड़ी दिल चरपी से भाग ले रहे हैं। हम आपका हार्दिक स्वागत करते हैं। गुरुकुल का वालीवाल-दल कड़की की— गुरुकुल का वालीवाल-दल कड़की में होने वाले दुर्घटित में भाग लेने के लिए १० मई को यहाँ से प्रस्थान कर रहा है। आशा की जाती है कि यह दल सफलता प्राप्त करके लौटेगा। इस दल की सफलता के लिए सब कुलवासियों को हृदयों में शुभकामना है।

#### वार्षिक परीक्षा का परिणाम—

गत ३० मई की गुरुकुल विश्वविद्यालय की वार्षिक परीक्षा का परिणाम प्रकाशित हो गया। यद्यपि अभी तक सर्वश्रेष्ठ: पूर्ण रूप से परिणाम प्रकाशित नहीं हुआ तथापि १२. १३. १४. श्रेणियों का परिणाम अच्छा रहा देखी एक सलक मिलती है। ११ वीं श्रेणी आयुर्वेद महाविद्यालय का परिणाम अत्यन्त वर्षों की भांति संतोष जनक नहीं रहा। इसलिए इस वर्ष प्रसन्नकारी साल के प्रारंभ से ही नव मनोयोग पुर्णक अध्ययन कर रहे हैं।

### स्वास्थ्य समाचार

वीरन्द्र श्रेणी ४ कास, लोकनाथ श्रेणी ४ मलेरिया, राजकुमार श्रेणी ४ ज्वर, देवराज श्रेणी १ Chicken Pox, दमनेश ३ श्रेणी विषमज्वर, सुखदेव ४ श्रेणी विषमज्वर, अविनाश १ श्रेणी नेत्राभिप्लव, अजय कुमार १ श्रेणी नेत्राभिप्लव।

उपरोक्त प्र० गत सप्ताह रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। चि. अ. प्रनाप भारतीय १ म श्रेणी को आन्वज्वर था अब बिलकुल आराम है। चि० अ० अयोध्या ३ श्रेणी (कं० अ०) कोरकर मल जी) को कलसे से अब आराम है। चि० अ० रामकृष्ण ४ यं का अजम अब बिलकुल ठीक हो गया है। शेव सब ठीक हैं। इस सप्ताह अधिकतम ताप मान १०५ फा० तथा न्यूनतम ७५ फा० रहा। एक दिन बादल आकर दो बार बूधे वर्षा पड़ी फिर बर हो गई।

## गर्मियों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी धातु क्षीणता पुरानी खांसी, हृदय की धड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। बच्चे बूढ़े जवान स्त्री व पुरुष सब शीक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव १०) प्राध सेर २०) १ सेर ४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियाँ से तैयार की गई ये गोलियाँ सब प्रकार की कमजोरियों में अकसीर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करती हैं।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजीत और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अन्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ३३) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अन्युत्तम औषधि।

मूल्य ३३) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियाँ बेच रहे हैं। इसलिए दवा खरोदने समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

माँच	{	देहली—चाँदनी चौक।	
		मैरठ—सिपर रोड।	
पार्सेसियाँ	{	कलकत्ता—पार्सेसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीराम रोड।	
		लाहौर—	हस्पताल रोड।
		पटना—	मल्लभाद्री बाँकीपुर।
		अजमेर—	वैद्यराज सरदारीवाल जी कदक चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी जि. सहारनपुर**

ने अधिक हित किस में है अतः शूर इत्यका निर्णय करता है कि हाथ काम करे और पैर चले। अब हाथ का भी हित इसी में है कि वह काम करे। इसी प्रकार व्यक्ति जो कि-राज्य का अंग है स्वयं अपना हित सोचने में असमर्थ है और राज्य की आशा का यालन कर के ही वह अपना तथा राष्ट्र का विकास कर सकता है। प्रसिद्ध विचारक हैगल कहते हैं कि-व्यक्ति जब तक अपना हित राज्य से अलग समझता वह दुष्की और अपुत्र रहेगा तब अपने आपको राज्य से अलग करके ही मुक्ति हो सकता है। परन्तु अवस्था में उसे कानून में अपने मनोमार्थों की अलक दिखाई देगी और वह स्वेच्छया से अपने आपको राष्ट्र के प्रति समर्पित कर देगा जैसे कि हम-जापान युद्ध में राष्ट्रभक्त सिपाहियों ने अपने जीवन देते-ले छात्रों को भरदिया था ब्राकि सेना गुजर लके और राष्ट्र की विजय ही।

आत्मकल नास्तीजम् ओर फेसिज्जातथा दोशोयिज्जम् इती विचारों,के हैं। चाहे हम और कई कारणों से उनके समर्थक न हो पर यह तो सत्य ही है कि जर्मनी की शक्ति बहुत संरक्षित है और उन्हें संघटित होने की शक्ति मिलती है।

यदि परिभाषिक शब्दों की उल्लेखने से बच कर नती तो मैं कहूंगा कि मनुष्य की शक्ति संघर्ष ही है। पर किसी इंसान के देह का हम सब नहीं कह सकते, नही बाजार में दिन भर चलने वाला लोडू को संघ कह सकते हैं क्योंकि उसमें प्रत्येक आदमी का उद्देश्य तथा क्रियाएं मिला मिलते हैं।

(नेप,आगतं अङ्कम्)

## श्रेय और प्रैसार्ग

(3)

### विचेक-

ज्ञानो गुरु कहते हैं कि उस पुरुषे प्रप्राप्त प्रभु की राह पर, अथ साग पर, चलने के लिए मनुष्य को प्रथम धारण करना पड़ता है "बिन्दु"। क्योंकि विचेक ही, यथार्थ में सब साधनाओं का मूल है जिसको बढ़ता के जिन आगे चलना नहीं जा सकता। विचेक को विचार का परिणाम कहना चाहिये। संसार के सभी सुख न,यह है, श्रित्य है, ऐसल कोई भी सुख नहीं जो दुःख रहित हो। परन्तु मनुष्य चाहता है कि मुझे ऐसा सुख प्राप्त हो जो एक-रस हो, इसी सुख प्रथमः आनन्द की बीज प्रथम यह सांसारिक पदार्थों में करता है, लेकिन तब जब जिह्वासु को सांसारिक लक्षिक पदार्थों से शान्ति नहीं मिलती तब यह सभी सांसारिक सुखों को परित्यक्त-शून्य जन कर किसी नित्य सुख, पूर्णानन्द की कोश करने लगता है। इसी पूर्णानन्द को ज्ञानने के, लिये वह सर्व अस्वप्न, आनन्द-आनामा, पिथा अधिया तथा निर्यानित्य वस्तु विचेक करने लगता है तथा आनन्द के मूल ज्ञान सर्वादात्म परित्यक्त से प्रेम करने लगता है।

में न्या है, कहां से आया है, कहां जाऊंगा, संसार क्या है, परमेश्वर क्या है इत्यदि प्रश्न विचेकी मनुष्य के ही हृदय में उठते हैं। जितना जितना इस प्रश्नों की गहराई में यह बुझता है उतना तब उसने ज्ञान की वृद्धि होती जानती है। परन्तु अधिवेकी मनुष्य केवल ज्ञान मार्ग पर ही चल कर अत्यन्त नाशवान वस्तुओं को प्राप्त करने में लग कर जीवन के उद्देश्य में बहुत दूर चला जाता है- (इतने अध्याय के प्रयोग वृत्तों)। साधारण, कर्मण्य कर्मण्य धर्माधर्म में अधिवेकी मनुष्यों का सैकड़ों प्रकार से माया होता है (विचेक छदानां भवति विविधानः शतमूल)। सन्-पुरुषों का सङ्ग, साधारण, यमनियमों का अनुष्ठान तथा परमेश्वर की कृपा विवेक प्राप्ति के साधन हैं।

### वेदांग्य -

विवेक के पश्चात् दुसरा साधन है "वेदांग्य"। विवेक के बिना वेदांग्य की प्राप्ति असंभव है। "दृष्टानु-अधिक विषय विमु-गुल्म यशोकार संसा वेदांग्यम्" (योग-दर्शन), अर्थात् देखे और नूने विषयों की तुलना से रहित चित्त का जो यशोकार है उसे वेदांग्य कहते हैं। जैसा विवेक सांसारिक पदार्थों को नाशवान जान लेता है तो उसका वाहता तथा लालसा हट जाती है। जब मन वास्तव सांसारिक पदार्थों से हट जाता है तो स्वर्ग ही वह अन्तर्गत होने लगता है, और वेदांग्यवाच्य मनुष्य को हृदयमय यह निश्चय रहता है कि निरन्तर तो सुख का मोल है यह मेरा अन्तरात्मा में ही है। संसार के सात्वत्ये उसे लुभा नहीं सकते, नचिकेता की तरह वह निरवशय पायों को, इन प्रलभनीयों से पर कर प्राप्त है क्योंकि उसे यह सत्य ज्ञान होता है कि सब संसृष्टियों का स्वीकरण प्रभु में ही है।

### पटक संरूपित -

संसार साधन है पटक संरूपित। यह कः ल,धर्मों का समूह है। (शून) विवेक वेदांग्य के प्राप्ति होने पर पर जब मन में दृष्ट वाचना और संकल्प नहीं आने पर शम की प्राप्ति समझी जाती है। (द्वन्द्व) इन्द्रिय और शरीर का अपने वश में रहना दम कहा जाता है। (उपरान्त) सब प्रकार की सांगमिक कामकाओं से उपरग हो जाना, यहा तक कि मास बडाई तथा यश आदि का भी त्याग करना। (मिनिता) इस मार्ग पर चलते हुए जो कठिनःपूर्व दुःख तथा क्रोध आते उनको धीरज में सहन करना। (अष्टा) परम गुरु परमेश्वर में, वेदादि शक्तियों तथा ज्ञानों पर श्रद्धा रखना, (समाधान) मन को सयदा सम, शान्त, तथा स्थिर रखना।

### सुमुमुत्त्व -

बौधा साधन है सुमुमुत्त्व; अर्थात् प्रकृति बन्धन से मुक्तने, आत्म स्वरूप तथा भगवान् को पायों की उकने-च्छा, नीत्र प्रप्तीत्या। "यथेद कृषिना वाताः मातरं पयु पा-सने" जैसे मूला बालक मां के पास दौहता है जैसे भगवान् को चारना या जैसे अन्धन पामे को उल के निवाय और कुछ अच्छा नहीं लगता, ऐसी नोकेच्छा प्रभु के लिये

होना, शान्त मन में उसी का संकल्प, हृदय में उसी का भोज हो, सर्वदा आत्मा में उसी का शुद्ध प्रेम भरा रहे।

ये चार साधन इस "श्रेय मार्ग" के यात्री के लिए आवश्यक हैं और साथ ही यह सब देना आवश्यक है कि जो कोई इस मार्ग पर पैर रखे तो बड़ी सावधानी से रखे, क्योंकि पग २ पर अथिया का जाल फैला हुआ है। मोह-मर्मा प्रमाद मदिरा इस जगत् को उन्मत्त सा बनाये चुके हैं। योग अज्ञान तथा असन्तोष की गहरी छाप इस जगत् पर पड़ी हुई है। अतः परमेश्वर में अटूट धैर्य, अरुंग भ्रष्टा के साथ सजग होकर आगे बढ़े चलना पड़ता है, कभी प्रमाद बरा गिरावट भी हो जाये तो फिर उठ खड़ा होना होता है। सैकड़ों विकलनाशा के आने पर भी विना प्रवर्ग्य अन्तिम विजय में विश्वास रखना होता है।

इस श्रेय मार्ग तथा इस पर चलने के साधनों के विषय में ऐसा ज्ञानी गुरुओं का हमारे लिये उपदेश है। इसका विशेष ज्ञान भी ज्ञानी गुरुओं से ही प्राप्त करना चाहिये।

(समाप्त)

- कृष्णदेव ।

[ ५० ३२२ आगे ]

के सम्बन्ध में पर्याप्त ले अधिक मात्मा वे उन्मत्त दृष्टि-गोचर होता था।

### हमारा पहला मैच

इस टूर्नामेंट में हमारा पहला मैच मिलिटरी-हायिप टल-रुडकी की कृष्णनामा टीम के साथ ता० १० मई की शाम को ३१॥ बजे हुआ। इस टीम को यह पूरा विश्वास था कि उन्से खोड़ा कर अन्य कोई टीम इस कप को जीत कर नहीं ले जा सकता। मैच प्रारम्भ होने में जब ३ मिनट बाकी थे और दोनों टल मैदान में उतर कर परस्पर बाते कर रहे थे तब मिलिटरी टीम का कैप्टेन अपनी शक्ति के मद् में हमसे यह बोल उठा कि "आप से खेलने के बाद हमें काहिल में मुजफ्फर नगर की टीम का नकड़ा मुकाबिल करना पड़ेगा"। उसका आशय अत्यधिक स्पष्ट था कि गुरुकुल-टीम को हम कुछ नहीं समझते!

उनकी इस उक्ति का हमारे खिलाड़ियों पर गहरी असर हुआ। खेल प्रारम्भ हुई तो गुरुकुल के खिलाड़ी एड़ी से चौड़ी तक का जोर लगा कर खेलने लगे। सब ने यह दृढ़ नियम कर लिया था कि इस स्थय्य रीति हकाने वाली 'अदम्य' टीम को अवश्य पराजित करना है। गुरुकुल की ओर से प्रहारकर्ता (Smasher) श्री हरिम कशा और पूर्वोन्मत्त थे। विपक्ष की ओर से प्रहारकर्ता लखे कदवाले दो सिल थे। वस्तुतः उन दो सिलों में से एक तो अत्यन्त परिष्कृत-खिलाड़ी था जिसकी प्रताड़ित नेदों को हमारे खिलाड़ी मुट्ठ ज्यूह रचना के द्वारा बड़ी मुश्किल से उड़ा सके। १०वें पोयष्ट तक दोनों टल लगभग बर-बर रहे। इसके बाद जब गुरुकुल के १० पोयष्ट हुए और मिलिटरी के १२वें तब विपक्ष के प्रहारकर्ता के चेहरे पर थकावट की एक हल्की रेखा दृष्टि-गोचर हुई; किन्तु उस समय हमारी खेल जमी ही थी। कलनः देखने ही देखने हमारे पोयष्ट २१ की पृथनी को पहुंच गए तथा उनके १५ ही रहे। इस

प्रकार पहली खेल में मिलिटरी-वच अमनो महान् आश्रम के विरुद्ध पराजित हुआ।

दूसरी खेल के प्रारम्भ होने ही गुरुकुल ने दल उन्में धर-दोना और विपक्ष के विरुद्ध खेल। इस अवसर पर उनकी टीम के कैप्टेन ने (जो मिलिटरी का डाक्टर था) और खेल में प्रलोपक (Buster) था) कई बड़ी सुस्ती के हाथ दिखलाये। और अपनी पार्टी को डगमग होने से बचा लिया। किन्तु अगले ही मिनट उसकी नाक पर एक नेज गूट लगाने पर वह पलट हिम्मत हो गया और १३ पोयष्ट बना खेले के बाद मिलिटरी-हायिपटल-कम्ब पराजित हो कर मैदान खोड गया।

इस मैचों में हमारी टीम के निम्न खिलाड़ी खेलें— सर्व श्री मनोहर, सन्यास, दिवाली-बन्ध, पृथसिंह, पं० बल गिर जी, डा० हरिमकशा जी।

### दूसरा मैच

हमारा दूसरा मैच इस टूर्नामेंट का सञ्चालन करने वाले आदवाच यूनिवर्सिटी की 'ए' टीम के साथ १० मई की सायंकाल ६ बजे हुआ। यह टीम साधारणतया रुडकी थी किन्तु इस टीम के दिनों में यह बात घर कर गई थी कि "हम गुरुकुल के मुकाबिल में क्या खेनेगे!"। इसी कारण हम टीम से स्पर्ध-पूर्वक मुकाबिला न हो सका। इस कारण गुरुकुल-दल की सफल-विजय (Easy-Victory) हुई।

### हमारा तीसरा मैच

गुरुकुल-दल का तीसरा मैच सन्दीप कृष्ण ने ११ मई की प्रातः ७ बजे हुआ। हम टीम का प्रहारकर्ता गेम्ब को दवाने में सिद्ध-हस्त था। हम टीम को इकेस भी हमारे तुकावले में अत्यिक मजबूत न थी; किन्तु भी सन्दीप-कृष्ण ने अपनी ओर से अच्छा मुकाबिला किया; किन्तु अन्त में पराजित हुई।

### मुजफ्फर नगर की टीम

निम्न गाउरुड में मुजफ्फर नगर की टीम सब से प्रबल और शक्ति शाली थी। हमारी टीम ऊपर के गाउरुड में थी। इस लिए ३१ मैच को जीत लेने के पश्चात् यह निश्चित हो गया कि सायंकाल मुजफ्फर नगर और गुरुकुल टल का मैच होगा। प्रातः काल रुडकी इन्जिनियरिंग कालेज की श्रीबर-सौर्य पलव की टीम के साथ मुजफ्फर नगर का मैच हुआ था। जिवमं मैच के विषय त प्रहारकर्ता धर्मपाल और प्रकसूद अलो भी थे। रुडकी की जगता ने हर्ने पहले ही बतला दिया था कि इन दोनों प्रहारकर्ताओं के मुकाबिले के खिलाड़ी ५० पी० में दूर तक के इलाकों में नहीं मिल सकते, अतः हम इनकी खेल देखने के लिए प्रातः ६॥ बजे मैदान में जा पहुंचे। इन्जिनियरिंग-कालेज की क्लब को मुजफ्फर नगर ने बात की बात में पराजित कर दिया। इसके अनिश्चित खेल में इनका उद्दलना, उद्दल कर दें, को मारना, और गेम्ब का श्रुमि से टकरा कर खुब ऊपर तक उद्दलना, लाजवाब वाली करना आदि खेल की सुधियां देख कर हम एक दूसरे की ओर आश्चर्य लाकने लगे कि शाम को पराजित में मालूम नहीं क्या परिणाम निरवेगा !

**फाइनल**

ता ० ११ अप्रैल की शाम को ५ बजे हम पूरी तैयारी के साथ मैदान में पहुँचे। मैदान के चारों ओर लम्बी २ कतारों में ४ की हुई कुर्सियों पर लोग बँटते पहले से बैठे प्रत्यक्ष कर रहे थे। बीच की मेज़ पर बोर्ड-बन्धु ६ कप सुशोभित हो रहे थे। हमारी टीम के साथ ही मुजफ्फरनगर की टीम भी पहुँची। सब खिलाड़ी पूर्ण विचारित रूप से २ कुर्सियों पर शांति ही कर बैठ गए। चारों ओर शांति छा गई, यह वह शांति थी जो मुकाम खाने के पहिले हुआ: करनी है या रं कराने के पहिले सज्जु के तीर पर होती है। ५ मिनटके अनन्तर ट्रान्मिन्ट के प्रति-प्रापक श्री मिस्टर बिल, उभयंश प्रसिद्धे ट कड़की अपनी कारसे उतरकर आये और बीच की कुर्सी पर बैठे। स्वीडी बजी और खिलाड़ी मैदान में आ कूटे। सारी जनताके मन में और स्वयं विपक्षी-दलके मन में शंका-रहित यह विचार था कि उन्हें गुरुकुल टीम कभी हरा नहीं सकती। इस विचार को आपसी में जाने के लिये उन्होंने पहले से ही पूरा प्रबंध कर रखा था। किन्तु हमने अपनी उन्नत शक्ति और किसी खेल में अभी तक प्रकट नहीं की थी इस लिये प्र परिस्थित पर गौर कर रहे थे। इतने में घुसरी स्वीडिश गई।

शरीरो पर एक हल्की स्वीडिशन लानी हुई खेल प्रारम्भ हुई: दर्शकों की आवाँ गड़गड़। प्रति सेकण्ड दर्शकों के चेहरों पर हर्ष-विषाद की भाँपें भूष-बुद्धि का खेल खेलने लगीं। खेल की प्रगतिनवी सुचारु-रूप से प्रसर-होती गई कि दर्शक लौहबाह-बाह कर उठे! उन्हें पक्षी-प्रतिपक्षी का ध्यान ही न द्या। घाम प्रतिघत, दाँव-पेंच, झारना-बचाना आदि में भी ही दल आग्रह। निमुल ५ इस लिये जल्दी ही यह विष नहीं किया जा सका कि **वीर्य** दल जोड़ है और **टीम** छोड़। दोनों ही एक दूसरे से बड़ कर हल-कोशकल्ला रहे थे। इस खेल को भीम देव रहे थे वे अपनेकी बंध-भांगी समरू रहे थे और जिन्होंने हलकी तारीफ़ल के बाद-सुनी वे अन्व-भासक के लिये अपने को ब्रेट कोसने रहे। विपक्षी दल का कौशल व्यथार्थतः हम सेकण्ड प्रतीत हो रहा था 'पहलो खेल में इनके जितने भंगुट पड़े उन पर बड़ी मुश्किलता से काबू किया जा स। किन्तु, गुरुकुल टीम का पिछवाड़ा ( डिफेन्स ) तो; नौ लोड़े का डाल था जहां सब्त से सब्त वेदड़ कर उट्टी लौट जाती थी। फिर भी विपक्ष के आग्रियों से हमारा यह प्रथम परिषय ही था इस कारण हमलौ खेल में १३ और विपक्ष के १५ पोयण्ट हो के कारण पराजित रहे। किन्तु इस बार उनकी खेल हमने पूरी तरह समरू कर इस पर काबू कर लिया था।

दूसरी खेल के प्रारम्भ होते क्षणों सारी खेल हमारे हाथों में आ गई। सुविधि ही बहास करने थे, वाम-पार्श्व रंक्षक भी बलवीर थे, दाहिपार्श्व रंक्षक मनोहर, केन्द्र-रंक्षक सत्यवान, मध्य-रंक्षक सिंह और प्रक्षेपक (Buster) दल के सुनिषया विशेषः ये खेल खूब जम कर हुई और हमारा दल १५ और विपक्ष के सिर्फ ७ पोयण्ट होने के कारण विजयी हुआ।

तीसरी खेल प्रारम्भ होने पर अपने दल के खिला-जियों ने यह समरू कर खेल में झील दे दी कि "अन में तो हम ही विजयी होंगे।" किन्तु इसी प्रमाद के कारण विपक्ष के पोयण्ट तेजी से बढ़ते गए और यह 'गेम' हाथ में निकल गया। किन्तु इस खेल के अन्त में गुरुकुल दल ने स्पष्टगया यह देल लिया कि विपक्षी-दल में कठोर प्रतिभम के अनन्तर अब दम नहीं रहा और उन के खिलाड़ी हाँक चलें हैं।

चौथी खेल के प्रारम्भ होने ही विपक्ष ने पड़ी ने छोटी तक का पसीना बहा कर खेलना शुक किया। यदि वे इस चौथी खेल में भी जीत जाते तो २ में से ३ खेलों में विजयी होने के कारण, निरसंशय विपक्ष-लक्ष्मी उन्हें ही प्राप्त होनी। किन्तु हमारे उत्साही, प्रीर, परिश्रमी और खडुर खिलाड़ियों ने इस ट टन: से खेल को बागडोर थाम रली थी कि वह प्रतिपक्ष द्वारा प्रवृत्त जोर लगाने पर भी टन में मस नहीं हो सकी। इस खेल में श्री हरिप्रथ श ने नयी तुल्यो हुई बड़ी भारीकी ने जो सविन्ने की उनमें गुरुकुल दल के एक साथ प्रपोयण्ट बन गए। श्री बलवीर ने विचार-कुशलता (Idem) से जो कम्पक-विध्यास किया उस ने विपक्ष विचलित हो उठा। मनोहर ने बड़ी सनकना और होशियारी के साथ दक्षिण पार्श्व को रखा की। सचपाल ने खेल का मध्य-केन्द्र इन लुवी में सन्भाल रखा था कि वहाँ एक बार भी गेद गिरने की गुंजायश नहीं थी, मध्य-मैदान में जो शूट विपक्ष द्वारा प्रां गण उन्हें बड़ी सरलता के साथ प्रक्षेपक विरोधोपान्द्र के पास पहुँचा दिया गया। और दिलोपकण्ड ने असाधारण कुशलता के साथ मैदान के किसी भी भाग में आरंभ गेद की डीक अनुपाल में निश्चित ऊँचाई तक उड़लने में जो कामका किया उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इन उन्नत मेन्दों को पूर्ण विह ने जिस सफाई, कुतर्ती और चोने की स्त्री ऋण्ट के साथ दबाया वे गेदें भूमि पर पड़ने के बादही दक्षि-गन हुईं। दू-तो सारे दल की खेल प्राच्यन् संगठित हुई किन्तु विलोप-भण्ड और पूर्ण सिंह की खेल में जो परस्पर नारनश्य हुआ उसने "महि-काञ्चन-योगा" का कार्य किया। दोनों की खेल एक दूसरे से अधिक सुशोभित हुईं। और इस प्रकार चौथे खेल में ७ और १५ पोयण्ट ने गुरुकुल-दल को विजय प्राप्त हुई।

पाँचवी खेल का महार पिछली चारों खेलों से अधिक था क्योंकि इसी खेल की विजय पर विजय-श्री का प्राप्त होना निर्भर था। दोनों दलों में जबरनम हीट लगी। गेद नयी तरह प्रताड़ित होकर कभी इम पक्ष में आती और कभी विपक्ष में तेजी से चली जाती। इस प्रकार दोनों दलों में देर तक अज्ञत-पूर्व संग्राम चलता रहा। ५ मिनट खेल होने के बाद ही गुरुकुल दल ने अपने महज-चैय, रमहा और वीरता के साथ और पकड़ना प्रारम्भ किया। देखते ही देखते गुरुकुल दल के पोयण्ट १२ तक पहुँच गए जबकि विपक्ष के सिर्फ ५ थे। और जब तक विपक्ष के पोयण्ट ८ तक पहुँचे तब तक गुरुकुल दल ने बचे हुए पोयण्ट को पूरा करके खेल को समाप्त कर दिया। निमुल जब-धोर से रिसाँ गंज गई।

चारों ओर मानों हर्ष पारावार सा उमड़ पड़ा। रुड़की की जनता ने दौड़ कर गुरुकुल हल के खिलाड़ियों को कन्पों पर उठा लिया। थोड़ी देर के विज्ञोभ के अनंतर आनन्द-मागर की तरंगों शान्त हुईं और मि० बिल ने विजयोपहार गुरुकुल-नल को अर्पित कर केण्टेन विलीपचन्द्र ने हाथ मिलाया और सभ खिलाड़ियों को एक-एक कप दिया गया। सभें श्रेष्ठ खिलाड़ी का पारितोषिक पूर्णसिंह को प्राप्त हुआ : उम के अनिरिक एक कप 'रोयल क्लब' की ओर से तथा एक मैडल रुड़की के एक प्रतिष्ठित सज्जन की ओर से भी पूर्णसिंह को दिया गया।

इस प्रकार इस दुर्नामिन्त में गुरुकुल दल को पूरी सफलता प्राप्त हुई। हरद्वार जाने वाली द बजे की लाठी से यह दल विजयोपहार मङ्गित गुरुकुल रवाना हो गया।

### गुरुकुल समाचार

**सुहावनी श्रुतु**—गत सप्ताह दो बार अचड़ी वर्षा हो जाने के कारण मीथम श्रुतु का सारा पदितप वृष्ट हो चुका है। ठंडी हवाओं के दिन भर चलने रहने से पेसा प्रतीत होता है कि अब यहां वर्षा श्रुतु का आगमन हो चुका है। इन दिनों गगन-मण्डल के परित्रासक बड़े २ मंघों के मण्डल प्रातः से सायंकाल तक गुरुकुल भूमि पर शीतल कृया करते हुए हिमालय की बर्फीभाष्य आदि चोटियों की ओर गम्भीर गान करते हुए बढ़ने चले जा रहे हैं। महा कवि कालिदास बादलों की जिस श्यामल-स्निग्ध कृषि पर तथा उनके मण्ड-गम्भीर घोष पर इतने दुर्ब धं वे दृश्य और वे गायन आज कल यहां प्रति दिन देखने ओर सुनने को मिलते हैं।

**गुरुकुल में खेल की प्रगति**— गत सप्ताह गुरुकुल में भेथी सामुह्यों के कारण अचड़ी हलचल रही। हाथी में ११ वीं और १२ वीं श्रेथी के सामुह्य में ११ वीं श्रेथी १ गोक्ष से विजयी हुई। १३ वीं और १४ वीं श्रेथी के सामुह्य में १३ वीं श्रेथी विजयी गयी गई। ११ वीं और १३ वीं श्रेथी के अन्तिम सामुह्य में १३ वीं श्रेथी ३ गोक्ष से सर्व विजयी हुई। बाकी बाक्ष के सामुह्य में ११ वीं और १२ वीं श्रेथी में १२ वीं श्रेथी विजयी हुई। १३ वीं और १४ वीं श्रेथी में १३ वीं विजयी हुई। ११ वीं और १३ वीं के अन्तिम सामुह्य में १३ वीं श्रेथी सर्व विजयी हुई।

इन दिनों खेलें नियम पूर्वक हो रही हैं। श्री आचार्य जी को विशेष साहाय्यता सभ ब्रह्मचारियों का खेलों में भाग लेना उतना

जीधरी हुलासराय के प्रबन्ध ने गुरुकुल मुद्रावाहक गुरुकुल कांगड़ी में मु तथा प्रवर्तित।

ही आचर्यक हो गया है जितना कि वहाँ है। इसमें अनुपस्थित होने पर तत्पर कारने की व्यवस्था की गई है अतः खेलों की व्यवस्था अत्युत्तम हो गई है।

**विजयोत्सव**— गत ११ मई को गुरुकुल का बाजोवाल दल रुड़की दुर्नामिन्त को जीत कर विजयोपहार के साथ सकुलक गुरुकुल पूर्वक गया। विजयी बन्धुओं के स्वागत में गुरुकुलीय-राधायक के साथ एक सभा जलन निकला। जलन के शत्रु एक विराट सभा में सभ खिलाड़ियों के गने में स्नेह-सुगमित 'कुर-माजाप' पदिकाई गई। इस सभा में श्री आचार्य जी, श्री सुभाषदाता जी, उपाध्याय गण, अध्यापक हृष्ट, कोठे बड़े ब्रह्मचारी तथा गुरुकुल के सभ विभागों के कर्मचारी सम्मिलित हुए। म० श्याम ने विजयी-बादलों के स्वागत में एक सुन्दर गीत गाई। इस विजयोत्सव में सर्व श्री म० अर्चना, म० विश्वमूर्ति, म० सद्येव, म० सुन्दरेव ने अरवी अंशित-बल्लु, राभी द्वारा विजयी बन्धुओं को कोर्त दी। इनके बाद श्री प० हरिश्च जी वेदार्थकार ने इस दुर्नामिन्त का कोर्त देना सारा ब्रह्मचर्य और खेलों की प्रगति का बर्णनार्थ रोचक वार्ता से किया। इनके बाद श्री प० शासुदेव जी वेदार्थक (सुकमान) ने खेलों और खिलाड़ियों पर शिक्षाकरेंद शिष्यों का रूप दुर्नामिन्त के दरयो का एक शब्द-चित्र लौक दिया।

सभ के अन्त में गुरुकुलके मुखशासिद्ध श्री प० सत्यनत जी ने प्राप्त हुई विजय-प्री पर श्रेष्ठ प्रशस्त करने के ब श्रेणों की उपयोगिता श्लासि हुए कहा कि "निरमन्देर, मेक्ष मोयेका का बहुत सभा साधन है, और विश्वे दिनों हमारी हाथी शीम सा बलकणों में गुरुकुल का सभा नाम हुआ है। हमारी इस संस्था में कोई विचार्य प्रमाणी नहीं होता आदि। गुरुकुल में श्री ओर विचार्यकी सारा अत्र जानी आदि। ब्रह्मचारियों को शिष्ट कि पुनः-निरने की कसरत को घोष कर खेलों में, तैरी उन्मासम और खेलों में भाग लें। पुनः-निरना तो पूर्वो-कीसारोक्ष श्यावाम है। हमें आदि कि गुरुकुल में खेलों का आयु-मसहनी पदार्थ के सतम ही सर्व भर बना रहे और इस संस्था में सदा प्रबन्ध विजय-प्री जाती रहे।"

उपाचार्य श्री प्रो० साधुचन्द्र ने खिलाड़ियों को मोहवाहन देने हुए बर्णाई श्री और उन्मासक सभा विकसित हुई।

इस दुर्नामिन्त का ब्रह्मचर्य सर्व इथी चक में प्रकाशित किया गया है।

### गुरुकुल स्वयं समाचार

राजेश्वर ५ श्रेथी द में दर्द, सोमदल ३ श्रेथी आगवान, राजकशोर ४ श्रेथी बोट, अविनाशचन्द्र १ श्रेथी नेजासिप्यव्य, राजेश्वरमेथी उबर कास। उपरोक्त ३० गत स रागेथी हुए थे। अब सब स्वयं हैं। चि० म० राजेश्वर सोमदल को अमी उबर है। आशा है कि ये गोक्षल हो जायेंगे। इस सप्ताह दर्प होने ने गर्मी कम रही मौसम अच्छा रहा।







## स्नातक बंधुओं से

निम्न भाई,

गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी के छात्रक-मण्डल का सम्बन्ध १९६६ का वार्षिक अधिवेशन गुरुकुल के गत प्राथिकोत्सव के अवसर पर ११ और १२ अप्रैल १९५१ को हुआ: १० भीमसेन विद्यालंकार और १० देवगज विद्यालंकार के समापित्व में हुआ।

(१) मनु अधिका रियों का चुनाव इस प्रकार हुआ—

१. १० देवगज विद्यालंकार लाहौर प्रधान
२. १० भीमसेन विद्यालंकार लाहौर उपप्रधान
३. १० विद्यनाथ विद्यालंकार गुरुकुल युवा "
४. १० सत्यदेव विद्यालंकार नई दिल्ली "
५. १० चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार लाहौर प्रधानमंत्री
६. १० सत्यदेव विद्यालंकार लाहौर मंत्री
७. १० चंद्रगुप्त विद्यालंकार दिल्ली "
८. १० प्रकाशचन्द्र लाहौर कोषाध्यक्ष
९. १० भद्रगुप्त विद्यालंकार अमृतसर: प्राय-स्वयं निरीक्षक।

निम्न्य हुआ कि कार्य समिति में भी उक्त ६ सज्जन ही रहे।

(२) यह भी निम्न्य हुआ कि छात्रक-मण्डल का वार्षिक सम्मेलन १० एकका अध्यक्ष और चम्पा देने पर ही मत देने का अधिकार प्राप्त हो सकेगा।

(३) कार्य प्रतिनिधि समा संज्ञा का नया निर्वाचन मई १९५१ में हो रहा है। छात्रक मण्डल का सन्तुषोच है, कि संज्ञा में रहने वाले छात्रक भाई अधिक ने अधिक संख्या में प्रतिनिधि समा में प्रतिनिधि निर्वाचित हों।

(४) निम्न्य हुआ कि छात्रक मण्डल की रूप में विद्यालंकार के विधान (Constitution) में परिवर्तन की आवश्यकता है। उसका उद्देश्य और अधिक प्रभावशाली विधान प्रतिनिधि समा के आगामी अधिवेशन में पेश करने के लिए निम्नलिखित सज्जनों की एक उपसमिति नियत की जाती है—

१. प्रो० इन्द्र विद्यालयचन्द्रपति दिल्ली
२. १० चन्द्रगुप्त जी लाहौर (नियोजक)
३. १० भीमसेन जी लाहौर
४. प्रो० विष्णुनाथ जी गुरुकुल कांगड़ी
५. प्रो० सत्यमत जी "
६. १० बुद्धदेव जी मेरठ
७. डा० सत्यकेतु जी दिल्ली

(५) छात्रक मंडल का ध्यान इस तथ्य की ओर विशेष रूप से कीया गया कि नए छात्रकों में बाहर की परीक्षार्थ देने की प्रवृत्ति कमना: बढ़ रही है। इस प्रश्न पर विचार करने के लिए तथा छात्रकों की सामीपिका का प्रश्न हल करने के लिए निम्नलिखित सज्जनों की एक समिति नियत हुई।

१. १० देवराज साहौर (प्रधान)
२. प्रो० चन्द्रगुप्त लाहौर (मन्त्री)
३. १० भीमसेन " सत्य
४. आचार्य भ्रमरदेव जी गुरुकुल कांगड़ी
५. प्रो० सत्यमत " "
६. प्रो० बुद्धमत " "
७. १० धर्मदेव बंगलौर " "
८. प्रो० इन्द्र दिल्ली
९. डा० सत्यकेतु " "
१०. १० देवप्रभु " "
११. १० चंद्रगुप्त गुरुकुल वैद्यनाथ धाम "

(६) निम्न्य हुआ कि छात्रकों में परस्पर अधिक सहाय्य उपलब्ध करने तथा उन्हें सामाजिक जीवन के लिए तैरित करने के लिए यदि सम्भव और उपयुक्त समझा जाय तो एक वैतनिक कार्यकर्ता की नियुक्ति की जाय।

(७) निम्न्य हुआ कि गुरुकुल विश्वविद्यालय के अधिकाारी परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को 'विद्यार्थिदारी' का प्रभावपूर्ण मिलना चाहिये।

इसके प्रतिरिक्त समयम ५ वर्षों तक गुरुकुल संचालन की नीति पर भी विचार हुआ। यद्यपि इन सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव पास नहीं किया गया।

आप से सन्तुषोच है:—

१. उपर्युक्त बातों के सम्बन्ध में विशेषत: प्रस्ताव सं० ४ और ५ के सम्बन्ध में, आपसे विचार मुक्त लिखने का कष्ट कीजिए।

२. अपने सम्बन्ध की पूरी सूचनाएं (पत्रां, कार्य, आय, विवरण, रचनाएं आदि) मण्डल के कार्यालय में भेजने की कृपा कीजिए।

३. मण्डल का चम्पा, यदि आपने अभी नहीं भेजा तो भेज दजिए।

४. यदि आप संज्ञा में रहने हैं तो प्रतिनिधि समा के सदस्य बनने का प्रयत्न बहुत हीम कीजिए। इस सम्बन्ध में मण्डल के प्रधान १० देवराज जी को हम पत्रे कर लीया पत्र लिखिए:—राम मैथिलिाल स्टोर (Opposit Bharat Building) लाहौर

५. यदि आपके यहां ४ या उससे अधिक छात्रक ६२५ हैं तो अपने यहां छात्रक मण्डल की शाखा संगठित कीजिए।

प्रश्नों का उत्तर अवश्य दीजिए।

आप का भाई—

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

प्रधान मन्त्री, छात्रक मंडल

१२ ए, त्रेष रोड, लाहौर

१ मई १९५१

# गुरुकुल

१० अप्रेल शुक्रवार १९६८

## हम सब बच्चे हैं

[ लेखक—श्री आचार्य रामचरण जी ]

( १ )

एकदि, सोमवार से या ( कल्पौंकी सम्मति में ) सौम्य से मुझे इस अम में बाल बच्चों वाला शुद्धी होने का अनुभव नहीं मिला है, तो भी मुझे बच्चों का बहुत अनुभव हुआ है। और शायद शुद्धी कदलाने वाले लोगों की अपेक्षा बच्चोंका बहुत अधिक डीक और सबा अनुभव मिला है। क्योंकि गुरुकुल परिवार के या गुरुकुल में सम्मन्धित अन्य शृंग्यों परिवारों के बच्चों के अनुभव के अतिरिक्त मुझे बाल-बच्चों वाले शुद्धी परिवारों में परिवार के अलग अलग के तौर पर भी कृ. समय तक रहने का अनुभव मिला है। इन सब अम में निरन्तर बालकों को बाल-सोलाखों को ध्यान से देखता रहा हूँ। और बालकों के बहुत से निपट अमानयुक्त, अतयव भोले भाले और प्यारे श्रमहारों की, करतूतों की और ब.तों की आर इतने देख पर देखी पड़ती रही है कि उमे मित्राना कठिन है। पर वह सब ब.तें एक ही भील मुझे सिखाती हैं, गक ही बात की न.क. अंगुल-निवेश करती हैं... एक ही अंग अबापती हैं... दख समीचने हैं।

( २ )

अ. में अपने ब.नाकी के यहां रहता था तो मेरी छोटी बहिन एक दिव महरसे मे.आने के बाद मोज में भोज रही थी कि "एक और एक दो... दो और दो तीन, तीन और तीन चार"। मैंने उसे ब्रेन से पुकार कर कहा "एक और एक दो तो डीक है, पर दो और दो तीन नहीं होने, दो और दो चार होने हैं- अतः देखे कं सो 'एक और एक दो, दो और दो चार'। पर वह नहीं मानी, पहिले की अर्थ दो और दो तीन बोलने लगी। फिर मैंने टोका और साकार बोल्ने लगी और दो चार"। पर ऊह अमुंलता कर बोली "घाईकी तुम तो हो खुवाने हो घाएकी जी ने हं। यही बातया है 'दो और दो तीन'। मैंने कहा ग्राभटर जी ने 'दो के बाद तीन, और तीन के बाद चार' देना कुछ कहा होया। ए.व.व. मेरी बाब मामने को त.व.व. था, क्योंकि वह महरसे में मा.ए.टी.जी. में प्रकृकर आई है अतःका उमे उचित। अ.व.से आने के शीरव को मानो प्र.ले को शोया देने वाला। अभिमान था और देखा ही प्रकृकर आई है इसका उमे पूरा आराम विभास था। फिर मैंने उसे प्रकृ.भर बाबा लह. से. अ.व.काया कि "दो और दो चार होने हैं।" उसो समय कुछ ककरियां इकट्टी क.के दो ककरियां अ.के हाप्र में री और दो अपने हाथ में ली अ.म. प्र.र. उसे कहा कि 'दो ये और दो ये, सब इन सब को

गिनो।" उसकी प्र.मी.में जब आर.म.ह. हुई तो उसने यह कहकर कि "मोरी जी, तुम तो गुरुकुल कराने हो" ये सब ककरियां फेंक दीं। मैंने फिर मोका पाकर एक 'चार' चार ल.कु. संक. क. फिर चार क.के ल.च.र. उसे ल.का उसकी छोटी बहिन को बा.द.कर उ.ले प्र.क. कराना चाहा कि दो और दो तीन नहीं होने. अ.व. व. यथापि अब भी अ.स.ने यह स्वीकार तो नहीं किया कि उसका कहना. डीक नहीं है. मुझे यह साफ़ बो.क.ने लग. कि अब वह बलुनः देसा अनुभव कर रही है कि मानो अ.ने कानामिमान को ब.डा भारी घका पहुंचा है और अब उस स.व.ने के कारण शु.की है।

मैं सोचने लग. था, क्या हम सब की ही देखी ही इ.ल.त नहीं है? हमने जो ज.व. किल, सि.इ.अ.ल.को चि.क.ल. में कि.कु.ल. स.य. या ज.व.न. माना. हुआ होता है तब यदि कभी ऊंका आ.न. गा.ं पर या कहीं मे अधिक आ.मि. प्र.काश को फिर.पे पड़ने पर उसने कुछ गु.गी मा.ल.म. पड़ती है तो हम उसे ल.ह.सा. लो.का. करने को शि.भार नहीं होने, उस बालिका का तरह उस न.पे. स.य.को दे.ल.ना त.क. नहीं चाहने, कि.स.ं न किली तरह उसमे पो.का. हुआ.ना. चाहने हैं। पर वह ज. आ.माने अ.म.क.ने हो लगता है तो हमारे अ.न.मि.मि.म. को भी ब.डी भारी डे.स. लाती है. आ.वा.त. पहुंचना है, हम अ.वा.ल. हो जाने हैं। उस के बाद हम उ.मे म.ब.च.र.न. स्वी.कार करना आर.अ.म. करते हैं। उस बालिका को उ.ले अपने म.व.र.से आ.ने का अ.भि.मान. था. जैसे हा. अपने शि.क.शा.ल.य. व.अ. यु.नि.व.सि.डी. का अ.भि.मान. होता है। हमारा मन कहता है कि हम अ.मु.क. वि.भ.वि.या.ल.य. के अ.ल.क. हैं. व.हां हमने अपनी स.म.क. के अ.नु.स.ार. जो अपने ब.के ब.के प्र.म.ओं में प.डा. है व.ही डीक है। अब हमें स.य. और ही कुछ मा.ल.म. पड़ना है तब भी हम सोचने हैं यह मैंने अ.क.अ.र.में प.डा. है, कि.ना. में प.डा. है, अ.म.े जो की पु.ल.क. में प.डा. है, क.माने ब.के भारी ल.क.क. प.ल. ए.ल. जी. के प्र.म.य.में अ.क. है इ.प.या.दि. वह कैसे गु.ल.न. हो सकती है? "उसके पं.स. को.ई. ब.व.िया.ं नहीं, उसका अ.ध.य.य.न. वि.या.ल. नहीं है, व.अ.अ.में.जो नहीं प.डा. था वह सं.क.क.न. नहीं प.डा." ये.मे. वि.वा.र. अ.न. में ल.अ.क. व.न. आ.ने हुए स्प.द. स.य. को भी प्र.ह.क. क.ने में अ.म.म.ई. रहने हैं। यह हमारा बालकपन ही तो है।

( ३ )

इसी तरह क.न.य. गुरुकुल में एक बहिन प्र.य.न. अ.प.ी में प.क.तो थी। हम उनसे मिल रहे थे- लो. वे.वा.न. जी से.ड.ने पं.का "सरला। नू.प.क.क.क.क. करीयो। उसका सरल सा बिना बनावट का उ.ह.र. था "प.ड. कर मैं बहिन की की त.ह. दे.ल.क. ल.का.क.की।" हम सब हं.से-मे.री-स.ग.ी बहिन अ.ग.ा.वा. ब.दि.क.तो (जि.ने यह ब.दि.त. जो करके पु.का.र.त. थी) दे.न.क. न.ग.ग.तो थी और का.प.ती प.डी थी, लो. उसने भी सो.बा.कि प.ड.ने का परि.वा.र.में य.ही होता कि मु.के भी दे.न.क. ला.नी मिलेगी। पर हम लो.ग. -जो अपने को ब.बा. नहीं स.म.क.ने - क.प.नी शि.का. का उ.ह.र. पर और क्या अ.धि.क. सं.म.क.ने हैं। मु.के द.व. है कि 'अ.न. त.क. हो जाने पर हम कि.ल.क. के.ड. में

रहने। इस कथा को बसुन्धरा की भी मैं-जब हम २३-२४ वर्ष के हो जाते हैं—कर्मों का स्वप्न विना जाता था। हम एक ले-इम विषये बचते हैं कि वेसी माना पिता की इच्छा है या इस लिये कि स्वार्थकं सदा है तो कुछ उपाधि तक ही पड़ लो, उपाधि का लक्षण है। एतत्क, मेसुपद हो जने से कुछ हजम बड़ जाती है, या पेट पालने का प्रयत्न सहारा ही जाता है अथवा इस इच्छा से पढ़ने हैं कि पढ़कर अपना कामार्थ, मोक्ष करेगे, ऐसा करेगे।

इस मोक्ष और ऐसा करने को या पढ़े लिये होने के लिये से रहने को ही 'उस बालिका' ने एक लगाने के यत्न के लिये कह दिया और-सम्पत्ता ने अपने असली आन्तरिक भाव को सच्चा, सदा और सोधा कह दिया। हम लोग प्रायः ऊपर से कहना सोच गये हैं कि 'हम ऐसा सेवा करने या अपना ज्ञानता प्रवर्धन की सेवा करेंगे, या वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे' पर या तो हम इनका अर्थ नहीं समझते या केवल विवाह के लिये पर ऐसा सोचते हैं—अन्तर की इच्छा नहीं होती है कि हम पढ़ कर ऐसा मोक्ष करने में या अन्य के-पढ़े या काम पढ़ो पर गुरु गाँव में प्रकृत समर्थ हो जाने इसी लिये अन्त तक पढ़ने है।

ले भी सोचें तो जिन जिन भी इच्छाओं से प्रेरित होकर हम पढ़ने हैं, क्या उन में से कोई भी बस्तुतः ऐसी होती है जो उस बालिका की ऐतक लगाने की इच्छा से बस्तुतः अधिक महत्व की हो ?

(४)

एक नजदीक बात सुनोनी की एक बार रेल पर पहुँचने के लिये लगभग रात भर की यात्रा रेल गाँवों पर करनी थी। साथ में एक बालक था। उसने 'शान्त' को भर पेट मिठाई खाई। कौनो हठमी यात्रा के लिये घर से भोजन और मिठाई बचकी मात्रा में बचा कर ले चले थे। प्रायः काल उसे शोच जाने की-हालत हो रही थी पर वह शोच नहीं होता था। उन्ने लोच रहा था। पंक्ति से इसको कागज मारूम हुआ। कोरख यह था कि बच्चा खमरकना था कि यदि वह शोच बला जायगा तो उसकी खाई हुई मिठाई निकल जायगी। इसी भय से वह शोच के लिये उठना नहीं था।

हम इस पर हमेंगे। परन्तु मैं तो देखना है कि हम दाखी-मूढ़ बाले बड़े बड़े बालक भा ऐसा ही करने हैं। एक-एक मनुष्य नहीं हिन्दु मनुष्यों के बड़े बड़े सन्तुष्य तक ऐसा ही करते हैं। जिन रीति रिवाजों या प्रथाओं की अब अनुष्ठान नहीं रही, जिनका कल धरती हो चुका, जो ऊँच हो चुकी उनसे प्रेम रखना, उनको स्थाने हुए पुनः होना ऐसा ही नहीं है तो क्या है ? एक उग्रम का आकाश-रूपने की पवित्र मानना हुआ ईमानदारी के साथ 'हास्यमरकना है कि यदि वह बहूत समझ जाने वाले 'हस्ति-व्यक्ति से कुछ जायगा' हो उसका कई जगहों का केसाया हुआ पुरुष नष्ट हो जायगा। स्थैश्यायुर्षी किसी जगह की किन्हीं अवस्थाओं में किसी संश में उपयोगी होगा। पर अब भी उन्ने-उसके बर्चनम टप में न कीडना, प्रकृतियों को डरने में धर्म के लक्ष्य को जाने का भय होगा ऐसा ही है कि उस बालक को प्रेम स्थान करने में वह

भय था कि इससे खाई हुई उसकी प्रिय मिठाई नष्ट हो जायगी। नहीं तो मिठाई का मिठाईपन तो, उसका स्वाद और आनन्द तो तभी क्षम्य हो गया जब वह गले के नीचे उतर चुकी, जबकि वह जीम का विषय नहीं था। परन्तु अज्ञान और मोह के बराबर बालक उल्लेख बाढ़ आ, उसके अन्त रूप को भी छोड़ना नहीं चाहता। 'पवित्र' हिन्दू मुसलमानों के लू जाने से, उसके साथ अपने बर्चन का स्थान ही जन्मे पर आज भी अपने को ब्रह्म हुआ मानता है। किसी समय जब मुसलमान लोग आकालाग के रूप में भारत वर्ष में आये थे तब उनमें 'असहयोग करने के लिये पर कुछ ऐसी बानें उन हुई होगी, पर अब इन बातों का क्या मतलब, जबकि हिन्दू और मुसलमान एक समान गुलामी का जीवन बिता रहे हैं ? हम प्रायः समाजो पुराना मित्रों रक्षियों के तोड़ने वाले हैं। पर हम अपने विषय में भी पुरुषकर्म हैं कि अर्थ विषय-मन्द के समय में व्यवहन की मैत्री ज़रूरत थी उसका इस समय क्या मतलब है ? बात यह है कि जब 'आज्ञा, मोह, और तामसिकता का ज्ञान होता है तब सच्ची हुई, बीनी हुई और स्थाने योग्य बस्तु को भी छोड़ने हुए भय होता है। हम 'समकर्म' होने हैं कि हम किसी बड़ी ही काम की चीज को छोड़ रहे हैं और इससे छोड़ने से हमारा नाश हो रहा है।

( 'आज्ञा प्रक में सम' )

### वेद और राष्ट्र धर्म

[ विषय-सौ. नं. चर्चामा ]

[ ३ ]

"मीथीनाश्वाभित्तं जयाध स्वित्तियाई रथमिऋणुधमम् द्रोणाहावर् अयतमर्षं श्रमवकं सिद्धना नृपाधम्।" (मीथीत अश्वान-)अथो को लुन रत्नां करो। (हितं जयाव) हितकर विजय प्राप्त किया करो। रथमिऋणुधमम्)रथ बनाया करो जो कि (स्वित्तियाई)अर्थात् दंग से बहन करने वाला हो। (अयतं सिद्धना)पढ़े को पानी मे मरे, (द्रोणाहाव) लकड़ी का टुक जिस के पास पड़ा है (अश्रमवक)कथर को जिस में चर्चमी है, (अश्रम कोशम)-कथे का नाश करने वाले बन्दर को लकड़ का जिस में डोल पड़ा है—

"अत्र ऋणुधम सविधो नृपायो वरं सोप्यं व बहुला पृथुषि पुः ऋणुधमं आचरन्।"इहा मा वा मुन्वाभ्यस्त दहतातय- (अत्र ऋणुधमम्) गीशाला मनयो (सविधो नृपायो) वह तुम्हारी रक्षा करने वाली है, (वरं सोप्यं) -बचक सीधा करो (बहुला) बहुत हो और (पृथुषि) दूरे ३ शरीरों में आ सके। (पुः ऋणुधमम्)-मगरबनाया करो, (आचरन्) लोहे के समान दृढ़ हो और (अपृथुषि) दृष्ट से दुर्बलवीय हो-(अयमस) अयमच येने हो मा (सुतोस)-जिनमें छेद न हो।

"पवित्रजय दश कथाभि, उमे सुतेप्रति बन्धि युनक"। दम पेटियों से बन्धुओं को पकड़ा करो। दोनों धुराओं में बन्धि की जेता करो अथोम् Motor का निर्माण करो। इस प्रकार वेद में दृष्ट की उत्पत्ति के लिये नाना प्रकार के उद्योगों का दर्शन है— उल्लोख जहाज वा बलान तो स्पष्ट ही है—

“देवाः कपोतः इषितो यद्विक्रम्यते त्रिभङ्गस्य इन्द्रमञ्जगाम तासाम् अस्मिं कृष्णवाम् निरुद्धि त्तु मो अस्तु द्विपदे शंभ-  
सुरपदे” — ।

यहाँ (क अत्रत्य पोटः अत्रयान इति) इषट्, तीर के अलीय अक्षर का बर्णन वाया जाता है । और अक्षर इच्छे देश पर आक्रमण करने के लिये जाता है ।

इस प्रकार अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए तथा अन्य राष्ट्र पर आक्रमण की सामग्री को जुटाने के लिए राजा का आवश्यक कर्तव्य है कि राष्ट्र में उद्योगों का जाल बिछा दे । परन्तु इस उद्योग शाखा की उन्नति या अग्रगण्य शासन के प्रकार पर भी निर्भर है । वेद में निम्न शासन संस्थाओं का बर्णन है ।

“स्तुति साध्नाय भोज्यं स्वराज्यं वैराज्यम् पारमेष्ठ्यम् राज्यं महाराजसमाधिपत्यमयं सामन्तपर्यायी स्यात् सावं-  
भौम सावायुष अतादापट, ध्यां । पृथिव्ये ससुद्रु पर्वताया एकराजिति” ॥

यह पेलनेय ब्राह्मण का बचन है । इस में कई प्रकार के राज्यों का परिगणन किया है । इन में से (१) भोज्य (२) साम्राज्य (३) महाराज्य राज्यवित्सार सशस्त्री तीन भेद हैं तथा (१) वैराज्य (२) राज्य (३) आधिपत्यमयं राज्य (४) सामन्त पर्यायी राज्य (५) स्वराज्य राज्य शासन विषयक ५ भेद हैं । पूर्वोक्त तीन राज्यों के उत्प्रेरक पांच प्रकार हो कर कई प्रकार की राज्य व्यवस्था होना सम्भव है । उस का स्पष्टी करव देविये:—

(१) भोज्यम्—सिन्धु मिमिन्त भूमणो में जो राज्य रहता है उसे भोज्य कहते हैं । राज्यवित्सार अर्थात् साम्राज्य निर्माण से यह पहले की व्यवस्था है ।

(२) साम्राज्यम्—समिप्येकी भूयं राज्यं साम्राज्यम् एक भोज्य का राजा अग्रे की पादक्रान्त कर के जब एक संघासित राज्य बनाता है, वह साम्राज्य नाम के योग्य होता है ।

(३) महाराज्यम्—जब साम्राज्यान्तगत भोज्यों का स्वल्प भद्र हो जाय तो भोज्य ससुद्रुय को महाराज्य कहते हैं ।

शासन के पांच प्रकार देविये:—

(१) वैराज्य शासन व्यवस्था (वि- विरुद्ध-राजक वैराज्यम्) राज्य के वित्तकुल विरोधी सत्ता जहां प्रधान होती है अर्थात् प्रजा तंत्र इसे कह सकते हैं ।

(२) राज्यम् (राजः इत्) राजा के लिये यह । जहां राजा प्रधान होता है ।

(३) आधिपत्यमय शासन पद्धति—(परितु भेष्ठ अधिपति तस्य भाव् अधिपत्य तन्मयं) छोटे २ पतियों का स्वामी महापति है; जहां इन द्वारा शासन हो वह आधिपत्यमय है ।

(४) सामन्तपर्यायी = साहस्रिक राज्यों के अधीन शासन सामन्त पर्यायी है ।

(५) स्वराज्य—(स्वराजः आराजः इत् राज्यं) जिज्ञ द, उय शासन के हर एक प्रजाजन का स्वतन्त्र जगसा है । इसे Self Government कह सकते हैं ।

इस प्रकार राष्ट्र शासन के सिद्ध २ स्वरूप तथा राष्ट्र के सिद्ध २ स्वरूप इस की शासन व्यवस्था के अंगों और

क्रियाविधि पर स्पष्टतया प्रकाश डाला गया है । संक्षेप में मैंने उस का बर्णन उक्त, किया है । यदि इस आधार पर राष्ट्र का ढांचा हो तो पृथ्वी पर स्वर्ग लोक उत्पन्न होगी, यह कहने में मुझे कोई प्रसङ्गिक शक्यता नहीं होती । कार्य राजाओं का कर्तव्य है कि वे इस के अनुसार कार्यरत के यशःभागी हों ।

श्रीराम शान्ति, शान्ति, शान्ति,

**गुरुकुल समाचार**

**श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू का शुभाश्रमन**  
गङ्गवाल में एक अरुवा प्रणय करने के 'डोला-प. लकी' समस्या को सुलझाती हुई श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू [ प्रेजीडेन्ट कालि भारतीय हरिजन सेवा-संघ ] २१ मई की रात्रि को १० बजे गुरुकुल पधायीं । अगले दिन प्रातःकाल आपने श्री मुखपाधिष्ठाना जी तथा श्री प्रो० विश्वनाथ जी के साथ सारे गुरुकुल का सूक्ष्मा-पूर्वक निरीक्षण किया । उद्यान की ओर गुप्तकुंज की तीक्ष्ण-गति को देखकर तथा मध-निमित्त अरु-जगनों को देखकर आप बंदर प्रसन्न हुईं । आज रात्रि को एक विशाल-समा में आप का भाषण होगा जिसके लिए गुरुकुल में उक्ति प्रबंधन किया जा रहा है ।

**गुरुकुलीय राष्ट्र-प्रतिनिधि का चुनाव**

हिन्दू संघासना जीत गई

विभूते दो सप्ताह गुरुकुल में आरम्भ उरसाह क कुल-पहल का वालावरव नज़र आया । गुरुकुल राष्ट्र प्रतिनिधि सभा सं० १९६८ के प्रधान अग्रे की चुनाव होना था । २१ वैशाख को साहित्य-परिषद् की ओर से इस की सूचना दी गई थी । चुनाव के नियमोपनिषय प्रकाशित किये गए थे । हिन्दू महासभा, कांग्रेस, तथा कांग्रेस दलों की ओर से सूचनापत्र पर नये नये दंगों से विक्षोभ होना प्रारंभ हो गया । सर्वप्रथम कांग्रेस दल की ओर से अक्षय व सभा की गई । पहले दिन का उरसाह विकट रूप धारण कर गया था । दूसरे दिन हिन्दू-महासभा ने अक्षय व सभा का आयोजन किया । सभापति के बालेन ए ओ उय, ध्याय बायींश्वर जी चिराजमान थे । मान्य उरसाधाय जी ने सभा को अपने सद्भावोचन १५ वधावनाम से सुध कर लिया था । अगले दिन कांग्रेस की ओर से अक्षय निकाला गया । सुभ से इनके लिए तैयारियां की जा रही थीं । गांधी टोपी, तिरंगे जैसे वार्ड विवर तैयार किए गए थे । ध्यंग्य चित्रों का काफी प्रचार किया गया । अक्षय के बाद मान्य उरसाधाय धीमे-विभनाधजी के सभासदित्व में सभा का कार्य संपन्न हुआ । अगले मिलाकर राष्ट्र-जीव बढ़े व.साह से गया । इस दिन की कार्यवाही आन्धि पूर्वक सभात हुई । सभा व अक्षय के आतिरिक्त दिन में कांग्रेस, हिन्दू तथा राष्ट्र के अक्षय गये के बनगए गए अक्षय-स्वीकरी से प्रचार कार्य किया जाता रहा ।

३ अग्रे के दिव काउरसर दल ने पेट्र के साथ अक्षय निकाला । बाद में मान्य उरसाधाय श्री प्रो० बालकन्द जी की







# गुरुकुल

एक प्रति का मूल -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥]

संपादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १७ ज्येष्ठ १९६५; ३० मई १९४१

[ संख्या ५ ]

## स्ववीर्य-गुप्त संस्कृति

[ आचार्यवर सर्वपल्ली राधाकृष्णन, एम.ए. बी.एड. ]

भारतीय संस्कृति के एक समीक्षक ने वर्षों पूर्व कहा था कि भारतीय संस्कृति का विनाश यद्यपि निश्चित हो चुका है, तो भी वह जीने के लिए कुत-निश्चय है। यह विरोधाभास ध्यान देने योग्य है। यह बताना है कि इस संस्कृति में ऐसी प्राशस्तिकि है जो इसके जीवन को टिकाये हुए है। भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में हमको बहुत से अड़ और सुतप्राय तत्व उपलब्ध होते हैं। ऊपर अंकित-वाक्य के पूर्वार्ध में इहाँ युगप्रय तत्वों की ओर निर्देश किया गया है। वाक्य के उत्तरार्ध में जो विधान प्रस्तुत किया गया है, उसमें भारतीय संस्कृति के आदर्श की ध्वनि है। किन तत्वों की सुरक्षा करनी चाहिए तथा किन का अड़मूल से उच्छेद करना चाहिए, इसका विवेक कौन करेगा? पुनरुत्थान केवल भूतकाल का अनुसरण या अनुकरण मात्र नहीं है। विश्वव्यापक और मूलभूत साधनाओं के ऊपर ही उसका आश्रय हो सकता है।

पुरातत्व के नवीनतम अनुसन्धानों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि हमारी संस्कृति का उद्गम सिन्धु नदी की तराई में हुआ था। इस ढोङ में चित्रकारी, मृत्तिका शिल्प के अतिरिक्त कतारि और हुनारि के नमूने प्राप्त हुए हैं। संस्कृति के इन बाह्य आधिकारों के साथ ही कुछ एक सुम्राए मिली हैं। एक मूर्ति ध्यानमय शिव की उपलब्ध हुई है। उससे अपनी संस्कृति की मनोदशा सूचित होती है। अपने देश की आध्यात्मिक मनोदशा पर ध्यान का प्रभाव प्रबलमान था। यह हमें बताती है कि जिसने मन को जीता है वह सब्बा विद्वेता है। नगरों और राज्यों के विजेता उसके सामने तुच्छ हैं। संस्कृति के इस मध्य आदर्श को भारतवर्ष में अपने जीवन में अद्रुप्राणित किया था। भारत के इसी आदर्श ने पुराने समय में अन्य देशों पर अपना सांस्कृतिक प्रभाव स्थापित किया था। जर्मन मनीषी मैक्समुल्लर ने कहा था कि यदि हमें संस्कार की पुरानी से पुरानी पोथी देखनी पड़े तो हमको अश्चेद पढ़ना होगा।

प्रीस के विचार जीवन में दो प्रकार के प्रशाह स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक बुद्धिवादी है। वह नगर राज्यों के

प्रति पुज्य मुखि रखता है और मानव जीवन को ही केन्द्र-वर्ती और महत्त्वशाली मानकर सर्वप्रकार की आध्यात्मिक विचार सरणियों को परित्याग्य समझता है। परन्तु दूसरे प्रशाह में दूसरी प्रकार की मनोवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। प्रशाह गूढ़ और रहस्यमय (Mystic) है। तपोमय स्वाधु जीवन और अपरिमह के प्रति यह अपना मस्तक झुकाना है। इस धुनि का प्रेरक कौन है? निःसन्देह भारतवर्ष की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विचार सरणियों ने ही इन रहस्यवादी ग्रीक तत्त्वज्ञानियों को प्रभावित किया था। ईसाई संमदाय पर भी भारतीय संस्कृति ने अपनी ऐसी ही छाप डाली है। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध और ईसासाई के आदेशों में—जो समानमुद्र हैं—उनका स्पष्टोत्तर अं। इसी में से प्राप्त होता है। उसके बाद मध्ययुग में भी भारत ने अपना संस्कार-प्रभाव पश्चिम पर स्थापित किया है।

वास्को-डि-गामा ने भारत में आकर साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को अनुकूलनार्थ प्रदान की। उसके बाद भी संस्कार विनिमय की प्रवृत्ति चालू रही है और भारतभूमि में रामायण, गीता, शाकुन्तल और उपनिषदों द्वारा पश्चिम को सुभङ्कर संस्कार प्रदान किये हैं। जर्मन विचारकों की विचार क्रान्ति को निहागे, उद्यार्थ-रसल आदि आयरिश मंचाधियों की प्रवृत्तियों का अवलोकन करो। किसी भी प्रकार के प्रचार अथवा धूमधाम के बिना भारतीय संस्कार संस्था ने बाहर के जगत् को आधुर्गणित किया है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि हम लोग सर्व प्रशाह से समान हैं और हमको अश् कुछ करना नहीं रह गया है। मैं पहिने ही कह चुका हूँ कि संस्कार के आह्वान को स्वीकार किये बिना कोई सहृदयि प्रीयित नहीं रह सकती। जगत् के वर्तमान परिचलों ने हमारी संस्कृति के प्रति आह्वान (चैनेज) दिया है। हमको यह सिद्ध कर दिखाना है कि हमारी संस्कृति निरुत्तल नहीं हुई है। इसके लिए हमें जगत् के सुभङ्कर परिचलों को आत्मसात् करना होगा। परदेशी परिचलों का विरोध करने मात्र से काम नहीं चलेगा। हमें उनकी अश्ली संस्कृति में एकलस बनाकर समाधिष करना होगा। हमारी संस्कृति का इससे विजय ही होगा क्योंकि हमारी संस्कृति स्वयं पर्याप्त है—स्ववीर्य-गुप्त है।

अनुवादक—रंजनेश विद्याजीकार

## रामेश्वरी देवी नेहरू का भाषण

[ 'गुरुकुल' के गत अंक द्वारा पाठकों को यह विदित हो चुका है कि श्री. आ. हरिजन सेवा संघ की प्रधान भी मनी रामेश्वरी देवी नेहरू गुरुकुल में सचारी थीं। गुरुकुल की एक सार्वजनिक सभा में उन्होंने जो भाषण दिया उसे हम पाठकों की जानकारी के लिए नीचे प्रकाशित करते हैं।

—सं० ]

"माएइने में स्वामी भद्रानन्द जी से तुमना था कि मलचारियों ने और मारा है तमी से इस संस्था को देवने की हत्या थी। मेरी यह हत्या असे के बाद आज पूरी हुई है।

साधारणतया ऐसा समझा जाता रहा है कि गुरुकुल प्राचीनता का प्रेमी है और यह प्राचीन युग को साधना परन्तु प्राचीन युग पूरे तौर पर नहीं लाया जा सकता, उसमें अन्धेरे के साथ बुरे पहलू भी थे। तब से अब तक कित्तियाँ भी बहुत बदल गये हैं अतः प्राचीन युग सर्वथा में नहीं लाया जा सकता। मैंने विचस भर के अपने गुरुकुल निरीक्षण में देखा है कि आपने बिजली का उपयोग किया है, उनसे पानी निकाला है, मशीनें चलते हैं। हल्वनास में आपायेज के लिए पाश्चात्य बिकिसा-शास्त्र का उपयोग करते हैं, पाश्चात्य विद्यार्थी का अध्यापन करते हैं। इस प्रकार आपने प्राचीन और आधुनिक का सुन्दर समन्वय किया है।

आप सब बादी पहनते हैं, सादा जीवन बिताते हैं यह उचकतु ही है। गरीब देश में अमीराना ठाढ़-बाढ़ अच्छा नहीं लगता, इसने विषमता पैदा होती है, साथ ही अमीरी जीवन ने विज्ञासिता भी आती है। सभी सेवा का कार्य भी अमीरों में नहीं हो सकता। खादों और प्रायोगियों से ही अहिंसा चल सकती है। मिलों से प्रारम्भ से ही बकारी पैदा होनी रही है। व्यावसायिक कान्ति के प्रारम्भिक दिनों में सभी कारीगर बेकार हुए। मिलों के कारण ही साम्राज्य-वाद बढ़ता है जिसका अन्त युद्धों में होता है। गत महायुद्ध साम्राज्यों के बाज़रों के लिए कड़ा गया था तथा उसके अन्त में हुई बावर्षि की सन्धि में वर्तमान युद्ध की अड़ अमार्ग; युद्धों में दोनों ही पक्षों में विकटेर-शय और अहिंसा का अन्त किया जा रहा है। मिलों के साथ हिंसा युद्धों हुई हैं यह बात स्पष्ट है। रूस में सार्वजनिक सञ्चालन में मिल व्यवसायों को चलाने का विचार है पर वहाँ पर भी हिंसा का पूरा अंशला किया है और उसे अपनाया गया है। त.तानगर म और मेशु की सोने की शान आदि में बिना आधुनी के मैशीनरी जिनो, यंत्रों, और देवों की तरह कार्य कर रही है। अहिंसा की सन्धि से बादी और प्रायोगियों का प्रकार हो आसपक है। अहिंसा को ध्यान में रखने हुए ही उपयोगी पत्र भी अपनाए जा सकते हैं।

आर्यसमाज में हरिजनो के प्रश्न को बेड़ना ठीक नहीं। सा० ध्यानम्, भद्रानन्द, सा० साजपल राय जैसे आर्य-समाजी ही हरिजन सेवा के मुख्य कार्यकर्ता रहे हैं। मैं इतना ही कहना चाहती हूँ कि जब तुम लोग स्वानक

बनकर जाओ तो सन तनी भाएयों को भी हरिजन सेवा के लिए दे रखा करो।

सब से अन्त में मैं जिस पर बल देना चाहती हूँ वह यह है कि हिंसा को बुरे हुए खिडिगिन (विपश्यण) का पालन करो। तुम शिक्षा करो, स्काइड बनो, समय पालन पर बल दो, तुम्हारे सब व्यवहारों में सेवा की भावना के साथ २ दैलिक निष्कण्य हो, इसमें तुम्हारे कर्मों में सृष्टा आयोगों तथा विचारों में बल आयेगा।

अन्त में—तुम सब ने शान्ति पूर्वक मेरा भाषण सुना है कल के लिए धन्यवाद करती हूँ।"

## स्वतन्त्रता

( से० श्री पं० विद्यानन्द जी देशकक्षार )

आज कल वर्तमान भारत में हमारे पुरय आदर्शपीय महात्मा गांधी जी के विचारों का बहुत प्रभाव है। आज स्वतन्त्रता शब्द का माद चारों ओर सुगर्भ दे रहा है। जो आर्यसमाजों अपने संस्था का राजकीय से सम्बन्ध नहीं मानने थे वे भी आज राज्या-सना स्थापित कर रहे हैं। कांग्रेस की ओर कुत्ते आर्यसमाजी "राष्ट्रवादी दयानन्द" के समान पुस्तकें लिख रहे हैं। मीलमीमीताना आज देश से सम्बन्धित मामलों को धार्मिक ज्ञान पहना रहे हैं। दाढ़ी, कपड़े, भाषा, सन्ध्या एवं संस्कृति का देश से सम्बन्ध है। धर्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। किन्तु तो भी इन बातों का सम्बन्ध इस्लाम से समझा जा रहा है। यहाँ की सन्ध्या, संस्कृति, धर्म एवं साहित्य की निन्दा करने वाला देसाई, जो नाम, देशपूजा, ज.वा. सन्ध्या एवं देश की संस्कृति भी धर्म के साथ झोंक चुका था, आज राष्ट्रियता के भावों की घोषणा कर रहा है। समूह जय कर जैसे सरकारपरलत लोग देश की स्वतन्त्रता के लिए व्याकुल दिखाने देते हैं। देश की आजादी में अटकने वाले रोगों को हूट कर हुम्बर राजपथ बना देना चाहते हैं। इनकी प्यारी स्वतन्त्रता लालों लालों बलिदानों तथा योगों के ब द अथभी हम से दूर है, यह भावना मनी स्वतन्त्रता प्रेरियों में दिखाने देती है। मैं तो इसका एक ही उत्तर दूँगा, वह यह है कि हम प्राचीन संस्कृति से दूर हो गए हैं। अन्यथा हम जिस प्राचीन संस्कृति के इस मनोहर शब्द को बार ५ चिह्नते हैं, उमें हम कुछ समझने भी। स्वतन्त्रता शब्द के अर्थ में प्राचीन संस्कृति ने इस शब्द का इतिहास, विकास एवं भाव व्यक्त कर दिया है। स्वयं-सचर्म, स्वगन्धता आदि शब्द जिस संस्कृति ने प्रदान किये हैं—वह अन्न रहेगी। हमारे अरोसे नहीं, किन्तु निय सत्य का परेबायक होने की वजह से, वैधानिक व साह्यन्यिक या वैदिक सत्य होने की वजह से। हमारी आत्मा को गांधीजी मन्त्र का उपदेश करने वाली संस्कृति "हमें आत्मा अरे प्रकृत्यः श्रोतयो मिविध्यासि-नव्यः" भयवा. "तया द्रवः स्वकपे अमर्यादम्" तिवांश, मोक्ष या अमन्यता का माद गुं जाती हुई अपने

अन्तिम उद्देश्य तक पहुँचाता है। स्वतन्त्रता प्रेमी स्वतन्त्रता को अपने से बाहर समझता है। जिस सच्चाईयों को, "नियमों को चलावे का हक मैं पाना चाहता हूँ। उन को ठीक या सख क्यों मानता हूँ? उत्तर एक ही होगा-अपने दिन या आत्मता में जँचने के कारण। इस प्रकार (स्व = आत्मा, सत्त्व = राज्य) आत्मा की इच्छा की प्रवृत्तता ही स्वतन्त्रता का मूल है। यही गांधीजी मन्त्र लिखता था। "स्वप्न में निषनेधेयः" भी यही वाक्य पढ़ाना है। अर्जुन या कृष्ण ने इस स्वतन्त्रता के लिये ही युद्ध किया। बर्हिग्राहक, गेरीवाली मैनिंग, की तरह भारतीय अथवातों ने भी यही स्वतन्त्रता का नाद लिखाया था। मुकराम को विषयान ईसा की दुली, मुहम्मद की हिजरत, नेग-बहादुर का शीश वान इसी स्वतन्त्रता के लिये होने वाले अमर युद्धों की पद है। राम की विजय, राजा के वेंतन भोगी सैनिक राक्षसों पर, एक उद्देश्य लेकर लड़ने वाले वानरों की विजय का दृश्य है। मैपोलियन की विजय राज्यकान्ति में उत्पन्न जोश में अरे क्रांतिसिधियों की धीरता का परिष्कार, और हार, जोश की अग्रह मैपोलियन को समझने का परिष्कार है। किसी जाति का नेता पानी में बहने लड़ू के समान धारा की दिशा बनाता है। सच ई तो यही है। "ईश्वरः सर्वं सृजानां हृद्देशे अर्जुननिष्ठित इमियन् सर्वभूतानि यन्नाकडाति मायया ॥ वह सत्य (ईश्वर) अपने प्रेम में सदा मनुष्य समाज को बाँध कर कान्ति और स्वतन्त्रता को जन्म दिया करता है। इन्की को वेद ईश्वर, कोई कर्म-य दृष्टि, कोई स्वतन्त्रता समझ कर अपना रास्ता निश्चित करने हैं। अपने Councils या इलाकामा की आवाज को नहीं टुक-गता तभी धर्मात्मा, स्वतन्त्रता प्रेमी, कर्षण्य-परायण बन रह सकता है। सूर्य के प्रतिबिम्ब को भिन्न २ नदियों में देख कर या स्वतन्त्रता, बर्तव्यपरायणता या धर्म का भेद देकर उस एकता का बिचार सुनाता नहीं चाहिए। आज धार्मिक क्षेत्र की सेवा या राष्ट्रीय क्षेत्र की सेवा में कई भेद समझने हैं। "राष्ट्रवासी द्यागम्ब" पुस्तक पढ़ कर इस मौजूद धर्म की साफ़ी हूँकने की जरूरत नहीं रह जाती है। एक कर एक आर्यसमाज को गांधीवादी बंधक दे रहे सेवा में मरने की इलाह देते हैं। इस से भी स्पष्ट होता है, कि वे आर्यसमाज तथा कांग्रेस को भिन्न पथ पर न समझ कर विरोधी पथ पर समझ रहे हैं।

काहा है, कि, मेरातक लोगों को इस धर्म से जुड़ा देगा। स्वामी दयनन्द जी की गद्दु भक्ति जिस हद तक आर्यसमाजियों को अपनी नीचाहिये थी। अपनी तक वे उससे दूर हैं। स्वामी जी ने स्वतन्त्रता 'अनुपु' की-कान्त बन बाँज' धार्मिक जागृति को समझा था। उसमें वैयक्तिक कृत्य पथ सामाजिक कुरीति का ही निरन्तर नहीं होता किन्तु राष्ट्रीय उन्नति में मौजूद दावायें भी विकस हो जाती हैं। अपने जति अगुओं को क.यस रखने वाले कभी भी पार्थकस्तान का उत्तर नहीं दे सकते। हिन्दुसमाज का प्रचार मुस्लिम शीम का समर्थक

है, न कि विरोधी। उसी प्रकार मुस्लिम शीम का प्रचार हिन्दुसमाज का समर्थक है, न कि विरोधी। गांधी का अजाब गांधी ने देने वाले युद्ध के समान गलती है। इसी प्रकार आर्यसमाजियों में कुछ हिन्दुसमाजवादी हैं, कुछ गांधी या काँग्रसवादी। ये दोनों आर्यसमाज के सत्य को बिना समझे बुझे बिगाड़ रहे हैं। हिन्दुसमाज वाले आर्यसमाज को हिन्दुओं का दख बनाने में सहायक बनाना चाहते हैं। परन्तु आर्यसमाज हिन्दुओं में सत्य प्रचार द्वारा जागृति चाहता है। वैयक्तिक एवं सामाजिक इच्छाओं से स्वतन्त्रता दिलाता चाहता है। कपिलो आर्यसमाज के प्रचार में राष्ट्रीयता नहीं देखते। उनको गांधी जी की तरह स्वतन्त्रता के लिये उकट प्रेम पैदा होने पर 'हरिजन आश्रम' की आवश्यकता प्रतीत होगी या समाजवादी-यो की तरह गरीबों और धमीरी सत्य (ईश्वर) के विरुद्ध दिखाई देगी।

आर्य शब्द का अर्थ उन्नति शील अर्थात् अपनी गलती को समझने वाला। "यतोऽयुध निर्धोयस सिद्धिः सधर्मः" इस धर्म को मानने वाला है। उन्नति करे-तो, किस विर. में? उत्तर है-कविद्या-गरीबी (अभाव) या परतन्त्रता (अप्राय) का विनाश या विषय आदि की स्थापना। इन में से किसी एक भी सामाजिक आवश्यकता को पूरा करने वाला आर्य कहता है। सहायता करने वाला अनार्य तथा विरोधी वश्य नाम वाला होता है अर्थात् कांग्रेस, अर्थ समाज, समाजवाद मीनों को इस आर्यत्व की माला में देख कर में तो आर्य समाज को अपने सिद्धांतों की विजय के साथ सफल होने देलता है। इन में कोई संस्था न तो, पुरानी सच्चाई पर जोर दे रही है न नयी पर। किन्तु नित्य सच्चाई (ईश्वरीय नियम) या स्वतन्त्रता पर जोर दे रही है। यह धर्म जकर है, कि, कोई सच्चाई को पुगना समझता है, कोई नवीन। यह सच्चाईयाँ किसी देश की भी नहीं। तो भी कोई भारतीय प्रचीन सत्य, कोई भारतीय नवीन- (गांधी) सत्य, कोई भारतीय, कोई इस प्रकार कथनीर समझ के अनुसर मानने चलते हैं। किन्तु स्वतन्त्रता अपनी आत्मा के अनुकूल सच्चाइयों को साथ-मानने के सिवाय किसी दूसरी वस्तु का नाम नहीं है। अतः आत्मा में जिस सत्य का दर्शन होता है, उसे आर्य ईश्वर, धर्म, गांधीवाद-समाजवाद कुछ भी नाम दें। यह स्वतन्त्रता को एक क्लृपा होगी। इस स्वतन्त्रता को अपने से दूर हूँकने की जरूरत नहीं। यह आपके दिल में मौजूद है। इसकी दवाता आत्म ह या है। इसी को 'वश्य क्षाया अर्धत् वश्य द्युः' इस वाक्य द्वारा वेद ने साफ किया है।



की आज्ञाबली की बड़ी से बड़ी कल्पना निरसर्वेह बच्चों को ली कल्पना मालूम होगी।

(C)

गुरुकुल के एक उपाध्याय एम्बु के साथ एक दिन सायंकाल मैं घूमने जा रहा था। उनका एक छोटा बालक भी उनके साथ था। इतने में रेल के नहर के पुल पर से गुज़रने की आवाज़ आई। बालक ने चौंका कर कहा कि रेल आ रही है। अगले ही क्षण जब रेल की वह आवाज़ और बड़ी तो वह बिलकुल डर गया, यह समझ रहा था कि रेल उसके ऊपर आ जायेगी और वह कुचला जायेगा। मुस्किल से उसको आश्वासन दिया और उसे गोद में उठाकर सुरक्षित और शान्त किया।

यह ठीक है कि उसका भय बिल्कुल निराधार था। रेल का गुरुकुल की मड़क पर आ सकना असम्भव था। पर क्या ऐसे ही निराधार और ओ सम्भव भी नहीं हो सकते, ऐसे भयों से हम दिन रात आक्रान्त नहीं रहते हैं? निरसर्वेह हम जो नाम विध भय और आशंकाएँ दिन रात सताती रहती हैं उनमें से कम से कम तीन चौधवाँ तो बिल्कुल ही निराधार होती हैं। बहुत सी बीमारियाँ और अप्रतियों को तो हम असल में केवल अपने भय के कारण ही अपने ऊपर ले आते हैं जैसे उन में कुछ भी नहीं होता। सच तो यह है कि 'परमेश्वर' के इस जगत् में कोई पर कोई भी कुछ भी भय का कारण नहीं है। जगत्माता का सर्वत्रक और प्रेम करने वाला हाथ सब जगह सर्वकाल विद्यमान है। पर हम फिर भी अज्ञान-वश हमेशा डरते रहते हैं। एवं भय की दृष्टि से भी हम सब बालक ही हैं। भेद इतना ही है कि बचपन में भय और प्रकाश के होते हैं और बड़े हो जाने पर ये कुछ दूसरे प्रकार के हो जाते हैं। पर जैसे ४ वर्ष का बच्चा योही भयभीत होता और रोता है वैसे ही हम भा निष्कारण डरते और रोते चिड़ाने हैं।

(E)

आज जो तुमियाँ में बड़ी भयंकर सर्व-विध्वंसी लड़ाई चल रही है उसमें क्या बचपन या बच्चों की ली नादानी नहीं है? जैसे दो बच्चे पाठशाळा के समय, भोजन के समय या बगैचे का काम करने समय लड़ पड़ते हैं कि तूने मेरे लिये थोड़ी जगह छोड़ी है, तूने मेरी जगह लें तो है या मेरा तो जगह-बहाई तक है; जैसे ही आजकल अपने अपने उपनिवेशों की यह लड़ाई है। और जब उन दोनों बालकों में बाल नीत की लड़ाई में काम नहीं चलना और गुस्सा बढ़ जाता है तो वे जैसे तुरन्त मिड़ जाते हैं और गुण्य-गुण्य हो जाते हैं और जो भी बाज़ सामने आ जाती है उसी से लड़ने लगते हैं थाली, कटोरा, तलसी, कलम की नोक, हाथ के नाखून आदि हर एक चीज़ का उपयोग हथियार के तौर पर ही होने लगता है वैसे ही आज तुमियाँ के इन लड़ाकू राष्ट्रों में हो रहा है। राष्ट्र की हर एक वस्तु को आज इसी दृष्टि से देखा जा रहा है कि उसका उपयोग मनुष्यों का धान करने में कैसे हो सकता है। वस्तुएँ तो अन्य उच्च

उपयोग के लिए मनुष्य की नाना प्रकार की सेवा में आने के लिये रची गई हैं। बाज़ू की धार का उपयोग घिसल बनाना, कागज़ काटना, कल तराशना आदि बहुत से होते हैं परन्तु जब क्रोध आता है तब उसका उपयोग माने हुये अपने दुश्मन की हत्या कर सकना ही एक रह जाता है। ऐसे ऐसे भयंकर—आभयंजनक रूप से भयंकर काम करते हुये भी हम बचपन से ऊपर कहाँ उठे हैं?

10

बाल लीलाओं के बर्षान तो मैं और भी बहुत से सुना सकता हूँ। पर वे हमारी आँसू बोलने वाले हो सके—हमें हमारा बच्चापन अनुभव करा सके, इसके लिये तो ये बर्षान ही काफी है। सब दुराई तो यही है कि हम ज्ञान की दृष्ट से बच्चे हैं बिल्कुल अज्ञानी हैं पर फिर भी हम अपने को बच्चा समझते नहीं हैं। बच्चों की अच्छाई यही होती है कि वे अपने को बच्चा समझते हैं, स्वभावतः अपने माता पिता की शरण में जाने को तैयार रहते हैं और इस लिये रक्षा को प्राप्त करते रहते हैं। पर हम बड़े होकर बालकपन की सब अच्छाइयों को तो छोड़ ही देते हैं, बालक में जो कोमलता होती है, नई वस्तुओं के साथ प्रकृता पाने के लिये जो लचक होती है, बेग में बढ़ने का जो शक्ति होती है, सरलता और निर्वेयता होती है, मोला भालापन होता है, वह सब तो हम छोड़ देते हैं और कटोर, ल लचकने वाले, आगतिशील, चालाक और कपटी बन जाते हैं। पर ज्ञान की दृष्टि से भी हम उन्नत नहीं होते, बड़े होकर अज्ञान का कुछ प्रकार भेद देशक हो जाता है पर तत्पश्चात् हम तब भी बालक जैसे ही अज्ञानी बने रहते हैं। इसी लिये हम इस जगत् के अपने असली माता पिता को नहीं प्राप्त कर पाते, और उनकी कल्याणमयी रक्षा से सना बचित रहने हैं।

(11)

यदि हम बच्चे हैं ही तो क्यों न हम अपने को बच्चा ही समझें, बच्चों जैसा ही व्यवहार करें। क्योंकि हम बच्चे बनेंगे तभी हमारी जगत्यापिनी और सर्वशक्तिमती माता हमें पहिचानेगी, अपनायेगी, और पुत्र करके स्वीकार करेगी।

मुझे तो अपने को बच्चा अनुभव करना, बच्चा कहलाना, बच्चा बनना और बच्चा रहना प्रिय है, बहुत ही प्रिय है। जब कोई दुश्मने पूछना है कि 'तुम कौन हो' तो इसका जो उत्तर मेरे अन्तर से निकलता है वह तो यही होता है कि 'मैं माता का पुत्र हूँ, बच्चा हूँ'। इसमें तो कुछ सर्वेह है ही नहीं कि यदि किसी की अभीप्सा, इच्छा और प्रयत्न यह हो कि वह 'माता का सच्चा पुत्र बने' तो वह केवल इस साधना से ही बहाई पहुँच सकता है जहाँ किसी बड़ी से बड़ी साधना द्वारा मनुष्य पहुँचता है।



इस शोक ने वातादि विधत्तु तथा रसादि सात वायुकी को जिस विषमता को विकार का कारण माना है और जिस का मूल वेद में है इस विषमता के उत्पादक विश्व ही होते हैं। उच्च को प्राप्त हुआ सूर्य अपने किरणों से उस विश्व को दूर करता है और साथ ही शालु शुद्ध वायु को लेवन पर ज़ोर देता है। 'आयुर्वेद' का कहना है—'डायामी वातो यतः प्रःस्निधोरापरायतः स्यं न रूप्य आनातु परोऽप्यो वातुयद्रपः' आदि पद स्पष्ट ही वायु चिकित्सा का विवरण कर रहे हैं परन्तु इन सब चिकित्साओं की अविद्या आत्मिक बल और मन की इच्छा शोक से होने वाली चिकित्सा अधिक महत्वपूर्ण है। 'यजुर्वेद' की 'पञ्चामृतोः आर्द्रं मन्त्रो मे मन की प्रशस्त शक्ति का वर्णन मिलता है। हिन्दोद्विभ के द्वारा मानसिक शक्ति को प्रयुक्त तथा प्रवृत्त करने को चिकित्सा की जाती है उसका बीज 'आयुर्वेद' के 'हस्तायंदिशाशास्त्राभ्यां' सिद्धांतः पुणेगवि ताभ्यां त्वोपस्थाशामसि' इस मन्त्र में स्पष्ट मिलता है।

इन सब चिकित्सा पद्धतियों के साथ साथ वेद में शिल्पसंज्ञ (सर्जरी) के आचारभूत सिद्धान्त भी विस्तार देते हैं। यजुःशास्त्र के पशु संरक्षण के प्रकरण पर दृष्टि डालिये। इसमें आगे हुए शब्दों से बाह्य और आन्तरिक अवयवों का वृक्षकवृक्ष संख्यान किया है तथा उसी लिस्ट में बसा और घषा में भेद दिखाकर सर्जरी की ओर हमारी प्रवृत्ति पैदा की गई है। इसी प्रकार आयुर्वेद में शरीर सिद्धान्त किमियोसकी संरक्षणी श्रद्धा भी देखिये 'यः शर्तं धमनयोऽङ्गुष्ठं प्रयुः शिथिलः तासां ते सर्वासां वयं निविशामसि' अर्थात् मनुष्य के शरीर में सँकड़ों मल नाशिये ही जिन को शरीर में स्थिरता है।

अब वेद में कहीं हुई 'आयुर्वेद' सम्बन्धी शोधियों को भी देखिये—

अथर्व वेद के छठे काण्ड के १०८ वें सूक्त में आयुर्वेद की अद्भुत शोधियों 'पिप्पली' का वर्णन 'पिप्पली क्षान्मेघजीउतामि वःमेघजी' आदि में इस प्रकार बताया है कि यह औषधि क्षिप्त-अर्थात् पाण्डु और क्षान्तिकल रोगों से पीड़ित व्यक्तिके कलिर अति हिनकर है। वेने तो यह अकेली ही सङ्पूर्ण आरोग्य के लिये पर्याप्त है। इसी प्रकार इसी वेद के प्रथम काण्ड के २३ वें सूक्त में 'प्यामा' शोधियों के विषय में कहा है कि इसके तथा 'असिकनी' शब्द के उपयोग से (कोल.स) और 'वे' चिन्दु (पलित) दीक होकर लवचा का रंग पूर्ववत् हो जाता है।

अथर्व वेद के ७ औं काण्ड के १७ वें सूक्त में 'अगामा' को सुधा मार और तुषा मार बनाने हुए वेद ने इने अन्वेषकता सम्बन्धी रोगों का नाशक भी बताया है।

अथर्ववेद छठे काण्ड के १३६-१३७ वें सूक्त में 'निसनी' नामक शोधियों को केण्डो को बढ़ाने, कासा करने और दृढ़ करने वाला बताया है जो कि क.चम.वी फूल औकनी और अंगारे का गुण है।

(शोध अग्रने अङ्क में)

## गुरुकुल समाचार

**आतु**—इस समाह गर्मी पर्याप्त रही, पश्चिम की ओर से आने वाली गर्म हवाओं ने इस सन्ध्या को और भी अधिक बढ़ा दिया। दो दिन सार्यकाल हल्की आंध्रियों भी आईं। इस ऋतु में हुई गर्मी को देख कर अनुमान किया जाता है कि अत्र शीघ्र ही वर्षा होगी।

महाविद्यालय के ऋद्धचारियों का एक बड़ा दल तैरी-प्रतियोगिता के लिये प्रति दिन २ घंटा गङ्गा में तैर कर अपने अभ्यास को बढ़ा रहा है।

**तैरी सान्मुख्य**—गुरुकुल विरविद्यालय कांगड़ी में इस वर्ष विशेष तैरी के साथ तैरी-प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है। विजेताओं को पुरस्कार देने के लिए नहर-विभाग नरुकी के एजिकटिव इंजिनियर श्रीवृष प. नोबनराय जी पधार रहे हैं। आशा की जाती है कि प्रतियोगिता को देखने के लिये स्थानीय मंस्थाओं के अतिरिक्त, पंचपुरी की जनता, अमावांश और मठों के माधु-महन्त तथा सरकारी विभागों के अकसर एक बड़ी संख्या में एकत्र होंगे। यह सान्मुख्य ४ जून बुधवार के दिन सार्यकाल ४। बजे होगा। लन्वी तैरी के लिए सब तैराक मायापुर के पुल से लूटेंगे और २। मील तैर कर गुरुकुल घाट पर संघमथम पहुँचने का प्रयत्न करेंगे। मिर्द तैरी, हुबकी, कच्छप-तैरी, छलंग, पैराशूट आदि की प्रतियोगिताएं भी गुरुकुल-घाट पर ही होंगी। विजेताओं को पुरस्कार नरुद रूपों और मैडल के रूप में दिए जायेंगे।

**हमारे मान्य अतिथि**—गुरुकुल के सुयोग्य-स्तानक श्री पं सत्यदेव जो विद्यालंकार सम्पादक 'हिन्दु-स्तान' (दिल्ली) गत २५ मई, १/वार के दिन गुरुकुल पधारें। आपने बड़े मनोरोग पूर्वक गुरुकुल की प्रत्येक प्रगति का निरीक्षण किया। गुरुकुल के वायुमण्डल में चारों ओर नजर आने लगे असाद और क्रियाशीलता के लिए अपने ऋद्ध-चारियों और अधिकारियों की मराहना की और संस्था की न्यूनताओं की ओर संकेत करते हुए उन्हें दूर करने का उपाय भी बताया। महाविद्यालय के ऋद्धचारियों की सभा में आपने बड़े मनोरजक ढंग से राजनीति, धर्म, समाज आदि विषयों पर, वर्नालाप के तौर पर प्रकाश डाला। इस प्रकार गुरुकुल आधियों के हृदयों में चिरकाल के लिए स्नेह-संबन्ध स्थापित कर रात्रि की गाड़ी से आप विदा हुए।

## स्वास्थ्य समाचार

अवगाङ्गार ११ श्रेणी मलेरिया उबर, महावीर ४ श्रेणी मलेरिया उबर, मदनगोपाल ५ श्रेणी रुद्धमउबर, इन्द्रदेव १ श्रेणी रुद्धमउबर, सत्यकेतु १ श्रेणी ऋद्ध-कास, हरिमोहन १ श्रेणी ऋद्ध-कास।

उपरोक्त ४० गत समाह रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

## गर्मियों में सेवन कीजिए; गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

यह स्वादिष्ट उत्तम रसायन है। फेफड़ों की कमजोरी घातु क्षीणता पुरानी खांसी, हृदय की घड़कन आदि रोगों में विशेष लाभदायक है। अच्छे बूढ़े जवान स्त्रो व पुरुष सब शीक से इसका सेवन कर सकते हैं। मूल्य १ पाव १०) आध सेर २०) १ सेर ४)

### सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य औषधियाँ से तैयार की गई ये गोलियां सब प्रकार की कमजोरियों में अक्सीर हैं। वीर्य और धातु को पुष्ट करती हैं।

मूल्य २०) तोला

### चन्द्रप्रभा

इसमें शिलाजंत और लोह भस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ॥) तोला

### सत शिलाजीत

सब प्रकार के प्रमेह और वीर्य दोषों की अत्युत्तम औषधि।

मूल्य ॥) तोला

### धोखे से बचिए

कुछ लोग गुरुकुल के नाम से अपनी औषधियां बेच रहे हैं। इसलिए दवा खरोदते समय हर पैकिंग पर गुरुकुल कांगड़ी का नाम अवश्य देख लिया करें।

प्रांच	}	देहली—चांदनी चौक।
		मेरठ—मिथर रोड।
गर्मियों	}	लखनऊ—गजेंसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी श्रीगम रोड।
		लाहौर— " " " " हयवात रोड।
		पटना— " " " " मधुआटोली बिकीपुर।
		अजमेर— " " " " वैद्यराज सरदारील ल जी कृष्ण चौक

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी जिला सहारनपुर**



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख्य-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदाङ्ककार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कांगड़ी, शुकवार २४ जेष्ठ १९६८, ६ जून १९४१

[ संख्या ६ ]

## यज्ञ का व्यावहारिक स्वरूप

[ लेखक—श्री० भारतेन्दु वेदाङ्ककार ]

महयज्ञाः प्रजाः सृष्टुं वा पुरोवाच प्रजापतिः ।

अनेन प्रसवित्वन्धम, एव योऽस्तिष्यकामयुक् ॥

“प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि के शुरु म यज्ञ के साथ प्रजाओं को उत्पन्न करने कहा, इस यज्ञ के द्वारा अपने कार्यों को सम्पन्न करो, यह तुम्हारे किये अभीष्ट वस्तु को प्राप्त कराने वाला हो ।” ( गीता अ० ३, श्लो० १० )

सबसे प्राथमिक का यही अन्तिम इच्छा और उद्देश्य होता है कि मैंने सब काम सफल होवें, अभीष्ट वस्तु को प्राप्ति हो और इस प्रकार मुझे सुख और शान्ति मिले । हमारे सब तरह के दुःख दूर हो जायें और सब तरह से सुख हो सुख मिले, यही हमारा वास्तविक उद्देश्य होना चाहिये । भारतीय दर्शन एवं धर्म शास्त्र सभी एक स्वर से बुझाई देते हैं । इन सब का सार यही है, ‘दुःखनिवृत्ति’ या ‘मोक्ष’ । उपरोक्त श्लोक में इस अर्थात् ‘मोक्ष’ का अर्थ वास्तविक यो अर्थों में कहा गया है, और वह नहीं ‘यज्ञ’ । वास्तव में देखा जाय तो यह ‘यज्ञ’ ही हमारी संस्कृति का प्राण आध्यात्म है । यदि यह ‘यज्ञ’ इस महान् संस्कृति में से बाड़े काग के लिए भी अलग हो जाय, तो हमारी संस्कृति प्राण शून्य ग्वांश्री हो जाती है ।

सृष्टि के महान् यज्ञ के साथ ही विधाता ( परमात्मा ) ने अनेक छोटे २ यज्ञ भी पैदा किए थे । ये छोटे २ यज्ञ ही इस महान् यज्ञ को चला रहे हैं, पूर्ण कर रहे हैं । इसी बात को अध्ववेद के पण्डित ‘वृषी-सूक्त’ में बहुत ही मन्द-दृग् से कहा है, सत्यं वृद्धदन्तमुष्टं यज्ञा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं ध रयति । यहाँ पर पृथिवी ( जगत या राष्ट्र ) को धारण करने वाले सत्य, तप आदि के साथ ‘यज्ञ’ को भी उचित साधन कहा गया है । इस प्रकार यज्ञ महत्त्व-पूर्ण वस्तु है, यह हम सभी भाँति समझ सकते हैं ।

यज्ञ के इस महत्त्व और अनिवार्यता को समझने के लिए यह आवश्यक है कि, हम अपने स्वरूप को ठीक २ समझ लें । यहाँ पर इसके गम्भीर या विशद स्वरूप को न कहकर केवल सामान्य या व्यावहारिक स्वरूप पर ही थोड़ा सा विचार करना उपयुक्त है । हमारे दैनिक नियम-प्रति के व्यवहार और जीवन में हमका क्या सम्बन्ध है ?

इसमें हमारे दुःख किस प्रकार दूर हो सकते हैं ? और फिर सबको शान्ति या सुख कैसे मिल सकता है; इन पर संश्लिप्त प्रकाश डाल कर इसके सामान्य स्वरूप को जान सकते हैं ।

जैसे कि ऊपर कहा गया है, परमात्मा ने यज्ञ के साथ प्रजाओं को उत्पन्न किया था । हरेक स्तर और अक्षर, स्थावर जंगम पदार्थ परमात्मा के इस यज्ञ को, अपने कर्तव्य ( duty ) को अदा करने के लिए उत्पन्न हुआ है । इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, तारे वृक्ष, बनस्पति, पशु, पक्षी तथा बुद्धि रखने वाले हम मानवजाती सब के सब अपने निश्चित कर्तव्य को पूर्ण कर रहे हैं और इस प्रकार इस महान् यज्ञ को भी पूर्ण करने में सहायक होते हैं । यज्ञ का साधारण अर्थ है, ‘श्रेष्ठ कर्म’ ( ‘यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म’ ) इस लिए जितने भी श्रेष्ठ कर्म हैं जिससे समाज में या वृद्ध राष्ट्र में सुख, शान्ति एवं व्यवस्था रहनी है और जिस के न रहने से दुःख, अशांति, अव्यवस्था आदि उत्पन्न होते हैं, उन सबको ‘यज्ञ’ कहा जाता है ।

यज्ञ का दूसरा समानार्थक शब्द है ‘हवन’ । साधारण दैनिक हवन को इस लिए ‘दिव यज्ञ’ इस नाम से भी पुकारते हैं । ‘हु = दानादानयोः’ इस धातु से हवन शब्द बनता है । अर्थात् जो दान आदान के साथ या आदान के लिए होता है, वह ‘हवन’ है । यज्ञ में भी ये दो भावनाएँ निहित हैं । यज्ञ में हम देवताओं की पूजा करते हैं दान देते हैं और फिर वे प्रसन्न होकर हमें स्वयमेव प्रतिदान करते हैं । अर्थात् जब हम कुछ देते हैं । तभी कुछ प्रतिफल ले सकते हैं । देवता सब दिव्य श्रेष्ठ गुण वाले पदार्थ को कहते हैं ।

इस लिए जो वस्तु जड़ हो या चेतन हो, दूसरे का उपकार करते हैं, सुख देते हैं वे सब ‘देवता’ हैं । जैसे अग्नि देवता में हवि देने हैं तो वह हमें सूर्य या पर्जन्य देवता के द्वारा पृथिवी और धन, धान्य आदि प्रदान करते हैं इसी प्रकार विशाल समुद्र सूर्य को पानी देता है और उससे होता है, अथवा यूँ कहें, सूर्य समुद्र का पानी तब ही ले सकते हैं, जब वे पहिले देंगे ।

गाय में वृष हम तभी ले सकते हैं, जब उसे कुछ खाने को देंगे या गाय तभी कुछ ले सकती है, जब वह

हमें कुछ देनी है। इसी तरह मे अन्त्य सभी कार्य परस्पर आदान और प्रदान पर निर्भर हैं। परन्तु ये आदान और प्रदान के कार्य उसी अवस्था में 'यज्ञ' नाम से कहे जा सकते हैं, जब वे 'निराकाम भावना' या परोपकार की रीति से किये गये हों। हम निरर्थक प्रति देखते हैं कि सूर्य, चन्द्र, पशु, पक्षी आदि अन्वेषण या काम बुद्धि वाले देवता (पदार्थ) तो बिना किसी प्रतिकूल वा बदले को चाहते हुए नियमित रूप से अपने परमात्मा से निर्दिष्ट यज्ञ या तपन को कर रहे हैं।

परन्तु आज समय के फेर से हम जो अपनी बुद्धि पर गर्व करते हैं, परमात्मा के दिव्य कर्त्तव्य (duty) अथवा 'यज्ञ' को बिलकुल ही भूल गए हैं—आममोंगी हा गए हैं। हम से यह यथोचित भावना इतनी दूर हो गई है कि अब हम इसे देखने में समझने में अपने को बहुत ही असमर्थ पाते हैं। इसलिए इसका परिणाम भी अनुभव कर रहे हैं। हम आज की हवि देना नहीं चाहते, परन्तु बदले में वर्षा, अनाज आदि लेना चाहते हैं।

गो का चारा आदि देना नहीं, और फिर शूद्र वृध और भी को वृद्धना चाहते हैं: मज्जदूर को पूरी मज्जदूर (उचितभाग) के लिए तो हाथ बालना अच्छा नहीं लगता और बदले में अच्छे काम की आशा रखते हैं! इसी तरह अन्त्य दैनिक जीवन में हमारे सभी कार्य ऐसे ही गए हैं कि हम बिना दिए बहुत कुछ देने की इच्छा रखते हैं। हम बुद्धि पर व्यर्थ ही अभिमान करने हैं इतना भी नहीं सोचते कि क्या कोई दूकानदार बिना पैसे दिए कभीष्ट दस्तु देता है? क्या जमीन में गेहें डाले बिना वह माल जायगा? हम करते हैं 'र.ही.' परन्तु फिर भी न जाने बरों ऐसी आशा लगाए रहते हैं।

इसका एक मात्र कारण यही है कि हम स्वाध्याय या अनुभव वृत्ति वाले बन गए हैं। इस प्रकार अदानी अज्ञान होने हुए इन देवताओं से कुछ लेने की इच्छा करने लगे और उध वह नहीं देने हैं (यस्युतः देने में असमर्थ होने हे) तो हमें निराश पक्ष दुःखी होना पड़ता है। यदि इन देवताओं को सम्यक्त्व प्राप्त प्रसन्न नहीं करेंगे तो वे भी हमें प्रसन्न नहीं कर सकते और हम फलन-वृत्ति हीं। लोग वृत्तिले अनावृष्टि, महादारी भूकम्प आदि दिव्य प्रकाश होने पर कह देते हैं कि वह तो परमात्मा की क्रूरता की लीला है इससे हम क्या कर सकते हैं; परन्तु हम अज्ञानांधकार में पड़े नहीं देना कि वह तो हमारा ही अज्ञानभाव स्वाध्याय का (पप का) फल है; इसको तो जरूर चखना ही पड़ेगा।

यदि हम इस पाप के फल को नहीं चखना चाहते हैं, तो वेद के इस मंत्र को नहीं भूलना चाहिए, "माधमशं चिन्दन्तु अप्रवेताः सायं वर्षामि यद्यद् तस्य। नार्यमस्य पुत्रान् तो सन्नायं के यज्ञोभा भवति कदल, दी।"

(जो कदवादी—अकलात्वात—किमी को देता नहीं है वह तो पाप को ही खाता है और फिर उसी प्रकार में भगवान् कृष्ण भी तो हम ही प्रतर्पन करने हैं 'भुज्जने ते ययं पापाः ये

पवन्त्यामकारणात्' (जो अपने लिए पकते हैं वे तो पाप ही खाते हैं)। (गी० अध्याय ३, श्लोक ३३)।

इसलिए यद् हमें पुण्य का, सुख का उपयोग करना अभीष्ट है, तो हम कदवादी या असुर बनना छोड़ देना होगा। परमात्मा की आज्ञा (duty) को अच्छी तरह नभाकर ही हम उस स सामान् बड़े हो सकते हैं। "स्वतं नियोकनुमिदि शक्यमग्रे। विनाश्य रक्ष्यं स्वयमन्तनेन॥" कवि शिरोमणि कालिदास ने यह बहुत ही ठीक कहा है। हमें इस यथोचित भावना को समझने के लिए इन संकुचित निजीय पुस्तकों को आवश्यकता नहीं है। उस अनादि गुरु (परमात्मा) ने हमारे लिए प्रकृति की विशाल और सर्वांग पुस्तक प्रदान की है। यदि हम इसका ठीक ठीक अध्ययन-निरीक्षण करेंगे, तो हम स्वतः ही इस 'यज्ञ' को ठीक ठीक समझ सकेंगे; इस में दुरा भी संशय नहीं है।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने इसी प्रकृति की दिव्य पुस्तक का अध्ययन करके ही 'यज्ञ' के माहात्म्य को क्रियात्मक रूप में समझा था। इसी तरह हम भी इस 'यज्ञ' के स्वरूप और माहात्म्य को समझकर सुख और शांति का भागीदार बनना चाहिए। निःसन्देह 'यज्ञ' ही 'उप कामदुक' का मध्यम है हमें इसकी पूर्णतया रक्षा करनी चाहिए।

## “यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः”

[ श्री स्व० सिवानन्द जी महाराज अर्पिते ]

यह नारी शक्ति ही चैतन्य माया कही जाती है। यह महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती रूप से दुर्गा काला या पार्वती की विभूत है। यही विश्व की 'सृजिता' 'पालिता' और 'हरिता' रूप; सृष्टि, स्थिति और संहार शक्ति है। स्वप्न में यह 'पुरुष' नामधारी 'नर' रूप मनुष्य की सहचरि, सारधाभिणी और जीवनकी चिर-संगिनी भी है। कवियों की उक्ति में इन त्रयी या नार्य शरीर की रचना के लिये सृष्टि रचयिता ब्रह्मणं ऋद्धमा का मुख मण्डल, सांप की बक गति, लताओं की आलिंगन शक्त, वृष (घास) की नमनता, गुलाब की मृदुलता, फूलों की स्निग्धता, पत्थियों की चपलता, मृगशायक (हिरण) की कटालता, रथकरकों की सर्जोचिता, ओस-कणों की तरलता (स्वता), वायु की चञ्चलता, शशक (खट्वा) की भीरुता (कायरता), मयूर की रूप गतिता, नीलकण्ठ के कण्ठ की मुकाम नता, हीरे की कठोर हृदयता, मनुकी मुमूर्शुता, व्याघ्र की निर्दयता, अग्नि की उज्ज्वला, बर्फ (हिमकण) की शीतलता, नदी का बलरयता और (कस्तूर) की कला बुशुलता का ही सार भाग सुरा लिया था। नारी वस्त्र परिवार का शृङ्गार है। वह पुरुष वर्ग को अपने रूप का सुन्दरता, सुमनुर कण्ठ की कलरयता, हृदय की सुदुता, नमता, लज्जता, लावण्यता, मधुरता, प्रीति वा प्रेम की अधरता, प्रलयता और अनन्य सेवा परायणता

के अग्रीव सुन्दर भावों से ओहलती है ! इम सस्तर में मनुष्य जीवन का पूर्ण सौन्दर्य एकमात्र इस नारी वा स्त्री शक्ति में ही केन्द्र रूप से अधिष्ठित है। जाति वा राष्ट्र रूप से मनुष्य जीवन की नेतृत्व करनेवाली शक्ति घोड़े की लगाम के रूप में, पथ प्रदर्शिका रूप से इस 'नारी' वा स्त्री शक्ति में ही है। यही गुण रूप से अपने छोटे से घर की रानी और भगवान से इस विघाट शरीर की भी अधिष्ठात्री देवी है।

अग्नेयी में एक कलावत है कि पुरा ( नर ) 'भूपति' पृथ्वी का नृपति रूप से वा शासन करनेवाला भवामी ( भूदेव ) है और नारी ( स्त्री ) इस भूदेव की भी हृदय-विघ्रात, देवी बनी हुई शूरशक्तिमयी वा स्वशक्तिमयी शिष्ट विद्यार्थिनी 'देवी' है। घर वा संसार में इच्छा ( प्रेरणाशक्ति ) पुरुष की है पर शक्ति, क्रिया वा नेतृत्व शक्ति स्त्री वा नारी की हो है। पाश्चात्य विज्ञान सरथ मनुष्य को जगता है कि इस ( पुरुष जातियाने ) अपनी परशना वा परशना को छोड़ा रखने की पूर्ण चेष्टा किसी भी रूप में की न चरे, पर होम सत्य वा वास्तविकता तो यही है कि शासन की बागडोर नारी वा स्त्री जाति के हाथ में है। सुप्रसिद्ध अग्नेयी महाकवि यज्ञस्यंभे भी लिखा है कि—

“नारी शक्ति की रचना ही इस अग्नेयी सुन्दर रूप में मनुष्य समाज को सुख प्रदान करने तथा अपने नेतृत्व और शासन में रक्तन के लिये दी हुई है। पुरुष चाहे कुछ भी कथे न कहे, पर नय ( वस्तुस्थिति ) यही है कि उनके शासन की बागडोर नारी जाति के ही हाथ में है। उनका शासन प्रियां ही करनी है अर्थात् वे स्वयं नारी ( शक्ति ) के ही घर में हैं।”

नाति शास्त्र में कहा है कि सभी (कुल) धर्मपत्नी यही है जो पति के लिये (संकट के समय) यह कार्य में प्रगो का, संघा के समय दासी का, और सहधर्मिणी रूप से लक्ष्मी का, सुन्दर रूप धारण करती है।

कार्येषु मन्त्रो करणेषु दासी, रूपेषु लक्ष्मी समया धरन्ती।  
भोगेषु जाता रयनेषु रत्ना, सहकर्म नारी कुल धर्मपत्नी॥

महाभारत में भी कहा है कि नारी धर्मपत्नी रूप से पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है क्योंकि सलह देनेवाली विरसखरी अमन्य सभी है। संसार की संतानुषु, रजोगुण और तमोगुण मयी विशुद्धात्मिका (प्रकृति) शक्ति है। सहधर्मिणी के रूप में धर्मपत्नी ही मुक्ति की (नसेनी (सीद्धी) और मोक्ष की मूर्ति है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि अपनी पारिवर्तुदीना स्त्री वा धर्मपत्नी के आशय में पति को धर्मरूप रूप 'यज्ञ' करने का कोई भी अधिकार नहीं है। पत्नी रूप से स्त्री पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है। वह वामाङ्गिनी रूप से सदा अपने पति के साथ ही रहती है, और सहधर्मिणी रूप से अन्महोक्ष आदि सभी पुरुषधर्म और यज्ञादि धार्मिक कृत्यों में उचित सहायता पढ़वाती है। यज्ञ के लिये अग्नि धर्मपत्नी ही ले आती है और यज्ञ में पति के साथ लड़ी होकर, दर्म वा कुशाचार से पति का पशु धर्मपत्नी ही करती है और पति को 'यज्ञकृत्य' पूर्ण करने की अनुमति भी धर्मपत्नी ही देती है।

शुभ संस्कृति, सुन्दर मति और पवित्र बुद्धियाली आत्माकारिणी और मन, वचन, कर्म से पति का अनुग्रहण करने वाली पतिव्रतास्त्री साक्षात् वैकुण्ठ ही है। जहां पति-पत्नी दोनों ही अमन्य और शुद्ध प्रेम से धाम में 'मणि' रूप से गुंथे हुए हैं और अपना दासपत्य जीवन निरप्य धर्म प्रथों के अधरयन, स्वास्थ्य, जप, हविनाम कीर्तन, ईश-स्मरण और ध्यान में ही व्यतीत करने हैं। एकमात्र अपने पति में ही अनुग्रह स्त्री पतिव्रता रूप से इस 'प्रकृति' रूप पुण्य यादिका का दुष्प्राप्य पारिजात पुण्य ही है। घर का दंपक और परिवार वा कुल को अपने समीप्य वा आशय बल के तेज से ही प्रकाशित करने के लिये चमकते हुए 'हीरा' का 'नगीना' है। अपने पति के ही शिरमौर का 'मूकदमणि' है। पतिव्रता स्त्री इ। घर और लक्ष्मी की बढ़ाने वाली साक्षात् 'लक्ष्मी' है। वह घर में निरप्य सुख और आनन्द की उचित करनेवाली स्वर्ग की देवी है। पति का भी यह मूल्य कसंय है कि वह उसकी उचित पूजा को। मनुस्मृति में भगवान मनु की पर आत्मा है कि—

पितृभ्रातृभिर्यतिनाः पतिपितृवैरसत्ता।

पतिव्रता स्मृतितयाश्च बहुकल्याणमिदमुनिः ॥ ३-५५  
केवल विवाह काल में ही नहीं, बल्कि विवाह के उपरान्त भी, पिता, भ्राता, पति, देव आदि अपने आत्म-कल्याण की इच्छा करने वालों को 'स्त्री' की उचित पूजा करनी चाहिये और उसे अलङ्कार आदि से भी विभूषित करना चाहिए—

यत् नार्यस्तु पूजन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यैनास्तु न पूजन्ते सर्वस्तत्राकल किपाः ३-५६  
अर्थात् जिस कुल में नारी ( स्त्रियों ) की पूजा होती है, वहां देवताओं का ही निवास होता है ( देवता खेलने वा रमण करते हैं ) और जहां पूजा नहीं होती वहां सभी किपायें निष्फल हो जाती हैं।

जिस कुल में कन्या, भगिनी स्त्री, पुत्री और पुत्रवत् आदि शोक करती या दुःखी होती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जहां ये दुःख या शोक नहीं करती, वह कुल सदा वृद्धि ही प्राप्त होता है।

जिस कुल की भगिनी, पत्नी, पुत्रवत् आदि उचित पूजा या सम्मान न पकर, दुःखित चित्त से श्राप देती हैं वह ( नःकाव नारा को ही प्राप्त करा देने वाले ) कृत्यों द्वारा आहत व प्रनाशित होकर 'सर्वनाश' को प्राप्त होता है।

अनप्य विभूति या समृद्धि की चाह करने वाली का मुख्य कर्तव्य है कि वे यज्ञोपवीत, विवाह, यज्ञ, उत्सव आदि कार्यों के शुभ अवसरों पर भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से इनका उचित पूजन (सर्कार) सदा ही करते रहें। जिस कुल में भर्ता (पति) भार्या (पत्नी) से ही समुद्र रहता है अर्थात् एकपत्नी-भ्रन का पालन करता हुआ 'परनागी' की ओर देवता भी नहीं और जहां भार्या पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई एकमात्र अपने पति से ही समुद्र और नृत रहती है, वहां "कल्याण" (अभ्युदय निःश्रेयस और सिद्धि) निश्चित रूप से ही अपना 'घर' बना लेती है। इसी प्रकार जहां पति पत्नी में निरन्तर

# गुरुकुल

२४ ज्येष्ठ शुक्रवार १९६८

## अविद्या गरीबी और परतन्त्रता की समस्या

( ले० भी पं० विद्यान्न्द जी वेशालंकार )

आज हिन्दुस्तान आदर्श ब्राह्मण, सत्रिय तथा वैश्यो की आज्ञा में है। उसका आदर्श पर पढ़ने लोगों को देख कर महान् आनन्द प्राप्त होता है। यहाँ तक कि, बच्चों को उसने अवतार तक बना डाला है। यह इसी महारूप में भगवान् को देखकर खुश होना चाहता है, यद्यपि यह जानता है, कि तप एवं योग साधन से ही भगवान् की पाया जाता है परन्तु दिल सदियों की प्राचीनता का छाप लेकर आदर्श ग्रिय बन चुका है। वह इसीलिये स्वयन्त्रे ही अवि महात्मा को देखकर भगवान् की महान् कृपा का अनुभव करके कृतबन्ता प्रकट करने हुए उसको कालान्तर में अवतार अनुभव करने लग जाता है।

हिन्दू दिल महान् उदार है। उसने अपनी इसी उदारता के कारण लाखों शक हूब तथा यवनों को दाल में नमक के समान घोल लिया। इसके उदार एवं विशाल हृदय में संसार के सारे महापुरुष अपने भनों के साथ समाना चाहते हैं।

इस हिन्दू दिल में अपने प्राचीन ज्ञानिय जीवन में अनुभूत आदर्शों का मुक्तक, महान् उद्धार पैदा होता है। जिसके कारण जाति के नये २ सन्देशों के साथ जीवन उद्योगिता जगा करती है। आर्य समाज की उपज, इस हिन्दू दिल में अपने जागृति के नये २ सन्देशों को संसार को मुनाने के लिये ही की है। आर्य समाज की वर्तमान सफलता का कारण यही है। आज आर्यसमाज सहनों रपथा प्रतिसाल सारे संसार में अविद्या गरीबी एवं परतन्त्रता को दूर करने में लख कर रहा है।

शिक्षाक्षेत्र में आर्यसमाज भारत की सभी राजनैतिक स्व.राजिक संस्थाओं में प्राचीन तथा अपने बड़ा हुआ है। राष्ट्रीयभाषा, राष्ट्रीयसाहित्य द्वारा भारतीयता की छाप लेकर पुण्याना सामी अद्धान्द जी ने गुरुकुल काङ्गड़ी को स्थापन कर महान् साहस का परचम दिया था। जनता के भरोसे लड़े होंता कम महत्त्व की बात-उल जमाने में न थी। इसी से उसको "महात्मा" की उपाधि मिली थी। गुरुकुल ने सारी ब्रिटीश शासकनरहलों का ध्यान खींच लिया था। वायसराय, प्रान्तों के शासक ( गवर्नर ), जिलाध श ही केवल गुरुकुल में नहीं पधारते थे परन्तु स्व० धीयुत रामजै मैकडोनाल्ड ( भू० प्र० प्रधान मन्त्री ग्रेट ब्रिटेन ) जैसे प्रतिभा एवं प्रभाव शाली अम्रोज भी गुरुकुल पधारते थे।

इस समय आर्यसमाज सरकार की नजरों में विद्रोही संस्था हो चली थी। ईसाई पादरियों की हवा से सरकारी कर्मचारी उससमय लाईबिलिङ्गलन के जमाने की तरह आर्य समाजियों पर पिले हुए थे। जानि बहिष्कार की कतिनाइयों के जमाने में नाई, धोबी आदि की ही कतिनाई न थी किन्तु सरकारी कर्मचारियों ने भी आर्य समाजियों की परीक्षा शुरू कर दी थी। यह जमाना विचित्र था, लोग इस समय पुलिस की लाल पगड़ी देखकर ही डरा करते थे। इस जमाने में कितने आर्य नौकरी से बर्बात हुए, कितने जेल और भारपीड के शिकार हुए, कितनों के यहाँ-पयीन टूटे, इसका कुछ पता ही नहीं। किन्तु आर्य समाज ने स्व हस, संगठन, प्रापेयेव्हा सभी में सरकार को हराकर प्रयुत्तर दिया।

उस समय अकाल पीड़ित क्षेत्र या बाढ़ आदि आने पर सबसे अधिक साहस, योग्यता एवं सेवा द्वारा जनता का ध्यान खींचने में तथा सहायता के लिए सरकार को मजबूर करने में आर्यसमाज सभी संस्थाओं से आगे बढ़ा हुआ था।

देश की आवश्यकताओं के अनुसार जनता के भरोसे लड़ा होकर स्वतन्त्र संस्थाओं को जन्म देकर आर्यसमाज ने वर्तमान स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिये आधारभूत क्रियात्मक शिक्षा दी थी। आर्यसमाज की प्रगति ने प्रेस, फर्म, उत्सव प्रणाली, समाचार पत्र-प्रकाशन इ ग जनता में जागृ त पैदा करने की जो शिक्षा दी है वह भारत के हज़ारों दुःखों को हरने में जनता को शक्ति प्रदान कर रही है। हिन्दी एवं भारतीयता के प्रचार में आर्यसमाज ने इस स्थानाधिक शैली में भाग लिया है कि इस से जनता पर पड़े प्रभाव को जानना भी मुश्किल है।

आर्यसमाज ने कभी अपनी आँख यूरोप पर नहीं लगाई थी वह अपनी प्रगति की दिशा के लिये परतन्त्र था पराङ्गमुख नहीं बनना चाहता था। वह तो यूरोप की सभ्यता को तुलना में भारतीय सभ्यता की यस्तुत्त दृढ़ता में लगा था। वह इस प्रवृत्ति द्वारा जिस स्वतन्त्रता की दिशा की ओर मुंह किये था, वही सरकारी राय का कारण हुआ। समाज अपनी प्रवृत्ति में असफल होता तो सरकार दमन न भी करती किन्तु उसने कारण एक ५ कला के साथ पूर्णिया के चन्द्र के समान अपनी यश-उपारहना फैलाने शुरू कर दी थी। आज भी वही धारा, यही विषय लेकर लखे हो गये हैं। तो, लोग करने लगे- "अ आर्यसमाज की आवश्यकता नहीं रही।" नफकारों ने असल को ही बाजारों में निकालने की कोशिश कर दी। परन्तु हैदराबाद की परीक्षा के समय असल और नकल साफ भूल करने लग गये।

आर्यसमाज का संगठन प्रज्ञानमयी है। उसने अपने संगठन को- विभव्यगरी बना लिया है। उपनिषदों में हिन्दी और हिन्दू की याद आर्यसमाज की बढीलत ही कायम है। आर्य समाज ही यहाँ की प्रगति का नेता है। आर्यसमाज मौलि बना, स्वतन्त्रता तथा प्रजा के भरोसे प्रतिदिन उकति करना जाना जाता है। यिद्धने १० सालों में वह ६५ प्रतिशत की गति से आगे बढ़ा है। अब

उने १०० प्रतिशत से कम की आशा नहीं है। उसके विशाल कार्यकम की भूमिका के साथ यह शीर्षक गुंज रहा है "अविद्या, गरीबी- एवं परतन्त्रता का नाश। अर्थात् मन, शरीर एवं आत्मा के भोजन की पूर्ण व्यवस्था। इव भूमिका के साथ साथ हम विश्व की छानबीन पर आने हैं।

संसार की आवश्यकताएँ—सदा से संसार में मनुष्य समाज अपनी तीन ही आवश्यकताएँ महसूस करता रहा है क्योंकि समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की तीन ही आवश्यकताएँ हैं। प्राचीन ऋषि मनुष्य-समाज को राजनैतिक-सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं की सम्यक् तीन प्रश्नों की दृष्टि से ही समझते हैं।

बर्तमान में किसी छोटी या बड़ी प्रगतिशील संस्था को देखिये। सूख, गरीब या परतन्त्र लोगों के लिये काम के लिये दया करके जनता का यह सहयोग प्राप्त कर रही होगी। शिक्षा—संस्था सुखता पर गैरी है। समाजवादी गरीबी पर तथा कांग्रेस परतन्त्रता पर रो रही है।

इस प्रकार प्रत्येक संस्था की आवश्यकता में आप इन संस्थाओं की आवश्यकता गुंजती हुई पायेंगे। रुस, योएव अमेरिका—ज्ञापान सर्वत्र इस समय इन्हीं समस्याओं पर सब संगठन बन-बिगड़ रहे हैं। अन्-धार्मिक, राजनैतिक या आर्थिक संगठन समाज की सेवा करना चाहते हैं तो इन तीन आवश्यकताओं को ही मान्य जाति पूरा किया करती है।

उपाय—किसी भी काम को यही व्यक्ति पूरा कर सकता है जिसने उस काम को करने की रचि हो-साथ ही योग्यता भी हो। चुन होने पर तो सोने में सुहावा हो जायगा। अन्-तीन आवश्यकताओं को भी पूरा करने के लिये तीन व्यक्तियों की जरूरत है—जो हम में से किसी भी काम को चुन लें। उसके लिये उकड़ चुनी एवं योग्य बनकर लग जायें। उनकी जीविका के प्रबन्ध—चाहे सरकार करे, चाहे जनता, यह पृथक् पृथक् है; किन्तु योग्यता-रचि एवं चुन वाला उस व्यक्ति का होना जरूरी है। अन्-प्रतिष्ठा के नाश के लिये अच्छी रचि, योग्यता एवं ध्येय रखने वाले पुरुषों की उन्पास से बढ़ कर कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता। इसी प्रकार गरीबी एवं परतन्त्रता नाश का प्रश्न है। परन्तु पुरुष जो हममें से किसी के प्रति रचि रखते हैं किन्तु अयोग्य हैं; उन को सहायक बनकर सेवा करने का मौका प्राप्त ही संकेता।

अन्-विभाग—तीन आवश्यकताओं की दृष्टि से धम तीन प्रकार का है। किन्तु-अधिक चार प्रकार के होते हैं। अपनी रचि योग्यता एवं ध्येय के मुताबिक किसी एक समाज की आवश्यकता को पूरा करने वाले तीन प्रकार के अधिक हैं। रचि रखने वाला किन्तु योग्यता के बिना आवश्यकता को पूरा करने में असमर्थ व्यक्ति भी सहायक बनकर अच्छी सेवा कर सकता है। अन्-चार प्रकार के अर्थिय योग्यता के अनुसार होते हैं।

वेद कहता है कि—"नाथ न्नाय भीरस्त" अन्-से धके हुए पुरुष के लिए ही धन है-न कि प्रमादी के लिए। अन्-अन्

का हक बिना अन्-देना पाए है। हर एक पुरुष को यदि रखना चाहिये "अन्-बिना धन नहीं।" अन्-अन्निम निर्णय निम्न है।

१—योग्यता के अनुसार काम मिलना चाहिये,

२—काम करने पर "योग्यता" (आवश्यकता) (नुरूप धन) मिलना चाहिये। आवश्यकता की पूर्ति के लिये जिस उपाय को ढूँढा गया उसकी पूर्ति कहाँ की जाय? प्राचीन परम्परा इसका उत्तर देती है—कि शिल्पालयों में इन व्यक्तियों को नैयार किया जाय:—

परीक्षा एवं सफलता:—किसी भी विचार को अपनाने से पूर्व उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। जैसे पंच-जवाहरलाल जी तथा श्री जग-प्रकाश नारायण लाल जी आदि रुस में परीक्षित समाजवाद को लागू करने के लिये पूर्ण उत्साह एवं प्रेम जाहिर करने हैं क्योंकि उसी को उन्होंने पढ़ा और समझा है। डॉ. इसी प्रकार पंच-दुखदेव जी विद्यालङ्कार आदि प्राचीन भारत में अन्-माई धणव्यवस्था को लागू करना चाहते हैं। क्योंकि उसको उन्होंने पढ़ा और समझा है। मेरा अपना विचार है, कि दोनों में कोई भेद नहीं। केवल भगड़ा है, कि रुस का र्ण्य अच्छा है, कि भारत का। एक उसी परिणाम पर गुण-कर्मानुसार व्यवस्था बनाकर पढ़ूँचना चाहता है। दूसरा किसी भी प्रकार उसको पाकर व्यवस्था शनैः-२ कायम करते रहना चाहता है। मुझे तो इसमें पहला पढ़ ही ठीक—जचता है। लड़ू, दोनों खाना चाहते हैं—किन्तु एक, एक-दुसरे को खाना चाहता है—दूसरा दूसरे तरीके से खाना चाहता है।

अधिकों के नाम:—प्राचीनपुरुष अधिकों के नाम भी रखते थे। उनके नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य एवं शूद्र होते थे।

ब्राह्मण:—कोई व्यक्ति संसार में आदर्श एवं विद्या के अभाव में म-भटके इस लक्ष्य को लेकर किसी गुरु से अनुभव पूर्ण शिक्षा लेकर देश सेवा में लगकर ब्राह्मण अपना ध्येय पूरा करता था।

क्षत्रिय:—कोई व्यक्ति, समाज, व-देश अन्-याय-अन्-आचार एवं परतन्त्रता से पीड़ित न हो इस ध्येय को पूरा करने के लिये आवश्यक योग्यता प्राप्त कर-देश-सेवक के रूप क्षत्रिय सेवा करता था।

वैश्य:—इस प्रकार देश सेवा में लगे ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की आर्थिक जरूरतों को पूरा करना अपना ध्येय-रूप बना कर आवश्यक योग्यता सन्-दान करके सेवा करना वैश्य का काम था।

शूद्र:—इसमें से किसी भी एक बात में रचि रखने पर भी योग्यता के अभाव में सहायक बन कर सेवा दान कर सकने वाला शूद्र होता है। विद्या-चार नाम रखने पर ही सकता है। परन्तु वैज्ञानिक या वैदिक दृष्टि से चार प्रकार से अधिक अधिक क्या हो सकते हैं? तीन में अधिक प्रकार की क्या आवश्यकताएँ हैं? यदि दोनों का उत्तर नहीं हो, तो, नाम कुछ भी रहे—यान-एक ही रहेगी।

पूँजी विभागः—अन्न विभाग के बाद पूँजी का नम्बर आता है। यह चार विभाग वेदों के रूप में निम्न हैं:—  
 “ब्राह्मण ब्रह्म (समाज) का मुख, त्रिष्य बाहु, वैश्य पैर तथा शूद्र पांव हैं।” वेद की दृष्टि में पागे कौन होता है—  
 “इयलाशो भवति।” इतनी पारंगी होता है। पुरुषात्मा कौन होता है—“सब की उन्नति में अपनी उन्नति चाहने वाला।” यज्ञशेर का खाने वाला पुरुषात्मा होता है। यज्ञ-शेर अर्थात् यज्ञ में जो बचे-बेसा भाग होता ही नहीं। अतः “समाच्छर्षं संवदध्वम्” के अनुसार सबकी सम्पत्ति में से भाग्यभाग देना ही यज्ञशेर है। जितना भाग सकते हो उसमें अधिक मत रकना।

(शेर अगले अङ्क में)

## वेद में आयुर्वेद

[ गुरुकुलोत्सव पर आयुर्वेद सम्मेलन में पठन ]

(शे०—श्री श्रीमहाश्री श्री वैशालीकार)

इसी वेद के ४थे काण्ड में ‘रोहिणी’ वनस्पति को मंसादि बर्षक कहा है और इस काण्ड के ३७ वें सूक्त में अश्वत्थ, म्यशोध, अजुन, अघाट, ककरो आदि वन-स्पतियों को विभिन्न जल-जम्बुओं को पान न फटकने देने वला बताया है। आज कल लंग ‘पुत्रिलङ्ग सन्तान’ की प्राप्ति के लिये नानाविध अतिव्यय साध्य उपाय करके भी सफलता प्राप्त नहीं करने हैं लेकिन अथर्व वेद के ६ ठे काण्ड का ११ वां मन्त्र “शमीमन्ध्यां आरुहः” आदि बताया है कि शमी पर आरुह (अपन्न) पौपल के यथा-विधि मेवन से श्री पुत्रिलङ्ग सन्तान पैदा करनी है। इसी बात को अथर्ववेद के ३ रे काण्ड में ‘पुमान् पुंसः परिजातोऽथः अदिराद्-पि’ इन शब्दों में कहा है।

इस प्रकार के वृक्षों को ‘वन्धा’ या ‘बान्धा’ कहते हैं और इसका संस्कृत नाम ‘पुत्रिणी’ भी इसी और संघत करता है कि यह पुत्रोपादक होता है। ‘शब्द कल्पद्रुम’ के अन्वय ‘पौपल’ को कफू पिच (बिनाशी, ‘रक दाहक’ आदि और ‘खादर’ को दन्त शोधक हृदि, प्रमेह, उदर, पृष्ठ, शोथ पाण्डु आदि रोग दूर करने वाला लिखा है।

‘पृथिवी’ (जिन हिन्दी में पठवन भी कहते हैं आयु-वेद में स्प्रसिद्ध ओषधि है। वेद इसकी उपयोगिता को कहता है। इस मन्त्र में ‘असुक्पायान’ शब्द से जून पीने या गिराने वाले ‘रकपित्त’ रोगों की और संकेत करके हुए कहा गया है कि पृथिवी में ज्ञय, बवासीर, नवसीर, अश्यां का रक प्रदर आदि रोग दूर होते हैं। लेकिन अभी तक आयुर्वेद वाले तो बवासीर और ६ ठे महीने के गर्भपात के लिये ही इसका प्रयोग कर सकते हैं। वंश तो शरीर को बढ़ने न देने वाले एवं गर्भ रक्षक रोगों को दूर करने के लिये भी इसी को उपयोगी बताया है।

अथर्व वेद के १४ मन्त्र ‘अपानं केन नमुचेः शिर इन्द्रो-दध्यांयः’ आदि में बताया है कि इन्द्र अपानं के साथ नमुचि का स्त्रि कुवल देता है।

इन्द्र सूर्य को कहने हैं लेकिन अर्द्ध भी सूर्य का नाम है और आक के पर्याय सूर्य वाचक शब्द हैं। आयुर्वेद में

भी आक और सूर्य एक नामों वाले हैं। अतः इस मन्त्र में ‘इन्द्र’ शब्द का अर्थ बिना लैघातानी के ‘आक’ किया जा सकता है। कर्पांकेन का अर्थ तो ‘समुद्री आग’ है और नमुचि का अर्थ है ‘न छोड़ने वाले अचिकित्स्य असाध्य रोग।’ नमुचि का अर्थ ‘नम् उच्य’ अर्थात् ऐसे रोग भी हैं जिनमें शरीर का कोई भाग नीचा या ऊँचा हो जय जैसे रसौली निकल आना, बवासीर के मस्से, भगन्वर का फोंडा, न.सूर आदि—वेद ने बताया है कि ये सब आक और समुद्र-आम के उचित परिमाण और विधि से लगाने से ठीक हो जाते हैं।

वेद में तो ‘गो रोहितस्य वषेण तेन त्वा परिदध्मसि’ आदि मन्त्रों से हृद्योत अर्थात् हृदय की जलन या ‘कामला’ रोग को चिकित्सा का भी वर्णन मिलता है।

अथर्व वेद के तीसरे सूक्त में सूत्र-मोचन के लिये कपूर, आक आदि का उपयोग बताने हुए वरां (वेशली) अर्थात् (केंथर) नामक उपयोगी उपकरण का भी नाम दिया गया।

धन्तु, वेद ही आयुर्वेदिक औषधियों को ‘मानर’ अर्थात् मन्त्र एवं क्षत शरीर का निर्माण करने वाली कह कर मनुष्यों को उन द्वारा चिकित्सा करने का उपदेश करता है।

इस प्रकार इस लघु-लेख में संक्षेप से यह दिखाया गया है कि सम्पूर्ण आयुर्विषयक ज्ञान या आयुर्वेद, वेदों में ही हम तक पहुँचा है। जिसकी सारी सुलभताकार यह कह कर दे गये हैं—

“इह सन्व्यायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य। अन्व-पार्याय प्रजाः—कृतवान् स्वयम्भूः”। (समाप्त)

[ ५०३ का० २ का शेष ]

विरोध या कलह-रूप ही बना रहना है, वहाँ अवगति, दरिद्रता और दुःख रूप हानि ही हुआ करती है।

जहाँ सुमति तहाँ सम्पत्ति नाना।

जहाँ कुमति तहाँ विपत्ति निदाना ॥

पति पानी दोनों के लिये भगवान मनु का यह विधान भी सदा स्मरण रखने योग्य है—

‘यदि श्री प्रसन्न चित्त से सुकृचि पूर्वक अपने पति को आनन्दित नहीं कर सकती तो इस पति पानी रूप दम्पति से ‘सन्तान’ की उपाप्ता भी नहीं होगी।’

श्री क एकमात्र अपने पति द्वारा ही सन्तुष्ट हो जाने पर अर्थात् पुरुष से स्नेह वा संसर्ग होने से ही बह कृता भी सबों का गौरवान्वित, रूचिकर और प्रकाशमान प्रतीत होता है और उसके पति से सन्तुष्ट या शोभायमान न होने पर ही पति श्रेय वा श्री का पर-पुरुष से स्नेह या संसर्ग रूप दोष से बह कुल सर्वथा मलिन और भिन्नीय होता है।

इस प्रकार हिन्दू धर्म ग्रन्थों में सर्वत्र “श्री धर्म” की स्तुति ही की गई है और नारी गौरव के ही गीत गाये गये हैं। स्त्रियों को सर्वत्र उच्च स्थान ही दिया गया है। नारी धर्म की महिमा ही ऐसी है।

## तैरी प्रतियोगिता

का

### उत्साह पूर्ण समारोह समाप्त

गत ४ जून को तैरी-प्रतियोगिता होने के कारण गुरुकुल विश्वविद्यालय में विशेष चहल-पहल का वातावरण उत्पन्न आया। प्रातः से सायंकाल तक गुरुकुल का क्राइड-विभाग प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्थाओं के करने में पूर्णतया व्यस्त रहा। सायंकाल ३।३ बजे इस प्रतियोगिता के मनोनीत सभापति श.युत पं० नीलनारायण जी परिवर्तिकाटव इ.जुनीयर रुड़की, पंथारे। लम्बी तैरी के तैराकों को मायापुर के पुल तक पहुँचाने के लिए दो लारियों का प्रबन्ध किया गया था। ठाक ४।४ बजे डाई मील की तैरी के तैराक मायापुर के पुल से कूदे, इनमें ४१ वचपुरी के तैराक भी शामिल थे। इस प्रतियोगिता में सर्व प्रथम आने के लिए सब प्रतियोगिता बटु-बटुकर हाथ मारने लगे। थक कर थिड़े हुए तैराकों को सहाय्य देने के लिए नहर-विभाग की ओरसे दो नावें साथ २ चल रही थीं। नहर की पटरी पर उत्तम दर्शनार्थियों की कतारें पैदल और साइकिलों पर सवार होकर तैराकों के साथ २ आगता जा रही थीं। इस १।३ मील की दूरी को २५ मिनट १० सेकण्ड में तय करके ब्र० गिरिधर सर्वे प्रथम गुरुकुल घाट पर पहुँचे। गुरुकुल घाट पर इस समारोह का देखने के लिए गुरुकुल विश्वविद्यालय के विशाल परिवार के अतिरिक्त, स्थानीय अन्य संस्थाओं के विद्यार्थी एवं प्रोफेसर, मर्दों और अस्त्राक्षों के समूह-सदस्य, आर्य विरक्त-वानप्रस्थ-आश्रम के विद्वान् सन्ध्यामी, पञ्चपुरी की जनता, आर्य देवियां बन्दे-गृहे सबके मन बड़ी संख्या में बहल पहल से ही एकल थे। गुरुकुल घाट के स्वस्व, मुण्डेरे, सोदियां और पुल लोगों से आनन्ददायित हो गए। जन-समुदाय मधु-मस्किर्यों की तरह एक पर एक टूटा पड़ता था। इतनी आइ गत ६ वर्ष की तैरी प्रतियोगिताओं में देखने न मही आई। लम्बी तैरी का सर्व-प्रथम तैराक जब गुरुकुल घाट पर पहुँचा तब उपस्थित जनता ने तालियों से स्वागत किया। सीढ़ी अधिक होने के कारण सभापति जी की प्रतियोगिता देखने में कुछ दिक्कत हो रहा थी इसलिये गुविवा के लिए उनकी कुर्हीं घाट के मुले हुए चोड़े मुण्डेरे पर स्थापित की गई। इसके बाद श्री सभापति जी के पूर्ण-निरिच्छाम से डुबकी, मिह तैरी, छलाग, कच्छप-तैरी, पंराश्रुत आदि की प्रतियोगिताएँ हुईं जिनका परिणाम निम्न रहा:—

लम्बी तैरी	श्री गिरिधर	प्रथम
"	" दयाराम	द्वितीय
"	" प्रह्लाद	तृतीय
सिद्ध तैरी	" रमेशचन्द्र	प्रथम
"	" दयाराम	द्वितीय
डुबकी (गोता)	" गुरुदत्त	प्रथम
" (कच्छप तैरी)	" रोहितशय	प्रथम
पंराश्रुत-खलांग	" हरिवंश १३	प्रथम
कला-प्रदर्शन	" जयदेव	प्रथम

उपरोक्त विजेताओं को, सभापति भीयुत पं० नीलनारायण जी ने एक-एक पदक के साथ रूपयों का परिचोपिकभी

प्रदान किया तथा इन प्रतियोगिताओं में रोमाह भाग लेने वाले ५ छोटे ब्रह्मचारियों को आनी और से प्रत्येक को एक एक रूपया इनाम में दिया।

अन्य में समाधी जी ने आने गत्तम भाग में इस प्रतियोगिता के सम्बन्ध में ४५ प्रकट करने हुए शारीरिक-उत्पत्ति के महत्व को प्रदर्शित किया।

सबके अन्य में श्री गुरुवाचिष्ठाना जी ने पं० नीलनारायण जी का हार्दिक वन्द्यार्थ किया। श्री दस प्रहम यः प्रतियोगिता अत्यन्त सफलता पूर्वक समाप्त हुई।

इस सफलता का सारा श्रेय वतमान केंद्रा मन्त्री श्री विद्यानन्द उप-स्नातक को है। एक उत्तम तैराक होने हुए भी प्रबन्ध में व्यस्त होने के कारण ये प्रतियोगिता में भाग न ले सके।

## गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का प्री-प्रभावकाश १६ जून को समाप्त हो रहा है, और विद्यालय नियम पूर्वक २० जून को मूल जायगा। इस समय ऋतु अ युक्त है। संस्कृत महातु-भावों को चाहिए कि वे अपने २ ब्रह्मचारियों को १८ जून तक गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ अवश्य पहुँचा दें जिससे कि पढ़ ई में कोई हानि न हो।

## श्री पं० दीनदयालु जी राखो की रिहाई—

गत ३० मई को श्री पं० दीनदयालु जी शास्त्री ६ मास की सजा काटने के बाद मुक्त होकर गुरुकुल पहुँचे। यहाँ पर आपका समस्त कुल भासियों ने धाय दल के साथ स्वागत किया। गुरुकुल वासियों की एक विशाल सभा में आपने जेल-जीवन के अपने मनोरंजक वृत्तान्त सुनाए। इस सत्याग्रह में उत्साह-पूर्वक भाग लेने के लिए श्री आचार्य जी की ओर से तथा समस्त कुल वासियों की ओर से आपको बधाई दी गई। इस खुशी में आज के दिन विद्यालय बन्द रहा।

## श्री प्रो० केशवदेव जी की बधाई—

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि गुरुकुल के मन्त्र उपाध्याय पं० केशवदेव जी ३२ वर्ष की साधना के पश्चात् आगामी १० जून को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की तैयारी कर रहे हैं। आपका विवाह संस्कार प्रयाग में होने जा रहा है। गुरुकुलीय उपाध्याय-मण्डल एवं कार्यकर्ताओं की ओर से आपको बधाई है।

## स्वास्थ्य समाचार

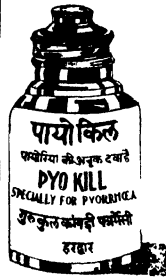
ओम्प्रकाश ११ श्रेणी आनन्दशूल, रात्रेन्द्र ५ श्रेणी (६ श्रेणी) ऋषेयमन्वर, रामकुमार ४ श्रेणी ऋषेयमन्वर, राम-हृदय ४ श्रेणी आतपञ्जर, रवीन्द्र ४ श्रेणी आतपञ्जर, विजयकुमार ३ श्रेणी मन्तरियाञ्जर, मधुसूदन ३ श्रेणी यातिकदर, हरिश्चन्द्र ३ श्रेणी खमरा, रात्रेन्द्र ३ श्रेणी स्वसरा, जगदीश ३ श्रेणी स्वसरा।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। २० मई को यहाँ का अधिकतम तापमान १२२.५ फा० रहा। इसके बाद वर्षा हो जाने से अर मोसम बहुत अच्छा है। दो दिन से अधिकतम तापमान ८७ फा० है।

# गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी की प्रसिद्ध औषधियां



**ब्राह्मी तेल**  
दिमाग को तरो-  
ताजा और चित्त  
को प्रमत्त रखता  
है, बालों को  
सुन्दर, मुलायम  
और काला करता  
है। प्रातिदिनस्नान  
के बाद मिर पर  
लगाए।  
मूल्य १) पाव



**पायो किल**  
दांतों को मजबूत  
चमकीले और  
सुन्दर रखता है  
उत्तम मंजन है।  
पायोरिया की अ-  
चूकरी औषधि है।  
मूल्य ॥) शशी।



**चन्द्रप्रभा**  
इन गोलियों में लोह  
भस्म और शिलाजीत  
की प्रधानता है, उत्तम  
रमायन है। स्वप्नदोष  
जिगर की कमजोरी,  
खून की कमी आदि  
रोगों में विशेष लाभ-  
दायक है।  
मूल्य ॥॥) तोला



**भीममेनी सुरमा**  
आंखों के सब रोगों  
की अचूकरी औषधि  
है। चरमा लगवाने या  
किसी और दवा के  
इस्तेमाल करने से प-  
हिले हमारे भीममेनी  
सुरमे का इस्तेमाल  
कीजिये।  
मूल्य ॥३) शशी

## ब्राह्मी शरबत

ब्राह्मी बूटी, बादाम आदि वृद्धि-वर्धक वस्तुओं में तैयार किया गया है। ठंडक और तरोताज़गी लाता है।  
मूल्य १॥) बोटल।

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी ज़िस्तहानपुर**

ब्रांच { देहली—चांदनी चौक।  
मेरठ—मिपट रोड।

एजेंसियां { उधवा—प० बालगोविन्द गया प्रसाद अवध  
बरेली—शकुल हल  
आगरा—रावतपाडा

चीपरी, हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल नुद्राणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ] गुरुकुल कागड़ी, गुरुकुल ३२ अंश १६६८; १३ जून १९६२ [ संख्या ७

## पक्ष याग

( जे० भी वीरेस जी विद्यालंकार )

पञ्च-महायज्ञ अर्थात् ऋषयज्ञ, वैश्वयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिर्वाग्देवयज्ञ तथा अग्निधियज्ञ की विधि गृहस्थाधर्म-यागियों के लिये शास्त्रकारों ने की है। इन यज्ञों के द्वारा जहाँ गृहस्थाधर्म प्रभु परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, वायु बुद्धि वनस्पति जलादि की शुद्धि, माता पिता तथा अन्य पूज्य सम्बन्धियों की सेवा, घर के पालन, पशु-पक्षी प्राणियों को अन्न-जल, शरण तथा शिवाय अत्यागनों की सेवा ठामा स्वस्वंग का फल प्राप्त कर सकता है वहाँ यह अपने भले के साथ २ अपने आस पास के दायरे में इस प्रकार प्रेम-सहानुभूति-तथा परोरकार का आश्रय चित्त वायुमण्डल पैदा कर सकता है जिसकी कल्पना इस पृथ्वी पर स्वर्ग के उत्तर आने पर (यदि स्वर्ग जैसी वस्तु कहीं ऊपर के लोकों में हो) ही की जा सकती है। पञ्चमहायज्ञों का आज घर २ में प्रचार नहीं है, इनका पूर्ण तरह अनुष्ठान भी नहीं होता तो भी जैने जैने अग्रुण रूप में जो कुछ इस समय हो रहा है उसमें सुधार और बुद्धि की जाय तो अवश्य ही पञ्च-महायज्ञों का वैदिक स्वरूप अपना व्यापक प्रभाव डाल कर देश के घर २ में नियमप्रति होने वाली वस्तु बन जायेगी।

प्राचीन काल में माना प्रकार के यह होने थे। अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त जितने भी यज्ञ होने थे उन सब में वैश्वयकार की भावना प्रधान होती थी। यहाँ तक कि अश्वमेध यज्ञ जो कि 'राष्ट्र' द्य अश्वमेधः' शत० प्रा० १३. अ. १ इस शतपथ की उल्लेख के अनुसार जो राष्ट्र का निर्माण रखण तथा संचालनरूप यज्ञ था वह भी राजा और प्रजा द्वारा तथा याज्ञिक और यज्ञनाम द्वारा इष्टपूर्व का महान् साधन होता था। 'इष्टपूर्व' अर्थात् 'इष्ट' व पूर्व व अपने इष्टदेव अन्तः-परमात्मा के दर्शन और आज के लिये उपासना आदि द्वारा, स्वाहना करना तथा समूर्ण, शिल्प कलाकौशलविद्य रहार के द्वारा सुख-कामनाओं की पूर्ति करना यज्ञों के द्वारा ही सम्भव था। इस कारण प्राचीन अर्थों की यज्ञों में महती निष्ठ थी। वे यज्ञों को अपने समूर्ण जीवन में व्यापक तथ के तौर

पर मानने थे और उल्लेख यज्ञ-यज्ञ का श्रुतला म गण्य हुए अपने सब व्यवहार और परमाय की साधना तथा सिद्धि किया करते थे।

यह यज्ञ अनेक विध होते थे। कोई आत्मा सम्बन्धी, कोई ऋषयजन- (स्वर्गयाय) सम्बन्धी, कोई संस्कार सम्बन्धी, कोई म.ना अन्न तथा अन्नियों के सम्बन्ध रखने वाले, कोई पक्ष, मांस-तथा सम्बन्ध से सम्बन्धित होने थे। 'पूर्व' यज्ञ भी प्रचुर मात्रा में विधान था जोकि प्रायः वापी, कूप-तड़ाव, विश्वाभामार तथा पाठशालादि निर्माण करने पर पूज्य होता था। यह पूर्व प्रायःकर 'सकाम याग' था। अस्तु पितृ-जन्म-कर्म-संशुद्धि-उपकार करना ही होता था। यही कारण है कि पूर्व याग की महिमा हिन्दू जाति के दिल में इतना पर कर गई थी कि गली-गली और कुबे २ में कुप ताला तथा नगरों में घमशाला उद्यान (वृक्षारोपण) पाठशालादि का बनवाना एक समर्थ हिन्दू अपना धार्मिक कर्तव्य समझना था और इस कृत्य का उद्दिष्टक यह समझना था कि जहाँ इस से नाम और यश प्राप्त होगा वहाँ मरने के बाद मुक्त लोक तथा सद्गति भी प्राप्त होगी ऐसा विश्व स रक्ता था।

पक्ष यज्ञ की परिपाटी कोई मनीषी नहीं है। यह पौरुषमानी और क्रमावास्था के दिन नैयतिक अग्निहोत्र की आहुति देने के पश्चात् केवल तीन आहुतियों द्वारा स्वयं किया जाता था। आहुतियाँ 'स्व.लौपाक' अर्थात् मोहन-भोग, भात, लिचुड़ी, खीर, लड्डू, आदि मयूर मिष्टान्न द्वारा दी जाती थीं। पौरुषमत्वादि की विशेष आहुति यह हैं:—'श्रीयु अग्रयण स्वाहा। श्रीयु अग्नीषोमिभ्यो स्वाहा। श्रीयु विरुचये स्वाहा।' इन तीन आहुतियों द्वारा 'मू. मुं. वः' स्वः अर्थात् पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोक के देवताओं का प्रीणन किया जाता था। उनकी तृप्ति कर उनमें उपकार प्राप्त करने का स्वाहाहुति द्वारा संकल्प बांधा जाता था। अन्तःपरमात्मानिब देवता है। यह पृथ्वी के दिन अपने 'अग्निषोमीय' गुण से प्रकृत होता है। उसकी इस प्रकृति का हेतु अन्नपत्र का ईश्वरिय नियम है इसलिए इस अग्निषोमीय शीत-शान्त-सीम्य गुण के वाता प्रभु को हवि देने के द्वारा उसका तथा अग्निषोमीय गुण के प्राप्तिरुपां पूर्ण के पूर्व अन्न का 'श्री अग्निषोमीय स्वाहा' द्वारा हविर्दान और यज्ञ किया जाता है।

अमावास्यादि में भी तीन आहुतियां इन मंत्रों द्वारा दी जाती हैं। 'ओम् अश्वये स्वाहा। ओम् इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। ओम् विष्णवे स्वाहा' प्रथम और तृतीय आहुतियां समान हैं परन्तु मध्य की आहुति 'अग्नीषोमाभ्यां' के स्थान में 'इन्द्राग्निभ्यां' स्वाहा' यह होती है। इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि सूर्य भी अन्तःसृष्ट्यात्माय है और चन्द्रमा के समान ही गोलाकार जड़ पिण्ड है तथापि पूर्ण प्रबुद्ध होने पर वह अपने ही गुणधर्मों से विशेष करके प्रकाशित होता है और वह गुण धर्म अनुपलब्ध के ईश्वरीय निधम के अनुसर 'इन्द्राग्नि' इस सम्मिलित गुण के रूप में प्रबुद्ध हुआ २ अमयस्या के दिन नेत्र भोज और आलोक प्रदान करना है। वस्तुतः इन गुणों का प्रदाता और अधिष्ठाता स्वयं परमात्म देव ऊर्ध्वगन्तरिक्षस्थानीय सूर्य द्वारा 'इन्द्र' शिः गुणों से प्रकाशित होता है। इसलिये इन्द्राग्निभ्यां आहुति से अरब्वर के मन्त्र और सर्वप्रेरक प्रभु की पुत्रा द्वारा 'इन्द्राग्नी' गुण के प्रातिकर्ता सूर्य देव के गुण की प्रशंसा हुई।

अप्यात्म पद में वह तीनों आहुतियां वाक्, मन, प्राण का तथा इनकी अभिव्यक्ति द्वारा वाक्मनस् तथा मनोवाक्-युगल (जागृति-स्वप्न) को अभियुक्त करने की जाती है।

इस प्रकार देखा कि पशुपाग अथवा सहज-मुगम यह है। अथ्य यज्ञों के संग में ही इसकी पूर्ति हो सकती है परन्तु भेद शैवत्व यह है कि इसकी 'पूर्ति' अपना है और इसकी तीन आहुतियों की हवि भी अपनी है। गृहस्था-अभ्यासियों को इससे बेहतर आहुतियां सम्पन्न करने का अवसर तथा यक्षशैर के रूप में विद्याल खाने की मजुर देना और नहीं है, यह योही हाथ से न निकल जाय इसलिये लेखक की सविनय प्रार्थना है कि इस यज्ञ को भी स्वयं यन्तु लगने हाथ करने से कमी न चूका करें।

## धर्मोपासक से

[ बिचोनी हरि ]

धर्मोपासक, तुम्हारी तर्कवाहिनी, शाक्यीय बाणी धर्म की क्या सारांश ही प्राण-शक्ति को खींच लेगी? तुम्हारी गूढ़ उपासना किस तरह धीरे-धीरे बढ़ातकण से धर्म का काया-कल्प करती जा रही है। अज्ञत अज्ञत !!

मार्वात युग में इसके बिल्कुल उलटा होता था। तब का योग्य धर्म उपसर्कों के जीवन-नस्य का एक विषुद्व खींच लेता था। ऐसी लिट्टर उपासन से उनका स्वर्ण अस्त्र-कंकाल भर रह जाता था। और उस अजीब क्रिया को 'तप' कहा जाता था।

तब का उपासक या साधक प्रायः सीधकाय होता था; आज का धर्म सीधकाय दिव्य वा देता है।

तुम्हारी नयी नयी शोधों ने सिद्ध कर दिया है कि तब का रक्त-शोक बलवत् धर्म भी अरुद्ध था; और आज का शोधित दृढ़ धर्म भी सुदृढ़ है।

तुम मानते हो कि अस्त्र बल तो 'उपासक' का बल है, धर्म का 'अपना' बल कोई बल नहीं।

धर्म का शोध करके तुमने धर्म को संरक्षण दिया है। तुम्हारे कृतकता-पाश में धर्म देसा बंध गया है कि तुम्हारे आदेशों से वह बाहर नहीं जा सकता।

पहले के उपासकों पर धर्म का शासन रहता था; अब उस पर तुम उपासकों का शासन है, और इसी लिये वह सुदृढ़ है। तुम्हारी शोधों और प्रयोगों के पहले धार्मिक जगत् में खोज मानने थे कि धर्म स्वतः अपने से रक्षित है, धर्म की रक्षा तब धर्म से ही होती थी।

पर यह बनका प्रम ही लिख हुआ। साथ ही इसमें कोई पुरुषार्थ भी तो नहीं था। यह भ्रष्ट आधिकार ने तुमने किंग कि धर्म की रक्षा अर्थ से भी हो सकती है, और होती है।

तुमने अनुभव किया कि तमम और प्रकाश के बीच क्यों ब्यामला वैर या विरोध रहे? तुमने अपने धर्म-बल से दोनों को एक दूसरे की छाया तले सहज ही प्रतिष्ठित कर दिया।

प्राचीन धर्म-शोधकों के तो मार्ग प्रयत्न उल्टे होने थे उनकी साधना जैसे एक अतुकान्त कविता थी। और फिर उन्हे वे 'सनातन - सिद्ध' करने थे। जैसे वे अद्वैत से द्वैत का, अक्रोध से क्रोध का और अहिंसा से हिंसा का शसन करना सिखाते थे।

मूल भूल उनकी, तब शायद यह रही होगी कि अक्रोध, अद्वैत, अहिंसा जैसे नकारात्मक चीजों को उन्होंने 'धर्म' मान लिया था। सहज को छोड़कर अमहज की तरफ दौड़ना—भला, यह भी कोई धर्म माधना है!

इसी तरह एक और गलत रक्षा उन लोगों ने पकड़ लिया था। अर्थ और काम को भी वे धर्म से साधते थे; जब कि तुम्हारी मारी धर्म-साधना अर्थ और काम के द्वारा सम्पादित होती है।

तब वे लोग तो धर्म द्वारा अस्त्र में खरहा चाहते थे। धर्म को इनका कठोर और शक्ति-शाली मान रखा था कि कि उसकी रक्षा की उन स्वार्थ-साधकों की कोई परवाह नहीं थी।

उनकी दृष्टि में अरक्षित धर्म अपनी व्याख्या खुद बनाता था; जबकि उसकी व्याख्या आज तुम्हारी सहज युक्तियों द्वारा निर्णीत की जाती हैं। क्या यह कोई मामूली विकास है?

कुँबल के अभाव में तब कोरे आचरण से काम लिया जाता था। 'धर्म-चर' का कुँबल दीपक उनके हाथ में रहता था। शुष्क आचरण पर वे तर्क-कुँबल साधक भारी जोर देने थे।

तब फिर वह अरक्षित धर्म अपने जड़ साधकों को किस तरह समृद्ध और मुन्गी बना सकता था? तभी तो वे भाव्यहीन 'अर्थ संक' मार्गी पण्डितियों या गतिकद्वाराओं में बन्ध मनुष्यों या पशुओं की तरह निष्क्रिय पड़े रहने थे। उन सीधकाय द्रिष्टों के पास कीपीन और कमबलबलु के सियाय और होता ही क्या था!

तुम मानते हो कि धर्म तो मूलतः अशक्त है—उसमें इनकी शक्ति नहीं कि वह खुद अपनी रक्षा कर सके।

तुम्हारी इस तर्क-मुद्द माध्यता में भला कौन गलती निकाल सकता है ?

भीति-बल से कमी धर्म की रक्षा हुई है ? वह तो युक्तिबल और शरीरबल से ही होगी और दूसरे धर्मोंपासक भी तो ऐसा ही कहने और करने हैं ।

चाहे जैसे हो, जब तक भीतिक संगठन नहीं होगा, तबतक धर्म को झतरा ही रहेगा और ईश्वर भी उमे झ-शीर्षाद् नहीं देगा ।

और वे भी तो ब्रेव, प्रोह, कूट, भेद और हिंसा को धर्मानुष्ठान में अस्मिन् वने हैं । वे सब आज किमे सु-संगठित और समुद्ध हैं । ईश्वर आज उनके वश में है— उनके ऊपर वह आपोर्षाद् के फूल बरसाना है, और उनके शत्रुओं पर गरक की आग !

वह धर्म किस काम का, जो अर्थ्यगद् में हमारा समर्थक न हो, जो काम-कांवन के निन्दुर-निग्रह से प्रस हो, और हमारे शत्रुओं को जो हमारे ही शत्रुओं में अभिशाय न वे सके ?

तुम्हें लगना है कि धर्म इसीलिए झतने में पड़ गया था कि गजनेतिक स्वर्षों में उसका पूरा प्रयोग नहीं हुआ । डेव और हिंसा से उसे यथेष्ट पोषण नहीं मिला ।

तुम्हारी यह धारणा सवंधा सही है कि सत्यता, दया क्षमा और अहिंसा ने धर्म को निर्षीय कर डाला और यही कारण है कि उसका अस्तित्व तक स्तरने में पड़ गया ।

पर यह निश्चय है कि तुमने उसे नाश होने से बचा लिया । अर्च्छा हुआ कि तुमने डेव का संजीवन बीज को दिया । तुम्हारे सत्यत्व ने बुद्धि-भेद वैदा हो गया है । स्वमना के प्रान् उपेक्षा हो चली है । मनुष्य में प्रति-हिंसक वृत्तियाँ जाग उठी हैं । राज-प्रकरण और अर्थ्यवाद् ने निष्पन्न दुर्बल धर्म को तेजस्वी और शक्तिशाली बनाने का निश्चय कर लिया है ।

तुम्हारे मन से धर्म के हास का एक त्रुबद्सत कारण उसके साधकों की 'निष्काम' या 'अहेतुक' साधना भी है ।

प्रथम तो दया को धर्म का मूल चोचित करना, और फिर उसके प्रयोग में कौरे 'हेतु' न रखना—ऐसी निरर्थ साधना से आज़िउर क्षाम ही क्या ? वह तो व्यर्थ का एक अघ्यावार हुआ !

तुम्हें यह स्पष्ट ही गया है कि धर्म की रक्षा होगी तो आलित दयापारी बुद्धि से ही होगी । फल या फायदे का विचार किये बौर धर्म का आचरण कर बैठना निरी मूर्खता है ।

अनासकिक उपदेश करने वाला धर्म आसमानों कल्पना की 'आशी संपत्ति' को भले घर बैठे प्राप्त करा दे, पर प्रत्यक्ष में तो वह धर्म चार पैसे का भी फायदा नहीं करा सकता ।

इसीलिए तुम जिस धर्म की रक्षा का मिश्रमा लेते हो, उसे पहले 'लाम-ध-द' की अन्वूक कसौटी पर कस लेते हो ।

इतना काफी है कि तुम्हारा साध्य मुद्द है—तुम्हें इसकी चिंता नहीं है कि साधन मुद्द है या अमुद्द । धर्म

बच आचगा, तो साधन तो अपने आप मुद्द हो जायेंगे । यह पुराना विचार गलत है कि धर्म—दृष्टि से देखा जाय तो साध्य और साधन में कौरे अन्तर नहीं, दोनों एक ही हैं । व्यवह र-मुद्द श्रुतियों की ही यह विचार धारा थी ।

मंत्रों के जो मन्दा या द्रष्टा थे, उनका शायद व्यवहार-व्यापार में बहुत काम सम्बन्ध रहा होगा । उभरे इस बात का पता नहीं था कि किन किन साधनों में धर्मोंपासक को क्षाम पदुच सकता है । कम-से-कम तुम पुरातन्वशोधकों को ऐसा कौरे आर्थ्य प्रमाण नहीं मिला ।

तुमने देव लिया कि धर्म का आग्रह रखना अर्च्छा नहीं । तुम्हारी दृष्टि में आग्रह रखना तो अज्ञाना का लक्षण है । धर्म से क्तिपदे रहने में बुद्धिमानी नहीं । धर्मोंपासना तो एक सुविधा की बीज होनी चाहिए । उसे चाहे जब हलकी मुट्टी से पकड़ा जा सके और चाहे जब त्यागा जा सके ।

सामान्य धर्म को कुंठित बुद्धि वाले आरण्यकों ने देशकाल परिस्थित की परिधि से बाहर माना था, और उससे सदा विपटे रहने में बुद्धिमानी नहीं । धर्मोंपासना तो एक अदिकलित बुद्धि की सूक्त थी । विशेष धर्म के प्रति किसी अंश तक आग्रह रखने की बात तो कुछ ममम्मी भी जा सकती है, पर यह साधारण धर्म का आग्रह तो विचित्र ही है !

तुम्हारी धर्मोंपासना तो तुम्हारी व्याख्या और तुम्हारे ही भाष्य का अनुसरण करेगी, कारण कि उसमें चेतना है, गुञ्जाधर और सुविधा है ।

अतः धर्मोंपासक, तुम्हारा ही मार्ग राजमार्ग है ।  
(स.द्वैत से)

## स्रष्टा का ब्रल

में लिखा नहीं, पर लिखा कौन ?

आत्मा या मेरा परमात्मा

मोदी अन्तस् या प्राण इत्ये ?

हे कठिन नहीं, हे बहुत सरल

संस्तुति का सुन्दर मनु अभिनय !

गङ्गातट, हिमगिरि का आंचल, दृढा क्षलिया का यहां मोन !

क्षया कण कण में जरा की

सुन्दरता का उल्लास दूर !

में देव नहीं पाता कुछ भी

लष लष होता मैं बहुत दूर !

वह दूर दूर, वह पास पास' अति में कोलाहल मना-मन !

वह मुझे कीचता जाता है

में उसका ही हूँ अनुगामी,

कोयल बोली अमरार से

अंला अनुचर पैसा स्वामी !

बैले तो अब तक जगती में बोली किसको है जीजा कौन ?

में लिखा नहीं, पर लिखा कौन !

—श्री लक्ष्मण 'शोमी' ।

# गुरुकुल

३१ ज्येष्ठ शुक्रवार १९६८

## अविद्या गरीबी और परतन्त्रता की समस्या

(वे० भी० पं० विद्यान्ध जी वैशालकार )

[ २ ]

'इंशावान्य' सुक में कहा है—“तुम लालच मत करो-प्रभु के अटल नियमों के मुताबिक जितना तुम भोग सकते हो— उतना ही तुम्हारा है। शेष सब प्रजापति का सम्भोग, अपना नहीं। काम करने हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो।”

मकान हँटी का है-कपड़े रई के हैं-वर्तन धातु के हैं; यह स्पष्ट देखकर भी मनुष्य कहता है-कि-मेरा है-कितना भूठ कहता है। जिन नियमों के मुताबिक यह बनते हैं-काम रहने या मैं इन्हें भोगता हूँ उन नियमों से लाचार हो कर भी मैं नहीं समझता कि इन्हीं नियमों का सागर खेल है। मैं रख भी लैगा-तो-भोग नहीं सकता। क्यों, मैं स्वयंके लिए दूसरे के भोग में आने योग्य बस्तु को रोकता हूँ। यही वास्तव में ईश्वरीय नियम से चोरी है। इस प्रकार पूँजी का विभाग भी सार्वजनिक सम्पत्ति समझ कर ही हो सकता है। यहाँ पर दोनों पक्ष समाजवादी तथा आर्यसमाजी एक मत होंगे। कुछ लोग योग्यता के अनुसार पूँजी विभाग मानते हैं। योग्यता के अनुसार भ्रम का विभाग होता है, न कि पूँजी का।

'पूँजी गर्व भ्रम' के विभाग के सम्बन्ध में जिन नियमों को मानकर आर्यसमाज चलता है वे नियम नियम हैं-वै नियम मनुष्याधीन भी नहीं। उनको प्राकृतिक या ईश्वरीय कुछ भी कह सकते हैं। कार्लमार्क्स ने अन्तराज्य तथा विचारों की बाबत लिखा है-जिस युग में जिस वर्ग या दल का शासन होता है-उसी के विचारों की प्रधानता रहती है।

कार्लमार्क्स इस प्रकार समझता है, कि कोई नियमित मत मनुष्य का बन नहीं सकता। आर्यसमाज भी इसी बात को मानता है। अतः यह मानवीयमत का जगह ईश्वरवृत्त निरमातृशुल निश्चित मत का प्रदण करना उचित समझता है।

कार्लमार्क्स कहता है—“मनुष्य के अस्तित्व का आधार उसके विवेक या अन्तरात्मा के आदेश पर नहीं होगा। परन्तु विवेक या अन्तरात्मा का आधार उसकी सामाजिक स्थिति या दशा पर होता है।”

कार्लमार्क्स की दृष्टि में मजदूर और पूँजीपति ही थे। नियम नियम उस की दृष्टि से अज्ञान थे। मैं मानता हूँ

कि गरम पानी में पड़ा हाथ साधारण पीसियोग्य पानी को ठण्डा कहता है। बर्फ में पड़ा हाथ गरम कहता है, तो क्या, वैज्ञानिक साथ जाना नहीं जा सकता, ऐसा कह दें। गरीब ५) पाकर लुग है-अमीर ४) पाकर लुग नहीं होगा; क्योंकि १००) की आशा रखता है। तो क्या, ५) पांच रुपये नहीं दूँगे। सन्तोष तो मानवीय दुर्बलता है, आपेक्षिक ज्ञान है- वैज्ञानिक नहीं। यही कारण है कि मार्क्स जिस की निन्दा कर रहा है- उसी की निन्दा हम भी करते हैं-आपेक्षिक ज्ञान होने से। किन्तु हम नियोजन या वैज्ञानिकज्ञान भिन्न मानते हैं। हमने पूँजी विभाग की बाबत 'इंशावाण्य सूक्त' का ही लिख्य मानते हैं-जो बलता है-“जितना भोग सकते हो, उतना ही तुम्हारा है।” यह भी परिवर्तन के अनुसार बदलता हुआ, कुछ वेर के लिए तुम्हारा होता है। उस नियम परिवर्तन शीलता के नियम के मुताबिक तुम भी परिवर्तन में निमित्त कारण बन जाते हो।

'कम्युनिष्ट मैनिफेस्टो' में भी मार्क्स ने यही विचार लिखे हैं। इस प्रकार समाजवादी और आर्य समाजी भ्रम विभाग एवं पूँजीविभाग में कितना मतभेद रहते हैं- यह साफ हो जाता है।

## रियासतें और ब्रिटिश भारत

( श्री० गुरुदत्त, विद्यार्थी राजभोति तथा अर्धशास्त्र )

( १ )

प्रकृति ने भारतवर्ष को जाति, भाषा तथा धर्म की दृष्टि से एक संगठित देश बनाया है परन्तु ऐतिहासिक घटनाओं ने इसको अनेक भिन्न राजनीतिक राज्यों में विभक्त कर दिया है। भौगोलिक दृष्टि से रियासतों तथा ब्रिटिश भारत की सीमा छूटती हैं। आर्थिक तथा साम्राज्यिक दृष्टि से भी इनमें भेद नहीं प्रतीत होता परन्तु राजनीतिक दृष्टि से भारतवर्ष छोटी छोटी रियासतों का समूह माना जा सकता है।

राजनीतिक दृष्टि से भारतवर्ष चार असमान भागों में विभक्त किया जा सकता है। ब्रिटिश, भारतीय, फ्रेंच, पोर्तुगीज़। इनमें फ्रेंच तथा पोर्तुगीज़ इन दोनों का संयुक्त भाग १८३४ वर्गमील में है जिसकी आबादी ६ लाख के करीब है। यह भारत के किन्चित् भाग में अपनी गूँज करते हैं अतः यहाँ पर विचार के लिए हम उनको छोड़ देते हैं। हमारी दृष्टि में भारतवर्ष इस स्वयं दो भागों में बँटा हुआ है। एक ब्रिटिश भारत जिसका शासन एक संगठित रूप में एक ही; नियम के अन्तर् प्रयत्न कर में ब्रिटिश गवर्नमेंट के अधीन है। दूसरे भारतीय रियासतें जिनका शासन शक्तिशाली राजाओं तथा रैजिडेंटों के द्वारा भिन्न प्रकार के राज्यों में बिना किसी संगठन तथा एक नियमों के परस्पर अत्यन्त भिन्न शासक नियमों द्वारा किया जाता है।

वर्तमान रियासतों तथा ब्रिटिश भारत में जो राजनीतिक सम्बन्ध है वह एक कार्लिकारी प्रक्रिया का परिणाम है जो कि कई सत्रियों को छोटी छोटी है तथा वर्तमान समय में भी निरन्तर होती चली जा रही है।

इस इच्छा कम्पनी के राजाओं के साथ सन्धिओं, सन्धियों को प्रदान करने तथा १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के परिणाम स्वरूप भारतीय रियासतों में एक नवीन संगठन का छेत्र Crown के नीचे रद्द कर लीकार किया है। १८५८ में रानी विकटोरिया ने अपनी घोषणा में स्पष्टतया यह घोषित किया था कि भारत के राजाओं के साथ जो सन्धियाँ तथा शर्तें तय हुई हैं वह पूर्णतया सुरक्षित रची जावेंगी और उनका पालन अक्षय्यभावी होगा। राजाओं की मान मर्यादा, अधिकार तथा प्रतिष्ठा का पूरा र ध्यान रखा जावेगा।

उस समय की रियासतों के राजाओं तथा सरदारों को किस प्रकार के वचन देकर उनकी फूटी सर्वेक्षणा घोषित की गई इसका यहाँ पर वर्णन करना सुगम नहीं है परंतु जैसा कि सरटैनरी में न कहा है कि भारतवर्ष में प्रत्येक प्रकार की विभिन्न र सर्वाधिकार प्राप्त हो सकती हैं इसमें तर्क सन्देह नहीं परन्तु वास्तव में वहाँ पर एक ही स्वतंत्रता है वह है ब्रिटिश गवर्नमेंट। ब्रिटिश भारत की प्रत्याक्ष सरकार र जिस प्रकार संगठित तथा दृढ़ है और उनका उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से ब्रिटिश पार्लियामेंट पर है। एवं भारतीय रियासतें असंगठित तथा राजनैतिक दृष्टि से परस्पर पृथक् पृथक् हैं। प्रत्येक रियासत का शासन भिन्न र व्यक्ति द्वारा होता है और उनका आपस में किसी प्रकार का कोई भी सम्बन्ध नहीं होगा उनमें कोई भी ऐसी संयुक्त सरकार नहीं जो कि सामान्य विषयों में शासन करने का संयुक्त निश्चय कर सके। इन रियासतों में इसके सिवाय अन्य कोई समानता नहीं कि वह स्वयं भारतीय राजाओं के द्वारा शासन की जाती है जिनमें सर्वोच्चतया भारतीय राजाओं के हाथ में न रह कर ब्रिटिश गवर्नमेंट के हाथ में होती है। देशी राज्य किसी एक विशेष भूमि क्षेत्र में न रह कर प्रायशः भारत के अनेक भागों में ब्रिटिश भारत की भूमि द्वारा घिरे हुए हैं।

बहुत सी रियासतें अपने यानायाग तथा व्यापार के लिए ब्रिटिश भारत पर पूर्णतया आश्रित हैं। इसके विपरीत ब्रिटिश भारत में भी अनेकप्रान्तीय व्यापार या यातायात भारतीय रियासतों में प्रवेश कर बिना असम्भव है। जैसे कि पटियाला के नरेश ने एक दफा कहा था कि, प्रत्येक सी र मील के बीच में बिना देशी राज्य में तुसे किसी भी व्यक्ति के लिए बम्बई से कलकत्ता, बम्बई से देहली तथा बम्बई से मद्रास की यात्रा करना असंभव होगा।

यह स्पष्ट है कि देशी राज्यों में आर्थिक तथा राजनैतिक प्रभाव ब्रिटिश भारत की आर्थिक नीति से तथा राजनैतिक योजनाओं से अक्षय्य पड़ता है।

अल्पव्य कहा जा सकता है देशी राज्यों तथा ब्रिटिश भारत में केवल भौगोलिक एकता ही नहीं लेकिन आर्थिक एकता भी है, इसी प्रकार धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि कोष से भी कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष में जाति, भाषा, और धर्म की अत्यन्त विचलता है परन्तु इस दृष्टि से रियासतों तथा ब्रिटिश भारत में कोई भेद नहीं किया जा सकता। यदि ब्रिटिश

भारत में हिन्दू मुस्लिम सवल है तो रियासतों में भी यह समस्या प्रबल रूप में पायी जाती है। सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से भारत एक है एक ही संस्कृति सारे ही भारत में विद्यमान है लेकिन राजनैतिक दृष्टि से दो विभाग किए जा सकते हैं एक ब्रिटिश भारत दूसरे देशी राज्य।

[ २ ]

देशी राज्यों की जनसंख्या लगभग छः करोड़ थीयां। लाख बायन हजार भी सौ लख है जो कि लगभग पांच लख आठ हजार एक सौ अठ्ठस सय मील में फैला हुई है। इसका क्षेत्र देशी राज्यों समेत भारतवर्ष का ५ या ६ भाग है तथा जन संख्या कुल जन संख्या का ५ है। यह देशोराज्य सारे भारत के प्रत्येक प्रदेश में फैले हुए हैं, प्रत्येक राज्य में भिन्न र प्रकार की श्रद्धा, भूमियाँ तथा दृश्य होते हैं।

बदलर रिपोर्ट ने इम्फो बड़ी अक्षी तरह वर्णन किया है। भारत की रियासतों में प्रकृत की महान में महान तथा तुच्छ से तुच्छ दोनों प्रकार की ही कृतियाँ मिल सकती हैं। हिमालय के शश्वत हिमालय शिखर पूर्व के रहस्यों तथा प्राचीन ज्ञान के प्रत्यक्ष प्रतीक हैं। प्रायण कोर तथा कोबीन की शान्त तथा गम्भीर भील के समुल प्राचीन संस्कार के परिचामीय साक्ष्य उपेक्षापद से प्रतीत होते हैं। मध्य भारत तथा राजपुताने के बर विरलुन मैदान पर्वतीय फुलियों के साथ उन गोप्यक रा तथा भूखंडों का के दिनों की याद बिलाने हैं जो कि अभी जीवित मे प्रगीत होकर बड़े र कार्यो तथा विचारों को करने में परेणा देने हैं ?

हैदराबाद और मैसूर की पदाड्डियों तथा मैदान हीरो, तथा सोने के लिए अभी तक विख्यात हैं, दरिया, जंगल तथा बड़े र जल प्रगत हमारे प्राचीन इतिहास को बारम्बार याद दिला रहे हैं। भारतीय रियासतें कुछ प्राकृतिक समूहों में विभक्त हुई हैं। सर्व प्रथम उत्तर पश्चिम में काश्मीर और जम्मू की रियासतें हैं जो कि सौन्दर्य तथा प्राकृतिक छटा के लिए प्रसिद्ध हैं इन्फे अन्तर ३४ रियासतें पंजाब की हैं जिनमें १८ तो शिमला की पदाड्डियों में हैं सारे संयुक्त प्राय में ३ ही रियासतें हैं जो कि परस्पर दूर र हैं। बिहार और उड़ीसा के दक्षिण में २६ रियासतें हैं जो कि एक विशेष समूह में हैं।

बंगाल में दो रियासतें कूच बिहार और त्रिपुरा हैं। आसान में एक रियासत मनीपुर है। उत्तर पूर्व में सिक्किम नाम की एक पहाड़ी रियासत है। भारत के सुदूर पश्चिम जिंलो, जिंस्तान में दो रियासतें हैं। उमके नजदीक ही २०६ रियासतों का एक बृहद् समूह है जो कि पश्चिम, मध्य भारतीय देशी राज्य एन्ग्लो के न मने कहा जाता है। इसके बाद राजपुताने की २१ रियासतें हैं। एवं भारत की महान ग्यालिपर रियासत है जो कि इन समूहों में सर्वथा पृथक् है। इसके अन्तर २ समूहों में मध्य भारत की ६० रियासतें हैं। मध्य प्रान्त में १५ रियासतें हैं। पश्चिमी किनारे पर मुख्य रियासत बड़ौदा है। बांगे में १५१ रियासतों का समूह है। दक्षिण में सब मे बड़ी भारत

की रियासत है। इसके भी दक्षिण में एक अन्य बड़ी रियासत है जो कि प्रत्येक प्रकार उन्नति को दृष्टि से बहुत बड़ी बढ़ी है वह मैसूर है। मद्रास प्रिन्सिपैल्सी में ५ रियासतें हैं, जिनमें दो तो कोचीन और नावय कोर हैं।

इस प्रकार इस समय सारे भारत वर्ष में ५६३ रियासतें हैं। वर्तमान काल में वह सभी इतनी अधिक विभिन्न श्रेणियों में विभक्त हुईं २ हैं कि उनका वैज्ञानिक श्रेणी विभाजन करना अभ्यस्त कठिन है। परन्तु फिर भी हम उन्हें अधिकारी वर्ग की दृष्टि से ३ विभागों में विभक्त कर सकते हैं।

- (१) वह रियासतें जिनके शासक स्वाधिकार से नरेश मण्डल के सदस्य हैं। जिनकी संख्या १०८ है।
- (२) वह १२७ रियासतें जिनको अपने में से नरेश मण्डल के लिए केवल १२ सदस्यों को चुनने का अधिकार है।
- (३) तीसरी श्रेणी उन ३२७ रियासतों की है जिनका कोई भी प्रति निधि नरेश मण्डल में शामिल नहीं है। इस श्रेणी विभाजन का कोई क्रियात्मक उपाय नहीं लेकिन सिर्फ नरेश मण्डल की दृष्टि से ही इसका विभाजन किया गया है।

एवं इससे पूर्व कई प्रकार के रियासतों के श्रेणी विभाजन किए गए हैं परन्तु उनमें कोई समीचीन जनक नहीं है। यदि हम बड़ी और छोटी रियासतों के रूप में सबको विभक्त कर सकें (जो रियासत क्षेत्रफल, भूमि कर जन संख्या प्राचीन काल की महत्त्वपूर्ण धर्म्यता से बनी बढ़ी हो उसको बड़ी, तथा जो इनकी दृष्टि से न्यून हो उनको छोटी) तो यह अत्यन्त उत्तम होगा।

इनमें जो बड़ी रियासतें जिनका शासन प्रबन्ध आधुनिक मापदण्ड के अनुसार है जो कि अधिक दृष्टि से ज्ञान निर्भर हैं अकेले यही रियासतें ही मित्रिण भारत तथा देशी राज्य के संघ बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। अन्य छोटी तब तक उस संघ में प्रविष्ट न हो जब तक कि वह कुछ मिल कर अपना पर्याप्त आर्थिक संगठन न कर लें। हमारी यही सम्मति है, जिसके आधार पर हमने इस विषय को विशेष तौर पर खेड़ा है कि संघ बनाने में इन्हीं बड़ी रियासतों पर ही विचार करना चाहिए जो कि सम्पत्ता की दृष्टि से आधुनिक हों, तथा आर्थिक दृष्टि से संगठित हों। इस सम्बन्ध में पूरा विचार हम अगले अंक में करेंगे।

## गुरुकुल संरक्षक सभा का विधान

### १. उद्देश्य—

- (१) प्रबन्धकारियों की शारीरिक तथा शिक्षा सम्बन्धी प्रत्येक प्रकार की देख रेख करना।
- (२) उनके अनाथ और श्रुतियों की भोर अधिकारी वर्ग का ध्यान आकर्षित करना तथा उचित उपायों द्वारा उनको बुरे करना।
- (३) प्रबन्धकारियों में अनमर्थ संरक्षकों के प्रबन्धकारियों की सहायता करना।

(४) गुरुकुल की उन्नति में यथा शक्ति सहायता करना।  
२. इसके पदाधिकारी निम्नलिखित होंगे—प्रधान १, उपप्रधान २, मंत्री १, उपमंत्री २, कोषाध्यक्ष १, निरीक्षक १। (हिसाब सभा)

अन्तरङ्ग सभा ११ सभासद।

### ३. विविध नियम—

- (१) इस सभा का वार्षिक अधिवेशन गुरुकुल के उत्सव पर हुआ करेगा और अध्यक्ष विशेष में बीच में भी हो सकेगा।
- (२) चुनाव उत्सव पर होगा।
- (३) प्रत्येक संरक्षक इस सभा का सदस्य होगा।
- (४) सदस्य शुल्क १) एक रुपया वार्षिक होगा।
- (५) वार्षिक उत्सव पर जितने भी संरक्षक आये हों उनके एक तिहाई हिस्से को हाज़िरी का कोरम गिना जावेगा। स्थित मीटिंग के लिये कोरम की आवश्यकता न रहेगी।

इस वर्ष संरक्षक सभा गुरुकुल कांगड़ी व इन्द्रप्रस्थ का अधिवेशन ११ अप्रैल १९४१ को सार्याकाल गुरुकुल भूमि में हुआ चुनाव निम्न प्रकार हुआ—

प्रधान—परिचय रामकुमार जी, खण्डेवा निवासी।  
उप प्रधान—१ डा० सालगाराम जी, बदलू ५० पी०।

२ म० लक्ष्मीदयाल जी मुल्हान, पदा।

३ म० मेहरचन्द जी धीमान, कलकत्ता।

मंत्री—म० हरिचंकर जी गर्ग बी० एस० सी०, ऐल० टी०, नजीबाबाद

उपमंत्री—१ म० प्रबन्धन जी, स्थालकोट।

२ म० हरिचरनल जी अग्वाल, हल्दीर

कोषाध्यक्ष—गुरुकुल प्रफिस

निरीक्षक हिसाब—म० देवीदयाल जी

निम्न प्रस्ताव संरक्षक सभा के ११, १२, १३ अप्रैल १९४१ के अधिवेशनों में पर्याप्त वाद-विवाद व विचार विनिमय के पश्चात् सर्व सम्मति से पास हुए

१. गुरुकुल के प्रबन्धकारियों के संरक्षकों की संख्या लगभग ४२० होने के कारण संरक्षक सभा यह आवश्यक सम्मती है कि इस सभा का गुरुकुल के साथ अधिक बनिष्ठ सम्बन्ध और सहयोग स्थापित करने के निमित्त गुरुकुल की विद्या सभा में एक तिहाई सदस्य संरक्षक सभा की तरफ से और संरक्षकों में से चुने हुए सभासद लिये जावें

२. संरक्षक सभा अपने मंत्री जी को १०) दस रुपया तक एक एक में कर्च करने का अधिकार देती है।

३. संरक्षक सभा यह निश्चय करती है कि प्रत्येक संरक्षक गुरुकुल सार्याकाल से पुस्तकालय निधि का कार्याय संवा कर प्रतिवर्ष वार्षिकोत्सव पर सभा इकट्ठा करने के योग्य बहुत अवश्य लाया करें ताकि वह धन प्रबन्धकारियों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति में व्यय किया जाव।

४. संरक्षक सभा गुरुकुल के निरीक्षक के लिये म० लक्ष्मी दयाल जी मुल्हान पदा उपप्रधान व म० हरिचंकर जी गर्ग बी० एस० सी०, ऐल० टी०, नजीबाबाद को मंत्री नियुक्त करती है।

५. संरक्षक समा निश्चय करते कि जब कभी किसी संरक्षक के पास उसके ब्रह्मचारी की किसी प्रकार के दुष्चर-यहार की सूचना गुरुकुल के संचालकों को और से मिले तब उस संरक्षक का प्रथम कार्य संरक्षक समा की सूचित करना होना चाहिये ताकि ब्रह्मचारी की भूल को शीघ्र जै शीघ्र दूर किया जाने का उद्योग किया जा सके, और जब कभी भी कोई संरक्षक गुरुकुल में आवे अपने गुरुकुल के अनुभव तथा हर प्रकार का शिकायत को विस्तार से लिखकर मंत्री संरक्षक समा के पास अवश्य भेज देये ताकि उन शिकायतों को दूर करने का उद्योग समा की तरफ से किया जा सके।

६. संरक्षक समागत वर्ष के मंत्री के न्याय पत्र को समा में पेश होने पर मुख्य के साथ स्वीकार करके उनके पूर्व कार्य के लिये धन्यवाद देती है तथा उनसे प्रार्थना करती है कि समा के जो कुछ कामजात व हिसाब उनके पास हो छपा करके शीघ्र वर्तमान मंत्री के पास भेज दें और आशा रखती है कि जहाँ तक हो सके वे भावी कार्य में भी अपना पूर्ण सहयोग देने की छपा करे।

७. यह निश्चय किया गया कि संरक्षकों में वार्षिक सुदृढ़ समन्वय स्थापित करने के लिये संरक्षकों के पने सहित सूची छपा कर एक २ प्रति प्रत्येक संरक्षक के पास भेजी जाये।

### भवदीय—

हरिशंकर बो एस. सी., एल. टी.  
मंत्री संरक्षक समा गुरुकुल कांगड़ी  
नजीबाबाद (विजनौर)  
यू० पी०

## गुरुकुल समाचार

### होम्सोपैथी पर व्याख्यान माला—

गत ६ जून को लायलपुर के प्रसिद्ध होम्सोपैथ डॉक्टर श्रीयुग हरिश्चलाल जी गुरुकुल पनारे। आप श्री मुख्य-धिप्रीता जी द्वारा निमन्त्रित होकर होम्सोपैथी पर एक व्याख्यान माला देने के लिए आए हैं। होम्सोपैथी के विभिन्न ७ विषयों पर आप व्याख्यान देये। १० जून से प्रतिदिन रात्रि को ८।५ बजे से १।५ बजे तक आप के लेख एवं प्रभावशाली व्याख्यान हो रहे हैं। श्री तक आप के तीन व्याख्यान हो चुके हैं। उपर्युक्त संतोः जनाक रहती है। व्याख्यानों में महाविद्यालय के डॉक्टरों के अतिरिक्त अधिकारी वर्ग, प्रोफेसर तथा अन्य कार्यकर्ता गण भी बड़े उत्साह और दिलचस्पी से शामिल होते हैं। गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के कोर्स में इस वर्ष से होम्सोपैथी की पढ़ाई भी प्रारम्भ की जायगी उसके लिये इन व्याख्यानों से होम्सोपैथी के योग्य अथवा वायु मण्डल गुरुकुल में तैयार हो रहा है।

इस व्याख्यान-माला के समाप्त होने के बाद, इसके छात्रे दूसरी व्याख्यान माला प्रारम्भ करवाने का आयोजन भी अधिकारी वर्ग कर रहे हैं।

## गुरुकुल वैद्यनाथधाम का

### गुरुकुल कांगड़ी से सम्बन्ध

गुरुकुल महा विद्यालय वैद्यनाथधाम का नवीन शिक्षा-सम इस सप्ताह से प्रारम्भ हो गया। पढ़ाई नियम पूर्ण चल रही है। १ जून को श्री सेठ दीपचन्द जी पौडुवार के समापनित्व में अन्तर्दू समा की बैठक हुई। इसमें यह महत्त्वपूर्ण निश्चय किया गया कि गुरुकुल में शिष्यकला को भी शिक्षा का आवश्यक अंग बना दिया जाय। इसका प्रारम्भ बच्चों की विनाई और बागवानी से होगा। बिनाई के प्रारम्भिक ध्येय के लिए श्री सेठ दीपचन्द जी ने १०० तथा श्री पं० मिहिरचन्द जी भीमान ने ५० प्रदान करने की उदारता प्रदर्शित की है। बागवानी के लिए श्री राय-बहादुर मजनन्दनसिंह, रिटायर्ड एक्सप्रेस कमिश्नर बिहार ने ३५० की लागत का एक कूप बनवा दिया है। तदर्थ ये सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं।

बिहार और बंगाल प्रान्त की आर्थी जनता को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल कांगड़ी की विद्या समा ने अपने गत अधिवेशन में गुरुकुल वैद्यनाथधाम की "विद्यारत्न" परीक्षा को अपनी अधिकारी परीक्षा के समकल स्वीकृत कर लिया है। इस स्वीकृति के कारण यहाँ से दशम श्रेणी पास करके विद्यार्थी गुरुकुल कांगड़ी के महाविद्यालय विभाग में सूत्रा प्रवेश पा सकेंगे। बिहार और बंगाल प्रान्त के अभिभावकों को जितने गुरुकुल कांगड़ी के दूर होने तथा वहाँ शुल्क की कुछ अधिकता होने के कारण अपने विद्यार्थियों को भेजने में कठिनाई होती थी-अब खल्प ध्येय में और समीप ही यहाँ पर अपने बालकों को पूर्ण योग्य बनाने का सुअवसर प्राप्त हो गया है। महाविद्यालय विभाग में जाने वाले विद्यार्थियों को योग्यतासुसार श्री सेठ दीपचन्द जी द्वारा प्रदत्त छात्र वृत्ति भी मिल सकेंगी। गुरुकुल वैद्यनाथधाम में प्रारम्भिक ५ श्रेणियों का मासिक शुल्क ११ तथा ऊपर की ५ श्रेणियों का १३ है। जो अभिभावक अपने बालकों को प्रवेश कराना चाहते हैं। उन्हें गुरुकुल कार्यालय में प्रार्थनापत्र नियमावली आदि मंगा कर शीघ्र बालकों को प्रविष्ट कर देना चाहिए।

सुधाविद्यार्थी गुरुकुल वैद्यनाथधाम स्थाल परराना, बिहार।

### स्वास्थ्य समाचार

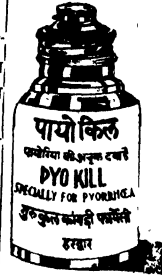
अशोककुमार १४ श्रेणी महेन्द्र, जित्यदेव १४ श्रेणी महेन्द्र, प्रमप्रकाश ५ श्रेणी विषमज्वर, रामचन्द्र ४ श्रेणी कसर, सर्वमित्र ४ श्रेणी कसर, कान्ति-कुमार ४ श्रेणी कसर, रुपनारायण ३ श्रेणी कसर, ज्ञानचन्द्र ३ श्रेणी कसर, स्वामिबिहारी ३ श्रेणी कसर, सत्यमित्र ३ श्रेणी कसर, रामप्रकाश बरोही ४ श्रेणी विषमज्वर, मदन २ श्रेणी रक्ततिसार, विषयदेव ४ श्रेणी विषमज्वर, महेन्द्र ४ श्रेणी विषमज्वर।

गतसप्ताह उपरोक्त ३० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। चिं० प्र० मदन को अंगी अर्ध खून की शिकायत है आशा है कि शीघ्र आराम हो जावेगा। आज-कल वर्षा होने से मौसम ठण्डा है।

# गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी की प्रसिद्ध औषधियां



**ब्राह्मी तैल**  
दिमाग को तरो-  
ताजा और चिच  
को प्रमथ रखता  
है, बालों को  
सुन्दर, मुलायम  
और काला करता  
है। प्रतिदिन स्नान  
के बाद सिर पर  
लगाइए।  
मूल्य १/ पाव



**पायोकिन**  
दांतों को मजबूत  
चमकाले और  
सुन्दर रखता है।  
उत्तम मंजन है।  
पाथोरिया की अ-  
करीर औषधि है।  
मूल्य 1/ शीशी।



**चन्द्रप्रभा**  
इन गोलीयों में लोह  
भस्म और शिलाजीत  
की प्रधानता है, उत्तम  
रसायन है। स्वप्नदोष  
जिगर की कमजोरी,  
खून की कमी आदि  
रोगों में विशेष लाभ-  
दायक है।  
मूल्य 11/ तौला



**भीमसेनी सुरमा**  
आंखों के सब रोगों  
की अकरीर औषधि  
है। चरमा लगवाने या  
किसी और दवा के  
इस्तेमाल करने से प-  
हिले हमारे भीमसेनी  
सुग्में का इस्तेमाल  
कीजिये।  
मूल्य 11/६ शीशी

## ब्राह्मी शरबत

ब्राह्मी बूटी, बादाम आदि सुद्धि-चर्चक वस्तुओं में तैयार किया गया है। ठंडक और तरोताज़गी लाता है।  
मूल्य १/1/ बोटल।

# गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी ज़िस्वानपुर

प्रांच { देहली—चार्दनी चौक।  
मेरठ—सिपट रोड।  
जैमियां { उज्जय—पं० बालगोविन्द गयाप्रसाद अवधी  
बरेली—टाऊन हल  
आगरा—रावतपाड़ा

वीथी मुलासय के प्रकल्प में गुरुकुल मुद्राकालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विधार्थशास्त्र का मुख्य-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ] गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार ७ आश्विन १९६८; २० जून १९६९ [ संख्या ८

## गुरुकुल कांगड़ी में बुनियादी तालीम का एक वर्ष

( ले० भी मो० हरिप्रिय ओ वेदालंकार )

सन् १९६७ को समाप्त के साथ, गुरुकुल कांगड़ी में बुनियादी तालीम का पहला वर्ष खत्म होना है। इस एक साल में शिक्षा-सम्बन्धी अनेक नये अनुभव हुए। कर्ताई के बारे में कई असल, कठिनाईयाँ आयीं और उनके हल ढूँढे गये। आकर हुसैन कामेटी की रिपोर्ट में दिये गये पाठ्यक्रम को, सासकर उनके कर्ताई-सम्बन्धी हिल्से को आदर्श मानकर, उसे कमल में लाने की भासक कोशिश की गई। वर्ष के अन्त होने पर, सारी प्रगति पर नजर डालने हुए, यह देखना आवश्यक हो जाना है कि हम इस आदर्श को कितना बिना सके हैं और हमारे अनुभवों के आधार पर आकर हुसैन कामेटी के पाठ्यक्रम में किन परिवर्तनों की आवश्यकता है।

पहली छमाही की रिपोर्ट 'नई तालीम' के म.च. १६५१ के अन्त निकल चुकी है। वर्षभर की आलोचना करने के पहले दूसरी छमाही की कर्ताई की रिपोर्ट देना आवश्यक है। इसमें मज़हूरी की दर सूत के नमूने के अनुसार अ० भा० बरखा साथ की मंजूरा की गई दर से ही लगाई गई है। कर्ताई के साथ सुनाई की मज़हूरी भी जुड़ी गई है। इस छमाही की यह विशेषता रही कि जिनकी भी कई विद्यार्थियों में इस अर्थ में कानो यह सब उम्मीने स्वयं बोर, चुनी, सोड़ी और चुनी थी। इस तरह कर्ताई और सुनाई में आ।) और कवास की काम १ मे १.10) हमें प्राप्त हुए। इससे से हुए हुए और टूटे-फूटे सामान की क्रम ३) निकाल दी जाय, तो विद्यालय को १६।) की आमदनी हुई। इस प्रकार पूँजी विद्यार्थी आय ७ आना साढ़े ७ पाई हुई। इसके साथ पहली छमाही की १० आना साढ़े ५ पाई की कम ई जोड़ी जाय, तो हर विद्यार्थी की सावन्तर की कर्ताई १०, १ पाई हुई।

दूसरी छमाही की आय कम होने का कारण यह था कि इस छमाही में कर्ताई बहुत कम हुई। पिछली बार कर्ताई के दिन १३२ थे, मगर इसबार कुल ६० ही थे।

कर्ताई के दिनों की कमाई के कई कारण हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि इस छमाही की विशेषता यह थी कि विद्यार्थियों ने कवास की लेनी में लेकर सूत कानने तक सब प्रक्रियाएँ खुद की थीं। ये सब काम कर्ताई के लिए नियत समय में ही हुए, इस कारण उस समय विद्यार्थी कर्ताई न कर सके। साथ ही पक्की छमाही में कर्ताई के लिये डेढ़ घण्टा दिया जाता था, मगर इस छमाही में पढ़ ई की अर्थिकता के कारण सवा घण्टा ही दिया गया। परन्तु अपने अप धुतने का परिणाम बहुत अच्छा है। विद्यार्थियों की ग.न. सूत के नमूने, मज़हूरी व समानता में काफी उन्नति हुई। उत्पादन की शक्ति भी बढ़ी। पिछली छमाही में डेढ़ घण्टा कर्ताई की दैनिक आमदनी २४ पाई थी; किन्तु इस छमाही में सवा घंटे की कर्ताई में यह आमदनी १.०२ पाई हो गयी। यदि इसे ३ घंटे २० मिनट की अवधि में प्रकट करें; तो दोनों छमाहियों की कर्माई क्रमशः २.०६ पाई तथा २.७ पाई हो गयी।

इस छमाही में कर्ताई कराते हुए तार के न टूटने पर अधिक ध्यान दिया गया। इस बार का सूत अपनी धुनाई होने कारण अधिक अड़क का, मज़हूरी और समान था। कर्ताई की परीक्षा के समय दूसरी बातों के साथ तार टूटने की संख्या में ध्यान में देली गयी और यह भी ग्याल किया गया कि विद्यार्थी दूरे तार को कितनी बार साँधने हैं और कितनी बार तोड़ कर फेंकने हैं। सारे विद्यालय में ऐसा कोई विद्यार्थी नहीं निकला, जिसका तार एक बार भी न टूटा हो; लेकिन अधिक से-अधिक बार तार टूटने की संख्या १५ थी और कम से कम २ फेंकने वाली की संख्या बहुत कम थी। २०२ विद्यार्थियों में केवल १५-२० विद्यार्थियों ने ही टूटा तार फेंका। बाकी सबने टूटा तार साँध लिया।

वर्तमान छमाही में सुनाई का काम मूब बढ़ाया गया। विद्यालय में काम आरंभ हुई पुनियाँ विद्यार्थियों ने खुद धुन कर मैयार की थी। चौथी व पाँचवीं क्लास के सभी विद्यार्थी सुनाई अच्छी तरह साँध गये। तीसरी श्रेणी की सुनाई का मामूली काम कर लेती है। पहली दूसरी के लिए चौथी पाँचवीं सुनाई करती हैं। इस सब में ३१ तानों के लम्बे से विद्यार्थियों ने ६० नेरकई चुनी। पिछले सब में

३५ रुई ३२ तौनों से चुनी गयी थी। इसमें स्पष्ट है कि इस काल में विद्यार्थियों ने चुनावों में काफी तरफकी की है। कांकर का खर्च हमारे यहाँ बहुत कम होता है। इसका कारण यह है कि हम इसकी जगह सख्त खमड़े का व्यवहार करते हैं।

इस बार कुछ नया सामान भी मंगाया गया। ३० पेटी खर्च लिये गये। बुनियादी तालिम के शिक्षा केंद्रों तथा विद्यालयों में किसानचक्र के इलेमाल पर खास जोर दिया जाता है। परन्तु अनुभव से हमें मालूम हुआ है कि अधिक दाम के होने पर भी पेटी खर्चा किसानचक्र से कई बातों में ज्यादा मुफ्त है। लड़के किसानचक्र को बहुत जल्दी तोड़-तोड़ कर खराब कर देते हैं। पेटी खर्च में किसानचक्र उगादा जगह येरना है, सुरक्षित कम होता है, और इसमें पेटी खर्च जितनी सफाई नहीं रखी जा सकती। पांचवीं श्रेणी में ६ महीने बाद जिन विद्यार्थियों ने तकली पर कलाई और चुनावों में शरीरधमन प्राप्त कर ली, उन्हें ही पेटी खर्च पर खून कातने की आशा दी गयी। पेटी खर्च के सिवाय सलाई पट्टी, ओटनी, चुनकियाँ, ३६ तौनें और एक धनुवन-जुवा भी मंगाया गया।

उद्योग के लिये यह जरूरी है कि हिसाब ठीक तरह से रखा जाय। हिसाब रखने का तरीका न तो ऐसा होना चाहिये कि अध्यापक को क्लक बन जना पड़े और न इतना कम कि सही सही हिसाब तैयार करने में दिक्कत हो। हमने अपने यहाँ हिसाब को इन दोनों दोषों से बचाने का प्रयत्न किया है। विद्यार्थियों के रोज के तार उतनी दिन अध्यापक तार बंदों में लिख लेता है और उनका कुछ जोड़ भी कर देता है। मुख्यअध्यापक से रोज के काम पर हस्ताक्षर कराने जाने हैं और यह तारों की सख्या की जर्नल-पड़नाम करता है। बहुत फुई हो तो उसका कारण भी पूछता है। तीसरी से पांचवीं तक के विद्यार्थियों को कई महीने में दो बार छोटी हुई रूई तोल कर दी जाती है। इसको चुनवाना, चुनी बनवाना और कतयाना अध्यापक के जिम्मे होता है। लड़के उस रूई को मसख-बुद्धि के कारण बहुत अजीब तरह चुनते हैं। हर पत्रबाड़े में विद्यार्थियों से कना सून वापस लेकर तोल लिया जाता है और उसका रजिस्टर निहाल काम बरतूँ का भी हिसाब लगा दिया जाता है? उस समय सूत की रिपोर्ट हर श्रेणी में भेजी जाती है। सूत ठीक न हो तो भेजी के अध्यापक का ध्यान उधर खींच दिया जाता है।

इस सब कलाई तो पाँचों श्रेणियों में कराई गयी; किन्तु यहाँ शिक्षा पद्धति के अनुसार समयाय शिक्षापद्धति द्वारा पहला श्रेणी को ही पढ़ाया गया। विशेष विस्तार में न जाकर सब विषयों के उदाहरण देना ही ठीक रहेगा।

**सूल-उद्योग**—उद्योग कलाई रखा गया। कलाई का महत्व शिक्षा पर अंकित करने के लिये, कलाई का धड़ा शुरु में रखा गया। इसका दूसरा लाभ यह था कि शान्त बाले अन्तरी में अध्यापकों को कलाई की प्रक्रियाओं से सबबन्धन करने में सुगमना रहनी थी। कलाई के सि गाने

में शुरु में बहुत विकल्पन पेश आई। २० विद्यार्थियों को श्रेणी की एक अध्यापक के लिये सिखावना बहुत कठिन जान पड़ा। अन्त में, पंचम श्रेणी के पाँच लड़कों को चार चार विद्यार्थी लौप लिये गये। उन्होंने अध्यापक की देखरेख में बच्चों को सिखावना शुरु किया। इस तरह १२ दिन में ही बच्चों कलाई की कला को मुख्य मुख्य बाले सीख गये। इसने हमें यह अनुभव हुआ कि पुरानी और नई तालीम में यह महान अन्तर है। पुरानी तालीम तो कारखानों की सामूहिक उत्पादन (Mass Production) की तरह है जिसका परिणाम हिसा, माकफट और वर्तमान काल के मीथम युद्ध हैं किन्तु नई तालिम एक शिक्षा के कौशल के समान है जो लड़क लड़क का मनुष्य बर्तन का निर्माण करता है। कलाई की परीक्षा के समय भी दूसरी श्रेणियों के विद्यार्थियों में सहायता ली गयी और अन्य बातों के साथ-साथ ताकत की बर टूटना है, इस पर विशेष ध्यान दिया गया।

**मानृसाध**—शुरु में बच्चे महीने बातचीत के रूप में जगानी शिक्षा दी गयी। तकली के बारे में मनुष्य कविताएँ याद करायी गयीं। बच्चों को आसपास के गाँवों में घासाट करारकर उन्हें गाँव के काम करने वालों का परिचय कराया गया। बर्तरे, लुहार, जुलहा, किसान इन सबके काम को दिखाकर बाद में इनके सम्बन्ध में प्रश्न पूछ कर बच्चों में येथे लो बुरे बतों को अभिव्यक्त कराने का प्रयत्न किया गया। किनाब में पड़ना तो ६ महीने बाद ही शुरु किया गया; किन्तु लेल-कुद में अक्षर-ज्ञान पहला सुमारी में थोड़ा-बहुत शुरु हो गया था। कलाई में काम करने वाला और आसपास की परिचित वस्तुओं के वाक्य बनाकर उनके सामने रवे गये और वाक्य-पद्धति में अक्षर-ध्यान कराया गया।

**सामाजिक विज्ञान**—इसने अमली तालीम पर उगादा जोर दिया गया। बच्चों को उठने-बैठने के ढंग और नमस्कार को उचित प्रकार का अभ्यास कराया गया। जब लड़कों ने अध्यापक को अपना काम दिखाने की उतावली की, तब उन्हें अपनी बाग की बाट देखने और ऊनार बांधने की पद्धति का महत्व बताया गया। इसी तरह काम के कूड़ेदान पर भी जोर दिया गया। और धूस, पछाड़ वगैरह पुराने बालकों की कहानियाँ सुनाकर, कठोर परब्रम, अध्यापसाय, निश्चय की दृढ़ता आदि चारित्रिक गुणों के विकास की आर ध्यान दिया।

**प्राकृतिक विज्ञान**—स्कूल के चारों ओर के वातावरण को प्रत्येक ब्रतु के अनुसार काल, पेड़ों, पशु-पक्षियों का अन्तः तरह अवलोकन कर, तीन हिस्सों में बाँट दिया गया। श्वेत-धैर्याम में चारों तरफ आम के पेड़ मोर से लगे होते हैं। उस वक बच्चों को मोर व हाकर मनस्पत-जगत के फूल और फल के काम को बताया गया। अमो पर बैठा कोयल का पाठ भी इसी के साथ दिया गया। बर्बाकत में बदल, शम्प वजुर और विजल, का कुछ बाले बताई गयीं।

नर्दियों में माजर, सूली गोमी आदि तरकारियों का परिचय कराया गया।

**गणित**—गिनती, खूब के तागों की सहायता से सिखायी गयी। बच्चों को स्लेट पर लिखते समय पत्रले जो अंक बिन्दुकुल निजीय जान पड़ते थे, अब उनमें एक नयी जान आ गयी। गणित जैसा शुरुक विषय अब उन्हे सरस आनन्द होने लाता।

इस तरह समयय पद्धति से शिक्षण देने हुए पहलां अंशों में कोई बड़ी दिक्कत नहीं हुई। दूसरे विषयों का पाठ्यक्रम तो पूरा हो गया किन्तु कताई का ज़ाकिर हुसैन कमेटी का पाठ्यक्रम पूरा नहीं हुआ। इनक कारण शायद यह था कि हमने कताई को 3 घंटे २० मिनट न देकर वुल १५ घंटा ही दिया था। फिर भी हमने यह अनुभव किया है कि पहलां अंशों की कताई के पाठ्यक्रम में दो बातों पर अवश्य विचार होना चाहिये।

(१) कमेटी ने पहलां अंशों के पाठ्यक्रम में धुलाई को लक्ष्य दिया है। हमने पहलां अंशों के बच्चों में छोटी धुलाई करने का प्रयत्न किया, किन्तु चलाने की बात तो दूर रही, ६ से ८ वर्ष के बच्चों उस धुलाई की ठीक तरह से उदा भी नहीं सकते थे। अगर पढ़नी अंशों के बच्चों की उमर १०-१२ बरस तक की हो, तो वे यह काम कर सकते हैं, किन्तु ६-७ बरस की उमर वाले बच्चों के लिये धुलाई का काम असम्भव है।

कमेटी ने पहलां अंशों में धार्मिक शिक्षण से तर्क न कर प्रस्ताव किया है। तीन महीने बाद हमने बच्चों से धार्मिक शिक्षण से तर्क न करने का आग्रह किया, किन्तु वे चला नहीं सके। इसके बाद भी अनेक प्रयत्न किये गये किन्तु हम अपने प्रयत्नों में सफल नहीं हो सके।

आशा है बुद्धिजीवियों के सहयोग से हमने अपने इन सूचनाओं पर विचार करने की कृपा करेंगे।

## अपमान का करारा जवाब

—मिस रैथबोन के पत्र पर कर्वेन्द्र रतीन्द्र-भारत की वर्तमान बुद्धिवादी जिम्मेदारी अंगरेजों पर

'ब्रिटिश-पार्लियामेंट' की सदस्या कुमारी इल्लेन रैथबोन वहाँ के विध्वंसिधायियों का संयुक्त प्रतिनिधित्व करती हैं। सन् १९३१ में वे भारत भी आई थीं। उनक दाव है कि वे भारतीय अंगरेजों के दिलों के लिए लड़ती रही हैं और १९३५ के शासन विधान में भारतीय अंगरेजों के अधिकारों का उन्होंने सुव्युक्त समावेश कराया है। इसी आधार पर उन्होंने भारत के असहयोगी नेताओं और विशेषकर पंडित जवाहरलाल नेहरू को लक्ष्य करके एक छुला पत्र लिखा है।

उस पत्र का संक्षिप्त आशय यह है कि इस समय युद्ध प्रयत्नों से असहयोग करके भारतीय नेता महात्मा जवाहरलाल नेहरू को लक्ष्य कर रहे हैं। अगर सरकार ने बिना उनकी सलह

के युद्ध में उन्हें घसीट डाला तो कौनसा पाप हो गया। इस भरी मूल के यह अर्थ नहीं हैं कि इस संकट के समय भारत का सहयोग युद्ध से खीन लिया जाय। यदि भारतीय नेता इस समय 'हाँ' कह देंगे तो अब उन्हें आपत्त करने की कौन सी गुंजाइश है। यदि वे "नहीं" कह देंगे हैं तो सरकार ने अच्छी ही किया है कि उनमें नहीं पूछा क्योंकि उस हालत में सरकार को बड़ी कार्यवाही करनी पड़नी जो इस समय वह कर रही है।

स.याग्रहों नेन पुगामों विधिशा मूलों को दोहराकर अपने मत को पुष्ट कर रहे हैं। उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। यह दिनेन के संकट का समय है और आपत्त के सहयोग से यह समय शोषण का समय है और आपत्त की वैधानिक गति का अधिक तीव्र और उन्नतिशील बनाया जाय।

—अंग्रेजों का दृष्टम—

महाकवि रवीन्द्रनाथ ने इस पर का उत्तर देने समय कहा है कि मैं मिस रैथबोन को नहीं जानता। पर मैं समझता हूँ कि वे साधारणतया शिष्ट विचार-सम्पन्न महिला हैं। उसका पत्र पढ़े जवाहरलाल को लक्ष्य करके लिखा गया प्रतीत होता है। आज वह योद्धा सत्याग्रही जेल में बन्द हैं। यदि पंडित जवाहरलाल बाहर होते तो वे 'मिस रैथबोन को कफरा उत्तर देने में भीमार हूँ फिर भी उनके घृष्टता पूर्वक पत्र का उत्तर देने के लिए विवश हूँ। अंग्रेजों की विचार-प्रणाली समझ चुकने के बाद हम में अब भी इतना आत्म-सम्मान बाकी है कि हम अपने गरीब देशवासियों के कष्टों की तरफ ध्यान दें। अंग्रेजों का यह दृष्टम है कि हमने उनकी भाषा द्वारा ही हमें ज्ञान प्राप्त किया है। यूरोप की किसी अन्य भाषा द्वारा भी हम ज्ञान प्राप्त कर सकते थे।

अंग्रेजों ने हमारे लिए क्या किया? मैं अपने आस-पास भूत-सनाये गये दुबले पतले अर्द्धभयों को गोटी-गोटी पुकारने देखता हूँ। मैंने गांधी के अंग्रेजों को पीने के पानी के लिए कीचड़ कुन्दे देवा है क्योंकि भारत के गांधी में कुट्टक कुल्लों की तद्वत् वे भी कम हैं।

अंग्रेजों की बहादुरी—

अंग्रेजों ने हमारे देश का शोषण किया है। गरीबों के लिए उन्होंने क्या किया? भारत के भी पुरुषों की गरीबी को मैंने अपनी आँसों में देखा है। अंग्रेज इंग्लैंड में जिस तरह रहने हैं और भरन में जिस आगम की जिन्दगी बिताते हैं यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। जब बहूनेरे भारतीय मीन के घाट उतार दिए जाते हैं, हमारी धन सम्पत्ति लूट हो जाती है, माँ-बहिनों की बेहज्जनी होती है तो इन बेहद ताकतवर अंग्रेजों के हाथ नहीं हिलाने। पर सुदूर पार से हमें यह सब्रण पढ़ाया जाना है कि भारतीय अपना घर खुद नहीं समझ सकते। इतिहास में ऐसी मिसालों की कमी नहीं है जबकि लड़ाई के दृष्टिकारों से पूरी तरह लैस लड़ाकों ने भी अपने से जबरदस्त ताकत के सामने हथियार डाल दिए हैं। [ नैव पृ० ६ पर ]

**गुरुकुल**  
७ अ.षाढ़ शुक्रवार १९६८

### कावित्व

( लेखक — श्री पं० शर्मोष्ठाजी विद्यालङ्कार माध्याप्यायं )

मोक्षेण गुरुकुल विद्यालय कोसी )

मंस्कृत भाषा के ललित साहित्य में हृदय-सागर की अनन्त उमि-मल्लासों को हृ मुम्य श्रावेशों के श्राधीन विभक्त कर दिया गया है। उन श्रावेशों के नाम निम्न लिखित हैं—१. रति या प्रेम, २. हास, ३. शोक, ४. क्रोध, ५. उन्मत्त, ६. भय, ७. मुग्धता या मुग्धा, ८. विस्मय, ९. तथा शम।

### रति या प्रेम

किसी वस्तु की ओर मन के आकर्षण को रति कहते हैं 'रतिमनोऽऽकुलये मनसः प्रश्रायितम' (सां. दर्पण)। वे वस्तु वस्तु और चेतन के भेद से दो प्रकार की हो सकती हैं जिन में वृषकी लगा कर उठनी हुई सुन्दरी के मुखचन्द्र की तरह, हुए सनुद की सतह पर उद्य होने हुए पृष्चन्द्र मरुदल की देख कर हृदय तरंगित हो उठता है। यह सहसा उधर आकृष्ट हो जाता है। शिष्य-कर्मा की इस अनुपम विमूढि के लिये प्रशसा का भाव उन्मत्त सुन्दर गुदगुदी करने लगता है। यह प्रशसा तदन्व होनी है। इस प्रशसा के साथ कष्ट को एक मात्र श्रापी सहन कर लेना लेने की वासना नहीं होनी।

रत्नर कुलों अथवा मिष्टाणों से सुसज्जित बाँधिया तन्त्री की देख कर प्रायाः स्वभाव से ही मुल में पानी आ जाता है। यदि बूच भी लगा हो तब तो कहना ही क्या? मन किसी तरह भी उधर से हटना नहीं चाहता। इस आ वल में वस्तु की श्राप लेने की प्रवृत्ति प्रशाना के भाव से प्रबल हो जाता है। कृष्णार्णों के भेद से इसी शिवाय के नाम आशा, प्रतीक्षा, कामना, लोभ, अनुराग, आशक्ति तथा प्रेम आदि हो जाते हैं।

अनन्य स्मृतिवश के स्वाभिक स्वर्ग की स्वर करने हुए पला में पड़े नवजात शिशु के श्राघर पर सहसा ही मनुष्य हास्य की झुझुके जाती है जिसे देख कर पास बैठो ममता प्रयी प्राणा का निःस्वार्थ हृदय आलम्ब के सागर में तिमोर लेने लगता है। यह भी एक आकर्षण है। जिसके अन्दर स्वर्गीयता, निःस्वार्थता, शोचनता तथा वृत्ते है। इस आकर्षण को वसन्तता कहने हैं। लल भर बाद ही हृदय बदल जाता है। सोने हुए उन्मी शिशु की मुख मुद्रा कुछ विह्वल सी होने ही लगती है कि स्नेह व्याकुल माता दौड़ कर उसे उठा हृदय में लगा लेती है। यह भी एक आकर्षण है। नाम इनका भी यहा—वसन्तता है किन्तु इन के

घटक कुछ निम्न हैं—स्वीयता, समर्पण, उद्वृत्ता तथा कान्तता।)

गुरुकुल में लड़ने हुए राजा को वीरगति प्राप्त हुई। सैनिकों का प्रयत्न असफल हुआ। सब नगर, नवा, स्वयं को अपनी उ दिव्ता व्याकुल कर रही है। बायो और शनु लुट-मार, श्रायाचर कर रहे हैं। इसी समय कुछ सहायकों के साथ पथ निकलने का यत्न करनी हुई महारानी उनके हाथ पड़ जाती है। असमर्थ श्रवला के धन, मान, प्रश्र यहां तक कि प्रतिष्ठा की रक्षा में समर्थ है पड़ जाती है। वे दूध, मांस इतलो के लिये उसके दूध-मुँह बालक को निन्दयता पूरक राद् से लीचने हैं बलक यथा शक्ति यहाँ श्रियटना जाना है। यह संश्राग नहीं जानता कि प्राता उसकी तो क्ता रूपी भी रक्षा करने में लिकुल श्राशक है। किन्तु उनके लिये माना श्रावीध अलब, कठिन कवच, रङ्ग दुर्ग, सकल सम्पत्ति तथा एक मात्र उसकी अपनी वस्तु है। बलक के हृदय में शिवांगों की शिभिजा नहीं होती। यह तो केवल इ ना ही जानता है कि प्राता उसकी है। यह मय से या लाम से इन सत्यता को नहीं उल सकना। इस ममत्व में स्वार्थ नहीं। यद्वा सोच नहीं सकता कि उसका सुख दुःख माना पर निभर है इसलिये उने प्राता से पृथक् न होना चाहिये। यही आकर्षण हा उने चाहना है। भगवान के प्रति भक्त की भावना भी आकर्षण होती है। इसीलिये बालक तथा परमहंस में कुछ भोद्गा सा ही अन्तर है। दोनों के लिये स्वा मात्र मातृ-तुल्य है दोनों के लिये श्रि लोभायम काश्चन एक सन न है। यहा तो अद्वैत है। दुःख यही है कि बलक बान के नाम से अज्ञान कः ही श्राधिक उपाजंन करता है श्रौरतत्व ज्ञान के लिये उमेकिर यहाँ लाशकर आना पड़ता है जहाँ से यह चञा था। यह प्रयास एक कुक्ष को भर कर उसे पुनः खोदने के समान है। अस्तु, प्राता के प्रति बालक के इन पूर्व वर्यित आकर्षण के लिये म नवी भाषा में यदि कोई शब्द है तो काम में काम में उन्मे रहीं जाता। यही आकर्षण जब इससे कुछ श्राधिक आशुम अश्रवने में बड़ा की ओर झोंटों के हृदय में उतरा होना है तो इसे भक्ति या अश्वा कहने है। बराबर व लों क पर-पर आकर्षण का नाम शिञ्जना है। दुबो के प्रति हृदय के आकर्षण को कश्वा या द्या कहने है। बल्लुनः यह तरव मूल में हृदय की एक ही शक्ति है जो श्रिय के भेद म नाना रूपों में माना नम श्राग्य कर प्रकट हो रही है।

बालक बालका बचपन में एक सध खेलेने आ रहे हैं। प्रति दिन कितनी बार कठोर-प्रमाने की लोला होती है। वे अश्रु झोंटे से संसार में पवित्र स्वर्गीय मुख लुटने फिरते हैं। उनके हृदय और जिज्ञा में हमारी अश्वा बहून काम दुरा है। हृदय जो कुछ सोचना है जिज्ञा वही कह ड लेती है। बनावट या कपड का वहाँ कुछ काम नहीं। श्रिषिक लड़ाई, श्रिषिक सुलह—लिर कुछ भी नहीं। श्रिरे २ व.टिका में वल्लन की तरह उनके तन मन में भी नव-श्रीक प्रस्तुति हो उठता है। तब किसी एक सुन्दर प्रमात

में उद्यान निकुंज के निकट अचलक कुट्टक उठी कोकिल की प्रथम कूक का सुन कर अकस्मात् बाँके चार होने ही वे दोनों उच्छ्वल हृदय एक अदृश्य मोहनमन्त्रि में जकड़े जाते हैं। विधाता के कोप से विभाजित, अज्ञान काव्य से मिश्रण के क्षिप्र आतुर दो अर्थ, दो धर्मों से आकर एक हो जाते हैं। विधाता की अपूर्वी रचना पृथना को प्राप्त होती है। शूलाक और भूगोक के संयोग से एक नवीन महापत्र का निर्माण होगा। प्रकृति का कष्ट र अलौकिक सुख से उल्लसित हो जाता है। प्रायस्त्र पुराता संसार नवीन प्रतीत होने लगता है। यह भी एक आकषण है। इस में मदिदा स्त्री मादकता, मनु मी मनुता, स्त्रीगत स्त्री मोहकता तथा अमृत स्त्री संजीवनी शक्ति है। इन का नाम प्रेम है। यही आदित्र शङ्कर का मूल है।

साहित्य-शास्त्र के अनुसार दाम्पत्य प्रेम ही शुभ श्रुतार का विषय है। अत्र प्रेम गुरु अंक तथा देशभक्ति आदि तो 'भाव' आदि के अन्तर्गत समझी जाती हैं। इसी प्रकार हास, शोक, क्रोध, आदि अत्र अत्र येशी कुछ र अवस्थाओं के भेद से बहु रूप तथा बहु नाम होकर हास्य, कम्प, रोड आदि अनेक स्त्री अथवा रस भास आदि को उत्पन्न करने हैं।

## कविता

नद रंगिन बेहिन मे, मूर्च्छित रूपों खेती की लाग मे, विचकार रेखाओं द्वारा, गायक स्वर्गों के उचार अदाय मे श्रीर कवि शब्दों द्वारा दूसरों के हृदय में इन्हीं आवेशों का संचार कर देते हैं। वस्तुतः ये सभी कवि हैं। ये सभी आदर्श जगत् में स्थित न्याय 'शिव, सुन्दर उस स्वकप-सल का आभास इस अर्थ-लोक में भी कर सकते हैं। तथापि काव्यता शब्द का मुख्य प्रयोग इस शब्द चित्र के लिये ही किया जाता है। इस प्रकार कविता का लक्षण यह हो सकता है—'हृदय के आवेशों का यह जाति शब्द-चित्र जो दूसरों की हृदय यीक्षा से भी उन्हीं आवेशों को प्रति ध्वनित कर सके, कविता कहलाता है।' किंसा वस्तु के नाप, तोल, रूप रंग आदि का वर्णन कर हम उनका एक चित्र सुनने वाले की कल्पनाशक्ति में उपलब्ध कर सकते हैं किन्तु उसमें तथा कवि के शब्द चित्र में आकाश पाताल का अन्तर होगा। यह भी हो सकता है कि कवि के चित्र में स्वयं अंग प्रयोगों का वर्णन न हो तथापि यह चित्र परम चित्र को अपेक्षा अधिक आनन्ददायक होगा। क्योंकि कवि का चित्र आवेशमय होगा। किन्ती वस्तु को प्रत्यक्ष देख कर हमें कुछ भी आनन्द प्राप्त नहीं होगा किन्तु कविता में उसी का वर्णन पढ़ कर हमारा हृदय उल्लस पड़ता है इसका कारण यह है कि कवि का हृदय आनन्द मार्मिक होता है। जिस वस्तु का हमारे हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता कवि का हृदय उससे तेरंगिन हो उठता है। फिर वही तरंग उसकी कविता को पढ़कर हमारे हृदय में भी उठने लगता है। जिनके अन्तर मार्मिकता नहीं होती उन्हें रसम कविता पढ़ कर भी आनन्द प्राप्त नहीं होता।

आधिमीनिक तथा आध्यात्मिक-दोनों संसारों में अनन्त अदृश्य, नियम नियम काम कर रहे हैं। साधारण मनुष्य पानी की बरसने हुए देवता है किन्तु वह वर्षों के सिद्धान्त को नहीं जानता। वह किसी से प्रेम, किसी से शत्रुता, किसी पर क्रोध, किसी पर कठका करना है किन्तु ये क्या हैं—इस रहस्य को वह नहीं जानता। एक पढ़ा लिखा पुरुष भी इन दोनों प्रकार की घटनाओं को देखना है, इनके रहस्य को समझना है। इ का विश्लेषण कर सकता है किन्तु इनको एक अति शब्द का रूप नहीं दे सकता। यह वैज्ञानिक अथवा मनो-वैज्ञानिक है, कवि नहीं। एक तीसरा व्यक्ति इन रहस्यों को देखता है, समझता है और इनका ऐसा जीवित वर्णन करता है कि दूसरों का हृदय अपनी पृथक् सत्ता को भूलकर स्वयं भी उसी वर्णन के चित्रमय नाटक का एक पात्र बन जाता है। इन ही साहित्य की परिभाषा में 'साधारणी कथा' कहा गया है। अनन्त प्राणियों में परिपूर्ण इस विशाल जगत् में मनुष्य की आत्मा अपने आपकी अनेका अनुभव करती है। दूसरों की तो बात ही क्या, अपनी ही अदृश्य उसने लिये एक अज्ञात पत्नी होता है। एक सहृदय कवि की रचना को पढ़कर उसका हृदय उल्लस पड़ता है। वह कह उठता है—दिलकुल ठीक। यह तो मेरा हा अनुभव है। उसे आश्चर्य होता है कि वह अनुभव उसने अपने हृदय में उतना स्पष्ट नहीं जितना कि कवि के शब्दों में। यही कवि का कान्त दर्शित्व है। संसार में अनेक नियम नियम कार्य कर रहे हैं, कवि उन्हीं 'नियमों' का साक्ष्य कर वर्णन करना है इस लिये उसकी कविता सांकेतिक सार होती है। परमात्मा सब से बड़ा कवि है। इसी लिए उसकी कविता अमर है। वेद कहता है—'परय देववर काव्यं न ममार न जयति।' मार्मिक कविता में यह अनुभव कर कि उस ही की तरङ्ग के सुख, दुःख, यानना, यन्त्रण भीमाने वाले और भी बहुत हैं, मनुष्य की हिम्मत बँधती है और उसके हृदय में स्वयं वेदना उत्पन्न होती है। हम कविता में रसास्वाद करने हैं इसका कारण यह स्वयं वेदः। हा है। कवि आदर्श वादी हा या यथार्थ वादी, मानव-प्रकृति तथा वाद्य-प्रकृति का पृथक् र वर्णन करने वाला होया मिश्रित, यद् उसकी रचना दूसरे हृदयों में स्वयं वेदना उत्पन्न नहीं कर सकती तो वह कविता नहीं।

## रुन्द और तुक

रुन्द और तुक कविता के आवेश का अङ्ग नहीं हैं। इनके रहने हुए भी स्व हीन रचना कविता नहीं कहला सकती तथा इनके बिना भी सरस रचना कविता कहलाती है। रुन्द और तुक का कविता में वही स्थान है जो एक गुड़बनी, सुसुल्ल स्वभाव, सुन्दर दमछी के शरीर में बाह्य वेष्टन का है। एक साधारण व्यक्ति जो कविता के गम्भीर गुणों को समझ नहीं सकता, गार्ड जाती हुई रुन्दोत्सव तुकान्त कविता को सुनकर पर्याप्त आनन्द अनुभव कर लेता है। साधारण जनता में ऐसी कविता उच्च कोटि की अनुकान्त अथवा रुन्द-विहीन कवितामे जाती

ले जाती है। भाव पूर्ण, आयत्न उत्कृष्ट, बिना रंग के, विषय की अपेक्षा, रंगीन चित्र की ओर ही जिन प्रकार बच्चों का अनुसारा अधिक होता है ठीक उसी प्रकार भाव पूर्ण आयत्न उत्कृष्ट किन्तु छन्द नुक विहित न कविता की अपेक्षा छन्दोबद्ध नुक न्त कविता साधारण जनता की स्वीय के अधिक अनुकूल होती है। छन्दोमयी रचना में यदि कविषय का गन्ध भी आजाता तो वह बहुत हृदय-हाँसी हो जाती है इसलिये इन बाधा सधनों का प्रयोग कर कवि थोड़े ही प्रयत्न से अधिक व्याप्ति प्राप्त कर सकता है। इसके साथ एक बात अत्यन्त ध्यान में रखने योग्य है यह वह कि यद्यपि छन्द और नुक को कविता का बाह्य-धर्म समझा जाना है, कवि इनका आश्रय लेने के लिए बाध्य नहीं है तो भी यदि वह इनका आश्रय लेना ही नै तो इनके नियमों का पालन निवारण उम्कता परम करविय हो जाता है। नहीं तो सामाजिक उपाय समा नहीं कर सकते। वे कहेंगे कि तो कविता के बाहर के ढाँचे को नहीं संवार सकता वह असली कविता क्या करेगा। इस प्रकार कवि को कवित्व शक्ति पर लक्ष्ण लगना है। इस लिये इनमें कभी शिथिलता न होनी चाहिए। छन्द नया पुराना या कवि का स्वयं गढ़ा हुआ हो—उसमें एक नियम अत्यन्त होना चाहिए। काल की नियमित गति में शब्दों का ऐसा ध्वन्य जिनकी विषयता में समानता हो, छन्द कहलाता है। काल की नियमित गति में शब्दों के उच्चारण में एक उतार चढ़ाव आ जाता है। यह उतार चढ़ाव ही विषयता है। इस विषयता के अभाव में मातृपुत्र नहीं रहता। इसका अनुसारा करने के लिए आप हरामनियम के एक ही घड़े पर उंगली रखकर थोड़ी भी चञ्चल जाकर। कंसा बुरा मातृपुत्र होगा। इसी में नियमित विषयता ले आइए—एक मरगम वन जाओगी। समता उपलब्ध करने के लिए ही सम तथा अर्ध-सम छन्दों की रचना की गई है। विषय छन्दों में यद्यपि प्राकृतिकत्व समता नहीं होती तो भी नियमित विषयता के कारण छन्द का मातृपुत्र कम नहीं होने पाता। यदि एक लक्ष्मी कविता के प्रत्येक पद का छन्द बदलना चला जावे तो विषयता में समता न आए और कविता का आनन्द मंदा जाए। आजकल कुछ छायावादी, कवि स्पष्ट छन्द में कविता किया करते हैं उतम किमी एक नियम का न होना ही नियम रहता है। पृष्ठों पर वे लोग कहा करते हैं कि कविता एक स्वाभाविक वस्तु है। ज्ञान में वे जलधारा की तरह, लता में वे मंजरी की तरह, मोती में वे मूलक की तरह, हृदय में वे कविता स्वाभाविक से ही फूट निकलती है। अज्ञान की जलधारा रेखा गणित के नियमों के अनुसार संघी, तिरछी या बक रेखाओं में नियमित गति नहीं करती। इसी में उसकी मृदुरता है। इसी प्रकार स्वाभाविक कविता नियमित छन्द में कैद होकर नहीं रह सकती। हमारा उपाय के लिए यही उपाय है कि अज्ञान की जलधारा यद्यपि रेखा गणित के नियमों को नहीं मानती तो भी नीचे की ओर बहना, अपने तल को सम करने का यत्न करना चादि शैतिक नियमों का पालन वह अत्यन्त करती है इस लिये आप भी रेखा गणित के नियमों के अनुसार, अत्यन्त ही

अपनी कविता न बगल पर धियल तथा सामान्य शास्त्र का उचित अनुसरण करने की कृपा अवश्य करें। कवि के अन्तस्तर में निरुद्ध रख-खोल गद्य के मधुर कृष्ट से महान् भागों में ध्वनित हो रहा हो, आकाश के अन्ध को तरंगित कर कानों में आते हुए स्वर्गों के कल्प प्रकल्प के साथ सहृदयों के स्तर धूम रहे हों, वेदनामयी सीता की तरल नन्दी के साथ हृदय नाच रहे हों, मधु-सुध सार समीर भी एक क्षण के लिये इवासावरोध कर उठर गया हो, साथ मिलकर चलने हुए नभ के स्रमयन स्वर में समस्त ध्वनाओं की संयुक्त वेदना धिक्की हो रही हो—इसी समय किसी एक के अस्वाभाविक वेदना हो जाने का जो अस्वाभाविक क्षोभाओं पर पड़ता है वही सुन्दर सत्य कविता में अन्वेषण का होता है। सागर आनन्द एकदम किरारा हो जाता है। अस्वप्न गति में चलता हुआ प्रवाह रुक जाता है। इस लिये छन्द की गति का पूर्ण ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

(पृष्ठ 3 का शेष)

मौजूदा लड़ाई में भी बगल पर अज्ञेय, कम्पनी और प्रोक्त लड़के यूरोप के मैदान छोड़ भागने के लिए विवश हुए क्योंकि उनके सामने उनमें अधिक मजबूत व ताकतवर लड़ाके मौजूद थे।

—अरुस्तो की गुस्ताखी—

पर जब आज़ हमारे निहत्थे, गरीब, दीन हीन भाइयों को मुर्खों की मार के सामने भागना पड़ता है तो उस समय हमारे सरकारी अफसर, शायद हमारी कायरता पर घृणा पूर्वक हँसते हैं।

इंग्लैंड के अत्यन्त बादिन्दे के पास हथियार हैं जिससे वह हमने के अस्तर पर युद्धन से अपनी जान माल को रक्षा कर सकता है। लेकिन इसके विपरीत भारत में तो ऐसा कानून है कि लाठी चलाने की तात्पर्य देना भी मुर्म है। हमें जान बूझ कर निहत्था और कमजोर बनया गया है न कि हम सदा अपने हथियार बन्द मालिकों की वधा पर निर्भर रहें।

—अरुस्तो सरकार के कसौटी—

आज़ अज्ञेय तो कौन सिद्धांत मानने वालों से घृणा करते हैं क्योंकि उन्होंने अज्ञेयों की बुनियाद भर में फैंसों प्रभुता को ललकारा है। इसके विपरीत शैथिल्य हम से यह आशा करत है कि हम निहायत अज्ञेयों के साथ पेश आयें। इसीलिए न कि उन्होंने हमारे गले में गुलाबी का नीक डाला है? किसी सरकार की अरुस्तो की कसौटी यह नहीं है कि उसने अज्ञेय अरुस्तो उसके बारे में क्या राय रखने है। असल कसौटी यह है कि उस सरकार ने साथ ही जनता की भलाई के लिए, कौन से अरुस्तो काम किये हैं।

हम अज्ञेय तो जो हम कारण नापसन्द नहीं करने कि उनके लिए हमारे दिलों में कोई जगह नहीं है। हम उन्हें इसलिये पसन्द नहीं करते कि वे हमारी भलाई के उद्देश्य बनने का यत्न करते हैं। हमारी भलाई का उन पर जो दृष्टि (ट्रस्ट) था उसने प्रति उन्होंने जोर विध्यात्मदान किया है।

—पूजक सात्यानाश—

द'गरेड के चन्द सुठी भर पूँजीपतियों के फ्रायदे के लिए उन्होंने सारे भारत के करोड़ों नर नारियों का मुञ्ज साचा/नाश कर दिया है। मैं समझता था कि समझदार भरे अंग्रेज अपनी इन गलतियों पर खूप रहेंगे और भारतवासियों को इस लिए धन्यवाद देंगे कि अंगरेजों की इन लुटी गलतियों' हम पर मौन हैं। मिसल वैधवीन को यह नहीं चाहिए था कि भारतीयों को इस क्रूर चाँद पट्टेबाजों के बाद उनके बापों पर इस तरह नमक छिड़कतीं। यह हद टारजे की प्रशिक्षण है।

(आर्य मित्र ने)

## गुरुकुलीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

श्रीमती वाचस्पिनी सभा ने शुक्रवार १३ जून ५१ को गुरुकुलीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का समागोह सफलता पूर्वक सम्पन्न किया जिसका सभापतिव्य गुरुकुल के हिन्दी और संस्कृत साहित्य के उपाध्याय साहित्याचार्य अ. ० प्रो० वागीधर जी विशालकार ने किया।

प्रथम बैठक में आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रगतियों पर वर्तमान कविता धारा और सभ्य प्रगतिवाद की समीक्षा की गई। इसके अनतिरिक्त हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों पर निबन्ध पढ़े गये उनके साथ ही गुरुकुल के कलाकारों ने अपनी सुराचि पृष्ठी कवितायें और गल्प सुनाई।

द्वितीय बैठक में निम्न शोक प्रस्ताव प्राप्त किया गया।

“यह सम्मेलन हिन्दी भाषा के प्रतिष्ठित लेखक और समालोचक श्री ० रामचन्द्र शुक्ल के असामयिक देहावसान पर अत्यन्त दुःख प्रकट करता है और उनको हिन्दी सेवा को प्रशंसा करती है। भगवान उनही आत्मा को शान्ति दें।”

हिन्दी के प्रचार और हिन्दी विरोधी प्रवृत्ति को दबाने के लिये भी प्रस्ताव पाम किये गये। जिनके अन्दर रेडियों

और अज्ञातों में हिन्दी भाषा की अचरलेना के विरोध में प्रस्ताव पास हुआ। त्रिवार हुआ कि गुरुकुल की तरह अन्य विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में हिन्दी को माध्यम बनाया जाय यथा हिन्दी को M. A. वगैरह की उच्चशिक्षा में स्थान दिया जाय इत्यादि विषयों के अनतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ने वैज्ञानिक परिभाषायें बनाने में जो हिन्दी के प्रति अन्वय किया है उनके विरुद्ध प्रस्ताव पास किया; जिसका रूप यह था—

“यह सम्मेलन केन्द्रीय सरकार की उम नीति की जो कि उसने वैज्ञानिक परिभाषा मभिनि बनाने में अपनी छिष्टि रखी है धोर निन्दा करती है, और उम नीति को हिन्दी-भाषा-भाषियों का नीज अपमान समझती है। हिन्दी भाषी जनता से अपील करती है कि उम नीति के परिवर्तनार्थ सर्वत्र संगठित अन्दोलन किये जायें।

आशा है हिन्दी का दिन वादने वाले इस और ध्यान देंगे और उमकी पूर्ण के लिये प्रयत्न करेंगे।

इस प्रकार हमारा यह अधिवेशन सानन्द समाप्त हुआ—आशा है भागे से प्रति वर्ष हम हिन्दी की इस प्रकार समुचित सेवा कर सकेंगे।

—देव मित्र

सन्नी. वाचस्पिनी सभा।

## गुरुकुल समाचार

श्रुतु—इस समाह विशेष वर्षों न धेने पर भी मौसम अच्छा रहा। समाह के प्रथम दो दिनों में, आकाश काले-काले बादलों से आच्छादित रहा। हल्की वर्षा भी हुई। श्रावण की इस सुहावनी श्रुतु में गुरुकुल का माया मुनि हरा-हरी घास से आच्छादित हा गई है। आमाँ की वाटिकाओं में भी बहार आ गई है और उनके सधुर फल ब्रह्मचारियों को प्रति दिन पर्याप्त मात्रा में दिये जाते हैं।

हिमालय पर अच्छी वर्षा हो जाने के कारण यमगि गङ्गा का पानी अब कपाव-वर्ण हो गया है तथाकि वडे ब्रह्मचारियों का एक दल नियोजन रूप से गंगा-स्नान करके नव स्नूने प्राप्त कर रहा है। अवाङ्गों में कुरनी, दण्ड बैठक आदि में भी ब्रह्मचारी बङ्गी द्वितचरयो से भाग ले रहे हैं। पढ़ाई की ओर ब्रह्मचारी और प्रोफेसर पूरा-पूरा ध्यान दे रहे हैं। अर्ध-गात्र के उपाध्याय श्री प्रो० केशवदेव जी विवाह करके प्रयाग से लौट आए हैं और उन्होंने नग जोरा एष नई उमङ्गों के साथ पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया है। उपयत्र परीक्षाएँ १ जुलाई से प्रारम्भ होंगी।

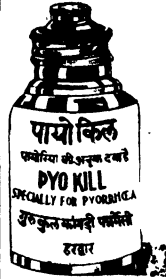
## स्वास्थ्य—समाचार

वीरेन्द्र १४ अंणी श्लेष्मन्वर, रमेशचन्द्र १५ अंणी श्लेष्मन्वर, नरेन्द्र १३ अंणी श्लेष्मन्वर, ओषधारा २ अंणी मलेरियाडवर, रमेशचन्द्र ५ अंणी मलेरियाडवर, गोपालसिंह २ अंणी मारिशा, देवप्रकारा २ अंणी स्वसरा, देवचन्द्र ५ अंणी स्वसरा, अकण ५ स्वसरा, योगेन्द्र २ अंणी स्वसरा, राम कुमार १ कर्ण शूल, अजय कुमार १ अंणी कर्णशूल। गलत समाह उपरोक्त ब्रह्मचारी योगी हुए थे। अब स्व स्वास्थ्य हैं।

# गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी की प्रसिद्ध औषधियां



**ब्राह्मी तैल**  
दिमाग को तरो-  
ताजा और चित्त  
को प्रबल रखता  
है, बालों को  
सुन्दर, मुलायम  
और काला करता  
है। प्रतिदिन स्नान  
के बाद मिर पर  
लगाए।  
मूल्य १/ पाव



**पायोकिन**  
दांतों का मजबूत  
चमकीले और  
सुन्दर रखता है  
उत्तम मंजन है।  
पायोेरिया की अ-  
वधीर औषधि है।  
मूल्य 1/ शीशी।



**चन्द्रप्रभा**  
इन गोणियों में लोह  
भस्म और शिलाजीत  
की प्रधानता है, उत्तम  
रमायन है। स्वप्नदोष  
जिगर की कमजोरी,  
खून की कमी आदि  
रोगों में विशेष लाभ-  
दायक है।  
मूल्य 1/1/ तांला



**भीमसेनी सुरमा**  
आंखों के सब रोगों  
की अकभीर औषधि  
है। चरमा लगवाने या  
किसी और दवा के  
इस्तेमाल करने से प-  
हिले हमारे भूमिमेंनी  
सुभमे का इस्तेमाल  
कीजिये।  
मूल्य 1/1/ शीशी

## ब्राह्मी शरबत

ब्राह्मी बूटी, बादाम आदि नृदि-वर्धक वस्तुओं में तैयार किया गया है। ठंडक और तरोताज़गी लाता है।  
मूल्य १/1/ बोतल।

**गुरुकुल फार्मसी गुरुकुल कांगड़ी ज़िस्तखानपुर**

देहली—बांदी चौक।  
मेरठ—सिपट रोड।

पंजैमियां { उधाय—प० बान्दीपिन्ड गयाप्रसाद अयश्री  
बरेली—डाऊन हाल  
आगरा—रायतपाड़ा

औषधी हुसूसराय के प्रबन्ध से गुरुकुल नृदिवालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल. —)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६]

गुरुकुल कागड़ी, गुरुवार १५ आशु १९६५; २० जून १९६१

[ संख्या ६

## गुरुकुल की विशेषताएं

१. (लेखक—साहित्याचार्य श्री ओ. बागीश जी विशालपुर।)  
प्रचलित शिक्षा प्रणाली के जित दोषों का पर्याप्त हल 'गुरुकुल' के पिछले अंकों में कर चुके हैं उन से बचने के लिए, अर्थात् दयानन्द द्वारा सत्य धर्म-प्रकाश में प्रतिपादित शिक्षा के मूल सिद्धान्तों का आचार मान कर सन् १९०२ में अमर शाहीद श्री स्वामी अज्ञानन्द जी ने गुरुकुल कागड़ी की स्थापना की थी। यहाँ हम गुरुकुल की विशेषताओं का उल्लेख करते हैं। प्राकृतिक परिस्थिति—

वेद में ब्राह्मण की उपनिषद् के योग्य स्थान पर्यटकों के निकट नदियों के संगम ही बनताए हैं। इसके अनुसार श्री स्वामी अज्ञानन्द जी ने गुरुकुल की स्थापना अत्यन्त अनुकूल परिस्थितियों में की थी। यहाँ एक ओर भारतीय आदर्श के समान उन्नत, तपस्वीयों के जीवन का कठोर, समन्वित निष्कष्य सा दृढ़ तथा महापुरुषों के हृदय जैसा सुविशाल विभाजन लड़ा है। दूसरा ओर अर्थियों की शिक्षा के समान कल्याण कारिणी, महाकवि का प्रतिभा सी अक्षुण्णवर्षिणी, महात्माओं की विमल दृष्टि सी पप हारिणी तथा पता के सत्य सा मयूर, भगवती भागीरथी अपने कल कल निगार में किसी अलौकिक स्वर का सुना रही हैं। यहाँ का वायु-मण्डल कलाकार की कल्पना के समान स्वल्प-शुभ्रु की मुसमान सा निर्दोष तथा बाल-गर्ज की रश्मियों सा भ्रुकुण्डितक है। यहाँ के स्वयं-सुमोल आभ्र कुंतों में किसी अलक्ष्य संगीत की ध्वनि गुंज रही है। दिवालय के इन्ही प्रयोगों, भरीरथा के इन्हीं तलों, उत्तरालम्ब के इन्हीं बनों में वैदिक आर्यों की युग युग की साधना आज भी निरालस लंरता है। 'कुम्भ' महापर्व में अपनी शक्ति को अत्यन्त देव, अर्थात् दयानन्द ने सर्वमेव-यज्ञ कर इसी स्थान में तपस्या द्वारा असांभव-संभव किया था। वर्ष की सभी ऋतुएं यहाँ दिल खोल कर अपनी काल-रत्ना का अभिषेक करती हुई आती हैं और चला-जानी हैं। ऐसी ही परिस्थितियों में तो नव-युवकों की अन्तर्निहित शक्तियों का स्वाभाविक पूर्ण विकास

संभव है। वय्य पशुओं ने व्याप्त भीषण निर्जन बनों में समग, हृदय का निर्मल बनना है। दिवालय दिन गिरि शिल्पों में अडबलवां करने, मोटे में मोटे रात्र कपड़ों में भी सुलक हडकपट उत्पन्न करने वाले, बंगा की तरंगों में शीतल, पो-साध के पश्चिम पवन तथा वैशाल्य ज्येष्ठ की प्रलय मध्य रश्मियों में संलग्न, लता टूटों को कुल-सामी नीलग्रहों में शरीर कष्ट सहित्पु बनना है। वसन्त तथा वर्षा की वर्षानातीत प्राकृतिक शोभा मानव हृदय में कवित्व एवं दार्शनिकता की उत्पन्नना करनी है। पर्वतों पर आगने प्रागने लड़ जाना, नदी में झंझों तैरना, दूर दिगन्तों तक दृष्टि का अग्रान्द प्रवाह आत्म विधाम तथा उन्माह के साथ स्वयं हृदय की भावनाओं को विशाल बनाने हैं। प्रम और नगरी के दूषित प्रभाव यहाँ फटकने नहीं पाते।

### शारीरिक विकास—

ऐसी उन्नत परिस्थिति में स्वभाविक गुरुओं का सहवास, उन्नत भोजन व्यायाम तथा धार्मिक शिक्षा सोने में सुहावे का काम करने हैं। भोजन में भी दूध फल आदि पर विशेष ध्यान दिया जाना है और वयं में एकवार उनके स्वास्थ्य की विशेष परीक्षा अवश्य की जाती है। गुरुकुल का प्रत्येक ब्रह्मचारी खेल में भाग लेता है जिसमें उसने Sportsmanship का विकास होता है। व्यायाम, कृती के अनिदिक गर्मियों में ब्रह्मचारी तैरने का भी अभ्यास करने हैं जोकि एक अत्यन्त उपयोगी कला है। गढ़ दुकेश्वर के बगल स्थान के मेले पर प्रतिवर्ष तैरने की खुली प्रतियोगिता होती है। उसमें गुरुकुल के ब्रह्मचारी ही सदा प्रथम पारितोषिक सदा प्राप्त करते हैं। गुरुकुल की हाका टीम दूर दूर तक प्रसिद्ध है। ब्रह्मचारियों का मुख्य कार्य खेल नहीं। प्रतिवर्ष कुछ जिलाड़ी अपनी शिक्षा समाप्त कर यहाँ में खेल जाते हैं इस प्रकार हमारी टीम सदा बदलती रहती है। इस दृष्टि के रहने हुए भी गुरुकुल की टीम ने कई प्रसिद्ध क्रीड़ा सामुच्चों में भाग-वार विजय प्राप्त की है जिसके कारण उन्ने कलकत्ते के सामुच्चों में आग्रह पूर्वक प्रति वयं बुलवा जाता है। मेरठ, शाहजहापुर, बिजौर, सहानपुर आदि स्थानों

में गुरुकुल पढ़तीं ने समय समय पर बहुत परीक्षा प्रप्त की हैं।

मानसिक विकास—

श्रेणी के लिए नियत पाठ्य पुस्तक पढ़ने के साथ २ घण्टे तथा लेखन कला की विशेष उन्नति करने के लिए प्रभावकारियों ने अपनी आश्रम-सभारण बना रखी है। सस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी-नीनों भाषाओं में वाद विवाद तथा वक्तव्य का अभ्यास करने के लिए क्लब अलग सभारण हैं। इन सभाओं की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि गुरुकुल के प्रसन्नार्थी जब कभी लिट्टी-विश्वविद्यालय आदि हिन्दी तथा संस्कृत-व्याख्यान-प्रतियोगिताओं में भाग लेने गये तभी वे सर्व-प्रथम रहे। इसमें यह भी सिद्ध होता है कि अन्य विश्वविद्यालयों की अंग्रेजी गुरुकुल में छात्रों का मानसिक विकास कहीं अधिक होता है। अपने इस मानसिक विकास की बढ़ने के लिए प्रसन्नार्थी, समय २ पर अपने उपाध्यायों तथा बाहर के विद्वानों के विद्वानापूर्वक व्याख्यान भी करवाने हैं। लेखन कला की उन्नति के लिए ये सभारण अपने-अपनी पत्रिकाएं भी प्रकाशित करती हैं, उनमें उच्चकोटि के निबंध, गद्य, कविताएं, सामयिक-दिपणियां आदि रहती हैं। इन सभाओं का बढोत्तन ही गुरुकुल के अनेक स्नातक सरकल लेखक, यश्यां कवि, कृत्यकार्य संपादक तथा प्रसिद्ध यत्ता बने हैं। नेह्रू, चौबीस वर्ष का छोटी सी आयु में प्रग्य रचना कर मद्रासप्रसाद-पारितोषिक प्राप्त करने का मीमांस्य गुरुकुल के स्नातकों की ही प्राप्त है।

गुरुकुल के स्नातक अन्य विश्वविद्यालयों के स्नातकों की अपेक्षा प्रायः अधिक धार्मिक वृत्ति वाले, देशभक्त, ईमानदार, सहाचारी, सेवाजनी तथा तपस्वी होते हैं। हाथ से काम करने में वे सर्वकोष या लज्जा अनुभव नहीं करते। गुरुकुल में उन सब उपायों तथा सधर्मों पर विशेष बल दिया जाता है जिन में नवयुवकों के शरीर, मन तथा आत्मा का स्वाभाविक विकास अधिक में अधिक हो सके। गुरुकुल में प्राचीन शास्त्रों वेदों के गम्भीर अध्ययन के साथ-साथ आधुनिक नवीन विद्वानों तथा अंग्रेजी भाषा और साहित्य का भी उच्च ज्ञान उभरे करवा दिया जाता है। अर्थात् तब यह बात भारत के किसी भी अन्य विश्व-विद्यालय में नहीं है।

मान्यभाषा द्वारा उन्नत शिक्षा—

जो बुराई किसी भी स्थान देश के विश्वविद्यालयों में नहीं है, तथा भारत का कोई भी शिक्षालय जिन में बुरा हुआ नहीं, वह है "विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा"। हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि शिक्षा का माध्यम बन सकने की योग्यता अन्य भाषा में ही ही नहीं सकती। अन्य भाषा द्वारा साधारण में साधारण विषयों की भी समझना विद्यार्थी के लिए कठिन होता है। कठिन विषयों को तो प्रायः उन्हीं भाषाओं में पढ़ लेने के लिये ही अन्य उपाय ही नहीं। इस प्रकार रटे हुए शब्द विद्यार्थी के मस्तिष्क में विज्ञानीय द्रव्य की तरह संचित हो जाते हैं जो वरीक्षा के बाद इस प्रकार उड़ जाते हैं जिन प्रकार पित्रा लुत्तने पर पड़ी।

उनमें निहित विचार विद्यार्थी के विचार के भाग नहीं बन जाते। विद्यार्थी विषय को समझ नहीं सकता इसलिए उन्में बाजारक मोट्टस तथा समझियां ज्यों की त्यों याद करने के लिए बाधित होता पड़ता है। यदि विषय समझ में आ जा तो उन्में रटने की आवश्यकता नहीं होती। मान्यभाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करने समय कठिन विषय की कठिनाई को ही हल करना पड़ता है। किन्तु अन्य भाषा में पढ़ने हुए भाषा तथा विषय दोनों को समझना पड़ता है। कभी कभी भाषा के कारण ही विषय समझ में नहीं आता। अन्य भाषा द्वारा शिक्षा देने से विद्यार्थी के मस्तिष्क पर दुगुना बोझ पड़ता है, यह बड़ा भारी अन्याचार है। पुस्तकें मान्यभाषा में ही तो अब की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान, वह भी बड़ी सुगमता से और छोड़े समय में प्राप्त किया जा सकता है। देश के नेताओं का ध्यान इस बुराई को और अब गया अवश्य है, किन्तु वे भी इसे दूर करने के लिये अर्थ-पर्याप्त चिन्तित नहीं हैं। श्री स्वामी श्रीदानन्द जी ने इसे बहुत पहले अनुभव कर लिया था। इस लिये उन्होंने गुरुकुल में प्रारम्भ में ही उच्च शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी का रखा। गुरुकुल की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है। यहाँ यह परीक्षण नीस रूप में सफलता पूर्वक चल रहा है। तो भी अनुदार विद्यार्थियों के कुछ लोभः इसे अकार्यमक कहने चले जाते हैं। गुरुकुल को इस बात का अभिमान है कि अपने माननीय अंनिवारण शास्त्री की उक्त प्रकाश की धारणा का बल दिया था। उन्होंने अपने अपने आप नियत किये हुए आधुनिकतम राजनीतिक विषय पर गुरुकुल के विद्यार्थियों के संस्कृत भाषा में वादविवाद की सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की थी। गुरुकुल में विज्ञान, यन्त्रविज्ञान-शास्त्र, इतिहास आदि विषयों में शिक्षोपयोगी हिन्दी पुस्तकें सब से प्रथम प्रकाशित हुईं।

वेदादि प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन—

गुरुकुल एक धार्मिक तथा राष्ट्रीय संस्था है, किन्तु यहाँ की शिक्षा अत्यन्त उदार है। उन्नत शिक्षा प्राप्त करने की यहाँ क विद्यार्थी का भुकायन हो नास्तिकता की आश होता है। न वह किसी सिद्धान्त की अन्वेषण में चले कर यो ही मान लेने के लिये तय्यार होता है, उनमें अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता ही नहीं, पूर्ण सहानुभूति भी होती है। वेदों, दर्शनों तथा संस्कृत साहित्य का जितना गम्भीर, व्यापक तथा धार्मिक अध्ययन यहाँ क वाया जाता है उतना भारत के अन्य किसी भी विश्वविद्यालय में नहीं करवाया जाता। भारतीय प्राचीन साहित्य की प्रायः सभी शास्त्रों में यहाँ के विद्यार्थी की बरोकड़ो क गति हो जाती है। यह उनमें अनुसन्धान के योग्य हो जाता है। वेदों पर पाश्चात्य विद्वानों के आक्षेपों का समाधान उसे बनाया जाता है। वेदों को समझने के लिए जिस साहित्य को पहले पढ़ने की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् व्याकरण, निरुक्त, प्रतिशास्त्र, ज्योतिष आदि-यह सब उन्में पढ़ाया जाता है। इस प्रकार वह वेद संरम्भों अपने अध्ययन को स्वतन्त्र रूप में आगे बढ़ाने के योग्य हो जाता है। यह दर्शनों के

विद्यालयों को लुप्त कर देना है, उन्हें दूसरों को सरल भाषा में समझा सकना है। मूलका साहित्य पर उनका पूर्ण अधिकार हो जाना है। वह कवियों को स्वतंत्र आलोचना तुलनात्मक, वैज्ञानिक, तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कर सकता है। उसे प्राकृत भाषा तथा पाली में भी परिचित करवा दिया जाना है जिसमें कि वह जैन, बौद्ध साहित्य आदिमें अनुसन्धान का कार्य कर सके। गुरुकुल का विद्यार्थी अथवा शिक्षकों के साथ साथ सामाजिक, भाव, कान्ति, भक्त, भक्तित्वादि की भी लुप्त जानना है।

इतिहास—

गुरुकुल में इतिहास शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से पढ़ाया जाता है। श्री आचार्य रामदेव जी ने इस दिशा में विशेष परिश्रम किया था।

जाति निर्मूल के कार्यों में इतिहास का बहुत बड़ा भाग होता है। उसको दृष्टि में रखकर गुरुकुल में इतिहास के अध्ययन पर बल दिया जाता है। इसमें हमारी दृष्टि शुद्ध राष्ट्रीय रहती है। गुरुकुल में श्री पं० जयचन्द्र, विद्यालङ्कार, श्री डा० सत्यदेव विद्यालङ्कार सम्बन्धित कार्य के इतिहासिक उपकरण हैं।

निःशुल्क शिक्षा—

अन्य शिक्षापालयों में विद्यार्थियों को भारी शिक्षा-शुल्क देना पड़ता है। किन्तु गुरुकुल में शिक्षा के लिए कोई शुल्क नहीं। भोजन वस्त्र आदि का व्यवसाय ही यहाँ किया जाता है। बाहर के विद्यार्थियों को ठहरान के रूप में भी बहुत व्यय करना पड़ता है किन्तु यहाँ वह भा नहीं। विद्यार्थी जब भी, जिस गुरु से, जिस विषय में चाहे, सहायता प्राप्त कर सकता है। ऐसी सुविधा भला अन्यत्र कहाँ है ?

सदाचार शिक्षा—

गुरुकुल की निम्नलिखित कक्षाओं में विद्यार्थियों के साथ उनका अधिष्ठाता सदा रहता है जो उनको देखभाल करना है, उनके आचार व्यवहार पर दृष्ट रखता है। समय समय पर उन्हें आचार्य द्वारा सदाचार के विभिन्न अंगों की शिक्षा भी दी जाती है। किन्तु महाविद्यालय विभाग में आने पर उन्हें इनमें कठोर नियन्त्रण में नहीं रखा जाता। उन्हें इस बात का अवसर दिया जाता है कि वे अपनी उपरदायिता को स्वयं सम्भाल और निम्नो का पालन कल्याण बुद्धि से करना लें। इस समय में नहीं कि उन्हें कोई देव रहा है। इस प्रयोजन के लिए यहाँ प्रत्येक विद्यार्थी प्रवर्तित किया गया है। यह एक परीक्षा है जिसमें आचार के विभिन्न अंगों के लिए अंक नियत हैं। विद्यार्थियों के व्यवहार का देखभाल प्रतिमास उन्हें ३६५ दिये जाते हैं। इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए बिना कोई विद्यार्थी जातक नहीं बन सकता। इस परीक्षा के कुछ विषय यह हैं—आज्ञापालन, समय-पालन, मुशौल्ता, शिष्ट व्यवहार, सत्य, सेवा, प्रसन्नचित्त इत्यादि।

वर्षा शिक्षा—

आजकल देश में वर्षा-शिक्षा-योजना की बड़ी धूम है। शिक्षा के क्षेत्र में यह सचमुच एक क्रान्ति है। महात्मा

गांधी ने इसमें विशेष प्रयोग प्रदान किया है। उनकी निर्देशों के अनुसार इसकी रूपरेखा बनी है। इसके द्वारा शिक्षा, राष्ट्रिय, सामाजिक तथा व्यावहारिक दोनों ही जायगी। इसके उपयोगी अंगों को अपी अव्ययकताओं के अनुसार परिष्कृत करे। इसी वर्ष गुरुकुल की प्राथमिक कक्षाओं में प्रवर्तित कर दिया गया है। अज्ञा है यह परीक्षा बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। इसमें निर गुरुकुल के दो नियोग स्तंभों—श्री पं० हरिदत्त जी वेदालकार तथा श्री पं० जगन्नाथ जी वेदालकार की यथा संस्कार-शैली में तय्यार किया गया है।

परिष्कार प्रणाली—

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरुकुल एक जीवित तथा प्रगतिशील संस्था है। जिन अदर्शों को मूलक संस्कार इसकी स्थापना की गई थी उन्हें इनमें पूर्ण किया है।

ऊपर हम प्रस्तावित परीक्षा प्रणाली का लक्षण देकर आये हैं उनमें सबसे के लिए गुरुकुल में नवीन प्रकार का परीक्षा-पद्धति प्रचलन का कार्य है। यह दो दो वर्षों की परीक्षा एक साथ नहीं होती। अथक वर्ष में पंद्रह पाठ की परीक्षा उत्तीर्ण करने में ही जाती है। इसमें विद्यार्थी के स्वयं पर अधिक बोझ नहीं पड़ता। दूसरी विशेषता यह है कि प्रत्येक विषय का दो विभाग कर दिये जाते हैं। एक भाग का परीक्षा उस विषय का उपरदायता ही होता है तथा दूसरे भाग की परीक्षा उत्तीर्ण विषय का कोई बाहर का विद्वान होता है। इस प्रकार परीक्षा में अनुचित कठोरता भी नहीं आने पाली और हम यह भी पता लगता रहता है कि किसी विषय में हमारे विद्यार्थियों की योग्यता बाहर के विद्यार्थियों की योग्यता के मुकाबले कम तो नहीं रही।

अन्न में सब का आदर्श गुरुकुल ही

जाहू वह जो सिर पर चढ़कर बोले। ३० वर्ष पूर्व, जिन विद्वानों के अनुसार गुरुकुल की स्थापना की गई थी, आज सत्तर उम्रें किया रूप में स्वीकार कर रहा है। सयुक्त प्रान्त के हाईस्कूल बोर्ड ने यह नियम बना दिया है कि किसी भी स्कूल का विद्यार्थी हाईस्कूल की परीक्षा में नहीं बैठ सकता। मान्यता ही शिक्षा तथा परीक्षा का उपयुक्त माध्यम हो सकती है; विद्वान रूप में यह प्रायः सर्वत्र स्वीकृत हो चुका है। हाईस्कूल तक यह कियात्मक रूप में धारण कर चुका है। बलराम विश्व-विद्यालय इण्टर मीडियेट तक शोध ही इन बढ़ाने वाला है। आश्रमवत्स के महान्त का धर्म २ लक्षमा जा रहा है। बोर्डिंग-ऊर्जाओं का उन्नत करने का यत्न किया जा रहा है। विद्यार्थी विद्यालय द्वारा स्वीकृत बोर्डिंग-हाऊसों में ही रह सकते हैं। इस सबका अभिप्राय यही है कि उन्हीं नगरों के दूषित प्रभाव से यथासंभव बचाया जा सके। यद्यपि यह सब उपाय वायु को रोकने के लिए जल लगाने के समान हैं तो भी इनमें यह प्रकट हो जाता है कि संसार गुरुकुल की ओर आ रहा है यद्यपि बहुत धीरे धीरे। देश के नेताओं का ध्यान इतिहास के अध्ययन की तराही की ओर भी प्रवृत्त रूप में आकृष्ट [ शेष पृ० ६ पर ]

# गुरुकुल

१४ अप्रैल गुरुवार १९६८

## प्रगतिशील-साहित्य

[हरिभाऊ उपाध्याय]

प्रगतिशील साहित्य पर बहूत लिखने के पहले हमें 'प्रगति' और 'साहित्य' का मतलब अच्छी तरह समझ लेने की जरूरत है। सवाल उठने है कि प्रगति किसकी? साहित्य क्या और किस लिए? जब इनकी गहराई में जाने हे तो जबाब मिलता है—'प्रगति' जीवन की और 'साहित्य' जीवन के लिए। जो साहित्य जीवन की प्रगति की तरफ ले जाता है वही प्रगतिशील साहित्य है। और फिर साहित्य क्या है? 'सूत्र' शब्द में जीवन का अभिव्यक्ति ही साहित्य है।

जब यह कहा जाता है कि साहित्य तो शास्त्रन वस्तु है, राजनीति युग युग में चलती रहती है, अतएव आर्थिक और राज्‍य है, उसमें टल-बंदिया है, छोटे दर्जे के जोशों का यह ध्यान है, साहित्य उब, निर्मल, आकाश में सवार करने वाला मनीषी है, तब मुझे यही लगना है कि हमने न साहित्य को समझने की कोशिश की है न राजनीति को न जीवन को। हमने एक एक टुकड़े को ले लिया है, उसे ही 'पूर्ण' समझ लिया है और उन सबके एक सूत्र 'जीवन' तक पहुँचने की जरूरत ही नहीं समझी है। मेरी राय में तब जैसे साहित्य जीवन की शाय्‍दी में अभिव्यक्ति है वैसे ही राजनीति व्यवस्था-रूपी बर्ण विशेष में जीवन की अभिव्यक्ति है। राजनीति का उद्देश्य है जीवन को मध्यस्थित बनाना और प्रगति की ओर ले जाना। साहित्य का उद्देश्य है जीवन को प्रसर और सुसंस्कृत बनाना। और संस्कारिता तथा व्यवस्थित प्रगति के ही साधन है। वास्तव में जीवन को हम किसी एक बाने में बाँधकर या बन्ध करके नहीं रख सकते। उसे समझने के लिए उसके कतिपय टुकड़े कर लेने पड़ते हैं।

अब यह सवाल पैदा होता है कि जीवन क्या है? मेरी समझ में जीवन शरीर में या आकारों में बंधा हुआ जैतन्य का कण या मोत है। गति, प्रवाह, वेग, हलचल, आन्दोलन क्रिया, चमक ये जैतन्य के लक्षण हैं। शरीर या आकार में बंध जाने से जैतन्य या जीवन को एक मर्यादा जरूर प्राप्त हो जाती है लेकिन उसका असर इतना ही हो सकता है कि जैतन्य या जीवन की शक्ति कुछ कठिन हो जाये, मगर उसके आसलाने लक्षण तो उसमें जरूर ही पाये जायेंगे। साकार या शरीर बद्ध हो जाने से जहाँ उसकी शक्ति को मर्यादा में रहना पड़त है, वहाँ उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। आकाश की विजली में अधिक व्यापक ताकत है; जैप की बिजली की ताकत

सीमित होती है। मगर इसलिए जैप निरंतर सतत प्रकाश देता रहता है और आकाश की बिजली की चमक आँवों को चौंधिया देती है, और फुटपा कुञ्ज नहीं।

जब जीवन जैतन्य है, उस (क्रिया, हलचल, वेग, आदि) हैं तो साहित्य और राजनीति आदि जो उसकी उदा-मुदा अभिव्यक्तियाँ या स.धन हैं, उनमें भी ये लक्षण दिखाई देने चाहते हैं। शास्त्रन धर्म और युग-धर्म में फर्क या फासला महत्तर पैर और आँसू का। आँसू पर और दूर तक देखना है, पैर चलना है, धीरे-धीरे भी और दौड़ कर भी। मगर आँसू जिनकी नेत्रों उसमें नहीं। जो शास्त्र देखना दूर तक है, मगर चलना नहीं और जो शास्त्र चलना है मगर देखना नहीं उन दोनों में कुछ कुछ सामियाँ हैं। जबलो मनुष्य यह है जो देखना भी है और चलना भी और पृष्ठ मनुष्य व यह है, जिसके देखने और चलने में सामंजस्य है, मेल है। देखने व लाने आदर्शवादी और चलने वाला व्यावहारिक कहलाता है। सबा मनुष्य व्यावहारिक आदर्शवादी ही हो सकता है। याने वह तो आदर्श को अमल में लाने की ज्यादा-से-ज्यादा कोशिश करता है। आदर्श हम शास्त्रन धर्म की तरफ मुन्वतिव करना है और व्यवहार हम युग-धर्म की उपयोगिता और महत्ता बनाना है। यदि साहित्य शास्त्रन धर्म का उपासक है तो राजनीति युग-धर्म में बँधी हुई है क्योंकि साहित्य कला और इशारा करना है और राजनीति को करना पड़ना है। जिसे करना पड़ना है, उसे नजदीक, आगे-पीछे, आस-पास भी देखना पड़ना है और उसका हिमास्य लगाना पड़ना है। साहित्य यदि दाव या विचार है तो राजनीति कम है, साहित्य यदि खण्ड है तो राजनीति सिपाही या कर्म योगी है। जो दोनों में नाना नहीं देखने या उसे तोड़ डालना चाहते हैं वे साहित्य और राजनीति दोनों का—शास्त्रन धर्म और युग-धर्म दोनों का दूध करने हैं।

साहित्य के भी दो रूप हैं एक उदास देने वाला, दूसरा हान और सुसंस्कार देने वाला। आजकल बहुतेरे लोग मनोरंजक, ललित या उदास देने वालों को ही साहित्य कहते हैं, शेष का शिक्षण या तरबतान में दाखिल करते हैं। लेकिन साहित्य के शास्त्रन महत्त्व पर तो जंग घरी लोग दे सकते हैं, जो उसे व्यापक अर्थ में मानते हैं, क्योंकि साहित्य का शिक्षण या तरबतान नामक अर्थ ही शास्त्रन धर्म के अर्थ आ सकता है, मनोरंजक या ललित अर्थ नहीं। यह तो सांस्कृतिक कर्तव्य है।

गति जीवन का लक्षण है इसलिए साहित्य भी गतिमान होना चाहिए। लेकिन महत्तर 'गति' के कोई मानी नहीं है जब तक कि उसका कोई उद्देश्य न हो। बिना लक्ष्य की तरफ जो गति होती है उसे प्रगति कहते हैं। तो जीवन का लक्ष्य क्या है? पूर्ण विकास से अर्थात् बुद्धिगम्य न.म जीवन के लक्ष्य को नहीं दिया जा सकता। जीवन के कितने लक्षण या धर्म हैं उन सबका अधिक-से-अधिक विकास ही जीवन का लक्ष्य हो सकता है। लेकिन विकास किसलिए? मनुष्य ही नहीं जीवमान के मुक्त, सच्चिद, स्वतन्त्रता और शान्ति के लिए। इससे हम इस नतीजे

पर पढ़ते कि जो साहित्य जीवन को मूख, समृद्धि भन्-  
-भन्ना और शान्ति की तरफ ले जाता है वही प्रगतिशील  
साहित्य कहा जा सकता है।

क्या हिन्दी का साहित्य प्रगतिशील है? 'प्रगति' शब्द  
शाब्दिक धर्म के लिए लाया नहीं हो सकता, युग-धर्म पर  
ही लागू हो सकता है। यह समय-सापेक्ष है। यह वर्तमान  
की अपेक्षा रहना है। वर्तमान की मुल्य में ही आप  
किसी को प्रगतिशील या उससे उलटा बना सकते हैं।  
तो इस समय हिन्दुस्तान की आवश्यकता क्या है? हिन्दु-  
स्तान का जीवन विह्वल की या प्रगति की किस अन्वेष-  
ण है? यह सफा है कि हिन्दुस्तान अन्ध गुलाम है।  
ब्रिटिश साम्राज्य के यह मरी तरफ इकट्ठा हुआ है और  
उभे उभमे जल्दी-से-जल्दी डूबकर आप-आप नष्ट लेना है  
और बाद को दुस्सन ही ऐसे मानव-समाज का निर्माण  
करना है जो सही, स्वच्छ, स्वस्थ और शान्तिमय हो।  
यह कशन-बशन, यह संघर्ष, यह आनुरता, दयाकूलना  
हिन्दुस्तान का वर्तमान जीवन है। क्या वर्तमान हिन्दी-  
साहित्य में हमारा यः जीवन अभिव्यक्त हो रहा है?

हम तब हे कि हिन्दुस्तान की अजादी जनता को  
ज प्रति, संगठन और बल से मिलने वाला है। हम सब  
की सारी कोशिश यहाँ है आर होनी चाहिए कि जल्द से  
जल्द जनता को इसके लिए तैयार करें—हिन्दुस्तान का  
मानव जनन सिपुख हो। हिन्दुस्तान के जीवन की सभसे  
बड़ी पुकार है—क्या हिन्दी साहित्य में यह प्रतिध्वनि  
हो रही है?

हिन्दुस्तान को जो राज कायम करना है, जो समाज  
धनाता है वह मुट्टी भर लोगों के लिए नहीं, सारी जनता  
के लिए होगा। तभी वह सच्चा राज और समाज बन और  
कहला सकता है। अब तक जो राज-व्यवस्था यहाँ रही है  
और जो समाज बना हुआ है उसमें समाज के मुल्य का  
तो ध्यान रखा गया है मगर उसकी आज़ादी और आज़ाद  
भाषों में बनने वाली प्रणालियाँ, संस्कृतियाँ और उनकी  
रचना का स्वाध्याय नहीं किया गया है। अब जो राजप्रणाली  
बनेगी, जो संस्कृति रचने जायगी उसमें स्थायी न-वर्षों  
का पूरा स्वाध्याय रखा जायगा। क्या इस भावी राज-  
निर्माण की कल्पनाओं का विविध हमारे वर्तमान  
साहित्य में मिलता है?

हिन्दुस्तान अधिवासक स्वार्थ से आज़ादी हासिल  
करने के लिए प्रयत्नशाली है और अब ऐसा दिखलाई  
देने लगा है कि इसी तरफ से वह आज़ाद हो जायगा।  
यदि ऐसा हुआ तो हमारी शासन रचना, मुद्राण, प्रगति  
सम्बन्धी कल्पनायें आसूल बदल जायेंगी। ऊब भी बदल  
रही है। अधिसारिक युद्ध का एक नया ही शास्त्र बन  
रहा है, इसी प्रकार अधिसारिक समाज-व्यवस्था का शास्त्र  
भी बनेगा और बनना पड़ेगा। क्या इन प्रवृत्तियों और इन  
प्रयोगों का परिचय हमारे वर्तमान साहित्य में अच्छी  
तरह मिलता है?

हम यह मोटे तौर पर कह सकते हैं कि हिन्दी के  
कृष्ण लेखकों और कवियों ने शुलसी की पीड़ा को अनुभव  
किया है, आज़ादी की पुकार को सुना है, लेकिन उससे

सबसे स्वरूप को, सकल हो सकते योग्य स्वाध्याय को किनगों  
ने अच्छी तरह पचाया है? भावी भारतीय समाज की  
व्यवस्था ना शायद ही किसी को कुछ तक पड़े हो। इत पर  
अगर किसी ने लिखा है तो वे "साहित्यमेवियों" में नहीं  
"राष्ट्रीयकों" में रूपने शाने होते। इस प्रकार लिखने वाला,  
या राष्ट्रभाषा का प्रचार करने वाला को तो "साहित्यमेवियों"  
कहलव न वाले "साहित्यमेवियों" के आंगण में आने  
लायक ही नहीं स्वभने। इधर कुछ दिनों में हिन्दी  
साहित्य-सम्बलन में राष्ट्रीय वृत्ति की हिन्दी-गर्तों का  
प्रभाव बढ़ रहा है तो बस हमारे पैरों तक "साहित्यमेवियों"  
गसा मानने लगे हैं माना "साहित्यमेवियों" के जेव में अन्त-  
धिक्कारी लेंग नुस पड़े हों और साहित्य पर कुटाराघात  
हो रहा हो। उनके दिल में ऐसा उठ न पैदा होना, वे  
इन्से आराज न होने, अगर हिन्दुस्तान के जीवन में उन्नत-  
न अपने अपने को डुबा दिया होना। वे उन्से विन हन  
या बहुत कुछ अडूने हे इसलिए उनकी रचनायें पाठक  
के हृदय को चूरी नहीं है और न इन समाज में प्रिय या  
प्रचलित ही होनी है।

हिन्दी-साहित्यकों को हम बात की बड़ी शिकायत  
रहती है, कि हिन्दी लेखकों और साहित्यमेवियों को कोई  
कुछ नहीं करता, उन्से अर्थ-कष्ट से पीड़ित रहना पड़ता है  
और कुछ ऐसा लगता है, जैसे पुरस्कार, पारिश्रमिक या  
पेंसा ही कुछ कमीठी उन्से बना रची है किसी लेखक  
की सफलता की, उसकी कुष्ट की। पुरस्कार क्यया रोटी  
की जिन्से शिकायत रहती है उन्से क्या तो साहित्यिक  
के आदर्श और उसकी जिम्मेदारी को समझा है और क्या  
उन्से साहित्यमेवियों होनी या हुई होनी? यह समझना  
भूख है कि दिमाग की कोरी कल्पनाओं से मन की मस्त-  
हिनारी में कोई साहित्य वृत्तन कर सकता है, जब तक  
कि वह जीवन की गदगद में गोले न लगाता हो और  
उन्से में रगन चुन-चुन कर न लाता हो। जिन कल्पनाओं  
भावों और विचारों का जीवन से, जीवन की अनुभूतियाँ  
से कोई नाना न हो, हमारे आसपस के लिये और प्रयत्न  
जीवन से जिनका लेन देन न होना हो उन्से न सर्जीय  
में रखा रहती है, न वास्तविक अनुभूति की आवश्यक।  
वे कल्पना-जगत् की है अधवा मिथ्या है। इसलिए वे तोड़-  
हृदय पर अभिव्यक्त नहीं जमा सकते।

यह एक दुःखद प्रश्न है कि हिन्दी में कोई रवीन्द्रनाथ,  
गार्ध, गोकर्ण क्या नहीं? इसका उत्तर यह है कि हिन्दी  
में जीवन की बलिष्ठता साहित्य का, साधना की बलिष्ठता  
कल्पनाओं को अपेक्षा निगधार भावों को  
महत्त्व दिया गया है और दिया जाता है। हिन्दी के अधि-  
कांश लेखक पुरस्कार या रोटी के लिए लिखते हैं, उन्से  
ऊपर उठकर नहीं रहते। वे "फारमेल" नहीं "फारमेशिका-  
यन्" हैं। यदि उन्होंने सत्य जीवन की स्वाध्याय के द्वारा  
अज्ञान व्यक्तिय बना लिया हो तो उनके पास जगत को  
नेने के लिए निन-नयो अनमोल चीज़ें होतीं और जगत्  
उन पर अपने को न्योड़कर कर देता। और यह कहाँ की  
"मेवा" है जो हर घड़ी "पुरस्कार" का हिस्सा बनती है  
और अपनी "भूख" का रोना रोती है? सरकारी नौकर,

'जी हुजूर', 'सुशामदी, दुग्ध, दुग्ध, पतित, कही सजोय मुक्ति और अनुभूतियों साहित्य रच सकते हैं? यह लिखने समय में हिन्दी लेखकों की कठिनाइयों का कम नहीं आँक रहा है बल्कि एक उच्च साहित्यमंथों के कार्य और जिम्मेदारी का अपना अंदाज़ पेश कर रहा है। प. त्रिपाठीराला भी को कोर साहित्यमंथी कहेंगे। फिर क्यों उनकी लिखी चीज़ों को मामूली हिन्दी पढ़ा भी पढ़ना चाहता है और क्यों 'प्रियधाम' या 'विहार, सनसई' या 'कविता कौमुदी' में दूर भागना है? एक ने जनता के हृदय को छुआ है। दूसरे ने थोड़े से उच्च रचि रखने वालों को आह्लादित करने का प्रयत्न किया है। क्यों प्रेमचन्द के लिए सख रोते हैं, क्यों हर मैथिलीशास्त्र बरबस हीचने है? इसीलिए कि उन्होंने जनता में उबने, जीवन की गहराई में अपना मेल साधने का कोशिश की है।

जीवन या मानव-जीवन अमर प्रेरणा, अनन्त अनुभूति और दिव्य संदेशों का स्रोत है। उसमें रहने रहकर हम न नुद हो। जीवन पर सकते हैं न दुस्वी को दे सकते हैं। जीवन का लक्ष्य या आदर्श तो हम सिर्फ हम बात के लिए जानत और साधधान रखता है कि हम गलत दिशा में तो नहीं जा रहे हैं। परन्तु जीवन का वर्तमान हम वह सिखाता है कि किस समय क्या करें, क्या लिखें और क्या करें? घर में अग लग गयो तो, उस समय जो साहित्यमंथी उभार शूंगर रस का काव्य लिख रहा होगा, वह क्या भाग्य की, जीवन की या साहित्य की सेवा का दायता कर सकता है? जो अनुभूति आत्मपास की विकलता, वेदना आनन्द, उच्छास यानो मुख-दुख से अछूती रहती है वह स्वय की अनुभूति कैसे हो सकता है? जिन साहित्यमंथियों को उच्च विचार रन्ध्र भय और दिव्य तत्व उनके दैनिक जीवन में मल नहीं खाते, उनकी साधना क. विद्य नहीं बनने, वे य द लोगों को खावले हा सयें, और लोगों में अधिक दिन तक न उरें तो यह किसका कसूर?

मेरे कहने का भाव यह है कि प्रगतिशील साहित्य की रचना हम नहीं कर सकते हैं जब हम जीवन की प्रगत के साथ साथ रहे, अपने और दीड़ें। जो साहित्य जीवन के उदार-वृद्धाय से अछूता है वह प्रगतिशील साहित्य नहीं। हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य का अभाव तो नहीं है, परन्तु वह अभावशाली भी नहीं है। हिन्दी-लेखकों का इस तरह ध्यान जाना चाहिए। यदि वे ध्यान देंगे तो उन्हें जीवन या युग-धर्म से दूर भागने और अपनी एक अलग जालि बना लेने की अपेक्षा जीवन में और वर्तमान में घुसने की प्रेरणा मिलेगी और उन बुभकियों में वे जो नीचे खार हिन्दी जगत् का देंगे उनमें न फंसल वे खुद अमर होंगे, बल्कि अपने हिन्दुस्तान को आज़ादी की ही तरफ नहीं अमरता की तरफ भी लौड़ा देंगे।

( जीवन-साहित्य )

[ पृ० ३ का शेष ]

हुआ है। राष्ट्रीय सरकारों राष्ट्रिय दृष्टिकोण से भारत के इतिहास को लिखवाने का प्रयत्न कर रही हैं। देशज्ज व चू र.जेम्सप्रसाद की अध्यक्षता में एक एतिहासक संस्था की स्थापना हुई है जिसके मुख्य कार्यकर्त्ता गुरुकुल के प्रसिद्ध इतिहासवि शास्त्र और २० त्रयचन्द्र विद्यालंकार हैं।

काशी आ द में वर्तमान संस्कृत कालिजों के विद्यार्थी प्रायः नवीन विद्याओं में सर्वथा अपरचित रहकर कृप मण्डक बन जाते थे। व्याकरण की पंक्ति की योजना के सिवाय उनके जीवन का कोई कार्य ही नहीं था। देश की समस्याओं से उनको कोई सरोकार न रहना था। इस दोष को दूर करने के लिये प्रांतीय शिक्षा मंत्रों की प्रेरणा से काशी संस्कृत कालिज (कीन्स कालिज) में अरुनी पाठविधि की आरम्भ कूल बदल दिया है। उसकी रूप-रेखा प्रायः गुरुकुल की पाठविधि के आदर्श पर ही बनाई गई है। दूसरी ओर सरकारी अग्रजो विद्यालयों में अग्रजो भाषा तथा नवीन विद्याओं को इतनी अधिक प्रधानता दी गई है कि उनमें पढ़े विद्यार्थी प्रायः अरुनी-यना से ही वचित हो जाते हैं। निम्न गुरुकुल का पाठ-विधि में नवीनता तथा प्र-वीनता का इतना सुन्दर समन्वय है कि भारतीयता की रक्षा के साथ साथ विद्यार्थी को नवीन ज्ञान-विकास का अधिक से अधिक परिचय इतन प्राप्त हो जाता है। सरकारी विद्यालयों में अब कम बट बदलने लगे हैं। इस प्रकार हम देख रहे हैं कि अज सब गुरुकुल की ही ओर आ रहे हैं कोई जगदी जगदी, कोई धीरे धीरे। आदर्श सबका गुरुकुल ही है।

## स्वागतान्धत्त का भाषण

[ गुरुकुलीय 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के अध्यक्ष पर १३ जून को दिया गया भाषण ]

अ-यागत वृन्द,

आज इस तपोभूमि में आपका स्वागत है। निम्नी भाषा के भाव, गौरव की सर्वप्रथम समझने वाले काल-दर्शी ऋषि दयागन्द के अनुपम शि य महाप्रतिम भारतीय स्वामी अक्षरानन्द के इस आश्रम में, मैं आपका मङ्गल-वचनों से स्वागत करता हूँ।

आज आपका यहाँ स्वागत करने हुए मुझे जो अपर हण हो रहा है, उसका करण यह है कि यह स्थान जहाँ आने के लिये आपने अपनी आराम का अपना निरस्कार करना स्वीकार किया, हिन्दी भाषा की उन्नति से एक विशेष और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध रखता है। महर्षि दय गन्द हिन्दी की गद्द भाषा घोषित करने वाले प्रथम व्यक्ति थे; स्वामी अक्षरानन्द हिन्दी की शिक्षा का माध्यम बनाने वाले पहले कान्तिकारी थे। इसी स्थान से हिन्दी भाषा में कठिन दैहिक और अन्य पाक्षिक विचारों से परिचय कराने वाला साहित्य उत्पन्न हुआ। इस समय मारा भारतवर्ष हिन्दी को अपनी दृष्ट्या उन्नत कर रहा है, सर्वत्र शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाने के निर प्रयत्न किए जा रहे हैं; न जाने कितने छात्र नित्य नई-नया-

निक लया अन्ध प्रकार की पुस्तकें हिन्दी भाषा में प्रकाशित की जा रही हैं। मगर इस में क्या? पुत्र के किन्मा ही बड़ा हो जाने पर माता पिता का उस पर अधिकार कम नहीं हो जाना, सुवर्ण के आभूषण रूप हो जाने पर उस की शान को अप्रसूत नहीं छोड़ दिया जाना! उसमें फिर भी सुवर्ण पैदा होगा, यह निश्चय है। आज वही हिन्दी भाषा हमनी उन्नत हो गई है कि अत्यन्त ऊँचाई पर पहुँचे बुद्धों को भी इसे झल्ले ऊपर उठा कर देलना पड़ना है, और अनप्य यह अनेकों की ईर्ष्या का पात्र बनी है। चारों ओर से हिन्दी के उन्नत और प्रचारित होने हुई साहित्य पर ईर्ष्यास्त शनिदृष्टियों फँकी जा रही हैं। किन्तु भारतीय जनता का जीवन और प्राण यह हिन्दी भाषा दिन बुनी रात चौगुनी उन्नति कर रही है। अदलतों की हिन्दी के प्रति दुर्व्यवहार और रूढ़ियों की निरस्तकार पृष्ठ उदेषा हिन्दी को अपने स्थान में परिभ्रष्ट नहीं कर सकती; और न स्वार्थियों के अन्ध और दुर्नयन पृष्ठ प्रापण्य ही उसका कुछ बिगाड़ सकते हैं। अब हम हिन्दी भाषामें एक ऐसी विस्तार की अवस्था में पहुँच चुके हैं; जहाँ से कोई भी स्थान दूर नहीं। मगर अपनी भाषा की इन सब महत्ताओं को और आप के ध्यान को ले जाता हुआ भी, हमने दूसरे पामे से अपना मुँह न मोड़ने की प्रार्थना करूँगा। निःसन्देह हमने बहुत कुछ कमा लिया है। मगर क्या सब कुछ?—आज भी हमारे सामने बहुत प्रश्न हैं; बहुत सी समस्याएँ हैं। हमारे सामने अपने साहित्य के बर्णोकरण का प्रश्न है; अपने साहित्य की दिशा का मसला है। हमने यह भी सोचना है कि कैसे हमारे लेखक और कलाकार अपना उचित भाग प्राप्त कर सकते हैं और किस प्रकार हम अपने साहित्य को अधिक प्राणवान् और जनता का साहित्य बना सकते हैं।—यह सब ली की कम महत्त्वपूर्ण नहीं कि हिन्दी भाषा के अर्थर में उन विषयों की पुस्तकें मर्गे जाय जिन से हमारा साहित्य अभी तक अज्ञात है—जैसे वैज्ञानिक पुस्तकें आदि। अभी तक भी हिन्दी-भाषा को बहुत स्थानों पर इसके योग्य पद प्राप्त नहीं हो पाया है, जैसे कचहरी, रेडियो या तार आदि विभागों तथा सिक्कों आदि पर। इसी प्रकार हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनवाने में अभी हमने कहीं तक सफलता प्राप्त की है?

एक ओर भी सवाल ऐसा है जिसने हमारा बहुत सी किष्ठा शक्ति को व्यर्थ ही नष्ट किया है; और वह है हिन्दी-हिन्दुस्तानी का सवाल। यह सवाल अत्यन्त दुर्भ्रम और बनाया हुआ सवाल है जिसके पीछे कुछिन्न और लंकीण साम्राज्यिक भावनाएँ अपना खेल खेल रही हैं, स्वार्थियों ने इस प्रश्न के द्वारा हिन्दी को बहुत नुक़्तान पहुँचाने की चेष्टा की है। किन्तु हिन्दी भाषा भाषियों की सबेतनता ने सर्वत्र इसकी रक्षा की है।—इन सब प्रश्नों के साथ साथ अन्ध भी अनेक विचारणीय प्रश्न यहाँ आए हुए अभ्यागत महासुभाव उपलब्ध करेंगे और उन सब पर सहयोग पूर्वक आप विचार करेंगे, आदर्ये, आज अपने पक्ष दृष्टि फँक कर हम अपने भूत से अनुभव लें, अपने वर्तमान को सबेन और कियारील बनाय, तथा

अपने स्वकिस भविष्य कानिर्णय करके उस पर अपनी दृष्टि को गढ़ाकर निरन्तर बढ़ते चलें, बढ़ते चलें।

अन्ध में फिर एक बार आपका स्वागत करता हूँ।

देशमित्र,

स्वागतार्थ्यतः।

### समर्पण

रवि किरणें सौंप रही सपने!

उदयाचल में जो लौं धी,

ऊरा जिनकी परदाईं धी,

दिन भर बिस्तर-संध्या में सुन-

कर किरणें सौंप रही सपने।

विद्यित इनमें कवि का जीवन,

संचिन उर-इच्छायें उमन,

ये कर देंगे युग परिवर्तन-

ओ किरणें सौंप रही सपने।

मार्किते! लो यह रत्नदार,

हमें शशि नरक कर स्वधार,

जग का आ-सो में भर देना-

ओ किरणें सौंप रही सपने।

—भी सुर्व कुमार—

### रण-गीत

उहरो मरने चलने वालों! हमको भी तो आजाने दो, —

तुम कहां अकेले चलें हमें बुद्धो-तुदों सा छोड़ यहाँ,

यह उर साहल, यह बाहु शक्ति, वेगो किस रिपु में होड़ यहाँ,

यदि यहाँ रहे तो पड़े-पड़े कुरी जेने मर जाना है,

भारत का एक वीर रथ में होना है एक करोड़ यहाँ।

हे वीर जेने जाने वालों हमको भी तो आजाने दो:

उहरो आहुति देने वाले हमको भी तो आजाने दो;

छोड़ो न अभी आहुति अत्यिक; हे अभी अपूर्ण घृन-प्यासा,

हैं अभी नहीं घबकी पूरी यह समरानल भीम उजाला।

अर भी आहुति बन भारत के किन्ने लुचिय आने हींगे,

नेलो न लूट जाए कीर्ण अमान लिए आने वाला,

हम जेने अभी अनेकों हैं उनको भी तो आजाने दो।

नेनापनि का आमंत्रण है सादर सहर्ष लोकार हमें;

शायद उनमें भी बड़ कर है जन्मभूमि में प्यार हमें।

जेने पहले सब भारतीय अब तक करते आए हैं,

अस उसो भति अब भी रिपुओं का करना है सहार हरे।

सहार हेतु चलने वालों हमको भी तो आजाने दो,

पहले मारेंगे रिपुओं को लड़ने लड़ने मर जावेंगे;

मरने से पहले बुधन का हम विल आधा कर जाएंगे।

यह ऐसी माय पड़ेगी फिर यह नाम न किले का लेगा

आशा है भारत जननी का ऊँर जरद कम होवेगा,

दुख जननी के हरने वालों; हमको भी तो आजाने दो।

“भी विराज”

### गुरुकुल-समाचार

**श्रद्धा**—वर्षा श्रद्धा प्रारम्भ हो चुकने पर भी हम समाह विशेष गर्मा रही। अधिक उपष्णता के कारण वातावरण में धूपधामना छाया रहा। इस गर्म से गुरुकुल वाटिका के पौधों का बचाने के लिए पक्की नालियों द्वारा जल पहुंचाने का उत्तम प्रबंध पहले से ही था इस कारण इस वर्ष बच्चों को हानि पहुंचने की कम सम्भावना है। वर्षा की प्रतीक्षा उत्सुकता पूर्वक की जा रही है।

**गुरुकुल-कीड़ा भूमि का परीक्षार**—गुरुकुल विश्वविद्यालय में एक श्रद्धा कीड़ाभूमि की आवश्यकता बहुत दिनों से अनुभव की जा रही थी। हाकी आदि खेलों की प्रगति को सुचारु रूप से चलाना श्रद्धा कीड़ाभूमि के अभाव में कुछ मुश्किल सा मालूम पड़ता था। हर्ष का विषय है कि महाराज साहब बलराम पुर के एक-महत्त्व रूप के जमान से इस वर्ष ६-७ वय्य करने की स्वीकृति आ प्र. ति ममाने दे दी है। इन रूप्यों में शीघ्र ही गुरुकुल में एक श्रद्धाभूमि स्वेन का संधान तैयार करवाया जायगा।

**श्रद्धाभवन-चित्रशाला**—गुरुकुल विश्वविद्यालय में चित्रकला की उन्नति को दृष्टि में रख कर महाविद्यालय के कनिष्ठ प्रबंधकारियों ने यह चित्रशाला स्वीनी है। गुरुकुलमें भारतवर्ष के अनिष्टिक अमेरिका आदि दूर देशों से भ. अनेक विख्यात चित्रकार समय २ पर आकर प्रबंधकारियों को चित्रकारी सिखलाने रहे हैं। प्रबंधकारियों की इस चित्रशाला में कला की दृष्टि से अनेक उत्कृष्ट चित्र तैयार हो चुके हैं जिन्हें देख कर अनेक कलाविद् देशक प्रशंसा किए बिना नहीं रह सके। यह चित्रशाला आग-निन उन्नति करने वाली जायगी, मेमां पुर आशा है। इसकी उन्नति में चित्र-हला-कुशल प्र० शास्त्रिणरूप तन-मन से लगे हुए हैं। चित्रों के अनिष्टिक 'स्वागत' का दू भी रंग-विशेषी बेल-बूटों से अनेक सुन्दर चित्रित किए गए हैं जिन्हें जनता बड़े शौक से खरीद रही है। शीघ्र से उत्तम कारीगरी के नमुने भी दर्शनीय हैं।

**कवि-दर्शन का आयोजन**—गुरुकुलीय वारवर्षीनी मभा की ओर से द्वादश दिनों की प्रतिभा के विकास के लिए एक विशाल 'कवि-दर्शन' का आयोजन किया जा रहा है जो कि १२ जुलाई को किया जायगा। महा-विद्यालय के द्वादशवीं बच्चे तथा एवं सम्मह के साथ एक ही दर्शनी से लगे हैं। यह बड़े हर्ष का विषय है कि इस कवि-दर्शन को सफल बनाने के लिए श्री० पं० विश्व-नाथ जी सिद्धांतलकार पूर्वी दिवसस्थ के साथ आग ने रहे हैं। अभिनय में दिग्दर्शन का कार्य भी आप ने ही संभाल रखा है। इस बच्चे तैयारी को देख कर आशा की जाती है कि कवि दर्शन श्रद्धा सफलता पूर्वक सम्पन्न होगा।

### लकड़ी काटने की मशीन बिकाऊ—

लकड़ी काटने की बिजली से चलने वाली मशीन गुरुकुल में बिकाऊ है। जो खरीदना चाहते हैं कार्यालय में पत्र व्यवहार करें।

### पं० धर्मवीर जी वेदालंकार देहलीमें विदाई समारोह

श्री० पं० धर्मवीर जी वेदालंकार मन्त्री अखिल-भारतीय श्रद्धाभवन मैमोरियल टाइट देहली का गुरुकुल इन्टरप्रस्थ का सुक्याधिपता बनाने पर देहली में उन के सम्मान में विदाई समारोह का आयोजन हुआ। दीवान हाल देहली में विदाई के उपलक्ष्य में एक सांघजनिक सभा हुई जिस के प्रधान भी लाल नारायणदास जी थे। श्री० लाला जी ने अखिल भारतीय श्रद्धाभवन टाइट देहली के प्रधान मन्त्री की हैमियत से पं० धर्मवीर जी को सेवाओं की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक श्री० पं० सरदेव जी बिद्यालंकार ने पं० धर्मवीर जी के सांघजनिक जीवन की सराहना करने हुए उनके वैयक्तिक चरित्र की महानता प्रकट की। डॉ० धर्म प्रकाश जी दलियों के नेता ने इन की दलित बच्चों की सेवाओं का बयान किया। इस के बाद पं० वेदालंकार जी को आर्य हिन्दु नर नरिणों का ओर से तथा दलितों के ओर से दो मान-पत्र भेंट किए गए जिनमें उनको हिन्दु जाति के प्रति सेवाओं की प्रशंसा की गई। साम्प्रतिक दैवी विशार के पेशिमासिक भूकम्प, विविध स्थानों में बाढ़ तथा आकाल से क्षति ग्रस्त लोगों की सेवा, दलितों ओर विशेष कर छोटा नागपुर के मुठों आदि जातियों के उच्थान कार्य तथा 'देवदास' के सत्याग्रह में उन की असुल्य सेवाओं का उल्लेख किया गया। स्थानीय लगभग १ दर्जन सभाओं ने उन्हें पुष्पमालां अर्पित कीं। पं० धर्मवीर जी की सारभिन बकृता के बाद सभा समाप्त हुई।

शाम को 'भानक मंडल' की ओर से पं० जी को पार्टी दी गई जिसमें श्री० सुधाकर जी, श्री० इन्द्र जी विशाखा-रूपित आदि के भागण हुए।

### स्वास्थ्य-समाचार

सहैन्द्र ४ श्रेणी विपमउबर, जयदेव ४ श्रेणी विपमउबर, सु.प.प.न्द्र २ श्रेणी विपमउबर, जीवनप्रकाश ५ श्रेणी विपमउबर, रामकृष्ण ४ श्रेणी विपमउबर, सर्वेश्वर ४ श्रेणी श्रेष्ठउबर, मन्मोहकाम १ श्रेणी नेत्र रोग, मधुमेहत ३ श्रेणी स्वसरा, परशुराम ५ श्रेणी स्वसरा, विश्वामय ३ श्रेणी स्वसरा, सुरदेव ५ श्रेणी स्वसरा, देववृक्ष ४ श्रेणी स्वसरा, विश्वामय १ श्रेणी स्वसरा, रामप्रकाश ४ श्रेणी स्वसरा, योगेन्द्र २ श्रेणी स्वसरा, ओमप्रकाश ५ श्रेणी स्वसरा, क्रांतिकृष्ण ४ श्रेणी स्वसरा, प्रेमनिधि ३ श्रेणी स्वसरा, वीरबन्धु ३ श्रेणी स्वसरा, सुरेन्द्र ३ श्रेणी स्वसरा, रामवीर १ श्रेणी कोड़े, रघु काम ५ श्रेणी श्रेष्ठपुत्र, मोमनाथ ३ श्रेणी कनकदे, विश्वनाथ ५ श्रेणी मोच ।

गन समाह उपरोक्त प्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। आजकल वर्षा बन्द हो जाने से गर्मी बहुत पड़ रही है। अधिकतम तापमान १०८ डिग्री फा० रहता है।

दीपरी इलाक राय के प्रबन्ध से गुरुकुल दृष्टांतर गुरुकुल बमझी में दृष्टित फाव प्रकाशित ।



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ] गुरुकुल कागड़ी, गुरुवार २६ आश्विन १९६८, ४ सुलाहि १९४९ [ संख्या ६०

## ब्रह्मचर्य का महत्व

( लेखक—श्री स्वामी शिवानन्द जी ऋषिकेय )

मनुष्य की वास्तविक शक्ति, शीर्ष, जो कि जीवन-आधार है, जो कि प्राणों का प्रण है, जो कि नेशों का उर्गोनिर्मय बनाता है, जो कि गला में भुन्नी पेटा कर देता है, मनुष्यका स्वभाव बड़ा समग्र करने योग्य प्राण है। यह रक्त का सार है। खून क ४० बून्नों से बंधों का एक भूँद नैयार होता है। सोचिये कि यह कितनी अमूल्य वस्तु आपके पास है—

अमरत्व प्राप्त करने का एकमात्र साधन ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य से भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त होती है। शान्त धारण करने का जीवन में यही एक आधार है। काम, क्रोध, लोभ, मोहादि मोक्ष बून्नों से पराजित करने का यही एक अथलभ है। अनन्य और अक्षय सुख का यही भण्डार है। इसके द्वारा अपूर्व शक्ति, विमल-बुद्धि, आत्म-बल, स्वास्थ्य, श्रेष्ठ शक्ति तथा विचार शक्ति प्राप्त होती है। केवल ब्रह्मचर्य द्वारा आप जीवन में शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नत कर सकते हैं।

### वर्तमान शिक्षा-पद्धति

शिक्षा की प्राचीन गुरुकुल पद्धति में यह आप आधुनिक शिक्षा प्रणाली की तुलना करें तो आपको मान्य हो जायेगा कि दोनों में कितना अन्तर है। गुरुकुल के प्रत्येक छात्र को पूर्ण नैतिक शिक्षा प्राप्त होती थी। प्राचीन संस्कृति को यह एक अल्पमे बड़ा विशेषता है। प्रत्येक छात्र में नम्रता, आत्म-संयम, आ-हाकारिता, सेवा तथा त्याग की भावना, शिक्षाचार, स्वीकृतता एवं आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की उत्सुकता रहती थी।

आधुनिक प्रणाली में, शिक्षा के नैतिक भाग को भुला दिया जाता है। आशुक्ल के कालेजी छात्रों में नैतिकता का नामोनिशान था नहीं रहता। आत्म-संयम उनके लिए अज्ञात वस्तु है। लड़कण से ही उनमें पेशा-आराम की दृष्टि प्रवेश कर जाती है। अस्वच्छता, उद्वेगिता, अवका-आदि अधिकांश में देखी जाती है। वे अपने को अनीश्वर-वादी और भौतिक सत्यानुगामी बनलाने हैं, उन में

ज्ञान, ब्रह्मचर्य तथा आत्मसंयम का अभाव पाया जाता है। किशोरेक पहनाया, अवाञ्छनीय ज्ञान-पान, बुरी सङ्गीत, सिनेमा-विद्येटर में विशेष रुचि आदि व्यसन उन्हें कमजोर और कानुक बना देते हैं। कलकले के हेतु अफसर ( स्वास्थ्य विभाग के अधिकारी ) ने बनलाया है कि कलकले और टाँके के ३५ प्रतिशत छात्रों का स्वास्थ्य खराब रहता है। बर्षों के हेतु अफसर ने बताया है कि बर्षों के ६० प्रतिशत छात्रों का स्वास्थ्य खराब रहता है। यह सर्व विदित है कि समस्त देश में छात्रों का स्वास्थ्य शोचनीय पाया जाता है। इसके अनिरीक तिन दुर्घटनाओं और घटनाओं से स्वास्थ्य विरता नजर आता है वे बढ़ रही हैं। वर्तमान स्कूल और कॉलेजों में नैतिक वायु गड़बड़ का अभाव है। आधुनिक सभ्यता ने र-बुधक और नव-युवतियों का स्वास्थ्य चौपट कर दिया है। उनका जीवन कष्टम हो गया है। क्रमशः इसकी बुद्धि होती जा रहा है और राष्ट्र का राष्ट्र उस की ओर अप्रवर होना दिखलाया पड़ता है।

### शिक्षकों का कर्तव्य

भूल और कालेजों के छात्रों की प्रवृत्ति सदाचार की ओर करने तथा उनके चरित्र का निर्माण करने का एक महान दायित्व अध्यापकों पर है। सर्वप्रथम उनमें सद्-वृत्ति का होना अनिवार्य है, अन्यथा उनका पथ-प्रदर्शन उला प्रकाश होगा जैसे एक अंधा दुल्हे अन्धे को दे। अध्यापन कार्य करने के पूर्व शिक्षा कार्य के गुरुतर भार और दायित्व को महसूस कर लेना प्रत्येक अध्यापक का कर्तव्य है। केवल पढ़ा देने या नोट्स बखलना दे देने से दुष्टकाग नहीं हो जाता।

विश्व का भविष्य शिक्षकों और छात्रों पर अलवर्धन है। यदि शिक्षकगण छात्रों को उच्चिन्तन और परिष्कार से शिक्षा दें तो विश्व में ऐसे नागरिक नैयार हों जिन में समस्त विश्व का कल्याण हो तथा ज्ञान, शान्ति, और सुख का अधिर्भाव सदैव होता रहे।

आचार्यगण! खेतों! अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य, सदाचार और नैतिक का पाठ पढ़ाओ! उन्हें सबके ब्रह्मचारी बनाओ, इस पुण्य कार्य को आगे बढ़ाओ। इस कार्य का भार आपके ऊपर नैतिक रूप में पड़ा है। यद्यपि आप

की तपस्या है। यदि लक्ष्मी ने यह कार्य किया जायेगा तो आत्मदान उत्पन्न होगा। आर्त्त कोशों और लक्ष्य तथा लगन से इस कार्य को अग्रसर करें।

इस संसार में बड़ी भाग्यवान है जो क्षामों को प्रत्यक्षारी बनाता है। यह और भी अधिक भाग्यवान है जो स्वयं प्रत्यक्षारी बनने की कोशिश करता है। उनपर सर्वत्र भागवान की उपाय रखीं। अध्यायकों तथा क्षामों का गौरव रहेगा।

में अध्यायकों का ध्यान फिर इस और आकृष्ट करना है कि क्षामों को प्रत्यक्षार्य का महान बनलाना उनका कर्त्तव्य है। उन्हें चाहिये कि क्षामों को गुराह्यों से दूर-दूर बचने की तथा उनके उपायों की शिक्षा दें। क्षामों का भली भाँति यह ज्ञान हो जाये कि उनमें आत्मशक्ति का प्राविभाव वीर्य-रक्षा से ही होगा। (सात्विक-जीवन)

## ईश्वर

(०० भी सतेश विचारकर)

ईश्वर क्या है? यह कहना इतना सरल नहीं है।

क्रिश्चियन पारसी ईसायसीही को लुब्ध स्तुति करने हैं। उनका यह कहना है कि जो यीशु की शरण में जाते हैं वे ही मुक्त प्राप्ति के अधिकारी हैं, और इनमें भिन्न सब लोग पापा हैं, नरक में जायेंगे।

मुसलमान मीलवी भी अपने पैगम्बर के विषय में यही बात कहते हैं। उनके उपदेश का सार यही है कि जो मुहम्मद के अनुयायी हैं उनका ही उद्धार होगा, शेष सब काफ़िर उन्के भाग्य में लुब्ध ही लिखा है।

हिन्दु-मन्त्रियों में कीर्तन के समय पुजारी-शब इसी बात का निरूपण करते हैं कि हमारे तैत्तिली कौटि देवताओं के शरण में जाने से ही स्वर्गात्म है, अन्यथा कुम्भी पाक नरक सिंघा। फिर ईश्वर क्या है?

ईश्वर विषयक कल्पना मुक्त रूप से समझ में नहीं आती। मैंने एक बाल सुनी थी वहाँ लिखना है।

बम्बई में एक उपहार-गृह (होस्टल) है। यह एक ईरानी का है इसलए वह अलग २ देशों के, माना जातियों के लोग इकट्ठे होते हैं।

एक दिन एक ओरिस्टियन पारसी ज्ञाति का धर्म-गुरु उपहार गृह में आया, उसके साथ एक नीमो नीकर था। पारसी धर्म गुरु ने एक देबुल पर बैठ कर हाराब मंगवाई और यीमी प्रार्थन की। स्वयं नो देव बने का समय होगा। उसका नीकर बाहर एक पाथर पर बैठा था; पूष ने मंग आकर उसने अपने मुख पर कपड़ा लपेट लिया था।

'ए गुलाम ! ईश्वर है या नहीं?' पारसी धर्म-गुरु को नीमो नीकर से विचार करने की उमंग उठी।

'हां, हो। है तो ! यह देखो ईश्वर इस प्रकार अपनी चात्रकारिक भाषा में बोलने हुए नीमो गुलाम ने अपनी कमर में कौली हुई एक लकड़ी की छुट्टिया बाहर निकाली और अपने स्वामी के सामने रखदी। 'यही ईश्वर अम्ह मे लेकर अब तक मेरी रक्षा कर रहा है। जिस वृत्त की शाखा

से यह ईश्वर तथ्यार किया गया है उस वृत्त की दशांश के सब लोग पूजा करने में।

नीमो गुलाम और उसके स्वामी की परस्पर इन प्रकार की बातचीत को सुन कर उपहार गृह में बैठे हुए अन्य बहुत से प्रवृत्तियों का ध्यान उधर लिखा। इनमें सर्व प्रथम एक यहूदी, नीमो नीकर से टूटी फूटी हिन्दी में बोला—'कमर की बोल में रहने वाला यह ईश्वर कैसा ?' क्या वृत्तकी पूजा उचित है। वृत्त कभी परमात्मा हो सकता है? और मेरे देश की प्रार्थना-प्रार्थन में मेरा यह ईश्वर कैसे रहता होगा? इनके बाद इधर उधर देख कर, सिर पर से टोपा उतार कर देबुल पर रखदी और बड़ी गर्भान आधाज म बोला। इम्राहम, आहज़र व जकब का ईश्वर ही सत्य सनातन है। इन मनुष्यों का सिन्धाय परमात्मा को और कोई मिय नहीं, सृष्टि के प्रारंभ में उसने इन्हीं लोगों के रट्टी पर छपा की। आज कल हम सब इधर-उधर भटक रहे हैं, परमात्मा हमारी परीक्षा में रहा है, परन्तु हम शीघ्र ही जेरुसलम के चच्चक पास इकट्ठे होयें और इसराएल संसार का राजा होगा। यह कहने २ यहूदी को आम्हों में आंशु आ गये।

इन यहूदियों का परमात्मा का प्रतिष्ठा को कम करता हुआ 'गामन-स्थ, लिख धर्म ही लखार में सब-भेद धर्म है। इस प्रकार प्रार्थना-वदन करने के लिए नीलवी कुर्सी पर पड़ा हुआ एक रोमन कैथोलिक मिशनरी आगे बढ़ा।

रोमन कैथोलिक मिशनरी को आममान पुषं ब.ती को पास ही पेंडा हुआ मोटे-डेन्ट मिशनरी सहन न कर सका। उसर पुरान कैथोलिक सम्प्रदाय का तथा उसर प्रार्थना-पादत लूत-पूजा तथा आचार-विचार की भ्रंशना प्रारंभ की, और कुछ अन्तःकरण से यीशु-प्रभु की उपासना किस प्रकार करने चाहिए। इस क समय का लख बारिष्णक क उद्धारक बन गया।

इस प्रकार बाद विवाद का अपने पुषं जीवन में देख कर एक मालाना साहिब दादी पर हाथ फेरते हुए बोले-प्यार भाई, क्या 'रोमन कैथोलिक' और क्या 'मोटे-डेन्ट' १२०० वर्ष पुर मुहम्मद पैगम्बर ने साथ धर्म को प्रकट किया। देखो यूरोप, एशिया व चीन जेम्हें देशों में 'अल्ला' धर्म का प्रचार तर्जो से हो रहा है। यहूदियों ने इसराएल में शिष्याता। इसको एक यहूदी ने ही अपनी स्वीकार किया है। फिर जार्गे आर शाहना में हाथ पब फैलाने वाले मुहम्मद पैगम्बर के धर्म को तुम क्यों नहीं स्वीकार करते। मोहम्मद-पैगम्बर सब से मोठा ताजा देव है। फेचल उसी के अनुयायियों का सब से प्रथम और शीघ्र उद्धार होगा। (मीलाना साहिब स्वतः 'उमर' के अनुयायी थे) 'अली' के अनुयायी इसको स्तुति ठीक नहीं करते हैं इसी लिए उन पर 'अल्ला' का दया उद्दि शीघ्र नहीं पडती।

उपरोक्त शब्द असो के अनुयायी एक मोलाना के कान में पड़े, वह भी एक दम सैदान में आ कूदा।

इस प्रकार पारसी, यहूदी, क्रिश्चियन, मुसलमान आदि अनेक जातियों के व माना कथ्यों के अनुयायियों के द्वारा ईश्वर विषयक इस बाद विवाद से उपहार-गृह गूँज उठा।

इस उपहार गृह के कोने-टिप्प-संस्कृति का भूत एक चीनी नव युवक पैठा था। वह स्वयं की बातें बड़ी ध्यान से सुन रहा था पर उसने विवाद में भाग नहीं लिया।

उपर निर्दिष्ट 'उत्तर' के आनुयायी मोलाना ने उस चीनी युवक से कहा—'मित्रवर, तुम स्वयं क्यों हो? तुम भी इस वाद विवाद में भाग लेकर में पक्ष को चुन करों। तुम्हारे देश में आर्य हुए बहुत से चीनों व्यापारियों में मित्र हैं। वे स्वयं अथ धर्मों की अग्रेसर मुहम्मद पैगम्बर के धर्म को आर्थिक पम्बन्ध करने में। इस लिये मेरा मत को चुन करने हुए इ को स्वयंभावी कि स्वयंभेष्ट इश्वर पम्बु' हो।

इस पर इन्धु मनावल श्यों ने भी मिल कर उस चीनी युवक को बोलने के लिए बाधित किया।

चीना तरुण ने क्षण भर के लिए अपने आँसु बन्धु की हाथों को अपना छाता पर स्वस्तिहाकार रखकर बड़ी शान्त गर्भीय आवाज में बोला—'मित्र बन्धुओं, इश्वर विषयक अन्धक के बारे में हम एक मत नहीं होने, इसका मुख्य कारण हमारे हृदयों में अन्ध अहंभाव है। आपका कुछ सुनने की इच्छा है? सत्यता अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए एक बात कहना चाहता हूँ।

बोला, बोली, स्वयं प्रवांसिदों ने स्वीकृति दी।

प्रवासिया क पास का एक कुर्सी पर उठ कर चीनी तरुण ने कहना प्रारम्भ किया—'सारे संसार का पर्यटन कर के आर्य हुए एक उर्मन कश्मीरी पर मैं अपने देश के 'विन्दन' नामक चम्बरगाह से चढ़ा। उसे ठीक करने के लिए सुमात्रा द्वीप के पूर्वी किनारे पर हमें उतरना पड़ा। हम सब नामा देशों के थे। हमने उतर कर नारियल के एक वन में अपने तम्बू गाह दिये।

हम अभी बैठे ही थे कि एक अन्धा मनुष्य हमारा पास आया। कुछ पूछताछ करने पर मालूम पड़ा कि सूर्य केसा है यह प्रश्न देखने के लिए और उसके प्रकाश को पकड़ रखने की महत्वाकंक्षा में उसने सूर्य की ओर बहुत काल तक एकटक देखने का प्रयत्न किया और इसी कारण हमें अब दिखाई नहीं देता।

सूर्य की ओर एक टुक देखने वाले इस व्यक्ति ने अपने मन में विचार किया कि सूर्य का प्रकाश प्रवाही पदार्थ नहीं है क्योंकि एक पात्र में दूसरे पात्र में पानी की तरह से हम सूर्य के प्रकाश को उठल उतरल सकते हैं। सूर्य का प्रकाश अग्नि भी नहीं, क्योंकि यह पानी से बुझता नहीं है। और जड़ पदार्थ भी नहीं है, हम जड़ पदार्थों की तरह इसे इधर उधर नहीं कर सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पानी, अग्नि और जड़ पदार्थ इनमें से सूर्य का प्रकाश कुछ भी नहीं है। अतः वह कोई 'बस्तु' ही नहीं है। ऐसा विचार कर सूर्य की ओर एक टुक देखने २ बंधारे की दृष्टि ही नष्ट होगई। आँसुओं के अन्धकार हो जाने पर वह इस परिणाम पर पहुँचा कि सूर्य ऐसी वस्तु है जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं।

इस अंधे व्यक्ति के साथ एक नौकर था। उसने अंधे को एक नारियल के तुल की छाया में बिठा दिया और कुछ

के नीचे पड़े हुए एक नारियल को लेकर रात्रि को प्रकाश के लिए दिए का रूप देने के लिए उसे स्वल्पोत्सा प्रारम्भ किया। नारियल की जटासे उसने एक बन्धी भी तैयार की। नारियल के खोंपरो को एक ल्बन पर रख कर उनका नेत्र निकाला, फिर नेत्र और बन्धी को नारियल के कपाल में रख दिया। नौकर अपने इस काम में अग्नी व्यस्त ही था कि एक लक्ष्मी साँस लेकर उसका स्वामी बोला—'मा! 'सूर्य नहीं है' ऐसा मेरा कहना क्या ठीक नहीं? किन्ता घना अन्धकार है क्या नूँ हमने नहीं देखाता है? फिर भी मुझं साथ, कहने हैं कि सूर्य है, सूर्य यदि है तो यना वह कैसा है?

नौकर बोला 'सूर्य' केसा है में यह नहीं जानता मुझं इस ज्ञान में क्या अविश्रय? परन्तु प्रकाश क्या है में हमना ही जानता हूँ। ये देवो! रात्रि क लिए मैंने एक दीपक तय्यार किया है। इसके सहाय में अन्धकार के होने पर भी मैं तम्बू में से जिस वस्तु को आवश्यकता होती है निकाल कर ला सकता हूँ। ऐसा कहकर नौकर न स्वतः तय्यार किये दीपक को हाथ में उठाया और स्वामी से बोला 'यहो है मेरा सूर्य'!

इस माद को बुर बैठे हुआ एक संगठु मनुष्य सुन रहा था, वह जैसे जैसे विसर कर अन्ध के पास आकर बोला—'अन्धे दाद!' तुम जम्माअथ प्रतीत होने ता। मैं तुम्हें भनाता हूँ कि सूर्य आग का एक गोला है। वह हमारे द्वीप की एक पहाड़ी पर उदित होता है और बिल्कुल सामने की एक पहाड़ी पर अस्त हो जाता है। हम सब को ऐसा प्रतिदिन दिखाई देता है। यह तुम्हारा आँधे होनी तो तुम्हें भी दीखता।

लगेरु व्याक के इस कथन को सुन कर समीप-स्थित एक श्याय में कहना प्रारम्भ किया—'संगठु' दिशा में ऐसा लगता है कि तुम कना भा अपन द्वीप में बाहर नहीं गये हो। मैं सदा समुद्र में उठने वाला आदमी हूँ। मैं अपनी आँसु से प्रतिदिन देखाता हूँ कि आग का गोल सुजुद के एक ओर से निकलता है और दूसरी ओर जाकर डूब जाता है।

हमारा कश्मीरी से उत्तर हुए एक बड़े हिन्दू ने इसका विरोध करते हुए कहा—'भोगे भाइयो! आग का गाला समुद्र में डूबने के बाद क्या लुप्त नहीं जायगा? फिर दूसरे दिन किस प्रकार प्रकट हो सकता है?—सुनो! सूर्य नारियल एक देखना है ये सोने के चप पर बैठ कर प्रति दिन मेरु पर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणा करने हैं। कभी २ गाह और कभी दो घुड़ राकस इसे प्रसने हैं। परन्तु हमारा तपस्वी मनुष्यों के तप के प्रभाव से उनका लुटकारा हो जाता है। केवल तुम्हारा जैसे एक द्वीप में रहने वाले अज्ञानी लोगों को ही ऐसा लगता है कि सूर्य केवल तुम्हारा लिए ही प्रकश करता है।

उस हिन्दू गृहण के भाषण को सुनकर एक मित्र देश का व्यापारी भी आगे बढ़ कर बोला—'बुद्धे बाबा! तुमने उदा मूल की। मैं सारे संसार का नकर लगा चुका हूँ सूर्य कहीं किसी मेरु पर्वत के चारों ओर नहीं घूमता, वह

# गुरुकुल

२१ आषाढ़ शुक्रवार १९६८

## साक्षात्प्यादी दाव और रियासतें

( श्री गुरुनन्द, विद्यार्थी राजनीति तथा अर्थशास्त्र )

आजकल देशी देशी को अपने राज्यों में अन्तरिक मुद्दा की समस्या को अनेका यह अग्र्यन्त महत्त्वपूर्ण चर्चा प्रनीत होती है कि भविष्य में हमारा ब्रिटिश भारत के साथ कैसा सम्बन्ध रहेगा ? परन्तु इस चर्चा में पूर्व हमें यह आवश्यक प्रश्न होता है कि हम देशी रियासतों तथा ब्रिटिश सम्बन्ध का प्र.चीन इतना ही जान कर वर्तमान अवस्था का अध्ययन कर लें ?

यहाँ पर उन सब मिल २ घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने का आवश्यकता नहीं जिनमें गुजरात कर ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने सारे भारतवर्ष में अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित करवा परन्तु इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि समय २ पर भारतीय रियासतों के साथ जो सम्बन्ध स्थापित हुए उनसे रियासतों की स्थिति तथा अवस्था क्या होगी रही। तृतीय में ऐसी उभल पुथल मची हुई है कि पश्चिमो माध्यम के सफाया हो जाने का डर है। ठीक इसी समय भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार को चुनौती दी कि यह युद्ध और शान्ति के बारे में अपने उद्देश्य फिर से स्पष्ट करे और हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की मांग की बावजूद उनका क्या रवैया है यह साफ-साफ घोषित करके अपने दावों का सदा स्पष्ट करे। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने इस चुनौती का सीधा जवाब देने में डाल-मटोल को ही बहाना उन्हींने यह निकाला है कि देशी राज्यों की समस्या बड़ी विकट है। यह लोग उल्टे हमें हाँ दीव देने हैं कि हम राजाओं के साथ समझौता नहीं कर सकते। उनका कहना है कि राजाओं के साथ हुई सन्धिओं के कारण उनके जो करार हैं उनका पालन करने की त्जबर्दस्त नकारवट के कारण यह ज़ाबाह है।

यदि हम भारतीय-रियासतों के प्रश्न को ज़रा इतिहास की दृष्टि से देखें तो माहूम होगा जो कठिनताएँ कही जाती हैं उनमें कुछ भी तथ्य नहीं है। आज तो वास्तव में देशी रियासतों की प्रतिनिधि सार्वभौम सत्ता ही है और इसी लिये उनके साथ समझौता करने का जिम्मेदारी न्याय से देखा जावे तो सार्वभौम सत्ता पर ही है। इसका युक्ति से उत्तर देने के बजाय प्रश्न को टाला जा रहा है और बड़ी पुरानी हवा जिसकी कई बार पोल खुल चुकी है, फिर से जड़ू किया जा रहा है कि राजाओं के साथ सार्वभौम सत्ता ने जो सन्धिवाँ की हैं उनमें बह-मजबूत है; और राजाओं की सम्मति के बौर उन्हें किसे बन्दे या तोड़ें ?

हिन्दुस्तान की स्व.धीनता के विरुद्ध जब यह युक्ति दी जाती है तो अब ज़रा इस युक्ति पर विस्तार से जान करे। वे राजा कौनसे हैं जिसके साथ बातचीत करके समझौता किया जावे ? वास्तव में हम तरह का समझौता करने का भार किस पर है ? राजाओं के साथ जो सन्धिवाँ हुई हैं उनमें पैदा होने वाला जिम्मेदारियों कौसी है ? और कहाँ तक है ?

अपने इतिहास में ब्रिटिशों की नीति ने समय-समय पर कई पहलू बने हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रियासतों के प्रति रही नीति को हम दो भागों में विभक्त कर कर सकते हैं। प्रथम काल (१७५७ से १८१३ तक), द्वितीय काल (१८१३ से १८५७ तक)। प्रथम काल में किसी भी मामले में हस्तक्षेप न करने का साई पैलेज़ुला की योजना थी। द्वितीय काल में राजाओं की अपने अधीन हिन्दु एक दूसरे से अलग रखने की नीति लाई उलझेरी ने स्वीकार की।

प्रथम काल (१७५७ से १८१३ तक) तैसा कि सर विलियम ली-वानर ने लिखा है कि इस प्रथम काल में ब्रिटिशों की सामन्ती पर यह नीति रही थी कि अपने अपने तरफ एक बाजू सी बना लो जावे और किसी मामले में हस्तक्षेप न किया जावे। यह ठीक है कि लाई पैलेज़ुला ने चुनाव आने पर कुछ राजपूत रियासतों के साथ घेरा घाते की नीति के विरुद्ध सन्धि की थी परन्तु इसके बाद आने वाले उन्धराधिकारियों ने उसी हस्तक्षेप वाला नीति की ही स्वीकार किया। इस काल में जो सन्धिवाँ, आक्रमण या रक्षा के लिये की गयीं वह राजनीतिक सत्ताओं को परस्पर समनुजित करने के ही उद्देश्य से की गयीं। उनकी समानता और स्वतंत्रता में परस्पर कोई भेद नहीं था। उसका हम ब्रिटिशों की सर्वोच्च सत्ता नहीं कह सकते। इस बात को दिखाने के लिये एक उदाहरण ले सकते हैं—१७९० की पहला जून को पेशवा, निजाम और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच दीपु सुल्तान के विरुद्ध जो सन्धि की शर्तें तय हुईं कि प्रत्येक का एक २ प्रतिशत दूसरे की सत्ता में रहना और प्रत्येक पार्टी की इच्छा और सुविधा का ध्यान में रख कर ही सन्धि की शर्तें तय की जावेंगी। इससे यह स्पष्ट है कि तीनों पार्टियाँ उस समय समान अ धार पर थीं—और ब्रिटिशों की सर्वोच्च सत्ता का सवाल नहीं था। इस काल में जो भी सन्धिवाँ हुईं उनका साधारण हस्तक्षेप ही नीति था उनमें पारस्परिक मैत्री, सुदृढ़ सम्बन्ध तथा मैत्रीपूर्ण सहयोग इन्हीं पर ही अधिक बल दिया गया।

धोरे २ परिस्थितियाँ बदलती गयीं और लाई पैलेज़ुला का यह नीति इच्छा थी कि भारतीय देशी रियासतों पर अपने सत्ता सत्ता स्थापित करे इसके परिणाम स्वरूप अनेक भारतीय रियासतों, अथवा, हैदराबाद, पुराना, बड़ोदा, मालिवर इत्यादि से Subsidiary alliances (मैत्री) करवाने में बह सकल हुआ। भारत में पैलेज़ुला का क्या उद्देश्य था ? यह २ कम्प्यूटर सन् १८०० की कलकत्ते में अपने एक मित्र के नाम भेजे गए पत्र से स्पष्ट प्रतीत होता है।—

"I will heap kingdoms upon kingdoms, victory upon victory, revenue upon revenue; I will accumulate glory and wealth and power until the ambition and avarice even of my masters shall cry mercy."

"मैं खादराहों के ढेर ला दूंगा और विजय पर विजय तथा मालमुद्राओं पर माल मुद्रा की लाद दूँगा। मैं अपनी शान इतना घन और इतनी सत्ता इकट्ठी कर दूँगा कि एक बार मेरे महत्याकोंवा और धन लालुष मालक भी 'ब्राह्म, ब्राह्म' बिल्लाते लगेंगे।"

'सद-वीर' का अर्थ आंधक सहायता और एतायन का अर्थ मिलना है। मतलब यह था कि हर देशी न शक्यता को निश्चित 'भा'थक सहायता' देकर, शक्यता को संबन्धक मध्या लाय कर लेंगे।

द्वितीय काल (१८५३ से १८५७ तक) जर्मनी ही यह अनुभव किया गया कि अगर कम्पनी तटस्थ राजाशाही को नष्ट नहीं पृथ समझौते से अपनी आधीनता में थाने काल पर मजबूर न करेगी तो समझ है कि गाल धरे में मिला सुरक्षितता काल में पड़ जावे। हाईडेलिंडज (अ. आफू म इश) (१८५४-१८५७) ने यह अनुभव किया कि भीती (इन्टु-थान की रियासतों की वास्तविक स्थिति पृथक् और अधोस्थ सहयोग (Subordinate Isolation) का है। इस नीति को तह में दो उद्देश्य थे—(१) राजाओं में परस्पर सहयोग प्रसन्न कर देना (२) उन्हें स्वतंत्र रूप से अपनी आम रत्ना तक करने में असमर्थ बना देना।

क्योंकि बाहरी कर्ना जाता रहा था। इसलिए दोस्तों की भी जो कि अब सहारे के बजाय भार रूप थे, को जड़न बाकी नहीं रह गई थी इसलिए अदस्तावेज का नीति हस्तक्षेप की नीति में परिणत कर दी गयी। लाईडलहीमी ने यह अधिकार-पृथ फैलाया किया कि "ब्रिटिश सरकार इस बात के लिए बाध्य है कि उसके सामने रूपी आमदनी बढ़ाने के जो भी उचित उपाय अपने आप समय समय पर आए उन्हें उठाकर एक तरह न रखें।" इसी उद्देश्य को जान होवे ने लाइडलहीम वैरिटेड के बाग में बड़े मनीषिक ढग से लखा है—काई यह न समझ कि नूस्वा रियासतों के साथ लाईडलहीम वैरिटेड की नीति को इस प्रकार संश्लेष में स्थिति करने में हमने थोड़ा बहुत भी इस पर अपना रंग चढ़ाया है। हम उद्देश्य के तीर पर एक मनीषिक घटना बयान करते हैं जो कि उस समय के जीवित लोगों में केवल तीन या चार को मालूम हैं और जिसमें इस कथन का काफी समर्थन होगा कि देशी रियासतों के अधिकारों के विषय में लाईडलहीम वैरिटेड मुला की उस दसवीं आधा की बिजुल परचाह न करना था जिस में कहा गया है कि "अपने पड़ोसी का माल कमी न खीनना।" बात यह थी कि मिस्टर कैनेनडिश का जगह मेजर सदर् लेखर रेजीडेंट नियुक्त हुआ। मेजर सदर्लेखर यह जानने के लिए कि रियासतों पर कब कब नीति का पालन किया जाये, अर्थात् वहाँ के रियासत के मामलों में हस्तक्षेप किया जाय या न किया जाय, गवर्नर जनरल से

मिलने के लिए बलकेश गथा। लाईडलहीम वैरिटेड को मजबूत था शीक था। उसने फौज जवाब दिया—'मेजर इशर देखा' यह कह कर लाईडलहीम वैरिटेड ने अपनी गवर्नर पाउंड की सहायता की मुह खोल दी' और अगुआ और एक उगला इस प्रकार मुह में देकर, जिन प्रकार कि कोई लड़का मिठाई मुह में डालते जाता है, यकित मेजर से कह—यदि मैं लख की रियासत काफ मुह में अकर गिरा लो तो आप मिस्टर कैनेनडिश को तह अपना मुह बन्द न कर लाइगगा, यकित गिगल आदरगा, यहा मेरी नीति है।"

इस घटना पर टीका करने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय रियासतों की आर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति का यह एक कासा मध्या चित्र है।

१८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के परिणाम स्वरूप नोबरा पहलू पर धम होता है। ब्रिटिश पार्लियामेंट निर्बिधाद शासक और संधीक सत्ता का रूप में स्वतंत्र शानों है। प्रथम था उसको भ्रमा की जड़ को मजबूत बनाने का। इस बात पर एतना उड़ाया गया था कि अगर कोई लख को सगरे देकर रियासतों का हमला बन रहने देते की नीति स्वीकार करना जायेगा ना इतने आगे अपना साम्राज्य बढ़ाने के भीक मिलत बन्द हो जायेंगे। इस पर लाइडलहीम का यह जवाब था— "कच्छी तह प्रभावित या अपने कबू में आये हुए देशी नरेशों को बनाए रखने से हमारे शासन की सुरक्षा घट नहीं बड़ी ही है।" उसने १८५७-५८ के क्राशानि पृथ और खिला जनक दिनों को याद दिलाते हुए बताया कि किस तरह उस समय "एन खोर्ड खोर्ड रजवाड़ों में उस मुफान में बचाने के लिए बांध का काम देया जो इनके आभाव में एक ही भोंके में उठा ले जाता। जब कभी ई.लेखर को किसी दूसरा जगह अपने स्वार्थ के लिए अपने पूर्वी साम्राज्य को असाधारण रूप में डालने की जरूरत अनुभव होगी तब यही देशी रियासतें हमारा लख से बड़ा सहारा साबित होंगी। लेकिन उन्हें ऐसा बनाने के लिए यह जरूरी है कि हम राजाओं के साथ सम्मान और उदारता से व्यवहार करें। साथ ही उन्हें यह भी विश्वास दिलाया जावे कि हमें हटा कर किसी मधे शासक को बिठाने में उनका स्वर्थ कोई लाभ नहीं है।

सर जान मालक्रम ने बहुत पहले ही यह कहा था कि अगर हम सारे हिन्दुस्तान के जिले (या प्रिटिश इंडिफिकट) बनावे तो सामाजिक तीर पर हमारे साम्राज्य का ५० साल भी टिकना सम्भव न होगा, लेकिन अगर हम कुछ देशी रियासतें बिना किसी तरह की राजनैतिक सत्ता के कायम रख सकें तो हम तब तक हिन्दुस्तान पर अपनी हकूमत कायम रख सकेंगे जबतक यूरोप में हमारी समुद्री ताकत सबसे ऊपर बनी रहेगी।

[ १०३ का प्रवेश ]

तो सारी पृथ्वी के चारों ओर घूमता है यह मैंने अपनी भावों से देखा है। जैसा तुम स्वयं को देवता समझ रहे हो वैसी बात नहीं है।

उपरोक्त संवाद सुन कर एक अग्रिम मनुष्य ने अपनी विचलना प्रकट करने के लिये कहना प्रारम्भ किया—हम भगवत्स लोको को सूर्य के विषय में जितना जानते हैं उतना संसार में और किसी को तो नहीं। सूर्यो! सूर्य न उदित होता है न अस्त ही होता है। यह निरन्तर पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। हम पृथ्वी के होने पर गये हैं परन्तु कहीं भी सूर्य उदय होता हुआ और अस्त होता हुआ नहीं देखा। और न हमारी उसमें कभी टक्कर ही होती है। इस सब से क्या अनुमान निकलता है? इतना कह कर उस अग्रज ने अपनी दोषो पहनी और 'मेरी बात सबको समझ में आ गई है' इस प्रकार चारों ओर बड़ी अभिमान-पूर्ण दृष्टि फैकी परन्तु किसी को भी आह्वान पर उसको बात ठीक है इस का सूचक कोई भाव प्रकट नहीं हुआ।

इस सम्पूर्ण विचार को सुन कर हमारी किरती का अनुभवी जमान कमान जो पस ही घूम रहा था बोला—भाइयो! तुम्हारे में किसी को भी ठीक बात समझ में नहीं आई। प्रत्येक को कहीं न कहीं गलती हो ही गई है। सूर्य पृथ्वी के चारों ओर नहीं घूमता परन्तु पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर घूमती है। वह अपने अक्ष पर २४ घण्टे में घूमती है इस प्रकार दिन और रात होते हैं। और एक लम्बे वर्ष में घूमती ३६५ दिन में सूर्य का पूरा चक्कर करती है। तब मात्रा प्रकार की अक्षरों आदि होती है। ऐसा कह कर पास के बच्चों और नकशों को सहायता से संसार का पर्यटन किए हुए उस अनुभवी जमान कमान ने सब को अपनी बात अच्छी प्रकार समझा दी।

किन्तु ईश्वर क्या है?

यह बात सुना कर चीनी युवक ने उपहार-गृह के सब प्रवासियों को देख कर फिर कहना प्रारम्भ किया—मित्रो! सूर्य के विषय में उन लोको की दूरमिमान के कारण जो अवस्था थी वही अब तुम सब की है। इस दूरमिमान के कारण ही मनुष्य अपने हाथों से अपराध करता है और एक दूसरे से लड़ने में तैयार रहता है। प्रत्येक मनुष्य का अन्तर एक देव है। और प्रत्येक जाति व राष्ट्र का भी अपना देव है। जो ईश्वर अखिल-विश्व में व्याप्त नहीं सकता—उने एक देश के एक मन्दिर में बन्द करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु वे दुःख को जानते हैं।

संसार के सब मनुष्यों के लिए समान अज्ञा के आसन पर एक ही धर्म भावना से बैठने के लिए परमात्मा ने जो प्रबन्ध देवालय निर्मित किया है—उस देवालय के सामने किसी मनुष्य का, जाति का अथवा किसी देश के सम्बन्धित देवालय का किन्ता महत्त्व है? परमेश्वर के इस विशाल देवालय की मनुष्यों में और मानव समाज ने अनुकूलि की है। इन आकृष्टि देवालयों में पुष्करिणी होगी, कला विभूषित मन्दिरे बने होंगे, अद्भुत दापक होंगे, चित्र होंगे धर्म-शास्त्रों की पुस्तकें होंगी, लहने, यज्ञशालाएँ, बाल व भिक्षु, वार्ता होंगे। परन्तु क्या समुद्र के समान प्रबन्ध पुष्क-

रिणी और सन्तुष्टत्वचित् आकाश के समान क्षुद्र इनमें से किसी एक देवालय में भी है? सूर्य, चन्द्र व तारों के समान देवालयों में समुद्र एक भी देवा इन देवालयों में अज्ञानता है? देवा से दृष्टिभूत अज्ञान: कारण से दुःख पीड़ित मानव समाज को सेवा करने वाले मनुष्य मानवी देवालयों में मिलते हैं? प्रत्येक मनुष्य के हृदय-पर पर अद्भुत धर्मशास्त्र की तुलना में मनु-युक्त कोई भी धर्मशास्त्र समान नहीं रहता। प्रेमपूर्ण अन्तःकरण से संसार में खी पुण्यां का परमेश्वर जो पवित्र व उच्च धर्मग्रन्थ हो रहा है—उस प्रकार का यह भिक्षु-गण क्या किसी देवालय में करते हैं? सज्जनों के इन्द्र-कारण इपी इष्टिक के समान निर्मल व शुचिर्भूत यदि जिस में परमात्मा को सार्थक रख कर जना जनार्दन के प्रति होम अर्पित किया जाय किसी देवालय में सम्भव है? ऐसी ही यदि पर किए गये यह परमात्मा को प्रिय है। बन्धु मन्दिरों में मलिन अन्तःकरण वाले किन्तु ही भिक्षु को न पत्थर सिद्धि के बने हुए स्थानों पर मन्त्र-पढ़ कर अग्नि में आहुतियाँ दी हैं परन्तु वे आहुतियाँ परमेश्वर को नहीं पहुँचती।

इस प्रकार के स्थानों में मल होकर चीनी युवक फिर बोला—मनुष्य की परमात्मा विषयक कल्पना जितनी उच्च कोटि की होगी—उतनी ही अधिक उसे परमात्मा स्पष्ट होगा और परमात्मा-के इस स्वरूप को पहचानने का उपाय क्या है? नैतिकता, दया और प्रेम ये परमेश्वर के गुण जिससे यदि न अपने अन्दर जितने अधिक धारण किए हैं वह परमात्मा के उनसे ही निकट है ऐसा करने में भी उदात्त-भावना नहीं है।

चीनी युवक बोलता गया कि यदि किसी को सूर्य के प्रकाश और गर्मता का परिपूर्ण ज्ञान होगा है तो उसके लिए सूर्य एक देवता ही है और वह उस देवता के एक किण्व की छाया को भी मुक्त नहीं मानता। इतना ही नहीं किन्तु 'सूर्य नहीं है' कहने वाले अर्थे का भी वह निरन्कार नहीं करता है।

चीनी तरुण के इसप्रकार के गम्भीर भाषण को सुन कर उपहार गृह में शां प्रदाने वाले सब प्रवासी चित्र-लिखित की मूर्ति बैठे रहे।

'हिन्दुधर्म के उदार व विरलत तत्त्वज्ञान का अभ्यास करने पर ही ईश्वर विषयक कल्पना सुभे समझ में आई' यह कह कर उस तरुण-चीनी ने बड़ी शान्ति से सब का सम्पन्न किया।

इस वाद-विवाद को सुन कर 'ईश्वर क्या है?' इस विषय में सुभे कुछ स्फुरण हुई है।

इस विषय पर मैं विचार में लिखना चाहता हूँ अतः इन्से यही समाप्त करता हूँ।

## सञ्जी प्रगति

[ गुरुकुलीय साहित्य सम्मेलन में पठित ]

(नेलक—भीकमार गर्मा)

यह 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की 'साहित्य परिवर्त' घंटी हुई है। कुछ माननीय वक्ता आपके सामने साहित्य को उन्नति के विषय में कह चुके हैं और कुछ अभी कहने को बाँचे हुए हैं। मैं भी उनके साथ अपना स्वर मिला कर साहित्यिक उन्नयन के विषय पर कुछ कहूँगा।

साहित्य क्या है ? जीवन से उसका क्या सम्बन्ध है ? साहित्यिक के क्या अर्थ हैं ? यह सब आप जानने-समझने हैं। आज के साहित्य-युग का नाग है "प्रगतिशील साहित्य" या "प्रगतिवाद"—यह साहता है साहित्य में वास्तविक जीवन के अन्तर्गत और बहिर्गत दोनों एकसम होकर रहे। एकसम कभी नहीं रहा होगा, इन्हीं में तो एकसम बनाने के लिए यह रूढ़ि उठ रही है। तो क्या ऐसा मान हो लिया जाये कि किसी समय साहित्य और जीवन में समरूपता का विलोप था ? किन्तु हम ऐसा लगना अवश्य है जबकि आज से १०-२० वर्ष पहिले के साहित्य का, प्रकाशनों के आधार पर विवेचन करने है। तो जीवन में अलग रंग-रूप में रहकर साहित्य था क्या ? यह तो साहित्य की प्रबलित परिभाषा—साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है के अनुसार 'साहित्य' की धरणी में भी उतर जाने है।

मे तो क्या, कोई भी उस छायावाद साहित्य को साहित्य-युग से नीचे उतारने की न तो इच्छा रखता है और न ऐसा कर ही सकता है। छायावाद साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है और तुम्हारे प्रतिबिम्ब है। यदि यह ठीक है तो फिर हम उसमें प्रगतिशीलता का आवश्यकता क्यों अनुभव करने हैं। इन्से देखने-भासने के लिए हम यह विचारें कि छायावाद साहित्य में क्या कहा था ?

छायावादी साहित्य में जीवन से असन्तोष की भावना बहुत गहरी और तीव्र है—ऐसा उगल-जीवन के बहिर्गत म वीक्षता भी है ही। किन्तु वह छायावादी साहित्य उस असन्तोष का भावना में प्रस्त होकर विश्व के पदान्त कौने का अभय लेता है—जहाँ न समाज के बन्धन हैं, न दूनिया के आकर्षण हैं। यह एक अजीब तरह का सत्य या तपस्वी बनने का यत्न करना है—अज्ञात तरह का इस लिए कि उस असन्तोष और निराशा में प्रहंग किंचि गए इस एकाकी निजंन पथ का कोई लक्ष्य नहीं होता; इस उई श-हीनता में यह अपने में ही उलझता रहता है—'मैं' के पोक्षे पागल रहता है—गोता है—गाना है। 'मैं पावणों का अधिकारी'—में जीवन में कुछ कर न सका—में नीर भरी दुब की बरसा आदि। "बसों, आगे कुछ करें, कुछ उईश्य बनायें, इस दूनिया में बिना पलायन किण-इसमें ही रहकर इन्से समझे-बुझे और ठीक गार दिवायें"—यं थं कलाकार के वास्तविक उईश्य- और इसी में छायावादी कवि पलायन कर गया था। कवि ही नहीं, उस छायावाद-काल के सब साहित्यिक इसी प्रकार उलभ गए थे। उपन्यासकार-कहानीकार- दोगा समाज के साथ संघर्ष करने की दृक्ता रखने पर विकल होकर जल-समाधि या वन-समाधि का मार्ग अपनया करते।

छायावादी साहित्यकार की कविता में, साहित्य में, जीवन के सब अंग, सब रूप, सब विचार आने थे पर अज्ञान तत्व के बने इहदय में से छुन कर। न जाने यह क्या तत्व था ? सब विचार भावनायें उस तत्व में से गुजर कर छायावादी कवि को अपने में उलभ देती थीं, यही अपने में उलभ जाना उस छायावादी कवि की कमी थी, जिस कमी के कारण आज हम विहा उठने हैं कि

"छायावाद नहीं, प्रगतिवाद साहित्य"। 'कर्मिणं' प्राश्ना, कलाकारो ! कामो, ओर जीवन के साथ साथ कर्म बढ़ाने हुए इन मार्ग दिक्काओं— हम हमारे उईश्य बताओ"।

यदि प्रगतिवाद को इतना ही समझ लिया जाय तो में प्रगतिवाद को पसन्द नहीं कर सकूंगा। मुझे यह प्रतिक्रियात्मक लगना— प्रतिक्रिया कोई वास्तविकता नहीं यह तो जड़ प्रकृति का परिणाम है—यह मानव को अपनी चीज नहीं। तो प्रगतिवाद में ओर क्या समझे ?

आज 'प्रगतिवाद' पर लिखे गए बौद्धिक और मैथानिक लेखों को यदि आप पढ़ें और समझें तो पारने कि उनके विचारों में छायावाद के प्रति कितनी अधिक प्रतिक्रिया है। प्रगतिवाद का जन्म से हुआ ? लम्बन के कुछ नीतियों ने एक ऐन्सेशियलन में कर्मों मार्गमंवाद के आधार पर 'प्रगतिवाद' का आवाज उड़ाई। छायावाद को र्जैरिपनिथी और मध्यम वर्ग की सम्पनि बनकर प्रगतिवाद को 'प्रोलेटेरियट मिटिंग्स' के रूप में बोना चाहा। यह प्रगतिवाद भारत में फैलने हुए कर्मों विचारों का नतीजा बने यह मुझे कम स्वीकार है। कर्मों ? कर्मों तब यह प्रगतिवाद पर सामाजिक कालि-भाव रह जाना है जिसमें प्रतिक्रिया की बलवर्ता प्रेरणा काम कर रही है। प्रगतिवाद र्जैरिवाद की भांण प्रतिक्रिया बन जानी है—और प्रतिक्रिया के बल पर दर तक नहीं टिका जा सकता। यही कारण है कि आज का अन्ताराष्ट्रिय जगत् मार्क्स, लेनिन, स्टालिन के स्पष्ट सिद्धान्तों के कठिन और करने में बहुत अन्तर पाना है। मुझे है इस में ही उस समाजवाद के पर उचते-नीचे पड़ रहे हैं।

हैं ना—'प्रगतिवाद' को यदि ऐसा ही माना जाये तो इन्से कौन स्वीकार करेगा ? कोन चाहेगा पल-पुई मिटने वाले इस नव जागण्य को ?

पर प्रगतिवाद को में तो सिद्धान्त और स्वाभाविक दृष्टि में लेता हूँ। मानव जीवन के शा-वत आंग चिरन्तन प्रवाह के साथ साथ साहित्य का सामर्थ्य के साथ आगे बढ़ना ही में 'प्रगतिवाद' की मूल भावना मानना है। वास्तव में प्रगतिशील साहित्य जीवन में पृष्ठतया रल-मिल जाना चाहता है।

इसका क्या अर्थ—अभिप्राय है इन्से समझने के लिए साहित्य की कुछ अलोचना आवश्यक है।

साहित्य के विषय में कलाकार स्वदा ही 'अर्थ' का अभय लेकर विश्व को अभिव्यक्त करता है। यह 'अर्थ' कर्मों शरीर, कमी इश्य और कमी कण्यगरीय मन के स्वरुपों में आता रहता है। साहित्य इन्हीं तीन धाराओं में बहा है—हिन्दी-साहित्य का रानिकाल शरीर प्रधान है, इन कविताओं में साहित्य के शरीर को पुष्ट किया है। भक्तिकाल के पूर ओर तुलसी इत्यादि इहदय के कवि हैं। छायावाद की रचनाओं में कल्पनाओं के सुन्दर विश्व है—इन् संघर्ष समाज में उठकर कल्पनाशील मन दूनन और आदर्श उगनिमंकि-रखता है। इन तीन 'अर्थ' के स्वरुपों में बहती हुई साहित्य धारा कमी केवल एक ही रूप में रही हो ऐसा नहीं समझना चाहिये। कमी ऐसा

होना भी नहीं है—प्रथम जन्म और योगना के अनुसार ही हमने उक्त धर्माकरण कर दिया है जिससे आगे का कथन स्पष्ट हो सके। अब देखें, यह जला हुआ 'प्रगतिवाद' क्या है ?

'प्रगतिवाद' में मार्क्सवादी-साहित्य की तरह एक प्रकार का वीदिक अंध अधिभक्त है। इस प्रकार लिखे गए साहित्य में जीवन की अनुभूतियों को हृदय और आत्मा का संस्पर्श कराये बिना यथा रूपेण प्रकाशन करने से पाठक को केवल वीदिक सन्दाभूति ही उपलब्ध होती है। उन किन्हीं प्रकार का मार्ग-निर्णय करने वाला प्रकाश नजर नहीं आता। यदि प्रगतिवाद जीवन के अस्तित्व—आत्मा के रस्यों के आधार पर खड़ा किया जाये—प्रगति शील साहित्य किन्ध के अग्रगण्यतमोय तत्वों को लेकर आगे जीवन पर प्रकाश डालने वाला हो—तो ही यह पाठक को एक उदात्त और स्थिर क्रान्ति की ओर ले जा सकता है। आज का प्रगति शील साहित्य 'प्रोग्रेसवाद' बनना चाह रहा है—पाठको में अपने 'ब्यवस्था' से लक्षिक भावोपेक्षना भर देना चाह रहा है। इस वर्ग के प्रगतिशील कवियों को जिनमें दिवकर, नवीन, भगवती चरण, अञ्जल आदि आते हैं—हमारे एक साथी साहित्यिक ने 'जगददी' कवि कहा है। प्रगतिवाद घोर प्रगतिवाद को केवल मस्तिष्क का साथ छोड़ कर आत्मा और हृदय का भी सहारा लेना होगा। तीनों तत्वों के समुचित सामञ्जस्य से ही प्रगतिवाद उत्थानशील हो सकता है अन्यथा नहीं।

परिहर्ष—'साहित्य का जीवन में पुरातनता मिल जाना प्रगतिवाद है' यह हमने कहा है। उसका अग्रिमार्थ यह है कि साहित्य को भूत भविष्यत् दोनों जीवनो के साथ समरूप हो जाना है। हमारी यह संस्कृति भूतकाल की देन है—उमे, तथा हमारा आदर्श जो भविष्य का मुख स्थान है—उमे, दोनों को मिलाकर ही मरी समझ में प्रगति-शीलता है। एक पैर को उठाने और दूसरे पैर को रखने में ही वास्तविक गति है। यतमान का समाज, राजनीति, कर्तव्य-धर्म ये सब उसी प्रगतिशीलता में आते हैं। इन विचारों को मानने वाले शान्ति-प्रिय साहित्यिक गण जीवन को, शाश्वत वैश्विक साहित्यिक में अंकित करने हैं न कि आज की आवश्यकता मात्र को देख कर। इनकी युग धर्म के साथ साथ भविष्य धर्म भी पहचानना होता है, केवल युग-धर्म की रचना वर्तमान के साथ ही साथ प्रभावहीन हो जायेगी। जीवन का लक्ष्य क्रान्ति हो इन कवियों की 'प्रगति' है। दूसरे प्रगतिवादी मात्र नये समाज का सृजन ही लक्ष्य समझते हैं। उत्थानशील कवियों में सियाराम शरद गुप्त ही ठीक स्थिति तक पहुँच सके हैं। पल थोड़ा पीछे हैं। साहित्य-क्षेत्र में नये प्रविष्ट हुए 'रूपान्त' के कवि भी जगददी प्रसाद पम, ए. एल. एल. बी. भी इस वर्ग में स्थान पा सकते हैं—'रूपान्त' की निम्न पंक्तियाँ देखिये—

चौथी हुआस राय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

में प्रलय सृष्टि में स्थिति अदल,  
में शान्ति कान्ति में प्रेम खिल,  
संशोधन करना रहता है  
में अपनी कृतियों में अचिरल'

(पृष्ठ २५)

उत्थानशील कवियों के हृदय में असन्तोष है पर रोष नहीं—ये निर्मलगतमक कान्ति के पुत्रारी हैं। इनकी विचार-धारा में बिस्फीट नहीं, सयम है, आशा है, अतः शान्ति भी है। आज, नूतन, प्रलय का आकाश इस अर्थे, न कवियों को नहीं बन सकता।

'प्रगतिवाद' में मात्र प्रगति न होकर उत्थान होना भी आवश्यक है। आज का दुनिया में उत्थान शील साहित्य की ही मांग है—उत्थान ही प्रगति का सभा स्वरूप है।

## गुरुकुल-समाचार

दो बार अन्धों वर्षों हो जाने के कारण मॉमम टण्डा है। दिन भर शांतल पवन के चलने रहने से वातावरण आनन्दमय हो गया है। गत १ जुलाई को प्रातःकाल कानि-कानि पवनकार वाहनों ने आकाश को पूरी तरह आच्छादित कर दिया और चारों ओर अन्धकार सा छा गया। गेम् रमणीक समय के आने पर ब्रह्मचारियों ने श्री आचार्य जी से मनोहर-दिवस का अवकाश प्रहण किया और विशालय से छुटी लेकर गंगा के उस पार दूर तक वन-पर्वतों में भ्रमण करने के लिए गए। भ्रमणार्थ गंग ब्रह्मचारियों के दो दल भटक जाने के कारण स्या-वशित्व दृष्ट-परि-श्रम तथा आपर्ति में भिन्न-प्रवृत्त का विशेष सबक लेकर लौटे हैं। ब्रह्मचारियों का यह अथववसाय और उद्योग भविष्य जीवन में पूरी तरह इनका मददगार होगा।

**गुरुकुल वृन्दावन के ब्रह्मचारी**—गत सप्ताह गुरुकुल-वृन्दावन के विशालय विभाग के २५ ब्रह्मचारी श्री प० गंगादत्त जी शास्त्री की अध्यक्षता में गुरुकुल कांगड़ी प्यारे। ब्रह्मचारियों की यह पार्टी श्रीप्यायकारा के दिनों में संसृष्टि आदि स्थानों में घूमती हुई यहाँ आई थी। आप-पाम की संस्थाओं और वर्राणीय स्थानों को देख कर ३ दिन बाद यह दल वापस लौट गया।

## स्वास्थ्य-समाचार

लक्ष्मण ३ श्रेणी श्रेष्ठम्बर, ओम्प्रकारा २ श्रेणी, श्रेष्ठम्बर, जगदीश ४ श्रेणी श्रेष्ठम्बर, सत्यप्रिय ३ श्रेणी श्रेष्ठम्बर, देवप्रकारा २ श्रेणी मोच, रामकुमार ४ श्रेणी कर्ण गेया।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं। गत सप्ताह भी वर्षा न होने से बड़ी गर्मा रही। अब एक-दो दिन से वर्षा होने से मॉमम अच्छा हो गया है।





एक प्रति का मूल -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र ]

बातेंक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ] गुरुकुल कागड़ी, गुरुवार २८ आषाढ़ १९६८, ११ जुलाई १९६९ [ संख्या ११

## वेदों का उत्सर्जन और उपाकरण

[ हरि रामचन्द्र विवेकर ]

जीवन और साहित्य का सम्बन्ध निम्न है। यदि जीवन में साहित्य नहीं, तो जीवन नीरस है और यदि साहित्य का जीवन में सम्बन्ध नहीं, तो वह निःप्राण है। दोनों का सम्बन्ध सम्बन्ध है और जैसे-जैसे यह सम्बन्ध दृढ़तरा जाता है, वैसा-वैसा का जीवन और का साहित्य केवल भाग्य बन जाते हैं। आज हमारे देश में यह सम्बन्ध दृढ़तरा सा ही है। जिस साहित्य का आजकल निर्माण होना है, वह या तो होगा है 'टुकड़ाला' या होता है 'बाज़ार'। जीवन के सामने जो समस्याएँ मुँह फाड़े लगी हैं, उनका विवेकन साहित्य में प्रायः नहीं होता। उन्नी प्रकार हमारे लेखकों द्वारा जो नवीन वस्तुओं साहित्य में लड़ी की जाती है, वे बहुधा व्यक्त होती हैं, और प्रयत्न जीवन में उनका सम्बन्ध बहुत ही कर रहता है। इसका कारण है एकमात्र हमारी शिक्षा। हमारी शिक्षा-प्रणाली हमारा जीवन से बिलकुल बिछुड़ी हुई है। हमें कारण इस शिक्षा में हमें हुए हमारे शिक्षित विज्ञान, जो आजकल का साहित्य निर्माता है, प्रत्यक्ष जीवन की समस्याओं में पूर्व तथा अपारिचित रहते हैं। तो फिर यह कमगम ही है कि इन अपारिचित लेखकों द्वारा जिस साहित्य का निर्माण हो, वह भी जीवन में असम्बद्ध ही रहे। कहने का मतलब यह नहीं कि जीवन और साहित्य बिलकुल दोगे में दोगे बाध कर लेंगे। यदि ऐसा किया जाय तो दोनों का प्रगति रुक जावेगी। पर दोनों का प्रवाह मूल्य और अव्याहत रूप से हुए भी इनमें सम्बन्ध करने की आवश्यकता है। भारतवर्ष में पूव काल में यहाँ सम्बन्ध किया जाता था।

प्राचीन काल में वैदिक आचार्यों का एक सत्र रहता था। जिसमें वे लोग नये ज्ञान का विचार करते थे। इस कर्म को उपाकर्म या उपाकरण कहते थे। उपाकर्म का अर्थियों में क्या प्रारंभ किया इसका कारण शांभायन ऋषि

अपने गुरुसत्रों में यों देते हैं—“अपनी विद्या एक-सी सनेत्र, सन्तान्य और समर्थ रखने के हेतु ऋषियों ने उपाकर्म खोज निकाला”। आरंभ इस सत्र का होता था प्राथमी पुष्पिमा को या प्राथम शुक्लपत्र में, जिस दिन हस्त नक्षत्र हो उस दिन। लगभग पंच महीने यह सत्र चलता था और फिर पौषी पुष्पिमा के लगभग किया जाता था वेदोत्सर्जन। उपाकरण और उत्सर्जन का अर्थ स्पष्ट है—स्वीकार और त्याग। वेदों का स्वीकार और त्याग करने से प्रयोजन है नई विद्याओं को अपने ज्ञान में सम विष्ट करना और विरूपयुक्त-नये अविचारकों के कारण से सिध्दा-प्रतीकान का आग्रह रहित होकर त्याग करना। जब तक यह किया जाता था, तब तक भाषों की विद्या सनेत्र, सन्तान्य, और समर्थ रहती थी। यह प्रत्यक्ष जीवन में संबद्ध रहती थी। बाल मर्ग में जा नया साहित्य निर्मित होता था उसका लुप्तन इत्ये पंचमासिक सत्र में बड़े-बड़े आचार्यों द्वारा होती थी और फिर नये पुराने साहित्य में प्रथा का और त्याग का है, इसका नियंत्रण होकर प्रथा का स्वीकार करके, साहित्य का उत्सर्ग किया जाता था।

परन्तु अब तो इन सब प्राचीन बातों का मतलब अज्ञान होकर कोरी बातों ही शेष रह गई। प्राहम, आचार्यों का काम छोड़ कर संवेक हो गये, पर फिर भी अपने को 'ब्राह्मण' कहते रहे। वेद शब्द का अर्थ 'ज्ञान' छोड़ कर हमने वेदों को चार संहितादि चंगों को बहावदीवारी में बन्द कर दिया। अर्थात् वेदों का—इन वेदों का—न उपाकरण हो सकता, न उत्सर्जन। इस लिये 'वेद' शब्द का अर्थ दर्शन करके दर्शों का ही प्राण और त्याग बाकी रह गया। पर जैसे अज्ञानकारों के जाने रहने पर भी अज्ञानकारण के लिये शरीर में जो श्रेष्ठ किये जाते हैं वे रहते ही हैं और प्राचीन अज्ञानकारों की काम-से-वाम स्मृति तो दिलाने ही है, वैसा ही अभी तक हमारे कर्मों को स्मृतियों की भांश वही रही है। आज भी उत्सर्जन और उपाकर्म दोनों एक ही आचार्यों पुष्पिमा के दिन करते हुए हम संकल्प करते हैं। उसमें कहते हैं—जिस ज्ञान का हमने अध्ययन किया है और अध्ययन करने वाले हैं उसमें योग्य स्थानों

पर-पानी पर जोर देने में और अशोध्य स्थानों पर जोर देने में-- जो निःसागरना वैदा होनी है, उसे दूर करने के कारण इत्यादि इत्यादि। जबतक यह काम बराबर चले-प्रति चले जाता रहा, हमारा वाङ्मय, हमारा साहित्य, हमारा ज्ञान प्रगतिशील रहा और उसका अर्थ न समझकर उस केवल हवन करना, यज्ञोपवीत धारण करना इत्यादि ध्वस्त निधि बाका रही, तो वही ज्ञान अपवाही--वैयं अन्त क समाज सड़ने लगा. अनेक रोगबीजा का अनादक हुआ।

आज भी हमारे साहित्य की ठीक यही दशा है। साहित्य के विषय में आज पूर्ण अज्ञातता हो रही है। कोई किसी को नहीं पढ़ता और कोई किसी को परवाह नहीं करता। उनर लेखों का समाज पर या जीवन पर क्या परिणाम होगा, इसका विचार लेखकगण बिलकुल नहीं करते। छापने वाले भी इधर ध्यान नहीं देने और पढ़ने वालों का तो पढ़ना ही क्या? परिणाम यह होता है कि हमारा साहित्य मि-या. अनुपपुस्तक, नकली, हानिकारक होता जाता है। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे विज्ञान, निष्पत्त, समाज के विवेकशु पुत्रों की एक स मति हो जो सालभर में निमित्त हुए साहित्य की समीक्षा कर उसमें कौन-कौन से दोष आगये हैं, यह दिखलावे तथा कौन-सी समाजोपयुक्त कल्पनायें लेखकों ने प्रस्तार्पित की हैं, इसका प्रदर्शन कर उसका प्रचार करने का प्रयत्न करें। यदि इन नई कल्पनाओं के कारण कुछ पुरानी कल्पनायें ग्राह्य ज्ञान हों, तो उनका भी ग्राह्य करने का उपदेश करें और समाज को समझाएं पर चलने में सहायता दें। यह काम मुलम नहीं है, पर बिना इस प्रकार के काम के हमारे साहित्य की समृद्धि नहीं हो सकती। प्राचीन काल में यह काम बड़े-बड़े आचार्यों द्वारा किया जाता था जिस का प्रतीक मात्र अथ 'श्रावणी' रह गया है। अथ श्रावणों का अर्थ अस्म-नामय-धुनिकार्दि लगाकर ज्ञान, यज्ञोपवीत धारण तथा हवन करना-इतना ही रह गया है। इस वेदोःसंकेत की ही उन्मज्जन करने का स्वभय अथ आ पत्रवा है; नहीं, वह होता ही जाता है। पुरानी प्रथायें च्य होने का डर नहीं, किन्तु नई और न पुरानी हो गेली अकल्पयना का डर है। आशा है, पाठक इस पर विचार करेंगे और ज्ञान का उपाकरण तथा उन्मज्जन कर उन्हें सनेज और समर्थ रखेंगे।

२. 'अधोनातां पूर्वमां अध्येयमाज्ञानां च अध्यातोःसुख्यामादि-जनित-वानवाप्ताना-विरामेन इत्यादि।'

## आहार के कुछ शास्त्रीय नियम

(लेखक--डा० पी० आ० ० वैज)

भारत वर्ष में आहार सम्बन्धी ज्ञान और साहित्य का वर्तमान समय में सर्वथा अभाव पाया जा रहा है। उस का कारण प्रशान्तयता हमारी आशिक्षा तथा वर्तमान शिक्षा-

पद्धति है। आशिक्षा तो सभी प्रकार की बुराईयों को जड़ है इसमें किसी को मतभेद नहीं होना चाहिये। वर्तमान शिक्षा पद्धति इस अभाव का कारण यों है कि आहार-शास्त्र संस्कृत में है और वर्तमान शिक्षा-पद्धति का माध्यम अंग्रेजी है तथा संस्कृत का 'मृत' भाषा मानकर उसमें जो अनुभव ग्ल में बँचित हो हम अपने आप ही अज्ञानी होने जा रहे हैं। संस्कृत पढ़ना आजकल समय-विरोधी कार्य समझा जाता है। दूसरी गलती इस सम्बन्ध में वैशो-टाकट्यों की है जोकि ऐसी व्यवस्था नहीं करते कि भारतीय आहार शास्त्र का ज्ञान सब साधारण को हो जाये और उसके अभाव में जो हानि हो रही है उसमें देश को रक्षा हो। यदि समुचित रूप में सरल भाषा में आहार शास्त्र का ज्ञान स्वसाधारण को कराया जाय तो निश्चय ही हममें खान-पान की जो बुराईयां चुस गयीं हैं वे दूर हो जायें और थोड़े ही दिनों में हमें पूर्ण-विश्वास हो जायें कि हमारे पूर्वजों में जो नियम इस सम्बन्ध में बनाये थे वे आनुवंशिक अनुसंधानों द्वारा रचित नियमों में अधिक विश्वनीय नहीं तो उसमें क्या कदापि नहीं थे। वर्तमान शिक्षा पद्धति में अधिकार में अंग्रेजी आहार-शास्त्र का थोड़ा ज्ञान हो जाता है लेकिन नियम प्रत उनका आहार उसमें भिन्न रहता है। फलतः ये न तो अपने और न अंग्रेजी आहार का नियम ज्ञान पाते हैं और न इधर के रहे न उधर के रहे, बलौ कदाचित् चरितार्थ होती है। यदि किसी व्यक्ति में आहार नियमानुसार करने की कोशिश की तो उसे क्वचन पश्चिमीय व्यापारपदार्थ अथवा अन्य अभाव का प्रयोग करने का विचार होगा, जबकि उसका आहार देश-कालानुसार कुछ और ही है। और नहीं है तो होना चाहिये। फलतः यह ज्ञान देश करने पर भी अपूर्ण ही रह जाता है और हानि उठाकर भी अनुभव का अभाव बना रहता है।

वास्तव में होना यह चाहिये कि विज्ञान विशेषतः भारतीय आहार पदार्थ का परीक्षण करें और अनुसन्धान एवं प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध और प्रचार करें कि उनमें किन अंशों में गुण और अनुभव है और किस परिमाण में देश-कालानुसार उनका उपयोग करना चाहिये। उचित पथ प्रदर्शन के पूर्व यह कार्य होना अनिवार्य है। आयुर्वेद शास्त्र तथा अन्य प्राचीन साहित्य द्वारा जो नियम बने हैं और आज की गर्था हैं उन पर अभी भी नि विचार करके अनुसन्धानों द्वारा उन्हें प्रमाणित अथवा अप्रमाणित कर जनसाधारण में उन्हें प्रचारित कर देना चाहिये ताकि लाघ पदार्थ के बचने और खरीदने वाले तथा खाने और पकाने वाले इन नियमों और अनुसन्धानों में भली भाँति परिचित हो जायें। देश का कल्याण तब तक असम्भव है जब तक हमारा खान-पान और रहन-सहन नियमित नहीं हो जाता।

आहार का प्रभाव मन पर विशेष रूप में पड़ता है और उसमें सुधार हो जाने से हमारी मनोवृत्ति पर भी असर पड़ेगा यह सर्वमान्य है। स्वनिद्रिय पर नियन्त्रण हो जाने के बाद भी यदि समुचितज्ञान आहार शास्त्र का

न रहा तो निश्चय ही स्वादेन्द्रिय-संयम पूर्णतया लाभकर नहीं होगा। इसी त्विंये प्रबन्धार्थ तथा सकल जीवन के लिये यह अनिवार्य-सा हो जाता है कि इन्म सम्बन्ध में तन-मन-धन द्वारा पूर्ण उद्योग किया जाये और निश्चय रूपसे कार्य किया जाये।

प्राचीन शास्त्र में आहार के नियम बड़े ही उपेक्षी ढङ्ग में दिये गये हैं जिसका तमूना मात्र यहा पर दिया जा सकता है। हो सकता है कि कुछ लोगों को उसके प्रति कुछ सम्बेद हो लेकिन सम्बेद दूर करना एक दिन का काम नहीं वह ऊपर बताये गये उपाय द्वारा ही हो सकता है। तथापि भारतीय आहार शास्त्र की अपनी विशेषता है और यह निश्चित है कि प्रत्येकारणों ने पूर्ण-रूपसे अनुसन्धान करके ही उसकी रचना की थी।

भगवान् कृष्ण ने गोता में कहा है—

युक्ताहार-विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

६ अ० ११ श्लोक।

सारांश यह है कि परिमित आहार, विहार, चेष्टा, कर्म, आदि से युक्त व्यक्ति ही योग में लाभ उठा सकता है।

आहार का प्रभाव मन और बुद्धि तथा क्रमशः समस्त जीवन पर किस प्रकार पड़ता है उसका कितना अच्छा वर्णन निम्न श्लोक में होता है—

आहार शुद्धी सत्वशुद्धिः सन्ध शुद्धौ-

ध्रुवांसिद्धिः ध्रुवा सिद्धिर्विप्रमोक्षः।

आहार की शुद्धि में सत्व की शुद्धि तथा उसमें पूर्ण सिद्धि की प्राप्ति होती है। इस प्रकार एक व्यक्ति आहार द्वारा शुद्ध मनमें ही मोक्ष का भागी हो सकता है।

नात्यश्नन्तस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।

न चानि स्वप्न-शीलस्य जाग्रतो नैव चाहुंन।

गीता अ० ६ श्लोक १७।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जो आहार अपने शरीर के अनुरूप है वही रक्षा कांगा और रोग-दोष उत्पन्न नहीं होने पायेंगे। इसके विपरीत किया गया आहार निश्चय ही रोग-व्याधि का कारण बनेगा और शरीर की रक्षा करने में असमर्थ रहेगा।

माकरंडेय पुराण में बतलाया गया है कि बहुत स्वाकर या मूत्र से पाइल रहने पर, व्याकुल होकर अथवा भ्रमयुक्त होकर, योगी ब्रह्म प्राप्ति की व्यर्थ चेष्टा न करे। योगसूत्र में बतलाया गया है—

अर्द्धं स व्यंजनाश्रय्य तृतीयमुदकम्युत।

वायोः संचरणाश्रयु चतुर्थमवशेषयेत्।

अर्धान् पेट के दो भाग अर्थात् के लिये, तीसरा जल के लिये तथा चौथा भाग वायु के लिये रिक रचना चाहिये। सारांश यह कि आधा पेट भोजन ही आहार शुद्धि है।

महाभारत उद्योगपर्व में लिखा है—

यच्छकं प्रसिक्तं प्रात्यं, प्रलं परिष्कमेवयत्।

हितं च परिष्कामे यत्तदार्थं भूमिमिच्छिना ॥

जो पदार्थ भोजन करने योग्य, पकने वाले तथा अन्न

में गुणकारी हों उन्हीं पदार्थों का भोजन करना चाहिए, यदि आरोग्य रहना है।

अनारोग्यमनायुष्यमस्यै चानि भोजनम्।

अपुण्यं लोकविद्विदं तस्मान्नापरिवर्जयेत्।

(मनुस्मृति द्वितीय अध्याय)

अर्थात् बहुत भोजन करना आरोग्य, आयु और मूत्र के लिये हानिकारक है। पके भोजन में कोटि लाभ नहीं बल्कि उल्टी निम्ना होती है।

भगवान् कृष्ण ने १७ वें अध्याय में बताया है कि

आयु, जीवन का पवित्रता, बल, आरोग्य, मूत्र प्रेम का बढ़ाने वाला स्वप्न, पुष्टिकर एवं क्लिष्टकर आहार

करना चाहिये—

आयुः सत्व बलरोग्य मूत्र-भीतिविघर्षनः।

रम्याः स्निग्धाः शिवा हृद्या आहाराः सान्त्विका प्रियाः।

श्री—

कट्यस्नलस्युष्णान्युष्ण तीक्ष्णस्तृषिद्वि हिनाः।

आहारा राजसस्थेष्टा दुःख शौकामयप्रदा।

कड़वे, खट्टे, नमकीन, बहुत गरम, तीखा, रुखा तथा

अन्य प्रकार के राजसी आहार मनुष्य को दुःख, शोक रोगादि में पीड़ित रखते हैं।

आगे चलकर बतलाया गया है—

यानयाम् गतरसं पुनियुपितं च यत्।

उच्छिद्यमपि चामेधय भोजन तामसांश्रयम्।

(गीता १७ अध्याय)

देर का रस होना, नीरस, उन्मत्तयुक्त, मट्टा हुआ तथा मोनार्द्र उच्छिद्य भोजन तामसी बुनियातों का प्रय है। सारांश यह कि इस प्रकार का भोजन न्याय्य है।

सायं प्रातमनुष्याणामशनं देवनिमित्तम्।

नान्तराभोजनं दृष्टमुवासी तथा भवेत्।

देवताओं ने मनुष्य के लिये दो बार ही भोजन करने की व्यवस्था की है। दोनो भोजनों के बीच में भोजन न करने से बही फल होता है जो उपरान्त करने में मिलता है।

दुःखिण्यपि यद्विद्रव्य मद्करारी तदुक्थवेन।

(शाङ्गधर ४ अध्याय)

जिस पदार्थ के संचय में बंछ नष्ट हो वही मद्कर-द्रव्य है। राजसी और तामसी भोजन करने ही मनुष्य का मनीषिच म अन्नर पड़ने लगता है। यही कारण है कि तामसी भोजन करने वाले व्यक्ति बहुधा क्रूर और कठोर स्वभाव के होने हैं।

आहार तीन प्रकार का है—सात्त्विक, राजस और तामस।

१-सात्त्विक—आहार—आयु, सात्त्विकवृत्ति, बल,

आरोग्य, मूत्र-भीतिबद्धक, रसोले, चिकन, शिवा और आनन्ददायक भोजन सात्त्विक आहार हैं। ऋषियों ने ऐसे लतुपाकी, अत्यन्त स्नेहन रसयुक्त मनुष्य एवं श्रिय आहार का सात्त्विक कहा है, जिनके सेवन से मनुष्यों की वृत्ति स्वतोगुणी हो जाती है। आहार में यव, मूंग,

हालि, गेहूँ, सांडी, चणक, अरहर, गोदूध, गोघृत, चीनी, सेंधक, लतुपाकी शाक तथा शुद्ध पक हुए म दूर फल

(शेष पृ० ५ पर)

# गुरुकुल

२८ आषाढ शुक्रवार १९६८

## अंग्रेज़ी में आर्य वैदिक साहित्य

[ ले०—प० स्ना० धर्मदेव विद्यालंकार विद्यावाचस्पति ]

अभी कुछ दिन हुए मुझे श्रीयुग रामचन्द्र राव B. A. B. T. नामक एक बंगलौर के मुशरिफित सज्जन का अंग्रेजी में निम्नलिखित पत्र स्वाभाविक रूप से प्राप्त हुआ—

“मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या वेदों के अंग्रेजी में अनुवाद हैं यदि हाँ, तो वे कहाँ मिल सकते हैं। मैं उन्हें पढ़ने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूँ। मैं जानता हूँ कि यह दुर्भाग्य की बात है कि मैं उन्हें (वेदों को) अंग्रेजी अनुवाद द्वारा पढ़ूँ किन्तु क्योंकि मैं संस्कृत नहीं जानता इसलिए मुझे इस बुरे व्यापार वा दुर्भाग्य का अच्छे से अच्छा लाभ उठाना चाहिए। मैं आर्य समाज का सदस्य बनने और उसके प्रति अपनी तुच्छ सेवा समर्पित करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।”

इस पत्र को पढ़कर जहाँ मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि कि मुशरिफित जनता में अब वेदों के पढ़ने की उत्सुकता उपनष्ट हो रही है और आर्य समाज के प्रति उनका प्रेम बढ़ रहा है वहाँ उनका यह सूचित करते हुए कि अभी तक दुर्भाग्यवश चारों वेदों का, एक वेद का भी अंग्रेजी में यथाय अनुवाद विद्यमान नहीं है मैंने अपने अन्दर जिम लजा का अनुभव किया उसे ही जानना हूँ।

कुछ वर्ष पूर्व की बात है कि मिटिश पब्लिशर्स के एक प्रमुख सदस्य जो मजदूर दल के थे, बंगलौर पधारे थे। मैं उन्हें वैदिक धर्म और आर्य समाज का परिचय देने के लिए गया। आर्य समाज का सुख्य उद्देश्य वेदों का देश-देशान्तर में प्रचार करके उनके द्वारा संसार का उपकार करना है इत्यादि बातें जब मैंने उन्हें बतलाई तो वे वेदों के विषय में जानने को अत्यन्त उत्सुक हुए और उन्होंने मुझे वेदों के अंग्रेजी अनुवाद देने या उनके मिलने का पता बनाने के लिये कहा। मैंने जब उन्हें सत्यार्थ प्रकाश का डा० चिरंजीव भारद्वाज कृत अंग्रेजी अनुवाद मेंट करने के अनुरिक ख० प० रामीराम जे० कृत अश्वेदादि भाष्य भूमिका के अंग्रेजी अनुवाद तथा दो चार अन्य छोटी २ पुस्तकों का जिनमें कुछ वेद मंत्रों का अनुवाद विद्यमान है पता दिया तो वे कहने लगे हमारे की पर्वाह नहीं मैं इसके लिये बहुत कुछ खर्च करने को तय्यार हूँ। आप मुझे चारों वेदों के प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद मिलने का पता बतलाइये जिससे मैं उन्हें खरीद लूँ और उनसे लाभ उठाऊँ। क्या आपके पास केवल इतना ही वैदिक साहित्य अंग्रेजी में विद्यमान है?

उनकी इस बात को सुनकर मैं उत्तमिद हुआ क्योंकि मुझे यह बताना पड़ा कि अभी तक किसी भी वेद का प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद विद्यमान नहीं है। हाँ, आशा है कुछ वर्षों के अन्दर यह तय्यार हो जायगा। तब तक आप इन्हीं पुस्तकों को पढ़ लें जिसमें वैदिक शिक्षाओं की महत्ता आपको डाल दी जायगी।

इस तरह के पत्र अंग्रेजी में वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में अनेक बार आते रहते हैं और जब कभी सुप्रसिद्ध ईसाई या मुसलमान प्रचारकों के वेदों के प्रो० मैक्समूलर, मिर्दिथ आदि यूरोपियन विद्वानों वा श्री मायगाचम, उग्रव, मदी-परादि पौराणिक कालीन भारतीय विद्वानों द्वारा किये भाष्यों के आधार पर किये गये आलोचों का उत्तर देते हुए हम लोग उनकी अप्रामाणिकता सिद्ध करते हैं तो वे हमसे वेदों के अंग्रेजी में यथाय प्रा-णिमक अनुवाद मांगते हैं और तब हम लोगों को लजा के साथ कहना पड़ना है कि ऐसा प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद अभी तक किसी वेद का भी विद्यमान नहीं है।

यह अवस्था वस्तुतः कितनी शोचनीय है कि जो वेद हमारे धर्म की आधार शिला हैं, जिन्हें ईश्वरीय पवित्र ज्ञान मानते हुए देशदेशान्तर और द्वीप द्वीपान्तरों में उनके प्रचारार्थ प्रयत्न करना आर्यसमाज अपना कर्तव्य समझता है उन वेदों का कोई अनुवाद अंग्रेजी वा अन्य विदेशीय भाषा में विद्यमान नहीं है जिसे दिग्गो और मशहूर जामिदे से अभिन्न भारतीय वा विदेशी विद्वानों को दिया जायके। प्रो० मैक्समूलर आदि के अनुवाद कई भाषाओं पर अत्यन्त अस्पष्ट, अशुद्ध और उपहासजनक हैं इस बात को तो अब यूरोप अमेरिका के बड़े २ विद्वान भी स्वीकार करने लगे हैं। उदाहरणार्थ Sacred Books of the East Series के रशियन संस्करण के संतदक नि० बौलंगर (Boulenger) ने प्रो० मैक्समूलर के वेदों के अनुवाद में अत्यन्त प्रकट करते हुए कुछ वर्ष पूर्व लिखा था—

“इसका मांगना यह है कि दुर्भाग्यवश मुझे ऐसा पनीत होता है कि यदि रशियन जनता को वेदों का परिचय प्रो० मैक्समूलर के अनुवाद द्वारा कराया जाय तो जनता की र्वि उनके आचरण में कभी उत्पन्न न हो सकेगी। मुझे प्रो० मैक्समूलर के अनुवाद में जो बाधा बड़ी विचित्र लगी वह यह कि उनमें वास्तविक आकल और अस्पष्ट भाष्यों की भरमार है। जहाँ तक मैं वेदों की शिक्षा को ममक सका हूँ, वह इतनी उत्कृष्ट है कि प्रो० मैक्समूलर जैसे भ्रमोत्पादक अशुद्ध अनुवाद द्वारा रशियन जनता को परिचित कराना और इस प्रकार उन्हें हम आध्यात्मिक लाभ से वंचित रखना जो यह वैदिक शिक्षा लोगों को देनी है, मैं बड़ा अपराध वा पाप मानता हूँ। इत्यादि।

किन्तु प्रश्न तो यह है कि हम केवल प्रो० मैक्समूलर वा सायगादि के भाष्यों को समालोचना करके ही कब तक सन्तोष करते रहेंगे? क्या शीमनी सांवेदेशिक आर्य प्रति-निधि मन्ना में जिनका एक मुख्य उद्देश्य ‘आर्यवर्त’ तथा अन्य देश देशान्तरों में वैदिक धर्म के प्रचार का प्रबन्ध करना है तथा वैदिक धर्म की उत्थान तथा सुद्धि और रक्षा के उपायों को प्रयोग में लाना है, ऐसा एक विचार होना

उचित और आवश्यक नहीं जिसके द्वारा वैदिक साहित्य का प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद सुयोग्य विद्वानों द्वारा कराया जाये ? श्रीमती-साम्बन्धिक सभा समय समय पर योग्य प्रचारकों को विशेषों में वैदिक धर्म प्रचारार्थ भेजती रही है यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। किन्तु तेम प्रामाणिक अनुवाद तथा वैदिक धर्म सम्बन्धी अन्य उनम साहित्य के विना हममें विशेष सफलता मिलनी (विशेषतः वहाँ की मुशिलित जनता में) मेरे विचार में सर्वथा असम्भव है। अतः मेरा हृद् विचार है कि यदि अभी तक प्रतिष्ठित सभा का ऐसा कोई विभाग नहीं है तो उसे आवश्यक ही अनिच्छित इम विभाग की स्थापना करने चाहिये तथा अंग्रेजी में एक चर्च बोर्ड का मासिक पत्र भी आवश्यक निकालना चाहिये जिसमें वेदों का प्रामाणिक अनुवाद और वैदिक धर्म के तन्त्र विषयक उत्तम लेख प्रकाशित होने रहें। स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी श्रीमती साम्बन्धिक सभा के अनेक वर्षों तक उपप्रधान रहे थे। उनका सभा स्मारक जो प्रतिष्ठित-सभा स्थापित कर सकनी है वह मेरी तुल्य सम्मति में यही हो सकता है कि उन द्वारा सम्पादित 'वैदिक मीगरीन' को फिर मे जारी किया जाये और तेसा प्रवृत्त किया जाण कि वह पूर्व की उष यिनि को फिर मे प्राप्त करके वैदिक धर्म के प्रचार का उत्तम साधन बन सके। यदि प्रतिष्ठित सभा इम अत्यावश्यक कार्य को हाथ में ले तो मेरा विश्वास है कि कई योग्य सज्जन इम कार्याय उमे मिल सहेगे जो तेमे पवित्र कार्य में सहयोग देना अपना कर्त्तव्य समझेगे। आशा है मेरे इम नम्र निवेदन पर प्रतिष्ठित सभा उचित ध्यान देगी और शाय ही इम लेख में प्रस्तुत विभाग की व्यवस्था करेगी।

( पृ० ३ का शेष )

साहित्यिक पदार्थ हैं। इनके सेवन में सर्वोत्तुषी वृत्ति उत्पन्न होती है।

२-राजसी आहार—कड़वे, लहटे, नमकीन, शयन्त-उष्ण, तीब्रे, चरपरा तथा दुःख, शोक और रोग उत्पन्न करने वाले राजसी आहार हैं। शरीर बिलों में अत्यन्त उ-उ, आवश्यकता से अधिक मीठा, कड़वा, तीता, नमकीन, रसा, चरपरा लहटा, दोषयुक्त पदार्थ, गर्दी अर्थात् अपवि-यता से बनी हुई सामग्री, गरिष्ठ ( पूड़ी जैसी) मालहूआ आदि ) प्याज, लहसुन, गाजर, उड़द, मसूर, सरसों, मीठ, मसूला, अडा, कबाब, चाब, काफी, कांको, सोडा, लेमन, नैल, हींग, मसाला, पान, तम्बाकू, गाजा, अंग, चरस, लहट्ट, कोशीन आदि को राजसी आहार कहा है, इनके सेवन से मनुष्य रजोगुणी हो जाता है।

३-नामसा आहार—दूर का रसा हुआ, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, जुटा और अपवित्र भोजन नामसी आहार कहलाता है। इसमें राजसी आहार की वस्तुएँ भी सम्मिलित हैं। यह आहार अत्यन्त शुषित, निन्दित एवं निकृष्ट है। सस्तर को सर्वैष इतने बचना चाहिए। इसमें मनुष्य पूर्ण तमोगुणी बन जाता है। मनुष्य के शरीर पर इसका बड़ा बुरा परिक्राम प्रकट होता। यह निकृष्ट आहार मानवीय अन्तःकरण में दानवी वृत्ति उत्पन्न कर देता है।

इसका ये भी सदा गंगी, दुःखी, मुक्तिहीन, लोभी, कौपो, कामी, मोही, ध्यानवागी, अविचारी तथा दुर्गुण हो जाता है। नित्यदृष्ट-शोक-दोषात्प्राप्त हो अकाल मृत्यु का बीड वन तरकगामी हो जाता है।

राजसा आहार शरीर में रजोगुण उत्पन्न करता है। इसके सेवन से श्मिद वृत्तियाँ भी वृद्ध हो उठती ह। विषयों की ओर इर्दगधा दोड़ जाती हैं जिसमें मनुष्य कामी और पापा वन जाता है। चिन् का वातावरण वृद्ध हो उठता है। मन शक्ति के बाहर हो मनमाना करने लगता है जिसमें रोग और शोक बढ़ने लगने ह। आयु, नेत्र रत्न साम य, सौन्दर्य, और सौभाग्य घटने लगने है। नामसी आहारवाले के समान राजसी आहार वाला भी ब्रह्मचर्य का अधिकारी नहीं हो सकता।

आहारों में सात्विक आहार श्रेष्ठ है, अतः जिन्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना है, जो अपना उच्चार करना चाहते ह, जिन्हें अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की उत्तम अर्थात् जो अपने शरीर में सौन्दर्य बल एवं समस्त बंधना चाहते ह तथा जिन्हें अपने पतन-वस्था पर ध्यान है—उं हें चाहिये कि राजसी और तामसी आहार छोड़कर शुद्ध शक्ति देने वाला सात्विक आहार सेवन करें।

वीर्य-स्राव के प्रवियों को सुखम आहार करना चाहिये। सात्विक आहार या विशेष मात्रा में हो जाने पर राजसा हो जायगा। ऐसा भोजन करके कि तुम आहार को खाओ, ऐसा न हो जाय कि आहार हो तुम्हें खा जाय। विशेष भोजन करने में बुद्धि का नाश हो जाता है। बुद्धि हीन हो जाने में मनुष्य सहज ही में पाप-पट्ट में पँस जाता है। अधिक भोजन करना ही बाध एवं अन्तर व्याधियों का कारण है।

## चित्रकार और चित्रकला का विकास

( ले०—प्र०शान्ति प्रकाश )

विश्व के जीवन में ललित कलाओं का अग्रन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानवता को उच्च स्थिति पर पहुँचाने वाली ये ही कलाएँ हैं। मनुष्यम में शुरुआत की तरह मनुष्य जीवन में ये कलाएँ सरसता भरने वाली हैं। कविता संगीत और चित्र इनमें से किसी एक का भी आशय लेकर मनुष्य तन्मय हो सकता है। सुनिया से पृथक् रहकर भी इनकलाओं के आशय मात्र से कभी वह अपने को एकाकी नहीं समझता। ये उसको इंसान-बोलेने वाला एवं स्नेह करने वाली संगीनी की तरह हैं। कलाकार का जीवन-कल कार की कला तन्मयता, अस्थयम और आनन्द की वस्तु है। ऊपर से ऊले खुले बालों वाला, मैंने फटे कपड़ों में ढका हुआ भी हृदय संश्लि की सुन्दर में सुन्दर वस्तु से भी सुन्दर है।

तीनों कलाएँ अपने में पूर्ण और सरस होनी हूँ भी अन्यान्याभिन्न हैं। कविता यदि रत्न (चित्र है तो चित्र

रेखायुगी कविता है संगीत सौन्दर्य का वह चित्र है जो तान्य श्रांग स्वरों में बध्ना हुआ है। चित्र जिसमें सरिता की लहरों का कलकल, चित्रकार की मूखी में बोल उठना है वहाँ हृदय का संगीत पीड़ा मदन शब्दों में लिख कर कविता बन जाता है। अन्दर और बाहर को सम्पूर्ण भावनायें तथा सौन्दर्य चित्रकार की मूखी में रचित होकर श्रांगों के सामने आजाते हैं, हृदय का कविता ऊँचा और सन्ध्या के सुहाग भंगे चित्र संगीत की स्वर लहरी में गुल ५२ मानवीय हृदयों को रंग देते हैं।

लेकिन फिर भी तीनों का क्षेत्र अलग २ है। मानव हृदय की भावकता, कला, पीड़ा या उन्मास चित्रकार की कृति में उतनी आसानी से सामने नहीं लाये जा सकते जिनकी कि आसानी से कविता में उनका शब्द उग्रा चित्र प्रगट होता है। लहरों में चलते हुए बड़े में खड़ा हुआ नाविक उड़भ्रान्तों के साथ अपना पथ खोज रहा है, शायद उसको कवि उतनी आसानी से सामने न रहा लगे जिनकी आसानी से कि चित्रकार उसको मय हाव-भाव के प्रगट कर सकता है। इसी तरह कौकिल के पंचम-स्वर और संसृति की सम्पूर्ण स्वर लहरी को कवि या चित्रकार अपनी कला में उतना सामने नहीं ला सकते जिनकी आसानी से एक निपुण गायक !

अन्त में कला जब पूर्णता को प्राप्त हो जाती है तब तीनों एक रस होकर रस-सागर में अन्तर्लीन हो जाते हैं। साथ शिख और सुन्दर मिलकर पूरा मय का निर्माण करते हैं। चित्रकार का चित्र शब्दों में बोलता है। स्वरों में गाता है। कवि की कविता रंगों वाले चित्र सौख्य देती है। कौशल बनकर पंचम स्वर में गाती है और गायक का स्वर संगीत अपनी लहरों में संसृति के चित्र और भावनाओं को अनुचित कर देता है।

सृष्टि के प्रारम्भ से ही कला मानव जीवन का एक आवश्यक अंग बन गई। मृग और चमड़े में छिपा हुआ मानव हृदय अपनी आवश्यकता की मांग करने लगा। उस युग की अभ्ययना और जंगलीपने का समावेश लेकर भी हृदय, चित्र के कलायुग सौन्दर्य की ओर विचलना रहा। जंगल में सदा रहने वाला बसन्त, भरनों का स्वर संगीत और पहाड़ों की उँचाई अपनी कला में उन्ने सजा ही आकृष्ट करने रहे। अपने हाथों में देड़ी मेड़ी लकीरें खींचकर मनुष्य अपनी कृति पर मुग्ध होता रहा, स्वर पाकर उसमें गुणगुणाना शुरू किया और आधा पाकर उसमें अपनी हृदयगत भावनाओं को सुन्दर तरीके में प्रगट करना बाधा; उसी में चित्र, संगीत और कविता की उत्पत्ति हुई। हमें निरन्तर विकास होता गया और आज हमें तीनों कलायुग पृथक् रूप से अपने में पूर्ण होकर हमारे सामने हैं।

हमारा विषय चित्रकला है; कविता और संगीत को छोड़ कर इस समय उसी पर विचार करना है।

रंगों से लगी को प्रेम होता है। हम आज भी गावों के अन्दर जाते तो देखेंगे कि वहाँ का प्राचीन अपनी दीवारों को (भदे और जिनको शायद अपने को सज्य कहने वाले लोग देखते तो बुझा से मुंह फेर लेंगे) रंगों से रंगते

हैं। मनुष्य को रंगों से प्रेम है वह प्रेम ऊँचा ही गया हो पर प्रेम ही है। प्रकृति से भी लगी को प्रेम है, उसने कदने हुए भरने, जिनका बृष सा सफेद रंग है, ऊँचे हो एके वाले पेड़ भी हो रंग से लम्ब है। यह बात और है कि किसी को एक चीज पसन्द है तो दूसरी नहीं; यदि ऐसी बात न होती तो ये दिवाराँ देने वाले स्वत रंग न होने और कोई एक ही रंग होता। कलाकार खुले रंगे और असत्यस वस्तुओं में सौख्य देख सकता है और दूसरा मनुष्य सुन्दर से सुन्दर चित्र की भी कीमत नहीं समझता। कुछ भी हो मानव जीवन में इस चीज का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

चित्रकला का जन्म क्यों हुआ कैसे हुआ ? में समझना है इस प्रश्न का उत्तर उसकी भूमिका में मिल जाता है। इस कला का विकास कैसे हुआ यह देखा जाय तो इतिहास के अध्ययन और प्राचीन प्राप्त वस्तुओं के अध्ययन से कला के विकास का सौन्दर्य स्पष्ट हो जाता है। प्राचीन मनुष्य के पास इनसे साधन न थे, उसकी सौख्य और विद्या की वृद्धि इनकी उन्नी न थी। उसका ज्ञान उसकी दृष्टि सीमित थी। उसका सम्पूर्ण अपने में ही था। उसका संसार मर्यादा में बद्ध था और उसी में उन्ने पूर्णता की प्रतीति होती थी परन्तु पीरे २ सभ्यता का विकास हुआ और मनुष्य ने उसकी सभ्यता में चलना सीखा, बोलना सीखा अपनी आवश्यकता को समझा और अपने सीमित और संकुचित आचार से निकल कर बाहर आया। इसी से साथ उसकी कला का भी विकास हुआ।

प्राचीन काल से लेकर आज तक के चित्रों के अध्ययन से उस कला का विकास आसानी से समझा जा सकता है। पता चलता है कि किस प्रकार देड़ी मेड़ी लकीरें खींचकर उनमें भदे और प्रनमाने रंग भर कर मनुष्य आज उत्तम कला पूर्ण चित्र तय्यार करने लगा है

सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य में साधनों की उत्पत्ति हुई। मनुष्य स्थिर हो कर एक जगह पर रहने लगा। उसने कृषि की उत्पत्ति की, उसने घर बनाने उन्ने धातुओं का उपयोग पना लगा। अब वह समृद्ध था उसके पास बड़े व नगर, बड़े २ बदन और आवास के साधन थे। उन्ने उन्नत हुई अपने को मनुष्य बनाने की, अपने भवनों को सुन्दरता से सजाने की और अपने नगरों को सुव-सुन्दर बनाने की। उसके देवता थे, उसके अधिपत्य थे, वेव-प्रतिभायें थीं। उन सब के साथ उसकी सृष्टि थी, उसी सृष्टि को सौन्दर्य की सृष्टि में वह बेकला चाहता था। इसलिए उसने अपनी दीवारों को रंगना शुरू किया, मूर्तियाँ बना कर उनको मिला २ रंगों से सजाया और अपनी भावनाओं और पसन्दगी के अनुसार उसका निरन्तर विकास होना गया।

सभ्यता और अपने बड़ी मनुष्य एक उगाह से उठकर दूसरी उगाह जाने में समर्थ हुआ। एक देश ने दूसरे देश को जीता। मिला २ सभ्यतायें संस्कृतियाँ आपस में मिलीं और उनके अन्दर आत्मन्य मदान हुआ उनका प्रभाव कला पर भी पड़ा। मिला २ तरीकों के आपस में मिला जाने से कला और विकसित हुई।

इस समय की कला आध्यात्म उन्नत है, सुसंस्कृत है। फिर भी पृथ्वी की कम्पौटी पर पूरी होगी यह नहीं कहा जा सकता। और कब पूर्ण होगी यह भी कहना मुश्किल है। यदि पृथ्वीला प्राप्त हो जाय तो वस्तु भी इति भी सम्बन्धी चाहिये, इसलिये उस समय में एक-अध तक निर्गमर विकास और प्रगति जारी है। साधनों के बढ़ने के साथ मनुष्य का ज्ञान भी बढ़ा और उसके साथ ही अपनी कला को मन्दिर और मन्दिरतर बना देने की प्रवृत्ति भी बढ़नी गई।

आज के मनुष्य के पास विज्ञान है। उसके द्वारा नये आविष्कार हो रहे हैं। आज के मनुष्य के पास यंत्र हैं यन्त्रों से मनुष्य और भी आसानी से कार्य सम्पादित करने में समर्थ होने है। इसी प्रकार के विकास से मनुष्य ने फोटो ग्राफी का आविष्कार किया। हर जगह और हर समय में चित्रकार अपनी आवश्यकता को पूरा नहीं कर पाता। उसके अतिरिक्त आज समय की किरायन भी लोगों के चाहने की वस्तु बन गई। फोटोग्राफी उन सब आवश्यकताओं को पूरा करती है। इसके अन्वय भी निर्गमर विकास हो रहा है इसका कल स्वरूप आज के चलचित्र हमारे सामने है। यह कहना भी उचित है कि मनुष्य के ज्ञान का विकास हुआ पर परब्रह्म का हास भी होता गया। उस ज्ञान विकास के साथ परिश्रम को मूल्य घट गया। आज फोटोग्राफी की उन्नति में पश्चिमी जगत् का आविर्भाव हो गया, परन्तु और जागते चित्र को दिखलाने वाले नाटक अद्यत्य होगाये जिसके कारण प्राचीनता का चित्रपट समूल नष्ट होगया। जहाँ हस्तरचित्र कृति की पूजा होती था और प्राचीन काल में उस कृति के बदीलन कलाकार अपने परिश्रम का उचित फल पाता था, आज उसका कोई मूल्य नहीं, उसका मूल्य उस चित्र को प्रकाशन करने में मूल्य है। यदि उसकी प्रकाशित करना भी चाहे तो गरीब चित्रकार के पास फुटी कौड़ी नहीं होती और वह अपने परिश्रम का कदर नहीं पाता, उसकी रचना को भुंकर प्रकाशित करने में है अन्यथा नहीं। परन्तु चित्रकार जो इस समय अपने चित्र को प्रकाशित करने में कष्ट या नाम प्रप्त करता है प्राचीन समय में राजा लोग उस कृति पर मुग्ध होकर उसकी प्रशंसा करने में उस पर श्लोकावर हो जाते थे, अपना राज्य तक लूटा देते थे। और कलाकार अपने परिश्रम का उचित फल पाता था। चाहे इस समय जैसा कहा जाता है कि कला का विकास हुआ और इस चित्रकला ने विकास स्वरूप फोटो ग्राफी की उन्नति को, उसकी सहायता से एक चित्र की कई प्रतियाँ बनाई जाती है फिर भी चित्रकार या कलाकार शून्ना ही रहता है।

आज मनुष्य का विचार-जगत उन्नति पथ पर निर्गमर बढ़ता ही जा रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि कब तक यह बढ़ना जारी रहेगा। उसकी पहुँच बहुत दूर तक है। उसके साथ ही उसका कला भी नये रूप में उसके साथ है। आज के चित्रकार के पास क्षया चित्र है। यह क्षया के अन्वय प्रकाश का साधन कर सकता है उसकी चित्र प्रतिमायें बोल उठती हैं। उसके चित्र का अरना कलकल कर उठता है उसके चित्र की सहकारो नद

पर बैठी हुई कौकला कुड़क उठ सकती है।

आने जीवन के प्रवाह के साथ कला बढ़नी रंगीनी। जीवन के उतार चढ़ाव, विलास, धासना और आध्यात्म सब अपने २ रंगों में कला को अद्वैतित करने रहेंगे।

कलाकार की कला उसके प्रतिश्रम को मनुष्यों के सामने कर देती है। चित्रकार के बनाए चित्र में यदि हस्तना नजर आता है और उसी हस्त का रस्ता है तो चित्रकार में वे दोनों गुण हैं जिनसे वह किसी को हंसा सकता है एवं रसा भी सकता है। यदि उस चित्रकार का कृति को देख कर देखने वाला हसता है तो चित्रकार हस-मुख प्रकृति का है वह अपनी कला में लुभा रहता है। जब कि उसकी उस कला को देख कर दर्शक रोना हो गेता है तो वह चित्रकार किसी पीडा से पीड़ित है उसके अन्तःकरण में कोई पीडा या दुःख की आग जल रही है जिनके प्रतिश्रम स्वरूप वह चित्र उस कलाकार की मनोवृत्ति को प्रगट करता है। चित्रकार अपनी कला में पूर्ण नहीं है जब वह दूसरे को हंसा सके, रसा सके दूसरे के दुःखित-हृदय को प्रसन्न कर सके और प्रसन्न हृदय को दुःख में परिवर्तित कर सके।

चित्रकार अपनी रचना में मस्त रहता है। यदि उसकी रचना उन्नेति भावों को प्रगट कर देती है तो निश्चय कलाकार किसी से सतया हुआ है। यदि यही रचना दूसरे एवं मल्ल भावों को दर्शाती है तो चित्रकार आज लुभा होकर चित्र बनाने में रत है। इस प्रकार उसकी रचना मात्र ही उस चित्रकार के हाथ-भावों को, उसकी प्रकृति को तथा उसके विचारों को प्रगट करती है।

प्रायः चित्रकार अपने को अपने कला में अग्रुष्ट ही पाता है जब तक कि उसकी कृति की प्रशंसा न हो और माग न हो। वह चाहे तो अपनी कृति को दर्शकों के सामने लाकर अपनी प्रशंसा करा सकता है, अपने भावों को उनके सामने प्रगट कर सकता है। अपनी हृदयगत आभलावा को दर्शक के सामने रख सकता है। और यदि उसकी कला या कृति अपने में पूष ही और यह सुन्दर है तथा परिश्रम में निर्मित है तो वह उस चित्रकार की हृदयगत आभलावा को अद्यत्य पूरा कर सकती है और करा सकती है। वह उस कलाकार की रचना पर अवलम्बित है।

आज चित्रकार की ही यह चिन्तित रचना है जिस पर हम सब चलते फिरते नजर आते हैं। यह चित्र उस चित्रकार का है जो अपनी अभिलाषा को, अपने कार्य को एवं प्रत्येक क्रिया को अपने बनाये चित्र द्वारा प्रगट करा रहा है उसको पृथ्वी को प्राप्त करा रहा है।

उसका बनाया यह चित्र अदल एवं स्थायी रंगों वाला है जो कभी मिट नहीं सकता उसका रंग प्रत्येक पदार्थ जड़, खेनन, सब पर चढ़ा हुआ है जो मिटायें मिट नहीं सकता, धुलायें धुल नहीं सकता, रंगने पर रंग परिवर्तित नहीं कर सकता। यही चित्रकार की माया है यही चित्रकार की अभिलाषा है।

## प्रकृति की संगीत शाला

( श्री पं. वेदराज वेदाक्षरार चावर्षी गुरुकुल चंचलन कर्ते )

मैत्रु ने बालीस मील दूर शय्याधामल पर्वत-मालाओं के बीच में प्राचीन तपोवनों की भाँकी लिए, एक छोटा सा मर्मणीक स्थान है। इसका नाम है 'चंचलन कर्ते' क्षेत्र। इस में समाप्त हो तटवर्ती प्रदेशों को अपने संगीत से गुंजाती, लताओं, पुष्पों और पत्तियों को अनुनोपम जल का अर्धदान करती हुई कावेरी नदी बह रही है। ×  
कावेरी के तीरे पर गगन चुम्बी नारियल के वृक्ष अपनी अनुपम छटा दिखा रहे हैं और कावेरी को मानों आशीर्वाद दे रहे हैं—“जाओ पुत्रो! लोकोपकार कर अपने जीवन को कृतार्थ करो, अपनी अमृतधारा से मुग्धभ्रम हुए पत्तों और पेटों में नवजीवन डाल दो, वसुंधरा को शय्य-श्यामला बनाओ, जाओ, जवदी जाओ—तटवर्ती कृपक-पाल अपने हाथों में बाँटुरी लिए हुए तुम्हारी प्रताला कर रहे हैं।” ×

नदी का किनारा है, हरा मलमल का बिछोना बिछा है। चारों तरफ हरियाली हो हरियाली नज़र आती है, भान २ पर पुष्प खिले हैं। ऐसा मान्य होता है कि हरी-कावेरी का चार पर बेल बूटे कहे हो। खेतों में कदली-कुड़ अपनी निराली शान के साथ खड़े हैं जो तुम्हारे समीर के बहने के साथ हिल उठते हैं और अपनी तरफ आने का संकेत सा करते हैं। × ×

ऐसा सुनने में आता है कि दीपक राग गाने से दीपक जल उठते हैं; पना नहीं—यह ठीक है या नहीं। परन्तु इस संगीतमय आध्यात्मिक वातावरण में बुझा हुआ 'मानसदीप' अवश्य जल उठता है। ऐसा सुनने आते हैं कि मन्दार राग गाने से मेष घरम पड़ते हैं, पना नहीं यह ठीक है या नहीं। परन्तु इस संगीतमय आध्यात्मिक वातावरण में भगवान की लीलाओं का देख कर नभों में अनायास स्मंठ-मुग्धा की खर्बा होने लगती है। × × ×

शहरों का संघर्ष मय जीवन एक संग्राम है, परन्तु इस प्रेममय, शान्त वातावरण में आकर अनुभव होता है, जीवन एक संगीत है, एक कविता है। शहरों का जीवन कर्सा और भीषणता से भ्रान्त प्रोत है, परन्तु यहाँ शान्त रस की अमृतमयी दिव्य धारा बहती है। शहरों का जीवन जड़ है, यहाँ के जीवन में गति है। शहरों में धाम्ना का फूल कुम्हला जाता है, परन्तु इस दिव्य वातावरण में धाम्ना का फूल खिल उठता है। × ×

## गुरुकुल-समाचार

श्री पं. रामेश्वर जी की रिहाई—गुरुकुल के प्रतिष्ठित ज्ञानपथ श्री पं. रामेश्वर जी सिद्धान्तालंकार १० भाग की सजा कारने के उपरान्त जेल से मुक्त होकर गत ५-तुलसी को गुरुकुल पधारे। सर्वे कुलवासियों ने आपका हार्दिक स्वागत किया। आपने अपने मनोरंजक एवं उपयोगी अनुभवों को सुना कर सर्व-श्रोताओं को पूरा २ लाभ पहुंचाया है। स्वागत मन्त्रमय में भारी कर्षों की

सहन करने के लिए समस्त कुलबन्धुओं की ओर से हम आप को बधाई-भेते हैं।

## स्नातकों से—

गुरुकुल विश्वविद्यालय के शिक्षापटल का निर्वाचन प्रति तीन वर्ष बाद होता है। इस वर्ष शिक्षापटल का नया चुनाव होता है। नियमों के अनुसार ज्ञानकों के दो प्रतिनिधि शिक्षापटल में होते हैं। उन सब ज्ञानकों को प्रतिनिधि निर्वाचित करने के लिए वोट देने का अधिकार है, जिन्हें स्नातक बने कम से कम तीन वर्ष ध्यनीन हो चुके हों। वाचस्पति पण्डितोंको ज्ञानकों के लिए यह तीन वर्ष की बाधा नहीं है। आप जिन दो ज्ञानकों को अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करना चाहें, उनके नाम यथा-संभव शीघ्र ही प्रस्तोता कार्यालय में भेजने की कृपा करें। १२ अगस्त १९४७ को वोट गिने जायेंगे, ज्ञान: आपका वोट, ११ अगस्त, तक प्रस्तोता कार्यालय में पहुंच जाना चाहिए।

भयदीय  
दामोदर विद्यालंकार,  
प्रस्ताता।

गोट—निर्वाचित ज्ञानक अल्प प्रकार से शिक्षापटल के सदस्य हो चुके हैं, जिन: अपना वोट देने हुए इन बात का ध्यान रखना चाहिए।

पं० सत्यवत जी सिद्धान्तालंकार (मुष्पाधिप्रता होने के कारण)

पं० दामोदर जी विद्यालंकार (प्रस्तोता होने के कारण)  
पं० देवशर्मा जी (अभयदेव जी) विद्यालंकार (आचार्य होने के कारण)

पं० धर्मदेव जी सिद्धान्तालंकार (उपाध्याय) के प्रतिनिधि  
पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार (विद्यालंकार) के प्रतिनिधि

पं० विश्वनाथ जी विद्यालंकार (उपाध्यय) के प्रतिनिधि  
पं० यशपाल जी सिद्धान्तालंकार (विद्यालंकार के प्रतिनिधि)

पं० भारद्वाज जी विद्यालंकार (अध्यक्ष आर्यवेद महा-विद्यालय)

पं० सत्यकेतु जी विद्यालंकार (विद्यालंकार के प्रतिनिधि)

## स्वास्थ्य-समाचार

अमरिंह २ श्रेणी विषमञ्जर, बालकृष्ण २ श्रेणी विषमञ्जर, अजयकुमार १ श्रेणी विषमञ्जर, वासुदेव १ श्रेणी विषमञ्जर, मन्मथभूषण १ श्रेणी विषमञ्जर, नरेन्द्र १ श्रेणी स्वमरा, चन्द्रकान्त २ श्रेणी जग, रामेश्वर ५ श्रेणी स्वमरा, नरेन्द्र १३ श्रेणी अतिसार-अजीर्ण, गोपाल २ श्रेणी अतिसार अजीर्ण।  
गत समाप्त उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं।

## आवश्यकता

दुलतान छावनी आर्यसमाज के लिए शीघ्र ही एक विद्यालय पुर्णान्त की आवश्यकता है। संस्कृत भाषा के विद्यार्थी, आर्यसिद्धन्तों से पूर्ण परिचय रखने वाले तथा जिनमें निपुण महाद्वयों को विशेषता ही जावेगी। जिनमें योग्यतानुसार होगा। इस सम्बन्ध में प्रार्थना एक कविप्राज्ञ पुरुषोत्तमदेव आर्यसिद्धन्तकार मृतान्त छावनी के नाम भेजने चाहिये।

चौधरी बृजराज राय के प्रबन्ध में गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित



# गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[ गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख्य-पत्र ]

वार्षिक मूल्य २॥)

संपादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६ ]

गुरुकुल कांगड़ी, गुरुवार ३ आषाढ १९६८, १८ जुलाई १९५१

[ संख्या १२ ]

## यज्ञ-भावना

( लेखक—भीष्म रा० सा० बाबा लालशर्मा जी )

यज्ञ-भावना का संसार में अभावसा हो रहा है। निजी स्वार्थ, निजी हित, निजी अधिकार आदि की धूम है। मनुष्य ने मनन छोड़ दिया। माहूम होता है और गहरे विचार, ज्ञान और सत्य के विचार, अब उमने शक्ति नहीं प्रतीत होते। साधारण दृष्टि में 'जो देखा उसी के पीछे हो लिये' यह रिवाज सा हो गया है। बाह्यदृष्टि, और विकारी मन, इन दोनों में मिलकर एक उषद्वय मन्वा रखा है। आज समता का युग है, प्रेम को प्रशुनिर्वासित किया जा चुका है। प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मफल-स्वार्थ के स्वार्थ में दूसरे के कर्मफल पर भी स्वार्थ जमाता चाहता है। अधिकार मिय लगने लगा है, कर्मव्य पीछे रह गया है। मनुष्य के समूह मिलकर यज्ञस मनुष्यों पर आधिकार और अन्याय करना अपना अधिकार समझने लगे हैं। यह सत्य है कि कुशल रहने की भाँपा है पर किसी का दूसरे के स्वार्थ पर लक्ष्यमाना और उन्हें अपने पक्ष में करके उन्हें दीन हान बनाये रहना भी तो पुण्य नहीं कहा जा सकता।

मनुष्य सभी अपने २ क्षेत्र में कर्मव्य परायण रहने हुए आगे बढ़े, और उनकी अन्वेष उचाल हो सके, ऐसी सु-व्यवस्था हीनी मिलान आव,यक है। इसने बिना संसार उभारार हो रहा है और मनुष्य विपश्चिता में आ-प्र हि तो कर रहे हैं, पर इस बोर अवस्था से निवृत्तने का उपाय नहीं करने। जगत् को अन्व-सागर अथवा नृत्त्व-सागर मनुष्य के विकारों ने ही बनाया है; करना वास्तव में जगत्-विधारी आनन्दकाम्य भगवान् के इसमें होने हुए जगत् सुखमय हो होना चाहिये था। भगवान् तो निर्लेप हैं वे सारी हैं, वैमन्यशक्ति हैं उन पर मनुष्यों की कुचेष्टाओं का कुछ भी प्रभाव नहीं बढ़ सकता, पर मनुष्यों ने जो बंधियाँ अपने-दूसरे मनुष्यों को उकड़ने के लिए बनाई थीं उनमें ही स्वयं अपने आपको उकड़े हुए देख रहे हैं और हाहाकार और अंधकार हो रहा है। ऐसी विकट अवस्था को कैसे बर्हें ?

इसको बदलने का भी एक उपाय है; और वह है भी निःशस्त्री ! वह इतना पुत्रा है किना कि मनुष्य !

भगवान् ने परम अनुग्रह से प्रजापति होने के लिये अपनी प्रजा के परमाहित की—सृष्टि के आदि में हा—शुभा दी कि तुम यज्ञ द्वारा बढ़ो, फलो फलो और यज्ञ ही तुम सबकी सारी कामना पूरी करेगा। कहने हैं, मनुष्यों में जो दिव्य-जन्म थे उन्होंने यज्ञ द्वारा यज्ञ-भगवान् का अन्न किया और उनकी स्वर्ग में महिमा बढ़ी, उनकी प्रतिष्ठा हुई, वे सब सुखी हुए। वे यज्ञ के नियम समतन हैं, शान्त हैं उनमें कभी मनुष्य अधिक करने की आवश्यकता नहीं। वे अधिकारी हैं और सदा से सब मनुष्यों के परम भित्तकारी हैं। उन्हें धारण करने से अवश्य कल्याण होता है कभी किसी को हानि नहीं होती।

वे यज्ञ हैं, देवपुत्रा, संगतिरुद्ध और दान। ये तीनों समाज के जीवन-पुत्र हैं। (१) बड़ों का आदर, उनमें भ्रष्टा, उन पर विश्वास, उनकी आज्ञा का पालन (२) आपस वालों से मेल और (३) अपने से छोड़ों के प्रति उदरता।

ये नियम समाज की उन्नति के आधार हैं। इन्हीं पर जाते हैं और देश निर्भर हैं। देश की भौगोलिक अवस्था तो बहुत कम बदला करती है पर अब उस देश के वासी मुनियमित व्यवस्था में नहीं रहने तो देश की सीमायें पैसी की पैसी रहने पर भी देश की शान्ति अंग हो जाना है और सुख, अनुग्रह और कल्याण नहीं होता। देश वासियों के परस्पर के व्यवहार पर भी देश की अवस्था निर्भर हुआ करती है।

जिन देश के वासी परस्पर विश्वास, निष्ठा-कर्मव्य तथा सच्ची लगन आदि समुदायना से प्रेरित होकर अपने कार्य करने हैं वे अवश्य ही एक उदरस्थ—एक ध्येय बना लेते हैं और उस देश में एक महान् शक्ति आगम होगी है जिसे राष्ट्र-शक्ति कहा जाना है। उस सह-भोज और सहयोग की अज्ञेय शक्ति के आगे ममी भुका करते हैं। ऐसे देश में परस्पर ईर्ष्या, ईर्ष और घृणा नहीं देखी जानी। सभी देश और जाति के हित के आगे अपने निजी हितों की आहुति देने हुए यज्ञ, शोभा और भी पाते हैं। ऐसा देश ऐश्वर्यवान्, धनवान्, और शक्तिशाली माना जाना है।

निष्कार्य, आमविश्वसो, पुत्रों के पुत्रवार्थ में ही महान् कार्य हुए हैं और उन विज्ञयों को उन्हीने अपने

भगवान् के ही अर्पण किया है। यह है यज्ञ-भावना। इस भावना से प्रेरित होकर किये हुए कार्य सदा सफल हुए हैं। इस भावना में निरन्तर का आत्मत्व है। ऐसी भावना में कार्य करने से पुरुषार्थ करने की शक्ति बढ़ती है और पुरुष की यह कामना होती है कि उससे जो कार्य हो वे सभी पूर्ण हों।

मनुष्य कृतकृत्य तभी होता है जब वह अपने ध्येय को प्राप्त कर लेता है तभी उसका उद्देश्य पूर्ण हुआ समझा जाता है।

उद्देश्य की पूर्ति तक उन्साह बना रहे, तभी साधक को सफलता मिलती है। सफलता के लिये प्रत्येक कार्य के सभी अंगों की ओर ध्यान जाना आवश्यक है। ठीक-ठीक मर्यादा (निश्चित होनी) चाहिये। उसे दृढ़ता और स्थिरता से निभाना चाहिये। उसमें अपना तन मन धन सभी लगाना चाहिये। "ध्यतिके कार्यं निश्ची चेतनता साधधानता दृढ़ता और स्थिरता से सफल होते हैं, पर समाज अथवा जाति और देश के कार्यों के लिये संगठित जन-शक्ति ही किसी निःस्वार्थ नेता के अग्रणी कार्य करने से सफल होती है। यह संगठन यह मर्यादा, यज्ञ-भावना में निहित है"। यह तो यज्ञमान और विश्ववेदेवाः—सभी सज्जनों के सहयोग के बिना पूर्ण हो नहीं सकता। यज्ञमान चुन लेने पर उसकी आस्था का पालन करना और प्रत्येक का अपने अपने स्वार्थ में निश्चित कार्यों को करना आवश्यक हो जाता है वरना यज्ञ की योजना में भ्रष्ट होने से यह सफल नहीं होता।

यज्ञ में वैवपूजा, और संगतिकरण ही विशेष महत्त्व रखते हैं पर ये दोनों भाव उदारता पर निर्भर हैं। सर्वांगी मन वाले लोग न तो आपस में मिल ही सकते हैं, और न वे ईर्ष्या और घृणा किये बिना रह सकते हैं परित्याग परस्पर होय होता है।

सभी सज्जन परस्पर उदारता के भाव धारण करने हुए आपस में मिलें और मिलकर किसी के अग्रणी रहकर कार्य करें तो मर्यादा से किया हुआ सार्वजनिक कार्य सदा सवहित, परमहित सम्पादन करने में समर्थ होता है। मिल कर किये गये विचार जब उद्देश्य पूर्ण की तीव्र इच्छा में कार्य में परिणत होने हैं तो सफल अवश्य सफल हुआ करने हैं।

मनुष्य परस्पर मिलें, प्रतिदिन मिलें। मिलकर एकट्ठा होकर बैठें। परस्पर के विचार सद्भाव से सुनें, सुनाएँ और सर्वहित के निश्चय पर पहुंचें तो क्या कुछ नहीं हो सकता। वास्तव में यज्ञमन्त्री जीवन ही सफलता का जीवन है। यज्ञभावना जागृत हुई निर्दर उन्नत होती रहे तो यही स्वर्ग है। यह यज्ञ-भावना सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेयु ही है।

यज्ञ में ही यज्ञपुरुष का यजन होन है, यह सत्य है। यज्ञ में ही सभका कल्याण है। यज्ञ से ही सारी प्रजा का दिन है। यज्ञ द्वारा सभी की उन्नति और सभी का अभ्युदय और निर्धन्य सम्भव है।

साधक, साधन और साध्य ये तीनों साधारणतया पृथक् अंग दिखाई देने हुए भी एक दूसरे से अटूट

सम्बन्ध रखते हैं। साध्य की प्राप्ति के लिये साधक साधन जुटावा है और उससे सम्बन्ध होता है।

उदाहरण के लिये पर ब्रह्मयज्ञ को लें—

साधक आत्मतृप्ति और शान्ति का इच्छुक है।

साधक प्रभु के अस्तित्व का उन्मेक्षण है। उन्मे निश्चय है कि भगवान् सन्चित-आत्मत्व है, उसकी कृपा ने शाश्वत शान्ति और, पूर्ण आत्मतृप्ति मिल सकती है। साधक भगवान् की कृपा का पात्र कैसे बने ? भगवान् तो तिर्यगुत्त-पुत्र-मुक्त-स्वभाव, सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिमान् सब में महान् है। क्या साधक उसकी प्रसन्नता का लाभ कर रहा है ? क्या साधक को निश्चय है कि भगवान् उन्मे प्रसन्न हैं और वह भगवत्प्रसाद का अधिकारी है ? साधक अपने आपसे देवता है। अपने साधनों को देखता है। अपने शरीर के अवयव उनकी रट्टि में ओझस नहीं हैं। उसके अन्तःकरण-चतुष्टय भी उसके सामने हैं। वह देखता है कि उसका अपना मन, बुद्धि, चित्त और उसका स्वभाव कैसा है। क्या वह भगवान् की प्रसन्नता प्राप्त कर सकने योग्य है ? यदि उसमें भ्रष्टि है तो सभी अवयव, सारी अपनी साधना कैसे योग्य बने जो भगवान् प्रसन्न हो, और साधक को पूर्ण तृप्ति प्राप्त हो और शान्ति लाभ हो ? भगवत्-शुश्रूषागति ही एक परम उपाय मुक्त पड़ता है उसका अवलम्बन करता है। सध्य ही साधन में प्रेरणा देता है। साधक भगवत्-गुणों का मनन करता है और भगवान् को आदर्श मानकर उनके अनुकूल होने का यत्न करता है जिससे उसके अङ्गुलक गुण कम स्वभाव देखकर भगवान् उसमें प्रसन्न हो। पवित्रता धारण करता है, सत्य, शैश्व, प्रेम, आनन्द, सहनशीलना महत्त्व, उदारता आदि सभी दैवी गुणों को अपने में धारण करता है और अपने अन्तर-निर्माणकला के सुन्दर भाव जागृत होने देता है।

शक्ति के चिह्न दिखाई देने लगने हैं। साधक में दिव्यता आने लगती है। ऐश्वर्य, बल, परम सभी का अनुभव लेता है किन्तु ऐसी अवस्था में साधक में एक चिह्न सदा आना सूझना है। साधक की जो शक्ति साधन हाथ मिली है, वह उसे अन्तर्कार पर अपनी निजी ही समझने लगता है। शक्ति तो प्राप्त हुई पर व्यक्तिव में प्रभु-प्रसाद के प्रति कृतज्ञता नहीं आई और न दृढ़ नियम ही बने। शक्ति स्थिर नहीं हुई। यदि ऐसी ही अवस्था रहे तो साधक पावन होगा इसलिये भगवान् के अटल स्थिति नियम और उसकी महत्ता को देखकर उस पर विचार करने, साधक के लिये अग्राह्य साधन भगवान् के विभु और सर्वव्यापक होने का अनुभव लेता है। जिसके पश्चात् भगवत्प्राप्त्यार्थ कार होना है और साधक को उपासक होकर परमपूजनीय प्रभु का सामीप्य प्राप्त करना है और फिर भगवान् के परम अर्थ नेत्र को अपने अन्तर-प्राण करके अपने आपको कृतकृत्य पाकर भगवत्प्रसन्न के लिये गहनगुह्य होकर धर्मव्याप और पूजा के कृत प्रयत्न करना है।

सन्ध्या में साधक को साध्य की प्रेरणा ने ही साधन में तत्पर किये रहना और अन्ततः साध्य प्राप्त हुआ और प्रभु के तेज को अपने अन्तर-अनुभव करके कृतकृत्य हुआ।

साधक की अपनी दृष्टका पृथ दुर्द; अपनी कामना सकल दुर्द। अब उसे अपने हाथ किसी विस्तृत हित सम्पादन करने की लग्न है। अपने हित की उसे परवह नहीं है उसे निश्चय हो चुका है कि सर्वहित में निर्जोहित आ ही जाता है। जब इस प्रकार व्यापक भाव का उदय होता है और साधक को संकीर्णता दूर होकर उसके जीवन का विकास होना सम्भव होता है तो यह भावना वा यह भावना है। इस भावना में मनुष्य को दैवीय शक्ति की सहायता मिलती रहती है, यदि उसका जीवन दैवी नीति-नीति के अनुकूल बना रहे इस अवस्था में प्रलोभन सामने आने हैं और कई बार स धन ही साध्य सा भासने लगना है।

ऐसे किसी व्यक्ति को यह मे धन मिला। धन उपयोग के लिए है, पर वह यदि धन को ही सधर समझ ले और यह समझे कि साधन वह कार्य में जिन मे धन मिला अब धन के आगे और अन्य कुछ नहीं तो ये भाव उसे कृपण बना देंगे। उसका विकास रुक जायगा और उसकी उन्नति में बाधा पड़ेगी। साधन को साध्य मान लेना भूल है। यह ठीक है कि किसी अवस्था में साधन का परिणाम ऐसी भूल-भुलैया में साधक को डाल दे कि साधक उसमें फँस जाए।

मनुष्य का ध्येय विरल्लायी शान्ति है जिसमें मनुष्य अपना विकास कर सके। किन्तु जगत् में सभी मनुष्य एक से नहीं। कई ऐसे भी हैं जो आत्मरूप तो उन्साह से करते हैं पर बीच में ही यह छोड़ देते हैं, कई ऐसे भी हैं जो स्वयं तो उद्यम नहीं करेंगे पर लाभ होने पर अपना स्वयं जमा लेंगे। ऐसी परिस्थिति में साधक को अथवा साधक मंडली को साध्य की प्राप्ति तक और वास्तव में प्राप्ति के होने पर भी संकेत और डेयमी रहना ही पड़ना है। साध्य कई बार असावधानी से हाथ आया हुआ भी निकल जाता है।

इतिहास में ऐसे उदाहरण अनेकों हैं जहाँ असावधानी से व्यक्ति अथवा समाज में दोष आने से साधना लगातार रुकना और खिरता से नहीं चलनी और साध्य निकट दिखार देता हुआ भी दूर होना जाता है।

साध्य के अनुकूल स धन ही और साधक साधनों को समझ और परिष्कृत के अनुसार बदल कर सावधानता से चलना रहे तभी वहाँ कार्य सिद्ध होता है। अपने साध्य के प्रति अज्ञा हो, उसकी प्राप्ति के लिए लग्न और यह बना रहे तब भी विघ्नों का सामना करके उनपर विजय लाभ करके साधन में तयार ही रहना होता है तब साध्य निकट होता है। कभी कभी साध्य आँकों से ओझल हो जाता है और साध्य के स्थान पर किसी छोटी सीख को ही साधक पर्याप्त समझ कर नृत हो जाता है और ध्येय से दूर हो जाता है। साधक व्यक्ति अथवा समाज को, अपना साध्य, ध्येय अथवा उद्देश्य कभी मन्व नहीं होने देने चाहिये।

यह कैसे सकल हो, यह विचार साधक को सदा सावधान और कठिण बनाना पकता है। यह की पूर्णता तक साधन के प्रायेक अंग को पूरी तरह साधना होगा

और यह पूरा होने पर भी प्रमाद से, आलस्य से, बचना ही होगा बरना बना बनाया कार्य बिगड़ जाता है। यह में सावधानता, सतक रहना, साध्यय अर्थात् देवमाल परम आवश्यक है। जिन कार्यों की जंच नहीं होती रहनी वहाँ शिथिलता आ जाती है; तो हास सम्भव होता है। भगवान् असीम हैं, उन्नति की भी कोई सीमा नहीं इसलिए भगवान् के राज्य में महासाक्षात्ता में किसी भी व्यक्ति अथवा समाज को, अपना यह दुला कमी भी नहीं करना चाहिये। जिन-जिन साधनों द्वारा साध्य निकट आना जाएगा, नई नई समस्याएँ आगे आयेगी और कई नई साधन बनकर सहायक होंगी, कई बाधाएँ प्रतीत होंगी। साधन-सम्पन्न व्यक्ति अथवा समाज को आगे बढ़ना होगा और प्रत्येक विजय भगवान् का अपेक्षित करके आगे चलना होगा। इन प्रकार यह स्थिति मिलनी सम्भव है जिसे दाही स्थिति कहने हैं जिसने परमशान्ति और पृथ मृति है, छनकृत्यता है।

हमारे साधन पवित्र हों, हमारा साध्य कल्याणमय हो, उर्वर्हिनी ही हो, तो भगवान् सदा हमारे सहायक होंगे। हमारी बुद्धि में दैवी गुण धिर रहेंगे और हरे भगवान्-प्रसाद और भगवान् प्रेरणा मिलती रहेगी। हमारा ध्येय अथवा सर्वहित होना चाहिये, सभी वह देवयक होगा।

(आर्य मे)

## गीत

इस दंड पर ! कविता बनाऊँ, आज किसने प्रेरणा दी !  
हां ! उसी की छाह में ही धूप से बच सा रहा था पर न उसका ध्यान करने का जग दिल हो रहा था

उन ? निकुञ्जों में न जाको सो रहे मुम ! कौं यहाँ पर

इस तरह परिहास कर इसके लिये कौं देवना दी इस दंड पर ! कविता बनाऊँ, आज किसने प्रेरणा दी ! मध्याह्न का दुख भूज, जिसके शांत का मासिध पाकर लीक्य का यह सान्ध्य, सुन्दर आज कुञ्जों में बिताकर

रूढ़ रहे हो दूँ ! उसको आज में भी ! व्यर्थ कह कर

घर पर मार्क कुट्टहाड़ी, व्यर्थ ही उभोजना दी इस दंड पर कविता बनाऊँ, यह मुझे कौं प्रेरणा दी ! आज तो यह दंड ही है धूप से बचका बचता

जिस दिवस उड़ जायगा यह भाग जीवन की जलता

काव्य क्या जग रच सकेगा

देख, आहुति का अमर स्वर—

जिसने निमित्त मिश्राज जग को यह अलौकिक बनना दी इस दंड पर कविता बनाऊँ, आज किसने प्रेरणा दी 'श्री जगदीश चम्पू'

# गुरुकुल

३ श्रावण शुक्रवार १९६८

## एक प्रशंसापत्र

[कच्छ में गाँ। एक गुरुकुल ५-६ वर्ष से स्थापित है। उसका नाम उससे मान्य संस्थापक जी के नाम पर 'शिवराम जी गुरुकुल विद्यालय' है। इस गुरुकुल के आचार्य का कार्य गुरुकुल कांगड़ी के एक श्रेष्ठ छात्रक और पं० विनोदचन्द्र जी विद्यालंकार मान जाय क्योंकि वे करते थे। अभी उन्होंने इन कच्छ गुरुकुल को छोड़ा है क्योंकि वे अधिक सार्वजनिक क्षेत्र में काम करना चाहते हैं। इस आस्था पर इस कच्छ गुरुकुल के मान्य संस्थापक श्री-शिवराम जी ने स्वयं जो पत्र गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य आचार्य श्री अमरेश्वर जी को लिखा है वह नीचे दिया जाता है। यह जहाँ श्री पं० विनोदचन्द्र जी के लिये एक अनायास प्राप्त प्रशंसापत्र है वहाँ गुरुकुल कांगड़ी के लिये भी प्रतिष्ठा-गीतव्य को बढ़ाने वाला है। — सं०]

श. आचार्य अमरेश्वर जी,

सादर नमस्ते।

आपका और मेरा कोई व्यक्तिगत रूप से परिचय नहीं है किन्तु आपके योग्यतामै ज्ञातक और शिष्य तथा हमारे गुरुकुल के आचार्य विनोदचन्द्र जी द्वारा अनेक बार बहुत प्रशंसा सुनी है। इनलिये शिष्य के उत्तम कार्य से गुरुकुल गुरुकुल होते हैं। इसलिये आपको एक उत्तम सम्मानपत्र प्रदाना है कि आपके ज्ञातक विनोदचन्द्र जी ने हमारे अफसर शिक्षक हुए कच्छ देश में गुरुकुल प्रकाला से अनभिज्ञ ऐसे देश में चार वर्ष तक रह कर ५० वर्ष में जो काम नहीं हा सकता यह उत्तम कार्य किया है। उन्होंने अपनी कर्तव्य-परायणता, निष्कपटता, अरुच्य उन्साहिता तथा सरलता से कच्छ देश में और हमारे हिस्से में ज्ञातकों के प्रति मान बढ़ाया है। गुरुकुल कांगड़ी का मैं अल्पबाद देता हूँ कि जिसम से इनने सुन्दर रान उपलब्ध होने हैं। यहाँ के अध्यापकों कर्मचारीयो तथा शिष्यो के जीवन में उन्होंने अद्भुत परिचरान किया है। सबसे बड़ा परिचरान जो कच्छ की किसी भी संस्था में नहीं है वह स्वावलम्बन जो शिष्य यहाँ दिया है। सात आठ वर्ष के ब्रह्मचारी भी अपनी निजु कियेय से इनने सुन्दर रान उपलब्ध होने हैं। कितनी मदद पहुंचा सकते हैं उसका शास्त्राय ज्ञान उन्होंने हमको कराया है। आचार्य श्री प्रियमन जी की सिकरिश से विनोदचन्द्र जी यहाँ नियुक्त हुये थे। और लिखने हुये आचार्य होना है कि मियत ही की सिकरिश के अनुकूल उन्होंने कार्य किया है। कच्छ में लगातार दो वर्ष तक प्रकाल पढ़ने के करण संस्था के सुन्दर मकान को सिवाय कोई कार्य परब न हो सका और इस कारण श्री विनो-

चन्द्र जी को उनके कार्य के अनुकूल में बेलन न दे सका। फिर भी उन्होंने दो वर्ष तक स्वल्प वेतन में काम किया। हमारे इच्छाओं के अनुकूल विनोदचन्द्र जी ने काम किया इसलिये उनकी विद्या मता गुरुकुल कांगड़ी तथा पिता आपको हम खूब-खूब धन्यवाद देने हैं। बड़े संकोच के साथ मैंने आपको इतना लिखा है, यह आपको आनन्द देगा।

आपका

संस्थापक श्री शिवराम जी गुरुकुल  
कच्छ-प्रदेश।

## ब्रह्मचर्य

(लेखक—श्री लोचनमोह मोर)

ब्रह्मचर्य से ज.य और उससे न हाने से हानि प्रत्येक मनुष्य के अस्वास्थ्य अनुभव का बात है। किन्तु ही शक्तियों का कहना है कि इस विषय में पूर्ण अनुभव किसी को नहीं हो सकता क्योंकि जहाँ इसकी पूर्ण हानि होगी वे वहाँ जायत हो सञ्चय नहीं और जहाँ ब्रह्मचर्य का अल्पएव पालन होगा है ऐसी यहापुत्र के वर्ग न तुल्य है। परन्तु यह एक कुलक है, क्योंकि हम स्वामी रामतीर्थ जैसे महान पुत्र का पाने है किन्तु इसका पुरुषपथ अर्थात् किया और उसे समझने में समर्थ हो सके।

ब्रह्मचर्य यह सञ्जीवनी बूटी है जो मनुष्य को निरोग तथा अजर-अमर करती है। यह अमृत-रूप है। यह मानसिक, आध्यात्मिक तथा शारीरिक तीनों शक्तियों को पोसती है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से ही हम आत्मानन्द जाषदया, परमोत्साह, उच्च कर्तव्यशीलता, सद्गुणान और मोक्ष का ज्ञान होने लगता है। इसके बल पर असाध्य से असाध्य कर्म अतिलम्ब किये जा सकते हैं। इसकी शक्ति नेत्र, शक्ति, शाश्वत आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसी का पालन कर हम देश तथा जाति की सेवा करने में समर्थ हो सकते हैं। इसी की शक्ति से हम अपने अन्तःकरण को सुख, शान्त तथा पवित्र बना सकते हैं, मनुष्य में प्रसन्नता, सुख, स्वास्थ्य उद्यमशीलता, स्वास्-साध तथा स्वाध्याय विचार प्रदान करती है। आज हम देखते हैं कि, एक मुठ्ठी माल रत्नमाला, यह महाभारत सारे मानवधर्म का मूल्य कर रहा है। सारे भारतवर्ष के मनुष्य उसके इशारे पर मरिचिके को नैवार हो जाते हैं। जिसका सम्मान आज उसका युग्मन भी करते हैं जो इस हिंसक जमाने में यह दावा करता है कि वह अहिंसा से ही अपना प्रकसद पूरा करेगा। जिने समझने के लिये आज समस्त संसार एक जिज्ञासापूर्ण दृष्टि रखता है। आश्रित इसका कारण क्या है? यदि हम उनकी लिखी पुस्तकों को पढ़ें तो हमें यह भली प्रकार ज्ञात हो जायगा कि यह केवल एक ब्रह्मचर्य की ही साधना है जोकि इन्हें इतना चमक रही है। ब्रह्मचर्य का ही नेत्र आज उसके चहरे पर चमक रहा है। आज इस ब्रह्मचर्य को बढोला वह देश, धर्म तथा जाति को सेवा तथा रक्षा करने में समर्थ हो रहा है।

हम देखने हैं कि जिस प्रकार सूर्य आकाश में रहकर संसार के प्रत्येक कोने में अपना दिव्य रूप फैलाता है और जिस प्रकार आकाश में मंडराने हुए वे काले बादल घेर जलन करते हुए इस इस पृथ्वी को हरेक अङ्ग का पालन करते हैं, अपने अद्भुतमय जल में वृष्टी और पर्वतों को भी बने हैं और जिस प्रकार बन्दूना संसार के जड़ तथा जेतन वस्तुओं को अपने सुधामय किरणों में मूर्शोमित करता है, उसी प्रकार उच्चतर में संसार को संभल करना हुआ, प्रलयकारी संसार का पालन करता है। वह संसार के प्रत्येक मनुष्य को उपदेश देता है तथा प्रलयव्यय रूपों अमृत की महत्ता दिखलाता है। जिस प्रकार सूर्य तथा मेघ इस संसार के प्राणियों के लिये लाभकर हैं उसी प्रकार एक प्रलयकारी भी देश, जाति तथा संसार के लिये ल भकर है।

आज जब हम भारतवर्ष की दशा देखने हैं तो रोना आता है। हमें सन्देह होने लगता है कि क्या यह वही महादेश है जहाँ की सभ्यता अपने क्रोलोकक गुणों के कारण एक बार उन्नति की चरम सीमा-को पहुँच गई थी। क्या यह वही मुख्य-प्रधान भूमि है जहाँ का आत्माक प्रहस्य कर आधुनिक सभ्य तथा उन्नत कलशाने वाले देशों के निवासी विश्व में अपनी विश्व-पलंका फहरा रहे हैं। जहाँ के मुख्य मुल आनन्द तथा चैन से अपने दिन व्यतीत करते थे, जिसके मुल तथा धैर्य को देखकर मँकसमुलर ने मिला बाँते (लडो थीं—यदि कोई मूर्खने कहे कि किस देश के आकाश के नीचे मनुष्य के अन्तःकरण को पूर्णता प्राप्त हुई, तो मैं कहूँगा कि वह देश भारतवर्ष है, जिसे पृथ्वा पर स्वर्ग कहने में भी सुने आनन्द होता है।) क्या यह वही महादेश है जहाँ के मनुष्य बड़े ऊँचे हृदय-पुष्ट और पराक्रमी कहे गये थे, जो अपने धर्म के लिये अपने शरीर की आहुति दे देने थे। यहाँ पर भीष्म पितामह, हनुम न, ल. शंभु प्रभृति प्रलयकारी पैदा हुए थे। हम आज देखने हैं कि वही भारतवर्ष गुलाम की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। आज यहाँ का हर-मनुष्य बिग्याओं में घिरा रहता है। यहाँ के मनुष्य में यह अन्त बल नहीं, उनसे यह नेत्र नहीं, हाथों में वह नाक नहीं और आँकों में यह उद्योति नहीं, जो एक पुनःप्राप्ति में लगे वाहिये। यहाँ का वह आलोक जो किसी समय स्व को आलोकित करना था लोचप्राय हो चला है। इसका एकमात्र कारण है प्रलयवर्ष की महत्ता की भूल जाना। आज वहाँ आकाश, वही सूर्य, वही बन्दूमा, वही पृथ्वी और वही हृदयाल पर्वत, हम इस देश में पाने हैं। इन सब वस्तुओं को पाने हुए भी जब हम अपने इतिहास को देखने हैं तो हमें एक वस्तु का अभाव मालूम पड़ता है। वह है प्रलयवर्ष।

इस प्रकार हम भारतवर्ष के पलन का कारण केवल प्रलयवर्ष का अभाव ही पाते हैं। यदि हम भारत वर्ष को उन्नत करना चाहें, यदि अपने आपको परतम्भना की बेड़ी से छुड़ाना चाहें, यदि आज हम संसार की दौड़ में भाग लेना चाहें, यदि हम अपने भारतवर्ष को गन्दे से निकल

कर उन्नति करी हिमालय के उच्च शिखर पर बैठना चाहें, यदि आज हम अपने प्राचीन नृपों को धारण करना चाहें तो हमें चाहिये कि उस प्रलयवर्ष रणी काने बाएल को अपने विवेक करी नेत्र हथाने में निर-चिन्तन कर दें, जिनमें प्रलयवर्ष रणी सूर्य को अपने अन्धकार में घिषा रखा है।

अधःपतन पर पहुँचे हुए भारत वर्ष के लिये प्रलयवर्ष ही संजीवनी हुई है। यदि आज हम अपने उन्नी प्रलयवर्ष विद्या को पुनर्जीवित कर दें तो हमारे म्याल में हम फिर एक द्वा संसार में अपना मलक ऊँचा कर सकेंगे। हम अपनी वहाँ पुगानन मर्यादा प्राप्त कर सकेंगे। इस लिये हमें चाहिये कि हम एकमनुष्य के नाने, इस मनुष्य का प्रदान करने वालों दिव्य उद्योति के पुतारी बनें, पलिन समाज में पबिलना का प्रचार कर दें, और बन्दे-बन्दे में प्रलयवर्ष का पुनीत भाव भर दें।

## अप्रतिगृह

[नानाभई मूढ]

कश्यप, अलि वशिष्ठ अमराज, गोमय, विध्वामिन और जमदग्नि ये सातों सर्वांग कहलाने हैं। वशिष्ठ की पत्नी अदम्य तो सदा उनके साथ ही रहती है, इस लिये उनका गिनती भी सर्वांगियों में हो जाती है।

एक बार ये आठों तपस्वी पृथ्वी की यात्रा को निकले थे। पृथ्वी-परि-भ्रमण के इन दिनों में पशुसख नामका एक शूद्र और मंडा नामक उसकी स्त्री इनकी संघा में संलग्न रहने थे।

उसी बीच पृथ्वी पर भीषण अकाल पड़ा। मेघराज ने मेघ बरवाने की मेहर नहीं की। खेत सब सूखे रह गये। पशुओं और नालाओं का पानी तने में जा लग। पृथ्वी को नूति न मिल सकी। अतएव सारी प्रकृति असुन्दर हो उठी; पेड़-पत्तों सुखने लगे; पशु-पक्षी अन्न और पानी के अभाव में छटपटाने लगे; और भूल और प्यास के सताये मनुष्य तो जो खानने भाय, उसा को निगल कर जंने लगे। सर्वांगियों को भी अकाल की संसत का ठोक-ठोक अनुभव होने लगा।

एक बार ये सब किवी नगर के राज-प्राय पर भूल ओग प्यास से छट-पटा रहे थे कि इनने में वृशद्वि नाम का राजा उधर से निकला। इन तेजसा मूर्तियों को देखने हो राजा अपने रथ से नीचे उतरा और इन्हे प्रशाम करके बोला, "महाशयो! आप सब भूल से पीड़ित प्रसंत होने हैं। मेरे पास पुनःकल अन्न है। आप उसे खाकार कोजिये। धान, जौ, गेहूँ, ऐनम्य पदार्थ आदि जो कुछ आपको चाहिये, मेरे पास है। आप प्रसन्न हुजिये और इन्हे खीकार कोजिये।"

वृषाद्वि की ये नमन-पूर्व बातें सुन कर श्रुतियों ने कहा, "रजद! परिस्तिता तो ऐसा है कि भाव जो कुछ हमें दें, सो सब ओर उलने में। अधिक बहुत-कुछ हम आपसे ले सकते हैं। इस भीषण अकाल में भूख का मारा अन्धकार अन्धकार आदमी को लाने दिव-किचन नहीं

है। इस पर आपकी मीठी वाणी हमें और भी लसवाती है। किन्तु राजन्! आपतो जानते ही हैं कि राजाओं से कुछ लेना, कुछ प्रतिग्रह करना, शब्द में खुले हुए विष की तरह त्वाप्य है। हम ब्राह्मण हैं। महान् परिश्रम के बाद हमने जो धोखा-बखान-तप पाया है, उस तप का एक एक लक्ष में विनाश करने वाले इस दान का आग्रह करके आप क्यों हमें शब्द में उनारा चाहते हैं! आपका कल्याण हो! आपके दान का कल्याण हो! आप दूसरे अपनेक भूमीप्यासी का अन्न जल देकर कुनाथं हृदिये। पर हमें इस प्रतिग्रह के पथ पर न खटाईये। हमारा यह मार्ग नहीं। ब्राह्मण प्रतिग्रह से जिनमें दूर रहे, उनमें ही अच्छे!"

इस प्रकार राजा को अवगत देकर ऋषि राज-मार्ग का त्याग करके दूर के एक जंगल में चले गये। जंगल में गूहरक क अलख्य पेड़ थे। राजा ने नगर में आकर जंगल के प्रतिनिधियों को बुलाया और कहा :- "हमारे राज्य की हद में कुछ असाधारण तेजस्वानि ऋषि पधार है। वे भूष और प्यास से बालू होकर घूम रहे हैं मैंने उन्हें दान देना चाहा, लेकिन उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। हमारे यहाँ मयजूक अकल है; फिर भी ऐसी दशा नहीं कि आदमी पैसा कर्के और अन्न न मिले। वे ऋषि पास के वन में गये हैं। वे सब अग्रप्रतिग्रही है, इस लिये मैं सोचना हूँ कि वन में जाकर वे गूलरों से अपनी भूख श्मार्थये। आप सब शर्त जाँचये और गूलरों के अन्दर कुछ सुबर्ण-सुवर्ण रख आईये। जब वे लींग गूलरों को खाने लगेंगे, उन्हें मोहरें दिखाई देंगी, और अनायास प्राप्त समक कर उन्हें स्वीकार कर लेंगे। ऐसे अग्रप्रतिग्रही लोग सीधे साधे प्रतिग्रह नहीं करते, अतएव हमारा धर्म ही जाना है कि हम उन्हें धोखा देकर भी प्रतिग्रह कराये। आप लोग जाँचये और बीसा में बला चुका है, प्रणय करके मुझे अर्पणये।

दृष्टादभ के ये वचन सुन कर उस नगर के कई नवयुवक वन की ओर चले पड़े। जिस समय ऋषि लोग नहाने-धोने में लगे थे, उसी समय का लाम उठा कर इन लोगों ने ऋषियों द्वारा एकत्र गूलरों में मोहरें भर दीं और गूलरों को यथावत् खल कर स्वयं कुछ दूर पर छिपे बढ़े रहे। वे जानना चाहते थे कि देखें ऋषिगण अब क्या करते हैं।

स्नानादि से निवृत्त होकर आठों ऋषि अपने स्नान पर आये। उन्होंने उषो ही उन फलों को खाने के विचार में उठाया, वे काफी वज्रनवार मासूम हुये। ऋषियों ने भेद को तुरन्त ही समक लिया। बोले :- "ये फल अब हमारे खाने योग्य नहीं रहे। राजा ने इनमें सुबर्ण-सुवर्ण रखवा कर उन्हें अपवित्र कर दिया है।"

विराह ने कहा :- "हमारे लिये प्रतिग्रह से बढ़ कर दूसरा कोई षय नहीं।" मगजाज बोले :- "तूष्णा बलु ही ऐसी है कि उसका कभी अन्न ही नहीं आता।"

अबुध्मि ने कहा :- "यदि ब्राह्मण को अपने तपोबल की रक्षा करनी है, तो उसे प्रतिग्रह का त्याग ही करना

चाहिये। लोग का नाम ही ऐसी है कि वह हर किसी बहाने आदमी को फंसा सक्ता है। एकत्र वन का धर्म-कार्य में विनियोग कर्कणा। ऐसी-ऐसी आत्मसंभवा में भी आदमी इसके बश पड़ जाता है।"

अबुध्मि बोली :- "धर्म के लिये द्रव्य-संग्रह करने और संग्रहीत धन के लिये पुनः उपयोग करने की भावना एकान्ती भावना है। धर्म के निमित्त द्रव्य-संग्रह करने की अपेक्षा हम उस तपोधर्म को ही क्यों न अपनायें, जिसमें द्रव्य के नाम पर एक पाई की भी ज़रूरत नहीं पड़ती।"

यों कह कर और गूलरों को उषो का ल्यों छोड़कर अविशेष वहाँ से चले गये। जब प्रजाजनों ने राजा को ये समाचार सुनाये तो राजा कोपाध्य हो उठा। वह बोला : "हू पड़े-लखे गूलरों को धर्माधर्म का कोई ज्ञान नहीं! कल्पलन जिस पूष को चकड़ने हैं, उसे किसी हालत में छोड़ते ही नहीं। मैं मानता हूँ कि ब्राह्मण को लोग नहीं करना चाहिये। लेकिन वह कौनो वान है कि कोई स्वेच्छा से कुछ न, और खेने बाका। ऐसे दोष्य दुर्भेस में भी उस लने से इन्कार कर दे। जब मैं भी इन्हे देख लूँगा। नको वने न चषवाकड", तो कहना। बुध्मिदामि जैसा राजा और इस प्रजा जैसी प्रजा इन्हे ब्राह्मण पूषक कुछ देना चाहता है, तो ये स्तया नकरों के बात नहीं करने।"

इस प्रकार कह कर उस कौचित्त अवस्था में ही वह अपनी आत्मशक्त में जा-वहुँक और शक्ति में हृमने केत देत गया। इस क्षेप के अलक्षक क्रमि ने-हृमया उपलब्ध हुई। राजा ने उसका नाम यातुधानी रक्खा। यातुधानी दोनो हाथ जोड़ कर कहने लगी :- "महागज! मुझे क्या आशा होती है।"

बुध्मिदामि ने उसी क्रोध में कहा : "तू इन सारों ऋषियों के पास जा और सब से पहले इनमें से हर एक का नाम लिख ले। ब्राह्मण्यवक पर न करने वाले इन दोगियों को मैं जरा पदधावूँ तो लही। फिर इन सबका नाश करके तू अपने स्थान पर बापल खलो जाना। आज इन लोगों ने मेरी दान-भूमि पर कठोर प्रहार किया है, अतएव अब तो ये सर्वनाश के ही पात्र हैं। देखूँगा, बिना अन्न-अन्न के वे ब्राह्मण अपने तप को कैसे सुदृष्टित रखते रहते हैं।"

राजा को आशा को लिर-माये खड़ा कर यातुधानी उसी वन में जा पहुँची, जहाँ ऋषिगण विचर रहे थे। इस समय तक इस ऋषिसमूह में एक सगर्वासी और एक कुला ये दो नये प्राणी और आर मिले थे। सन्ध्यासी एक शरीर लूब हृदयुध या और उसका कुला भी धैस ही मोटा-ताजा था।

इस प्रकार बारह जनों का यह द्रव्य वन में आहार के लिये पूषता भरकता एक तलैया के पास जा पहुँचा। तलैया निर्मल जल से भरी हुई थी और उसमें नयन-मनोहर कमल बिले हुए थे। इसी ताल के किनारे वह यातुधानी भी बैठी थी।

दूर से तलैया का निर्मल जल और सुन्दर कमल देख कर ऋषिद्वय पुष्कलित हो उठा। किन्तु आकर जब उन्होंने

बहा यातुधानी को बैठा बांधे, तो उससे पूछा - तू इस तलेवा से किन दे क्या लेती है ? तू चीन है ? मेरा इतादा क्या है ?

शुधियों के इन प्रश्नों को समझ खड़ेका ही करती हुई वह यातुधानी बोली मैं जो हू सो हूँ। तुममे मन-कम ! तुम पुत्रुन बल कीन ! म इम तलेवा की डिफाजन करन रेडी हूँ।

शुधियों ने कहा हम सब भूखे हैं। हमारे पास लाने को कुछ भी नहीं है नदी अनुमति तो ना हम इस तलेवा म मेरे थोड़ा कमल अपन लय ले ले।

यातुधानी न जवाब दिया व इप तलेवा की ग्ला म नियुक्त हूँ। मुक झुका हुई है कि मैं तुम लागो क नाम लिख सकू तुम सब अपन अपने केशु मुक लिखा वा फिर लुशी मे कमलों का उबसोवा करो।

यातुधानी की बात सुन कर श्राद्धा शुधियोंने भर-उला न पशुसख डोर मरदा: ने आपन भयत नाम लिखा दिप और फिर तलेवा म धैठ कर नहात लग। कपत म एक माई सन्यासी की बारा। आपो उससेमी नाम लिखाने को कहा गया। लेकिन ०रुने नाम लिखाने म कुछ येसी मरबड मबायी कि यातुधाना ठाक गीक समझ कहीं पायी उसने चिट कर कहा तूने अपना म म कसो महीं नहीं लिखाया है; फिर म नाम लिखा।"

इस पर सन्यासी हड़ हा उठा और बोला - क्या हम सब तरे बाप क नीकर हूँ ? मैं एक बार मुक अपा नाम बला चुका हूँ। फिर भी तू हेमसेमी नहीं इस लय प अब इस दरब के मर दे से तुम्हीं उझा कर भस्म किय जाबता हूँ। यों वह कर सन्य सीमें दरब उढाया और यातुधानी के सिर पर उसका एक प्रहा किया। वह बवायी उसी सूप धराशायी हो गई और जल कर नाक बन गयी फिर वह सन्यासी आपने दरब का पू वा पर टेक कर तलेवा क किनार बैठ गये।

इस बीच शुधियद स तलेवा में म कमलों और कमल नाला को एकत्र किया और ला भकर किनार पर रफवा। फिर तलेवा म पठ कर वे खड़े-कड़े तपस करन लग।

तपस समाप्त कर उं हो सब ब हर आप्य ता म्जान क्या ह कि तद पर न बदल हूँ न कमल। ल ह यह सब कर सब को अतिशय आश्चर्य हुआ। सब म ही मन सान्धने लग। हम वहद भूखे हे पल समय किलो नित्य आदमो न इम अपन इन कमलों से बचत किया ह ?

फिर ता मारे भूख के व आपस म एक दूसरे को हा शंका की दृष्टि से इधने लग कंत म इस तरह का शंकाओं का निवारण करने क लिए जनम ल प्रयत्न इस प्रकार शक्य लेन लग "जिसने कमल चुराये ही उस पर यह पाप लगे वह पाप लगे उसकी देला गति हा वैसी गति हा। उसे शैलालक मिरे वह लौक मिने इस प्रकार की विविध-अपघे धरगे प्राधिकी न लीं। आल म उस मारे सन्यासी की धानी आपी। उसने ही हाथ म पानी ले कर दो कहना मुक किया - "जिसम म कमल चुराये हो उने मरुमारो कर पुरब मिल मिलन यह कमल चुराये हो उसे म्भानक म्भारोष का पुत्र्य प्राप्त हो।

सन्यासी की इन शंयर्थो को सुन कर सब पुकार डटे— हे शंकिव' अब तुम बप रलो। तुम्हीं ने ईमान' कमल चुराया ह।

सन्यासी न कहा— हा मैं ही आपर्षी बसतें का पार हूँ। निर्दिष्ट शुधियों' काउ लाग। वा नाश करन क लिए भंज गयी इस व तुधानी का मन ही उझा कर अन्म किया हें म इद्र हूँ। अप लाग मा' भूख क अतिशय या: लय बुवादान न आपको भाति माति क भाग प्रदान करन का इच्छ व्यक्त वा यहा नहीं उसन ता बल तू अपका कुछ दन का दश किया फिर भी आप लल नाय नहीं इस क लिये म आपका थ यवाव दता ह। माना अरुधति' आपक समान निलींय शुधियों का जीवन यात्रा मे तु लो का स मना न करना पड़े, इसका पूरा प्रयत्न म्भारव न कर सका हें। आत्र आप लागी की तनिक सो म्भवा वा जा अबसर मुक मिला उसक लिय मं म्भारव का अतिशय आभासी हूँ। जिस पर ईश्वर की रूप होती हे वही आपके समान सन्तो की चरख रज का माथ चढ़ान का न्युगाय पता है।

यह कह इद्र ने उम सउका प्रहा किया और वहाँ से बिदा हो गया।

अनुवादक—काशीनाथ मिश्रदी

### जिज्ञासुओं की कुछ सेवा

#### यज्ञोपवीत संस्कार के विषय मे

[एक सज्जन न पत्रहारा श्री व कार्थे धर्मवेत्ते जी से हूँ सम्पर्क में शका की हे हम यज्ञोपवीत के शैली पत्रो को गये उत्पन्न करन हे- लं.]

आ आचार्य जी

साह्र नमस्न !

यद्यपि मैं आर्यसमाजी नहीं हें त गपिय इस धम व इसके सिद्धान्तों के प्रति मे हृदय में आदर व सम्मान हे।

मुक कुछ दिने म एक शंका हे और अरे जी के कड़ विद्यानों के ससग म यह शंका और भी अधिक बढ़नी जा रही है। यहा इसका समाधान न हाने मे आपने प्रायना हे कि इसका समाधान करने की हृपा करे -

शका यह ह - स्मृतियों म द्विजमात्र के लिए वषो पयोत धारण करना ( उपनयन संस्कार ) अ धारणक क्यों बसपा गया ह ? उस पर भी अलग २ वषा के लिए भिन्न २ समय क्या नियत किया गया है ? इस संस्कार म क्या लभ हें और इसने न हान से क्या हासि हाता ह ?

उम ल गा का समाधान करन के लिए मुक शास्त्रीय तार्किक तथा वैज्ञानिक-समाज उतर की आवश्यकना हे अत पूछे विम्भाल व आशा के साथ प्रायना हे कि जल्दी हा ऐसा उतर मजने की हृपा करे।

अ पका -

उपशान्तिनाथी - पारलकप पुगहिन  
हेडमास्टर वनाकपुनर मिडिल स्कूल  
मु० पो० अररामपुर ( मेवा गाने )

इसका उत्तर भी आचार्य जी ने निम्न दिया—

भार्गु दामस्वरूप जी, नमस्ते।

आपका १-५-४१ का लिखा पत्र मिला। आपके प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में निम्न प्रकार है। इसका विस्तार आप स्वयं करें।

यद्योपवीन धारण भिन्न होने का चिन्ह है। विद्या द्वारा विद्या या स.विभी प्रान्त के गर्भ में हुआ जन्म पाने का चिन्ह है। या यूँ कहिये कि दीक्षित होने का चिन्ह है। भिन्न २ वर्णों के लिए भिन्न २ समय इसलिये नियत किया गया है कि उन में साधारणतया ज्ञान पिय.सा या दीक्षित होने की इच्छा अथवा मत प्रवृत्त करने की शक्ति साधारणतया भिन्न २ समय में (आयु में) होती है। साधारणतया प्राणायाम में दीक्षित होने की इच्छा और शक्ति जल्दी उपलब्ध होती है, क्षत्रिय में उसके बाद और वैश्य में उसके भी बाद। अपवाद रूप में विशेष रूपका होने पर इस समय में भी जल्दी उपनयन करने का विधान शास्त्र में है।

धैर्यक संस्कार किया का हेतु सामान्यतया संस्कृत होने काल के मन पर उत्सव और अनुकूल संस्कार इदंतया डालना होता है। उपनयन संस्कार द्वारा गुरु शिष्य को अपने नजदीक करता है, उसे अपना बनाता है उसके साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध जोड़ता है। उपनयन संस्कार की तो एक एक क्रिया का बहुत महत्त्व है। पशु संक्षेप में उपनयन संस्कार की क्रियाओं द्वारा वह गुरु का उत्तम शिष्य बने यह संस्कार डाला जाता है।

गुप्त.कांटी—

'अभय'

## गुरुकुल-समाचार

**गोष्ठी सभा**—इस वर्ष के प्रारम्भ से ही गुरुकुल

में साहित्यिक वातावरण कायम रखने में गोष्ठी सभा ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। मास के प्रत्येक पक्ष में इसके अधिवेशन नियमित रूप से बड़े उत्साह के साथ किए जाते रहे हैं। शिक्षित पक्ष में बौद्ध कवि भी मागार्जुन के सभापतित्व में सभा का एक माधुर्या अधिवेशन किया गया जिसमें सभापति जी के आतिथिक स्वीकृति कवियों, गाल्पिकों एवं श्लोककारों ने अपनी उत्तम कृतियाँ सुनाईं। गत सप्ताह इसका एक अन्य सफल अधिवेशन गुरुकुल कुरुक्षेत्र के मुख्यविद्यार्थी श्री पं० सोमवन्त जी की अध्यक्षता में किया गया। कविताओं गल्पों और प्रश्नों के बाद भी सभापति जी ने सब की कृतियों पर उचित समालोचना करते हुए गाल्पिकों को पद्य-प्रदर्शन करने के लिए अपनी एक उत्तम गल्प सुनाई। इस प्रकार यह अधिवेशन ६१ वजे गति को समाप्त हुआ।

सभा के अधिवेशनों को पत्राप्त मिलचर्ची से करवाने का श्रेय इसके वर्तमान सभ्य श्री सर्वकुमार का है।

## होम्योपैथी पर व्याख्यान—गव १५ जुलाई।

सहाविद्यालय विभाग के प्रोफेसर्स और ब्रह्मचारियों के बीच डॉ० ओम्प्रकारा जी विद्यालक्षार का 'होम्योपैथी की सैट,रिया मेडिका' विषय पर सारगम्य व्याख्यान हुआ। मान्य पंडित जी ने बड़ी योग्यता-पूर्वक विषय का प्रतिपादन किया और मनोहरक उदाहरणों को देकर व्याख्यान को आकर्षक बनाया। आपके पत्रार्थ सभापति श्री प्रो० सत्यजन जी मुख्यविद्यार्थी ने कई आवश्यक बातों पर प्रकाश डालते-हुए विषय की व्यापकता का प्रतिपादन किया। लगभग २ घण्टे तक प्रस्तुत विषय की चर्चा होनी रही, जिससे श्री०-बुन्द ने पूरा २ लाभ उठाया।

## गुरुकुलीय-कविदरबार

२ विचार १२ जुलाई को रात को वाचविधीनी सभा की ओर से एक विशाल कवि-दरबार का आयोजन किया गया था। जिसमें ब्रह्मचारियों ने बड़े उत्साह सहित भाग लिया और अपने अभिनय कौशल से दर्शकों का मनोरञ्जन किया। श्री पं० विद्यानिधि जी सिद्धाप्ताहशर के निरीक्षण में उनकी तैयारी की गई थी। पं० जी के भ्रम और कुशलता का लाभ उठा कर ब्रह्मचारियों ने अपना २ हिस्सा अच्छी तरह पूरा दिया।

श्री पं० विद्यानिधि जी ने राजा का पाठ उत्तमता के साथ निभाया, उसके साथ ही श्री राजकु १२ जी ने मंत्री का श्री नरेन्द्र जी ने राजकवि का और भी सत्यपाल जी ने विद्वयक का पाठ पूरे तौरपर अदा किया। श्रीहरिचंदा जी, श्रीमन्दिशानन्द जी, श्रीअमरसिंह जी का अभिनय लोकोक्ति पसन्द किया। श्री शान्तिस्वरूप जी का प्रहसन अच्छा रहा। उससे इस आयोजन को मनोरञ्जकता और बढ़ गई। उसके साथ ही और भी ब्रह्मचारियों ने अपना २ पाठ उत्तमता से पूरा किया।

दरबार देखने के लिए सारा कुल उपस्थित हुआ था। उनकी उत्सुकता से काँच दरबार में और जान आ गई और अन्ततक सबका उत्साह समान रूप से बना रहा। सब बाह-बाह करते हुए लौटे। कवि दरबार सफल रहा।

इस प्रकार के आयोजनों द्वारा ब्रह्मचारियों की प्रगति होती है और उनके प्रोत्साहन मिलता है। समय २ पर उन्हें मौका मिलता है कि वे अपनी शक्तियों का प्रकाश कर सकें। आशा है आगे भी ब्रह्मचारों अपनी इस योग्यता का परिचय देते रहेंगे।  
इस सभ के लिए श्री० देवभिन जी सत्री 'वाचविधीनी सभा' धन्यवाद के पात्र हैं। जिनके आग्रह उत्साह और अनयक परिश्रम से वह सभ कुछ संभव हो सका।

## स्वास्थ्य-समाचार

रामप्राश ५ अंकी Mumps, ज्वररुग्ण ११ अंकी टान्सिल, सुरेन्द्र ३ अंकी उदरशूल, अश्वेष्ट ५ अंकी विषमस्वर, सुभाशुचान्द्र २ अंकी शिष्यस्वर, कन्दकान्त ५ अंकी टान्सिल, सुरेशचन्द्र ५ अंकी ब्रह्म, कल्पवन्त १ अंकी ब्रह्म,

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारियों रोगी हुये थे अब सब स्वस्थ हैं। गत सप्ताह श्री.वर्षा न होने से पर्याप्त गर्मी रही।



